


'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥'

प्रथम संस्करण—१९८३-८४ ई०

आकार— १८×२२÷८

पृष्ठसंख्या—८२८

मूल्य— १००.०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

मौसम बाग़ (सीतापुर रोड), लखनऊ-२२६०२०

# प्रकाशकीय प्रस्तावना

**प्रस्तुत खण्ड पर वक्तव्य**

तेलुगु का पोतन्न महाभागवतमु का यह द्वितीय खण्ड (स्कन्ध ५-९) प्रकाशित हो गया। गत वर्ष प्रथम खण्ड (स्कन्ध १-४) पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हो चुका है। तृतीय (अन्तिम) खण्ड (स्कन्ध १०-१२) छप रहा है। ऐसा विशालकाय और अलकार एवं गहन तत्त्व से परिपूर्ण नागरी संस्करण इतनी जल्दी प्रकाश में आ रहा है, इसका प्रमुख श्रेय डॉ० भीमसेन निर्मल एवं उनके सहयोगी पाँच विद्वद्वरों को है। प्रथम खण्ड में जैसा कि मैंने लिखा है, वस्तुतः इतने बड़े काम पर सन्नद्ध साक्षात् षडानन के अमित श्रम और तत्परता से ही यह इतना बड़ा काम इतने अल्प समय में पूर्ण हुआ।

**तेलुगु-देवनागरी वर्णमाला**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| అ अ | ఆ आ | ఇ इ | ఈ ई | ఉ उ |
| क | का | कि | की | कु |
| ఊ ऊ | ఋ ऋ | ౠ ॠ | ఌ ऌ | ౡ ॡ |
| कू | कृ | कॄ | | |
| ఎ ऎ | ఏ ए | ఐ ऐ | ఒ ऒ | ఓ ओ |
| के | के | कै | को | को |
| ఔ औ | అం अं | అః अः | | |
| कौ | कं | कः | | |
| క क | ఖ ख | గ ग | ఘ घ | ఙ ङ |
| చ च | ఛ छ | జ ज | ఝ झ | ఞ ञ |
| ట ट | ఠ ठ | డ ड | ఢ ढ | ణ ण |
| త त | థ थ | ద द | ధ ध | న न |
| ప प | ఫ फ | బ ब | భ भ | మ म |
| య य | ర र | ల ल | వ व | శ श |
| ష ष | స स | హ ह | క్ష क्ष | ఱ ऱ,ऱ |
| | | ళ ळ | | |

प्रथम खण्ड की प्रकाशकीय प्रस्तावना में देवनागरी अक्षयवट की भूमिका, नागरी लिपि के समान ही सभी भारतीय लिपियों की वैज्ञानिकता, फिर भी नागरी लिपि पर विशेष उत्तरदायित्व, नागरी लिपि में आवश्यकता के अनुसार दूसरी भाषाओं के स्वर-व्यञ्जनों का

समावेश, नागरी लिपि से राष्ट्र एवं विश्व के सन्दर्भ में अपेक्षाएँ, तदर्थ आन्ध्र प्रदेश का योगदान आदि पर सम्यक् विचार प्रकट किया गया है।

डॉ० भीमसेन निर्मल की अनुवादकीय प्रस्तावना में सभी विद्वान अनुवादकों का परिचय, अमात्यवर पोतन्न का जीवन-चरित्र, पोतन्न महाभागवतमु का कृति-सौंदर्य, तॆलुगु लिपि और भाषा का राष्ट्र के लिए योगदान आदि विषयों पर विस्तार में प्रकाश डाला गया है। परिशिष्ट रूप मे, तृतीय (अन्तिम) खण्ड की अनुवादकीय और प्रकाशकीय प्रस्तावनाओं में प्रकाश डाला जायगा।

तॆलुगु लिपि और भाषा के विशिष्ट स्वर-व्यञ्जन तथा उच्चारण पद्धति पर वक्तव्य, प्रस्तुत खण्ड में पाठकों की सुविधा के लिए पुनः दे दिये गये हैं।

## आभार-प्रदर्शन

सदाशय श्रीमानों और उत्तरप्रदेश शासन (राष्ट्रीय एकीकरण विभाग) के प्रति भी हम आभारी है, जिनकी अनवरत सहायता से 'भाषाई सेतुकरण' के अन्तर्गत अनेक ग्रंथों का प्रकाशन चलता रहता है।

सौभाग्य की वात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी सहित सभी भाषाओं की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि "नागरी" के प्रसार पर उपयुक्त बल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष बल मिला है और उसी के फलस्वरूप तॆलुगु के लोकप्रख्यात संत-कवि अमात्यवर पोतन्न प्रणीत ग्रंथरत्न "आन्ध्रमहाभागवतमु" के द्वितीय खण्ड का प्रकाशन प्रस्तुत वर्ष में सम्पूर्ण हो सका है। आशा है, शेष (अन्तिम) खण्ड (स्कन्ध १०-१२) भी शीघ्र ही मुद्रित होकर राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत हो जायगा।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा ॥<br>
पहन नागरी-पट, सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा ॥<br>
अमर भारती सलिल-मञ्जु की "तॆलुगु" सुपावन धारा ॥<br>
पहन नागरी पट, उसने अब भूतल-भ्रमण विचारा ॥

**नन्दकुमार अवस्थी**

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

# अनुवादकोश

## तॅलुगु भाषा और लिपि

तॅलुगु मूलतः द्रविड़भाषा-परिवार से सम्बद्ध भाषा है, किन्तु वह संस्कृत से इतनी प्रभावित है कि कुछ विद्वान् उसे संस्कृत-जन्य ही मानते हैं। उत्तर और दक्षिण के सन्धिस्थल पर स्थित होने के कारण यह स्वाभाविक ही है कि तॅलुगु अथवा आन्ध्र भाषा संस्कृत भाषा तथा साहित्य से अत्यधिक प्रभावित हो जाय।

अन्य भारतीय भाषाओं के समान ही तॅलुगु ने भी नागरी-वर्णमाला को अपनाया है। किन्तु नागरी-वर्णमाला की अपेक्षा ह्रस्व ए (ऍ) और ह्रस्व ओ (ऑ), च और ज के दन्त्य रूप (च़, ज़), घर्षण ध्वनि वाला र (ऱ) और ळ तॅलुगु में अधिक हैं।

"इटैलियन् ऑफ़् द ईस्ट्" मानी गई तॅलुगु की विशेषता 'अजन्त' (स्वरान्तता) होना है। अर्थात् प्रत्येक शब्द के अन्त में कोई न कोई स्वर (अधिकतर 'उ' या 'इ') होता है और उसका पूरा-पूरा उच्चारण होता है। शब्द के मध्य मे आनेवाले स्वर का भी पूरा-पूरा उच्चारण होता है। अतः नागरी लिपि में दिए गए तॅलुगु शब्दों को पढ़ते समय, उनके स्वरान्त उच्चारण पर ध्यान रखिये। 'जल' लिखकर हिन्दी की भाँति उसे 'जल्' न पढ़कर संस्कृत के समान 'ल' को सस्वर पढ़ना चाहिए।

'ऋ' का उच्चारण बहुधा 'रु' के समान होता है। यथा 'ऋण', 'कृष्ण', 'गृह' आदि का उच्चारण 'रुण', 'क्रुष्ण', 'ग्रुह' के समान होता है।

'ए' और 'ओ' के ह्रस्व रूप भी प्रचलित है। उनके लिए 'ऍ' और 'ऑ' तथा उनकी मात्राओं के लिए ॅ और ॉ का उपयोग किया गया है।

'लृ' और 'लॄ' सिखाए तो जाते है पर उनका प्रयोग न के बराबर होता है।

'च' और 'ज' के दन्त्य और तालव्य दोनों प्रकार के उच्चारण तॅलुगु में विद्यमान हैं। दन्त्य उच्चारण को सूचित करने के लिए अक्षर के नीचे एक विंदु लगाया गया है।

तॅलुगु में सरल 'र' के अतिरिक्त घर्षण ध्वनि वाला 'ऱ' का भी प्रयोग होता है।

तॅलुगु में बहुधा 'थ' का उच्चारण 'ध' के समान किया जाता है। यथा 'रथमु' को 'रधमु' और 'ग्रंथ' को 'ग्रंध' कहा जाता है। इसका कारण दोनों अक्षरों का रूपसाम्य माना जाता है।

संस्कृत के कई लकारान्त शब्दों में 'ल' के स्थानों पर 'ळ' का प्रयोग होता है। यथा कला = कळा, मंगल = मंगळ, गरल = गरळ, मुरली = मुरळी, सरल = सरळ आदि।

तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' के उच्चारण में अन्तर स्पष्ट है।

तॅलुगु के कुछ शब्दों में अर्धानुस्वार का प्रयोग है। यह उस स्थान पर प्राचीन काल में प्रयुक्त अनुस्वार का बचा हुआ है। इसका न तो उच्चारण होता है, न आधुनिक काल में प्रयोग ही होता है। चिह्न को लिप्यन्तरण में छोड़ दिया गया है। तॅलुगु में वर्गांत अनुनासिक के स्थान पर सर्वथा अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाता है। किंतु देवनागरी लिप्यन्तरण में ह्रस्व ऍ और ऑ की मात्राओं के 'पश्चात्-अनुनासिक' को मुद्रण की सुविधा के लिए वर्गांत अनुनासिक ढंग पर लिखना अपनाया गया है यथा रॅण्ट, रॅण्डु, वॉन्दुटयु आदि।

साधारणतया तॅलुगु के शब्द दीर्घान्त नहीं होते। अतः संस्कृत शब्द तॅलुगु मे ह्रस्वान्त रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। यथा पिता = पित, कमला = कमल, पार्वती = पार्वति, गौरी = गौरि, अपराधी = अपराधि आदि।

तॅलुगु वाक्य के मध्य में स्वर का कदापि प्रयोग नहीं होता। स्वर अपने से पूर्व के व्यंजन से जुड़ जाता है। बहुधा क, च, ट, त, प ये व्यंजन (इन्हें सरलाक्षर कहते है) ग, ज, ड, द, ब में बदल जाते हैं। इस नियम को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए। यथा कृत = गृत्य, प्रणव = ब्रणव, परिचित = बरिचित, चड = जड आदि।

कुछ शब्दों के अन्त मे नकार (हलन्त) होता है। सन्धि के नियमों के अनुसार वह पश्चात्-स्वर में मिल जाता है। यथा, विदूरन्+अकृत्रिम = विदूरनकृत्रिम, अरुदुगान्+इन्द्रिय = अरुदुगानिन्द्रिय आदि।

संस्कृत के शत-प्रतिशत शब्दों का प्रयोग तॅलुगु में होता है। हाँ, कुछ शब्दों के अर्थ हिन्दी से भिन्न है।

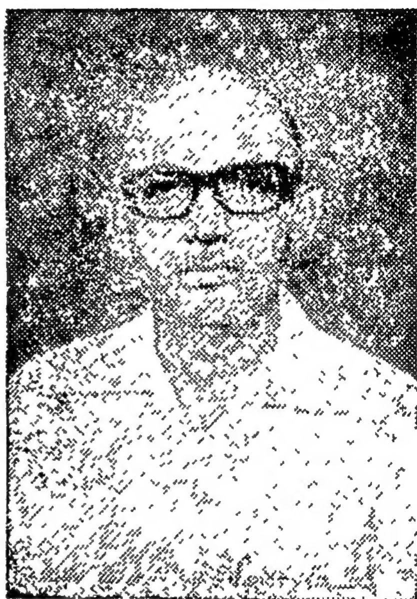
दूसरी बात हिन्दी पाठकों के ध्यान देने की ओर है। संस्कृत के अनन्त शब्द तॅलुगु में पैठकर मिलते-जुलते रूप में परिवर्तित हो गये हैं। यथा, नूतन को नुतन; वातुलसुत को वातूलसुत; पिता को पित; अपराधी को अपराधि। इनको अशुद्ध न समझें। जिस प्रकार संस्कृत शब्द हिन्दी में सामान्य परिवर्तन को ग्रहण कर लेते है, (नवम को नवाँ, नालि को नाली), वैसे ही तॅलुगु में भी। उनको तॅलुगु में परिवर्तित संस्कृत शब्द समझें, न कि अशुद्ध।

## द्वितीय खण्ड

आन्ध्र महाभागवत के (देवनागरी लिप्यन्तरण सहित हिन्दी अनुवाद) द्वितीय खंड को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए सन्तोष का अनुभव हो रहा है। इस खंड मे पंचम और षष्ठ स्कन्धों का लिप्यन्तरण एव अनुवाद डॉ० एम० रंगय्या एवं डॉ० निर्मल का सह प्रयास है, तो सप्तम स्कन्ध डॉ० श्रीमती सी० नीरजा का है। अष्टम स्कन्ध का कार्य श्री एस० वी०

शिवराम शर्माजी ने तथा नवम स्कन्ध का कार्य डॉ० एम० बी० वी० आई० आर० शर्मा ने सम्पन्न किया है।

इस खंड में अजामिलोपाख्यान, प्रह्लाद-चरित्र, गजेंद्र-मोक्षण की कथा, वामनावतार की कथा, अंबरीषोपाख्यान, रंतिदेव की कथा आदि उपाख्यान भक्त-शिरोमणि पोतनामत्य के भक्ति-पारम्य एव रचना-कौशल के समुज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करनेवाले है। अपने रचना-चमत्कार द्वारा पोतन्न ने जो बिम्ब प्रस्तुत किए हैं, वे अनुपम हैं। 'गजेंद्र-मोक्षण' की कथा तो पोतन्न के प्रपत्ति-भाव का मानों दर्पण है। 'वामनावतार' का उपाख्यान पोतन्न के कथाकथन तथा वर्णन-पटुता का भव्य-प्रमाण है। इन उपाख्यानों में पोतन्न के भक्त हृदय ने, जो सहज-पांडित्य से समलंकृत था, काव्योचित रूप से कथा-प्रसंग को ऐसा मौलिक विस्तार दिया है कि पाठक पुलकित हुए बिना नहीं रह सकता। गंगा-प्रवाह के समान निर्मल एवं अजस्र शैली प्रसाद गुण से युक्त होकर पाठक को मुग्ध कर देती है। इन्ही गुणों के कारण कई विद्वानों ने मुक्त कंठ से कहा है कि तॆलुगु भाषा के काव्य-सौन्दर्य से और भाषा-माधुर्य से परिचित होने के लिए पोतन्न के भागवतमु को पढ़ना चाहिए।



कहा गया है कि श्रीमद्भागवत के रहस्य को व्यास या शुकजी ही जानते है। उसे समग्र रूप से जानना, जानकर कहना, स्वयं पोतन्न के शब्दों में ब्रह्मा और शिवजी के भी बस की बात नहीं है—(१-१७)। हमने तॆलुगु भागवतमु का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कहीं, कहीं कुछ दोष या असंगतियाँ हों, वे सब हमारी अल्पज्ञता के कारण हैं।

पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी की सतत प्रेरणा और प्रोत्साह इस गुरुतर कार्य को सम्पन्न करने में हमारे लिए नित्य के संबल रहे हैं। हम उसके अभाव में यह अनुबाद इस रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर पाते।

पोतन्न की भक्ति-भावना तथा कविकर्म की कुशलता से हिन्दी के सुधी पाठक यदि परिचित होसके तो हम अपने प्रयास को सफल समझेंगे।

गांधीनगर
हैदराबाद—५००३८०

विद्वज्जन बिधेय
भीमसेन निर्मल

# विषय-सूची

पञ्चम स्कन्ध 17-139

(प्रथमाश्वास)

(द्वितीयाश्वासम्)

## सप्तम स्कन्ध 309-452

## अष्टम स्कन्ध 453-647

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

# आन्ध्र महाभागवतमु

( ५ से ९ स्कन्ध )



ॐ

# अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

# आन्ध्र महाभागवतमु

## ( पञ्चम स्कन्धमु )

### प्रथमाश्वासमु

श्रीकर ! करुणासागर ! प्राकट लक्ष्मीकळत्र ! भव्यचरित्रा !
लोकातीत गुणाश्रय ! गोकुलविस्तार ! नंदगोपकुमारा ! ॥ 1 ॥

### अध्यायमु—१

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनिश्रेष्ठुलकु निखिल पुराण व्याख्यान
वैखरी समेतुंडैन सूतुंडिट्लनियें ॥ 2 ॥

कं. भूनाथु डुत्तरात्मजु, -डैन परीक्षिन्नरेंद्रु डभिमन्युसुतुं-
डानंद मोंदि घन सु, ज्ञानुंडगु शुकुनि गांचि सरसत बलिकेन् ॥ 3 ॥

---

( पञ्चम स्कन्ध )

### प्रथमाश्वास

हे श्रीकर (शुभप्रदाता, विष्णु) ! करुणा के सागर ! प्रसिद्ध रूप से लक्ष्मी को कलत्र के रूप में पानेवाले ! भव्य चरित्र से संपन्न ! हे लोकातीत गुणों के आश्रय ! गोकुल के विस्तारक ! नंदगोप के पुत्र ! [नमः] १

### अध्याय—१

[व.] महान् गुणों में ग(व)रिष्ठ उन मुनिवरों से, समस्त पुराणों के व्याख्या की वैखरी (पद्धति) से युक्त सूत ने इस प्रकार कहा, २
[कं.] भूनाथ (राजा), उत्तरा के आत्मज, अभिमन्यु के पुत्र, परीक्षित महाराज ने हर्षित होकर, महान् सुज्ञानी शुक महामुनि को देखकर सरसता

व. मुनींद्रा ! परमभागवंतुंडु, नात्मारामुंडुनैन प्रियव्रतुंडु गृहंबुननुंडि यॅट्लु रमिंत्रे ? कर्मबंधंबुलैन पराभवंबुलुगल गृहंबुलयंदु मुक्तसंबन्धुलैन पुरुषुलकु संतोषंबु गानेरदु । उत्तमश्लोकुडैन पुंडरीकाक्षुनि पादच्छायं- जेसि निवृतचित्तुलैन महात्मुलु कुटुम्बमुनंदु निस्पृहत सेयुदुरु । कान प्रियव्रतुनिकि संसारंबुनंदु दगुलंबु गलुगुटॅट्लु ? दारागार सुतादुलंदु दगुलंबु गलवानिकि नॅट्लु सिद्धि गलुगु ? श्रीहरियंदस्खलितमति यॅट्लु गलुगु ? ई संशयंबु दॅटपरुपुमु । अनि परीक्षिन्नरेंद्रुंडडिगिन शुक योगीन्द्रुं डिट्लनियॆं ॥ 4 ॥

कं. हरि चरणांबुज मकरं, द रसावेशित मनःप्रधानुंडगु स-
त्पुरुषु डॊकवेळ विघ्नमु, वॊरसिन दन पूर्वमार्गमुनु विडुवडिलन् ॥ 5 ॥

### मनुपुत्रुंडगु प्रियव्रतुनि युपाख्यानमु

कं. धरणीवल्लभ ! विनु मा, नरवरुडु प्रियव्रतुंडु नारदमुनि स-
च्चरणोपसेव जेंदुचु, नरदुग नध्यात्म सत्रयागंबंदुन् ॥ 6 ॥

सी. दीक्षितुंडै धरित्रीपालनमु वंद्रि पनिचिन सुज्ञानभंगमनुचु
नंगीकरिंपकुंटंतयु दॆलिसि पद्मासनुंडतनिकि नतुलराज्य

---

से यों कहा— ३ [व.] हे मुनींद्र ! परम भागवत, आत्माराम (अपनी ही आत्मा मे रमण करनेवाला) प्रियव्रत [नामक व्यक्ति] गृहस्थ होकर भी किस प्रकार सुखी रहा ? कर्मबंध रूपी पराभवों से युक्त गृहस्थाश्रम में मुक्ति चाहनेवाले पुरुषों को (मुमुक्षुओं को) संतोष (आनंद) प्राप्त नहीं हो सकता। पुन्यी पुंडरीकाक्ष (विष्णु) के चरणों की छाया में रहने के कारण निवृत्त चित्त होनेवाले महात्मा जन परिवारों से विरक्त होते हैं। अतः किस प्रकार प्रियव्रत को संसार के प्रति लगाव पैदा हुआ ? दारा (पत्नी), आगार (घर), सुत आदि में लगाव रखनेवाले को सिद्धि कैसे प्राप्त होगी ? किस प्रकार हरि के प्रति मन निश्चल होगा ? मेरे इस संदेह का निवारण करें। इस प्रकार राजा परीक्षित के पूछने पर शुक ने यों कहा— ४ [कं.] हरि के चरण-कमलों के मकरंद के रस से आवेशित (मस्त) मनःप्रधान सत्पुरुष, यदि कभी विघ्न आवें, तो भी अपने पूर्व मार्ग से विचलित नहीं होता। ५

### मनुपुत्र प्रियव्रत का उपाख्यान

[कं.] हे धरणीवल्लभ (राजन्) ! सुनो, वह नरवर (राजा) प्रियव्रत नारद जी के सच्चरणों की सेवा करते हुए, ६ [सी.] विरल अध्यात्म-सत्र-याग में दीक्षित होकर, धरती के पालन (राज्य-पालन) के

मंदुल मिक्किलि यासक्ति बुट्टितु ननुचुनु दन चित्तमंदु दलचि
तारकाद्यनुसृत ताराधिपुनि माड्कि श्रुतुलतो गूडि यच्युतविभूति

ते. हंसवाहनुडगुचु निंद्रादुलॆल्ल, गदिसि सेविप ब्रह्मलोकमुननुंडि
सन्मुनींद्रलु दन्नु ब्रशंस सेय, नल्लनल्लन युड्डुवोधि नरुगुदेंचॆ ॥ 7 ॥

व. मरियु नथ्ये मार्गमुलयंदु सिद्ध साध्य गंधर्व चारण गरुड किंपुरुषलु स्तोत्रंबुलु सेयुचुंड गंधमादन द्रोणुलं ब्रकाशंबु नोंदिपुचुं जनुदेंचिन पद्मासननुनकु नारदुंडु स्वायंभुव प्रियव्रतुलतो गूडि मुकुलितकरकमलुंडै यॆदुरु चनुदेंचि, संस्तुतुलतोडं बूजिंचिन विरिंचि संतसिंचि प्रियव्रतुनि जूचि नव्वुचु निट्लनियॆ ॥ 8 ॥

कं. हरि नामुखमुन नीकुनु, गरमॆरिगिंपंग बनिचॆ गावुन निदे सु-
स्थिरमति विनु मंतयु श्रो, हरि वाक्यमुगा नॆरिगि यवनीनाथा! ॥ 9 ॥

आ. कोरि वेड्क नेनु नारदुंडुनु नीवु, नंदरु मिदे ईश्वराज्ञ बूनि
युडुग कॆपुडु सेयुचुन्नवारमुगान, नतनि याज्ञ दप्प नलवि गादु ॥ 10 ॥

व. मरियु श्रीहरियाज्ञं जीवुंडु तपोविद्यलनु योगवीर्यज्ञानार्थ धर्मंबुलनु दनचेत

---

लिए पिता की आज्ञा को, सुज्ञान में भंग [डालनेवाला] मानते हुए अस्वीकार किया। यह सब जानकर [कि प्रियव्रत राज्य-संचालन में विरक्त हैं] ब्रह्मा अपने चित्त में यह सोचकर कि [प्रियव्रत को] अतुल राज [-कार्य] में आसक्त करूँगा, ताराओं के सहित ताराधिप (चंद्रमा) के समान श्रुतियों (वेदों) के साथ, अच्युत [शाश्वत] विभूति से युक्त हो, [ते.] हंस पर विराजमान होकर, इंद्र आदि [देवताओं] के अपने को परिवेष्ठित कर सेवाएँ करते रहने पर, ब्रह्मलोक से सत्-मुनीद्रों की प्रशंसा को प्राप्त करते हुए, धीरे-धीरे आकाशवीथि पर पहुँचे। ७ [व.] और उन-उन मार्गों में सिद्ध, साध्य, गंधर्व, चारण, गरुड़, किंपुरुषों के गुणगान करते समय, गंधमादन तथा द्रोण (पर्वतों) को प्रकाशित करते हुए आए, ब्रह्माजी को नारद ने, स्वायंभुव तथा प्रियव्रत के साथ मुकुलित कर कमलवाला होता हुआ [हाथ जोड़कर] आगे बढ़कर, संस्तुतियों के साथ पूजा की। तब विरिंचि (ब्रह्मा) ने प्रसन्न होकर, मुसकान के साथ प्रियव्रत की ओर देखकर यों कहा। ८ [कं.] हे अवनिनाथ! हरि ने मेरे मुख से (द्वारा) तुम्हें अधिक जताने (समझाने) के लिए भेजा है। इसलिए इसे सुस्थिर मति से, श्रीहरि का कथन समझकर, सुनो। ९ [आ.] चाहकर, उत्साह से मैं, नारद, तुम —सभी ईश्वर की आज्ञा मानकर सदा उसकी [ईश्वर की] आज्ञा का पालन कर रहे हैं। इसलिए उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता। १० [व.] और श्रीहरि की आज्ञा को जीव [अपनी] तप आदि विद्याओं से, योग, वीर्य, ज्ञान, अर्थ, धर्म आदि के बल से स्वयं अथवा

नौरुलचेतनु दाटिंपग समर्थुंडु गाडु। उत्पत्ति नाशंबुलकु शोकमोह सुखदुःखंबुलकु नीश्वराधीनुंडै कानि जीवुंडु स्वतंत्रुंडु गाडु। श्रीहरि वाग्रूपंबुलैन श्रुतुलंदु गुणत्रयंबनु रज्जुवुन वंधिपंबड्ड यस्मदादुलमु मुकुद्राटिचे बशुवु मनुष्युलकु वशंबैन चंदंबैन नीश्वराज्ञं ब्रवर्तिपुचुंदुमु। नरुंडु सुखदुःखानुभवंबुलकु नोश्वराधीनुंडु नेत्रंबुलु गलवानिचेत दिवियंबड्ड यंधुंडुनुंबोलॆ नीश्वरुंडिच्चिन सुखदुःखंबु लनुभविपुचुन्नवारमु। स्वप्नंबुनंगन्न पदार्थमु मेलुकांचि मिथ्यगा दलंचिन चंदंबुन मोक्षार्थियैन सुज्ञानवंतुंडु प्राप्त सुखदुःखंबु लनुभविपुचु देहारब्ध कर्मंबुलंबाय नोल्लडु। वनवासियैननु जितेंद्रियुंडु गाकुंडेनेनि गामादि सहितुंडगुटं जेसि संसारबंधंबलु गलुगु। गृहस्थाश्रमंबंदुनु जितेंद्रियुंडै यात्मज्ञानंबुगल पुरुषुनकु मोक्षंबु सिद्धिचु। शत्रुवुल गॆलुव निच्छयिचिन पुरुषुंडु, दुर्गंबाश्रयिचि शत्रुवुल गॆलिचिनमाड्कि, मोक्षार्थियगु पुरुषुंडु गृहाश्रयुंडगुचु श्रीहरि चरणारविंदंबुलनु दुर्गंबाश्रयिचि यरिषड्वर्गंबुल जयिचु। नीवुनु मुक्तसंगुंडवै योश्वर कल्पितंबुलगु भोगंबुल ननुभविचि मुक्ति जेंदुमु। अनिन बियव्रतुंडु द्रिभुवनगुरुंडैन ब्रह्मवाक्यंबु नवनतमस्तकुंडै वहुमानपूर्वकंबुग नंगीकरिचॆ। अंत ॥ 11 ॥

---

किसी और की सहायता से, उल्लंघन करने में समर्थ नहीं है। वह उत्पत्ति (जन्म), नाश (मरण) और शोक, मोह, सुख, दुःख आदि के लिए ईश्वर का आधीन है, वह इस विषय में स्वतंत्र नही है। श्रीहरि के वाक् रूपी श्रुतियों में, गुणत्रय नामक रज्जु (रस्सी) से बँधे हुए हम जैसे लोग, रस्सी से नाक में नथे हुए पशु के, मनुष्य के वश में होने की भाँति ईश्वर की आज्ञा का पालन करते रहते हैं। नर[अपने]सुख, दुःख आदि के अनुभवों के लिए ईश्वर के आधीन है [स्वतंत्र नही], जैसे आँखों वाला मनुष्य अंधे को जिधर चाहे उधर ले जाता है, वैसे ही हम ईश्वर-प्रदत्त सुख-दुःखों को भोग रहे हैं। स्वप्न में देखा हुआ पदार्थ जागने पर मिथ्या-सा लगता है, उसी प्रकार मोक्षार्थी सुज्ञानी प्राप्त सुख-दुःखो को भोगता हुआ देह से प्राप्त कर्मों का उल्लंघन नही कर सकता। वनवासी होकर भी जितेंद्रिय नहीं हुआ [काम आदि से संपृक्त होने के कारण] तो संसार के बंधन प्राप्त होंगे। गृहस्थाश्रम में भी जितेंद्रिय होकर, आत्मज्ञानी पुरुष को मोक्ष की सिद्धि होती है। शत्रुओं को जीतने की इच्छा रखनेवाले पुरुष का, दुर्ग सहारा लेकर, घेरे हुए शत्रुओं को जीतने के समान, मोक्षार्थी पुरुष गृहस्थाश्रम स्वीकार करके, श्रीहरि के चरणारविंद रूपी दुर्ग का सहारा लेकर, अरि (शत्रु) षड्वर्ग (छः) को जीतता है। तुम भी मुक्त संग हो [ईश्वर कल्पित] भोगों का उपभोग करके मुक्ति को प्राप्त करो। [यों] कहने पर त्रिभुवन गुरु ब्रह्मा के वाक्य को प्रियव्रत ने अवनत मस्तक हो बहु-मान-

आ. सरसिजासनुंडु स्वायंभुवनिचेत, नधिकमैन पूजलंदि नार-
वुंडु ना प्रियव्रतुंडुनु जूडंग, जनियें दनवु पूर्वसदनमुनकु ॥ 12 ॥

आ. सत्यसंधुडैन स्वायंभूवुंडनु, मनुवु ब्रह्मचेत मन्नन दग-
नंदि यंत नारदानुमतंबुन, दनदु सुतुनि राज्यमुननु निलिपें ॥ 13 ॥

व. इट्लु स्वायंभुवमनुवु भूपरिपालनंबुकु प्रियव्रतुनि बट्टंबु गट्टि विषयंबुलनु विषसमुद्राशवलन विमुक्तुडै वनंबुनकुं जनियें। अंत ॥ 14 ॥

म. धरणीवल्लभुडा प्रियव्रतुडु मोदंबंदुचुन् लील नी-
श्वर वाक्यंबुन गर्मतंत्रपरुडै संगंबुलं बापु श्री-
हरि पादांबुजचिंतनंदगिलि नित्यानंदमुंबोंदि दु-
र्भर रागादुल बारदोलि प्रजलंबालिंचे नत्युन्नतिन् ॥ 15 ॥

व. इट्लु प्रियव्रतुंडु राज्यंबु सेयुचु विश्वकर्मप्रजापति पुत्रिकयगु बर्हिष्मतियनु दानिनिबत्निगा बडसि या सतिवलन शील वृत्त गुण रूप वीर्यौदार्यंबुलंदनकु समानुलैन याग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेतो, धृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र, कवुलनु नामंबुलुगल पुत्रदशकंबुनु, ऊर्जस्वतियनु नौक्क कन्यकनुंगांचें। अंदु गवि महावीर सवनुलु मुव्वुरु बालकुलगुचुनुंडियु नूर्ध्वरेतस्कुलै ब्रह्मविद्या निष्णातुलै, बारम हंस्य

पूर्वक (उसे) शिरोधार्य किया। तब ११ [आ.] सरसिज-आसन (ब्रह्मा) स्वायंभुव मनु से अधिक पूजित होकर, नारद तथा प्रियव्रत के देखते रहने पर, अपने पूर्व सदन (ब्रह्मलोक) चले गए। १२ [आ.] सत्य के पालक स्वायंभुव मनु ने ब्रह्मा से आदर पाकर तत्पश्चात् नारद की अनुमति से अपने पुत्र (प्रियव्रत) को राजकाज सौंप दिया। १३ [व.] इस प्रकार स्वायंभुव मनु ने भू-परिपालन के लिए प्रियव्रत को अभिषिक्त कर विषय रूपी विष-सागर से विमुक्त होकर वन को प्रस्थान किया। तब। १४ [म.] धरणीवल्लभ उस प्रियव्रत ने मुदित होते हुए ईश्वर के वचनानुसार कर्मबन्धनों में लिप्त होकर [मन को इंद्रियों के] सांगत्य से दूर करनेवाले श्रीहरि के पादांबुज-चिन्तन में प्रवृत्त होकर, नित्यानन्द को प्राप्त कर, दुर्भर राग आदि [शत्रुओं] को भगाकर, जनता पर उत्तम ढंग से शासन किया। १५ [व.] इस प्रकार प्रियव्रत राजकाज सँभालता हुआ विश्वकर्म-प्रजापति की पुत्री बर्हिष्मति नामक कन्या को पत्नी के रूप मे ग्रहण कर, उस सती के द्वारा शील, वृत्त, गुण, रूप, वीर्य, औदार्य आदि [गुणों] में अपने ही समान आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, धृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि नामक दस पुत्रों को, ऊर्जस्वती नामक एक कन्या को पाया। इनमें कवि, महावीर और सवन तीनों बालक होते हुए भी ऊर्ध्वरेतस्क हो ब्रह्मविद्या में निष्णात् होकर, उपशम शील वाले होते

योगंबाश्रयिंचि, सर्वजीवनिकायावासुंडुनु, भगवंतुंडुनुनगु वासुदेवुनि चरणारविंदाविरतस्मरणाविगळित परमभक्तियोगानुभावंबुन विशोधितांतःकरणुलगुचु नोश्वरु तादात्म्यंबु वोंदिरि। अंत ॥ 16 ॥

सी. वसुधेश! या प्रियव्रतुडोंडु कांतयंदधिकुल मन्वंतराधिपतुल
मरियु नुत्तमुडु तामसुडु रैवतुडनु सुतुलनु बुट्टिंचें सुमहितुलनु
मुन्नु जन्मिंचिन पुत्रुलुललो मुव्वुरव्ययपदविकि नरुगुटयुनु
नपुडु प्रियव्रतुडखिल शात्रवकोटि दन बाहुबलमुचेतनु जयिंचि

ते. यतडु बर्हिष्मती कांतयंदु श्रीति
गलिगि यौवन लीला विकास हास
हेलनादुल जित्तंबु गीलुपरिचि
गतविवेकुंडु वोलें भोगमुल बोंदें ॥ 17 ॥

व. इट्लु प्रियव्रतुंडेकादशार्बुद परिवत्सरंबुलु राज्यंबुसेसि, योक्कनाडु मेरुनग प्रदक्षिणंबु सेयु सूर्युनकु नपरभागंबुनंबर्वतिचु नंधकारंबु निवर्तिपंबूनि, भगवदुपासन जनितातिपुरुष प्रभावुंडै सवितृरथसदृश वेगंबु गलिगि तेजोमयंबैन रथंबु नारोहणंबु सेसि, रात्रुलनेल्ल दिवंबु लोनर्तुनननि सप्तवारंबुलु द्वितीयतपनुंडुवोलें नरदंबु वरपुटयु, ना रथनेमि मार्गंबुलु सप्तसमुद्रंबुलुनु, ना मध्य भूसंधुलु सप्तद्वीपंबुलु नय्यें। अंबु ॥ 18 ॥

---

हुए परमहंसों का धर्म स्वीकार करके, सर्व-जीव-निकाय (-समूह) में निवास करनेवाले, [भवभीत-जन को शरण देनेवाले, सर्वान्तर्यामी] भगवान श्रीवासुदेव के चरणाविंदों का अविरत स्मरण करते हुए अविरल परमभक्ति के योगानुभव से विशुद्ध हुए अंतःकरण में ईश्वर का तादात्म्य पा लिया। तब। १६ [सी.] हे वसुधेश! उस प्रियव्रत की अन्य कान्ता (पत्नी) से मन्वन्तरों के अधिपति और उत्तम, तामस और रैवत नाम के सुप्रसिद्ध सुतों को उत्पन्न किया। पहले पैदा हुए पुत्रों में तीन के अव्यय पद पाने पर, तब प्रियव्रत ने अखिल-शत्रु-कोटि को अपने बाहुबल से जीतकर, [ते.] वह बर्हिष्मती-कान्ता में अत्यंत अनुरक्त होकर यौवन के लीला-विकास-हास-हेला आदि में चित्त को लग्न कर गत-विवेकी (अविवेकी) के समान भोग-विलास में डूब गया। १७ [व.] इस प्रकार प्रियव्रत ने एकादश अर्बुद (दस करोड़) वर्षों तक राज्य करके, एक दिन मेरु नग (पर्वत) की परिक्रमा करनेवाले सूर्य के अपर भाग (दूसरी ओर) में व्याप्त अंधकार को दूर करने का निश्चय कर, भगवान की उपासना करने से उत्पन्न अति मानुष प्रभाव वाला होता हुआ, सवितृ (सूर्य) के रथ-सदृश वेगवान् और तेजोमय रथ पर आरोहण करके, 'रातों को भी दिन बनाऊँगा' कहकर सात सप्ताहों तक दूसरे तपन (सूर्य) के समान रथ चलाया, उस रथ के पहिये

सी. सरस जंबू प्लक्ष शाल्मलीद्वीप कुश क्रौंच शाक पुष्करमुलनग
नलरु ना द्वीपंबुलंदु जंबूद्वीप मोनरंग लक्षयोजनमुलय्यॅ-
नट युत्तरोत्तरायतसंख्य दा द्विगुणितमुलै योंडोंटि कतिशयिल्लु-
क्षारेक्षुरस सुराज्य क्षीर दध्युदकंबुलु गलुगु सागरमु लेडु

ते. द्वीप परिमाणमुलु गलिग विस्तरिल्लु
संधि संधुल बरिघल चंदमुननु
ग्रममु वप्पक योंडोंटि गलयकुंडु
सकल जोवुल कॅल्ल नाश्चर्यमुगनु ॥ 19 ॥

व. अट्टि द्वीपंबुलंदु बरिपालनंबुनकुं ब्रियव्रतुंडात्मभवुलु नात्मसमानशीलुरु नैन याग्नीध्रेध्मजिह्व यज्ञबाहु हिरण्यरेतोघृतपृष्ठ मेधातिथि वीतिहोत्रुल नोक्कोकनि नोक्कोककि द्वीपंबुनकुं बट्टंबुगट्टि यूर्जस्वतियनु कन्यकनु भार्गवुन किच्चिन, ना भार्गवुनकु नूर्जस्वतियंदु देवयानियनु कन्यारत्नंबु जनिंचें। अट्लु बलपराक्रमवंतुंडैन प्रियव्रतुंडु विरक्तुंडै योक्कनाडु निजगुरुवगु नारदुनि चरणानुसेवानुपतित राज्यादि प्रपंचसंसर्गंबु वलंचि दुःखिंचि ॥ 20 ॥

सी. अक्कट! येनिंद्रियमुलचे गट्टंग बडियुंडि यंबुल बायलेक
यज्ञानविरचितंबगु विषयमुलनु नंधकूपंबुल नणगियुंडि

---

की धार से सात लीकें बन गयी थीं, वे सात समुद्र, उनके बीच की भूसंधियाँ सात द्वीप बन गईं। उसमें, १८ [सी.] सरस जंबू[द्वीप], प्लक्ष[द्वीप], शाल्मलि [द्वीप], कुश [द्वीप], क्रौंच [द्वीप], शाक [द्वीप] और पुष्कर [द्वीप] नामक उन द्वीपों में जंबूद्वीप शोभा से लाख योजन विस्तार का हुआ। उत्तरोत्तर दूना [जंबूद्वीप से दूना प्लक्षद्वीप, उससे दूना शाल्मलि द्वीप इत्यादि] फैलकर क्षार, इक्षुरस, सुरा, आज्य, क्षीर, दधि, उदक से युक्त सात सागर द्वीपों के परिमाण (विस्तार) के समान विस्तृत बने। [ते.] ये सातों सागर अपने बाहर के द्वीप से अलग हैं और भीतर के द्वीप को घेरे हुए हैं। ये सकल जीवों को चकित कर रहे हैं। १९ [व.] उन द्वीपों में राजकाज सँभालने के लिए प्रियव्रत ने अपने आत्मभवों (पुत्रों) को जो अपने ही समान शीलवान हैं, आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र को [एक एक को क्रम से एक एक द्वीप का] शासक बनाकर, ऊर्जस्वती नाम की कन्या को भार्गव को [पत्नी के रूप में] दिया। उस भार्गव को ऊर्जस्वती से देवयानी नामक एक कन्या-रत्न उत्पन्न हुई। उस प्रकार बल-पराक्रम से सम्पन्न प्रियव्रत राजकाज से विरक्त होकर एक दिन अपने गुरु नारद का [चरण-अनुसेवन से राज्य आदि प्रपंच-सृष्टि से अलग होकर] स्मरण कर दुखित हुआ। २०

तरुणुलके विनोदमृगंबुनै युंडिनदियेल्ल नेनोल्लननुचु रोसि
हरिकृपचे नप्पुडंदिन यात्मविद्यनुगलिग तनवेंट नरुगुदेंचु

ते. कोडुकुलकु नेल्लराज्यंबु गुदुरुपडिचि
तनदु पत्नुल दिगनाडि धनमु विडिचि
हरिविहारंबु चित्तंबुनंदु निलिपि
परग नल्लन नारदपदवि करिगॆ ॥ 21 ॥

व. इट्लु तन रथमार्गंबुलु सप्तद्वीप सागरंबुलुगाजेसि सूर्युनकु ब्रतिसूर्युडै सरिद्गिरि वनादुलचे भूतनिर्वृति कोऱकु ब्रतिद्वीपंबुनकु नवधुल गल्पिचि द्वीप वर्ष निर्णयंबुल बुट्टिचि, पाताळ भूस्स्वर्गादि जातंबुलगु सुखंबुलु नरकसमानंबुलुगा दलंचि,विरक्तिबोंदि, निरंतर भगवद्ध्यान विमलीकृताशयुंडगुचु हरिभक्तप्रियुंडैन प्रियव्रतुनि चरित्रंबुलीश्वरुनकुदक्क नन्युल केरुंग दरंबुगादु, अतनि महिमलु नेडुनुंगोनियाडुदुरु। अनि मऱियुनु शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 22 ॥

कं. हरिसेव ना प्रियव्रतु, डरयग गैवल्यपदवि नंदुटयरुदे ?
धर जंडालुंडैननु, हरिनामस्मरण जेंदु नव्ययपदमुन् ॥ 23 ॥

व. अनि पलिकि शुकुंडु मऱियु निट्लनियॆ ॥ 24 ॥

[सी.] हाय ! मैं इंद्रियों से बँधा जाकर, उनसे मुक्त न हो सक, अज्ञानविरचित विषयों के अंधकूप में दबा रहकर, तरुणियों का क्रीडामृग बनकर, उन सबका तिरस्कार करके, घृणित होकर हरि-कृपा से उस समय प्राप्त आत्मविद्या को पाकर, [ते.] अपने साथ आनेवाले पुत्रों को सारा राज्य उचित रूप से सँभाल दिया। अपनी पत्नियों को छोड़, धन का विसर्जन कर, अपने चित्त में हरि का रूप लिये धीरे से नारद के पद पर चल पड़े। २१ [व.] इस प्रकार अपने रथ-मार्गों से सात द्वीप सात सागर बनाकर, सूर्य का प्रतिसूर्य हो, सरि, गिरि, वन आदि से [प्रत्येक द्वीप की सीमा बनाकर, जिसमें लोग लड़े-झगड़े नहीं] द्वीप के वर्ष के नियमों को रचकर, पाताल, भू, स्वर्ग आदि से उत्पन्न सुखों को नरक-समान मानकर, विरक्त हो, निरन्तर भगवान के ध्यान में विमलीकृताशय (अपने आशयों को विमल बनाकर) वाला होता हुआ [हरि का प्रियभक्त] प्रियव्रत का चरित्र ईश्वर के सिवा अन्य कोई जान नहीं सकता। आज भी उसकी महिमाओं का गान करते है। कहकर शुक जी ने फिर यों कहा— २२ [कं.] सोचने पर, हरि की सेवा से प्रियव्रत का कैवल्य का पद (मोक्ष) पाना क्या आश्चर्यप्रद है ? [नहीं] इस धरती पर चाण्डाल भी हरि के नाम-स्मरण मात्र से अव्यय-पद को प्राप्त करता है। २३ [व.] यह कहकर शुक ने फिर यों

## अध्यायमु—२

म. जनकुंडिट्लु विरक्तुडैननु दद्राज्ञंजेसि याग्नीध्रुडे-
पुन धर्मप्रतिपालनुंडगुचु जंबूद्वीप मेलें दगं-
दन सत्पुत्रुलमाड्कि नेल्लप्रजलं दात्पर्यचित्तंबुनन्
घनतं ब्रोचें ननेककालमिल ब्रख्यातंबुगा भूवरा ! ॥ 25 ॥

व. इट्लाग्नीध्रुंडु राज्यंबु सेयुचु नीक्कनाडु पुत्रकामुंडै मंदराद्रि समीपंबुन नखिलोपचारंबुल नेकाग्रचित्तुंडै यर्चिचिनं गमल संभवुंडु संतसिल्लि, तन सम्मुखंबुन संगीतंबुसेयु पूर्वचित्तियनु नप्सरोंगनं बंपुटयु, ना यप्सरोंगन चनुदेंचि, रमणीय विविध निबिड विटपि विटप समाश्लिष्ट समीप सुवर्णलतिकारूढ स्थलविहंगम मिथुनोच्चार्यमाण षट्जादि स्वरंबुलचे बोध्यमान सलिलकुक्कुट कारंडव बक कलहंसादि विचित्रकूजित संकुलंबुलैन निर्मलोदक कमलाकरंबुलु गल तदाश्रमोपवनंबुन विहरिपुचु, विलास विभ्रम गतिविशेषंबुलं जलनंबुनोंदु स्वर्ण चरणाभरण स्वनं बन्नर देवकुमारुंडालिंचि, योगसमाधिजेसि मुकुळित नेत्रुंडै युंडि, यल्लन

---

## अध्याय—२

[म.] हे राजन् ! जनक [पिता प्रियव्रत] के इस प्रकार विरक्त होने पर भी, उनके [पिता के]आज्ञानुसार आग्नीध्र ने औन्नत्य या शोभा से धर्म-प्रतिपालक बनकर जंबूद्वीप का पालन किया। सारी प्रजा को उन्होंने अपने सत्पुत्रों के समान अपने चित्त में मानकर, कई वर्षों तक प्रख्यात रूप से, महित रूप से, रक्षा की। २५ [व.] इस प्रकार आग्नीध्र के राज्य करते हुए एक दिन पुत्रकामी हो, मंदराद्रि के समीप हर प्रकार से एकाग्रचित्त होकर आराधना करने पर, कमलसंभव (ब्रह्मा) सतुष्ट होकर, अपने सम्मुख गानेवाली पूर्वचित्ति नामक अप्सरा को [आग्नीध्र की अभिलाषा पूरी करने के लिए] भेजा। [ब्रह्मा की आज्ञा पाकर] वह अप्सरा आग्नीध्र के आश्रम में आकर, रमणीय विविध निबिड (घने) सुनहरी लताओं पर आरूढ़ स्थल-विहंगम-मिथुनों के द्वारा उच्चरित षड्ज आदि स्वरों से बोध्यमान (समझ में आनेवाले) सलिलकुक्कुट, कारण्डव, बक, हंस आदि के विचित्र कूजनों से युक्त निर्मल-उदक वाले कमलाकरों (सरोवरों) से युक्त उस आश्रम के उपवन में विहरण करती हुई, विलास और विभ्रम की विशेष गतियों से हिलनेवाले स्वर्ण चरणाभरणों के मधुर शब्दों को नरदेवकुमार (आग्नीध्र) ने सुनकर योगसमाधि के कारण मुकुलित नेत्रवाला होने से, धीरे से आँख खोलकर देखकर अपने समीप मधुकर-अंगना के समान पुष्पों का घ्राण करती हुई, देव-मानवों के मन [तथा] नयन को आह्लादित

कनुविच्चि चूचि तनसमीपंबुनन् मधुकरांगनयुवोले पुष्पाघ्राणंबु सेयुचु देवमानवुलकु मनोनयनाह्लादंबु पुट्टिपुचुन्न गति विहार विनयावलोकन सुस्वरावयवंबुल मन्मथशरपरंपरल नोंदिपुचु मुखकमल विगळितामृतसमान हासभाषणामोद मदांधंबुलैन मधुकरमिथुनंबुल वंचिचि, शीघ्रगमनंबुनं-जलिचु कुच कच मेखललु गल देवि गनुंगोनि, चित्तचलनंबुनोंदि मन्मथपर-वशुंडै जडुनिचंदंबुन निट्लनियें ॥ 26 ॥

कं. सति ! नी वेव्वतें ? वो पर्वतमुन
केमैन गोरि वच्चिन वनदे-
वतवो ? शारदवो ? रति-
पति पंपिन मायवो ? तपस्सारमवो ? ॥ 27 ॥

उ. अंगजु डेक्कुडिचिन शरासनमुल् धरियिंचि यंत ना-
यंगजु वेट मानव मृगावळि जूचुचुनुन्नदानवो ?
रंगगु नीवु चेय्वुल तेरंगेरुगंग निजंबु वल्कुमा
यंगन ! निन्नु गन्गोनिन यंत ननंगुडु संदडिचेंडुन् ॥ 28 ॥

कं. पोलुपगुचुन्न विलासंबुल
नंगजुबाणमुलनु वोलेंडि नी चं-
चल सत्कटाक्षवीक्षणमुल
नेव्वनि निति ! चित्तमुन गलचेंदवे ? ॥ 29 ॥

---

करनेवाली उसकी चाल, विहार, विनय से युक्त अवलोकन (चितवनें) सुस्वर (स्वरयुक्त) अवयवों से मन्मथ की शर-परंपराओं का प्रयोग करती हुई, मुखकमल से विगलित अमृत-तुल्य हास-भाषण आमोद से मदांध बने मधुकर थे, जिसकी महक से मिथुनो को मातकर, शीघ्र गमन से हिलनेवाले कुच, कच, मेखला से युक्त देवी (स्त्री) को देखकर, चित्त के चंचल होने से मन्मथ-परवश होकर जड के समान यों बोला। २६ [कं.] हे सती ! तुम कौन हो ? इस पर्वत पर कुछ चाहकर आयी हुई वन की देवी हो ? शारदा हो ? रति के पति (कामदेव) की भेजी हुई माया हो ? तपस्सार हो ? २७ [उ.] अंगज (कामदेव) के संधान किए शरासनों को धारण कर, फिर उस अंगज का आखेट तथा मानव-मृगावली को देख रही हो क्या ? मोहक तुम्हारी करतूतों के विधानों को जानता नहीं। सच कहो, हे नारी ! तुम्हें देखते ही अनंग (कामदेव) से [मन] विचलित हो गया। २८ [कं.] सुन्दर बने विलासों (तथा) अंगज के बाणों के समान तुम्हारे चंचल सत् कटाक्षों की चितवनों से हे नारी ! तुम किसके चित्त को विचलित कर रही हो ? २९ [चं.] षट्पद (भ्रमर) पंक्तियों के

चं. चॅदरग वेदमुल् चदुवु शिष्युलपै दग बुष्पवृष्टि स-
म्मदमुन नंतलो गुरियु माड्किनि मन्मथसामगानमुल्
चदिवॅडि शिष्युलो ? यनग षट्पद पंक्तुलु चेरी म्रोयगा
बवपडि मोदरालु गचभारमुनंदुल जारु क्रोव्विरुल् ॥ 30 ॥

कं. अंदियल वॅलयु रत्नमु, लंदंबुग ललितपदमुलन् सुभगमुलै
यंदंद म्रोयुचुनु ना डॅदंबुन दगिलि संदडिचॅडि दरुणी ! ॥ 31 ॥

कं. पायक कदंबपुष्पच्छायं, गल वस्त्रकांति जन नी कन्त-
न्नायॅड नितंबरोचुलु, गायुचु नॅडतॅगक तड्रिमि कप्पॅडु दन्वो ! ॥ 32 ॥

कं. निरतमु नीतनुमध्यमु, गरमरदुग नरसि चूड गानंबड दी
करिकुंभंबुल बोलॅडि, गुरुकुचमुल नॅट्लु निलुपुकॉटि? लतांगी! ॥ 33 ॥

कं. पॉंकमुलगु कुचमुलपै, गुंकुमपंकंबु सॉंपुगॉनि वासनलं
गॉंकक वॅदचल्लॅडु नी, बिकंबगु चन्नुदोयि पॅपॉ ! सॉंपो ! ॥ 34 ॥

शा. ए लोकंबुननुंडि वच्चितिवि ? नीविच्चोटिकिन्मुन्नु ने
नेलोकंबुन जॅप्प जूप नेरुगन्नी सुन्दराकारमु
न्नी लालित्यमु ली विनोदमुलु नीकॅट्लोप्पुने ? कामिनी !
भूलोकंबुन कॅट्लु वच्चितिवि ? नापुण्यं बगण्यंबुगन् ॥ 35 ॥

---

जुड़कर गुंजार करने पर कचभार के ऊपर से बरसनेवाले नूतन पुष्प मानो वेदों का अध्ययन करनेवाले शिष्यों पर उतने में पुष्प-वृष्टि के सानन्द बरसने के समान मन्मथ के सामगान का आलाप करनेवाले शिष्य हैं। ३० [कं.] हे तरुणी ! पायलों में शोभायमान रत्न, सुन्दरता से ललित चरणों में सुभग हो सर्वत्र मुखरित होते हुए मेरे हृदय को विचलित कर रहे हैं। ३१ [कं.] हे तन्वी ! निरन्तर कदब के फूलों की कांति से युक्त वस्त्रों की कांति नितंबों की रोचियों की रक्षा करते हुए, सतत उन्हें आच्छादित करती रहती है। ३२ [कं.] हे लतांगी! तुम्हारे शरीर का मध्यभाग अर्थात् कटि इतनी पतली है कि देखने पर भी दिखाई नही देती। ये करि (हाथी) के कुंभों के समान बड़े-बड़े कुचों को किस तरह इस [कमर] पर वहन किया है? ३३ [कं.] मनोहर कुचों पर कुंकुम का पंक (कीचड़) शोभायमान है, उसकी सुगन्ध से चारों ओर महक छा गयी है, ऐसे मनोहर कुचों की जोड़ी अनुपम है। ३४ [शा.] किस लोक से तुम यहाँ आयी हो? इसके पूर्व मैंने किसी भी लोक में तुम-सा सुन्दर आकार न देखा, न सुना है। तुम्हारा यह लालित्य, यह हास-विलास तुम्हें कहाँ से मिले हैं ? हे कामिनी ! इस भूलोक में कैसे आयी हो ? ऐसा लगता है कि मेरा पुण्य अगण्य है [इसलिए तुम आई]। ३५ [कं.] हे अंबुजनेत्री ! हास से युक्त

कं. हासावलोकनंबुल, भासिल्लॆडु नी मुखंबु पलुमरु निपुडे-
यासलु पुट्टिंपग ने, नास गॊनॆद निन्नु जूचि यंबुजनेत्री ! ॥ 36 ॥

आ. कंदुलेनि यिदुकळ मिंचि नॆम्मोमु
कान्तियुक्तमगुचु गानुपिंचॆ-
गान विष्णुकलयु गाबोलु ननि ना म-
नंबु नंदु दोचॆ नळिननेत्रि ! ॥ 37 ॥

म. पटु ताटंक रथांग युग्ममुनकुंबलमारु भीतिल्लुचुन्
नटनंबॊंदॆडु गंडुमीनमुलतो नासन्न नीलालको-
त्कट भृंगावळितो द्विजावळि लसत्कांतिन् विडंबिंचु मा-
रुट कासारमु बोलि नॆम्मोगमु दा रंजिल्लु नत्युन्नतिन् ॥ 38 ॥

चं. करुवलि वायु वस्त्रमुनु गट्ट नॆरुंगवु चूड्कि दिक्कुलं
बरपुचु जंचरीकमुल भाति जॆलंगॆडु कंधरंबुन-
बॊरलॆडु मुक्तकेश भरमुंदरुमंग दलंप विप्पु डि-
ट्लरुदुग रत्नकंदुक विहारमु सल्पॆदु संभ्रमंबुलन् ॥ 39 ॥

व. मरियु निट्लनु तपोधनुलगुवारल तपंबुल नी रूपंबुन नपहरिंचिन दानवु। ई चक्कदनंबेमि तपंबुन संपादिंचितिवि ? ना तोडंगूडि तपंबु सेयुमु। संसारंबु वृद्धिबॊंदजेयुमु। पद्मासनुंडु नाकुं ब्रत्यक्षंबै निन्नु निच्चिनवाडु

---

अवलोकन से भासित तुम्हारा मुख कई बार आशाएँ उत्पन्न कर रहा है। तुम्हे देखकर मै लालायित हो रहा हूँ। ३६ [आ.] कलक-रहित इंदु-कला से अधिक कातियुक्त होते हुए तुम्हारा सुन्दर मुख दृष्टिगोचर हो रहा है। हे नलिनी (कमल) के समान नेत्रवाली ! ऐसा लगता है कि यह विष्णु की कला (माया) है। ३७ [म.] बार-बार भयभीत होती हुई नाचनेवाले (चंचल) बड़ी मछलियो के साथ खेलने नील-अलकों के निकट आए हुए भ्रमरों के साथ द्विज-समूह की विलसत्कांति को मात करनेवाले सुन्दर सरोवर के समान अति उन्नति से मुख शोभायमान है। ३८ [चं.] पवन से छूटे वस्त्र को तुम ठीक ढंग से धारण करना नही जानती। दृष्टि को इधर-उधर भ्रमरों की भाँति फैलाती, कंधों पर बिखरे मुक्त-केशों को बाँधने की चेष्टा भी नही करती। अब ऐसे अनुपम ढंग से संभ्रम से रत्नकंदुक विहार करती हो। ३९ [व.] और भी इस प्रकार कहता है। तपोधनों के तप को तुम्हारे रूप के कारण अपहरण कर लिया है। यह अनुपम रूप तुमने कोन-सी तपस्या करके पाया है ? मेरे साथ रहकर तप करो। (मेरे साथ रहकर) संसार (सृष्टि) की वृद्धि करो। पद्मासन (ब्रह्मा) ने प्रत्यक्ष होकर, तुम्हें मुझे [वरदान के रूप में] दिया है। इस

गावुन निन्नु विड्वंजालनु। नी सखीजनंबुलुनु मा वाक्यंबुलकु ननुकूलिंचु-दुरु गाक। नीवु चनुचोटिकि ननुंदोड्कोनि चनुमु। अनि स्त्रीलकु ननुकूलंबुलुगा बलुक नेर्चिन याग्नीध्रुंडु पेक्कु भंगुलंबलिकिन, ना पूर्वचित्तियु नतनि यनुनय वाक्यंबुलकु सम्मतिंचि, वीरश्रेष्ठुंडगु ना राजवर्युनि बुद्धि रूप शीलौदार्य विद्यावयश्श्रीलचे बराधीनचित्त यगुचु, जंबूद्वीपाधिपति यगु ना राजश्रेष्ठुनितोडंगूडि शत सहस्र संवत्सरंबुलु भू स्वर्ग भोगंबु लनुभविंचे। अंत नाग्नीध्रुंडा पूर्वचित्तिवलन नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व, केतुमाल संज्ञलुगल कुमारुल ब्रतिवत्सरंबु नोक्कोक्कनिग दोम्मंड्रं गांचे। अंत ना पूर्वचित्ति या यर्भकुल गृहंबुन विडिचि, याग्नीध्रुंबासि, ब्रह्मलोकंबुनकुं जनिन, ना याग्नीध्र पुत्रुलु मातृ सामर्थ्यबुनंजेसि स्वभावंबुननें शरीर बलयुक्तुलगुचु दंड्रिचेत ननुज्ञातुलै तम तम नामंबुल ब्रसिद्धंबुलैन जंबूद्वीपादि वर्षंबुल वालिपुचुं-डिरि। अंत नाग्नीध्रुंडु ना पूर्वचित्तिवलनं गामोपभोगंबुलं दृप्तिबोंदक, पूर्वचित्तिं दलंपुचु वेदोदतंबुलगु कर्मंबुल जेसि तत्सलोकंबगु ब्रह्मलोकंबुन-कुं जनियें। इट्लु दंड्रि परलोकंबुनकुं जनिन, नाभि प्रमुखुलगु नाग्नीध्रकुमारुलु दोम्मंड्रुनु मेरु देवियु, ब्रतिरूपयु, नुग्रदंष्ट्रयु, लतयु,

---

कारण में तुम्हें छोड़ नहीं सकता। तुम्हारी सखियाँ भी मेरे वाक्यों के अनुकूल बनीं। तुम जहाँ [जिस स्थान को] जा रही हो, वहीं मुझे भी साथ ले चलो। इस प्रकार स्त्रियों के अनुकूल वात करने में चतुर आग्नीध्र के अनेक प्रकार के वचनों को बोलने पर उस पूर्वचित्ति [अप्सरा] ने भी उसके अनुनय वाक्यों से सहमत होकर, वीरों में श्रेष्ठ उस राजा की बुद्धि, रूप, शील, औदार्य, विद्या, अवस्था, श्री (ऐश्वर्य) आदि से पराधीन-चित्त होकर [मोहित होकर], जंबूद्वीप के अधिपति उस श्रेष्ठ राजा के संग शत सहस्र वर्षों तक पृथ्वी के और स्वर्ग के सब भोगों का उपभोग किया। [तब आग्नीध्र को उस] पूर्वचित्ति के गर्भ से नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नामक पुत्रों को, प्रतिवर्ष एक-एक पुत्र के रूप में नौ पुत्रों को प्राप्त किया। फिर वह पूर्वचित्ति उन पुत्रों को राजा के भवन में ही छोड़कर, आग्नीध्र से अलग होकर, ब्रह्मलोक को चली गई। आग्नीध्र के वे पुत्र मातृ-सामर्थ्य से [सहज ही] शरीर वलशाली हो, पिता की आज्ञा से प्रेरित हो अपने-अपने नामों से प्रसिद्ध जंबू द्वीप आदि कई वर्षों (प्रदेशों) तक राज करते रहे। राजा आग्नीध्र उस पूर्वचित्ति के साथ कामोपभोग से तृप्त न होकर, पूर्वचित्ति का स्मरण करते हुए, वेदोक्त कर्म करके अंत को उस अप्सरा के लोक को, ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ। इस प्रकार उसके परलोक सिधारने पर नाभि आदि आग्नीध्र के नौ पुत्रों ने मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्रा, लता, रम्या,

रम्ययु, श्यामयु, नारियु, भद्रयु, देववतियुनन् नामंबुलु गल मेरु पुत्रिकलगु तॊम्मंड्रु कन्यकल विवाहंबॆरि। अंत ॥ 40 ॥

## अध्यायमु—३

### भगवंतुंडगु नारायणुंडु ऋषभावतारमॆत्तुट

आ. नरवरेण्युडैन नाभि संतानार्थ-
मंगनयुनु दानु यज्ञपुरुषु-
डैन वासुदेवु नतुल भक्तिश्रद्ध-
लनु जॆलंगि पूज लॊनर जेसि ॥ 41 ॥

व. मरियुं प्रवर्ग्य संज्ञिकंबुलगु कर्मंबुल श्रद्धा विशुद्ध द्रव्य देश काल मंत्र ऋत्विग्दक्षिणाविधान योगंबुलं बरमेश्वरुनि मॆप्पिंचिन, नॆव्वनिकि प्रसन्नुंडु गानि पुंडरीकाक्षुंडु भक्तवत्सलुंडै सुरुचिरावयवंबुलु गलिगि, यजन शीलुंडैन यातनि हृदयंबुनंदु बायनि रूपंबु गलिगि, मनोनयनानंदक-रावयवंबुलुगल तन स्वरूपंबु जूपंदलंचि ॥ 42 ॥

सी. अंत नाविष्कृत कान्त चतुर्भुजंबुलुनु पीतांबरंबुनु वॆलुंग
श्रीवत्स कौस्तुभ श्रीरमा चिह्नंबुलुरमंदु रम्यमै यिरवु वडग

---

श्यामा, नारी, भद्रा और देववति नामक मेरु की नौ कन्याओं से विवाह कर लिया। तब। ४०

## अध्याय—३

### भगवान श्रीमन्नारायण का ऋषभावतार लेना

[आ.] नर-वरेण्य (-श्रेष्ठ) नाभि ने संतानार्थ अपनी स्त्री के साथ यज्ञपुरुष भगवान वासुदेव की अतुल भक्ति और श्रद्धा के साथ पूजा की। ४१ [व.] और प्रवर्ग्य नामक कर्मों से, श्रद्धा, विशुद्ध, द्रव्य, देश, काल, मंत्र, ऋत्विक्, दक्षिणा और विधि योगों से परमेश्वर को प्रसन्न किया, जो किसी और से प्रसन्न न होनेवाले भगवान पुंडरीकाक्ष (विष्णु) ने भक्तवत्सल हो सुन्दर अंगों से संपन्न, यज्ञ करने में लगे हुए उसके हृदय में अमिट रूप से युक्त हो, मनोनयनानंददायक अवयवों से युक्त अपने स्वरूप को दिखाने का संकल्प किया, ४२ [सी.] तब प्रकट कान्त चतुर्भुज [तथा] पीतांबर के प्रकाशित होने पर, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स, कौस्तुभ, श्रीरमा के चिह्न हृदय पर शोभायमान होने पर, हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग आदि दिव्य आयुध धारण किए, अतुलित नवरत्न हाटक (स्वर्ण) से अंकित नूतन-घन

शंख चक्र गदांबुजात खड्गादिव्यायुधंबुलु चेतुलंदु मेंड्य
नतुलित नवरत्न हाटकांकित नूतन घन किरीटद्युतुल् गडलुकोनग

ते. गर्णकुंडल कटिसूत्र कनकरत्न-
हार केयूर वर नूपुरादि भूष-
णमुल भूषितुडैन श्रीनायकुंडु
दंपतुल कप्पुडेंडुर ब्रत्यक्षमय्ये ॥ 43 ॥

ते. इट्लु प्रत्यक्षमगु परमेश्वरुनिनि
बॅन्निधानंबु गनुगौन्न पेदमाड्कि
हर्षमुन ऋत्विगादिकुलवनतास्यु-
लगुचु नभिनुति चेसि रिट्लनुचु नपुडु ॥ 44 ॥

कं. परिपूर्णुडवै युंडियु, मड्वक मा पूजलेल्ल मन्नितुवु नी
चरणारविंद सेवयु, धर बेंद्दलु चॅप्पिनट्लु दग जेसेंदमौ ॥ 45 ॥

कं. ए निपुडु सेयु संस्तुति, नी महिम नॅरिंगि कादु निरतमु बेद्दल्
दामेंदि युपदेशिंचिरो, या मतमुन ब्रस्तुतिंतुमय्य ! महात्मा ! ॥ 46 ॥

व. मरियु नीवु संसारासक्तमति गलिगिन वारिकि वशुंडु गावु । ईश्वरुंडवुनु, प्रकृतिपुरुष व्यतिरिक्तुंडवुनु, परमपुरुषुंडवुनैन निन्नु बोंदनि प्रपंचान्तर्गतंबुलैन नामरूपंबुलगल यस्मदादुलचेत निरूपिंप नशक्यंबगु । सर्वजीवुलंदेंदिन दुरित संघंबुल निरसिंचु स्वभावंबुगल नी युत्तम गुणंबुलयंदु

मुकुट की द्युतियों (प्रकाश) के फैलने पर, [ते.] कर्णकुंडल, कटिसूत्र (मेखला), कनकरत्नहार, केयूर, वर-नूपुर आदि आभूषणों से भूषित श्रीनायक (विष्णु) तब दंपतियों (नाभि और मेरुदेवी) के आगे प्रत्यक्ष हुआ । ४३ [ते.] इस प्रकार प्रत्यक्ष हुए परमेश्वर को, अमूल्य निधि को प्राप्त कंगाल के समान, हर्ष से ऋत्विक् आदि ने अवनत मुखवाले होते हुए, स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा । ४४ [कं.] सब प्रकार से परिपूर्ण होकर भी, भूले बिना हमारी पूजाओं का सम्मान करते हो । तुम्हारे चरणारविंदों की सेवा, बड़े लोगों के कहने के अनुसार इस धरा पर [हम] करते रहते हैं । ४५ [कं.] हे महात्मा ! हम अब जो संस्तुति करते हैं, वह तुम्हारी महिमा को जानकर नहीं । ज्ञानियों की शिक्षा के अनुसार ही हम आपकी प्रस्तुति करते हैं । ४६ [व.] और तुम संसार में आसक्त मति रखनेवालों के वश में नहीं आते । तुम ईश्वर और प्रकृति-पुरुष से परे परमेश्वर हो । तुमको प्राप्त न कर सकनेवाले तथा संसार के अंतर्गत रहनेवाले नाम-रूपों से युक्त हम जैसे लोग तुम्हारा निरूपण करने में असमर्थ हैं । सर्व प्राणियों में व्याप्त सकल दुरित समूह को दूर करनेवाले [स्वभाव रखनेवाले] तुम्हारे उत्तम गुणों में एकदेशीयता अथवा सर्वगुण-निरूपण

नेकदेशंब कानि, सर्वगुण निरूपणंबु जेय शक्यंबु गानेरदु । नी भक्तुलु मिघिकलि भक्तिजेसि स्तुतियिचु गद्‌गदाक्षरमुलनु, सलिल शुद्ध पल्लव तुलसीदळ दूर्वांकुरमुलनु, संपादिंचिन पूजचे संतसिल्लॆडि नीकु बहुविध द्रव्यसंपादनंबु गलिगि, विभवयुक्तंबुलैन यश्वमेधावुलनु, तृप्तिकरंबुलु गानेरवु । स्वभावंबुन सर्वकालंबुनंदुनु साक्षत्करिंचि, यतिशयंबे वतिपुचु, नशेषपुरुषार्थ स्वरूपमवु, परमानंद रूपमवुनैनवाडवगुटंजेसि यज्ञादुलयंदु नीकु तृप्ति लेकयुन्न नस्मदादुल कोरिकल कुपकरिंचु कतंबुन यज्ञादुल नॊनरिंतुमु । अनि मरियु निट्‌लनिरि ॥ 47 ॥

कं. बालिशुल मगुचु मिक्किलि
मेलॆरुगनि मम्मु नीवु मिंचिन दयचे
बालिंचि यित्तु वॆंप्पुडु
चालग निहपरमुलंदु सकल सुखंबुल् ॥ 48 ॥

आ. इपुडु मेमु नीकु निष्टंबुलगु पूज-
लाचरिंपकुन्न नैन नधिक-
मैन नी कृपाकटाक्ष वीक्षणमुल
जक्क जूचि तग नसन्नुडगुचु ॥ 49 ॥

कं. वरमीय दलचि मम्मुं, गरुणिंचिति गाक निन्नु गनुगॊनुटकुनै
यरसि नुतिपग माकुं, दर मगुने ? वरद ! नीरद श्यामांगा ! ॥ 50 ॥

---

करना बस की बात नहीं है । तुम्हारे भक्तों के गद्‌गद अक्षरों (वाक्) से अति भक्तिवश उच्चारण, सलिल, शुद्ध पल्लव, तुलसीदल और दूर्वांकुर आदि के द्वारा की गई पूजा से संतुष्ट होनेवाले, तुम्हे बहुविध सामग्रियों से युक्त, वैभवपूर्ण अश्वमेध आदि यज्ञ तृप्ति नही दे सकते । सहज ही सर्वकालों में प्रत्यक्ष हो करके, अतिशयता से आचरण करनेवाले, अशेष पुरुषार्थ-स्वरूप हो, परमानंदस्वरूप हो, यज्ञ आदि में तुम्हें कोई विशेष संतोष नहीं है । फिर भी हम जैसे [ससारी] प्राणियों की इच्छाओं की पूर्ति के लिए ऐसी आराधना किया करते है । [ऐसा] कहकर फिर इस प्रकार कहा । ४७ [क.] मूढ़ होकर, अपना कल्याण किसमें होगा, इससे भी अनभिज्ञ हम पर दया करके तुम हमारा पालन करके, सदा इह (इहलोक संबंधी), पर (मोक्ष) संबंधी सारे सुखों को प्रदान करते हो । ४८ [आ.] अब हम तुम्हारे इष्ट (मनपसंद) पूजाओं के न करने पर भी तुमने अपनी अपार कृपा-कटाक्ष-वीक्षण से हमें कृतार्थ किया । ४९ [कं.] हे वरद ! हे नीरदश्याम अंगवाले ! वर देने के लिए ही तुमने हम पर करुणा की । तुम्हें पाकर तुम्हारी स्तुति करना क्या हमारे बस की बात है ? ५० [व.] और निस्सग (वैराग्ययुक्त) बन, निशित-ज्ञान के कारण

व. मरियु निस्संगुलै निशित ज्ञानंबुनं जेसि दोषरहितुलै भवत्स्वभावुलु स्तुतियिंपदगिन गुणंबुलु गलवाडवगुचु नुंडियु प्रसन्नुंडवु, ज्वर मरणादि दुर्दशलंदुनु, गल्मषनाशकरंबुलैन भवद्दिव्य नामंबुलु मा वचनगोचरंबुलगुं-गाक। मरियु नी राजर्षि नीतोड समानुंडैन कुमारुनिगोरि कामंबुल स्वर्गापवर्गंबुल नी नोपिन निन्नुं बूजिंचि, धनकामुंडैनवाडु धनवंतुनिजेरि तुषमात्रंबडिगिन चंदंबुन, मोक्षनाथुंडवैन नीवलन संतानंबु गोरुचुन्नवाडु। जयिंपरानि नीमाय चेत नॆव्वंडु मोहंबु नॊंदि विषयासक्तुंडुगाक युंडु ? निन्नु नाह्वानंबु सेसिन यपराधंबु मन्निंपदगुदुवु। मम्मुंदयजूडुमु। अनि प्रणमिल्लिन देवताश्रेष्ठुंडैन सर्वेश्वरुंडु वर्षाधिपतियगु नाभिचेतनु, ऋत्विक्कुलचेतनु वंदितुंडै दयाकलितुंडगुचु निट्लनियॆं ॥ 51 ॥

कं. मुनुलार ! वेदवाक्यमुलनु, प्रस्तुतिजेसि सर्वलक्षणमुल ना
कॆनयगु पुत्रुनि निम्मनि, विन वलिकितिरिपुडु मिगुल वेडुक तोडन् ॥52॥

कं. नाकादि लोकमुललो, नाकुन् सरिवच्चुनट्टि नंदनु नॆट्टु ना
लोकिंप लेरु गावुन, नाकुन् सरि नेनका मनमुन नॆरुगुडी ! ॥ 53 ॥

व. अदियुनुं गाक भूसुरोत्तमुलु नामुखंबगुटंजेसि विप्रवाक्यंबु दप्पिंपरादु। मीरु नायीडु कुमारु नडिगितिरि गावुन नाभि पत्नियगु मेरुदेवियंदु नेने

दोष-रहित होकर तुम सम स्वभाववाले [आत्माराम बने मुनियों को] ऋषियों के द्वारा स्तुति करने योग्य गुणो से युक्त होकर भी, [स्खलन, क्षुत, पतन, जृंभण आदि दुरवस्थाओं में भी] ज्वर, मरणादि दुरवस्थाओं मे भी, प्रसन्न रहनेवाले तुम्हारे कलमषों का नाश करनेवाले, तुम्हारा नाम हमारे वचनों के लिए अगोचर बनें। और यह राजर्षि तुम्हारे समान पुत्र की चाहकर (कामना से), स्वर्ग और अपवर्ग दे सकनेवाले तुम्हारी पूजा कर, जैसे धन का कामी धनवान के पास जाकर, मात्र भूसी की याचना करता हो, उसी प्रकार मोक्ष-नाथ तुम्हारे संतान की कामना कर रहा है। ऐसा कौन है जो तुम्हारी अजेय माया मोह में [विषयासक्त हुए बिना] न पड़ता हो ? [अर्थकामी और मदांध बने हमने] तुम्हें निमंत्रित किया है, इस अपराध [सर्वान्तिर्यामी और समदर्शी होने के कारण] को क्षमा करो। हम पर कृपा करो। [ऐसा] कहकर प्रणाम करने पर देवताओं में श्रेष्ठ सर्वेश्वर ने वर्षा के अधिपति नाभि द्वारा ऋत्विकों से, स्तुति पाकर दया से कलित हो, यों कहा। ५१ [कं.] हे मुनियो ! अधिक उत्साह से अब वेदवाक्यों से प्रस्तुति (प्रशंसा) कर, सर्वलक्षणों से मेरे समान पुत्र की याचना की है। ५२ [क.] नाक (स्वर्ग) आदि लोकों में मेरे समान नन्दन और कहीं देख [पा] नहीं सकते। मन से यह जानो कि मेरे समान मैं ही हूँ। ५३ [व.] यही नहीं, भूसुरोत्तम मेरे मुख हैं, अतः विप्र-वाक्य का उल्लंघन नही

पुत्रुंडनै जनियिंचेद। अनि पलिकि, परमेश्वरुंडाग्नीध्रीय पत्नियगु मेरुदेवि चूचुचुंड ना होमकुंडंबुन नंतर्धानंबुनोंदि, यानाभिमीद दयंजेसि दिगंबरुलु दपस्वुलु, ज्ञानुलु, नूर्ध्वरेतसुलु नगु नैष्ठिकुलकु योगधर्मंबुल नॆर्ङिगिपं दलंचि, पुंडरीकाक्षुंडु नाभिपत्नियगु मेरुदेवि गर्भागारंबुनं ब्रवेशिंचॆ। अंत ॥ 54 ॥

## अध्यायमु—४

आ. मेरुदेवियंदु मेरु धीरुंडगु, हरि समस्त लक्षणान्वितुंडु
शमदमादि गुणविशारदुंडुदयिंचॆ, सकलजनुल कपुडु संतसमुग ॥ 55 ॥

आ. धवळकांति युक्तिदनरु देहंबुनु, महित वलपराक्रमंबु वीर्य-
मुनु दलंचि चूचि जनकुंडु पेरिडॆ, सुतुनि ऋषभुडनुचु सॊंपु तोड ॥ 56 ॥

कं. धरणीसुरुलुनु मंत्रुलु, बरिवारमु हितुलु प्रजलु बांधवुलुनु सु-
स्थिरमति नाबालकुनि, गर मनुरागमुन राजुगा जूचिरिलन् ॥ 57 ॥

कं. पुरुहूतुडतनि महिमलु, सरगुन विनि चित्तमुनकु सह्यमुगामि
वरकिंचि ऋषभुडेलॆडि, धरणि ननावृष्टि मिगुल दट्टमु सेसॆन् ॥ 58 ॥

---

करना चाहिए। तुमने मेरे समान पुत्र की अभिलाषा की है अतः नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से मैं ही पुत्र के रूप में जन्म लूंगा। ऐसा कह, परमेश्वर आग्नीध्र की पत्नी मेरुदेवी के देखते हुए, उस होमकुंड में अंतर्धान होकर, उस नाभि पर कृपा करके (दिगंबर, तपस्वी, ज्ञानी और ऊर्ध्वरेतस वाले नैष्ठिकों को) योगधर्म की शिक्षा देना चाहकर, पुंडरीकाक्ष ने नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भागार में प्रवेश किया। तब ५४

## अध्याय—४

[आ.] मेरुदेवी के गर्भ से मेरु [समान] धीर, [और] समस्त लक्षणों से अन्वित, शम-दम आदि गुणविशारद हरि का उदय हुआ। उस समय सकल जनो को प्रसन्नता हुई। ५५ [आ.] धवल कांति से युक्त शोभित शरीर, महित बल-पराक्रम और वीर को देखकर अत्यंत प्रेम से जनक (नाभि) ने अपने पुत्र का नाम शोभा से ऋषभ रखा। ५६ [क.] धरणीसुर (ब्राह्मण) और मंत्री, परिवार के लोग, हितैषीजन, प्रजा बांधव [आदि] ने सुस्थिर मति से उस बालक को अति अनुराग से धरती के राजा के रूप में देखा। ५७ [कं.] पुरुहित (इन्द्र) ने उनकी (ऋषभ की) महिमाओं को झट सुनकर, चित्त में सह न सक, विचार कर ऋषभ के राज्य में अधिक अनावृष्टि कर दी। ५८ [आ.] यह जानकर ऋषभ ने तब अपनी योग-

आ. अदि येरिंगि ऋषभुडंतट योगमा-, या बलंबुकतन मखिलराज्य-
मंबु गुरियजेसॆ नत्यंत संपूर्ण, वृष्टि दिनदिनंबु वृद्धि बॊंद ॥ 59 ॥

व. इट्लु ऋषभुंडु पुरंदरुंडु सेयु दौष्ट्यंबुनकु नव्वि, यजनाभंबनु तन मंडलंबु सुभिक्षंबुगा जेसॆ। नाभियुंदन कोरिन चंदंबुनं बुत्रुंडु जनियिंचि वृद्धि बॊंदुटकु संतसिल्लि, तनचेत नंगीकरिंपंबडु नरलोकधर्मंबु गल पुंडरीकाक्षुनि मायाविलसित मतिजेसि बालकु नातंड्रि यनि मोहंबुन नुपलालिंपुचुं ब्रजानुरागंबुन सर्वसम्मतुंडैन पुत्रुनि बूज्यंबैन राज्यंबुनं दभिषिक्तजेसि, भूसुरुलकु प्रधान वर्गंबुनकु नप्पगिंचि, मेरुदेविगूडि नरनारायणस्थानंबैन बदरिकाश्रमंबुनकुंजनि, यच्चट महायोग समाधिचे नरनारायणाख्युंडुनु, बुरुषोत्तमुंडुनगु वासुदेवु नाराधिंचि क्षीणदेहुंडै या नाभि हरितादात्म्यंबु नॊंदॆ। अंत ॥ 60 ॥

चं. सरसत ने नृपालकुनि जन्नमुनंदुनु भूसुरोत्तमुल्
सरसिजनाभुनिदग प्रसन्नत जेसिन नंतमॆच्चि यी-
श्वरुडु दनंत गर्भमुन वच्चि तनूभवुडै जनिंचॆ ना
नरपति नाभिकिन् सरि यनंदगुने ? नरनाथ ! यन्युलन् ॥ 61 ॥

व. अंत ॥ 62 ॥

---

माया के बल से अखिल राज्य में अत्यंत संपूर्ण वृष्टि दिनों-दिन की वृद्धि के साथ [जल] बरसा दिया। ५९ [व.] इस प्रकार ऋषभ को पुरन्दर की दुष्टता पर हँसी आयी और अजनाभ नामक अपने राज्य को सुभिक्ष (सस्यश्यामल) बना दिया। नाभि भी अपनी इच्छा के अनुरूप जनम कर उसकी वृद्धि को पाकर प्रसन्न हुआ। अपनी इच्छा से अंगीकृत नरलोकधर्म से युक्त पुंडरीकाक्ष की माया से विलसित मतिवाला होता हुआ उस बालक का (अपने को) अपने पिता मानकर, मोहवश [उसका] उपलालन करते हुए, प्रजा के अनुराग से, सर्वसम्मति से अपने पुत्र को [समय-सेतु की रक्षा के लिए] पूज्य राजगद्दी पर अभिषिक्त कर, [उसे] भूसुर तथा प्रमुख अधिकारियों को सौंपकर, मेरुदेवी के साथ तपस्या करने नर-नारायण का स्थान, बदरिकाश्रम जाकर, वहाँ महायोग-समाधि से [नर-नारायण नामवाले पुरुषोत्तम वासुदेव की आराधना करके) क्षीणदेही होकर नाभि न हरि से तादात्म्य प्राप्त किया। तब। ६० [चं.] हे नरनाथ ! सरसता से जिस नृपालक के यज्ञ में भूसुरोत्तमों के सरसिजनाभवाले (विष्णु) को भली-भाँति प्रसन्न कर, प्रसन्न होकर भगवान ने अपने-आप [मेरुदेवी के] गर्भ में आकर तनूभव के रूप में जन्म लिया, उस नरपति नाभि के समान अन्य किसको मान सकते हैं ? ६१ [व.] तब। ६२

सी. भूवरुडगु ऋषभुडु दन राज्यंबु गर्मभूमिग नात्मगांचि जनुल
कंदरकुनु प्रियंबगु नट्लु गर्मतंत्रंबॆल्ल दॆलुपंग दलचि कर्म-
मुलु सेयुटकु गुरुवुलयॊद्द वेदंबु चदिवि वारल यनुज्ञनु वहिंचि
शतमन्युडिच्चिन सति जयंत।कन्य वरिणयंबै यट्टि पडतिवलन

ते. भरतुडादिग सुतुलु नूर्वुरनु गांचॆ
नट्टि भरतुनि पेरनु नवनितलमु
पुरवराश्रम गिरि तरु पूर्णमगुचु
नमरि भारतवर्ष नाममुन मिंचॆ ॥ 63 ॥

व. आ महाभारतवर्षंबु नंदु तम तम पेरंगल भूमुलकुं गुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त, मलयकेतु, भद्रसेन, इंद्रस्पृक्, विदर्भ, कीकटुलनु तॊम्मंड्रु कुमारुलनु सवति पुत्रुलकु प्रधानुलनुगा जेसॆ। अंत गवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रमीढ, चमस, करभाजनुलनु वारु तॊम्मंड्रुनु भागवतधर्म प्रकाशकुलॆरि। वारल चरित्रंबुलु मुंदर नॆरिंगिंचॆद। तक्किन यॆनुबदियॊक्क कुमारुलुनु वित्रादेशकरुलु, नति विनीतुलु महाश्रोत्रियुलु, यज्ञशीलुरु, गर्मनिष्ठुलुनैन ब्राह्मणोत्तमुलॆरि। ऋषभुंडु स्वतन्त्रुडै संसारधर्मंबुलंवोरयक केवलानंदानुभवुंडैन ब्राकृतुंडुवोलॆ

---

[सी.] भूवर ऋषभ ने अपने राज्य को मन से कर्मक्षेत्र समझकर, सभी लोगों को प्रिय रूप में कर्मतत्व की शिक्षा देना चाहकर, कर्म करने के लिए गुरुजनों के पास वेद-विद्या सीखकर, उनकी आज्ञा मानकर, शतमन्यु की दी हुई सती, जयंती नामक कन्या से विवाह किया। [ते.] उस स्त्री से भरत आदि सौ पुत्रों को पाया। उस भरत के नाम से यह अवनीतल श्रेष्ठ पुरों, आश्रमों, गिरियों, तरुओं से पूर्ण वनकर विलसित हो भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ६३ [व.] उस महाभारतवर्ष में अपने-अपने नामों से प्रसिद्ध भूमियों (प्रदेशों) को कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त, मलयकेतु, भद्रसेन, इंद्रस्पृक, विदर्भ और कीकट नामक पुत्रों को और सौतेले पुत्रों को राजाओं के रूप में नियुक्त किया। तव कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्रि, द्रुमीढ, चमस और करभाजन नामक नौ [भाई] भागवत धर्म के प्रकाशक हुए। [भगवान की महिमा से उपबृंहित] उनके चरित्र आगे [एकादश स्कंध में] बताऊँगा। शेष इक्यासी कुमार [पिता की आज्ञा का पालन करनेवाले तथा अत्यंत नम्र] महाश्रोत्रिय, यज्ञशील, कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोत्तम बने। ऋषभ स्वतंत्र होकर सांसारिक धर्मों में प्रवृत्त न हो करके, केवलानन्द का अनुभव करनेवाला [ईश्वर होकर भी], साधारण मनुष्यों के समान कालानुगत धर्मों का आचरण करते हुए [धर्मप्रवर्तकों के लिए समभाव वाले] उपशम से युक्त, मित्रभाव से युक्त, करुणा से युक्त होकर, धर्म, अर्थ, यश, प्रजा के

गालानुगतंबुलगु धर्मंबुल नाचरिंपुचु नुपशांतुंडनु, मैत्रुंडनु, गारुणिकुंडुन धर्मार्थ यशः प्रजानंदामृतावरोधंबुचे गृहस्थाश्रमंबुलं ब्रजल नियमिंपुचु गोंतकालंबु नीतिमार्गंबु दप्पक प्रजापालनंबु सेयुचु वेदरहस्यंबुलगु सकल धर्मंबुलु स्वविदितंबुलैननु ब्राह्मणोपदेश पूर्वकंबुन द्रव्यदेश काल वय श्श्रद्धर्त्विग्विधोद्देशोपचितंबुलुग नोक्कोक्क क्रतुवुनु शतवारंबु यथाविधिग जेसि सुखंबुंडे। अंत ॥ 64 ॥

कं. जनवर! ऋषभुनि राज्यंबुन, नैहिकफलमु गोरु पुरुषुनि नोकनि
गगुगोनि नेरुंगमेन्नडु, निनतेजुंडतनि महिमलेमनि चेप्पन् ॥ 65 ॥

ऋषभुंडु पुत्रुलकु नीति नुपदेशिचुट

सी. आ ऋषभुंडु राज्यंबु सेयुचुंडि यंतट नोक्कनाडात्मयंदु
दलपोसि भूलोक फल मपेक्षिपक मोहंबु दिगनाडि पुत्रुलकुनु
दन राज्यमेल्ल नप्पनचेसि वेनुवेंट गोडुकुलु मंत्रुलु गोलिचि राग
नल्लन यरिगि ब्रह्मवर्तदेशंबु नंदुल नपुडु महात्मुलैन

ते. यट्टिमुनिजन सम्मुखंबंबु जेरि
तनदु पुत्रुल नंदर दाय बिलिचि
परमपुण्युंडु ऋषभुंडु प्रणय मोप्प
हर्ष मंदुचु नप्पुडिट्लनुचु बलिके ॥ 66 ॥

आनंदामृत के अवरोध से, प्रजा को गृहस्थाश्रमों में नियमन करते हुए, कुछ समय तक नीतिमार्ग का अनुसरण करते हुए, प्रजा का पालन किया। [वेद के सार रहस्य रूपी सकल धर्मों के अपने को विदित होने पर भी] ब्राह्मणों के उपदेश से द्रव्य, अवस्था (तरुण आदि), श्रद्धा, ऋत्विज, देवताओं को उद्दिष्ट करके एक एक क्रतु (यज्ञ) को शत सप्ताह यथाविधि संपन्न करके सुखी रहा। तब। ६४ [क.] हे राजन्! ऋषभ के राज्य में ऐहिक फल की अपेक्षा करनेवाले एक भी पुरुष देख नहीं पाया। सूर्य समतेज वाले उसकी महिमाओं का किस प्रकार वर्णन करूँ? ६५

ऋषभ का पुत्रों को उपदेश देना

[सी.] राज्य करते हुए एक दिन अपने मन में सोचकर ऋषभ भूलोक फल की (ऐहिक सुखों की) अपेक्षा न करके, मोह का विसर्जन कर, पुत्रों को अपना समस्त राज्य सौंपकर अपने साथ पुत्र, मंत्री आदि के सेवाएँ करते आने पर, धीरे से जाकर ब्रह्मावर्त देश पहुँचा। [ते.] वहाँ श्रेष्ठ महात्मा मुनिजनों के सम्मुख अपने सभी पुत्रों को निकट बुलाकर परम पुण्यात्मा ऋषभ ने अत्यंत प्रेम व हर्ष से यों कहा। ६६

## अध्यायमु—५

आ. तनयुलार! विनुड़ु धरलोन बुट्टिन, पुरुषुलकुनु शुनकमुलकु लेनि
कष्टमुलनु दॅच्चु गान गामंबुल, वलन बुद्धि सेय वलदु मीरु ॥ 67 ॥

चं. नरुलकु ने तपंबुन ननन्तसुखंबुलु गल्गुचुंड़ु श्री-
करमति ना तपंबु दग गैकोनि चेसिन ब्रह्मसौख्यमुं-
दिरमुग गल्गु वृद्धुलनु दीनुल ब्रोवुड़ु दुष्टवर्तनन्
जरुगुचुनुंड़ु कामुकुल संगति वोकुड़ु मीद मेलगुन् ॥ 68 ॥

व. मरियु नंगनासक्तुलगु कामुकुल संगंबु निरयरूपंबैन संसारंबगु। महत्संगंबु मोक्षद्वारंबगु। शत्रु मित्र विवेकंबु लेक समचित्तुलु, शांतुलु क्रोधरहितुलु सकल भूत दयापरुलु साधुलु नगु वारलु महात्मुलनंदगुदुरु। अट्टि महात्मुलु नायंदलि स्नेहंबे प्रयोजनंबुगा गलिगयुंडुटंजेसि विषयवार्त्ता प्रवृत्तुलगु कुजनुलंदु दम देह गृहमित्र दारात्मजादुलंदु ब्रीति लेक युंड़ुदुरु। विषयासक्तुंडैनवाड़ु व्यर्थकर्मंबुलंजेयु। अट्टि दुष्कृत कर्मंबुलंजेयुवाडेप्पुडुनु पापकर्मुंडगुचुं क्लेशदंबगु देहंबु नोंदुचुंडुंगावुनं पापमूलंबुलैन कामंबुलु गोरकुड़ु। ई ज्ञानंबेतकालंबु लेकयुंड़ु नंतकालं वात्मतत्त्वंबेरुंगंबडदु।

## अध्याय—५

[आ.] हे पुत्रो ! सुनो ! इस धरती पर जनमे पुरुषों को, काम-वासना के कारण जो कष्ट शुनकों को भी प्राप्त नहीं होते, ऐसे कष्ट प्राप्त होते हैं। अतः तुम लोगो को काम [विकारों] से मन नहीं लगाना चाहिए। ६७ [चं.] नरों को जिस तप से अनन्त सुखों की प्राप्ति होती है, श्रीकर-मति से उस तपस्या को अत्यंत निष्ठा से ग्रहण करने पर स्थिर रूप से ब्रह्मसौख्य अवश्य मिलेगा। वृद्धों की, दीनों की रक्षा करो। दुष्टवर्तन (दुर्व्यवहार) से जीनेवाले कामी [पुरुषों] की संगति में मत जाओ। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा। ६८ [व.] और अंगना (स्त्री) पर आसक्त कामुकों की संगति करना ही नरक का द्वार है। साधुओं का सांगत्य ही मोक्ष का द्वार है। शत्रु, मित्र का विवेक न रखनेवाले समदर्शी, अत्यंय शान्त (क्रोध-रहित), सकल भूतों पर दया रखनेवाले [साधु] ही महात्मा कहलाने के योग्य हैं। ऐसे महात्मा मुझ पर [भगवान] की भक्ति को ही परम पुरुषार्थ समझकर [विषय-वासनाओं मे प्रवृत्त कुजनों में] अपने शरीर, गृह, मित्र, दारा (स्त्री) आत्मज आदि में प्रीति न रखकर निर्लिप्त ही रहते हैं। विषयों में आसक्त व्यक्ति व्यर्थ कर्मो का आचरण करता है। ऐसे दुष्कृत्य करनेवाला सदा पापकर्मी होकर [क्लेशदायक शरीर प्राप्त करता

आ तत्त्वंबेऱुंगकुंडुटंजेसि देहिकि दुःखंबधिकंबै युंडु। लिंगदेहंबेंततड-वुंडु नंततडवु मनंबु गर्मवशंबै ज्ञानवंतंबु गाक यविद्यंबायकुंडु। शरीरंबु कर्ममूलंबगुट दलन गर्मंबुलु सेय जनदु। वासुदेवुंडगु नायंदु ब्रीति येंततडवु लेकयुंडु नंततडवु देहधर्मंबुलु बाधिंचु। विद्वांसुडैननु वेहेंद्रियादुल-यंदु ब्रीतिसेसिन मिथुनी भाव सुख प्रधानंबगु गृहस्थाश्रमंबु नंगीकरिंचि स्वरूपस्मृति शून्युंडै मूढुंडगुचु नंदु संसार तापंबुल बोंदु। पुरुषुंडु स्त्रीतोडंगूडि येकीभावंबु नोंदुट वारलकु हृदयग्रंथियैयुंडु। अंदु जनुनकु गृहक्षेत्र सुताप्त वित्तंबुलंदु 'नेनु नायदि' यनियेडि मोहंबु गलुगु। अट्टि स्त्रीपुरुष मिथुनी भावंबुचे संतानंबु गलुगु। आ संतान कारणंबुन गृहक्षेत्र वित्तादुलु संपादिपंबडु। अंदु मोहंबधिकंबगुटंजेसि मोक्षमार्गंबु दव्वगु। इट्लु संसारंबुनंदुंडियु मनंबुन नेप्पुडु मुक्तिचिंतजेयुनप्पुडु संसारंबुनु बायु। परमगुरुडनैन नायंदु भक्ति सेयुटयु, विगत तृष्णयु, द्वन्द्व तितिक्षयु सर्व लोकंबुलंदुल जंतु व्यसनावगतियु, नीश्वरविषयक ज्ञानापेक्षयु दपंबु विगतेच्छयु, मत्कृत कर्मंबुलु, मत्कथलु विनुटयु, नन्ने दैवं-

है अतः] पापों के लिए मूल, काम की चाह मत करो। यह ज्ञान जब तक नहीं उदित होता, तब तक प्राणी आत्मतत्त्व (आत्मा के रूप) से अपरिचित रहता है। उस तत्त्व के न जानने से देही को दुःख की वृद्धि होती है। यह लिंगदेह (स्थूल शरीर) जब तक रहे तब तक मन कर्म के वश में रहकर ज्ञान से पूर्ण न होकर अविद्या से लगा रहता है। शरीर कर्ममूल होने के कारण कर्म करने के स्वभाव को नही छोड़ता। मुझ [वासुदेव की] प्रीति जब तक नहीं रहेगी तब तक (उस समय तक) वह पुरुष देह के सम्बन्ध से नहीं छूटता है। विद्वान् होकर भी देह, इंद्रिय आदि में प्रीति करने पर [मैथुन सम्बन्धी सुख] गृहस्थाश्रम को स्वीकार करके (अपने स्वरूप की स्थिति को भूलकर मूढ़ बन) वहाँ त्रिविध तापों से पीड़ित रहता है। पुरुष स्त्री के साथ मिलकर एक ही भाव के हो जाते हैं। [उन्हें हृदय की दुर्भेद्य ग्रंथि है] इसी बन्धन के कारण जीव को पुत्र, मित्र, परिवार, घर और धन आदि के सम्बन्ध में "मै हूँ", "मेरा है" इस प्रकार का मोह होता है। ऐसे स्त्री-पुरुष के मैथुन से सतान की उत्पत्ति होती है। उस संतान के कारण गृह, क्षेत्र, वित्त आदि कमाया जाता है। इस घर-गिरस्ती में आसक्ति अधिक होने के कारण महामोह उत्पन्न होता है, जिससे मोक्ष का मार्ग दूर ही रह जाता है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में रहकर भी मन में मोक्ष की चिन्ता करने पर संसार के बंधनों से मुक्त होकर परमपद को पा लेता है। [अब उस अहंकार से मुक्त होने के साधन कहते हैं] सत्-असत् के विचारवान् गुणरूप मेरी भक्ति करना, तृष्णा को पास न आने देना, द्वन्द्व, तितिक्षा, सब लोकों में, जंतुओं के समान व्यसनों की

बुगा नॅऱुंगुटयु, नस्मद्गुणकीर्तनंबु, निर्वैर साम्योपशमंबुलु, देह गेहंबुलंदु नात्मबुद्धि जिहासयु नध्यात्मयोगंबु, नेकान्तसेवयु प्राणेंद्रियात्मल गॅलुचुटयु, गर्तव्यापरित्यागबु सच्छद्धयु, ब्रह्मचर्यंबु गर्तव्यकृत्यंबुलंदुल नप्रमत्तुंडगुटयु, वाङ्नियमनंबु सर्वंबु नन्नकादलंचुटयु, ज्ञानंबु, विज्ञान विजृंभितंबैन योगंबु धृत्युद्यमंबु सात्त्विकंबु नादिगागल तॅरंगुलचेत लिंगदेहंबु ज्रयिंचि देहि कुशलुंडगुचु नुंडवलयु ॥ 69 ॥

आ. अरय गर्मरूपमगु नविद्याजन्म-, मैन हृदयबंधनादि लतल
नप्रमत्तयोगमनु महाछुरिकचे, दॅंपवलयु नंत वॅंपुतोड ॥ 70 ॥

आ. औनर निट्लु योगयुक्तुंडु गुरुडैन, भूपुडैन शिष्य पुत्रवरुल
योगमतुल जेय नॉप्पु गावलयुनु, गर्मपरुल जेयगादु फावु ॥ 71 ॥

सी. जनुलॅल्ल नर्थवांछल जेसि यत्यंत मूढुलै यॅहिकंबुलु मनंबु-
लंदुल गोरुदुरल्प सौख्यमुलकु नन्योन्यवैरंबु लंरि दुःख-
मुल बॉंदुदुरु गान नलयक गुरुडैनवाडु मायामोह वशुलैनंत
जडुडनु नॅनदिट जंतुवुनंदुनु दय गलिग मिक्किलि धर्मबुद्धि

आ. गन्नुलुन्नवाडु गाननि वानिकि, दॅरुवु जूपिनट्लु दॅलिय वलिकि
यतुलमगुचु दिव्यमैन या मोक्ष मा-, र्गंबु जूपवलयु रमणतोड ॥ 72 ॥

---

अवगति, ईश्वर-विषय ज्ञान की अपेक्षा करना [तप], भोग की इच्छा को त्याग देना, सकल कर्मों को मेरी प्रीति के लिए करना, मत् (मेरी) कथाओं को सुनना, मुझे अपने इष्टदेव के रूप में देखना, मेरे गुणों का कीर्तन, किसी से भी वैर न करना, समदृष्टि रखना, शांति धारण करना, शरीर और घर के विषय में अध्यात्मशास्त्र का अभ्यास (अध्यात्मयोग), एकान्त सेवा (प्राण, इंद्रियों और मन को पूर्ण रीति से वश में रखना, कर्तव्य का अपरित्याग), सच्ची श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, [अपने कर्तव्यों के प्रति] असावधान न होना, वाक् (वाणी) का संयम, सर्वत्र मुझे व्याप्त समझना, ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण योग, धृति का उद्यम सात्त्विक आदि विधियों से लिंग शरीर को जीतकर देही को कुशल होकर रहना चाहिए। ६९ [आ.] सोचने पर कर्म रूपी अविद्या का कारणस्वरूप हृदय-बंधन आदि लताओं को अप्रमत्त (सावधानी) रूपी योग नामक महा छुरिका (छुरी) से काट देना चाहिए। ७० [आ.] शोभा से इस प्रकार योगयुक्त (व्यक्ति) राजा हो या गुरु हो अपने शिष्य व पुत्रवरों को योग की शिक्षा देनी चाहिए। कर्म (सकाम कर्म) की ओर कदापि प्रवृत्त नहीं करना चाहिए। ७१ [सी.] सभी लोग अर्थ वांछा से अत्यंत मूढ़ होकर, ऐहिक (भौतिक) सुखों को मन में चाहते है। अल्प सौख्यों (सुखों) के लिए परस्पर वैर-भाव से दुःख पाते है। अतः अथक बन जो गुरु है वह मायामोह के वशीभूत

व. मरियु बितृ गुरु जननी बंधु पति दैवंबुललो नॆव्वडैननु संसाररूप मृत्युरहितंबैन मोक्षमार्गंबु जूपकुंडेनेनि वारॆव्वरुनु हितुलु गानेरु। नादु शरीरंबु दुर्विभाव्यंबुनु, नादुमनंबु सत्त्वयुक्तंबुनु, धर्मसमेतंबुनु पापरहितंबु नगुटंजेसि पॆद्दलु नन्नु ऋषभुंडंद्रु। कावुन शुद्ध सत्त्वमयंबैन ना शरीरंबुनंबुट्टिन मीरलंदरुनु सोदरुंडु, महात्मुंडु, नग्रजुंडुनैन भरतुनन्नॆका जूचि यक्लिष्ट बुद्धिचे भजिंपुडु। अदियनाकु शुश्रूषणंबु। प्रजापालनबु सेयुट मीकुनु बरमधर्मंबु। अनि मरियु निट्लनियॆ ॥ 73॥

सी. भूतजालमुलंदु भूजमुल् वर्यमुल् भूरुहंबुलकंटॆ भोगिकुलमु
भोगिसंततिकन्न बोधनिष्ठुलु बोध मान्युल कन्ननु मनुजवरुलु
वोरिकन्ननु सिद्ध विबुध गंधर्वुलु वारिकन्न नसुरुल् वारिकन्न
निंद्रादि देवत लिदरिकन्ननु दक्षादि सन्मुनुल् दलप नॆक्कु

ते. डंत कन्ननु भर्गुडा यभवुकन्न, गमलभवुडॆक्कुडातनि कंटॆ विष्णु-
डधिकुडातडु विप्रुल नादरिंचु, गान विप्रुडु दैवंबु मानवुलकु ॥ 74 ॥

कं. भूसुरुलकु सरि दैवं, बी सचराचरमुनंदु लॆरुगनु नाकुन्
भूसुरुलु गुडुचुनप्पटि, या संतोषंबु दोच दग्नुलयदुन् ॥ 75 ॥

---

कितना भी जड़ (मूर्ख) बने, जन्तु पर भी दया करके, अत्यंत धार्मिक बुद्धि से [आ.]नेत्र सम्पन्न जैसे अंधे को राह दिखावे वैसे ही ज्ञान प्रदान करके अतुल व दिव्य मोक्षमार्ग को अत्यंत प्रेम से दिखाना चाहिए। ७२ [व.] और पितृ, गुरु, जननी, बन्धु, पति [आदि] देवों में कोई भी हो संसार रूपी मृत्यु से रहित मोक्षमार्ग को यदि नही दिखाएगा, तो उनमें से कोई भी [हमारे लिए] हितैषी नहीं हो सकता। मेरा शरीर [किसी के लिए भी] दुर्विभाव्य (भावना से अतीत) है। और मेरे मन के सत्त्वयुक्त और धर्म-समेत और पाप-रहित होने के कारण वृद्ध जन मुझे ऋषभ कहते हैं। अतः शुद्ध सत्त्वमय मेरे शरीर से उत्पन्न आप सब लोग सहोदर, महात्मा, अग्रज भरत को मेरे ही समान मानकर अक्लिष्ट बुद्धि से भजन (सेवा) करो। वह भी मेरी शुश्रूषा है। प्रजापालन करना आपके लिए ही परम धर्म है। ऐसा कहकर फिर यों कहा। ७३ [सी.] भूत-जाल (-समूह) में भूज (वृक्ष) वर्य (श्रेष्ठ) हैं। भूरुहों (वृक्षों) की अपेक्षा भोगिकुल (सर्पसमूह) और भोगि संतति की अपेक्षा बोध निष्ठावाले, बोध मान्यों की अपेक्षा मनुज वर, इनकी अपेक्षा सिद्ध, विबुध, गंधर्व और उनकी अपेक्षा असुर, उनकी अपेक्षा इंद्र आदि देवता, इन सबकी अपेक्षा दक्ष आदि सन्मुनि सोचने पर श्रेष्ठ हैं। [ते.] उनकी अपेक्षा भर्ग (शिव), उस अभव से कमलभव (ब्रह्मा) अधिक (श्रेष्ठ) हैं। उसकी अपेक्षा विष्णु अधिक है। वह (विष्णु) विप्रों का आदर करता है। अतः मानवों के लिए विप्र दैव है। ७४ [कं.] भूसुरों के समान दैव को इस सचराचर [जगत

सी. मंगळंबैन ब्रह्मस्वरूपंबुनु वेदरूपंबुन नादिरूप-
मगुचुन्न नादु देहमु ब्राह्मणोत्तमुल् धरियिंतुरॅप्पुडु तत्त्वबुद्धि
शमदमानुग्रह सत्य तपस्तितिक्षलु गलुगु विप्रुंडु सद्गुरुंडु
गान मिक्किलि भक्तिगलिग यंकिंचनुलैन भूसुरुल देहमुलवलन

ते. नंदुचुंडुनु नादु देहंबु गाग
नॅरिगि वरुलगु विप्रुल नॅल्ल भक्ति
बूज सेयुटये नन्नु बूजसेयु-
टनुचु विनुपिंचि मरियु निट्लनुचु वलिकॅ ॥ 76 ॥

कं. ई तॅरगु दॅलिसि भूसुर, जाति बूजिंचु नट्टि जनुडुनु माया-
तीतुंडै निक्कंबुग, भूतलमुन मोक्षमार्गमुनु बॉडगांचुन् ॥ 77 ॥

व. इट्लु सदाचारुलगु कुमारुलकु लोकानुशासनार्थंबाचारंबु लुपदेशिंचि, महात्मुंडु, वरमसुहृत्तुनु नगु भगवंतुंडु ऋषभापदेशंबुनं गर्मत्यागंबु जेसि युपशमशीलुरगु मुनुलकु भक्तिज्ञान वैराग्य लक्षणंबुलु गल पारमहंस्य धर्म-बुपदेशिपं गलवाडगुचु, बुत्रशतंबु नंदग्रजुंडु वरम भागवतुंडु, भगवज्जन-परायनुंडु नगु भरतुं धरणीपालनंबुनकु वट्टंबु गट्टि, तानु गृहमंदॅ देहमात्रावलंबनंबु जेसि, दिगंबरुंडै युन्मत्ताकारुंडगुचुं बकीर्णकेशुंडै यग्नुल नात्मारोपणंबु सेसि, ब्रह्मावर्तदेशंबुनु वासि, जडांध बधिर मूक

---

मे] नहीं जानता। मुझे अग्नियों में भी वह संतोष नही होता, जो विप्रों के भोजन करने के समय होता है। ७५ [सी.] मंजूलकर ब्रह्मस्वरूप को, वेद-रूप में आदि रूप बनी हुई मेरी देह को ब्राह्मणोत्तम सदा धारण करते है। तत्त्वबुद्धि, शम, दम, अनुग्रह, सत्य, तपस्या, तितिक्षा से युक्त विप्र सद्गुरु है। अतः अत्यधिक भक्ति से युक्त अकिंचन भूसुरों की देह को मेरी देह प्राप्त करती है। [ते.] इसलिए वर समस्त विप्रो की भक्ति-पूर्वक पूजा करना ही मेरी पूजा करना है। ऐसा सुनाकर (कहकर) फिर यो कहा। ७६ [कं.] इस विधान को जानकर भूसुर जाति की पूजा करनेवाला जन (व्यक्ति) भी मायातीत होकर, सचमुच भूतल में मोक्ष-मार्ग को प्राप्त करता है। ७७ [व.] इस प्रकार सदाचारी कुमारों को लोक के अनुशासन के लिए आचारों का उपदेश देकर महात्मा परम सुहृत् भगवान के ऋषभ के अपदेश (वहाने) से कर्म त्यागकर उपशम शील वाले मुनियों के भक्ति, ज्ञान, वैराग्य लक्षणों से युक्त परमहंस के धर्म का उपदेश देने योग्य होते हुए, पुत्रशत (सौ पुत्रों) में अग्रज परम भागवत, भगवद्जन-परायण भरत का, धरणीपालन के लिए राजतिलक कर, स्वयं गृह में ही देह मात्र का अवलंबन लेकर दिगंवर हो, उन्मत्त आकार वाला होते हुए, प्रकीर्ण केश वाला हो, अग्नियों में आत्मारोपण कर, ब्रह्मावर्त देश को

पिशाचोन्मादुलुंबोलॅ नवधूतवेषंबुनॊंदि, जनुलकु मारु पलुकक, मौन व्रतंबुनं बुर ग्रामाकर जनपदाराम शिबिर व्रज घोष सार्थ गिरि वनाश्रमादुलयंदु वॅंटंजनुदॆंचु दुर्जन तर्जन ताडनावमान मेहन निष्ठीवन पाषाण शकृद्रजः प्रक्षेपण पूतिवात दुरुक्तलं बरिभूतुंडननु गडनं बॆट्टक, वनमदेभंबु मक्षिकादि कृतोपद्रवंबुनु बोलॅ गॆकॊनक, देहाभिमानंबुनं जित्त-चलनंबु नॊंदक, येकाकियै चरियिंपुचुंड, नतिसुकुमारंबुलगु कर चरणोरस्स्थलंबुलु विपुलंबुलगु बाह्वंस कंठ वदनाद्यवयव विन्यासंबुलुं गलिगि, प्रकृति सुंदरंबगुचु स्वतस्सिद्ध दरहास रुचिर मुखारविंदंबै, नव नळिन दळंबुल बोलि शिशिर कनीनिकल जॆलुवॊंदि, यरुणायतंबु लगु नयनंबुलचे नॊप्पि, यन्यूनाधिकंबुलगु कपोल कर्ण कंठ नासादंडंबुलचे देजरिल्लुचु, विगूढस्मित वदन विभ्रमंबुल नकाशिंचु तन दिव्य मंगळ विग्रहंबुचे बुर सुंदरुल मनंबुल नति मोहंबु गलुग जेयुचु ॥ 78 ॥

आ. धूलिचेत मिगुल धूसरितंबुनै, जडलुगट्टि कडु पिशंगवर्ण-
मु नगु केशपाशमुनु वॆलिंगिपुचु, नितरुलॆवरु दन्नु नॆरुगकुंड ॥ 79 ॥

कं. अवधूतवेषमुन नि, ट्लवनिन् मलिनंबुलैन यवयवमुलतो-
दविलि जरिंपुचु नुंडॆनु, भुवि भूताक्रांतुडैन पुरुषुनि माड्किन् ॥ 80 ॥

छोड़कर, जड़, अंध, वधिर, मूक, पिशाच, उन्मादियों के समान अवधूत वेष को धारण कर, जनों को प्रत्युत्तर न देकर, मौन व्रत से पुर, ग्रामाकर, जनपद, आराम (उपवन), शिविर, व्रजघोष, सार्थ (व्यापारियों का झुण्ड), गिरि, वन, आश्रमादियों, [अपने] पीछे आनेवाले दुर्जनों के तर्जन (डाँट), ताडन, अवमान, मेहन (मूत्र), निष्ठीवन (थूक), पाषाण, शकृत, राज-प्रक्षेपण पूतिवात, दुरुक्तियों से परिभूत होने पर भी परवाह न कर वन-मद इभ (जंगल का मस्त हाथी) के मक्षिक आदियों से किये गये उपद्रवों की परवाह न करने के समान, देहाभिमान से चित्त को चंचल किये बिना, एकाकी हो विचरण करते समय, अति सुकुमार कर, चरण, उरस्थल (छाती), विपुल (विशाल) वाहु, अंस, कंठ, वदन आदि अवयव-विन्यासों से युक्त होकर प्रकृति (सहज) सुन्दर होनेवाले स्वतस्सिद्ध दरहास से रुचिर मुखारविंदवाला हो, नव नलिन दलों के समान शिशिर कनीनीकाओं के शोभित होने पर, अरुण और आयत (विशाल) नयनों से विलसित होकर अन्यून (कम न होनेवाला) कपोल, कर्ण, कंठ, नासा दण्डों से प्रकाशमान होते हुए, निगूढ स्मित वदन के विभ्रमों से प्रकाशित होनेवाले अपने दिव्य मंगल विग्रह (स्वरूप) से परम सुन्दर [व्यक्तियों के मनों में अति मोह पैदा करते हुए] ७८ [आ.] धूल से अति धूसरित बनकर जटाओं से युक्त होकर अधिक पिषंग (भूरे) वर्ण वाले केशपाश से विलसित होते हुए [ताकि] दूसरे कोई अपने को जान (पहचान) न पायें। ७९ [कं.] अवधूत

आ. जनुल क्रिट्लु योग संचार मॆल्ल वि, रुद्ध मनुचु नात्मबुद्धि जूचि
यजगरंबु माड्कि नवनि पै नुंडॆ वी, भत्स कर्ममुनकु वालुपड्चु ॥ 81 ॥

व. इट्लु बीभत्सरूपंबु वसुंधरं बंडियुंडि, यन्नंबु भुजियिंपुचु, नीरु द्रावुचु, मूत्रपुरीषंबुलु विडुचुचु, नवि शरीरंबुन नंटं बॊरलुचुंडॆ। मरियु वत्पुरीष सौगन्ध्य युक्तंबगु वायुवु दशदिशल दश योजन पर्यंतंबु परिमळिंपं जेयुचुंड, गो मृग काक चर्यलं जरियिंपुचु, भगवदंशंबैन ऋषभुंडु महानंदंबु ननुभविंपुचुं, दनयंदु सर्वभूतांतर्यामि यगु वासुदेवुनि प्रत्यक्षमुगा गनुंगॊनुचु, सिद्धिबॊंदिन वैहायस मनोजव परकाय प्रवेशांतर्धानि दूर ग्रहण श्रवणादि योग सिद्धुलु दमंत वच्चिनं गैकॊनक युंडॆ। अनि पलिकिन शुकयोगीन्द्रुनकु परीक्षिन्नरेंद्रुं डिट्लनियॆ ॥ 82 ॥

## अध्यायमु—६

कं. मुनिवर योगज्ञानं, बुन जॆरुपंबडु कर्ममुलु गल पॆद्दल्
गनियुंडॆडि यैश्वर्यं, बुनु ऋषभुंडॆट्लिगि येल पॊंदकयुंडॆन् ? ॥ 83 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 84 ॥

---

वेष से इस प्रकार अवनि पर मलिन बने अवयवों से, भुवि पर भूताक्रान्त पुरुष के समान सप्रयत्न विचरण करता था। ८० [आ.] जनों के लिए इस प्रकार वह समस्त योग-संचार को निरुद्ध मानते हुए आत्मबुद्धि से जानकर अजगर के समान [इस] वीभत्स कर्म का भागी होते हुए रहा। ८१ [व.] इस प्रकार वीभत्स रूप के साथ वसुंधरा पर पड़ा रह कर, अन्न खाते हुए, जल पीते हुए, मूत्रपुरीष को छोड़ते हुए उनके शरीर को लगने पर लोटता रहा। और उस पुरीष की सुगंध से युक्त वायु के दस दिशाओं में दस योजन पर्यंत सुवासित करते रहने पर, गो, मृग, काक की चर्याओ (कार्यो) को करते हुए भगवद् अंशवाला ऋषभ महानंद का अनुभव करते हुए, अपने में सर्वभूतांतर्यामी वासुदेव को प्रत्यक्ष रूप से देखते हुए, सिद्धि को प्राप्त वैहायस, मनोजव, परकाय प्रवेश, अंतर्धान, दूर ग्रहण, [दूर] श्रवण आदि योगसिद्धियों के अपने-आप आने पर उन्हें स्वीकार किये बिना रहा। ऐसा कहनेवाले शुकयोगीन्द्र से परीक्षित नरेंद्र ने इस प्रकार कहा। ८२

## अध्याय—६

[कं.] हे मुनिवर! योगज्ञान से विनष्ट कर्म वाले वृद्धजन जिस ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं, उसे जानकर भी ऋषभ ने [उन्हे] क्यों प्राप्त नहीं किया? ८३ [व.] [ऐसा] कहने पर शुक ने यों कहा। ८४

म. धरणीवल्लभ ! नीदु वाक्यमुलु दथ्यं बितयुंदप्प दें-
ट्लरयन् वन्यमृगंबु पट्टुवडि तानावेळ ना लुब्धकुन्
धर वंचिचिन माड्कि निंद्रियमुलं दंडिंचि चित्तंबु नि-
र्भर कामादुल कासयिच्चु गडु संरंभंबुतो ग्रम्मरन् ॥ 85 ॥

कं. चिरकाल तपमु नैननु, हरियिंपग नोपु जित्तमनि पॅद्दलु न-
म्मरु जारुलकुनु जारिणि, करणिनि नडरिंचु मनसु कामादुलकुन् ॥86॥

कं. काम क्रोधादुलु दा, भूमीश्वर ! कर्मबंधमुलु मड्रियुनु जे
तोमूलमुलगुटनु दा, री महिलो मनसु नम्म रॅप्पुडु पॅद्दल् ॥ 87 ॥

सी. अदि गान नॅन्नडु नैश्वर्यमुलनु जेपट्ट जूडडु लोकपाल मुख्यु-
लैन वारलचेत नभिनंदनमुलोंदि वॅलयंग नवधूत वेषभूष-
णंबुल नॅरिंगि कोनगरान भगवत्स्वरूपंबु गलिगि या रूपमंदु
बरमयोग ध्यान परुलकु नॅल्ल देहत्याग समयंबु नंतलोन

ते. जूपुचुंडियु देहंबु बाप निच्छ-
यिचॅ नच्चट दिव्य योगीन्द्रु डाद्यु-
डतुल दिव्य प्रकाशकुडमर गुरुडु
परम पुरुषुंडु ऋषभुंडु पार्थिवेंद्र ! ॥ 88 ॥

व. अंत विमुक्त लिंगुंडु,भगवंतुंडु नगु ऋषभुंडु मनंबुन देहाभिमानंबु विसर्जिचि,

[म.] हे धरणीवल्लभ ! तुम्हारे वाक्य तथ्य (सत्य) हैं। [वे] तनिक भी ग़लत नहीं होते। सोचने पर वन्यमृग पकड़ा जाकर भीं, स्वयं उस समय उस लुब्धक को धरा पर वंचित करने के समान, इंद्रियों को दण्डित कर, चित्त अधिक संरंभ से पुनः निर्भर (अधिक, सद्यः) कामादियों को प्रलोभन देता (फँस जाता) है। ८५ [कं.] चिरकाल की तपस्या को भी चित्त हरण कर सकता है। ऐसा वृद्धजन विश्वास नहीं करते। जार (व्यभिचारी) पुरुषों के लिए जारिणी के समान मन कामादियों को आकृष्ट करता है। ८६ [कं.] हे भूमीश्वर ! काम, क्रोध आदि स्वयं कर्मबन्धन हैं। और उनके चेतोमूल (जिनका मूल चित्त है) होने से महि में वृद्धजन कभी मन पर विश्वास नहीं करते। ८७ [सी.] हे पार्थिवेंद्र ! इसके ऐसा होने के कारण कभी ऐश्वर्यों को प्राप्त करना नहीं चाहता। लोकपालक आदि जनों से अभिनन्दित होकर, विलसित होकर अवधूत की वेशभूषाओं से, जाने न जा सकनेवाले भगवत् स्वरूप से युक्त होकर उस रूप में समस्त परमयोग के ध्यानपरायण जनों को [ते.] देह त्याग समय को दिखाते हुए तब दिव्य योगेंद्र आद्य, अतुल दिव्यप्रकाशक, अमरगुरु, परमपुरुष ऋषभ ने देह छोड़ना चाहा। ८८ [व.] तब विमुक्त लिंग वाला, भगवान् ऋषभ मन में देहाभिमान को छोड़कर, कुलालचक्र के कुलाल

कुलालचक्रंबु कुलालुनिचे भ्रमिंपिप बडि विसृष्टंबैनन्नु भ्रमियिंचुगति ब्राचीन संस्कार विशेषंबगु नभिमानाभासंबुन देहचलनादिकंबुल नॊप्पियुंडियु, योगमाया वासनचे युक्तुंडय्यें। मरियु ना ऋषभुंडॊक्क दिनंबुनं गौंकणवंक पटकुटकंबुलनु दक्षिण कर्णाटक देशंबुलकु यदृच्छचेजनि कुटकाचलोपवनंबुन निजास्यकृत शिला कवलुंडगुचु, नुन्मत्तुनि चंदंबुन विकीर्णकेशुंडु, दिगंबरुडुनै संचरिंप, वायुवेग विधूत वेणु संघर्षण संजातंबगु नुग्रदावानलंबु तद्वनंबु दहिंपनंदु दग्धुंडय्यें। अंत नतनि कृत्यंबुलु तद्देशवासुलगु जनंबुलु सेप्प नर्हन्नामकुंडगु तद्राष्ट्राधिपति विनि, निज धर्मंबुलं बरित्यजिंचि, स्वदेशस्थुलतोडंगूडि, दानायाचारंबुल नंगीकरिंचि, यधर्म बहुळंबगु कलियुगंबुन भवितव्यतचे विमोहितुंडै मनुजुल नसमंजसंबगु पाषंड मताभिनिवेशुलंजेसॆ, मरियुनु गलियुगंबुनंदु मनुजाधमुलु देवमाया मोहितुलै शास्त्रोक्त शौचाचारंबुलु विडिचि, निजेच्छंजेसि देवता हेळनंबुलु सेयुचु, नस्नानानाचमनाशौच केशोल्लुंछ-नादिकापवित्रव्रतंबुलंजेयुचु नधर्म बहुळंबगु कलियुगंबुनं जॆरुपंबडु बुद्धि धर्मंबुलं गलिगि, वेद ब्राह्मण यज्ञपुरुषुल दूषिंपुचु लोकंबुलं दम तम

(कुम्हार) द्वारा घुमाये जाकर, विसृष्ट होने पर (छोड़े जाने पर) भी घूमते रहने के समान प्राचीन संस्कार विशेष बने अभिमान के आभास से देह के चलन आदि से शोभायमान होकर भी योगमाया की वासना से युक्त हुआ। और वह ऋषभ एक दिन कोंकणवक (आज का कोंकण प्रांत ?) पटकुटक नामक दक्षिण कर्णाट देशों को यदृच्छा से जाकर कुटक-अचल (-पर्वत) के उपवन में निजास्य में (अपने मुख में) शिला कवल (शिला रूपी निवाले) को रखकर उन्मत्त के समान विकीर्ण केशवाला और दिगंबर हो संचार करता रहा। वायुवेग से विधूत वेणु (बाँस) के संघर्ष से संजात (उत्पन्न) उग्र दावानल के उस वन को जलाने पर उसमें (कुछ अग्नि से) दग्ध हो गया। तब उसके कृत्यों के बारे में उस देशवासी जनों के कहने पर, उस राष्ट्र का अर्ह नामक अधिपति ने सुना, [सुनकर] निज धर्मों का परित्याग कर स्वदेशवासियों से युक्त होकर, स्वयं उन आचारों को (अवधूत के आचारों को) स्वीकार कर, अधर्म बहुला कलियुग में भवितव्यतावश विमोहित होकर मनुजों को असमंजस से पूर्ण पापण्ड मत का अभिनिवेशी बना दिया। और भी कलियुग में मनुजाधम देवमाया से मोहित होकर शास्त्रोक्त शौच आचारों को छोड़कर, निज इच्छा से देवताओं की अवहेलना करते हुए अस्नान (स्नान न करना), अनाचमन (आचमन न करना), अशौच (शौच न रखना), केशोल्लुंछन आदि अपवित्र व्रतों का आचरण करते हुए अधर्म बहुला कलियुग में विनष्ट बुद्धि धर्मों से युक्त होकर वेद-ब्राह्मण-यज्ञपुरुषों की निन्दा करते हुए, लोकों में अपने-

मतंबुलकुंद्रामे संतसिपुचु, नवेदमूलंबगु स्वेच्छंजेसि प्रवर्तिचि, यंध परंपरचे विश्वासंबुसेसि, तमंतन नंध तमसंबुनं बडुचु नुंडुदुरु। ई ऋषभुनि यवतारंबु रजोव्याप्तुलगु पुरुषुलकु मोक्षमार्गंबु नुपदेशिचुटकु नय्यें। अदियुनुंगाक सप्तसमुद्र परिवृतंबुलगु नी भूद्वीप वर्षंबुलंदलि जनंबुलु दिव्यावतार प्रतिपादकंबु, ललितशुद्धंबुलुनगु नॆव्वनि कृत्यंबुलं गीर्तितुरु मरियु नॆव्वनि वशंबुन नति कीर्तिमंतुंडगु प्रियव्रतुंडु गलिगॆं, नॆंडु जगदाद्युंडगु पुराणपुरुषुंडवतारंबु नॊंदि कर्म हेतुकंबुलु गानि मोक्षधर्मं-बुलंदेलिपॆ। वॆंडियु नॆव्वंडु योगमाया सिद्धुल नसद्भूतंबुलगुटंजेसि निरसिंचॆ, नट्टि ऋषभुनितोड दत्सिद्धीकृत प्रयत्नुलगु नितर योगीश्वरुलु मनोरथंबुन नैन नॆट्लु सरियगुदुरु? इट्लु सकल वेदलोक देवब्राह्मणुलकु गोवुलकुं बरमगुरुंडु, भगवंतुंडुनगु ऋषभु चरित्रंबु विनिन वारलकु दुश्चरित्रंबु दॊलंगु। मंगळंबुलु सिद्धिंचु। मिक्किलि श्रद्धतोड नॆव्वंडु विनु, विनुपिंचु, वानिकि हरिभक्ति दृढंबगु। अट्टि हरिभक्ति तात्पर्यंबुनं बॆद्दलु भागवतुलगुटंजेसि संप्राप्त सर्वपुरुषार्थुलगुचु विविध वृजिन हेतुकंबगु संसार तापंबुनु बासि, यविरतंबु, तद्भक्ति योगामृत स्नानंबुजेसि परमपुरुषार्थंबैन मोक्षंबुनु जॆंदुदुरु। अनि सप्तद्वीपंबुलवारु नेडुनुं गॊनियाडुचुंडुदुरु ॥ 89 ॥

---

अपने मतों से स्वयं सन्तुष्ट होते हुए अवेदमूलक स्वेच्छा से आचरण कर, अंध परम्परा से [उस पर] विश्वास कर, स्वयं अंधतमस (अंधकूप) में गिरते रहते हैं। इस ऋषभ का अवतार रजोव्याप्ति वाले रजोगुण से युक्त पुरुषों के लिए मोक्षमार्ग के उपदेश के लिए हुआ। इसके अतिरिक्त सप्त समुद्रों से परिवृत (घिरे हुए) इन भू-द्वीपों के वर्षों में जन (लोग) दिव्यावतार के प्रतिपालक और अतिशुद्ध (पवित्र) बने जिसके कृत्यों की प्रशंसा करते हैं और जिसके वंश में अति कीर्तिमान प्रियव्रत उत्पन्न हुआ, जहाँ जगत का आदि पुराणपुरुष ने अवतार लेकर कर्म हेतु न होनेवाले मोक्षधर्मों को बताया और जिसने असद्भूत (सत्त्वगुण-रहित) होने से योगमाया सिद्धियों का निरास किया, ऐसे ऋषभ के साथ तत् सिद्धि के लिए कृत प्रयत्न वाले इतर योगीश्वर, मनोरथ (कल्पना) में ही सही, कैसे बराबरी कर सकते हैं? इस प्रकार सकल वेद लोक, देव, ब्राह्मणों और गायों के लिए परमगुरु, भगवान ऋषभ के चरित्र को सुननेवालों के दुश्चरित्र दूर होते हैं। मंगल की सिद्धि होती है। अत्यधिक श्रद्धा से जो सुनेगा, सुनायेगा उसकी हरिभक्ति दृढ़ हो जाती है। ऐसी हरिभक्ति के तात्पर्य से वृद्धजन भागवत होने से सर्वपुरुषार्थों को संप्राप्त कर विविध वृजिन (पाप) हेतुक (कारण) संसार ताप से बिछुड़कर अविरत तद् भक्ति के योगामृत स्नान से परमपुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त होते हैं। ऐसा

आ. यादवुलकु मीकु नत्यंत कुलगुरु-
वैन कृष्णुडॆंचट नॆन गलडु
कीलुचुवारि कॆल्ल सुलभुडै मोक्षंबु
निच्चु जित सेय नेल ? नीकु ॥ 90 ॥

सी. नित्यानुभूतमौ निजरूपलाभ निवृत्तमैदगु महातृष्ण गलिगि
यतुलित विपुल माया रचितंबैन लाभंबुनकु दगुलंबु लेनि
मति गलिग लोकुल नति वेड्क गरुणिंचि यभय दानंबिच्चि यंदरकिल
नव्ययंबै दिव्यमै महानंदमै यत्यंत सेव्यमै यतुलमैन

ते. तनदु लोकंबु चूपंग दगिनयट्टि
मोक्षमार्गंबु नॆरिगिंचि मुक्तदेहु-
डगुचु दादात्म्य मॊंदॆ प्रत्यक्ष विष्णु-
वैन ऋषभुंडु जनुलकु नद्भुतमुग ॥ 91 ॥

## अध्यायमु—७

### भरतोपाख्यानमु

म. भरतुंडंत धरातलंबु गडकं लर्गिंचुचुन् धारुणी-
श्वर चंद्रुंडगु विश्वरूपुनकु मुन् संजातयै युंडि नि-

कहकर सप्त द्वीपो के वासी आज भी प्रशंसा करते रहते हैं। ८९ [आ.] यादवो के लिए और तुम्हारे लिए अत्यंत कुलगुरु कृष्ण वहाँ पर भी स्थित है। वह सेवा करनेवालो के लिए सुलभ होकर मोक्ष देता है। तुम्हें चिन्ता करने की [आवश्यकता] क्यों ? ९० [सी.] नित्यानुभूत होनेवाले निज रूप लाभ की निवृत्ति मे उचित महा तृष्णा से युक्त होकर, अतुलित विपुल माया से रचित लाभ के प्रति आसक्ति-रहित मति से युक्त होकर, लोगों पर अति उत्साह से करुणा दिखाकर, अभयदान देकर, सबके लिए अव्यय, दिव्य, महानन्दकर, [ते.] अत्यंत सेव्य और अतुल अपने लोक में दिखाने योग्य मोक्ष मार्ग को बताकर प्रत्यक्ष विष्णु होनेवाले ऋषभ ने मुक्त देह होते हुए, तादात्म्य को प्राप्त किया, जिससे जनों को अद्भुत होवे। ९१

## अध्याय—७

### भरत का उपाख्यान

[म.] हे भूवल्लभ ! तब भरत ने धरातल पर सप्रयत्न शासन करते हुए, धारुणीश्वर-चंद्र (राजाओं मे श्रेष्ठ) विश्वरूप को पूर्व मे उत्पन्न

भँर कांतिन् विलसिल्लु पंचजनि पेरंगल्गु कांतामणि-
गर मथि धर वेंड्लियाडे शुभ लग्नंबंदु भूवल्लभा ! ॥ 92 ॥

व. इट्लु विवाहितुंडै या पंचजनि वलन नहंकारंबुनं वंच तन्मात्रलु जनियिंचिन तेरंगुन सुमति, राष्ट्रभुक्, सुदर्शन, आचरण, धूम्रकेतुवलनु नेवुरु पुत्रुलं बुट्टिंचें। अटमुन्न नजनाभंबनु पेरंगल वर्षंबु भरतुंडु पालिचु कतंबुन भारतवर्षंबु ना वरगें। अंत, ॥ 93 ॥

कं. भरतुडु निजपित लेलिन
करणिनि गर्ममुल नेल्ल गैकोनि प्रजलन्
हरिकृप नोंदुचु नेलेनु
धरणीसुर वरुलु वोगड धरणीनाथा ! ॥ 94 ॥

सी. भगवंतुंडगु जगद्भरितु नल्पंबुलु नधिकंबुलैन पेक्कध्वरमुल
दर्शपूर्णिमलचे दगनु जातुर्मास्यमुल नग्निहोत्रमु वलन गडक
पशु सोममुलचेत बलुमाऱु पूजिंचि वेदोक्तमैन या विमलकर्म-
मुल गल्गु धर्मंबु पुरुषोत्तमार्पणंबुग जेयुचुनु मखंबुलनु मंत्र

ते. मुलनु बलिकेडु ना देवमुलनु श्रीशु-
नवयवंबुलगानु भूधवुडु प्रेम
ननुदिनंबुनु बायक घनत दलचि
यखिल राज्यानुसंधानु डगुचु नुंडे ॥ 95 ॥

---

होकर, निर्भर (पूर्ण) कान्ति से विलसित होनेवाली पंचजनी नाम से युक्त कान्तामणि से, अधिक इच्छा से, धरा पर शुभ लग्न में विवाह किया। ९२ [व.] इस प्रकार विवाहित होकर उस पंचजनी से, अहंकार से पंच-तन्मात्राओं के उत्पन्न होने के समान, सुमति, राष्ट्रभुक्, सुदर्शन, आचरण, धूम्रकेतु नामक पांच पुत्रों को पैदा किया। उससे पूर्व अजनाभ नाम से युक्त वर्ष (प्रांत, देश) भरत के शासन के कारण भारतवर्ष नाम से शोभित हुआ। तब ९३ [कं.] हे धरणीनाथ ! भरत अपने पिताओं (पूर्वजों) के शासन करने के समान समस्त कर्मों को लेकर (युक्त होकर), हरि की कृपा प्राप्त करते हुए, प्रजा पर शासन किया, जिसकी धरणीसुर वर प्रशंसा करें। ९४ [सी.] भगवान होनेवाले, जगत्भरित में अल्प और अधिक होनेवाले, अनेक अध्वरों से दर्श पूर्णिमाओं में उचित ढंग से चातुर्मास्यों में, अग्निहोत्र से सप्रयत्न पशु, सोम [यज्ञ] अनेक बार पूजा कर वेदोक्त उन विमल कर्मों से प्राप्त धर्म (पुण्य) को, पुरुषोत्तम को अर्पित करते हुए, मखों (यज्ञों) में, [ते.] मंत्रों में उच्चरित होनेवाले उन देवों को श्रीश (विष्णु) के अवयव के रूप में भूधव (राजा) प्रेम से अनुदिन निरन्तर महत् बुद्धि से मानकर अखिल राज्य का अनुसंधान करता रहा। ९५

कं. ई रीति गर्मसिद्धुल, नारय नत्यंतशुद्धम्गु चित्तमुतो
ना राचपट्टि भरतुडु, धारुणि वालिचॆ नधिक धर्मान्वितुडै ॥ 96 ॥

व. मरियु ना भरतुंडु श्रीवत्स कौस्तुभ वन मालालंकृतुंडुनु, सुदर्शनाद्यायुधोप लक्षितुंडुनु, निजभक्तजन हृदयारविंद वासुंडुनु, परम पुरुषुंडुनुनैन वासुदेवुनियंदु नधिक भक्ति ननुदिनंबुनु जेयुचु, नेबदिलक्षल वेलेंड्लु राज्यंबु चेसि, पितृ पितामहाद्यायातंबगु ना धनंबुनु यथार्हंबुग बुत्रुलकु बंचियिच्चि, बहुविधसंपदलु गल गृहंबुनु बासि, पुलहाश्रमंबुन करिगॆ। नंत ॥ 97 ॥

सी. ए याश्रमंबुन निंदिराधीश्वरु डच्चटि वारल नादरिंचि
प्रत्यक्षमुन नुंडु बायक यॆप्पुडु नट्टि रम्यंबैन याश्रममुन
निलिचि सालग्राममुलु गल गंडकी नदि यॆंदु नैंतयु गदिसियुंडु
नच्चोट नेकाकि यगुचुनु भरतुंडु बहुविध नवपुष्प पल्लवमुलु

ते. नतुल तुलसीदळंबुल नंबुवुलनु
गंदमूलादि फलमुल गंजमुलनु
घनत नर्पिंचि निच्चलु दनिविलेक
सेव चेयुचुनुंडॆ ना श्रीशु हरिनि ॥ 98 ॥

व. दानंजेसि विगत विषयाभिलाषुंडै शमदमादि गुणंबुलु गलिगि, यथेच्छं जेसि यॆडतॆगक परमपुरुषुनि परिचर्या भक्ति भरंबुन शिथिलीकृत हृदयग्रंथि

[कं.] इस प्रकार कर्मसिद्धियों से सोचने पर अत्यंत शुद्धचित्त से अधिक धर्मान्वित होकर उस राजकुमार भरत ने धारुणी पर शासन किया। ९६ [व.] और वह भरत श्रीवत्स-कौस्तुभ-वनमाला से अलंकृत और सुदर्शन (चक्र) आदि आयुधों से उपलक्षित और निज भक्तजनो के हृदयारविंदों में निवास करनेवाला परमपुरुप वासुदेव के प्रति अनुदिन अधिक भक्ति करते हुए, पचास लाख हजार वर्ष राज्य कर, पितृ-पितामह आदि से प्राप्त धन को यथार्ह (यथायोग्य) रूप से पुत्रों में बाँट देकर, बहुविध संपत्तियों से युक्त गृह को छोड़कर पुलह-आश्रम में गया। तब ९७ [सी.] जिस आश्रम मे इंदिराधीश्वर (विष्णु) वहाँ के सब लोगों का आदर कर, प्रत्यक्ष रूप से सदा न छोड़कर रहता है, वैसे रम्य आश्रम में ठहरकर सालग्राम से युक्त गण्डकी नदी के निकट स्थित उस स्थान पर एकाकी होकर रहा। भरत बहुविध नवपुष्प पल्लवों को, [ते.] अतुल तुलसीदलों को, अंबुओं (जल) को, कंद, मूल आदि फलों को, कंजों (कमल) को, महानता से अर्पित कर, नित्य न अघाकर श्रीश और हरि की सेवा करता रहा। ९८ [व.] उस कारण से विगत विषयाभिलाषी (विषयों के प्रति जिसकी अभिलाषा नहीं रही हो) होकर, शम, दम आदि गुणों से युक्त होकर यथेच्छा

गलिगि, संतोषातिशयंबुनं बुलकितांगुंडु, नानंद बाष्प निरुद्धावलोक नयनुंडु नगुचु निजस्वामियैन हरि चरणारविन्दानु ध्यान परिचित भक्ति योगंबुनं बरमानन्द गंभीर हृदयंबनु नमृत ह्रदंबुन निमग्नुंडगुचु, दा नपुडु पूजिचु पूज नेंरुंगक इट्लु भगवद्व्रतंबु धरियिंचि, येनाजिन वास स्त्रिषवण स्नानंबुल नार्द्रकुटिल कपिशवर्ण जटाकलापंबुलु गलिगि, मार्तांडांतर्गतुंडैन परमेश्वरुनि हिरण्मय पुरुषुनिगा दलंचुचु निट्लनियें ॥ 99 ॥

सी. कर्म फलंबुल गडक निच्चुचु मनोव्यापारमुन निट्टि यखिललोक-
मुल जेसि या लोकमुलकु नंतर्यामि यगुचु प्रवेशिचि यंतमीद
नानन्दरूपमैनट्टि ब्रह्ममु गोरुचुन्न जीवुनि वन योग महिम
शक्तिचे दग ननिशंबु बालन सेयुचुंडि यंतटनु मार्तांडमध्य-

आ. वर्ति यगुचु निट्लु वरलुचु जगमुल, यंदु नुंडि प्रकृति बोंद कंत
नतुल दिव्यमूर्तियैन यानंद रू-, पमुनु शरणमोंदें भरतविभुडु ॥ 100 ॥

## अध्यायमु—८

व. अंत ना भरतुंडोक्कनाडा महानदिगृताभिषेकुंडै मुहूर्तत्रयं बंतजलंबुलंदु

से निरन्तर परमपुरुष की परिचर्या की भक्ति की पूर्णता से शिथिलीकृत हृदयग्रंथि वाला होकर, संतोषातिशय से पुलकित अंगवाला, आनन्द-बाष्पों के कारण निरुद्ध अवलोकन वाले नयनों से युक्त होते हुए अपने स्वामी हरि के चरणारविंदों के अनुध्यान, परिचित भक्तियोग से परमानंद से युक्त गंभीर हृदय रूपी अमृत ह्रद (सरोवर) में निमग्न होता रहा। स्वयं तब जो पूजा कर रहा था उसे न जानकर इस प्रकार भगवत् व्रत को धारण कर, एनाजिन (हिरण का चर्म) को वस्त्र के रूप में, त्रिपवण स्नान से आर्द्र-कुटिल-कपिश वर्ण वाले जटा-कलाप से युक्त होकर मार्तण्डांतर्गत परमेश्वर को हिरण्मय पुरुष के रूप भावना करते हुए इस प्रकार कहा। [भरत ने कहा]। ९९ [सी.] कर्म फलों को सप्रयत्न देते हुए, मनोव्यापार (इच्छा) मात्र से अखिल लोकों का निर्माण कर, उन लोकों में अंतर्यामी होकर प्रवेश कर, उसके बाद आनन्द रूपी ब्रह्म को चाहनेवाले जीव पर अपनी योगमहिमा शक्ति से उचित रूप से सदा पालन करते हुए, तब मार्तण्ड-मध्यवर्ती होकर [आ.] इस प्रकार विलसित होते हुए, जगों में रहकर भी प्रकृति से संपृक्त न होनेवाले अतुल दिव्यमूर्ति होनेवाले आनन्द रूप (ईश्वर) की भरत ने शरण पायी। १००

## अध्याय—८

[व.] तब उस भरत के एक दिन उस महानदी में कृताभिषिक्त हो

ग्रणवोच्चारणंबु सेयुचुंडु समयंबुन, निर्भर गर्भिण्यगु हरिणि जलार्थिनियै यौंटि जलाशय समीपंबुनकु वच्चि, जलपानंबु सेयुनेंड ना समीपंबुन मृगपति गर्जिंचि लोक भयंकरंबुग नादंबु सेय, हरिणि स्वभावंबुन भीतयगुटंजेसि वेंगडिलि हरिविलोकन व्याकुल चित्तय दिग्गन नदरि, गगनंबुनकु नेंगिरि, यवगततृष यगुचु नदि नुल्लंघिचुनेंड नधिकभयंबुनंजेसि या गर्भंबु योनिद्वारंबन गळितंबै जलंबुलं बडियें। आ हरिणि युल्लंघनादि भयंबुनंजेसि तत्तीरंबुन नुंडु गिरिदरि बडि शरीरंबुनु वासें। अंत ना हरिणपोतंबु जलंबुलं देलुचुन्न, भरतुंडु गनुविच्चि चूचि करुणार्द्रचित्तुंडै मृतजननि यगु हरिणपोतंबुनु दन याश्रमंबुनकु गोनिपोयि, मिक्किलि प्रीति जेसि युपलालनंबु सेयुचुंड बोषण पालन प्रीणन लालनानुध्यानंबुल भरतुनकु नात्म नियमंबुलैन यष्टांग योगंबुलुनु बरमपुरुष पूजा परिचर्यादुलु नोक्कोक्कटिग ग्रमक्रमंबुनं गोन्नि दिनंबुलकु समस्तंबु नुत्पन्नं बय्यें। अंत ॥ 101 ॥

कं. घनतपमु चलनमोंदुट,-युनु भरतुंडेरुग कात्मयोगंबुन ज
य्यन वासें हरिणपोतमु, दनमदिलो निलिपप्रीति दप्पक पलिकेन् ॥102॥

(स्नान) कर मुहूर्त त्रय के लिए अंतर-जलों में प्रणव का उच्चारण करते समय निर्भर गर्भिणी (जिसके गर्भ के महीने पूरे हो चुके हो) हरिणी (हिरण) जलार्थिनी होकर अकेले जलाशय के समीप आकर जल का पान कर रही थी, उस समय वहाँ समीप में मृगपति (सिंह) के गरजकर लोक भयकर रूप में नाद करने पर, हरिणी स्वभाव से भीत (डरपोक) होने से घबड़ा कर, हरि (सिंह) के विलोकन से व्याकुल चित्त वाली होकर, झट डरकर, आसमान मे उछलकर अवगत तृषा वाली (जिसकी प्यास बुझ गयी हो) होकर, नदी का उल्लंघन करते समय, अधिक भय के कारण उसका गर्भ योनिद्वार से गलित होकर जल मे गिर गया। उस हरिणी ने उल्लंघन आदि के भय के कारण उस तीर पर स्थित गिरि के निकट गिरकर शरीर को छोड़ दिया। तब उस हरिणीपोत के (हिरण के बच्चे के) जल में बहते (तैरते) समय भरत ने आँख खोलकर देखकर करुणार्द्र चित्त वाला होकर मृत जननी वाले हरिणपोत को अपने आश्रम में ले जाकर, अधिक प्रीति से उपलालन करता रहा। [भरत के उस हिरण के बच्चे के] पोषण-पालन, प्रीणन-लालन, अनुध्यानों के कारण भरत के आत्मनियम अष्टांग-योग और परमपुरुष की पूजा, परिचर्या आदि एक एक करके क्रम-क्रम से कुछ दिनों में सभी नष्ट हो गये। तब १०१ [कं.] घन तप के विचलित हो जाने को भरत न जान करके, आत्मयोग को हरिणपोत को अपने मन में स्थिर कर, गँवा दिया। प्रीति से उसने यों कहा— १०२

उ. अक्कट ! तल्लि बासि हरिणार्भक माप्तुलु लेमि जेसि ये
दिक्कुनु लेकयुन्न निट देच्चिति नार्येड नी मृगार्भकं
बॅक्कुड प्रेम जेसि जरियिंपुचुनुन्नदि नादु सन्निधिन्
मक्कुन चेसि दीनि गड मन्ननलंदग ब्रोतु नॅंतयुन् ॥ 103 ॥

कं. शरण मनि वच्चु जंतुवु
गरुणं गनुविच्चि चूचि काचिन बुण्यं
बरयग नधिकंबनि
मुन्नॅरिंगिंचिरि सन्मुनींद्रु लॅल्लं ब्रेमन् ॥ 104 ॥

व. अनि यिट्लु हरिणपोतंबु दन याश्रमंबुन नत्यासक्ति जेसि यासन शयनाटन स्नान समित्कुश कुसुम फल पलाश मूलोदकाहरण देवपूजा जपादुलयॅडं दन यॊद्दन युनिचि कॊनुचु, वृक सालावृकादि क्रूर मृगंबुलवलनि भयंबुन वनंबुल वॅनुवॅंट दिरुगुचु नधिक प्रणयभरपरीतहृदयुंडगुचु, नति स्नेहंबुनं-जेसि गॊंतसेपु स्कंधंबुल वहिंचुचु, मरि गॊंततड वुरंबुन नुत्संगंबुन नुंचि कॊनि लालिंपुचु, संतसंबु नॊंदु। मरियु ना भरतुंडु नित्य नैमित्तिकादि क्रिया कलापंबु निर्वर्तिचुनॅड नंत नंत लेचि हरिण कुणकंबु जूचुचु गिंचित्स्वस्थ हृदयुंडै दानि नाशीःपरंपरल नभिनंदिचुचुं जुंबनादुलं ब्रोतिसेयुचु नति मोहंबुन बॅंचुचुंडुनॅड ॥ 105 ॥

[उ.] हाय ! माता से बिछुड़कर हरिण-अर्भक (-बच्चा) के, आप्तों के अभाव के कारण अनाथ बने रहने से यहाँ लाया। मेरे प्रति यह मृगार्भक (हिरण का बच्चा) अधिक प्रेम से मेरे समक्ष (निकट) विचर रहा है। [इसके प्रति] प्रेम दिखाकर अधिक आदर से इसकी रक्षा करूँगा। १०३ [कं.] समस्त सन्मुनींद्रों ने पूर्व में प्रेम से बतलाया था कि शरण चाहकर आनेवाले जन्तु पर करुणा से आँख खोलकर देखकर रक्षा करने पर अधिक पुण्य होता है। १०४ [व.] ऐसा कर इस प्रकार हरिणपोत को अपने आश्रम में अति आसक्ति से आसन-शयन-अटन-स्नान, समिधा, कुशा, कुसुम, फ़ल, पलाशा, मूल, उदक, आहरण (लाना), देव-पूजा-जप आदियों के समय अपने पास रखते हुए, वृक, सालावृक, आदि क्रूर मृगों द्वारा भय के कारण वनों में [उसके] पीछे-पीछे घूमते हुए अधिक प्रणयभार से परीत हृदय वाला होते हुए, अति स्नेह के कारण थोड़ी देर [उस हिरण के बच्चे को] कंधों पर वहन करते हुए, और थोड़ी देर उर से लगाकर लालन करते हुए संतुष्ट होता रहा और वह भरत नित्य-नैमित्यकादि क्रिया-कलापों का निर्वाह करते समय जब-तब उठकर हरिण-कुणक (-बच्चा) को देखते हुए, किंचित स्वस्थ हृदय वाला होकर उसे आशीः परम्पराओं से अभिनन्दन करते हुए, चुम्बन आदि से प्रेम करते हुए, अति मोह से लालन-पालन करता था।

चं. गुरुवुलु वारि बिट्टुट्रिकि कोम्मुल जिम्मुचु नंत नंत द-
ग्गरुचुनु गालु द्रव्वुचु नखंबुल गोरुचु गासि सेयुचु-
न्नोरुगुचु धारुणीश्वरुनि यूरुवुलन् शयनिंचि यंतलो
नद्रकड मेवकुचु वोदलि याडुचु ना हरिणंबु लीलतोन् ॥ 106 ॥

ते. गरिम नी रीति नेल्लेड गेरलु वोंडिचि
चेलगि याडंग भरतुंडु चित्तमंदु
सतसिल्लुचुनुंडे नाश्रमपु वासि
हरिर्णडिभक मंतलो नुरिकि चनियें ॥ 107 ॥

व. भरतुंडंत दन्मृगशावकंबु गानंबडमि मिक्किलि व्याकुलित चित्तुंडगुचु, नष्ट धनुंडु वोले नति दीनुंड करुणतोडं गूडि, तद्विरह विह्वलमतियै दानिन तलंचुचु नतिशोकंबुतो मनंबुन दुःखिचि यिट्लनियें ॥ 108 ॥

ते. हरिणपोतंब ! नीकु वनांतमंदु, क्रूरमृगबाध लेकुंड गोरुचुंड
दलगिपोयितें? यनुचु जित्तंवुनंदु,राजऋषभुंडु भरतुडाराट मोंदि ॥109॥

ते. तल्लि चच्चिन हरिणपोतंबु वच्चि
पुण्यहीनुंडनगु नन्नु बोंदि पासें
नेमि सेयुदु ? नेनिक नेट्लु गंदु ?
जेरि ये रीति गांचि रक्षिचिवाड ? ॥ 110 ॥

---

उस समय १०५ [चं.] छलांग भरकर वेग से दौड़कर सींगों से मारकर जब-तब निकट आते हुए पैर (खुर) मारते हुए, नाखूनों से खुजलाते हुए, सताते हुए, झुकते हुए धारुणीश्वर (राजा = भरत) की जंघाओं पर लेटकर, उतने में कंधे पर चढ़ते हुए [इस प्रकार] वह हिरण लीला से अधिक खेलता रहा। १०६ [ते.] गरिमा से इस प्रकार सर्वत्र प्रसन्नता से [उस हिरण के] अतिशयता से खेलने पर भरत चित्त में संतुष्ट होता रहा। इतने में हरिण-डिभक (-बच्चा) आश्रम छोड़कर दौड़कर चला गया। १०७ [व.] भरत तब उस मृगशावक के न दिखायी पड़ने पर अधिक व्याकुल चित्त वाला होकर, नष्ट धनी के समान अति दीन बन करुणा से युक्त हो, तत्-विरह, विह्वल मति वाला होकर उसी के बारे में सोचते हुए अति शोक से मन में दुःखी होकर यों कहा— १०८ [ते.] हे हरिणपोत ! मैं चाह रहा था कि तुम्हें वनान्त में क्रूर मृगों की बाधा न हो तो [तुम मुझे छोड़कर] दूर चले गये हो न। चित्त में ऐसा सोचते हुए राज ऋषभ-(श्रेष्ठ)भरत ने व्याकुल होकर [यों कहा] १०९ [ते.] माता के मरने पर हरिण आकर पुण्यहीन मुझे पाकर फिर छूट गया। [अब मैं] क्या करूँ? मैं अब [उसे] कैसे देखूँ? किस क्रम से, किस रीति से देखकर रक्षा कर सकूँगा? ११० [कं.] हाय ! इस आश्रम में उत्पन्न तृणचय

कं. कट्टा! यीयाश्रममुन, बुट्टिन तृणचयमु मेसि पोदलिन हरिणं
बिट्टट्टु दिरुगुचुंडग, बट्टि मृगेंद्रुंडु गोट्टि बाधिचें नोको ! ॥ 111 ॥

व. इट्लु भरतुंडु हरिणकुणक क्षेमंबु गोरुचु नॅप्पुडु वच्चि नन्नु संतोष परुचु ? नाना प्रकारंबुलेन तन गतुलचेत नॅप्पुडानन्द मोंदिचु ? ध्यान समाधि नुन्नप्पुडु नन्नुं गोम्मुल गोकुचुनुंडु नट्टि विनोदंबु लॅप्पुडु गनुगोंदु ? देवपूजा द्रव्यंबुलु द्रोविक मूर्को निनं गोपिंचि चूचिनं गुमारुंडु वोलें दूरंबुनकुंजनि निलिचिन मरल ने बिलिचिन वॅनुक निलिचियुंडु निट्टि मॅलुकुव स्वभावंबु गलगुट यॅट्टु ? ली भूदेवि यॅंत तपंबु जेसिनदियो ? ए हरिणपाद स्पर्शंबुलं बवित्रंबैन भूमि स्वर्गापवर्ग कामुलैन मुनुलकु यज्ञार्हंयगु नट्टि हरिणपोतंबु नॅट्लु गनुगोंदु ? अदियुनुंगाक भगवंतुंडगु चंद्रुंडु मृगपति भयंबुन मृतजननियु, स्वाश्रम परिभ्रष्टंबुनैन मृगशावकंबुनु गोनिपोयि पॅंचुचुन्नवाडो ? मुन्नु पुत्रवियोगतापंबुनु जंद्रकिरणंबुलं बापुडु । इपुडु हरिणपोतंबु दन शरीर स्पर्शंजेसि चंद्रकिरणंबुलकन्न नधिकंबगुचु बुत्रबियोग तापंबु निर्वर्तिपंजेसॅं । अनुचुं बॅक्कुभंगुल हरिण निमित्तंबुलैन मनोरथंबुलचेतं बूर्वकर्मवशंबुन योगभ्रष्टुंडगु भरतुंडु भगवदाराधनंबु

---

को चरकर पले हुए हिरण के इधर-उधर घूमते समय, पता नहीं मृगेन्द्र ने पकड़कर सताया हो। १११ [व.] इस प्रकार भरत सोचता रहा कि हरिण-कुणक के क्षेम (कुशलता) को चाहनेवाले मेरे पास आकर वह कब मुझे संतुष्ट करेगा ? नाना प्रकार की अपनी गतियों से कब आनंदित करेगा ? ध्यान समाधीन रहते समय मुझे सींगों से खुजलाने के उन विनोदों को कब देखूँगा ? देवपूजा-द्रव्यों को कुचलकर, सूँघने पर क्रुद्ध हो [मेरे] देखने पर कुमार (पुत्र) के समान दूर जाकर खड़ा हो जाता। फिर मेरे बुलाने पर पीछे आ खड़ा रहता। ऐसे जागरूक स्वभाव [उसे] कैसे प्राप्त हुआ ? पता नही इस भूदेवी ने कितना तप किया होगा ? जिस हरिण के पादस्पर्श से पवित्र बनी भूमि स्वर्ग-अपवर्ग के कामी (इच्छुक) मुनियों के लिए यज्ञार्ह (यज्ञ के योग्य) होती है, ऐसे हरिणपोत को कैसे प्राप्त करूँगा ? यही नहीं, पता नहीं मृगपति के भय से जिसकी माँ मर गयी हो और जो स्वाश्रम परिभ्रष्ट हो, ऐसे मृगशावक को ले जाकर भगवान् चंद्र कहीं पाल तो नहीं रहा है ? पूर्व में पुत्र-वियोग के ताप को चंद्र-किरणों से दूर करता था। अब हरिणपोत अपने शरीर-स्पर्श से चंद्र-किरणों की अपेक्षा अधिकता से पुत्र-वियोग के ताप को दूर करता रहा। [ऐसा] सोचते हुए अनेक प्रकार से हरिण के प्रति मनोरथों के कारण, पूर्व कर्मवश योगभ्रष्ट बना भरत भगवद्-आराधना से विभ्रशित होते हुए, इतर जाति में उत्पन्न हरिणपोत के प्रति मोह बढ़ाता रहा। ऐसा कहकर शुक

वलन विभ्रंशितुंडगुचु, नितरजाति बुट्टिन हरिणपोतंबु मीदि मोहंबगलं-
बगुचुंड नुंडे। अनि पलिकि शुकयोगीन्द्रुंडु मरियु निट्लनियें ॥ 112 ॥

सी. जननाथ ! मुन्नु मोक्षविरोधमनि पायगारानि पुत्रादिकंबु लॅल्ल
वासि तपस्वियै भरतुंडु हरिणशावक पोषणंबुन वालनमुन
नतिलालन प्रीणनानुषंगंबुन मूषकबिल मतिरःयमुनतु
सर्पंबु जॊच्चिन चंदंबुनतु योगविघ्नंबु मिक्किलि विस्तरिल्लॆ

आ. गान नॆंतवानिकैननु गालंबु, गडवरामि नट्लु गाकपोदु
परममुनुलकैन बायदु कर्मंबु, नरुलनंग नॆंत ? नरवरेण्य ! ॥ 113 ॥

व. इट्लु भरतुंडु मृगवियोग तापंबु नॊंदुचुंडुनॆड ना मृगशावकंबु चनुदॆंचिन
संतसिल्लुचुंडे। अंत नॊयकनाडु ॥ 114 ॥

म. भरतुंडल्लन नंत्यकालमु वॆंसं ग्रापिचगा नप्पुडा
हरिणंबुं गडुभक्ति बुत्रुगति नत्यासक्ति वीक्षिप ना
हरिणंबुं दन यात्मलो निलिपि देहंबंतटं बासि ता-
हरिणीगर्भमुनं जनिचि हरिणंबै यॊप्पॆं बूर्वस्मृतिन् ॥ 115 ॥

व. इट्लु भरतुंडु हरिणीगर्भंबुनं बुट्टियु भगवदाराधन सामर्थ्यंबुनंदन
मृगत्वकारणंबु दॆलिसि, मिक्किलि तापंबु नॊंदुचु निट्लनियें ॥ 116 ॥

---

योगीन्द्र ने पुनः ऐसा कहा। ११२ [सी.] हे जननाथ (राजा) ! पूर्व में मोक्ष-विरोधी मानकर, न छोड़े जानेवाले पुत्रादिक समस्त को छोड़कर, तपस्वी बनकर भरत हरिणशावक के पोषण और पालन और अतिलालन-प्रीणन-अनुषंग के कारण मूषक बिल में अति रोष से प्रवेश करनेवाले सर्प के समान [भरत का] योगविघ्न अधिक बढ़ता ही गया। [आ.] इसलिए कितना बड़ा ही क्यों न हो [किसी के लिए] काल अनुल्लंघ्य है। परम मुनियों के लिए भी कर्म का फल दूर नहीं होता। तब हे नरवरेण्य (राजा) ! नरों की बात ही क्या कहें। ११३ [व.] इस प्रकार भरत के मृग-वियोग से तप्त होते समय उस मृगशावक के [लौट] आने पर [वह] संतुष्ट होता रहा। तब एक दिन। ११४ [म.] भरत धीरे-धीरे अन्त्य काल के झट नियराने पर तब उस हरिण को अति भक्ति से पुत्र के समान अति आसक्ति से देखते रहकर, उस हरिण को अपनी आत्मा में धारण कर देह को तब छोड़ दिया। [उस कारण] स्वयं हरिणी-गर्भ से हरिण होकर, जन्म लेकर पूर्वस्मृति से शोभित होता रहा। ११५ [व.] इस प्रकार भरत ने हरिणी-गर्भ से पैदा होकर भी भगवद्-आराधना की सामर्थ्य से अपने मृगत्व के कारण को जानकर, अधिक तप्त होते हुए यों कहा। ११६

उ. राजुलु प्रस्तुतिंप वसुराज समानुडनै तनूजुलन्
राजुलजेसि तापसुलु राजऋषींद्रु डटंचु बल्कगा
देजमुनोंदि या हरिणदेहमु नंदुल प्रीति जेसि ना
योज चेडंग ने जेडिति योगिजनंबुललोन बेलनै ॥ 117 ॥

व. इट्लु श्रीहरि श्रवण मनन संकीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगंबुलंजेसि यशून्य सकलयामंबगु कालंबुगल नाकु हरिण पोतस्मरणंबुनं जेसि योग विघ्नंबु प्राप्तंबय्यें। मोक्षदूरुंडनैति। अनि निगूढ निर्वेदुंडगुचु दल्लिवासि क्रम्मर नुपशमशील मुनिगण सेवितंबै भगवत्क्षेत्रंबैन सालतरु निबिडतम ग्राम समीप पुलस्त्य पुलहाश्रमंबुनकुं गालांजन पर्वतंबु वलनं जनुदेंचि, यंदु मृग देहत्यागावसानंबु गोरुचु संगंबु विडिचि येकाकि यगुचु, शुष्क पर्ण तृण वीरुदाहारुंडै मृगत्व निमित्तंबगु ना नदी तीर्थंबुनंदु दत्तीर्थोदक क्लिन्नंबगुचु नुंडु शरीरंबु विडिचें। अनि शुकयोगींद्रुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुनकु विनुपिंचि वेंडियु निट्लनियें ॥ 118 ॥

## अध्यायमु—९

सी. हरिणदेहमु वासि यंत नांगिरसान्वयुंडु शुद्धुडु पवित्रुंडु घनुडु
शमदम घन तपस्स्वाध्याय निरतुंडु गुणगरिष्ठुडु नीतिकोविदुंडु

---

[उ.] राजाओं की प्रस्तुति करते रहने पर वसुराज समान होकर, तनूजों को राजा बनाकर, तापसियों के [अपने को] राज-ऋषींद्र कहने पर, तेज को प्राप्त कर, उस हरिण देह के प्रति प्रीति के कारण अपने क्रम के बिगड़ जाने पर, मैं योगिजनों में नादान बनकर भ्रष्ट हो गया। ११७ [व.] इस प्रकार श्रीहरि के श्रवण, मनन, संकीर्तन, आराधन, अनुस्मरण, अभियोग के कारण अशून्य सकल याम वाले काल से युक्त (दिन-रात के भेद को न जाननेवाले) मुझे हरिणपोत के स्मरण के कारण योगविघ्न प्राप्त हुआ। मोक्ष से दूर हो गया। इस प्रकार निगूढ निर्वेद वाला होते हुए माँ को छोड़कर फिर से उपशम शील वाले मुनिगण सेवित होकर, भगवत् क्षेत्र बने, साल तरुओं के निबिडतम ग्राम (समूह) समेत पुलस्त्य-पुलहाश्रम को, कालांजन पर्वत होते हुए, आकर, उसमें मृगदेह के त्यागावसान को चाहते हुए, आसक्ति को छोड़कर, एकाकी होते हुए शुष्क पर्ण तृण और वीरुध को आहार बनाकर, मृगत्व का कारण बने उस नदी तीर्थ में, उस तीर्थोदक से क्लिन्न बननेवाले शरीर को छोड़ दिया। ऐसा शुकयोगीन्द्र ने परीक्षित नरेंद्र को सुनाकर और यों कहा— ११८

## अध्याय—९

[सी.] हे पार्थिवेंद्र! हरिण देह को छोड़कर तब आंगीरस-अन्वय (-वंश)

नॅन ब्राह्मणुनकु नात्मजुंडै पुट्टि संगंबु वलननु जकितुडगुचु
गर्म बंधंबुल खंडिपजालु नीश्वरुनि नच्युतु नजु श्रवण मनन-

ते. मुलनु हरि चरणध्यानमुलनु विघ्न
भयमुननु जेसि मनमंदु -वायनीक
निलिपि संस्तुति सेयुचु निलिचियुंडॆ
भरित यशुडैन भरतुंडु पार्थिवेंद्र ! ॥ 119 ॥

व. इट्लांगिरसुंडु प्रथम भार्ययंदु बुत्रनवकंबुनु, गनिष्ठ भार्ययंदु स्त्रीपुरुषुल निद्दरनु गलुग जेसिन नंदु बुरुषुंडु, वरम भागवतुंडु, राजर्षि प्रवरुंडु, नुत्सृष्ट मृगशरीरुंडु, जरम शरीरंबुनं ब्राप्त विप्र शरीरुंडु नगु भरतुंडै श्रीहरि यनुग्रहंबुनं बूर्वजन्म परम्परल संस्मरिंपुचु दन स्वरूपं बुन्मत्त जडांध बधिर रूपंबुन लोकुलकुं जूपुचुंडॆ। अंत ॥ 120 ॥

म. जनकुंडौटनु विप्रुडात्मजुनि वात्सल्यंबुनं बॅंचुचुन्
दनरं जौलमुखाग्र्य कर्ममुल चेतन् संस्कृतुंजेसि पा-
यनि मोहंबुन निच्चलुं गडक शौचाचारमुल् सॅप्पिनन्
घनुडाविप्रसुतुंडसम्मतिनि दत्कर्मबुलन् गैकॊनॆन् ॥ 121 ॥

व. इट्लु ब्राह्मणकुमारुंडु गर्मबुलयंदु निच्च लेक युंडियुनु पितृनियोग निर्भंधंबुनं पितृ सन्निधियंदॆ यसमीचीनंबुगा व्याहृति प्रणवशिरस्सहितं

---

वाले शुद्ध, पवित्न, घन, शम-दम [और] घन तपस्स्वाध्यायनिरत, गुणगरिष्ठ, नीति-कोविद ऐसे ब्राह्मण के आत्मज होकर, जन्म लेकर, संग से चकित होते हुए, कर्म-वन्धनों को खण्डित कर सकनेवाले ईश्वर, अच्युत, अज के श्रवण, मनन, को [ते.] हरिचरण-ध्यान को, विघ्न-भय के कारण, मन में न छूटने देकर, भरित यश वाला भरत संस्तुति करता रहा। ११९ [व.] इस प्रकार आंगीरस ने प्रथम भार्या में नौ पुत्रों को, कनिष्ठ भार्या में दो स्त्री-पुरुषों को उत्पन्न किया। उनमें पुरुष परम भागवत, राजर्षि-प्रवर, मृग-शरीर को छोड़नेवाला और अंतिम शरीर के रूप मे प्राप्त विप्र शरीर वाला भरत था। [वह] श्रीहरि के अनुग्रह से पूर्व जन्म की परम्पराओं का संस्मरण करते हुए, लोगों को अपने स्वरूप को उन्मत्त, जड़, अंध, बधिर के रूप में दिखाता रहा। तब १२० [म.] जनक होने के कारण विप्र आत्मज हो वात्सल्य से पालते-पोसते हुए, शोभा से चौल आदि अग्र कर्मों से सुसंस्कृत कर, अत्यंत मोह से नित्य सप्रयत्न शौच आचारों से दीक्षित करने पर महान् उस भागवत ने (जड़ भरत ने) असम्मति से उन कर्मों को ग्रहण किया। १२१ [व.] इस प्रकार ब्राह्मणकुमार (जड़ भरत) कर्मों में इच्छा न रहने पर भी पितृ वियोग के निबंधन से, पिता के समक्ष ही असमीचीन रूप से व्याहृति-प्रणव

बगुलट्लु गायत्री मंत्रोपदेशंबु नौंदि, चैत्रादि चतुर्मासंबुल समवेतुंबुग वेदंबुल नध्ययनंबु सेयुचुंडे। जनकुंडात्मजुनि शिष्टाचारंबु चे शिक्षिप बलयुननु लोकाचारंबु ननुवर्तिचि, यात्मभूतुंडगु नात्मजुनंदु नभिनिवेशित-चित्तुंडगुचु, शौचाचमनाध्ययन व्रतनियम गुर्वनल शुश्रूषणादिकंबुल ननभियुक्तंबुलैनं, बुत्रुनिचे नौनर्रिपुचु नप्राप्तमनोरथुंडय्यें। अंत ॥122॥

कं. ई रीतिनि गौडुकुन काचारंबुपदेशमिच्चि सद्गृहमुन सं-
सारि यगुचुंडि विप्रुडु, बोरन देहंबुबासि पोयिन मीदन् ॥ 123 ॥

आ. तल्लि तंड्रितोड दग नग्नि जौच्चिन
नतनि महिम लॅरुगकंतलोन
सवति तल्लि कौडुकु लविनोतुलगुचुनु
शास्त्र विद्यलतनि जदुवनीक ॥ 124 ॥

व. इट्लु ब्राह्मणकुमारुनि सवतितल्लि कौडुकुलु वेदविद्यल वलनंबापि गृहकर्मंबुल नतनि नियमिंचिन ॥ 125 ॥

कं. धरणीसुरोत्तमुडु दा, नरुदुग दमवार सॅप्पिनवि यॅल्लनु ने-
मर कंदु प्रीति सेयक, निरतमु गृहकर्ममट्लु नॅरपुचु नुंडॅन् ॥ 126 ॥

व. इट्लु गृहकर्म प्रवर्तनुंडगुचु नुंड मूढुलगु द्विपात्पशुवुलचे नुन्मत्त! जड! बधिर! यनि याहूयमानुंडगुनपुडु तदनुरूपंबुलगु संभाषणंबुल नौनर्चुचु,

---

शिरस्सहित रूप से गायत्री मंत्रोपदेश को प्राप्त कर, चैत्रादि चतुर्मासों में समवेत रूप से वेदों का अध्ययन करता रहा। जनक को आत्मज को शिष्टाचारों से शिक्षित करना चाहिए। इस लोकाचार के अनुकूल अपनी आत्मा हो आत्मज के अभिनिवेशित चित्त वाला होता हुआ, शौच-आचमन-अध्ययन-व्रत-नियम, गुरु-अनल-शुश्रूषणादि से अनभियुक्त होने पर भी पुत्र से [उन उन कर्मों को] कराते हुए अप्राप्त-मनोरथ वाला हुआ। तब १२२ [कं.] इस प्रकार से पुत्र को आचारों का उपदेश देकर, सद्गृह में संसारी होते रहकर विप्र के झट देह को छोड़ जाने पर। १२३ [आ.] माता के पिता के साथ उचित रीति से अग्नि में प्रवेश करने पर, उसकी (जड़ भरत की) महिमाओं को न जानकर, उतने में सौतेले पुत्रों ने अविनीत होते हुए उससे शास्त्र विद्याओं को पढ़ने नही दिया। १२४ [व.] इस प्रकार ब्राह्मणकुमार को (जड़ भरत को) सौतेले पुत्रों ने वेद-विद्याओं से दूर रख उसे गृहकार्यों में नियुक्त किया। १२५ [कं.] धरणी-सुरोत्तम (जड़ भरत) अपने लोग जो आदेश दें उन सबको अप्रमत्त होते हुए, उनमें आसक्त न होते हुए निरंतर गृहकर्म के समान करता रहा। १२६ [व.] इस प्रकार गृहकर्म में प्रवर्तित होते रहने पर, मूढ़ द्विपाद पशुओं से 'उन्मत्त! जड़! बधिर!' ऐसा बुलाये जाने पर उसके अनुरूप संभाषण करते

बरेच्छा यदृच्छलंजेसि विष्टि वेतन याज्ञादुल वलन नियुक्त कर्मंबुलं ब्रर्वतिच्चु ॥ 127 ॥

ते. अतुल मृष्टान्नमैन शुष्कान्नमैन
नॆव्विं वॆट्टिटन जिह्वकु हितमुगानॆ
तलचि भक्षिचु गाकोंडु दलचि मिगुल
ब्रीति सेयुडु रुचुलंदु वेंपुतोड ॥ 128 ॥

व. मरियु ना विप्रुंडु नित्यानंद सुखलाभंबु गलिगि, बाह्य सुखदुःखंबुलयंदु देहाभिमानंबु सेयक, शीतोष्णवात वर्षातपंबुलकु नोडि पॆंचौर गप्पक, वृषभंबुनुंबोलॆ बोनुंडु, गठिनांगुंडु नगुचु स्थंडिलशायियै, रजःपटलंबुनं गप्पंबडु दिव्य माणिक्यंबुबोलॆ ननभिव्यक्त ब्रह्मवर्चसुंडै मलिनांबर परीत-कटितटुंडु, नतिमषी लिप्त यज्ञोपवीतुंडु नगुटंजेसि यज्ञ जनंबुलतडु ब्राह्मणा-भासुंडु, मंदुंडु ननि पलुक, संचरिंचुचुंडं गर्मंबुलंबुनं बरुल वलन नाहारंबु गॊनुनपुडु दम वारुनु व्यवसाय कर्मंबुनंदु नियमिंचिन क्षेत्रविहित सम विषम न्यूनाधिकंबुल नॆरुंगक प्रवर्तिपुचु, नूक, तवुडु, तॆलिकपिंडि पॊट्टु, निप्पटि, माडु द्रव्वॆड यादिगा गल द्रव्यंबुल यंदु नमृतंबु पगिदि रुचि चेसि भक्षिपुचुं जेनिकावलि युंडुनॆड नॊक्कनाडु ॥ 129 ॥

हुए, परेच्छा-यदृच्छा से विष्टी-वेतन (मज़दूरी) से यज्ञादियों में नियुक्त कर्म करता रहा (बिना आसक्ति के कर्म करता रहा)। १२७ [ते.] अतुल मिष्टान्न को अथवा शुष्कान्न को जो भी दे, जिह्वा के लिए हित मानकर खा जाता। अन्यथा सोचकर रुचियों के प्रति अधिक आसक्त नहीं होता। १२८ [व.] और वह विप्र नित्यानन्द के सुख-लाभ से बाह्य सुख-दुःखों में देह के प्रति आसक्त न होते हुए, शीत, उष्ण, वात, वर्षा, आतप से भीत होकर उत्तरीय धारण न कर, वृषभ के समान मोटा और कठिनांगवाला होते हुए, स्थंडिलशायी होकर (ज़मीन पर लेटकर), रजःपटल से आच्छादित दिव्य माणिक्य के समान, अनभिव्यक्त ब्रह्मवर्चस वाला होते हुए, मलिनाम्बर से परीत कटितटवाला, अति मशी लिप्त यज्ञोपवीत वाला होने से, अज्ञ जनों (मूर्खों) के उसे ब्राह्मणाभास (ब्राह्मण जैसा लगने-वाला), मन्द (जड़) कहने पर, संचार करते हुए, कर्म के कारण से दूसरों से आहार लेते समय और अपने लोगो के कृषि-कर्म में नियुक्त करने पर, क्षेत्र विदित सम-विषम को और न्यून-अधिक को न जानते हुए, व्यवहार करते हुए, टूटे चावल (कनखियाँ), भूँसा, खली, मिण्टान्न आदि पदार्थों में अमृत के समान रुचि पाते हुए, खाते हुए, खेत की रखवाली करते हुए रहते समय एक दिन १२९

वृषलराज भृत्युलु काळि बलिकि भरतुनि गौंपोवुट

कं. पुरिलोन वृषलपति दानरुदुग
संतानकामुडै वेडुकतो
बुरुष पशुवु गाळिकि वे दब्रमुक
गौनिपोव बशुवु दलगिन भृत्युल् ॥ 130 ॥

आ. अरसि कानलेक या रात्रि वीरास-
नमुन जेनि कापु विमल बुद्धि
नुन्न विप्रयोगि नौय्यन वौडगांचि
पशुवु मंचि दनुचु वट्टिट रतनि ॥ 131 ॥

कं. आरीतिनि भूसुरवरु, रारय ना कालिका गृहमुनकु भृत्युल्
वोरन गौनि चनि सल्पिरि, चारुतराभ्यंजनादि संस्कारंबुल् ॥ 132 ॥

व. इट्लभ्यंजनादि कृत्यंबुलु दीर्चि नूतन वसनंबु गट्ट निच्चि गंध पुष्पाभरणाक्षतालंकृतुनि जेसि, मृष्टान्नंबुलु भुजियिपं बेट्टि, धूप दीप माल्य लाज किसलयांकुर फलोपहारादुलु समर्पिचि, पंचमहावाद्य घोषंबुतोड ना पुरुष पशुवुं गाळिकादेवि सम्मुखंबुन नासीनुं गाविच्चिरि। आ वृषलपति पुरुषपशुवु रक्तंबुनं भद्रकाळि संतोषपट्टं दलंचि, काळिका मंत्राभिमंत्रितंबु नतिकराळंबुनैन खड्गंबदि निजाभीष्ट सिद्धिकि हिंसिपंदलचिन ॥ 133 ॥

---

वृषल राजा के भृत्यों का काली [माँ] को बलि देने के लिए भरत को ले जाना

[कं.] नगर में वृषलपति के विरल रूप से संतान-कामी बनकर उत्साह से पुरुषपशु को काली के लिए ले जाने के लिए आने पर, पशु के पीछे लगे भृत्यों ने, १३० [आ.] ढूँढ़कर न पाकर उस रात को वीरासन से खेत की रखवाली करते हुए विमल बुद्धि से रहनेवाले विप्रयोगी को झट देखकर 'यह पशु अच्छा है' कहते हुए उसे पकड़ लिया। १३१ [कं.] इस प्रकार भूसुरवर को उस कालिकागृह में भृत्य झट ले गये। [वहाँ] चारुतर अभ्यंजन आदि संस्कार किये। १३२ [व.] इस प्रकार अभ्यंजन आदि कृत्य (काम) पूरा करके, पहनने के लिए नूतन वसन देकर, गंध, पुष्प, आभरण, अक्षतों से अलंकृत कर, मिष्टान्न खिलाकर, धूप, दीप, माल्य, लाज, किसलयांकुर, फल आदि उपहार समर्पित कर, पंच महावाद्यों के घोष (ध्वनि) के साथ उस पुरुष-पशु को कालिकादेवी के सम्मुख आसीन किया। उस वृषलपति के पुरुष-पशु के रक्त से भद्र काली को संतुष्ट करने का विचार कर, कालिकामंत्र से अभिमंत्रित और अति कराल खड्ग को लेकर अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए हिंसा करना (वध करना) चाहने पर, १३३ [सी.] सर्वभूतों के सखा और ब्रह्मभूत

सी. सर्वभूतमुलकु सखुडुनु ब्रह्मभूतात्मुडु निर्वैरुडैन ब्रह्म-
सुतुनि तेजंबंत जूड दुस्सहमैन भयमंदि वडकुचु भद्रकाळि
क्रोधंबु मुम्मडि गोनग हुंकारंबु सलुपुचु नट्टहासंबु जेसि
पापात्मुलुनु दौष्ट्य परुलुनु राजस तामस कर्मसंधानु लगुचु

ते. विप्रवरु नट्लु हिंसिचु वृषलपतिनि
भृत्यवर्गंबुतो दलल् पृथ्वि गूल्चि
यपुडु वृषलाधिपुनि शिर मंदि लोल
वाडि याडुचु नंदंद क्रीड सलिपॆ ॥ 134 ॥

कं. धरलोन नॆव्वरेनियु, धरणीसुरवरुल कॆग्गु दग दलचिन वा-
ररयग जॆडुदुरु निक्कमु, हरि धरणीसुरवरेण्युलंदुंडुटचेतन् ॥ 135 ॥

व. मरियु ॥ 136 ॥

उ. अच्चट विप्रसूनुडु भयं बॊकॊयिचुक लेक चंपगा
वच्चिन वारियंदु गरवालमु नंदुनु गाळियंदु दा-
नच्युतभाव मुंचि हृदयंबुन बद्मदळाक्षु नॆंतयुन्
मच्चिकतोड निलिप यवमानमु नॊंदक युंडॆ नत्तरिन् ॥ 137 ॥

व. मरियु ना विप्रवरुंडु चंडिकागृहंबु वॆलुवडि क्रम्मरं जनि कावलि युंडुनॆड ॥ 138 ॥

---

आत्मावाले [तथा] निर्वैर [भाव] वाले ब्रह्मसुत [ब्राह्मण] के तेज के तब देखने में दुस्सह होने पर, डरकर, काँपते हुए भद्रकाली ने क्रोध के तिगुना होने पर हुंकार करते हुए अट्टहास कर पापात्मा और दौष्ट्य परों के राजस, तामस-कर्मानुसंधायी होते हुए [ते.] विप्रवर को उस प्रकार हिंसित करनेवाले वृषलपति के, भृत्य वर्गों के साथ, सिर पृथ्वी पर गिरा दिये। तब वृपलाधिप के सिर को [हाथ में] लेकर लीला से गाकर खेलकर सर्वत्र क्रीड़ा की। १३४ [क.] धरा में कोई भी धरणीसुरवरों के प्रति हानि पहुँचाना चाहें तो सोचने पर हरि के धरणीसुरवरेण्यों में उपस्थित रहने के कारण, वे (ब्राह्मणों के प्रति हानि करनेवाले) नष्ट हो जायेंगे। यह सत्य है। १३५ [व.] और, १३६ [उ.] वहाँ (तब) विप्रसून तनिक भी न डरकर मारने के लिए आनेवालों में, करवाल में और काली में स्वयं अच्युत-भाव को (यह सोचकर कि उन सबमें विष्णु स्थित है), हृदय में अत्यंत प्रेम से पद्मदलाक्ष को रखकर, उस अवसर पर अपमानित हुए बिना रहा। १३७ [व.] और वह विप्रवर चंडिकागृह से निकलकर पुनः जाकर [खेतों की] रखवाली करता रहा। तब १३८

## अध्यायमु—१०

सी. अंतट गॊन्नि हायनमुलु सन्न सिंधु भूपालनमु सेयु भूवरुंडु
धीरत निक्षुमती तीरमुन नुन्न कपिलमहामुनि गांचि तत्त्व
विज्ञान मॆरिगॆडु वेड्कतोडुत शिबिकारोहणमु जेसि यरुगुचुंड
नालोन ना शिबिकारोहकुलु चेनिकापुन्न विप्रुनि गांचि तॆच्चि

ते. शिबिक मोपित मीतनिचेत ननुचु, बट्टि मूपुन बल्लकि बॆट्टि मोवु-
मनुचु मोपिचुनंत धरामरुंडु, शिबिक मूपुन निडि यॆंदु जितलेक ।। 139 ।।

कं. तन मनसुकॊलदि नप्पुडु,
मुनुकॊनि यट्लप्रयत्नमुन नडुवग ना-
जनपति निम्नोन्नतमै,
चनुट यॆरिगि शिबिक मोयुजनुलकु ननियॆन् ।। 140 ।।

आ. मीर लिप्पुडिचट जेरि मिक्किलि प्रय-
त्नंबुतोड दगिलि नडुचचुंड
विषममगुचु गमनवेगंबुननु बाध
पॆट्टुचुन्न दनिन बॆस्तलनिरि ।। 141 ।।

व. देवा ! यी विषमगमनंबु मावलन नैनदि गादु । ई तुरीय वाहकुंडु सुख-

## अध्याय—१०

[सी.] तब कुछ हायनों (वर्षों) के बीत जाने पर सिंधु देश पर भूपालन (शासन) करनेवाला भूवर धीरता से, इक्षुमती तीर पर स्थित कपिल महामुनि को देखकर (दर्शन कर), तत्त्वविज्ञान को जानने के उत्साह से शिबिका-आरोहण कर (पालकी में बैठकर) जा रहा था। इतने में शिबिका के आरोहक (पालकी ढोनेवालों) ने खेत की रखवाली करनेवाले विप्र को देखकर [उसे पकड़] लाकर कहा कि [ते.] इससे शिबिका ढोवायेंगे। [ऐसा कहकर] पकड़कर कंधे पर पालकी रख ढोओ कहकर ढोवाने पर धरामर (ब्राह्मण) किसी भी चिन्ता के न होने पर शिबिका को कंधे पर रखकर। १३९ [कं.] तब सप्रयत्न अपने मन की इच्छा से अप्रयत्न ही चलने पर जनपति ने जाना कि [पालकी] ऊँचा-नीचा होकर जा रही है तो [उन्होंने] शिबिका ढोनेवाले जनों से कहा— १४० [आ.] अब तुम लोग यहाँ जुटकर अधिक प्रयत्न से चलने पर [गति] विषम होते हुए गमन-वेग में बाधित कर रही है। तब मछवारों ने कहा— १४१ [व.] हे देव ! यह विषम-गमन हमारे कारण नहीं है। यह तुर्य (अंतिम) वाहक सुख गमन से नहीं चल सकता। इसके साथ

गमनंबुगा नडुव नेरंडु। वीनितोड मेमुनु नडुवनेरमु। अनिन रहूगणुंडुनु ना राजुपासित वृद्धजनुंडैननु बलात्कारंबुनं बुट्टिन कोपंबुनं गोपिंचि, विमर्श दप्पि, नीरु गप्पिन निप्पुनुंबोले नेरुंगरानि ब्रह्मतेजंबुगल ब्राह्मणुनिकि गंटकंबुगा निष्ठुर वाक्यंबुल निट्लनियें ॥ 142 ॥

चं. अलसिति वेंतयुन् मुसलि वाकट डस्सिति मेनु मिक्किलि
बलुचनयुन्नदी शिबिक भारमु दूरमु मोसिते गतिन्
निलिचेंदु? वंचु भूवरुडु निष्ठुरमुल् विन बलक नायेंडं
बलुकक मोसें ना शिबिक ब्राह्मणवर्युंडु पार्थिवेश्वरा! ॥ 143 ॥

व. अप्पुडा विप्रवरुंडु दनकुं गडपटिदि यगु कळेबरंबुनंदु नहंकार ममकारंबुलं बोरयक मिथ्याज्ञानरहितुंडै ब्रह्मभूतुंडै मौनव्रतंबुन ना शिबिक मोयुचुन्न विषमगमनंबु जूचि यति कुपितुंडगुचु भूवरुंडु वेंडियु निट्लनियें ॥ 144 ॥

सी. ओरि! दुर्मद! विनरोरि! जीवन्मृत! नायाज्ञ दप्पुचु नडचेंदीवु
नी वक्र मार्गंबु लिन्नियु विडिपिंचि नडपितु निन्नु सन्मार्गमंबु
ननि राजगर्वांधुडगुचु गुणत्रयंबुन वृद्धि बोंदिन भूवरुंड
बद्ध प्रलापमुल् पलकुचुंडिन जूचि शमदमादुलचे प्रशस्तुडगुचु

ते. जगति ब्रह्मस्वरूपमै सकलभूत-
मुलकु नत्यंत हितुडैन भूसुरुंडु

---

हम भी चल नहीं सकते। [ऐसा] कहने पर रहूगण नामक वह राजा उपासित वृद्धजन (वृद्धजनों की पूजा करनेवाला) होने पर भी, बलात्कार से उत्पन्न कोप से क्रोधित होकर, विमर्श (आलोचना) से भटककर, राख से आच्छरित अग्नि के समान न जाने जा सकनेवाले ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण को काँटे-सा लगे, इस प्रकार निष्ठुर वाक्य बोला। १४२ [चं.] [तुम] बहुत थक गए हो, बूढ़े हो, भूख से शिथिल हो गये हो, शरीर बहुत दुबला है। इस शिबिका के भार को इतनी दूर कैसे ढो सके हो। ऐसा भूवर के निष्ठुर [वाक्य] सुनाने पर, उस अवसर पर हे पार्थिवेश्वर! ब्राह्मणवर्य कुछ बोले बिना शिबिका को ढोता रहा। १४३ [व.] तब वह विप्रवर अपने लिए अंतिम होनेवाले कलेवर (शरीर) में अहंकार और ममकार के न होने पर, मिथ्या ज्ञान से रहित होकर, ब्रह्मभूत बनकर मौनव्रत से उस शिबिका को ढोता रहा। [शिबिका के] विषम गमन को देखकर अति कुपित होते हुए भूवर ने फिर यों कहा— १४४ [सी.] अरे! दुर्मद वाले! सुन रे! हे जीवन्मृत! मेरी आज्ञा को भंग करके चलते हो। तुम्हारे इन सब वक्र मार्गों को छुड़ाकर तुम्हें सन्मार्ग पर चलाऊँगा। ऐसा राजगर्व से अंधा होते हुए, गुणत्रय से वृद्धि पानेवाले भूवर के प्रति अनृत वचनों के कहने पर, देखकर, शम-दमादियों से प्रशस्त (श्रेष्ठ) होते हुए,

योगिवर्तन दॅलियकयुन्न राजु
नंत वीक्षिंचि मऱियु निट्लनुचु बलिकॅ ॥ 145 ॥

व. नरेंद्रा ! नीवु चॅप्पुनदि सत्यंबु । भारंबी शरीरंबुनके कानि नाकुं गलुग नेरदु । ऐननु स्थौल्य कार्श्यंबुलु व्याधुलु नाधुलु क्षुत्तृष्णलु निच्छा विरोध भयंबुलु जरामरणंबुलु रोष निद्रा जागरणंबु लहंकार ममकार मद-शोषणादुलु देहंबुतोडन जनियिंचुं गानि नाकुं गलुग नेरवु । जीवन्मृतुंड । नेनका दाद्यंतंबुलु गलुगुटंजेसि यंदऱियंदुनु गलिगियुंडु स्वामिभृत्य संबंधंबुलु विधिकृत्यंबु लगुचु, व्यवहारंबुलंजेसि शरीरंबुलकुं गलुगुंगानि जीवुलकु लेकयुंडु । अदियुनुंगाक राजाभिमानंबुन नीवु नन्नाज्ञापिचॅद-वेनियुं, प्रमत्तुंडवैन नीकुं बूर्वस्वभावंबॅट्लुंडॅ, नट्लु गाक येनेमि सेयुदु ? नॅऱिंगिवुमु । उन्मत्त मूकांध जडुल बोलॅ सहज स्वभावंबुनुं बॊंदिन नायंदु नीशिक्ष येमिलाभंबु बॊंदिप नेर्चु ? अदियुनुंगाक स्तब्धुंडु मत्तुंडुनैन नाकु नी शिक्ष व्यर्थंबगु । अनि पलिकि, युपशमशीलुंडै मुनिवरुंडै पूर्व कर्म शेषंबुनंगलुगु भारवाहकत्वंबुनु दलंगंदोलुटकु भारंबु वहिंचि, शिबिक मोचुचुं जनुनॅड, ना राजवल्लभुंडु तत्त्वज्ञानापेक्षितुंडै चनियॅडिवाडगुटं दन हृदय ग्रंथि विमोचकंबुलु, बहु योग ग्रंथ सम्मतंबुलु नगु ब्राह्मण

[ते.] जगत में ब्रह्मस्वरूप होकर, सकल भूतों के लिए अत्यंत हितू होनेवाले भूसुर ने योगि [जन] प्रवर्तन (आचरण) को न जाननेवाले राजा को देखकर फिर यों बोला । १४५ [व.] हे नरेंद्र ! तुम्हारा कहा सत्य है । भार तो इस शरीर के लिए है, मेरे लिए नही है । फिर भी स्थौल्य (मुटापा), कार्श्य (दुबलापन), व्याधि-आधि, क्षुत्-तृष्णा, इच्छा-विरोध-भय, जरा-मरण, रोष-निद्रा-जागरण, अहंकार-ममकार, मद-शोषण आदि देह के साथ जन्म लेते हैं, किन्तु मुझे नही होते । मैं जीवनमृत हूँ । [यह सब मैं नही हूँ] मैं आदि-अंत से युक्त होने पर सबमें होता हूँ । स्वामी और भृत्य के सम्बन्धों के विधिकृत्य होकर व्यवहार के कारण से शरीरों को होता है । किन्तु जीवों को नही । यही नही, राजाभिमान से तुम मुझे आज्ञापित करते हो तो प्रमत्त होनेवाले तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा है । ऐसा होने पर मैं क्या करूँ ? बताओ । उन्मत्त, मूक, अंध, जड के समान सहज स्वभाव को प्राप्त करनेवाले मेरे प्रति तुम्हारी शिक्षा (दण्ड) कौन-सा लाभ प्राप्त करा सकेगी । यही नहीं स्तब्ध और मत्त होनेवाले मेरे प्रति तुम्हारी शिक्षा (सज़ा) व्यर्थ ही जायेगी । ऐसा कहकर उप-शम-शील वाले मुनिवर पूर्वकर्म के [अव] शेष से प्राप्त भारवाहकत्व को दूर करना भार मानकर, शिबिका ढोते हुए जा रहा था । तब उस राजवल्लभ के तत्त्वज्ञान की अपेक्षा से जाते रहने के कारण, अपनी हृदय ग्रंथी के

वाक्यंबुलु विनि, या शिबिक दिग्गन डिग्गनुरि्रकि, या विप्रुनिकि साष्टांग दंड प्रणामंबु लाचरिंचि, गर्तवर्जितुंडै मुकुळित हस्तुंडगुचु निट्लनियॆं ॥ 146 ॥

सी. धरणीसुरुललोन दलप नॆव्वड वीवु नवधूतवेषिवै यवनियंदु
नेमिटिकं चरियिपग वच्चितिच्चटिकि नॊक्कड वॊंटि सनुट नेडु
ननु गृतार्थुनि जेय ननुकूलुडगुचुन्न यट्टि या कपिल महामुनींद्रु
डवॊ ? नी महत्त्वंबु दविलि विचारिंप नॆरुगक चेसिति गरुण जूडु

ते. तप्पु सैरिपु ने यमदंडमुनकु
हरुनि शूलंबुनकुनु वज्रायुधमुन
कनल चंद्रार्क धनद शस्त्रास्त्रमुलकु
वॆरव विप्रुनके मदि वॆरचिनट्लु ॥ 147 ॥

व. मरियु निस्संगुडव जडुंडवुंबोलॆ निगूढ विज्ञानंबु गलिगि चरियिपुचु-न्नवाडवु । नी वचनंबुलु योगशास्त्र समानंबुलै वाङ्मनंबुलकु नभेद्यंबुलै युन्नवि । एनु विष्णुकळावतीर्णुंडु, साक्षाद्धरियु नगु कपिल महा-मुनिवलन ब्रह्मविद्य तॆलियंगोरि चनुचुन्नवाड । नीवु लोकनिरीक्षणार्थं बव्यक्त लिंगुंडवै चरियिपुचुन्न कपिल महामुनींद्रुंडवु गाबोलुदुवु । मंदुंडैन गृहस्थुंडु योगीश्वर चरित्रंबुलॆट्टुलॆरुंगनेर्चु ? कर्मवशंबुन बृष्टंबै

---

विमोचक, वह योगग्रंथों के सम्मत ब्राह्मण वाक्यों को सुनकर, उस शिबिका से झट नीचे उतरकर उस विप्र को साष्टांग दण्ड प्रणाम कर, गर्व छोड़कर मुकुलित हस्त होकर (हाथ जोड़कर) यों बोला— १४६ [सी.] सोचने पर धरणीसुरो में तुम कौन हो ? अवधूत का वेष धारण कर अवनि पर क्यों विचरने आये हो ? यहाँ तुम अकेले आये हो। आज मुझे कृतार्थ करने के लिए अनुकूल बननेवाले वह कपिल मुनींद्र हो क्या ? चाहकर तुम्हारे महत्त्व को न सोचकर [अपराध] किया है। [मुझे] करुणा से देखो। [ते.] अपराध को क्षमा कर दो। मैं यमदण्ड, हर के शूल, वज्रायुध, अनल-चंद्र-अर्क-धनद के शस्त्रास्त्रों के कारण मन में इतना भय नही खाता जितना विप्र से। १४७ [व.] और निस्संग होकर जड़ के समान निगूढ़ विज्ञान से युक्त होकर विचरण कर रहे हो। तुम्हारे वचन योगशास्त्र-समान होकर वाक्-मन के लिए अभेद्य बनकर रहे। मैं विष्णु-कला-अवतीर्ण, साक्षात् हरि होनेवाले कपिल महामुनि से ब्रह्मविद्या के बारे में जानने के लिए जा रहा हूँ। तुम संभवत: लोक निरीक्षण के लिए अव्यक्त लिंग वाले होकर विचरण करनेवाले कपिल महामुनींद्र हो। मंद [बुद्धि वाला] गृहस्थ योगीश्वर के चरित्र को कैसे जान सकेगा ?

श्रांति वहिंचुचु नडचुचुन्न यी याश्रमंबु नाकुनुंबोलॅ मीकु नगु ननि तोचु चुन्नदि। आदि यॆट्लननिन, घटंबु लेक जलंबुलु दे नेरनि तॆरंगुन, लेनिदि गलुगनेरदु। गावुन ब्रमाणमूलंबैन लोक व्यवहारंबु सत्पथंबुन सम्मतंबै युंडुटंजेसि मीरलाडु वाक्यंबुलु नाकु सम्मतंबु गानेरवु। अनि, सिंधु देशाधीश्वरुंडु विनुपिंचिन, ना विप्रुंडु लोकव्यवहारंबुनकु नित्यत्वंबौ-पाधिकं बगुंगानि नित्यंबु गानेरदु। अनि दृष्टांत निदर्शनंबुन निट्लनियॆ॥ 148॥

सी. पावक शिखलचे भांडंबु दा दप्तमगु दप्तघटमुचे नन्दुनुन्न
जलमु तपिंचु ना जलमुचे दंडुलंबुलु तप्तमौदि यप्पुडु विशिष्ट-
मैन यन्नंबगु ना चंदमुननु दा देहेंद्रियंबुल दॆलिवितोड
नाश्रयिंचुक युन्नयट्टि जीवुनकु देहंबुन ब्राणेंद्रियादिकमुन

आ. जरुगुचुंडु निट्लु संसार घट शिक्ष, रक्षकुंडुनैन राजु दुष्ट-
कर्ममुलकु बासि कंजाक्षपद सेव, जेसॆ नेनि भवमु जॆंदकुंडु॥ 149॥

आ. अनुचु धारुणीसुरात्मजुडीरोति, बल्कुटयुनु राजु परिणमिंच
विनय वाक्यमुलनु विनुतिंचि क्रम्मरः, बुण्युडैन सिंधु भूवरुंडु॥ 150॥

व. महात्मा! येनु राज ननियॆडि यभिमान मदांधुंडनै महात्मुलं दिरस्करिंचिन

कर्मवश से दृष्ट होकर श्रांति-धारण कर चलनेवाले यह आश्रम मेरे समान आपके लिए भी है। ऐसा लग रहा है। वह कैसे ? तो घट के अभाव में जल को न ला सकने की तरह, जो नहीं है वह उपस्थित नहीं हो सकता। अतः प्रमाण मूलक लोकव्यवहार, सत्पथ के लिए सम्मत बने रहने से आपके वाक्य मेरे लिए सम्मत नहीं हो सकते। ऐसा सिंधु देशाधीश्वर के सुनाने (कहने) पर उस विप्र ने [कहा] लोक-व्यवहार के लिए नित्यत्व औपाधिक (साधन मात्र) हो सकता है। लेकिन नित्य (शाश्वत) नही हो सकता। ऐसा [कहकर] दृष्टांत-निदर्शन से यों कहा। ४८१ [सी.] पावक शिखाओं से भाण्ड (बर्तन) स्वय तप्त होता है। तप्त घट के कारण उसमें स्थित जल तप्त होता है। उस जल से तंडुल (चावल) तप्त होकर तब विशिष्ट अन्न (भात) [तैयार] होता है। इसी प्रकार स्वयं देहेन्द्रियों के ज्ञान से युक्त होकर आश्रय लेकर रहनेवाले जीव को देह में प्राणेंद्रिय आदि का [आभास]होता रहता है। [आ.] इस प्रकार संसार-घट के शिक्षक और रक्षक राजा के दुष्ट कर्मो को छोड़कर कंजाक्ष (विष्णु) के पदों की सेवा करने पर [वह] भव को प्राप्त नही करेगा। १४९ [आ.] इस प्रकार धारुणी सुरात्मज के कहने पर राजा के मन में परिवर्तन आया। विनय वाक्यों से स्तुति कर पुनः पुण्यात्मा सिंधु-भूवर ने [कहा] १५० [व.] हे महात्मा ! मैं राजा हूँ। ऐसे अभिमान से

नन्नुं गर्शणिपुमु। नी वार्तबंधुंडवु। नी कृपा दृष्टि जेसि महात्मुल नवमानंबुचेसिन दुरितंबु वलन विमुक्तुंड नय्येद। विश्व सुहृत्तवैन नीकुं गोपंबु गलुग नेरदु। असमर्थुलैन मावोटिवारलु महाजनावमानंबुन शीघ्रंबॆ नशितुरु। कान नीवु दयाळुंडवं नन्नु मन्निंपुमु। अनिन ना विप्रुंडिट्लनियं ॥ 151 ॥

## अध्यायमु—११

कं. कडुवेड्क नी ववि़द्वां, सुडवै युंडियुनु मिगुल जोद्यमु विद्वां-
सुडु पोलॆनु वलिकॆद वि, प्पुडु मेलनवच्चु गीत पुरुषुललोनन् ॥ 152 ॥

आ. परग वॆद्दली प्रपंचमंतयु दथ्य, मनरु नीवु तथ्यमनुचु बलिकि
तट्लुगान निन्नु नधिकुंडवनि पलक, रादु नाकु जूड राजचंद्र ! ॥ 153 ॥

सी. यज्ञादिकमुलंदु नाम्नायमुलयंदु दऱचुगा दत्त्ववादंबु लेदु
स्वप्नंबुनंदुल सौख्यमाकारंबु नंदुल नित्यमै यंत लेनि
यट्टि चन्दमुन वेदान्त वाक्यंबुलु तत्त्वंबु नॆऱिंगिंचि तलगु गानि
नित्यंबुलै युंड नेरवु पुरुषुनि चित्तंबु गुणमुल जॆंदि यॆंत

---

मदांध होकर महात्माओं का तिरस्कार करनेवाले मुझ पर करुणा दिखाओ। तुम आर्त बन्धु हो। तुम्हारी कृपादृष्टि के कारण महात्माओं के अपमान से प्राप्त दुरित (पाप) से विमुक्त हो जाऊँगा। विश्व के सुहृत बने तुम्हें कोप नही हो सकता। हम जैसे असमर्थ लोग महाजनों के प्रति अपमान करने के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाते है। अतः तुम दयालु बनकर मुझे क्षमा कर दो। ऐसा कहने पर उस विप्र ने यों कहा १५१

## अध्याय—११

[कं.] अति उत्साह से तुम अविद्वान् होकर भी आश्चर्य है कि विद्वान् के समान बोलते हो। अब तुम्हें पुरुषों में थोड़ा श्रेष्ठ मान सकते हैं। १५२ [आ.] सोचने पर बड़े लोग (विद्वान्) इस समस्त प्रपंच (संसार) को तथ्य नही कहते। तुमने तथ्य कहा है। इसलिए हे राजचंद्र ! मुझे तुम्हें अधिक (श्रेष्ठ) नहीं कहना चाहिए। १५३ [सी.] यज्ञादिकों में, आम्नायों में अक्सर तत्त्ववाद [के लिए स्थान] नहीं है। स्वप्नों में सौख्य के रूपायित होते हुए नित्य होकर न रहने के समान वेदान्त वाक्य तत्त्व को जनाकर हट जाते है। किन्तु नित्य होकर नहीं रह सकते। पुरुष का चित्त गुणों से युक्त होकर [ते.] जितने समय

ते. कालमुंडुनु मरि यंतकालमंदु, नरय विज्ञान कर्मेंद्रियमुलचेत
मरगि धर्मंबु मरि यधर्मंबु नद्लु, दगिलि पुट्टिंचुचुंडु नत्यंत महिम॥154॥

व. मरियु धर्माधर्म वासनायुक्तंबु, विषयानुरक्तंबुनैन चित्तंबु गुण प्रवाहंबुलचेत विकारंबुनोंदि, देवतिर्यङ्मनुष्य रूपंबुलैन देहंबुल धरिंचुचु, गाल प्राप्तंबुलैन सुःख दुःख तदुभय फलंबुल ननुभविंचुचु, ननवरतंबु जीवुनिकि ब्रत्यक्षंबगुचु, स्थूल सूक्ष्मरूपंबुल नुंडु। स्वांतंबु गुणरहितंबैन, मुक्तिकारणंबगु। घृतवर्तुलु गल दीपंबु सधूमशिखलं बुट्टिंचु। घृतवर्तुलु नाशंबु नोंदिन स्वरूपंबु बोंदु। ई तेरंगुन, मनंबु गुण कर्मानुबंधंबैन जन्मादुलं बुट्टिंचु। गुण कर्मंबुलंबासॆ नेनियुं बरतत्त्वंबु नोंदु। ज्ञानेंद्रियंबु लेनुनु विषयंबुल मीद दोचु बुद्धुलेनु नभिमानंबुननु नेकादश वृत्तुलंगूडिन मनंबु जीवुनि नसंख्यंबुलैन जन्मंबुलं बोंदिंचु। मनोवृत्तुल नतिक्रमिंचिन जीवुंडु परंज्योतियैन नारायणस्वरूपंबुगा नेरुंगुमु। स्थावर जंगमंबुलैन जीवुलकुं बवनुंडु प्राणंबैयुन्न चंदंबुन, नीश्वरुंडु सर्वभूतांतर्यामि यगुचु जीवात्म स्वरूपंबुन नुंडु। जीवात्मुंडु ज्ञानोदयंबुनंजेसि माय नेंतकालंबु गेलुवकुंडु, नंतकालंबु मुक्तसंगुंडु गाडु। अरिषड्वर्गंबुनु जयिंचि, परतत्त्वंबु नेरिगिन नीश्वरुंडगु। चित्तंबेंतकालंबु विषयासक्तं

---

तक रहता है, उतने समय तक सोचने पर विज्ञान कर्मेंद्रियों से धर्म और अधर्म को अत्यंत महिमा से उत्पन्न करते रहता है। १५४ [व.] और धर्म-अधर्म वासनायुक्त और विषयानुरक्त चित्त गुणप्रवाहों से विकार को प्राप्त कर देव-तिर्यक् मनुष्य रूपी देहों को धारण कर, काल प्राप्त सुख-दुख और तत् उभय फलों का अनुभव करते हुए, अनवरत जीव को प्रत्यक्ष होते हुए, स्थूल, सूक्ष्म रूप से रहता है। स्वांत (अंतःकरण) गुण-रहित हो तो वह मुक्ति का कारण होता है। घृतवर्तियों से युक्त दीप सधूम शिखाओं को उत्पन्न करता है। घृतवर्तियों के नष्ट होने पर स्वरूप को प्राप्त होता है। इस प्रकार मन गुण कर्मानुबंध वाले जन्मादियों को उत्पन्न करता है। यदि गुण कर्मों से छूट जाय तो परतत्त्व को प्राप्त होता है। ज्ञानेंद्रिय पाँच और विषयों पर आसक्त होनेवाली ज्ञानेंद्रिय पाँच, अभिमान एक इन एकादश वृत्तियों से युक्त मन जीव को असंख्य जन्म प्रदान करता है। मनोवृत्तियों का अतिक्रमण करनेवाले जीव को परमज्योति नारायणस्वरूप ही जान लो। जैसे स्थावर-जंगम जीवों के लिए पवन प्राण बनकर है, उसी प्रकार ईश्वर सर्वभूतांतर्यामी होते हुए जीवात्मस्वरूप में रहता है। जब तक जीवात्मा ज्ञानोदय के कारण माया को जीत नहीं सकता तब तक वह मुक्त संग नहीं बन सकता। अरिषड्वर्गों को जीतकर परतत्त्व को जाने तो वह ईश्वर हो जाता है। चित्त जब तक विषयासक्त बनकर रहता है तब तक [जीव] संसार-चक्र

वगु, नंत दडवु संसार चक्रंबुनंदु संचरिंचु। गावुन महा वीरुंडैननु वनकु शत्रुवैन मनंबु नप्रमत्तुंडै, युपेक्षा वुद्धि जेसि यिच्छा 'विहारंबुन जरगनीक, परम गुरुंडैन श्रीहरि चरणोपासनास्त्रंबुनं जित्तंबु गॅलिचिनं, वरतत्त्वंबु नॉंदु। अनि विप्रुंडु पलिकिन, नतनि महिमकु वॅरगंदि ब्राह्मणुनकु नमस्कारंबु सेयुचु भूवरुंडिट्लनियॆं ॥ 155 ॥

## अध्यायमु—१२

उ. कारण विग्रहंबु नुरुकायमु नी यवधूत वेषमुन्
भूरि धरामरत्वमुनु बूर्व समागम मात्मभावमुं
जारु विहार मत्यतुल शांति गुणंबुनु गूढवर्तनं
वारय गल्गु नीकु ननयंबुनु म्रोक्कॆद वॆंवकु भंगुलन् ॥ 156 ॥

म. ज्वरितातुंडगु रोगि कौशध मतीष्टंबैन चंदंबुन
न्नरयन्नातपतप्त देहि गडु शैत्यंबैन तोयंबुनुं
गरिमं ग्रोलिन रीति नॆंतयु नहंकाराहिदष्टुंडनै
परगुन्नाकुनु नी वचोमृतमु दप्पन् मंदु वेरुन्नदे ? ॥ 157 ॥

आ. विप्रवर्य ! नेनु वेड्कतो ना संश-
यंबु लॆल्ल निन्नु नडिगि तॆलिय

---

में संचरण करते रहता है। अतः महावीर होने पर भी अपने को शत्रु होनेवाले मन के प्रति अप्रमत्त बनकर, उपेक्षावृत्ति से इच्छा विहार न होने देकर, परमगुरु श्रीहरि के चरणोपासना रूपी अस्त्र से चित्त को जीतने पर वह परतत्त्व को प्राप्त करता है। ऐसा विप्र के कहने पर उसकी महिमा के कारण चकित होकर, ब्राह्मण को नमस्कार करके भी भूवर ने इस प्रकार कहा— १५५

## अध्याय—१२

[उ.] कारण विग्रह, उरुकाय यह अवधूत वेश, भूरि धरामरत्व, पूर्व समागम का आत्मभाव (पूर्वजन्म-स्मरण), चारु विहार, अति अतुल शान्तिगुण, गूढ़ वर्तन सोचने पर तुम्हें प्राप्त हुआ है। अतः अनेक प्रकार से तुम्हें सदा प्रणाम करता हूँ। १५६ [म.] ज्वर से आर्त बने हुए रोगी के लिए औषध के बहुत पसंद होने के समान, सोचने पर आतप तप्त देही के लिए अति शीतल तोय (जल) को अधिक प्रीति से पीने के समान अहंकार रूपी अहि से दष्ट बने हुए मेरे लिए तुम्हारे वचन रूपी अमृत के अतिरिक्त और कोई दवा है क्या ? (नही है) १५७ [आ.] हे विप्रवर्य ! मैं उत्साह से अपने सब संशय तुमसे पूछकर जानना चाहता हूँ। उचित

वलचि युन्नवाड दप्पक येंड्रिगिपु
मुचित वृत्ति दत्त्वयोग मेल्ल ॥ 158 ॥

व. अनि यडिगिन या राजुनका विप्रुंडिट्लनियें ॥ 159 ॥

ते. कान वच्चिन फलमुलु कर्ममूल-
मु लगुटनुजेसि संसारमुलनु जित्त
मंपुडु वतिचुचुंडगा नेंरुगलेवु
तत्त्वयोगंबु मिगुल नित्यंबटंचु ॥ 160 ॥

व. मरियु, नी वसुंधर नुन्न चरणंबुलकु नेक्कुडु जंघलु ना मीद जानुवु ला पोंडवुन नूरुवुलंदुकु नुपरिप्रदेशंबुन मध्यं बटमीद नुरमंदुकु नेक्कुव कंठं बटमीद स्कंधंबंदुल दारु वा दारुवुन शिबिकयंदु राज ननियेंडि यभि-मानंबु गलिगि नीवुन्नवाडवु। इट्टि चोद्यंबैन कष्टदशं बोंदि, जनुल दयलेक निग्रहिंचि, नीवु प्रजापालनंबु सेयु चुन्नवाडननु गवंबुन मावंटि महात्मुल सभलोनं बूज्युंडु गाक युन्नवाडवु। ई स्थावर जंगमंबुलकु निवासस्थानंबु वसुंधरयेंन चंदंबुन, सत्क्रियलचेत नेंरुगंदगिन जगत्कारणं-बैन तत्त्वंबु नेंड्रिगिंचेद। परमाणु समुदयंबी धरित्रियेंन चंदंबुन, नविद्या मनंबुलचेतं गल्पितंबैन कृशस्थूल बृहदणु सदसज्जीवाजीव द्रव्य स्वभावाशय काल नाम बुद्धि रूपंबैन माय चेत जगत्तु रेंडवदियै कल्पित

---

वृत्ति से समस्त तत्त्वयोग को मुझे अवश्य बताओ। १५८ [व.] ऐसा पूछने पर उस राजा से उस विप्र ने यों कहा १५९ [ते.] दिखाई पड़नेवाले फलों के कर्ममूल होने से सांसारिक विषयों के, सदा मन में विचरण करते रहने से, तत्त्वयोग अधिक नित्य है, ऐसा नहीं जान सकते हो। १६० [व.] और इस वसुन्धरा पर चरणों की अपेक्षा पिंडलियाँ अधिक [महत्त्वपूर्ण] होती हैं। उसके बाद जानु और उसी तरह ऊरु, उस पर उपरि प्रदेश में मध्य (कमर), उस पर उर, उससे अधिक कंठ उस पर स्कंध (कंधा) और उस पर दारु (काठ) उस दारु की बनी शिबिका में राजा कहलाने के अभिमान से युक्त तुम हो। इस प्रकार की आश्चर्यजनक कष्ट दशा को प्राप्त कर, निर्दयता से जनों का निग्रह कर (दमन कर) तुम प्रजापालन कर रहे हो। इस गर्व से हम जैसे महात्माओं की सभा में पूज्य न बनकर स्थित हो। इस स्थावर-जंगमों के लिए निवासस्थान वसुंधरा की तरह सत्क्रियाओं से जानने योग्य जगत् कारण रूपी तत्त्व के बारे में [तुम्हें] बताऊँगा। परमाणु समुदाय के इस धरित्री केबनने के समान, अविद्या और मन से कल्पित कृश, स्थूल, बृहत्, अणु, सद्, असत्, जीव, अजीव, द्रव्य, स्वभावाशय, काल, नाम, बुद्धि रूपी माया के कारण जगत दूसरा होकर कल्पित हुआ है। बाह्य अभ्यंतरों से युक्त

बडियॆं। वाह्याभ्यंतरंबुल गलिगि स्वप्रकाशंबै, भगवच्छब्द वाच्यंबु, विशुद्धंबु, परमार्थंबु ज्ञानरूपंबुनेन ब्रह्मं बॊकटियॆ सत्यंबु। जगदस-सत्यंबगु। अनि पलिकि मरियु ॥ 161 ॥

सी. धरलोन ब्रह्मंबु तपमुन दानंबुलनु गृहधर्मंबुलनु जलाग्नि
सोमसूर्युल चेत श्रुतुलचेनैननु परम भागवतुल पाद सेव
बॊंदिन माड्किनि बॊंदंग रादनि पलुकुदुरार्युलु परममुनुलु
घन तपो वाह्यसौख्यमुलकु विमुखुलुनै पुण्युलु हरि गुणानुवाद

ते. मोदितात्मुलुनगु बुध पाद सेव ननुदिनंबुनु जेसिन नंत मीव
मोक्षमार्गंबुनकुनु पद्माक्षुनंदु वदट्टुवडि युंडु नॆप्पुडु परग बुद्धि ॥ 162 ॥

व. नरेंद्रा! येनु पूर्वंबुन भरतुंडनु राजनु। सर्व संग परित्यागंबु सेसि भगवदाराधनंबु सेयुचु मृगंबुतोडि स्नेहंबु कतन मृगंबनै पुट्टियु, नंदुनु हरि भक्ति दप्पकुंडयिपुडु मनुष्यंडनै जन संगंबुन शंकितुंडनगुचु मनुष्य संसर्गंबुनु बासि येकाकिनै चरियिंपुचुन्नवाड। नरुडु वृद्ध संसेवंजेसि संसार मोहंबुनु बासि हरिध्यान कथलचे लब्धज्ञानुंड पुंडरीकाक्षुनि बूजिपुचुं परलोकंबुनु बॊंदु। अनि पलिकि विप्रुंडु मरियु निट्लनियॆं ॥ 163 ॥

---

हो स्वप्रकाश मान होकर, भगवतच्छब्द वाच्य (भगवान की संज्ञा से युक्त), विशुद्ध, परमार्थ, ज्ञान-रूप वाला, ब्रह्म, एक ही सत्य है। जगत असत्य है। ऐसा कहकर फिर, १६१ [सी.] आर्य और परम मुनि कहते हैं कि धरा में ब्रह्मतप से, दोनों से, गृहधर्मों से, जल, अग्नि, सोम, सूर्यों से, श्रुतियों से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता [जिस सरलता से] परम भागवतों की चरण-सेवा से प्राप्त किया जा सकता है। घन तप से बाह्य सुखों के प्रति विमुक्त होनेवाले पुण्यात्मा हरिगुण-अनुवाद से [ते.] मुदितात्मा वाले अनुदिन बुध पाद सेवा कर उसके बाद बुद्धि से सदा मोक्षमार्ग से और पद्माक्ष (विष्णु) से बद्ध होकर रहते हैं। १६२ [व.] हे नरेंद्र! मैं पूर्व [जन्म] में भरत नामक राजा था। सर्व संग परित्याग कर भगवद्-आराधना करते हुए मृग के साथ स्नेह के कारण मृग होकर जन्म लेकर भी, उसमें भी (उस जन्म में भी] हरिभक्ति से च्युत न होकर अब मनुष्य बनकर जन संग से शंकित मति वाला होते हुए मनुष्य-संसर्ग को छोड़कर, एकाकी होकर विचरण कर रहा हूँ। नर वृद्धों की संसेवा के कारण संसार मोह को छोड़कर हरि के ध्यान और कथाओं से लब्ध ज्ञान वाला होकर पुंडरीकाक्ष की पूजा करते हुए परलोक को प्राप्त करता है। ऐसा कहकर विप्र ने आगे ऐसा कहा— १६३

## अध्यायमु—१३-१४

सी. धरणीश ! मायचेतनु दाटगारानि पथमुन बट्टंग बड्ड जीवु
डॅलमि नै गुणकर्ममुल जेयुचुनु लाभ मांशिचि तिरिगेडु नर्थमाड्कि
फल मपेक्षिपुचु बायक जीवुंडु संसार गहन संचारि यगुचु
ननवरतमु नुंडु ना महावनमंदु गाम लोभादि तस्करुलु गूडि

ते. धरणि विजितेंद्रियुडु गानि नरुनि बट्टि
धर्म मनियेडि या महाधनमु नॅल्ल
नरसि गोनि पोवु चुंडुडु रनुदिनंबु
गान संसार मंदु नाकांक्ष वलदु ॥ 164 ॥

कं. अरयग संसाराटवि, दरलक यी पुत्र मित्र दारादुलनं
बरगुचु नुंडेडु वृकमुलु, परुवडि नर बस्तमुलनु भक्षिचु वडिन् ॥ 165 ॥

तरल. मलसि संस्मृति घोर कानन मंदिरंबुल नॅल्लचो
जॅलगि गुल्मलता तृणादुलचेत गह्वरमैन नि-
श्चल निकुंजमुलंदु दुर्जन संज्ञलंगल मक्षिकं-
बुल निरोधमु दम्मु सोकिन बॉंदुचुंदुरु दुर्दशन् ॥ 166 ॥

आ. मर्यियु नी गृहस्थ मार्गंबुनंदॅल्ल विषयमुलनु बॉंदि विश्वमॅल्ल
गणकतोड निट्लु गंधर्वनगरंबु गा दलंचि मिगुल मोदमंदु ॥ 167 ॥

---

## अध्याय—१३-१४

[सी.] हे धरणीश ! माया के कारण अनुल्लंघ्य पथ में डाला गया जीव प्रेम से गुण कर्म करते हुए, लाभ की आशा करते हुए घूमनेवाले व्यापारी के समान, फल की अपेक्षा करते हुए जीव संसार-गहन (-वन) का संचारी होते हुए अनवरत रहता है। उस महावन में काम, लोभ आदि तस्कर (चोर) जुटकर [ते.] धरा पर विजितेंद्रिय न होनेवाले नर को पकड़कर धर्म रूपी उस समस्त महाधन को खोजकर अनुदिन [लूटकर] ले जाते रहते हैं। अतः संसार के प्रति आकांक्षा नहीं रखनी चाहिए। १६४ [कं.] सोचने पर संसार रूपी अटवि (जंगल) में निरन्तर पुत्र, मित्र, दारा आदि के रूप में विचरण करनेवाले वृक (भेड़िया) झट नर रूपी छागों (बकरियों) को खाते रहते हैं। १६५ [त.] संसृति (सृष्टि) रूपी घोर कानन मंदिरों में सर्वत्र व्याप्त गुल्म, लता, तृण आदियों से गह्वर बने निश्चल निकुंजों में दुर्जन संज्ञाओं से युक्त मक्षिकाओं के निरोध के स्पर्श के कारण तप्त होकर दुर्दशा को प्राप्त करते हैं। १६६ [आ.] और इस गृहस्थ मार्ग में समस्त विषयों को प्राप्त कर, समस्त विश्व को सप्रयत्न गंधर्व नगर मानकर अधिक मोद को प्राप्त करते

आ. मरगि काननमुन गौरवि दय्यमु गांचि
यग्नि गोरि वॆंट नरुगु माड्कि
गांचनंबु गोरि कलवारि यिड्ल पं-
चलनु दिरुगु नरुडु चलनमंदि ॥ 168 ॥

आ. बहु कुटुंबि यगुचु बहु धनापेक्षल
नॆंडमावुल गनि येगु मृगमु
करणि व्रेम जेसि परुवलु वारुचु
नॊक्क चोट निलुवकुंदु रॆंपुहु ॥ 169 ॥

आ. मरियु नॊक्क चोट मत्तुडै पवनर जोहताक्षुडगुचु जूपु दप्पि
दिक्कॆरुंग कॊंडुदिश केगु पुरुषुनि करणि दिरुगु नरुडु नरवरेण्य ॥170॥

व. मरियु नॊक्क चोट नुलूक झिल्ली स्वनंबुलतोड समानंबुलैन शत्रुराजि तिरस्कारवचनंबुलकु दुःख पडुचु, नॊक्क चोट क्षुधार्थितुंडै यपुण्य वृक्षंबुल नाशिंचु माड्कि पाप कर्मुलु, द्रव्यहीनुलु नगुवारि नाश्रयिंचुचु, नॊक्कयॆडं बिपासापरुंडै जलहीनंबैन नदिकि जनिनरीति निहपरदूरुलैन पापंडुल सेविंपुचु, मरियु नॊक्क प्रदेशंबुनं दग्निचेत दप्तुंडैनवाडु दावाग्निजेरि व्यथ-नॊंदुरीति नन्नार्थि यगुचु दायादुलं जेरि दुःखिंचुचु, मरियु नॊक्कचोट परबाधंजेसि मुन्नु गानक राज्याभिलाषं ब्राणसखुलैन पितृ पुत्र भ्रातृ

---

हैं। १६७ [आ.] चाहकर कानन में अगिया (एक प्रकार का भूत) को देखकर अग्नि की इच्छा कर [उसके] पीछे जानेवाले के समान कांचन की इच्छा कर नर चंचल बनकर सम्पन्न जनों के घरों के आँगन का चक्कर लगाता रहता है। १६८ [आ.] बहु कुटुम्बी होते हुए बहु धनापेक्षा से, मृगतृष्णा को देखकर जानेवाले मृग के समान [सांसारिक विषयों के प्रति] प्रेम के कारण कभी एक स्थान पर स्थिर न रहकर दौड़ लगाते रहते हैं। १६९ [आ.] हे नरवरेण्य ! और एक स्थान पर मत्त होकर पवन रज से हत अक्षि वाला होते हुए, दृष्टि खोकर दिशाज्ञान को भूलकर अन्य दिशाओं में जानेवाले पुरुष के समान नर घूमता रहता है। १७० [व.] और एक स्थान पर उलूक और झिल्ली (झींगुर) के स्वनों के समान शत्रु-राजि (-समूह) के तिरस्कार-वचनों से दुःखी होते हुए, [और] एक स्थान पर क्षुधा से आर्त बनकर अपुण्य वृक्षों (फलित न होनेवाले वृक्षों) का आश्रय लेने के समान पापकर्मा और द्रव्यहीन जनों का आश्रय लेते हुए, [और] एक जगह पिपासापर होकर जलहीन नदी के पास जाने के समान इह-पर से दूर बने पाषण्डों की सेवा करते हुए और एक प्रदेश में अग्नि से तप्त होनेवाले के दावाग्नि के पास जाकर व्यथित होने के समान, अन्नार्थी होते हुए ज्ञाति जनों के पास जाकर दुःखी होते हुए, और एक स्थान पर बाधा (शत्रुओं द्वारा पीड़ा) से पूर्व को न जानकर राज्य की

ज्येष्ठुल नैननु वधियिंपुचु, मरियु शूरुलचेतं गॊट्टुवडि, सर्वधनंबुनु बोनाडि चिंतापरवशुंडै दुःखिंपुचु नुन्नंत, गंधर्वनगर प्रायंबैन संसार सुखंबुलनुभविंचि, मोदिंपुचु, मरियु नगारोहणंबु सेयु नरुंडु कंटक पाषाणादुलवलनं बादपीडितुंडगुचु दुःखिंचु चंदंबुन गृहाश्रमोचित महानुष्ठानंबुनकुनुपक्रमिंचि, व्यसनकंटक शर्करापीडितुंडै दुःखिंपुचु, नोक्कचोटं जठराग्नि पीडितुंडै कुटुंबंबुमीद नाग्रहिंपुचु, वनंबुन नजगर गृहीतुंडै निगीर्णुंडैन चंदंबुन रात्रि गृहाटवि यंदु निद्रापरवशुंडै यॆरुंगक युंडुचु, मरियुनु वनंबुनं दृणच्छन्न कूपपतितुंडगुचु सर्पदष्टुंडैन तॆरंगुन संसारियै दुर्जनुलचेत व्यथित हृदयुंडगुचु, नंधुंडै यज्ञानांधकूपंबुनं बडुचु, नोक्कयॆड जुंटितेनियकुनै मक्षिकाबाध नत्यंत दुःखितुंडैन माड्किनि संसार कामुंडै परदार द्रव्याभिलाषियगुचु, भूपालकुल चेतनैननु, गृहपतिचेतनैननु, दाडितुंडै नरकंबुन बडुचुंडु, यौवनंबुन संपादिंचिन द्रव्यंबुलु परुलचेतं बोनाडिन विधंबुन, शीतवाताद्यनेक प्रयासलब्धंबैन धनंबुलु बोनाडि, संसारि, यति चिंताक्रांतुंडै युंडु। मरियुनु वनंबुन लुब्धकुलु संसृष्टंबैन यल्पामिषंबुनकु

---

अभिलाषा से प्राण-सखा पितृ-पुत्र-भ्रातृ-ज्येष्ठ जनों का भी वध करते हुए और शूलों से आहत होकर सर्व धन को खोकर चिंता परवश होकर दुःखित होते हुए, जब तक रहें तब तक गंधर्व नगर प्रायः संसार सुखों का अनुभव कर मुदित होते हुए और नगारोहण (पर्वत पर चढ़ना) करनेवाले नर के कण्टक-पाषाण आदियों से पाद-पीड़ित होते हुए दुःखी होने के समान, गृहाश्रम के उचित महानुष्ठान के लिए उपक्रम कर, व्यसन-कण्टक रूपी शर्करा से पीड़ित होकर दुःखी होते हुए, एक स्थान पर जठराग्नि (भूख) से पीड़ित होकर कुटुम्ब पर आग्रह (क्रोध) करते हुए, वन में अजगर की लपेट में आकर निगीरण बननेवाले के समान, रात्रि के समय गृह रूपी अटवि में निद्रा परवश होकर [अपने-आपको] जाने बिना रहते हुए, और भी वन में तृणच्छन्न (तृण से आच्छादित) कूप-पतित होते हुए सर्प-दष्ट बननेवाले के समान संसारी बनकर दुर्जनों के कारण व्यथित हृदयवाला होते हुए, अंध बनकर अज्ञान रूपी अंध कूप में गिरते हुए, एक स्थान पर सद्यः मधु की इच्छा के कारण मक्षिका-बाधा (पीड़ा) से अत्यंत दुःखित होने के समानससार कामी बनकर परदारा-द्रव्य का अभिलाषी होते हुए, भूपालकों से अथवा गृहपति के द्वारा ताडित होकर नरक में पड़ (गिर) जाता है। यौवन में संपादित द्रव्यों को दूसरों के हाथ होने के समान, शीत, वात आदि अनेक प्रयासों से लब्ध धनों को खोकर, संसारी अति चिन्ताक्रान्त होकर रहता है। और भी वन में लुब्धक लोगों का संसृष्ट अल्प आमिष के लिए अन्योन्य (परस्पर) वैषम्य से कलह करने के समाव संसृष्ट

नन्योन्य वैषम्यंबुनं गलिहिंचिन विधंबुन, संसृष्ट व्यवहारियै, यल्प द्रव्यंबुलकुं बोराडुचुंडु। अनि भूपालुनकु विप्रुंडु संसाराटवि तॅऱंगॆऱिंगिचि वॅंडियु निट्लनियॆं ॥ 171 ॥

आ. अल्पधनुडु विश्रमास्थानमुल दृप्ति
बोंद कोरुल धनमु बॉंदगोरि
यरिगि वारि वलन नवमानमुल बॉंदि
यधिकमैन दुःख मनुभविंचु ॥ 172 ॥

आ. अंत गोंदरल्ल नन्योन्यवित्तादि
विनिमयमुन गडु बवृद्धमैन
वैरमुलनु बॉंदि पोराट नॉंदुदु
रात्म चिंतलेक यनु दिनंबु ॥ 173 ॥

सी. संसार मार्ग संचारुडै यधिक प्रयासंबुननु गूर्चु नर्थमुलनु
विहरिंपुचुनु गोंदऱिहलोक फलमुल गोरि मोक्षंबुनु गोर कंत
जॅडि पोवुचुंदुरॅप्पुडु गानि यंदुकु गडपटि योगंबु गान लेरु
मानवंतुलु नसमान शौर्युलु नगु वारु मिक्किलियैन वैर बुद्धि

ते. नाहवंबुन मडियुदु रंतेकानि
मोक्षमार्गंबु गानरु मूढवृत्ति
ननुचु संसार गहन विहार मॆल्ल
वॅलिपि क्रम्मर ननियॆ धात्रीसुरुंडु ॥ 174 ॥

---

व्यवहारी होते हुए अल्प द्रव्यों के लिए झगड़ता रहता है। ऐसा [कहकर] भूपाल को विप्र ने संसार रूपी अटवि के विधान को बताकर पुनः इस प्रकार कहा— १७१ [आ.] अल्पधन वाला विश्रम आस्थान में तृप्त न होकर, अन्यों के धन को प्राप्त करना चाहकर, जाकर, उनसे अपमानित होकर अधिक दुःख अनुभव करता है। १७२ [आ.] तब और कुछ लोग अन्योन्य वित्त आदि के विनिमय से अधिक प्रवृद्ध बने वैर को प्राप्त कर, आत्मचिंता-रहित होकर अनुदिन झगड़ते रहते हैं। १७३ [सी.] संसार-मार्ग का संचारी बनकर अधिक प्रयास से जुटाये गये अर्थों में विचरण करते हुए कुछ लोग इहलोक के फलों की इच्छा कर, मोक्ष की इच्छा न कर सदा नष्ट हो जाते रहते हैं। लेकिन अंतिम योग (मोक्ष) को देख नहीं पाते। मानी और असमान शौर्य वाले अधिक वैर वृद्धि से [ते.] आहव (युद्ध) में मर जाते हैं। लेकिन मूढ़ वृत्ति से मोक्षमार्ग को देख नहीं पाते। ऐसा कहकर संसार रूपी गहन के समस्त विहार के बारे में बताकर पुनः धात्रीसुर ने कहा— १७४ [व.] और कालचक्र से

व. मरियुं गालचक्र नियंत्रितुंडै चक्रायुधुनि गोल्वक, काक गृध्र बक समानुलैन पाषंडुलतो सख्यंबुनंजेसि वारलचेत वंचितुंडै, ब्राह्मण कुलंबुनं जेसि श्रौत स्मार्त कर्मानुष्ठानपरुंडै, विषय सुखंबुलंदु दगुलंबडि कालंबु तुद नेरुंगक, वृक्षंबुलुं बोलें नैहिकार्थंबुलयंदु दृष्ण गलिगि, मैथुन निमित्तंबु सुत दारादुलयंदु स्नेहंबु सेयुचु, पथिकुंडु मातंगंबुलयंदु भयंबुन दीर्घ निम्न कूपंबुनं बडिन तॅरंगुन, संसार मृत्यु गज भयंबुन गिरि कंदर प्रायंबैन यज्ञान तमंबुनं बडुं कावुन मायचेत संसार मार्गंबेन राजभावंबु विडिचि, सर्वभूत मैत्रि गलिगि, जितेंद्रियुंडवै ज्ञानासिचे मार्गंबु कडपल गनुमु। अनि पलिकिन भूपालुंडिट्लनियें ॥ 175 ॥

कं. अक्कट! मानुषजन्मं, बॅक्कुवयै युंडु नॅपुड भेदमति बें
पॅक्किन योगि समागम, मक्कजमुग गलिगॅनेनि यखिलात्मलकुन् ॥176॥

कं. धरणीसुरवर! नी श्री, चरणांबुज युगळरेणु संस्पर्शमु ना
दुरितंबु लडचें नितट, हरि भक्तियु मिगुल नाकु नधिकंबय्येन् ॥ 177 ॥

व. मरियु विप्रवरुलयंदु योगीश्वरु लवधूत वेषंबुनं जरियिंपुचुंदुरु। कावुन विप्रुलु पिन्नलु पॅद्दलनक यंदरिकि नमस्कारंबनि स्तुतियिंचिन, ना योगीश्वरुंडुनु सिंधुपतिकि गरुणान्वितुंडगुचु दत्त्वज्ञानंबुपदेशिंचि, या

---

नियंत्रित होकर चक्रायुध की सेवा न कर, काक-गृद्ध-बक समान पाषण्ड जनों के सख्य के कारण उनसे वंचित होते हुए, ब्राह्मण कुल के कारण श्रौत-स्मार्त कर्मानुष्ठान में लगकर, विषय-सुखों में फँसकर काल के अंत को न जानकर वृकों के समान ऐहिक-अर्थों मे तृष्णा से युक्त होकर, मैथुन (संभोग) के लिए सुता-दारा आदियों से स्नेह करते हुए, पथिक के मातंगों (हाथी) के प्रति भय के कारण दीर्घ-निम्न (गहरे) कूप में गिर जाने के समान, संसार-मृत्यु-गज के भय से गिरि-कन्दरा प्राय अज्ञान रूपी तम (अंधकूप) में गिर पड़ते हैं। अतः माया के कारण संसार-मार्ग वेन राज-भाव को छोड़कर, सर्वभूतमैत्री से युक्त होकर जितेंद्रिय होकर, ज्ञान-असि (-तलवार) से मार्ग का अंत कर लो। ऐसा कहने पर भूपाल ने यों कहा— १७५ [कं.] हाय! मनुष्य-जन्म अधिक श्रेष्ठ रहता है। उसमें भी अभेद अतिशय उत्कृष्ट योगि-समागम आश्चर्यजनक रूप से संभव हो जाय तो समस्त जनों के लिए १७६ [कं.] हे धरणी-सुरवर! [ऐसे तुम्हारे समागम से] तुम्हारे श्री चरणाम्बुज युगल के रेणु संस्पर्श ने मेरे दुरितों का दमन किया। अब मुझमें हरिभक्ति भी अधिक होती गयी। १७७ [व.] और विप्रवरों में योगीश्वर अवधूत वेष से विचरण करते रहते हैं। अतः छोटा-बड़ा न मानकर समस्त विप्रों को नमस्कार करना चाहिए। ऐसा कहकर स्तुति करने पर वह योगीश्वर सिंधुपति

राजुचेत वंदितचरणुंडे, पूर्णार्णवंबुनुंबोलें संपूण करुणारसपूरित स्वांतुंडे वसुंधरं जरियिंपुचुंडें। सिंधु भूपतियुनु सुजन समागमंबुन लब्ध तत्त्व-ज्ञानुंडे देहात्म भ्रमंबासें। अनि पलिकि शुक योगींद्रुनकु बरीक्षिन्नरेंद्रुं-डिट्लनियें ॥ 178 ॥

चं. अरयग मक्षिकंबु विनतात्मजु गूडगलेनि रीति नी
भरतुनि सच्चरित्रमुलु प्रस्तुति सेयग नो वसुंधरन्
नरपतुलॆल्ल नोपरु मनंबुन नेननु नॆंचनिक ना
भरतुनि पुण्य वर्तनमु ब्रस्तुतिसेयग नाकु शक्यमे ? ॥ 179 ॥

व. नरेंद्रा ! भरतुंडु सुत दार राज्यादुलनु बूर्वकालंबुनंद विडिचि भगवत्-परुंडगुचु, यज्ञरूपंबुनु, धर्मस्वरूपंबुनु, सांख्ययोगंबुनु, ब्रकृतिपुरुष स्वरूपंबुनैन नारायणुनकु नमस्कारं बनुचु मृगरूपंबुनु बासें। अट्टि भरतुनि चरित्रं बॆव्वरु सॆप्पिन, नॆव्वरु विनिन, नट्टि वारल बुंडरीकाक्षंडु रक्षिंचु। आयुरभिवृद्धियु, धनधान्य समृद्धियु नगुचुंड, स्वर्गोपभोगं बॊंदुदुरु। अनि ॥ 180 ॥

म. नर देवासुर यक्ष राक्षस मुनीन्द्रस्तुत्य ! दिव्यांबरा-
भरणालंकृत ! भक्तवत्सल ! कृपापारीण ! वैकुंठमं-

---

(सिंधु देश के राजा) के प्रति करुणान्वित होते हुए तत्त्वज्ञान का उपदेश देकर उस राजा से वन्दित चरण वाला बनकर पूर्ण अर्णव (समुद्र) के समान संपूर्ण करुणारसपूरित स्वांतवाला बनकर वसुन्धरा पर विचरण करता था। सिंधुभूपति ने भी सुजन समागम से लब्ध तत्त्वज्ञान वाला होकर देह और आत्मा के भ्रम को दूर कर लिया। ऐसा कहकर शुकयोगीन्द्र ने परीक्षित्-नरेंद्र से यों कहा— १७८ [च.] सोचने पर मक्षिक का विनतात्मज (गरुड़) को प्राप्त न करने के समान इस भरत के सच्चरित्रों की प्रस्तुति करने के लिए इस वसुंधरा के समस्त नरपति समर्थ नहीं हो सकते। मन से उसकी परिगणना भी नही कर सकते। तब मेरे लिए भरत के पुण्य वर्तन की प्रस्तुति करना संभव है क्या ? १७९ [व.] हे नरेंद्र ! भरत ने पूर्वकाल से सुत-दारा-राज्य आदियों को छोड़कर भगवत-पर होते हुए यज्ञ रूप और धर्मस्वरूप और सांख्ययोग और प्रकृति-पुरुष-स्वरूपवाले नारायण को नमस्कार करते हुए मृगरूप को छोड़ दिया। ऐसे भरत के चरित्र (इतिहास) जो कोई भी कहे, जो कोई भी सुने, ऐसे लोगों की रक्षा पुंडरीकाक्ष करता है। [उन्हें] आयु की अभिवृद्धि और धन-धान्य-समृद्धि होते हुए स्वर्ग-उपभोग प्राप्त होते हैं। १८० [म.] हे नर-देव-असुर-यक्ष-राक्षस-मुनींद्रों से स्तुत्य ! हे दिव्याम्बर-आभरण-अलंकृत ! हे भक्तवत्सल ! हे कृपापारीण ! हे वैकुण्ठ मंदिर वाले! हे

विर ! बृन्दावन भासुर ! प्रिय धरित्रीनाथ ! गोविंद ! श्री-
कर ! पुण्याकर ! वासुदेव ! त्रिजगत्कल्याण ! गोपालका ! ॥ 181 ॥

कं. परमपदवास ! दुष्कृत, हर ! करुणाकर ! महात्म ! हतदितिसुत !
सुर गोपिका मनोहर ! सरसिजवळनेत्र ! भक्तजननुतगात्रा ! ॥182॥

मा. सरस हृदयवासा ! चारु लक्ष्मीविलासा !
भरित शुभ चरित्रा ! भास्कराब्जारिनेत्रा !
निरुपम घनगात्रा ! निर्मल ज्ञानपात्रा !
गुरुतर भवदूरा ! गोपिकाचित्त चोरा ! ॥ 183 ॥

ग. इदि सकल सुकवि जनानंदकर बॊप्पनामात्यपुत्र गंगनार्य प्रणीतंबैन श्रीमहाभागवत पुराणंबुनंदु प्रियव्रतुनि सुज्ञान दीक्षयु, ब्रह्मदर्शनंबुनु, आग्नीध्रादुल जन्मंबुनु, उत्तम तामस रैवतुल जन्मंबुनु, प्रियव्रतुंडु वनंबुनकुं जनुटयु, आग्नीध्रुंडप्सरः स्त्रीनि बरिग्रहिंचुटयु, वर्षाधिपतुल जन्मंबुनु, आग्नीध्रुंडु वनंबुनकुं जनुटयु, नाभिप्रमुखुल राज्यंबुनु, नाभि यज्ञंबुनु, ऋषभुनि जन्मंबुनु, ऋषभुनि राज्याभिषेकंबुनु, भरतुनि जन्मंबुनु, ऋषभुंडु तपंबुनकुं जनुचु सुतुलकु नतुल ज्ञानंबुपदेशिंचुटयु, भरतुनि पट्टाभिषेकंबुनु, भरतुंडु वनंबुनकुं जनुटयु, भरतुंडु हरिणपोतंबु नंदु प्रीति

---

बृन्दावन भासुर ! धरित्रीप्रियनाथ ! हे गोविन्द ! हे श्रीकर ! हे पुण्याकर ! हे वासुदेव ! हे त्रिजगत कल्याण ! हे गोपालका ! [तुम्हें नमस्कार है] १८१ [कं.] हे परमपदवासी ! हे दुष्कृत हर ! हे करुणाकर ! हे महात्मा ! हे हत-दितिसुत ! हे भासुर गोपिका मनोहर ! हे सरसिज दलनेत्रा ! हे भक्तजननुतगात्रा ! [तुम्हें नमस्कार है।] १८२ [मा.] हे सरसहृदयवासा ! हे चारु लक्ष्मी-विलासा ! हे भरित शुभचरित्रा ! हे भास्कर-अब्जारि (-चंद्र) नेत्रा ! निरुपमघनगात्रा ! निर्मलज्ञानपात्रा ! गुरुतर भवदूरा ! हे गोपिका-चित्तचोरा ! [तुम्हें नमस्कार है] १८३ [ग.] यह सकल सुकविजन आनन्दकर बोप्पनामात्य के पुत्र गंगनार्य प्रणीत श्री महाभागवतपुराण में प्रियव्रत की सुज्ञान दीक्षा और ब्रह्मदर्शन, और आग्नीध्र आदियों के जन्म और उत्तम तामस रैवतों का जन्म और प्रियव्रत का वन में जाना और आग्नीध्र का अप्सरा स्त्री का परिग्रहण करना और वर्षाधिपतियों का जन्म और आग्नीध्र का वन में जाना और नाभि आदियों का राज्य (शासन-विधान) और नाभिकृत यज्ञ और ऋषभ का जन्म और ऋषभ का राजतिलक और भरत का जन्म और ऋषभ का तप के लिए जाते हुए सुतों को अतुल ज्ञान का उपदेश देना और भरत का राजतिलक और भरत का वन में जाना और भरत का हरिणपोत के प्रति प्रीति के कारण हरिण-गर्भ में

**जेसि हरिण गर्भंबुन जनिंचुटयु, मरल विप्रसुतुंडै जनिंचुटयु, विप्रुंडु चंडिका गृहंबुन ब्रतिकि वच्चुटयु, सिंधुपति विप्रसंवादंबुनु, अनु कथलुंगल पंचम स्कंधंबुनंदु प्रथमाश्वासमु संपूर्णमु ॥ 184 ॥**

---

जन्म लेना और फिर विप्रसुत होकर जन्म लेना और विप्र का चण्डिका-गृह से जीवित लौट आना और सिंधुपति-विप्र-संवाद आदि कथाओं से युक्त पंचम स्कंध में प्रथमाश्वास सम्पूर्ण हो गया है। १८४





# अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

# आन्ध्र महाभागवतमु

## ( पञ्चम स्कन्धमु )

द्वितीयाश्वासमु

कं. श्रीकांता हृदयप्रिय !
लोकालोक प्रचार ! लोकेश्वर ! सु-
श्लोक भवभयनिवारक !
गोकुलमंदार ! नन्दगोपकुमार ! ॥ 1 ॥

अध्यायमु—१५

व. सकल पुराणार्थज्ञान विख्यातुंडगु सूतुंडिट्लनियें ॥ 2 ॥

कं. मुनुलार ! बादरायणि, यनघात्मकुडैन युत्तरात्मजुनकु स-
द्विनयोक्ति भरतु चरितमु, विनुपिपुचु मरियु निट्लु विनुपिचें दगन् ॥3॥

---

( पञ्चम स्कन्ध )

द्वितीय आश्वास

[कं.] हे श्री कान्ता (लक्ष्मी) के हृदयप्रिय! हे लोक-अलोक में प्रचार (व्याप्ति) वाले ! हे लोकेश्वर! हे सुश्लोक (पुण्यात्माओं) के भवभयनिवारक! हे गोकुलमंदार ! हे नन्दगोपकुमार ! [तुम्हें नमस्कार है] १

अध्याय—१५

[व.] सकल पुराणार्थों के ज्ञान से [युक्त होने के कारण] विख्यात बने हुए सूत ने यों कहा— २ [कं.] हे मुनियो ! बादरायणि (बादरायण के पुत्र = शुक) ने अनघात्मक (पुण्यात्मा) उत्तरात्मज (परीक्षित) को सद्विनय-उक्तियों से भरत के चरित को सुनाते हुए पुनः यों औचित्य से सुनाया— ३ [आ.] हे पार्थिवेंद्र ! इस प्रकार भरतात्मज सुमति के

आ. पार्थिवेंद्र ! यट्लु भरतात्मुजुंडेन
सुमति धर्मवर्तनमुन विरुग
नदि यॆरिंगि दुष्टुलैन पाषंडुलु
दम मतंबु मिगुल वलचि पॊगडि ॥ 4 ॥

कं. धरणीवल्लभ ! निन्नुनु
निरतंबुनु बुद्धदेवुनि गॊलिचिन या
तॆरगुन गॊलिचॆदमनि भा-
सुरमति बोधिचिरपुडु सुमति प्रीतिन् ॥ 5 ॥

व. इट्लु पाषंडबोधितुंडेन सुमतिकि भ्रुवसेनयंदु देवताजित्तनु पुत्रुंडु जनिंचॆ। वानिकि देवद्युम्नुंडनु सत्पुत्रुंडा सुरियंदुदयिंचॆ। आ महात्मुनकु धेनुमतियंदु परमेष्ठि जनियिंचॆ। अतनिकि सुवर्चलयंदु प्रतीहुंडनुवाडु सुतुंडय्यॆ। अप्परमपुरुषुंडु सकल जनुलकु ब्रह्मोपदेशंबु सेसि, तानु शुद्धात्मुंडै, हरिस्मरण सेयुचु यज्ञकरण निपुणुलगु प्रतिहर्त प्रस्तोत उद्गातयनु सत्पुत्रुलंगांचॆ। आ प्रतिहर्तकु स्तुतियंदु व्योम भूम नामक पुत्रद्वयंबुत्पन्नंबय्यॆ। अंदु भूमुनकु ऋषिकुल्ययंदु नुद्गीथुंडनु सुतुंडु जनिंचॆ। अतनिकि देवकुल्ययंदु प्रस्तोत गलिगॆ। आ प्रस्तोतकु वररुत्सयंदु विभुंडनु तनयुंडुद्भविंचॆ। अतनिकि भारतियंदु पृथुषेणुंडु-

---

धर्म के आचरण से रहने पर, उसे जानकर दुष्ट पाखण्डियों ने अपने मत के बारे में अधिक सोचकर, प्रशंसा कर [यों कहा] ४ [कं.] हे धरतीवल्लभ ! तुम्हारी भी, जैसे हमने निरंतर बुद्धदेव की सेवा की थी उसी प्रकार [तुम्हारी] सेवा करेंगे। ऐसा भासुर मति से और प्रीति से तब सुमति को प्रबोधित किया। ५ [व.] इस प्रकार पाषण्डों से प्रबोधित सुमति को भ्रुवसेना [नामक स्त्री] से देवताजित् नामक पुत्र का जन्म हुआ। उसके आसुरी में देवद्युम्न नामक सत्पुत्र का उदय हुआ। उस महात्मा को धेनुमती (नामक स्त्री) में परमेष्ठि का जन्म हुआ। उसके सुवर्चला में प्रतीह नामक सुत हुआ। उस परमपुरुष ने (प्रतीह) सकल जनों को ब्रह्मोपदेश देकर, स्वयं शुद्धात्मा हो हरिस्मरण करते हुए, यज्ञकरण-निपुण बने प्रतिहर्ता, प्रस्तोता, उद्गाता नामक सत्पुत्रों को पाया। उस प्रतिहर्ता के स्तुति [नामक स्त्री] में व्योम, भूम नामक पुत्रद्वय उत्पन्न हुए। उनमें भूम के ऋषिकुल्या में उद्गीथ नामक सुत का जन्म हुआ। उसके देवकुल्या में प्रस्तोता [उत्पन्न] हुआ। उस प्रस्तोता के वररुत्सा में विभु नामक तनय का उद्भव हुआ। उसके भारती में पृथुषेण का उदय हुआ। उसके आकूती में

दयिंचें। अतनिकि नाकूतियंदु नक्तुंडु गलिगें। आ नाक्तुनकु राजर्षि श्रेष्ठुंडगु गयुंडनु महाकीर्ति संपन्नुंडुदयिंचें ॥ 6 ॥

आ. आ गयुंडु लील नखिल जीवुल ब्रोव
दलचि सात्त्विक प्रधानमैन
यट्टिमेनु दाल्चि यात्म तत्त्वज्ञानु-
डगुचुनुंडें हरि निजांशमुननु ॥ 7 ॥

व. इट्टि महानीय सुगुणाकरुंडगु गयुनि गाथानुवर्णनंबु पुराविदुलगु महात्मुलचे नी तेरंगुन नुतिप बडुचुन्नदि। सावधान मनस्कुंडवै यालकिंपुमु। अनियिट्लनियें ॥ 8 ॥

सी. धर्ममार्गंबुन धारुणी जनुलनु ब्रेमतो बोषण प्रेषणोप-
लालन शासन लक्षणादुलचेत बोषिपुचुनु यज्ञमुलनु यज्ञ-
पुरुषु नीश्वरु जित्तमुन निलिप सेविंचि स्वांतमंदुन्न यीश्वरुनि गांचि
यखिल जीवततिकि नानंद मोसगुचु निरभिमानंबुन नेलयेलें

ते. सत्यमंदु मिगुल सत्सेवयंदुनु, धर्ममंदु यज्ञ कर्ममंदु
गयुडु वसुधलोन गंजाक्षुडे कानि, मानवुंडुगाडु मानवेंद्र! ॥ 9 ॥

व. अट्टि महापुरुष गुणगण परिपूर्णुंडगु गयुनिकि दक्षकन्यकलगु श्रद्धा मैत्रि दयादुलु वमयंत वच्चि कोरिक लोसग, नतनि प्रजलकु वसुंधर कामधेनुवै

---

नक्त [उत्पन्न] हुआ। उस नक्त के राजर्षिश्रेष्ठ और महाकीर्ति सम्पन्न गय नामक [पुत्र का] उदय हुआ। ६ [आ.] वह गय लीला से अखिल जीवों की रक्षा करने की सोचकर, सात्त्विक प्रधान शरीर को हरि के निजांश से युक्त होकर आत्मतत्त्वज्ञान से युक्त हो रहा। ७ [व.] ऐसे महनीय सुगुणों के आकर गय की कथा का अनुवर्णन पुराविद् महात्माओं से इस प्रकार प्रशंसित हो रहा है। सावधान-मनस्क (मनवाला) होकर सुनो। ऐसा कहकर फिर यों कहा— ८ [सी.] धर्ममार्ग से धारुणी जनों को प्रेम से पोषण-प्रेषण-उपलालन-शासन आदि लक्षणों से रक्षा करते हुए, यज्ञपुरुष ईश्वर को चित्त में धारण कर यज्ञों के द्वारा सेवा करते हुए, स्वांत में स्थित ईश्वर के दर्शन कर अखिल जीव-तति (-समूह) को आनन्द देते हुए निरभिमान हो पृथ्वी का पालन किया। [ते.] हे मानवेंद्र! सत्य में, अधिक सत्सेवा में, धर्म में, यज्ञकर्म में गय तो वसुधा पर कंजाक्ष (विष्णु) ही है। लेकिन मानव नहीं। ९ [व.] ऐसे महापुरुषों के गुणगण से परिपूर्ण गय को दक्ष की कन्यकायें, श्रद्धा, मैत्री, दया आदि स्वयं पाकर इच्छाओं की पूर्ति करने पर, उसकी प्रजा के लिए वसुंधरा के कामधेनु हो [इच्छा रूपी दूध] दुहते रहने पर, वेदों के सकल

पितुक, वेदंबुलु सकल कामंबुल निच्चुचुंड, संगरंबुन भंगंबु नॊंदिन राजु लप्पनंबु लॊप्पनंबु सेय, विप्रुलु धर्मं बारवपालु पंचि निरंतर सोमपानंबुनु, श्रद्धादि शुद्ध भक्ति योगंबुनुं गलिगि यॊनर्चु यज्ञंबुल निंद्रादिदेवतलु तृप्तुलै यज्ञफलंबुल नॊसंग, ब्रह्मादि तृण गुल्म लता पर्यंतंबु सकल लोकंबुल वारिनि दृप्ति बॊंदिपुचु, श्रीहरि दृप्तिबॊंद जेयुचु, गयुंडु पॆक्कु कालंबु राज्यंबु नेलॆ। अट्टि गयुनिकि जयंतियंदु जित्ररथ, स्वाति, अवरोधनुलनु मुव्वुरु कॊडुकुलु पुट्टिरि। आ चित्ररथुनिकि नूर्जयंदु सम्राट्टनु, वानिकि नुत्कयंदु मरीचियु, आ मेटिकि बिंदुमतियंदु बिंदुमंतुडनुवाडुनु, आ बिंदुमंतुनकु सरघ यंदु मधुवुनु, मधुवुनकु सुमनस्सनु दानियंदु वीर व्रतुंडुनु, आ वीरव्रतुनकु भोजयंदु मन्यु प्रमन्युलनु निरुवुरुनु, नंदु मन्युवुनकु सत्य यंदु भुवनुंडुनु, ननिकि दोषयंदु त्वष्टयु, ना त्वष्टकु विरोचनयंदु विरजुंडनु-वाडुनु जनिंचिरि। अंत ॥ 10 ॥

कं. आ विरजुन कुदयिंचिरि, भूविनुत ! विषूचियंदु बुत्रशतंबु-
ग्रावल नॊक कन्यकयु,-न्नावेळ समस्त जनुलु हर्षंबंदन् ॥ 11 ॥

कं. घनुडु प्रियव्रतु वंशंबुनकुं दुदयै विरजुडु भूविभु वंशं-
बुनु दा नलंकरिंचॆनु, विनु मिंद्रावरजुबॊलॆ विष्णुनि माड्किन् ॥ 12 ॥

---

कामों (इच्छाओं) को देते रहने पर, संगर (युद्ध) में हारे हुए राजाओं के शोभा से उपहार देने पर, विप्रों के अपने [किये] धर्म में छठा भाग बाँट [कर] देने पर, निरंतर सोमपान और श्रद्धा आदि से शुद्ध भक्तियोग से युक्त होकर किये जानेवाले यज्ञों से इंद्रादि देवताओं के तृप्त होकर यज्ञफल देने पर ब्रह्मा से लेकर तृण-गुल्म-लता पर्यंत सकल लोकों के जनों को तृप्त करते हुए [उस प्रकार] श्रीहरि को तृप्त करते हुए गय ने बहुत समय तक राज्य किया। ऐसे गय को जयंती में चित्ररथ, स्वाति, अवरोधन नामक तीन पुत्र पैदा हुए। उस चित्ररथ को ऊर्णा [नामक स्त्री] में बिन्दुमान नामक [पुत्र], और उस बिन्दुमान को सरघा में मधु, और मधु को सुमनस् नामक [स्त्री] में वीरव्रत, और उस वीरव्रत को भोजा [नामक स्त्री] में मन्यु और मण्य नामक दो [पुत्र], और मन्यु को सत्या में भुवन, और उसे दोषा में त्वष्टा, और उस त्वष्टा को विरोचना में विरज [नामक पुत्र] का जन्म हुआ। तब १० [कं.] हे भू-विनुत (भूमि पर प्रशंसा पानेवाले) ! उस विरज के विषूची में पुत्रशत (सौ पुत्रों) का जन्म हुआ। उसके बाद एक कन्या हुई जब कि समस्त जन हर्षित हुए। ११ [कं.] महान् प्रियव्रत के वंश का अंतिम [राजा] विरज ने भूविभु के वंश को इंद्रावरज (इन्द्र का अनुज) विष्णु (उपेन्द्र) के समान अलंकृत किया। १२

अध्यायमु—१६

कं. अनि पलिकिन शुकयोगि,
गनुगोनि यभिमन्यु सुतुडु गडु मोदमुतो
वनजदलाक्षुनि महिमलु,
विनि संतसमंदि यनियें वेडुक मरियुन् ॥ 13 ॥

व. मुनींद्रा ! सूर्यरश्मि यॆंदाक ब्रवर्तिल्लु, नक्षत्र युक्तंबुलैन चंद्र किरणंबु लॆंतमेर दिरुगु, नंत दूरंबु प्रियव्रतुनि रथनेमि घट्टनलचेत सप्तद्वीपंबुलुनु, सप्त समुद्रंबुलुनय्यॆ ननि पलिकितिवि। आ द्वीप समुद्रंबुल परिमाणंबुलु सविस्तरंबुलुगा नॆऱिंगिपुमु। गुणमयंबुनु, स्थूल रूपंबुनुनैन श्रीहरि शरीरंबगु नी लोकंबु नंदु निलिपिन चित्तंबगुणंबुनु, सूक्ष्मंबुनु, नात्म-ज्योतियु, ब्रह्मंबुनैन वासुदेवुनियंदु निल्चुंगावुन, द्वीप वर्षादि विस्तारंबु विनिर्पिपुमु। अनिन शुकयोगींद्रुडिट्लनियॆं ॥ 14 ॥

कं. धरणीवल्लभ ! विनु श्री-
हरि मायागुण विभूतुलगु जलनिधुलुन्
परगिन दीवुलु वर्षमु-
लरयंगा गॊलदि वॆट्ट नलवियॆ ! जगतिन् ॥ 15 ॥

आ. तॆलिसिनंतवट्टु दॆलिपॆद संक्षेप-
मुननु जित्तगिंचि विनुमु वॆलिय

---

अध्याय—१६

[कं.] ऐसा कहनेवाले शुकयोगी को देखकर अभिमन्यु के पुत्र ने अधिक मोद से वनजदलाक्ष की महिमाओं को सुनकर संतुष्ट होकर उत्साह से पुनः यों कहा— १३ [व.] हे मुनीन्द्र ! जहाँ तक सूर्यरश्मियों का संचार होता है, जहाँ तक नक्षत्रयुक्त चंद्रकिरण प्रसरित होते हैं, उतनी दूर तक प्रियव्रत के रथ की नेमि की घट्टनाओं से सप्तद्वीप और सप्तसमुद्र हुए, ऐसा तुमने कहा। उन द्वीपों और समुद्रों के परिमाण को सविस्तार बताओ। गुणमय और स्थूल रूप वाले श्रीहरि के शरीर रूपी इस लोक पर स्थिरता से धारण किया हुआ चित्त अगुण और सूक्ष्म और आत्मज्योति और ब्रह्म बने हुए वासुदेव पर स्थिर हो जाता है। अतः द्वीप, वर्ष आदि के विस्तार को सुनाओ। [ऐसा] कहने पर शुकयोगीन्द्र ने यों कहा— १४ [कं.] हे धरणीवल्लभ ! सुनो, श्रीहरि की माया के गुण की विभूतियाँ होनेवाली जलनिधियों, विलसित द्वीपों, वर्षों [आदि को] सोचने पर जगती में गिन सकना संभव है क्या ? १५ [आ.] जहाँ

ननुच्‌ जॆप्प दॊडगॆ नभिमन्यु सुतुनकु
निपुणातु शुकमुनींद्रु डिट्लु ॥ 16 ॥

शुकयोगिवरुंडुपदेश रूपमुगा वॆलुपु भूगोळस्वरूपादि निर्णयमु

व. नरेंद्रा ! जंबूद्वीपंबु भूपद्मंबुनकु मध्यप्रदेशंबुन लक्ष योजनंबुल वॆडल्पु, नंतिय निडुपुनुं गलिगि, कमलपत्रंबुनुंबोलॆ वर्तुलाकारंबै नव सहस्रयोजन परिमितायामंबुगल नव वर्षंबुलु नष्टमर्यादागिरुलुनुं गलिगि विभक्तं-बैयुंडु। अंदु मध्यम वर्षंबिलावृत वर्षंबगु। अंदु मध्यप्रदेशंबुन सुवर्ण मयंबै ॥ 17 ॥

कं. भूपद्ममुनकु मेरुवु, दीपिंचुचु गर्णिकाकृतिनि वॆंपगुचुं
आपै कुलगिरि राजुग, जूपट्टुनु सुरगणाळि चोद्यंबंदन्‌ ॥ 18 ॥

सी. मरियुनु दन्मेरुगिरि लक्ष योजनोन्नत मगुचुंडि या नडिमि वळमु
विदितमै पदियारुवेल योजनमुलु नंतियपातुनै यतिशयिल्लु
ना मीद विस्तार मरय मुप्पदिरॆंडुवेल योजनमुल वॆलसियुंडु
ना गिरि कुत्तरंबुन नील श्वेत शृंग पर्वतमुलु निगिमुट्टि

---

तक मुझे ज्ञात है संक्षेप में बता रहा हूँ। ध्यान देकर जानते हुए सुनो। ऐसा कहकर शुकमुनीन्द्र ने इस प्रकार सुन्दरता से शुकमुनीन्द्र अभिमन्यु के सुत को बताने लगा। १६

**शुकयोगीवर के उपदेश-रूप में बताये जानेवाला भूगोल के स्वरूप आदि का निर्णय**

[व.] हे नरेंद्र ! जम्बूद्वीप भूपद्म के मध्य प्रदेश में लक्ष योजन चौड़ाई और उतनी ही लम्बाई से युक्त होकर, कमलपत्र के समान वर्तुलाकार (गोल) होते हुए नव सहस्र योजन परिमित आयाम से युक्त नव वर्ष, अष्ट-मर्यादा (कुल) गिरियों से युक्त होकर [उनके कारण] विभक्त हो रहता है। उनमें मध्यम वर्ष इलावृत वर्ष कहलाता है। उसके मध्य प्रदेश में सुवर्णमय होकर १७ [कं.] भूपद्म के लिए कर्णिका की आकृति से दीप्त होते हुए, विलसित होते हुए आधारभूत होते हुए, सुरगणालि (देवतासमूह) के चकित होने पर कुलगिरियों में राजा के समान मेरु [पर्वत] दिखाई पड़ता है। १८ [सी.] और वह मेरुगिरि लक्ष योजन उन्नत थी। उसका मध्यदल विदित रूप से सोलह हज़ार योजन और उतना ही निचले भाग से युक्त होकर शोभित होता रहा। उसके बाद सोचने पर उसका विस्तार बत्तीस हज़ार योजनों तक विलसित रहा। उस गिरि के उत्तर में नील-श्वेत-शृंग पर्वत

आ. युंडु रेंडुवेल योजनंबुल दाक, वडपु गलिगि पूव पश्चिमाय-
तंबु दक्षिणोत्तरंबुनु विस्तार, मगुचु मिगुल रम्यमे नरेंद्रा ! ॥ 19 ॥

व. इट्लु पूर्व पश्चिमंबुल लवण सागरांतंबुलैयुन्न सीमा पर्वतबुल यंदु नील श्वेत शृंग वत्सरंबुलु निडिविनि यथाक्रमंबुन दशमांश न्यून प्रमाण योजनमुलु गलविगा नुंडु। वीनि मध्य प्रदेशंबुन रम्यक, हिरण्मय, कुरुवर्षंबुलनु नामंबुलुगल वर्षंबुलुंडु। वानि विस्तारंबुलु नव सहस्र योजनंबुलु गलिगि, लवण समुद्रांतंबुलै क्रमंबुन नीलादिपर्वत दीर्घ परिमाणंबुल नुंडु। इलावृत वर्षंबुनकु दक्षिणंबुन निषध हेमकूट हिमवत्पर्वतंबुलनु सीमा पर्वतंबुलुनु, पूर्व पश्चिमंबुलु निडुपुनु, दक्षिणोत्तरंबुनु विशालंबुनु नगुचु, ना नीलादि पर्वतंबुलतोरुननुंडु। आ गिरुल मध्यप्रदेशंबुन किंपुरुष वर्ष हरिवर्ष भारतवर्षंबुलनु नामंबुलु गल वर्षंबुलुंडु। आ यिलावृत वर्षंबुनकु पश्चिमंबुन माल्यवत्पर्वतंबुनु, पूर्वभागंबुन गंधमादनंबुनु, सीमापर्वतंबुलु। पूर्व पश्चिमंबुलु निडुपुनु, दक्षिणोत्तरंबुलु विशालंबुलु नगुचु, नील पर्वत निषध पर्वतंबुलं गदिसि, द्विसहस्रयोजनंबुल विस्तारंबै युंडु माल्यवत्पर्वतंबु पश्चिम समुद्रांतंबै केतु मालवर्षंबुनु, गंधमादन पर्वतंबुनकु पूर्व भागंबुन समुद्रांतंबगुचु भद्राश्ववर्षंबुनु, मेरुवुनकुं दूर्पुन मंदर पर्वतंबुनु, दक्षिणंबुन मेरु मंदरपर्वतंबुलुनु, पडमटि पार्श्वंबुल नुत्तरमुनं गुमुद पर्वत-

---

गगनस्पर्शी हो रहते हैं। [आ.] हे नरेंद्र ! दो हजार योजन तक विस्तार से युक्त होकर पूर्व-पश्चिम में विशाल और दक्षिण-उत्तर में विस्तृत होते हुए अधिक रम्य वनकर रहता है। १९ [व.] इस प्रकार पूर्व और पश्चिम में लवण-सागर तक फैले हुए सीमा पर्वतों में नील शृंगवत् पर्वत चौड़ाई में यथाक्रम से दशमांश न्यून प्रमाण से योजनों से युक्त रहते हैं। इनके मध्य प्रदेश में रम्यक, हिरण्मय, कुरुवर्ष नामक वर्ष (प्रदेश) रहते हैं। उनके विस्तार नव सहस्र योजन हैं। वे लवण-समुद्र तक फैलकर क्रम से नीलादि पर्वतों के दीर्घ परिमाण से युक्त रहते है। इलावृत वर्ष के दक्षिण में निषध, हेमकूट, हिमवत् पर्वत नामक सीमापर्वत, पूर्व-पश्चिम में चौड़े, दक्षिणोत्तर में विशाल होते हुए, उन नीलादि पर्वतों के समान रहते हैं। उन गिरियों के मध्य प्रदेश में किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष, भारतवर्ष नामक वर्ष है। उस इलावृत वर्ष के पश्चिम में माल्यवत् पर्वत, और पूर्व भाग में गंधमादन [ये] सीमापर्वत हैं। पूर्व-पश्चिमों में चौड़े दक्षिणोत्तर में विशाल होते हुए नीलपर्वत और निषध पर्वत निकट वनकर दो सहस्र योजन विस्तृत है। माल्यवत् पर्वत से पश्चिम समुद्र तक केतुमाला वर्ष और गंधमादन पर्वत के पूर्व भाग में समुद्र पर्यंत भद्राश्व वर्ष और मेरु के पूर्व में मंदर पर्वत और दक्षिण में मेरु और मंदर पर्वत और पश्चिम दिशा और उत्तर में कुमुदपर्वत के नामों से युक्त होकर दस हजार

बुलनु नामंबुलु गलिगि, ययुतयोजनोन्नतंबुलै मेरुनगंबनु मध्योन्नत मेधि-स्तंभंबुनकुं जतुर्मुखंबुल ह्रस्वस्तंभंबुलनु बोलियुंडु। ना चतुस्स्तंभंबुलयंदुनु पर्वत शिखरंबुल वॆलुगॊंदु केतुवुलुनुंबोलॆ चूत जंबू कदंबन्यग्रोधंबुलनु वृक्ष-राजंबुलुनु, क्रमंबुन नॊंडॊंटिकि नेकादश शतयोजनायतंबुनु, नंतिय विस्तारं-बुनुं गलिगियुंडु। मरियु ना पर्वत शिखरंबुलु ग्रमंबुनं बयोमध्विक्षुरसमृष्ट जलंबुलं गलिगि, शतयोजन विस्तारंबुलैन सरोवरंबुलु तेजरिल्लु। अंदु सुस्नातुलगु वारलकु योगैश्वर्यंबुलु स्वभावंबुनं गलुगु। मरियु नंदन चैत्ररथ वैभ्राजिक सर्वतोभद्रंबुलनु नामंबुलंगल देवोद्यानंबु, आ पर्वत शिखरंबुल वॆलुगॊंदुचुंडु। अंदु देवतागणंबुलु देवांगनलंगूडि गंधर्वुल गीतनृत्यंबुलु गनुंगॊनुचु विहरितुरु ॥ 20 ॥

उ. मंदरपर्वतंबु तुदि मामिडिपंडलमृतोपमानमै
मंदरशैल शृंगक समानमुलै गिरिमीद राल मा-
कंद फलामृतंबु गलगंबडि जारि महाप्रवाहमै
यंदरुणोद नाममुन नद्भुतमै विलसिल्लु नॆंतयुन् ॥ 21 ॥

चं. कडु मधुरंबुनन् सुरभि गंधमुचे नरुण प्रकाशतन्
वडिगॊनि मंदराचलमु वंतल चॆंतल जारि यंतलो
दॊडि तॊडि ना यिलावृतमु दोचुचु वितग बूर्ववाहियै
नडुचु दरंग संततुल नंदरि नच्चट जेयु धन्युलन् ॥ 22 ॥

योजन उन्नत होकर मेरु नग नामक मध्य-उन्नत मेधि-स्तंभ के लिए चारों ओर ह्रस्व स्तभों के समान रहते है। उन चतुःस्तम्भों के पर्वत-शिखरों पर प्रकाशमान केतुओं (झण्डों) के समान चूत (आम्र), जम्बू, कदम्ब, न्यग्रोध नामक वृक्षराज और क्रम से परस्पर एकादश शत योजनायत, और उतना ही विस्तार से युक्त रहते है। और उन पर्वत-शिखरों पर क्रम से पय (दूध), मधु, इक्षुरस, मृष्ट (मीठा) जल से युक्त शत योजन विस्तार वाले सरोवर शोभित रहते है। उनमें सुस्नात होनेवालों को योग-ऐश्वर्य सहज रूप से प्राप्त होते है। और नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजिक, सर्वतोभद्र नाम वाले देव-उद्यान वन उन पर्वत-शिखरों पर विलसित होते रहते हैं। उनमें देवतागण देवांगनाओ से युक्त होकर गंधर्वो के गीत-नृत्यों को देखते हुए विहार करते है। २० [उ.] मंदरपर्वत के शिखर पर आम अमृतोपमान होकर मंदरशैल के शृंगो पर मान्य होकर गिरि पर गिरने पर माकन्द (आम्र) फलामृत निःसृत होकर महाप्रवाह के रूप में वहाँ अरुणोद के नामसे अधिक अद्भुत रूप से विलसित होता रहता है। २१ [चं.] अधिक माधुर्य से, सुरभित गंध से, अरुण वर्ण से, झट मंदराचल के आसपास प्रवहित होकर उस इलावृत के पास आश्चर्यप्रदरूप से पूर्ववाहिनी होकर विलसित तरंगसंततियों से वहाँ के सब जनो को धन्य बनाती है। २२

आ. आ नदीजलंबु लाडिन यच्चटि, यंबिकानुचरुल यंगगंध
मंदि पवनुडंत मनुजेश ! पदि योज,-नमुलु सुट्टु परिमळमुल निंपु ॥23॥

आ. मेरु मंदरमुल मीद जंबूफलं, बुलु महागजोपमुलुग ब्रालि
यवसि यंत दद्रसामृतं बल्लन, यम्महा नगंबुलंदु बोडमि ॥ 24 ॥

कं. अनुपममगु जंबूनदि, यनु पेरनु वॅलसि लील नरुगुचु नंतं
घनत निडुवृत वर्षमु, पनुपडदलापुचुनु धरणि ब्रवहिंचु दगन् ॥ 25 ॥

उ. आ नदिनीट दोगि पदनै यद्दु मृत्तनिलार्क संगतिन्
बूनि कडुन् विपाकमुन बोंदुचु शुद्ध सुवर्ण जाति जां
बू नद नाम मोंदि सुरमुख्युल कॅल्लनु भूषनार्हमै
मानुग वर्ण मिंचि कडु मंचिदियै विलसिल्लु नेंतयुन् ॥ 26 ॥

व. मरियु सुपार्श्व नगाग्रंबुनंदु बंच व्याम परीणाहाबंधुरंबुलगु नैदु मधुधारा प्रवाहंबुलु पंचमुखंबुल वॅडलि, सुपार्श्व नग श्रृंगंबुलं बडि, यिलावृतवर्षंबु पश्चिम भागंबु दडुपुचुं ब्रवहिंचु । आ तेनिय यनुभविंचु वारल मुख मारुत सुगंधंबु शतयोजन पर्यंतंबु परिमळिंचु ॥ 27 ॥

सी. कुमुदपर्वत शिखाग्रमुन नुत्पन्नमै कनुपट्टु वटतरु स्कंधमुलनु
नुदयिंचुनट्टि पयोदधि घृत मधु गुड विशिष्टान्नंबु लोंडिकमैन

---

[आ.] हे मनुजेश ! उस नदी-जल में स्नान करनेवाले वहाँ के अंबिका-अनुचरों के अंग-गंध को प्राप्त कर पवन चारों तरफ़ दस योजन तक परिमल से भर देता है। २३ [आ.] मेरु-मंदर [पर्वतों] पर जम्बूफल महागजों के समान गिरकर फट जाने पर तब तरुरसामृत धीरे से उन महानगों पर उत्पन्न होकर २४ [कं.] अनुपम जम्बू नदी के नाम से विलसित होकर लीला से जाते हुए तब महानता से इलावृत वर्ष को सप्रयत्न भिगोते हुए उचित ढंग से धरणी पर प्रवाहित होती रहती है। २५ [उ.] उस नदी के जल में भीगकर आर्द्र बनकर वहाँ की मृत्तिका अनल-अर्क-संगति को धारण कर अधिक विपाक को प्राप्त कर शुद्ध सुवर्ण कान्ति से जम्बू नद नाम प्राप्त कर प्रमुख समस्त सुरों के लिए भूषणार्ह बनकर अधिक सुन्दर वर्ण से अतिश्रेष्ठ होकर विलसित होता रहता है। २६ [व.] और सुपार्श्व नगाग्र (शिखर) पर पंचव्याम परीणाह बंधुर होनेवाले पाँच मधु धाराप्रवाह पंचमुखों से निकलकर सुपार्श्व नगश्रृंगों पर गिर कर इलावृत वर्ष के पश्चिम भाग को भिगोते हुए प्रवहित होते हैं। उस मधु का उपभोग करनेवाले जनों के मुख-मारुत की सुगन्ध शतयोजन पर्यंत सुवासित करता रहता है। २७ [सी.] कुमुदपर्वत के शिखाग्र पर उत्पन्न होकर दिखाई पड़नेवाले वट तरु के स्कंधों पर उदित होनेवाले पय,

यंवर शय्यासनाभरणादि वस्तुवुलु गोरिकलु दीर्चुचुनु गुमुद
पर्वताग्रंबुन बडि यिलावृतवर्षमुन जनुलकु नॅल्ल भोग्यमुलनु

आ. वदलकॊसगु वारि वळि पलितंबुलु, दलगु स्वेद गंधमुलुनु वायु
मरणभयमु मुदिमि वॊरयदॆन्नडुनु शी, तोष्ण बाध चॆंदकुंडु नधिप !॥28॥

आ. देवदानवुलुनु दिव्य मुनींद्र गं, धर्वु लादिगाग दगिलि याश्र-
यिचियुंडुरा गिरींद्र मूलमुनंदु, हर्षमंदि घन विहारलील ॥ 29 ॥

व. नरेंद्रा ! मेरु नगेंद्रंबुनकु बूर्व भागंबुन जठर देवकूटंबुलु बश्चिमंबुन बवनपारियात्रंबुलु ननु पर्वतंबुलु नालुगु, नॊंडॊटिकि दक्षिणोत्तरंबुल नष्टादश सहस्र योजनंबुल निडुपुनु, बूर्वपश्चिमंबुल द्विसहस्र योजनंबुल वॆडल्पुनु नगुचु दक्षिणंबुन गैलास करवीरंबुलुनु, उत्तरंबुनत्रिश्रृंग मकरंबुलुनु ननु नामंबुलु गल दक्षिणोत्तर पर्वतंबुलु नालुगुनु, बूर्वपश्चिमंबुल नष्टादशसहस्र योजनंबुल निडपुनु, दक्षिणोत्तरंबुल द्विसहस्रयोजनंबुल वॆडल्पुनु नगुचु, नग्नि पुरुषुनकुं ब्रदक्षिणंबगुचुन्न परिस्तरणंबुल चंदंबुन मेरुवुनकुं ब्रदक्षिणंबुगा नष्ट नगंबुलु निलिचियुंडु। मेरु शिखरंबुन दश-सहस्रयोजनंबुल निडुपु, नंतिय विस्तारंबु नगुचु सुवर्णमयंबैन ब्रह्मपुरंबु

---

दधि, घृत, मधु, गुड़ के विशिष्ट अन्न, सुविधा से अंबर (वस्त्र), शय्या, असन (भोजन), आभरणादि वस्तुओं की इच्छाओं को संपूर्ण करते हुए कुमुद पर्वताग्र पर गिरकर इलामृत वर्ष के समस्त जनों के लिए भोग्य सदा देते रहते है। [आ.] उनके वलि पलितों पर श्वेतगंध हट जाती है, मरणभय दूर हो जाता है। कभी जरा व्याप्त नहीं होती। हे अधिप ! उन्हें कभी शीत-उष्ण की बाधा (पीड़ा) नहीं होती। २८
[आ.] देव-दानव और दिव्य मुनीन्द्र, गंधर्व आदि वन-विहार-लीला से हर्षित होकर लगकर उस गिरीन्द्र मूल का आश्रय लेकर रहते है। २९
[व.] हे नरेंद्र ! मेरु नगेंद्र (पर्वतश्रेष्ठ) के पूर्व भाग में जठर और देवकूट, पश्चिम में पवन और पार्यात्र नामक चार पर्वत हैं। परस्पर दक्षिण-उत्तर में अष्टादश सहस्र योजनों की लंबाई, पूर्व-पश्चिमों में द्विसहस्र योजन की चौड़ाई से युक्त होकर दक्षिण में कैलास और करवीर और उत्तर में त्रिश्रृंग और मकर नाम वाले चार दक्षिणोत्तर पर्वत और पूर्व-पश्चिमों में अष्टादश सहस्र योजनों की चौड़ाई और दक्षिणोत्तरों में द्विसहस्र योजन चौड़ाई से युक्त होते हुए, अग्निपुरुष के लिए प्रदक्षिणा रूपी होनेवाले परिस्थरण के समान मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा के रूप में [चारों ओर] अष्टनग (आठ पर्वत) खड़े रहते हैं। मेरु शिखर पर दस सहस्र योजन लम्बा और उतनी ही चौड़ाई से युक्त

तेजरिल्लुचुंडु। आ पट्टणंबुनकु नष्ट दिक्कुलयंदुनु लोकपालुर पुरंबु लुंडु ॥ 30 ॥

## अध्यायमु—१७

कं. परमेष्ठि पट्टणंबुन, हरि मुन्नु त्रिविक्रमणमु लंदन् सर्वे-
श्वर चरणाग्रनखाहति, वरुवडि नूर्ध्वांडमंत बगिलें नरेंद्रा ! ॥ 31 ॥

व. इट्लु चरण नख स्पर्शंजेसि भेदिपंबड्ड यूर्ध्वकटाह विवरंबु वलन नंतः प्रवेशंबु सेयुचुन्न बाह्यजलधार श्रीहरि पाद स्पर्शंजेयुचुं जनुदेंचि, सकल लोक जनंबुल दुरितंबुलु वापुचु भगवत्पदियनु पेरं देजरिल्लु। दीर्घ कालंबु स्वर्गंबुन विहरिंपुचु विष्णुपदंबुन नुत्तानपाद पुत्रुंडनुं, बरम भागवतुंडुनैन ध्रुवुंड् तन कुलदेवतयैन श्रीहरि पादोदकंबु प्रतिदिनंबुनु भक्तियोगंबुन निमीलित नेत्रुंडै, यानंद बाष्पंबुल रोमांचित गात्रुंडै यत्यादरंबुन नेडुनु शिरंबुन धरियिंपुचु नुन्नवाडु। अतनिकि नधोभागंबुन नुंडु मंडलाधिपतुलैन सप्तर्षुलुनु हरि पादोदक प्रभावंबु नेंरिगि तामु पोंदु तपस्सिद्धि याकाशगंगा जलंबुल स्नातुलगुटये यनि सर्वभूतांतर्यामि

---

होकर सुवर्णमय ब्रह्मपुर शोभित होता रहता है। उस पट्टण के आठ दिशाओं में लोकपालकों के पुर (नगर) रहते है। ३०

## अध्याय—१७

[कं.] हे नरेंद्र ! परमेष्ठि के पट्टण में हरि के पूर्व में [वामनावतार में] त्रिविक्रमण (तीनों लोकों को नापने) में सर्वेश्वर के चरणाग्र की नख-आघात से ऊर्ध्व अण्ड तत्र फूट गया। ३१ [व.] इस प्रकार चरण के नख-स्पर्श से विधे गये ऊर्ध्व कटाह के विवर से अंतःप्रवेश करनेवाली बाह्य जलधारा श्रीहरि का पादस्पर्श करते हुए आकर, सकल लोकों के जनों के दुरितों को दूर करती हुई भगवत्पादी (भगवान के चरणों से उत्पन्न) के नाम से प्रकाशमान हुई। दीर्घकाल तक स्वर्ग में विहार करते हुए विष्णुपद में रहनेवाले उत्तानपाद के पुत्र और परम भागवत ध्रुव अपने कुलदेवता श्रीहरि के पादोदक को, प्रतिदिन भक्तियोग में निमीलित नेत्र वाला बनकर आनन्द बाष्पों से रोमांचित (पुलकित) गात्र वाला बनकर अत्यादर से आज भी सिर पर धारण करते हुए रहता है। उसके (ध्रुव के) अधोभाग में रहनेवाले मण्डलाधिपति सप्तऋषि भी हरि के पादोदक के प्रभाव को जानकर अपने को प्राप्त होनेवाली तपस्सिद्धि [का फल] आकाशगंगा के जलों में स्नात होना ही है, ऐसा जानकर सर्वभूतांतर्यामी (सर्वभूतों में रहनेवाले) ईश्वर में भक्ति रखकर, इतर

यगु नीश्वरुनियंदु भक्ति सलिपि, यितर पदार्थापेक्ष सेयक मोक्षार्थि मुक्तिमार्गंबु बहुमानंबु सेयु तॆरंगुन- बहुमान युक्तंबुगा दम जटाजूटंबुलयंदु नेडुनु धरियिपुचुंडुदुरु ॥ 32 ॥

सी. अंत नसंख्यंबुलैन दिव्य विमान संकुलंबुलनु विशालमैन
देवमार्गंबुन दिगि वच्चि चंद्र मंडलमु दोचुचु मेरुनग शिखाग्र-
मुननु ना ब्रह्मदेवुनि पट्टणमुनकु वच्चि यंदुल जतुर्द्वारमुलनु
वरुसतो दीर्घ प्रवाहंबुलगुचुनु ब्रवहिंचि यमल प्रभावमुलनु

आ. नरुगु लवणसागरांतंबुलुग नाल्गु
मोमुलंबु नाल्गु नाममुलनु
दस्रु गन्नवारि दनवारि दोगिन
वारिकॆल्ल नमृतवारि यगुचु ॥ 33 ॥

व. अंदु सीतयनुपेर विनुति नोंदिन यम्महानदी प्रवाहंबु ब्रह्म सदन पूर्वद्वारंबुन वॆडलि, केसरावलयंबु दडुपुचु गंधमादनाद्रिकि जनि, भद्राश्ववर्षंबु बावनंबु सेयुचु बूर्व लवण सागरंबुनं ब्रवेशिंचु। चक्षुवनु पेर देजरिल्लॆडु दीर्घ प्रवाहंबु पश्चिम द्वारंबुन वॆडलि, माल्यवत्पर्वतंबुनं बडि, केतुमालवर्षंबु बवित्रंबुसेयुचु बश्चिम लवणार्णवंबुनं गलयु। भद्रयनुपेर वॆलुगोंदिन

पदार्थों की अपेक्षा न कर, मोक्षार्थी के मुक्तिमार्ग का बहुमान (अधिक मान) करने के समान अधिक आदर के साथ अपने जटाजूटों में आज भी [गंगाजल को] धारण करते रहते है। ३२ [सी.] तब असंख्य दिव्य विमानों से संकुल फिर भी विशाल देवमार्ग से उतर आकर, चंद्रमण्डल में दिखाई पड़ते हुए, मेरु नग के शिखराग्र पर स्थित उस ब्रह्मदेव के पट्टण में आकर, [वह आकाशगंगा] उसमे चतुर द्वारों से क्रमशः दीर्घ प्रवाह-युक्त होकर प्रवाहित होकर अमल प्रभा से लवण सागर तक जाती है। [आ.] चारों मुखों में (द्वारों या दिशाओं में) चार नामों से युक्त होकर वह [आकाशगंगा] अपने को देखनेवालों, [तथा] अपने वारि (जल) में अवगाहन करनेवालों के लिए अमृतवारि (अमृतजल) होकर रहती है*। ३३ [व.] उनमें सीता नाम से लब्ध प्रतिष्ठ इस महानदी का प्रवाह ब्रह्मसदन के पूर्वद्वार स निकलकर, केसरावलय को भिगोते हुए, गंधमादन-अद्रि जाकर, भद्राश्व वर्ष को पावन करते हुए, पूर्व लवणसागर में प्रवेश करता है। चक्षु के नाम से प्रकाशमान दीर्घ प्रवाह पश्चिम द्वार से निकलकर, माल्यवत्-पर्वत पर गिरकर, केतुमाल वर्ष को पवित्र करते हुए, पश्चिम लवण-अर्णव (-समुद्र) में मिल जाता है। भद्रा नाम से प्रकाशमान

* इस छंद मे 'वारि' शब्द का प्रयोग चार वार हुआ है। यह यमक अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

यतुल प्रवाहंबुत्तर द्वारंबुन वेडलि, कुमुद नील श्वेताख्य पर्वतशिखरंबुलं ग्रमंबुन ब्रवहिंपुचु श्रृंग नगंबुनकुंजनि, मानसोत्तरंबुलगु कुरु भूमुल बवित्रंबु सेयुचु नुत्तर लवण सागरंबु जेरु। अलकनंद यनि प्रख्याति गांचिन यम्महानदी प्रवाहंबु ब्रह्म सदन दक्षिणद्वारंबुन वेडलि, यत्यंत दुर्गमंबुलैन भूधरंबुल गडचि, हेमकूट हिमकूट नगंबुल नुत्तरिंचि, यति वेगंबुन गर्मक्षेत्रंबगु भारतवर्षंबु बावनंबु सेयुचु दक्षिण लवणांबुधि गलयु ॥ 34 ॥

सी. जगतिलो मेरु वादिग वर्वतमुलकु बुत्रिकलैनट्टि पुण्यतीर्थ-
मुलु वेलसंख्यलु गलवु जंबूद्वीपमंदु भारतवर्ष मरय गर्म-
भूमि तक्किन वर्षमुल दिवंबुन नुंडि भुविकि वच्चिनवारु पुण्यशेष-
मुलु भुजिपुचु नुंड्रु भू स्वर्ग मनदगु ना वर्षमुन नुंडुनट्टि वार-

आ. लयुत संख्य वत्सरायुवु लयुत मा,-तंग बलुलु देवता समानु-
लतुल वज्रदेहु लधिक प्रमोदितु, लप्रमत्तु लार्यु लनघु लधिप ! ॥ 35 ॥

व. मरियुनु सुरतसुखानंदंबुन मोक्षंबुननगुं गैकोनक सकृत्प्रसूतुलगुचु ननवरतंबुनु त्रेतायुगकालंबुनं गलिगि प्रवर्तितुरु। ई यष्टवर्षंबुलयंदुनु देवतागणंबुलु तम भृत्यवर्गंबु लत्युपचारंबुलु सेयुचुंड, नेलल ऋतुवुलयंदु

---

अतुल प्रवाह उत्तर द्वार से निकलकर क्रम से कुमुद नील श्वेत नामक पर्वत-शिखरों पर प्रवाहित होते हुए, श्रृंग नग को जाकर, मानस के उत्तर में स्थित कुरु भूमियों को पवित्र करते हुए उत्तर लवण सागर को प्राप्त होता है। अलकनंदा के नाम से प्रख्यात उस महानदी का प्रवाह ब्रह्मसदन के दक्षिण द्वार से निकलकर, अत्यन्त दुर्गम भूधरों (पर्वतों) को पार कर, हेमकूट-हिमकूट नगरों को पार कर, अति वेग से कर्मक्षेत्र भारतवर्ष को पावन करते हुए दक्षिण की लवणांबुधि में मिल जाता है। ३४ [सी.] हे अधिप ! जगत में मेरु आदि पर्वतों की पुत्रिकाएँ (पर्वतों पर स्थित) पुण्यतीर्थ (पुण्यक्षेत्र) हजारों की संख्या में हैं। जंबू द्वीप में सोचने पर भारतवर्ष कर्मभूमि है। अन्य वर्षों में दिव (स्वर्ग) से भुवि पर आये हुए लोग पुण्य शेषों का उपभोग करते रहते हैं। [आ.] भू-स्वर्ग कहने योग्य उस वर्ष में रहनेवाले हज़ार संख्या के वत्सरों के आयु वाले हजार मातंगों (हाथी) के बल वाले, देवता समान अतुल वज्र देह वाले अधिक प्रमुदित, अप्रमत्त आर्य और अनघ हैं। ३५ [व.] और भी सुरत सुखानन्द में मोक्ष की भी परवाह न करनेवाले सकृत-प्रसूत होते हुए अनवरत त्रेतायुग के काल से युक्त होकर आचरण करते हैं। इन अष्ट वर्षों में देवतागण अपने भृत्य वर्गों के अति उपचार (सेवा) करते रहने पर, समस्त ऋतुओं में किसलय-कुसुम-फल भरित-लताद्रियों से शोभित [उप] वनों में स्थित

गिसलय कुसुम फल भरितंबुलैन लतादुल शोभितंबुलगु वनंबुलं गल वष निधि गिरि द्रोणुलयंदुनु, गमला मोदितंबुलगु राजहंस कलहंसलु गल सरोवरंबुल यंदुनु जलकुक्कुट कारंडव सारस विनोदंबुलु गलिगि, मत्ताळि संकृति मनोहरंबुलै नाना विधंबुलैन कोलंकुलयंदुनु देवांगनल कामोद्रेक जंबुलैन विलास लीला विलोकनंबुलं दिवियंबडिन मनोवृष्टुलु गल देवगणंबुलु विचित्र विनोदंबुलं दगिलि यिच्छा विहारंबुलु सलुपु-चुंडुदुरु ॥ 36 ॥

कं. ई नववर्षंबुलयंदा, नारायणुडु वच्चि यनवरतमु लो
कानुग्रहमुनकै सुज्ञानंबीदलचि लील जरियिंचु दगन् ॥ 37 ॥

सी. वसुध निलावृत वर्षाधिपतियैन पुरहरुंडा वर्षमुन वनंबु
नंदु नुंडुटकु ना यंबिका शाप वशंबुन ना वनस्थलमु नंदु
नॆव्वरु वच्चिन नितुलै युंदुरा वनमंदु पार्वति यनुदिनंबु
नंगनाजन सहस्रार्बुदंबुलतोड नसमलोचनु गॊल्चु नतुल भक्ति

आ. नट्टि शिवुनिगोरि या यिलावृतवर्ष, मुन जरिंचु जनुलु मोदमुननु
गदिसि तत्प्रकाशकमुलैन मंत्र तं, त्रमुल बूज जेसि तलतुरॆपुडु ॥ 38 ॥

---

वर्षनिधि गिरि द्रोणों में, कमलामोदित (कमलों से प्रसन्न बने हुए) राजहंस और कलहंसों से युक्त सरोवरों में, जलकुक्कुट, कारंडव, सारस [आदि पक्षियों के] विनोदों (क्रीडाओं) से युक्त, मत्त अलियों की झंकृति से मनोहर बने हुए नाना प्रकारों के सरोवरों में, देवांगनाओं के कामोद्रेक को उत्पन्न करनेवाले विलास-लीला-विलोकनों से आकृष्ट मनोदृष्टि वाले देवगण विचित्र विनोदों में आसक्त होकर इच्छा-विहार करते रहते हैं। ३६ [कं.] इन नव वर्षों में वह नारायण अनवरत लोकानुग्रहकारक सुज्ञान को देना चाहकर लीला से उचित रूप से विहार करता रहता है। ३७ [सी.] वसुधा पर इलावृत वर्ष का अधिपति पुरहर उस वर्ष में वन में रहने का [कारण यह है]। अंबिका के शापवश से उस वनस्थल में कोई आये वह स्त्री बनकर रहता है। उस वन में पार्वती अनुदिन सहस्र-अर्बुद (-दस करोड़) अंगनाजनों (सखियों) के साथ असमलोचन (शिव) की अतुल भक्ति से सेवा करती है। [आ.] ऐसे शिव को [प्राप्त करना] चाहकर उस इलावृत वर्ष में रहनेवाले जन मोद से मिलकर तत्प्रकाशक मंत्र-तंत्रों से पूजा कर सदा [उसका] स्मरण करते हैं। ३८

## अध्यायमु—१८

कं. भद्राश्व वर्षमंदुल, भद्रश्रवुडनँडि पेर वरगुचु दपनी-
याद्रि सम धैर्युडगुचु, समुद्रांतंबैन जगति वॊलुपुग नेलुन् ॥ 39 ॥

कं. आ नरवरुनकु प्रियतमु,-डैन हयग्रीवमूर्ति ननवरतंबुन्
ध्यान स्तोत्र जपानु,-ष्ठानावुल बूज जेसि सज्जनुलंतन् ॥ 40 ॥

आ. तत्प्रकाश कृत्प्रधान मंत्रार्थ सं,-सिद्धि जेसि मुक्ति जेंदि रप्पु-
डट्टि वर्षमंदु ना हयग्रीवुनि, दलचि कॊलचि मिगुल धन्युलगुचु ॥ 41 ॥

सी. हरि वर्षपतियैन नरहरि ननिशंबु नंदुन्न जनुलु महात्मुलैन
दैत्य दानवकुलोत्तमुलु प्रह्लादादि वृद्धुल गूडि संप्रीतितोड
सुस्नातुलै भक्ति जूपुचुनुंदुरु रम्य दुकूलांवरमुलु दाल्चि
तत्प्रकाशक मंत्र तंत्र जप स्तोत्र पाठक ध्यान तपःप्रधान-

ते. मैन सत्पूजलनु जेसि यचल बुद्धि
श्रीनृसिंहुनि जेरि पूजिंचि यतनि
करुण नॊंदुचु नतुल प्रकाशुलगुचु
भुक्ति मुक्तुल गैकॊंड्रु भूपवर्य ! ॥ 42 ॥

व. मरियु गेतुमालवर्षंबु नंदु भगवंतुंडु श्रीदेविकि संतोषंबु नॊसगुटकु

## अध्याय—१८

[कं.] भद्राश्व वर्ष में भद्रश्रव नाम से विलसित होते हुए तपनीयाद्रि (मेरु) सम धैर्य वाला होते हुए समुद्रान्त तक फैली जगती पर [वह भद्रश्रव] सुन्दरता से शासन करता है। ३९ [कं.] उस नरवर के लिए प्रियतम हयग्रीव मूर्ति का सज्जन अनवरत ध्यान-स्तोत्र-जप-अनुष्ठान आदि से पूजा करते हैं। ४० [आ.] तत्प्रकाशक कृत प्रधान मंत्रार्थ संसिद्धि से उस वर्ष में रहनेवालों ने हयग्रीव का स्मरण कर, सेवा कर धन्य होते हुए तब मुक्ति पायी। ४१ [सी.] हरिवर्ष का पति (राजा) नरहरि है। सदा उसमें रहनेवाले जन महात्मा और दैत्य-दानव कुलोत्तम प्रह्लाद आदि वृद्ध [जनों] से मिलकर संप्रीति के साथ सुस्नात होकर भक्ति प्रदर्शित करते रहते हैं। हे भूपवर्य ! रम्य दुकूलांबर (रेशमी कपड़े) पहनकर तत्प्रकाशक मंत्र-तंत्र-जप-स्तोत्र-पाठक-ध्यान-तप प्रधान [ते.] सत् पूजाओं को करके अचल बुद्धि से श्री नरसिंह के पास जाकर पूजा कर उसकी करुणा प्राप्त करते हुए अतुल प्रकाश वाले बनकर भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त करते हैं। ४२ [व.] और केतुमाल वर्ष में भगवान श्रीदेवी को संतुष्ट करने के लिए कामदेव रूप में रहता है।

गामदेवरूपंबुन नुंडु। अम्महापुरुषुनि यस्त्र तेजः प्रकाशंबुन प्रजापति दुहितलगु रात्र्यधिदेवतल गर्भंबुलु संवत्सरांतंबुन निर्जीवंबुलै स्रविंचु। आ कामदेवुंडुनु दनगति विलास लीलावलोकन सुन्दर भ्रूमंडल सुभगवदनारविंद कांतुलंजेसि श्रीरमादेविनि रमियिपंजेयु। भगवन्माया-रूपिणि यगु श्रीदेवियु, प्रजापति पुत्रिकलुनु, पुत्रुलनंन रात्रिबगल्लंगूडि, कामदेव स्तोत्र पाठक पूजा ध्यानादुलं बूजिपुचुंडुनंत ॥ 43 ॥

कं. विमलमति जित्तगिपुमु, रमणीयंबैन विमल रम्यकमनु व-
र्षंमुनकु नधिदेवत दानमरंगा मत्स्यरूपमगु हरि वलपन् ॥ 44 ॥

आ. अट्टि वर्षमुनकु नधिपति यगुचुन्न, मनुवु पुत्र पौत्र मंत्रिवरुल
गूडि मत्स्यमैन कुंभिनीधरु जित्त, मतुल भक्ति युक्ति हत्त गोलुचु ॥ 45 ॥

आ. तत्प्रकाश कृतप्रधान मंत्र स्तोत्र, -मुलनु धर्म कर्ममुलनु होम-
मुलनु जनुलु सेसि पुण्युलै भुक्ति मु, -क्तुलनु बोंदुचुंदुरेलमितोड ॥ 46 ॥

कं. विनुमु हिरण्मयवर्ष, -बुनकुं गूर्मावतारमुनु दाल्चिन या
वनजोदरु डधिदेवत, यनघुडु पितृपति महात्मुडर्यमुडु नृपा ! ॥ 47 ॥

कं. आ वर्षमंदु नर्यमु, डा वर्षजनंबु गूडि हरि जित्तमु लो-
भाविंचि संस्तवंबुलु, गाविपुचु भुक्ति मुक्ति गांचु गडंकन् ॥ 48 ॥

---

उस महापुरुष के अस्त्रों के तेज और प्रकाश से प्रजापति की दुहिताओं, रात्रि के अधिदेवताओं के गर्भ-संवत्सरांत में निर्जीव होकर स्रवित हो जाते हैं। वह कामदेव भी अपनी गति और विलास-लीला-अवलोकन-सुन्दर-भ्रूमण्डल से सुभग वदनारविन्द की कान्तियों से श्रीरमादेवी से रमण करता है (रमादेवी को प्रसन्न करता है)। भगवान की मायारूपिणी श्रीदेवी भी प्रजापति की पुत्रिका और पुत्र होनेवाले रात और दिन से युक्त होकर कामदेव की स्तोत्र-पाठ-पूजा-ध्यान आदियों से पूजा करती रहती है। तब ४३ [कं.] [हे परीक्षित नरेंद्र!] विमल मति से ध्यान दो! रमणीय और विमल रम्यक नामक वर्ष का अधिदेवता स्वयं मत्स्य रूपी हरि है। ४४ [आ.] ऐसे वर्ष का अधिपति होनेवाला मनु पुत्र-पौत्र-मंत्रिवरों से मिलकर मत्स्य बने हुए कुंभनीधर (विष्णु) का चित्त में अतुल भक्ति युक्तियों से सेवा करता रहता है। ४५ [आ.] तत्प्रकाश कृत प्रधान मंत्र-स्तोत्र और धर्म-कर्म और होम करके जन पुण्यात्मा बनकर प्रेम से भक्ति और मुक्तियों को प्राप्त करते हैं। ४६ [कं.] सुनो, हिरण्मय वर्ष के लिए कूर्मावतार को धारण करनेवाला वह वनजोदर अधिदेवता है। हे नृप! अनघ महात्मा अर्य पितृपति [वहाँ का राजा] है। ४७ [कं.] उस वर्ष में अर्य उस वर्ष के जनों के साथ हरि की चित्त मे भावना कर सस्तव करते हुए सप्रयत्न भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त करता है। ४८

## अध्यायमु—१९

कं. उत्तर कुरु भूमुलकुनु, हत्तुकोनि वराहदेहुडधिपतियैनन्
सत्तुग भूसति यतनिन्, जित्तमुलो निलिपि पूज सेयुचु नुंडुन् ॥ 49 ॥

कं. अरयग सीता लक्ष्मण, परिवृतुडै वच्चि रामभद्रुडु गडिमि
बरगु नधिदेवतग गिंपुरुष महा वर्षमुनकु भूप वरेण्या ! ॥ 50 ॥

आ. अट्टि रामभद्रु नंजनी सुतुंडु किं,-पुरुषगणमु गूडि पूज चेसि
तत्प्राकाशक प्रधान मंत्र स्तोत्र, पठनमुलनु दग नुपास्ति सेयु ॥ 51 ॥

सी. भारतवर्षाधिपतियगु बदरिकाश्रममुननुन्न नारायणुंडु
भूनाथ ! या महात्मुनि नारदादुलु भारतवर्षंबु प्रजलु प्रेम
बायक चेरि युपास्ति सेयुचु सांख्ययोगंबु नुपदेश मुचितवृत्ति
नंदि यंदरुनु गृतार्थुलै यट्टि नारायणदेवु नाराधनंबु

आ. चेसि यात्म जाल जिंतिचि तत्प्रका,-शकमुलैन मंत्र संस्तवमुल
बूज जेसि मुक्ति बोंदुचु नुंडुदु, रचलमैन भक्ति ननुदिनंबु ॥ 52 ॥

कं. भारतवर्षमु नंदुल, सारांशमुलैन पुण्य शैलंबुलु गं-
भीर प्रवाहमुलु गल, वारय तेंट्रिगितु वानि नवनीनाथा ! ॥ 53 ॥

व. मलयपर्वतमुनु, मंगळप्रस्थमुनु, मैनाकंबुनु, त्रिकूटंबुनु, ऋषभ पर्वतंबुनु,

---

## अध्याय—१९

[कं.] उत्तर कुरुभूमियों का, लगकर वराहदेही [विष्णु] अधिपति है। भू-सता उसे अधिकता से चित्त में धारण कर पूजा करती रहती है।४९ [कं.] हे भूपवरेण्य ! सोचने पर सीता लक्ष्मण से परिवृत होकर आनेवाला रामभद्र किंपुरुष-महावर्ष के लिए पराक्रम से अधिदेवता बनकर विलसित है। ५० [आ.] ऐसे रामभद्र का अंजनीसुत किंपुरुष-गण से युक्त होकर पूजा कर तत्प्रकाशकप्रधान मंत्र-स्तोत्र-पठनों से उचित ढंग से उपास्ति (उपासना) करता है। ५१ [सी.] हे भूनाथ ! भारतवर्ष का अधिपति बदरिकाश्रम में स्थित नारायण है। उस महात्मा के नारद आदि और भारतवर्ष की प्रजा प्रेम से निरन्तर उपास्ति करती है। उचित वृत्ति से सांख्य-योग का उपदेश पाकर सभी कृतार्थ हुए। ऐसे नारायण देव की आराधना करके [आ.] आत्मा में अधिक चिन्ता कर तत्प्रकाशक मंत्र-संस्तवों से पूजा कर अनुदिन अचल भक्ति से मुक्ति प्राप्त करके रहते हैं। ५२ [कं.] भारतवर्ष में सारअंश वाले पुण्यशैल और गंभीर प्रवाह हैं। हे अवनिनाथ ! उन्हें सविवरण समझाऊँगा। ५३ [व.] मलयपर्वत, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ पर्वत, कूटर, गोल्ल,

गूटरमुनु, गोल्लमुनु, सह्यपर्वतंबुनु, वेदगिरियुनु, ऋष्यमूक पर्वतंबुनु, श्रीशैलंबुनु, वेंकटाद्रियुनु, महेंद्रंबुनु, वारिधरंबुनु, विंध्यपर्वतंबुनु, शुक्तिमत्पर्वतंबुनु, ऋक्षगिरियु, वारियात्रबुनु, द्रोणपर्वतंबुनु, जित्रकूटंबुनु, गोवर्धनाद्रियुनु, रैवतकंबुनु, गुकुंभंबुनु, नीलगिरियु, गाकमुखंबुनु, निद्रकीलंबुनु, रामगिरियु, नादिगा गल पुण्यपर्वतंबु लनेकंबुलु गलवु। आ पर्वत पुत्रिकलैन चंद्रपटयु, दाम्रपर्णियु, नवटोदयु, गृतमालयु, वैहायसियु, गावेरियु वेणियु, वयस्विनियु, बयोदयु, शर्करावर्तयु, वुंगभद्रयु, गृष्णवेणियु, भीमरथियु, गोदावरियु, निर्विंध्ययु, वयोष्णियु, दापियुरेवानदियु, शिलानदियु, सुरसयु, जर्मण्वतियु, वेदस्मृतियु, ऋषिकुल्ययु, द्रिसमयु, गौशिकियु, मंदाकिनियु, यमुनयु, सरस्वतियु, दृषद्वतियु, गोमतियु, सरयुवुनु भोग वतियु, सुषमयु, शतद्रुवुनु, जंद्रभागयु, मरुध्वृथयु, वितस्तयु, नसिकिनयु, विश्वयु, ननु नी महानदुलुनु, नर्मद, सिंधुवु, शोणयनु नदंबुलुनु नयिन महाप्रवाहंबु ली भारतवर्षंबुनं गलवु। अंदु सुस्नातुलैन मानवुलु मुक्तिं जेंदुदुरु। मरियु नी भारतवर्षंबुन जन्मिचिन पुरुषुलु शुक्ल लोहित कृष्णवर्ण रूपंबु लगु त्रिविध कर्मंबुलंजेसि क्रमंबुग देव मनुष्य नरक गतुलनु त्रिविधगतुल वोंदुदुरु। विनुमु। रागद्वेषादि शून्युडुनु नवाङ्मानसगोचरुडुनु ननाधारुंडु नगु श्री वासुदेव मूर्तियंदु जित्तंबु निलिपि, भक्तियोगंबुन नाराधिचेंडु महात्मुलविद्या ग्रंथि दहनंबु गाविचुटंजेसि परम

---

सह्य पर्वत, वेदगिरि, ऋष्यमूक पर्वत, श्रीशैल, वेंकटाद्रि, महेंद्र, वारिधर, विंध्यपर्वत, शुक्तिमत पर्वत, ऋक्षगिरि, पार्यात्र, द्रोणपर्वत, चित्रकूट, गोवर्धनाद्रि, रैवतक, कुकुम्भ, नीलगिरि, काकमुख, इंद्रकील, रामगिरि आदि पुण्यपर्वत अनेक है। उन पर्वतों की पुत्रिकाएँ चंद्रपटा, ताम्रपर्णी, नवदोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, पयोदा, सर्करावर्ता, तुंगभद्रा, कृष्णवेणी, भीमरथी, गोदावरी, निर्विध्या, पयोष्णी, तापी, रेवानदी, शिला नदी, सुरसा, चर्मण्वती, वेदिस्मृती, ऋषिकुल्या, त्रिसमा, कौशकी, मंदाकिनी, यमुना, सरस्वती, तृषद्वती, गोमती, सरयू, भोगवती, सुषमा, शतद्रू, चंद्रभागा, मरुद्वृथा, वितस्ता, हसिक्नी, विश्वा नामक महानदियाँ नर्मदा, सिंधु, शोण नामक नद रूपी महाप्रवाह इस भारतवर्ष में हैं। उनमें सुस्नात होनेवाले मानव मुक्ति प्राप्त करते हैं। और इस भारतवर्ष में जन्म लेनेवाले पुरुष शुक्ल-लोहित-कृष्णवर्ण रूपक त्रिविध (सात्त्विक, राजस, तामस) कर्मों को कर क्रमशः देव, मनुष्य, नरक गति नामक त्रिविध गतियों को प्राप्त करते हैं, सुनो। राग-द्वेष आदि से शून्य, अवाङ् मानस गोचर अनाधार होनेवाले श्री वासुदेवमूर्ति में चित्त को स्थिर कर, भक्तियोग से आराधना करनेवाले महात्मा, अविद्याग्रंथी को जला देने से, परम भागवतोत्तम जिस उत्तम गति को

भागवतोत्तमुलु पोंदेडु नुत्तम गतिनि जेंदुदुरु। कावुन भारतवर्षंबु मिगुल नुत्तमंबनि महापुरुषुलिट्लु स्तुतिपुचुंडुदुरु ॥ 54 ॥

उ. भारतवर्ष जंतुवुल भाग्यमु लेमनि चेप्पवच्चु ! नी
भारतवर्षमंदु हरि पलमरु पुट्टुचु जीवकोटिकि
धीरततोड दत्त्वमुपदेशमु सेयुचु जेलिम सेयुचु
न्नारय बांधवाकृति गृतार्थुल जेयुचुनुंडु नेंतयुन् ॥ 55 ॥

कं. तन जन्म कर्ममुलनु, गोनियाडेडि वारि कॅल्ल गोरिन वेल्लन्
दनियग नोसगुचु मोक्षं,-बनयमु गृपसेयु गृष्णुडवनीनाथा ! ॥ 56 ॥

व. इट्लु भारतवर्षबु नंदुल जनंबुलकु नेंद्दियु नसाध्यंबु लेदु। नारायण स्मरणंबु सकल दुरितंबुल नडंचु। तन्नाम स्मरण रहितंबुलैन यज्ञ तपो दानादुलु दुरितंबुल नडंपलेवु। ब्रह्म कल्पांतंबु ब्रतिकॅडि यितर स्थानंबुनं बुनर्जन्म भयंबुन भीतिल्लुचु नुंडुटकन्न, भारतवर्षंबुनंदु क्षणमात्रंबु मनंबुन सर्वसंग परित्यागंबु चेसिन पुरुष श्रेष्ठुनकु श्रीमन्नारायण पद प्राप्ति यति सुलभंबुग संभविंचु। कावुन नट्टि युत्तममगु नी भारतवर्षंबे कोरुचुंडुदुरु। मरियु नेंक्कड वैकुंठुनि कथा वासन लेकुंडु, नेदेशंबुन सत्पुरुषुलैन परम भागवतुलु लेकुंडुदु, रे भूमिनि यज्ञेश्वरुनि महोत्सवंबुलु

---

प्राप्त करते हैं, उस गति को प्राप्त होते है। अतः भारतवर्ष अति उत्तम है। ऐसा कह महापुरुष इस प्रकार स्तुति करते रहते हैं। ५४ [उ.] भारतवर्ष के जन्तुओं (जीवों) के भाग्य के बारे में क्या कहें ! इस भारतवर्ष में हरि कई बार जन्म लेते हुए जीवकोटि को धीरता से तत्त्व का उपदेश करते हुए, स्नेह करते हुए, सोचने पर बंधु के समान अधिक कृतार्थ करता रहता है। ५५ [कं.] हे अवनीनाथ ! अपने जन्मकर्मों की प्रशंसा करनेवाले सभी को मन चाहे समस्त [पदार्थों को] तृप्त होने तक देते हुए, श्रीकृष्ण सदा मोक्ष प्रदान करता है। ५६ [व.] इस प्रकार भारतवर्ष के जनों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। नारायण का स्मरण सभी दुरितों का दमन करता है। उसके नाम-स्मरण से रहित यज्ञ-तप-दान आदि दुरितों का दमन नहीं कर सकते। ब्रह्मकल्पांत तक जीवित रहनेवाले इतर स्थान में पुनर्जन्म के भय से डरते हुए रहने की अपेक्षा भारतवर्ष में क्षण मात्र के लिए मन में सर्व संग परित्याग करनेवाले पुरुष-श्रेष्ठ को श्रीमन्नारायण की पदप्राप्ति अति सरलता से हो जाती है। अतः ऐसे उत्तम इस भारतवर्ष को ही [लोग] चाहते हैं। और जहाँ वैकुण्ठ वाले की कथा-वासना नहीं है, जिस देश में सत्पुरुष परम भागवत नहीं होते, जिस भूमि पर यज्ञेश्वर (विष्णु) के महोत्सव नहीं होते हैं, वह [देश] सुरेन्द्रलोक (स्वर्ग) [सम] होने पर भी रहने योग्य नहीं है। ज्ञान

लेकयुंडु, नदि सुरेंद्र लोकंबैन नुंडं दगवु। ज्ञानानुष्ठान द्रव्य कलापंबु-चेत मनुष्य जातिबोंदि, तपंबुन मुक्ति बोंदकुंडेनेनि, मृगंबुल माङ्कि नतंडु दनकुं दानें बंधनंबु नोंदु। भारतवर्षंबु नंदु प्रजलचेत श्रद्धा-युक्तंबुगा ननुष्ठिपंबडुड यज्ञंबुलयंदु वेल्वंबडुड हविस्सुलनु बॅक्कु नामंबुलं बुंडरीकाक्षुंडंदि, तनमोदि भक्ति यधिकंबुगा जेयु। अट्टि भारतवर्षंबु नंदलि प्रजल मोवं गरुणिंचि सर्वेश्वरुं डिह पर सौख्यंबुल नोसगुचुंडु। जंबूद्वीपंबुन सगरात्मजु लश्वमेधाश्वंबु नन्वेषिप भूनि भूखननंबु सेयुटं जेसि स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मंदेहारुण, पांचजन्य, सिहळ, लंकलनु नॅनिमिदि युपद्वीपंबुलु गलिगें ॥ 57 ॥

## अध्यायमु—२०

सी. लक्षयोजनमुल लवणाब्धि परिवृतमगुचु जंबूद्वीप मतिशयिल्लु
विनु रॅडुलक्षलु विस्तृतमुगनु प्लक्षद्वीप मिक्षुरसाब्धि चेत
नावृतमैयुंडु नारूढमुग नंदु वृक्षंबु प्लक्षंबु विदितमुगनु
दनरु ना द्वीपंबु तरुनाम महिमचे मिगुल प्लक्षंबन मिंचि रहनि

आ. नंदु संचरिंचु नट्टि वारल कग्नि, देवुडमरु नादि दैवतयुग
नंदुलोन ना प्रियव्रत सुतुडगु, निध्मजिह्वुडनु महीवरुंडु ॥ 58 ॥

---

अनुष्ठान आदि द्रव्य-कलाप से मनुष्य-जाति (जन्म) को प्राप्त कर भी, तप से [जो व्यक्ति] मुक्ति प्राप्त नहीं करता, वह मृगों के समान अपने-आप वन्धनों में बँध जाता है। भारतवर्ष में प्रजाओं से श्रद्धायुक्त रूप से अनुष्ठित यज्ञों में हवन किये गये हविस् को अनेक नामों से पुण्डरीकाक्ष प्राप्त करता है। और अपने प्रति भक्ति को अधिक करता है। ऐसे भारतवर्ष की प्रजा पर करुणा दिखाकर सर्वेश्वर इह-पर सौख्यों को देता रहता है। जम्बूद्वीप में सगरात्मज अश्वमेध के अश्व को ढूँढ़ने का प्रयत्न कर भूखनन (भूमि को खोदना) करने पर स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मंदेहारुण, पांचजन्य, सिहल, लंका नामक आठ उपद्वीप हुए। ५७

## अध्याय—२०

[सी.] लक्ष योजन वाली लवणाब्धि (लवण-सागर) से परिवृत होते हुए जम्बूद्वीप अतिशय को प्राप्त करते हुए [स्थित] है। सुनो। दो लाख [योजन] विस्तृत होकर लक्षद्वीप इक्षुरसाब्धि [इक्षुसागर] से आवृत होकर है। आरूढि से उसमे विदित रूप से वृक्ष-प्लक्ष (शमी) है। शोभित वह द्वीप तरु (वृक्ष) के नाम की महिमा से प्लक्ष कहलाकर

व. नरेंद्रा ! यी यिध्मजिह्वुंडा प्लक्षद्वीपंबु नेडु वर्षंबुलुग विभजिंचि, यंदु ना वर्ष नाम धारुलुगा नुंड् तन पुत्रुलगु शिव, यशस्त्र, सुभद्र, शांत, क्षेम, अभय, अमृतु लनियेडु नेडुगुर नेडु वर्षंबुल कधिपतुलं गाविंचि, तपंबुनकुं जनियें। आ वर्षंबुलयंदु मणिकूट, वज्रकूट, इंद्रसेन, ज्योतिष्म, धूम्रवर्ण, हिरण्यग्रीव, मेघमाललनु, नामंबुलं गल सप्त कुलपर्वतंबुलुनु, अरुणयु, सृमणयु, नंगिरसियु, साविंत्रियु, सुप्रभातयु, ऋतंभरयु, सत्यंभरयु, नन सप्त महानदुलुनु, ना नदुलयंदु स्नातुलगुचु गत पापुलैन हंस, पतंग, गोर्ध्वायन, सत्यांगुलनु नामंबुलुगल चातुर्वर्ण्यंबुनु गलिगियुंडु। अंदु बुरुषुलु सहस्र वत्सर जीवुलुनु, देवतासमुलुनु, दृष्टि मात्रंबुन श्रमस्वेदादि रहितंबगु नपत्योत्पादनंबु गल वारलु नगुचु वेदत्रयात्मकुंडुनु, स्वर्गद्वार-भूतुंडुनु भगवत्स्वरूपियुनगु सूर्युनि वेदत्रयमुन सेविंचुदुरु। प्लक्षद्वीपं-बादिगा मीददि द्वीप पंचक मंदलि पुरुषुलकु नायुरिंद्रिय पटुत्वंबुलुनु, तेजोबलंबुलुनु, दोडनें जनिंयिपुचुंडु ॥ 59 ॥

कं. प्लक्ष द्वीपमु द्विगुणित, लक्षेक्षुरसाब्धि सुट्टिरा विलसिल्लु
निक्षुरसोद द्विगुणं, बक्षयमुग शालमली महाद्वीपमिलन् ॥ 60 ॥

---

सुंदरता से स्थित है। [आ.] उसमें रहनेवालों के लिए अग्निदेव आदि देवता होकर विलसित है। उसमें (द्वीप में) उस प्रियव्रत का सुत इध्मजिह्व नामक राजा है। ५८ [व.] हे नरेंद्र ! यह इध्मजिह्व उस प्लक्ष द्वीप को सात वर्षों में विभाजित कर, उनमें उन-उन वर्ष नामधारी अपने पुत्रों, शिव, यशस्य, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अभय, अमृत नामक सातों को सात वर्षों का अधिपति बनाकर तप के लिए गया। उन वर्षों में मणिकूट, वज्रकूट, इंद्रसेन, ज्योतिष्मत्, धूम्रवर्ण, हिरण्यग्रीव, मेघमाला नामक सप्त कुलपर्वतों से और अरुणा, सृमणा, अंगीरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतंभरा, सत्यंभरा नामक सात महानदियों से और उन नदियों में स्नात होकर गत-पाप वाले बने हुए हंस, पतंग, गोर्ध्वायन, सत्यांग नाम वाले चातुर वर्ण्य (चार वर्ण वालों) से युक्त रहता है। उसमें पुरुष सहस्र वत्सर जीव (हजार वर्ष जीनेवाले), देवतासमूह दृष्टिमात्र से, श्रम, स्वेद आदि से रहित अपत्य (संतान) का उत्पादन करनेवाले होते हुए, वेदत्रयात्मक और स्वर्ग का द्वार रूपी, भगवत्स्वरूपी होनेवाले सूर्य की वेदत्रय द्वारा सेवा करते रहते है। प्लक्ष द्वीप से लेकर आगे के पाँच द्वीपों में पुरुषों को आयु, इंद्रिय, पटुत्व और तेजोबल जन्म के साथ ही सृजित होते हैं। ५९ [कं.] प्लक्ष द्वीप से द्विगुणित लक्ष [योजन वाली] रसाब्धि के परिवृत करने पर शालमली महाद्वीप पृथ्वी पर अक्षय रूप से इक्षुरसाब्धि के द्विगुणित होने पर विलसित होता है। ६० [व.] उसमें शालमली वृक्ष

व. अंदु शाल्मली वृक्षंबु प्लक्षायामंबै तेजरिल्लु। आ वृक्ष राजंबुनकु नधो भागंबुन पतत्रिराजुगा नुंडु गरुत्मंतुंडु निलुकडगा वसियिंचु। शाल्मली वृक्षंबु पेर ना द्वीपंबु शाल्मली द्वीपंबन विलसिल्लु। आ द्वीपपतियैन प्रियव्रतात्मजुंडगु यज्ञबाहुवु तन पुत्रुलगु सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ह, पारिवर्ह, आप्यायन, अभिज्ञातु लनियेडु वारि पेर नेडु वर्षंबुलु नेपरिचि या वर्षंबुलयंदेडुवुर गुमारुल नभिषिक्तुलंजेसे। आ वर्षंबुलयंदु स्वरस शतशृंग, वामदेव, कुमुद, मुकुंद, पुष्पवर्ष, शतश्रुतुलनु पर्वत सप्त कंबुनु, अनुमतियु, सिनीवालियु, सरस्वतियु, गुहुवुनु, रजनियु, नंदयु, राकयु ननु सप्त महानदुलुनु गलवु। अंदु श्रुतधर, विद्याधर, वसुंधर, इध्मधर, सञ्ज्ञुलगु ना वर्ष पुरुषुलु भगवत्स्वरूपुंडुनु वेद मयुंडुनु, नात्मस्व- रूपुंडु नगु सोमुनि वेदमंत्रंबुलचेत नाराधिंतुरु। आ द्वीपंबु लक्ष चतुष्टय परिमित योजन विस्तृतमैन सुरा समुद्रमुचे नावृतमै तेजरिल्लु। अंदु ॥ 61 ॥

सी. भूनाथ! या सुरांबोधिकि जुट्टुगा नुंडु कुशद्वीप मुर्विमीद
दोरमै ताद्विचतुर्लक्ष योजनंबुलनु विस्तारमै पोलुपु मिगुलु
नंदु गुशस्तंभ मनिशंबु देवता कल्पितंबैनट्टि कांति चेत
दिक्कुलु वेलिंगिंचु द्वीपंबुनकु दन पेरनु सत्कीर्ति पेंपुसेयु

---

प्लक्षायाम होकर प्रकाशित होता है। उस वृक्षराज के अधोभाग में पतत्रि (पक्षियों का)-राजा गरुत्मान् स्थिर रूप से निवास करता है। शाल्मली वृक्ष के नाम से वह द्वीप शाल्मली द्वीप के नाम से विलसित होता है। उस द्वीप का पति (राजा), प्रियव्रत का आत्मज यज्ञबाहु ने अपने पुत्र सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ह, पारिवर्ह, आप्यायन, अभिज्ञात नामक उनके नाम पर सात वर्षों की व्यवस्था कर उन वर्षों के लिए सात पुत्रों को अभिषिक्त किया। उन वर्षों में स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुमुद, मुकुन्द, पुष्पवर्ष, शतश्रुत नामक सात पर्वत, अनुमती, सिनीवाली, सरस्वती, गुहू, रजनी, नन्दा, राका नामक सप्तमहानदियाँ हैं। उनमें श्रुतधर, विद्याधर, वसुंधर, इध्मधर नामक पुरुष जो उस वर्ष में रहते हैं, वे भगवत्स्वरूप वेदमय और आत्मस्वरूप वाले सोम की वेदमंत्रों के द्वारा आराधना करते हैं। वह द्वीप चार लाख योजन तक विस्तृत बने सुरा समुद्र से आवृत होकर रहता है। उसमें ६१ [सी.] हे भूनाथ! उस सुराम्बोधि से परिवृत कुशद्वीप पृथ्वी पर अतिशयता से स्वयं आठ लाख योजनों तक विस्तृत होकर अति सुन्दर बना रहता है। उसमें कुशस्तंभ सदा देवता कल्पित कांति से दिशाओं को प्रकाशित करता है। [और] द्वीप की अपने नाम से सत्कीर्ति को बढ़ाता रहता है। [ते.] ऐसे

ते. नट्टि दीविकि नधिपति यगु प्रियव्र-
तात्मजुंडु हिरण्यरेतसु डनंद
नरॅडि भूपति दन सुत नाममुलनु
वर्षमुलु सेसॅ नत्यंत हर्षमुननु ॥ 62 ॥

व. इट्लु हिरण्यरेतसुडु वसुदान, दृढरुचि, नाभि, गुप्त, सत्यव्रत, विप्र, वामदेवुलनु नामंबुलु गल पुत्रुल नामंबुल सप्तवर्षंबुलं गाविंचि, या कुमारुलु नंदु निलिपि, तानु दपंबुनकुं जनियॅ। आ वर्षंबुनंदु बभ्रु, चतुश्शृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोम, द्रविणंबुलनु नामंबुलुगल सप्त गिरुलुनु, रसकुल्ययु, मधुकुल्ययु, श्रुतविंदयु, मित्रविंदयु, देवगर्भयु, घृतच्युतयु, मंत्रमालयु ननु महानदुलुनु गलवु। आ नदीजलंबुल गृतमज्जनुलगुचु भगवंतुंडगु यज्ञपुरुषुनि गुशल, कोविद, अभियुक्त, कुलक संज्ञलु गल वर्ष पुरुषुलाराधिपु चुंदुरु ॥ 63 ॥

सी. आ कुशद्वीपंबु नरिकट्टुकॉनियुंडु नॅनिमिदि लक्षल घनघृताब्धि
या घृतसागरं बव्वल षोडश लक्ष योजनमुल ललितमगुचु
नुंडु ग्रौंचद्वीप मुर्वीश! यंदु मध्य प्रदेशंबुन नट्टि दीवि
पेरुगा दनपेरि बॅट्टगा जेसिन क्रौंचाद्रि गलदा नगंबु मुन्नु

आ. षण्मुखुंडु दिव्य शरमुन घन नितंबंबु दूयनेय वालवॅल्लि
गरिम दडुपुचुंडु वरुणुंडु रक्षिप नंदु मिगुल भयमु नॉंदकुंडॅ ॥ 64 ॥

---

द्वीप का अधिपति होनेवाला प्रियव्रत का आत्मज हिरण्यरेतस् नाम से शोभित भूपति ने अपने सुतों के नाम से अत्यंत हर्ष से वर्षों (देशों) [का नाम] रखा। ६२ [व.] इस प्रकार हिरण्यरेतस् वसुदान, दृढ़रुचि, नाभि, गुप्त, सत्यव्रत, विप्र, वामदेव नामक पुत्रों के नामों पर सप्तवर्ष कर उन कुमारों को वहाँ स्थिर बनाकर (राजतिलक कर), स्वयं तप के लिए चला गया। उस वर्ष में बभ्रु, चतुश्शृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोम, द्रविण नामक सात पर्वत और रसकुल्या, मधुकुल्या, श्रुतविंदा, मित्रविंदा, देवगर्भा, घृतच्युता, मंत्रमाला नामक सात महानदियाँ हैं। उन नदी जलों में स्नान करके भगवान यज्ञपुरुष की कुशल, कोविद, अभियुक्त, कुलक नाम वाले वर्ष पुरुष (उस वर्ष में रहनेवाले) आराधना करते रहते हैं। ६३ [सी.] उस कुशद्वीप को घेरकर आठ लाख [योजन वाली] महान् घृताब्धि रहती है। उस घृतसागर के उस पार सोलह लाख योजनों से शोभित होते हुए क्रौंच द्वीप रहता है। हे उर्वीश! उसमें मध्य प्रदेश में स्थित क्रौंचाद्रि अपने नाम पर उस द्वीप को महान् बनाता है। वह नग पूर्व में [आ.] षण्मुख के दिव्य शर से घन नितंब को बेध देने पर आकाश-गंगा को गौरव से सींचता रहता है। वरुण के रक्षा करते रहने पर

व. नरेंद्रा ! या क्रौंच द्वीपपति यगु धृतपृष्ठुंडु दन कुमारुल ना पेळ्ळुगल यामोद, मधुवह, मेघपृष्ठ, सुधाम, ऋषिज्य, लोहितार्ण, वनस्पतुलनु वर्षंबुल कभिषिक्तुलंजेसि, परम कल्याणगुणयुक्तुंडैन श्रीहरि चरणारविंदंबुलु सेविंपुचुं दपंबुनकुं जनियें। आ वर्षंबुल यंदु शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपवर्हण, आनंद, नंदन, सर्वतोभद्रमुलनु सप्तसीमापर्वतंबुलुनु, अभययु, अमृतौघयु, आर्यकयु, तीर्थवतियु, तृप्तिरूपयु, पवित्रवतियु, शुक्लयुननु सप्तनदुलुनु गलवु। अंदुल पवित्रोदकंबुलनुभविंपुचु गुरु, ऋषभ, द्रविणक, देवक, संज्ञलु गलिगि, वरुणदेवुनि नुदकांजलुलं बूजिचुचुन्न चातुर्वर्ण्यंबुंडु ॥ 65 ॥

सी. जगतीश ! विनुमु क्रौंच द्वीपमुनु जुट्टियुंडु षोडश लक्ष योजनमुल
विस्तारमै पालवेल्लि यंदुननु शाकद्वीप मतुल प्रकाशमोंदु
दंडिमै मुप्पदि रेंडु लक्षल योजनमुल विस्तारमै यमरियुंडु
नंदुन शाकवृक्षामोद मा द्वीपमुनु सुगंधंबुन वेंनगजेसि

ते. यंत दनपेर दीवि प्रख्यात मगुट
जेसि यंदुन मिगुल प्रसिद्धि केंक्कें
नंदु मेधातिथियु गर्त यगुचुनुंडें
दविलि वेड्डुक दनदु नंदनुल जूचि ॥ 66 ॥

---

अधिक भीत नहीं हुआ। ६४ [व.] हे नरेंद्र ! उस क्रौंच द्वीप का पति धृतपृष्ठ अपने कुमारों के नाम वाले आमोद, मधुवह, मेघपृष्ठ, सुदाम, ऋषिज्य, लोहितार्ण, वनस्पति नामक वर्षों के लिए अभिषिक्त कर परम कल्याण गुणयुक्त श्रीहरि के चरणारविंदों की सेवा करते हुए तप करने के लिए चला गया। उन वर्षों में शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपवर्हण, आनन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र नामक सात सीमापर्वत और अभया, अमृतौघा, अर्यक, तीर्थवती, तृप्तिरूपा, पवित्रवती, शुक्ला नामक सात नदियाँ हैं। उनके पवित्र उदकों का उपभोग करते हुए गुरु, ऋषभ, द्रविणक, देवक नामों से युक्त होकर वरुणदेव की उदकांजलियों से (अंजलियों में जल लेकर) वरुण देव की पूजा करते हुए चार वर्ण वाले रहते हैं। ६५ [सी.] हे जगदीश ! सुनो, क्रौंच द्वीप को परिवृत करनेवाले सोलह लाख योजन विस्तृत दुधिया सागर है। उसमें शाकद्वीप अतुल प्रकाशित होता है। अतिशयता से बत्तीस लाख योजन के विस्तार को लेकर विराजमान है। उसमें शाकवृक्ष-आमोद (सुगंध) के उस द्वीप को अधिक सुवासित करने [ते.] पर वह द्वीप उस नाम से प्रख्यात हुआ। उसमें मेधातिथि [उसका] कर्ता (राजा) होकर रहा। उत्साह से अपने नन्दनों को देखता रहा। ६६

व. मरियु ना प्रियव्रत पुत्त्रुंडैन मेधातिथि तन पुत्त्रुल पेरंगल पुरोज़न, मनोजन, वेपमान, धूम्रानीक, चित्ररथ, बहुरूप, विश्वचारमुलनु संज्ञलु गल सप्तवर्षंबुलयंदु वारलकु बट्टंबु गट्टि, श्रीहरि पादसेव चेयुचु दपोवनंबुनकुं जनियें। आ शाकद्वीपंबु नंदु ईशान, उरुश्रृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोतो, देवपाल, महानसमुलनु सीमागिरुलुनु, अनघ, आयुर्द, उभयसृष्टि, अपराजित, पंचपरि, सहस्रस्मृति, निपधृति यनु सप्त नदुलुनु गलवु। आ नदीजलंबु लुपयोगिंचि, यच्चटि वारलु प्राणायामंबु सेसि, विध्वस्त रजस्तमोगुणुलै परम समाधिनि वायु रूपंबैन भगवंतुनि सेवितुरु। ऋतुव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, सुव्रत, नामंबुलु गल चातुर्वर्ण्यंबंदु गलिगियुंडु ॥ 67 ॥

सी. अट्टि शाकद्वीप मरिकट्टि तत्प्रमाणंबुन दधि समुद्रंबु वेलुगु
नंदुकु बरिवृतंबै पुष्कर द्वीप वल जतुष्षष्टि लक्षल विशाल
मम्महाद्वीपमंदयुत कांचन पत्रमुलु गलिगि कमलगर्भुनकु नास-
नंबगु पंकेरुहंबुंडु ना द्वीप मध्यंबुननु नोक्क मानसोत्त-

आ. रंबनंग बर्वतंबुंडु दनकु बू-
र्वा परमुल नुंडुनट्टि वर्ष-
मुलकु रेंटिकिट्लु निलिचिन मर्याद-
नगमनंग जाल वोंगड नेंगडि ॥ 68 ॥

---

[व.] और वह प्रियव्रत-पुत्र मेधातिथि अपने पुत्रों के नाम वाले पुरोजन, मनोजन, वेपमान, धूम्रानीक, चित्ररथ, बहुरूप, विश्वचार नामक सात वर्षों में उनका राजतिलक कर श्रीहरि की पादसेवा करते हुए तपोवन में गया। उस शाकद्वीप में ईशान, उरुश्रृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्र स्रोत, देवपाल, महानस नामक सीमागिरि, अनघा, आयुर्दा, उभयसृष्टि, अपराजिता, पंचपरी, सहस्रश्रुती, निपधृती नामक सात नदियाँ हैं। उन नदियों के जल का उपयोग करके वहाँ के लोग प्राणायाम कर रज और तमोगुण को विध्वस्त करके परम समाधि द्वारा वायुरूप भगवान की सेवा करते हैं। उसमें ऋतुव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, सुव्रत नामक चतुर् वर्णवाले रहते हैं। ६७ [सी:] ऐसे शाकद्वीप को घेरकर उसी प्रमाण से (उतना ही विशाल) दधि समुद्र प्रकाशित होता है। उससे परिवृत होकर पृथ्वी पर पुष्कर द्वीप चतु:षष्टि (६४) लाख [योजन] विशाल है। उस महाद्वीप में अयुत (दस हजार) कांचनपत्रों से युक्त होकर कमलगर्भ (ब्रह्मा) का आसन पंकरुह (कमल) स्थित है। उस द्वीप के मध्य में मानसोत्तर नामक [आ.] एक पर्वत है। अपने लिए पूर्व और अपर में रहनेवाले दोनों वर्षों के मध्य इस प्रकार स्थित होकर अतिशय प्रशंसित

व. इट्लु दनकु लोपलि वॆलुपलि वर्षंबुलु रॆंटिकि मर्यादाचलंबुनं बोलि युन्न मानसोत्तर पर्वतंबयुत योजन विस्तारंबुनु, नंतिय यौन्नत्यंबुनुं गलिगियुंडु। आ नगंबुनकु नलुदिक्कुल यंदुनु नालुगु लोकपालुर पुरंबुलुंडु। आ मानसोत्तर पर्वतंबु तुद सूर्यरथ चक्रंबु संवत्सरात्मकंबै यहोरात्रंबुलयंदु मेरु प्रदक्षिणंबु सेयु। अंदु ना पुष्कर द्वीपाधिपतियगु वीतिहोत्रुंडु रमणक, धातक नामंबुलु गल पुत्रुल निरुवुर वर्षद्वयंबुनंदु नभिषिक्तुलं जेसि, तानु पूर्वजुलेगिन तॆरंगुन भगवत्कर्मशीलुंडगुचु दपंबुनकुं जनियॆ। अंत ॥ 69 ॥

कं. मनुजेश्वर! या वर्षंबुन नॆप्पुडु संचरिंचु पुरुषुलु पद्मा-
सनु दग सत्कर्मकारा, धन सेयुदु रचलबुद्धि तात्पर्यमुनन् ॥ 70 ॥

कं. धरणीवल्लभ! विनु पुष्कर मनु द्वीपमुन लेरु चातुर्वर्ण्युल्
परगग नॆक्कुव तक्कुव, लॆरुगक समुलगुचु नुंडु रॆल्ल जनंबुल् ॥ 71 ॥

व. मरियु ना पुष्कर द्वीपंबु चतुष्षष्टि लक्षल योजन विस्तारंबैन शुद्धोदक समुद्रमुद्रितंबगुचुंडु। अव्वल लोकालोक पर्वतंबुंडु। शुद्धोदक समुद्र लोकालोक पर्वतंबुल नडुम रॆंडुकोट्ल योजन विस्तारंबैन निर्जन कांचन भूमि दर्पणोदर समानंबै, देवतावास योग्यंबुगानुंडु। आ भूमिजेरिन

---

वह मर्यादा (सीमा) नग के समान है। ६८ [व.] इस प्रकार अपने लिए भीतर और बाहर के दोनो वर्षों के लिए मर्यादाचल (सीमा पर्वत) के समान स्थित मानसोत्तर पर्वत अयुत योजन विस्तार और उतना ही औन्नत्य (ऊँचाई) वाला है। उस नग के चारो दिशाओं में चार लोकपालकों के पुर होते हैं। उस मानसोत्तर पर्वत के अंत मे सूर्य का रथचक्र संवत्सरात्मक (साल में एक बार) अहोरात्रियों में मेरु का प्रदक्षिण करता है। उसमें उस पुष्कर द्वीप का अधिपति वीतिहोत्र रमणक और धातक नामवाले दोनों पुत्रों को दोनों वर्षों के लिए अभिषिक्त कर स्वयं पूर्वजों के मार्ग का अनुसरण करते हुए भगवत्कर्मशील होते हुए तप करने के लिए गया। तब ६९ [क.] हे मनुजेश्वर! उस वर्ष में रहनेवाले पुरुष अचल बुद्धि के तात्पर्य से सदा पद्मासन (ब्रह्मा) की उचित रूप से सकर्मक-आराधना करते हैं। ७० [कं.] हे धरणीवल्लभ! सुनो, पुष्कर नामक द्वीप में चार वर्ण वाले नहीं है। समस्त जन ढंग से अल्प और अधिक [के भेदभाव को] न जानकर सम होकर (समानता के भाव से) रहते हैं। ७१ [व.] और वह पुष्कर भी चतुःषष्टि लाख योजन विस्तार वाले शुद्धोदक समुद्र से मुद्रित होकर (घिरकर) रहता है। उस पार लोकालोक पर्वत रहता है। शुद्धोदक समुद्र और लोकालोक पर्वतो के बीच में दो करोड़ योजन विस्तार वाली

पदार्थंबु सरल बोंद नशक्यंबुगा नुंडु। अटमीद लोकालोक पर्वतं बेंनिमिदि कोट्ल योजनंबुलु। सुवर्ण भूमियु सूर्यादि ध्रुवांतंबुलगु ज्योतिर्गणंबुलु मध्यंबुन नुंडुटंजेसि लोकालोक पर्वतं बनदगियुंडु। पंचाशत्कोटि योजन विस्तृतंबगु भूमंडल मानंबुनकु तुरीयांश प्रमाणंबु गल लोकालोक पर्वतंबु मीद नखिल जगद्गुरुवगु ब्रह्मचेत जतुर्दिशलयंदु ऋषभ, पुष्करचूड, वामन, अपराजित संज्ञलंगल दिग्गजंबुलु नालुगुनु लोकरक्षणार्थंबु निर्मितंबयुंडु। मरियुनु ॥ 72 ॥

सी. तनवु विभूतुलै तनरिन या देवबृंद तेज शौर्य बृंहणार्थ-
मै भगवंतुंडु नादि देवुंडुनु नैन जगद्गुरुं डच्युतुंडु
सरिलेनि धर्मविज्ञान वैराग्यादुलैन विभूतुल नलरियुन्न
यट्टि विष्वक्सेनुडादिगा वेलुगु पार्षदुलतो गूडि प्रशस्तमैन

ते. निज वरायुध दोर्दंड नित्य सत्त्व-
डगुचु ना पर्वतंबुपै नखिललोक-
रक्षणार्थंबु कल्पपर्यंत मतडु
योगमाया परीतुडै योप्पुचुंडु ॥ 73 ॥

व. इट्लु विविध मंत्र गोपनार्थंबा नगाग्रंबुननुन्न भगवंतुनिकि दक्क लोका-

---

निर्जन कांचन-भूमि दर्पण के उदर के समान (दर्पण के मध्य भाग के समान) देवताओं के लिए निवास योग्य रूप में रहता है। उस भूमि के प्राप्त पदार्थ को फिर से प्राप्त करना दुर्लभ होता है। उस पर (इसके अतिरिक्त) लोकालोक पर्वत आठ करोड़ योजन [विस्तृत] है। सुवर्ण-भूमि के और सूर्यादि-ध्रुवांत तक स्थित ज्योतिर्गणों के मध्य में रहने से लोकालोक पर्वत कहने योग्य है। पचाशत कोटि योजन [तक] विस्तृत भूमंडल मान (नाप) के तुरीयांश प्रमाणवाले लोकालोक पर्वत पर अखिल जगत्गुरू ब्रह्मा से चारों दिशाओं में ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन, अपराजित नामक चार दिग्गज लोकरक्षणार्थ निर्मित होकर रहते हैं। और भी ७२ [सी.] अपनी विभूतियाँ होकर विलसित उस देववृंद के तेज और शौर्य के बृंहण (व्याप्ति) के लिए भगवान आदिदेव जगद्गुरु और अच्युत अनुपम धर्म, विज्ञान, वैराग्य आदि विभूतियों से विलसित विष्वक्सेन आदि के रूप में तेजोमान पार्षदों (दरबारी) से युक्त होकर प्रशस्त [ते.] निज-वरायुध (श्रेष्ठ आयुध) बने हुए दोर्दण्ड (बाहुदण्ड) के नित्य सत्त्ववाला होता हुआ उस पर्वत पर अखिललोकरक्षणार्थ कल्प पर्यन्त वह (अच्युत) योगमाया-परीत (घिरा हुआ) होकर शोभायमान होता है। ७३ [व.] इस प्रकार विविध मंत्र गोपनार्थ उस नगाग्र पर स्थित भगवान के अतिरिक्त अन्यों के लिए लोकालोक पर्वत के उस पार

लोक पर्वतंबुनकु नव्वल नॉरुलकु संचरिंप नशक्यंबैयुंडु। ब्रह्मांडंबुनकु सूर्युंडु मध्यगतुंडै युंडु। आ सूर्युनकु नुभय पक्षंबुलयंदु निरुवदेनुकोट्ल योजन परिमाणंबुन नंड कटाहंबुंडु। अट्टि सूर्युनिचेत नाकाश दिक्स्वर्गा-पवर्गंबुलुनु, नरकंबुलुनु निर्णयिपंबडु। देव तिर्यङ्मनुष्य नाग पक्षि तृण गुल्म लतादि सर्व जीवुलकुनु सूर्युंडात्मयगुचु नुंडु ॥ 74 ॥

कं. कर मनुरागंबुन नो, धरणीमंडलमु सन्निधानंबॅल्लन्
नरवर ! यॅरुगं जॅप्पिति, मरि चॅप्पॅद विनुमु दिव्यमानंबॅल्लन् ॥ 75 ॥

## अध्यायमु—२१

### खगोळ विषयमु

आ. कमलजांड मध्यगतुडैन सूर्युंडु, भरितमैन या तपंबुचेत
मूडु लोकमुलनु मुंचि तपिपंग, जेसि कांति नॉद जेयुचुंडु ॥ 76 ॥

व. अट्टि भास्करुंडुत्तरायण दक्षिणायन वैषुवतंबुलनु नामंबुलु गल मांद्य तीव्र समान गतुल नारोहणावरोहण स्थानंबुलयंदु दीर्घह्रस्व समानंबुलुगा जेयुचुंडु ॥ 77 ॥

आ. मेष तुललयंदु मिहिरुंडहोरात्र-
लंडु दिरुगु सम विहारमुलनु

---

संचार करना अशक्त्य (शक्ति से परे) होकर रहता है। ब्रह्माण्ड के लिए सूर्य मध्यगत होकर रहता है। उस सूर्य के दोनो पक्षों में (दोनों ओर) पचीस करोड़ योजन परिमाण वाला अण्डकटाह रहता है। ऐसे सूर्य से आकाश, दिक्, स्वर्ग, अपवर्ग और नरक निर्णीत होते हैं। देव, तिर्यक्, मनुष्य, नाग, पक्षी, तृण, गुल्म, लता आदि सर्वजीवों के लिए सूर्य आत्मा होकर रहता है। ७४ [कं.] हे नरवर ! अधिक अनुराग से इस धरणीमण्डल के समस्त विधान को समझाकर बताया है। और [आगे] समस्त दिव्य, मान (नाप) के बारे में बताता हूँ। सुनो, ७५

## अध्याय—२१

### खगोल के बारे में

[आ.] कमलजाण्ड (ब्रह्माण्ड) के मध्यगत स्थित सूर्य परिपूर्ण आतप से तीनों लोकों को डुबोकर तप्त कर प्रकाशित करता रहता है। ७६ [व.] ऐसा भास्कर उत्तरायण, दक्षिणायन, वैशुवत् नामक मंद, तीव्र, समान गतियों से आरोहण अवरोहण स्थानों में दीर्घ, ह्रस्व, समान करता रहता है। ७७ [आ.] मेष, तुला, [राशियों] में मिहिर (सूर्य)

परगग वृषभादि पंचरासुलनु नौ
वक्कोक्क गडिय रात्रि दक्कि नडचु ॥ 78 ॥

आ. मिंचि वृश्चिकादि पंच रासुलनु नौ-
वक्कोक्क गडिय रात्रि निक्कि नडचु
दिवमुलंदु नॅल्ल दिगजारु नौक्कोक्क
गडिय नॅलकु दत्प्रकारमुननु ॥ 79 ॥

व. मरियु, निव्विधंबुन दिवसंबुलुत्तरायण दक्षिणायनमुल वृद्धि क्षयंबुल नौद, नौक्क यहोरात्रंबुन नेक पंचाशदुत्तर नवकोटि योजनंबुल परिमाणंबुगल मानसोत्तर पर्वतंबुन सूर्यरथंबु दिरुगुचुंडु। आ मानसोत्तर पर्वतंबुनंदु दूर्पुन देवधानि यनु निंद्रपुरंबुनु, दक्षिणंबुन संयमानि यनु यमनगरंबुनु, बश्चिमंबुन निम्लोचनियनु वरुणपट्टणंबुनु, नुत्तरंबुन विभावरि यनु सोमुनि पुटभेदनंबुनु देजरिल्लुचुंडु। आ पट्टणंबुलयंदु नुदय मध्याह्नास्तमय निशीथंबु लनियॅडु काल भेदंबुलनु, भूत प्रवृत्ति निवृत्ति निमित्तंबच्चटि जनुलकुं बुट्टिपुचुंडु सूर्युडॅपुडिंद्र नगरंबुन नुंडि गमनिंचु वदियेनु गडियलनु रॅंडु कोट्लुन् मुप्पदियेडु लक्षल डॅब्बदियैदुवेल योजनंबुलु नबियादिगा नडुचु। इव्विधंबुन निंद्र यम वरुण सोम पुरंबुल मीद जंद्रादि

---

अहोरात्रियों में समविहारों में संचार करता रहता है। ढंग से वृषभ आदि पाँच राशियों में रात्रि में एक-एक घड़ी कम संचार करता है। ७८ [आ.] वृश्चिक आदि पाँच राशियों में रात्रि में एक-एक घड़ी अधिक संचार करता है। उस प्रकार से महीने में एक घड़ी के समान दिन-दिन कम होता जाता है। ७९ [व.] और इस प्रकार उत्तरायण, दक्षिणायण में दिवसों के वृद्धि और क्षय को प्राप्त करने पर एक अहोरात्रि में एकपंचाशत उत्तर नव कोटि (नव करोड़ इक्यावन लाख) योजन परिमाण वाले मानसोत्तर पर्वत पर सूर्य का रथ घूमता है [ब्रह्माण्ड का एक वर्ष मानसोत्तर पर्वत के लिए एक दिन के समान होता है]। उस मानसोत्तर पर्वत के पूर्व में देवधानी नामक इंद्रपुर, दक्षिण में संयमनी नामक यमनगर, पश्चिम मे निम्लोचनी नामक वरुण पट्टण, उत्तर में विभावरी नाम से सोम का पुटभेदन (नगर) शोभायमान होते हैं। उन पट्टणों में उदय, मध्याह्न, अस्तमय, निशीथ नामक कालभेदों को भूतों की प्रवृत्ति और निवृत्ति के लिए वहाँ के जनों के लिए उत्पन्न करता रहता है। सूर्य सदा इंद्रनगर में रहकर परिशीलन करता रहता है। वहाँ से लेकर पंद्रह घड़ियों में दो करोड़ सैंतीस लाख पचहत्तर हजार योजन [दूर] चलता है। इस प्रकार इंद्र, यम, वरुण, सोमपुरों पर चंद्र आदि ग्रह नक्षत्रों से युक्त होकर संचार करते हुए बारह किनारे, छः छड़ (पहिये की हाल),

ग्रह नक्षत्रंबुलं गूडि संचरिंचुचु वंड्रंडंचुलु, नारु कम्मुलुनु, मूडु तोलुलुंगलिगि, संवत्सरात्मकंबं येक चक्रंबन सूर्युनिरथंबु मुहूर्तमात्रंबुन नष्ट शताधिक चतुस्त्रिंशल्लक्ष योजनंबुलु संचरिंचु ॥ 80 ॥

सी. इनु रथंबुननुन्न यिरुसोक्कटिय मेरु शिखरंबु नंदुनु जेरियुंडु
नोनर जक्रमु मानसोत्तर पर्वतंबंदुल दिरिगेडु ना रथंबु
निरुसुन नुन्न रेंडिरुसुलु दगुलंग ववनपाशंबुल वद्धमगुचु
ध्रुवमंडलंबुनंबुल नंटि युंडगा संचरिंचुचुनुंडु संततंबु

ते. नट्टि यरदंबु मुप्पदियारु लक्ष-
लंदु नंटिन काडियु नन्नि योज-
नमुल विस्तारमै तुरंगमुल कंध-
रमुल दगुलुचु वेलुगोंदु रमणतोड ॥ 81 ॥

व. आ रथंबुनकु गायत्रीछंदंबादिगा सप्तच्छंदंबुलु नश्वंबुलै संचरिंचु। भास्करुनकु नग्र भागंबुन नरुणुंडु नियुक्तुंडै रथंबु गडपुचुंडु। अंगुष्ठपर्वमात्र शरीरंबुलुगल यरुवदिवेल वालखिल्याख्युलगु ऋषिवरुलु सूर्युनिमुंदट सौर सूक्तंबुल स्तुतियिंप, मरियु ननेक मुनुलुनु गंधर्व किन्नर किंपुरुष नागाप्सरः पतंगादुलुनु नेलनेल वरुस क्रमंबुन सेविंप, तोम्मिदि कोट्लुन्नेबदियोक लक्ष योजनंबुल परिमाणंबु गल भूमंडलंबुनं दोक क्षणंबुन सूर्युंडु रेंडु वेलुन्नेबदि योजनमुलु संचरिंपुचु नोक यहोरात्रंबुनंदे

---

तीन नाभियों से युक्त होकर संवत्सरात्मक होकर एक चक्रवाला सूर्य का रथ मुहूर्त मात्र में चौंतीस लाख आठ हज़ार योजन [दूर] तक संचार करता है। ८० [सी.] सूर्य के रथ की एक धुरी मेरु शिखर से लगकर रहती है। शोभा से चक्र मानसोत्तर पर्वत पर घूमता है। वह रथ धुरी में स्थित दो धुरियों से लगकर रहते हुए पवन पाशों से बद्ध होकर सतत ध्रुवमण्डल से लगे रहकर संचार करता रहता है। [ते.] ऐसा रथ छत्तीस लाख जुआओं और उतने योजन विस्तार वाले तुरंगों के कंधरों से लगकर रमणीयता से प्रकाशित होता रहता है। ८१ [व.] उस रथ के लिए गायत्री छंद से लेकर सात छंद अश्व बनकर संचार करते रहते है। भास्कर के अग्र भाग में अरुण नियुक्त होकर रथ को चलाता रहता है। अंगुष्ठ के पर्व मात्र शरीरवाले साठ हज़ार वालखिल्य नामक ऋषिवर सूर्य के समक्ष सौर सूक्तों से स्तुति करते रहते हैं। सौर अनेक मुनि, गंधर्व, किन्नर, किंपुरुष, नाग, अप्सर, पतंग आदि क्रमशः हर मास सेवा करते रहते है। नो करोड़ इक्यावन लाख योजन परिमाण भूमण्डल में सूर्य एक क्षण में दो हज़ार पचास योजन [दूर तक] संचार करते हुए एक अहोरात्रि में (चौबीस घंटे में)

यी भूमंडल मंतयु संचरिंचु। अनिन शुकयोगींद्रुनकु बरीक्षिन्नरेंद्रुं-
डिट्लनियें ॥ 82 ॥

अध्यायमु—२२

कं. मुनिवर! मेरु ध्रुवुलकु, नोनर ब्रदक्षिणमु दिरुगुचुंडेडि नजुडा
यिनुडभिमुखुडै रासुल, कनुकूलत नेगु नंटि वदियेट्लोप्पुन्? ॥ 83 ॥

कं. अनि पलिकिन भूवरुनि
गनुगोनि शुकयोगि मिगुल गरुणान्वितुडै
मननुन श्रीहरि दलपुचु
विनुमनि क्रम्मरग निट्लु विनुपिंचें दगन् ॥ 84 ॥

व. नरेंद्रा! यतिवेगंबुन दिरुगुचुंडु कुलाल चक्रंबुनंदु जक्र भ्रमणमुनकु वेरैन गतिनोंदि, बंति सागि तिरिगेडु पिपीलिकादुल चंदंबुन, नक्षत्र-रासुलतो गूडिन कालचक्रंबु ध्रुव मेरुवुलं ब्रदक्षिणंबु तिरुगु नपुडा काल चक्रंबु वेंट संचरिंचु सूर्यादि ग्रहंबुलकु नक्षत्रांतरंबुल यंदुनु, राश्यंतरंबुल-यंदुनु, नुनिकि गलुगुटंजेसि सूर्यादि ग्रहंबुलकु जक्रगति स्वगतुल वलन गति द्वयंबु गलुगुचुंडु। मरियु ना सूर्युंडादिनारायणमूर्ति यगुचु लोकंबुल

समस्त भूमण्डल का संचार करता है। ऐसा कहने पर शुकयोगीन्द्र ने परीक्षित नरेंद्र से इस प्रकार कहा। ८२

अध्याय—२२

[कं.] हे मुनिवर! तुमने कहा कि मेरु और ध्रुव की शोभा से प्रदक्षिणा करते हुए घूमनेवाला अज (जन्म-रहित) वह इन (सूर्य) अभिमुख होकर राशियों के अनुकूल संचार करता है। वह कैसे सम्भव होगा? ८३ [कं.] ऐसा कहनेवाले भूवर को देखकर शुकयोगी अधिक करुणान्वित होकर, मन में श्रीहरि का स्मरण करते हुए, "सुनो" कहकर फिर इस प्रकार औचित्य से सुनाया। ८४ [व.] हे नरेंद्र! अतिवेग से घूमनेवाले कुलाल (कुम्हार के) चक्र में चक्र-भ्रमण से अलग गति को प्राप्त कर क्रम से घूमनेवाले पिपीलिकादियों के समान, नक्षत्र राशियों से युक्त कालचक्र के ध्रुव और मेरु की प्रदक्षिणा करते समय उस कलाचक्र, के साथ संचरण करनेवाले सूर्यादि ग्रहों के लिए, अन्यान्य नक्षत्रों में, अन्यान्य राशियों में अस्तित्व के होने पर सूर्यादि ग्रहों के लिए चक्र की गति और स्वगति के कारण गतिद्वय (दो प्रकार की गति) प्राप्त होती रहती है और वह सूर्य आदिनारायण मूर्ति होते हुए लोकों के योगक्षेम के लिए वेदत्रयात्मक

योग क्षेमंबुलकु वेदत्रयात्मकंबुनु, गर्मसिद्धिनिमित्तंबुनु, देवर्षि गणंबुलचेत, वेदांतार्थंबुल ननवरतंबु वितर्कमाणंबुनु नगुचुन्न तन स्वरूपंबुनु द्वादश विधंबुलुग विभजिंचि, वसंतादि ऋतुवुल ना या काल विशेषंबुलयंदु गलुग जेयुचुंडु। अट्टि परमपुरुषुनि महिम नी लोकंबुन महात्मुलगु पुरुषुलु वारि वारि वर्णाश्रमाचारमुल चॊप्पुन वेदोक्तप्रकारंबुगा भक्त्यतिशयंबुन नाराधिंपुचु क्षेमंबु नोंदुचुंदुरु। अट्टि यादि नारायणमूर्ति ज्योतिश्चक्रांतिर्वर्तियै स्वकीय तेजःपुंज दीपिताखिल ज्योतिर्गणंबुलु गलवाडै, द्वादशरासुलयंदु नोक संवत्सरंबुन संचरिंपुचुंडु। अट्टि यादिपुरुषुनि गमनविशेष कालंबुनु लोकुलु अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथ्यादुलचे व्यवहरिंपुचुंदुरु। मरियु नप्परम पुरुषुंडा रासुलयंदु षष्ठांश संचारंबु नोंदिन समयंबुनु ऋतुवनि व्यवहरिंचुदुरु। आ रासुलयंदु नर्धांश संचारमुन राशिषट्क भोगं बोंदिनतरि अयन मनि चॆप्पुदुरु। समग्रमुगा रासुलयंदु संचार मोंदिन यॆडल, नट्टि कालंबुनु संवत्सरंबनि निर्णयिंचुदुरु। इट्टि समग्र राशि संचारमुनंदु शीघ्रगति, मंदगति, समगतु लनियॆडु त्रिविध गति विशेषमुल वल्ल वेरुपडॆडु ना वत्सरंबुनु, संवत्सरमु, परिवत्सरमु, इळावत्सरमु, अनुवत्सरमु, इद्वत्सरमनि पंच विधंबुल जॆप्पुदुरु। चंद्रुंडुनु,

---

और कर्मसिद्धि के लिए देवर्षिगणों से वेदान्तार्थों से अनवरत वितर्क्यमान होनेवाले अपने स्वरूप को द्वादश प्रकार से विभक्त कर, वसंतादि ऋतुओं में उन-उन काल विशेषों में [अपने स्वरूप को] उपस्थित करता रहता है। ऐसे परमपुरुष की महिमा से इस लोक में महात्मा पुरुष अपने-अपने वर्णाश्रम-आचारों के अनुरूप, वेदोक्त प्रकार से, भक्ति की अतिशयता से आराधना करते हुए, क्षेम को प्राप्त करते रहते हैं। ऐसा आदिनारायण मूर्ति ज्योतिष चक्र के अंतर्वर्ती होकर स्वकीय (अपने) तेजःपुंज से दीपित अखिल ज्योतिर्गणों से युक्त होकर द्वादश राशियों में एक संवत्सर संचार करता रहता है। ऐसे आदिपुरुष के विशिष्ट गमनकाल को लोक (लोग) अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि आदियों से अभिहित करते हैं। और उस परमपुरुष के उन-उन राशियों में षष्ठांश संचरित होते समय को ऋतु कहते हैं। उन राशियों में अर्धांश संचार से राशिषट्क (छः राशि) के संचार के समय को अयन कहते हैं। समग्र रूप से राशियों में संचार को प्राप्त करने पर उस काल को संवत्सर कहकर निर्णीत करते हैं। इस प्रकार के समग्र राशि-संचार में शीघ्रगति, मंदगति, समगति नामक त्रिविध विशिष्ट गतियों से पृथक् होनेवाले उस वत्सर को संवत्सर, परिवत्सर, इलावत्सर, अणुवत्सर, इद्वत्सर के नाम से पंचविद् बताते हैं। चंद्र भी इसी प्रकार से उस सूर्यमंडल से लक्ष योजन [दूर] रहकर संवत्सर, पक्ष, राशि, नक्षत्र, भुक्तियों को ग्रहण करते

नी तॆरंगुन ना सूर्यमंडलंबुमीद लक्षयोजनंबुल नुंडि संवत्सर पक्ष राशि नक्षत्र भुक्तुलु ग्रहिंचुचु नग्रचारियै, शीघ्रगति जरिंचु। अंत, वृद्धिक्षयरूपंबुन बितृगणंबुलकु बूर्व पक्षा पर पक्षंबुलचेत नहोरात्रंबुल गलुग जेयुचु सकल जीव प्राणुंडै योक्क नक्षत्रंबु त्रिंशन्मुहूर्तंबु लनुभविंपुचु, षोडशकळलं गलिगि मनोमयान्नमयामृतमय देहुंड, देव पितृ मनुष्य भूत पशु पक्षि सरीसृप वीरुत्प्रभृतुलकुं ब्राणाप्यायनशीलुंडगुटंजेसि सर्व मयुंडनबडुनु ॥ 85 ॥

कं. चंद्रुनकु मीदै या, नंदनंबुन लक्षयोजनंबुल दारल्
प्रंबुकॊनि मेरु शैलं, बंदि प्रदक्षिणमु दिरुगु नभिजिद्‌भमुतोन् ॥ 86 ॥

सी. अटमीद दारल कन्निटि कुपरियै रॆंडु लक्षल शुक्रुंडु भास्क-
रुनिकि मुंदर् बिरुवुनु साम्य मृदु शीघ्र संचारमुलनु भास्करुनि माडिक
जरियिंपुचुंडुनु जनुलकु ननुकूलुडै वृष्टि नोसगुचु नंत नंत
जतुरत वृष्टि विष्कंभक ग्रहशांति नोनरिंचु वारल कोसगु शुभमु

ते. लुंडु नामीद सौम्युंडु रॆंडु लक्ष-
लनु जरिंपुचु रविमंडलंबु बासि
कंडल बडिननु जनुलकु क्षाम डांब-
रादि भयमुल बुट्टिंचु नतुल महिम ॥ 87 ॥

---

हैं। अग्रचारी होकर शीघ्रगति से संचरण करता है। तब वृद्धिक्षय रूप से पितृगणों को पूर्वपक्ष, अपर पक्षों से अहोरात्र (दिन और रात) उपस्थित करते हुए सकल जीवों के लिए प्राण-रूप होते हुए एक नक्षत्र का त्रिंशत् मुहूर्त [काल तक] उपभोग करते हुए (रहते हुए), षोडष कलाओं से युक्त होकर मनोमय, अन्नमय, अमृतमय देह वाला होकर देव, पितृ, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप, वीरुथ आदियों को प्राणाप्यायण शील वाला (प्राणों को शीतल करने के स्वभाव से युक्त होने से सर्वमय कहलाता है)। ८५ [कं.] चंद्र से ऊपर होकर आनन्द से लक्षयोजनों के तारों को आवृत कर मेरु शैल को प्राप्त कर संचार करता है। ८६ [सी.] उसके आगे समस्त तारों के ऊपर दो लाख [योजन दूर] शुक्र रहकर भास्कर के आगे और पीछे सौम्य, मृदु, शीघ्र संचारों से भास्कर के समान संचरण करता रहता है। जनों के लिए अनुकूल होकर वृष्टि (वर्षा) प्रदान करते हुए सर्वत्र चतुरता से वृष्टि विष्कंभक-गृहशांति करनेवालों को शुभ प्रदान करता रहता है। [ते.] उसके आगे सौम्य दो लाख [योजन] संचार करते हुए रविमंडल से छूटकर दिखाई पड़ने पर जनों को क्षाम (अकाल), डाम्बर आदि भय को अतुल महिमा से उत्पन्न करता है। ८७ [सी.] उसके आगे धरणी तनूज दो लाख

सी. धरणीतनूजुडंतटिमीद रॆंडु लक्षल नुंडि मूडु पक्षमुल नॊक्क
राशि दाटुचुनुंडु ग्रममुन द्वादश रासुलु भुजियिंचु राजसमुन
वक्रिंचियैन नवक्रत नैननु दरुचुगा बाडलु नरुल कॊसगु
नंगारकुनि पट्ट कावल रॆंडु लक्षल योजनंबुल घनत मिंचि

आ. यॊक्क राशिनुंडि यॊक्कक्क वत्सरं, बनुभविंपुचुंडु नमर गुरुडु
वक्रमंदुनैन वसुधामरुलकुनु, शुभमुनॊसगु नॆपुडु नभिनवमुग ॥ 88 ॥

कं. सुरगुरुनकु मीदै भा, स्कर सुतुडिरु लक्षलनु जगमुलकु बाडल्
जरपुचु द्रिशन्मासमु, लरुदुग नॊक्कॊक्क राशियंदु वसिचुन् ॥ 89 ॥

कं. प्राकटमुग रवि सुतुनकु, नेकादश लक्षलनु महीसुरुलकु नी
लोकुलकु मेलु गोरुचु, जोकग मुनि सप्तकंबु सॊंपु वहिंचुन् ॥ 90 ॥

कं. मुनि सप्तकमुन कॆगुवं, दनरुचु ना मीद द्रियुतदश लक्षल बॆं
पुन शिशुमार चक्रं, बनगा नन्निटिकि नुपरि यगुचुंडु नृपा ! ॥ 91 ॥

## अध्यायमु—२३

सी. आ शिशुमाराख्यमगु चक्रमुन भागवतुडैन ध्रुवुडिंद्र वह्नि कश्य-
प प्रजापति यम प्रमुखुलतो गूडि बहुमानमुग विष्णु पदमु जेरि

---

[योजन दूर] रहकर तीन पक्षों (पखवारों) में एक राशि का अतिक्रमण करता रहता है [इस प्रकार] द्वादश राशियों का राजस से (रजोगुण से) भोग करता है। वक्र होकर अथवा अवक्र होकर भी अक्सर नरों को पीड़ाएँ देता है। अंगारक की पकड़ से आगे दो लाख योजनों को महानता से पार कर [आ.] एक-एक राशि का एक-एक वत्सर [पर्यंत] अमर गुरु उपभोग करता रहता है। वक्रता में भी सदा अभिनव रूप से वसुधा-अमरों को शुभ प्रदान करता है। ८८ [कं.] सुर गुरु के आगे भास्कर सुत दो लाख [योजन दूर रहकर] जगतों को पीड़ाएँ देते हुए एक-एक राशि में विरले ही तीन मास रहता है। ८९ [कं.] प्रकट रूप से रविसुत के [आगे] एकादश लाख [योजन दूर रहकर] महीसुरों की और लोगों की भलाई चाहते हुए अच्छे ढंग से मुनि सप्तक (सप्तर्षि) शोभा धारण कर रहता है। ९० [कं.] मुनि सप्तक के ऊपर विलसित होते हुए उसके आगे तीस लाख (योजन की दूरी पर) शोभा से शिशुमार चक्र रहता है। हे नृप ! वह सबके ऊपर स्थित है। ९१

## अध्याय—२३

[सी.] उस शिशुमार नामक चक्र पर भागवत (भक्त) ध्रुव, इंद्र, वह्नि, कश्यप प्रजापति आदि प्रमुख [व्यक्तियों] के साथ बहुमान रूप से

कणक निच्चलु प्रदक्षिणमुगा दिरुगुचु जॅलगियुंड्डनु गल्प जीवियगुचु
ननघुडुत्तानपादात्मजु डार्युडुनैन या ध्रुवुनि महत्त्वमॅल्ल

ते. बलिसि वर्णिप ब्रह्मकु नलविगादु
ने नॅरिंगिन यंतुयु नीकु मुन्नु
तॅलिय बलिकिति ग्रम्मर दलचि कॉनुमु
जितरिपुव्रात ! श्री परीक्षिन्नरेंद्र ! ॥ 92 ॥

व. मरियु ना ध्रुवुंडु कालंबुचेत निमिषमात्रंबॅडलेक संचरिंचु ज्योतिर्ग्रह नक्षत्रंबुलकु नीश्वरुनिचेत धान्याक्रमणंबुन बशुवुलकॅन येर्पडचिन मेधि स्तंभमु तॅरंगुन मेटिगा गल्पिपंबडि प्रकाशिंपुचुंडु। गगनंबुनंदु मेघंबुलुनु, श्येनादि पक्षुलुनु वायु वंशंबुनु गर्म सारथुलै चरिंचु तॅरंगुन, ज्योतिर्गणंबुलुनु प्रकृति पुरुष योग गृहीताशुलै कर्म निमित्त गति गलिगि वसुंधरं बडकुंडुरु ॥ 93 ॥

कं. पॉलुग ज्योतिर्गणमुल, नंदर ना शिंशुमार मंबुल नुंड
गॉंदरु वरुचुग जॅप्पुचु, नुंडुरु नॅरिंगितु विनु महोन्नत चारता ! ॥ 94 ॥

कं. तलक्रिंदै वट्रुवयै, सललित मगु शिंशुमार चक्रमुनंदुन्
नॅलकॉनि पुच्छाग्रंबुन, निलिचि ध्रुवुंडुंडु नॅपुडु निर्मल चरिता ! ॥ 95 ॥

---

विष्णुपद को प्राप्त कर सप्रयत्न सदा कल्पांत तक जीवित रहकर अतिशयता से प्रदक्षिणा करते रहता है। अनघ, उत्तानपाद का आत्मज, आर्य (श्रेष्ठ) उस ध्रुव के समस्त महत्त्व को समझकर [ते.] वर्णन करना ब्रह्मा के भी वस की बात नहीं है। मैं जितना जानता था वह सब तुम्हें पहले ही समझाकर बता दिया। हे जितरिपुव्राता (जीते हुए शत्रु-समूह वाले) ! हे श्री परीक्षित् नरेंद्र ! पुनः [ध्रुव के महत्त्व का] स्मरण कर लो। ९२ [व.] और वह ध्रुव काल के द्वारा निमिष मात्र भी अंतराय के घूमनेवाले ज्योतिःग्रह नक्षत्रों के लिए ईश्वर के द्वारा, धान्याक्रमण के लिए पशुओं के लिए निर्मित मेधिस्तंभ के समान, श्रेष्ठ रूप में निर्मित होकर प्रकाशमान होता रहता है। गगन में मेघ और शेन आदि पक्षी वायुवश से (हवा के झोंकों से) कर्मसारथी होकर विचरण करने के समान ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुष के योग से गृहीत आशा वाले होकर कर्मनिमित्त गति से युक्त होकर वसुन्धरा पर गिरे बग़ैर रह जाते हैं। ९३ [कं.] हे महोन्नत चरितवाले ! शोभा से समस्त ज्योतिर्गणों के उस शिंशुमार [चक्र] में रहते समय कुछ लोग उनके बारे में अक्सर जो कहा करते हैं उसे मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो। ९४ [कं.] हे निर्मल चरित वाले ! उलटा-सीधा होकर,

व. मरियु ना शिशुमार चक्र पुच्छंबुन ब्रजापतियुनु, नग्नींद्र धर्मुलुनु, पुच्छमूलमुन धातृ विधातलुनु, गटि प्रदेशंबुन ऋषि सप्तकंबुनु, दक्षिणावर्तकुंडली भूत भूत शरीरंबुनकु नुदगयन नक्षत्रंबुलुनु दक्षिण पार्श्वंबुन दक्षिणायन नक्षत्रंबुलुनु, बृष्ठंबुन देवमार्गंबुनु नाकाशगंगयु, नुत्तर भागंबुन बुनर्वसु पुष्यंबुलुनु, दक्षिणायेनंबुन नार्द्राश्लेषलुनु, दक्षिण वाम पादंबुल नभिजिदुत्तराषाढलुनु, दक्षिण वाम नासारंध्रंबुल श्रवण पूर्वाषाढलुनु दक्षिण वाम लोचनंबुल धनिष्ठा मूललुनु, दक्षिण वाम कर्णंबुल मखाद्यष्ट नक्षत्रंबुलुनु, वामपार्श्वंबुन दक्षिणायनंबुनु दक्षिण पार्श्वंबुन गृत्तिकादि नक्षत्र त्रयंबुनु, नुत्तरायणंबुन, वाम दक्षिण स्कंधंबुल शतभिषग् ज्येष्ठलुनु, नुत्तर हनुवुन नगस्त्युंडुनु, नपर हनुवुन यमुंडुनु, मुखंबुन नंगारकुंडुनु गुह्यंबुन शनैश्चरुंडुनु, मेढ्रंबुन बृहस्पतियुनु, वक्षंबुन नादित्यंबुनु, नाभिनि शुक्रुंडुनु, जित्तंबुनु जंद्रुंडुनु, स्तनंबुन नाश्विनुलुनु, ब्राणापानंबुल बुधुंडुनु, सर्वांगंलनु गेतु ग्रहंबुलुनु, रोमंबुन दारलु नुंडुनु। अदि सर्वदेवता मयंबैन पुंडरीकाक्षुनि दिव्यदेहंबु ध्रुवुनिगा नॆरुंगुमु ॥ 96 ॥

सी. इट्टि दिव्य शरीर मॆव्वडु प्रतिदिनंबु संध्याकाल मतुल भक्ति
मनमंदु निलिपि येमरक मिक्किलि प्रयत्नंबुन नियतुडै तत्त्वबुद्धि

---

वर्तुल (गोल) होकर सललित बने शिशुमार चक्र के उच्चाग्र पर ध्रुव सदा स्थिरता से रहता है । ९५ [व.] और उस शिशुमार चक्र के पुच्छ [भाग] पर प्रजापति और अग्नि, इंद्र, धर्म (यमराज), पुच्छ मूल पर धाता और विधाता, कटि प्रदेश पर सप्तर्षि, दक्षिणावर्त कुण्डलीभूत भूत शरीर पर उदगयन (उत्तरायन) नक्षत्र, दक्षिण पार्श्व में दक्षिणायन के नक्षत्र, पृष्ठ पर देवमार्ग और आकाशगंगा, उत्तर भाग पर पुनर्वसु और पुष्य [नक्षत्र], दक्षिणायन में आर्द्रा और आश्लेष [नक्षत्र], दक्षिण-वाम चरणों पर [क्रमशः] अभिजित और उत्तराषाढा [नक्षत्र], दक्षिण-वाम नासारंध्रों में श्रवण और पूर्वाषाढा [नक्षत्र], दक्षिण-वाम लोचनों में [क्रमशः] धनिष्ठा और मूल [नक्षत्र], दक्षिण-वाम कर्णों में मघा आदि आठ नक्षत्र, वाम पार्श्व में दक्षिणायन, दक्षिण पार्श्व में कृत्तिका आदि नक्षत्रत्रय और उत्तरायण, वाम-दक्षिण स्कन्धों पर शतभिषा और ज्येष्ठा [नक्षत्र], उत्तर हनू पर अगस्त्य, अपर हनू पर यमराज, मुख पर अंगारक, गुह्य पर शनिश्चर, मेढ्र पर बृहस्पति, वक्ष पर आदित्य और नाभि पर शुक्र, चित्त में चन्द्र, स्तन पर अश्विनी देवता, प्राण और अपान में बुध, सर्वांगों में केतु ग्रह, रोम में तारे रहते हैं। इसे सर्व देवतामय पुंडरीकाक्ष के दिव्य देह और ध्रुव ही समझ लो। ९६ [सी.] हे अधिप ! इस प्रकार के दिव्य शरीर को जो प्रतिदिन संध्याकाल में अतुल भक्ति से मन में स्थिर कर अप्रमत्त होकर अधिक प्रयत्न से, नियम से,

मौन व्रतंबुन बूनि वीक्षिपुचु नी संस्तवंबु दानतों प्रेम
जपियिंचि कडु प्रशस्तमुनु मुनींद्र सेव्यमुनु ज्योतिस्स्वरूपमुन वॆलुगु

आ. विपुर शिशुमार विग्रहंबुनकु वं, दनमु वंदनंबु लनुचु निलिचि
सन्नुतिंचॆ नेनि सकलार्थ सिद्धुल, बॊंदु मीद मुक्ति जॆंदु नधिप ! ॥ 97 ॥

## अध्यायमु— २४

कं. इनमंडलंबुनकु ग्रिं, दनु दश साहस्र योजनंबुल स्वर्भा-
नुनि मंडलंबु ग्रहमै, घनतन्नपसव्यमार्ग गति नुंडु नृपा ! ॥ 98 ॥

कं. असुराधमुडगु राहुवु, बिसरुह संभवुनि वरमु पॆंपुन नॆंतो
पसयगु नमरत्वंबुन, नसमानंबन ग्रह विहारमु बॊंदॆन् ॥ 99 ॥

सी. जननाथ ! राहुवु जन्मकर्मंबुलु विनुपितु मुंदट विस्तरिंचि
ययुतयोजन विस्तृतार्कमंडलमु द्विषट्सहस्र विशाल चंद्र मंड-
लमु बर्वकालंबुलनु द्रयोदश सहस्र विशालमै मीद राहु गप्पु-
नवि चूचि युपराग मनुचुनु बलुकुदु रॆल्लवारुनु स्वधर्मेच्छ लगुचु

आ. नंतलोन निन शशांक मंडलमुल, गरुण ब्रोव दलचि हरि सुदर्श-
नंबु बच्चु ननु भयंबुन नेदारु, गडियलकुनु राहु विडिचि तॊलगु ॥100॥

---

तत्त्वबुद्धि से, मौनव्रत धारण कर देखते हुए इस संस्तव को अधिक प्रेम से जपकर, अधिक प्रशस्त (उत्तम) और मुनींद्र सेव्य और ज्योतिःस्वरूप से प्रकाशमान [आ.] विपुल शिशुमार-विग्रह को वंदन (नमन) और बंदन कहते हुए सन्नुति (प्रशंसा) करेगा तो सकलार्थ सिद्धियों को प्राप्त करेगा और तदनन्तर मुक्ति को प्राप्त करेगा। ९७

## अध्याय—२४

[कं.] हे नृप ! इन मण्डल (सूर्यमण्डल) के नीचे दस सहस्र योजन (परिमाण) वाला स्वर्भानु का मण्डल ग्रह-रूप में महानता से अपसव्य मार्ग की गति से रहता है। ९८ [कं.] असुराधम राहु ने बिसरुह-संभव (ब्रह्मा) के वर के प्रभाव से अधिक समर्थ अमरत्व को प्राप्त कर असमान ग्रह विहार को प्राप्त किया। ९९ [सी.] हे जननाथ ! राहु के जन्म कर्मों के बारे में आगे विस्तार से सुनाऊँगा (बताऊँगा)। अयुत (दस हज़ार) योजन विस्तार वाले अर्क (सूर्य) मण्डल को और द्विषट् सहस्र [योजन] विशाल चंद्रमण्डल को पर्व कालों में त्रयोदश सहस्र विशाल बनकर राहु आच्छादित करता है। उसे देखकर सब स्वधर्म में इच्छा वाले होकर उसे उपराग (ग्रहण) कहते है। इतने में इन और [आ.] शशांक मण्डलों को करुणा से रक्षा करना चाहकर हरि सुदर्शन को भेजेगा इस भय से स्वयं राहु

कं. नरवर ! या राहुवुनकुनु, सरसत ना क्रिंद सिद्ध चारण विद्या-
धरु लयुत योजनंबुल, दिरमुग वसियिंचि लील दिरुगुदु रचटन् ॥ 101 ॥

कं. परिकिंप सिद्ध विद्या, धरुलकु बदिवेलु क्रिंद दरलक यक्षुल्
मरियुनु भूत प्रेतलु, जरियितुरु राक्षसुलु पिशाचुलु गोलुवन् ॥ 102 ॥

आ. वारिक्रिंद दगिलि वायु वशंबुन, मलयुचुंडु मेघमंडलंबु
मेघमंडलंबु मीदगुचुंडु भू, मंडलंबु क्रिंदनुंडु नधिप ॥ 103 ॥

व. अट्टि भूमंडलंबु क्रिंद योजनायुतांतरंबुन नंडकटाहायामंबु गलिगि, क्रमंबुन नोंडोंटिकि ग्रिंदगुचु नतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताळलोकंबुलुंडु अट्टि बिल स्वर्गंबुलयंदु नुपरि स्वर्गंबुन कधिकंबैन काम भोगंबुलनु, ऐश्वर्यानंदमुलनु, सुसमृद्ध भवनोद्यान क्रीडा विहार स्थानंबुलन्ननुभविंपुचु, दैत्य दानव काद्रवेयादि देवयोनुलु नित्य प्रमुदितानुरक्तुलगुचु गळत्रापत्य सुहृद्वंधु दासीदास परिजनुलतो जेरुकोनि, मणिगण खचितंबुलगु नति रमणीय गृहंबुलयंदु नीश्वरुनि वलनं जेटुलेनि कायंबुलं गलिगि, विविध माया विशेष विनिर्मित नूतन केळी सदन विहरण मंडप विचित्रोद्यानादुलयंदु गेळीविनोदंबुल सलुपुचुं जरियितुरु । अंत ॥ 104 ॥

---

कुछ घड़ियों के बाद [आच्छादन को] छोड़कर चला जाता है। १०० [कं.] हे नरवर ! उस राहु के निचले हिस्से में सरसता से सिद्ध, चारण, विद्याधर, अयुत योजन [विस्तृत प्रदेश में] स्थिरता से निवास कर वहाँ लीला से विचरण करते हैं। १०१ [कं.] परिशीलन करने पर सिद्ध विद्याधरों के दस हज़ार [योजन] निचले भाग में निरंतर यक्ष और भूत-प्रेत, राक्षस और पिशाचों के सेवा करते रहने पर विचरण करते रहते हैं। १०२ [आ.] हे अधिप ! उनके निचले प्रदेश में वायुवश से मेघमण्डल स्थित रहता है। मेघमण्डल ऊपर रहता है और भूमण्डल नीचे रहता है। १०३ [व.] ऐसे भूमण्डल के नीचे अयुत योजनों के अन्तर से अण्डकटाह याम मे युक्त होकर क्रमशः एक के नीचे एक होते हुए अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताललोक स्थित हैं। ऐसे विल सर्गों में उपरिसर्ग में अधिक कामभोग, ऐश्वर्य के आनन्द और सुसमृद्ध भवन, उद्यान, क्रीडा-विहार स्थानों का उपभोग करते हुए, दैत्य, दानव, काद्रवेय आदि देवसंतान नित्य प्रमुदित और अनुरक्त होते हुए, कलत्र-अपत्य-सुहृद्-बंधु-दासी-दास आदि परिजनों से युक्त होकर, मणिगणखचित अति रमणीय ग्रहों में ईश्वर [की कृपा] से हानि-रहित कायों (शरीरों) से युक्त होकर विविध विशेष मायाओं से विनिर्मित नूतन केली-सदन, विहरण-मण्डप, विचित्र-उद्यानों में केली-विनोद करते

सी. अट्टि पाताळंबुलंदुनु मयकल्पितमु लगु पुट भेदनमुलयंदु
बहुरत्न निर्मित प्राकार भवन गोपुर सभा चैत्य चत्वर विशेष-
मुलयंदु नागासुरुल मिथुनमुलचे शुक पिक शारिकानिकर संकु
लमुल शोभिल्लु कृत्रिम भूमुलनु गल गृहमुलचे नलंकृतमु लगुचु

आ. गुसुम फल सुगंधि किसलयस्तबक सं-
ततुलचेत नवनतंबु लैन
यतुल रुचिर नव लतांगनालिंगित
विटपमुलनु गलुगु विभवमुलनु ॥ 105 ॥

व. मरियु नानाविध जल विहंगममिथुनंबुलं गलिगि, निर्मल जल पूरितंबुलै मत्स्यकुल संचारक्षुभितंबुलैन, कुमुद कुवलय कल्हार नील नीरज लोहिता-शतपत्रादिकंबुल देजरिल्लॆडु सरोवरंबुलं गल युद्यानवनंबुल यंदु गृत निकेतुलै, स्वर्गभूमुल नतिशयिंचिन विविध विहारंबुलु गलिगि, यहोरात्रादि कालविभाग भयंबु लेक महाहिप्रवरुंडैन शेषुनि शिरोमाणि रोचुलचे नंधकारोपद्रवंबु लेक यॆल्लप्पुडु दिवसायमानंबुगा नुंडु ना लोकंबुनंदु नखिलजंतुलु दिव्यौषधि रस रसायनंबुल ननवरतंबु नन्नपानंबुलुगा सेविंचुटंजेसि याधिव्याधुलुनु, वलितपलितंबुलुनु, जरा

---

हुए विचरण करता है। तब।१०४ [सी.] ऐसे पातालों में, मय-कल्पित (-निर्मित) पुटभेदनों (नगरों) में, बहुरत्नों से निर्मित विशिष्ट प्राकार, भवन, गोपुर, सभा, चैत्य और चत्वरों में नाग, असुर, मिथुनों (दम्पतियों) से और शुक, पिक, सारिका-निकरों से संकुल होकर शोभित कृत्रिम भूमियों से युक्त गृहों से अलंकृत होते हुए [आ.] कुसुम, फल, सुगंधि, किसलय, स्तवक-समूह से अवनत बने हुए और अतुल रुचिर नव लतांगनाओं से आलिंगित विटपों से युक्त वैभव।१०५ [व.] और नानाविध जलविहंगों के मिथुनों (जोड़ों) से युक्त होकर निर्मल जल से भरे रहकर मत्स्यकुल के संचार से क्षुभित (विचलित) बने, कुमुद, कुवलय, कल्हार, नील, नीरज, लोहित, शतपत्र आदियों से सुशोभित सरोवरों से युक्त उद्यान वनों में कृतनिकेत बनकर (बस कर), स्वर्ग-भूमियों की अपेक्षा अतिशय विविध विहारों से युक्त होकर अहस् और रात्रि आदि काल विभागों के भय से रहित होकर, महा-अहि-प्रवर (सर्प-श्रेष्ठ) शेष (आदि शेष) की शिरोमणि की रुचियों (किरणों) के कारण अंधकार के उपद्रव से रहित होकर, सदा दिवस के रूप में रहनेवाले आलोक में समस्त जन दिव्य ओषधियों के रस और रसायनों को अनवरत अन्न और जल के समान सेवन करते रहने के कारण आधि-व्याधियाँ, वनित-पलित (श्वेत केश), जरा और रोग, शरीर का विवर्ण बन जाना,

रोगंबुलुनु, शरीर वैवर्ण्यंबुलुनु, स्वेद दौर्गंध्यंबुलुनु, गलुगक परम कल्याणमूर्तुलगुचु हरिचक्र भयंबु दक्क नन्यंबगु मृत्यु भयंबु नोंबक युंदुरु। अदियुनुंगाक ॥ 106 ॥

ते. अट्टि पाताळ लोकंबुनंदु विष्णु, चक्र मॆप्पुडनियु ब्रवेशंबु नोंदु
नप्पुडॆल्लनु दैत्य कुलांगनलकु, गर्भ संपद लवंद करगुचुंडु ॥ 107 ॥

चं. अतलमु लंदु नम्मयुनि यात्मजुडैन बलासुरुंडु स-
न्मति जरियिंचु षण्णवति मायल गूडि विनोद मंदुचुन्
गुतलमुलंदु नेडु नोक कोंदरु नच्चटि माय जॆंदि सं-
ततमु जरिंचु चुंडुदुरु दप्पक मोह निबद्ध चित्तुलै ॥ 108 ॥

व. अट्टि बलुनि यावलितलनु स्वैरिणुलु कामिनुलु पुंश्चलुलनु स्त्रीगणंबुलु जनियिंचिरि। आ कामिनी जनंबुलु पाताळंबु ब्रवेशिचिन पुरुषुनिकि हाटक रसंबनियॆडु सिद्ध रस घुटिक निच्चि, रस सिद्धुनिगाविचि, यतनियंदु स्वविलासावलोकानुरागस्मित सल्लासोप गुहनावुल निच्छा विहारंबु सल्पुचुंड, ना पुरुषुंडु मदांधुडै, तानॆ सिद्धुंडनियुनु, नागायुत बलुंडनियुनु दलंचि, नानाविध रति क्रीडल बरमानंदंबु नोंदुचुंडु ॥ 109 ॥

सी. हाटकेश्वरुडैन यंबिकाधीशुंडु वितलंबुनंबुल वेड्क निलिचि
तनबु पार्षद भूततततुलतो ब्रह्म सर्गोपबृंहणमुनकोवक चोट

---

स्वेद की दुर्गंध आदि के न होने पर परम कल्याणमूर्ति वाले होते हुए हरि के चक्र-भय के अतिरिक्त अन्य प्रकार के मृत्युभय को प्राप्त न कर रहते है। इसके अतिरिक्त १०६ [ते.] ऐसे पाताललोक में जब-जब विष्णुचक्र प्रवेश करता है, तब-तब दैत्य कुलांगनाओं की गर्भ-संपदाएँ जहाँ तहाँ (सर्वत्र) पिघल जाती हैं (अर्थात् दैत्य स्त्रियों के गर्भ नष्ट हो जाते हैं)। १०७ [चं.] अतल में मय के आत्मज बलासुर षण्णवती की मायाओं से युक्त होकर विनोद प्राप्त करते हुए सन्मति से विचरण करता रहता है। सुतल में आज भी कुछ लोग वहाँ की माया के प्रभाव से सतत और अवश्य मोह निबद्ध चित्त वाले होकर विचरण करते रहते हैं। १०८ [व.] ऐसे वल [नामक असुर] की जम्हाइयों से स्वैरिणी, कामिनी, पुंश्चला नामक स्त्रीगणों का जन्म हुआ। वे कामिनी-जन पाताल में प्रवेश करनेवाले पुरुष को हाटक रस नामक सिद्धरस घूटिका देकर, रससिद्ध बनाकर, उसमे अपने विलास-अवलोकन-अनुराग-स्मित-संलाप-उपवूहन आदि से इच्छा विहार करते रहते हैं। [तब] वह पुरुष मदांध बनकर अपनेआपको सिद्ध [पुरुष] और नागायुत (दस हज़ार हाथी का) बल वाला समझकर नानाविध रति-क्रीडाओं से परमानन्द को प्राप्त करता रहता है। १०९ [सी.] हाटकेश्वर होनेवाले

बार्वती संभोग परुडगुचुंडगा वारल वीर्यंबु वलन बुट्टि
नट्टिदि हाटकि यनियेंडुनदि यनिलाग्नुलु भक्षिंचि यंत नुमिय

ते. नदियु हाटकमनुपेर नतिशयिल्लि, वन्नॆ मीरुचु शुद्धसुवर्णमय्यॆ
ना सुवर्णंबु ना लोकमंदुनुन्न, जनुल कॆल्लनु विनुत भूषणमुलय्यॆ ।।110।।

सी. आ क्रिंद सुतलंबु नंदु महापुण्युडगु विरोचन पुत्रुडैनयट्टि
बलि चक्रवर्ति या पाकशासनुनकु मुदमॊसंगग गोरि यदिति गर्भ-
मुन वामनाकृति बुट्टि यंतट त्रिविक्रम रूपमुननु लोकत्रयंबु
नाक्रमिंचिन दानवारातिचेत मुंदरन यी बडिन यिंद्रत्व मिट्लु

आ. गलुगुवाडु पुण्य कर्म संधानुंडु, हरि पदांबुजार्चनाभिलाषु-
डगुचु श्रीरमेशु नाराधनमु सेयु, चुंडु नॆपुडु नति महोत्सवमुन ।। 111 ।।

व. नरेंद्रा ! सकल भूतांतर्यामियुनु, दीर्थभूतुंडुनैन वासुदेवुनि यंदु जित्तंबु
गलिगॆ यिच्चिन भूदानंबुनकु साक्षात्करिंचिन मोक्षंबु फलंबगुंगानि, पाताळ
स्वर्ग राज्यंबुलु फलंबुलु गानेरवु । ऐन नॆव्वरिकिनि मोक्षंबु साक्षात्कृतंबु
गाकुंडुटंजेसि लोक प्रदर्शनार्थंबु पाताळ स्वर्ग राज्यंबुल निच्चॆ । क्षुत

---

अंबिका-अधीश (शिवजी) वितल में उत्साह के साथ रहकर अपने पार्षद (परिजन) भूतततियों के साथ ब्रह्मसर्ग के उप बृम्हण के समय एक जगह पार्वती के साथ सम्भोग-पर (रति-क्रीडा मे लीन) होते समय उनके वीर्य से उत्पन्न हाटकी नामक [पदार्थ] को अनिल और अग्नि ने भक्षण कर तब थूक दिया। तब वह भी [ते.] हाटक नामक नाम से अतिशयता को प्राप्त कर शोभायमान होकर शुद्ध सुवर्ण हुआ। वह सुवर्ण उस लोक में रहनेवाले सभी जनों के लिए विनुत भूषण बना। ११० [सी.] उसके नीचे सुतल में महा पुण्यात्मा विरोचन के पुत्र बलि चक्रवर्ती रहते है। पाकशासन (इंद्र) को प्रमुदित बनाने की इच्छा से अदिति के गर्भ से वामन के आकार में उत्पन्न होकर, उसके बाद त्रिविक्रम रूप से लोकत्रय को आच्छादित करनेवाले दानवाराति (दानवों के शत्रु विष्णु) द्वारा प्रथमतः दिये गये इंद्रत्व को धारण करनेवाला, [आ.] पुण्यकर्म का संधान करनेवाला, हरि के पदांबुजों की अर्चना की अभिलाषा रखनेवाला होते हुए [राजा बलि] सदा अति महोत्सव से श्री रमेश की आराधना करता रहता है। १११ [व.] हे नरेंद्र ! सकल भूतों के अंतर्यामी, तीर्थभूत बने हुए वासुदेव को चित्त में धारण कर दिये गये भूदान के लिए साक्षात् मोक्ष ही फल होता है [उसके लिए पाताल और स्वर्गराज फल नहीं हो सकते], फिर भी किसी के लिए भी मोक्ष के साक्षात्कृत न होने से लोक में दिखावे के लिए [विष्णु ने राजा बलि को] पाताल रूपी स्वर्गराज दे दिया। क्षुत (क्षुधा)- पतन, प्रस्खलन

पतन प्रस्खलनादुलंदुनु विवशुंडैननु नाम स्मरणंबु सेयु पुरुषुंडु कर्म बंधंबुल वलन विमुक्तुंडगुचु सुज्ञानंबुनंबोंदु। अट्टि वासुदेवुंडात्मज्ञान प्रमोषणमु सेयु मायामयंबुलैन भोगैश्वर्यंबुल नॆल्ल नॆट्लिच्चु ननवलदु। भगवंतुंडु याचन जेसि सकल संपदल जेकॊनि शरीर मात्रावशिष्टुनि जेसि वारुण पाशंबुलं गट्टि विडिचिनप्पुडु बलींद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 112 ॥

सी. परमेश्वरुनकु नॆप्पटि पदार्थमुलंदु दृष्ण लेकुंडुटॆरिंगितिनाड
निद्रादुलॆल्ल नुपेंद्रुनि ब्रार्थिंचि यडिगिरि गानि श्रीहरिकि गोरि-
कलु लेवु मिक्किलि गंभीरमगु महा काल स्वभावंबु गलुगुचुंडु
नरयंग मन्वंतराधिपत्यमुनु लोकत्रयंबुनु नॆंतगान दलप

आ. मत्पितामहुंडु मानवंतुंडु प्र,-ह्लाद विभुनि जूचि हर्षमंदि
यॆद्दियैन गोरुमिच्चॆद ननुटकु, नंतलोन नीश्वराज्ञ दॆलिसि ॥ 113 ॥

व. इट्लकुतोभयंबु पित्र्यंबुनैन राज्यंबु नॊल्लक परमेश्वरदास्यंबु कोरॆ। आ प्रह्लादचरित्र कथनावसरमुन, नीतंड्रिकिनि नीकुनु विशेषमुगा ने पुरुषुंडु भगवदनुग्रहंबु बॊंदनोपु ननि पुंडरीकाक्षुं डानतिच्चिन वाक्यंबुलु वक्ष्यमाणग्रंथंबुन विस्तरिंचॆद। आ बलि चक्रवर्ति गृहद्वारंबुन

---

आदियों में विवश होने पर भी नाम स्मरण करनेवाला पुरुष कर्मबंधों से विमुक्त होते हुए सुज्ञान को प्राप्त करता है। ऐसा वासुदेव आत्मज्ञान का प्रमोषन करनेवाले मायामय भोग और ऐश्वर्य को कैसे देता है? ऐसा मत पूछो। भगवान के याचना से सकल सम्पदाओं को लेकर शरीर मात्र अवशिष्ट (जिसका शरीर मात्र बचा हुआ हो) बनाकर वारुण पाशों से बाँध छोड़ देने पर बलींद्र (राजा बलि) ने इस प्रकार कहा। ११२ [सी.] [अब] जान पाया हूँ कि परमेश्वर को किसी भी पदार्थ के प्रति तृष्णा नहीं है। इंद्र आदि सभी ने उपेंद्र से प्रार्थना कर पूछा। किन्तु श्रीहरि के इच्छाएँ नहीं हैं। अधिक गंभीर महाकाल का स्वभाव [श्रीहरि को] होता रहता है। सोचने पर उसके लिए मन्वंतराधिपत्य और लोकत्रय कितने [महत्त्वपूर्ण] हैं? [आ.] मेरे पितामह, मानधनी प्रह्लाद विभु को देखकर हर्षित होकर, [विष्णु ने] कहा था कि जो भी चाहो माँग लो देता हूँ। इतने में ईश्वर की आज्ञा को जानकर, ११३ [व.] इस प्रकार अकुतोभय (भयरहित) से पित्र्य (पिता के) राज्य को न चाहकर [प्रह्लाद ने] परमेश्वर के दास्य हो चाहा। उस प्रह्लाद-चरित्र के कथन के अवसर पर तुम्हारे पिता को और तुमको पुंडरीकाक्ष की आज्ञा रूपी वाक्यों को जिनने यह विशिष्ट रूप से बताया कि कौन पुरुष भगवदनुग्रह को प्राप्त कर सकता है, [उसे] वक्ष्यमाण (उद्दिष्ट) ग्रंथ में विस्तार से बताऊँगा। उस बलिचक्रवर्ती के गृह-

नखिललोक गुरुंडैन श्रीमन्नारायणुंडु गदा पाणियुनु, निज जनानुकंपितुंडुनु शंख चक्राद्यायुधधरुंडु नगुचु निप्पुडुनु तेजरिल्लुचुंडु। अट्टि बलिद्वारंबुन नुन्न गरुडध्वजुंडु लोकंबुल गेलुव निच्छयिचेंडु। दश ग्रीवुंडुल्लंघितशासनुंडै प्रवेशंबु गाविप दन पादांगुष्ठंबुन योजनायुतायुतंबुलं बाडजिम्में। अंत ॥ 114 ॥

कं. आ सुतलमुनकु ग्रिंदै, भासिल्लु दलातलंबु प्रभुवंद मयुं-
डासुर पुर निर्मातयु, वासिग बोगडोंदि येलु वसुधाधीशा ! ॥ 115 ॥

चं. पुरहरुचे रमेश्वरुडु भूतहितार्थमुगा बुरत्रयं-
बरुदुग नीरुसेसें शरणागतु ना मयु गाचि येंतयुं
गरुण दलातलंबुनकु गर्तग निलिपननुन्नवाडु श्री-
धरुनि सुदर्शनंबुनकु दप्पि विमुक्त भयुंडुगा दगन् ॥ 116 ॥

कं. तलपग ना क्रिंद महानतलमुन गद्रुववधूटि तनयुलु सर्पं-
बुलु गलवु पेक्कु शिरमुलु, नलरंगा क्रोधवश गणावळि यनगन् ॥ 117 ॥

व. मरियुनु गुहक, तक्षक, काळिय, सुषेणादि प्रधानुलैन वारलतुल शरीरंबुलं गलिगि, यादि पुरुषुनि वाहनंबैन पतगराज भयंबुन ननवरतंबु नुद्वेजितु

---

द्वार पर अखिल लोकगुरु श्रीमन्नारायण, गदापाणी होते हुए निज जन अनुकंपित होते हुए (भक्तों पर अनुकंपा दिखाते हुए), शंख-चक्र आदि आयुधों को धारण कर आज भी शोभायमान हो रहता है। ऐसे बलि के द्वार पर स्थित गरुड़ध्वज लोकों को जीतने का निश्चय करता है। दशग्रीव के शासन का उल्लंघन कर प्रवेश करने पर अपने पादांगुष्ठ से दस-दस हजार योजन दूर फेंक दिया। तब ११४ [कं.] उस सुतल के नीचे तलातल भासित होता है। उसमें आसुर-पुर-निर्माता मय प्रभु है। हे वसुधाधीश ! प्रशंसनीय और सुचारु रूप से [वह] शासन करता है। ११५ [चं.] पुरहर (शिव) के द्वारा रमेश्वर (विष्णु) ने भूत हितार्थ के रूप मे पुरत्रय को अनुपमता से भस्म कर दिया। शरणागत होनेवाले मय की रक्षाकर अति करुणा से तलातल के लिए कर्ता के रूप में सुस्थिर बनाया। वह मयासुर श्रीधर (विष्णु) के सुदर्शन से बचकर औचित्य से विमुक्त भयदवाला हो गया। ११६ [कं.] सोचने पर उसके नीचे महातल में कद्रुव-वधूटी के तनय सर्प है। वे अनेक शिरों से क्रोधवश गणावली कहलाकर शोभा से स्थित हैं। ११७ [व.] और गुहक, तक्षक, कालिय, सुषेण आदि प्रधान [सर्प] अतुल शरीरों से युक्त होकर आदि पुरुष (विष्णु) के वाहन पतगराज (गरुड़) के भय से अनवरत उद्वेजित (उत्तेजित) होते हुए अपने कलत्र अपत्य सुहृद बांधवों के साथ रहते हैं। उसके नीचे रसातल में दैत्य-दानव-

लगुचु, स्व कळत्रापत्य सुहृद्बांधव समेतुलै युंडुदुरु। आ क्रिंद रसातलंबुन दैत्युलु, दानवुलु नगु निवात कवच कालकेयुलनु हिरण्यपुर निवासुलगु देवता शत्रुवुलुनु, महासाहसुलुनु, देजोधिकुलु नगुचु सकल लोकाधीश्वरुंडैन श्रीहरि तेजंबुनं ब्रतिहतुलं, वाल्मीकंबुलंदु नडंगियुन्न सर्पंबुल चंदंबुन, निंद्र दूतियगु सरमचे जेप्प बडु मंत्रात्मक वाक्यंबुलकु भयंबु नोंदुचुंडुदुरु ॥ 118 ॥

कं. इंदु कुलोद्भव! विनु मा, क्रिंददि पाताळमुननु ग्रीडिंपुचु ना-
नंदमु नोंदुचु नुंड्डुनु, संवडिपडि नागकुलमु चतुरततोडन् ॥ 119 ॥

व. इट्लु वासुकि प्रमुखुलैन शंख, कुळिक, महाशंख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कंब, ळाश्वतर, देवदत्तादुलैन महानागंबुलु दीर्घामर्षु लैदु नेडु पदियु नूरु वेयु शिरंबुलं गलिगि, फणामणि कांतुलंजेसि पाताळतिमिरंबुनु बापुचुंडुदुरु ॥ 120 ॥

## अध्यायमु—२५

सी. पाताळलोकंबु पातुन शेषुंडु वेलयंग मुप्पदिवेल योज-
नंबुल वेडलुपुनतु दोक जुट्टगा जुट्टुकपुंडु विष्णुनि महोग्र

---

निवात-कवच-कालकेय नामक हिरण्यपुर के निवासी देवता शत्रु और महा साहसी तेज से अधिक [महान्] बनकर सकल लोकाधीश्वर श्रीहरि के तेज से प्रतिहत होकर वल्मीकों में दबे-छिपे रहनेवाले सर्पों के समान, इंद्रदूती सरमा से कहे गये मंत्रात्मक वाक्यों के कारण डरते रहते हैं ११८ [कं.] हे इंदुकुलोद्भव (चंद्रवंशी राजन्) ! सुनो उसके नीचे पाताल में क्रीडाएँ करते हुए कोलाहल के साथ नागकुल (सर्प समूह) चतुरता से आनंदित होता रहता है। ११९ [व.] इस प्रकार वासुकी आदि शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कंब, शाश्वतर, देवदत्त आदि महानाग दीर्घ अमर्षवाले पाँच, सात, दस, सौ, हजार शिरों से युक्त होकर, फणियों की मणियों की कांतियों से पाताल के तिमिर को दूर करते रहते हैं। १२०

## अध्याय—२५

[सी.] पाताललोक में रक्षा हेतु शेष (आदि शेष) शोभा से तीस हजार योजनों की चौड़ाई में पूँछ को कुंडली के रूप में लपेटकर रहते हैं। विष्णु का महोग्र शरीर स्वयं बनकर सतत अनंत नाम

मैन शरीरंबु दानै यनंताख्य संरक्षणंडुंडु संततंबु
नट्टि यनंत नामाभिधानुनि मस्तकमुन सिद्धार्थंबु करणि धरणि

आ. यंत ना विभुंडु नखिल लोकंबुल, संहरिंप गोरि चंड कोप
वशतसृजन जेयु वरुस नेकादश, रुद्रमूर्तुलनेंडु रौद्रमतुल ॥ 121 ॥

आ. अट्टि रुद्रमूर्तुलतुल त्रिनेत्रुलु, नखिल शूलहस्तुलगुचु नुंडु-
रंडु नुन्न फणिकुलाधिपुल् शेषुनि, पाद पंकजमुल भक्ति जेरि ॥ 122 ॥

आ. नम्रुलगुचु ननु दिनंबुनु मौळिर, त्नमुलचेत गड्डु मुदंबु नौंचि
कोरिकलु दलिर्प नीराजनंबुल, निच्चुचुंदुरेपुडु मच्चिकलनु ॥ 123 ॥

व. मरियु ना संकर्षणमूर्तिजेरि नागकन्यकलु कोरिकलु गल वारलगुचु, नोप्पॆडि शरीर विलासंबुलंजेसि यगरु चंदन कुंकुम पंकंबुलनु लेपनंबुलु सेयुचु, संकर्षणमूर्ति दर्शनस्पर्शनादुल नुद्बोधित मकर ध्वजावेशित चित्तंबुलु गलिगि, चिरुनव्वु लोलय नधिकाभिलाषंजेसि स्मितावलोकनंबुल सव्रीडितलै यवलोकिंपुचुंड, ननंतगुणंबुलं गल यनंत देवुंडुपसंहरिंपंबडिन क्रोधंबु गलिगि, लोकंबुलकु क्षेमंबु गोरुचु सुरासुर सिद्ध गंधर्व विद्याधर मुनिगणंबु लनवरतंबु ध्यानंबु सेय, संतत संतोषातिशयंबुन नानुगम्‌

---

वाला संरक्षक रहता है। ऐसे अनन्त नाम वाले [आदिशेष] के मस्तक पर सिद्ध-अर्थ के समान धरणी रहती है। [आ.] तब वह विभु अखिल लोकों का संहार करना चाहकर चंडकोप के वश होकर क्रमश: रौद्र मति वाले एकादश रुद्रों को सृजन करता है। १२१ [आ.] ऐसे रुद्रमूर्ति अतुल त्रिनेत्रवाले और अखिल शूल हस्तवाले होते हुए उसमें रहनेवाले फणि-कुलाधिप (सर्पराज) शेष पादपंकजों के निकट भक्ति के साथ रहते है। १२२ [आ] नम्र बनते हुए प्रतिदिन मौलि रत्नों से अधिक मुदित होकर इच्छाओं के शोभित होने पर सदा प्रेम से नीराजन देते रहते है। (सिर ऐसे हिलाते रहते हैं जिससे सिर पर रहनेवाले रत्नों की कांति आरती के समान लगे) १२३ [व.] और उस संकर्षण मूर्ति के निकट पहुँचकर नागकन्यायें इच्छाओं से युक्त बनकर, शोभायमान शरीर बिलासों के कारण अगर (ऊद), चन्दन, कुंकुम, पंकों का अनुलेपन करते हुए, संकर्षण मूर्ति के दर्शन-स्पर्शन आदि से उद्बोधित (प्रेरित) मकरधव्ज (कामदेव) द्वारा आविष्ट चित्तवाली बनकर (कामवासना से युक्त हो कर), मन्द मुस्कान के विलसित होने पर अधिक अभिलाषा के कारण स्मित-अवलोकनों के साथ क्रीडायुत होकर देखते हुए, अनन्त गुणों से युक्त अनन्त देव के क्रोध का उपसंहार करने पर, लोकों का क्षेम (कल्याण) चाहते हुए सुर, असुर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, मुनिगणों के अनवरत ध्यान करने पर, सतत संतोषातिशय

वॅट्टचु, सलंलित गीत वाद्यंबुल नानंदंबु नॊंदुचु, दंन परिजनंबुल नति स्नेहंबुन नवलोकिंपुचु, नव तुलसीगंध पुष्प रसामोदित मधुकर व्रात मधुर गीतंबुलु गल वैजयंती वनमाल धरियिंपुचु, नीलांबरधरुंडुनु, हलधरुंडुनु नगुचु, नितंडु महेंद्रुडॊ हरुंडॊ यनुचु जनंबुलु पलुकुचुंड गांचनांबरधरुंडै मुमुक्षुवुलु ध्यानंबुलु सेय, नध्यात्म विद्यायुक्तंबैन यानंद हृदय ग्रंथिनि भेदिंचु। अट्टि शेषुनि स्वायंभुवुंडुगु नारदुंडु तुंबुरु प्रभृतुलगु ऋषि श्रेष्ठुलतो जेरकॊनि कमलासनुनि सभास्थानंबु नंदु निट्लु स्तुतियिंचुचुंडु ॥ 124 ॥

सी. ओलिनॆ नॆव्वनि लीला विनोदमुलु जन्म संरक्षण क्षयमुलकुनु
हेतुवुलगुचुंडु नॆव्वनि चूपुल जनियिंचॆ सत्त्व रजस्तमंबु
लॆव्वनि रूपंबु लेकमै बहु विधंबुलनु जगत्तुल ब्रोचुचुंडु
नॆव्वनि नामंबु लॆरुगक तलचिन यंतन दुरितंबु लडगुचुंडु

ते. नट्टि संकर्षणाख्युंडु नव्ययुंडु, नैन शेषुनु विनुति सेयंग दरमॆ ?
तलप नॆप्पुडु वाङ्मनंबुलकु निक, मूडु लोकंबु लंदुनु भूततितिकि ॥125॥

आ. मरियु मॆक्कु गतुल मावोटिवारल
ब्रोवदलिचि शेषमूर्ति सात्त्वि-
क स्वभाव मॊंदॆ गणकतो नट्टि शे-
षुनकु म्रॊक्कुचुंडु ननुदिनंबु ॥ 126 ॥

---

से. अर्धनिमीलित नेत्रवाले होते हुए, सुललित गीत-वाद्यों से आनंदित होते हुए, अपने परिजनों को अधिक स्नेह से देखते हुए, नव तुलसी गंध पुष्प के रस से आमोदित (प्रसन्न) मधुकर-व्रात (-समूह) के मधुर गीतों (झंकार) से युक्त वैजयंती वनमाला को धारण कर नीलांबरधारी और हलधर होते हुए लोगों के यह कहने पर कि यह महेंद्र है अथवा हर है, कांचनांबर-धारी होकर मुमुक्षुओं के ध्यान करने पर, अध्यात्म-विद्यायुक्त आनन्द-हृदय की ग्रंथि का बेधन करता है। ऐसे शेष की स्वयंभू नारद, तुंबुर आदि श्रेष्ठ ऋषि से मिलकर कमलासन के सभास्थल में इस प्रकार स्तुति करता रहता है। १२४ [सी.] शोभा से जिसके लीला विनोद जन्म-संरक्षण-क्षव के लिए हेतु बनते हैं, जिसकी चितवनों से सत्व-रज-तम [गुण] जन्मे है, जिसके रूप एक होकर बहु विधियों से जगत की रक्षा करते रहते है। जिसके नामों को अनजाने में स्मरण करने मात्र से दुरितों का दमन होते रहता है। [ते.] ऐसे संकर्षण नामवाले और अव्यय शेष की विनुति (स्तुति), संभव है क्या ? सोचने पर तीनों लोकों के भूत-तति के लिए वाक् और मन से कभी [शेष की स्तुति कर सकना] संभव नहीं है। १२५ [आ.] और अनेक विधियों से हम जैसे लोगों की रक्षा

व. मरियु ना शेषुनि नॆव्वंडेनियु नाकस्मिकंबुग नैननु, नातुंडगुचु नैननु स्मरिंचिन मात्रमुन नखिलपापंबुलबासि सकल श्रेयस्सुलं बॊंदु। अट्टि शेषुनि ने मुमुक्षुवुलाश्रयिंचि धान्यंबॊनर्चि भवबंध निर्मुक्तु लगुदुरु। अतनि फणंबुलयंदु भूगोळं बणु मात्रंबगुचु नुंडु। अतनि महिमलु गणुतिप सहस्र जिह्वलु गल पुरुषुडैन नोपंडनि पलुकुचुंदुरु। आ यनंतुंडु पाताळंबुन नुंडि सकल लोक हितार्थंबु भूमिनि धरियिंचु। अनि लोकतिर्यङ्मनुष्य गतुलनु, लोकस्थितियुनु शुकयोगींद्रुंडु विनुपिंचि, यिक नेमि विनुपितु नॆरिंगिपुमु। अनिनं बरीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुकयोगींद्रुन किट्लनियॆ ॥ 127 ॥

कं. मुनिवर ! लोकचरित्रं-
बनुपममु महा विचित्रमगु नट्लुग ना-
कुनु विनुपिंचिति वंतयु
बनुपडि ना चित्तमंदु बायक निलिचॆन् ॥ 128 ॥

व. अनिन शुकयोगींद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 129 ॥

आ. जंतुजालमुलकु श्रद्धलु त्रिगुणात्म-
कमुलु गान वारि कर्मगतुल
तारतम्यमुलुनु दगिलि यित्तियु विवि
धंबु लगुचु संततंबु नुंडु ॥ 130 ॥

---

करना चाहकर शेषमूर्ति (आदिशेष ने सप्रयत्न सात्त्विक स्वभाव को प्राप्त) किया।' ऐसे शेष को अनुदिन प्रणाम करता रहता हूँ। १२६ [व.] और उस शेष का कोई भी आकस्मिक रूप से अथवा आर्त होकर स्मरण मात्र करें तो वह अखिल पापों से छूट कर सकल श्रेयों को प्राप्त करता है। ऐसे शेष का आश्रय लेकर मुमुक्षजन ध्यान कर भव-बंधनों से निर्मुक्त होते हैं। उसके फणों पर भूगोल अणुमात्र बनकर रहता है। कहते हैं उनकी महिमाओं की गिनती करने के लिए सहस्र जिह्वाओं वाला पुरुष भी समर्थ नहीं हो सकता। वह अनन्त पाताल में रहकर सकल लोक के हितार्थ भूमि का धारण करता रहता है। इस प्रकार लोक तिर्यक मनुष्य गतियों और लोक-स्थिति से बारे में शुकयोगीन्द्र ने सुनाकर (समझाकर) कहा कि कहो अब आगे क्या बताऊँ ? ऐसा कहने पर परीक्षित नरेंद्र ने शुकयोगीन्द्र से इस प्रकार कहा—१२७ [कं.] हे मुनिवर ! तुमने लोक-चरित्र को अनुपम रूप से और महाविचित्र रूप से मुझे सब कुछ सुनाया। वह मेरे चित्त में स्थिरता से रह गया। १२८ [व.] ऐसा कहने पर शुक योगीन्द्र ने यों कहा—१२९ [आ.] जंतुजाल की श्रद्धाएँ त्रिगुणात्मक होती हैं। अतः उनकी कर्म-गतियाँ भी तर तम भाव से इतने विविध

व. नरेंद्रा ! प्रतिषिद्ध लक्षणंबगु नधर्मंबाचरिंचु नरुनि श्रद्ध विपरीतमुगा प्रवर्तिल्लु। अट्टि वानिकि गलिगॆडु कर्मफलंबुनु विपरीतंबुगानॆ युंडु। कावुन ननाद्यविद्या काम प्रवर्तनलवल्ल वॆक्कु तॆरंगुल गलिगॆडु गर्मगतुल संग्रहंबुग नॆरिंगिचॆद। अनिन शुकुनितो बरीक्षिन्नरेंद्रुं डिट्लनियॆ ॥ 131 ॥

आ. मुनिवरेण्य ! नरकमुलु मुज्जगंबुल
यंदो ? यंतराळमंदो ? वॆलिनो ?
यदियुगाक देशमंदुं भूविशे-
षमुलयंदो ? तॆलुपु संतसमुन ॥ 132 ॥

व. अनिन शुकयोगींद्रुं डिट्लनियॆ ॥ 133 ॥

## अध्यायमु— २६

### शुकयोगि परीक्षित्तुनकु नरकलोक वर्णनमु दॆलुपुट

कं. एडतॆगक मुज्जगंबुल, कडपल नय्याम्यदिशनु गदलक निलुचुन्
गडु घोरमुलुग नरकमु, लडरंगा नंतराळमंदुल नधिपा ! ॥ 134 ॥

व. मरियुनु दक्षिणंबुन नग्निष्वात्तादि पितृगणंबुलु तम गोत्रजुलकु मेलु

प्रकारों से सतत रहती हैं। १३० [व.] हे नरेंद्र ! प्रतिशिद्ध (निषिद्ध) लक्षणवाले अधर्म का आचरण करनेवाले नर की श्रद्धा विपरीत दिशा में प्रवर्तित होती है। ऐसे व्यक्ति को प्राप्त होनेवाला कर्मफल भी विपरीत ही रहता है। अतः अनाद्य अविद्या रूपी काम आचरण से अनेक विधियों से प्राप्त होनेवाली कर्मगतियों को संक्षेप में बताता हूँ। [ऐसा] कहनेवाले शुक से परीक्षित नरेंद्र ने इस प्रकार कहा—१३१ [आ.] हे मुनिवरेण्य ! संतोष के साथ बताओ कि नरक तीनों जगहों में होते हैं ? या अंतराल में होते हैं ? या उनके बाहर होते हैं ? इसके अतिरिक्त देशस्थ विशिष्ट भूमियों में होते हैं ? १३२ [व.] [ऐसा] कहने पर शुकयोगीन्द्र ने यों कहा—१३३

## अध्याय—२६

### शुकयोगी का परीक्षित को नरकलोक-वर्णन बताना

[कं.] हे अधिप ! तीनों जगों के उस पार, याम्य दिशा में, निरन्तर स्थिरता से अंतराल में अधिक घोर (भयंकर) नरक अतिशयता से स्थित रहते हैं। १३४ [व.] और दक्षिण में अग्निष्वात् आदि पितृगण अपने गोत्रजों के लिए कल्याण को ऐसा सत्य आशीर्वाद देते रहते हैं। वहाँ का

गलुगुट कीऽकु सत्यंबुलगु नाशीर्वादंबुल नौसंगु चुंडुदुरु। अच्चटि पितृपतियगु शमनुंडु तन लोकंबुनकुं जनुदेंचु जंतुवुल कर्मंबुलकुं दगिन फलंबुल निच्चि शिक्षिपुचुनुंडु। नरक प्रशंस विनुमु। तामिस्रंबुनु, अंधतामिस्रंबुनु, रौरवंबुनु, महारौरवंबुनु, कुंभीपाकंबुनु, कालसूत्रंबुनु, असिपत्र वनंबुनु, सूकर मुखंबुनु, अंध कूपंबुनु, क्रिमि भोजनंबुनु, संदंशमुनु, तप्तोर्मियुनु, वज्रकंटक शाल्मलियु, वैतरणियु, पूयोदमुनु, प्राणरोधंबुनु, विशसंबुनु, लाला भक्षणमुनु, सारमेयादनंबुनु, अवीचिरयंबुनु, रेतः पानंबुनु ननु नेकविंशति महानरकंबुलुनु, मरियुनु, क्षारगर्दमंबुनु, रक्षोगण भोजनंबुनु, शूलप्रोतमुनु दंदशूकंबुनु, अवट निरोधनंबुनु, अपर्यावर्तनंबुनु, सूचीमुखंबु नन सप्तविधं नरकंबुल तोडि यष्टाविंशति नरकंबुलु गलवनि कौदरु नौडुवुदुरु। अंदु ॥ 135 ॥

कं. परवित्त कळत्रंबुल, बरिकिपक यपहरिंचु पापात्मुडु दु-
ष्कर पाशबद्धुडै यम, पुरुषुलचे नधिक बाध बौंदुचुनुंडुन् ॥ 136 ॥

व. मरियु निट्विधंबुन बाधितुंडगुचु दामिस्र नरकंबुनं बडि यनशनाद्रि पातन दंडताडन तर्जनादि बाधलं जेंदि, कडु भयंबुन मूर्छलं बौंदुचुंडु ॥ 137 ॥

कं. परकांत नेव्वडेनियु, बुरुषुंडुंडग मोऽगि पौंदिन यम किं-
करु लतनि बट्टि वडि द, त्तरमुन बडवेतु रंधतामिस्रमुनन् ॥ 138 ॥

---

पितृपति शमन (यमराज) अपने लोक में आनेवाले जतुओं के कर्मों के लिए उचित फल देकर शिक्षित (दण्डित) करता रहता है। [अब] नरक की प्रशंसा सुनो। तामिस्र, अंध तामिस्र, रौरव, महा रौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अंधकूप, क्रिमिभोजन, समदंश, तप्तोर्मि, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लाला भक्षण, सारमेयादन, वीचिरय, रेतःपान नामक एकविंशति (इक्कीस) महानरक और क्षार गर्दम, रक्षोगण भोजन, शूल प्रोत, दंदशूक, अवट-निरोधन, अपर्यावर्तन, सूचीमुख नामक, सप्त विध नरकों के साथ, अष्टाविंशति नरक हैं, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। उनमें १३५ [कं.] अन्यों के वित्त और कलत्र हैं ऐसा ध्यान न देकर [उनका] अपहरण करनेवाला पापात्मा दुष्कर पाशबद्ध होकर यमपुरुषों से अधिक बाधाओं को पाता रहता है। १३६ [व.] और इस प्रकार बाधित होते हुए तामिस्र नरक में गिरकर अनशन, अद्रिपातन, दण्डताडन्, तर्जन आदि बाधाओं (पीड़ाओं) को प्राप्त कर अधिक भय से मूर्छाओं को प्राप्त करता रहता है। (मूर्छित होता रहता है)। १३७ [कं.] [स्व] पुरुष के रहते हुए धोखा देकर कोई अन्य कान्ता को प्राप्त करें तो यम-किंकर उसे पकड़ कर झट अंध तामिस्र में डाल देते हैं। १३८ [व.] हे नरेंद्र! कोई भी कुटुम्ब-

व. नरेंद्रा ! यॆव्वडेनियु गुटुंब पोषणार्थंबु परुलकु द्रोहंबु सेयु, ना नरुंडु रौरवनरकंबुनंबडु। एव्वंडिहलोकंबुनंदु स्वेच्छा विहारंबुन संचरिंचुचु बरोपद्रव पराङ्मुखंबुलै युंडु पशुपक्षि मृगादुल बाधिचु, ना या मृगंबुलु रुरु रूपंबुल दालिच यट्टि पापि जनुल नानाविध यातनल बाधिचुटंजेसि रौरव, महा रौरवनरकंबुलंवडु। एव्वडेनियु देहपोषणार्थंबु पशु मृगादुल प्राण विरोधंबुजेसि वधिचु, ना निष्करुणुंडैन पुरुषुनि गुंभीपाक नरकंबुलयंदु गाल तप्त तैलंबुलं बॆक्कु बाधलं बॊंदितुरु ॥ 139 ॥

सी. तल्लि दंड्रुलकुनु धरणीसुरुलकुनु नहितंबु जेसिन यट्टिवाडु
कालसूत्रंबनु कडु दीव्र नरकंबु नंबुन नंदंद ययुतयोज-
नायत ताम्रपात्रादुल सूयुंडु मीद ग्रिद वह्नि मिगुल मंड
नत्यंत क्षुत्पिपासुदुल चेतनु वाधितुंडगुचुंडु बायकॆपुडु

आ. परुवुवॆट्टुचुन्न वडियुन्न निलिच्चिन
गवलकुन्न जाल नॊदिगियुन्न
बाध बॊंदुचुंडु बशुवु रोममु लॆन्नि
वरुस नन्नि वेल वत्सरमुलु ॥ 140 ॥

व. मरियु वेदमार्गंबु विडिचि पाषंडमार्गंबु लाचरिंचु पुरुषुनि नसिपत्र वनंबुनंदु धर्मांककरुलु तरट्ल नडचुचु बरिहसिपुचं दोलुनॆड ना यसिपत्रंबु

---

पोषण के लिए दूसरों के प्रति द्रोह करें तो वह नर रौरव नरक में गिर पड़ेगा। जो इह लोक मे स्वेच्छा विहार से संचरण करते हुए, दूसरों को उपद्रव पहुँचाने मे पराङ्मुख रहनेवाले पशु, पक्षी, मृगादियों को सताता है, ऐसे पापी जनों को वे मृग रुरु (हिरन के) रूपों को धारण कर नाना प्रकार की यातनाएँ देकर सताने से [वे नरक] रौरव और महा रौरव कहलाते है। जो भी हो देह पोषण के लिए पशु और मृगादियों का प्राण निरोध कर वध करता है उस निष्करुण (निर्मम) पुरुष को कुंभीपाक नरकों में स्थित तप्त तैल से अनेक बाधाओं (यातनाओं) को [यमपुरुष] प्राप्त कराते हैं। १३९ [सी.] माता-पिताओं का और धरणीसुरों का जो अहित करता है वह कालसूत्र नामक अधिक तीव्र नरक में जाता है। उसमें जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) अयुत योजन विशाल ताम्र पात्रादियों के ऊपर सूर्य के नीचे वह्नि (अग्नि) के अधिक ज़लते रहने पर अत्यन्त क्षुत्-पिपासा आदियों से पीड़ित होता रहता है। [आ.] निरन्तर दौड़ते रहने पर [या] लेटे रहने पर [या] खड़े रहने पर [या] बिना हिले डुले रहने पर [या] अधिक संकुचित होकर रहने पर भी वह पशु के जितने रोम होते हैं क्रमशः उतने हजार वर्ष यातनाएँ पाता रहता है। १४० [व.] और वेदमार्ग को छोड़कर पाषंड मार्ग का आचरण

लिरुगौलंकुल शरीरंबु दॆंपुचुंड नडुगडुगन मॊऱ बॆट्टुचुंड बाधिपु चुंडुदुरु ॥ 141 ॥

कं. दंडिप दगनिवारल, दंडिचिन विप्रवरुल तनुवुलु मुट्टं-
दंडिचिन दुर्मतुलं, दंडितुरु कालसूत्र नरकमुलंदुन् ॥ 142 ॥

आ. मरियु नट्टि दुष्ट मानवु गिकरुल्
विरिचि चऱकुगोल बिऱचि नट्लु
बाध पॆट्टुचुंड बडि मूर्छ जॆंदुचु
मॊऱलु बॆट्टुचुंडु भूपवर्य ! ॥ 143 ॥

व. नरेंद्रा ! यॆव्वडेनियु नीश्वर कल्पित वृत्ति गल जंतुवुल हिंसिचु, नट्टिवानि नंध कूपंबनु नरकंबुनं बडवैचिन नंदु नतंडु दॊल्लि तानु जेसिन भूत द्रोहंबुन नच्चट विविध क्रूर पक्षि, मृग, पशु, सर्प, मशक, मत्कुण, मक्षिकादुलचेत हिंसं बॊंदुचु महांधकारंबुनंदु निद्रानुभव सुख लेशंबुनु लेक कुशरीरंबुनंदुल जीवुंडुनुंबोलॆ मृतप्रायुंडै युंडु ॥ 144 ॥

कं. तन कलिमि नॆव्वडेनियु, दन बांधववरुल गूडि तग गुडुवुक ता-
नुनु वायसंबु भक्षिं, चिन माड्किन् दिन्नवाडु शीघ्रमॆ यचटन् ॥ 145 ॥

---

(अनुसरण) करनेवाले पुरुष को यमकिंकर असिपत्र वन में कोड़ों के बल (कोड़े लगाते हुए), परिहास करते हुए चलाते है (वन में जाने के लिए विवश करते है)। उस समय असिपत्रों के दोनों ओर से शरीर को काट देते रहने पर, पग-पग-पर दुहाई देते रहने पर [यमकिंकर] सताते रहते हैं। १४१ [कं.] ऐसे लोगों को दण्डित करने पर, जिनको दण्डित नहीं करना चाहिए (जो दण्ड-योग्य नही है) और विप्रवरों के शरीरों का स्पर्श कर दण्डित करने वाले दुर्मतियों को कालसूत्र [नामक] नरक में दण्डित करते हैं। १४२ [आ.] हे भूपवर्य ! और ऐसे दुष्ट मानवों को [यम-] किंकर इक्षुदण्ड को तोड़ देने के समान तोड़कर, सताने पर नीचे गिर कर मूर्छित होकर दुहाई देते रहते हैं। १४३ [व.] हे नरेंद्र ! जो भी हो ईश्वर कल्पित वृत्तिवाले जंतुओं को हिंसित करनेवाले को अंधकूप नामक नरक में डाल देने पर वह उसमें पूर्व में अपने किये भूत-द्रोह के फलस्वरूप वहाँ विविध क्रूर पक्षी, मृग, पशु, सर्प, मशक, मत्कुण, मक्षिक आदियों से हिंसित होते हुए, महांधकार में निद्रानुभव के सुखलेश के अभाव में, कुशरीर में, जीव के समान मृत प्राय होकर रहता है। १४४ [कं.] अपनी संपन्न दशा में जो भी हो, अपने बांधव वरों के साथ मिलकर औचित्य से न खाकर जो स्वयं वायस के खाने के समान खानेवाला है, वह शीघ्र ही वहाँ १४५ [व.] क्रिमि-भोजन नामक नरक में

कं. क्रिमि भोजन मनियेंडि नर-
कमुनं बडि क्रिमुलें कूडगा गुडुचुचु दा-
ग्रिमि यगुचु लक्ष परिमा-
णमु गल क्रिमि गुंडमंदु नाटुक युंडुन् ॥ 146 ॥

व. मरियु नी भूलोकवुन नेव्वडेनियु नविपन्नुंडै चौर्यबलोद्वृत्तुल ब्राह्मणादुल हिरण्यरत्नादि द्रव्यंबुल नपहरिंचु, नट्टि पुरुषुनि नाग्नि वर्णंबुलगु नयः पिंडंबुल नग्नि तप्तंबुलगु शूलंबुलन्नतनि शरीरंबुनं दिवियुचुंडुदुरु। मरियुनु मदनातुरुलगुचु स्त्री पुरुष् लगम्यागम्यंबुलु सेसिरेनि, नट्टि वारि यमलोकंबुन नति तीक्ष्ण कशाताडितुलं जेसि, यग्निमयंबुलैन युक्कु प्रतिमल नालिंगनंबु सेयितुरु ॥ 147 ॥

आ. सर्वजंतु जाल संगममोदेंडु, वानि बट्टि कट्टि वज्रदंष्ट्र-
कमुलु गलुगु नट्टि घनतर शाल्मली, तरुवुलंदु जेर्चि वंतुरेपुडु ॥ 148 ॥

आ. पार्थिवेंद्र ! नरुड पाषंड दर्शनु, डगुचु धर्ममार्ग मडचेनेनि
वाडु नरकमंदु वैतरणी नदि, नुडुग केंपुडु वौरलि पडुचुनुंडु ॥ 149 ॥

व. मरियु नट्टि वैतरणी नदियंदु जलग्राहंबुलु दिगिचि भक्षिंप ब्राणंबुलु निर्गमिप दन पापंबु लुच्चरिंपुचु विण्मूत्रपूय शोणित केश नखास्थि मेदो

---

गिर कर ऐसा भोजन खाता है जिसमें क्रिमियाँ ही क्रिमियाँ होती हैं। स्वयं क्रिमि होते हुए लक्ष परिमाण वाले क्रिमि-गुण्ड (कुण्ड) में स्थिरता से रहता है। १४६ [व.] और इस भूलोक में जो भी हो, अविपन्न होकर चौर्यबल की उद्‌वृत्तियों से ब्राह्मणादियों के हिरण्य, रत्न आदि द्रव्यों का अपहरण करता है, ऐसे पुरुष के शरीर में अग्निवर्ण अयः पिण्डों (लाल-लाल लोहे के गोलों) से और अग्नितप्त शूलों से छेदते रहते है। और मदनातुर (कामी) होते हुए स्त्री-पुरुषों के अगम्य गमन करने पर उन्हें यमलोक में अति तीक्ष्ण कशाओं से ताडित कर (कोड़े लगाकर) अग्निमय फौलाद की प्रतिमाओं का आलिंगन कराते हैं। १४७ [आ.] सर्वजन्तु-जाल (सब प्रकार के जन्तु समूह) से संगम (संभोग) करनेवाले [व्यक्ति] को पकड़ कर बाँधकर वज्र दंष्ट्राओं से युक्त घनतर (बडे-बडे) शाल्मली तरुओं के निकट ले जाकर सदा कूटते रहते हैं। १४८ [आ.] हे पार्थिवेंद्र ! नर के पाषंड दर्शनवाला होते हुए धर्ममार्ग का रमण करने पर वह सदा नरक में वैतरणी नदी मे लोटता रहता है। १४९ [व.] और ऐसी वैतरणी नदी में जल-ग्राहों के पकडकर भक्षण करने पर [अपने] प्राणों के निकल जाने पर अपने पापों का उच्चारण (स्मरण) करते हुए विट (मल) मूत्र, पूय (पीब) शोणित, केश, नख, अस्थि, मेदा, मांस, वसा की वाहिनी में तप्त होता रहता है। यदि विप्र

मांस वसावाहिनि दप्तुडगुच नुंडु। विप्रुंडु शूद्र कामिमुलं बोंदि शौचाचारंबुलंबासि गतलज्जुंडै पशुवुनुंबोलि चरियिंचेनेनि, नतंडु नरकंबुनुंबोंदि यंदु पूय विण्मूत्र लाला श्लेष्म पूर्णार्णवंबंदु द्रोब्बंबडि यति बीभत्सितंबुलगु ना द्रव्यंबुल भुजिपुचुंडु ॥ 150 ॥

कं. शुनकमुल बचि यॆव्वं, डनयंबुनु वेट सलिपि यात्मार्थमुगा
वन मृगमुल जंपुनु ना, मनुजाधमु नस्त्रमुलनु मदितुरोगिन् ॥ 151 ॥

आ. द्रव्यलोभमुननु दंभार्थमै पशु, वुलनु जंपि जन्नमुलनु जेयु
वानि बट्टि यमुनि वारलु गोयुचु, नुंदु रॆपुडु मिगुल संदडिलुचु ॥ 152 ॥

व. काम मोहितुंडै यॆव्वडेनियु दन भार्यचेत रेतःपानंबु सेयिचु, ना पापात्मुनि रेतोह्लदंबुनं द्रोचि या रेतंबुनॆ पानंबु सेयिचुदुरु। राज भटुलेननु, चोरुलेननु धनिक ग्रामंबुल पै बडि यंदु गृह दाहंबु सेयु वारलनु, विषंबु पॆट्टु वारलनु, वज्र दंष्ट्रलुगल विंशत्युत्तर सप्तशत शुनकंबु लॆडतॆगक तिगिचि भक्षिपुचुंडु ॥ 153 ॥

सी. लंचंबु गोनि साक्षि वंचिचि यनृतंबु बलिकॆडु पापात्मु बट्टि कट्टि
यंत मानक वीचियनु नरकमुनंदु शतयोजनोन्नत शैल शिखर-
मुन दल क्रिंदुगा नुनिचि यधोमुखंबुग वडद्रोब्बिन बोब्बलिडुचु
कल्लोलमुलु लेनि कमलाकरमु बोलॆ चट्टलमैयुन्न पाषाणमंदु

---

शूद्र-कामिनियों का संभोग करें, शौच आचारों को छोड़कर, लज्जा छोड़कर, पशु के समान आचरण करें तो वह नरक को प्राप्त कर उसमें पूय, विट, मूत्र, लाला, श्लेष्म से पूर्ण अर्णव (समुद्र) में ढकेला जाकर अति वीभत्स (घृणित) उन द्रव्यों को खाता रहता है। १५० [कं.] शुनकों को पालकर जो सदा शिकार खेलकर अपने लिए वन-मृगों को मार डालता है उस मनुजाधम को क्रम से शस्त्रों से मर्दन करते हैं। १५१ [आ.] द्रव्य-लोभ से और दम्भ [प्रदर्शन] के लिए पशुओं को मार कर यज्ञ करनेवाले को पकड़ कर यम के जन (यमकिंकर) सदा उत्साह से शोर मचाते हुए काटते रहते हैं। १५२ [व.] काम-मोहित होकर जो भी अपनी पत्नी से रेतःपान कराता है, उस पापात्मा को रेतोह्लद में ढकेल कर उस रेतस का ही पान कराते हैं। राज-भट हों अथवा चोर, यदि धनी ग्रामों पर आक्रमण कर, वहाँ गृह-दाह (घर जलाना) करें, या विष खिलायें तो उन्हें पकड़कर निरन्तर वज्र-दंष्ट्राओं वाले विंशत्युत्तर सप्त शत (सात सौ बीस) शुनक खाते रहते हैं। १५३ [सी.] रिश्वत लेकर गवाह को धोखा देकर अनृत (झूठ) कहनेवाले पापात्मा को पकड़कर, बाँधकर, उतने से न रुककर वीचि नामक नरक में शतयोजन उन्नत शैलशिखर से उलटे रख अधोमुख (मुख नीचे की

ते. पडिनयंतन देहंबु पगिलि पॅक्कु
तुनकलै पासि यदि गूडिकॉनुचु नुंडु
नुंडि याकुलमुनु नॉंदुचुंडु गानि
चावु लेकुंडु ना दुष्ट जंतुवुनकु ॥ 154 ॥

आ. सोमयाजि भार्य गामिंचि पॉंदिन, वानि गपट मद्यपान सोम-
पान मनुदिनंबु बानंबु सेयु विट्, क्षत्रियुलनु वट्टि संभ्रममुन ॥ 155 ॥

आ. ड्रॉम्मु ड्रॉक्कि मोमु ड्रिम्म वट्टग मोदि
यनल मुखमुनंदु नग्नि वर्ण-
मुगनु गाचि वक्त्रमुन निडगा नुक्कु
नीरुवोतु रेचि निष्ठुरमुग ॥ 156 ॥

व. मरियु नीचवर्णुंडु निष्ठसलुपुचुं दपोदान विद्याचारंबुलं बॅद्दल कवमानंबु सेयुवाडु क्षारकर्दमंबनु नरकंबुनंदु नधोमुखुंडगुचु बाधलंबॉदु। स्त्री पुरुषु लॅव्वरेनियु शरीर रक्षणार्थंबु पशुवुल, मानवुल बलियिच्चिरेनियु, वारलनु निरयंबुनंदु यमकिंकरुलु सुरियलंदुनिमि, तद्रक्तंबु पानंबु सेयुचु बाधाडुचुंड्दुरु। ग्रामारण्यंबुल यंदु जंतुवुल शूलप्रोतंबुलं गाविंचि हिंसिपुचु हर्षिचुचुन्न वारलनु, शूलप्रोतंबनु नरकंबुनंदु शूलप्रोतुलंजेसिन,

---

तरफ हो ऐसा) ढकेलने पर हाहाकार करते हुए कल्लोल से रहित कमलाकर के समान चटुल पाषाण पर [ते.] गिरने पर देह के टूटकर अनेक टुकड़े होकर, अलग होकर फिर वह [देह] एक होती रहती है। ऐसा होने पर वह व्याकुल होता है, किन्तु उस दुष्ट जन्तु (प्राणी) के लिए मृत्यु नही है। १५४ [आ.] सोमयाजि की पत्नी के प्रति काम-वासना-युक्त होकर प्राप्त करनेवाले को, प्रति दिन कपट मद्यपान और सोमपान करनेवाले क्षत्रियों को संभ्रम से पकड़ कर। १५५ [आ] छाती को कुचल कर, मुख सुन्न हो जाय ऐसा पीटकर, अनल मुख मे अग्नि वर्ण (लाल) बन जाय ऐसा गरम कर और निष्ठुरता से वक्त्र (गले) में फौलाद का पानी (पिघला फौलाद) विजृंभित होकर डालते हैं। १५६ [व.] और नीच वर्ण वाले के निष्ठावान् होते हुए तप, दान, विद्या, आचार से बड़ों का अपमान करने पर वह क्षार कर्दम नामक नरक में अधोमुखी होते हुए यातनाएँ पाता रहता है। स्त्री-पुरुष में कोई भी हो शरीर-रक्षण के लिए पशु या मानवों की बलि चढ़ावें तो उन्हें निरय (नरक) में यमकिंकर छुरियों से छीलकर उस रक्त का पान करते हुए सताते रहते हैं। ग्राम के अरण्यों में जन्तुओं को शूल पर चढ़ाकर हिंसित करते हुए हर्षित होनेवालों को शूलप्रोत नामक नरक में

क्षुत्पिपासापरुलगुचुंड गंक गृध्रादुलु तीक्ष्ण तुंडाग्रंबुन दिगिचि भक्षिपुचुंडु। मरियु धूर्त स्वभावंबुन जंतु पीडनंबु गाविचुंडु पापात्मुल दंद शूकंबनु नरकंबु नंदु नंदु नेडु मुखंबुल सर्पंबुलु गरचुचुनुंडु ॥ 157 ॥

आ. एनय दौड्ललोन निड्ललो नैननु
पशु पतंग हरिण पंक्ति नेल्ल
बट्टि हिंस सेयु पापात्मु विष वह्नि
धूम शिखल द्रोब्बुदुरु नृपाल ! ॥ 158 ॥

कं. तन यिटिकि वच्चिन मनु-
जुनि नतिथि ग्रोधदृष्टि जूचिन वानि
गनु गवल वज्र दंष्ट्रल
वनरिन या कंक गृध्रतति भक्षिचुन् ॥ 159 ॥

म. धनवंतुंडगु मानवुंडु गडकन् धर्मोपकारंबुलन्
घनतंजेयक युंडेनेनि यम लोकंबंदु सूचीमुखं-
बनु ना दुर्गति बट्टि त्रोचि निधिकापैयुन्न भूतं बटं-
चुनु वाशंबुल बट्टि कट्टि वडितो नोंप्पितु रत्युग्रुलै ॥ 160 ॥

आ. नरवरेण्य ! यिट्टि नरकमुल् यमलोक
मंदु गलवु मरि सहस्त्र संख्य-
लंबु शमनदूत लनिशंबु बाधितु-
रवनि धर्म दूरुलैन नरुल ॥ 161 ॥

---

शूलों पर चढ़ाने पर वे क्षुत्-पिपासा से व्याकुल होते हैं तो कंक, गृध्र आदि तीक्ष्ण तुंडाग्र से नोचकर खाते रहते हैं और धूर्त स्वभाव से जन्तु पीडन करनेवाले पापात्माओं को दंदशूक नामक नरक में पाँच सात मुख वाले सर्प डँसते रहते हैं। १५७ [आ.] हे नृपाल ! सोचने पर आँगन में या घर में पशु, पतंग, हरिण, पंक्तियों (समूहों) को पकड़ कर हिंसित करने वाले पापातमा को विष-वह्नि-धूम शिखाओं में ढकेल देते हैं। १५८ [कं.] अपने घर आने वाले अतिथि को क्रोध की दृष्टि से देखनेवाले के नेत्रद्वय को वज्र दंष्ट्राओं के समान शोभित कंक, गृध्र तति (समूह) खाती है। १५९ [म.] धनवान होनेवाला मानव सप्रयत्न धर्मोपकारों को महानता से करके नहीं रहेगा तो यमलोक में सूचीमुख नामक दुर्गति (नरक) में पकड़ ढकेलकर 'निधि के लिए पहरेदार बना हुआ भूत है' कहकर पाशों से बाँध कर अत्युग्र हो झट पीड़ित करते हैं। १६० [आ.] हे नरवरेण्य ! ऐसे नरक यमलोक में हैं और सहस्र संख्याओं में शमन-दूत अवनि पर धर्म दूर (धर्मच्युत) बने नरों को सदा पीड़ित करते रहते है। १६१ [आ.] हे पुण्यचरित्रवाले ! समस्त धर्मवान

आ. धर्मवंतुलॆल्ल दप्पकस्वर्गंबु, नंदु भोगसमिति बॊंदुचुंडु
रॆलमि बुण्यपापमुल शेषमुलवल्ल, बुट्टु चुंदुरवनि बुण्यचरित ! ॥162॥

व. नरेंद्रा ! मोक्षमार्गंबु मुन्ने विनुपिंचिति। इप्पुडु नीकु नॆरिंगिंचिन वॆल्लनु ब्रह्मांड कोशंबुनं जतुर्दश कोशंबुलनि पुराणंबुलु पलुकुचुंडु। अट्टि ब्रह्मांडंबु श्रीमन्नारायणुनि स्थूल शरीरं बगुटं जेसि ब्रह्मांडंबॆव्वरु वर्णितु, रॆव्वरु विंदुरु, वारलकु सकल श्रेयस्सुलुं गलुगु। ईश्वर स्थूल शरीरंबु दॆलिसिन वारिकि श्रद्धाभक्तुलं जेसि सूक्ष्मदेहंबु नॆरुंगवच्चु। भूद्वीप वर्ष सरिदद्रि नभस्समुद्र पाताळ दिङ्नरक तारागण लोक संस्थितंबैन सकल जीव निकायंबै यद्भुतंबैन श्रीहरि स्थूल शरीरंबु विनुपिंचिति। अनि ॥ 163 ॥

चं. जलजभवादि देवमुनि सन्नुत ! तीर्थ पदांबुजात ! नि-
र्मल नवरत्न नूपुर विराजित ! कौस्तुभ भूषणांग ! यु-
ज्ज्वल तुलसी कुरंग मदवासन वासित दिव्यदेह ! श्री-
निलय शरीर ! कृष्ण ! धरणीधर ! भानुशशांकलोचना ! ॥ 164 ॥

कं. श्रीतरुणी हृदयस्थित !, पातकहर ! सर्वलोकपावन ! भुवना-
तीत गुणाश्रय ! यति वि, ख्यात ! सुरार्चित पदाब्ज ! कंसविदारी ! ॥165॥

---

लोग अवश्य स्वर्ग में भोग-समूह को प्राप्त करते रहते हैं [और] शोभा से पुण्य और पाप के शेष के कारण पृथ्वी पर पैदा होते रहते हैं। १६२ [व.] हे नरेंद्र ! मोक्षमार्ग के बारे में पहले ही बता चुका हूँ। अब तुम्हें जो कुछ बताया है, वे सब ब्रह्माण्ड-कोष में चतुर्दश कोष हैं ऐसा पुराण कहते हैं। इस प्रकार का ब्रह्माण्ड श्रीमन्नारायण का स्थूल शरीर है। ऐसा होने से ब्रह्माण्ड का जो वर्णन करते हैं, जो सुनते हैं उन्हें समस्त श्रेय प्राप्य होंगे। ईश्वर के स्थूल शरीर को जाननेवालों के लिए श्रद्धा-भक्तियों के कारण सूक्ष्म देह भी जाना जा सकता है। भू, द्वीप, वर्ष, सरित, अद्रि, नभ, समुद्र, पाताल, दिक्, नरक, तारागण लोक से संस्तित और सकल जीवनिकाय होने वाले और अद्भुत श्रीहरि के स्थूल शरीर के बारे मे सुनाया बताया) है। ऐसा कहकर १६३ [चं.] हे जलज भवादि देव मुनियों से सन्नुत ! तीर्थ रूपी पदाम्बुजात वाले ! निर्मल नवरत्न नूपुर से विराजित ! कौस्तुभ भूषण से युक्त अंग वाले ! उज्ज्वल तुलसी मरंद मद, वासना (सुगन्ध) से वासित (सुगंधित) दिव्य देह वाले ! श्री (लक्ष्मी) के निलय रूपी शरीरवाले ! हे श्रीकृष्ण ! हे धरणीधर ! हे भानुशशांक लोचनवाले। १६४ [कं.] हे श्री तरुणी के हृदय में स्थित होनेवाले ! हे पातकहर। हे सर्वलोक-पावन ! हे भुवनातीत गुणों के आश्रयवाले ! हे यतियों में विख्यात ! हे सुरार्चित

म. दंडितारिसमूह ! भक्तनिधान ! दानविहार ! मा-
तांडमंडल मध्यसंस्थित ! तत्त्वरूप ! गदासि को-
दंड शंख सुदर्शनांक ! सुधाकरार्क सुनेत्र ! भू-
मंडलोद्धरणार्तपोषण ! मत्तदैत्यनिवारणा ! ॥ 166 ॥

ग. इदि श्री सकल सुकविजनानंदकर बोप्पनामात्य पुत्र गंगनार्य प्रणीतंबैन श्रीमद्भागवत पुराणंबुनंदु भरतात्मजुंडैन सुमतिकि राज्याभिषेकंबुनु, पाषंडदर्शनंबुनु, सुमति पुत्र जन्म विस्तारंबुनु, गयुनि चरित्रंबुनु, गयुनि संस्तुतियु, भू द्वीप वर्ष सरिदद्रि नभस्समुद्र पाताळ दिङ्नरक तारकागण संस्थितियुनु ननु कथलु गल पंचम स्कंधंबु नंदु द्वितीयाश्वासमु संपूर्णमु ॥ 167 ॥

---

पदाब्जवाले ! हे कंस-विदारी ! १६५ [म.] हे दण्डित आदि समूह वाले ! हे भक्तनिधान ! हे दान-विहार ! हे मार्तण्डमण्डल के मध्य संस्थित रहनेवाले ! हे तत्त्वरूप वाले ! गदा, असि, कोदण्ड, शंख, सुदर्शन चिह्नों से युक्त रहनेवाले ! हे सुधाकर-अर्क-नेत्रवाले ! हे भूमण्डल का उद्धार करनेवाले ! हे आर्तपोषक ! मत्त दैत्यों का निवारण करनेवाले ! [तुम्हें प्रणाम है] १६६ [ग.] यह श्री सकल सुकवि जनों के लिए आनन्दकर बोप्पनामात्य के पुत्र गगनार्य के प्रणीत श्रीमत् भागवत् पुराण में भरतात्मज सुमति का राजतिलक, पाषण्ड दर्शन, सुमति के पुत्रों का जन्म-विस्तार, गय का चरित्र, गय की संस्तुति, भू, द्वीप, वर्ष, सरित, अद्रि, नभ, समुद्र, पाताल, दिक्, नरक, तारकागण की संस्थिति नामक कथाओं से युक्त पंचम स्कंध में द्वितीय आश्वास संपूर्ण [हुआ है] । १६७

ॐ

# अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

# आन्ध्र महाभागवतमु

## ( षष्ठ स्कन्धमु )

शा. श्रीवत्सांकित कौस्तुभस्फुरित लक्ष्मीचारु वक्षस्स्थल
श्री विभ्राजितु नीलवर्णु शुभ राजीवाक्षु गंजात भू-
देवेंद्रादि समस्तदेव मकुटोद्दीप्तोरु रत्न प्रभा-
व्याविद्धांघ्रि सरोजु नच्युतु गृपा वासु ब्रशंसिचॆदन् ॥ 1 ॥

उ. निंडु मति दलंतु गमनीय भुजंगमराजमंडली-
मंडनु जंद्रखण्ड परिमंडितमस्तकु दार मल्लिका
पांडुरवर्णु जंडतरभंडनु हेम गिरीन्द्र चारु को-
दंडु महेशु गंध गजदानवभंजनु भक्तरंजनुन् ॥ 2 ॥

---

( षष्ठ स्कन्ध )

[शा.] श्रीवत्स से अंकित (युक्त), कौस्तुभ [मणि] से शोभित, सुन्दर लक्ष्मी की श्री (शोभा) से विभ्राजित (शोभायमान) वक्षस्थल वाले, नील वर्णवाले, शुभ (मंगलप्रद) राजीव नेत्रवाले, कंजात-भू (ब्रह्मा), देवेन्द्र आदि समस्त देवताओं के मुकुटों के उद्दीप्त उरु (महान्) रत्न-प्रभाओं से व्याप्त अंघ्रि (चरण) सरोजवाले, अच्युत, कृपा के आवास (निलय) वाले की प्रशंसा करता हूँ। १ [उ.] कमनीय-भुजंगम-राज श्रेष्ठ सर्पों की मंडली (समूह) से मंडित (अलंकृत), चंद्र के खण्ड (अर्धचंद्र) के परिमंडित (शोभायमान) मस्तक (ललाट) वाले तारा, मल्लिका आदि के समान पाण्डुर वर्ण वाले, चंडतर भण्डन (युद्ध) वाले, हेमगिरीन्द्र (स्वर्ण पर्वत) को सुन्दर कोदण्ड के रूप में धारण करनेवाले, गंध गज (मस्त हाथी) रूपी दानव (गजासुर) का भंजन (नाश) करनेवाले, भक्तरंजन महेश का पूर्णमति से स्मरण करता हूँ। २

उ. हंस तुरंगमुं बरमहंसमु नंचितदेवता कुलो-
त्तंसमु नागमांत विदित ध्रुव पुण्यरमावतंसमुं
गंसजिघांसु नंशमुनु गर्बुरसूत्र समावृतांसमुन्
हिंस नडंचु ब्रह्ममु नहीनशुभंबुलकै भजियिंदन् ॥ 3 ॥

उ. मोदक हस्तुनिन् समदमूषक वाहनु नेकदंतु लं-
बोदरु नंबिकातनयु नूर्जितपुण्यु गणेशु देवता
ह्लाद गरिष्ठु दंतिमुखु नंचित भक्त फल प्रदायकुन्
मोदमुतोड हस्तमुलु मोड्चि भजिंचेंद निष्टसिद्धिकिन् ॥ 4 ॥

उ. कल्ल तनंबु गाक पोडगट्टिन पूर्वपुरीति नेडु ना
युल्लमु नंदु नुंडुमु समुन्नत तेजमु तोड भक्ति रं
जिल्लिन चूपु गूड विधि जेंदिन प्रोड बुधाळि नीड मा
तल्लि दयामतल्लि प्रणतद्रुमकल्पक वल्लि भारती ! ॥ 5 ॥

कं. विलसत्कंकणरवरव, कलितंबगु नभय वरद करमुलु बॅरयं
जॅलरेगि भक्तुलकु नल, कलुमुलु दयसेयु जलधिकन्यक दलतुन् ॥ 6 ॥

---

[उ.] हंस को तुरंग (वाहन) के रूप में अपनानेवाले परमहंस, अंचित देवता कुल के शिरोमणि, आगमान्त विदित ध्रुव तुमने रमावतंस (वेदों के अन्त में निश्चित रूप से विदित होनेवाले विष्णु को जाननेवाले), कंस को मारने की इच्छा रखनेवाले (श्रीकृष्ण) के अंश को धारण करनेवाले, कर्बुर (पाटल) सूत्र से समावृत अंस भाग (कंधा) वाले, हिंसा का दमन करनेवाले ब्रह्म का अहीन-शुभों के लिए भजन करता हूँ । ३ [उ.] मोदकों को हाथ में रखनेवाले, समद मूषक को वाहन के रूप में अपनानेवाले, एकदन्त वाले, लम्बोदर वाले, अम्बिका-तनय, ऊर्जित पुण्यवाले, देवताओं को आह्लादित करनेवालों में गरिष्ठ (श्रेष्ठ), दन्ती (हाथी) के मुखवाले, भक्तों को अचित फल प्रदान करनेवाले, गणेश का मोद के साथ कर जोड़कर इष्टसिद्धि के लिए भजन करता हूँ । ४ [उ.] हे भारती ! भक्ति से प्रसन्न चितवनों से युक्त होकर विधि (ब्रह्मा) के साथ रहनेवाली प्रौढ़ा, बुधाली (बुद्धिमानों के समूह) के लिए आश्रय रूपी हमारी माता, दया-स्वरूपिणी, प्रणत जनों के लिए कल्पवृक्ष की लता के समान, हे सरस्वती ! सच्चे रूप में जिस प्रकार पूर्व में दिखाई पड़ी थी, उसी प्रकार से मेरे हृदय में समुन्नत तेज के साथ निवास करो । ५ [कं.] विलसत (शोभायमान) कंकणों के रव से कलित (सुन्दर) बने अभय-वरद हस्तों के औन्नत्य से भक्तजनों को सम्पत्तियाँ प्रदान करनेवाली जलधि-कन्यका (लक्ष्मी) का स्मरण करता हूँ । ६ [कं.] काली (काली

कं. काळिकि बहु सन्नतलो
काळिकि कमनीय वलय करकीलित कं
काळिकि तापस मानस
केळिकि वन्दनमु सेसि कीर्तितु मदिन् ॥ 7 ॥

व. अनि यिष्टदेवता प्रार्थनंबु सेसि ॥ 8 ॥

चं. परमसमाधि धुर्यु वटु पावन कर्म विधेयु देवता
वर नर वंद्यु सद्विमल वाक्यु जनार्दन कीर्तन क्रिया
भरण समर्थु वेद चय पारगु भव्यु द्रिकालवेदि भा-
सुरमति गोल्चुटोप्पु बुध शोभितु बुण्यु. पराशरात्मजुन् ॥ 9 ॥

कं. व्यासुनि भगवत्पदसं, वासुनि नागम पुराण वर विष्णु कथा
वासुनि निर्मल कविता, भ्यासुनि पद पद्मयुगमु भावितु मदिन् ॥ 10 ॥

सी. वरकवित्वोद्रेकि वाल्मीकि गोनियाडि भागवतार्थ वैभवमु वलुकु
शुक मंजुलालापु शुकयोगि प्रार्थिंचि बाण मयूरुल प्रतिभ नोडिवि
भास सौमिल्लक भारवि माघुल घन सुधा मधुर वाक्यमुल दलचि
कालिदासु गवींद्र कल्पवृक्षमु गोल्चि नन्नपाचार्यु वर्णनल बोगडि

---

मां) को अधिक प्रशंसा करनेवाले लोकसमूह से युक्त, कमनीय, गोलाकार (सुडौल) करों में सम्पन्न कंकाली को तापसों के मन में विहार करने वाली को वन्दना करके मन से कीर्तन (प्रशसा) करता हूँ। ७ [व.] ऐसा कह इष्ट-देवताओं की प्रार्थना करके। ८ [चं.] परम समाधि में धुरीण, पटु पावन कर्म से देवता वरों को विधेय बनानेवाले, नरों से वन्दित होनेवाले, सत्-विमल वाक्य वाले, जनार्दन के कीर्तन-कलाप में समर्थ, वेद समूह के पारंगत, भव्य, त्रिकालवेदी, भासुरमति वाले, बुधों से शोभित, पुण्यशाली, पराशर के आत्मज की सेवा करना समुचित है। ९ [कं.] व्यास के, भगवत् पद संवास के (भगवान के चरणों में निवास करनेवाले के), आगम और पुराणों में वर विष्णु-कथाओं का वर्णन करनेवाले के, निर्मल कविता का अभ्यास करनेवाले के पदपद्म-युगल की मन में भावना करता हूँ। १० [सी.] वर कविता के उद्रेक (आवेश) से युक्त वाल्मीकि की प्रशंसा कर, भागवत के अर्थवैभव का बखान करनेवाले शुक के समान मंजुल आलाप वाले शुभा योगी की प्रार्थना कर, बाण और मयूर की प्रतिभा का वर्णन कर, भास-सौमिल्लक-भारवि-माघ के घन-सुधा मधुर वाक्यों का स्मरण कर कालिदास रूपी कवीन्द्र-कल्पवृक्ष की सेवा कर नन्नपाचार्य (तेलुगु के आदि कवि नन्नया) के वर्णनों की प्रशंसा कर [ते.] शोभा से तिक्कना सोमयाजी का भजन कर एर्रनामात्य

ते. वॅलय दिक्कन सोमयाजुल भजिंचि
यॅर्रंनामात्यु भास्करु निच्च नुनिचि
सुकवि सोमुनि नाचनसोमु नॅऽगि
कवि मनोनाथु श्रीनाथु घनत मॅच्चि ॥ 11 ॥

उ. एम्मॅलु सॅप्पनेल ? जग मॅन्नग बन्नगराज शायिकिन्
सॉम्मुग वाक्य संपदलु सूऽलु चेसिन वानि भक्तिलो
नम्मिनवानि भागवत नैष्ठिकुडै तगुवानि बेमितो
बम्मॅरपोतराजु कवि पट्टपुराजु दलंचि म्रॉक्कॅदन् ॥ 12 ॥

व. अनि सकल सुकवि निकरंबुलकु मुकुळित करकमलुंडनै ॥ 13 ॥

उ. एय्यदि कर्मबंधमुल नॅल्ल हरिंचु विभूतिकारणं
बॅय्यदि सन्मुनींद्रुलकु नॅल्ल गवित्व समाश्रयंबु मु-
न्नॅय्यदि सर्वमंत्रमुल नेलिन दॅय्यदि मोक्षलक्ष्मि रू-
पॅय्यदि दानि बल्कॅद सुहृद्यमु भागवताख्य मंत्रमुन् ॥ 14 ॥

व. अनि श्रीमहाभागवत पुराणंबु नंदु षष्ठस्कंधं बंध्र भाष रचियिपंबूनि मदीय कवितामहालक्ष्मिकि नारायणुंडै नाथुडगुटंजेसि यी कृति कृष्णार्पणंबु जेसिति । अदि यॅट्लनिन, नेनु विद्याभ्यासंबुनं दगिलि कॉंडुकनै युंड नॉक्कनाडु दिवंबुन ॥ 15 ॥

---

और भास्कर को मन में रख कर सुकवि सोम (सुकवियों में चंद्र) नाचनसोम को प्रणाम कर, कवि मनोनाथ श्रीनाथ के महत्त्व की प्रशंसा कर ११ [उ.] विलास (व्यर्थ के शब्दाडंबर से) युक्त [कविताएँ] कहना क्यों ? (अर्थात् इस प्रकार की कविता करना व्यर्थ है) । जग प्रशंसा करे इस रूप में पन्नगराजशायी (विष्णु) के लिए अपनी वाक्य-संपत्ति को आभरण के रूप में समर्पित करनेवाले, मन से भगवान की भक्ति पर विश्वास रखनेवाले, भागवतों में धर्मनिष्ठा से युक्त रहनेवाले बम्मेर पोतराजु का जो कवि-सम्राट् है प्रेम से स्मरणकर प्रणाम करता हूँ । १२ [व.] ऐसा सकल सुकवि-निकरों के लिए मुकुलित कर कमल वाला बनकर—१३ [उ.] जो समस्त कर्म-बन्धनों का हरण करनेवाला है, जो विभूति का कारण है, जो समस्त सन्मुनींद्रों के कवित्व का समाश्रय है, जो पूर्व में सर्व मंत्रों का अधिशासक है, जो मोक्षलक्ष्मी का [साक्षात्] रूप है ऐसे सुहृद्य भागवत नामक मंत्र को कहूँगा । १४ [व.] ऐसा [कहकर] श्रीमहाभागवत् पुराण के षष्ठ स्कंध को आंध्र भाषा में लिखने का निश्चय कर मेरी कविता रूपी महालक्ष्मी के लिए नारायण के ही नाथ (पति) होने के कारण [मैंने] इस कृति को कृष्णार्पण (श्रीकृष्ण को समर्पित) किया है । वह कैसा

चं. कलित विशेष वस्त्रमुलु गट्टि हिमांबु सुगंध चंदनं
बलदि विनूत्न भूषणमु लारय दाल्चि विनोद लोल नि-
पुल मृदु शय्य निद्र वग बोंदिनचो गनुपट्टे पल्मरुं
गलय दटिद्विलासमुलु गट्टिग नोक्कट निल्चु पोलिकन् ॥ 16 ॥

सी. उरवडि प्राग्वीथि नुदयिंचु मार्तांड कोटि बिंबच्छाया गूडिनट्लु
हरिहर ब्रह्मल यात्मललो नुब्बि करुण योक्कट मूर्ति वेरसिनट्लु
खरकर कर तीव्र गतिनि गरंगुचु हेमाद्रि सोग पेल्लेगसिनट्लु
फणिराज फणराजि मणिगण विस्फूर्ति सुधिरंपु वेलिदल चूपिनट्लु

ते. उट्टि पडुडट्लु कट्टेरं नूदिनट्लु
तेज मोसगंग ना ग्रोल दिव्यवाणि
पूनि साक्षात्करिंचि संपूर्ण दृष्टि
जूचि यिट्लनि पलिके मंजुलमुगानु ॥ 17 ॥

उ. आटलु पाटलुं जदुवु लद्भुतमुल् विन नोप्पु वाद्यमुल्
साटि दलंपरानि बलुसामुलु मुन्नगु विद्यलेल्ल नी
काटलु पाटलय्ये विनु मन्निटिकिन् मेरुगिड्ड भंगि ना
चाटुन जाटुकारपद साधु कवित्वमु जेप्पु निपुणन् ॥ 18 ॥

है ? [यह पूछने पर] मेरे विद्याभ्यास में लगकर रहते समय एक दिन १५ [चं.] सुन्दर विशिष्ट वस्त्र पहन कर, हिमांबु (गुलाबजल) और सुगंधित चन्दन का लेप कर, विनूतन भूषणों को ढंग से धारण कर विनोद-लीला से (विलास से), प्रेम से मृदु शय्या पर उचित ढंग से सो जाने पर, सुन्दरता से तटित विलासों के (बिजली के प्रकाश के) सुडौल होकर एक साथ खड़े रहने की रीति से कई बार [जगन्माता] दिखाई पड़ी। १६ [सी.] वेग से प्राग्वीथि (पूर्व दिशा) पर उदित होनेवाले करोड़ों मार्तण्डों के बिम्ब की छाया के एकत्रित होने के समान, हरि-हर-ब्रह्माओं के आत्माओं से उमड़ कर करुणा के एकस्थान पर मूर्तिमान होने के समान, खर-कर (सूर्य) के कर (किरण) की तीव्र गति से पिघलनेवाले हेमाद्रि की शोभा के अधिक व्याप्त होने के समान, फणिराज (आदि शेष) की फणराशि (फनो के समूह) के मणिगण की विस्फूर्ति प्रकाश की श्वेतता के दिखाई पड़ने के समान, मानों [समस्त सौंदर्य के मूर्तिमान होकर] समक्ष प्रत्यक्षीभूत होने के समान [ते.] तेज के अधिक व्याप्त होने पर मेरे समक्ष दिव्य वाणी (सरस्वती) सप्रयत्न साक्षात् होकर सम्पूर्ण दृष्टि से [मुझे] देखकर मंजुलता से यों बोली—१७ [उ.] खेल, गीत, अद्भुत शिक्षाएँ, कर्णपेय वाद्य, असमान अनेक प्रकार के व्यायाम आदि समस्त विद्याएँ तुम्हारे लिए खेल और गीत (बायें हाथ के खेल के समान) बन गये। सुनो, इन सबको चमकाने के समान मेरे आश्रय में

व. अनि यानतिच्चु जगन्मात कृपावलोकन सुश्लोकुंडनै ये नौक श्लोकंबु नाक्षणंब नौडिविति । अदि यॆट्टि दनिन ॥ 19 ॥

श्लोकमु
हंसाय सत्त्वनिलयाय सदाश्रयाय
नारायणाय निखिलाय निराश्रयाय
सत्संग्रहाय सगुणाय निरीश्वराय
संपूर्ण पुण्यपतये हरये नमस्ते ॥ 20 ॥

व. ई श्लोकंबद्देवि यंगीकरिंचॆं । अंत मेलुकांचि यानंद भरितुंडनै नाट नुंडि, चंद्रानुगत यगु चंद्रिकयुं बोलॆं, नारायणांकितंबैन कवित्व तत्त्वज्ञानंबु गोचरंबय्यॆं । दानिकि फलंबुगा गोपिका वल्लभुनि नुल्लंबुन निडुकॊनि ॥ 21 ॥

आ. पलुक गलिगॆं मॊदल भागवतार्थंबु
भर्त कृष्णुडायॆं भाग्य मॊदवॆं
नमृतरसमु गोर नलरु चिंतामणि
पात्र संभविंचु भंगि निपुडु ॥ 22 ॥

---

चाटुकार पदयुक्त साधु कविता को शोभा से कहो । १८ [व.] ऐसा आज्ञा देनेवाली जगन्माता के कृपावलोकन से सुश्लोक (पुण्यात्मा) बनकर मैंने उसी क्षण एक श्लोक कह दिया । वह कैसा है, कहने पर [वह श्लोक यों है]— १९

[श्लो.] हंसाय सत्त्वनिलयाय सदाश्रयाय, नारायणाय निखिलाय निराश्रयाय ।
सत्संग्रहाय सगुणाय निरीश्वराय, संपूर्ण पुण्यपतये हरये नमस्ते ॥

हे [परम] हंस ! हे सत्त्वनिलय ! हे सदाश्रय (सज्जनों के आश्रय-स्वरूप) ! हे नारायण ! हे निखिल (सर्व-व्यापक) ! हे निराश्रय (जिसका कोई आश्रय, आधार नहीं है) ! हे सत्संग्रह करनेवाले ! हे सगुण ! हे निरीश्वर ! हे संपूर्ण पुण्यों के पति ! हे हर (शिव) ! नमस्ते । २०

[व.] इस श्लोक को उस देवी ने स्वीकृत किया । तब जागकर आनन्द-भरित होकर, उस दिन से चंद्रानुगता होनेवाली चंद्रिका के समान [मुझे] नारायणांकित होनेवाले कवित्व तत्त्वज्ञान दृग्गोचर हुआ । उसके फलस्वरूप गोपिका-वल्लभ (श्रीकृष्ण) को मन में रखकर २१ [आ.] प्रथमतः भागवतार्थ को कह सका [काव्य के लिए] श्रीकृष्ण पति हुए । [ऐसा] भाग्य संप्राप्त हुआ । अब ऐसा हुआ कि अमृत रस [को पान करने] की इच्छा करने पर मानो चिंतामणि का पात्र मिल गया हो । २२ [आ.] शुक और नर के सखा (श्रीकृष्ण) के अतिरिक्त

आ. भागवतमु तेट पछ्प नेव्वडु सालु ?
शुकुडु दयक नरुनि सकुडु दयक
बुद्धि दोचिनंत बुधुलचे विनंत
भक्ति निगिडिनंत पलुकुवाड ॥ 23 ॥

उ. पुट्टिन नाट नुंडियुनु बुट्टद यट्टिय दट्टु नंन जे-
पट्टिट नुतिप जित्तमु शुभंबगु मद्वरवाक्यसीमकुं
बट्टमु गट्टिनाड हरि वायक तत्कथनामृतंबु ने-
नुट्टिट पडंग जेप्पुदु बुधोत्तमु लानुडु श्रोत्रपद्धतिन् ॥ 24 ॥

व. अनि ॥ 25 ॥

सी. श्रीवत्स गोत्रुंडु शिवभक्ति युक्तुडापस्तंब सूत्रुडपार गुणुडु
नेर्चूरिशासनुं डेरन प्रेग्गड पुत्रुंडु वीरन पुण्यमूर्ति
कात्मजुंडगु नादयामात्युनकु बोलमांबकु नंदनु लमित यशुलु
कसुवनामात्युंडु घनुडु वीरमंत्रि सिंग धीमणिपु नंचितगुणाढ्युलु

ते. तुद्भविचिरि तेजंबु लूजितमुग
सौरिदि मूर्तित्रयंबन शुभ्र कीर्ति
वरगिरंबुल गसुवन प्रभुवुनकुनु
मुम्मडम्मनु साध्वि यिम्मुलनु वेलसे ॥ 26 ॥

---

भागवत (के अर्थ को) स्पष्ट करने के लिए कौन समर्थ है ? बुद्धि से (विचार करने पर) जितना सूझ पड़ा, बुधों से जितना सुन पाया, और [मेरी] भक्ति में जितना समाया, [वह सब] कह सुनाऊँगा । २३ [उ.] जब जन्म लिया था तब से यह भावना नहीं थी फिर भी जो भी हो अब [श्रीकृष्ण की] प्रशंसा करने पर चित्त को शुभ प्राप्त होगा । मेरी वर-वाक्य-सीमा के लिए हरि का राज-तिलक कर दिया है (अर्थात् मेरी समस्त कविता भगवान को ही समर्पित है) । हे बुधोत्तमो ! मैं उसके (श्रीकृष्ण के) वर्णन के अमृत को विशिष्टता से वर्णन करूँगा । आप श्रोत्र-पद्धति (कानों के मार्ग) से ग्रहण कीजिए । २४ [व.] ऐसा कहकर [अस्तु] २५ [सी.] श्रीवत्स गोत्रज, शिव-भक्ति-युक्त, आपस्तंब-सूत्रज, अपार गुणवाला एर्चूरु के शासक एरंना-प्रगडा (-मंत्री) के पुत्र वीरना पुण्यमूर्ति हैं । उनके आत्मज नादय्या-अमात्य और पोलमांबा के अमित यश वाले, कसुवनामात्य वीरन मंत्री सिंग धीमणि नामक नन्दन जो अंचित गुणाढ्य हैं, उत्पन्न हुए । [ते.] तेजस् की दृढ़ता के कारण क्रम से वे मूर्तित्रय कहलाकर शुभ्र कीर्ति से संपन्न हुए । उनमें कसुवन प्रभु के शोभा से मुम्मडम्मा नामक साध्वी [पत्नी के रूप [में विलसित हुई । २६ [उ.] वह (मुम्मडम्मा) पति के वचन का

उ. आडवु भर्तमाट कॅदुराडदु वच्चिन वारि वोडगा
नाडटु पॅक्कुभाष लॅडनाडवु वाकिलि वॅळिळ कल्ल मा-
टाडवु मिन्न केनि सुगुणावळि किंदिर गाक साटिये
चेडिय लेदु चूरिकुल शेखरुकस्वय मुम्मडम्मकुन् ॥ 27 ॥

कं. आ कसुवय मंत्रिकि बु, ण्याकल्प शुभांगि मुम्मडम्मयु ममु न-
व्याकुल चित्तल निरुवुर, श्रीकर गुणगणुल बुण्यशीलुर गांचॆन् ॥ 28 ॥

कं. अंगजसम लावण्य शु, भांगुलु हरि दिव्य पद युगांबुज विलस-
द्भृंगायमान चित्तुलु, सिगय तॅलगयलु मंत्रि शेखरु लनगन् ॥ 29 ॥

कं. अंदग्रजुंड शिवपू, जं दनरिनवाड विष्णुचरितामृत नि-
ष्यंदि पटु वाग्विलासा, नंदोचित मानसुडनु नयकोविदुडन् ॥ 30 ॥

व. कावुनं गृष्ण पादारविंद संदर्शनादर्शतलायमान चित्तुंडनै ॥ 31 ॥

षष्ठ्यंतमुलु

क. श्रीपतिकि मत्पतिकि नुत
गोपतिकि द्रिलोक पतिकि गुरुजन बुध सं-

विरोध नहीं करती, अतिथियों को चले जाने के लिए नही कहती, अनेक बातें (व्यर्थ की) नहीं कहती, देहली से बाहर जाकर भी यूंही (अनावश्यक रूप से भी) असत्य वचन नहीं कहती। चूरि कुल के शेखर कसुवय [की पत्नी] मुम्मडम्मा के लिए सुगुण समूह में इंदिरा (लक्ष्मी) को छोड़कर अन्य कोई स्त्री समान नहीं है। २७ [कं.] उस कसुवय मंत्री के पुण्य कल्प सुभांगी मुम्मडम्मा ने अव्याकुल चित्त वाले, श्रीकर गुण-गण वाले, पुण्य शील वाले, हम दोनों को [पुत्र के रूप में] पाया। २८ [कं.] [ये दोनों पुत्र] सिगय्या और तेलगय्या मंत्रिशेखर कहलाकर अगज सम (मन्मथ समान) लावण्य शुभांग वाले, हरि के दिव्य-पद-युगांबुज में विलसित होनेवाले भृंग के समान चित्त वाले है। २९ [कं.] उनमें मैं अग्रज हूँ, शिवपूजा मे लग्न [चित्तवाला] हूँ। विष्णुचरित के अमृत से निष्यंदित पटु वाग्विलास के आनंद से युक्त मन वाला और नीति-कोविद हूँ। ३० [व.] अतः कृष्ण-पादारविंद के संदर्शन के आदर्श से व्याकुल चित्त वाला होकर ३१

षष्ठ्यंत

[कं.] श्रीपति को, मेरे पति को, गोपों से प्रशंसित को, त्रिलोकपति को, गुरुजन और बुधों के संताप के निकरण करने की मति वाले को,

ताप निवारण मतिकिनि
ब्रापितसनकादि ततिकि बहुतर घृतिकिन् ॥ 32 ॥

कं. हरिकि गुरु कलुष कुंजर
हरिकि बलाभील हरिकि नंतस्स्थितग
ह्वरिकि नर हरिकि रक्षित
करिकि गराग्रस्थगिरिकि घनतर किरिकिन् ॥ 33 ॥

कं. गुणिकि समाश्रित चिंता
मणिकि, महेंद्रादि दिविजमंडल चूडा-
मणिकि प्रकल्पित शय्या
फणिकि नुरोभाग कौस्तुभ प्रियमणिकिन् ॥ 34 ॥

कं. कंसासुर संहारुन, कंसांचित कर्णकुंड लाभरणुनकुन्
हिंसा पर परमस्तक, मांस कराळित गदाभिमत हस्तुनकुन् ॥ 35 ॥

कं. वरयोगि मानसांतः-, करण सुधांबोधि भाव कल्लोल लस-
त्परतत्त्व शेषशायिकि, चिरदायिकि सकल भक्त चिंतामणिकिन् ॥ 36 ॥

कथा प्रारंभमु

व. समर्पितंबुगा ना यॊनर्पँबूनिन षष्ठ स्कंधंबुनकुं गथा प्रारंभक्रमं बॆट्टिदनिन,

---

सनकादि समूह को प्राप्त होनेवाले को, बहुतर धैर्य वाले को—३२ [कं.] हरि को गुरु (अधिक) कलुष रूपी कुंजर (हाथी) के लिए हरि (सिंह) को बल से आभील (भयंकर) हरि को अंतस् रूपी गह्वर में स्थित रहनेवाले को, नरहरि को, रक्षित करि (हाथी) को (जिसने गजेंद्र की रक्षा की हो), कराग्र में स्थित गिवंर वाले को, घनकर किरि (किटि = वराह) को ३३ [कं.] गुणी को, समाश्रित चिंतामणि वाले को, महेंद्र आदि दिविजमंडल चूड़ामणि को, फणि (सर्प) के प्रकल्पित शय्यावाले को, उरोभाग पर कौस्तुभ नामक प्रिय मणि धारण करनेवाले को—३४ [कं.] कंसासुर का संहार करनेवाले को, अंस (कंधा) भाग तक अंचित कर्ण-कुण्डल रूपी आभरण वाले को, हिंसा में लग्न रहनेवाले पर (शत्रु) के मस्तक के मांस से कराल बने गदा से अभिमत हस्त वाले को, ३५ [कं.] वर योगि मानस रूपी अंत:करण के सुधांबोधि के भाव कल्लोल के लसत परतत्त्व रूपी शेषशायी को, चिर प्रदाता को, सकल भक्तों के लिए चिंतामणि को, ३६

**कथा का प्रारंभ**

[व.] समर्पित रूप में मेरे द्वारा किये जानेवाले (रचे जानेवाले)

हरि चरणस्मरण परिणाम विनोदुलयिन शौनकादुलकु निखिल पुराणेतिहास निर्णय विख्यातुंडेन सूतुंडिट्लनियें ॥ 37 ॥

## अध्यायमु—१

कं. श्रीरमणीरमण कथा,
पारायण चित्तुडगुचु बलिकें बरीक्षि-
द्भूरमणु डादरंबुन
सूरिजनानंद सांद्रु शुकयोगींद्रुन् ॥ 38 ॥

सी. षड्गुणैश्वर्य शाश्वतमूर्तिवैनट्टि मुनिनाथ ! दयतोड मुक्तिपदमु
मुन्नुगा ने मार्गंबुन विनुपिंचिति वारय नपवर्ग भूरि महिम
क्रम योग संभव ब्रह्मंबु तोडन यनुवोंदनगु ननि विनुतिकेक्क
मरियु सत्त्वरजस्तमः प्रभावंबुल कडिदिये युन्नट्टि कर्मचयमु

ते. नव्वटप्पटि कणगनि यट्टि प्रकृति, गलुगु पुरुषुनि भोगार्थघटन देह
कारणारंभ रूप मार्गंबु सोंदलु, माटिमाटिकि नन्नियु देटपडग ॥39॥

व. मरियु ननेक पाप लक्षणंबुलगु नानाविध नरकंबुलुनु, वानि काद्यंतंबुलुनु, स्वायंभुव संबंधियगु मन्वंतरंबुनु, प्रियव्रतोत्तानपादुल वंशंबुनु, दच्चरित्रं-

षष्ठ स्कंध का कथा-प्रारंभ कैसा है ? कहने पर [वह ऐसा है] हरिचरण के स्मरण के परिणाम के विनोदी बने हुए शौनकादियों से निखिल पुराण-इतिहास के निर्णय के कारण विख्यात् बने हुए सूत ने यों कहा—३७

## अध्याय—१

[कं.] श्रीरमणी के रमण (विष्णु) की कथा में लग्न चित्तवाला होते हुए परीक्षित-भूरमण (-राजा) ने आदर से सूरिजन (विद्वान) के आनन्द सांद्र शुकयोगींद्र से यों कहा—३८ [सी.] षड्गुणों के ऐश्वर्य से शाश्वत मूर्ति बने हुए हे मुनिनाथ ! तुमने पूर्व में दया करके मुक्ति-पद के मार्ग को बताया था। सोचने पर अपवर्ग की भूरि महिमा के क्रम से योगसंभव ब्रह्म के साथ शोभायमान होगा, ऐसा प्रख्यात् और सत्त्व, रज, तम के प्रभाव से अधिक बली बने हुए, [ते.] कर्म-चय (-समूह) और सद्यः दमित न होनेवाली प्रकृति से युक्त पुरुष के भोगार्थ के साधनभूत देह के कारण और आरंभ रूपी मार्ग से लेकर बार-बार सभी को स्पष्ट रूप से बताया। ३९ [व.] और अनेक पाप लक्षणवाले नानाविध नरक, उनके आदि और अन्त, स्वायंभुव से संबद्ध मन्वंतर को, प्रियव्रत-उत्तानपाद के

बुनु, द्वीप वर्ष समुद्राद्रि नद्युद्यान वनस्पतुलुनु, भूमंडल संस्थानंबुनु, वानि परिमाणंबुनु, ज्योतिश्चक्र चलन प्रकारंबुनु, विभुंडेन परमेश्वरुंडेव्विधंबुन निर्मिचें, ना विधंबंतयु नेंरिंगिचिनाडवु इप्पुडु ॥ 40 ॥

ते.　कडिदि वेदनलकु गारणंबेयुंडु, गुरुतुलेनि नरक कूपराशि
पालुगाक नरुडु व्रतिकेंडु मार्गंबु, परमपुण्य ! तेलिय वलुकवय्य ॥ 41 ॥

व.　अनिनं बरीक्षिन्नरेंद्रनकु शुकयोगींद्रुं डिट्लनियें ॥ 42 ॥

कं.　कट्टा ! त्रिकरणमुलचे, बुट्टिन दुरितमुल नपुड पोलियिंपनि या
कट्टिटडि देहं बुडिगिन, गोट्टाडुनु बिट्ट नरककूपंबुल लोन् ॥ 43 ॥

उ.　कावुन गालकिंकर विकारमु गानक मुन्न मृत्यु दु-
र्भावन चित्तमुन् वेंडगु पाटुनु जेंदकमुन्न मेनिलो
जीवमु वेंलुचुंडि तन चेंल्वमु दप्पकमुन्न मुन्नुगा
बावनचित्तुडै यघमु बायु तेंड्रंगोनरिपगा दगुन् ॥ 44 ॥

कं.　कालं बेंडगनि पापमु, मूलमु जेंरुपंगवलयु मुनु रोगमुलन्
देलिन दोषमु नंरुगुचु, वालायमु दानि नडचु वैद्युनि भंगिन् ॥ 45 ॥

सी.　अनवुडु नातनि कनियें भूकांतुंडु कनुकलि विनुकलि गलिगिनट्टि
पापमु दनकु नोंप्पनि दनि कनि चाल बरितृप्तुडय्यु प्रम्मद नोंनर्चु

---

वंश, तत् चरित्र को, द्वीप, वर्ष, समुद्र, अद्रि, नदी, उद्यान, वनस्पतियों को, भूमण्डल के संस्थान को, उनके परिमाण को, ज्योतिष्चक्र के चलन के प्रकार को— आदि को विभु परमेश्वर ने किस प्रकार निर्माण किया, वह समस्त विधान बताया। अब ४० [ते.] अत्यधिक वेदनाओं के लिए कारणभूत होकर अज्ञात् नरककूप राशि का भागीदार न बनकर नर कैसा जीवित रहे, हे परम पुण्यवाले ! समझाकर कहो। ४१ [व.] ऐसा कहने पर परीक्षित् नरेंद्र से शुकयोगीन्द्र ने यों कहा—४२ [कं.] हाय ! त्रिकरणों से उत्पन्न दोषों को तभी नष्ट न करनेवाली उस क्रूर देह के नष्ट होने पर [जीवात्मा] कठोर नरक कूप में यातनाएँ पाता है। ४३ [उ.] अतः कालकिंकरों के विकार को देखने से पहले, मृत्यु की दुर्भावना से चित्त के व्याकुल न होने से पहले, शरीर में जीव के प्रकाशित रहकर अपनी शोभा के नष्ट न होने से पहले [मनुष्य को] पावन चित्त वाला बनकर अघ (पाप) को दूर करने का उपाय समुचित ढंग से करना चाहिए। ४४ [कं.] रोग से उत्पन्न दोष को जानकर निरन्तर उस मूल को नष्ट करनेवाले वैद्य के समान काल को समझकर पाप के मूल को नष्ट करना चाहिए। ४५ [सी.] ऐसा कहने पर भूकान्त (राजा) ने उससे

मूढात्मुनकु दोषमोचनंबॆय्यदि ? यारय नॆऱिंगिपु मदियु गाक
कलुष मॊक्कॊक्क चोट-गाविचु नीकचोट गाविपकुंडु दत्कर्ममॆऱिंगि

ते. यट्टि जनुडु पुण्य मेरीति जेसिन, नदि फलिंप नेरदनि तलंतु
सलिलमंदु मेनि मलिनंबु वोवंग, गजमु मुंकुवॆट्टु गतियु बोलॆ ।। 46 ।।

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ।। 47 ।।

कं. कर्ममु कर्ममु चेतनु, निर्मूलमु गादु तॆलिय नेरक ता ने
कर्ममु सेसिन दत्प्रति, कर्मंबॊनरिप वलयु गलुष विदूर ! ।। 48 ।।

कं. हितमु गल कुडुपु मऱि रु, ग्वितुल बॊडमंगनीनि विधमुन नति स-
द्व्रतुडैनवाडु निर्मल, मतिचे नघराशि नॆल्ल मट्टमु सेयुन् ।। 49 ।।

चं. तपमुन ब्रह्मचर्यमुन दानमुलन् शम सद्दमंबुलन्
जपमुल सत्य शौचमुल सन्नियमादि यमंबुलन् गृपा
निपुणुलु धर्मवर्तनुलु निक्कमु हृत्तनु वाक्यजंपु बा
पपु गुदि ब्रुंचु रग्नि शतपर्व वनंबुल नेर्चु कैवडिन् ।। 50 ।।

व. अवियुनुंगाक ।। 51 ।।

---

[यों] कहा ! देखने और सुनने के कारण प्राप्त पाप अपने को नहीं लगता, ऐसा कहकर अधिक परितृप्त होकर पुनः [पाप को] करनेवाले मूढ़ आत्मा वाले के लिए दोषमोचन कैसा होता है ? विचार कर बताओ। इसके अतिरिक्त किसी-किसी स्थान पर कलुष (पाप) करता है और तत्कर्म को जानकर नहीं करता है। [ते.] ऐसा जन (व्यक्ति) किसी भी प्रकार से पुण्य (का कार्य) करे वह फलीभूत नहीं होता। जैसे शरीर के मलिन (मैल) को दूर करने के लिए गज सलिल में डुबकियाँ लगावे। (ऐसा डुबकियाँ लगाने पर भी उसके शरीर पर लगा मैल दूर नहीं होता)। ४६ [व.] [ऐसा] कहने पर शुक ने यों कहा—४७ [कं.] हे कलुष-विदूर (जिसने कलुषों को दूर किया हो) ! कर्म का निर्मूलन कर्म से नहीं होता। न जान सककर स्वयं कोई भी कर्म करे उसका प्रतिकर्म करना पड़ता है। ४८ [कं.] हितप्रद भोजन फिर रोगसमूहों को उत्पन्न न होने देने के समान अति-सत्-व्रतवाला निर्मल मति से समस्त अघ राशि का दमन करता है। ४९ [चं.] अग्नि शत पर्व वनों को जला देने के समान कृपानिपुण धर्म वर्तनवाले सचमुच हृत-तन-वाक्य से उत्पन्न पापों के समूह को तप से, ब्रह्मचर्य से, दान से, शम और सत्-दम से, जप से, सत्य-शौच से, और सत्-नियमादि यमों से दमन कर देते है। ५० [व.] यही नहीं—५१ [उ.] रवि के सप्रयत्न हिम का दमन करने के समान कुछ पुण्य वर्तनवाले गोपकुमार के पदारविन्दों

उ. कौंदरु पुण्यवर्तनुलु गोपकुमार पदारविंदजा-
नंद मरंदपान कलनारत षट्पद चित्तुलौचु गो-
विंद परायणुल् विमल वेषुलु दोष मडंतु रात्मलं-
जेंदिन भक्तिचेत रवि चेकोनि मंचु नडंचु कैवडिन् ॥ 52 ॥

कं. हरि भक्तिचेत गोंदरु, वरिमार्तुरु मोवलु मुट्ट वापंबुल नि-
ष्ठुरतर करमुल सूर्युं, डरुदुग वेनुमंचु पिंच मणचिन भंगिन् ॥ 53 ॥

कं. दंतिपुरनाथ ! विनु मीक, मंतन मॅंड्रिगितु शम दमंबुलु नंहो-
वंतु शुभवंतु जेयवु, कंतुनि गुरुभक्ति मुक्ति गलिगिंचु गतिन् ॥ 54 ॥

सी. हरिकि नर्थमु प्राण मर्पितंबुग नुंडुवानि कैवल्य मॅव्वनिकि लेदु
वनजलोचनु भक्तिवरुल सेविंचिन वानि कैवल्य मॅव्वनिकि लेदु
वैकुंठ निर्मल व्रतपरुंडैनट्टिवानि कैवल्य मॅव्वनिकि लेदु
सरसिजोदरु कथा श्रवणलोलुंडैन वानि कैवल्य मॅव्वनिकि लेदु

ते. लेदु तपमुल ब्रह्मचर्यादि निरति
शम दमावुल सत्य शौचमुल दान
धर्म मखमुल सुस्थिर स्थानमैन
वैष्णव ज्ञान जनित निर्वाण पदमु ॥ 55 ॥

---

से उत्पन्न आनन्द रूपी मरन्द के पान से मत्त बने षट्पद (भ्रमर) चित्तवाले होते हुए आत्माओं में उत्पन्न भक्ति के कारण गोविन्दपरायण और विमल वेष वाले होकर, दोष का दमन करते हैं। ५२ [कं.] निष्ठुर तर करों (किरणों) से सूर्य के अक्सर भूरि हिम के गर्व का दमन करने के समान हरिभक्ति के कारण कुछ लोग पापों का मूलोच्छेद कर देते हैं। ५३ [कं.] हे दंतिपुरनाथ ! सुनो, एक उपाय बताता हूँ। कन्त के गुरु (मन्मथ के पिता = विष्णु) की भक्ति के मुक्ति को प्राप्त कराने के समान शम और दम अम्होवान् (पापी) को शुभवान (शुभों के युक्त) नहीं बनाते। ५४ [सी.] हरि को अर्थ और प्राणों को अर्पित करनेवाले के लिए कैवल्य किसे नहीं मिलता है ? (अवश्य मिलता है)। वनजलोचन (विष्णु) के भक्तवरों की सेवा करनेवाले किस जन के लिए कैवल्य नहीं है ? वैकुण्ठ [वासी] के निर्मल व्रत में लगे रहनेवाले किस व्यक्ति को कैवल्य नहीं है ? सरसिजोदर (विष्णु) के कथा-श्रवण में लीन रहनेवाले किसे कैवल्य प्राप्त नहीं होता ? (इन सबको कैवल्य अवश्य प्राप्त होता है)। [ते.] वैष्णव ज्ञान से जनित निर्वाणपथ से, तप से, ब्रह्मचर्यादि निरति से, शम, दमादियों से, सत्य-शौच से, दान, धर्म, मखों (यज्ञों) के कारण से वह सुस्थिर स्थान प्राप्त नहीं होता। ५५

ते. अरय नॅन्नडु जेटु लेनट्टि मुक्ति
वर्त्ममी लोकमंदु नॅव्वनिकि गलदु ?
साधुलुनु बुण्यशीलुरु सज्जनुलुनु
हरिपरायण तत्परु लगुटगाक ॥ 56 ॥

कं. अरुदुग नरहरि भक्ति, वीरयनि या पुरुषु सुकृति पुंजंबुल वे-
मरु पुण्यु जेय नेरवु, नरवर ! मधुघटमु बॅक्कु नदुलुंबोलॅन् ॥ 57 ॥

चं. सततमु गृष्णपाद जलजंबुलयंदु मनंबु निल्पु सु-
व्रतुलु तदीय शुद्ध गुणरागुलु कालुनि युग्रपाश सं-
हतुल धरिंचु तत्सुभटवर्गमुलं गनलोन गानरे
गतुलनु दुष्ट कर्ममुलु गॅकॊनि वारल जॅंदनेर्चुने ? ॥ 58 ॥

व. कावुन नीयर्थंबुनकुं बुरातनंबगु नॊक्क इतिहासंबु गलदु अदि विष्णुदूत यमदूत संवादं बनंबडु। दानि नॅरिंगितु। आकर्णिपुमु ॥ 59 ॥

### अजामिळोपाख्यानमु

सी. नरनाथ ! विनुमु कन्याकुब्ज पुरमुन गलडु ब्राह्मणुडजामिळु डनंग
बातकुं डतुल निर्भाग्युंडवज्ञुंडु नष्टसदाचारि कष्टरतुडु

---

[ते.] साधुओं और पुण्यशील वाले सज्जनों के हरिपरायण-तत्पर होनेवालों के अलावा अन्य किसको हानि-रहित मुक्तिमार्ग इस लोक में प्राप्त होता है ? ५६ [कं.] हे नरवर ! मधुघट को अनेक नदियों के पूर्ण न कर पा सकने के समान नरहरि की भक्ति से युक्त न होनेवाले उस पुरुष के सुकृतपुंज (पुण्यसमूह) बार-बार उसे पुण्यशील नही बना सकते। ५७ [चं.] सतत (निरन्तर) कृष्ण के पादचरणों में मन को स्थिर बनाकर रखनेवाले सुव्रत वाले, तदीय (कृष्ण के) शुद्ध गुणों में अनुराग रखनेवाले जन स्वप्न में भी काल (यमराज) के उग्र पाशसमूह को धारण करनेवाले तत् (उस यम के) सुभट वर्गो को देख नहीं पाते। किस गति (विधि) से दुष्ट कर्म सप्रयत्न उन्हें प्राप्त कर सकते हैं ? (नहीं कर सकते) ५८ [व.] अतः इस अर्थ (तात्पर्य) को बतानेवाला पुरातन एक इतिहास है। वह विष्णुदूत-यमदूत संवाद कहलाता है। उसे समझाऊँगा। सुनो—५९

### अजामिल का उपाख्यान

[सी.] हे नरनाथ ! सुनो, कन्याकुब्जपुर में अजामिल नामक एक ब्राह्मण है। पापी, अतुल निर्भाग्यवाला, अवज्ञा से युक्त, सदाचारों से विनष्ट, कष्टरत (कष्टों में फँसा हुआ) वह द्यूत-क्रीड़ा (जुआ) में,

जूदंबुलंदु दुर्वादबुलंदुनु जौर्यंबुनंदु मच्चरमु गलिगि
तॊत्तुनु बत्तिगा मत्तुडै वरियिंचि कॊडुकुल बदुगुरं बडसि चाल

ते. मोहजलधि लोन मुनिगि मुच्चट दीर
बाल लालनादि लील दगिलि
पॆद्दकाल मतडु पॆंपार सुखियिंचि
बलितमॆल्ल दॊलगि पलितुडय्यॆ ॥ 60 ॥

सी. निर्मलंबन जाल नॆरयु चित्तंबन नल्लनि वॆंड्रुकल् तॆल्लनय्यॆ
दगुमोहपाशबंधंबु जारिन माड्कि बॊंदलिन यंगंबु वदल ब्रालॆ
निंद्रियंबुल कोर्कॆ लिक.नॊल्लननु भंगि नुड्डुगक तल चाल वडकनॊच्चॆ
दमकंबु प्रायंबु दगिलि पोयिन माड्कि लोचनंबुल चूड्कि नीचमय्यॆ

ते॰ वगरुपुट्टॆ नंत वॆंगलॆ दंतंबुलु, नुक्किसयुनु दग्गु विक्कटिल्लॆ
शिरसु नॊव्वदॊडगॆ जॆदरॆ मनंबंत, गडिदियैन मुप्पुकालमुननु ॥ 61 ॥

ते. एनय नतनि कॆनुवदॆनिमिदि वर्षंबु-
लंत नरुगुटयुनु भ्रांतुडगुचु
गोरि पिन्न कॊडुकु नारायणाख्युंडु
बालुडगुट मिगुल भक्ति जेसि ॥ 62 ॥

---

दुर्वादों में, चौर्य में [लगकर], मात्सर्य से युक्त होकर, दासी को मस्ती से पत्नी के रूप में वरण कर, [ते.] दस पुत्रों को प्राप्त कर भूरि मोह-जलधि में ऊभ-चूभ होकर, उत्साह तृप्त हो जाय [उनके] लालन-पालन आदि में सप्रेम लगे रहकर, अधिक समय तक वह अच्छे ढंग से सुखों का उपभोग करता रहा। [तब] समस्त वल के खो जाने पर पलित (बूढ़ा) हुआ। ६० [सी.] निर्मल होकर अधिक प्रकाशित चित्त के समान काले वाल सफ़ेद हो गये। उचित मोहपाश रूपी बंधन के ढीले हो जाने के समान सुपुष्ट [शरीर के] अवयव ढीले होकर झुक गये। मानो इंद्रियों की इच्छाओं को अब आगे नहीं चाहूँगा, इस प्रकार सिर निरन्तर अधिक कम्पित होता रहा। [काम] तृष्णा के यौवन के साथ लगकर चले जाने के समान लोचनों की दृष्टि (देखने की शक्ति) नीच (कम) हो गयी। [मुँह में] कड़आपन पैदा हो गया, [ते.] तब दान्त गिर गये। सूखी खाँसी और खाँसी अधिक हो गयी। सिर दुखने लगा। तब कठोर आफ़त के समय (वृद्धावस्था) में मन विचलित हो गया। ६१ [ते.] तब गिनने पर उसके अठासी वर्षों के गुज़र जाने पर भ्रान्त होते हुए चाहकर नारायण नाम वाले कनिष्ठ पुत्र के, बालक होने से अतिभक्ति (वात्सल्य) के कारण ६२ [कं.] हे जनवर! अपनी सती और स्वयं प्रेम के मन

कं. तन सतियु दानु गूरिमि, मनमुन्न बॅनगॉनग नक्कुमारुनि ननिशं-
बुनु द्दुमु सेयुचुंडेनु, जनवर ! वात्सल्य मात्म संदडि गॉनगन् ॥ 63 ॥

कं. बालुनि गलभाषण जनपालुनि, निज जनक बंधु परिणाम कळा
शीलुनि लोलत गनुगॉनि, यालरि ब्राह्मणुडु नंदितात्मुंडगुचुन् ॥ 64 ॥

कं. अत्यंत पान भोजन, कृत्यंबुल बॉत्तु गलिगि क्रीडल दत्सां-
गत्यंबु वदलकागत, मृत्युवु गन नेरडय्यॅ मिक्किलि जडुडै ॥ 65 ॥

ते. तॅलियकी रीति नतडु वर्तिपुचुंड
भयदमगु मृत्युकालंबु प्राप्तमैन
भूरि वात्सल्यवृत्ति नप्पुत्रु दलचि
यात्म बलपिंचु नारायणा ! यटंचु ॥ 66 ॥

व. अप्पुडु ॥ 67 ॥

कं. किंकरुल धर्मराज व,-शंकरुल दुरंत दुरित समधिक जन ना-
शंकरुल सकल लोक भयंकरुलं गनियॅ निंद्रियाकुलुडगुचुन् ॥ 68 ॥

कं. घातकुल दंड दंडित, -पातकुल महोग्र कर्म भर निष्करुणा-
जातकुल प्रेतनायक, - दूतक संततुल नतडु दूरमुनंदुन् ॥ 69 ॥

म. कनियॅन् ब्राह्मणु डंत्यकालमुन दीकन् रोष निष्ठ्यूतुलन्
घन पीनोष्ठ विकार वक्त्र विलसद्गर्वेक्षणोपेतुलन्

---

में उमड़ आने पर अविश (सदा) उस पुत्र को वात्सल्य के आत्मा में बढ़ने पर, लाड़-प्यार करता रहा। ६३ [कं.] बालक को कल-भाषण-जनपाल (मीठी बोली में सबसे श्रेष्ठ) और निज जनक और बन्धुओं के परिणाम- कलाशील को प्रेम से देखकर, दुश्शीलवाला वह ब्राह्मण नन्दित (प्रसन्न) आत्मावाला होता हुआ— ६४ [कं.] पान, भोजन कृत्यों में अत्यंत आसक्त होकर क्रीड़ा में भी उसके (उस बालक के) सांगत्य को न छोड़कर अत्यंत जड़ बनकर, आनेवाली मृत्यु को देख न पाया। ६५ [ते.] [आगत मृत्यु को] न जानकर इस प्रकार उसके आचरण करते समय, भयद मृत्युकाल के संप्राप्त होने पर, भूरि वात्सल्य की प्रवृत्ति के कारण उस पुत्र का स्मरण कर "नारायण" कहते हुए आत्मा में प्रलाप करता रहा। ६६ [व.] तब— ६७ [कं.] उसने इंद्रिय-व्याकुल होते हुए, किंकरों को, धर्मराज (यम) के वशंकरों को, दुरन्त, दुरित, समधिक जनों के नाशनकरों को, सकल लोक भयंकरों को देखा। ६८ [कं.] उसने दूर से ही घातकों को, दण्ड से दंडित पातकों को, महोग्र कर्म-भर निष्करुणाजातकों को, प्रेत-नायक (यम) दूतों की संततियों को (समूह को)— ६९ [म.] ब्राह्मण ने अन्त्यकाल में सदैन्य होकर रोष निष्ठ्यूतों

जन संत्रास करोद्यतायत सुपाश श्रेणिका हेतुलन्
हनन व्याप्ति विभीतुलन् मुवुर नात्मानेतलन् दूतलन् ॥ 70 ॥

व. इट्लति विकृति तुंड गंडभाग विषम विवृत्त नेत्रुलु, नति पुष्ट निष्ठुरतनुयष्टि संवेष्टित महोध्वरोमुलु, नभ्यस्त समस्त जीवापहरण करण प्रशस्त हस्त विन्यस्त पाशधारुलु नगु यमभटुल मुव्वुरं गनुंगॊनि यजामिळुंडु विकलेंद्रियुंडुनु, विकंपित प्राणुंडुनु, विकृत लोचनुंडुनु, विह्वलात्मकुंडुनै ॥ 71 ॥

कं. दूरमुन नाडु बालुडु, बोरन दन चित्तसीम वॊडगट्टिन नो-
नारायण ! नारायण ! नारायण ! यनुचु नात्मनंदनु नॊडिवॆन् ॥ 72 ॥

चं. मरणपुवेळ नद्दनुजमर्दनु संस्मरणंबु सेय द-
त्परिसरवर्तुलात्म परिपालकु नाममु नालकिंचि नि-
ष्ठुरगति नेगुदेंचि पॊडसूपि यदल्चिरि कालुदासुलन्
खरतर भाषुलन् विकट कल्पित वेषुल दीर्घरोषुलन् ॥ 73 ॥

कं. दासीभर्त नजामिळ, - भूसुरु दत्तनुवुवलन बोरन वॆलिकि
दीसॆडु यमभटुलनु वो, द्रोसिरि श्रीवरुनि कूर्मि दूतलु कडिमिन् ॥ 74 ॥

(रोष को अभिव्यक्त करनेवालों) को, घन पीन ओष्ठ-विकार वक्त्र, विलसत-गर्वेक्षण (गर्व भरी चितवन) से उपेतों (युक्त) को, जन-संत्रास (जन के लिए भयद) करों में उद्यत और आयत सुपासश्रेणी और हेतियों (तलवारों) से युक्त और हनन के कारण व्याप्त विभीति (भीति को फैलानेवालों) को, आत्मा को ले जानेवाले तीन दूतों को देखा। ७० [व.] इस प्रकार अति विकृत तुण्ड-गण्ड भागवाले, विषम विवृत नेत्रवाले, अतिपुष्ट-निष्ठुर-तनुयष्टि से संवेष्टित महा-ऊर्ध्व रोम वाले, समस्त जीवापहरणकरण में अभ्यस्त, प्रशस्त, हस्तों में विन्यस्त (धारण किये हुए) पाशधारी तीन यम भटों को देखकर अजामिल ने विकलेंद्रियवाला, विकंपित प्राणवाला, विकृत लोचनवाला, विह्वल आत्मावाला बनकर ७१ [कं.] दूर खेलनेवाले बालक के झट अपने चित्तप्रदेश में 'दिखाई' पड़ने पर 'हे नारायण, नारायण, नारायण' कहकर आत्मनन्दन को पुकारा। ७२ [चं.] मरण की वेला में उस दनुजमर्दन (विष्णु) का संस्मरण करने पर उसके आसपास घूमनेवाले [विष्णुदूतों ने] अपने परिपालक का नाम सुनकर निष्ठुर-गति (अतिवेग) से आकर प्रकट होकर काल के दासों (यमकिंकरों), खरतर भाषण वालों को, विकट कल्पित वेशवालों को, दीर्घ रोष वालों को धमकाया। ७३ [कं.] दासी के पति अजामिल नामक भूसुर को उसके शरीर से झट बाहर निकालनेवाले यमभटों को श्रीवर (विष्णु) के प्रियदूतों ने साहस से ढकेल दिया। ७४

## విష్ణుదూత యమదూతల సంవాదము

व. इट्लु विष्णुदूतल वलन निर्धूत प्रयत्नुलै यमदूत लिट्लनिरि ॥ 75 ॥

कं. एव्वनिवारलु मातो
जिव्वकु गतमेमि ? यिट्लु चिक्किन वानि
ग्रोव्वुन विडिपिंचितिरिक
नव्वलको ? जमुनि शासनंबुलु जगतिन् ॥ 76 ॥

सी. एव्वरु मीरय्य ! यी भव्यरूपमुल् कन्नुल कद्भुतक्रम मौनर्च
दिव्योपदिव्युलो ? देवताप्रवरुलो ? सिद्धुलो ? साध्युलो ? चेप्परय्य !
दळित पांडुर पद्मदळ दीर्घ नेत्रुल वर पीत कौशेयवासुलरय
गंडमंडल नटत्कुंडल द्वयुलुनु बटु किरीटप्रभा भासितुलुनु

ते. भूरि पुष्कर मालिका चारु वक्षु
लमित कोमल नवयौवनाधिकुलुनु
बाहु केयूर मणिगण भ्राजमान
घन चतुर्भुजु लभ्रसंकाश रुचुलु ॥ 77 ॥

कं. धनुवुलु निषंग चयमुलु, कनदंबुज शंख चक्र खड्ग गदा सा-
धनमुलु धरियिंचिन मी, तनुवुलु लोकमुल कद्भुतं बौनरिंचेन् ॥ 78 ॥

---

## विष्णुदूत और यमदूतों का संवाद

[व.] इस प्रकार विष्णुदूतों से निर्धूत-प्रयत्न वाले (जिनका प्रयत्न भग्न हुआ हो) बनकर यमदूतों ने इस प्रकार कहा— ७५ [कं.] "आप किसके [वशवर्ती] हैं ? हमसे कलह करने का कारण क्या है ? इस प्रकार [हमारे हाथ] फँसे हुए जन को मस्ती से छुड़ाया । अब जगत में यम के शासन (आदेश) हास्यास्पद नहीं होंगे ? ७६ [सी.] कौन हैं जी आप ? इन भव्य रूपों से आँखों को अद्भुत क्रम उत्पन्न करनेवाले दिव्य हैं ? या उपदिव्य हैं ? देवता-प्रवर हैं ? सिद्ध है ? साध्य हैं ? [कौन हैं] बताइए न । पाण्डुर पद्मदल को दलित (विनिंदित) करनेवाले दीर्घ नेत्र और सोचने पर वर पीत कौशेय वस्त्रधारी, गण्डमण्डल पर नटत् (नाचनेवाले) कुण्डलद्वय से युक्त और पटु किरीट प्रभा से भासित और भूरि पुष्कर मालिका से सुन्दर बने वक्षवाले, [ते.] अमित कोमल नवयौवन से अधिक (उत्कृष्ट बने) और बाहुकेयूर मणिगण प्रकाशमान घन चतुर्भुजवाले, अभ्रसंकाश (आकाश के समान) रुचि (प्रकाश) वाले —[आप कौन हैं] ? ७७ [कं.] धनु, निषंगचय (बाणसमूह), प्रकाशमान अंबुज, शंख, चक्र, खड्ग, गदा [आदि] साधन धारण किए हुए आपके तनु (शरीर) लोकों को अद्भुत (चमत्कृत) करते है । ७८

कं. शांतंबुलैन मी तनु, कांतुलु जगमुलनु दिशल गलिगिन वहुळ
ध्वांतमुल वारदोलुचु, संतस मौनरिचें निपुडु सर्वंकषमै ॥ 79 ॥

व. इट्लखिल लोकानंदकर कम्राकारुलु, नखिल विभ्राजमान तेजो दुर्निरीक्ष्यमाणुलनु, निखिल धर्मपालुरनगु मीरु धर्मपरिपालुर मम्मु नड्डु पेट्टंगतवेमि ? अनिन मंदस्मित कंदळित मुखारविंदुलै गोविंदुनि कंदुव मंदिरंबु कावलिवारलु वारिवाह गंभीर निर्घोष परिपोषणंबुलैन विशेष भाषणंबुल निट्लनिरि ॥ 80 ॥

उ. मीरु परेतनायकुनि मेलिमि दूतलटेनि बल्कुडा
तोरपु बुण्य लक्षणमु, दुष्कृत भावमु, दंडकृत्यमुं,
वीरमुतोड नीतनि कभीष्ट निवासमु, पूनि दंड्युलें-
व्वारलु ? सर्वभूतमुलो ? वारक कोंदरु पाप कर्मुलो ? ॥ 81 ॥

व. अनिन यमभटु लिट्लनिरि ॥ 82 ॥

कं. वेदप्रणिहितमे यनु, -मोदंबुग धर्ममय्यें मुन्नु तदन्यं-
बेदि यगु नदि यधर्मं, बादियु हरिरूपु वेदमन विनुकतन् ॥ 83 ॥

सी. एव्वनिचे दन यिरवौदु त्रिगुण स्वभाव मैनट्टि यी प्राणिचयमु
लनुगुण नाम क्रियारूपमुलचेत नेंतयु दमयंत नेंरुग बडुनु
नर्यमुंडनलंबु नाकाशमुनु प्रभंजनुडु गोचयमुनु शशधरुंडु
संध्यलु दिवमुलु शर्वरीचयमुलु कालंबु वसुमतीजालमुलुनु

---

[कं.] शान्त बनी आपकी तनु कांतियों ने अब दिशाओं में स्थित वहुल-ध्वान्त (अंधकार) को भगाते हुए सर्वंकश (विनिर्मल) बनकर जगों को मुदित किया। ७९ [व.] इस प्रकार अखिल लोकानन्दकर-कम्र (-सुन्दर) आकारवाले, अखिल विभ्राजमान तेज से दुर्निरीक्ष्य मानवाले और निखिल धर्मपालक होनेवाले आपका हम धर्मपरिपालकों को रोकने का कारण क्या है ?" [ऐसा] कहने पर गोविन्द के अन्तःपुर के पहरेदार मन्दस्मिति से कन्दलित (विकसित) मुखारविंद वाले बनकर, वारिवाह (मेघ) के गम्भीर निर्घोष के परिपोषक विशेष भाषणों (वाक्यों) से यों कहा— ८० [उ.] "आप परेतनायक (यमराज) के श्रेष्ठ दूत हैं तो श्रेष्ठ पुण्य के लक्षण, दुष्कृत का भाव, दण्डकृत्य और इसके लिए अभीष्ट निवासस्थान बताइए ? दण्ड के योग्य कौन हैं ? सभी भूत (जीव) अथवा कुछ पापकर्मा ?" ८१ [व.] [ऐसा] कहने पर यमभटों ने यों कहा— ८२ [कं.] "क्योंकि पूर्व से वेद हरिस्वरूप है, ऐसा सुनने के कारण वेदों से प्रणिहित ही धर्म के रूप में निर्वाचित हुआ। तदन्य जो भी हो वह अधर्म है। ८३ [सी.] त्रिगुण स्वभाव का यह प्राणिसमूह तत्कारण अपने स्थान को प्राप्त करता है, अनु [रूप] गुण, नाम, क्रिया, रूपों से स्वयं जाना जाता है, जिसके

ते. वेहधारिकि साक्षुलै तेलुपुचुंडु
दंडनस्थान विधमु सद्धर्मगतियु
दगुल नीरी क्रमानुरोधनमु चेसि
यखिल कर्मुलु दंडार्हुलरय नेंपुडु ॥ 84॥

ते. कोरि कर्मंबु नडपेंडु वारिकेल्ल, गलित शुभमुलु नशुभमुल् गलुगुचुंडु
नरयगा देहि गुणसंगियैनयपुडे, पूनि कर्मंबु सेयक मानराडु ॥ 85 ॥

कं. प्रकृतमुन दा नॉर्नचिन, सुकृतमु दुष्कृतमु नेंत चूडग नंते
विकृति गनि यनुभविचु,-न्नकृतिमतिन् दत्फलंबु नतिनिपुणुंडै ॥ 86 ॥

व. मरियु विनुडु, जन्मंबु शांत घोर मूढ गुणंबुलचेत नैननु, सुख दुःख गुणंबुलचेत नयिननु, धार्मिकादि गुणंबुल चेत नैनमु, सकल भूतंबुलु त्रैविध्यंबु ने प्रकारंबुनं बॊंदु, ना प्रकारंबुन जन्मांतरंबुनं बॊंदुचुंडु। देवुंडैन यमुंडु सर्व जीवांतर्यामियै धर्माधर्मयुक्तंबैन पूर्व रूपंबुलनु मनस्सुचे विशेषंबुग जूचुचुंडि, वानि कनुरूपंबुल जिंतिपुचुंडु। अविद्योपाधि जीवुंडु तमोगुणयुक्तुंडै प्राचीन कर्मंबुल नेर्पडिन वर्तमान देहंबु, नेननि तलंपुचुंडि, नष्ट जन्मस्मृति गलवाडै पूर्वापरंबु लेरुंगं

---

[क]ारण अर्यम् (सूर्य), अनल, आकाश, प्रभंजन, गोचय और शशधर, संध्याएँ, दिव, शर्वरीचय, काल-अम्बु-वसुमती-जाल [आदि] देहधारी के लिए साक्षीभूत होकर बताते रहते हैं। [ते.] दण्डन का स्थान विधान सद्धर्म की गति में संयुक्त इस क्रमानुरोधन से कर्म करनेवाले समस्त जन सोचने पर सदा दण्डन के अर्ह (पात्र) हैं। ८४ [ते.] चाहकर कर्म करनेवाले समस्त जनों को कलित शुभ और अशुभ प्राप्त होते रहते हैं। सोचने पर देही के गुण-संगी (गुणों से युक्त) होने पर ही कर्म करने से विरत नहीं रहना चाहिए। ८५ [कं.] प्रकृत (वर्तमान) में अपने किये सुकृत और दुष्कृत जहाँ तक हो वहाँ तक उस विकार का और उसके फल का अंति निपुण मतिवाला होकर उसे करनेवाला भोगता है। ८६ [व.] और सुनो। जन्म [लेना] चाहे शान्त, घोर, मूढ़ गुणों से हुआ हो या सुख-दुःख गुणों के कारण हुआ हो या धार्मिक आदि गुणों से हुआ हो, सकल भूत त्रिविधों से जिस प्रकार से [जन्म के परिणाम को] प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जन्मान्तरों को प्राप्त करते हैं। भगवान यम सर्व जीवान्तर्यामी होकर, धर्माधर्मयुक्त [जीवों के] पूर्व रूपों को मन से विशेष रूप से परिशीलन करते हुए उनके अनुरूपों के बारे में चिन्तन करता रहता है। अविद्या की उपाधि वाला जीव तमोगुण से युक्त होकर, प्राचीन (पूर्वजन्म के) कर्मों के कारण प्राप्त वर्तमान देह को "मैं ही हूँ" समझता हुआ, पूर्वजन्म स्मृति के नष्ट हो जाने पर, पूर्व और पर, को नहीं

जालकुंडु। मरियु गमेंद्रियमुलचेत गमंबुल चेयुचुंडि, ज्ञानेंद्रियंबुल चेत दमोविषयंबुलैन शब्द स्पर्श रूप रस गंधंबुल नंदुगुचुंडि, पदियारवदि यैन मनंबुतोगूडि, पदियेडववाडगुचुंडि, षोडशोपाध्यंतर्गतुंडै योक्करुंडैन जीवुंडु, सर्वेंद्रिय विषय प्रति संधानंबु कोरकु ज्ञानेंद्रिय कर्मेंद्रिय मनोविषयंबुलं बोंदुचुंडि, षोडशकळलं गलिगि, लिंग शरीरं बनंबरिगि, गुणत्रय कार्यंबनु निमित्तंबुन हर्ष शोक भयंबुल निच्चुचुन्न संसारंबु धरियिंपुचुंडु। अजित षड्वर्गुंडैन देहि कर्मंबुलोल्लनि बुद्धि नेरिगियु, विनियु, गमंबुलु सेयुचुंडि, तन संचार कर्मंबुनं जुट्टुकोन्न पसिरिकाय पुरुवुनुंबोले निर्गमापायंबेरुंगक नाशंबु नोंदुचुंडु। वर्तमान वसंतादि कालंबु, भूत भावि वसंतकाल योग्यंबन पुष्प फलादुलु तत्काल ज्ञापकंबु नेट्लु सेयु, नट्लु भूत भावि जन्मंबुलकु धर्माधर्मंबुलु निदर्शनंबुलु सेयुचुंडु। ओक्क नरुंडु नोक क्षणंबुनु गमंबु जेयकुंडुवाडु लेडु। पूर्व संस्कारंबुलं गल गुणंबुलचेत बुरुषुंडवशुंडु गावुन वलिमि गमंबुलु सेयिंपबडुचुंडु। अव्यक्त निमित्तंबु नोंदि तदनुरूपंबुलैन स्थूल सूक्ष्म शरीरंबुलु माता पितृ सदृशंबुलगुचुंडु। इट्टि विपर्ययंबु पुरुषुनिकि

---

समझ पाता। और कर्मेंद्रियों से कर्म करता हुआ, ज्ञानेंद्रियों के द्वारा तमो विषय रूपी शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंधों की अनुभूति प्राप्त करते हुए, सोलहवें [तत्त्व] मन से युक्त होकर, सत्रहवाँ होते हुए, षोडश-उपाधियों के अंतर्गत एक बना हुआ जीव सर्वेंद्रिय-विषयों के प्रति संधान के लिए, ज्ञानेंद्रिय-कर्मेंद्रिय और मन के विषयों में संलग्न होते हुए, षोडश कलाओं से युक्त बनकर लिंग शरीरी कहलाकर, गुणत्रय कार्य के कारण से हर्ष-शोक-भय को प्रदान करनेवाले संसार का धारण करता रहता है। षड्वर्गों को जीतनेवाला देही बुद्धि से कर्मों में आसक्त न होने को जानकर और सुनकर भी कर्मों को करता हुआ, अपने संचार कर्म से घिरे हुए रेशम के कीड़े के समान निर्गमन के उपाय को न जानकर नष्ट होता है। वर्तमान का वसन्त आदि काल के, भूत और भावी के वसन्तकाल के योग्य पुष्प-फलादियों का उस-उस समय स्मरण दिलाने के समान भूत और भावी जन्मों के निदर्शन धर्म और अधर्म करते रहते है। (इस जन्म के किये गये धर्म और अधर्म भावी जन्मों का संकेत देते हैं।) क्षण भर के लिए भी कर्म नहीं करनेवाला [संसार में] कोई नर नहीं है। पूर्व संस्कारों के गुणों के कारण पुरुष अवश (वेवस) है। अतः जबरदस्ती उससे कर्म करवाये जाते हैं। अव्यक्त-निमित्त (कारण अथवा उपाधि) को प्राप्त होकर, उसके अनुरूप स्थूल-सूक्ष्म शरीर माता और पिता के समान होते हैं। इस प्रकार का विपर्यय पुरुष (जीव) के लिए प्रकृति के संगम (संगति) से होता है। वह प्रकृति पुराण-पुरुष उस परमेश्वर की सेवा

प्रकृति संगमंबुनं गलुगुचुंडु। आ प्रकृति पुराणपुरुषुंडैन यप्परमेश्वरुनि सेविंचिन दलंगुचुंडु ॥ 87 ॥

सी. कावुन नितडु सत्कर्म वर्तनमुन भूदेवकुलमुन बुट्टिनाडु
दांतुडै शांतुडै धर्म संशीलुडै सकल वेदंबुल जदिविनाडु
अनयंबु गुरुवुल नतिथुल बॅद्दल जेसि शुश्रूषलु चेसिनाडु
सर्व भूतमुलकु समबुद्धियै चाल बहु मंत्र सिद्धुल बडसिनाडु

ते. सत्यभाषण नियमंबु जरपिनाडु
नित्य नैमित्तिकावुल नॅरपिनाडु
वंडि लोभादि गुणमुल दरपिनाडु
मंचि गुणमुलु दनयंदु मरपिनाडु ॥ 88 ॥

कं. सतताचार समंचित, -मतियै सुज्ञानमुनकु मरगॅडि तरि ना-
यत गति नातनि कंगज, -मतमै नवयौवनागमं बॅडसॉच्चॅन् ॥ 89 ॥

सी. कडकंट यौवनगर्वंबु वॉडगट्टॆ मदिलोन नुद्रेकमदमु दॉट्टॆ
कडु मेन गाम विकारंबु दलसूपॆ मुखमुन जिरुनव्वु मॊलकलॅत्तॆ
नति पुष्टि निष्ठुरंबय्यॆ देहं बॅल्ल गच भारमुन नॅरिकप्पु मॆरसॆ
कटि भारमुन नूरुकांडमुल् जिगि मोरॆ बाहु शाखलु दीर्घ भंगि दोचॆ

करने पर दूर हट जाते हैं। (परमात्मा की सेवा से जीव को प्रकृति के प्रभाव से मुक्ति मिलती है)। ८७ [सी.] अतः यह सत्कर्म-वर्तन (-आचरण) के कारण भूदेव (ब्राह्मण)-कुल मे पैदा हुआ है। दान्त (दम गुण से युक्त) और शान्त और धर्म-संशील होकर सकल वेदों का अध्ययन किया है। सदा गुरु, अतिथि और गुरुजनों के निकट रहकर शुश्रूषाएँ की है। सर्वभूतों के प्रति समबुद्धि वाला बनकर बहु-मंत्र सिद्धियों को प्राप्त किया है, [ते.] सत्य भाषण के नियम का निर्वाह किया है, नित्य-नैमित्तिक आदि कार्यों को संपन्न किया है, भूरि लोभ आदि गुणों का दमन किया है और अपने में अच्छे गुणों को स्थिर बना रखा है। ८८ [कं.] [इस प्रकार अजामिल के] सतत-आचार-समंचित-मतिवाला होकर सुज्ञानों में लीन होते समय आयत-गति से अंगज मत से उसके शरीर में नवयौवन का आगमन हुआ। ८९ [सी.] कनखियों में यौवन का गर्व दिखाई पड़ा, मन में मस्ती का उद्रेक उमड़ उठा। शरीर पर अधिक काम-विकार अंकुरित हुए, मुख पर मुस्कान अंकुरित हुई, अति पुष्टि से समस्त देह निष्ठुर (कठोर) बन गयी, कच भार से सिर प्रकाशमान हुआ, कटि भार से ऊरु काण्ड (जाँघें) अति शोभायमान हुई, बाहु रूपी शाखाएँ लम्बी हो दिखाई पड़ी, [ते.] उर (वक्ष) विपुल बना, उल्लसित वर कान्ति

ते. तुरुमु विपुलमय्यॆ नुल्लसद्वरकांति, -पूर मंगकमुन बॊंडु पडियॆ
भूरि तेजुडैन भूसुरान्वयुनकु, नभिनवैक यौवनागममुन ॥ 90 ॥

कं. हृदयमुन वॊडमु यौवन, मदमु वॆलि वोचु भंगि मानितरुचि व-
द्वदनमुन नूगु मोसलु, पॊदलुचु गप्पडरि चूड बॊंकंबय्यॆन् ॥ 91 ॥

व. मऱियुनु ॥ 92 ॥

कं. तम्मि विरिमीद वालिन, तुम्मॆद पंक्तियुन बोलॆ दोरपुलील
ग्रम्मुकॊनि विप्रतनयुनि, नॆम्मॊगमुन गान वडियॆ नॆऱि मीसंबुल् ॥ 93 ॥

व. अंत ननंगब्रह्मतंत्रबुनकु वसंतुंडॊनर्चु नंकुरार्पणारंभंबुनुं बोलॆ ललित किसलय विसर प्रसार भासुर वहु पादपादि पुरोपवन पवन जवन प्रभाव परिकंपित विट विटीजन हृदय प्रफुल्ल पल्लव भल्लंबुनु, अनून प्रसून निर्भर गर्भाविर्भूत सुरभि परागपटल पटघटित नभोमंडलंबुनु, अमंद निष्यंद मरंद बिंदु संदोह कंदळित चित्त मत्त मधुप संकुल झंकार मुखरित सकल दिशा वलयंबुनु, निरंतर धाराळ रस भरित परिपक्व फलानुभव प्रभव सम्मोदनाद शुक प्रमुख पतंग कोलाहलंबुनैन मधुमासंबु सर्वजन मनोहरंबुनै निखिल वन पादपंबुल नलंकरिंचॆ। अय्यवसरंबुन

---

का पूर (समूह) शरीर में फैल गया। [यह सब] भूरि तेजवाले भूसुर-कुल वाले (ब्राह्मण) को अभिनवैक (अतिनवीन) यौवनागम के कारण संप्राप्त हुआ। ९० [कं.] हृदय में अंकुरित होनेवाले यौवन मद के बाहर दिखाई पड़ने के समान अत्यत रुचि (प्रकाश) से उसके वदन पर नयी मूँछें निकल आयीं जिससे उसकी सुडौलता में वृद्धि हुई। ९१ [व.] और भी— ९२ [कं.] कमल के फूल पर जमकर बैठी भ्रमरपंक्ति के समान अत्यधिक सौंदर्य के व्याप्त होने पर विप्रतनय के सुन्दर मुखड़े पर नयी मूँछें दिखाई पड़ी। ९३ [व.] तब अनंग-ब्रह्मतंत्र (काम-विलास) के लिए वसन्त के द्वारा किये जानेवाले अंकुरार्पण के प्रारंभ के समान ललित किसलय के विसर (समूह) के रसाल से भासुर बने वहु-पादपादि (वृक्ष आदि) से युक्त पुर के उपवन के पवन के जवन (वेग) के प्रभाव से परिकंपित विट-विटीजन के हृदय को प्रफुल्ल बनानेवाले पल्लव-भल्ल से युक्त और अनून (अनुपम) प्रसून के निर्भर गर्भ से आविर्भूत सुरभि और पराग पटल रूपी पट से घटित नभोमण्डल से युक्त और अमंद-निष्यंद-मरन्द के विन्दु-सन्दोह से कंदलित चित्तवाले मत्त-मधुप के संकुल झंकार से मुखरित सकल दिशा वलय से युक्त और निरन्तर-धाराल (पुष्कल) रस भरित-परिपक्व फ़लानुभव से प्रभव (उत्पन्न) सम्मोद-नाद (-कलरव) से युक्त शुक आदि पतंगों (पक्षियों) के कोलाहल से युक्त बना मधुमास ने सर्वजन मनोहर होकर वन के समस्त पादपों को अलंकृत किया। उस अवसर पर

नजामिळुंडु पितृनिर्देशंबुनं गुश समित्पुष्प फलार्थंबु वनंबुन करिगि, तिरिगि वच्चु समयंबुन नौक्क लताभवनंबुन ॥ 94 ॥

कं. बद्धानुरागयै स्मर, युद्धंबुन कलरु बुद्धि नुरु काम कळा
सिद्धयगु वृषलितो ब्रिय, वृद्धिवग गूडियुन्न विटु नौरु गांचेन् ॥ 95 ॥

कं. भटुनिन् रतिशास्त्र कळा, भंटुनिन् वर यौवनानुभव मद विभवो-
द्भटुनिन् सुरतेच्छा सं, घटुनिन् विगतांबरोरुकटुनिन् विटुनिन् ॥96॥

शा. हाला घूर्णित नेत्रतो मदन तंत्रारंभ संरंभतो
खेलापालन योग्य भूविभवतो गीर्णालकाजालतो
हेलालिंगन भंगि वेषवतितो निच्छावती मूर्तितो
गेळि देलुचुनुन्न वानि गनें पुंखीभूत रोमांचुडै ॥ 97 ॥

कं. कलिकि बग मदन कदनपु
वलुकुल कलकलमु बेंडगु वडु मेखल मु-
व्वल रवळि दगिलि गतिगोन
गलकंठि रतंबु सलुपु गमकमु गनियेन् ॥ 98 ॥

कं. कवकवनै पद नूपुर
रवरव मैगुब्बुकौन्न रतिपति गतुलं

अजामिल पितृनिर्देश (आज्ञा) से कुश-समिक् (-समिधाएँ), पुष्प-फलों के लिए वन में जाकर, लौट आते समय एक लता-भवन (-कुंज) में ९४ [कं.] बद्ध अनुरागवाली होकर स्मर-युद्ध (कामकेली) के लिए उत्साह से युक्त बुद्धि (इच्छा) वाली उरु-कामकला में सिद्ध [हस्त वाली] ऐसी वृषली (शूद्रा) के प्रति प्रेम के बढ़ने पर मिलकर स्थित एक विट को देखा। ९५ [कं.] [अजामिल ने] भट (वीर) को, रति-शास्त्र की कला में आभंट को, वर यौवन के अनुभव के मद-विभव में उद्भट को, सुरत इच्छा की संघटना से युक्त को, विगत अंबर (नग्न) उरु और कटि प्रदेशवाले विट को [देखा]। ९६ [शा.] हाला (मद्य के पान के कारण)-घूर्णित नेत्रवाली से, मदन तंत्र के आरभ के संरभ वाली से, [काम] क्रीड़ा से पालन करने योग्य भू-वैभव वाली से कीर्ण (बिखरे) अलकजाल वाली से, हेला से आलिंगन की भंगिमा के वेष (रूप) वाली से, इच्छावती की मूर्ति (मानो इच्छा ही मूर्तिमान होकर आयी हो) से, [ऐसी स्त्री से] कामकेली में रत व्यक्ति को, पुंजीभूत रोमांचवाला होकर देखा। ९७ [कं.] सुन्दरी के मदन के कदन (युद्ध = रतिक्रीड़ा) के समय के वचनों के कलरव से चंचल बनी मेखला के घुंघुरुओं के स्वर से युक्त होकर कलकंठी (मधुर स्वन वाली) के रति करने के विधान को [अजामिल ने] देखा। ९८ [कं.] पदनूपुरों के मुखरित होने पर व्याप्त

जिवचिवनै विट्टु चियवुल
रवळिन् रति सल्पु रतुल रवरव गनियन् ॥ 99 ॥

चं. कुरु लळिकंबुपै नॆगय ग्रोम्मुडि वीडग गुब्बदोयिपै
सरमुलु चौकळिंप गटिसंगति मेखल ताळगिप स-
त्कर वर कंकणावळुलु गजिल गौनसियाड मीटुगा
मरुनि विनोदमुल् सलिपॆ मानिनि यौवन गर्वरेखतोन् ॥ 100 ॥

कं. मव्वपु सुकुमारांगिनि, जव्वनि नुपगूहनादि समुचित रतुलन्
निव्वटिलु दानि गनि मदि, नुव्विळ्ळूरंग मन्मथोद्दीपनुडै ॥ 101 ॥

त. बहुळ दृक्परिपाक मोह निबद्धुडौचु मनंबुलो
सहज कर्ममु वेदशास्त्रमु सात्त्विकंबु वलंचि त-
न्निहित चित्तमु वट्टि डुग नेरडय्यॆ सदा मनो
गहनमंदु मरुंडु पावकु कैवडिन् जरियिंपगान् ॥ 102 ॥

शा. आ लीलावति गंड पाळिकलपै हासप्रसादंबुपै
नालोलालक पंक्तिपै नॊसलिपै नाकर्ण दृग् भूतिपै
हेलापादि कुचद्वयोरु कटिपै निच्चल् पिसाळिंपगा
जालि बॊंदुचु नात्म गुंदुचु मनोजातानलोपेतुडै ॥ 103 ॥

---

रति-पति की गतियों के विलास से सुन्दरता से मुखरित होनेवाली ध्वनियों से युक्त होकर रति करनेवाली के विधान को देखा। ९९ [चं.] लटों के ललाट पर छा जाने पर, जूड़े के खुल जाने पर, पीन-स्तनों पर हारों के झूलने पर, कटि की संगति से मेखला के मुखरित होने पर, सत्कर की वर-कंकणावली के मुखरित होने पर, कमर के झूलने पर मानिनी ने यौवन की गर्वरेखा से युक्त होकर [स्वयं] ऊपर रहकर कामक्रीड़ा की (उपरति की)। १०० [कं.] मदवती सुकुमार अंगवाली को, युवती को, उपगूहन (आलिंगन) आदि समुचित रति [विधानों] से उद्दीप्त होनेवाली को, मन्मथ के उद्दीप्त होने पर मन में बड़ी इच्छा से देखकर १०१ [त.] बहुल-दृक्-परिपाक (अधिक देखने से परिपुष्ट बने) मोह से निबद्ध होते हुए, मन में सहज कर्म (अपने लिए स्वाभाविक कर्तव्य), वेदशास्त्र और सात्त्विक [गुणों] का स्मरण करके भी, मनोगहन में (मन रूपी वन में) कामदेव के सदा पावक (अग्नि) के समान विचरण करने पर, तन्निहित (उस शूद्रा से आसक्त) चित्त को पकड़ स्ववश में नहीं कर सका। १०२ [शा.] उस लीलावती की गण्ड-पालिकाओं पर (कपोलों पर), हास-प्रसाद पर उसके लोल अलकों की पंक्ति पर, ललाट पर, आकर्ण-दृग्-भूति (कानों तक फैली नेत्रविभूति) पर, हेला आदि पर, कुचद्वय और ऊरु-कटि पर इच्छाओं के उमड़ने पर दीन बनते हुए, आत्मा में विकल बनते हुए मनोजात

गी. मरि कुलाचार वर्तन माटु चेसि
परगु पित्रर्थमुलु दानि पालु चेसि
साधु लक्षण गुणवृत्ति जालु चेसि
लोललोचन पस जेंदि लोलुडय्ये ॥ 104 ॥

कं. श्याम गुसुमास्त्र खेलन, काम गुलस्त्रीललाम गमनीयगुण
स्तोम निजभाम नोल्लक, धामंबुन डिंचि क्रिंबुदनमुन जडुडै ॥ 105 ॥

उ. बंधुलदिट्टि सज्जनुल बाधल बॆट्टि यनाथकोटि बॆन्
बंदॆलु सुट्टि योरमुलु पट्टि पथंबुलु गॊट्टि दिट्टयै
निंदल कोर्चि साधु कुल निंदितुडै गडियिंचु वित्तमा-
सुंदरि किच्चि मच्चिकलु सॊंपॆनगूर्चि वसिंचॆ दत्कृपन् ॥ 106 ॥

सी. समुचित श्रुतिचर्च चर्चिप नोल्लक सति कुचद्वय चर्य चर्च सेयु
दर्क कर्कश पाठ तर्कंबु गादनि कलिकितो ब्रणय तर्कंबु सेयु
स्मृति पद वाक्य संगति गाक तत्सति पदवाक्य संगति बरग जेयु
नाटकालंकार नैपुणं बुडिगि तन्नाटकालकार पाटि दिरुगु

---

(कामदेव के कारण अथवा मन में उत्पन्न) अनल से उपेत (युक्त) होकर १०३ [गी.] तब कुलाचार के आचरण को मटियामेट कर शोभायमान पित्रर्थ (पिता की सम्पत्ति) को उसको समर्पित कर, साधु लक्षणों से युक्त गुणों की प्रवृत्ति को समाप्त कर, लोल लोचनवाली [शूद्रा] के वश में होकर लोकवृत्ति वाला बन गया। १०४ [कं.] श्यामा कुसुमास्त्र के खेलन (रति-क्रीड़ा) में कामा (इच्छा वाली), कुल स्त्रियों में ललामा (श्रेष्ठ), कमनीय गुणस्तोम वाली निज-भामा (-स्त्री) को न चाहकर अपने धाम (घर) को छोड़कर नीचता के कारण जड़ (मूर्ख) बनकर। १०५ [उ.] सम्बन्धियों को गालियाँ देकर, सज्जनों को सताकर, अनाथ-कोटि (अनाथों के समूह) को अनेक प्रकार के बन्धनों में डालकर, प्रतिज्ञाएँ कर, बटमारी कर (राह चलते यात्रियों को लूटकर), साहसी बनकर, [दूसरों की] निन्दाओं को सहन कर, साधुकुल की निन्दा कर, जो वित्त कमाया, उसे उस सुन्दरी को देकर [उस नारी से अधिक प्रेम कर उसकी कृपा से अधिक शोभा से रहा] १०६ [सी.] समुचित रूप से श्रुति (वेद) की चर्चा न करना चाहकर सती (शूद्रा) के कुचद्वय की चर्चा करता है। तर्क के कर्कश पाठ (तर्क) को नकार कर, कलिकि (सुन्दरी) से प्रणय-तर्क करता है। स्मृति के पदवाक्यों की संगति न कर उस सती के चरणों की संगति को शोभा से करता है। नाटक, अलंकार [आदि काव्यशास्त्रों की चर्चा] छोड़कर उसके नाटक (अभिनय) और अलंकारों (साज-सिंगार) के प्रति लगाव रखता है। [गी.] शोभा से चिरकाल तक इस रीति

गी. बरग जिरकाल मीरीति बापनियति
रमण दासी कुटुंब भारमु वहिंचि
यवि कुटुंबिनि गाग बापात्मुडगुचु
नशुचियुनु दुष्टवर्तनुंडै मॅलंगॅ ॥ 107 ॥

कं. अट्ट गान बाप कर्मुनि, गुटिलुनि सुजानार्तु धूर्तु ग्रूरुनि ने मा
रटमुन गॉनि येगॅद मं, -तट दंडमुवलन नितडु धन्यत नॉदुन् ॥ 108 ॥

## अध्यायमु—२

व. इट्लु पलुकुचुन्न यमदूतल वारिंचि, नयकोविदुलॅन भगवद्दूत लिट्लनिरि ॥ 109 ॥

कं. अवुरा ! धर्मविवेक
प्रवरल सभ गान वडियॅ बापमु पुण्यो-
द्भवुल नदंड्युल दंडन
विवरं बॉनरिंपु बडियॅ विधि यॅरुगमिचेन् ॥ 110 ॥

चं. समुलुनु साधुलुन् विहित शासनुलुन् सुदयाळुरुन् शुभो-
त्तम गुणुलॅन यट्टि तलिदंड्रुलु बिड्डल कॅग्गु सेयुचो

---

से पाप-नियति से रमणीय रूप से दासी के कुटुम्ब भार को वहन कर उसके कुटुम्बिनी होने पर पापात्मा होते हुए अशुचि (अपवित्र) और दुष्ट-वर्तन (-आचरण) वाला होकर रहा। १०७ [कं.] यह ऐसा है (अजामिल के आचरण के ऐसा होने पर) अतः पापकर्मा कुटिल, सुजनों को आर्ति पहुँचानेवाले धूर्त व क्रूर को हम झट अपने यहाँ ले जायेंगे। तब दण्ड के कारण वह धन्यता को प्राप्त करेगा। १०८

## अध्याय—२

[व.] ऐसा कहनेवाले यमदूतों को रोककर नय-कोविद (नीति-निपुण) भगवत्-दूतों ने यों कहा— १०९ [कं.] वाह रे ! विधि को न जानने के कारण धर्म के विवेक में प्रवर [लोगों की] सभा दिखाई पड़ी। हाय ! पुण्योद्भव वाले अदण्ड्यों के (जिनको दण्डित नहीं करना चाहिए) दण्डन का विवरण दिया गया। ११० [च.] सम बुद्धिवाले साधुजन और विहित शासन वाले, सुदयालु जन, शुभ और उत्तम गुणवाले माता-पिता, सन्तान के प्रति हानि पहुँचाये तो क्रम से वे किसके प्रति दुहाई दे सकेंगे ? (माता-पिता ही सन्तान को हानि पहुँचाये तो, वे और किससे शिकायत कर सकेंगे ? ) संभ्रम से आप अपने मनों में स्थिरता से चर्चा करके देखिए

ग्रममुन वार लॅव्वरिकि गॅकॉनि कुय्यिड जालुवारु स-
भ्रममुन मी मनंबुल दिरंबुग जर्च यॉनर्चि चूड्डा ! ॥ 111 ॥

गी. एरुक गलुगु नातडेदि यॉनर्चिन, नदिय चेतुरितरुलैन वार-
लतडु सत्य मिट्टिदनॅनेनि लोकंबु, तत्प्रवर्तनमुन दगिलियुंडु ॥ 112 ॥

गी. नॅम्मि वॉडलमीद निद्रिंचु चॅलिकानि
नम्मदगिनवाडु नयमु विडिचि
द्रोहबुद्धि जंप वॉडरुने ? यॅदंन
प्रीति लेक धर्मदूतलार ! ॥ 113 ॥

गी. चित्तमॅल्ल निच्चि चॅलितनंबुन वच्चि
नच्चि कलयमॅच्चि नम्मुवानि
गरुण गलुगुवाडु गडु सौम्युडगुवाडु
जितसेय कॅट्लु सेरुप नेर्चु ॥ 114 ॥

व. अदियुनुंगाक ॥ 115 ॥

उ. ईतडु कोटि संख्यलकु नॅक्कुडु पुट्टुबुलंदु जॅंदि या
यातमुलैन पाप निवहंबुल नन्निटि बाउ द्रोलॅ ब्र-
ख्यातमतिन् महामरण कालमुनन् हरि पुण्यनाम सं-
भूत सुधाम याद्भुत विभूतिकराक्षर संग्रहंबुनन् ॥ 116 ॥

सी. ब्रह्महत्यानेक पापाटवुल कग्नि कीललु हरिनाम कीर्तनमुलु
गुरुतल्प कल्मष क्रूर सर्पमुलकु गेकुलु हरिनाम कीर्तनमुलु

---

न । १११ [गी.] ज्ञान से युक्त व्यक्ति जो भी करेगा अन्य लोग वही करते हैं। वह यदि कहे सत्य ऐसा है तो लोक (अन्य जन) उसी के आचरण का अनुसरण करेंगे। ११२ [गी.] हे धर्म के दूत ! प्रेम से जाँघ पर सोनेवाले मित्र को, विश्वसनीय व्यक्ति, नीति को छोड़कर द्रोह की बुद्धि से कहीं प्रेम - रहित हो मारने लगेगा ? (मार नहीं सकेगा) ११३ [गी.] समस्त चित्त को समर्पित कर स्नेह से आकर, पसन्द कर, शोभा से प्रशंसा कर, विश्वास रखनेवाले को करुणा से युक्त और अधिक सौम्य व्यक्ति चिन्तन किये बिना कैसे बिगाड़ सकेगा ? (नहीं बिगड़ सकेगा) ११४ [व.] यही नहीं ११५ [उ.] इसने (अजामिल ने) करोड़ से अधिक जन्मों को प्राप्त कर, प्रख्यात मति से महामरणकाल में हरि के पुण्य नाम के संभूत (उत्पन्न)-सुधामय-अद्भुत विभूतिकर अक्षर-संग्रह (-समूह) के कारण भूरि पाप निवहों (समूहों) को दूर किया। ११६ [सी.] ब्रह्म-हत्या आदि अनेक पाप रूपी अटवियों के लिए हरिनाम-कीर्तन अग्नि-कीलाओं [के समान] है। गुरुतल्प (बहुत बड़े) कल्मष (पाप) रूपी

तपनीय चौर्य संतमसंबुनकु सूर्य किरणमुल् हरिनाम कीर्तनमुलु
मधुपान किल्बिष मदनाग समितिकि गेसरुल् हरिनाम कीर्तनमुलु

गी. महित योगोग्र नित्य समाधि विधुल
नलरु ब्रह्मादि सुरुलकु नंदरानि
भूरि निर्वाण साम्राज्य भोगभाग्य
खेलनंबुलु हरिनाम कीर्तनमुलु ॥ 117 ॥

सी. मुक्ति कांतैकांत मोहन कृत्यमुल् केलिमै हरिनाम कीर्तनमुलु
सत्यलोकानंद सौभाग्ययुक्तमुल् केलिमै हरिनाम कीर्तनमुलु
महित निर्वाण साम्राज्याभिषिक्तमुल् केलिमै हरिनाम कीर्तनमुलु
बहुकाल जनित तपःफल सारमुल् केलिमै हरिनाम कीर्तनमुल

गी. पुण्यमूलंबु लनपाय पोषकंबु
लभिमतार्थंबु लज्ञान हरण करमु
लाग मांतोपलब्धंबु लमृतसेव
लार्त शुभमुलु हरिनामकीर्तनमुलु ॥ 118 ॥

कं. कामंबु पुण्यमार्ग, स्थेमंबु मुनींद्र सांद्र चेतस्सरसी
धामंबु जिष्णु निर्मल, नामंबु दलंचुवाडु नाथुडु गाडे ? ॥ 119 ॥

---

क्रूर सर्पो के लिए हरिनाम-कीर्तन केकियों (मयूरों) [के समान] है। तपनीय (स्वर्ण) चौर्य रूपी संतमस (घोर अंधकार) के लिए हरिनाम-कीर्तन सूर्य किरण है। मधुपान के किल्बिष (कल्मष) रूपी मद-नाग (-गज)-समिति (-समूह) के लिए हरिनाम-कीर्तन केसरि (सिंह) हैं। [गी.] महित योग की उग्र नित्य समाधि की विधियों से शोभायमान, ब्रह्मादि सुरों के लिए अप्राप्य भूरि-निर्वाण-साम्राज्य-भोग-भाग्य हरिनाम-कीर्तन से क्रीडाओं [के समान] हैं (अति सरलता से उपलब्ध होते हैं)। ११७ [सी.] मुक्तिकान्ता के एकान्त मोहन-कृत्य हरिनाम-कीर्तन के कारण सरलता से प्राप्त होते हैं। हरिनाम-कीर्तन सत्यलोक के आनन्द के सौभाग्य से युक्त हैं। हरिनाम-कीर्तन सरलता से महित निर्वाण साम्राज्य से अभिषिक्त करनेवाले हैं। हरिनाम-कीर्तन बहुकालजनित तपःफल के सार हैं। [गी.] हरिनाम-कीर्तन पुण्य मूल है, अनपाय पोषक हैं। अभिमत-अर्थ (इच्छा) को प्रदान करनेवाले हैं। अज्ञान का हरण करनेवाले हैं, आगमान्त में उपलब्ध होनेवाले हैं। अमृत सेवा वाले है, आर्तो के लिए शुभप्रद हैं। ११८ [कं.] काम्य, पुण्यमार्ग को स्थिर बनानेवाले, मुनीन्द्रों के सान्द्र-चेतस्-सरसी में निवास करनेवाले विष्णु के निर्मल नाम का स्मरण करनेवाला नाथ (सबका प्रभु) नहीं है क्या ? ११९ [कं.] यह मत समझो कि [अजामिल का] चित्त

कं. इदंबु पुत्रवलननु, जेंदिन दनि तलप वलदु श्रीपतिपेरे-
चंदमुननैन बलिकिन, नंदकधरुडंदे कलडु नाथुंडगुचुन् ॥ 120 ॥

गी. बिड्डपेर बॅट्टि पिलुचुट विश्राम, केळिनैन मिगुल गेलिनैन
पद्य गद्य गीत भावार्थमुलनैन, गमलनयनु दलप गलुषहरमु ॥ 121 ॥

उ. कूलिनचोट गॉट्टुपडि कुंदिनचोट महाज्वरादुलं
ब्रेलिनचोट सर्पमुख पीडल नदिनचोट नार्तुले
तूलिनचोट विष्णु भवदूरुनि बेर्कॉ निरेनि मीद न-
क्कालुनि यातनावितति गानरु पूनरु दुःखभावमुल् ॥ 122 ॥

सी. अतिपापमुलकु ब्रयत्नपूर्वकमुग दनुपापमुलकु मितंबुगाग
सन्मुनिवरुलचे संप्रोक्तमैयुंडु निर्मलंबगु पाप निष्कृतमुलु
क्रम रूपमुन नुपशमनंबुलगु गानि तत्क्षणंबु ननवि दरुवलेवु
सर्व कर्मंबुल संहार मॉनरिंचि चित्तंबुनकु दत्त्व सिद्धि नॉसगु

गी. नॉनर नीशु सेव योगिमानस सरो, -वासु सेव हेमवासु सेव
वेदवेद्यु सेव वेदांत विभुसेव, परमपुरुष पाद पद्मसेव ॥ 123 ॥

---

पुत्र के प्रति आसक्त है। श्रीपति (विष्णु) का नाम किसी भी रूप में लें तो वहीं नाथ (रक्षक) होते हुए नन्दकधर (विष्णु) [स्थित रहते] है। १२० [गी.] बेटे का नाम लेकर पुकारना (बेटे के बहाने नारायण का नाम लेना), विश्राम लेते समय या अधिक अवहेला करते समय या पद्य, गद्य, गीत के भावार्थों में हो [किसी भी तरह से] कमलनयन विष्णु का स्मरण करना कलुषहर (पापों को दूर करनेवाला) है। १२१ [उ.] मार खा गिरने पर, गिरकर व्याकुल होने पर, महा ज्वरादियों में बड़बड़ाने पर, सर्पदंश की पीड़ा के प्राप्त होने पर, आर्त हो कंपित होने पर [किसी भी कारण से क्यों न हो] भव को दूर करनेवाले विष्णु का नाम लें तो उसके बाद वे लोग [जिन्होंने हरि का नाम लिया हो] उस काल (-यमराज) - यातना-वितति (-समूह) को प्राप्त नहीं करेंगे, दुःख-भाव को वहन नहीं करेंगे। १२२ [सी.] अति पापों के लिए प्रयत्नपूर्वक [अब किये जानेवाले] शारीरिक पापों को मित (परिसीमित) कर, सन्मुनिवरों से संप्रोक्त (अच्छी तरह कहे हुए) निर्मल पाप की निष्कृति करनेवाले [विधि-विधान] क्रम रूप से उपशमन करनेवाले होते हैं। किन्तु तत्क्षण (तुरन्त) [पापों को] नष्ट नहीं कर सकते। [गी.] ईश्वर की सेवा, योगि-मानस रूपी सरोवर में निवास करनेवाले की सेवा, हेमवास की सेवा, वेद-वेद्य की सेवा, वेदान्तविभु की सेवा, परमपुरुष के पादपद्म की सेवा शोभा से सर्वकर्मों का संहारकर, चित्त को तत्त्वसिद्धि प्रदान करती है। १२३ [कं.] हरि को

कं. हरि नॆरुगनि या बालुडु
हरिभक्तुलतोड गूडि हरियनु वाडुन्
सरियै दोषमु लडचुनु
गडवलितो नग्नि तृणमु गालिचन भंगिन् ॥ 124 ॥

उ. अरयग वीर्यवंतमगु नौषधमॆंट्लु यदृच्छगोन्न व-
च्चारु गुणंबु रोगमुल जय्यन बापिन माड्कि बुण्य वि-
स्फारुनि नंबुजोदरुनि बामरुडज्ञु डवज्ञ वलिकनन्
वारक तत्प्रभावमु ध्रुवंबुग नात्मगुणंबु जूपदे ! ॥ 125 ॥

कं. धृति दप्पिन तरिनि बुरा-
कृतमुन गाकॆंट्लु दोचु गेशवुडु मदिन्
मिति लेनि जगमु दाल्चिन
यतडॊक्कनि मनमुलोन नणगॆडु वाडे ? ॥ 126 ॥

म. निरतंबै निरवद्यमै निखिल चिन्निर्माणमै नित्यमै
निरहंकार गुणाढ्यमै नियममै निर्दोषमैनट्टि श्री-
हरि नामस्मरणामृतं बितडु प्रत्यक्षंबु सेविंचॆ दा
मरणांतंबुन निट्टि सज्जनुनि धर्मंबेल व्यर्थंबगुन् ? ॥ 127 ॥

व. अनि यिट्लु भगवद्दूतलु भागवतधर्मंबु निर्णयिंचि, यी यर्थंबुन मीकु संशयंबु गलदेनि मोराजु नडुगुडु। पॊंडु। अनि पलिकि ब्राह्मणुनि

---

न जाननेवाला कोई बालक हरिभक्तों की संगति में यदि हरि का नाम लेता है तो वह पवन से युक्त अग्नि के तृण को जलाने के समान दोषों को नष्ट करता है। १२४ [उ.] सोचने पर वीर्यवान औषध का सेवन यदृच्छा से करने पर उसके चारु गुण के झट रोगों को दूर करने के समान पुण्य विस्तार वाले, अम्बुजोदर [नाम को] पामर व अज्ञ जन अवज्ञा से उच्चारण करें तो वह क्या अनिवार्य रूप से ध्रुव रूप से अपने गुण को नहीं दिखायेगा ? १२५ [कं.] धैर्य के खोने के अवसर पर, पुराकृत के कारण नहीं तो मन में केशव कैसे सूझेगा ? (बेहोश हो जाने के समय विष्णु का स्मरण हो जाना पुराकृत पुण्य का ही फल है।) अपरिमित जग को धारण करनेवाला वह क्या एक के मन में दबकर रहनेवाला है ? १२६ [म.] निरत, निरवद्य, निखिल-चित्त-निर्माण-गुणशाली, नित्य, निरहंकार गुण से आढ्य, नियम, [और] निर्दोष बने हुए श्रीहरि के नाम-स्मरण रूपी अमृत को इसने (अजामिल ने) प्रत्यक्ष रूप से सेवन किया। मरणान्त में (मरण के बाद) ऐसे सज्जन का धर्म [-कृत्य] व्यर्थ कैसे होगा ? (अजामिल का हरिनाम-स्मरण व्यर्थ नहीं जायेगा)। १२७ [व.] ऐसा कह भगवत्-दूतों ने भागवत् धर्म का निर्णय कर कहा— इस अर्थ (तात्पर्य) में आपको संशय हो

नतिघोरंबैन याम्य पाश बंध निर्मुक्तुनि गाविंचि, मृत्युवु वलनि येंडरु वापिरि । अंत ना यमदूतलु चेयुनदि लेक यमलोकंबुनकुं जनि, पितृपतिकि सवँबुनु नॅरिंगिंचिरि । अंत ॥ 128 ॥

कं. अतडुनु बाशच्युतुडै
गतभयुडै प्रकृति नोंदि कडु नुत्सवसं-
गति जूचि श्रौक्कि मदिलो
नतुलित मुद मोंदवि पोंदलि हरिदासुलकुन् ॥ 129 ॥

ते. निक्किचि केलु मोंगिचि पलुक नुद्योगिंचि
चॅलगुचुन्न लोनि तलपु दॅलिसि
चक्रधरुनि कूर्मि सहचरु लरिगि र-
वृश्युलगुचु देवदेवु कडकु ॥ 130 ॥

कं. वेदत्रय संपाद्यमु, मोदंबु गुणाश्रयंबु मुनु भगवद्ध-
र्मोदेशंबगु तद्भट, -वादंबु नजामिळुंडु वदलक विनुचुन् ॥ 131 ॥

कं. श्रीमन्नारायण पद, तामरस ध्यानसलिल धौत महाघ-
स्तोमुंडै सद्भक्तिकि, -धामं बगुचुंडे दॅलिसि तत्क्षणमात्रन् ॥ 132 ॥

कं. बरबसमुन नरिकट्टिन, दुरितंबुल दलचि तलचि तुवि वापमुनन्
हरिनोशु नाश्रयिंपुचु, बरितापमु नोंदि पलिकॅ ब्राह्मणुडात्मन् ॥ 133 ॥

---

तो जाकर अपने राजा से पूछो । जाओ । ऐसा कह ब्राह्मण (अजामिल) को अतिघोर याम्य (यम) के पाशबन्धनों से निर्मुक्त कर, मृत्यु के भय से विहीन किया । तब यमदूतों ने कुछ न कर सक, यमलोक जाकर पितृपति (यमराज) को सब कुछ बताया । तब १२८ [कं.] वह (अजामिल) भी पाश-च्युत (बन्धनमुक्त) होकर, गतभय वाला (निडर) बनकर, प्रकृतिस्थ होकर अधिक उत्सव की संगति से देखकर प्रणाम कर मन में अतुलित मोद के उत्पन्न होकर हरिदासों के साथ १२९ [ते.] खड़ा होकर हाथ जोड़े तब कुछ बोलने का उद्योग करने की भावना के [अजामिल के] मन में उमड़ते जानकर चक्रधर के प्रिय सहचर अदृश्य होकर देवदेव के पास चले गये । १३० [कं.] वेदत्रय-संपाद्य (तीनों वेदों के अध्ययन के बाद प्राप्त किया जानेवाला), मोद [कर], गुणाश्रय, और पूर्व में भगवत् धर्मादेश होनेवाले तत्-भटों (हरि के सेवकों) के वाद को अनवरत अजामिल सुनता रहा । १३१ [कं.] [सुनकर] तत्क्षण मात्र में (हरि के सेवकों के वाद को सुनते ही) जानकर श्रीमन्नारायण के पद-तामरस (-कमल) के ध्यान रूपी सलिल से धोये गये महा-अघ-स्तोम (महा पापों का समूह) वाला बनकर सद्भक्ति के लिए धाम (निलय) बन गया । १३२ [कं.] ब्राह्मण ने मन में परितप्त होते हुए परवश बनकर

सी. वृषलियंदनुराग वृद्धि बिड्डल गनि कुलमु गोदावरि गूलद्रोचि
रच्चलकॆक्किक पॆन् रज्जुसेतल सरिवारिलोपल, दलवंपु चेसि
कट्टिडि मुदुकनै कर्मबंधंबुल पुट्टनै निदल प्रोवनगुचु
दरुणुल रोतं दविलि भोगिंचिन कडिदि ना जन्मंबु गालिपोयॆ
ते. जवुवु चट्टुवडियॆ शास्त्रंबु मन्नय्यॆ, बुद्धि पुरुवु मेसॆ वुण्यमणगॆ
नीति मट्टुपडियॆ निर्मल ज्ञानंबु, मॊदलि कुडिगॆ बोध मूरिबोयॆ ॥ 134 ॥

कं. चिक्कनि चक्कनि चन्नुल
मक्कुवयिल्लालि विडिचि मायलुगल यी
वॆक्कसपु मद्यपानपु
डॊक्क पसन् दगिलि वुविटद्दुंडनै चॆडितिन् ॥ 135 ॥

उ. अक्कट ! घोर दुष्कृत महानलकीललु नन्नु मुट्टि पे
रुक्कणगिप किट्लु धृति नुंडग निच्चॆ नहो ! दुरात्मुनि
ग्रक्कुन दल्लिदंड्रुल नकल्मषचित्तुलं बॆद्दलन् मरॆ-
दिक्कुनु लेनिवारि नॆनु तीपुल वॆट्टुचु वाड्र दोलितिन् ॥ 136 ॥

कं. अकृतज्ञुडनै विडिचिति, ब्रकृतिगल बंधुवुलनु बाल्यमुन ननुन्
विकृति जनकुंड वॆचिन, सुकृतुल मज्जनकवरुल शोभनकरुलन् ॥ 137 ॥

---

किये गये [अपने] दुरितों का स्मरण करके अन्त में परिताप के कारण हरि और ईश का आश्रय लेते हुए [यों] कहा। १३३ [सी.] वृषली में अनुराग की वृद्धि के कारण बच्चों को जन्म देकर कुल [वंश-गौरव] को गोदावरी मे ढकेलकर [मिटा कर], सरे बाजार अधिक दुष्ट कृत्यों के कारण अपने जनों में अपमानित होकर, अधिक वृद्ध होकर कर्मबन्धनों का समूह बनकर, अपमानों की राशि बनकर, तरुणियों के घृणित भोगों में लिप्त रहकर मेरा उच्च जन्म नष्ट हो गया। [ते.] अध्ययन-शून्य हो गया, शास्त्र [-ज्ञान] मिट्टी में मिल गया। बुद्धि को कीड़ा खा गया, पुण्य दमित हो गया, नीति दूर हो गयी, निर्मल ज्ञान पहले ही नष्ट हो गया, बोध दूर चला गया। १३४ [कं.] सांद्र, सुन्दर स्तनों वाली प्रिय घरवाली को छोड़कर मायाविनी और घृणित मद्यपान करनेवाली [शूद्रा] के प्रति अनुरक्त होकर दुर्विट बनकर भ्रष्ट हो गया। १३५ [उ.] हाय ! घोर दुष्कृत रूपी महा-अनल की लीलाओं के मुझे घेरकर अधिक गर्व का दमन न कर मुझ दुरात्मा को धैर्य से कैसे रहने दिया ? (यह आश्चर्य की बात है।) माता-पिता को जो अकल्मष चित्त वाले हैं, जो गुरुजन है जो अन्य आश्रयहीन है, मैंने अधिक व्यथितकर झट भगा दिया। १३६ [क.] अकृतज्ञ बनकर, सहज बांधवों को और बचपन में मुझे किसी विकृति में जाने न देकर पालनेवाले सुकृतियों (पुण्यात्माओं), मत्-जनकवरों को

व. अप्पुडु ॥ 138 ॥

ते. पॆक्कु पातकमुल भृशदारुणंबैन
दॊड्डु नरकमंदु बड्ड नन्नु
नापदलकु बापि यरिकट्टि रक्षिंचि-
रिट्टि धर्मपुरुषु लॆंदु वारॊ ? ॥ 139 ॥

शा. चोद्यंबै कलवोलॆ नीक्षणमुनं जूडंग प्रत्यक्षमै
वेद्यंबय्यॆनु नन्नु नीड्चिन महावीरुल् भृशोदग्रुला
युद्योगंबुलवारु पाशधरुलो युत्साहमुल् मानि सं-
पाद्यानेक विकार रूप कुटिल प्रख्यातु लॆंदेगिरो ? ॥ 140 ॥

उ. दारुण पाशबंधन विधानमुलन् नरकार्णवंबुलो
गूरिनवानि नन्नु जॆडकुंड नॊनर्चिन पुण्यवंतु लं-
भोरुहनेत्रु लुज्ज्वल नभोमणि तेजुलु लोचनोत्सवुल्
चारु दया समंचित विचारुलु नल्वुरु नॆंदु बोयिरो ? ॥ 141 ॥

म. ननु रक्षिंचिन पुण्यवंतुलु कनन्नाळीक पत्राक्षुलं
जनसंकाशुलु शंख चक्रधरु लाजानूरु बाहुल् स्मिता-
ननु लालंबित कर्णवेष्टन सुवर्णच्छाय दिव्यांबरुल्
घन कारुण्य रसैक पूर्णुलु समग्रस्फूर्ति नॆंदेगिरो ? ॥ 142 ॥

---

और शोभन करों को [भगा दिया] १३७ [व.] तब १३८ [ते.] अनेक पातकों के [परिणामस्वरूप] भृशदारुण (अधिक भयंकर) महानरक में गिरे मुझे आपदाओं से दूर (बचा) कर [नरक में गिरने से] रोककर रक्षा की है । [पता नहीं वे] धर्मपुरुष कहाँ के हैं ? १३९ [शा.] आश्चर्यप्रद होकर स्वप्न के समान इस क्षण में देखने पर प्रत्यक्ष होकर विदित हुआ है । [पता नहीं] मुझे खींच ले जानेवाले महावीर उदग्र (अति उग्र), उसी उद्योग (जीवों को यमपुरी ले जाने के प्रयास) में रहनेवाले पाशधर, अनेक विकार कुटिल रूपों के संपादन के कारण प्रख्यात् बने [यमकिंकर] अपने उत्साह को छोड़ कहाँ चले गये ? १४० [उ.] दारुण पाश बन्धनों के विधानों के कारण नरक-अर्णव (-समुद्र) में पतित हुए मुझे भ्रष्ट होने से बचानेवाले पुण्यवान अम्बोरुह नेत्रवाले, उज्ज्वल नभोमणि (सूर्य) के समान तेजवाले, लोचनों को उत्सव (आनन्द) प्रदान करनेवाले, चारु-दया-समन्वित विचारवाले चार जन (विष्णुकिंकर); [पता नहीं] कहाँ गये ? १४१ [म.] मुझे बचानेवाले पुण्यवान् शोभायमान नालीकपत्राक्षवाले अंजन-संकाश (समान), शंख-चक्रधर, आजानु उरु बाहुवाले, स्मित आननवाले, आलंबित कर्णवेष्टन (कानों को ढकनेवाले) सुवर्ण छाया (सुनहले रंग के) दिव्य-अम्बर (-वस्त्र) वाले, घन-कारुण्य

व. पातकुंडनगु नाकु निब्विबुधोत्तम दर्शनंबु पुराकृत मदीय पुण्य विशेषंबुनं गानि पोंद शक्यंबु गादु। तत्संदर्शनंबात्मकु नति सुप्रसन्नंबैयोप्पु। अट्लु गाकुंडे नेनि गलुष वर्तनंबुल वृषलीभर्तनै युंडि मृति वोंदुचुन्न नाडु जिह्वकु श्रीमन्नारायण नाम ग्रहणंबु संभविपनेरदु। मरियुनु ॥ 143 ॥

ते. पातकुडनु जडुड ब्रह्म घातुकुडनु
मानलोभ मोह मत्सरुंड
नाकु नेट्लु दोरकु? नारायणुनि दिव्य
नाम विमल कीर्तनंबु मदिकि ॥ 144 ॥

सी. दारुण मोहांधकार पूरितुडनु हरि विस्मय स्मरणार्हमतिनॆ?
पंच महातीव्र पातकोपेतुड हरि विस्मय स्मरणार्हमतिनॆ?
कौटिल्य कितव विकार पारीणुंड हरि विस्मय स्मरणार्हमतिनॆ?
अखिल दुःखैक घोरार्णवमग्नुंड हरि विस्मय स्मरणार्हमतिनॆ?

ते. निंदलकु नेल्ल नेलवैन निर्गुणुंड
मंद भाग्युंड नेनेड? मधु विदारि
दिव्यगुणनाम कीर्तन तेरुगवेड?
पूर्व सुकृतंबु लेकट्लु पोंद गलुगु? ॥ 145 ॥

---

रस से परिपूर्ण [विष्णुकिंकर पता नहीं] समग्र-स्फूर्ति से कहाँ चले गये? १४२ [व.] मुझ पातक (पापी) के लिए उन विबुध-उत्तमों का दर्शन मदीय पुराकृत पुण्यविशेष के अभाव में प्राप्त नहीं हो सकता। उनका संदर्शन आत्मा के लिए अति सुप्रसन्न होकर शोभित होता है। ऐसा नहीं होगा तो कलुषवर्तन (दुष्ट चरित्र) से वृषली का पति बनकर रहकर, मरनेवाले मेरी जिह्वा श्रीमन्नारायण के नाम को ग्रहण नहीं कर सकती और भी (यही नहीं) १४३ [ते.] [मैं] पातक (पापी) हूँ, जड़ हूँ, ब्रह्मघातक हूँ, मान-लोभ-मोह-मत्सर से युक्त हूँ। ऐसे मुझे, मेरे मन को नारायण का दिव्य नाम, विमल कीर्तन कैसे प्राप्त होगा? १४४ [सी.] [मैं] दारुण मोह रूपी अंधकार से परिपूरित हूँ। विस्मयप्रद हरिस्मरण के लिए क्या अर्ह (योग्य) मतिवाला हूँ? [मैं] पंच महातीव्र पातकों से उपेत हूँ। विस्मयप्रद हरिस्मरण के लिए क्या अर्ह मतिवाला हूँ? कुटिल कितव-विकारों में पारीण हूँ। विस्मयप्रद हरिस्मरण के लिए क्या अर्ह मतिवाला हूँ? अखिल दुःखों के लिए एकमात्र घोर-अर्णव में मग्न हूँ। विस्मयप्रद हरिस्मरण के लिए क्या अर्ह मतिवाला हूँ? [ते.] समस्त निन्दाओं के लिए निलय बना हुआ निर्गुण, मंद भाग्यवाला मैं कहाँ? मधु-विदारी (विष्णु) के दिव्य गुण नाम, कीर्तन की पद्धति कहाँ? पूर्व सुकृत के अभाव में इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? (अर्थात् पूर्व

व. अनि वितर्किंचि ॥ 146 ॥

म. यत चित्तेंद्रिय मारुतुंड नगुचुन् यत्नं बोनर्तुन् हरि-
व्रत संपत्तिकि बुण्यवृत्तिकि जिदावासोन्मुखासक्तिकिन्
युत निर्वाण पदानुरक्तिकि सुखोद्योग क्रिया शक्तिकिन्
धृति लब्धोत्तम मुक्तिकिन् सकल धात्री धुर्य सद्भक्तिकिन् ॥ 147 ॥

कं. विडिचिति भवबंधंबुल, नडचिति माया विमोह मयिन तमंबु
श्रोडचिति नरिवर्गंबुल, गडचिति ना जन्म दुःख कर्माणवमुन् ॥ 148 ॥

कं. योषिद्रूपंबुन ननु, नेषण मुख गह्वरमुन नॅगॅम्रिंगि कडुन्
द्वेषमुन गोति जेसिन, दोषद यगु नात्म माय तॉलगं गंटिन् ॥ 149 ॥

व. अनि यिट्लु वैष्णव ज्ञानदीपं बात्म स्नेहंबुनं दोचिन ब्राह्मणुंडु ॥ 150 ॥

म. भगवद्धर्मपरायणोत्तमुल संभाषैक मंत्रंबुलन्
मिगुलन् ज्ञानमु वुट्ट मोह भव सम्मिश्रात्म बंधंबुलन्
बॅग खंडिंचि सबंधु मित्र सुत पत्नी मोह विश्रांतुडै
जगतीनाथु रमेशु गृष्णुनि दयैश्वर्यंबुलं गोरचुन् ॥ 151 ॥

---

सुकृत के अभाव में कोई व्यक्ति हरिस्मरण नहीं कर सकता) १४५ [व.] ऐसा वितर्क करके। १४६ [म.] चित्त और इंद्रिय रूपी मारुत से विचलित होते हुए (चित्त और इंद्रियों के वशीभूत होते हुए) हरि-व्रत-संपत्ति के लिए, पुण्यवृत्ति (पुण्य आचरण) के लिए चिदावास (कैवल्य) के प्रति उन्मुख बनने की आसक्ति के लिए, निर्वाण पदानुरक्ति के लिए, सुख, उद्योग-क्रिया शक्ति के लिए, धृति से लब्ध होनेवाली उत्तम मुक्ति के लिए सकल धात्री को धारण करनेवाली सद्भक्ति के लिए (उपरोक्त विषयों की प्राप्ति के लिए) प्रयत्न करता रहता हूँ। १४७ [कं.] [मैंने] भव बंधनों को छोड़ दिया है, माया विमोहकर तम का दमन किया है। अरि वर्गों को जीत लिया है। जन्म-दुःख रूपी कर्म-अर्णव को पार कर लिया है। १४८ [कं.] योषिता (नारी) के रूप में मुझे ईषणा के मुखगह्वर से झट निगलकर, अतिद्वेष से [मुझे] बन्दर बनानेवाली दोषद आत्ममाया (अपनी आत्मा को आवृत करनेवाली माया) के हट जाते [मैंने] देख लिया है। १४९ [व.] [ऐसा] कहकर इस प्रकार आत्म-स्नेह के कारण वैष्णव ज्ञानदीप के सूझने पर ब्राह्मण (अजामिल) ने १५० [म.] भगवत्धर्म-परायणों में उत्तम जनों के संभाषण रूपी एकैक मंत्रों के कारण अधिक ज्ञान के उत्पन्न होने पर मोहमय-सम्मिश्रित आत्मबंधनों को झट खण्डित कर, सबन्धु-मित्र-सुत-पत्नी के मोह से विश्रान्त (विरक्त) होकर जगतीनाथ, रमेश, कृष्ण के दया रूपी ऐश्वर्यों को चाहते हुए, [मन में कहा कि] १५१ [कं.] हरिभक्तों से संभाषण धरा पर कभी नष्ट नहोनेवाले

कं. हरि भक्तुलतो माटलु, धरनेन्नडु जेंडनि पुण्य धनमुल मूटल्
वर मुक्ति कांत तेटलु, नरिषड्वर्गंबु चोरनि यरुदगु कोटल् ॥ 152 ॥

सी. अनुचु ना ब्राह्मणुंडतितत्त्ववेदियै भवबंधमुल नेल्ल वारदोलि
गौनसि गंगाद्वारमुन केगि यच्चट ब्रब्विन ·देवताभवनमंदु
नासीनुडै योग माश्रयिंचि चेलंगु देहेंद्रियावुल तेरुवुवलन
दनु बापुकोनि परतत्त्वंबुतो गूचि मानुगा योग समाधिचेत

आः गुणगणंबु बासि कौमरोप्पिन भगव-
दनुभवात्मयंबु नात्म गलिपि
रमणदन्नु मौदल रक्षिचिनट्टि या
पुरुष - वरुल गांचि पोसग म्रोक्के ॥ 153 ॥

व. अट्लजामिळुंडु योगमार्गंबुन देहंबु विडिचि, पुण्य शरीरुंडै यग्र भागंबुनं ब्रागुपलब्धुलैन महापुरुष किंकरुलं गांचि, समंचित रोमांचित चलच्चटा-पिंजरित स्वेदबिन्दु संदोह मिष निष्यंद महानंदवल्लिका-मतल्लि कांकुर संकुल परिशोभित तनुंडुनु, हर्ष निकर्षमाण मानसोद्योग योग प्रभावोत्साह विस्मय मंदस्मित मुखारविंद कंदळितुंडुनु, निखिल जगज्जेगीयमानाखंड शुभप्रद शुभाकार संदर्शन समासादित कुतूहल

पुण्यधनों की गठरियाँ है, वर मुक्तिकान्ता की स्वच्छताएँ हैं, अरिषड्वर्ग को प्रविष्ट न होने देनेवाले विरल दुर्ग है । १५२ [सी.] [ऐसा] कहते हुए वह ब्राह्मण अति तत्त्ववेदी बनकर, समस्त भवबन्धनों को दूर भगाकर सप्रयत्न गंगाद्वार पर जाकर, वहाँ प्रसिद्ध देवताभवन (मंदिर) में आसीन होकर योग का आश्रय लेकर, विजृंभित देह इंद्रियादियों के मार्ग से अपने आपको अलग रख (देह और इंद्रियों के वश में न होकर), [आ.] ठीक ढंग से परतत्त्व के प्रति योगसमाधि के कारण गुणगणों को दूर कर, शोभायमन भगवत्-अनुभवात्मा में [अपनी] आत्मा को मिलाकर पूर्व में अपनी रक्षा करनेवाले उन पुरुषवरों को शोभा से देखकर उचित रूप से प्रणाम किया । १५३ [व.] इस प्रकार अजामिल योगमार्ग से देह को त्यागकर, पुण्य शरीर वाला बनकर, अग्र भाग में (समक्ष) प्राक्-उपलब्ध (पूर्व में प्राप्त = पूर्व में दर्शन देनेवाले) महापुरुष (विष्णु) के किंकरों को देखकर, समंचित-रोमांचित-चलच्छटा पिंजरित-स्वेद बिन्दु-संदोह के मिस निष्यद-महानन्द वल्लिका-मतल्लिका (-श्रेष्ठ) अंकुर-संकुल से परिशोभित तनुवाल्ली (रोमांच के कारण शरीर पर उत्पन्न स्वेद बिन्दु महानन्द रूपी लता के मानो अंकुर थे), हर्ष-निकर्षमान मानस के उद्योग योगप्रभाव के उत्साह और विस्मय के मन्दस्मित से विकसित मुखारविन्दवाला, निखिल-जगज्जेगीयमान (निखिल जगत को प्रकाशित करनेवाले) अखण्ड शुभप्रद

मानसुंडुनुनै, प्रणामंबुलाचरिंचुचु भागीरथी तीरंबुन गळेबरंबु विडिचि, तत्क्षणंबुन हरि पार्श्ववर्तनुलैन दासवरुल स्वरूपंबु दालिच, या विष्णु सेवकुलतो गूडि दिव्य मणि गण खचितंबगु सुवर्ण मयंबयिन यसमान विमानंबेक्कि, निखिलानंद भोग भाग्यानुभवाकुंठितंबैन वैकुंठंबुन श्रीमन्नारायण पादारविंद सेवा चरण परिणाम स्थितिकि जनियें। इट्लु विप्लावित सर्वधर्मुंडैन दासीपति, गर्हित कर्मबुलचेत बतितुंडुनु, हतव्रतुंडुनुनै नरकंबुनं गूलुचुंडि, भगवन्नाम ग्रहणंबुन सद्यो मुक्तुंडय्यें। कावुन ॥ 154 ॥

कं. कर्मंबुलॅल्लु बायनु, मर्ममु दलपंग लेदु मधुरिपु पेरे
पेर्मिनि नॊडुवुट कंटॆन्, दुर्मदमुन जित्त मॆन्नि त्रोवल जन्नन् ॥ 155 ॥

उ. पांडवबंशपालन! नृपालक! यी यितिहास मॆव्वडे
नॊंडॊक भक्ति लेक विनु नॊप्पुमॆयि बठियिंचु नातडु-
द्दंडत मुक्ति कामिनिकि दानकमै दनुजारि लोकमं-
दुंडु महाविभूति यमदूतल चूड्कि कगोचराकृतिन् ॥ 156 ॥

ते. अरय पुत्रोपचारितमैन विष्णु
नाम मवसान कालंबुनन्नु भजिंचि

---

और शुभाकार के संदर्शन से समासादित कुतूहल से युक्त मनवाला होकर प्रणाम करते हुए, भागीरथी के तीर पर कलेवर (शरीर) को छोड़कर, उसी क्षण हरि के पार्श्ववर्ती दासवरों के स्वरूप को धारण कर, उन विष्णुसेवकों से युक्त होकर, दिव्य मणिगणखचित और सुवर्णमय अ-समान विमान पर आरूढ़ होकर, निखिल आनन्द और भोग-भाग्य के अनुभव में अकुंठित बने वैकुण्ठ में श्रीमन्नारायण के पादारविन्द की सेवा के आचरण के परिणाम की स्थिति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार विप्लावित सर्व धर्म वाला (सर्व धर्मों को छोड़कर) दासी पति ने गर्हित कर्मों से पतित और हत व्रत वाला होकर नरक में गिरनेवाला होते हुए भी, भगवन्नाम के ग्रहण के कारण सद्योमुक्ति को प्राप्त किया। अतः १५४ [कं.] दुर्मद के कारण चित्त के अनेक मार्गों में जाने पर भी समस्त कर्मों को दूर करनेवाला मर्म (रहस्य, उपाय) मधुरिपु (विष्णु) के नाम का, प्रेम से उच्चारण करने के अतिरिक्त [दूसरा कोई उपाय] नहीं है। १५५ [उ.] हे पाण्डुवंश-पालक (-राजा)! हे नृपाल! इस इतिहास (अजामिल की कथा) को जो कोई भी, अन्य किसी विषय के प्रति भक्ति (रक्ति) न रखकर, सुनता है, शोभा से पढ़ लेता है, वह उद्दण्डता से मुक्ति कामिनी के स्थान बने दनुजारि (विष्णु) के लोक मे महाविभूति से युक्त होकर यमदूतों की दृष्टि के लिए अगोचर आकृति वाला होता हुआ रहता है। १५६ [ते.] सोचने पर

शार्ङ्गिनिलयंबु जेर नजामिळुंडु
निट्लु सद्भक्ति दलचिन नेमिचॆप्प ? ॥ 157 ॥

कं. कोरिनवारल कॆल्लनु, जेरुव कैवल्यपदमु सिरिवरुनि मदि
गोरनि वारल कॆल्लनु, दूरमु मोक्षाप्ति यॆन्नित्रोवल नैनन् ॥ 158 ॥

## अध्यायमु—३

व. अनिनं बरीक्षिन्नरेंद्रुंडिट्लनियॆ। मुनींद्रा! आज्ञाभ्रष्टुंडै यमधर्मराजु श्रीविष्णु निर्देशकुलचेत विहतुलैन भटुलचेत वर्णिपंबड्ड नारायणुनि नाम प्रभावंबाकर्णिंचि, वारल केमनियॆ? मरियु, नॆन्नडेनियु यमदंडंबु विफलंबै पोयिन तॆरंगु गलदेनि विनवलयु। ई संदेहंबु बाप महात्मा! नीवु दक्क दक्किनवारलु समर्थुलु गारनि तलंचुचुन्नवाड। चित्तंबुनु ब्रसादायत्तंबुगा भवदीय वचन सुधाधारल ब्रसादिपवलयु। अनिन शुकुंडिट्लनियॆ॥ 159 ॥

कं. श्रीकृष्ण भटुलचेत नि,-राकृतुलयि याम्य भटुलु यमुनकु नात्म-
स्वीकृत विप्रकथाक्रम, मीक्रियमुन् दॆलिपि रदियु नॆरुगितु दगन् ॥ 160 ॥

---

पुत्र के लिए उच्चारित विष्णु नाम को [कम से कम] अवसान काल में [ही सही] स्मरण कर अजामिल ने शार्ङ्गी (विष्णु) के निलय (वैकुण्ठ) को प्राप्त किया। इस प्रकार सद्भक्ति के वारे में सोचकर क्या कहूँ? (सद्भक्ति का महत्त्व वर्णनातीत है)। १५७ [कं.] कितने भी मार्ग क्यों न हों, मोक्ष की प्राप्ति, श्रीवर (विष्णु) को मन से चाहनेवालों के लिए कैवल्य पद निकट है, [श्रीवर को] न चाहनेवालों के लिए दूर है। १५८

## अध्याय—३

[व.] [ऐसा] कहने पर परीक्षिन्नरेंद्र ने इस प्रकार कहा। हे मुनींद्र! अपनी आज्ञा के भ्रष्ट (भंग) होने पर यम धर्मराज ने श्रीविष्णु के निर्देशकों (किंकरों) से विहत [अपने] भटों द्वारा वर्णित नारायण के नाम-प्रभाव का आकर्णन करके, उनसे क्या कहा? और, सुनना चाहिए कि कभी [इस प्रकार] यमदण्ड के विफल होने का विधान कभी हुआ है क्या? हे महात्मा! इस संदेह को दूर करने के लिए तुम्हें छोड़ अन्यजन समर्थ नहीं हैं, ऐसा समझता हूँ। चित्त प्रसादायत्त हो जाय, इस रूप में भवदीय वचन रूपी सुधाधाराओं को प्रदान करना चाहिए। [ऐसा] कहने पर शुक ने यों कहा— १५९ [कं.] पूर्व में याम्य (यम के) भटों ने श्रीकृष्ण के भटों से निराकृत होकर, यम को आत्म-स्वीकृत (अपने से ग्रहण किये गये) विप्र-कथा-क्रम को इस क्रिया से (प्रकार) बताया। उसे भी उचित रूप से

ते. चेरि त्रिविध कर्मल जेयु जीवततिकि
गर्मफलमुल दॅलिपॅडु कारणुलुग
नगुचु शिक्षिचुवार लॊ यवनिमीद
देव ! यॅंदरु गलरय्य ? तॅलिय वलयु ॥ 161 ॥

कं. दक्षिण दिशाधिनायक !, शिक्षंदग जेयुवारु क्षिति बॅक्कुंड्रे-
नी क्षयमुन्नक्षयमुनु, साक्षात्तुग रॅंडु नेंदु संपन्नमगुन् ? ॥ 162 ॥

ते. दट्टमैनट्टि कर्मबंधमुल नॅल्ल
नाज्ञ पॅट्टेडुवारु पॅक्कॅन चोट
नकट ! शास्तृत्व मुपचार मय्यॆ गादॆ !
शूरुलैनट्टि मंडलेशुलकु बोलॆ ॥ 163 ॥

उ. कावुन नीव यॊक्कडव कर्तवु मूडु जगंबुलंदु सं-
भावित भूतकोटि बरिपाक वशंबुन शिक्ष सेयगा
नी वर शासनंबखिल निर्णयमै तनरारुचुंड ने
डीवल ग्रम्मरिप मरि यॆव्वडु शक्तुडु ? धर्मपालना ! ॥ 164 ॥

कं. चंडकर - तनय ! यॊरुलकु
दंडधरत्वंबु गलदॆ ? तग जगमुन नु-
द्दंड धरवृत्ति नॊत्तिलि
दंडितुवु निन्नु दंडधरुडनि पॊगडन् ॥ 165 ॥

---

बताऊँगा। १६० [ते.] हे देव ! [हमें] जानना चाहिए कि त्रिविध कर्मों को करनेवाले जीवतति के लिए कर्मफलों को बतानेवाले कारणरूप होते हुए दण्डित करनेवाले इस अवनि पर कितने लोग है ? १६१ [कं.] हे दक्षिण दिशा के अधिनायक ! उचित ढंग से दण्डित करनेवाले यदि क्षिति पर अधिक है तो क्षय और अक्षय साक्षात् रूप से दोनों कहाँ सम्पन्न होते हैं ? १६२ [ते.] हाय ! सांद्र समस्त कर्मबन्धनों के लिए दण्डित करनेवाले जहाँ अधिक होते हैं वहाँ, शूर बने मण्डलेशों (छोटे-छोटे प्रान्तों के राजाओं) के समान शास्ता का अधिकार केवल औपचारिक हो जाता है न ? (छोटे-छोटे किंतु शूर-वीर राजाओं के अधिक संख्या में होने पर सम्राट् के अधिकार का विशेष महत्त्व नहीं होता।) १६३ [उ.] अतः तुम एक ही त्रिजगों के सभावित-भूत कोटि के परिपाक वश (समस्त भूतों द्वारा किये जानेवाले पापकर्मों के परिणाम के लिए दण्ड देने के लिए [तुम हो] कर्ता हो। हे धर्मपालक ! तुम्हारा वर शासन (उत्तम आदेश) अखिल निर्णय होकर शोभायमान होते रहने पर उसके विपरीत करने के लिए शक्तिमान अन्य कौन है ? १६४ [कं.] हे चण्डकर-तनय (सूर्यपुत्र) ! क्या दूसरों के लिए दण्ड-धरत्व है क्या ? उचित रूप से जग में उद्दण्ड धर वृत्ति

सी.　इट्टि नी दंडंब यी मूडु जगमुल दॅगुवमै नेडु वर्तिल्लुचुंड
मनुज-लोकंबुन महिताद्भुताकार सिद्धुल मिगुल प्रसिद्धुलैन
वारु नल्वुरु वेग वच्चि निर्देशंबु भंगिंचि मम्मंत बारदोलि
मी शासनंबुन मे मीड्चिकॉनिवच्चु क्रूर चित्तुनि वुच्चिकॉनि यदल्चि

ते.　पाशबंधंबु लीसुन वट्टि त्रॅंचि
बलिमि मिगुलंग मम्मुनु बारदोलि
यिच्च जनिनारु वारु दामॅंचटिवार-
लादरम्मुन नेडु मा कानतिम्मु ॥ 166 ॥

व.　अनिरि। अनि मरियु शुकुंडिट्लनियॅं। अट्लु दूतलु परिताप समेतुलै पलिकिन, दंडधरुंडु पुंडरीकाक्षुनि चरण कमलंबुलु मानसंबुन सन्निहितंबुलुग जेसि, वंदनंबाचरिंचि, परम भक्तिपरुंडै वारल किट्लनियॅं ॥ 167 ॥

सी.　कलडु मदन्युंडु घनुडॊक्क डतडॅंदु वॅलिकि गानगराक विश्वमॅल्ल
नतिलीनमै महाद्भुत समग्र स्फूर्तिनुंडु गोकंदु नूलुन्नभंगि
दामॅन बशुवुलु दगिलि युंडॅडि माड्कि नाम संकीर्तन स्थेममतुल
विहरिंचु नॅव्वडु विलसित मत्पूज लॅव्वनि पदमुल निव्वटिल्लु

(भयंकर दण्डधरप्रवृत्ति) से प्रभावशाली बनकर [भूतकोटि को] दण्डित करते हो। जिससे [लोग] तुम्हारी प्रशंसा 'दण्डधर' कहकर करते हैं। १६५ [सी.] इस प्रकार का तुम्हारा दण्ड (दण्ड-विधान) तीनों लोकों में प्रभावशाली रूप से आज प्रवर्तित होते समय, मनुजलोक में महित-अद्भुत आकार सिद्धिवाले, अधिक प्रसिद्ध बने हुए चार लोग झट आकर [तुम्हारे] निर्देश (आज्ञा) का भंग कर, तब हमें भगाकर, आपके शासन (आदेश) से हम जिस क्रूर चित्तवाले को घसीटकर ला रहे थे, उसे लेकर (अपनाकर), [हमें] धमकाकर, [ते.] पाशबन्धनों को ईर्ष्या (प्रति-स्पर्धा के भाव) से पकड़ तोड़कर (टुकड़े कर), बल की अधिकता से हमें भी भगाकर [अपनी] इच्छा से चले गये। वे कौन हैं? आदर से आज हमें बताइए। १६६ [व.] [यमभटों ने] ऐसा कहा। [ऐसा] कहकर शुक ने और यों कहा। उस प्रकार दूतों के परिताप समेत होकर कहने पर, दण्डधर ने पुण्डरीकाक्ष के चरणकमलों को मानस मे सन्निहित (निकटस्थ) कर, वन्दन कर, परमभक्ति वाला होकर उनसे यों कहा— १६७ [सी.] [हाँ] मुझसे अन्य एक महान् पुरुष है, वह कहीं बाहर दिखाई न देकर समस्त विश्व में अतिलीन होकर महा-अद्भुत-समग्र-स्फूर्ति से चीर (वस्त्र) में धागे के समान रहता है। लम्बी रस्सी से पशुओं के बँधे रहने के समान नाम संकीर्तन में स्थिर मतिवालों में विहरण करता है।

ते. गनुट मनुट चनुट गल्गु नॅव्वनिलील
लंदु लोक मॅवनियंदु बॉदु
नॅन्न बड्चु बुडमि नॅव्वनि नाममुल्
कर्मबंधनमुल पॅमि नडचु ॥ 168 ॥

त. विनुडु नेनु महेंद्रु डप्पति वीतिहोत्रुडु राक्षसुं
डनिलु डर्कुडु चंद्रुडुं गमलासनुंडु मरुद्गणं-
बुनु महेशुडु रुद्रवर्गमु भूरि संयमि सिद्धुलुन्
मॉनसि कन्गॉनजाल रॅव्वनिमूर्ति विश्रुतकीर्तिमै ॥ 169 ॥

कं. सत्त्वेतर गुणपाश व,-शत्वंबुन बॉद वीरु जलजाक्षु सदे-
कत्वंबु गाननोपरु, सत्त्वप्रधान्युलितर जनुलकु दरमे ? ॥ 170 ॥

चं. अभवु नमेयु नव्ययु ननंतु ननारतु बूनि मेनिलो
नुभयमुनै वॅलुंगु पुरुषोत्तमु गानरु चित्तकर्म वा-
ग्विभव गरिष्ठुलै वॅदकि वीङ्डि प्राणुलु; सर्व वस्तुवुल्
शुभगति जूडनेर्चि तनु जूडग नेरनि कंटि पोलिकन् ॥ 171 ॥

चं. वरमुनि भक्तलोक परिपालनशीलुनि, दुष्टलोक सं-
हरुनि, पतंगपुंगव विहारुनि, कूरिमिदूतला मनो-

---

और विलसित मेरी पूजाएँ जिसके चरणों में शोभित होती हैं, [ते.] जिसकी लीला से उत्पन्न होना, रहना, मरना आदि होते है और लोक जिसमें लीन हो जाता है और जिसके नामस्मरण पृथ्वी पर कर्मबन्धनों को प्रेम से दमन करता है [ऐसा एक महान् व्यक्ति मुझसे बढ़कर है]। १६८ [त.] सुनो ! मैं, महेंद्र, अप्-पति (वरुण), वीतिहोत्र (अग्नि), राक्षस, अनिल, अर्क, चंद्र, कमलासन, मरुत्गण, महेश, रुद्रवर्ग, भूरि संयमी और सिद्धजन विश्रुत कीर्तिवाले उस व्यक्ति की मूर्ति को सप्रयत्न भी देख नहीं पाते। १६९ [कं.] सत्त्व इतर (सत्त्वगुण से अन्य) गुणपाश के वश में होने के कारण ये लोग विष्णु के सर्वव्यापी होने के तत्त्व को जान नहीं सकते। ये (उपरोक्त) सत्त्वगुण के प्राधान्य से युक्त हैं। बत इतर जनों के लिए [उसे जानना] कहाँ संभव है। १७० [चं.] अभव, अमेय, अव्यय, अनन्त, अनारत (विष्णु) को शरीर में धारण कर, उभय होकर प्रकाशित होनेवाले पुरुषोत्तम को, चित्त-कर्म-वाक् के वैभव में गरिष्ठ होकर भी व्यर्थ के प्राणी, खोजकर भी देख नहीं सकते। जैसे समस्त वस्तुओं को शुभ गति से देख सककर भी नेत्र के अपने-आपको न देख सकने के समान [प्राणी परमात्मा को देख नहीं सकते] १७१ [चं.] [जिन्होंने आप लोगों को भगा दिया था] वे व्यक्ति वर मुनि और भक्तलोक के परिपालनशील वाले, दुष्ट लोक का संहार करनेवाले, पतंग-पुंगव (पक्षिश्रेष्ठ)-विहारी के

हरुलु, सुरेंद्रवंदितुलु, ना हरि रूप स्वभावुलै
तिरुगुचुनुंदु रॆल्लॆडल दिक्कुल देजमु पिक्कटिल्लगन् ॥ 172 ॥

उ. लॆक्ककु नॆक्कुवै कसटुलेनि महाद्भुत तेजमॆल्लॆडं
विक्कटिलं जरितुरति भीम वलाढ्युलु विष्णुदूत ला-
चक्कनि धर्मशांतुलति साहसवंतुलु देवपूजितुल्
ग्रिक्किरिसी जगंबुननु गेशवसेवक रक्षणार्थमै ॥ 173 ॥

कं. ना वलननु मी वलननु, देवासुर गणमुवलन द्रिजगंबुललो
ने वगल बॊंदकुंडग, गावं गलवारु पुडमि गलवैष्णवुलन् ॥ 174 ॥

कं. भगवत्प्रणिहित धर्मं
बगपड दॆव्वारि मतिकि ननिमिष गरुडो-
रग सिद्ध साध्य नर सुर
खग तापस यक्ष दिविज खचरुलकैनन् ॥ 175 ॥

कं. एन्नडु दॆलियंग नेररु, पन्नगपतिशायि तत्त्वभावमु मेनं
गन्नुल वेल्पुनु डापल, चन्नमरिन वेल्पु मुदुक चदुवुल वेल्पुन् ॥ 176 ॥

सी. वर महाद्भुतमैन वैष्णवज्ञानंबु तिरमुगा नॆव्वरु तॆलियगलरु ?
देवादिदेवुंडु त्रिपुरसंहरुडॊंडै गमल संभवुडॊंडै गार्तिकेय

(विष्णु के) प्रिय दूत हैं। वे मनोहर [आकार वाले], सुरेंद्र-वन्दित [हरि के वे सेवक] हरि के रूप, गुण, स्वभावों से युक्त होकर समस्त दिशाओं में [अपने] तेज के परिव्याप्त होने पर विचरण करते रहते हैं। १७२ [उ.] संख्या में अत्यधिक होकर, न्यूनता से हीन महा अद्भुत तेज के सर्वत्र परिव्याप्त होने पर, अति भीम बल से आढ्य, वे विष्णुदूत विचरण करते रहते हैं। वे श्रेष्ठ धर्म के कारण शान्त भाव वाले अति साहसी और देव-पूजित केशव के सेवकों की रक्षा के लिए इस जगत में भरे रहते हैं। (सर्वत्र अधिक सख्या में व्याप्त रहते है।) १७३ [कं.] [वे लोग] पृथ्वी पर स्थित वैष्णवों (विष्णु के भक्तों) को मेरे कारण और तुम लोगों के कारण और देवासुर गणों के द्वारा त्रिजगों में किसी भी प्रकार के दुःख प्राप्त न हों इस प्रकार रक्षा कर सकते है। १७४ [क.] अनिमिष-गरुड़-उरग-सि[illegible]-साध्य-नर-सुर-खग-तापस-यक्ष-दिविज-खचर (खेचर) आदि में किसी भी व्यक्ति की मति के लिए भगवत्-प्रणिहित धर्म दिखायी नहीं पड़ता। १७५ [कं.] [समस्त] शरीर पर आँखों वाले देवता (इंद्र) बायें [वक्षस्थ ] पर स्तन से युक्त देवता (अर्धनारीश्वर शिव) और पुरानी विद्याओ के देवता (ब्रह्मा) भी पन्नगपति-शायी (विष्णु) के तत्त्व-भाव को कभी नहीं जान सकते। १७६ [सी.] वर महा अद्भुत वैष्णव ज्ञान को स्थिरता से कौन जान सकता है ? या देवादिदेव त्रिपुर

कपिल नारदुलैंड गंगात्मजुंडौंडे मनुवौंडे बलियौंडे जनकुडौंडे
ब्रह्लादुडौंडे नेर्पाटुगा शुकुडौंडे भासुतरमित व्यासुडौंडे

ते. गाक यन्युल तरमं ? यी लोकमंदु
नी सुबोधंबु सद्बोध मी पदार्थ
मी सदानंद चिन्मय मी यगम्य
मी विशुद्धंबु गुह्यंबु नी शुभंबु ॥ 177 ॥

कं. ई पन्निद्दरु तक्कग, नोपरु तक्कौरुलु तेंलिय नुपनिषदुचित
श्रीपति नाम महाद्भुत, दीपित भागवतधर्म दिव्य क्रममुन् ॥ 178 ॥

ते. एवि जर्पियिप नमृतमै यौसगुचुंडु
नेदि सद्धर्म पथमनि येंरुगदगिन
वदियें सद्भक्ति योगंबु नलवरिंचु
मूर्तिमंतंबु दा हरि कीर्तनंबु ॥ 179 ॥

ते. कंटिरे मीरु सुतुलार ! कमलनेत्रु
भव्यमगु नाम कीर्तन फलमु नेडु
तविलि मृत्युवु पाश बंधमुल वलन
जाणतनमुन वीडें नजामिळुंडु ॥ 180 ॥

उ. एटिकि जालिबौंदु ? नरुली क्रिय गृष्णुनि कीर्तनंबु पा-
पाटवुलं दहिंपगल दौटकु संदियमेल ? यिप्पुडी

संहारक (शिव) हों या कमलसंभव (ब्रह्मा) हों या कार्तिकेय, कपिल, नारद हों या गंगात्मज (भीष्म) हों या मनु हों या बलि हों या जनक हो, या प्रह्लाद हों या ढंग से शुक हों या भासुरतर-मति वाले व्यास हों। [ते.] [इनको छोड़कर] अन्यों के लिए [वैष्णवज्ञान को जानना] कहाँ संभव है ? इस लोक में यह सुबोध (सुज्ञान) ही सद्बोध है। यह पदार्थ हो, यह सदानन्द चिन्मय ही, यह अगम्य [ज्ञान] ही, यह विशुद्ध ही, यह गुह्य ही, यह शुभ [प्रद] ही [सच्चा ज्ञान] है। १७७ [कं.] उपनिषद् उचित श्रीपति के नाम से महा अद्भुत दीपित भागवत (भक्त) के धर्म दिव्यक्रम को उपरोक्त बारह लोगों को छोड़कर अन्य लोग जान नहीं सकते। १७८ [ते.] जो जप करने पर अमृत होकर शोभित होता रहता है, जो सद्धर्म-पथ होकर जाना जा सकता है, जो सद्भक्ति योग को प्रदान करता है, इस प्रकार वह हरिकीर्तन मूर्तिमान है। १७९ [ते.] हे पुत्रो ! कमलनेत्र के भव्य नाम कीर्तन के फल को आज देखा है न ! अजामिल मृत्युपाश-बन्धन में लगकर भी प्रौढ़ता से मुक्त हो गया। १८० [उ.] क्यों व्याकुल होते हो ? नरों के लिए श्रीकृष्ण का संकीर्तन इस प्रकार पाप रूपी अटवियों का दहन करने में समर्थ है, ऐसा कहने में

तूटरि दोसकारि पॆनुदोषि यजामिळुडंतमॊंदुचुं
वाटिग विष्णु नाममुनु बल्कुचु गेवल मुक्ति कॆगडे ? ॥ 181 ॥

कं. इंतयुनु दथ्यमनि मदि, नॆंतयु दॆलियंगलेरु हीनात्मुलु दु-
दाँततर घटित माया, क्रांतात्यंत प्रकाश गौरव जडुलै ॥ 182 ॥

मं. ईविधमुनन् विबुधु लेक तम चित्तमुल नेकतमु लेक हरि नीशुन्
भावमुन निलिप तगु भागवतयोग परिपाकमुन नॊंदुदुरु वारिन्
देवलदु दंडनगतिन् जनदु माकु गुरुतिप नघमुल् दलगु मीवन्
श्रीवरुनि चक्रमु विशेषगति गाचु सुरसेवितुलु मुक्ति गडु बॆद्दल् ॥183॥

उ. एव्वरु सिद्ध साध्य खचरेश लसत्परिगीत गाथुलं
दॆव्वरु मुक्ति भोगतल हेम मनोहर चंद्रशालुरं
दॆव्वरु शंख चक्र गुरु हेति गदा रुचिरोग्रपाणुला-
मव्वपु रूपवंतु लसमानुलु वो धरलोनि वैष्णवुल् ॥ 184 ॥

सी. श्रुत्यंत विश्रांत मत्यनुक्रमणीय भगवत्प्रसंगतुल् भागवतुलु
सनकादि मुनि योगिजन सदानंदैक परम भाग्योदयुल् भागवतुलु

---

संदेह क्यों ? अब यह दुष्ट दोषी, अधिक दोषी अजामिल ने मरते-मरते उचित रूप से विष्णु के नाम को लेकर केवल-मुक्ति को प्राप्त नही किया ? (किया है।) १८१ [कं.] हीन आत्मा वाले और दुर्दान्त-तर रूप से घटित होनेवाली माया के कारण अत्यंत प्रकाशगौरव के आक्रान्त होने पर जड़ बनकर यह सब तथ्य (सत्य) है, ऐसा नही जान सकते। १८२ [मं.] इस प्रकार विबुधजन एकतम (एकाग्र) चित्त से किसी भी प्रयोजन के बिना ही (अनासक्त होकर) हरि और ईश को भाव (मन) में स्थिर कर उचित रूप से भागवत योग से परिपाक (फल) को प्राप्त करते हैं। उन्हें मत लाओ। उनके लिए दण्ड की गति नहीं चाहिए। सुरसेवित और मुक्ति में उन बड़े लोगों को श्रीवर (विष्णु) का चक्र-विशेष रूप से रक्षा करता रहता है। उसके कारण [उनके किये] अघ (पाप) दूर हो जाते हैं। १८३ [उ.] जो सिद्ध-साध्य-खचरेशों से लसत परिगीत (प्रशंसित) गाथा वाले हैं, जो मुक्तिभोग तल के हेम-मनोहर चंद्रशालाओं में [निवास करनेवाले] हैं, जो शंख-चक्र-गुरुहेति (-बड़ा खड्ग), गदा से रुचिर और उग्र पाणी (हाथ) वाले हैं, वे सुन्दर रूपवान और असमान जन धरा पर के वैष्णव हैं। १८४ [सी.] भागवतजन श्रुत्यंत (वेदान्त) में विश्रान्ति लेनेवाले (वेदों के अन्त में प्राप्त होनेवाला), अति अनुक्रमणीय (अनुकरणीय) भगवत्प्रसंग से युक्त होते हैं, भागवतजन सनकादि मुनि और योगिजन के लिए सदानन्द के एकमात्र परमभाग्य के उदय से युक्त हैं। श्रीभागवतजन कृष्णपद के ध्यान रूपी केवल अमृत पान

कृष्ण पद ध्यान केवलामृतपान परिणाम युतुलु श्री भागवतुलु
बहुपातकानीक परिभव प्रक्रिया परुषोग्र मूर्त्तुलु भागवतुलु

ते. भाव तत्त्वार्थ वेदुलु भागवतुलु
ब्रह्मवादानुवादुलु भागवतुलु
सिरुलु दनरंग नॅन्नडु जेटुलेनि
पदवि नॉप्पारुचारुवो भागवतुलु ॥ 185 ॥

कं. अदि गान विष्णुभक्तुल, गदियंग जनवलदु मीरु करिवरदु लस-
त्पदपद्म विनति विमुखुल, दुदि नंटग गट्टि तॅडु धूर्तुलु वारल् ॥ 186 ॥

सी. एकसक्कॅमुनकैन निंदिरारमणुनि बलुकंगलेनि दुर्भाषितुलनु
कललोननैन श्रीकांतुनि सत्पाद कमलमुल् सूडनि कर्मरतुल
नव्वुचुनैन गृष्ण प्रशंसकु जॅवि दार्पनेरनि दुष्कथा प्रवणुल
यात्रोत्सवंबुलनैन नीशुनि गुडित्रोव द्रौक्कगलेनि दुष्पदुलनु

ते. बरम भागवतुल पाद धूलि समस्त
तीर्थसार मनुचु दॅलियलेनि
वारि वारिवारि वारि जेरिन वारि
दॉलुत गट्टि तॅडु दूतलार ! ॥ 187 ॥

ते. एल्ल पापमुलकु निल्लैन यिंटिलो, बद्ध तृष्णुलगुचु बुद्धि दगिलि
परमहंस कुलमु गुरि तप्पि वर्तिचु, धूर्तजनुल दॅडु दूतलार ! ॥ 188 ॥

के परिणाम से युक्त हैं। भागवतजन बहुपातक और अनेक परिभव-प्रक्रिया के लिए उग्रपुरुष मूर्ति वाले हैं। [ते.] भागवतजन भावतत्त्वार्थ-वेदी हैं। भागवतजन तो श्रियों से विलसित और कभी हानि को प्राप्त न होनेवाली पदवी से शोभायमान रहनेवाले हैं। १८५ [कं.] यह ऐसा है, इसलिए विष्णु-भक्तों के निकट [तुम्हें] जाना नहीं चाहिए। तुम लोग करि-वरद (विष्णु) के लसतपदपद्मों में विनती (स्तुति) से विमुख बने हुए धूर्त लोगों को पूरी तरह पकड़कर बाँधकर लाओ। १८६ [सी.] हे दूत! मज़ाक में भी इंदिरारमण (विष्णु) का नाम न ले सकनेवाले दुर्भाषितों को, स्वप्न में भी श्रीकान्त के सत्पाद कमलों को न देखनेवाले कर्म में लीन लोगों को, हँसते हुए भी कृष्ण-प्रशंसा को कान के निकट न ला सकनेवाले दुष्कथा-प्रवणों (-लीन रहनेवालों) को यात्रा के उत्सव में भी ईश के मंदिर के मार्ग पर पैर न रख सकनेवाले दुष्पदों को (बुरे चरण वालों को); [ते.] परम भागवतों की पादधूलि (चरण-रज) को समस्त तीर्थों का सार कहकर न जान सकनेवालों को और उनके लोगों को और उनके सांगत्य में रहनेवालों को प्रथमतः बाँधकर लाओ। १८७ [ते.] हे दूत ! समस्त पापों के लिए निलय (आवास) बने गृह में बद्ध तृष्णा वाले

ते. अरय दनडु जिह्व हरि पेरु नुडुवदु
चित्तमतनि पाद चिंत जनदु
तलप दमकु मुक्ति तंगेटि जुन्नौको ?
सकल विष्णुभक्तुलकुनु बोलॆ ॥ 189 ॥

आ. पद्मनयनुमीदि भक्तियोगंबॆल्ल, मुक्तियोगमनुचु मॊदलॆरुंगु
वारि वारिवारि वारि जेरिनवारि, त्रोव बोववलदु दूतलार ! ॥ 190 ॥

व. अनि पलिकॆ ननि चॆप्पि मरियु शुकुंडिट्लनियॆ। श्रीकृष्णनाम संकीर्तनंबु जगन्मंगळंबनियुनु, जगन्मोहनंबनियुनु, जगज्जेगीयमानंबनियुनु, निखिल मायागुण विच्छेदकंबनियुनु, उद्दामंबुलगु हरि वीर्यंबुल नाकर्णिचुवारल चित्तंबु लतिनिर्मलंबुलगु भंगि दक्किन व्रताचरणंबुलं गावनियु, श्रीकृष्ण पदपद्मंबुलु हृत्पद्मंबुल निलुपुवारलन्य पाप कर्मंबुलगु नविद्याव्यसनंबुलं बॊरयनेररनियुनु, निज स्वामियैन यमधर्मराजु चेत गीतिपबडु भगवन्महत्त्वंबु नाकर्णिचि, विस्मितुलै कालकिंकरुलु नाटनुंडियु वैष्णव-जनंबुलं देरिचूड वॆरतुरु। नरेंद्रा ! परमगुह्यंबगु नी यितिहासंबुनु बूर्वकालंबुन सकल विज्ञान गोचरुंडैन कुंभसंभवुंडु सकल दुःख विलयंबुनु,

---

(तृष्णा के कारण आबद्ध होनेवाले), बुद्धि से परमहंस के कुल के विपरीत आचरण करनेवाले धूर्त जनों को लाओ। १८८ [ते.] सोचने पर अपनी जिह्वा हरि का नाम नहीं लेती, चित्त उसकी पद-चिन्ता में लग्न नहीं होता। [ऐसे लोगों के लिए] सकल विष्णु-भक्तों के समान सोचने पर इनके लिए मुक्ति क्या सुलभ साध्य है ? (नहीं है)। १८९ [आ.] हे दूत! पद्मनयन (विष्णु) के प्रति समस्त भक्ति-योग को प्रथमतः मुक्तियोग मान कर जानो। [ऐसे भक्तियोग से युक्त] जनों एवं उनके लोगों और उनके सांगत्य में रहनेवालों की तरफ़ मत जाओ। १९० [व.] ऐसा [यमधर्मराज ने] कहा। यों कहकर शुक ने और यों कहा। श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन जगत के लिए मंगलप्रद है और जगन्मोहन रूपवाला है और जगत से जेगीयमान है और निखिल मायागुणों का विच्छेदन करनेवाला है। उद्यम बने हरि के वीर्यों (वीर कार्यों) का आकर्णन करनेवालों के चित्त जिस प्रकार अति निर्मल होते हैं, उस प्रकार अन्य व्रताचरणों से नहीं होते और जो श्रीकृष्ण के पदपद्मों को (अपने) हृत्-पद्मों में (हृदय-कमलों में) सुस्थापित करते हैं, उन्हें अन्य पापकर्म रूपी अविद्या-व्यसन आसक्त नहीं करते हैं। [इस प्रकार] अपने स्वामी यमधर्मराज से कीर्तित (प्रशंसित) भगवान के महत्त्व को सुनकर, विस्मित होकर, उस दिन से काल-किंकर वैष्णव जनों की ओर निहार कर देखने से डरते हैं। हे नरेंद्र ! अति गोपनीय इस इतिहास को पूर्वकाल में सकल विज्ञान को देख सकनेवाले कुंभ-संभव ने सकल दुःखों का विलय

सकल पुण्य निलयंबुनुनैन मलयंबुन बुराण पुरुषुंडैन पुरुषोत्तमु नाराधनंबु सेयुचुंडि ना कॅरिगिचॅनु ॥ 191 ॥

## अध्यायमु—४

व. अनि चॅप्पिन विनि विस्मयानंद हृदयुंडै परीक्षिज्जनपालुंडिट्लनियॅ ॥192॥

कं. स्वायंभुव मनुवेळल, नो यय्य ! सुरासुरांडजोरग नर व-
र्गायत सर्गमु दॅलिपिति, पायक यदि विस्तरिंचि पलुकं गदवे ! ॥ 193 ॥

कं. उत्तर कॊडुकिट्लडिगिन, युत्तरमुनु नम्मुनींद्रुडुत्तम चेतो-
वृत्ति मुदमंदि पलिकॅनु, दत्तरपाटुडिगि विनुडु तापसुलारा ! ॥ 194 ॥

सी. पूनि प्रचेतसुपुत्रुलु पदुगुरु प्राचीन बर्हिष प्राख्य गलुगु
वारु महांबोधि वलन वॅल्वडि वच्चि तग वृक्षवृतमैन धरणि जूचि
मेदिनीजमुलपै मिक्किलि कोपिंचि मदिलोन दीपित मन्युलगुचु
वक्त्रंबुलनु महावायु संयुतमै यनलंबु गल्पिंचि यवनिजमुल

ते. बॅल्लुवड गालप दॊडगिन दल्लडिल्लि
वारि कोपंबु वारिंचुवाड पोलॅ

---

(नाश) करनेवाले और सकल पुण्यों के निलय बने मलय [पर्वत] पर पुराण-पुरुष पुरुषोत्तम की आराधना करते समय मुझे बताया । १९१

## अध्याय—४

[व.] ऐसा कहने पर सुनकर विस्मय और आनन्द से पूर्ण हृदयवाला बनकर परीक्षित-जनपाल ने यों कहा— १९२ [कं.] हे तात् ! स्वायंभुव मनु के समय में सुर, असुर, अण्डज, उरग, नर वर्गों के आयत (विस्तृत) सर्ग (सृष्टि) के बारे में बताया था। [कुछ] न छोड़कर (सब कुछ) उस [सर्ग] का विस्तार से वर्णन करो न । १९३ [कं.] उत्तरा के पुत्र के इस प्रकार पूछने पर उस मुनीन्द्र ने उत्तम चेतोवृत्ति से मुदित होकर खलबली को छोड़कर (शान्त चित्तवाला बनकर) उत्तर दिया। हे तपस्वियो ! सुनो । १९४ [सी.] प्रचेतस के दस पुत्र जो प्राचीन बर्हिष-प्राख्य (-विशिष्ट अभिधेय) से युक्त हैं, सप्रयत्न महा-अंबोधि से बाहर निकलकर, समुचित रूप से वृक्षों से आवृत धरणी को देखकर, मेदिनीजों (वृक्षों) पर [ते.] अधिक क्रुद्ध होकर मन में दीप्तमन्य वाले होते हुए वक्त्रों से महावायु से संयुत अनल की कल्पना (सृष्टि) कर अवनीजों (वृक्षों) को अधिक भीषणता से जलाने लगे । तब व्यथित होकर उनके क्रोध का

वलिकॆ जंद्रुडो महा भागुलार !
दीनमुलु वृक्षमुलमीद दॆगुट तगुने ? ॥ 195 ॥

ते. मॊदल वर्धिष्णुलगु मिम्मु सदय हृदयु-
लगु प्रजापतु लनुचु सर्वात्मुडनियॆ
नट्टि मीरु प्रजासृष्टिकॆन वार-
ली वनस्पतिततुल दहिंप दगुने ? ॥ 196 ॥

सी. आदि कालंबुन ना प्रजापति पति ययिन लोकेश्वरुंडच्युतुंडु
पद्मनेत्रुडु वनस्पतुल नोषधिमुख्यजातंबु निषमु नूर्जंबु गोरि
कल्पिंचॆ नंदु मुख्यंबॆन यन्नंबु नचरंबुलॆनट्टि यपद मॆल्ल
वादचारुलकुनु वाल्वॆट्टि यिरुगाळ्ळु चेतुलु गलिगिन जीवततिकि

ते. हस्तमुलु लेनि या चतुष्पादु लॆल्ल
नन्नमुग बूनि काविंचॆ नदियु गाक
ना महाभागु डच्युतु डादरमुन
मीकु ननघाख्य विख्याति जोक पट्टिंचॆ ॥ 197 ॥

कं. निजमुग देवाधीश्वरु, डजुडु प्रजा सर्गमुनकु ननघुल मिम्मुन्
सृजियिंचॆ निट्टिवारिकि, गुणदहनमु सेय नॆट्लु कोरिक वोडमॆन् ॥198॥

चं सतत महत्त्व सत्त्वगुण सत्पुरुष स्मृति बॊदरय्य ! मी-
पितरुलुनुं बितामहुलु वॆट्लु नॊन्नडु बॊदनट्टि दु-

निवारण करनेवाले के समान चंद्र ने [यों] कहा । हे महाभागो ! दीन वने वृक्षों पर क्रोध करना उचित है ? (नहीं है) १९५ [ते.] पूर्व में वर्धिष्णु तुमसे सर्वात्मा (परमेश्वर) ने कहा कि सदय हृदयवाले प्रजापति वनो । ऐसे आपको, जो प्रजा सृष्टि के लिए योग्य है वनस्पति-ततियों को जलाना उचित है ? (नहीं है) १९६ [सी.] आदिकाल में उस प्रजापति के पति (अधीश्वर) लोकेश्वर, अच्युत, पद्मनेत्र वाले ने चाहकर वनस्पतियों, ओषधि आदियों की, इष (अन्न), ऊर्ज (भक्ष्य) के रूप में सृष्टि की । उसमें मुख्य अन्न को अचर (जड़) वने समस्त प्राणियों को और पाद-चारियों के भाग में देकर, दो पैर और हाथों से युक्त जीवतति के लिए हस्त-हीन समस्त चतुष्पादियों को अन्न के रूप में सप्रयत्न वनाया । [ते.] इसके अतिरिक्त उस महाभाग अच्युत ने आदर से आपको अनघाख्य (निष्पाप) विख्याति से युक्त वनाया । १९७ [कं.] सचमुच देवाधीश्वर अज (ब्रह्मा) ने प्रजासर्ग (प्रजा की सृष्टि) के लिए अनघ आप लोगों की सृष्टि की । ऐसे [उत्तम] जनों को कुज (वृक्ष)-दहन करने की इच्छा कैसे उत्पन्न हुई ? १९८ [चं.] हे तात् ! सतत महत्त्व सत्त्वगुण से युक्त सत्पुरुषों की स्मृति (स्मरण) कीजिए । आपके पितर और पितामह

ष्कृतमतमैन कोपमुन गिल्बिष भावमु माननय्य ! सं-
भृत करुणावलोकमुन भीत तरु प्रकरंबु जूचुचुन् ॥ 199 ॥

उ. तप्पक यर्भकावळिकि दल्लियु दंड्रियु, नेत्रपंक्तिकिन्
ऱेप्पलु, नातिकि बति, नरेंद्रुडु लोकुल कॆल्ल, नर्थिकिन्
मॆप्प गृहस्थु, मूढुलकु नुत्तमु, लॆन्नग वीर बंधुवुल्
मुप्पुन गावलेनि कडु मूर्खुलु गारु निजाल बंधुवुल् ॥ 200 ॥

सी. अखिल भूतमुल देहांतस्थमगु नात्मयीशु डच्युतुडनि यॆरुग वलयु
नॆरिगि सर्वंबन यिंदिरारमणु लोचूपुन दनिविगा जूडवलयु
जूचिन चिद्रूप शुद्धात्मुलगु मिम्मु नॆनसिन वेड्कतो निच्च मॆच्चु
मॆच्चिन सर्वात्मु मीरॆरिगिनचोट गोप गुणंबुल बाप वलयु

आ. बापि दग्धशेष पादपजालंबु, दिय्य मॆसग ब्रतुकनीय वलयु
ननघुलार ! मीर लस्मदीय प्रार्थ, -नंबु परग जेकॊनंग वलयु ॥ 201 ॥

कं. इदॆ वृक्षसमुद्भव यगु, मदिरेक्षण नाप्सरसि गुमारिक नित्तुन्
वदलक बतिनग जेकॊनि, मुद मंदुडु पादमुल मोसमु वायन् ॥ 202 ॥

---

[आदि] गुरुजनों को भी कभी प्राप्त न हुए दुष्कृत मत वाले क्रोध से उत्पन्न किल्बिष (नीच) भाव को, संभृत (सांद्र) करुणावलोकन (कृपादृष्टि) से भीत बने तरु-प्रतरु को देखते हुए, छोड़ दीजिए न। १९९ [उ.] अर्भक (वालक) अवली (समूह) के लिए माता-पिता और नेत्रपंक्ति के लिए पलकें, स्त्री के लिए पति, समस्त लोगों के लिए नरेंद्र, अर्थी (याचक) के लिए शोभा से गृहस्थ और मूढ़ जनों के लिए उत्तम —ये अवश्य ही सम्बन्धी (रिश्तेदार) हैं। आफ़त में बचा न सकनेवाले अधिक मूर्ख-जन अपने सम्बन्धी नहीं हो सकते। २०० [सी.] अखिल भूतों की देह में स्थित आत्मा को ईश और अच्युत समझना चाहिए। [ऐसा] जानकर समस्त बने हुए (सर्वांतर्यामी) इन्दिरारमण (विष्णु) को अंतर्दृष्टि से संतृप्ति के साथ (जी भरकर) देखना चाहिए। [ऐसा] देखने पर चिद्रूप से शुद्धात्मा वाले बने हुए आपकी अधिक उत्साह से मन में प्रशंसा करेगा। [ऐसा] प्रशंसा [पसंद] करनेवाले सर्वात्मा को जहाँ आप जानते है वहाँ कोप गुणों को दूर करना चाहिए। [आ.] [कोप गुणों को] दूर कर दग्ध-शेष (जलने से बचे हुए) पादपजाल (वृक्षसमूह) को सुख से जीने देना चाहिए। हे अनघ! आपको मेरी प्रार्थना को समुचित ढंग से स्वीकारना चाहिए। २०१ [कं.] यही वृक्ष समुद्भवा होनेवाली मदिरेक्षणा (मस्त आँखों वाली) आप्सरसी [मेरी] कुमारिका (पुत्री) को देता हूँ। न छोड़कर [उसे] पत्नी के रूप में स्वीकार कर, चरणों की प्रवंचना दूर हो जाय (घूमना टल जाय) ऐसा मोद को प्राप्त कीजिए। २०२

व. अनि यिट्लामंत्रणंबु सेसि, मारिषयनु कन्यकनु वारल किच्चि चंद्रुंडु सनियॆं। अप्पुडु ॥ 203 ॥

कं. वारलु पर्यायंबुन, नीरेजमुखिन् वरिंचि नॆऱि रमियिंपन्
धीरुडु प्राचेतसुडै, वारक दक्षुंडु पुट्टॆ वनजज समुडै ॥ 204 ॥

कं. एव्वनि संतानंबुलु, निव्वटिलॆन् वसुध नॆल्ल नॆऱिना दक्षुं
डिव्वलन जगमु लन्निट, व्रव्व जलमु निलिपि नट्लु प्रज बुट्टिचॆन् ॥205॥

उ. वारनि वेड्कतो दुहितृवत्सल दक्षुडु दक्षुडात्मचे
गोरि सृजिचॆं गॊन्निटि नकुंठित वीर्यमुचेत गॊन्निटि
भोरुन खेचरंबुलनु भूचरमुख्य वनेचरंबुल-
न्नीरचरव्रजंबु रजनीचरजाल दिवाचरंबुलन् ॥ 206 ॥

कं. नर सुर गरुडोरग कि,-न्नर दानव यक्ष पक्षि नग वृक्षमुलं
दरमिडि सृष्टि यॊनर्चॆनु, दिरमुग दक्षप्रजापति वितत कीर्तिन् ॥ 207 ॥

कं. बहु विधमुल बहुमुखमुल, बहु रूपमुलैन प्रजल बहु लोकमुलन्
बहुळमुग जेसि मदिलो, बहुमानमु नॊंदडय्यॆ ब्रख्यातमुगन् ॥ 208 ॥

ते. अप्रजा सर्ग बृंहितंबैन जगमु
दक्षुडीक्षिचि मदिलोन दाप मॊंदि

---

[व.] [ऐसा] कहकर इस प्रकार आमंत्रण कर, मारिषा नामक कन्यका को उन्हें देकर चंद्र चला गया। तब २०३ [कं.] वे पर्याय से (वारी-वारी से) नीरेजमुखी (चंद्रमुखी) का वरण कर क्रम से रमण (संभोग) करने पर धीर, दक्ष, प्राचेतस होकर वनज-ज (ब्रह्मा) के समान होकर दक्ष पैदा हुआ। २०४ [कं.] जिसकी संतानों से समस्त वसुधा परिव्याप्त हुई, उस दक्ष ने क्रम से समस्त जगों में जल को स्थापित करने के समान प्रजा को उत्पन्न किया। २०५ [उ.] अनिवार्य उत्साह से दुहितृ-वत्सल (पुत्रियों पर वत्सल भाव रखने में) दक्ष (समर्थ) दक्ष ने आत्मा से चाहकर कुछ का सृजन किया। अकुंठित वीर्य से झट कुछ खेचरों को भूचर आदि वनेचरों को, नीरचरव्रज (समूह) को, रजनीचर-जाल को, दिवाचरों को उत्पन्न किया। २०६ [कं.] स्थिरता से दक्ष प्रजापति ने वितत कीर्ति से क्रम से नर-सुर-गरुड़-उरग-किन्नर-दानव-यक्ष-पक्षी-नग-वृक्षों की सृष्टि की, २०७ [कं.] बहु विधियों से, बहुमुखों से, बहु रूपों वाले प्रजाओं से युक्त बहु लोकों की बहुलता से सृष्टि करके मन में प्रख्यात् रूप से बहु-मानित (अधिक सम्मानित) नहीं हुआ। २०८ [ते.] उस प्रजा सर्ग से बृंहित (परिव्याप्त) जग को देखकर दक्ष ने मन में परितप्त होकर, और अधिक जनन करने के अभिमत से घृणा कर, परमपुरुष का आश्रय लेना

मरियु जननंबु नींदिचु मतमु रोसि
परमपुरुषुनि नाश्रयिपंग दलचें ॥ 209 ॥

व. इट्लु दक्षप्रजापति प्रजा सर्गबु चालक चिंतिचि मंतनंबुन लक्ष्मीकांतुनि संतुष्टुं जेयुवाडै ॥ 210 ॥

कं. मोदंबै परिदूषित, खेदंबै शाबरीद्ध किलिकिंचित दृ-
ग्भेदंबै बहु सौख्या, -पादंबै योप्पु विंध्य पावंबुनकुन् ॥ 211 ॥

व. अरिगि, यंदघमर्षणंबनु तीर्थंबु सर्व दुरितहरंबै योप्पुदानि ननुसवनंबु सेविंचि, यति घोरंबैन तपंबु सेयुचु हरिं ब्रसन्नुंजेसि, हंसगुह्यंबनु स्तवराजंबुन निट्लनि स्तुतियिचें ॥ 212 ॥

दक्षुडु कांविचिन हंस गुह्यंबनु स्तवराजमु

ते. परमुनिकि वंदनमु सेतु बरिढविंचि
मुन्नवितधानुभूतिकि म्रोक्कि कोंडु
मेरयु गुणमुल वेलु निमित्तमात्र
बंधुडैनट्टि वानिकि ब्रणुति सेतु ॥ 213 ॥

आ. तविलि गुणमुचेत दत्त्वबुद्धुलचेत, निगिडि कानरानि नेलवु वानि
मोदल दान गलिगि मुक्ति मानावधि, रूपमैन वानि प्रापु गोंदु ॥214॥

---

चाहा। २०९ [व.] इस प्रकार दक्ष प्रजापति ने प्रजा-सृष्टि के कारण चिंतित होकर चिन्तन (तपस्या) से लक्ष्मीकान्त को संतुष्ट करना चाहकर, २१० [कं.] मोद प्रदान करनेवाला, परिदूषित खेदवाला (खेद को दूर करनेवाला), शाबरीद्ध किलिकिंचित दृग्भेद वाला बनकर बहु सौख्यों का आपाद (निलय) होकर शोभा देनेवाले विंध्य पर्वत को २११ [व.] जाकर, वहाँ सर्वदुरितहर (सब पापों को दूर करनेवाला) होकर शोभा देनेवाले अघमर्षण नामक तीर्थ की सेवा कर, अति घोर तपस्या करते हुए हरि को प्रसन्न कर, हंसगुह्य नामक स्तवराज से इस प्रकार स्तुति की। २१२

दक्षकृत हंसगुह्य नामक स्तवराज

[ते.] परम [पुरुष] की वन्दना करता हूँ। अवितधान की भूति को प्रणाम करूँगा। प्रकाशित गुणों से परिपूर्ण निमित्त मात्र से बन्धु बने हुए उस (विष्णु) की प्रणति करता हूँ। २१३ [आ.] लगकर गुणों के द्वारा, तत्त्व बुद्धियों के द्वारा दिखाई न पड़नेवाले निलय वाले को, सर्व प्रथम स्वय उत्पन्न होकर मुक्ति के लिए पराकाष्ठा रूप बने हुए उसकी शरण ग्रहण करूँगा। २१४ [ते.] समस्त शरीरों में स्थित होकर अपने

ते. ॲल्ल तनुवुलंदु निरवॊंदि तनलोड, बॊंदु सेसिनट्टि पॊंदुकानि
पॊंदुवॊंद लेडु पुरुषुंडु गुणमु दा, गुणिनि वोलॆं नट्टि गुणि भजिंतु ॥215॥

उ. पूनि मनंबुलुं तनुवु भूतमुलुन् मरियिंद्रियंबुलुन्
प्राणमुलुन् विवेक गति वायक यन्यमु दम्मु नॆम्मॆयि
गानगनेर वा गुणुनि कायमुलं वरिकिंचु नट्टि स-
र्वानुगतुन् समस्तहितु नादिमपूरुषु नाश्रयिंचॆदन् ॥ 216 ॥

व. मरियु बहुविध नाम रूप निरूप्यंबगु मनंबुनकु दृष्टस्मृतुल नाशंबु वलन गलिगॆडु नुपरामंबगु समाधियंदु गेवल ज्ञान स्वरूपंबुन दोचु निर्मल प्रतीति-स्थानंबैन हंस स्वरूपिकि नमस्करिंतु। दारुवंदु नति गूढंबैन वीति-होत्रुनि बुद्धिचेतं बकाशंबु नॊंदिंचु भंगि, बुद्धिमंतुलु हृदंतरंबुन सन्निवेशुंडैन परमपुरुषुनि नात्मशक्तित्रयंबुल चेतं देजरिल्लं जेयुदुरु। अट्टि देवुंडु, सकल माया विच्छेदकंबैन निर्वाण सुखानुभवंबुलं गूडि युच्चरिपंगोलदि गानि शक्तिगल विश्वरूपि नाकुं बसन्नुंडगुंगाक। वाग्बुद्धींद्रिय मानसं-बुलचेतं जॆप्पनु, निट्टिदनि निरूपिंपनु, नलवि गाक ॲव्वनि गुणरूपंबुलु वर्तिंचु, नॆव्वडु निर्गुणुंडु, सर्वंबु नॆव्वनि वलन नुत्पन्नंबगु, नॆव्वनि वलन स्थिति बॊंदु, नॆव्वनि वलन लयंबगु, नट्टि परापरंबुलकुं बरमंबै,

---

से संगति करनेवाले संगी के संग को पुरुष इस प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता जैसे गुण गुणी को प्राप्त नही करता। ऐसे गुणी का भजन करता हूँ। २१५ [उ.] सप्रयत्न मन, तन, भूत और इन्द्रिय, प्राण-विवेक की गति से अनवरत अन्य को स्वयं जिस प्रकार देख नही सकते उन गुण निकायों को देखनेवाले उस सर्वानुगति वाले का, समस्त हितू का, आदिम पुरुष का, आश्रय लेता हूँ। २१६ [व.] और बहुविधि नाम और रूप से निरूपित होनेवाले मन के लिए दृष्ट स्मृतियो के नाश से उपलब्ध होनेवाले उपराम नामक समाधि में केवल ज्ञानस्वरूप होकर प्रतीत होनेवाले निर्मल प्रतीति के लिए स्थान-रूप, हंसस्वरूप वाले को नमस्कार करता हूँ। दारु में (काठ मे) अति गूढ़ रूप से स्थित वीतिहोत्र (अग्नि) को बुद्धि से प्रकाशित करने के समान बुद्धिमान [अपने] हृदन्तर में सन्निविष्ट (स्थित) परमपुरुष को आत्मशक्ति-त्रय से प्रकाशित करते हैं। ऐसा देव, सकल माया के विच्छेदक निर्वाण के सुखानुभव से युक्त होकर वर्णनातीत शक्ति से युक्त विश्व रूपवाला मेरे प्रति प्रसन्न हो। जिसके गुण और रूप वाक् बुद्धि-इन्द्रिय-मानस से वर्णन करने अथवा ऐसा है कहकर निरूपित करने के लिए अशक्य होकर रहते हैं, (जिसके गुण-रूपों का वर्णन अथवा निरूपण नहीं हो सकता), जो निर्गुण है, जिससे सर्व (सब कुछ) उत्पन्न होता है, जिससे [सब कुछ] स्थिति को प्राप्त करता है, जिससे [सब कुछ] लय

यनन्यंबै सर्वव्यापकंबै यदिय ब्रह्मंबै, यादि कारणंबै युन्न तत्त्वंबु नाश्रयिंतु। ऎव्वनि प्रभावंबु माटलाडेडु वारलकु, वाबंबु सेयुवारलकु विवादस्थलंबगुचु, नप्पटप्पटिकि मोहंबु नॊंदिपुचुंडु, नट्टि यनंतगुणंबुलु गल महात्मुनकुं बणामंबु सेयुचु, नस्तिनास्ति यनु वस्तुद्वय निष्ठलं गलिगि, यॊक्कटन गलिगि युंडि, विरुद्ध धर्मंबुलग नुपासना शास्त्र सांख्य शास्त्रंबुलकु समंबै, वीक्षिपदगिन परमंबु नाकु ननुकूलंबगुंगाक। ऎव्वडु नामरूपंबुलु लेकुंडियु, जगदनुग्रहंबु कॊरकु जन्म कर्मंबुलचेत नाम रूपंबुलु गलिग तेजरिल्लु, नट्टि यनंतुंडैन भगवंतुंडु सुप्रसन्नुंडगुगाक। ऎव्वडु जनुल पुराकृत ज्ञान पदंबुचेत नंतर्गतुंडै, मेदिनि गलगु गंधादि गुणंबुल नाश्रयिंचिन वायुवु भंगि मॆलंगुचुंडु ना परमेश्वरुंडु मदीय मनोरथंबु सफलंबु सेयुंगाक। अनुचु भक्ति परवशुंडै युक्ति विशेषंबुन स्तुतियिंपुचुन्न दक्षुनिकि भक्तवत्सलुंडैन श्रीवत्सलांछनुंडु प्रादुर्भावंबु नॊंदि प्रत्यक्षंबय्यॆ। अंत ॥ 217 ॥

सी. भर्माचलेंद्र प्रपातद्वयंबुन गलिगिन नीलंपु गनुलनंग
मॊनसि ताक्ष्र्युनि यिरुमूपुपै निडिनट्टि पदमुल कांतुलु परिढविप

होता है, ऐसे परापरों के लिए परम होकर अनन्य होकर, सर्वव्यापक होकर केवल ब्रह्म होकर, आदिकारण होकर स्थित तत्त्व का आश्रय लेता हूँ। जिसके प्रभाव से बोलने (वर्णन करने) वालों के लिए और वाद [विवाद] करनेवालों के लिए विवाद का कारण होते हुए, जब-तब (सर्वदा) मोह को उत्पन्न करनेवाले, और ऐसे अनन्त गुणों से युक्त महात्मा को प्रणाम करता हूँ। अस्ति-नास्ति नामक वस्तुद्वय की निष्ठा रखकर, एक (अद्वैत) भाव से युक्त होकर, विरुद्ध धर्मों से युक्त उपासना-शास्त्र और सांख्य-शास्त्रों के लिए सम (सम रूपी) होकर, दर्शनीय परम [तत्त्व] मेरे प्रति अनुकूल बने। जो नाम रूपों से विहीन होकर भी जगत् पर अनुग्रह के कारण जन्मकर्मों से, नाम रूपों से युक्त होकर तेजोमान होता है, ऐसा अनन्त भगवान [मेरे प्रति] सुप्रसन्न बने। जो जनों के पुराकृत ज्ञान पद से अंतर्गत होकर मेदिनी (पृथ्वी) पर होनेवाले गंध आदि गुणों का आश्रय लेनेवाले वायु के समान प्रवर्तित होता रहता है, ऐसा परमेश्वर मदीय (मेरे) मनोरथ को सफल बनावें। ऐसा कहते हुए भक्ति-परवश होकर उक्ति-विशेष (अनेक प्रकार के वचनों) से स्तुति करनेवाले दक्ष के समक्ष भक्तवत्सल और श्रीवत्सलांछन वाला (विष्णु) प्रादुर्भाव लेकर (अवतरित होकर) प्रत्यक्ष हुआ। तब २१७

[सी.] ताक्ष्र्य (गरुड़) के दोनों स्कंधों पर रखे हुए चरणों की कांतियाँ इस तरह परिव्याप्त हो रही थीं कि मानो वे भर्माचलेंद्र (सुवर्ण पर्वतराज) के प्रपात-

जंड दिङ्मंडल शुंडाल करमुल कॅवडि नॅनिमिदि करमु लमर
जक्र कोदंडासि शंख नंदक पाशचर्म गदादुल सरवि बूनि
ते. नल्ल मेनु मॅड़य नगुमोगं बलरंग
जल्ल चूपु विबुध समिति ब्रोव
बसिडि कासॅ बूनि बहु भूषण किरीट
कुंडलमुल कांति मॅंडु कॉनग ॥ 218 ॥।
सी. कुंडल मणिदीप्ति गंडस्थलंबुल बूर्णेंदुरागंबु बॉंदुपरुप
दिव्य किरीट प्रदीप्तुलंबर रमासतिकि गोसुंभ वस्त्रंबु गाग
वक्षस्स्थलंबु पॅ वनमाल मालिकल् श्रीवत्स कौस्तुभ श्रील नॊड़य
नीलाद्रि बॅनगॊनि निलिचिनि विद्युल्लतलभाति गनकांगदमुलु मॅड़य
ते. नखिललोक मोहनाकार युक्तुडॅ
नारदादि मुनुलु चेरि पॉगड
गदिसि मुनुलु पॉगड गंधर्व किन्नर
सिद्ध गानरवमु सॅवुल नलर ॥ 219 ॥
कं. सर्वेशुडु सर्वात्मुडु, सर्वगतुंडच्युतुंडु सर्वमयुंडै
सर्वंबु चेरि गॊलुवग, सर्वदुडै दक्षुनकु प्रसन्नुंडय्यॅन् ॥ 220 ॥

द्दय से उत्पन्न नीलमणि की निधियाँ हों, आठों कर चण्ड-दिङ्मण्डल के शुण्डालों (दिग्गजों) के सूण्डों के समान, चक्र, कोदण्ड, असि, शंख, नन्दक, पाश, चर्म, गदा आदियों को क्रम से धारण कर शोभायमान हुए। [ते.] साँवले शरीर के और प्रसन्न मुख के शोभायमान होने पर शीतल चितवन के विबुध समिति की रक्षा करने पर सोने के कच्छ को धारण कर बहुभूषण (आभरण) किरीट, कुण्डलों की कांति के परिव्याप्त होने पर, २१८ [सी.] कुण्डलों की मणि-दीप्तियों के गण्डस्थलों (गालों) पर पूर्णेंदु (पूर्णचन्द्र) की कांति को शोभित करने पर दिव्य किरीट की प्रदीप्तियाँ अंबर-रमासति के लिए कौसुंभ वस्त्र के समान होने पर, वक्षस्थल पर वनमाला की मालिकाओं के श्रीवत्स और कौस्तुभ की शोभा से युक्त होने पर, कनक अंगदों (आभरणों) के नीलाद्रि को घेरकर स्थित विद्युल्लताओं के समान प्रकाशित होने पर, [ते.] अखिल लोक को मोहित करनेवाले आकार से युक्त होकर, नारद आदि मुनियों को घेरकर प्रशंसा करने पर, निकट आकर मुनियों के प्रशंसा करने पर, गंधर्व-किन्नर-सिद्धों के गान का रव कानों को प्रिय लगने पर। २१९ [कं.] [इस प्रकार] सर्वेश, सर्वात्मक, सर्वगत, अच्युत, सर्वमय होकर सर्व (समस्त सृष्टि) के घेरकर सेवाएँ करने पर, सर्वद (सब कुछ देनेवाले) होकर दक्ष के प्रति प्रसन्न हुआ (दिखाई पड़ा)। २२० [व.] इस प्रकार प्रसन्न बने सर्वेश्वर के सर्वंकश और

व. इट्लु प्रसन्नुंडैन सर्वेश्वरुनि सर्वैकपवं महादाश्चर्यधुर्यंबै तेजरिल्लु दिव्यरूपंबु गांचि, भयंबुनु, हर्षंबुनु, विस्मयंबुनु जित्तंबुन मुप्पिरिगॊनि चॊप्पु दप्पि दॆप्पिरि, कप्परपाटुन बुडमिपै निडु साগिलंबडि, दंडप्रणामंबु लाचरिंचि, करकमलंबुलु मोगिड्चि, सॆलयेरुलतो गॊट्टुवडि, यिट्टट्टु पट्टु चालक निट्ट वॊडिचि, मुन्नीरु दन्नि निलिचिन पॆन्नोरुनुंबोलॆ, सर्वांगंबुलुं दॊंगलिप, जित्तंबु नात्मायत्तंबु सेसि, पिक्कटिल्लिन संतोषंबुचेत भगवंतुं बलुकनु, नत्यंत मंगळ संदोहापादकंबुलैन तन्नामंबु लुग्गडिपनु, नति निर्मलंबुलैन तदीय कर्मंबुलु वडवनु, विबुध हर्ष करंबुलैन तत्पौरुषंबुलु पोगडनु, नात्मीय मनोरथंबु वाक्रुव्वनु नोपक प्रजा कामुंडै यूरकुन्न प्रजापति जूचि, सर्वजीव दयापरुंडुनु, सर्वसत्त्व हृदंतरस्थुंडुनु, सर्वज्ञुंडुनुं गावुन नतनि भावंबु दॆलिसि, जगन्नाथुंडार्तपोषणंबुल भाषणंबुल निट्लनियॆ ॥ 221 ॥

कं. मॆच्चिचति प्राचेतस ! तप-
मिच्चट फल सिद्धि यय्यॆ निट्लति भक्तिन्
हॆच्चगु मद्वरविभवमु
नच्चुपडंबोंद नॆव्व डर्हुंडु ? जगतिन् ॥ 222 ॥

महत् आश्चर्य का मूल कारण बने तेजोयमान दिव्य रूप को देखकर, भय और हर्ष और विस्मय के चित्त में एकीभूत होकर विचलित करने पर मूर्च्छित होकर आश्चर्य से पृथ्वी पर औंधे लेटकर, दण्डप्रणाम कर, कर-कमलों से अंजलि भरकर, झरनों से आहत होकर, इधर-उधर आधार-रहित होकर ऊपर उठकर, आकाशगंगा से टकराकर खड़ी महावाहिनी (-नदी) के समान, सर्वांगों के पुलकित होने पर चित्त को आत्मायत्त कर उमड़ते आनन्द से भगवान से बात करने, और अत्यन्त मंगल-संदोह के आपादक उसके नामों का उच्चारण करने और अतिनिर्मल उसके कर्मों का वर्णन करने और विबुधों के लिए हर्षकर उसके पौरुषों (साहसपूर्ण कार्यों) की प्रशंसा करने और आत्मीय (अपने) मनोरथ को व्यक्त करने में असमर्थ होकर, प्रजाकामी (संतानापेक्षी) बनकर चुप बने हुए प्रजापति को देखकर सर्वजीवदयापर, सर्वसत्त्वहृदन्तरस्थ और सर्वज्ञ होने के कारण उसके (दक्ष के) भाव को जानकर, जगन्नाथ (विष्णु) ने आर्त्त पोषण करनेवाले भाषणों (वचनों) से यों कहा २२१ [कं.] हे प्राचेतस्! [तुम्हारी] तपस्या से प्रसन्न हुआ। यहाँ फलसिद्धि हुई। इस प्रकार अति भक्ति के द्वारा अत्यधिक मेरे वरों के विभव को स्पष्टता से प्राप्त करने के लिए जगत में कौन अर्ह है ? (तुम्हीं उसके लिए योग्य हो) २२२ [ते.] अब तपस्या [करना] पर्याप्त है। उचित ढंग से भूततति के लिए

ते. तपमु चालुनिक दग भूत ततिकि वि-
भूतु लॉनरु गाक पॉंदु पडग
निदिय सुम्मु माकु निच्चलो गल कोर्कॅ
पॉसग नीदु वलन बॉंदु पडियॅ ॥ 223 ॥

व. विनुमु। ब्रह्मयु, भर्गुंडुनु प्रजापतुलुनु मनुवुलुनु, निंद्रुलुनु, वीरलु निखिल भूतंबुलकु भूति हेतुवुलैन मद्भूति विभवंबुलु। मरियु नाकु यम नियमादि सहित संध्या वंदनादि रूपंबगु तपंबु हृदयंबु। सांग जपवद्ध्यान रूपंबगु विद्य शरीरंबु। ध्यानादि विषय पुंव्यापारंबुगा नुंडु भावनादि शब्द वाच्यंबगु क्रिय याकृति। क्रतु जातंबु लंगंबुलु। धर्मंवात्म। देवतलु प्राणंबुलु। निगमंबु मत्स्वरूपंबु। जगदुत्पत्तिकि नादि्यंदु नेनॉक्कंडन तेजरिल्लु चुंटि। बहिरंतरंबुल वेरॉक्कटियु लेदु। सुषुप्त्यवस्थयंदु सर्वंबु लीनं बगुटं जेसि संज्ञानमात्रुंडुनु, नव्यक्तुंडुनुगा नुंडु जीवुनि भंगि नॉक्कडन युंडदु। अनंतुंडनयि यनंत गुणंबु वलन गुण दिग्रहंबगु ब्रह्मांडबुनु, नयोनिजुडु, स्वयंभवुंडगु ब्रह्मयुनु नुदयिंचिरि। मदीय वीर्योपबृंहितुंडै महादेवुंडगु ना ब्रह्म यसमर्थुनि बोलॅ नकृतार्थं मन्यमानमनस्कुडै, सृजिप नुद्यमिंचुतरि तपं बाचरिंचुमनि नाचेत बोधितुंडै, यघोरंबैन तपं बाचरिंचि, तॉलुत सृष्टि कर्तृत्वमु वहिंचिन मिम्मु सृजिंचॅ। अंत बंचजनुंडुनु प्रजापति तनूज

विभूतियाँ प्राप्त हों, यही हमारी इच्छा है। [मेरी] इच्छा उचित रूप से तुम्हारे कारण सफल होगी २२३ [व.] सुनो। ब्रह्मा और भर्ग और प्रजापति और मनु और इन्द्र ये सब निखिल भूतों के लिए भूति हेतु बनी मत्भूति के विभव हैं। और मेरे लिए यम-नियमादि सहित संध्या-वन्दनादि रूपी तपस्या हृदय है। सांग-जप और ध्यान रूपी विद्या शरीर है। ध्यान आदि विषयों के लिए व्यापार रूपी भावना आदि शब्द से वाच्य क्रिया आकृति है। क्रतुजात (यज्ञसमूह) [मेरे] अंग हैं। धर्म [मेरी] आत्मा है। देवता प्राण है। निगम मेरा स्वरूप है। जगत् की उत्पत्ति की आदि में मैं अकेला तेजोयमान था। बाह्य और अन्तर में [मेरे अतिरिक्त] और कुछ नहीं है। सुषुप्ति की अवस्था में सर्व (सब कुछ) के लीन होने पर सम्यक् ज्ञान मात्र और अव्यक्त रहनेवाले जीव के समान मैं अकेला रहता हूँ। अनन्त होकर अनन्त गुण के कारण गुणविग्रह हो, ब्रह्माण्ड का और अयोनिज स्वयंभू ब्रह्मा का उदय हुआ। मेरे वीर्य से उपबृंहित महादेव वह ब्रह्मा असमर्थ के समान अकृतार्थ बने मनवाला होकर, सृजन करने का उद्योग करते समय तप करने के लिए मुझसे प्रबोधित होकर, अघोर तपस्या कर, सर्वप्रथम सृष्टि के कर्तृत्व को वहन

यगु नसिक्निनयनु पेरिट विनुति नोंदियुन्न यिक्कन्यकनु नी किच्चिति। दीनि बत्निगा गैकोनि मिथुन व्यवायधर्मंबु गलवाडवै, मिथुन व्यवाय धर्मंबु गल यी नातियंदु प्रजासर्गंबु नति विपुलंबुग गाविपंगलवाडवु। मरियु नीकु बिदप निदे क्रमंबुन निखिल प्रजलुनु मन्माया मोहितुलयि, मिथुन व्यवाय धर्मंबुन प्रजावृद्धि नोंदिंचि, मदाराधनपरुलै युंड गलवारु। अनि पलिकि, विश्व भावनुंडैन हरि स्वप्नोपलब्धार्थंबुनुं बोलें नंतर्धानंबु नोंदें।

## अध्यायमु—५

व. अप्पुडु दक्षुंडु विष्णुमायोपबृंहितुंडै पांचजनि यगु नसिक्नियंदु हर्यश्व संज्ञल विनुति जेंदियुन्न ययुत संख्या परिगणितुलैन पुत्रुलंगांचें। अप्पुडा धर्मशीलुरैन दाक्षायणुलु, पितृनिर्देशंबुनं प्रजासर्गंबु कोरकु दपंबु सेयुवारै पश्चिम दिशकुंजनि, यच्चट सिंधु समुद्र संगमंबुन समस्त देव मुनि सिद्धगण सेवितंबै, दर्शनमात्रंबुन निर्धूत कल्मषुलनु, निर्मल चित्तुलं जेयुचुन्न नारायण सरस्सनं बरगु तीर्थराजंबुन नवगाहनंबु जेसि, निर्मलांतरंगुलै, परमहंस धर्मंबु नंदु नुत्पन्नमतुलै प्रजासर्गंबु कोरकु

---

करनेवाले आप [लोगों] की सृष्टि की। तब पंचजन नामक प्रजापति की तनूजा होकर असिक्नी नाम से प्रसिद्ध बनी हुई इस कन्यका को तुम्हें दिया है। इसे पत्नी के रूप में ग्रहण कर मिथुन व्यवाय धर्म वाले बनकर, मिथुन व्यवाय धर्म से युक्त इस स्त्री में अति विपुल रूप से प्रजा की सृष्टि कर सकोगे और तुम्हारे बाद इसी क्रम से समस्त प्रजा ही मेरी माया से मोहित होकर, मिथुन व्यवाय धर्म से प्रजा की वृद्धि करते हुए मेरी आराधना में तत्पर होकर रहेगी। ऐसा कहकर, विश्वभावना वाला हरि, स्वप्न में उपलब्ध अर्थ के समान, अंतर्धान हुआ।

## अध्याय—५

[व.] तब दक्ष विष्णुमाया से उपबृंहित होकर पांचजनी असिक्नी में हर्यश्व नामों से प्रसिद्ध बने अयुत संख्या से परिगणित हुए पुत्रों को प्राप्त किया। तब धर्मशील उन दक्ष के पुत्रों ने पितृनिर्देश से प्रजा की सृष्टि के लिए तप करनेवाले होकर पश्चिम दिशा में जाकर, वहाँ सिंधु-समुद्र के संगम [स्थान] पर समस्त देव-मुनि-सिद्धगणों से सेवित होकर, दर्शन मात्र से कल्मषों को दूर कर निर्मल चित्त बनानेवाले नारायण-सर (-सरोवर) के नाम से प्रसिद्ध तीर्थराज में अवगाहन (स्थान) कर, निर्मल अंतरंग वाले होकर, परम हंसधर्म में उत्पन्न मति वाले बनकर, प्रजासर्ग

दंड्रि यनुमतंबुन नुग्र तपंबु सेयुचुंड, वारि कडकु नारदुंडु वच्चि यिट्लनियें ॥ 224 ॥

सी. मीरति मूढुलु मीदटि गति गानरेंन्नंग बसिबिड्ड लन्नलार !
पुडमि दानितनि कड परिकिंपरु प्रजल बुट्टिंच ने प्रतिभ कलदु ?
अट्लैन नौक्क महात्मुडु पुरुषुंडु बहु रूपमुलु गल भाम यौकतें
पुंश्चली भर्तयु बुरणिप नुभय प्रवाहंबु गल नदि वरल गदल

ते. नंच यौकटि यिरुवर्देदिटि महिमल
गलिगियुंडु तेंरुवु गान राक
वज्र निबिड मगुचु वरुस दनंतन
तिरुगु काष्ट्रबिलमु देटपडग ॥ 225 ॥

कं. विनुडंदुल यनुरूपमु, ननुवौदग नेक्रग कातन्न नात्मगुरूक्ति
गौन सागिचेंद मनु मि,-म्मन नेमियु लेदु मूढुलनि तेलिसि तगन् ॥226॥

व. अनि नारदुंडु वोधिच्चिन हर्यश्वुलु सहज बुद्धिचेत नारद वाक्यंबुलनु दमलो निट्लनि वितर्किंचिरि ॥ 227 ॥

ते. सौरिदि क्षेत्रज्ञुडन नतिसूक्ष्म बुद्धि
नरय नज्ञानबंधनं बगुचु लिंग
देहमुन नेंदि्द गल ददि देलियकुन्न
गलदे ? मोक्षंबु दुष्कर्म गतुलचेत ॥ 228 ॥

---

के लिए पिता की अनुमति के अनुरूप उग्र तप करते रहे [तब] उनके पास आकर नारद ने यों कहा २२४ [सी.] आप अतिमूढ़ हैं। हे तात ! आगे की गति को जान नही सकनेवाले शिशु हैं। पृथ्वी के परिमाण के बारे में नहीं जानते। प्रजा-सृष्टि के लिए [आपमें] क्या प्रतिभा है ? तब तो [सुनिए] एक महात्मा पुरुष है [और] बहुरूपों वाली भामा (स्त्री) एक है। [यह] पुंश्चली (व्यभिचारिणी) और भर्ता (पति) के विकासमान उभयप्रवाह वाली नदी के समान प्रवहमान है। [ते.] उसमें एक हंस पचीस महिमाओं से युक्त हो रहता है। मार्ग न जानकर, वज्र-निबिड होते हुए, क्रम से, अपने आप काष्टबिल को स्पष्ट करते हुए, घूमता रहता है। २२५ [क.] सुनो, उसके अनुरूप पद्धति को ठीक ढग से न जानकर मन से अपने गुरु [पिता] की उक्ति के अनुरूप करना चाहनेवाले आप लोगों को मूढ़ जानकर कुछ कहने से कोई लाभ नही है। २२६ [व.] ऐसा नारद के प्रबोधित करने पर हर्यश्वों ने सहज बुद्धि से नारद के वाक्यों का अपने मे इस प्रकार वितर्क किया। २२७ [ते.] क्रम से अति सूक्ष्म दृष्टि से क्षेत्रज्ञ को और अज्ञान बंधन होनेवाली लिंग देह में जो सम्बन्ध है उसको न जानने पर, दुष्कर्म की गतियों (कठोर कर्मकाण्ड

ते. कलडु जगदेक सन्नुत कारणुंडु
स्वामि भगवंतुडभवुंडु स्वाश्रयुंडु
परमु डातनि जूडक ब्रह्मकैन
गलुगुने ? मुक्तिपदमु दुष्कर्म गतुल ॥ 229 ॥

आ. पुरुषु डॅट्टुलेनि पूनि बिल स्वर्ग, गतुडुवोलॅ वर्तकंबु मानु
नट्टि ब्रह्म मॅरुगु नय्यकु स्वर्भोग, कर्मगतुल नेमि कानबडुनु ? ॥ 230 ॥

शा. तन्निष्ठा गति लेनि वानिकि नसत्कर्म प्रचारंबुचे
मुन्ने मर्य्येडि नात्मबुद्धि गुण सम्मोहंबुनं दोचुचुन्
वन्नेल् बॅट्टुक वितबागुल तरिन् वर्तिचु दौर्गुण्य सं-
पन्न स्त्रीयुनुबोलॅ नॅल्ल गतुलं ब्रख्यातमै युंडगन् ॥ 231 ॥

सी. अनुवौंद सृष्टि नव्ययमुग जेयुचु ब्रचुर प्रवाह संपतितमैन
नॅरय गूलंबनु निर्गम स्थानंबु नंदु वेगमुगल रूंदु माय
गदलि यहंकार गति वशंबुन जाल विवशुडै बोधकु विपरियैन
वानिकि नीरीति बलवंत कर्म प्रचारंबुलनु मीद जक्कनैन

आ. जन्म मरण मुख्य जाड्यंबुतो बासि
यखिल सौख्य पदवि नरसि कर्म

---

के आचरण) से, कहीं मोक्ष प्राप्त होगा ? २२८ [ते.] जगदेक-सन्नुत (-प्रशंसित) कारण वाला, स्वामी, भगवान, अभव, स्वाश्रय, परम ऐसे तत्त्व को न देखकर (जानकर) दुष्कर्म की गतियों (कठोर कर्मकाण्ड के आचरण) से कहीं ब्रह्मा के लिए भी मुक्तिपद प्राप्त होता है ? २२९. [आ.] पुरुष किसी भी तरह, सप्रयत्न, बिल-स्वर्ग-गत [व्यक्ति] के समान वर्तक (व्यापार) को छोड़ देता है। इस प्रकार ब्रह्मा को जानने वाला व्यक्ति को स्वर्भोगकर्म-गतियाँ कहाँ दिखाई पड़ती है ? २३० [शा.] जिसे उस निष्ठा की गति नहीं हो उसे असत् कर्म-प्रचार से आगे जो होनेवाला है वह आत्म-बुद्धि के गुण-सम्मोह से, इठलानेवाली विचित्र गतियों से आचरण करनेवाली दुर्गुणों से संपन्न स्त्री के समान सब प्रकार से प्रख्यात् होनेवाले रूप में सब कुछ भासित होता है। २३१ [सी.] ठीक ढंग से अव्यय रूप से सृष्टि को करते हुए प्रचुर प्रवाह से संपतित होकर शोभा से कूल नामक निर्गम स्थान में वेग से विचलित होनेवाली माया के लगकर अहंकार की गति के वश होकर अधिक विवश बनकर बोध (ज्ञान) से विपरि (अतीत) बने हुए व्यक्ति के लिए इस प्रकार कर्म-प्रचार के बाद [आ.] जन्म-मरण आदि जाड्य (रोग) से मुक्त होकर अखिल सौख्य की पदवी (मूल स्थान) और कर्म-मार्ग से युक्त महनीय धाम को

मार्गमैनयट्टि महनीय धामंबु
चित्तमार नॆट्लु चेर गलडु ॥ 232 ॥

ते. दानि संसर्ग गुणमुलु दव्पि नडचु
कुच्चितपु भार्य जॆकॊन्न कुमतिवोलॆ
तिविरि सुखदुःखमुल गूडि तिरुगु जीव
रूप मॆरुगनि वारिकि ब्रापु गलदॆ ? ॥ 233 ॥

म. पंचविंशति तत्त्वराशि कपारदर्पण मय्यु दा
गोवॆंमै पुरुषुंडु तत्त्वमुगोरि पट्टगनेरके
मंचु गिचु दलंचुवार लमार्ग कर्ममु सेयगा
मंचि लोकमु वारि केटिकि मानुगा समकूरॆडिन् ॥ 234 ॥

कं. बंधानुमोक्षण क्रम, संधानैश्वर्यधुर्य शास्त्र समग्र
ग्रंथंबु मानु चिद्रू, पांधुनकु नकर्म गतुल नगुने शुभमुल् ॥ 235 ॥

म. चूडनी जगमंतयुन् वॆस जुट्टि पट्टुक लोल ने
जोडु लेक रयंबुनंगुडि चुट्टिटनट्टि स्वतंत्रमुं
गूडि युंडिन कालचक्रमु गोरि चूडनि वारि के
जाड गल्गु नकर्म संगति जारु मोक्ष पदंबिलन् ॥ 236 ॥

ते. जन्म हेतुवॆन जनक निर्देशंबु, तनकु जेयरानि दनुचु दॆलिसि
गुणमय प्रवृत्ति घोराध्वं निश्वास, निरतुडगुचु जेय नेरडतडु ॥ 237 ॥

---

चित्त के प्रसन्न होने पर कैसे पहुँच सकता है ? २३२ [ते.] उसके संसर्ग गुणों को छोड़ आचरण करनेवाली दुष्ट पत्नी को ग्रहण करनेवाले कुमति के समान, सुख-दुःखों से लिप्त होकर विचरण करनेवाले जीव रूप को न जाननेवाले के लिए कोई रक्षा है ? २३३ [म. ] पंचविंशति (पचीस) तत्त्वराशि के लिए अपार दर्पण होकर, स्वयं पुरुष के सूक्ष्म होकर रहने के समान, उस तत्त्व को चाहकर पकड़ न सक अहं के भाव से अमार्ग कर्म (असत्-कर्म) करनेवालों को अच्छे लोग कहाँ से प्राप्त होंगे ? २३४ [कं.] वन्ध-अनुमोक्षण के क्रम के संधान के ऐश्वर्य में धुरीण (प्रवीण), शास्त्र के समग्र ग्रंथ (सांख्य नामक वेदान्त) को छोड़ देनेवाले चिद्रूपांध को अकर्म की गतियों से शुभ कहाँ से प्राप्त होंगे ? २३५ [म. ] इस समस्त जग को झट पकड़कर असमान रूप से, वेग से, परिक्रमा करने की स्वतंत्रता से युक्त कालचक्र को जान-बूझकर देखना न चाहनेवालों को अकर्म की संगति से चारु मोक्षपद कहाँ से प्राप्त होगा ? २३६ [ते.] जन्म हेतु बने जनक-निर्देश (पिता की आज्ञा) को अकरणीय मानकर ऐसा जानकर गुण-मय प्रवृत्ति से घोराध्वं निःश्वास निरत होते हुए, वह पूरा नहीं कर पाता।

व. अनि तमलो वितर्किंचि या कुमारुलप्पुडु ॥ 238 ॥

सी. विनवय्य ! भूपाल ! मुनिवरेण्युनि माटलनुवौंद दलपोसि विनय मलर
वलगौनि यतनिकि वंदनंबोनरिंचि तिरिगि यॅन्नडु रानि तॅरुवु वट्टि
चय्यन नेगिरि सहज स्वर ब्रह्ममयमैन पंकजनयनु पाद-
पद्म मरंदंबु पानंबु सेयुचु मत्तिल्लि निलिचिन मानसाळि

ते. परिणमिप विष्णु वाडुचु दत्कीर्ति, सरणि म्रोयु महित संघटिंचि
नारदुंडु गुण विशारदुंडेदेनि, जनियॅ जगमु दन्नु सन्नुतिप ॥ 239 ॥

कं. अप्पुडु दक्षुडु तनयुलु, दप्पि महापथमु गनुट तग नारदुडे
चॅप्पिन गप्पिन शोकमु, मुप्पिरिगौनि चित्तवृत्ति मूरि बोवन् ॥ 240 ॥

चं. अडलुचुनुन्न वच्चि कमलासनु डूरडिलंग बल्कमुन्
पडसिन लील बुत्रुल नपार गुणाढ्युल गांचुमन्न ना
पडतुक वलन ग्रम्मरनु वल्वुर दा, शबलाश्व संज्ञलं
बॅडगगु वारि पुण्यमुल बेंचिन वारि सहस्र संख्युलन् ॥ 241 ॥

कं. पुट्टिंचिन जनकुनि मदि
बुट्टिन तलपॅरिगि वारु पूनिक प्रजलं
बुट्टिंचु व्रतमु गैकौनि
गट्टिग दप माचरिंपगा जनिरि वॅसन् ॥ 242 ॥

---

वह आचरण नहीं कर सकता। २३७ [व.] ऐसा अपने मे वितर्क कर, वे कुमार तब २३८ [सी.] सुनो, हे भूपाल ! मुनिवरेण्य (नारद) की बातों पर ठीक तरह से विचार कर, विनय से सुशोभित होकर, प्रदक्षिणा-युक्त वन्दन (प्रणाम) कर, फिर कभी वापस न आनेवाले मार्ग को ग्रहण कर झट चले गये। पंकजनयन के पादपद्म-मरंद का, जो सहज स्वयं ब्रह्ममय है, पान करते हुए मस्त होकर, स्थिर बने मानस के भ्रमर के रूप में परिणत होने पर, [ते.] विष्णु का [गुण]गान करते हुए, उसकी कीर्ति के क्रम से मुखरित होनेवाली महती का संधान करके, जग के अपनी प्रशंसा करने पर गुणविशारद नारद कहीं चला गया। २३९ [कं.] तब दक्ष ने [अपने] तनयों के [अपने वचन को] न मानकर महापथ (स्वर्गपथ) जाने की बात के नारद के बताने पर शोक से आच्छादित चित्त-वृत्ति से २४० [चं.] व्यथित होते रहने पर कमलासन ने आकर सांत्वना देते हुए कहा कि पूर्व में प्राप्त करने की पद्धति से अपार गुणाढ्य पुत्रों को प्राप्त करो। ऐसा कहने पर उस नारी से पुनः शवलाश्व संज्ञाओं से शोभित और अपने-अपने पुण्यों से युक्त अनेक सहस्र संख्या वाले [पुत्रों को] २४१ [कं.] पैदा करने, पर जनक के मन में उत्पन्न विचार को जानकर वे (दक्ष के पुत्र) सप्रयत्न प्रजा को उत्पन्न करने का व्रत

व. इट्लु शबळाश्वुलु प्रजा सर्गंबु कॊऱकु दंड्रि पंपुनं दपंबु सेयुवारै ये तीर्थंबु तीर्थराजंबै सकल तीर्थ फलंबुल नालोकन मात्रंबुन ननुग्रहिंचुचु सकल पापंबुल निग्रहिंचु, ने तीर्थ प्रभावंबुन नग्रजन्मुलु फल सिद्धं बॊंदुदु, रट्टि नारायण सरस्सनु पुण्य तीर्थंबुनकुं जनि, तदुपस्पर्श मात्रंबुन निर्धूत मलाशयुलै ॥ 243 ॥

शा. ब्रह्मेंद्रादुलु नंद नेरनि परब्रह्मंबु जिंतिपुचुन्
ब्रह्मानंदमु बॊंदि जिह्विकलपै ब्रह्मण्य मंत्रंबु स-
द्ब्रह्मालोकन वांछतो निलुपुचुन् ब्रह्मं बितडंचु मुन्
ब्रह्मज्ञान गुरुन् हरिं दपमुनं बार्टिचि रव्वालकुल् ॥ 244 ॥

सी. एक पादांगुष्ठ मिलमीद सवरिंचि निश्चलकायुलै निक्कि निलिचि
करमुलु गोलिचि सरवि मीदिकि नॆत्ति गुरुतुगा बॆनुबयल् गुट्टिपट्टि
निडिविगा ग्रूरमै निगिड्डिन चूड्कुल गड्डु तीव्र भानुनि बॊंदविपट्टि
वडिगॊंत कालंबु वायुवु भक्षिंचि यंत नुंडियु निराहारुलगुचु

ते. सकल लोकमुलकु संहार करमुनु
वॆंचि देवतलकु भीतिकरमु
गाग घोर तपमु गाविप दॊडगिरि
महित चित्तुलककुमारवरुलु ॥ 245 ॥

---

लेकर दृढ़ता से तप करने के लिए झट गये। २४२ [व.] इस प्रकार शबलाश्व प्रजासर्ग के लिए पिता की आज्ञा पर तप करनेवाले होकर, जो तीर्थ, तीर्थराज होकर सकल तीर्थफलों को आलोकन मात्र से अनुगृहीत (प्रदान) करता है, सकल पापों का निग्रह करनेवाला है, जिस तीर्थ के प्रभाव से अग्रजन्मा फलसिद्धि को प्राप्त करते हैं, ऐसे नारायण सरसी नामक पुण्यतीर्थ में जाकर, उसके उपस्पर्श मात्र से पापों से मुक्त होकर। २४३ [शा.] जिस परब्रह्म को ब्रह्मा, इन्द्र आदि प्राप्त नही कर सकते, उसका चिन्तन करते हुए ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर, जिह्वाओं पर ब्रह्मण्य मंत्र को सद्ब्रह्मा के आलोकन की वांछा से धारण कर, यही ब्रह्म है, ऐसे ब्रह्म-ज्ञान के गुरु हरि को उन बालकोने तपस्या में [मन में] स्थिर किया। २४४ [सी.] एक पैर के अंगुष्ठ को पृथ्वी पर रखकर निश्चल शरीर वाले होकर सपाट से खड़े होकर हाथों को जोड़कर ऊपर उठाकर मानो शून्य की ओर संकेत करते हुए विशाल और क्रूर वन व्याप्त चितवनों से तीव्र भानु को पकड़कर, उस समय तक वायु का भक्षण कर उसके बाद निराहारी होते हुए, [ते.] सकल लोकों के लिए संहारकर और देवताओं के लिए भीतिकर (भयंकर) रूप से महित चित्त वाले कुमार वर घोर तपस्या करने लगे। २४५

### नारदुंडु शबळाश्वुलकु निवृत्ति मार्गंबु नुपदेशिंचुट

व. इट्लति भयंकरंबैन तपंबु सेयुचु, नेडतेगक भगवन्मंत्रंबुल नोडुपुचु, प्रजासर्गकामुलै युन्न यच्चिन्न बालुर कडकु नारदुंडु सनुदेंचि, पूर्व विधंबुनं बलुकुचु निट्लनियें। भ्रातृवत्सलुलैयुन्न मीरलु वेदांतसारंबु पलुकुचुन्न ना वचनंबु लादरिंचि, तोबुट्टुवुलु चनिन मार्गंबु चनुंडु। अव्वडेनियु दन यग्रजुलु गन्न मार्गंबुनं दानुनुं दप्पक वर्तिचु, नट्टिवानि विशेष धर्मं बेंरिंगिन वाडंड्रु। सततंबुनु बुण्यबंधुवुलैन देवतलंगूडि सुखंबुंडुडु। अनि पलिकि नारदुंडु सनियें। वारलु सर्व कर्मंबुल यंदु निर्मोहितुलै परमपदंबुनकु नास्पदंबुलैन देवर्षि वाक्यंबुल नाश्रयिंचि ॥ 246 ॥

उ. अप्पुडु लज्जतोड शबळाश्वुलु पूर्वजुलेगिनट्टि या
चोप्पुन नेन्नडुं दिरिगि चूडनि त्रोव विशेष पद्धतिं
दप्पक पोयिरय्य ! गुणधामुलु नेडुनु मळ्ळरेमि ने
जेप्पेद गाक राक कड जेरिन शत्रुल वोलि भूवरा ! ॥ 247 ॥

कं. दक्षुन का कालंबुन, लक्षितमै युंडे बेक्कु लागुल नुत्पा-
त क्षोभंबुलु वानिकि, रुक्ष व्यथ नोंडि या पुरुष नाशमुनन् ॥ 248 ॥

---

### नारद का शवलाश्वों को निवृत्ति-मार्ग का उपदेश देना

[व.] इस प्रकार अति भयंकर तपस्या करते हुए, निरन्तर भगवन्मंत्रों का उच्चारण करते हुए, प्रजासर्ग के इच्छुक बने हुए उन छोटे बालकों के पास नारद आकर, पहले के विधान से यों बोले। भ्रातृवत्सल बने हुए तुम लोग वेदान्तसार को कहनेवाले मेरे वचनों का आदर कर अपने सहोदरों के मार्ग का अनुसरण करो। जो भी हो, अपने अग्रजों के मार्ग का स्वयं अवश्य अनुसरण करता है, उसे विशेष धर्म का जानकार कहते हैं। वह सतत् (सदा) पुण्यवधु हो देवताओं के साथ सुख से रहता है। ऐसा कहकर नारद चला गया। वे (शवलाश्व) सर्व कर्मों में मोह को छोड़कर, परमपद के आस्पद देवर्षि के वाक्यों का आश्रय लेकर २४६ [उ.] तब लज्जा से शवलाश्व फिर कभी वापस न आनेवाले उसी मार्ग से जिस मार्ग से पूर्वज गये थे, विशेष रूप से उसी मार्ग से चले गये। हे भूवर ! गुणधाम [अपने] पुत्र, पश्चिम दिशा को प्राप्त रात्रि के समान क्यों नही लौटे [ऐसा दक्ष ने सोचा]। २४७ [कं.] उस समय दक्ष के लिए क्षोभकर उत्पात (अपशकुन) दिखाई पड़े। पुरुष-नाश (अपने पुत्रों के नाश) के कारण वह अधिक व्यथित हुआ। २४८ [कं.] [उसे] नारदकृत जानकर महा रोष से जाकर उसे देखकर दुःख से

कं. नारदकृतमनि यॆरिगि म, हा रोषमुतोड नॆगि यातनि गनि दु:
खारूढचित्तुडै मदि नूरडिलं दॆरुवु लेक युग्रुंडगुचुन् ॥ 249 ॥

ते. मोमु जेवुरिप मुडिवड बोमदोयि
चूपुवॆंट मंट सुडिगॊनंग
पॆदवुलदर वंड्लु पॆटपॆट गोरुकुचु
दक्षुडाग्रहिंचि तपसि वलिकॆ ॥ 250 ॥

चं. नॆरयग साधुरूपमुन नीवति बालुर कात्मजाळिकि
गरकुन भिक्षुमार्गमगु कंदुव सॊप्पिति वेल? धूर्तवै
मरुगक युंडवच्चुनॆ? कुमारुल नी दुरितंबु वोद नि-
ष्ठोरलग द्रोतु नादु समदोग्र महाग्रह शाप वह्नुलन् ॥ 251 ॥

### दक्षुंडु नारदुनि शपियिंचि प्रजा सर्गंबोनरिचुट

व. अदि यॆट्लंटेनि, देवर्षि पितृ ऋणंबुलु दीर्चक अमीमांसित कर्मंबुलु गल बालुरकु बुद्धि जॆरचि, वारलकु नुभय लोकंबुल श्रेयोहानि नॊनर्चितिवि। इट्टि पातकंबुन भागवतोत्तमुललो लज्जा हीनुंडवै यशोहानिबॊंदि चरिंपुदुवु गाक। निरपराधुलै वैरंबुलेनि ना पुत्रुल पट्ल द्रोहकृत्यं बॊनर्चिन नीवु तप्प दक्किन भागवतोत्तमुलु सकल भूतानुग्रह परवशुलु।

आरूढ़ चित्त वाला बनकर मन को सान्त्वना देनेवाले उपाय के न होने पर उग्र होते हुए २४९ [ते.] मुख के लाल बनने पर (क्रोधित होकर), भौंहों के कुंचित होने पर, चितवन के साथ ज्वालाओं के घिर आने पर, ओंठों के काँपने पर, दाँतों को किटकिटाते हुए दक्ष ने क्रुद्ध होकर तपस्वी (नारद) से कहा २५० [चं.] शोभा से साधु रूप धारण कर तुमने मेरे पुत्रों को, जो अति बालक हैं, कठोर भिक्षुमार्ग के विधान को क्यों बताया? धूर्त होकर चुप तो भी रह सकते थे। मेरे सम्यक् उग्र महा आग्रह (क्रोध) की शापवह्नियों में, इस दुरित (पाप) के कारण तुम्हें धकेल दूंगा। २५१

### दक्ष का नारद को शाप देकर प्रजासर्ग (सृष्टि) करना

[व.] अगर पूछोगे तो (शाप) क्यों? देवर्षि और पितृऋणों से उऋण न बनकर, अमीमांसित (विचार न किये हुए) कर्म वाले बालकों की बुद्धि को बिगाड़ कर, उनके लिए उभय लोकों के श्रेय की हानि की। ऐसे पातक के कारण, भागवतोत्तमों में (भक्त-श्रेष्ठों में) लज्जाहीन बनकर यशोहानि प्राप्त कर, विचरण करो। निरपराधी और निर्वैर भाव वाले मेरे पुत्रों के प्रति द्रोहकृत्य करनेवाले तुम्हारे अतिरिक्त शेष भागवतोत्तम सकल भूतों के अनुग्रह से युक्त होंगे। अति कुतूहल से, तुम्हारे कारण से

अति कुतूहलंबुन नीचेत स्नेहपाश निकृंतनंबैन मित्र भेवंबै कानि तदुपशमनंबु गाकुंडेडु। इंत नुंडियु बुरुषुंडु विषय तीक्ष्णत्वंबु लनुभविपक कानि तॅलियकुंडेडु। ज्ञानंबु तनंतनॅ कानि यॅरुलचे बोधिपबडि तॅलियराकुंडॅडि। निरंतरंबुनु लोक संचारियैन नीकु ने लोकंबुनन्नुनिकिपट्टु लेकुंडुगाक। अनि निर्दयुंडु शापंबिच्चे। अंत नारदुंडु तत्क्रोध वाक्यंबुल कलुगक यट्ल कानिम्मनि सम्मतिंचि चनियॅ। इट्टि शांतभावं बॅव्वनिवलनं गलुगु, नतंडु सर्वातीतुंडै सर्वेश्वरुंडनंबडु।

## अध्यायमु—६

व. मरियु, दक्षुंडु तन मनोरथंबु विफलं बगुटंजेसि यति दुःखित मनस्कुंडै पॉगुलुचुन्न पितामहुंडु चनुदेंचि, मरियु ब्रजासर्गोपायं बुपदेशिंचिन, ना प्रजापति प्रिय भामयैन यसिक्नियंदु बितृवत्सललैन पुत्रिकल नरुवदुंड्रं बुट्टिंटचि, वारिलो धर्मुनकुं बदुवुरनु, गश्यपुनकुं बदमुग्गरनु, जंद्रुनकु निरुवदेड्गुरनु, भूतुनकु, नांगिरसुनकु, गृशाश्वुनकु निद्दरेसि चॉप्पुन

---

स्नेह-पाश का निकृन्तन करनेवाला (काट देनेवाला) मित्रभेद ही प्राप्त होगा। किन्तु उसका उपशमन नही होगा। अब से पुरुष विषय की तीक्ष्णता को उसका अनुभव (उपभोग) किये बिना नही जान पायेगा। ज्ञान को [पुरुष] स्वयं ही प्राप्त करेगा। दूसरों से प्रबोधित होकर प्राप्त नहीं कर पायेगा। निरन्तर लोकसचारी वने हुए तुम्हारे लिए किसी भी लोक में निवासस्थान नहीं रहेगा। ऐसा निर्दयी बनकर [दक्ष ने] शाप दिया। तब नारद उसके क्रुद्ध वाक्यों के कारण रुष्ट न होकर, तथास्तु कहकर [उस शाप को] स्वीकार कर चला गया। इस प्रकार का शान्त भाव जिसे प्राप्त होगा वह सर्वातीत होकर सर्वेश्वर कहलायेगा।

## अध्याय—६

[व.] और दक्ष के अपने मनोरथ के विफल होने पर अति दुःखी मन वाला होकर व्यथित होते रहने पर पितामह (ब्रह्मा) आये और एक प्रजा-सर्ग (-सृष्टि) के उपाय का उपदेश दिया। [तब] उस प्रजापति ने अपनी प्रिय भामा (पत्नी) असिक्नी में पितृ वत्सल साठ पुत्रिकाओं को उत्पन्न किया। उनमें धर्म को दस [पुत्रियों] को, कश्यप को तेरह, चंद्र को सत्ताइस, भूत, आंगीरस [और] कृशाश्व को को दो-दो के हिसाब से छः और तार्क्ष्य नामक नामान्तर (दूसरे नाम) को धारण करनेवाले कश्यप को पुनः अन्तिम

नार्गुरन, तार्क्ष्युंडनु नामांतरमु दाल्चिन कश्यपुनकु मरल गडम नल्गुरम्नो क्रमंबुन निच्चें। वारि नामंबु लार्कणिपुमु ॥ 252 ॥

आ. अॅट्टिपुण्यवतुलों ? यी चेडियलु सॅव्प
सवतु लेनियट्टि सवतुलय्यु
गड्डपु वडसि रॅट्टि कड्डुपुन बुट्टिटरो
कडिदि त्रिजग मॅल्ल गड्डुपु गाग ॥ 253 ॥

व. वारलॅव्वरनिन भानुवुनु, लंबयु, गकुप्पुनु, जामियु, विश्वयु, साध्ययु, मरुत्वतियु, वसुवुनु, मुहूर्तयु, संकल्पयु ननं वदुगुरु धर्मुनकु पत्नुलै कोड्कुलं वडसिरि। वारॅव्वरंटेनि भानुवुनकु वेद ऋषभुंडु पुट्टॅ। अतनिकि निंद्रसेनुंडु नुदयिंचॅ। लंबकु विद्योतुंड्डु गलिगॅ। अतनिकि स्तनयित्नुवु-लनुवारु पुट्टिटरि। ककुव्देविकि संकुटुंडु पुट्टॅ। संकुटुनकुं कीकटुंडु पुट्टॅ। कीकटुनकु दुर्गाभिमानिनुलॅन देवतलु जन्मिचिरि। जामि देविकि दुर्ग भूमुल कधिष्ठान देवतलु जन्मिचिरि। वारिकि स्वर्गुंडुनु, नंदियु जन्मिचिरि। विश्वयनु दानिकि विश्वेदेवतलु जन्मिचिरि। वारलपुत्रकुलनंवरगिरि। साध्यवनुदानिकि साध्यगणंबुलु बुट्टॅ। वानिकि नर्थसिद्धियनु वाड्डु पुट्टॅ। मरुत्वति यनुदानिकि मरुत्वतुंड्डु, जयंतुंडनुवार लुदयिंचिरि। अंदु जयंतुंड्डु वासुदेवांशजुंडॅन युपेंद्रुंडनंबडि,

चार [पुत्रियों को], इस क्रम से दिया। उनके नामों को सुनो। २५२ [आ.] ये सखियाँ अत्यधिक पुण्यवती [स्त्रियाँ] हैं। बिना सौतों वाले सवत होकर, तीनों जगों को अपने गर्भ में धारण कर संतानवती हुईं। इनको गर्भ में धारण करनेवाले [कितने पुण्यात्मा] होंगे ? २५३ [व.] वे कौन है ? पूछने पर [उनके नाम इस प्रकार हैं] भानु, लम्बा, ककुप्, जामि, विश्वा, साध्या, मरुद्वती, वसु, मुहूर्त, संकल्पा नामक दस (स्त्रियाँ) धर्म की पत्नियाँ बनकर पुत्रों को पायी। वे [पुत्र] कौन हैं, पूछोगे तो [वे इस प्रकार है] भानु के वेदऋषभ पैदा हुआ। उसके इन्द्रसेन उदित हुआ। लम्बा के विद्योत् हुआ। उसके स्तन-इत्नु नामक पुत्र पैदा हुए। ककुब्देवी के संकुट पैदा हुआ। संकुट के कीकट पैदा हुआ। कीकट के दुर्गा के प्रति अभिमान (आदर और प्रेम) रखनेवाले देवता जन्मे। जामि देवी के दुर्ग-भूमियों के अधिष्ठाता देवता जन्मे। उनके स्वर्ग और नन्दी जन्मे। विश्व नामक [स्त्री] को विश्वेदेवा जन्मे। वे अपुत्रक (निस्संतान) बनकर रह गये। साध्या नामक [स्त्री] के साध्यगण पैदा हुए। उनके अर्थसिद्धि नामक [पुत्र] पैदा हुआ। मरुद्वती नामक स्त्री के मरुत्वत् और जयंत नामक पुत्र उदित हुए, उनमें जयन्त वासुदेवांश से उत्पन्न उपेन्द्र कहलाकर प्रसिद्ध हुआ। मुहूर्ता नामक स्त्री के सकल भूतों को उन-उन कालों में होनेवाले उन-उन फलों को

विनुति नोंदें। मुहूर्त यनुदानिकि सकल भूतंबुलकु ना या कालंबुल गलिगेंडु ना या फलंबुल निच्चु मौहूर्तिकुलनियडु देवगणंबुलु वुट्टिरि। संकल्प यनुदानिकि संकल्पुंडुदयिंचें। आ संकल्पुनकु कामुंडु जनिचें। वसुवनु दानिकि द्रोणुंडुनु, प्राणुंडुनु, ध्रुवुंडुनु, नर्कुंडुनु, नग्नियुनु, दोषुंडुनु, वस्तुवुनु, विभावसुंडु ननु नेनमंड्रु वसुवुलुदयंबु नोंदिरि। अंदु द्रोणुनकु नभिमतियनु भार्ययंदु हर्ष शोक भयावुलु पुट्टिरि। प्राणुनकु भार्ययेन यूर्जस्वतियंदु सहुंडुनु, नायुवुनु, बुरोजवुडनु वारुनु गलिगिरि। ध्रुवुनि भार्ययगु धरणियंदु विविधुलगु पुरुलनुवारु जनिचिरि। अर्कुनिकि भार्ययगु वासनयंदु तर्षादुलुदयिंचिरि। अग्निकि भार्ययेन वसोधरियंदु द्रविणकादुलु पुट्टिरि। मरियु गृत्तिकलकु स्कंदुंडु गलिगें। आ स्कंदुनकु विशाखादुलुदयिंचिरि। दोषुनकु शर्वरियनु भार्ययंदु हरिकळयगु शिशुमारुंडदयिंचें। वस्तुवुनकु नांगिरसयंदु विश्वकर्मयनु शिल्पाचार्युंडु-दयंबंदें। आ विश्वकर्मकु नाकृतियनु सतियंदु चाक्षुषुंडनु मनुवु जनिचें। आ मनुवु वलन विश्वुलु, साध्युलु ननुवारलु पुट्टिरि। विभावसुनकु नुषयनु भार्ययंदु व्यष्टियु, रोचिस्सुनु, नातपुंडुनु जनिचिरि। अंदु नातपुनिकि बंचयामुंडनु दिवसाभिमान देवत जनिचें। शंकरांशजुंडेन भूतुनकु सुरूपयनु भार्ययंदु गोट्ल संख्यलेन रुद्रगणंबुलुदयिंचिरि। रैवतुंडु, नजुंडु, भवुंडु, भीमुंडु, वामुंडु, नुग्रुंडु, वृषाकपियु, नजैकपात्तुनु,

---

देनेवाले मौहूर्तिक नामक देवगण उत्पन्न हुए। संकल्पा नामक स्त्री के संकल्प उदित हुआ। उस संकल्प के, काम का जन्म हुआ। वस्तु नामक स्त्री के द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वस्तु, विभावसु नामक आठ वसुओं का उदय हुआ। उनमें द्रोण के अभिमति नामक भार्या में हर्ष, शोक, भय आदि पैदा हुए। प्राण की भार्या ऊर्जस्वती में सह, आयु, पुरोजव नामक पुत्र हुए। ध्रुव की भार्या धरनी में विविध पुरु नामक पुत्र जन्मे। अर्क की भार्या वासना में तर्षादि का उदय हुआ। अग्नि की भार्या वसोधरी में द्रविणक आदि पैदा हुए और कृत्तिका के स्कंद हुआ। उस स्कंद के विशाखा आदि का उदय हुआ। दोष के शर्वरी नामक भार्या में हरि की कला होनेवाले शिशुमार का उदय हुआ। वस्तु के आंगीरसा में विश्वकर्मा नामक सती में चाक्षुस नामक मनु का जन्म हुआ। उस मनु से विश्व और साध्य नामक लोग पैदा हुए। विभावसु के उषा नामक भार्या में व्यष्टिरोचिस, आतप का जन्म हुआ। उनमें आतप के पंचयाम नामक दिवसाभिमान वाला देवता पैदा हुआ। शंकरांशज भूत के सुरूपा नामक भार्या में करोड़ों की संख्यावाले रुद्रगण का उदय हुआ। रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपात, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप,

नहिर्भुध्न्युंड्डनु, बहुरूपुंड्डनु, महांतुंड्डनु ननु वारलुनु, रुद्रपारिषदुलुनु नति-भयंकरुलैन प्रेतलुनु, विनायकुलुनु बुट्टिटरि। अंगिरसुंडनु प्रजापतिकि स्वधयनु भार्ययंदु बितृगणंबुलु वुट्टिटरि। सतियनु भार्यकु नथर्ववेदाभिमान देवतलु वुट्टिटरि। कृताश्वुनकु अर्चिस्सनु भार्ययंदु धूम्रकेशुंडनु पुत्रुंडदयिंचॅ। वेद शिरस्सुकु धिषण यनु भार्ययंदु देवलुंड्डनु, वयुनुंड्डनु, मनुवुनुं बुट्टिटरि। ताक्ष्र्युनकु विनत, कद्रुव, पतंगि, यामिनियनु नलुवुरु भार्यलु। अंदु बतंगिकि बक्षुलु वुट्टॅ। यामिनिकि शलभंबुलु वुट्टॅ। विनतकु साक्षात्कॉरिचिन यज्ञाधिपतिकि वाहनंबैन गरुड्डुनु, सूर्युनकु सारथियैन यनूरुंड्डनु जनियिंचिरि। कद्रुवकु वक्कु तॅरंगुल भुजंगमंबुल वुट्टॅ। चंद्रुनकु गृत्तिकादि नक्षत्रंबुलु भार्यलु। वारलयंदु जंद्रुडु रोहिणियंदु मात्रमु मोहितुंडगुटंजेसि दक्षशापंबुन क्षय रोग ग्रस्तुंडै संतानंबु वडयनेरडय्यॅ। अंत दक्ष प्रसादंबुन क्षय पीडितंबु लगु कळल मरलंबोंदॅ। मरियुनु ॥ 254 ॥

सी. कामितप्रदुडैन कश्यपु कौगिट मुच्चट दीर्तुरे मुद्दरांड्रु
अखिल लोकमुलकु नव्वलै जगमॅल्ल बूजिप नुंदुरे पूवुबोंड्लु
बलियुरै पुत्रुलु बौत्रुलु द्रिजगंबु लेलंग जूतुरे यिदुमुखुलु
मुंगोगु पसिडियै मूलगु पुण्यंबुल विरुंबोगुदुरॅट्टि वितराड्रु

---

महान्त नामक जन, रुद्र पारिषद और अति भयंकर प्रेत और विनायक पैदा हुए। अंगिरस नाम प्रजापति के स्वधा नामक भार्या में पितृगण पैदा हुए। सती नामक भार्या के अथर्ववेदाभिमानी देवता पैदा हुए। कृशाश्व के अर्चिस नामक भार्या में धूमकेश नामक पुत्र का उदय हुआ। वेदशिरश के दिशा नामक भार्या में देवल, वयुन और मनु पैदा हुए। ताक्ष्र्य के विनता, कद्रुव, पतंगी, यामिनी नामक चार स्त्रियाँ हैं। उनमें पतंगी के पक्षी पैदा हुए। यामिनी के शलभ पैदा हुए। विनता के साक्षात् यज्ञाधिपति (विष्णु) के वाहन गरुड़ और सूर्य के सारथी अनूर का जन्म हुआ। कद्रुवा के अनेक प्रकार के भुजंग पैदा हुए। चन्द्र के कृत्तिका आदि नक्षत्र पत्नियाँ हैं। उन [सब] में चन्द्र मात्र रोहिणी के प्रति मोहित होने के कारण, दक्ष के शाप के कारण, क्षयरोग से ग्रस्त होकर, संतान को प्राप्त नहीं कर सका। तब दक्ष के प्रसाद से क्षय-पीड़ित कलाओं को फिर से प्राप्त किया। और भी २५४ [सी.] हे मानवेंद्र ! कामितप्रद (इच्छाओं की पूर्ति करनेवाले) कश्यप के परिरंभ में रहकर जो मुग्धायें [उसे] संतुष्ट करती हैं, समस्त लोकों के लिए माताएँ होकर जगों से पूजित होते हुए, जो पुष्पांगियाँ (पुष्प के समान शरीर वाली) रहती है, जो चन्द्रमुखियाँ [अपने] पुत्रों और पौत्रों के बलवान होकर त्रिजगों पर शासन करते देखती रहती

ते. वारि कलगंप कडुपुल नेरुपरुप
नरिवि बिड्डल बडसिन बिरुदुसतुल
नाममुलु नन्वयंबुलु नीमनंबु
पून जॅप्पुदु विनवय्य ! मानवेंद्र ! ॥ 255 ॥

त. अदितियुं दिति काष्ठयुं दनुवय्यरिष्टयु दाम्रयु
न्नदन ग्रोध वशाख्ययुन् सुरसाख्ययुन् सुरभिन् मुनिन्
मॉदलुगा दिमियु न्निळ प्रियमुख्य या सरमादिगा
मुदित लॅल्लग गन्न संतति मुज्जगंबुल भूवरा ! ॥ 256 ॥

सी. चालंग दिमिकिनि जलचरंबुलु वुट्टॆ श्वापदंबुलु वुट्टॆ सरमयंदु
सुरभिकि महिषादि सुरभुलु जनियिंचॆ दाम्रकु श्येन गृध्रमुलु गलिगॆ
मुनिकि नप्सरसल मूकलु जनियिंचॆ निळ गनॆ भूरुहमुलनु ग्रोध-
वश कुद्भविल्लॆ दुर्वार सर्पंबुलु सरि यातुधानुलु सुरस करय

ते. नुप्पतिल्लिरि गंधर्वु लॉकमॉगि न
रिष्टकु सुतुल् दनुवुनकु द्रिदशरिपुलु
पदियु नॅनमंड्रु नॆनट्टि विदित बलुलु
वारि नामान्वयंबुल गोरि विनुमु ॥ 257 ॥

व. द्विमूर्धुंडुनु, शंबरुंडुनु, अरिष्टुंडुनु, हयग्रीवुंडुनु, विभावसुंडुनु, अयोमुखुंडुनु, शंकुशिरुंडुनु, स्वर्भानुंडुनु, कपिलुंडुनु, अरुणियुनु, पुलोमुंडुनु, वृषपर्वुंडुनु,

हैं, समस्त पुण्यों को अपने आँचल के सुवर्ण होकर पड़े रहने पर जो आश्चर्यप्रद चरित्र वाली स्त्रियाँ इठलाती रहती हैं, [ते.] उनकी संतानों के विरल पुत्रों को पानेवाली प्रसिद्ध सतियों के नाम और वंशजों के बारे में तुम्हारे मन में आसक्ति [उत्पन्न] हो [इस प्रकार] कहूँगा। सुनो २५५ [ते.] हे भूवर ! उन मुदिताओं ने जिस संतति को त्रिजगों में उत्पन्न किया उनके नाम इस प्रकार है— अदिति, दिति, काष्ठ, तनु, अरिष्टा, ताम्रा, नदना, क्रोधवशा, सुरक्षा, सुरभि, मुनि, तिमि, इळप्रिया, सरमा। २५६ [सी.] तिमि के पर्याप्त रूप से जलचर उत्पन्न हुए। सरमा के श्वापद (हिंसपशु) उत्पन्न हुए। सुरभि के महिषादि सुरभियाँ (दूध देनेवाली) पैदा हुईं। ताम्रा के श्येन, गृध्र हुए। मुनि के अप्सराओं का समूह उत्पन्न हुआ। इळा ने भूरुहों (वृक्षों) को जन्म दिया। क्रोधवशा के दुर्वार सर्प उद्भूत हुए। सुरसा के यातुधान (राक्षस) उत्पन्न हुए। [ते.] अरिष्टा के एक समूह में गंधर्व पैदा हुए। तनु के त्रिदशरिपु (राक्षस) पुत्र हुए। ऐसे विदित बल वाले जो दस और आठ हुए हैं उनके नाम और अन्वय को चाहकर सुनो। २५७ [व.] द्विमूर्ध, शंबर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावस, अयोमुख, शंकुसिर, स्वर्भानु, कपिल, अरुणी,

एकचक्रुंडुनु, अनुतापकुंडुनु, धूम्रकेशुंडुनु, विरूपाक्षुंडुनु, विप्रचित्तियु, दुर्जयुंडु ननुवारलु। वीरललोन स्वर्भानुनकु सुप्रभयनु कन्यक पुट्टॆ। दानि नमुचि विवाहंबय्यॆ। वृषपर्वुनकु शर्मिष्ठयनु कूतुरु वुट्टॆ। दानि नहुष पुत्रुंडैन ययाति पॆंड्लि यय्यॆ। वैश्वानरुनकु नुपदानवि, हयशिर, पुलोम, कालक यनु नलुवुरु पुत्रिक लुदयिंचिरि। अंदु नुपदानवि हिरण्याक्षुनकुं बत्नि यय्यॆ। हयशिरनु ग्रतुवु विवाहंबय्यॆ। पुलोमा-कालकलनु निरुवुरनु गश्यपप्रजापति चतुर्मुखुनि वाक्यंबुनं गैकॊनियॆ। आ यिरुवुरकुनु समरकोविदुलैन दानवुलु पौलोम कालकेयुलनं बुट्टिरि। मऱियु ना यिरुवुरकु नरुवदिवेल राक्षसुलु जन्मिंचिरि। वारु यज्ञ कर्मंबुलकु विघातकुलै वर्तिंप, वारि निद्रुनकुं ब्रियंबुगा नी पितामहुंडगु नर्जुनुंडु वधिंचॆ। मऱियु, विप्रचित्ति, सिंहिक यनु दानियंदु राहु प्रमुखंबुगा गल केतु शतंबुनु वडसॆ। वारलु ग्रहत्वंबु गैकॊनिरि। मऱियुं बुराणपुरुषुंडैन श्रीमन्नारायणुंडु दन यंशंबुन वरम भाग्यवतियैन यदिति गर्भंबुन नुदयिंचॆ। आ यदिति वंशंबुनु विदितंबुगा विनिपिंचॆद। सावधानुंडवै विनुमु। विवस्वंतुंडुनु, अर्यमुंडुनु, पूषुंडुनु, त्वष्टयु, सवितयु, भगुंडुनु, धातयु, विधातयु, वरुणुंडुनु, मित्रुंडुनु, शक्रुंडुनु, उरुक्रमुंडुनु ननु द्वादशादित्युलु जन्मिंचिरि। अंदु विवस्वंतुनकु श्राद्धदेवुंडुनु

---

पुलोम, वृषपर्व, एकचक्र, अनुतापक, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति, दुर्जय नामक हैं वे। उनमें स्वर्भानु के सुप्रभा नामक कन्या पैदा हुई। उससे नमुचि ने विवाह किया। वृषपर्व के शर्मिष्ठा नामक पुत्री पैदा हुई। उससे नहुष-पुत्र ययाति ने शादी की। वैश्वानर के उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा, कालका नामक चार पुत्रियों का उदय हुआ। उनमें उपदानवी हिरण्याक्ष की पत्नी हुई। हयशिरा से क्रतु ने विवाह किया। पुलोमा और कालका नामक दोनों को कश्यप प्रजापति ने चतुर्मुख के वाक्य (आदेश) से स्वीकार किया। उन दोनों के समरकोविद दानव— पौलोम और कालकेय नामक पैदा हुए और उन दोनों के साठ हज़ार राक्षस पैदा हुए। उनके यज्ञकर्मों के लिए विघातक (भंग करनेवाले) होकर आचरण करने पर उन्हें तुम्हारे पितामह अर्जुन ने वध किया, जिससे इंद्र को प्रसन्नता हुई। और विप्रचित्ति और सिंहिका नामक स्त्री में राहु आदि केतु शत (सौ केतुओं) को प्राप्त किया। उन्होंने ग्रहत्व को स्वीकार किया। और पुराण-पुरुष श्रीमन्नारायण अपने अंश से परम भाग्यवती अदिति के गर्भ में उदित हुआ। उस अदिति के वंश के बारे में विदित रूप से सुनाऊँगा। सावधान होकर सुनो। विवस्वत, अर्यम्, पूष, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र, उरुक्रम नामक द्वादश आदित्य जन्मे। उनमें विवस्वत के संज्ञादेवी में श्राद्धदेव नामक मनु का उदय हुआ। और यम और यमी

मनुवु संज्ञादेवियंदु नुदयिंचे। मरियु यमुंडु, यमियुननु निरुवुरु मिथुनंबुगा नुदयंबु नोंदिरि। मरियु ना संज्ञादेवि बडबास्वरूपंबु नोंदि यश्विनि देवतलंगनें। छायादेवियंदु शनैश्चरुंडुनु, सावर्णियनु मनुवुनु, दपतियनु कन्यकयुं बुट्टिरि। आ तपतिनि संवरणुंडु वरियिंचे। अर्यमुनकु मातृकयनु पत्नियंदु चर्षणुलुदयिंचिरि। वारि मूलंबुन मनुष्य जाति यी लोकंबुन स्थिरंबुगा नुंडुनट्लु ब्रह्मदेवुनिचे गल्पपबडे। पूषुंडु भर्गुनि जूचि दंतंबुलु विकृतंबुलुगा नगिन, नतडु क्रोधिंचि दंतंबुलूड नडिचिन, नाट नुंडियु भग्नदंतुडै, यनपत्युंडै पिष्टादुल भक्षिपुचुंडे। त्वष्टकु दैत्यानुजयैन रचनयनु कन्यककु नधिक बलाढ्युंडगु विश्वरूपुंडु वुट्टे। अंत ना देवतलु बृहस्पति गोपिप, नतडु तलगि पोयिनं दमकु ना विश्वरूपुनि नाचार्युनिगा वरियिंचिरि। अनि चेप्पिन विनि शुक योगींद्रुनकुं बरीक्षन्नरेंद्रुंडिट्लनिये ॥ 258 ॥

## अध्यायमु—७

सी. अरयंग योगींद्र ! यद्भुतं बय्येंडु सुरलपै नेटिकि सुरगुरुंडु
कोपिंचे ? नीतंडु गुरुभावमुन देवतल केमि यापद वलग जेसे ?

---

नामक दो मिथुन (दम्पति) के रूप में उत्पन्न हुए। और उस संज्ञा देवी ने बडबा (समुद्र की अग्नि या घोड़ी) स्वरूप को प्राप्त कर अश्वि (अश्विनी) देवताओं को उत्पन्न किया। छाया देवी में शनिश्चर और सावर्णि नामक मनु, और तपति नामक कन्या भी पैदा हुई। उस तपति का वरण संवरण ने किया। अर्यम् के मातृका नामक पत्नी में चर्षण पैदा हुए। उनके द्वारा मनुष्य जाति इस लोक मे स्थिरता से रहे ऐसा ब्रह्मदेव से कल्पित किया गया। पूष के भर्ग को देखकर दान्तों को विकृत कर हँसने पर उसने (भर्ग ने) क्रुद्ध होकर, मारने पर दाँत गिर पड़े। उस दिन से भग्नदन्त और अनपत्य (निस्संतान) होकर [पूष] पिष्टा आदियों का भक्षण करता रहा। त्वष्टा के दैत्यानुजा रचना नामक कन्या के अधिक बलाढ्य विश्वरूप पैदा हुआ। तब (किसी समय) वे देवता बृहस्पति पर क्रुद्ध हुए तो वह हटकर चला गया। [तब उन्होने] अपने लिए आचार्य के रूप में विश्वरूप का वरण किया। ऐसा कहने पर, सुनकर, शुकयोगीन्द्र से परीक्षित् नरेंद्र ने यों कहा—२५८

## अध्याय—७

[सी.] हे योगींद्र ! सोचने पर अद्भुत-सा लग रहा है। देवताओं पर सुरगुरु (बृहस्पति) क्यों क्रुद्ध हुए। इसने गुरुभाव से देवताओं की

नॅऱ्रिंगिपु मनयुड्डु निद्रुंड्डु त्रिभुवनैश्वर्य मदंबुन सत्पथंबु
गानक वसु रुद्र गणमुलु नादित्य मरुदश्विदेवादि मंडलमुलु

ते. सिद्ध चारण गंधर्व जिह्वगादि
सुरुलु मुनुलुनु रंभादि सुंदरांगु-
लाड बाडंग विनुति सेयंग गॊलुव
नॊक्क भद्रासनंबुन नुक्कुमीऱ्रि ॥ 259 ॥

सी. निंडु पुन्नमनाडु गंडरिंचिन चंद्रु मंडल श्रीलतो माऱुमलय
भद्र विद्योतातपत्रंबु ग्रालंग मिन्नेटि तरगल मेलुकॊलुप
गलित दिव्यांगना करतल चातुर्य चामरश्रेणुलु जाड पडग
जितामणिस्फुट कांत रत्नानेक घटित सिंहासनाग्रंबुनंदु

ते. नूरु पीठंबु पै शचि युंड नुंडि
वरुस दिक्पालकादि देवतलु गॊलुव
साटि चॆप्पंग रानि राजसमु तोड
निद्दुडॊप्पारॆ वैभव सांद्रु डगुचु ॥ 260 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 261 ॥

कं. गुरुतर धर्मक्रिय नय, गुरुड्डु मरुन्मंत्र विषय गुरुड्डु वचश्श्री
गुरुड्डु समस्तामरगण, गुरुड्डु गुरुंडरुगुदॆंचॆ गॊल्वुनकु नृपा ! ॥ 262 ॥

किस विपत्ति को दूर किया ? बताओ। ऐसा कहने पर [शुकयोगीन्द्र ने यों कहा]। त्रिभुवन के ऐश्वर्य मद से सत्पथ को न देखकर (अच्छाई को न जानकर) वस्तु, रुद्रगण, आदित्य, मरुत, अश्विदेव आदि मण्डल, [ते.] सिद्ध, चारण, गंधर्व, जिह्मग आदि सुर-मुनि और रंभा आदि सुंदरांगियों के नाचने, गाने और विनुति (प्रशंसा) करते [सभा में] उपस्थित रहने पर एक भद्रासन पर इंद्र शोभा के साथ बैठा था। २५९ [सी.] पूर्ण पूर्णिमा के दिन शोभायमान चन्द्रमण्डल की श्रीयों के प्रतिमान-सा दिखाई पड़ते हुए, भद्र विद्योत-आतपत्र (-छात्र) के शोभा देने पर आकाश-गंगा की तरगों के [अपने को] जाग्रत् करने पर, कलित (सुन्दर) दिव्यांगनाओं के करतलों के चातुर्य से चामरश्रेणियों के डुलने पर, चिन्तामणि और स्फुट अनेक सुन्दर रत्नों से घटित (जड़ित) सिंहासन के अग्र भाग पर, [ते.] ऊरुपीठ पर (गोद में) शची के बैठे रहने पर, क्रम से दिक्पालक आदि देवताओं के सेवा करने पर बेमिसाल राजस के साथ वैभवसांद्र होते हुए इंद्र शोभायमान हुआ। २६० [व.] उस अवसर पर २६१ [कं.] हे नृप ! सभास्थली को गुरुतर-धर्म-क्रियाओं की नीति में गुरु (महान्), गुरु-मंत्र विषयों में गुरु, वचश्री (वाक्यों की संपदा) गुरु, समस्त अमरगणों में गुरु, ऐसा गुरु (बृहस्पति)

चं. अमित तपःप्रभावु गरुणात्मुनि गीष्पति जूचि राज्य दु-
र्दम मदरेख निद्रुडु वृथा तन गद्दिय लेवकुँडँ नें-
ग्यमुन नँडुकोँनं जनक यासन मीयक गौरवोपचा-
रमुल ब्रसन्नु जेयक दिरंबुग दिव्य सभांतरंबुनन् ॥ 263 ॥

कं. अप्पुडु सुरपति गन्नुल, गप्पिन सुरराज्य मदविकारंबुनकुं
जप्पुडु सेयक गृहमुन, कप्पुण्युडु विरिगि पोयें नति खिन्नुंडै ॥ 264 ॥

चं. अँरुगमि जेसिनट्टि गुरु हेळनमंत नँरिंगि यिंद्रु ड-
च्चॅरुपडि भीतिनोँवि यतिचिंतितुडै तलपोसि पल्कें न-
प्परम पवित्रु लोकनुतभव्य चरित्रु विशेष पादपं-
करुहमु बूजसेयक यकर्ममु जेसिति नल्पबुद्धिनै ॥ 265 ॥

कं. त्रिभुवन विभव मदंबुन
सभलोमद्गुरुवुनकु ब्रसन्नुनकु लस-
त्प्रभुवुनकु नॅग्गु सेसिति
शुभमुलु दोलगंग नें नसुरभावमुनन् ॥ 266 ॥

आ. पापमेष्ठ्यमयिन पदवि नोंदिन भूपु
लॅट्टि वारिकैन लेववलदु
विबुधुलिट्लु सॅप्पु विधमॅन्न वारलु
धर्मवेत्तलनुच दलप बडरु ॥ 267 ॥

---

आ पहुँचा । २६२ [चं.] अमित तपप्रभाव वाले, करुणात्मा वाले, गीष्पति (बृहस्पति) को देखकर राज्य-दुर्दम-मदरेखा से युक्त इंद्र अपनी गद्दी से उतरकर न रहा (गद्दी से उतर नहीं पड़ा) । प्रेम से अगवानी करने न जाकर, आसन न देकर, गौरव-उपचारों से प्रसन्न न कर, दिव्य सभांतर में स्थिरता से रहा । २६३ [कं.] तब सुरपति की आँखों को आवृत किये सुरराज [के अधिकार] के मद-विकार के कारण चुप रहकर, वह पुण्यात्मा अति खिन्न बनकर घर चला गया । २६४ [चं.] तब अज्ञान से गुरु के प्रति की गयी अवहेलना को जानकर आश्चर्यचकित होकर, भीत होकर, अति चिन्तित बनकर, सोचकर, इन्द्र ने यों कहा— उस परमपवित्र [व्यक्ति] की, लोकनुत भव्यचरित्र वाले के पाद-पंकरुह (चरण-कमल) की पूजा न करके अल्प बुद्धि वाला होकर अकर्म (दुष्कर्म) किया है । २६५ [कं.] मैंने असुर-भाव से, त्रिभुवन-विभव के मद से सभा में अपने गुरु का, प्रसन्न मनवाले का, लसत् प्रभु के प्रति बुरा [आचरण] किया । इससे मेरे लिए सब शुभ मिट जायेंगे । २६६ [आ.] सारमेष्ठ्य (कुत्ते की जूठन) जैसे [राज्य] पद को प्राप्त करने पर भूपों (राजाओं) के किसी को देखकर उठना नहीं चाहिए, इस प्रकार से कहनेवाले विबुध कभी धर्म-

ते. कुपथ वर्तुलगुचु गुत्सित दुर्वचो-
निपुणुलैन वारु निडिवि दॅलिसि
तॉलग लेक तारधोगति बड्डुरु
तप्पुलेक राति तॅप्प भंगि ॥ 268 ॥

उ. कावुन लोकवंदितुनि कार्य विचारुनि यिंटि केगि त-
त्पावन पाद पद्ममुलपै मकुटंबु घटिल्ल म्रॉक्कि त-
त्सेव यॉनर्चि चित्तमु वशिंचि प्रसन्नुनि जेतुनंचु न-
द्देव विभुंडु वोयॅ नति तीव्र गति गुरु धाम सीमकुन् ॥ 269 ॥

सी. ई रीति दनयिंटि केतेंचु देवतापति राक या बृहस्पति यॅरिंगि
यध्यात्म मायचे नडगि यदृश्युडै पोयॅ नप्पुडु देवपुंगवुंडु
सकलंबु बरिकिंचि जाड गानक गुरु जिंतिचि तलपोसि चिन्नबोयॅ
बोयिन विधमॅल्ल दायलु राक्षसवीरुलु वेगुलवारि वलन

ते. दॅलिसि मिक्किलि दमलोन दॅलिविनोंदि
यंदरुनु गूडि भार्गवु नाश्रयिंचि
तत्कृपादृष्टि दमशक्ति वट्टमैन
देवतलमीदि दाडिकि दॅरुवु वॅट्टि ॥ 270 ॥

---

वेत्ता नही माने जाते। २६७ [ते.] कुपथगामी होते हुए कुत्सित और दुर्वचनों में निपुण बननेवाले, गहराई को न जानकर [उस मार्ग से] हट न सक पत्थर की नौका पर बैठनेवालों के समान अवश्य ही अधोगति को प्राप्त करेंगे। २६८ [उ.] इसलिए लोक-वन्दित और कार्य के विचार [की गति को] जाननेवाले (बृहस्पति) के घर जाकर उनके पावन पद-पद्मों पर मुकुट लगे ऐसा प्रणाम कर, उनकी सेवा कर [उनके] चित्त को वश में कर, प्रसन्न करूँगा। ऐसा कहते हुए वह देवविभु (इंद्र) अति तीव्र गति से (शीघ्र गति से), गुरु धाम-सीमा (गुरुगृह) को गया। २६९ [सी.] इस प्रकार अपने घर आनेवाले देवतापति (इद्र) के आगमन को उस बृहस्पति ने जान लिया। और अध्यात्म माया से दबकर अदृश्य हो गया। तब देव-पुंगव (-श्रेष्ठ) ने समस्त [प्रदेश] का परिशीलन कर, पता न लगा सक, गुरु के बारे में चिन्ता कर [अपनी मूर्खता के बारे में] सोचकर खिन्न बन गया। [खिन्न] बन जाने के समस्त विधान को ज्ञाति राक्षस वीरों ने गुप्तचरों से जानकर अपने में अधिक सचेत होकर सबने मिलकर भार्गव का आश्रय लिया। [ते.] उसकी कृपा-दृष्टि से अपनी शक्ति से सांद्र देवताओं पर आक्रमण करने के उपाय के बारे में सोचकर, [भार्गव का आश्रय लिया]। २७०

देवासुर युद्ध प्रारम्भमु

कं. धूर्तुलु समस्त किल्बिष, मूर्तुलु वर धर्म कर्ममोचित मार्गा-
वर्तुलु दुर्णय निर्मित, कीर्तुलु दानवुलु सनिरि गीर्वाणुलपै ॥ 271 ॥

स्र. वंडि गोवंडकांडोद्धत रथ हय वेदंड तंडंबु तोडन्
वंडॆत्तॆन् मॆड्डुगा नद्दनुज निकरमुल् देववर्गंबु मीदं
जंड ब्रह्मांड भेद्योच्छ्रय जयरवमुल् सर्वदिक् क्षोभगा नु-
द्दंड प्रख्यात लीलन् दलपडिरि सुरल् दर्पुलै वारि तोडन् ॥ 272 ॥

च. मदमुन देवदानवुलु मच्चरमुल् गडु बिच्चलिप सं-
पदलनु गोरि पोरुनॆड भार्गव मंत्र कळा विशेषुलै
यॆदुरुलु वालि यस्त्रमुलु नेय महासुर लेचियेचि पैं
गुदुलुग पुव्व देवतलु कोल्तल कोर्वक पारिरय्यॆडन् ॥ 273 ॥

आ. दनुज वीर लेयु दारुण दिव्यास्त्र, दळितदेहुलगुचु दललु वीड
नोडि पारि रद्भुतोपेत बलुलैन, त्रिदशवरुलु बिट्टु दिट्टिनट्लु ॥ 274 ॥

कं. ओक मोगमु गाक दिविजुलु
तिकमक गोनि वैरुलॆल्ल वीकोन दम्मुं

---

देवासुर-युद्ध का प्रारम्भ

[कं.] धूर्त समस्त किल्विषों (पापों) के मूर्तिमान रूप द्वारा धर्म और कर्म से विमुक्त (रहित) मार्ग का अनुवर्तन करनेवाले दुर्नय (दुर्नीति) के कारण निर्मित (प्राप्त) कीर्ति वाले दानव गीर्वाणों (देवताओं) पर गये (आक्रमण किया) २७१ [स्र.] दनुज-निकर ने भूरि कोदण्ड-काण्ड (धनुष-बाण) से उद्धत बने रथ-हय, वेदण्ड (गज)-तण्ड (समूह) के साथ औद्धत्य से देव-वर्ग पर आक्रमण किया। चण्ड ब्रह्माण्ड का भेदन करने में उच्च बने जय-जयकार के सर्वदिशाओं को क्षुब्ध करने पर उद्धण्ड-प्रख्यात्-लीला (-विधान) से देवता दर्पित होकर उनसे (दानवों से) जूझ पड़े। २७२ [चं.] मद से देव और दानव मात्सर्य के अधिकता से उभरने पर संपदाओं को चाहकर लड़ रहे थे। उस अवसर पर भार्गव की मंत्रकला से विशिष्ट बनकर सामना कर, महान् असुरों के विजृंभित होकर अस्त्र फेंकने पर, उनके (बाणों के) समूह रूप में आकर चुभने पर देवता उन बाणों को सह न सक भाग निकले। २७३ [आ.] त्रिदशवर (देवता श्रेष्ठ) जो अद्भुत बल से युक्त हैं अधिक घायल होकर दनुजवीरों के दारुण दिव्यास्त्रों के कारण दलित देह वाले और केशों के बिखरने पर हारकर भाग गये। २७४ [कं.] दिविज (देवता) परेशान होकर

बकपकलै नकनकलै
लुक्लुक बरुवॅत्तिरोडि लोगॉनु भीतिन् ॥ 275 ॥

चं. दनुजुल गर्वरेखयुनु दानववीरुल यंपजोकयुन्
मनुज विशेष भोजनुल मच्चरिकंबु निशाट कोटि ये
चिन बलशौर्यमुं दमकु सिग्गुनु हानि महाभयंबु नि-
र्गुणतनु जेय नुम्मलिक गोल्तल कोपक पारि रार्तुलै ॥ 276 ॥

कं. अमरुलु विसृष्ट दानव
समरुलु शरभिन्न देह संतापगुण-
भ्रमरुलु दैत्य किरातक
चमरुलु कमलजुनि कडकु जनिरि भयार्तिन् ॥ 277 ॥

उ. धातकु देवता विभव दातकु बुण्य जनानुराग सं-
धातकु सर्वलोक हित दातकु वैदिक धर्ममार्ग नि-
र्णेतकु नुल्लसद्विभव नेतकु सर्वजगज्जयांगज
भ्रातकु बुण्य योगिजन भाव विजेतकु म्रॉक्किरय्यॅडन् ॥ 278 ॥

कं. आखंडलुंडु मॉदलुग, लेखानीकमुल ब्रह्म ले नगवुन नि-
त्याखंड सत्कृपारस, शेखर वाक्यमुल वारि सेदलु देर्चॅन् ॥ 279 ॥

---

समस्त [शत्रु] वीरों के टकराने पर, बिखरकर एक दिशा में न होकर (चारों तरफ़) हारकर मन, में उत्पन्न भय के कारण भाग गये। २७५ [चं.] दनुजों की गर्वरेखा, और दानव वीरों के अस्त्र-प्रवाह के और मनुजाशनों (मनुष्यों को खानेवालों) के मात्सर्य के, निशाट (निशाचर) कोटि के विजृंभित बल-शौर्यों के अपने को लज्जा, हानि, महाभय और निर्गुण (विमूढ़) बनाने पर, व्याकुलता से आर्त बनकर [राक्षसों के] बाणों का सहन न कर सक भाग गये। २७६ [कं.] विश्रृष्ट दानव-समर (दानवों से युद्ध में हारे हुए) शरभिन्न (बाणों से छिन्न) देह के संताप गुण के कारण भ्रमर (भ्रमरों के समान [आर्त] नाद करनेवाले), दैत्य किरातकों के हाथ चमरीमृग बने हुए देवगण कमलज (ब्रह्मा) के पास भय और आर्ति के कारण गये। २७७ [उ.] धाता को, देवता-विभव-दाता को, पुण्य जनानुराग संधाता को, सर्वलोक-हितदाता को, वैदिकधर्म-मार्ग-निर्णेता को, उल्लसत-विभव-नेता को, सर्वजगत-जयांगज के भ्राता को, पुण्य योगिजन भाव विजेता को उस अवसर पर [देवताओं ने] प्रणाम किया। २७८ [कं.] आखण्डल (इंद्र) से लेकर अन्य देवता-समूहों को ब्रह्मा ने मंदहास से, नित्य-अखण्ड सत्कृपा-रस-शेखर (-श्रेष्ठ) वाक्यों से उनकी थकान दूर की (सान्त्वना दी)। २७९ [व.] इस प्रकार ब्रह्मदेव ने देवेंद्र आदि

व. इट्लु ब्रह्मदेवुंडु देवेंद्रप्रमुखुलैनं देवतल कनुकंपाति विभवंबुन नभयंबोसंगि यिट्लनियें ॥ 280 ॥

उ. नेंट्रन बाप कर्मंमुन नेरमि जेसितिरेमि चेंप्प ! मी
पुट्टिन नाट नुंडियुनु बुद्धुल सेंप्पि जगंबु लेलगा
बट्टमु गट्टि पेंचिन कृपानिधि ब्रह्म कळा विधिज्ञु जे-
पट्टक गुट्टु जारि सिरि पट्टन दोट्टिन पोंट्टु क्रोव्वनुन् ॥ 281 ॥

व. ब्रह्मिष्ठुंडैन ब्राह्मणु नाचार्यु गेकोनक गुरु द्रोहंबु जेसितिरि। तद्दोषं बिपुडु मीकु जेसेत शत्रु कृतंब यनुभविपंजेसें। अति बलवंतुलैन मिम्मु नति क्षीणुलैन राक्षसुलु जयिचट, तम याचार्युडैन शुक्रु नाराधिचि तन्मंत्रप्रभावंबुन बुनर्लब्धवीर्युलगुट चेतने। इप्पुडु मदीयंबैन निलयंबु नाक्रमिपं गलवारै मदोद्रेकंबुन नेंदुरुलेक वर्तिल्लुचुन्न रक्षोनायकुलकु द्रिदिवंबु गोनुट तृणप्रायंबु। अभेद्य मंत्रबलंबु गल भार्गवुनकु वार शिष्युलगुटं जेसि विप्र गोविंद गवेश्वरानुग्रहंबु गलवारलकु दक्कं दक्किन राजुल करिष्टंबगु। कावुन मोरिप्पुडु त्वष्टयनु मनुपुत्रुंडगु विश्वरूपुंडगु मुनि निश्चल तपोमहत्त्व सत्त्व स्वभावुंडगु नतनि नाराधिचिन, मोकु नभीष्टार्थंबु नतंडु संघटिल्ल जेयु। ऎट्टि दुर्दशलनैन

देवताओं को अनुकपा के अति वैभव (अतिशय) से अभय देकर यों कहा। २८० [उ.] अज्ञानता से महान् पाप किया। क्या कहूँ ? तुम्हारे उत्पन्न होने से लेकर बुद्धि (हित) सिखाकर जगों पर शासन करने के लिए राजतिलक कराकर पोषण करनेवाले कृपानिधि, ब्रह्मकला-विधिज्ञ (बृहस्पति) को अपने वश में न रखकर अधिक मद के कारण हाथ से निकल जानेवाली श्री (सपत्ति) के समान खो दिया। २८१ [व.] ब्रह्मिष्ठ (ब्रह्मज्ञानी) बने हुए ब्राह्मण और आचार्य को स्वीकार न कर गुरु-द्रोह किया। उस दोष के कारण अब आपको अपने किये के फल को, शत्रुकृत होकर [उसे] भोगना पड़ा। अति बलवान बने हुए तुम को अति क्षीण राक्षसों का जीत सकना, अपने आचार्य शुक्र की आराधना करके उनके मंत्र के प्रभाव से पुनर्लब्ध वीर्य वाले होने के कारण ही [संभव हुआ]। अब मेरे निलय को आक्रान्त करनेवाले बनकर मदोद्रेक से असमान बनकर संचरित होनेवाले राक्षस-नायकों के लिए त्रिदिव (स्वर्ग) को अपने वश में कर लेना तृणप्राय (अति सरल) है। अभेद्य मंत्रबल वाले भार्गव के शिष्य होने के कारण, [राक्षसों के द्वारा] विप्र, गोविन्द और गवेश्वर के अनुग्रह से युक्त जनों को छोड़कर अन्य राजाओं का अरिष्ट होगा। इसलिए आप अब त्वष्टा नामक मनुपुत्र, विश्वरूप नामक मुनि जो निश्चल तपोमहत्व-सत्व स्वभाव वाले की आराधना करें तो वह आपके लिए अभीष्ट अर्थों को प्राप्त करायेगा। जितनी भी दुर्दशा क्यों न हो उसका

नतंडडंचु। अनि चॆप्पिन दिक्पालकादुलु डॆंदंबुल डिंदुपडि, कमल गर्भु नि वीड्कॊनि, विश्वरूपु कडकुं जनि यिट्लनिरि ॥ 282 ॥

ते. अन्न ! मेलगु नीकु निन्नडुग गोरि
वच्चिनारमु भवदीय वनमुनकुनु
वंड्रुलकु नेड् समयोचितंबुलैन
कोर्कॆ लीनगूड जेसि चेकॊनुमु यशमु ॥ 283 ॥

कं. सुतुलकु पितृशुश्रूषण, मति पुण्यमु सेयुचुंडु नात्मजुलु गुणो-
न्नति ब्रह्मचारुलैननु, मतितो गुरु सेवकन्न मडियुं गलदे ? ॥ 284 ॥

व. अदियुनुंगाक ॥ 285 ॥

सी. अरय नाचार्युडु परतत्त्वरूपंबु दंड्रि तलंपंग धातरूपु
रूपिप भ्रात मरुत्पति रूपंबु दॆलियंग दल्लि भूदेविरूपु
भगिनि करुणरूपु भावंबु धर्म स्वरूपंबु दानथिरूपु मॊदल
नभ्यागतुडु मुन्न यग्निदेवुनि रूपु सर्वभूतमुलु गेशवुनिरूपु

ते. गान दंड्रि ! वेग गडु नार्तुलगु पितृ
जनुलमैन मम्मु जल्ल जूचि
परभयंबु वापि निरुपमंबगु तपो-
महिमचेत मॆडसि मनुपवय्य ! ॥ 286 ॥

---

दमन करेगा। ऐसा कहने पर दिक्पाल आदियों के मन स्वस्थ हुए। कमलगर्भ से विदा लेकर [देवता] विश्वरूप के पास जाकर यों बोले। २८२ [ते.] हे तात ! तुम्हारा भला हो। तुमसे [कुछ वर] माँगने के लिए तुम्हारे वन में आये हैं। [अपने] पिताओं के लिए समयोचित इच्छाओं की पूर्ति करके यश को प्राप्त करो। २८३ [कं.] पुत्रों के लिए पितृ-शुश्रूषा अति पुण्यप्रद है। आत्मजों के गुणोन्नति से और ब्रह्मचारी होने पर भी जान बूझ कर गुरु-सेवा करने से बढ़कर और कुछ [पुण्यप्रद कार्य] है क्या ? २८४ [व.] इसके अतिरिक्त २८५ [सी.] सोचने पर आचार्य परतत्त्व का स्वरूप है। सोचने पर पिता धाता ब्रह्मा के समान है। भ्राता मरुत्पति के रूपवाला है। जानने पर माता भूदेवी के स्वरूप वाली है। भगिनी करुणा के रूप वाली है। भाव धर्म स्वरूप है। अभ्यागत (अतिथि) अग्निदेव के रूप वाले हैं। सर्वभूत केशव के रूप वाले है। [ते.] अतः हे तात ! अधिक आर्त बने हुए हमें पितृजनों के प्रति वात्सल्य भाव से युक्त होकर देखकर, परभय (शत्रुभय) को दूर कर निरुपम तपोमहिमा से विलसित होकर [हमारी] रक्षा करो। २८६ [व.] अब ब्रह्मनिष्ठ बने हुए तुम्हें

व. इट्पुडु ब्रह्मनिष्ठुंडवैन निन्नु नाचार्युनिगा वरिंचि, भवदीय तेजोविशेषंबुचेत वैरि वीरुलं बरिमार्चेदमु। आत्मीयार्थंबैन यविष्ठ पादाभिवंदनंबु निंदितंबु गादनि वेदवाक्यंबु गलवु। कावुन नीकु नमस्करिंचुचुन्न देवतलंगैकोनि पौरोहित्यंबु सेयुमु। अनिन ब्रह्म सितवदनुंडै यम्मुनीश्वरुं-डिट्लनियॆ ॥ 287 ॥

आ. ब्रह्म वर्चस्सु वोयॆडि प्रार्थनंबु
धर्मगुण गर्हितंबनि तानॆरिंगि
सॊरिदि ननुबोटि तपसि सुरलचेत
ब्रकट मधुरोक्ति नेटिकि बलुक बडियॆ ॥ 288 ॥

व. बिशेषिंचि ॥ 289 ॥

कं. गुरु धनमु गूर्प नेटिकि, गुरु शिक्षंवगिलि मंत्र कोविदुलै स-
द्गुरुधर्म निरतुलैनियु, गुरुवुलकुनु शिष्यवरुलॆ कूर्चिन धनमुल् ॥290॥

सी. अरय नकिंचनु लैनट्टि वारिकि दगु शिलोंछनवृत्ति धनमु सुम्मु
दानिचे निर्वर्तित प्रिय साधु सत्क्रियलु गलवारलै प्रीतिनॊंदॆ
दरु गान सद्गर्हिताचारमैन याचार्यत्व मिपुडु मी शासनमुन
गैकॊंटि गुरुवुल कामंबु प्राणार्थ वंचनमुलु लेक वडि नीनर्तु

आ. ननुचु विश्वरूपु डनियॆडि मुनि प्रति-
ज्ञोक्ति बलिकॆ वारि नूरडिंचि

आचार्य के रूप में वरण कर, तुम्हारे तेजोविशेष से वैरिवीरों का संहार करेंगे। आत्मायार्थ (स्वार्थ के लिए) यविष्ठ (कनिष्ठ) का पादाभिवन्दन निन्दित नहीं है, ऐसा कहनेवाला वेद-वाक्य है। अतः तुम्हें नमस्कार करनेवाले देवताओं को स्वीकार कर पौरोहित्य करो। [ऐसा] कहने पर प्रहसित बदनवाला (हँसमुख) बनकर उस मुनीश्वर ने यों कहा— २८७ [आ.] [दूसरों की] प्रार्थना से ब्रह्म-वर्चस्व दूर हो जायेगा। यह धर्म गुण से गर्हित है। यह जानकर क्रम से मुझ जैसे तपस्वी इन देवताओं से प्रकट मधुरोक्तियों से आज प्रार्थित हुआ। २८८ [व.] विशेष करके २८९ [कं.] गुरु को धन जमा करने की क्या आवश्यकता है। गुरु-शिक्षा में लग्न होकर सद्गुरु-धर्म-निरत रहनेवाले शिष्यवर ही गुरुओं के लिए संचित धन हैं। २९० [सी.] सोचने पर अकिंचन लोगों के लिए उचित रूप से शिला-उंछन वृत्ति ही धन है। उससे प्रिय साधु सत्क्रियाओं का निर्वहण करनेवाले होकर प्रीत होते हैं। अतः सद्गर्हिताचार होनेवाले आचार्यत्व को अब आपके शासन (आदेश) से ग्रहण किया। गुरुओं के काम (कर्तव्य) को प्राण-अर्थ की वंचना से रहित होकर झट करूँगा। [आ.] [ऐसा] कहते हुए

महितमैन तत्समाधिचे गुरु भाव
ममरजेसें देव समिति कपुडु ॥ 291 ॥

कं. भार्गवविद्या गुप्त, स्वर्ग श्री द्विगुण दनुज समधिक संप-
द्वर्गमुल विष्णुमाया, -नर्गळगति देंच्चि यिद्रुनकु निच्चें नृपा ! 292 ॥

कं. एविद्यचेत रक्षितुडै वज्रि दुरंबुलोन नसुरुल ड्रुंचेन्
भाविप नट्टि विद्यनु, श्री वरमायामतंबु जेप्पेन् हरिकिन् ॥ 293 ॥

## अध्यायमु—८

उ. नावुडु पांडवान्वयुडु नम्मिन भक्ति जगन्निवासु रा-
जीवदळाक्षु गृष्णु दन चित्तमुनं भजियिंचि पल्के नो
देवगणार्चितांघ्रियुग ! दिव्यमुनीश्वर ! विश्वरूपुड-
प्पावनमैन विद्य सुरपालन केक्रिय निच्चें ? जेप्पवे ! ॥ 294 ॥

उ. अँदुनु रक्षितुंडगुचु निंद्रुडु लीलय पोलें वेरि से-
नं दुनुमाडि देवतलु नम्मि सुखिपग निष्ट संपदं

---

विश्वरूप नामक मुनि ने प्रतिज्ञावचन कहे [और] उन्हें (देवताओं को) सान्त्वना देकर महित बनी समाधि के प्रभाव से देव समिति के मन में तब गुरु भाव को ठीक ढंग से उत्पन्न किया २९१ [कं.] हे नृप ! भार्गव-विद्या से गुप्त बने स्वर्गश्री को दनुज-समधिक संपद्वर्गों के द्विगुण (राक्षसों की संपदा से दुगनी सम्पत्ति) विष्णु-माया के कारण अनर्गल (अबाध) गति से लाकर इंद्र को दिया । २९२ [कं.] जिस विद्या से रक्षित होकर वज्री (इंद्र) ने समर मे असुरो का संहार किया, सोचने पर उसी प्रकार की विद्या को जो श्रीवर मायामत वाला है [उसे] झट बताया । २९३

## अध्याय—८

[उ.] ऐसा कहने पर पाण्डवान्वय (पांडव वंश वाले) ने अत्यंत भक्ति से जगन्निवास (समस्त जग मे निवास करनेवाले), राजीव-दलाक्ष कृष्ण का अपने चित्त में भजन (स्मरण) कर कहा— हे देवगणार्चित अंघ्रि युगवाले, हे दिव्य मुनीश्वर ! विश्वरूप ने वह पावन विद्या सुरपालन के लिए (इंद्र) को किस रूप से दिया ? कहो न । २९४ [उ.] हे मुनींद्र ! सर्वत्र रक्षित होते हुए इंद्र लीला (खेल) के समान वैरि-सेना का संहार कर देवताओं के विश्वासपात्र होकर [देवताओं के] सुखी होने पर, इष्ट संपदाओं को प्राप्त कर, समस्त लोकों को अपने हाथ में लेकर शासन

जॆंदि समस्तलोकमुलु जेकॊनि येलॆं मुनींद्र! दानिने
विदु सुखंबु गंदु निक वीनुलु संतसमंद वल्कवे! ॥ 295 ॥

श्रीमन्नारायण कवच प्रारम्भमु

कं. वर नारायण कवचमु, नरि भीकर वज्र कवच माश्रित संप-
त्परिणाम कर्म सुवचमु, पुरुहूतुन कॆट्लु मौनि बोधिचॆं ? दगन् ॥ 296 ॥

व. अनिनं बरीक्षिज्जनपालुनकु मुनिनाथुं डिट्लनियॆ ॥ 297 ॥

सी. विनवय्य ! नरनाथ ! मुनिनाथुडिद्रुन कनुवॊंद नारायणाख्यमैन
कवचंबु विजयसंकल्पंबु नप्रमेय स्वरूपंबु महाफलंबु
मंत्रगोप्यमु हरि माया विशेषंबु सांगंबुतोड नॆरुंगजेसॆं
दानिने विनिपिंतु बूनि तदेकाग्रचित्तंबुतोडत जित्तगिपु

ते. मॊनर धौतांघ्रिपाणियै युत्तरंबु
मुखमुगा नुत्तमासनमुन वसिंचि
कृत निजांग करन्यास मतिशयिल्ल
महित नारायणाख्य वर्ममु नॊनचॆं ॥ 298 ॥

व. इट्लु नारायण कवचंबु घटियिचि, पादंबुलनु, जानुवुलनु, ऊरुवुलनु,
उदरंबुननु, हृदयंबुननु, उरंबुननु, मुखंबुननु, शिरंबुन निट्लष्टांगंबुलं

---

कैसे किया। मैं उसे सुनूँगा। सुख पाऊँगा। अब कान सतुष्ट बने ऐसा कहो न। २९५

श्रीमन्नानारायण-कवच का प्रारंभ

[कं.] वर नारायण कवच का, अरि-भीकर-वज्र कवच का, आश्रित-सम्पत-परिणाम-कर्म सुवच (अच्छे वाक्य) का औचित्य से पुरुहूत (इंद्र) को मुनि ने कैसे सिखाया। २९६ [व.] [ऐसा] कहने पर परीक्षित जनपाल से मुनिनाथ ने यों कहा— २९७ [सी.] हे नरनाथ! सुनो, मुनिनाथ ने उचित रूप से इन्द्र को नारायणाख्य (नारायण नाम वाले) कवच को, जो विजय-संकल्प वाला है, अप्रमेय स्वरूप वाला है, महाफल [दाता] है, मंत्र-गोप्य है, हरि की माया विशेष से युक्त है, सांग रूप से समझाया। उसे मैं सुनाता हूँ। सप्रयत्न एकाग्र चित्त से अवधारण करो। [ते.] उचित रूप से अंघ्रि (चरण) और पाणि को धोकर, उत्तर की तरफ़ मुख करके, उत्तमासन पर बैठकर, निजांग करन्यास के करने पर, अतिशयता को प्राप्त कर महित नारायण नामक वर्म (कवच) को दिया। २९८ [व.] इस प्रकार नारायण कवच को संगठित कर पाद, जानु, ऊरु, उदर, हृदय, उर, मुख, सिर, इन अष्टांगों से प्रणव-पूर्वक

प्रणवपूर्वकंबैन यष्टाक्षरी मंत्रराजंबु न्यासंबु जेसि, द्वादशाक्षर विद्यचेत करन्यासंबु चेसि, मंत्रमूर्तियै प्रणवादि यकारांतमगु महामंत्रंबुचेत नंगुळ्यंगुष्ठ पर्व संधुलयंदु न्यसिंचि, मरियु हृदयंबुन ओंकारमु, विकारंबु मूर्थंबुन, षकारंबु भ्रूमध्यंबनंदु, णकारंबु शिखयंदु, वेकारंबु नेत्रंबुल यंदु, नकारंबु सर्व संधुलयंदु, मरियु नस्त्रमु नुद्देशिंचि मकारंबुनु न्यसिंचे नेनि मंत्रमूर्तियगु। मरियुनु अस्त्रायफट् अनु मंत्रंबुन दिग्बंधनंबु चेसि, परमेश्वरुनि वन भावंबुन निलिप भगवच्छब्द वाच्यंबुनु, विद्यामूर्तियु, तपोमूर्तियुनगु षट्छक्ति संयुतंबैन नारायण कवचाख्यमैन मंत्रराजंबु निट्लनि पठिंचें ॥ 299 ॥

चं. गरुडुनि मूपुपै पदयुगंबु घटिल्लग शंखचक्र च-
र्म रुचिर शार्ङ्ग खड्ग शर राजित पाश गदादि साधनो-
त्कर निकरंबु लात्म करकंजमुलं धरियिंचि भूति सं-
भरित महाष्टबाहुडु कृपामतितो ननु गाचु गावुतन् ॥ 300 ॥

आ. प्रकट मकर वरुणपाशंबुलंदुल, जलमुलंदु नेंदु वौलियकुंड
गाचुगाक नन्नु घनुडॊक्कडैनट्टि, मत्स्यमूर्ति विद्यमानकीर्ति ॥ 301 ॥

कं. वटुडु समाश्रित माया, नटुडु बलिप्रबल शोभन प्रतिघटनो-
द्भटुडु तिविक्रमदेवुडु, चटुल स्थलमंदु नन्नु संरक्षिंचुन् ॥ 302 ॥

---

अष्टाक्षरी मंत्रराज का न्यास कर, द्वादशाक्षर विद्या से करन्यास कर, मंत्रमूर्ति बनकर प्रणवादि अकारांत महामंत्र से अँगुली-अंगुष्ठ पर्व संधियों में न्यास कर और हृदय में ओंकार, मूर्ध में विकार, भ्रूमध्य में षकार, शिखा में नकार, नेत्रों में वकार, सर्व संधियों में नकार और अस्त्र को उद्दिष्ट कर मकार का न्यास करें तो मंत्र-मूर्ति होता है और अस्त्राय फट नामक मंत्र से दिक्-बंधन कर, परमेश्वर को अपने भाव में स्थिर कर, भगवत्-शब्द वाच्य (भगवान शब्द से अभिहित होनेवाले) विद्यामूर्ति, तपोमूर्ति होनेवाले, षट्-शक्ति-संयुक्त नारायण कवच नामक मंत्र-राज का इस प्रकार पठन किया। २९९ [चं.] गरुड़ की पीठ पर पदयुगों के संघटित होने पर, शंख, चक्र, वर्म, रुचिर शारंग, खड्ग, शर, राजित पाश, गदा आदि साधनोत्तर के निकरों को आत्म-कर-कंजों में धारण कर, भूति (ऐश्वर्य)-संभरित महान् आठ बाहुओं वाला [नारायण] कृपा-मति से मेरी रक्षा करे। ३०० [आ.] विद्यमान् कीर्तिवाला, मत्स्य मूर्ति वाला, महान् जो है वह मुझे प्रकट मकर-वरुण-पाशों से, जलों में कहीं भी मृत्यु न हो ऐसा बचावे। ३०१ [कं.] वटु (ब्रह्मचारी) समाश्रित मायानट, (जो माया से समाश्रित होकर अभिनय, लीला करता है), बलि (राजा बलि) के प्रबल शोभन (वैभव) के प्रतिघटन (प्रतिकूल व्यवहार) में उद्भट

चं. अडवुल संकटस्थलुल नाजि मुखंबुल नग्नि कीललं
दॆंडरुल नॆल्ल नाकु नुति कॆक्कग विक्कगु गाक श्री नृसिं-
हुडु कनकाक्ष राक्षस वधोग्रुडु विस्फुरिताट्टहास व-
क्त्रुडु घन दंष्ट्रपावक विधूत दिगंतरुडप्रमेयुडै ॥ 303 ॥

चं. अरयग नॆल्ल लोकमुलु नंकिलि नॊंद महार्णवंबुलो
नॊरगि निमग्नमैन धर नुद्धति गॊम्मुन नॆत्तिनट्टि या
किरिपति यज्ञकल्पुडुरुखेलुडु नूर्जित मेदिनीमनो-
हरुडु कृपाविधेयुडु सदाध्वमुलन्ननु गाचु गावुतन् ॥ 304 ॥

कं. रामुडु राजकुलैक वि,-रामुडु भृगु सत्कुलाभिरामुडु सुगुण-
स्तोमुडु नन्नु रक्षिंचुचु, श्रीमहितोन्नतुडु नद्रि शिखरमुलंदुन् ॥ 305 ॥

सी. ताटक मर्दिंचि तपसि जन्नमु गाचि हरुविल्लु विरिचि धैर्यमुन मॆरसि
प्रबलुलैनट्टि विराध कबंधोग्र खरदूषणादि राक्षसुल दुनिमि
वानर विभु नेलि वालि गूलग नेसि जलराशि गर्वंबु जक्क जेसि
सेतुवु बंधिंचि चेरि रावण कुंभकर्णादि वीरुल गडिमि द्रुंचि

ते. यल विभीषणु लंककु नधिपु जेसि
भूमिसुत गूडि साकेत पुरमुनंदु

त्रिविक्रम देव जटिल स्थलों में मेरी संरक्षा करे। ३०२ [चं.] श्री नृसिंह कनकाक्ष (हिरण्याक्ष) राक्षस के वध करने में उग्र विस्फुरित अट्टहास से युक्त वक्त्र वाला, घन दंष्ट्राओं के पावक से विधूत बने दिगन्तरवाला अप्रमेय होकर अटवियों (जंगलों) में, संकट स्थलों मे, आजि-मुखों (युद्धभूमियों) में अग्नि-कीलाओं से, भयप्रद प्रदेशों में सुप्रसिद्ध रूप से मेरा रक्षक बने। ३०३ [चं.] सोचने पर समस्त लोकों के व्याकुल बनने पर महार्णव (महासमुद्र) में गिरकर निमग्न बनी हुई धरा को औद्धत्य से सींग (दंष्ट्राओं) पर उठाने वाला (धारण करनेवाला) वह किटि (वराह)-पति, यज्ञ-कल्प (यज्ञमूर्ति) उरु खेलन वाला, ऊर्जित, मेदिनी-मनोहर-कृपा-विधेय सदा कुपथ से मेरी रक्षा करे। ३०४ [कं.] रामराज-कुलैक राम, भृगु-सत्कुलाभिराम, सुगुणस्तोम, श्री-महित-उन्नत (श्री से महित और उन्नत), अद्रि शिखरों पर मेरी रक्षा करे। ३०५ [सी.] ताड़का-मर्दन कर, तपस्वी (विश्वामित्र) के यज्ञ की रक्षा कर, हर के धनुष को भंग कर, धैर्य (साहस) से प्रकाशमान होकर प्रबल विराध, कवन्ध, उग्र, खर, दूषण आदि राक्षसों का संहार कर, वानर-विभु (सुग्रीव) का पालन कर, वालि को गिराकर, जलराशि (समुद्र) के गर्व को चूर कर, सेतु बंधन कर, [लंका] पहुँचकर रावण, [ते.] कुंभकर्ण आदि वीरों को साहस के साथ संहार कर, विभीषण को लंका का अधिप (राजा) बनाकर भूमि-सुता

राज्य सुखमुलु गैकोन्न राम विभुडु
वरुस ननु ब्रोचुचुंडु ब्रवासगतुल ॥ 306 ॥

व. मरियु नखिल प्रमादंबुलैन यभिचार कर्मंबुवलन नारायणुंडुनु, गर्वंबु वलन नरुंडुनु, योगभ्रंशंबुवलन योगनाथुंडैन दत्तात्रेयुंडुनु, गर्मबंधंबुवलन गणेशुंडैन कपिलुंडुनु, गामदेवुनि वलन सनत्कुमारुंडुनु, मार्गंबुल देव-हेळनंबु जेयुटवलन श्रीहयग्रीवमूर्तियुनु, देवतानमस्कार तिरस्कार देवपूजाच्छिद्रंबुल वलन नारदुंडुनु, नशेष निरयंबु वलन गूर्मंबुनु, नपथ्यंबु-वलन भगवंतुंडैन धन्वंतरियुनु, द्वंद्वंबुवलन निर्जितात्मुंडैन ऋषभुंडुनु, जनापवादंबुवलन यज्ञदेवुंडुनु जनन मरणादुलं गलुग जेयु कर्मंबुलवलन बलभद्रुंडुनु, गालंबुवलन यमुंडुनु, सर्पगणंबुल वलन शेषुंडुनु, अप्रबोधंबु-वलन द्वैपायनुंडुनु, बाषंड समूहंबु वलन बुद्धदेवुंडुनु, शनैश्चरुनि वलन गल्कियुनै, धर्म रक्षण परुंडैन महावतारुंडु नन्नु रक्षिचुगात। प्रातस्संगम प्राह्णा मध्याह्नपराह्ण सायंकालंबुलनु प्रदोषार्धरात्रापररात्रा प्रत्यूषानुसंध्य प्रभातंबुलनु गदाद्यायुधंबुल धरियिंचि, केशव, गोविंद, नारायण, विष्णु, मधुसंहार, त्रिविक्रम, वामन, हृषीकेश, पद्मनाभ, श्रीवत्सधाम, सर्वेश्वरेश, जनार्दन, विश्वेश्वर, कालमूर्ति, यनु नाम रूपंबुलु गल देवुंडु नन्नु रक्षिंचु। प्रळयकालानलाति तीक्ष्ण संभ्रम

---

(सीता) के साथ साकेत पुर में राज्यसुख प्राप्त करनेवाला विभु राम क्रम से प्रवास गतियों में (विदेश निवास के अवसर पर) मेरी रक्षा करता रहे। ३०६ [व.] और अखिल प्रमाद (खतरा)-प्रद अभिचार कर्म से नारायण-गर्व से नरयोग-भ्रंश से योगनाथ दत्तात्रेय, कर्म-बंध से गणेश-कपिल कामदेव से सनत्कुमार, मार्गो में देव अवहेलना करने से श्री हयग्रीव मूर्ति, देवता नमस्कार मे तिरस्कार और देवपूजा में छिद्र (दोषों) से नारद अशेष निरय (नरक) से पूर्ण अपथ्य से भगवान धन्वतरी द्वन्द्व से निर्जितात्मा वाला ऋषभ जनापवाद (बदनामी) से यज्ञदेव, जनन-मरणादियों को उपस्थित करनेवाले कर्म से बलभद्र, काल से यम, सर्पगणों से शेष, अप्रबोध (असावधानी या अज्ञान) से द्वैपायन, पाखण्ड-समूह से बुद्धदेव, शनिश्चर से कल्कि, (इस प्रकार अनेक प्रकार की विपत्तियों से) धर्म-रक्षण-पर (रक्षण में रत रहनेवाला), महावतारी (नारायण) मेरी रक्षा करे। प्रातः संगम (संधि) प्राह्ण (उदयकाल) मध्याह्न, पराह्ण नामक प्रदोष, अर्धरात्र, अपरात्र, प्रत्यूषा, अनुसंध्या, प्रभात नामक गदा आदि आयुधों को धारण कर, केशव, गोविन्द, नारायण, विष्णु, मधुसंहार, त्रिविक्रम, वामन, ऋषिकेश, पद्मनाभ, श्रीवत्सधाम, सर्वेश्वरेश, जनार्दन, विश्वेश्वर, कालमूर्ति नामक नाम रूपों वाला देव मेरी रक्षा करे।

भ्रमण निर्वक्र विक्रम क्रम वक्रीकृत दनुजचक्रंबैन सुदर्शन नाम चक्रंब ! महावायु प्रेरितुंडै हुताशनुंडु नीरस तृणाटवुल भस्मीभूतंबु सेयु भंगि भगवत्प्रयुक्तंबै मद्वैरि सैन्यंबुल दग्धंबुलु गाविंपुमु। जगत्संहार काल पटु घटित चटुल महोत्पात गर्जारव तर्जन दशदिशाभिर्वाजित घनघनांतर निष्ठ्यूत निष्ठुर कोटि शतकोटि संस्पर्शस्फुर द्विस्फुलिंग निर्गमानर्गळ भुगभुगायमान मूर्ति विस्फूर्ति ! नारायण करकमलवर्ति ! गदायुधोत्तम ! मदीय वैरि तंडोपतंडबुल भंडनंबुलं जंडगति बिडगा, गूश्मांड वैनायक रक्षो भूत ग्रहंबुलं जूर्णंबुलुगा गौंडीक विनोदमु सलुपुमु। दरेंद्रंबवैन पांचजन्यंब ! सर्वलोक जिष्णुंडैन श्रीकृष्णुनि निखिल पुण्यैक सदन बदन निष्ठ्यूत निश्वासाधरवेणु परिपूरितंबवै युन्मत्त भूत प्रेत पिशाच विप्रग्रहादि क्रूर दुर्ग्रहंबुलु विद्रा-णंबुलुगा, नस्मत्परवीर मंडलंबुल गुंडियलतो वदीय मानिनी दुर्भर गर्भंबुलु गर्भस्थार्भक विवर्जितंबुलुगा नविय, ब्रह्मांडभांड भीकरंबैन भूरि नादंबुन मोदिंपुमु। अति तीव्र धारा दळित निशाट कोटि कठोर कंठ कराळ रक्तधारा धौत मलीमस विसरंब-बैन नंदक महासिशेखरंब। जगदीश प्रेरिंबवै मद्विद्वेषि विषम

---

प्रलयकाल के अनल के समान अति तीक्ष्ण संभ्रम-भ्रमण से निर्वक्र विक्रम के क्रम से दनुज-चक्र (समूह) को वक्रीकृत करनेवाले हे सुदर्शन नाम चक्र ! महावायु से प्रेरित होकर हुताशन (अग्नि देव) के नीरस सूखे तृणयुक्त अटवियों को भस्मीभूत करने के समान भगवान के द्वारा प्रयुक्त होकर मेरे वैरि-सैन्यों को दग्ध करो। जगत-संहार के काल में पटुता से घटित चटुल महा उत्पात गरजा-रव के तर्जन से दश दिशाओं को अभिचर्चित करनेवाले घन-घनान्तर से (काले बादलों से) निष्ठ्यूत निष्ठुर कोटि शत कोटि संस्पर्श स्फुरत् विस्फुलिंग निर्गम से अनर्गल (अबाध) रूप से भुग-भुग (प्रज्ज्वलित) होनेवाली विस्फूर्ति की मूर्तिवाले ! हे नारायण के कर-कमल में रहनेवाले ! हे उत्तम गदायुध मेरे वैरि-तण्ड और उपतण्डों (समूह और उपसमूहों) को मण्डन (युद्ध) चण्ड गति से चूर्ण कर, कूश्माण्ड, वैनायक रक्षसभूत ग्रहों को चूर्ण कर थोड़ी देर के लिए विनोद करो। हे पांचजन्य ! सर्वलोक-जिष्णु (-जीतनेवाले) श्रीकृष्ण के निखिल पुण्य के एक मात्र सदन रूपी वदन से निष्ठ्यूत निश्वास से अधर वेणु के परिपूरित होकर, उन्मत्त, भूत, प्रेत, पिशाच, विप्रग्रह (ब्रह्मराक्षस) आदि क्रूर दुर्ग्रहों के लिए विद्रावण के रूप में, मेरे शत्रुवीर मण्डलों के हृदयों के साथ, उनके मानिनियों के दुर्भर गर्भों के गर्भस्थ अर्भकों के लिए निर्भेदक हो उनको चूर-चूर करनेवाले रूप में, ब्रह्माण्ड-भाण्ड के लिए भीकर बने भूरि-नाद से मुदित हो जाओ। अति तीव्र धारा से निशाट कोटि के कठोर कण्ठों को दलित (काट देने से) करने से कराल रक्तधारा से धोये गये मलीमस

व्यूहंबुलु बडुवड मॆंडु गडिकंडलुग खंडिंचि चॆंडाडुमु। निष्कळंक निरांतक निश्शंक सांद्र चंद्रमंडल परिमंडित सर्वांग रक्षण विचक्षण धर्म निर्मितंब-वैन चर्मंब ! दुर्मद मद्वैरिलोक भीकरालोकंबुलनु समाकुल निबिड नीरंध्र निष्ठुर तमःपटल पटु घटनंबुलं गुटिल परुपुमु। निखिल पाप ग्रहंबुल वलननु, सकल नर मृग सर्प क्रोड भूतादुलवलननु नगु भयंबुलु भगवन्नाम रूप यान दिव्यास्त्रंबुलवलनं बॊंदकुंडु गाक ! बृहद्रथंतरादि सामंबुलचेत स्तोत्रंबु चेयंबडुचुन्न खगेंद्रुंडु रक्षण दक्षुंडै नन्नु रक्षिचुंगाक। श्रीहरि नाम रूप वाहन दिव्यायुध पारिषदोत्तम प्रमुखंबु लस्मदीय बुद्धींद्रिय मनः प्राणंबुल संरक्षिचु। भगवंतुंडैन शेषुंडु सर्वोपद्रवंबुल नाशंबु सेयु। जगदैक्यभावंबैन ध्यानंबु गलवानिकि, विकल्प रहितुंडै भूषणायुध लिंगाख्यलगु शक्तुलं दन मायचेत धरियिंचि, तेजरिल्लुचुंडु लक्ष्मीकांतुंडु विकल्प विग्रहंबुल वलन नन्नु रक्षिचुगाक। लोकभयंकराट्टहास भासुर वदन गह्वरुंडगुचु, समस्त तेजोहरण धुरीण तेजःपुंज संजातदिव्य नृसिंहावतारुंडगु नप्परमेश्वरुंडु, सर्वदिग्भागंबुल वलन, समस्त बहिरंतरं-बुलवलन ननु रक्षिपुचुंडु गाक। अनि नारायणात्मक कवचप्रभावं

---

(मलिनता) के समूह से युक्त हे नन्दक नामक महान् असि (खड्ग)-शेखर ! जगदीश से प्रेरित होकर मेरे विद्वेषियों के विषम व्यूहों को टूक-टूक कर, खण्डन कर फेक दो। निष्कलंक, निरातंक, निश्शंक, सांद्र, चंद्रमण्डल से परिमण्डित सर्वांग रक्षण के लिए विचक्षण धर्मनिर्मित हे वर्म ! दुर्मद वाले मेरे वैरिलोक के भीकर आलोकों को समाकुल-निविड़-नीरन्ध्र (मेघ)-निष्ठुर तमःपटल के पटु घटन से विकल बना दो। निखिल पाप-ग्रहों से, सकल नर, मृग, सर्प, क्रोड, भूतादियों से होनेवाला भय भगवन्नाम रूपी यान [और] दिव्यास्त्रों के कारण मुझे प्राप्त न हो। बृहद्रथ अंतरादि सामों (सामगान) से स्तोत्र किये जानेवाला (सामगान से जिसकी स्तुति होती हो ऐसा) खगेंद्र (गरुड़) रक्षण - क्रिया में दक्ष होकर मेरी रक्षा करे। श्रीहरि के नाम, रूप, वाहन, दिव्यायुध, उत्तम पारिषद, आदि अस्मदीय (मेरे) बुद्धि, इद्रिय, मन, और प्राणो की संरक्षा करें। भगवान [आदि] शेष-सर्व-उपद्रवो का नाश करे। जगत के ऐक्य भाव को संघटित करनेवाले ध्यान से युक्त रहनेवाले के लिए विकल्परहित होकर भूषण-आयुध-लिंग नामक शक्तियों को अपनी माया से धारण कर तेजस्वी बना हुआ लक्ष्मीकान्त विकल्प-विग्रहों से मेरी रक्षा करे। लोक-भयंकर अट्टहास से भासुर बने बदन-गह्वर वाला होते हुए समस्त तेज के अपहरण में धुरीण (समर्थ), तेजःपुंज से संजात दिव्य नृसिंहावतार वाला वह परमेश्वर समस्त दिक्भागों में (सभी दिशाओं मे) समस्त वहिरंतरों में मेरी रक्षा करता रहे। इस प्रकार नारायणात्मक-कवच के प्रभाव को

बितिहास रूपंबुन निद्रुंडु दॆलिसिकॊनि, ध्यानंबु चेसि, तद्विद्याधारण महिम वलन नरातुल निर्जिचॆ। कावुन, नॆव्वरेनि निर्मलात्मुलगुवार लेतद्विद्याधारणुलै यनुदिनंबुनु बठियिंचिन, नतिघोर रणंबुल, नत्युत्कट संकटंबुलनु, सर्वग्रह निग्रहकर्म मारणकर्मादि दुष्कर्म जन्य क्लेशंबुलनु वदलि, अव्याकुल मनस्कुलै विजयंबु नॊंदुदुरु। मरियुनु, सर्व रोगंबुलकु नगम्य शरीरुलै सुखंबु नॊंदुदुरु। अदियुनुंगाक ॥ 307 ॥

सी. अति भक्ति गौशिकुंडनु ब्राह्मणुडु दॊल्लि यी विद्य धरियिंचि दॆलिमि मिंचि
मरु भूमियंदु निर्मल चित्तुडै योग धारणंबुन बिट्टु तनुवु विडिचॆ
दानिपै नॊकडु गंधर्ववरेण्युंडु चित्ररथाख्युडजेयु डॊंटि
जदल जनंग दच्छायतदस्थिपै नदिसिन नातडु गळवळिंचि

आ. युविद पिंडुतोड नव विमानमु तोड
बनदु विद्यतोड धरणि द्रॆळ्ळि
तिरिगि लेवलेक तिकमक गुडुवंग
वालखिल्य मौनि वानि जूचि ॥ 308 ॥

कं. नारायण कवच समा,- धारण पुण्यास्थि दीनि दग्गर नीकुं
गूरॆडिनॆ? विष्णु भक्तुल, वारक चेरंग नॆट्टि वारिकि दरमे? ॥309॥

इतिहास रूप से इंद्र ने जान लिया। और [उसका] ध्यान करके उस विद्या के धारण करने की महिमा से अरातियों (शत्रुओं) को निर्जित (परास्त) किया। अतः कोई भी हो निर्मलात्मा वाले उस विद्या को धारण कर अनुदिन पठन करते रहें तो अति घोर रणों में अति उत्कट संकटों से और सर्वग्रह निग्रह कर्म, कारण कर्म आदि दुष्कर्मों से उत्पन्न क्लेशों से छूटकर, अव्याकुल मनवाले होकर विजय को प्राप्त करते हैं और सर्वरोगों के लिए अगम्य शरीर वाले बनकर सुख प्राप्त करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त—३०७ [सी.] पूर्वकाल में कौशिक नामक ब्राह्मण ने अति भक्ति से इस विद्या को धारण कर अतिशय (महान्) बनकर मरुभूमि में रहते हुए निर्मल चित्तवाला बनकर योग-धारण से शरीर को छोड़ दिया। एक गंधर्ववरेण्य जो चित्तरथ नामवाला है और अजेय है, अकेले आकाश (मार्ग) से जा रहा था। [आ.] उसकी छाया उस अस्थिकाओं पर (कौशिक के मृत शरीर पर) पड़ने पर वह (गंधर्व) व्याकुल होकर स्त्री-समूह के साथ नव विमान के साथ अपनी विद्या के साथ धरणी पर टूट गिर गया। [उस गंधर्व के] फिर उठ न सक व्यथित होते समय वालखिल्य मौनी ने उसे देखकर, ३०८ [कं.] नारायण कवच को सम्यक रूप से धारण करनेवाली पुण्यास्थी (पुण्य कंकाल) है यह। इसके पास तुम कैसे आ सकते हो? विष्णुभक्तों के पास अबाध गति से पहुँचना किसके

इं. संधिचि नी यंगक संधुलॆल्लन्, वंधिचि तन्मंत्र बलंबु पॆमिन्
अंदंबु मान्पिप ददन्य मेदी ? सिंधु प्रवाहोन्नतिचेत दीरुन् ॥ 310 ॥

व. कावुन नी पुण्य शल्यंबुलु भक्तियुक्तुंडवै कॊनिपोयि प्राङ्मुखंबुनु ब्रवहिंचॆडु सरस्वतीजलंबुल निक्षेपणंबु सेसि, कृतस्नानुंडवै याचमनंबु चेसिन, नी सर्वांग बंधनंबु लुडुगु। अनिन नतंडट्लु चेसि, तन विमानंबॆक्कि निजस्थानंबुन करिगॆ। कावुन ॥ 311 ॥

कं. अनु दिनमु दीनि नॆव्वरु, विनिरेनि पठिंचिरेनि विस्मय मॊदवन्
घन भूत जाल मॆल्लनु, मुनुकॊनि वारलनु गांचि म्रॊक्कुचुनुंडुन् ॥312॥

आ. विश्वरूपुवलन नैश्वर्यंकरमैन, यिट्टि विद्यदाल्चि यिंद्रुडपुडु
मूडु लोकमुलकु मुख्यमैनट्टि श्री, ननुभविंचि मिंचॆ नधिक महिम ॥313॥

## अध्यायमु—९

सी. भूपाल ! मा विश्वरूपुन करुदैन तललु मूडनुवॊद वगिलियुंडु
सॊरिदि सुरापान सोमपानंबुलु नन्नाद मनगनु नमरवरुल

---

बस की बात है ? ३०९ [इं.] तुम्हारे अंग (शरीर) की समस्त संधियों (जोड़ों) का बंधन करके उस मंत्र के बल ने अतिशयता से तुम्हारे सौंदर्य को अवरुद्ध कर दिया। उस [नारायण कवच के प्रभाव] के अतिरिक्त अन्य किस में यह सामर्थ्य है ? सिंधु-प्रवाह के औन्नत्य से (समुद्र में अवगाहन करने से) [तुम्हारा कष्ट] दूर होगा। ३१० [व.] अतः इन पुण्य-शल्यों (हड्डियों) को भक्ति-युक्त होकर ले जाकर, पूर्व की ओर बहनेवाली सरस्वती [नदी] के जलों में निक्षेपण (विसर्जन) करके, स्नान कर आचमन करने पर तुम्हारे सर्वांग-बंधन विमुक्त हो जायेंगे। [ऐसा] कहने पर उसने वैसा ही किया और अपने विमान पर आरूढ़ होकर निज स्थान को गया। अत ३११ [कं.] अनुदिन जो इसे सुने, पढ़े तो विस्मय-प्रद रूप से महान् समस्त भूत-जाल (प्राणिसमूह) सप्रयत्न उन्हें देखकर प्रणाम करता रहता है। ३१२ [आ.] विश्वरूप [नामक मुनि द्वारा] ऐश्वर्यंकर इस विद्या को धारण कर इंद्र ने तब तीनों लोकों के लिए प्रधान-श्री (ऐश्वर्य) को अधिक महिमा से युक्त होकर उपभोग किया। ३१३

## अध्याय—९

[सी.] हे भूपाल ! उस विश्वरूप के विरल रूप से शोभा से तीन सिर लगे रहते हैं। क्रम से सुरापान, सोमपान और अन्न को अमरवरों के

तो गूडि भुजियिंचि तूकोनि वारितो यज्ञभागंबु प्रत्यक्षमोंदि-
केकोनुचुंडि दुष्कर्मुंडै या यज्ञभागंबु राक्षस प्रवरुलकुनु

आ. दल्लिमोद गलुगु तात्पर्यवशमुन
दिविजवरुल मोरगि तेच्चि यिच्चे
नदि येरिगि यिद्रुडति भीतचित्तुडै
तन करासि नतनि तललु द्रुंचे ॥ 314 ॥

कं. भासुरुडनक महात्मा, ग्रेसरुडनकतडु पूर्वकृत कर्मगतिन्
वेसरडनक महेंद्रुडु, भूसुरु तल लपुडु रोषमुन वेग नडिचेन् ॥ 315 ॥

व. इट्लयियद्रुंडु क्रोधंबु सहिपजालक विश्वरूपु तललु खड्गंबुनं वेगनडिचिन,
सोमपानंबु चेयु शिरंबु कपिंजलंबय्ये। सुरापानंबु चेयु शिरंबु कल-
विकंबय्ये। अन्नंबु भक्षिचु शिरंबु तित्तिरि यय्ये। इट्लु त्रिविध पक्षि
स्वरूपंबु दाल्चि, ब्रह्महत्य येतेंचि, यिद्रुनि जुट्टुकोनि, तम्मु परिग्रहिपु-
मनि निर्बंधिप, नपुडिद्रुंडति भीतचित्तुंडै त्रिलोकनायकुंडेनं वानि दप्पिचु
कोन जालक यंजलि योग्गि, यम्महादोषंबु गैकोनि, तद्दोषं बोक्क संवत्सरं-
बनुभविचि, यंतं बापुकोनुवाडै भू जल वृक्ष स्त्रील ब्राथिचि, मद्दुरितंबु
चतुर्विधंबुलं बुच्चुकोनुंडनिन, भूमि तनयंदु जेयंबड्ड खातंबु तनंतन

साथ मिलकर खाकर उनके साथ प्रत्यक्ष रूप से यज्ञ-भाग को प्राप्त करता रहा। दुष्कर्म वाला होकर उस यज्ञ-भाग को, राक्षस-प्रवरों पर और माता पर होनेवाले तात्पर्य (ममता-) वश, [आ.] दिविज-वरों को धोखा देकर ला दिया। उसे जानकर इंद्र ने अति भीत-चित्त होकर अपने हाथ के खड्ग से उसके सिरों को काट दिया। ३१४ [कं.] भूसुर न मानकर, महात्माओं में अग्रेसर न मानकर, पूर्वकृत कर्म-गति टाल न सका है, ऐसा न मानकर महेंद्र ने रोष से भूसुर के सिरों को झट काट दिया। ३१५ [व.] इस प्रकार इंद्र के क्रोध को सहन न कर सक (दमन न कर सक) विश्वरूप के सिरों को खड्ग से काट देने पर, सोमपान करनेवाला सिर कपिंजल बना, सुरापान करनेवाला सिर कलविंक (गौरैया) बना। अन्न खानेवाला सिर तित्तिरि [नामक पक्षी] बना। इस प्रकार त्रिविध पक्षियों के स्वरूप को धारण कर ब्रह्महत्या के [पाप ने] आकर इंद्र को घेरकर अपने को परिग्रहण करने के लिए विवश किया। तब इंद्र अति भीत चित्त वाला होकर त्रिलोकों के नायक होने पर भी उससे छूट न सक अंजलि जोड़कर, उस महादोष को स्वीकार कर, उस दोष को एक वर्ष भर के लिए भोग कर तब उस [दोष] को दूर करना चाहकर भू, जल, वृक्ष और स्त्रियों से प्रार्थना कर उस दुरित को चार भाग कर लेने को कहा। भूमि ने अपने में किये गये खात (गड्ढा) के अपने आप भर जाने का वर और जल ने

पूझुनट्टि वरंबुनु, जलंबु सर्वंबु दनयंदु प्रक्षाळितंबैनं बावनंबगु ननु वरंबुनु, वृक्षंबुलु भेदिपंबडि पुनः प्ररोहंबु गलुगु ननु वरंबुनु, स्त्री लॅल्लप्पुडुं दमकु गामसुखंबु गलुगु ननु वरंबुनु गोरिन, नतंडट्ल काक यनि यॉसंगिन, नतनि दुष्कृतंबु धरणी यिरिण विधंबुननु, नुदकंबु बुद्बुद फेन रूपंबुननु, महीरुहंबुलु निर्यास भावंबुननु, नितुलु रजोविकारंबुननु निट्लु चतुर्भागंबुलं बंचि कॉनिरि। अंत ॥ 316 ॥

## वृत्रासुर वृत्तांतमु

म. हत पुत्रुंडगु विश्वरूप जनकुंडात्वष्ट दुःखायतो-
द्धत रोषानल दह्यमानुडगुचुं दा निद्रुपै मारण-
क्रतु होमंबु नॉनर्प नंदु वॉडमें गल्पांतकाकार वि-
श्रुत कीलानल निष्ठुरेक्षण गुण क्षुभ्यत्त्रिलोकोग्रुडै ॥ 317 ॥

सी. युगमु ग्रॅगॅबु नाबु जगमुलु वॉलियिचु नंतकुमूर्तिपै नित यगुचु
बरपुनु निडुपुनु प्रतिदिनंबुनु नॉक्क शरपात मॅगंबु विरिवि गॉनुचु
गडु दग्ध शैलसंकाश देहमु नंदु गरमु संध्याराग कांति वॅरय
मुनु काक रागि चेगनुमिचु मिचुल करकु मीसलु कचाग्रमुलु मॅरय

---

अपने से प्रक्षालित होने पर समस्त [पदार्थों] के पावन वन जाने का वर, और वृक्षों ने काटे जाने पर भी पुनः अंकुरित होने का वर और स्त्रियों ने अपने को सदा कामसुख प्राप्त होने का वर माँगा। उसने (इंद्र ने) तथास्तु कहकर [वर] दिया तो उसका दुष्कृत (पाप) धरणी पर ऊसर के रूप में, उदक (जल) मे बुद्बुद् और फेन के रूप में, महीरुहों (वृक्षों) पर निर्यास (ठूंठ) रूप मे और स्त्रियों में रजोविकार के रूप में इस प्रकार चार भागों में [वह पाप] बँट गया। तब ३१६

## वृत्रासुर का वृत्तान्त

[म.] विश्वरूप के जनक त्वष्टा ने अपने पुत्र के हत हो (मर) जाने पर, आयत दुःख से उद्धत रोषानल से दह्यमान होते हुए, उस इंद्र के प्रति मारणक्रतु होम किया। उसमें से कल्पान्त तक आकार वाला विस्तृत कीलानल के समान निष्ठुर ईक्षण वाला, गुणों से [लोकों को] क्षुब्ध करनेवाला, त्रिलोकों में उग्र [ऐसा एक असुर पैदा हुआ] ३१७ [सी.] युग का दमन करनेवाला, जगों का संहार करनेवाले अंतकमूर्ति (यमराज) से भी बढ़कर [भयंकर], चौड़ाई और लम्बाई में प्रतिदिन एक शरपात (धनुष से छूटा वाण जितनी दूर तक पहुँच सकता है उतना) अपने शरीर को बढ़ानेवाला, अधिक दग्ध शैल के समान देह में संध्याराग

ते. जंड मध्याह्न मार्तांड मंडलोग्र
चटुल निष्ठुर लोचनांचल विधूत
दश दिशाभागुडुज्ज्वलतर कराळ
भिदुर सुनिशित दंष्ट्रोरु वदन गुहुडु ॥ 318 ॥

उ. निंगिकि नेलकुं बौडवु निट्टलमै शिखलंदु बर्वुनु-
त्तुंगतराग्नि जालमुल दोट्रिलुचुं ग्रह पंक्ति जाउ नि-
स्संग कराळ शात घन सद्घृणि मंडल चंड शूल मु-
व्वोंगुचु गेल लील गोनि भूमि चलिंपग सोलि याडुचुन् ॥ 319 ॥

सी. वदलक विरिविगा वदनंबु देरचुचु नाकाशमंतयु नप्पळिंचु
गडु नालक निगुडिंचि ग्रह तारकंबुल नयमेल्ल दिगजाउ नाकिविडुचु
नलवोकयुनु बोले नट्टहासमु चेसि मेउसि लोकमुलेल्ल मिगजुचु
दनरु दिग्दंति दंतमुलु चक्कलुवाउ नुग्रदंष्ट्रलु द्रिप्पु नुक्कुमिगिलि

ते. त्वष्ट बलितंपु दपमुन बुष्टिनोंदि
यखिल लोकंबुलेल्ल दा नाक्रमिंचि
वृत्रनामाख्य देवता शत्रुडगुचु
दारुणाकारु डखिल दुर्दमुडु मेउसे ॥ 320 ॥

---

की कांति के विराजमान होने पर ताँबे की कान्ति से अधिक रंग वाली ऐंठी (कठोर) मूँछों और कचाग्रों के प्रकाशित होने पर, [ते.] चण्ड मध्याह्न मार्तण्ड मण्डल की उग्रता से युक्त चटुल निष्ठुर लोचनांचलों से दस दिशा भागों को विधूत करनेवाला, उज्ज्वलतर और कराल-भिदुर (पत्थर के समान) सुनिशित दण्ट्राओं से युक्त उरु (बड़ा) वदन रूपी गुफा वाला ३१८ [उ.] आकाश और पृथ्वी तक लंबा और चौड़ा बनकर, शिखाओं में प्रज्ज्वलित उत्तुंगतर अग्निजाल के कारण विकल होते हुए ग्रह पंक्ति के [मार्ग से] हट जाने पर निस्संग कराल शात (पैने) घन सद्घृणिमडल के समान चण्ड शूल को हाथ में लीला से धारण कर उमड़ते हुए ऐसा विचरण करता है कि भूमि कंपित हो जाय । ३१९ [सी.] निरन्तर और अविरल रूप से वदन (मुख) को खोलकर समस्त आकाश को निगल जाता है, लंबी जीभ को बढ़ाकर ग्रह तारकों की कांति हट जाय ऐसा चाट कर छोड़ देता है । लीला के समान अट्टहास करके प्रकाशित होकर समस्त लोकों को निगल जाने को देखता है, शोभायमान दिग्दन्ति (दिग्गज) के दाँतों को टूक-टूक करते हुए पराक्रम से [अपनी] उग्र दंष्ट्राओं को चलाता है । [ते.] त्वष्टा के प्रबल तप से पुष्टि प्राप्त कर समस्त लोकों को आक्रान्त कर वृत्र नाम से देवता-शत्रु बनकर दारुण आकार वाला अखिल दुर्दम [वह राक्षस] शोभायमान हुआ । ३२०

मत्त. अट्टि वृत्रुनिमीद देवतलल्कतो वॅनुमूकलै
चुट्टुमुट्टि महास्त्र विद्यलु सूपि येपुन नेय ना
गॉट्टु वीरुडु वार लेसिन क्रूर शस्त्रमु लन्नियुं
जुट्टि पट्टुक म्रिंगि शूरत जोक नार्चॅ महोग्रुडै ॥ 321 ॥

कं. भक्षित दिव्यास्त्रुंडगु, रक्षोनायकुनि नमरराज प्रमुखुल्
वीक्षिप वॅरचि परचिरि, रक्षकु जिंतिचिकॉनुचु रयमॉप्पारन् ॥ 322 ॥

व. इट्लु सर्वसाधनंबुलतोड साधुजनंबुल वृत्रासुरुंडु म्रिंगिन, नच्चॅरुवडि चेयुनदि नेरक तत्तेजो विशेष विभवंबुनकु भयंबु नॉंदि, कंदिन डेंदंबुनं गुंदुचु, बुरंदर प्रमुखुलार्त रक्षकुंडगु पुंडरीकाक्षुनकुं गुय्यिडु वारलै ॥323॥

लयग्रा. वीडु कडु दुर्दमुडु वाडि मन कॅदुवुलु
पोडि सॅडगा मॅसगि योडु गनकुन्ना-
डॆड व्रतुकिक ? वॅनु कीडु वॊडमॅन् मनकु
दोडुपड नॉक्करडु लेडु हरि दक्कन्
वेडुदमु श्रीधरुनि गूडुदमु सद्भटुल
वाडुदमु गीतमुल जूडबडु नंतन्
वीडु चॅडु त्रोव दयतोड नॆरिङिंचु
घनुडोडक सुरालयमु पाडवडदिकन् ॥ 324 ॥

[मत्त.] ऐसे वृत्र पर देवताओं ने क्रोध से झुण्ड बांधकर, घेर कर, महा-अस्त्र विद्याओं का प्रदर्शन कर प्रवलता से [बाण] चलाये। उस प्रबल वीर के उनके [देवताओं के] चलाये समस्त क्रूर शस्त्रों को पकड़कर निगल कर शूरता दिखाकर महा उग्र बनकर सिंहनाद किया। ३२१ [कं.] दिव्यास्त्रों का भक्षण करनेवाले रक्षोनायक को देखने में डरकर अमरराज प्रमुख [अपने] रक्षक के बारे में चिन्ता करते हुए झट भाग निकले। ३२२ [व.] इस प्रकार सर्व साधनों से युक्त होकर वृत्रासुर के साधु जनों को निगल जाने पर, आश्चर्यचकित होकर, कुछ कर न सके उसके तेजोविशेष वैभव के कारण भीत होकर व्याकुल मन में व्यथित होते हुए पुरन्दर (इंद्र) आदि आर्तरक्षक पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) की दुहाई देते हुए ३२३ [ल.] यह अधिक दुर्दम है। हमारे पैने खड्गों की धार के कुण्ठित होने पर यह असमान बना हुआ है। अब [हमारे लिए] जीवन [का उपाय] कहाँ है ? महान् अहित उत्पन्न हुआ है। हरि को छोड़कर हमारी सहायता करनेवाला अन्य कोई नहीं है। श्रीधर (विष्णु) से विनती करेंगे। उनके भटों से मिल लेंगे। [उनके] गीत गायेंगे। तब [हम विष्णु से] देखे जायेंगे। महान् [विष्णु] निश्चित रूप से इसके मृत होने के मार्ग को सदय होकर बतायेगा। उसके बाद सुरालय (स्वर्ग)

क. अनि तलपोयुचु दमलो
मुनुकुचु दिक्मकलु गॉनुचु सुररिपु कडकुन्
गुनुकुचु दिनुकुचु नेगिरि
घन राक्षसु गन्न कन्नु गव बॅग्गिलगन् ॥ 325 ॥

व. इट्लु भयार्तुलै यमर्त्यव्रातंबु चनिचनि, मुंदट नभंग भंग रंग दुत्तुंग डिंडीरमंडल समुद्धं डाडंबर विडंवित नारायण निरंतर कीर्तिलता कुसुम गुच्छ स्वच्छंबुनु, अनवरत गोविंद चरणारविंद सेवा समाकुल कलकल फलित महापुण्य फलायमान समुद्दीपितावर्त वर्तित दक्षिणावर्त रुचिर शंख मंडल मंडितंबुनु, नति निष्ठुर कठिन पाठीन पृथुरोम राजीव शकुल तिमि तिमिंगिल कर्कट कमठ कच्छप मकर नक्र वक्रग्रह ग्रहण घुम-घुमाराव दारुण गमन विषमित विषम तरंग घट्टन घट्टित समुद्भूत शीकर निकर नीरंध्र तारकित तारापथंबुनु, महोच्छ्रय शिलोच्चय शिखराग्र प्रवहित दुग्धनिर्झर सम्मार्जित पुराणपुरुष विशुद्ध शुद्धांत विहरण धुरीण नव सुधा धौत धावळ्य धगद्धगायमान रम्य हर्म्य निर्माण कर्मंबुनु, अति पवित्र गुण विचित्र निजकळत्र प्रेमानंद संदर्शित मुकुंद परिस्रव दंतरंग

---

नष्ट नहीं होगा। ३२४ [कं.] ऐसा अपने में सोचते हुए, [विचारों में] ऊभ-चूभ होते हुए, परेशान होते हुए, मुर-रिपु (मुरारि) के पास घन राक्षस को देखने पर भयभीत बने नेत्र-युगल के साथ धीरे-धीरे लँगड़ाते हुए गये। ३२५ [व.] इस प्रकार भयार्त होकर अमर्त्यव्रात चल-चलकर अपने आगे [क्षीरसागर को देखा]। वह (क्षीरसागर) अभंग-भंग-रंगत्-उत्तुंग-डिंडीरमण्डल से समुद्धत आडंबर को विडम्बित करनेवाले नारायण के निरन्तर कीर्तिलता के कुसुमगुच्छों के समान स्वच्छ और अनवरत गोविन्द के चरणारविन्दों की सेवा से समाकुल बने कल-कल फलित महापुण्य के फलायमान होकर समुद्दीपित आवर्त वर्तित दक्षिणावर्त के रुचिर शंखमण्डल से मंडित और अति निष्ठुर-कठिन पाठीण और पृथु रोम राजीव से संकुल तिमि-तिमिंगिल-कर्कट-कमठ-कच्छप-मकर-नक्र आदि वक्र ग्रहों के ग्रहण से घुम-घुम आरव से [उनके] दारुण गमन से विषमित विषम तरंगों के घट्टण से घट्टित समुद्भूत सीकर-निकर से युक्त नीरंध्र (आकाश) तारकित तारापथ वाला और महोत्तुंग शिलाओं के समूह से युक्त शिखराग्रों से प्रवहित दुग्ध-निर्झरों से सम्मार्जित पुराण-पुरुष के विशुद्ध शुद्धान्त में विहरण में धुरीण नवसुधा से धौत धावल्य से धगधगायमान (प्रकाशमान) रम्य हर्म्य (सौध) के निर्माणकर्म से युक्त और अति पवित्र गुण से विचित्र निज कलत्र के प्रेमानन्द से संदर्शित मुकुन्द के अन्तरंग से परिस्रवित होनेवाले करुणा रस के परिमिलित भाव बन्धुर विद्रुम-वल्ली-मतल्लिका (श्रेष्ठ) अंकुर से शोभित, और प्रसिद्ध सिद्ध रसांबुवाह-संगम

करुणारस परिमिळित भावबंधुर विद्रुम वल्लीमतल्लिकांकुर शोभितंबुनु, प्रसिद्ध सिद्ध रसांबुवाह संगम समुत्थित गंभीर घोष परिपूरित सकल रोदोंतराळंबुनु, समुद्रमेखलाखिल प्रदेश विलसित नवीन दुकूलायमानंबुनु, हरि हर प्रमुख देवतानिचय परिलब्धामृत महदैश्वर्य दान धौरेय महा निधानंबुनु, वैकुंठपुर पौरवार मनोहर काम्य फलित मंदार पारिजात संतान कल्पवृक्ष हरिचंदन घन वनानुकूल कूलंबुनुनै योप्पुचु गुबेरु भांडागारंबुनुं बोलॆ, पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, वर समग्रंब, विष्णु करकमलंबुनुंबोलॆ सुदर्शनावर्त प्रगल्भंबै, कैलास महीधरंबुनुंबोलॆ नमृत कळास्थान शेखर पदार्पणंबै, यिंद्र वैभवंबुनुंबोलॆ कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामणि जनित विशेषंबै, सुग्रीव सैन्यंबुनुंबोलॆ नपरिमित निबिड हरि संचारंब, नारायणोदरंबुनुंबोलॆ निखिल भुवन भारभरण समर्थंबै, शंकरु जटाजूटंबुनुंबोलॆ गंगा तरंगिणी समाश्रयंबै, ब्रह्मलोकंबुनुं बोलॆ बरमहंसकुल सेव्यंबै, पाताळ लोकंबुनुंबोलॆ ननंत भोगि-भोग योग्यंबै, नंदनवनंबुनुंबोलॆ नैरावत माधवी रंभादि संजन-न कारणंबै, सौदामिनी निकरंबुनुंबोलॆ नभ्रंकषंबै, विष्णुनाम कीर्तनंबुनं-बोलॆ निर्मल स्वभावंबै, क्रतुशत गतुंडुनुंबोलॆ हरिपद भाजनंबै, योप्पुचुन्न

---

से समुत्थित गंभीर घोष से परिपूरित सकल रोदोन्तराल और समुद्र मेखला से विलसित अखिल प्रदेश रूपी नवीन दुकूलों से युक्त और हरि-हर प्रमुख देवता निचय के परिलब्ध अमृत महदैश्वर्य के दान धौरेय रूपी महा निधान और वैकुण्ठपुर के पौरवार मनोहर काम्य फल देनेवाले मन्दार-पारिजात-सन्तान-कल्पवृक्ष-हरिचन्दन [आदि वृक्षों के] घन वनों के लिए अनुकूल कूल वाला होते हुए शोभित होते हुए, कुबेर के भाण्डागार के समान पद्म-महापद्म-शंख-मकर-कच्छप-मुकुन्द-कुन्द-नील वर समग्र होकर और विष्णु के करकमल के समान सुदर्शनावर्त से प्रगल्भ बनकर और कैलास-महीधर के समान अमृत कलास्थान शेखर के पदार्पित होकर इंद्रवैभव के समान कल्पवृक्ष-कामधेनु-चिन्तामणि के द्वारा जनित विशिष्टताओं से युक्त होकर, सुग्रीव-सैन्य के समान अपरिमित-निबिड (संकुल) हरि (बन्दर) संचार से युक्त होकर, नारायण के उदर के समान निखिल भुवन के भार-भरण में समर्थ होकर, शंकर के जटा-जूट के समान गंगातरंगिणी के समाश्रय रूपी होकर ब्रह्मलोक के समान परमहंसकुल के लिए सेव्य होकर, पाताललोक के समान अनन्त भोगी (सर्प) भोग योग्य बनकर, सौदामिनी-निकर के समान अभ्रंकष होकर, विष्णुनाम-कीर्तन के समान निर्मल स्वभाव वाला होकर, क्रतुशतगत (इंद्र) के समान हरिपदभाजन बनकर, शोभित होनेवाले दुग्धवाराशि (क्षीरसागर) के निकट पहुँचकर, श्वेत

दुग्धवाराशि डासि, श्वेत द्वीपंबुन वसियिंचि, यंदु सकल दिक्पालकादि
देवतलु देवदेवु नाश्रयिंचि यिट्लनि स्तुतियिंचिरि। अंत ॥ 326 ॥

सी. पंच महाभूत परिनिर्मितंबैन मुज्जगंबुलकॆल्ल नॊज्जयैन
ब्रह्मयु नेमुनु बरग नंदरु गूडि यव्वनिकॆ पूजलित्तु मॆपुडु
नट्टि सर्वेश्वरुंडागम विनुतुंडु सर्वात्मकुडु माकु शरणमगुनु
अति पूर्ण कामु नहंकार दूरुनि समुनि शांतुनि गृपास्पदुनि गुरुनि

ते. मानि यन्युनि सेविप बूनुनट्टि
कपटशीलुनि नति पाप कर्म बुद्धि
शुनक वालंबु वट्टुक घनतराब्धि
दरिय जूचुट गादॆ! ता दामसमुन ॥ 327 ॥

चं. उदकमयंबुनन् वसुध नोडग जेसि तनर्चु कॊम्मुनन्
वदलक यंटगट्टि मनुवल्लभु गाचिन मत्स्यमूर्ति स-
म्मदमुन मम्मु ब्रोचु ननुमानमु मानग वृत्रुचेति या
पद दॊलगिंचि नेडु सुरपालुर पालिटि भाग्यदेवतै ॥ 328 ॥

मत्त. रंतु सेयुचु वात धूत कराळ भंगुर भंग दु-
र्दांत संतत सागरोदक तल्पमॊंदि वसिंचि ब्र-
ह्मांत वानिनि बॊड्डु दम्मिनि नाचि काचिन नेर्परि-
तंतवाडनरानि यॆटरि यादरिंचु ममुं गृपन् ॥ 329 ॥

द्वीप में निवास कर वहाँ सकल दिक्पालक आदि देवताओं ने देव-देव का आश्रय लेकर इस प्रकार स्तुति की। तब ३२६ [सी.] पंच महाभूतों से परिनिर्मित समस्त त्रिलोकों के लिए गुरु बने हुए ब्रह्मा और हम सब शोभा से मिलकर सदा जिसकी पूजा करते हैं, ऐसा सर्वेश्वर आगम-विनुत (वेदों से प्रशसित) सर्वात्म हमारे लिए शरण्य बने। अति पूर्णकाम (सभी इच्छाओं की पूर्ति करनेवाला), अहंकार दूर, सम (समदृष्टि वाला), शान्त, कृपास्पद, गुरु, [ते.] (ऐसे विष्णु को) छोड़कर अन्य की सेवा करने को उद्यत कपट शील वाले और अति पापकर्म बुद्धि वाले की [नीयत] तामस बुद्धि से शुनक के वाल (दुम) को पकड़कर घन तर-अब्धि को पार करने की सोचने के समान है। ३२७ [चं.] उदक से भरे हुए समय वसुधा को नौका बनाकर शोभायमान शृंग पर बाँधकर मनोवल्लभा की रक्षा करनेवाला मत्स्य मूर्ति सम्मोद से, अनुमान (संदेह) को निवृत्त कर वृत्र (राक्षस) के हाथ से आफ़त से बचाकर आज सुरपालकों का भाग्य देवता बनकर, हमारी रक्षा करेगा। ३२८ [मत्त.] लीला में लगे रहकर वात धूत (हवा से उठाये गये) कराल भंगुर-भंग (-तरंग) से संतत (निरन्तर) दुर्दान्त बने सागर उदक रूपी तल्प को प्राप्त कर [उस पर]

ते. दॆवतलमैन मे मिट्टि देवदेवु
सर्वलोक शरण्युनि शरणु चॊच्चि
वलितसैनट्टि वीनि यापदल वासि
मीद्रि शुभमुल जेकॊनु वार मिपुडु ॥ 330 ॥

व. इट्लु स्तुतियिंचुचुन्न देवतलकु भक्तवत्सलुंडैन वैकुंठुंडु प्रसन्नुंडय्यॆ। अप्पुडु ॥ 331 ॥

सी. तगु शंख चक्र गदा धरुंडगु वानि श्रीवत्स कौस्तुभ श्रीलनवानि
गमनीय माणिक्य घन किरीटमु वानि दिव्य विभूषण दीप्तिवानि
मंडित कोटीर कुंडलंबुलवानि सिरि युरस्थलमुन जॆलगुवानि
दनुबोलु सेवकतंडंबु गलवानि जिलुगैन पच्चनि वलुव वानि

आ. वॆल्ल दम्मि विरुल वॆगडु कन्नुलवानि
नव सुधा द्रवंबु नव्वुवानि
गनियॆ वेल्पु पिंडु कप्परपाटुतो
गन्नुलंदु नुन्न कड्डवु दीर ॥ 332 ॥

सी. तनसेवकुललोन दडवडु रूपंबु श्रीवत्स कौस्तुभ श्रीलु वॆलुप
विकचाब्जमुलतोड वीड्वडु कन्नुल कडलदॆवाउडु करुण वॆलुप
नॆल्ल लोकमुलकु निल्लैन भाग्यंबु गापुरंबुंडॆडु कमल वॆलुप
मूडु मूर्तुलकुनु मॊदलैन तेजंबु धात बुट्टिंचिन तम्मि वॆलुप

---

निवास करते हुए ब्रह्मा के समान व्यक्ति को नाभिकमल पर आश्रय देकर रक्षा करने में कुशल असमान एकैक [व्यक्ति] कृपा से हमारा आदर करेगा। ३२९ [ते.] देवता बने हम इस प्रकार के देवदेव और सर्वलोक-शरण्य की शरण प्राप्त कर प्रबल बने हुए इसकी (वृत्रासुर की) आपदाओं से छूटकर अब कल्याणों को प्राप्त करेंगे। ३३० [व.] इस प्रकार स्तुति करनेवाले देवताओं पर भक्तवत्सल वैकुण्ठ [वासी] प्रसन्न हुआ। तब ३३१ [सी.] उचित रूप से शख, चक्र, गदा की शोभा से युक्त वाले, श्रीवत्स और कौस्तुभ चिह्न वाले, कमनीय माणिक्य [जड़ित] घन किरीट वाले, दिव्य विभूषण दीप्ति वाले, मण्डित केयूर कुण्डलों वाले, सिर के उरस्थल पर विलसित होनेवाले, अपने समान सेवक-समूहों से युक्त रहनेवाले [आ.] चमकीले पीताम्बर वाले श्वेत कमलों की अवहेला करनेवाले नेत्रों वाले, नव सुधाद्रव के समान मुस्कान वाले [विष्णु को] देवताओं के समूह ने आश्चर्य से नेत्रोत्सव हो ऐसा देखा। ३३२ [सी.] अपने सेवकों के डगमगाते रूप को श्रीवत्स और कौस्तुभ की शोभाओं के बताने पर विकच अब्जों की संगति को छोड़नेवाले (कमलों को मात करनेवाले) नेत्रों के कोरों की करुणा के व्यक्त होने पर समस्त लोकों के लिए आकर भाग्य (लक्ष्मी) के अपने

आ. बुद्धि बोल्परानि पुण्यंबु दत्पाद, कमल जनितयैन गंग वलुप
नप्रमेयुडभवु डव्यक्तु डव्ययु, डादिपुरुषु डखिल मोदि यॉप्पॅ ॥ 333 ॥

व. इट्लु जगन्मोहनाकारुंडैन नारायणुनि कृपावलोकनाह्लाद चकित स्वभाव चरितुलै साष्टांग दंड प्रणामंबु लाचरिंचि, फालभाग परिकीलित करकमलुलै यिट्लनिरि ॥ 334 ॥

आ. दुर्गमंबुलैन स्वर्गादि फलमुल,
बुट्टजेय जालुनट्टि गुणमु
गलिगि मॅलगुचुन्न घनुडवनट्टि नी
करय म्रोक्कुवार मादिपुरुष ! ॥ 335 ॥

सी. दंडंबु योगींद्रमंडल नुतुनकु दंडंबु शार्ङ्ग कोदंडुनकुनु
दंडंबु मंडित कुंडलद्वयुनकु दंडंबु निष्ठुर भंडनुनकु
दंडंबु मत्तवेदंड रक्षकुनकु दंडंबु राक्षस खंडनुनकु
दंडंबु पूर्णेंदुमंडल मुखुनकु दंडंबु तेजः प्रचंडुनकुनु

ते. दंडमद्भुत पुण्य प्रधानुनकुनु, दंड मुत्तम वैकुंठ धामुनकुनु
दंड माश्रित रक्षण तत्परुनकु, दंड मुरु भोगि नायक तल्पुनकुनु ॥ 336 ॥

---

में स्थिरता से रहने की बात को कमला (लक्ष्मी) के बताने पर त्रिमूर्तियों के आदि तेज को, धाता को उत्पन्न करनेवाले कमल के बताने पर, [आ.] बुद्धि से तोले न जानेवाले पुण्य को उसके पाद-कमल से जनित गंगा के व्यक्त करने पर, अप्रमेय, अभव, अव्यक्त, अव्यय, आदिपुरुष [विष्णु] अखिल मोदी (समस्त जनों को मुदित करनेवाला) बनकर शोभायमान हुआ। ३३३ [व.] इस प्रकार जगन्मोहनाकार वाले नारायण के कृपावलोकन से आह्लादित और चकित स्वभाव चरित्र वाले होकर, साष्टांग दण्डप्रणाम करके, फाल भाग पर (ललाट पर) परिकेलित (जोड़े हुए) करकमल वाले होकर इस प्रकार बोले। ३३४ [आ.] हे आदिपुरुष! दुर्गम बने हुए स्वर्ग आदि फलों को उत्पन्न कर सकनेवाले गुण से युक्त होकर संचरित होनेवाले महान् को (तुमको) विशद् रूप से प्रणाम करते हैं। ३३५ [सी.] योगीन्द्र-मण्डल (-समूह) से विनुत (प्रशंसित) [विष्णु को] नमस्कार। सारंग कोदण्ड वाले को नमस्कार। मण्डित कुण्डलद्वय वाले को नमस्कार। भण्डन (युद्ध) में निष्ठुर (निष्ठुरता प्रदर्शित करनेवाले) को नमस्कार। मत्त वेदण्ड रक्षक को नमस्कार। राक्षस खण्डन को नमस्कार। पूर्णेन्दु मण्डल रूपी मुख वाले को नमस्कार। तेज में प्रचण्ड को नमस्कार। [ते.] अद्भुत पुण्यप्रधान वाले को नमस्कार। उत्तम वैकुण्ठधाम वाले को नमस्कार। आश्रितों के रक्षण में तत्पर रहनेवाले को नमस्कार। उरु (महान्) भोगी नायक (आदिशेष)

उ. चिक्किरि देवतावरुलु चिंदरवंदरलैरि खेचरुल्
स्रुक्किरि साध्य संघमुलु सोलिरि पन्नगु लाजि भूमिलो
स्रक्किरि दिव्यकोटि कडु स्रग्गिरि यक्षुलु वृत्रु चेत नी
चिक्किन वारिनैन दयसेयुमु नॊव्वक युंडनो हरी ! ॥ 337 ॥

कं. मॊदलाड्रिन रक्कसुलकु, मॊदलै मा कापदलकु मूलं बगुचुं
दुद मॊदलु लेनि रक्कसु, तुदि जूप गदय्य ! तुदकु दुदियैन हरी ! ॥338॥

ते. अक्कट ! दिक्कुल कॆल्ल दिक्कैन माकु
नॊक्क दिक्कुनु लेदु कालूननैन
दिक्कु गावय्य ! नेडु मा दिक्कु जूचि
दिक्कु लेकुन्न वारल दिक्कु नीव ॥ 339 ॥

कं. नी दिक्कु गानि वारिकि
ने दिक्कुनु वॆदक नुंड विहपरमुलकुन्
मोदिप दलचुवारिकि
नी दिक्के दिक्कु सुम्मु ! नीरजनाभा ! ॥ 340 ॥

ते. अरय मा तेजमुलतोड नायुधमुलु
म्रिगि भुवन त्रयंबुनु म्रिगुचुन्न

---

तल्प (शय्या) [शेषतल्पशायी] को नमस्कार। ३३६ [उ.] वृत्रासुर के हाथ में देवता-वर (-श्रेष्ठ) फँस गये, खेचर तितर-बितर हो गये, साध्य-संघ कमज़ोर पड़ गये, पन्नग युद्धभूमि में धराशायी बन गये, दिव्य-कोटि (देवताओं का समूह) और यक्ष अधिक दमित हुए। हे हरि ! [कम से कम] तुम्हारे हाथ में फँसे हुए (तुम्हारी शरण में आये हुए) लोग पीड़ा-रहित बने रहें ऐसी कृपा दिखाओ। ३३७ [कं.] मूल-रहित बने राक्षस हमारी आपदाओं के आदि और मूल बन गये। आदि और अंत से रहित राक्षसों का अंत दिखाओ न। हे अन्त के लिए अन्तस्वरूप (अनन्त) [हे श्रीहरि] ! ३३८ [ते.] हाय ! समस्त गतियो के लिए गति (शरण्य) बने हुए हमारे लिए पैर रखने के लिए एक भी गति (स्थान) नहीं है। हमारी ओर देखकर हमको बचाओ न ! अशरण्यों के लिए शरण्य तुम ही हो। ३३९ [कं.] तुम्हारी शरण में न आनेवालों को इह-परों में (इहलोक और परलोक में) खोजने पर भी अन्य शरण्य नहीं है। हे नीरजनाभ ! प्रसन्न रहनेवालों के लिए तुम्हारी शरण ही शरण है। (तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा शरण्य नही है।) ३४० [ते.] हे अभव ! सोचने पर हमारे तेज के साथ आयुधों को निगलकर, भुवनत्रय (त्रिलोकों) को निगलनेवाले भीकर आकार वाले वृत्र के मद का दमन कर सभी प्रकार से

भीकराकारु वृत्रुनि वीच मणचि
यॆल्ल भंगुल मा भंग मीगु मभव ! ॥ 341 ॥

आ. परमपुरुष ! दुःखभंजन ! परमेश !
भक्तवरद ! कृष्ण ! भवविदूर !
जलरुहाक्ष ! निन्नु शरणंबु वेडॆद
मभयमिच्चि काचु मय्य ! मम्मु ॥ 342 ॥

व. नमस्ते भगव ! न्नारायण ! वासुदेव ! आदिपुरुष ! महानुभाव ! परम-मंगळ ! परम कल्याण ! देव ! परम कारुणिकुलैन परम हंसलगु परिव्राजकुलचेत नाचरितंबुलगु परम समाधि भेदंबुल परिभावित परिस्फुटंबैन परमहंस धर्मंबुचेत नुद्घाटितंबगु तमः कवाट द्वारं बुन नपावृतंबैन यात्मलोकंबुन नुपलब्ध मात्रुंडवै, निज सुखानु भवुंडवै युन्न नी वात्म समवेतंबु लै युपेक्षिपंबडनि यी शरीरंबुलकु नुत्पत्ति स्थिति लय कारणुंडवै युंडुदुवु। गुण सर्ग पतितुंडवै यपरिमित गुणगणंबुलुन्न नीवु, देवदत्तुनि माड्कि पारतंत्र्यंबुन स्वकृतंबुलैन कुशलाकुशल फलंबुल ननुभविंतुवु। षड्गुणैश्वर्य संपन्नुंडवैन नीवात्माराम स्वभावुंडवै, यपरिमित गुणगणंबुलु गलिगि, यीश्वराह्वयानवगाह्य माहात्म्यंबुं नर्वाचीन विकल्प वितर्क विचार प्रमाणाभासंबुलगु तर्क शास्त्रंबुल

हमारे अपमान को दूर करो। ३४१ [आ.] हे परमपुरुष ! हे दुःख-भंजन ! हे परमेश ! हे भक्तवरद ! हे कृष्ण ! हे भवविदूर ! हे जलरुहाक्ष ! तुम्हारी शरण की प्रार्थना कर रहे हैं। हे तात ! अभय प्रदान कर हमें बचाओ। ३४२ [व.] नमस्ते भगवन् ! नारायण ! वासुदेव ! आदिपुरुष ! महानुभाव ! परममंगल [प्रदायक] ! परम कल्याण वाले ! हे देव ! परम कारुणिक और परमहंस ! परिव्राजकों द्वारा आचरित होनेवाले परमसमाधि भेदों से परिभावित और परिस्फुट होनेवाले परमहंस के धर्म से उद्घाटित होनेवाले तमःकवाट द्वार (अंधकार रूपी किवाड़) से अपावृत (बन्द) बने हुए, आत्मलोक में ही उपलब्ध होकर, निज सुख के अनुभव मे मग्न बने हुए तुम आत्मसमवेत होकर अनुपेक्षित इन शरीरों के लिए उत्पत्ति-स्थिति-लयकारक बनकर रहते हो। गुण सर्ग से पतित होकर अपरिमित गुणगणों से युक्त रहनेवाले तुम, देवदत्त के समान पारतंत्र्य से स्वकृत (अपने से किये गये) कुशल और अकुशल के फलों का उपभोग करते हो। षड्गुण रूपी ऐश्वर्य से संपन्न बने तुम आत्माराम स्वभाव वाले होकर, अपरिमित गुणगणों से युक्त होकर ईश्वर नामक अनवगाह्य (जो समझ में न आवे) माहात्म्य में अर्वाचीन (नवीन) विकल्प-वितर्क-विचार-प्रमाणाभास वाले तर्कशास्त्रों

गर्कशंबुलैन प्रज्ञलु गलिगि, दुरवग्रहवादुलैन विदवांसुल विवादावसरंबुल यंदु नुपरतंबुलगु अस्ति नास्तीत्यादि वाक्यंबुल समस्त माया मयुंडवै, निज मायचेत गानंवडक युक्ति गोचरुंडवै, सम विषम रूपंबुल ब्रवर्तितुवु। देवा ! रज्जुवुनंदु सर्प भ्रांति गलुगुनट्लु, द्रव्यांतरंबुलचेत ब्रह्मंबैन नीयंदु ब्रपंच भ्रांति गलुगु चुंडु। सर्वेश्वरा ! सर्व जगत्कारण रूपंबवैन नीवु सर्वभूत प्रत्यगात्म वगुटंजेसि, सर्व गुणावभा सोपलक्षितुंडवै कानंबडु चुंदुवु। लोकेश्वरा ! भवन्महिम महामृत समुद्र विप्रुट्सकृत्पान मात्रंबुन संतुष्ट चित्तुलै, निरंतर सुखंबुन विस्मारित दृष्ट श्रुत विषय सुख लेशाभासुलैन परम भागवतुलु, भवच्चरण कमल सेवा धर्मंबु विडुवरु। त्रिभुवनात्म भवन ! त्रिविक्रम ! त्रिणयन ! त्रिलोक मनोहरानुभाव ! भवदीय वैभव विभूति भेदंबुलैन दनुजादुलकु ननुपक्रम समयं बेरुंगि, निज मायावलंबुन सुर नर मृग जलचरादि रूपंबुलु धरियिंचि, तदीयावतारंबुल ननुरूपंबैन विधंबुन शिक्षितुवु। भक्तवत्सला ! भवन्मुख कमल निर्गत मधुर वचनामृत कळा विशेषंबुल, निज दासुलमैन मा हृदयतापंबडंगिपुमु। जगदुत्पत्ति स्थिति लय कारण

---

में कर्कश प्रज्ञाओं से युक्त होकर दुःखग्राहवादी बने हुए विद्वानों के विवाद के अवसरों पर उपरत होनेवाले अस्ति-नास्ति इत्यादि वाक्यों की समस्त मायाओं से युक्त होकर, अपनी माया से दृष्टिगोचर न होकर, युक्तिगोचर होकर सम-विषम रूपों में प्रवर्तित होते हो। हे देव ! रज्जु में सर्प की भ्रांति के होने के समान द्रव्यांतरों से (अन्य द्रव्यों से) ब्रह्म [तत्त्व] बने हुए तुममें प्रपंच (संसार) की भ्रांति होती रहती है। हे सर्वेश्वर ! सर्वजगत के लिए कारण रूप बने हुए तुम सर्वभूतों में प्रत्यगात्मा वाले होने से सर्वगुणों के आभास से उपलक्षित होकर दिखायी पड़ते रहते हो। हे लोकेश्वर ! तुम्हारी महिमा के महामृत समुद्र की जलविन्दु के सकृत (तत्काल) पान मात्र से संतुष्ट चित्त वाले होकर निरन्तर सुख के कारण दृष्ट, श्रुत विषय सुख-लेश के आभास को भी भूले हुए परमभागवत तुम्हारे चरण-कमलों के सेवा-धर्म को छोड़ते नहीं है। हे त्रिभुवन-आत्म-भवन (तीन लोकों के लिए निलय बने हुए) ! हे त्रिविक्रम ! हे त्रिनयन ! हे त्रिलोक-मनोहर अनुभव वाले तुम्हारे वैभव की विभूति के भेद (प्रकार) बने हुए दनुजादियों के अनुपक्रम (उपसंहार) के समय को जानकर निज माया के बल से सुर, नर, मृग-जलचरादि रूपों को धारण कर, तुम्हारे अवतारों के लिए अनुरूप विधान से [उन्हें] दण्डित करते हो। हे भक्त-वत्सल ! अपने मुखकमल से निर्गत (निकले हुए) मधुर वचनामृत के कला-विशेषों से तुम्हारे दास बने हुए हमारे हृदयताप का दमन करो। जगत की उत्पत्ति, स्थिति, लय कारण के प्रधान दिव्यमाया से

प्रधान दिव्य माया विनोदवर्ति सर्व जीव निकायंबुलकु बाह्याभ्यंतरंबुल यंदु ब्रह्म प्रत्यगात्मस्वरूप प्रधानरूपंबुल, देश काल देहावस्थान विशेषंबुल, तदुपादानानुभवंबुलु गलिगि, सर्व प्रत्ययसाक्षिवै, साक्षात्पर ब्रह्मस्वरूपुंडवै युंडेडि नीकु नेमनि विन्नविंचु वारमु? जगदाश्रयंबैन, विविध वृजिन संसार परिश्रमोपशमनंबैन भवदीय दिव्यचरण शत पलाशच्छाय नाश्रयिंचेदमु! अनि पेक्कु विधंबुल विनुतिंचि यिट्लनिरि ॥ 343 ॥

कं. तेजंबु वायुवुनु वि,-भ्राजित दिव्यायुधमुलु बरुवडि वृत्रुं-
डाजि मुखंबुन म्रिंगेन्, मा जय मिकेंदु? जेप्पुमा! जगदीशा! ॥344॥

व. अनि यिट्लति मनोहर चतुर वचनंबुल भक्ति परवशुलै विनुति सेयुचुन्न देवतलं जूचि, यप्परमेश्वरुंडमृत प्रायंबुलगु गंभीर भाषणंबुल निट्लनियें ॥ 345 ॥

कं. मदुपस्थानंबगु मी
सदमल सुज्ञानमुनकु संतोषमुनं
बोंदलें मदि प्रीति नोंदिति,
वदलक ना भक्ति वोडमि व्यर्थंबगुने? ॥ 346 ॥

व. मरियु, नति प्रीतुंडनैन ना यंदु भक्तुलकुं बोंदरानि यर्थंबुलेदु। विशेषिंचि नायंदु नेकांतमतियैन तत्त्वविदुंडन्यंबुलं गोरकुंडु। गुणंबुलयंदु दत्त्वज्ञान

---

विनोदवर्ती बनकर सर्वजीव-निकायों (-समूहों) के बाह्य-अभ्यंतरों में, ब्रह्मा प्रत्यगात्मास्वरूप प्रधान रूपों से, देश, काल, देह, अवस्थान विशेषों में उन-उन उपादान के अनुभवों से युक्त होकर, सर्व-प्रत्यय-साक्षी बने हुए और साक्षात् परब्रह्मस्वरूप वाले होकर रहनेवाले तुमसे क्या निवेदन करें? जगत के लिए आश्रय होकर विविध वृजिन (क्लेश) से युक्त संसार के परिश्रम का उपशमन करनेवाले भवदीय चरण रूपी शत पलाश की छाया में आश्रय लेंगे। [ऐसा] कहकर अनेक विधियों से विनुति (स्तुति) कर इस प्रकार कहा— ३४३ [कं.] हे जगदीश! [हमारे] तेज, आयु और विभ्राजित दिव्य आयुधों को झट से वृत्र युद्ध में निगल गया। अब कहो हमारे लिए विजय कहाँ? ३४४ [व.] [ऐसा] कह इस प्रकार अति मनोहर चतुर वचनों से भक्ति-परवश बनकर विनुति करनेवाले देवताओं को देखकर उस परमेश्वर ने अमृतप्राय (अमृत के समान) गंभीर-भाषणों (-वचनों) से यों कहा— ३४५ [कं.] मुझमें स्थित आपके सत्-अमल सुज्ञान के कारण मन में संतोष हुआ, प्रीत बना। निरन्तर मेरी भक्ति करना कहीं व्यर्थ होता है? (नहीं होता) ३४६ [व.] और अति प्रीत बने हुए मुझसे ऐसा कोई अर्थ (प्रयोजन) नहीं है जो भक्त प्राप्त नहीं कर

**गोचरुंडैनवाडु विषय निवृत्त चित्तुंडै संसार मार्गंबु निच्छयिपडु। कावुन मीकु शुभंबय्येंडु। दधीचि यनु ऋषिसत्तमुंडु गलंडु। अतनि शरीरंबु मद्विद्यातिशय महत्त्वंबुनं, देजो विशेषंबुन सारंबै युन्नयदि। अतनि नडिगि, तच्छरीरंबु बुच्चिकोनुंडु। अतंडु पूर्वकालंबुन नश्वनो देवतलकु नश्व शिरोनामंबनु ब्रह्मस्वरूपंबगु निष्कळंकंबैन विद्य नुपदेशिचिन, वारलु जीवन्मुक्तित्वंबु नोंदिरि। मरियु त्वष्टकु पुत्रुंडैन विश्वरूपुनकु मदात्मकंबैन यभेद्य कवचंबु निच्चे। कावुन नतंडति-वदान्युंडु। अश्विनी देवतलचेत याचिपंबडि, देहंबु वंचिपक मी किच्चु। आतनि शल्यंबुलु विश्वकर्म निर्मितंबुलै, शत धारलु गल यायुध श्रेष्ठंबै, मत्तेजोबृंहितंबै, वृत्रासुर शिरोहरण कारणंबै युंडु। दानंजेसि मीरु पुनर्लब्ध तेजोऽस्त्रायुध संपदलु गलिगि वेलिगेदरु। विशेषिंचियु मद्भक्तवरुलैन वार लेलोकंबुल नेव्वरिकि नजेयुलु। कावुन मीकु भद्रंबय्येंडु। अनि भूत भावनुंडैन भगवंतुंडदृश्युंडय्ये। अप्पुडु देवतलु दधीचि मुनि कडकुं जनिन नत्तरि यिंद्रुंडिट्लनियें ॥347॥**

---

सकते। (भक्तों के लिए सभी प्रयोजन मेरे कारण सुलभ होते हैं)। विशेषकर मुझमें एकान्तमति बना हुआ तत्त्वविद् अन्य [प्रयोजनों को] नही चाहता। गुणों में तत्त्वज्ञान को देख सकनेवाला विषयों से निवृत्त चित्त वाला होकर संसार-मार्ग की इच्छा नहीं करता। अतः तुम्हारे लिए शुभ होगा। दधीचि नामक ऋषि-सत्तम (-उत्तम) है। उसका शरीर मेरे विद्यातिशय के महत्त्व से तेजोविशेष का सार बना हुआ है। उससे माँगकर, उसके शरीर को ले लो। उसके पूर्वकाल में अश्विनी देवताओं को अश्वशिरो नामक ब्रह्मस्वरूप बनी निष्कलंक विद्या का उपदेश देने पर वे (अश्विनी देवता) जीवन्मुक्त हुए और त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को मत्-आत्मक (नारायणात्मक) अभेद्य कवच दिया। अतः वह अति वदान्य (दानशील) है। अश्विनी देवताओं से याचना करने पर बंचना न करके [वह अपनी] देह तुम्हें देगा। उसके शल्य विश्वकर्मा द्वारा निर्मित होकर शतधाराओं से युक्त आयुध श्रेष्ठ बनकर, मेरे तेज से वृंहित (पुष्ट) होकर वृत्रासुर शिरोहरण का कारण बनेंगे। उस कारण से तुम लोग फिर से प्राप्त तेज, अस्त्र, आयुध, संपदाओं से युक्त होकर प्रकाशमान बनोगे। विशेष रूप से जो मेरे भक्तवर होते है, वे किसी भी लोक में किसी के लिए भी अजेय बनकर रहते है। अतः तुम्हारा कल्याण होगा। [ऐसा] कह भूतभावन वाला भगवान अदृश्य हो गया। तब देवता दधीचि मुनि के पास गये। उस अवसर पर इन्द्र ने यों कहा— ३४७

## अध्यायमु—१०

आ. देहि सुखमु गोरु देहंबु घटियिंचि, देहि विडुवलेडु देहमेपुडु
देहि ! यस्मदीय देहंबु कोंरुकुनै, देह मी गदय्य ! देवतलकु ॥ 348 ॥

उ. एवकड नॅल्ल लोकमुल नॅव्वरु गोरनि कोर्कि नेडु मा
तॅक्कलि पाटुकै तिविरि देहमु वीडग वच्चिनार मे
मॅक्कड ! तीव्र कर्म गति यॅक्कड ! दैवकृतंबु गाक ! यी
त्रोवकडुदान मी वरुस रोयक वेडुदुरे जगंबुलन् ? ॥ 349 ॥

कं. नीचगति यॅल्ल भंगुल
याचन यनि तॅलिसि तगनि वडुगुदुरेनिन्
याचक वर्गमु लोपल
नीचकुलनबडरॅ ? यॅंत नेर्परु लैनन् ॥ 350 ॥

कं. अडुगंग रानि वस्तुवु
लडुगरु बतिमालि यॅट्टि यर्थुलु निनु ने
मडिगितिमि देह मॅल्लनु
गडु नडिगॅड वानिकेड गरुण ? महात्मा ! ॥ 351 ॥

उ. नावुडु ना दधीचियु मनंबुन संतसमंदि नव्वि सं-
भावित वाक्य पद्धतुल बल्कुचु निट्लनॅ वेॅमितोड नो

## अध्याय—१०

[आ.] देही देह का संगठन करके सुख चाहता है। देही कभी भी देह को छोड़ नहीं सकता। मेरी देह के लिए देवताओं को अपनी देह प्रदान करो न। ३४८ [उ.] समस्त लोकों में कही किसी के द्वारा न चाहनेवाली इच्छा लेकर हम आज अपनी विपत्ति के कारण सप्रयत्न तुम्हारी देह की याचना करने के लिए आये है। हम कहाँ और तीव्र कर्मगति का प्रभाव कहाँ ? यह तो दैवकृत है। इस प्रकार निकृष्ट दान के लिए घृणा किये बिना जगत में कोई क्या प्रार्थना (याचना) करता है ? ३४९ [कं.] याचना सब प्रकार से नीच गति वाला है। ऐसा जानकर अनुचित वस्तु की याचना करेंगे तो वे जितने ही निपुण क्यों न हों, याचक-वर्ग में नीच नहीं कहलायेंगे ? ३५० [कं.] कैसा भी अर्थी (याचक) क्यों न हो न माँगी जानेवाली वस्तु को अनुनय करके भी नहीं माँगते। हमने तुम्हारी देह माँगी है। हे महात्मा ! माँगनेवाले में करुणा कहाँ से होती है ? ३५१ [उ.] ऐसा कहने पर उस दधीचि ने भी मन में संतुष्ट होकर हँसकर संभावित (आदरयुक्त) वाक्यपद्धतियों से इस प्रकार प्रेम से कहा। हे

देवतलार ! प्राणुलकु देवकलि मृत्यु भयंबु पूनुटे
भावमुलं दलंपरु कृपामति नॅन्नडु मी मनंबुलन् ॥ 352 ॥

आ. ऍलमि ब्रतुक निच्छयिंचिन वारिकि
देहमॅल्ल भंगि दीपु गादॅ ?
यच्युतुंडु वच्चि यर्थिचॅ 'नेनियु
तन्नु निच्चु नट्टि दात गलडॅ ? ॥ 353 ॥

व. अदियुनुंगाक ॥ 354 ॥

सी. अर्थंबु वेडॅडु नर्थुलु गलरु गाकंगंबु वेडॅडि यर्थि गलडॅ ?
तग गोरिकल निच्चु दानशीलुडु गलुगु दन देह मीनेर्चु दात गलडॅ ?
यी नेर्चुवाडु दलिंचिन रोयक चंपेडु नट्टि याचकुडु गलडॅ ?
चंपियु वोवक शल्यंबुलन्नियु नेरि पंचुक बोवु वारु गलरॅ ?

आ. रमणलोकमॅल्ल रक्षिंचु वारिकि
हिंस सेयु बुद्धि यॅट्टु वॊडमॅ ?
ब्रातियैन यट्टि प्राणंबुपै दीपु
तमकु वोलॅ नॅदिरि दलप वलदॅ ? ॥ 355 ॥

व. अनिन देवतलिट्लनिरि ॥ 356 ॥

ते. सर्वभूतदयापर स्वांतुलकुनु
बुण्यवर्तनुलगु मिम्मु वोटि वारि

---

देवताओ ! प्राणियों के लिए मृत्युभय भयंकर होता है। तुम लोग कृपामति से ऐसे भावों को कभी सोचते नहीं। ३५२ [आ.] प्रेम से जीना चाहनेवालों के लिए सब विधियों से देह प्रिय होती है। [स्वयं] अच्युत के आकर माँगने पर भी अपने को देनेवाला दाता कोई होता है ? (नहीं होता है) ३५३ [व.] इसके अतिरिक्त ३५४ [सी.] अर्थ (सम्पत्ति) को माँगनेवाले अर्थी (याचक) हैं। किन्तु अंग (देह) को माँगनेवाला अर्थी कोई है क्या ? समुचित रूप से इच्छाओं की पूर्ति कर सकनेवाला दानशील हो सकता है। किन्तु अपनी देह दे सकनेवाला दाता कहीं लभ्य होगा ? दे सकनेवाला अपने आपको दे दे तो घृणा के बिना (निस्संकोच होकर) मार डालनेवाला कोई याचक हो सकता है ? मारकर भी चुप न रहकर सभी हड्डियों को चुनकर जमा कर ले जानेवाले भी क्या हो सकते हैं ? [आ.] रमणीयता से समस्त लोक की रक्षा करनेवालों को हिंसा करने की बुद्धि कैसे पैदा हुई ? मूलाधार बने प्राण पर प्रीति जैसे अपने में है वैसे ही दूसरों में भी होती है। क्या ऐसा [तुम्हें] नहीं सोचना चाहिए ? ३५५ [व.] [ऐसा] कहने पर देवताओं ने यों कहा— ३५६

कमित सत्कीर्ति कामुल कलघुमतुल
किय्यरानि पदार्थंबु लॅव्विगलवु ? ।। 357 ।।

आ. अडुगरानि सॊम्मु लडुगरादनि मान-
डडुगुवानि माट लडुग नेल ?
भ्रांति नडुगु चोट प्राणंबु लेनियु
निच्चुवाडु दाप डिच्चु गानि ।। 358 ।।

व. अनि पर संकटंबु दलंपक निर्लिपुलु कार्यपरतन् सविनय वाक्य परंपरलं ब्राथिंचिन, नतंडु दरहसित वदनुंडै, यखिल लोकधर्मं बॆरिंगियु नॊविकत कालंबु प्रति वाक्यंबिच्चिचति। दीनि सहिपंदगुदुरु। मीयट्टि वारलकुं ब्रियंबगुनेनि नॆप्पुडैनन् विडुवंदगिन शरीरंबु विडुचुट येमि दुर्लभंबु ? अध्रुवंबैन यी देहंबुचेतं गीर्ति सुकृतंबुल नॆव्वंडार्जिपकुंडु नतंडु पाषाणादुलकंटॆ नति कठिनुंडु। मी यट्टि पुण्य श्लोकुल चेत नाकांक्षिपं बडिन शरीरं बप्रमेय धर्मार्जितंबु। ए देहंबु चेतनैननु सकल भूतंबुलु शोकानुभवंबुन शोकिंचु, हर्षानुभवंबुन हर्षिंचु, अट्टि महा कष्ट दैन्याकरंबैन यी शरीरंबु काक शुनक सृगालादुल पालु गाकुंड मेलय्यॆं।

[ते.] सर्व भूतों पर दया से युक्त स्वान्त (अंतःकरण वालों को) पुण्यवर्तन वालों को और आप जैसे अमित सत्कीर्ति-कामुकों को अलघु मति वालों के लिए ऐसे कौन से पदार्थ है जो नहीं दिये जा सकते हैं ? ३५७ [आ.] न माँगनेवाले पदार्थों को नहीं माँगना चाहिए। ऐसा सोचकर [याचक] माँगना नही छोड़ता। उसकी बात ही क्या ? भ्रांति से माँगे जाने पर देनेवाला प्राणों को भी दे देता है, छिपाकर नही रखता। ३५८ [व.] ऐसा परसंकट (दूसरों की तकलीफ़) के बारे में न सोचकर निर्लिपों (देवताओं) के कार्यपर होकर सविनय वाक्य-परंपराओं से प्रार्थना करने पर उसने दरहसित वदन वाला बनकर, अखिल लोकधर्म को जानकर कहा कि थोड़ी देर के लिए [तुम्हारे वचनों के लिए] प्रतिवाक्य कहें। इसे सहन कर सकते हैं। आप जैसे लोगों के लिए प्रिय हो तो कभी-न-कभी छोड़ देनेवाले शरीर को छोड़ देने में कौन-सी कठिनाई है ? अध्रुव (अस्थिर) बने इस देह से सुकृत (पुण्यकार्यो) से कीर्ति का आर्जन जो नहीं करता वह पाषाणादियों की अपेक्षा अति कठिन है। आप जैसे पुण्यश्लोकों (पुण्यात्माओं) द्वारा आकांक्षित शरीर अप्रमेय धर्म का अर्जन करनेवाला है। कोई भी देह[धरे] हो, सकल भूत शोकानुभव से शोक करते है, हर्षानुभव से हर्षित होते है। इस प्रकार के महाकष्ट और दैन्य के आकर इस शरीर का काक-शुनक-शृगाल आदियों के भागी न बनकर [आपको प्रदान करने से] अच्छा ही हुआ। ऐसा निश्चित आत्मा वाला बनकर दधीचि ने

अनि निश्चितात्मुंडै दधीचि, तत्त्वावलोकनंबुचेत निरसित बंधनुंडै, बुद्धींद्रिय मानसंबुलतो गूडिन क्षेत्रज्ञुनि परब्रह्म स्वरूपंबैन भगवंतु नंदु नेकीभूतंबु जेसि, योगज्ञानंबुन शरीरंबु विडिचॆ। अप्पुडिंद्रु डतनि शल्यंबुल विश्वकर्म निर्मितंबै, निशित शतधारा समावृतंबै वॆलुंगु वज्रायुधंबु गेकॊनि, भगवत्तेजोपबृंहितुंडै, यैरावतारूढुंडै, सकल देवोत्तम, गरुड, गंधर्व, खचर, किन्नर, किंपुरुष, सिद्ध, साध्य, विद्याधर परिसेवितुंडै, सकल मुनिजनंबुलु विनुतिंप द्रिलोक हर्षकारियै, भगवदनुग्रह संप्राप्त महोत्साह विकसित वदनारविंदुडै वृत्रासुरुपै नडचॆ। अप्पुड ॥ 359 ॥

उ. वृत्रुडु दानवान्वय पवित्रुडु लोक जिघांसक क्रिया
सूत्रुडु निग्रह ग्रहण सुस्थिर वाक्य विवेक मान चा-
रित्रुडु देवतोरग दरीकृत वक्त्रुडु रोष दुषिता
मित्रुडु शत्रु राक गनि मिक्किलियैन युगांतकाकृतिन् ॥ 360 ॥

कं. मॆंडुगल दनुज नायक, मंडलमुलु गॊलव नडचॆ महिमोद्धति वे-
दंडमुल नडुम जनु नड, गॊंडयुनुं बोलॆ निबिड कोपोद्धतुडै ॥ 361 ॥

---

तत्त्वावलोकन से निरसित-बंधन वाला बनकर बुद्धि-इंद्रिय-मानसों से युक्त क्षेत्रज्ञ परब्रह्मस्वरूपी भगवान ने एकीभूत करके योगज्ञान से शरीर को छोड़ दिया। तब इंद्र ने उसके शल्यों से विश्वकर्मा द्वारा निर्मित होकर निशित-शतधारा-समावृत होकर प्रकाशमान वज्रायुध को हाथ में लेकर, भगवत् तेज से उपबृंहित (पुष्ट) बनकर, ऐरावत पर आरूढ़ होकर, सकल देवोत्तम गरुड़, गंधर्व, खचर, किन्नर, किंपुरुष, सिद्ध, साध्य, विद्याधरों से परिसेवित होकर, सकल मुनिजनों के प्रशंसा करने पर, त्रिलोक हर्षकारी बनकर, भगवद् अनुग्रह से संप्राप्त महोत्साह से विकसित वदनारविंद (मुख-कमल) वाला बनकर वृत्रासुर पर धावा बोल दिया, तब ३५९ [उ.] वृत्र ने जो दानव-अन्वय (-वंश) को पवित्र करनेवाला है, लोक जिघांसक (लोक के मारण की इच्छा) का क्रियासूत्र वाला है, निग्रह, आग्रहण, सुस्थिर वाक्यविवेक से मान्य चरित्र वाला है, देवता रूपी उरगों के लिए बिल बने हुए वक्त्र (कंठ) वाला है, रोषदूषित अमित्र (शत्रु) वाला है। [ऐसे वृत्र ने] शत्रुओं के आगमन को देखकर अधिक भीकर युगान्त करनेवाली आकृति से ३६० [कं.] अतिशयता से युक्त दनुज-नायकों के मण्डलों (समूहों) के सेवाएँ करने पर महिमा की उद्धति से निबिड (घना) कोप से उद्धत बनकर वेदण्डों (हाथियों) के मध्य चलनेवाले महापर्वत के समान [वृत्रासुर] चल पड़ा। ३६१ [कं.] हे नृप! काल-गल (शिव) के उद्धत होकर झट से काल (यम) पर धावा बोलने के

कं. कालगळुडडरि कडुवडि
गालुनि पै गवयु माड्कि खरतर रव सं-
चालित पूर्व दिगंतरु-
ई लील महेंद्रुमीद नतडरिगॆ नृपा ! ॥ 362 ॥

व. इट्लु रुद्रगणंबुलु, मरुद्गणंबुलु, नादित्यगणंबुलु, नश्विनी देवतलु, पितृदेवतलु, विश्वेदेवुलु, वह्नियु, ऋभुवु, वरुणलु, वायु, कुबे, रेशानादुलु, सिद्ध, साध्य, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गंधर्व, खेचर प्रमुखंबुलगु निंद्र सैन्यंबुलतोड नमुचियु, शंबरुंडुनु, ननर्वुडुनु, द्विमूर्धुंडुनु, वृषभुंडुनु, नंबरुंडुनु, हयग्रीवुंडुनु, गंकुशिरुंडुनु, विप्रचित्तियु, नयोमुखुंडुनु, पुलोमुंडुनु, वृषपर्वुंडुनु, हेतियु, प्रहेतियु, नुत्कटुंडुनु, धूम्रकेशुंडुनु, विरूपाक्षुंडुनु, कपिलुंडुनु, विभावसुंडुनु, निल्वलुंडुनु, पल्वलुंडुनु, दंद शूकुंडुनु, वृषध्वजुंडुनु, गालनाभुंडुनु, महानाभुंडुनु, भूत संतापनुंडुनु, वृकुंडुनु, सुमालियु, मालियु मुन्नगु दैतेय दानव यक्ष राक्षसाद्य संख्यंबुलगु वृत्रासुरु बलंबुलु दलपडि समरंबु जेसिरि। अप्पुडु ॥ 363 ॥

चं. असुरुलकुन् सुरावलिकि नय्यॆ महारण मप्पु डॊडॊरुल्
मुसल गदासि कुंत शर मुद्गर तोमर भिंडिवाल प-
ट्टिस पट्टशूल चक्रमुल डंबगु चूपि यदल्चि यार्चुचुन्
मसलक कप्पि रस्त्रमुल मार्कॊनि मंटलु मिट नंटगन् ॥ 364 ॥

---

समान खरतर (तीक्ष्ण) रव से संचालित पूर्व दिगन्तर (दिशा) (अपनी गर्जना से पूर्व दिशा को विचलित करते हुए) लीला से महेंद्र की तरफ़ वह (वृत्र) गया। ३६२ [व.] इस प्रकार रुद्रगण, मरुद्गण, आदित्यगण, अश्विनीदेवता, पितृदेवता, विश्वेदेव, वह्नि और ऋभु, वरुण, वायु, कुवेर, ईशान आदि, सिद्ध, साध्य, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, खेचर आदि इंद्र की सेनाओं से नमुचि, शंबर, अनन्वर, द्विमुर्ध, वृषभ, अंवर, हयग्रीव, शंखुशिर, विप्रचित्ति, अयोमुख, पुलोम, वृषपर्व, हेति, प्रहेति, उत्कट, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, कपिल, विभावसु, इल्वल, पल्वल, दन्दशूक, वृषध्वज, कालनाथ, महानाथ, भूतसंतापन, वृक, सुमाली, माली आदि दैतेय, दानव, यक्ष, राक्षसादि, असंख्य वने हुए वृत्रासुर की सेनाओं ने टकराकर समर किया। तब ३६३ [चं.] असुरों और सुरावली (देवताओं का समूह) के बीच महारण हुआ। तब दोनों ने परस्पर मुसल, गदा, असि, कुंत, शर, मुद्गर, तोमर, डिंडिवाल, पट्टस, पट्टशूल, चक्रों के विक्रम को दिखाकर झिड़ककर गरजते हुए निरन्तर [एक दूसरे का] सामना कर ज्वालाओं के आकाश को छू जाने पर अस्त्रों से [एक-दूसरे को] ढक दिया। ३६४

कं. ऒंडॊरुल गडव नेसिन, कांडमु लाकाश पथमु गप्पि महोल्का-
तंडमुल बोलि निष्ठुर, भंडनमुख मॊप्पॆं जूड प्रलयोचितमै ॥ 365 ॥

चं. सुरवरुलेयु बाणमुलु सूड्कि कगोचरमै नभस्स्थलं
बरिमुरि गप्पिरेसि दिवसांतमु जेसिन लील ना सुरे-
श्वर बलयूध वीरु लुरु सायक पंक्तुल चेत वानि रू-
पऱ शतधूळि सेसि पऱपैन तमं बॊनरिंचि रार्चुचुन् ॥ 366 ॥

चं. समर मदांधुलै सुर निशाचर वीरुलु सैनिकांघ्रि सं-
क्रमित महीप रागमुलु ग्रम्मिन नुम्मलिकंपु जीकटुल्
दम कनुदोयि कड्डमुग दार्कॊनिनं जलमेदि पोरि रा-
क्रमित निजांतरंग परिघट्टित रोष महाग्नि पॆंपुनन् ॥ 367 ॥

कं. अति गळित रक्तधारा
क्षतमुलतो गान वडिरि सैनिकुलु महो
द्धत रोष वह्नि कीललु
विततंबै पिक्कटिलि वॆडलॊंडु भंगिन् ॥ 368 ॥

सी. ठवळिंचु शिंजिनी टंकार रवमुलु भट सिंहनादंबु बरिढविव
भीषणोत्तम हय हेषा विघोषंबु करि बृंहित स्फूर्ति प्रंदु कॊलुप

---

[कं.] एक-दूसरे को जीतने के लिए छोड़े गये काण्ड (वाण) आकाश-पथ को ढककर महा-उल्का-तण्ड (-समूह) के समान दिखाई पड़ने पर निष्ठुर भण्डन-मुख (युद्धभूमि) प्रलय के समान दिखाई पड़ा। ३६५ [चं.] सुरवरों के द्वारा फेंके गये बाणों ने दृष्टि के लिए अगोचर होकर झट नभस्थल को ढँक दिया, जिससे दिवसांत के समान दिखाई पड़ा (अंधकार छा गया)। उस सुरेश्वर के सेना-यूथ (-समूह) के वीरों ने ऊरु-सायक (-बाण) की पंक्तियों से उन्हें नष्ट कर शतधूलि बनाकर चिल्लाते हुए विशाल तम को उत्पन्न किया। ३६६ [चं.] समर करने में मदान्ध बनकर सुर और निशाचर वीरों के सैनिकों के अंघ्रि (चरण) के संक्रमित (संघटन) से उत्पन्न मही-पराग (धूल) के फैल जाने पर घने अंधकार के अपने नेत्र (दृष्टि) का अवरोध करने पर हठ से निजांतरंग को आक्रमित और परिघट्टित रोष रूपी महाग्नि की अतिशयता से लड़ते रहे। ३६७ [कं.] अतिगलित (अतिशयता से बह निकलनेवाली) रक्तधाराओं से युक्त क्षतों (घावों) के कारण सैनिक ऐसे दिखाई पड़े मानो उद्धत रोष वह्नि की कीलाएँ (ज्वालाएँ) वितत हो औद्धत्य से बाहर निकल पड़े हों। ३६८ [सी.] उल्लसित शिंजिनी (धनुष की डोरी) के टंकार-रव भटों के सिंहनाद को उद्धत बनाने पर भीषण-उत्तम-हय-हेषा (हिनहिनाहट) का विघोष (ध्वनि) करि (हाथी) की बृंहित (पुष्ट) स्फूर्ति को बढ़ावा

समर निश्शंकांक शंख निनादंबु नेमि स्वनंबुल निह्नविप
दुमुलमै चॆलिगॆडु दुंदुभिध्वानंबु लट्टहासंबुल नाक्रमिप

ते. घटित शस्त्रास्त्र निष्ठुर घट्टनोत्थ
खर कठोरोरु विस्फुलिंगंबु लड्डरि
दिव्य कोटीर मणिघृणि धिक्करिप
समर मॊनरिंचि रसुरुलु समरवरुलु ॥ 369 ॥

व. इट्लु प्रळय संरंभ विजृंभित समुत्तुंग रंगत्तरंगित भैरवाराव निष्ठ्यूत महार्णवंबुबोलॆ, युगांत संक्रांत झंझूपवन परिकंपित दीर्घ निर्घात निबिड निष्ठुर नीरदंबुलुंबोलॆ, नुभय सैन्यंबुलु गलसि संकुल समरंबु सलुपु समयंबुन, युगांत कृतांत सकल प्राणि संहार कारणलीलयुंबोलॆ, बदाति राहुत्त गजारोहक रथिक महारथिक वीरु लॊंडॊरुलु चंडगति गांडंबुल बरपुचु, गदलं जदुपुचु, गत्तुल गत्तळंबुल जिनुगं बॊडुचुचु, नडिदंबुल नडुचुचु, गुंतंबुलं ग्रुच्चुचु, गुठारंबुल नच्चुचु, मुसलंबुल मोदुचु, मुद्गरंबुलं बादुचु, जक्रंबुलं द्रुंचुचु, बरिघंबुल नॊंचुचु, सुरियल मॆंड्रुमुचु, शूलंबुल ग्रुम्मुचु, वाजुल कुरिकियु, वालंबुल नरिकियु, दॊडलु तुंडिचियु, दुंडंबुल

---

देने पर, समर की निश्शंका को चिह्नित करनेवाले शंख-निनाद नेमि (पहिये की धुरी) के स्वनों (आवाज़) को छिपाने पर, (शंख-निनाद के कारण नेमिध्वनि सुनाई नहीं पड़ रही थी), [ते.] तुमुल बनकर विजृंभित होनेवाले दुंदुभि-ध्वानों के [सैनिकों के] अट्टहासों को आक्रमित करने पर शस्त्रास्त्रों से घटित (उत्पन्न) निष्ठुर घट्टण से उत्थित खर कठोर उरु विस्फुलिंगों के बढ़-बढ़कर दिव्य कोटीरों की मणियों की घृनियों (प्रकाश की किरणों) की अवहेला करने पर, असुर और अमर वरों ने समर किया। ३६९ [व.] इस प्रकार प्रलय के संरंभ से विजृंभित समुत्तुंग-रंगत-तरंगित-भैरव (-भीकर) आरव से निष्ठ्यूत महार्णव (महासमुद्र) के समान, युगान्त के संक्रान्त होने पर झंझा पवन से परिकंपित दीर्घ निर्घात (विजली, गाज) से निबिड़, निष्ठुर, नीरदों के समान उभय सेनाओं के मिलकर संकुल समर करते समय युगान्त से कृतांत (यमराज) के सकल प्राणियों के संहार कारण की लीला के समान, पदाति (पैदल), राहुत (घुड़सवार), गजारोहक (हाथी पर सवार), रथिक और महारथिक वीर परस्पर चण्ड गति से काण्डों (बाणों) को चलाते हुए गदाओं से मार गिराते, तलवारों से कवचों को चीरते हुए खड्गों से मारते हुए, कुंतों से चुभोते हुए, कुठारों से टुकड़े करते हुए, मुसलों से मारते हुए, मुद्गरों से पीटते हुए, चक्रों से तोड़ते हुए, परिघावों से दमन करते हुए, छुरियों से चोट करते हुए, शूलों से मारते हुए, घोड़ों पर लाँघकर, वालों (पूँछों) को

खॅंडिचियु, नुदुरु वॅंडलिंचियु, मॆदळ्ळु गॆडलिंचियु, नडुमुलु द्रुंचियु, नासिकल द्रचियु, पदंबुल विडिचियु, वार्श्वंबुलं वॆरिचियु, गजंबुल बडिपियु, गात्रंबुल नुडिपियु, गुंभंबुल बगिलिंचियु, गॊम्मुल वॅकलिंचियु, हस्तंबुल दुंडिचियु, नंगंबुल जिंचियु, रथंबुल नलियिंचियु, रथिकुलं वॊलियिंचियु, सारथुलं जंपियु, सैंधवंबुलं दंपियु, शिरंबुलु नॊगिलिंचियु, सीसकंबुलगिलिंचियु, छत्रंबुल नुरुमाडियु, जामरंबुलं डुनुमाडियु, सैन्यंबुल जदिपियु, साहसुल गॆदिपियु, वरस्पर गुण विच्छेदनंबुनु, नन्योन्य कोदंड खंडन पटुत्वंबुनु, नुभय सैंधव ध्वज सारथि रथिक रथ विकलनंबुनु, नॊंडॊरुल पाद जानु जंघा हस्त मस्तक निर्दळनंबुनु, रक्त मांस मेदः पंकसंकलित समरांगणंबुनुगा नतिघोर भंगि वॆनंगिरि। अप्पुडु ॥ 370 ॥

चं. समजयमुन् समापजय साम्य परिश्रममुन् समोरुवि-
क्रममु समास्त्र शस्त्र वल गर्वमुनं कडु घोर भंगि ना-
नमुचि विरोधि सैन्य गणनाथुल तोड निशाचरेश्वरो-
त्तमुलु दुरंबु सेसिरॊगि दाकॊनि वृत्रवलंबु प्रापुनन् ॥ 371 ॥

व. अप्पुडु ॥ 372 ॥

ल. मॊत्तमुग वाक्र पॆनु नॆत्तुरु महानदुल
दत्तरमुतो नुडिकि कुत्तुकलु मोवन्

---

काटकर, जघाओं को काटकर, सूँड़ों को खण्डित कर, ललाटों को फोड़कर, दिमाग (भेजा) को बाहर निकालकर, कमरों को काटकर, नासिकाओं को खण्डित कर, चरणों को तोड़कर, पार्श्वों को बिगाड़कर, हाथियों को चलाकर, गात्रों (कण्ठों) को दबोचकर, कुंभों को फोड़कर, सींगों को उखाड़कर, हस्तों को तोड़कर, अंगों को फाड़कर, रथों को चूर-चूर कर, रथिकों का वध कर, सारथियों को मारकर, सैंधवों (घोड़ों) को मारकर, सिरों को गिराकर, शिरस्त्राणों को गिराकर, छत्रों को चूर कर, चामरों को तोड़कर, सैनिकों को धराशायी कर साहसियों को मार गिराकर, परस्पर गुण (प्रत्यंचा) का विच्छेदन से, अन्योन्य (एक-दूसरे के) कोदण्ड (धनुष) के खण्डन की पटुता से, उभय सैंधव-ध्वज-सारथी-रथिक-रथ [आदि] का विकलन (खण्डन) से, एक-दूसरे के पाद-जानु-जंघा-हस्त-मस्तक के निर्दलन (खण्डन) से समरांगन को रक्त-मांस-मेदस् के पंक संकलित कर अति घोरता से जूझ पड़े। तब ३७० [चं.] समजय, सम-अपजय परिश्रम में साम्य (समता) सम-उरुविक्रम, सम अस्त्र-शस्त्र बलगर्व से युक्त होकर अति घोर विधान से वह नमुचि-विरोधी (इंद्र) की सेना के गणनाथों का निशाचरेश्वर उत्तमों ने वृत्र के बल के सहारे सामना कर क्रम से युद्ध किया। ३७१ [व.] तब ३७२ [ल.] अतिशयता

जित्तमुल नुब्बि वॆस नॆत्तु कॊनु भूतमुल
नत्तुकॊनि शाकिनुलु जॊत्तिलॆडि मांसं
बुत्तलमुतो मॆसंग नृत्तनुलु सेयु
मद मत्त घन डाकिनुलु नृत्तगति ब्रेवुल्
बित्तरमुलं दिगिचि मॆत्त मॆदडुल् मॊनसि
गुत्त गॊनुचुंड भयवृत्ति गल नॊप्पॆन् ॥ 373 ॥

व. इट्लु देवदानवुलु नर्मदा तीरंबुन गृतयुगंबुनं दलपडि, त्रेतायुगंबु जॊच्चुनंत कालंबु बोरु दारुणंबुगा जेयुचुंड, नंत वृत्रासुरु भुजबलंबु पॆंपुन दॆंपु जेसि कंपिपक निलिपुलपै रक्कसुलु गुंपुलै पॆंपु चूपि, महावृक्ष पाषाण गिरि शिखरंबुलु वर्षिचिन ॥ 374 ॥

म. गिरि पाषाण महीजमुल् गुरियगा गीर्वाणुलन्नटि नि-
ष्ठुर नाराचपरंपरल् परपुचुन् जूर्णंबु गाविप नि-
र्भर लीलं दमचेयु सत्वमुलु दोर्भंगंबुलै पोवगा
वॆरलॆन् राक्षस योध वीरुलु मदोद्रेकंबु संछिन्नमै ॥ 375 ॥

कं. प्रचुरमुग राक्षसावळि, खचरुलपै नेयु निबिड कांडावळि दु-
र्वचनुडॆड नाडु माटलु, सुचरित्रनियंदु बोलॆ जॊरवर्यॆ नृपा ! ॥ 376 ॥

---

से प्रवाहित होनेवाली महारक्त की महानदियों में उत्सुकता से कूदकर, जी भरकर मन में प्रसन्न होकर, झट गोद में लेनेवाले भूतों से युक्त होकर, शाकिनियों के मांस को कुतूहल से खाकर नृत्त करते समय, मदमत्त घन डाकिनियों के नृत्त गति से अँतडियों को निकालकर नरम भेजा को मुँह में लेते समय युद्धभूमि भयानक लगी। ३७३ [व.] इस प्रकार देव और दानव नर्मदा तीर पर कृतयुग में [एक-दूसरे से] टकराकर त्रेतायुग के प्रवेशकाल तक दारुण रूप से युद्ध करते रहे। तब वृत्रासुर के भुजबल की अतिशयता और साहस के आधार के कारण कंपित न होकर (देवताओं से न डरकर) निलिम्पों (देवताओं) पर राक्षसों ने झुण्ड बाँधकर [अपनी] अतिशयता का प्रदर्शन कर महावृक्ष, पाषाण और गिरि-शिखरों को बरसाया। ३७४ [म.] गिरि-पाषाण-महीजों (वृक्षों) को बरसाने पर गीर्वाणों (देवताओं) ने निष्ठुर नाराच (बाण) परंपराओं को चलाते हुए सबको चूर्ण कर दिया। निर्भर लीला से (दुर्निवार रूप से) अपने द्वारा किये गये सत्त्व (बल और पराक्रम) के दोर्भंग (भुजबल के नष्ट) होने पर राक्षस योद्धाओं और वीरों का मदोद्रेक संछिन्न हो गया। ३७५ [कं.] हे नृप ! राक्षसावली के प्रचुरता से खचरों (देवताओं) पर फेंकी जानेवाली निबिड-काण्डावली (बाण-समूह) सुचरित्र (सज्जन) के प्रति दुर्वचन (दुर्जन की कही बातों) के समान

व. अप्पुडु ॥ 377 ॥

वन. अंत सुरलेयु निबिडास्त्रमुल पालै
पंतमुलु दक्कि हत पौरुषमुतो नि-
श्चित गति रक्कसुलु सिग्गुडिगि भूमि
गंतुगोनि पारि रपकारपरुलार्वन् ॥ 378 ॥

कं. कोंडल बोलॅडु रक्कसु, लॉंडोरुलं गडव वारि रुक्करि पट्‌को
वंडमुख साधनंबुलु, भंडनमुन वैचि दिविजपतु लार्वंगन् ॥ 379 ॥

व. इट्लु समरतलंबु वासि, तन प्रापु दूसि, तोसि पर्चुचुंडु वंडनायकुलं जूचि, यकुटिलमति बक बक नगि, वृत्रासुरुंडिट्लनियें ॥ 380 ॥

उ. क्षुल्लकवृत्ति मी कगुने ? शूरुल किम्मॅयि कीर्ति भोगमुल्
गॉल्लग जेयु चावु मदि गोरिन वारलकॅन गल्गुने ?
तल्लडमंदि यी समर धर्ममु मानि तलंग वाडिये ?
मल्लुडु दुर्दय प्रथन मत्तुनि वृत्रुनि प्रापॅरुंगरे ? ॥ 381॥

कं. चावु ध्रुवमैन प्राणिकि, जावुलु रॅडरसि कॉनुडु समरमु नंदुन्
भाविप योगमंदुनु, जावंगा लेनि चॅडुगु चावुं जावे ? ॥ 382 ॥

---

व्यर्थ हो गयीं। ३७६ [व.] तब ३७७ [वन.] तब देवताओं के निबिड अस्त्रों के कारण, प्रण भूलकर हतपौरुष वाले बनकर निश्चित गति से राक्षस लज्जा छोड़कर, अपकार करनेवालों के चिल्लाने पर [युद्ध] भूमि पर से लाँघते हुए भाग गये। ३७८ [कं.] पर्वत-समान राक्षस एक-दूसरे को पार कर पराक्रम को छोड़कर पट्‌ कोदण्ड आदि साधनों को भण्डन (युद्धभूमि) में डालकर, दिविजपतियों के चिल्लाने पर भाग निकले। ३७९ [व.] इस प्रकार समरतल (युद्धभूमि) को छोड़कर, अपने आश्रय को छोड़ भागनेवाले दण्डनायकों को देखकर, अकुटिल मति से अट्टहास कर वृत्रासुर ने यों कहा— ३८० [उ.] आपके लिए क्षुल्लक (क्षुद्र) प्रवृत्ति उचित है ? शूलों के लिए इस प्रकार कीर्ति और भोगों को अतिशयता से प्राप्त करानेवाली मृत्यु मन से चाहनेवालों को भी (अन्यों को) कहीं प्राप्त हो सकती है ? व्याकुल होकर इस समर धर्म को छोड़कर हट जाना (भाग जाना) क्या समुचित है ? मल्ल (पहलवान) और दुर्दय प्रथनमत्त (युद्ध में निर्दय होकर भागनेवाला) वृत्र के आश्रय [के महत्त्व] को नहीं जानते हो ? ३८१ [कं.] प्राणी की, जिसके लिए मृत्यु ध्रुव (निश्चित) है, सोचने पर दो प्रकार की मृत्यु होती है। [एक मृत्यु] समर में और सोचने पर, [दूसरी] योग में होती है। [इन दोनों प्रकार से] मर न सकने वाले दुष्ट की मृत्यु भी कोई मृत्यु है ? ३८२

## अध्यायमु—११

व. अनि वासुदेव तेजोविशेष विशेषितुलै दवानलकीललं बोलॅ वॅलुंगुचु वॅड्रचि वन्निच्चिच पाईंडु नसुरल वॅनुकोनि तरुमु सुरवीरुलं जूचि हुंकरिंचि, स्वर्गानुभवंबुन निच्छ लेकुंडेनेनि मदवलोकन स्पर्शन मात्रंबु मुंदर निलुतुरु गाक। अनि येचि कल्पांतानल्प घनघनाटोपंबुनु बोलॅ गठोर कंठ हुंकार तर्जनंबुलं गर्जिल्लुचु, प्रळयकाल पवनपरिभावित महा शिख शिखावळुलं दृणीकरिंचु कुटिलावलोकनंबुल नालोकिंचुचुं, गाल परिपक्व लीलालोलुंडैन शूलि पोलिक नाभीलमूर्तियै, सकल जीवभार चरण दुर्भर भग्न ब्रह्मांड भांड महाध्वानंबुभंगि नास्फोटिंचिन ॥ 383 ॥

उ. कूडॅ जगंबु लन्नियुनु ग्रुंकिरि सूर्य सुधांशु लद्रुलू-
टाडॅ नभस्स्थलंबगिलॅ नंबुधुलिंकॅ नुडुग्रहाळि प-
ट्टूडॅ वडि दिशल्दगिलॅ नुर्वर ग्रुंगॅ नजांडभांड स-
ल्लाडॅ विधात बॅग्गडिलॅ नार्चुचु वृत्रुडु बॉब्ब वॅट्टिनन् ॥ 384 ॥

---

## अध्याय—११

[व.] [ऐसा] कहकर वासुदेव के तेजोविशेष से विशिष्ट बनकर दावानल की कीलाओं (ज्वालाओं) के समान प्रकाशित होते हुए, डरकर पीठ देकर भागनेवाले असुरों का पीछा कर भगानेवाले सुर वीरों को देखकर, हुंकार कर स्वर्गानुभव की इच्छा न हो तो मेरे अवलोकन और स्पर्शन मात्र से सामने ठहर जाओ। [ऐसा] कहकर विजृंभित होकर कल्पान्त के अनल्प-घनाघन के आटोप के समान कठोर कंठ के हुंकार और तर्जनों से गर्जना करते हुए प्रलयकाल के पवन से परिभावित (प्रेरित) महा-शिखि (-ज्वाला) की शिखावलियों का तृणीकार करनेवाले कुटिल अवलोकनों से देखते हुए काल परिपक्व के कारण लीला-लोल बने शूली (शिव) की तरह आभील (भयंकर) मूर्ति वाला बनकर सकल जीवों के भारी चरणों के कारण दुर्भर रूप से भग्न हुए ब्रह्माण्ड-भाण्ड की महाध्वनि के समान आस्फोट करके, ३८३ [उ.] सिंहनाद करते हुए वृत्रासुर के गरजने पर समस्त जग एकत्रित हो गये। सूर्य और सुधांशु डूब गये। अद्रियाँ हिल उठीं। नभस्थल (आकाश) फट गया। अंबुधियाँ सूख गयीं। उडु (नक्षत्र) और ग्रहावली पकड़ छूटकर हिल गये। झट दिशाएँ फट गयी। उर्वरा (पृथ्वी) धँस गयी। अजाण्ड (ब्रह्माण्ड) भाण्ड हिल उठा। विधाता विह्वल हो गया। ३८४ [ल.] हे महात्मा!

ल. कूलिरि वियच्चरुलु सोलिरि दिशाधिपुलु
व्रालि रमरव्रजमु ट्रूलि रुरगेंद्रुल्
व्रेलिरि मरुद्गणमु जालिगोनि रश्विनुलु
कालुडिगि रुद्रुलवलील वडि रातिन्
व्रेलिरि दिनेश्वरुलु कोलॆंडिलिनट्लु सुर
जालमुलु पॆन्निदुर पालगुचु धारा-
भील गति तोड दम केलि धनुवुलिविडिचि
नेलबडि मूर्छलनु देलिरि महात्मा ! ॥ 385 ॥

व. इट्लु कठोर कंठनादं बॊनर्चिन, नशनिपातंबुनं गूलु प्राणिचयंबु भंगि नंगंबु लॆरुंगक, रणरंगंबुनं वडि, बिट्टु मूर्छिल्लिन, दिविजराज सैन्यंबुल वृत्रासुरंडु संगररंग दुर्दमुंडै, महीवलयंबु पदाहतंबुल गजगज वडंक, निशित शूलंबु केल नंकिपुचु, मदिंचिन भद्रमातंगंबु कमलवनंबु सॊच्चि, मट्टि लल्लाडु विधंबुन निमीलिताक्षुंडगुचु, पदतलंबुल रूपंबुलु मायं जमुरुचु, वेक्कसंबुन ग्रीडिचु वानिगनि वज्रि वज्रशतोपम निष्ठुर गदादंड बाभीलभंगि प्रलयकाल मार्तांड चंडपरिवेष घोरंबुगा द्रिप्पि वैचिन ॥ 386 ॥

---

वियच्चर (खेचर) गिर पड़े, दिशाधिप झुक गये, अमर-व्रज (-समूह) धराशायी हो गया। उरगेंद्र (सर्पराज) हिल उठे। मरुद्गण विस्फुटित हो गये, अश्विनी [देवता] करुणा के पात्र बन गये। पैरों के टूटने से आर्ति के कारण रुद्र तुरत नीचे गिर गये। मर्म उखड़ गया हो, इस प्रकार दिनेश्वर भूने गये। सुरजाल (देवतासमूह) महानिद्रा के भागी बनकर भयंकर गति से अपने हाथ के धनुषों को छोड़कर, ज़मीन पर गिरकर मूर्च्छित हो गये। ३८५ [व.] इस प्रकार कठोर कंठनाद (सिंहनाद) करने पर अशनिपात (गाज के गिरने) से गिर पड़नेवाले प्राणिचय (समूह) के समान अंगों को न जानकर रणरंग में गिरकर अधिक मूर्च्छित होने पर, दिविजराज की सेनाओं को वृत्रासुर ने संगर-रंग (युद्ध-भूमि) में दुर्गम बनकर महीवलय (भूचक्र) के थरथर काँपने पर, निशित शूल को हाथ में संधान कर मत्त मातंग के कमल-वन (कमलों से युक्त सरोवर) मे प्रवेश कर व्याकुल और कल्लोलित करने के समान, निमीलिताक्ष बनकर पदतल से [शत्रुओं के] रूपों को अपनी माया से कुचलते हुए, अधिक भयद रूप से क्रीडा करनेवाले (वृत्र) को देखकर वज्रि ने वज्र शतोपम (शत वज्रायुधों के समान) निष्ठुर गदादण्ड को भयंकर रूप से, प्रलयकाल के मार्तण्ड के चण्ड परिवेश के समान घोररूप से घुमाकर फेंक दिया। ३८६ [म.] वह (गदा) आकाश में अधिक ज्वालाओं को

म. अदि मिटं बॅनुमंटलंट वड़पॅ याभील वेगंबुनन्
गदियन् वच्चिन लील वामकर संक्रांतंबु गाविचॅ बॅ-
ट्टिदुडॅ चेरि सुरारि दानि गौनि काठिन्योरुपातंबुलं
जदियन् मोदॅ गजेंद्र मस्तकमु नुत्साहैक साहाय्युडै ॥ 387 ॥

आ. अग्गजंबु कुलिशहति गूलु कुलमही
ध्रंबु वोलॅ रक्तधारलुरल
मस्तकंबु वगिलि मदमरि जिरजिर
तिरिगि विरुगु सूपि तॅरलि परचॅ ॥ 388 ॥

उ.वृ. गजमु दॅरलि दानि कौरलि गर्जलिडुचु बाऱगा
भजन निंद्रु डंकुशमुन बट्टि बिट्टु निल्पुचुन्
निज सुधा रसैकपान निर्णयार्द्र करमुनन्
ऋजुत मोड़ निमिरॅ नपुडु रूढि मॅऱसि क्रम्मऱन् ॥ 389 ॥

व. इव्विधंबुन नैरावतंबुनु सेद देर्चुचु, नॅदुर निलुचुन्न भिदुर पाणिगनि, तोबुट्टुवु जंपिन तॅपु दलंचि, मोहशोकंबुन विपर्यासंबुगा नव्वुचु, नाहव-काम्यार्थियै वृत्रुंडिट्लनियॅ ॥ 390 ॥

शा. नाकुं वॅद्दयु नीकु सद्गुरुवु दीनव्रात रक्षन् शुभा-
लोकुं जंपिति विट्लु पापमतिवै लोभंबुतो निय्यॅडन्

---

फैलाकर आभील वेग से निकट आने पर लीला से [उसे असुर ने] वाम कर से पकड़कर भयंकर बनकर सुरारि (राक्षसेंद्र) ने उसे पकड़कर गजेंद्र (ऐरावत) के मस्तक को, एकमात्र उत्साह की सहायता लेकर कठिन उरुपात के समान दे मारा। ३८७ [आ.] वह गज कुलिश-हति (अशनि-प्रहार) से गिरनेवाले कुल-महीध्र (-पर्वत) के समान रक्तधाराओं के उमड़ बहने पर मस्तक के फट जाने पर मद भूलकर, गोल घूमकर हतोत्साह होकर भाग निकला। ३८८ [उ. वृ.] गज के पीछे पलटकर चिंघाड़ते हुए भागने पर इंद्र ने अंकुश पकड़कर सुदृढ़ता से उसे रोकते हुए सुधारस के पान-निर्णय से आर्द्र बने अपने कर से ऋजुता से [उसके पीठ पर] हाथ फेरा। तब वह पुनः शोभायमान बना। ३८९ [व.] इस प्रकार ऐरावत की थकान (व्याकुलता) को दूरकर, समक्ष खड़े भिदुरपाणि (इंद्र) को देखकर, अपने सहोदर को मारने के ढंग का स्मरण कर मोह और शोक के विपर्यस्त होने पर, आह्व (युद्ध) काम्यार्थी (चाहनेवाला) बनकर वृत्र ने यों कहा— ३९० [शा.] मेरे अग्रज और तुम्हारे सद्गुरु को जो दीन-व्रात (-समूह) का रक्षक है, शुभालोक वाला है [तुमने] मार डाला। इस प्रकार पाप मतिवाला बनकर लोभ के कारण इस अवसर

लोकुल् नव्वग मद्भुजा पटिमकुन् लोनैति वी शूलमं-
दार्कंपिपग निन्नु गुच्चि ऋणमुक्तात्मुंडनै पेचॆंदन् ॥ 391 ॥

कं. ऎट्टि तुलुवैन गानि, नॆट्टन दन ब्रतुकु कॊरकु नीवलॆ गुरुवं
जुट्टमुनु बुण्यु ब्राह्मणु, बट्टि वधिपंग गलडॆ ? पशुवं बोलॆन् ॥ 392 ॥

चं. दययुनु सत्यमुन् विडिचि धर्ममु मानि यशंबु वासि श्री
जयमुल बारदोलि पुरुषत्वमु गानक लोकनिंदिता
ह्वयुडगु वानि चावुनकु नार्युलु गुंदुदुरे ? सृगालमुल्
प्रियमुन नंटुने शवमु ? क्रेलक चेरुनॆ ? कंक गृध्रमुल् ॥ 393 ॥

कं. निक्कमगु पापमुलचे,
जिक्कितिवि निशात शूल शिखराग्रमुनन्
ग्रक्किंचि नीदु मांसमु,
नक्कलु गुक्कलुनु जेरि नमलग जेतुन् ॥ 394 ॥

उ. दीकॊनि नीकु नेडिचट दिक्कनि वच्चिन वारु गलिगरे
नेकमतिं बिशाचमुल कॆल्लनु दृप्तिग मन्निशात शू
लैक महाग्निकीलल ननेक विधंबुल सोमयाजिनै
मेकल जेसि वेल्चॆद नमेय मदोद्धति ब्रालि यिय्यनिन् ॥ 395 ॥

---

पर, लोकों (लोगों) के अवहेला करने पर मेरी भुजाओं की सामर्थ्य के कारण वशवर्ती (अपमानित) हो गये। इस शूल के कंपित होने पर तुम्हे चुभोकर ऋण मुक्तात्मा बनकर विजृंभित हो जाऊँगा। ३९१ [कं.] कैसा भी नीच क्यों न हो अपने जीवन के लिए निर्दयता से तुम्हारे समान गुरुबन्धु पुण्यात्मा ब्राह्मण को पकड़कर पशु के समान वध कर सकता है ? (नहीं कर सकता) ३९२ [चं.] दया और सत्य को छोड़कर धर्म से निरत होकर, यश को खोकर, श्री और जय को भगाकर, पुरुषत्त्व (पौरुष) के न दीखने पर लोकनिन्दित नाम वाले (बदनाम बने हुए) व्यक्ति की मौत के लिए क्या आर्य (श्रेष्ठ जन) व्याकुल होते हैं ? क्या [उसकी] शव को शृगाल भी प्रेम से स्पर्श करते है ? कंक और गृध्र चीत्कार किये विना क्या [उसके] पास पहुँचते हैं ? ३९३ [कं.] सच्चे पापों के कारण [तुम मेरे हाथों में] फँस गये। निशात (पैने) शूल के शिखराग्र पर चढ़ाकर तुम्हारे मांस को गीदड़ और कुत्तों के चबाने के लिए डाल दूँगा। ३९४ [उ.] [मेरा] सामना कर आज यहाँ तुम्हारे लिए शरण्य बनकर आनेवाले कोई हुए ? एकमति (एकाग्रता) से समस्त पिशाचों को सतृप्त करते हुए अपने निशात शूल की महाग्नि ज्वालाओं में अनेक विधियों से अमेय (असमान) मद की उद्धति से इस रणस्थल पर [तुम लोगों को] बकरियाँ बनाकर हवन कर दूँगा और

कं. काक ननु गुलिशधारल, दीकोंनि निर्जिप गलिगितेनियु भूतो-
द्रेकंबु सेसि शूरुल, प्राकट पदपद्म धूलि भागंबगुदुन् ॥ 396 ॥

सी. संदेहमेटिकि ? जंभारि ! वेवेग भिदुरंबु व्रेयु माभीलभंगि
नतिलोभि नडिगिन यर्थराशियु बोलॅ गडपकु मिदि वृथ गादु सुम्मु
मुरमर्दनुनि तेजमुन ना दधीचि वीर्यातिशयंबुन नधिकमैन
यदि गान हरिचे नियंत्रितोन्नतुडवै गॅलुवुमु शत्रुल गीटणंचि

आ. यॅंदु गलडु विष्णुडंदु जयश्रीलु, पॉंदु गाग वच्चि पॉदुचुंडु
गान भक्त वरदु गमलाक्षु सर्वेशु, पदमुलंदु मनमु पदिलपरुतु ॥ 397 ॥

व. इट्लु वज्रधारलं दॆंप बडिन विषयभोगंबुलु गलवाडनै शरीरंबु विडिचि, भगवद्धामंबुनुं बॊंदॆद। नारायणुनि दासुंडनैन नाकु स्वर्ग मर्त्य पाताळंबुलं गल संपद्भोगंबुलु निच्छयिंपबडवु। त्रैवर्गिकायास रहितंबैन महैश्वर्यंबु प्रसादिंचु गावुन ननुपमेयंबैन भगवत्प्रसादंबन्युल कगोचरंबु। अद्देवुनि पादैक मूलंबुगा नुंडु दासुलकु दासानुदासुंडनै युन्नवाड। अनि यप्परमेशु नुद्देशिंचि ॥ 398 ॥

---

सोमयाजि बनूँगा। ३९५ [कं.] ऐसा न होकर कुलिश-धाराओं से सामना कर मुझे निर्जित कर सकोगे तो भूतोद्रेक से शूरों के प्रकट पदपद्मधूलि का भागी बनूँगा। ३९६ [सी.] हे जंभारि (इंद्र) ! [अब] संदेह क्यों ? भयंकर विधान से झट भिदुर को फेंक दो। अति लोभी से माँगी गयी अर्थराशि के समान मत टालो। (लोभी से पैसा माँगने पर वह नहीं देता। मेरे माँगने पर तुम लोभी के समान अपने हथियार को अपने पास ही मत रखो।) यह (वज्रायुध) व्यर्थ नहीं जायेगा। मुर-मर्दन (मुरारि) के तेज और उस दधीचि के वीर्यातिशय से यह महोन्नत बना हुआ है। इसलिए हरि के द्वारा नियंत्रित और उन्नत बनकर शत्रुओं का दमन कर विजय प्राप्त करो। [आ.] जहाँ विष्णु है वहीं जय और श्रीयाँ शोभा से आकर शोभायमान होती रहती हैं। अतः भक्तवरद कमलाक्ष और सर्वेश के चरणों में मन को स्थिर करो। ३९७ [व.] इस प्रकार वज्र की धाराओं से काटे जाकर विषय-भोगों से युक्त शरीर को छोड़कर भगवत्-धाम को प्राप्त करूँगा। नारायण के दास बने हुए मुझे स्वर्ग-मर्त्य पातालों की सम्पत्ति और भोग की इच्छा नहीं होती। अनुपमेय भगवत्-प्रसाद अन्यों के लिए अगोचर है। वह त्रैवर्गिक (तीन प्रकार के) आयास-रहित महा-ऐश्वर्य का प्रदान करता है। उस देव के पादमूल में रहनेवाले दासों के लिए दासानुदास बना हुआ हूँ। [ऐसा] कहकर उस परमेश्वर के प्रति [ऐसा कहा] ३९८ [चं.] सोचने पर भक्तपालन करनेवाले

चं. अरयग भक्त पालनमुलैन भवच्चरितंबु लात्म सं-
स्मरणमु सेयु वाक्कु निनु सन्नुति सेय शरीरमेल्ल गिं-
कर परिवृत्ति सेय मदि गांक्ष यौनचें'द गानि यौल्लने
नरिदि ध्रुवोन्नत स्थलमु नब्जजु पट्टमु निंद्र भोगमुन् ॥ 399 ॥

उ. आकलिगोन्न क्रेपुलु रयंबुन नोकलु रानि पक्षुलुं
दीकौनि तल्लिकिन् मरि विदेशगतुंडगु भर्त कंगज
व्याकुल चित्तयन जवरालुनु दत्तरमंदु भंगि नो
श्रीकर! पंकजाक्ष! निनु जेरग नामदि गोरेडुं गदे! ॥ 400 ॥

कं. नाकुनु सख्यमु पुण्य, श्लोकुलतो गानि तत्त्वशून्युलु संसा-
रैक विमोहुलतोडं, गाकुंड नोनर्पुमय्य! कंजदळाक्षा! ॥ 401 ॥

व. अनि पलुकुच ॥ 402 ॥

## अध्यायमु—१२

म. स्र. हरिपै सर्वात्मुपै नत्यगणितगुणुपै नंतरंगंबु पर्वन्
सरि मेनुप्पोंग जावुं जयमुनु सरिगा संतसंबंदुचुं भी-
करुडै कालाग्नि वोलेन् गनलुचु गविसेन् गर्वदुर्वारुडै दु-
र्भर लीलं भूमि गंपिपंग दिश लद्रुवन् भंडनोद्दंडवृत्तिन् ॥ 403 ॥

तुम्हारे चरितों का आत्मा संस्मरण करे, वाक् तुम्हारी सन्नुति करे, समस्त शरीर किंकर (सेवक) के समान सेवा करे। ऐसा मैं मन में इच्छा करता हूँ। मैं विरल रूप से प्राप्त होनेवाले ध्रुव का उन्नत स्थान, ब्रह्मपद या इंद्रभोग की इच्छा नही करता। ३९९ [उ.] हे श्रीकर! हे पंकजाक्ष! भूखे बने बछड़े [और] ऐसे पक्षी जिनके पर न निकले हों, माता को और अंगज (कामपीड़ा से) व्याकुल चित्त बनी युवती को विदेश-गत पति को प्राप्त करने के लिए, जितनी व्याकुलता होती है, मेरा मन उसी प्रकार से तुम्हें प्राप्त करना चाहता है न। ४०० [कं.] हे कंजदलाक्ष! मुझे पुण्यश्लोक वालों की संगति प्राप्त हो, तत्त्वशून्य और संसार के प्रति विमोहित बने लोगों का सांगत्य न हो, ऐसा करो। ४०१ [व.] ऐसा कहते हुए ४०२

## अध्याय—१२

[म. स्र.] हरि के प्रति, सर्वात्मक के प्रति, अति अगणित गुण वाले के प्रति अंतरंग (हृदय) के प्रसरित होने पर ठीक ढंग से शरीर के उमड़ने पर मृत्यु और जय को समान मानकर संतुष्ट होते हुए, भीकर बनकर, कालाग्नि के समान बलते हुए, गर्व-दुर्वार बनकर, दुर्भर लीला से भूमि के

कं. दीरकॊनि प्रळयोदकमुन, हरिपै गटभुडु गवियु हुंकारमुनन्
सुरनाथु मीद वृत्रा, -सुरुडु मदोद्वृत्ति नडचॆ शूलायुधुडै ॥ 404 ॥

शा. कल्पांताग्नियु बोलॆ नुल्क लॆगयंगा द्रिप्पुचुन् दीन नो
रल्पा ! पॊलिसॆदि वंचु शूलमु रयंबारंगवै वैचिनं
बोल्पं गोटिरवि प्रकाशत दिवि बोवंग वीक्षिचि या
वेल्पुल्वॊंगग वज्रधार दुनिमॆन् विन्नाण मॊप्पारगन् ॥ 405 ॥

आ. शूलमप्पुडतडु त्रुक्कग खंडिचि, पूनि तोन कदिसि भुजमु द्रुंचि
नसुर गनलि येकहस्तुडै परिघंबु, गॊनि महेंद्रु गिट्टि हनुवु लडिचॆ॥406॥

व. इट्लु प्रळयकाल भीषण परिवेष पोषंबुगा रोषंबुनं बरिघंबु द्रिप्पि, कुप्पिचि, गज कुंभस्थलंबु भग्नंबु सेसि, यिंद्रु हनु प्रदेशंबुलु निष्ठुराहति नॊप्पिचिन ॥ 407 ॥

कं. गजमु मदमुडिगि तिरुगुचु
गुजगुजनै गीकवॆट्ट गुलिशमु नेलन्
भजन चॆडि बिडिचॆ निंद्रुडु,
गजिबिजितो बॆगडॆ नसुर कडिमि जगंबुल् ॥ 408 ॥

---

कंपित होने पर, दिशाओं के विचलित होने पर भण्डन (युद्ध) की उद्दण्ड प्रवृत्ति से [वृत्रासुर] जूझ पड़ा। ४०३ [कं.] लगकर प्रलयकालीन उदक (जल) पर स्थित होकर हरि पर टूट पड़नेवाले कैटभ के हुंकार से युक्त होकर, मद की उद्वृत्ति से वृत्रासुर शूलायुध होकर (हाथ में शूल लेकर), सुरनाथ की ओर वृत्रासुर चल पड़ा। ४०४ [शा.] [शूल से] कल्पान्त (प्रलयकालीन) अग्नि के समान उल्काओं के छूट पड़ने पर [शूल को] घुमाते हुए "अरे अल्प ! इससे तुम मर जाओगे।" कहते हुए झट से शूल को फेंक दिया। फेंक देने पर उसके कोटि रवि के प्रकाश से युक्त, आकाश-मार्ग से आते देखकर देवताओं के उल्लसित होने पर चतुराई की शोभा से वज्रधारा से [शूल को] काट दिया। ४०५ [आ.] उसके (वृत्रासुर के) शूल के काट देने पर उसके हताश हो जाने पर झट लगकर [इंद्र ने] उसकी भुजा काट दी। असुर ने क्रुद्ध होकर एक हस्त वाला होकर परिघा लेकर महेंद्र के हनु को मारा। ४०६ [व.] इस प्रकार प्रलयकाल के भीषण परिवेश के रूप में परिघा को घुमा कर, उछलकर, गज के कुंभस्थल को भग्न कर, इंद्र के हनु-प्रदेश को निष्ठुर आहति (-आघात) से पीड़ित करने पर ४०७ [कं.] गज के मद को खोकर चक्कर लगाते हुए, चिंघाड़ने पर, धैर्य खोकर इंद्र ने कुलिश (वज्र) को नीचे गिरा दिया। असुर के प्रताप के कारण जगत परेशान होकर भयभीत हुए। ४०८ [कं.] गरुड़ के झपटकर पकड़े नाग (सर्प)

कं. गरुड्डु वॊडिविन नागमु, करणिन् वृत्रासुरेंद्रु कडमिकि लोवै
तिरुगुडुवड्ड हरिगनि, पुरपुर नाहा ! यटंचु वॊगिलॆ जंगमुल् ॥409॥

व. अप्पुडु ॥ 410 ॥

ते. गजमु पाटु जूचि कडु दीनगति जूचि
पवि करंबु जारि पडुट जूचि
युद्ध धर्म मॆरिगि युन्न शत्रुनि जूचि
सिग्गुतोड वज्रि शिरमु वंचॆ ॥ 411 ॥

व. इट्लु युद्धंबुन शत्रुसन्निधि गरंबु जारि पडिन वज्रंबु वुच्चिकॊनक निव्वॆरपडि, लज्जिचियुन्न पाकशासनुं जूचि, वृत्रुंडिट्लनियॆ ॥ 412 ॥

कं. दुरमुन गेदुवु वदलिन
शरणन्ननु वैरि जनुल जंपमु मदि नि-
व्वॆर गॊद नेल ? कुलिशमु
कर मरुदुग वुच्चिकॊनुमु काचिति निद्रा ! ॥ 413 ॥

सी. वज्रंबु गैकॊनि वैरि निर्जिपुमिट्लडलंग वेळगादमरनाथ !
यरय देहाधीनुलैन मूर्तुल कॆल्ल नीशु लक्ष्मीशु सर्वेशु बासि
कडतेर जयमुलु गल्गुनॆ यॆदैन दलपोसि चूडुमा ! तत्त्वदृष्टि
नी लोकपालुरु नॆव्वनि वशगति वल बड्ड पक्षुल वर्तनमुन

---

के समान वृत्रासुरेंद्र के प्रताप के कारण नीचा होकर चकित बने हरि (इंद्र) को देखकर हाहाकार करते हुए जग व्याकुल बन गये। ४०९ [व.] तब ४१० [ते.] गज के गिरने को देखकर अति दीन गति से [उसे] देखकर पवि (वज्र) के कर से छूट गिरने को देखकर, युद्धधर्म के जानकार बने शत्रु को देखकर वज्रि (इन्द्र) ने लज्जा के कारण सिर झुका लिया। ४११ [व.] इस प्रकार युद्ध में शत्रु के समक्ष हाथ से छूट गिरे वज्र को न लेकर आश्चर्यचकित हो लज्जित बने हुए पाकशासन (इन्द्र) को देखकर वृत्र ने यों कहा— ४१२ [कं.] युद्ध में तलवार छोड़ देने पर शरण माँगने पर हम वैरी जनों को नही मारते। मन में चकित क्यों होते हो ? हे इंद्र ! तुम्हें बचाता हूँ। कुलिश को विरल रूप से हाथ में ले लो। ४१३ [सी.] हे अमरनाथ ! वज्र हाथ में लेकर वैरी को निर्जित करो। इस प्रकार भीत होने का समय नहीं है। सोचने पर देहाधीन बने हुए व्यक्तियों को जो ईश, लक्ष्मीश, सर्वेश से विछुड़नेवाले व्यक्तियों को अंत में कहीं जय प्राप्त होती है ? सोचकर देखो। तत्व की दृष्टि से ये लोकपाल जाल में फँसे पक्षियों के समान जिसके वशीभूत होकर चेष्टाएँ करते हुए, [ते.] चिन्ता करते रहते है, ऐसे कमललोचन

ते. जिविक्रु चेष्टलु सेयुचु जितसेतु
रट्टि मृत्युबलंबुल नात्मजयमु
तमदिगा गोरि यज्ञान तंत्रुलगुचु
गमललोचनु लीला विकारमुलनु ॥ 414 ॥

ते. मेंड्रय यंत्रमयंबैन मृगमुभंगि
दारु निर्मितमैनट्टि तरुणि पोलिक
शक्र ! येरुगम यी भूतजाल मेल्ल
दाळत पंकेरुहाक्षु तंत्रंबु गाग ॥ 415 ॥

व. मरियु भूतेंद्रियांतःकरणंबुलुनु, प्रकृतिपुरुषुलुनु, भगवंतुनि यनुग्रहंबु लेमि सर्गादुलयंदु समर्थंबुलु गावु। अविद्वांसुंडैन वाडनवरतंबु दन्नु स्वतंत्रुनिगा दलंपुचुंडु। भूतंबुल वलन भूतंबुलु बुट्टुचुंडुनु। आ भूतंबुलु भूतंबुलचेत भक्षिप बडुचुंडु। पुरुषुन कायुवु, श्रीयुनु, कीर्तियु, नैश्वर्यंबु मादलयिनवि यनुभविप नेंतकालंबु प्राप्तं बंत कालंबु निवसिचु। आप्राप्तंबु दीरिन बुरुषुंडु जालि वोंदिन नवियुंडक पोवुचुंडु। कावुन गुणंबु, नवगुणंबुनु, कीर्त्यपकीर्तुलुनु, जयापजयंबुलुनु, सुखदुःखंबुलुनु, जावु ब्रतुकुलुनु, समंबुलै कलुगुचुंडु। अज्ञानियैनवानिकि सत्त्वरजोस्तमोगुणंबुलु गलिगियुंडु। अट्टि वानिकि गुणमयंबुलैन यिंद्रियादुले यात्मयनि तोचुचु नुंडु। कावुन वाडा गुणंबुलचेत बद्धुंडगु। आ गुणंबुलकु साक्षिमात्रंबैन

---

(विष्णु) के लीला के विकार से मृत्युबल और आत्मजय (अपनी जय) को अपना मानकर अज्ञान के तंत्र मे आबद्ध हो जाते है। ४१४ [ते.] हे शक्र (इंद्र) ! प्रकाशमान यंत्रमय मृग की भाँति दारु (काठ) निर्मित तरुणी के समान यह समस्त भूत-जाल पंकेरुहाक्ष (विष्णु) के हाथ संचलित होनेवाला तंत्र है, ऐसा जान लो। ४१५ [व.] और भूत, इंद्रिय, अंतःकरण और प्रकृति, पुरुष ये भगवान के अनुग्रह के अभाव में सृष्टि आदि में समर्थ नहीं होते। जो अविद्वान हैं, वह अपने-आपको अनवरत (सदा) स्वतंत्र मानता रहता है। भूतों के कारण भूत उत्पन्न होते रहते हैं। वे भूत उन भूतों द्वारा खाये जाते रहते है। पुरुष के लिए आयु, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य आदि का अनुभव जितने काल तक है उतने काल तक वे प्राप्त होते रहते हैं। उस प्राप्त [काल] के समाप्त होने पर पुरुष के चाहने पर भी वे नही रहते, चले जाते हैं। अतः गुण-अवगुण, कीर्ति-अपकीर्ति, जय-अपजय, सुख-दुःख, जन्म-मरण सम रूप से प्राप्त होते रहते हैं। जो अज्ञानी है, वह सत्त्व-रज-तमोगुणों से युक्त रहता है। ऐसे व्यक्ति को गुणमय बने हुए इन्द्रिय आदि ही आत्मा के समान प्रतिभासित होते रहते है। अतः वह उन गुणों से आबद्ध होता है। जो यह जान सकता है कि

शरीरंबु वेऱनि यॆव्वंडॆरुंगनोपु, वाडा गुणंबुलचेत बद्धुंडु काडु। कावुन गुणंबुलुनु, गुणियुनु, भोक्तयुनु, भोग्यंबुनु, जयंबु, नपजयंबुनु, हर्तयुनु, हृन्यंबुनु, नुत्पत्ति स्थिति लय कर्तयै, सर्वोत्कृष्टुंडैन यप्परमेश्वरुंडे कानि यन्यंबु लेदु। इप्पुडॊक्क हस्तंबु नायुधंबुनु वोयिननु भवत्प्राणापहारणंबुनकु समर्थुंडनगुचुन्न नन्नुं जूडुमु। अनि मऱियु निट्लनियॆ ॥ 416 ॥

ते. वाहनंबुलु सारॆलु वाडि शरमु
लूर्जिताक्षमु लसुवुलु नॊड्डणमुलु
गाग बोरॆडि नी द्यूत कर्ममंदु
नॆसग जयमुनु नपजय मॆव्वडॆरुगु ॥ 417 ॥

चं. अनवुडु वृत्रु माटलकु नद्भुतमंदि सुरेंद्रु डैंतयुं
दनमदि गुत्सितंबुडिगि दैवमुगा नतनिन् भजिंचि कं-
कॊनियॆ गरंबुनं दिगुव गूलिन वज्रमु, नप्पुडात्मलो
दनरॆ जगंबु लन्नियु; मुदंबुनु बॊंदिरि खेचरावळुल् ॥ 418 ॥

कं. राहु ग्रह वक्त्र महा, गेहांतमु वालि वच्चि किरणावळि स-
द्बाहुळ्य मॊप्प वॆलिगॆडु, ना हरिदश्वुंडु बोलॆ हरि यॊप्पॆ नृपा! ॥419॥

व. इट्लु करकलित वज्रायुध रुङ्मंडल मंडित दिङ्मंडलुंडै जंभारि गंभीर वाक्यंबुल विस्मय मंदस्मित मुखारविंदुंडै वृत्रुन किट्लनियॆ ॥ 420 ॥

---

उन गुणों के साक्षी मात्र शरीर अलग है, वह उन गुणों से आबद्ध नहीं होता। अतः गुण और गुणी, भोक्ता और भोग्य, जय और अपजय, हर्ता और हर्य, उत्पत्ति-स्थिति-लय का कर्ता, सर्वोत्कृष्ट उस परमेश्वर के अतिरिक्त और कुछ नही है। अब एक हाथ और आयुध के जाने पर [छूट जाने पर भी], तुम्हारे प्राण-अपहरण में समर्थ बने हुए मुझे देखो। [ऐसा] कहकर और यों कहा। ४१६ [ते.] वाहन (रथ, तुरग आदि) पासे हैं, तेज बाण अच्छे अक्ष हैं, प्राण बाजी हैं। इस रूप में जूझे जानेवाले इस द्यूत-कर्म (जुए) में कब जय होगी और कब अपजय होगी —कौन जान सकता है? ४१७ [चं.] ऐसा कहने पर वृत्र के वचन [सुनकर] आश्चर्यचकित होकर सुरेंद्र ने अपने मन में अधिक कुत्सित भाव को छोड़कर उसे दैव के रूप में मानकर नीचे गिरे वज्र को हाथ में लिया। तब समस्त जग मन में प्रसन्न हुए, खेचर-समूह मुदित हुआ। ४१८ [कं.] हे नृप! राहु ग्रह के वक्त्र रूपी महा गेह के अंतर (भीतर) से छूटकर बाहर आकर किरणावलि की बहुलता से प्रकाशमान होनेवाले उस हरिदश्व (सूर्य) के समान हरि (इंद्र) शोभायमान हुआ। ४१९ [व.] इस प्रकार हाथ में सुन्दर बने वज्रायुध के रुक्मण्डल-मण्डित दिक्मण्डल वाला होकर जंभारि (इंद्र) ने गंभीर

कं. ओ दानवेंद्र ! नी मति,
बेदांतमुबोलॆं तत्त्वविज्ञान कळा-
मोदमु नी वति भक्तुड-
वादिम पुरुषुनकु हरिकि नब्जाक्षुनकुन् ॥ 421 ॥

उ. लोकमुलॆल्ल निंडि तन लोनुग सर्वमु जेसि प्राणुलन्
दीकुल बॆट्टि यॆल्लॆडल दीपुलु सूपॆडि विष्णुमाय ने-
डेकमतिं दलंचितिदियेल ? महासुर रूपु मानि सु-
श्लोकु पुराणपूरुषुनि शोभनमूर्ति धरिंपुमिपुनन् ॥ 422 ॥

उ. ए नियमंबु सलिपितिवॊ ! यॆट्टि महातप माचरिंचितो !
पूनि रजोगुणाभिरति बॊंदिन नी मदि शांत दांत स-
न्मान समान सानुभव मत्त मराळु प्रसन्न भाव स-
न्मानु नमेयु ना दनुज मनुनु भक्ति पॊसंगॆ नॆंतयुन् ॥422॥ अ

कं. नारायण रूपामृत, पारावारमुन देलु भक्तुडु दा भू-
दारकृत खातकोदक, पूरंबुल नेक तृप्ति बॊंदि ? महात्मा ! ॥ 423 ॥

व. इट्लु वलुकुचुन्न यिंद्रु नुपलक्षिंचि, वृत्रासुरुंडायोधन दुर्मर्षण संघर्षमाण मानसुंडै वैरि बुरिकॊल्पुकॊनि, वाम हस्तंबुन बरिघंबु द्रिप्पुचु, मत्सरंबुनं गुप्पिचुचु, ब्रह्मांड कर्परंबु निष्ठुर भैरवारावंबुनं बगिलिचुचु, समुत्तुंग

---

वाक्यों से विस्मय और मंदस्मित से युक्त मुखारविन्द वाला बनकर वृत्र से यों कहा । ४२० [कं.] हे दानवेन्द्र ! तुम्हारी मति वेदान्त के समान तत्त्व-बिज्ञान-कलाओं से युक्त है । तुम आदिम पुरुष, हरि, अब्जाक्ष के अति भक्त हो । ४२१ [उ.] समस्त लोकों में भरकर, सर्व को अपने में समाकर प्राणियों को प्रेरित करते हुए सर्वत्र माधुर्य को दिखानेवाली विष्णु माया का काज एकाग्र मति से यह क्यों स्मरण किया ? महा असुर के रूप को छोड़कर सुरलोक, पुराणपुरुष की शोभन-मूर्ति को शोभा से धारण करो । ४२२ [उ.] पता नहीं किस नियम का पालन किया । पता नहीं कौन-सा महातप किया ! लगकर रजोगुण में आसक्त बनी हुई तुम्हारी बुद्धि शान्त-दान्त सन्मानस-मानसानुभव में मत्त मराल (हंस), प्रसन्न भाव से सन्मान्य, अमेय और उस दनुजमर्दन (विष्णु) की भक्ति से अति ही सम्पन्न हुई । ४२२ (अ) [कं.] हे महात्मा ! नारायण रूपी अमृत के पारावार (सागर) में ऊभ-चूभ होनेवाला भक्त भूमि की खाइयों में भरे हुए उदक-पूर (छोटे-छोटे गड्ढों के पानी) से क्योंकर तृप्त होगा ? ४२३ [व.] इस प्रकार बोलनेवाले इन्द्र को उपलक्षित कर वृत्रासुर ने आयोधन (युद्ध) दुर्मर्षण, संघर्षमान मानसवाला बनकर वैरी को ललकार कर, वामहस्त से परिघा को घुमाते हुए मात्सर्य-भाव से

मत्त मातंग पुंगवंबु वृषभंबुपै गदियु भंगि सुर वृषभु पेरुर मुपलक्षिचि, भीषणाशनि निपातवेगंबुन गोट्टिन, निद्रुंडु कुलिशधार नप्परिघंबु दुनिमि, तोडने शेष फणा विशेष भासुरबैन बाहुदंडंबु खंडिचें। अप्पुडु वृत्रुंडु भिन्न बाहुद्वयुंडै, रक्तधारलं दोगुचु वज्रिचेत वक्षरहितंबै दिवंबुननुंडि जारुचुन्न कुलपर्वतंबुनुंबोलें जूपट्टि, प्रळयकाल संहार निटलच्छटच्छटाभंट कठोर कीलाभिलाग्नि समान क्रूर कुटिल निरीक्षण दुर्निरीक्षुडै, भू नभो मंडलंबुलग्रिंदि मीदि दौडल हत्तिचि, नभोमंडलंबुनुंबोलें दुदि मोद-लेरुंगराक, विकृतंबुगा वदनंबु देरुचि, मंदर मथन मथ्यमान विषधर जनित विष विषम जिह्वाभीलंबगु नालुक नभंबु नाकुचु, गाल संहार कारणुंडैन कालुनि भुजदंड मंडित काल दंडंबुनुं बोलेंडि दंष्ट्रलचेत जगत्रयंबुनु त्रिगेंडु वानिबोलें नतिमात्र महाकायुंडै, पर्वतंबुलं दलंग मोट्टुचु, नड गोंड्युंबोलें नभोभाग भूभागंबुल नाक्रमिचि, यप्पुडु ॥ 424 ॥

उ. कालमु नाटि मृत्युवु मुखंबुन बोलेंनु विस्फुलिंगमुल्
ग्रालग देव संघमुलु कंपमु नौंद जगंबुलेल्ल ना

उछल-कूद करते हुए ब्रह्माण्ड-कर्पर को निष्ठुर भैरव आरव से फोड़ते हुए, समुत्तुंग मत्त मातंग-पुंगव (-श्रेष्ठ) वृषभ पर टूट पडने के समान सुर वृषभ (सुरेन्द्र) के विशाल वक्ष को निशाना बनाकर, भीषण अशनि निपात के वेग से मारने पर इन्द्र ने कुलिश-धारा से उस परिघा को टूक-टूककर झट शेषफण के समान विशिष्टता से भासुर बने हुए [वृत्र के] बाहुदण्ड को खण्डित कर दिया। तब वृत्र ने दोनों बाहुओं के खण्डित होने पर रक्त की धाराओं में लथपथ होकर, वज्रि (इन्द्र) के हाथ पक्ष-रहित (पंखों के बिना) होकर दिव (आकाश) से नीचे की ओर आनेवाले कुल-पर्वत के समान दिखाई पड़ा। [तब वह] प्रलयकाल के संहार-कारक निटल छट् छट्-आर्भट से युक्त कठोर कीलाओं से आभील (भयंकर) अग्नि के समान क्रूर कुटिल और देखने में दुर्निरीक्ष होकर भू और नभोमण्डल को नीचे और ऊपर के जबड़ों से पकड़कर, नभोमण्डल के समान आदि-अन्त-रहित होकर, विकृत रूप से वक्त्र को खोलकर, मन्दर पर्वत के मंथन के समय मध्य में उत्पन्न विषधर-जनित विष से विषम बने आभील (भयंकर) जिह्वा से आकाश को चाटते हुए, काल-संहार के कारण भूत काल (यमराज) के भुजदण्ड पर मण्डित कालदण्ड के समान दंष्ट्राओं से जगतत्रय को निगल जानेवाले के समान अति मात्र महाकाय वाला बनकर पर्वतों को उछाल लेते हुए, महापर्वत के समान नभोभाग और भू-भाग को आक्रान्त किया। तब ४२४ [उ.] प्रयलकाल के समय की मृत्यु-मुख के समान विस्फुलिगों (चिनगारियों) के प्रस्फुटित होने पर, देवसंघों के कंपित होने पर समस्त जगों में हाहाकार के मच जाने पर,

हा लुठितारवंबेसग नभ्र गजंबुनु नायुधंबुतो
नालुक जुट्टि पट्टि सुरनाथुनि म्रिगें महाद्भुताकृतिन् ॥ 425 ॥

आ. लोकमॆल्ल नपुडु चीकाकुपडॆ दमं
वडरॆ नुडुगणंबु लवनि वडियॆ
सोनवान गुरिसॆ सूर्य चंद्राग्नुल
रश्मु लुडिगॆ विशलु रभस मय्यॆ ॥ 426 ॥

व. अप्पुडु ॥ 427 ॥

उ. कंदडु भीति गुंदडु प्रकंपित मॊंदडु पॆद्दनिद्दुरं
जॆंदडु तत्तरिल्लपडु विशेषमु चॆप्पडु वैष्णवी जया
नंद परैक विद्ययु मनंबुन दाल्चुचु नुंडॆ गानि सं-
क्रंदनुडा निशाचरुनि गर्भमुलो हरि रक्षितांगुडै ॥ 428 ॥

व. इट्लु कवच रूप श्रीनारायण कृपा पालितुंडै योगबलंबुन बलभेदि यतनि युदरंबु वज्रायुधंबुन भेदिंचि, यैरावणसहितुंडै वॆडलि, यतनि कंधरंबु तॆगनडुव वज्रंबु प्रयोगिंचिन, नति निष्ठुर वेगंबुन वृत्र हरणार्थंबुगं दिरुगुचु सूर्यादि ग्रह नक्षत्रंबुलकु दक्षिणोत्तर गति रूपंबैन संवत्सर संधियंदु नहोरात्र मध्यंबुन वृत्रु शिरंबु पर्वत शिखरंबुनुंबोलॆ द्रुंचि, कूलंद्रोचॆं। अप्पुडु ॥429॥

---

अभ्र-गज (ऐरावत) को आयुध के साथ सुरनाथ को महा अद्भुत आकार से जिह्वा से समेटकर निगल गया। ४२५ [आ.] तब समस्त लोक विकल बना, तम (अंधकार) फैल गया। उडुगण (नक्षत्र-समूह) धरती पर गिर पड़ा। मूसलाधार वर्षा हुई। सूर्य, चंद्र, अग्नियों की रश्मियाँ (किरणें) मिट गयी। दिशाएँ विचलित हो गयीं। ४२६ [व.] तब ४२७ [उ.] उस निशाचर के गर्भ में हरि द्वारा रक्षित शरीर वाला संक्रन्दन (इंद्र) तप्त नही होता, भीति से विह्वल नही होता, प्रकंपित नहीं होता, दीर्घ निद्रा (मृत्यु) को प्राप्त नहीं होता, व्याकुल नहीं होता, कोई विशेषता से युक्त नहीं होता, क्योंकि उसने मन में वैष्णवी (विष्णु सम्बन्धी) जयानन्द-परैक-विद्या को धारण किया था। ४२८ [व.] इस प्रकार कवच रूप बने हुए श्रीनारायण की कृपा से पालित होकर योगबल से बलभेदी (इंद्र) ने उसके (वृत्र के) उदर को वज्रायुध से बेध कर, ऐरावण (ऐरावत) के साथ बाहर निकलकर उसके कंधर (कंठ) को काटने के लिए वज्र का प्रयोग किया। अति निष्ठुर वेग से वृत्र के हरण (संहार) के लिए घूमते हुए सूर्य आदि ग्रह नक्षत्रों के दक्षिण-उत्तर गति रूप वाले संवत्सर के संधिकाल में, अहोरात्र मध्य मे (संध्याकाल में) वृत्र के सिर को पर्वत-शिखर के समान काटकर नीचे गिरा दिया। तब ४२९ [म.] आकाश

म. मॊरसॆंदुंदुभु लंबरंबुन गड्डुन् मॊत्रिचि गंधर्वुलुन्
सुरलुन् सिद्धुलु साध्युलुन् मुनिवरुल् सॊंपार वृत्रघ्नु मो-
कर तेजोविभव प्रकाशकर विख्यातैक मंत्रंबुलं
दिरमॊप्पं बठियिंपुचुं गुरिसिरॆंते ग्रॊत्त पूसोनलन् ॥ 430 ॥

आ. एमि चॆप्प नप्पुडिंद्रारि तनुवुन, नॊक्क दिव्य तेज मुब्बि वॆडलि
लोकमॆल्ल जूड लोकंबु चूडनि, लोक मरिगि विष्णु लोनु सॊच्चॆ ॥431॥

## अध्यायमु—१३

व. इट्लु लोक भीकरुंडैन वृत्रासुरंडु गूलिन, नखिल लोकंबुलु बरितापंबु लुडिगि सुस्थितिं बॊंदॆ। देव ऋषि पितृ गणंबुलु दानवुलतोडं गूडि, यिंद्रुनकुं जॆप्पक तम तम स्थानंबुलकुं जनिरि। अनिन विनि, परीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुकयोगींद्रुन किट्लनियॆं ॥ 432 ॥

ते. एमि कारणमुन निंद्रुतो वलुकक
सुरलु वोयि ? रट्टि सुरगणंबु
लॆंदुचेत सुखमु जॆंदिरि ? वज्रिकि
जेटु गलुगुटॆट्लु ? चॆप्पुमय्य ! ॥ 433 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆं। वृत्र पराक्रम चकितुलैन निखिल देवतलुनु,

---

में दुंदुभियाँ बज उठीं। गंधर्व अधिक मुदित हुए। सुर, सिद्ध, साध्य और मुनिवरों ने वृत्रघ्न (इंद्र) के भीतर तेजोविभव के प्रकाश कर विख्यात मंत्रों को स्थिरता से पढ़ते हुए नवीन पुष्पों की धाराओं को बरसाया। ४३० [आ.] क्या कहूँ, तब इन्द्रारि (वृत्र) के शरीर से एक दिव्य तेज उभरकर वाहर निकलकर, समस्त लोकों के देखते रहने पर, लोगों के लिए अगोचर लोक में जाकर विष्णु में समा गया। ४३१

## अध्याय—१३

[व.] इस प्रकार लोकभीकर वृत्रासुर के गिर पड़ने (मर जाने) पर, समस्त लोक परिताप खोकर सुस्थिति को प्राप्त हुए। देव-ऋषि-पितृगण दानवों से युक्त होकर, इन्द्र से कहे बिना अपने-अपने स्थानों को गये। [ऐसा] कहने पर सुनकर, परीक्षिन्नरेंद्र ने शुक योगीन्द्र से यों कहा— ४३२ [ते.] क्या कारण था कि इद्र से बिना बोले सुर चले गये ? ऐसे सुरगण किस कारण से सुखी हुए ? वज्रि को हानि क्योंकर हुई ? हे तात् ! कहो न ? ४३३ [व.] [ऐसा] कहने पर शुक ने यों कहा— वृत्र के पराक्रम से चकित बने निखिल देवताओं के और महर्षि गणों के, पूर्व में वृत्र

महर्षि गणंबुलुनु, मुन्नु वृत्रवधार्थ बिद्रुनि ब्रार्थिचिन, ननंडु ब्रह्महत्य चेय जालक, तोंल्लियु विश्वरूपुनि जंपिन पापंबु स्त्रीलयंबुनु, भूमियंबुनु, जलंबुलंबुनु, द्रुमंबुलंदुनु विभजिंचि पेट्टिति। इपुडी हत्य येरीति बापुकोनुवाड ? नाकशक्यंबु अनिन महर्षुलश्वमेध यज्ञंबु सेयिंचि, यज्ञ-पुरुषुंडैन श्रीनारायणदेवुनि संतुष्टुनिजेसि, यी हत्य बापंगलवारमु। स्वभावंबुन ब्राह्मण पितृ गोमातृ सज्जन हंतलैन वारले देवुनि गीर्तिंचि शुद्धात्मु लगुदु, रद्देवुनि नश्वमेध महामखंबुन श्रद्धान्वितुंडवै माचेत ननुष्ठितुंडवै सेविंचिन नीकु खलुंडैन यिद्दुरात्मुनि हिंसिंचिन हत्ययेमि सेयंगलदु ? अनियोंडबडचिन, निद्रुंडु वल्लेयनि यी विधंबुन शत्रु बरिमार्चि, ब्रह्म हत्यं बोंदि, यत्तापंबु भरियिंप नोपक दुर्दशंबोंदें। अप्पुडु ॥ 434 ॥

सी. पापंबु जंडालरूपंबु गलदानि मुदिमिचे नोंडलेल्ल गदलुदानि
क्षय कुष्ठ रोग संचयकृतं बगुदानि नुरु रक्तपूरंबु दोरगुदानि
नेरसिन वेंट्रुकल् बेरसिन तलदानि नटपोकु पोकुंडु मनेंडु दानि
गवुरु कंपुन ब्रेवु लदर जेसेंडु दानि दानेंदु बारिन दरुमुदानि

के वध के लिए इंद्र की प्रार्थना करने पर, उसने ब्रह्महत्या न कर सक पूर्व में, विश्वरूप का संहार करने (से प्राप्त) पाप को स्त्री में, भूमि में, जल में, द्रुमों में विभक्त कर रख दिया। अब इस हत्या को (हत्या करने के पाप को) किस रीति से दूर कर सकूँ ? [यह] मेरे लिए अशक्य है। [ऐसा] कहने पर महर्षियों ने [कहा] अश्वमेध यज्ञ कराकर, यज्ञपुरुष श्री नारायण देव को संतुष्ट कर इस हत्या के [पाप को] दूर कर सकेंगे। स्वभाव से ब्राह्मण-पितृ-गो-मातृ सज्जन-हन्ता (हंतक) बने हुए लोग जिस देव का कीर्तन कर शुद्ध आत्मा वाले बनते हैं, उस देव की, अश्वमेध महामख द्वारा श्रद्धान्वित होकर, हमारे द्वारा अनुष्ठित होकर सेवा (अर्चना) करने पर इस खल और दुरात्मा को हिंसित कर हत्या करने का पाप क्या कर सकेगा ? (पाप का फल नही लग सकेगा।) [ऐसा] कहकर मनाने पर, इंद्र ने हामी भरकर इस प्रकार शत्रु का संहार कर, ब्रह्महत्या को प्राप्त कर उस ताप को वहन न कर सक दुर्दशा को प्राप्त हुआ। तब ४३४ [सी.] पाप को जो चंडाल रूप से युक्त है, जो वृद्धावस्था के कारण समस्त अंगों से कंपित होनेवाला है, क्षय, कुष्ट रोग से संयुक्त बना हुआ है, उरु (अधिक) रक्तपूर (प्रवाह) से लथपथ बना हुआ है, पके बालों से भरे हुए सिर वाला, 'उधर मत जाओ, कहनेवाला, घृणित दुर्गंध के कारण अंतड़ियों को कँपा देनेवाला, जहाँ कहीं भागने पर पीछा करनेवाला, [आ.] मेरे समस्त गुणों का उपभोग किये बिना जाने में कितने समर्थ हो ? ऐसा कहनेवाले[पाप रूपी पुरुष को] देखकर भीत होकर

आ. नागुणंबुलॅल्ल भोगिप केरीति
नरुग नॅंतवाड वनॅंडु दानि
बिट्टु दिरिगि चूचि भीतिल्लि सिग्गुतो
देवनायकुंडु दॅड्लि पड्चॅ ॥ 435 ॥

व. इट्लतिविकृत रूपंबुतो ब्रह्महत्य वॅनुतगुल निद्रुंड नभोभाग भूभाग दिग्-भागंबुलॅल्लं दिरिगि, चॉरं दॅरुवुलेक दीर्घ निर्घाताटोप निश्वास दूषितुंडै, योशान्य भागंबुनकुं वड्चि, यद्देसनमेय पुण्य गण्यंबैन मानस सरस्सुं ब्रवेशिंचि, यंदु नॉक्क कमलनाळंबु सॉच्चि, यंदु वंतुवुलं गलसि रूपंबुलेक यलब्ध भोगुंड, ब्रह्महत्या विमोचनंबु जिंतिचुचुनुंडु सहस्र वर्षंबुलुंडॅ। आ चंडालियु नदि परमेश्वर दिग्भागं बगुटंजेसि यंदुं जॉर राक काचियुंडॅ। अंत कालंबु द्रिदिवंबुन नहुषुंडु विद्याबल तपोबल योगबलंबुलं बालिपु चुंडि, संपदैश्वर्य मदांधुडै, यिंद्र पत्नि गोरि, यिंद्रुंडु वच्चुनंदाक नाकुं बत्निवि गम्मनिन, ना शचीदेवियुनु बृहस्पति प्रेरितयै, ब्रह्मर्षि वाह्यशिबिकंबु नॅक्कि वच्चि, नन्नु भोगिपु मनिन, नतंडट्लु चेसि, कुंभसंभव शापहतुंडै, यजगर योनियंदु बुट्टॅ। अंत निंद्रुंडु ब्रह्मर्षि गणोपहतुंडै, त्रिदिवंबुनकु वच्चॅ। अंतकालंबु नारायण चरणारविंद ध्यानपरुंडै युंडुटंजेसियु,

लज्जा से देवनायक (इंद्र) भाग निकला। ४३५ [व.] इस प्रकार अति विकृत रूप से ब्रह्महत्या [रूपी पाप का] पीछा करने पर इंद्र समस्त नभोभाग-भूभाग-दिग्भागों में घूमकर प्रवेश करने के लिए मार्ग को न पाकर दीर्घ निर्घात-आटोप- [सम] निःश्वासों से दूषित होकर अशनि के समान भयंकर निःश्वासों को छोड़ते हुए, ईशान्य भाग की ओर जाकर उस दिशा में अमेय पुण्य गण्य बने हुए मानससरोवर में प्रवेश कर, वहाँ एक कमलनाल में प्रवेश कर उसमें तंतुओं में एक-रूप होकर, बिना रूप के अलब्ध भोग वाला (जिसे कोई भोग उपलब्ध नहीं होता) बनकर ब्रह्म-हत्या [के पाप के] विमोचन के बारे में चिन्तन करते हुए सहस्र वर्ष रहा। वह चण्डाल (ब्रह्महत्या रूपी पाप) उस दिशा के परमेश्वर दिक्भाग होने से, उसमें प्रवेश न कर सक प्रतीक्षा करता रहा। उतने समय तक त्रिदिव (स्वर्ग) पर नहुष [अपने] विद्यावल, तपोबल, योगवल के कारण शासन करते हुए, सम्पत्ति और ऐश्वर्य के कारण मदान्ध बनकर, इंद्र-पत्नी को चाहकर कहा कि इंद्र के आने तक मेरी पत्नी बनो। उस शचीदेवी ने भी बृहस्पति द्वारा प्रेरित होकर कहा कि ब्रह्मर्षियों द्वारा ढोये जानेवाली शिविका पर आरूढ़ होकर आकर मेरा उपभोग करो। उसने (नहुष ने) वैसा ही कर, कुंभसंभव (अगस्त्य) के शापहत बनकर अजगर की योनि में पैदा हुआ। तब इन्द्र ब्रह्मर्षिगण के उपहूत

దిశాధినాయకుండైన శంకరుచేత రక్షింపబడువాడై యుండుట చేసియు, వద్దోష బలంబు దరిగి, సహస్రాక్షు బీడింప లేదయ్యె। అప్పుడింద్రుండు నిజైశ్వర్యంబునుం బొంది, బ్రహ్మర్షి పరివృతుండై, మహాపురుషారాధనంబు చేసి, హయమేధాధ్వరంబునకుం దీక్ష గైకొని, బ్రహ్మర్షులచేతం జేయింపంబడుచున్నవాడై, సర్వ దేవతామయుండైన నారాయణుం బరితృప్తుం జేసి, మంచు విరియించు మార్తాండుని చందంబున ద్వాష్ట్రవధరూప పాపంబును నాశంబు నొందించి, సకల దివిజ యక్ష గంధర్వ సిద్ధ మునిజన సంస్తూయమానుండై, త్రిభువనైశ్వర్య భోగ భాగ్యంబులం గైకొనియె। అప్పుడు ॥ 436 ॥

చం. సతత మరీచిముఖ్య ముని సంఘము చేత యథోచితంబుగా
గృత ఘన వాజిమేధమున గేశవు నీశు బురాణపూరుషున్
హితు జగదీశు యజ్ఞపతి నిష్ట ఫలప్రదు నంతరంగ సం-
గతు భజియించి వజ్రి గతకల్మషుడై నెగడెన్ మహీశ్వరా! ॥437॥

సీ. మఱియు సృష్టింపంగ మనసు వెట్టిన యట్టి క్రూర కర్మాంభోధి కుంభజుండు
అంగారములు సేయ నాహుతి గొన నోపు బహుపాప కానన పావకుండు
కందక మ్రింగి నిగర్చ నేర్పంగ గల్మష గరళ గంగాధరుండు
ఘన గుహాంతరముల గాలూన నియ్యని కలుష దుస్తర తమోగ్రహ విభుండు

(निमंत्रित) होकर त्रिदिव में आया। इतने समय तक नारायण के चरणारविन्द के ध्यान में लगे रहने से और दिशाधिनायक शंकर से रक्षित रहने के कारण उस दोष (पाप) का बल कम होकर, वह सहस्राक्ष को पीड़ित न कर सका। तब इंद्र निज-ऐश्वर्य को प्राप्त कर, ब्रह्मर्षियों से परिवृत होकर, महापुरुषों की आराधना कर हयमेध-अध्वर के लिए दीक्षा लेकर, ब्रह्मर्षियों से [यज्ञ] के कार्य सम्पन्न करते हुए, सर्व देवतामय नारायण को परितृप्त कर, हिम को पिघला देनेवाले मार्तण्ड की भाँति त्वष्ट्रा वध रूपी पाप का नाश कर, सकल दिविज-यक्ष-गंधर्व-सिद्ध-मुनिजन से संस्तूयमान बनकर, त्रिभुवन के ऐश्वर्य और भोगभाग्यों को प्राप्त किया। तब ४३६ [चं.] हे महीश्वर! (राजन्!) सतत (निरन्तर) मरीचि आदि मुनिसंघ द्वारा यथोचित रूप से किये गये महान् वाजिमेध (अश्वमेध यज्ञ) द्वारा केशव, ईश, पुराणपुरुष, हितू, जगदीश, यज्ञपति, इष्ट फलप्रद, अंतरंगसंगत [ऐसे नारायण का] भजन कर वज्रि गत कल्मष वाला बनकर शोभायमान हुआ। ४३७ [सी.] और सृजन-कार्य में मन लगाये क्रूर कर्म रूपी अंबोधि (सागर) के लिए जो कुंभज (अगस्त्य) है, अंगारों को उत्पन्न करते हुए आहुति लेने में समर्थ बहु पाप रूपी कानन के लिए जो पावक है, तप्त न होकर निगलकर डकार लेने में समर्थ कल्मष रूपी गरल के लिए जो गंगाधर है, घन गुहान्तरों में पैर रखने न देनेवाले दुस्तर कलुष रूपी तम के लिए जो ग्रहविभु (सूर्य) है,

आ. सकल मुक्तिलोक साम्राज्य समधिक
सहज भोग भाग्य संग्रहैक
कारणाप्रमेय कंजाक्ष सर्वेश
केशवादि नाम कीर्तनंबु ॥ 438 ॥

सी. अखिल दुःखैक संहारादि कारणं बखिलार्थ संचयाह्लादकरमु
विमल भक्त्युद्रेक विभव संदर्शनं बनुपम भक्तवर्णन रतंबु
विबुधर्षभानेक विजय संयुक्तंबु ग्रस्तामरेंद्र मोक्षक्रमंबु
ब्रह्महत्यानेक पाप निस्तरणंबु गमनीय सज्जन कांक्षितंबु

ते. नैन यी यितिहासंबु नधिक भक्ति
विनिन जदिविन व्रासिन ननुदिनंबु
नायुरारोग्य भाग्य भोगाभिवृद्धि
कर्मनाशमु सुगतियु गलुगु ननघ ! ॥ 439 ॥

## अध्यायमु—१४

सी. नावुडु योगींद्र ! ना मनंबी वृत्र विवरंबु नीचेत विन्न मीँवलु
कडु नद्भुतंबुन गळवळंबंदॆडु गोरि रजस्तमो गुणमुलंदु

---

[आ.] सकल मुक्तिलोक के साम्राज्य के समधिक और सहज भोग-भाग्यों के संग्रह करने में जो एकैक कारण है, जो अप्रमेय है, जो कंजाक्ष, सर्वेश, केशव आदि नाम वाला है [ऐसे प्रभु का] नाम कीर्तन ४३८ [सी.] अखिल दुःखों के संहार आदि का एकैक कारण है, अखिलार्थों के संचय के कारण आह्लादकर हैं, विमल भक्ति के उद्रेक के वैभव का संदर्शन है, अनुपम भक्तों के वर्णन से युक्त है, विबुधों के अनेक विजयों से संयुक्त है, ग्रस्त अमरेंद्र के मोक्ष का कारण है, ब्रह्महत्या आदि अनेक पापों का विस्तरण करानेवाला है, सज्जनों से कमनीय रूप से कांक्षित है, [ते.] ऐसे इस इतिहास को अधिक भक्तियुक्त होकर, सुनने पर, पढ़ने पर, लिखने पर, हे अनघ ! अनुदिन आयु, आरोग्य, भाग्य, भोग की अभिवृद्धि, कर्मनाश और सुगति (मोक्ष) की प्राप्ति होगी। ४३९

## अध्याय—१४

[सी.] ऐसा कहने पर [परीक्षित ने कहा] हे योगीन्द्र ! मेरा मन इस वृत्त के विवरण को तुम्हारे [मुख से] सुनने से लेकर अधिक आश्चर्य-चकित होकर विकल बन रहा है। जान-बूझकर रज-तमोगुणों में प्रवर्तित

वर्तिचु नी पापवर्तिकि ने रीति माधव पदभक्ति मदि वसिंचे ?
सत्त्व स्वभावुलै समबुद्धुलै तपो नियम प्रयत्नुलै निष्ठचेत

ते. निर्मलात्मकुलैनट्टि धर्मपरुल
कमरुलकु बुण्यमुनुलकु नंबुजाक्षु
भूरि कैवल्य संप्राप्ति मूलमैन
भक्ति वीनिकि बोलॅ नेर्पाटु गादु ॥ 440 ॥

सी. उर्वर गल रेणुवुलकन्न दट्टमै कडु नॊप्पु जीवसंघमुलु गलवु
आ जीवमुललोन नरय धर्मायत मति वसियिंचु वारु मनुजजाति
या मनुष्युल लोन गामंबु लॅडबासि मोक्षार्थु लगुवारु मॊदल नरिदि
मोक्षमार्गं बात्ममूलंबुगा नुंडु वारिलो मुक्तुलु लेरु तरचु

ते. मुक्तुलैनट्टि वारिलो युक्ति दलप
जाल दुर्लभुडमित प्रशांतिपरुडु
परम सुज्ञान निरतुंडु भद्र गुणुडु
रमण श्री वासुदेव परायणुंडु ॥ 441 ॥

ते. सकल लोकापकारि दुस्संगतुंडु
वृत्रु डॆक्रिय सुज्ञान निरतुडय्यॆ ?
समरमुन बौरुषंबुचे नमर विभुनि
नॆट्लु मॆप्पिंचॆ ? दीनि ना कॆरुग जॆप्पुमु ॥ 442 ॥

---

हो रहा है। इस पापी को किस रीति से माधव की भक्ति मन में प्रविष्ट हुई ? [ते.] सत्त्व स्वभाव वाले और सम बुद्धि वाले होकर तपोनियम के प्रयत्न से युक्त होकर निष्ठावश निर्मल आत्मा वाले बने हुए धर्मात्माओं को अमरों को पुण्य मुनियों के लिए अम्बुजाक्ष के भूरि कैवल्य की संप्राप्ति के मूल बनी हुई भक्ति [भाव] इसके समान दूसरों के लिए संप्राप्त नहीं हुई। ४४० [सी.] उर्वी (भूमि) पर स्थित रेणुओं की अपेक्षा अधिक घने बनकर अधिक शोभायुक्त जीव संघ (समूह) हैं। उन जीवों में सोचने पर धर्म की आयत मति से निवास करनेवाले मनुज जाति वाले हैं। उन मनुष्यों में काम [आदि] को छोड़कर मोक्षार्थी बननेवाले बहुत विरल हैं। मोक्षमार्ग को आत्मा का मूल बनाकर रहनेवालों में अक्सर मुक्त बने हुए लोग नहीं हैं। [ते.] मुक्त बने हुए लोगों में विचार करने पर, अमित प्रशान्ति पर, परम सुज्ञान निरत, भद्र गुण वाला, शोभा से श्री वासुदेवपरायण व्यक्ति अति दुर्लभ है। ४४१ [ते.] सकल लोकों के लिए अपकारी दुस्संगति वाला वृत्र किस विधान से सुज्ञान निरत बना ? समर में पौरुष के कारण अमरविभु को कैसे प्रसन्न किया ? इसे मुझे समझाकर बताओ। ४४२

चित्रकेतूपाख्यानमु

व. अनि परीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुकयोगींद्रु नडिगं। अनि सूतुंडु शौनकादि मुनुलकुं जेप्पि, मरियु निट्लनियें। अट्लु गजपुर वल्लभुंडु संप्रश्नंबु सेसिन बादरायणि हरिस्मरण श्रद्धापरुंडै यिट्लनियें। तोल्लि कृष्ण द्वैपायन नारद देवल महर्षुलु ना कॅरिंगिचिन यितिहासंबु गलदु। दानि नॅरिंगिचेंद। सावधानुंडवै याकर्णिपुमु। अनि यिट्लनियें ॥443॥

चं. अमित विभूति जाल नमराधिपु वोलुचु शूरसेन दे-
शमुलकु भर्तयै प्रजलु संततसंदग सार्वभौमुडै
क्षम वन कॅल्ल कालमुनु गाम दुहंबुग जित्रकेतु ना-
ममुन प्रसिद्धि केक्कें गुणमंडनु डंचित कीर्तिकामुडै ॥ 444 ॥

सो. मानित तारुण्य मदनतुरंगुलु कंदर्प विजयैक खड्गलतलु
मदन सम्मोहन मंत्राधिदेवतल् पंचशिलीमुखु बंदॆकत्ते
लसमास्त्रुडखिलंबु नडॅकिचु बोम्मलु नात्मसंभवुनि कट्टायितमुलु
पुंड्रेक्षुकोदंडु भूरि तेजंबुलु शंबर विद्वेषि सायकमुलु

---

चित्रकेतु का उपाख्यान

[व.] ऐसा परीक्षिन्नरेंद्र ने शुकयोगीन्द्र से पूछा। ऐसा सूत [महामुनि] ने शौनकादि मुनियों से कहकर और यों कहा। इस प्रकार गजपुरवल्लभ (हस्तिनापुर का राजा) के संप्रश्न करने पर बादरायणी (बादरायण का पुत्र) ने हरि-स्मरण में श्रद्धापर होकर यों कहा— पूर्व में मुझे कृष्णद्वैपायन, नारद, देवल आदि महर्षियों ने एक इतिहास बताया था। उसे बताऊँगा। सावधान होकर आकर्णन करो। [ऐसा] कहकर यों कहा— ४४३ [चं.] अमित विभूति से बहुत अधिक रूप से अमराधिप (इंद्र) की समता करते हुए, सूरसेन देशों के भर्त्ता (राजा) बनकर, प्रजाओं को संतुष्ट करते हुए सार्वभौम बनकर क्षमा [गुण] के अपने लिए सदा कामदुह (इच्छाओं की पूर्ति करनेवाला) होने पर चित्रकेतु नाम से गुण-मण्डित होकर अंचित कीर्ति काम बनकर [एक राजा] प्रसिद्ध हुआ। ४४४ [सी.] मानित (मान्य) तारुण्य रूपी मदन के तुरंग, कंदर्प को विजित करने में एकैक खड्गलतायें, मदन सम्मोहन के मंत्र के अधिदेवता पंचशिलीमुख (कामदेव) से होड़ लगानेवाली असमास्त्र (कामदेव) के द्वारा समस्त को विचलित करनेवाली पुत्तलिकाएँ आत्मसंभव (कामदेव) के द्वारा प्रदत्त पुरस्कार-रूपिणी पुंड्रेक्षु-कोदण्ड (कामदेव) के भूरि तेजरूपिणी, शंबर-विद्वेषी (कामदेव) के सायक (बाण) [इस रूप से] शोभायमान एक करोड़ नलिनमुखियों (कमलमुखियों, सुन्दरियों] [ते.] के अपनी पत्नियाँ होने

ते. नाग बॉलुपारु नॉक कोटि नळिन मुखुलु
दनकु पत्नुलु गाग नत्यंत विमल
कीर्ति वैभव सन्मार्ग वर्तियगुचु
जगति बालिपुचुंडॆ ना जनविभुंडु ॥ 445 ॥

ते. कडिमि वेवेलु भार्यलु गलिगियुंड
वरग संतति यॉकरुनि वडयलेक
चित्तमुन जाल बायनि चितवॊडमि
बडल जॊच्चॆनु वेसवि मडुवुवोलॆ ॥ 446 ॥

उ. रूपमु सत्प्रतापमु मरुत्पति भोगमु यौवनंबु सं-
दीपित चारु वर्तनमु दिग्विजयंबुनु सत्यमुं जग-
द्व्यापति कीर्तियुन् सतुलु वैभव मुख्यमुलॆल्ल मान्पगा
नोपक युंडॆ ना नृपति नॊंदिन संतति लेनि दुःखमुन् ॥ 447 ॥

व. इट्लु संतति लेक यति दुःख मानसुंडैन या नरेंद्रुनि मंदिरंबुन कंगिरसुंडनु महामुनि वच्चि, यतनिचेत नतिथि सत्कारंबुलु वडसि, कुशलं बडिगि, राज्यंबु भवदधीनंबु कदा! पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाश महदहंकारंबु लनियॆडि येडिटिचेत रक्षिपबडिन जीवुंडुनुंबोलॆ, नमात्य जनपद दुर्ग द्रविण संचय दंड मित्रंबु लनॆडि सप्त प्रकृतुल चेत रक्षितुंडवै, प्रकृति पुरुषुलयंदु भारंबु वॆट्टि, राजसुखंबु लनुभविंतुदु कदा! मरियु दार

पर अत्यंत विमल कीर्ति-वैभव से सन्मार्गवर्ती होते हुए, वह जनविभु (राजा) जगती पर शासन कर रहा था। ४४५ [ते.] हजारों-हजारों पत्नियों के रहने पर भी शोभा से एक भी संतति को न पा सक चित्त में अधिक चिन्ता के उत्पन्न होने पर ग्रीष्मऋतु के तलैया (तालाब) के समान शुष्क होने लगा ४४६ [उ.] रूप, सत् प्रताप, मरुत्पति (इंद्र) सम भोग, यौवन, संदीपित चारु वर्तन, दिग्विजय और सत्य और जगद्व्याप्त कीर्ति और सतियाँ, वैभव आदि संतान-हीनता से उस नृपति को प्राप्त दुःख को दूर करने में असमर्थ बने हुए थे। ४४७ [व.] इस प्रकार संतति के न होने पर अतिदुखी बने हुए उस नरेंद्र के मंदिर (महल) को अंगीरस नामक महामुनि आया। उससे अतिथि-सत्कार प्राप्त कर कुशल [समाचार] पूछकर [यों कहा] राज्य तो तुम्हारे अधीन है न ? पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, महत्, अहंकार नामक सातों [तत्त्वों] से रक्षित जीव के समान, अमात्य, जनपद, दुर्ग, द्रविण (धन), संचय, दण्ड, मित्र नामक सप्त प्रकृतियों से रक्षित होकर प्रकृति पुरुषों पर भार रखकर राजसुतों का अनुभव करते हो न ! और दारा, प्रजा, अमात्य, भृत्य, मंत्री, पौर (नागरिक), जानपद (गाँव के रहनेवाले) और भूपाल तुम्हारे वशवर्ती है न ! सब कुछ से युक्त

प्रजामात्य भृत्य मंत्रि पौर जानपद भूपालुरु मीकु वशवर्तुलु गदा! सर्वंबुनुं गलिगि सार्वभौमुंडवैन नी वदनंबु विन्नदनंबु गलिगि युन्नयदि। कतंबेमि? अनिन ना मुनिप्रवरुनकु नतंडु, मी तपोबलंबुन मीकु नॆरुंगरानि यदियुं गलदे? अनि तलवंचि यूरकुन्न, नतनि यभिप्रायंबॆरिंगि, या भगवंतुंडैन यंगिरसुंडु दयाळुंडै, पुत्र कामेष्टि वेल्चि यज्ञशेष मतनि यग्रमहिषियैन कृतद्युति किच्चि, नीकुं बुत्रुंडु गलिगेडि। अतनि वलन सुखदुःखंबु लनुभविंपंगलवु। अनि चॆप्पि चनियॆं। आ कृतद्युति यनु देवि गर्भंबु धरियिंचि, नवमासंबुलु निंडिनं गुमारुनि गनियॆं। आकालंबुन राजुनु, समस्त भृत्यामात्य जनंबुलुनु बरमानंदंबुनं बॊंदिरि। अपुडु चित्रकेतुंडु कृतस्नानुंडै, सकल भूषणभूषितुंडै, सुतुनकु जातकर्मंबु निर्वर्तिंचि, ब्राह्मणुलकु नपरिमित हिरण्य रजत दानंबुलुनु, वस्त्राभरणंबुलुनु, ग्रामंबुलुनु, गजंबुलुनु, वाहनंबुलुनु, धेनुवुलुनु, नारॆसि यर्बुदंबुल द्रव्यंबुनु, दानंबु सेसि, प्राणि समुदयंबुनकुं बर्जन्युंडुनुंबोलॆं दक्किनवारलकु निष्टकामंबुलु वर्षिंचि, परमानंद हृदयुंडै युंडॆ। अंत बुत्र मोहंबुनं गृतद्युतियंदु बद्धानुरागुंडै महीधवुंडु वर्तिपुचुंडं, दक्किन भार्यलु संतान संतोष विकललै, यी मोहंबुनकुं गारणंबु पुत्रुंडयनि योर्व्यंजेसि दारुणचित्तलै, कुमारुनकु विषंबिडिन, सुख निद्रितुंडुनुंबोलॆं बालुडु मृति नॊंदॆ।

---

होकर सार्वभौम बना हुआ तुम्हारा वदन विषण्ण बना हुआ है। कारण क्या है? [ऐसा] पूछने पर उस मुनि-प्रवर से उसने [यों कहा] आपके तपोबल के कारण ऐसा भी कुछ है क्या जो आप नहीं जानते? [ऐसा] कहकर सिर झुकाकर चुप बने हुए उसके अभिप्राय (मन्तव्य) को जानकर भगवान बने हुए अंगिरस ने दयालु बनकर पुत्रकामेष्टि [यज्ञ] कर, यज्ञ-शेष को उसकी अग्र महिषि (पटरानी) कृतद्युति को देकर यह कहकर कि तुम्हारा पुत्र होगा, उसके कारण से सुख-दुःखों का अनुभव करोगे, चला गया। वह कृतद्युति नामक देवी ने गर्भ धारण कर नव मासों के पूर्ण होने पर पुत्र को जन्म दिया। उस समय राजा और समस्त भृत्य अमात्यजन परमानन्दित हुए। चित्रकेतु कृतस्नान बनकर सकल भूषणों से भूषित होकर सुत के लिए जात कर्मों का निर्वाह कर, ब्राह्मणों को अपरिमित हिरण्य, रजतदान और वस्त्राभरण, ग्राम, गज, वाहन, धेनु, छः अर्बुद द्रव्य दान कर शेष जनों को प्राणिसमुदय के लिए परजन्य (वरुण) के समान इष्टकाम प्रदान कर परमानन्द से भरित हृदय से रहा। तब पुत्र के प्रति मोह के कारण कृतद्युति में बद्ध-अनुराग वाला बनकर महीधव (राजा) के व्यवहार करने पर शेष पत्नियाँ सन्तान-संतोष [के अभाव में] विकल बनकर, [राजा के] इस मोह का कारण पुत्र ही है, ऐसी ईर्ष्या से दारुण चित्त वाली बनकर कुमार को विष दिया, सुख-निद्रित के समान वह

अप्पुड्डु वेगुटयु दादि बोधिपंजनि, या कुमारुनि विकृताकारंबु जूचि,
विस्मय शोक भयार्तयै पुडमिबडि यार्क्रंदिंचें। अप्पुडु ॥ 448 ॥

त. पुडमि निट्टक निल्वुनंबडि पोक्कुचुं गड्डुदीनयै
यडकुवेमियु लेनि वाक्कुल नावुरंचु विलापमं
डॅदरु तोप भृशातुरोन्नति नेड्चिनन् विनि भीतितो
गड्डुपु विट्टवियंग भूपति कांत ग्रक्कुन नेगुचुन् ॥ 449 ॥

आ. बालुडोक्करुंड्डु परिणामशीलुंडु
वंशकर्त तपसि वरमु वलन
बुट्टि मिन्न कट्लु पोलसियुन्नट्टि या
कोंडुक जूचि तल्लि यडल जोच्चें ॥ 450 ॥

उ. कुंकुमराग रम्य कुच कुंभमुलन् गड्डुकज्जलंबुतो
बंकिलमैन बाष्पमुल बालपड मज्जन माचरिंपुचुन्
कंकणपाणि पल्लवयुगंबुन वक्षमु मोदिकोंचु ना
पंकरुहाक्षि येड्चें वरिभावित पंचम सुस्वरंबुनन् ॥ 451 ॥

कं. आ यार्तरवमुनकु भू, नायकुड्डु भयंबुनोंदि नय मुडिगि सुतुं
डायग वेगंबुन ज.न, पायनि मोहंबुतोड बालुनि मीदन् ॥ 452 ॥

---

बालक मृत हुआ। तब अधिक विलंब होने के कारण धाई के प्रबोधित करने पर जाकर कुमार के विकृताकार को देखकर, विस्मय, शोक, भय से आर्त बनकर पृथ्वी पर गिरकर [कृतद्युति ने] आक्रंदन किया। तब ४४८ [त.] पृथ्वी पर खड़ी न रह सक एकदम [जमीन पर] गिर कर अति दीना बनकर धैर्य-रहित वचनों से हाहाकर करते विलाप करती हुई अधिक आतुर बन, [समाचार] सुनकर भय से, गर्भशोक के कारण भूपति की कान्ता झट जाकर रो पड़ी। ४४९ [आ.] एक बालक जो परिणामशील वाला है (विकास को प्राप्त करनेवाला है) और वंशकर्त्ता है, (वंश को बढ़ानेवाला) तपस्वी के वर से पैदा होकर चुपचाप उस प्रकार मर गया। उस पुत्र को देखकर माता व्यथित होने लगी। ४५० [उ.] कुंकुम राग से रम्य बने कुच कुंभों के कज्जल (काजल) से अधिक पंकिल बने बाष्पों के भागी बन मज्जन (स्नान) करने पर (कजरारी आँखों के आँसुओं के कुंकुमराग युक्त कुच-कुम्भों को भिगो देने पर), कंकणों से युक्त पाणिपल्लव-युग से वक्ष (छाती) पीटते हुए वह पंकरुहाक्षी (कमलनयनी) परिभावित पंचम सुस्वर से रोयी। ४५१ [कं.] उस आर्त रव से (सुनकर) भू-नायक (राजा) ने भीत होकर नय (शिष्टता) छोड़कर सुत के पास शीघ्र जाकर अधिक मोह के कारण पुत्र पर ४५२ [स्र.] गिरकर [यों कहा] हे पुत्र! तुम्हारे समाचार ने

स्र. व्रालि योपुत्र ! नी वार्त दंभोळियै
कूलगा ब्रेय की कॊंद्दि नन्नॆटिकिन्
जालि नॊंदिचॆं ? ना जाड यिकॆंट्टिदो ?
तूलु मी तल्लिकिन् दुःखमॆट्लागुनो ? ॥ 453 ॥

व. अनि तल मॊल यॆरुंगक पलविंचुचु, भृत्यामात्य बंधु जनंबुलंगूडि यडलुचुन्नुन्न या राजु दुःखंबॆरिंगि, यंगिरसुंडु नारदुनि तोडं गूडि चनुदॆंचि, मृतुंडैन पुत्रुनि पदतलंबुन मृतुंडुनुंबोलि पडि युन्न या राजुनुं जनुंगॊनि यिट्लनियॆ ॥ 454 ॥

## अध्यायमु—१५

सी. नीकु घोडॆव्वडु ? नोवॆव्वनिकि शोक संताप मंदॆदु सार्वभौम !
पुत्र मित्रादुलु पूर्व जन्मंबुन नॆव्वनि वारलो यॆरुग गलरॆ ?
मॊदल नदी वेगमुन नाड काडकु सिकतंबु गूडुचु जॆदरुचुडु
नारीति प्राणुल कतिकाल गतिचेत बुट्टुट सच्चुट पॊसगुचुंडु

आ. गान भूतमुलकु गलुगु भूतंबुलु
ममततोड विष्णुमाय जेसि

(मृत्यु का समाचार) वज्र के समान न गिरकर (संहार कर) इस प्रकार मुझे क्यों दुःखी बनकर रहने दिया। अब आगे मेरी क्या दशा होगी ? विचलित होनेवाली तुम्हारी माता के दुःख का उपशमन कैसे होगा ? ४५३
[व.] यों [कह] कार्य-कारण न जानकर (विमूढ़ बनकर) रोते हुए, भृत्य, अमात्य, बन्धुजनों से युक्त होकर व्यथित होते रहनेवाले उस राजा के दुःख के बारे में जानकर अंगीरस नारद के साथ युक्त होकर आकर मृत पुत्र के पदतल में मृत के समान पड़े हुए उस राजा को देखकर यों बोला। ४५४

## अध्याय—१५

[सी.] यह तुम्हारा कौन है ? हे सार्वभौम ! तुम किसके लिए शोक-सताप करते हो ? पुत्र, मित्र आदि पूर्व जन्म में कौन किसके होते हैं यह क्या जाना जा सकता है ? प्रारंभ में नदी-वेग से जहां-तहां सैकत जमा होता और बिखरता रहता है, उसी रीति से प्राणियों के लिए काल की अति (प्रबल) गति के कारण जनमना और मरना होता रहता है। [आ.] अतः भूतों के कारण [उत्पन्न] होनेवाले भूतों के लिए विष्णु माया के कारण, ममता के कारण, व्यथित होना क्यों ? धैर्य को छोड़ना क्यों ?

दीनि कडल नेल ? धृति दूलगा नेल ?
बुद्धि दलप वलदे ? भूतसृष्टि ॥ 455 ॥

व. मरियु नीवु, नेमुनु, दक्किनवारलुनु प्रवर्तमानकालंबु गलिगि, जन्मंबु नोंदि, मृत्युवुवलन विरामंबु नोंदंगलवारमै यिपुड लेक पोवुदुमु। चावु पुट्टुवुलकु निक्कुवंबु लेदु। ईश्वरुंडु दन मायचेत भूतजालंबुलवलनं भूतंबुलं बुट्टिंचु। वानि ना भूतंबुल चेतने रक्षिंचु। वानि ना भूतंबुल चेत नपहरिंचु। स्वतंत्रंबुलेनि तन सृष्टि चेत बालुंडुनुंबोले नपेक्षलेकयुंडु। देहियैन पितृदेहंबु चेत देहियैन पुत्रदेहंबु मातृदेहंबु वलनं गलुगुचुंडु। आ प्रकारंबुन बीजंबु वलन बीजंबुलु पुट्टुचुनुंडु। देहिकि निवि शाश्वतंबै जरुगुचुनुंडु। पूर्वकालंबुन सामान्य विशेषंबुलु सन्मात्रंबैन वस्तुवुलंदेविधंबुनं गल्पिपंबडियें, ना प्रकारंबुन देहंबुनकु जीवुनकु नन्योन्य बिभागंबु पूर्वकालंबुन नज्ञान कल्पितंबय्यें। जन्म फलंबुलनु जूचुचुन्न वारिकि दहन क्रियल नग्नि पेक्कु रूपंबुलं गानंबडु भंगि, नोक्कंडैन जीवुंडु पेक्कुभंगुल वेलुंगुचुंडु। इवि यन्नियु नात्म ज्ञानंबु चालक देहि देह संयोगंबुन स्वप्नंबु नंदु भयावहंबैन प्रयोजनंबु नडुपुचुंडि, मेलुकांचि, या स्वप्नार्थंबैन प्रयोजनंबु तनदि गादनि येरुंगुभंगि, जीवुंडु ताननि ज्ञान गोचरुंडैन वाडेरुंगु। कावुन नन्नियुनु मनोमात्रंबनि तॅलिसि,

भूत सृष्टि के बारे में मन से क्या सोचना नहीं चाहिए ? ४५५

[व.] और तुम हम और शेष लोग प्रवर्तमान काल (वर्तमान) से युक्त होकर, जन्म लेकर मृत्यु के कारण विराम को प्राप्त होनेवाले होकर अभी (अगले पल) नहीं रह सकते हैं। जन्म और मरण सत्य नहीं है। ईश्वर अपनी माया से भूत जालों के द्वारा भूतों को उत्पन्न करता है। उन्हें उन्हीं भूतों द्वारा रक्षित करता है। उन्हें उन्हीं भूतों द्वारा अपहृत करता है। स्वतंत्रता-रहित अपनी सृष्टि के प्रति बालक के समान अपेक्षा-रहित रहता है। देही बने पितृ-देह द्वारा मातृ-देह द्वारा देही बना पुत्र-देह उत्पन्न होता रहता है। इस प्रकार बीज से बीज उत्पन्न होते रहते हैं। देही के लिए ये (परिवर्तन) शाश्वत रूप से होते रहते हैं। पूर्वकाल में सन्मात्रा वाली सामान्य और विशिष्ट वस्तुएँ जिस प्रकार से कल्पित हुईं उसी प्रकार देह का और जीव का अन्योन्य विभाग पूर्वकाल में अज्ञान से कल्पित हुए। जन्म-फलों को देखनेवालों के लिए दहन की क्रियाओं में अग्नि के अनेक रूपों में दिखाई पड़ने के समान एक ही जीव अनेक प्रकार से प्रकाशित होता रहता है। ये सब आत्मज्ञान के अभाव में देही देह संयोग से स्वप्न में भयावह प्रयोजन का निर्वाह करते हुए जाग्रत् होने के बाद यह जानने के समान कि वह स्वप्नार्थ प्रयोजन अपना नहीं है। उसी प्रकार ज्ञान को देखनेवाला (ज्ञानी) यह जानता है कि

मोहतमंबु वासि, भगवंतुंडैन वासुदेवुनियंदु जित्तंबु चेट्टि, निर्मलात्मकुंड वगुमु। अनि बोधिचिनं जित्रकेतुंडु लेचि वारल किट्लनिये ॥ 456 ॥

सी. यति वेषकुलु वूनि यति गूढ गति निंदु नेतेंचिनट्टि मी रेव्वरेव्य ?
कडगिनन् बोलिन ग्राम्य बुद्धुल नेल्ल बोधिप वच्चिन पुण्य मतुल. ?
रमण गुमार नारद ऋभुलंगिरो देवलासितुलनु धीर मणुलो ?
व्यास वसिष्ठ दूर्वास मार्कंडेय गौतम शुक राम कपिल मुनुलो ?

ते. याज्ञवल्कियु दरणियु नारुणियुनु
च्यवन रोमशु लासुरि जातुकर्ण
दत्तमैत्रेय वर भरद्वाज बोध्य
पंच शिखुलो ? पराशर प्रभृति मुनुलो ? ॥ 457 ॥

कं. वीरललो नॆव्वरु ? सुर, चारण गंधर्व सिद्ध संघंबुललो
वारलो ? यी सुज्ञानमु, कारणमै यॆवरियंदु गलदु ? तलंपन् ॥ 458 ॥

कं. पोंदुग ग्राम्य पशुत्वमु, वॊंदि महाशोकतममु वॊंदिन नाकुन्
मुंदर दिव्यज्ञानमु, जॆंदिचिन वारि मिम्मु जॆप्पुडु तॆलियन् ॥ 459 ॥

व. अनिन नंगिरसुंडिट्लनियें। पुत्र कांक्षिवैन नीकुं बुत्रुं बसादिंचिन यंगिरसुंड। इतंडु ब्रह्मपुत्रुंडैन नारद भगवंतुंड। दुस्तरंबैन पुत्र शोकंबुन

---

स्वयं वही जीव है। अतः यह जानकर सभी मनोमात्र (मानसिक कल्पना मात्र) हैं। मोह-मत (-भाव) को छोड़कर भगवान वासुदेव में चित्त को स्थिर कर निर्मलात्मा वाले बन जाओ। ऐसा प्रबोधित करने पर चित्रकेतु ने उठकर उनसे यों कहा। ४५६ [सी.] यति-वेष धारण कर अति गूढ़ गति से यहाँ पहुँचनेवाले आप कौन हैं ? क्या मुझ जैसे समस्त ग्राम्य बुद्धि वालों को प्रबोधित करने के लिए सप्रयत्न आये हुए पुण्यमति वाले हैं ? क्या रमणीयता से आये कुमार, नारद, वृषभ, अंगीरस, देव, असित नामक धीर-मणि (धीरों मे श्रेष्ठ) है ? क्या व्यास, वशिष्ठ, दूर्वास, मार्कण्डेय, गौतम, शुक, राम, कपिल मुनि हैं ? [ते.] क्या याज्ञवल्क्य, तरणि, आरुणि, च्यवन, रोमश, आसुरी, जातकर्ण, दत्त, मैत्रेय, वर भरद्वाज, बोध्य, पंच शिखा वाले है ? क्या पराशर आदि मुनि हैं ? ४५७ [कं.] इनमें आप कौन हैं ? क्या आप सुर, चारण गंधर्व, सिद्ध संघों में से कौन हैं ? इस सुज्ञान का कारण सोचने पर औरों में हो सकता है ? ४५८ [कं.] ढंग से ग्राम्य-पशुत्व को प्राप्त कर महा शोक रूपी तम से आवृत मुझे दिव्यज्ञान प्राप्त कराया। पहले आप समझाकर बताइये कि आप कौन हैं ? ४५९ [व.] [ऐसा] कहने पर अंगीरस ने यों कहा— पुत्रकांक्षी बने हुए तुम्हें पुत्र को प्रसादित करनेवाला अंगीरस हूँ। यह ब्रह्मा का पुत्र नारद भगवान है। दुस्तर पुत्रशोक मे मग्न बने हुए तुम पर अनुग्रह कर परमज्ञान का उपदेश देने

मग्नुंडवैन निनु ननुग्रहिंचि, परमज्ञानंबुपदेशिंप वच्चितिमि। नी दुःखंबेरिंगि, पुत्रु निच्चितिमेनि, पुत्रवंतुलैन वारि तापंबु नीचेत ननुभविंपंबडु। ई प्रकारंबु लोकंबुन सतुलुनु, गृहंबुलुनु, संपदलुनु, शब्दादुलयिन विषयंबुलुनु, राज्यवैभवंबुनु जंचलंबुलु। मरियु राज्यंबुनु, भूमियु, बलंबुनु, धनंबुनु, भृत्यामात्य सुहृज्जनंबुलुनु, मोदलयिनवि शोक मोह भय पीडलं जेयुचुंडु गानि सुखंबुल नी नेरवु। गंधर्व नगरंबुनुंबोलें, स्वप्न लब्ध मनोरथंबुनुं बोलें, नर्थंबु बासि कानं बडुचु, मनोभवंबुलयिन यर्थंबुलं गूडि स्वार्थंबुलै कानंबड नेरवु। कर्मंबुल चेत ध्यानंबुलु सेयुचुंडु मनंबुलु नाना कर्मंबुलगुचुनुंडु। ई देहि देहंबु द्रव्यज्ञान क्रियात्मकंबै, देहिकि विविध क्लेश संतापंबुलं जेयुचुंडु। कावुन निर्मलंबैन मनंबु चेत नात्मगति वेंदकि, द्वैत भ्रांति विडिचि ध्रुवंबैन पदवि नोंदु मनियें। अप्पुडु नारदुंडिट्लनियें। उपनिषद्गोप्यंबगु नेनिच्चु मंत्रंबेव्वडेनि सप्त रात्रंबुलु पठियिंचु, नतंडु संकर्षणुंडैन भगवंतुनि जूचु। एव्वनि पाद मूलंबु सर्वाश्रयंबै युंडु, नट्टि श्रीमन्नारायणुनि पादंबुलु सेविंचि, यी मोहंबु वदलि यति शीघ्रंबुन नुत्तम पदंबु सोंरुमु।

---

के लिए आये हैं। तुम्हारे दुःख को जानकर, पुत्र को देंगे (पुनः जीवित करेंगे) तो पुत्रवान् व्यक्तियों के ताप तुमसे अनुभूत होंगे। इस प्रकार लोक में सतियाँ, गृह, संपदाएँ, शब्दादि विषय और राज्य-वैभव (ये सब) चंचल हैं। और भी राज्य, भूमि, बल, धन, भृत्य-अमात्य-सुहृद्जन आदि शोक-मोह-भय-पीड़ाओं को देते हैं। किन्तु सुखों को नहीं दे सकते। गंधर्व नगर के समान, स्वप्न में उपलब्ध मनोरथ के समान, अर्थ-रहित होकर दिखाई पड़ते हुए मनोभव अर्थों के साथ होकर स्वार्थ दिखाई नहीं पड़ सकते। कर्मों के द्वारा ध्यान करनेवाले मन नाना कर्मों से युक्त होते रहते हैं। यह देही-देह द्रव्यज्ञानक्रियात्मक होकर देही के लिए विविध क्लेश और संताप प्रदान करता रहता है। अतः निर्मल मन से आत्मगति की खोज कर द्वैत रूपी भ्रान्ति को छोड़कर ध्रुव (स्थिर) पद को प्राप्त करो। तब नारद ने यों कहा— मैं जिस मंत्र को देता हूँ जो उपनिषद् गोप्य (उपनिषदों में गुप्त रूप से) है उसका जो [व्यक्ति] सात रात पठन करेगा वह संकर्षण भगवान को देख पायेगा। जिसके पाद-मूल सर्वों के लिए आश्रय-रूप है, ऐसे श्रीमन्नारायण के चरणों का सेवन कर, इस मोह को छोड़कर अति शीघ्रता से उत्तम पद को प्राप्त करो।

## अध्यायमु—१६

व. इप्पुडिक्कुमारुनकु, नीकुं प्रयोजनंबु गलदेनि चूडुमु। अनि नारदुंडा पुत्त्रुनि कळेबरंबु जूचि, यो जीवुंड ! नीकु शुभंबय्येंडु। मी तल्लिदंड्रुल, बंधुजनुलं जूचि, वीरल दुःखंबु लार्चि, कळेबरंबुनं ब्रवेशिंचि, आयुश्शेषंबु ननुभविंचि, पित्रधीनंबैन राज्यासनंबुन गूर्चुंडुमु। अनिन नव्बालुं डिट्लनियॆ ॥ 460 ॥

ते. कर्मवशमुन नॆंदु सुखंबु लेक, देव तिर्यङ्नृयोनुल दिरुगु नाकु
वॆलय ने जन्म मंदुनी वीरु तल्लि, दंड्रु लैनारु? चॆप्पवे! तापसेंद्र!॥461॥

ते. बांधव ज्ञाति सुतुलुनु वगतुलात्म
वरुलुदासीन मध्यस्थ वर्गमुलुनु
सरवि गनुचुंडु नॊकॊक्क जन्ममुननु
नॆट्लय प्राणिकि नॊक्क वावि निजमु गलदॆ ? ॥ 462 ॥

ते. रत्नमुलु हेममुलु ननुराग लील
नम्मकंबुल नीवल नावलैन
भंगि नरुलंदु जीवुंडु प्राप्तुडगुचु
नॆलमि दिरुगुचुनुंडु दा नॆंदु जॆडडु ॥ 463 ॥

---

## अध्याय—१६

[व.] तव इस कुमार से देखो तुम्हारा कुछ प्रयोजन है क्या? ऐसा [कह] नारद ने उस पुत्र के कलेवर (लाश) को देखकर यों कहा— हे जीव ! तुम्हारा कल्याण हो। अपने माता-पिता और बन्धुजनों को देखकर, इनके दुःखों को दूर कर कलेवर में प्रवेश कर आयु के शेष भाग का अनुभव कर पिता के अधीन राज्यासन (सिंहासन) पर बैठो। [ऐसा] कहने पर उस बालक ने यों कहा— ४६० [ते.] हे तापसेंद्र ! कर्मवश से कहीं सुख न पाकर देवतिर्यक् नर योनियों में भ्रमण करनेवाले मेरे लिए शोभा से किस जनम में ये माता-पिता हुए ? बताओ न ? ४६१ [ते.] बांधव (रिश्तेदार) ज्ञाति, सुत, शत्रु, आत्मपर (आत्मीय), उदासीन [रहनेवाले] मध्यस्थ वर्ग आदि एक-एक जनम में बनते रहते है। सोचने पर ऐसे प्राणी के लिए [किससे कौन सा] रिश्ता है ? ४६२ [ते.] अनुराग की लीला से (प्रेमवश) भरोसे के कारण रत्न और हेम [का मूल्य] इस पार और उस पार (कम-वेशी) होने के समान जीव नरों को (नरयोनियों को) प्राप्त करता हुआ प्रेम से भ्रमण करता रहता है। [किन्तु] स्वयं कहीं नष्ट नहीं होता। ४६३ [सी.] एक होकर नित्य

सी. ऒक्कडै नित्युडै, यॆक्कड गडलेक सॊरिदि जन्मादुल शून्युडगुचु
सर्वंबुनंदुंडि सर्वंबु दनयंदु नुंडंग सर्वाश्रयुंडनंग
सूक्ष्ममै स्थूलमै सूक्ष्मादिकमुलकु साम्यमै स्वप्रकाशमुन वॆलिगि
यखिलंबु जूचुचु नखिल प्रभावुडै यखिलंबु दनयंदु नडचि कॊनुचु

ते. नात्म मायागुणंबुल नात्म मयमु
गाग विश्वंबु दन सृष्टि घनत जेद
जेयुचुंडुनु सर्व संजीवनुंडु
रमण विश्वात्मुडैन नारायणुंडु ॥ 464 ॥

कं. पतुलॆव्वरु ? सतुलॆव्वरु ?, सुतुलॆव्वरु ? मित्र शत्रुसुजनप्रिय सं-
गतु लॆव्वरु ? सर्वात्मक, गतुडै गुण साक्षियैन घनुडॊक्कनिकिन् ॥465॥

### चित्रकेतुंडु तपमाचरिंचि भगवत्प्रसादंबु नॊंदुट

व. मरियु, सुख दुःखंबुलं बॊंदक, सर्वोदासीनुंडै, परमात्मयै युंडु नप्परमेश्वर-रूपुंडनन नाकुनु, मीकु नॆक्कडि संबंधंबु ? मीकु दुःखंबुनकुं बनिलेदु। अनिपलिकि, या जीवुंडुवोयिनं जित्रकेतुंडुनु, बंधुवुलु नति विस्मित चित्तुलै, शोकंबुलु विडिचि, मोहंबुलं बासि यमुना नदियंदु नवकुमारुनकु

---

बनकर, कहीं अन्त के न होकर (अनन्त बनकर), क्रम से जन्मादियों से शून्य (रहित) होते हुए, समस्त [विश्व] में रहते हुए, सर्व (समस्त विश्व) के अपने में रहने पर, सर्व के लिए आश्रय बनकर, सूक्ष्म होकर, स्थूल होकर, सूक्ष्म आदियों के लिए साम्य बनकर, स्वप्रकाश से प्रकाशित होकर, अखिल (समस्त सृष्टि) को देखते हुए, अखिल प्रभाव वाला होकर, अखिल को अपने में समाते हुए, [ते.] आत्म माया गुणों से आत्ममय रूप में विश्व को, अपनी महान् सृष्टि के रूप में, सर्व संजीवन विश्वात्मक नारायण रमणीयता से रचता रहता है। ४६४ [कं.] पति कौन है ? सती कौन है ? सुत कौन है ? मित्र-शत्रु-सुजन-प्रिय संगति वाले कौन हैं ? सर्वात्मक गति वाले (सर्वांतर्यामी) बने हुए गुण साक्षी, महान् (परतत्त्व) और एक बने हुए [परमात्मा के लिए और उसके अंश रूपी जीव के लिए किसी प्रकार के रिश्ते सत्य नहीं होते]। ४६५

### चित्रकेतु का तप करके भगवत्-प्रसाद को प्राप्त करना

[व.] और सुख-दुखों को प्राप्त न कर, सर्वतः उदासीन बनकर परमात्मा बने हुए, उस परमेश्वर रूप वाले मेरे और आपके बीच में कौन-सा सम्बन्ध है ? आपको दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहकर उस जीव के जाने पर चित्रकेतु और [उसके] सम्बन्धी अति विस्मित

नुत्तर कर्मंबुलु निर्वर्तिंचिरि। चित्रकेतुंडु, गाढ पंकंबुनं बडिन येनुंगुनुं-बोलॅ गृहांधकूपंबु वॅडलि, काळिंदीनदिकि बोयि, यंदु विधि पूर्वकंबुग गृतस्नानुंडै, मौनंबु तोड नारदुनकु नमस्करिंचिन, नतंडु प्रसन्नुंडै, भगवन्मंत्रंबु विधिपूर्वकंबुगा नतनिकि नुपदेशिंचि, यंगिरसुतोडं गूडि, ब्रह्मलोकंबुनकुं जनियॅ। चित्रकेतुंडुनु, नारदोपदेश मार्गंमुन निराहारुंडै, समाधि नियतुंडै, नारायण रूपंबैन विद्य नाराधिंचि, सप्त रात्रांतंबुन नप्रतिहतंबैन विद्याधराधिपत्यंबुनु, भास्वद्रत्न दिव्य विमानंबुनु, नारायणानुग्रहंबुन वॉदि, मनोगमनंबुन जरियिंपुचुंड गॊन्नि दिनंबुलकु नॊक्क चोट ॥ 466 ॥

सी. तार हार पटीर धवळ देहमु वानि रमणीय नीलांवरंबु वानि
मणि किरीट स्फुरन्मस्तकंबुलवानि गंकण केयूरकमुल वानि
गर्बुरमय दीप्त कटि सूत्रमुल वानि दरळ यज्ञोपवीतमुल वानि
नति सुप्रसन्न वक्त्रांबुजंबुलवानि दरुण विवृत्त नेत्रमुल वानि

आ. सिद्ध मंडलंबु सेविंप पुण्य प्र, -सिद्धि वॅलसिनट्टि यिद्ध चरितु
वद्म लोचनुनकु वादपोठंबैन, घनुनि बन्नगेंद्रु गांचॅ नतडु ॥ 467 ॥

---

चित्त वाले बनकर शोकों को छोड़कर, मोहों का परित्याग कर यमुना नदी में उस कुमार के लिए उत्तर क्रियाएँ की। चित्रकेतु ने गाढ़ पंक में गिरे गज के समान गृह रूपी अधकूप को छोड़कर, कालिन्दी नदी के [किनारे] जाकर उसमें विधिपूर्वक स्नान कर, मौनयुक्त हो नारद को नमस्कार किया। वह (नारद) प्रसन्न होकर भगवन् मंत्र को विधिपूर्वक उसे उपदेश देकर अंगीरस के साथ ब्रह्मलोक को गया। चित्रकेतु भी नारद के उपदिष्ट मार्ग के अनुसार निराहारी बनकर समाधिनियति से नारायण रूपी विद्या की आराधना करके सप्त रात्रियों के अंत में अप्रतिहत विद्याधर-आधिपत्य और भास्वत् (प्रकाशमान)-रत्न-दिव्यविमान को नारायण के अनुग्रह से प्राप्त कर, मनोगमन से विचरण करता रहा। कुछ दिनो के वाद एक स्थान पर ४६६ [सी.] तारा-हार-पटीर (चन्दन) के समान धवल देह वाले को, रमणीय नील अंवर वाले को, मणि-किरीट से स्फुरित मस्तक वाले को, कंकण-केयूर से युक्त वाले को, कर्बुरमय (स्वर्णमय) दीप्त कटि सूत्रों वाले को, तरल यज्ञोपवीतों से युक्त वाले को, अति सुप्रसन्न वक्त्रांवुज वाले को, तरुण विवृत (खुले हुए विशाल) नेत्र वाले को, [आ.] सिद्ध-मण्डल (-समूह) के सेवाएँ करने पर पुण्य प्रसिद्धि से विलसित इद्ध (निर्मल) चरित वाले को और पद्मलोचन वाले (विष्णु) के पाद पीठ वने हुए महान् पन्नगेंद्र (गरुड़) को उसने (चित्रकेतु ने) देखा। ४६७ [आ.] देखने

आ. कन्नमात्र नतडु कल्मषंबुल वासि, विमल चित्तुडगुचु विशदभक्ति
निट्ट रोममुलकु बट्टगु चानंद, बाष्प नेत्रुडगुचु ब्रणुति सेसे ॥ 468 ॥

कं. संतोषाश्रुलचेत न,-नंतुनि बरिषिक्तुजेसि यतडु प्रमोदं-
बेंतयु नरिकट्टिन नोक, कोंतयु बलुकंगलेक कोंडोक वडिकिन् ॥ 469 ॥

चं. मदि नोक्कयित मात्रमु समंबुग जेयुचु बाह्यावर्तनं
गदिसिन यिंद्रियंबुल नोकंतकु देच्चि मनंबु वाक्कुनुं
गुदुरुग द्रोचि तत्त्वमुन गूर्चुचु सात्वत विग्रहंबु ना
सदयु ब्रशांतु लोकगुरु सन्नुति जेय दोडंगे निम्मुलन् ॥ 470 ॥

कं. अजितुडवै भक्तुलचे, विजितुडवैनाड विपुडु वेडुक वारुन्
विजितुलु नीचे गोर्कुलु, भजियिंपनि वारु निन्नु बडयुटनु हरी! ॥ 471 ॥

उ. नी विभवंबु लो जगमु निंडुट युंडुट नाश मोंदुटल्
नी विमलांश जालमुलु नेम्मि जगंबु सृजिंचु वार लो
देव! भवद्गुणांबुधुल तीरमु गानक योश! बुद्धि तो
वाविरि जर्च सेयुदुरु वारिकि वारलु दोड्डु वारले ॥ 472 ॥

कं. परमाणुवु मोदलुग गोनि, परममु तुदि गाग मध्य परिकीर्तनचे
स्थिरुडवु त्रयीविदुडवै, सरि सत्त्वाद्यंत मध्य सद्ध्रुवगतिवै ॥ 473 ॥

---

मात्र से उसने (चित्रकेतु ने) कल्मषों से मुक्त होकर, विमल चित्त वाला होते हुए, विशद भक्ति से पुलकित रोमवाला बनकर, आनन्द-बाष्पों से युक्त नेत्रवाला होता हुआ प्रणुति (स्तुति) की। ४६८ [कं.] संतोष के अश्रुओं से अनन्त (आदिशेष) को परिषिक्त (अभिषिक्त) कर [अपने] प्रमोद (हर्ष) के अतिरेक को थोड़ी देर के लिए रोककर कुछ भी बोल न सक थोड़ी देर के बाद ४६९ [चं.] मन को थोड़ा सम (संयमित) करते हुए, बाह्य वर्तन में लगे हुए इंद्रियों को एकाग्र कर, मन और वाक् को स्थिर कर, तत्त्व में [मन को] एकाग्र कर सत्त्वयुक्त विग्रह (रूप) वाले, सदय, प्रशान्त और लोक गुरु की प्रेम से सन्नुति करने लगा। ४७० [कं.] अजित (अजेय) होकर [भी] अब उत्साह से भक्तों द्वारा विजित हुए हो। वे भी तुमसे विजित हैं। हे हरि! अकाम होकर तुम्हारा भजन करनेवाले, तुम्हे प्राप्त करते हैं। ४७१ [उ.] तुम्हारे विभवों के इस जगत में भरा रहना, नष्ट होना, तुम्हारे विमलांश-जालों के प्रेम से जग का सृजन करना हे देव! भवत् (तुम्हारे) गुणांबुधियों के पार न पा सक, हे ईश! [मूर्ख जन] अपने आपको बड़ा मानकर बुद्धि (मन) से, क्रम से, चर्चा करते रहते हैं। ४७२ [कं.] परमाणु से लेकर परम के अन्त तक इस बीच पतिकीर्तन से स्थिर त्रयीविद् होकर सरसता से सत्त्व के आदि-अन्त-मध्य की सत् ध्रुव गति वाले होकर ४७३ [ते.] उर्वी

ते. उर्विमोंदलगु नेडु नोंडोंटि कंटें
दश गुणाधिकमै युंडु दानि नंड
कोशमंदु रजांडंबु कोट्लेंवनि
यंदु नणु मात्र मगु ! ननंताख्युडतडु ॥ 474 ॥

व. मरियु नोंकानोंकचोट विषयतृष्णापरुलैन नर पशुवुलु परतत्त्वंबवैन निन्नु मानि, यैश्वर्यकामुलै तक्किन देवतलं भजियिंचुदुरु। वारिच्चु संपदलु राजकुलंबुनुंबोलें वारलंगूडि नाशंबुनं बोंदुचुंडु। विषयकामुलैननु निन्नु सेविंचिनवारु, वेचिन वित्तनंबुनुंबोलें, देहांतरोत्पत्ति नोंदकुंडुदुरु। निर्गुणुंडवै ज्ञान विज्ञानरूपंबु नोंदियुन्न निन्नु गुण समेतुनिगा नज्ञानुलु भाविंचुदुरु। नी भजनबेरूपुननैन मोक्षंबु प्रसादिंचु। जित मति-वैन नीवु भागवतधर्मंबे प्रकारंबुन निर्णयिंचिति, वा प्रकारंबुन सर्वोत्कृष्टुंडवैन निन्नु सनत्कुमारादुलु मोक्षंबु कोंरकु सेविंपुचुन्नारु। ई भागवत धर्मंबु नंदु ज्ञानहीनुंडोंकुंडुनु लेडु। अन्य काम्य धर्मंबुलंदु विषम बुद्धि चेत नेनु, नीवु, नाकु, नीकु, नन्नि वचियिंपुचुन्नवाडधर्म निरतुंडै क्षयिंपुचुंडु। स्थावर जंगम प्राणि समूहंबु नंदु समंबैन भागवत धर्मंबुल वर्तिंपुचुन्न मनुजुनिकि भवद्दर्शनंबु वलन बापंबु क्षयिंचुट येमि

(पृथ्वी) आदि सप्त [लोक] एक की अपेक्षा दुसरा दश गुणाधिक रहता है। जिसके (सर्वेश्वर के) अण्डकोष में रहनेवाले हजारों अजाण्ड (ब्रह्माण्ड) अणुमात्र बनकर रहते हैं। ऐसा वह व्यक्ति अनन्त नाम वाला है। ४७४

[व.] और किसी (कहीं) एक स्थान पर विषय तृष्णापर बने नरपशु पर-तत्त्व तुम्हें छोड़कर ऐश्वर्यकामी बनकर शेष देवताओं का भजन करते हैं। उनकी प्रदत्त सम्पदाएँ राजकुल के समान उनके साथ-साथ नष्ट होते रहते हैं। विषयकामी बनकर भी तुम्हारी सेवा करनेवाले, भुने गये बीज के समान देहान्तर मे (अन्य देह में) उत्पन्न नहीं होते। निर्गुणिया बनकर ज्ञान-विज्ञान रूप से युक्त तुम्हें अज्ञानी [जन] गुण समेत मानते हैं। तुम्हारा भजन किसी भी रूप मे क्यों न हो, मोक्ष प्रदान करता है। जितमति (जिसने अपनी बुद्धि को जीत लिया) वाले तुमने भागवत धर्म का जिस प्रकार से निर्णय किया, उस प्रकार से सर्वोत्कृष्ट बने हुए तुम्हारी सेवा सनत्कुमार आदि मोक्ष के लिए कर रहे हैं। इस भागवत् धर्म में ज्ञान-हीन एक भी नहीं है। अन्य काम्य धर्मों में विषम बुद्धि के कारण मैं, तुम, मेरे लिए, तुम्हारे लिए ऐसा कहनेवाला अधर्म-निरत बनकर मस्त होता है। स्थावर और जंगम प्राणि-समूह में समभाव वाले भागवत धर्म से व्यवहार करनेवाले मनुष्य के लिए तुम्हारे दर्शन के कारण पाप क़े क्षय (नाश) होने में कौन सी विचित्र बात है? अब भवत् पादावलोकन

चित्रंबु ? इपुडु भवत्पादावलोकनंबुन निरस्ताशयमलुंडवैति। मूढुंड-नैन नाकु बूर्व कालंबुन नारदुंडनुग्रहिंचि, भगवद्धमंबु दयसेसें। अदि नेडु नाकु वरदुंडवैन नी कतंबुन दृष्टंबय्यें। खद्योतंबुलचेत सूर्युंडु गोचरुंडुगानि माड्कि, जगदात्मकुंडवैन नी महत्त्वंबु मनुजुलचेत नाचरिप बडि, प्रसिद्धंबैनदि काडु। उत्पत्ति स्थिति लय कारुडवै भगवंतुंडवैन नीकु नमस्करिंचेंद। अनि मरियुनु ॥ 475 ॥

ते. अरय ब्रह्मादुलेव्वनि ननुनयिंचि
भक्तियुक्तुल मनमुन ब्रस्तुतिंतु-
रवनि यॆव्वनि तलमोद नावगिज
बोलु ना वेयिशिरमुल भोगि गोल्तु ॥ 476 ॥

कं. ई विधमुन विनुतिंपग, ना विद्याधरुल भर्त कनियॆ ननंतुं
डो विमलबुद्धि ! नी दगु, धी विभवंबुनकु मॆच्चिति ब्रियमारन् ॥477॥

आ. अरय नारदुंडु नंगिरसुंडुनु
तत्त्वमॊसगिनारु दानि कतन
नन्नु जूड गलिगॆ ना भक्ति मदि गल्गॆ
नापथंबु नीकु नम्म गलिगॆ ॥ 478 ॥

सी. पूनि नारूपंबु भूतजालंबुलु भूतभावनुडनि पॊंदुपडग
ब्रह्मंबु मरियु शब्द ब्रह्ममुनु शाश्वतंबैन तनुवुलु दगिलॆं नाकु

---

(चरणों को देखने) से निरस्त-आशय (समस्त कामनाओं के नष्ट होने पर) अमल (निर्मल) बन गया हूँ। मूढ़ बने मुझ परपूर्वकाल में नारद ने अनुग्रह कर भगवत् धर्म को प्रदान किया। वह आज मुझे तुम वरद के कारण दृष्ट हुआ। खद्योतों से सूर्य के गोचर न होने के समान जगदात्मक तुम्हारा महत्त्व मनुष्यों से आचरित होकर प्रसिद्ध नहीं हुआ है। उत्पत्ति, स्थिति, लय कारक और भगवान् हो तुम्हें नमस्कार करता हूँ। [ऐसा] कह और भी [यों कहा] ४७५ [ते.] सोचने पर ब्रह्मा आदि जिसका अनुनय करके भक्ति-युक्तियों से मन में प्रस्तुति करते हैं, अवनि जिसके सिर पर राई से समान रहती है, उस हज़ार सिर वाले भोगी (सर्प) की सेवा (अर्चना) करता हूँ। ४७६ [कं.] इस विध विनुति (स्तुति) करने पर विद्याधरों के उस भर्ता (राजा) से अनन्त ने कहा— हे विमल बुद्धिवाले ! तुम्हारे धी-विभव (बुद्धि-वैभव) के कारण प्रेम से प्रसन्न हुआ हूँ। ४७७ [आ.] सोचने पर नारद और अंगीरस ने तत्त्व प्रदान किया। उसके कारण मुझे देख सके, मन में मेरे प्रति भक्ति उत्पन्न हुई और मेरे मार्ग का विश्वास कर सके। ४७८ [सी.] लगकर (सप्रयत्न) मेरा रूप भूत जालों में भूतभावन के नाम से समाया रहता है। मुझे ब्रह्म और शब्द ब्रह्म

नखिल लोकंबुलु ननुगतंबेयुंडु लोकंबु नायंबु जोकमंदु
नुभयंबु ना यंदु नभिगतंबे युंडु नभिलीन मगुदु नय्युभयमंदु

ते. वलय निद्रिंचुवाडात्म विश्वमॅल्ल
जूचि मेल्कांचि तानॉक्क चोटुवानि
गा विवेकिंचु माड्कि नी जीवु डीशु
माय दिगनाडि परम धर्मंबु दॅलियु ॥ 479 ॥

आ. निद्र बोवु वेळ निरतुडै देहि ता, नॅट्टि गुणमुचेत निंद्रियमुल
गडचि नट्टि सुखमु गनुनट्टि ब्रह्मंबु, कडिमि मॅऱय नन्नुगा नॅऱुंगु ॥ 480 ॥

ते. स्वप्नमंदु नॅट्लु संचार मॉनरिंचु
मेलुकांचि दृष्ट मॅल्ल नॅऱुगु
नुभय मॅऱुगु नट्टि युत्तमज्ञानंबु
तत्त्वमट्टिदैन तलपु नेनु ॥ 481 ॥

सी. अरयंग नॅव्वनि कलवि गानट्टि यी सललित मानुषजाति बुट्टि
यात्म तत्त्वज्ञान हतुडैन वानिकि गलुगुने ? यंदु सुखं बॉकित
वॅलय प्रवृत्ति निवृत्ति मार्गंबुल सुखमुनु दुःखंबु सॉरिदि दॅलिसि
पनिचेंडि संकल्प फल मूलमुन वाऽि कडु सुख दुःख मोक्षमुल कॊऱकु

आ. दंपति क्रियामतंबु वर्तिंतुरु, दान मोक्षमेल दविक युंडु ?
नखिल दुःख हेतुवैन यी कर्मंबु, नॅऱिगि नन्नु दलपरिच्चलोन ॥ 482 ॥

---

नामक शाश्वत तनु (शरीर) प्राप्त हुए। अखिल लोक मेरे अनुगत हो रहते हैं। लोक मुझमें समाये रहते हैं। उभय (इह और परलोक) मेरे अविगत रहते हैं। [मैं] उन दोनों में अभिलीन रहता हूँ। [ते.] शोभा से निद्रित होनेवाले आत्मा (मन) में समस्त विश्व को देखकर, जागने पर अपने को एक स्थान पर स्थित जानने के समान यह जीव ईश्वर की माया से मुक्त होकर परम धर्म को जान सकता है। ४७९ [आ.] निद्रा के समय निरत होकर देही जिस गुण के कारण इंद्रियों के प्राप्त सुख को देखता है (अनुभव करता है), तुम सप्रयत्न जानो कि मैं ही वह ब्रह्म हूँ। ४८० [ते.] स्वप्न में जिस प्रकार संचार करता है और जाग्रत् होकर समस्त को दृष्ट ही जानता है, इन दोनों को जाननेवाला उत्तम ज्ञान का तत्त्व स्वरूप ज्ञान मैं हूँ। ४८१ [सी.] सोचने पर किसी भी [प्राणी] के लिए असाध्य इस सललित मनुष्य जाति में पैदा होकर आत्मतत्त्व के ज्ञान से रहित होनेवाले को क्या [यह ज्ञान] प्राप्त होगा ? उसमें (जीवन में) थोड़े सुख के शोभित होने पर, प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों से सुख-दुःख के क्रम को जानकर, [आ.] अनावश्यक संकल्प फलमूल से दूर होकर सुख-दुःख और मोक्ष के लिए दम्पत्ति के क्रियामत से (दम्पत्तियों के समान

व. मरियु विज्ञानाभिमानुलैन मनुष्युलकु नति सूक्ष्मंबैन यात्मगतिनि स्थानत्रय विलक्षणंबैन चतुर्थांशंबु नेंरिगि, यैहिकामुष्मिक विषयंबुलचेतनु, विवेक बलंबु चेतनु, निर्मुक्तुंडै, ज्ञान विज्ञान संतृप्तुंडैन पुरुषुंडु ना भक्तुंडगु। ई विधंबु गलवारलु, योग नैपुण बुद्धि गल वारलुनै, स्वार्थंबैन यात्मचेतं बरमात्मनु दॅलियु चुंदुरु। नीवु नी क्रमंबुन मद्भक्ति श्रद्धापरुंडवै विज्ञान संपन्नंबैन वाक्कुलचेत नन्नु स्तोत्रंबु चेसि मुक्तुंडवैतिवि। अनि, या शेष भगवंतुंडु विद्याधरपतियैन चित्रकेतुं बलिकि, यतनि कदृश्युंडै

## अध्यायमु—१७

व. पोयॅ। ए दिक्कुन सर्वात्मकुंडैन यनंतुंडंतर्धानंबु नोंदॅ, ना दिक्कुनकु विद्याधर भर्त नमस्करिंचि, गगनचरुंडै चनि, लक्षल संख्यलैन दिव्य वर्षंबुलव्याहत बलेंद्रियुंडै, परम योगि पुरुषुलुनु, दिव्य मुनींद्र सिद्ध चारण गंधर्वुलुनु, विनुति सेयं गुल शैल द्रोणुलनु, रम्य प्रदेशंबुलनु, संकल्प सिद्ध प्रदेशंबुलनु, विनोदिंपुचु, श्री नारायणदत्तंबगु दिव्य विमानंबु नंदु जरियिंपुचुनुंडॆ ॥ 483 ॥

आसक्ति से) आचरण करते हैं। इससे मोक्ष कैसे प्राप्त होगा ? अखिल दुःखों के हेतु बने इस कर्म को जानकर [भी] मन में मेरा स्मरण नहीं करते। ४८२ [व.] और विज्ञान के प्रति अभिमान (आसक्ति) रखनेवाले मनुष्य अति सूक्ष्म आत्मगति के स्थानत्रय से विलक्षण बने चतुर्थांश को जानकर, ऐहिक-आमुष्मिक विषयों द्वारा विवेक-बल से निर्मुक्त बनकर, ज्ञान-विज्ञान से संतृप्त बना पुरुष मेरा भक्त होता है। ऐसे लोग-योग नैपुण्य की बुद्धि से युक्त होकर स्वार्थ से युक्त बनी आत्मा से परमात्मा को जानते हैं। तुम अपने क्रम से मेरी भक्ति मे श्रद्धावान् बनकर विज्ञान संपन्न वाक्यों से मेरा स्तोत्र कर मुक्त बन गये हो। ऐसा वह भगवान् [आदि] शेष विद्याधरपति चित्रकेतु से कहकर, उसके लिए अदृश्य होकर,

## अध्याय—१७

चला गया। जिस दिशा की ओर सर्वात्मक अनन्त अन्तर्धान हुए, उस दिशा को विद्याधर-भर्ता (चित्रकेतु) नमस्कार कर, गगनचारी बनकर चला गया। लाखों की संख्या में दिव्य वर्ष अव्याहत बलेंद्रिय वाला होकर, परमयोग पुरुष और दिव्य मुनींद्र, सिद्ध, चारण, गंधर्वों के स्तुति करने पर, कुल शैलों के द्रोणियों और रम्य प्रदेशों और संकल्प सिद्ध

शा. आडिचुन् हरि दिव्यनाटक गुण व्यापार नृत्यंबुलं
वाडिचुं जलजात नेत्र विरुद प्रख्यात गीतंबुलं
गूडिचुन् सततंबु जिह्वल तुदिन् गोविन्द नामावळुल्
क्रीडि गिन्नर यक्ष कामिनुलचे गृष्णार्पित स्वांतुडै ॥ 484 ॥

सी. वासिचु नात्मलो वैष्णवज्ञानंबु नाशिचु भागवतार्चनंबु
भूषिचु ने प्रोद्दु पुंडरीकाक्षुनि भाषिचु हरिकथा प्रौढि मॆरसि
घोषिचु हरि नाम गुण निकायंबुलु पोषिचु परतत्त्वबोध मरसि
सेविचु श्रीकृष्ण सेवक निकरंबु सुखमुन जेयु नीशुनकु बलुलु

ते. पाडु वाडिचु वैकुंठ भर्त नटन
रूप वर्तन गुणनाम दीपितोरु
गीत जात प्रबंध संगीत विधुल
गेशव प्रीतिगा जित्रकेतु डॆपुडु ॥ 485 ॥

विद्याधराधिपतियगु चित्रकेतुंडीश्वरधिक्कारंबुन गौरिचे शापमोंदुट

म. हरि गीतिपुचु नल्ल नल्ल मदिलो नब्जाक्षु सेविपुचुं
बरमानंदमु नॊंदुचुन् जगमुलन् बख्याति वतिपुचुन्

---

प्रदेशों में विनोद करते हुए (प्रसन्नचित्त से) श्रीनारायण-प्रदत्त दिव्य विमान में विचरण करता रहा। ४८३ [शा.] [चित्रकेतु] कृष्णार्पित-स्वान्त (-अंतरंग) वाला होकर क्रीड़ा से किन्नर, यक्ष, कामिनियों से हरि के गुण-व्यापारों को दिव्य नाटक और नृत्यों के रूप में खेलाता (अभिनय कराता) है, जलजातनेत्र (विष्णु) के विरुदों को प्रख्यात् गीतों से गवाता है। सतत (निरन्तर) जिह्वाओं के अग्रभाग पर गोविन्द की नामावलियों को जुड़ाता है। ४८४ [सी.] आत्मा में वैष्णवज्ञान का वास कराता है (मन में वैष्णवज्ञान को स्थिर बना रखता है), भागवतों की अर्चना को चाहता है, सदा पुण्डरीकाक्ष की प्रशंसा करता है, हरि-कथाओं को प्रौढ़ता की अधिकता से प्रकाशित करता है। हरि के नाम और गुण निकायों (समूहों) की घोषणा करता है। सोचकर परतत्त्व प्रबोध का पोषण करता है। श्रीकृष्ण सेवकों के निकर (समूह) की सेवा करता है। सुख से ईश के लिए बलि देता है। [ते.] वैकुण्ठ भर्त्ता (विष्णु) के नटन, रूप, वर्तन, गुण नाम से दीपित (दीप्त ) उरु, (महा), गीत-जात (-समूह) प्रबन्ध संगीत विधियों से केशव के लिए प्रीतिकर रूप में सदा चित्रकेतु गाता है और गवाता है। ५८५

विद्याधरपति चित्रकेतु का ईश्वर धिक्कार के कारण गौरी से शप्त होना

[म.] हरि का कीर्तन करते हुए क्रमशः मन में अब्जाक्ष (विष्णु)

सुरराजोपममूर्ति यक्षगणमुल् सौंपार विद्याधरा-
प्सरसल् गौल्वग बाडगा सितगिरि प्रांतंबुनन्नेगुचुन् ॥ 486 ॥

शा. आ विद्याधर भर्त गांचे हर नीहारामृताहासमुन्
श्री विभ्राजितमुन् निरस्त गिरिजा सेवा गतायासमुन्
देवानीक विकासमुन् शुभ महादेवांघ्रि संवासमुन्
भू विख्यात विलासमुं द्रिभुवनी भूतंबु गेलासमुन् ॥ 487 ॥

कं. आ रजत भूधरंबुन,
नीरेजभवामरादि निकरमु गौल्वन्
पेरोलगमुन नुंडिन,
गौरीयुतुडैन हरुनि गनियें नरेंद्रा ! ॥ 488 ॥

सी. तन निजरूप मितंतनि तेलियक वावंबु सेसेडि वेदरवमु
करुणावलोकनाकांक्षितुलैयुन्न ब्रह्मादि सनक सप्रणुति रवमु
सार शिवानंद सल्लापमुल नोप्पु प्रमथ गणाळि यार्भटरवंबु
डमरु मृदंगादि ढमढम ध्वनि तोडि पटु भृंगि नाट्य विस्फार रवमु

ते. मानुगा जामरलु वीचु मातृकादि
कामिनीजन महित कंकण रवंबु

---

की सेवा करते हुए परमानन्द को प्राप्त करते हुए जगों में प्रख्यात् रूप से व्यवहार करते हुए सुरराज के समान मूर्ति (रूप) वाले यक्षगण और शोभा से विद्याधर और अप्सराओं के सेवा करने पर और गाने पर (प्रशंसा करने पर) सितगिरि (हिमालय) के प्रान्त की ओर जाते हुए ४८६ [शा.] उस विद्याधर भर्त्ता ने हर के नीहार-सम अमृत हास वाले, श्री से विभ्राजित, गिरिजा की सेवा से निरस्त-आगत आयास वाले (गिरिजा की उपस्थिति से श्रम को दूर करनेवाले), देवानीक को विकास प्रदान करनेवाले महादेव के अंघ्रि-संवास से शुभ बने हुए, भू विख्यात विलास वाले त्रिभुवनी-भूत (जहाँ तीनों भुवन एकत्र होते हैं), ऐसे कैलास पर, ४८७ [कं.] हे नरेंद्र ! उक्त रजत भूधर पर नीरेजभव (ब्रह्मा) अमरादि-निकर (-समूह) के सेवा करने पर भरी सभा में स्थित गौरीयुत हर को देखा। ४८८ [सी.] पर्वतराज कन्या के पति की भरी सभा जो अपने निज स्वरूप के बारे में न जानकर वाद करनेवाले वेद-रव (-ध्वनि) से, [शिवजी के] करुणावलोकन की कांक्षा करनेवाले ब्रह्मा आदि और सनक [आदि] की प्रणुतियों के रव से, सार शिवानन्द के संलापों से शोभित प्रमथगण-समूह के आर्भट रव वाले, डमरू, मृदंग आदि की ढम-ढम ध्वनि के साथ भृंगी के पटु नाट्य के विस्फारित रव से, [ते.] शोभा से चामर डुलानेवाली मातृका आदि कामिनी जनों के महित

मॆंड्रु जॆलगंग गम्रुल पॆंड्रुवय्यॆ
गॊंडराचूलि पॆनिमिटि निड्रु कॊल्वु ॥ 489 ॥

व. इट्लु ब्रह्मादि सुरनिकर सेवितुंडै यूरु पीठंबुननुन्न भवानि गौगिटं जेर्चिकॊनि, यॊड्डोलगंबुननुन्न परमेश्वरुं जूचि, चित्रकेतुंडु पक पक नगि, यद्देवि विनुचुंड निट्लनियॆ ॥ 490 ॥

सी. कॊमरॊप्पगा लोक गुरुडनु गडलेनि धर्मस्वरूपंबु दान यगुचु
जडलु धरिंचियु सरिलेनि तपमुन वॊडवैन यी योगि पुंगवुलुनु
ब्रह्मवादुलु गॊल्व भासिल्लु कॊलुवुलो मिथुन रूपंबुन मॆलत तोड
प्राकृतुंडुनु बोलॆ बद्धानुरागुडै लालितुंडय्यॆ निर्लज्जत निट

आ. नकट ! प्रकृति पुरुषुडैन दानेकांत
मंदु सतुलतोड नलरुगानि
यिट्लु धर्म सभल नितुलतो गूडि
परिढविप दगदु भ्रांति नॊंदि ॥ 491 ॥

कं. अन विनि सर्वेश्वरुडा, -तनि नेमियु ननक नव्वॆ दत्सभवारुं
गनुगॊनि यूरक युंडिरि, मनुजेश्वर ! यीशु धैर्य महिमॆट्टिदियॊ ! ॥492 ॥

व. इट्लु तन पूर्व कर्म विशेषंबुन निंद्रियजयुंडननि पुट्टिन यहंकारंबुन

---

कंकण रवों से [आदि सबसे युक्त होकर] अधिक शोभायमान बनकर नेत्रानन्दकर हुई । ४८९ [व.] इस प्रकार ब्रह्मा आदि सुर-निकर से सेवित होकर, ऊरु पीठ (जाँघ) पर स्थित भवानी को गले लगाकर सभा में स्थित परमेश्वर को देखकर चित्रकेतु ने ठहाका लगाकर, उस देवी (पार्वती) के सुनते रहने पर यों कहा— ४९० [सी.] शोभा से लोकगुरु बनकर स्वयं अनन्त धर्मस्वरूप वाले होते हुए, जटाएँ धारण कर, असमान तप से श्रेष्ठ बने हुए इन योगिपुंगवों और ब्रह्मवादियों के सेवाएँ करते रहने पर शोभायमान सभा में मिथुन रूप से स्त्री के साथ प्राकृत [जन] (साधारण मानव) के समान बद्धानुराग वाला होकर निर्लज्ज बनकर हाय ! यहाँ प्रेम दिखा रहा है ! [आ.] प्रकृति और पुरुष बने [शिव को] एकांत में सतियों के साथ रहना शोभा देता है, किन्तु इस प्रकार धर्म सभाओं में सुंदरियों पर भ्रान्त होकर आचरण करना उचित नहीं है । ४९१ [कं.] [ऐसा] कहने पर सुनकर सर्वेश्वर ने उससे कुछ न कहकर हँस दिया । उस सभा के लोगों ने (सभासदों ने) [उसे] देखकर मौन धारण किया । हे मनुजेश्वर ! पता नहीं ईश की धैर्य महिमा (धीरज धारण करने की सामर्थ्य) कैसी है ! ४९२ [व.] इस प्रकार अपने पूर्व कर्म विशेष से, [अपने को] इंद्रियजयी मानकर उत्पन्न अहंकार के कारण जगद्गुरु (शिवजी) के प्रति अनेक प्रकार के दुर्वचन कहनेवाले चित्रकेतु

जगद्गुरुवुं बॅक्कु प्रल्लदंबुलाडुचुन्न चित्रकेतुं जूचि, भवानि यिट्लनियें ।। 493 ।।

कं. ममुबोटि लज्ज लुडिगिन, कुमतुलकुं गर्त यगुचु गोपिपंगा
नमिताज्ञा निपुणुंडगु, शमनुंडा ? नेडु वीडु जगमुल कॅल्लन् ।। 494 ।।

कं. भृगु नारद कपिलादुलु, निगमांतज्ञुलुनु योग निर्णय निपुणुल्
त्रिगुणातीतु महेश्वरु, नग रॅन्नडु वारु धर्म नय मॅरुगरॉको ? ।। 495 ।।

सी. ऎव्वनि पदपद्म मिंद्रादि विबुधुल चूडाग्र पंक्तुल नीड चूचु
नॅव्वनि तत्त्वंबर्णवयंग ब्रह्मादि योगि मानस पंक्ति नोललाडु
नॅव्वनि रूपंबु नेर्पाटु गानक वेदंबु लवंद वादमडुचु
नॅव्वनि कारुण्य मी लोकमुल नॅल्ल दनिपि यॅतयु धन्यतममु जेयु

ते. नट्टि सर्वेशु पाप संहारु धीरु
शाश्वतैश्वर्यु नात्मसंसारु नीशु
नॅग्गु वलिकॅन पापात्मुडॅल्ल भंगि
दंडनार्हुंडु गाकॅट्लु तलग गलडु ? ।। 496 ।।

ते. निखिल लोकाश्रयंबु सन्निहित सुखमु
सकल भद्रैकमूलंबु साधु सेव्य-
मैन कंजाक्षु पादपद्मार्चनंबु
ननुचरिंपंग खलुडु वीडर्हुंडगुनॅ ? ।। 497 ।।

---

को देखकर भवानी ने यों कहा— ४९३ [कं.] हमारे समान [लोक] लज्जा को छोड़नेवाले कुमतियों के कर्ता होते हुए, क्रोध करने के लिए क्या आज यह समस्त जगों (लोकों) के लिए अमित-आज्ञा-निपुण शमन (यमराज) है ? ४९४ [कं.] भृगु, नारद, कपिल आदि निगमान्त को जाननेवाले और योगनिर्णय मे निपुण [मतिवाले], त्रिगुणातीत महेश्वर [को देखकर] कभी नहीं हँसते (अवहेला नहीं करते)। क्या वे धर्म की नीति को नही जानते ? ४९५ [सी.] जिसके पद-पद्म (चरण-कमल) इंद्रादि विबुधों के चूडाग्र पंक्तियों की छाया को देखते है, जिसके तत्त्व [रूपी] सागर में ब्रह्मादि योगियों की मानस-पंक्ति ऊभ-चूभ होती रहती है, जिसके रूप को व्यवस्था से न देख सक, वेद जहाँ-तहाँ वाद [-विवाद] करते रहते हैं, जिसकी करुणा इन समस्त लोकों को संतृप्त कर अधिक धन्यतम बनाती है, [ते.] ऐसे सर्वेश, पाप संहारक, धीर, शाश्वत ऐश्वर्य वाले, आत्मसंसार वाले (जो स्वयं संसार-रूप बना हुआ है) और ईश के प्रति दुर्वचन कहनेवाला पापात्मा सभी तरह से दण्डनार्ह (दण्ड के योग्य) बने बिना कैसे बच सकता है ? ४९६ [ते.] निखिल लोकाश्रय सन्निहित सुख वाला, समस्त शुभों का एक मात्र मूल, साधुसेव्य कंजाक्ष के

व. कावुन नोरि दुरात्मक ! यो पापंबुन बापस्वरूपंबैन राक्षस योनि बुट्टुमु। अनि शपियिंचि, यितनुंडि महात्मुलकु नवज्ञ सेयकुमु। अनि पल्किन, जित्रकेतुंड विमानंबु डिग्गि वच्चि, यद्देविकि बंड प्रणामंबु लाचरिंचि, करकमलंबुलु वोयिलिचि, यिट्लनियें। ओ जगन्मात! भवच्छाप वाक्यंबु लट्ल कैकोंटि। प्राचीन कर्मंबुलं ब्राप्तंबैन संसार चक्रंबुचेत नज्ञान मोहितुलै तिरुगुचुन्न जंतुवुलकु सुख दुःखंबुलु नैजंबुलै प्रवर्तिल्लुचुंडु। इंदुलकु बरतंत्रुलैनवारात्म सुख दुःखंबुलकु नेंव्वरु कर्तलु? ई गुणंबुल निमित्तमै शापानुग्रहंबुलुनु, स्वर्ग नरकंबुलुनु, सुख दुःखंबुलुनु, समंबुलु। भगवंतुंडोक्कंडु न मायचेत जगंबुलु सृजियिंचुचुंडु। वारि वारिकि बद्धानुरागंबुलु गलुग जेयुचु, दानु वानिकि लोनुगाक निष्कळंकुडै युंडु। ई विधंबुन बुट्टुचुन्न नरुनकुं बत्नी बंधु शत्रु मित्रोदासीनंबु लेक्कडिवि? वारि वारि कर्मवशंबुनं बरमेश्वरुंडु कल्पिचुचुंडु। सर्व समुंडैयुंडु नप्परमेश्वरुनकु सुखदुःखंबुलचेत रागंबु लेदु। रागानुबंधंबैन रोषंबुनु लेदु। अतनि माया गुण विसर्गंबु जंतुवुलकु सुख दुःखंबुलनु, बंध मोक्षंबुलं गल्पिचुचुंडु। कावुन नीकु नमस्करिंपुचुन्न नन्नु ननुग्रहिंपुमु। शापभय शंकितुंडगानु। जगन्मातवैन निन्नु वलिकिन दोषंबुनकु

---

पादपद्मों के अर्चन करने के लिए क्या यह खल (दुष्ट) अर्ह (योग्य) है? ४९७ [व.] अतः हे दुरात्मक! इस पाप के कारण पापस्वरूपी राक्षस-योनि में पैदा हो जा। ऐसा शाप देकर कहा कि अब से महात्माओं की अवज्ञा मत करो। ऐसा कहने पर चित्रकेतु विमान से उतरकर आया, उस देवी को दण्डप्रणाम कर, करकमल जोड़कर यों कहा। हे जगन्माता! आपके शाप-वाक्यों को उसी रूप में ग्रहण किया। प्राचीन कर्मों से (पुराकृत कर्मों से) प्राप्त संसार-चक्र के कारण अज्ञान से मोहित बन भ्रमण करनेवाले जंतुओं (प्राणियों) के लिए सुख-दुःख स्वाभाविक रूप से [प्राप्त] होते रहते हैं। इसलिए जो परतंत्र हैं उनके अपने सुख-दुःखों के लिए कौन कर्ता है? इन गुणों के निमित्त रूप (कारण) से शाप-अनुग्रह, स्वर्ग-नरक, सुख-दुःख [सभी] समान है। एक मात्र भगवान अपनी माया से जगों का सृजन करता रहता है। उन-उन व्यक्तियों में बद्ध अनुराग पैदा करते हुए, स्वयं उनके वश न होकर निष्कलंक बना रहता है। इस प्रकार से उत्पन्न होनेवाले नर के लिए पत्नी, बन्धु, शत्रु, मित्र, उदासीनत्व कहाँ से है? [इन सबको] उन-उनके कर्मवश से परमेश्वर कल्पित करता रहता है। सर्व सम बने रहनेवाले उस परमेश्वर के लिए सुख-दुःखों के प्रति राग नहीं है। रागानुबंध (राग से संबद्ध) रोष भी नहीं है। उसके मायागुण का विसर्ग (सृष्टि) जतुओं के लिए सुख-दुःख और बंध-मोक्षों को कल्पित करता रहता है। अतः तुम्हें नमस्कार करनेवाले मुझे

शंकिपुचुन्नवाड। अनि दंड प्रणामंबु लाचरिंचि, पार्वती परमेश्वरुलं बसन्नलंजेसि, तन विमानंबेक्कि चनियें। अप्पुडु परमेश्वरुंडु ब्रह्मादि देवर्षि दैत्य दानव प्रमथ गणंबुलु विनुचुंड बार्वतिकिट्लनियें। नीकु निप्पुडु दृष्टंबय्यें गदा नारायण दास दासानुचरुल निस्पृहभावंबु! हरि तुल्यार्थ दर्शनुलै निस्पृहुलैन भागवतुलकु स्वर्गापवर्ग नरक भेद भावंबुलु लेवु। प्राणुलकु देह संयोगंबु वलन नारायण लीलं जेसि युंडि द्वंद्वादि सुख दुःखंबु लात्मयंबु नज्ञानंबुनं भेदंबु सेयंबडियें। इट्टि विपर्ययंबुलु भगवंतुंडैन वासुदेवुनि भक्ति गल वारिजेंदवु। मरियुनु ॥ 498 ॥

उ. नेनु गुमार नारदुलु नीरज गर्भुडु देव संघमुल्
मानित योगि वर्य मुनि मंडलि मुन्नगु वार मॅल्लना
दानव विद्विडंड जनितंबुल मय्यु ददीय तत्त्वमु
गानगनेर मीश! घन गर्वमुनं दलपोसि चूचुचुन् ॥ 499 ॥

क. अतनिकिनि ब्रियुडप्रियु, डॅतॅंरगुन लेडु नखिल मॅल्लनु दानै
भूतमुल कात्म यगुटयु, भूत प्रियु डौक्क डादि पुरुषुडु तन्वी! ॥ 500 ॥

आ. अरय जित्रकेतु डति शांतु डतिलोक
समुडु विष्णु भक्ति संगतुंडु

अनुगृहीत करो। [मैं] शापभय से शंकित (संकोच करनेवाला) नहीं हूँ। जगन्माता हो तुम्हारे प्रति [कहे दुर्वचनों के कारण प्राप्त] दोष के कारण शंकित हो रहा हूँ। [ऐसा] कह दण्ड प्रणाम कर पार्वती-परमेश्वर को प्रसन्न कर अपने विमान पर आरूढ़ होकर चला गया। तब परमेश्वर ने ब्रह्मा आदि देवर्षि, दैत्य-दानव-प्रमथगणों के सुनते रहने पर पार्वती से यों कहा— अब तुम्हें नारायण के दास और दासानुचरों का निस्पृह-भाव (अनासक्त-भाव) दिखाई पड़ा न ? हरि के समान दर्शन वाले (हरि के समान दिखाई पड़नेवाले) और निस्पृह (स्पृहा, रहित, इच्छा-रहित) भागवतों के लिए स्वर्ग-अपवर्ग और नरक का भेदभाव नहीं है। प्राणियों के लिए देह के संयोग के कारण नारायण की लीला से आत्म में द्वन्द्व आदि सुख-दुःखों का भेद अज्ञान के कारण किया गया है। इस प्रकार के विपर्यय भगवान वासुदेव में भक्ति रखनेवालों का स्पर्श नहीं करते। इसके अतिरिक्त ४९८ [उ.] मैं (स्वयं) कुमार, नारद, नीरजगर्भ (ब्रह्मा), देवसंघ, मान्य योगिवर्य, मुनिमण्डली आदि हम सब उस दानव-विद्विदण्ड (विष्णु) से जनित होकर भी तदीय तत्त्व को, घन गर्व के कारण सोचकर देखकर भी देख नहीं सकते। ४९९ [कं.] उसके लिए किसी भी तरह से प्रिय और अप्रिय व्यक्ति नहीं है। स्वयं समस्त सृष्टि होते हुए भूतों के लिए आत्मा होने से हे तन्वी! वह एक आदिपुरुष भूत प्रिय है। ५००

नितनि नेमि चेप्प ? नीशुंड नगु नेनु
नुविद यच्युत प्रियुंड जुम्मि ! ॥ 501 ॥

**कं.** कावुन भगवद्भक्तुल, भावमुनकु विस्मयंबु पनि लेदु महा
धीविभव शांतचित्तुलु, पावन परतत्व निपुण भव्युलु वारल् ॥ 502 ॥

**व.** अनिन विनि यद्रिनंदन विस्मयंबु मानि, शांत चित्तयय्यें। अट्लु परम भागवतुंडैन चित्रकेतुंडद्देविकि प्रतिशापं बिय्य समर्थुंडय्युनु, मरल शापपक यति शांत रूपंबुन दच्छापंबु शिरंबुन धरियिचें। इट्लु साधु लक्षणंबुलु नारायण परायणुलैन वारलकुं गाक योरुलकुं गलुग नेर्चुने ? इपुडु शाप हतुंडैन चित्रकेतुंडु त्वष्ट सेयु यज्ञंबुन दक्षिणाग्नि यंदु दानवयोनि बुट्टि, वृत्रासुरुंडन विख्यातुंडै भगवद्ज्ञान परिणतुडय्यें। कावुन ॥ 503 ॥

**सी.** नरनाथ ! यी वृत्रुनकु राक्षसाकृति गलिगिन यी पूर्व कारणंबु
चिर पुण्युडैनट्टि चित्रकेतु महानुभावंबु भक्तितो बरग विन
जदिविन वारिकि सकल दुष्कर्ममुल् शिथिलंबुलगुचुनु जेंवरिपोवु
सकल वैभवमुलु समकूरु दमयत तोलकाडु कोर्कुलतोड गूडि

**आ.** निर्मलात्मुलगुचु नित्य सत्य ज्ञान
निरतुलगुचु विगत दुरितुलगुचु

---

[आ.] सोचने पर चित्रकेतु अति शान्त है। अतिलोक (अलौकिक) समबुद्धि वाला है, विष्णुभक्ति से युक्त है। इसके बारे में क्या कहूँ ? हे सुन्दरी ! ईश बना हुआ मैं अच्युत-प्रिय हूँ। ५०१ [कं.] अतः भगवत्-भक्तों के भाव को देखकर विस्मय करने की आवश्यकता नहीं है। वे महा धी विभव (बुद्धि-वैभव से युक्त) और शान्त चित्त वाले पावन परतत्व में निपुण और भव्य हैं। ५०२ [व.] [ऐसा] कहने पर सुनकर अद्रिनन्दना (पार्वती) विस्मय छोड़कर शान्त चित्त वाली बनी। इस प्रकार परम भागवत चित्रकेतु ने उस देवी को प्रतिशाप देने में समर्थ होकर भी, पुनः शाप न देकर अति शान्त रूप से उसके शाप को शिरोधार्य मान लिया। इस प्रकार के साधु-लक्षण, नारायण-परायण व्यक्तियों के अतिरिक्त औरों को कहाँ प्राप्त हो सकते हैं ? अब शापहत बना चित्रकेतु त्वष्टा के किये यज्ञ की दक्षिणाग्नि में दानव-योनि से पैदा होकर वृत्रासुर नाम से विख्यात् बनकर भगवत् ज्ञान से परिणत हुआ। ५०३ [सी.] हे नरनाथ ! इस वृत्र को राक्षसाकृति प्राप्त होने के इस पूर्व कारण को, चिर पुण्य वाले चित्रकेतु के महानुभावत्व को भक्ति के साथ शोभा से सुनने और पढ़नेवालों के सकल दुष्कर्म (पाप) शिथिल बनकर बिखर जाते हैं, उल्लसित इच्छाओं से युक्त हो सकल वैभव अपने-आप संप्राप्त होते हैं। [आ.] [सुननेवाले या पढ़नेवाले] निर्मलात्मा वाले होते हुए नित्य

बंधु मित्र पुत्र पौत्रादुलनु गूडि
यनुभविंपुचुंदु रधिक फलमु ॥ 504 ॥

## अध्यायमु—१८

### सवितृ वंशादि प्रवचन कथ

सी. विनवय्य ! नरनाथ ! विशदंबुगा त्वष्टृ वंशंबु सेप्पिति वानि वेनुक
सवितृंडु पृश्नियु सावित्रि व्याहृति यनु भार्यलंदु निपारु वेड्क
नग्नि होत्रंबुल नरयंग बशु सोम पंच यज्ञंबुल बरग गनियें
भगुडु सिद्धिक यनु भार्यकु महिमानु ब्रभुवुनु विभुनि दा बडस मुवुर

तें. दनय नोकर्ते गाँचें ददनंतरमुन ना
तरळ नेत्र सद्व्रतैक धाम
पुण्यशील सुगुणपूरित चारित्र
यखिल लोक पूज्य याशिषाख्य ॥ 505 ॥

व. मरियु धातकु गल कुहू सिनीवाली राकानुमतुलनियेडु नलुवुरु भार्यललो गुहूदेवि सायमनु सुतुनि गाँचें। सिनीवाली दर्शाख्युनि बडसें। राक प्रातराख्युनि गाँचें। अनुमति पूर्णिमाख्युनि गनें। विधात क्रिययनु भार्ययंदु नग्नि पुरीष्यादुल गनियें। वरुणुनकु जर्षणि यनु भार्ययंदु बूर्व

सत्यज्ञान निरत बनते हुए, विगत दुरित (पाप) वाले होते हुए, बंधु, मित्र, पुत्र, पौत्रादियों से युक्त होकर अधिक फल (सुख) का अनुभव करते हैं। ५०४

## अध्याय—१८

### सवितृ-वंशादि के प्रवचन की कथा

[सी.] सुनो, हे नरनाथ ! विशद रूप से त्वष्टा के वंश [के बारे में] बताया। उसके बाद सवितृ ने पृश्नी, सावित्री, व्याहृती नामक भार्याओं में शोभा से उत्साह से अग्निहोत्रों में सोचने पर पशु, सोम, पंचयज्ञों को शोभा से प्राप्त किया। भग ने सिद्धिका नामक भार्या में महिमान्, प्रभु, विभु [नामक] तीन पुत्रों को प्राप्त किया। [ते.] और एक तनया को प्राप्त किया। उसके अनन्तर आशिष नाम वाले वह तरलनेत्रा, सद्व्रतों का एकैक धाम, पुण्यशीला, सुगुणपूरितचरिता, अखिल लोकपूज्या बनी। ५०५ [व.] और धाता के कुहू, सिनीवाली (प्रतिपदा की अधिष्ठात्री देवी), राका, अनुमति नामक चार भार्याओं में कुहू देवी ने सायं नामक सुत को पाया। सिनीवाली ने दर्शाख्य (दर्श नामक पुत्र) को प्राप्त

कालंबुन ब्रह्मपुत्रुंडैन भृगुवुनु, वल्मीकंबुनं जनिंचिन वाल्मीकियु नुदयिंचिरि। मित्रावरुणुलकु नूर्वशि सन्निधियंदु रेत उद्गमंबैन, नदियु गुंभंबुनं ब्रवेशिंप जेय, नंदु नगस्त्युंडुनु, वसिष्ठुंडुनु जनियिंचिरि। प्रत्येकंब मित्रुनकु रेवतियंदु नुत्सर्ग संभवुलैन यरिष्टयु, पिप्पलुंडु ननु वारलु जनियिंचिरि। शक्रुनकु पौलोमियंदु जयंत, ऋषभ, विदुषुलन मुग्गुरु पुट्टिरि। वामनुंडैन युरुक्रमदेवुनकु गीर्तियनु भार्यंदु बृहच्छ्लोकुंडु पुट्टें। आ बृहच्छ्लोकुनकु सौभगादुलु पुट्टिरि। मरियु महानुभावुंडैन कश्यपप्रजापतिकि नदितियंदु श्रीनारायणुंडवतरिंचिन प्रकारंबु वेनुक विवरिंचॆद। दिति सुतुलैन दैतेयुल वंशंबु सॆप्पॆद। आ दैतेय वंशमंदैननु प्रह्लादबलुलु परम भागवतुलै, दैत्य दानव वंदितुलै, वॆलसिरि। दिति कॊडुकुलु हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्षुलन बसिद्धि नॊंदिरि। अंदु हिरण्यकशिपुनकु जंभासुर तनययैन दत्तकु ब्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद, ह्लादुलनु नलुगुरु कॊडुकुलुनु, सिंहिकयनु कन्यकयुं जनिंचिरि। आ सिंहिककु राहुवु जनियिंचॆ। आ राहुवु शिरं बमृत पानंबु सेय हरि दन चक्रंबुनं द्रुंचॆ। संह्लादुनकु गतियनु भार्यंदु

---

किया। राका ने प्रातराख्य (प्रातः नामक पुत्र) को पाया। अनुमति ने पूर्णिमाख्य (पूर्णिमा नामक पुत्र) को प्राप्त किया। विधाता ने क्रिया नामक भार्या में अग्नि-पुरीश्य आदियों को उत्पन्न किया। वरुण के जर्पणी नामक भार्या में पूर्वकाल में ब्रह्मपुत्र, भृगु और वल्मीक से उत्पन्न वाल्मीकी उदित (उत्पन्न) हुए। मित्रावरुणों को उर्वशी के सन्निधि (समक्ष) में रेतस् के उद्गम होने पर उसको (उस रेतस् को) कुंभ में प्रवेश कराने पर उसमें से अगस्त्य और वशिष्ठ ने जन्म लिया। विशेष रूप से मित्र के रेवती में उत्सर्ग-संभव अरिष्ट, पिप्पल नामक जन पैदा हुए। शक्र के पौलोमी में जयंत, ऋषभ, विदुष नामक तीन [पुत्र] पैदा हुए। वामन् उरुक्रम देव को कीर्ती नामक भार्या में बृहत-श्लोक पैदा हुआ। उस बृहत-श्लोक के सौभग आदि पैदा हुए और महानुभाव कश्यप प्रजापति के अदिति में श्रीनारायण के अवतरित होने के प्रकार को बाद में बताऊँगा। दिति-सुत दैतेयों के वंश के बारे में बताऊँगा। उस दैतेय वंश में भी प्रह्लाद, बलि, परम भागवत होकर दैत्य, दानवों से वंदित होकर विलसित हुए। दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष नाम से प्रसिद्ध हुए। उनमें हिरण्यकशिपु के जम्भासुर-तनया दत्ता के प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद, ह्लाद नामक चार पुत्र और सिंहिका नामक कन्या पैदा हुई। उस सिंहिका के राहु उत्पन्न हुआ। उस राहु के अमृत-पान करने पर उसके सिर को हरि ने अपने चक्र से काट दिया। संह्लाद के गति नामक भार्या

पंचजनुंडुबुट्टॆं। ह्लादुनकु दमनियनु भार्ययंदु वातापील्वलुलु वुट्टिरि। वारल नगस्त्युंडु भक्षिचॆं। अनुह्लादुनकु नूर्मियनु भार्ययंदु बाष्कल, महिषुलु गलिागरि। प्रह्लादुनकु देवियनु भार्ययंदु विरोचनुंडु पुट्टॆं। अतनिकि बलि जन्मिचॆं। आ बलिकि नशनयनु भार्ययंदु बाणुंडु ज्येष्ठुंडुगा नूर्गुरु कॊडुकुलु वुट्टिरि। आ बलि प्रभावंबु वॆनुक विवरिंचॆद। बाणासुरुंडु परमेश्वरु नाराधिंचि, प्रमथगणंबुलकु मुख्युंडय्यॆ। मरियु ना दिति संतानंबुलगु मरुत्तु लेकोनपंचाशत्संख्यगल वारलंदरु ननपत्युलै यिद्रुतोगूडि, देवत्वंबु नॊंदिरि। अनिन विनि परीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुक योगींद्रुन किट्लनियॆ॥ 506॥

आ. एमि कारणमुन निंद्रुन की मरु-
च्चयमु लाप्तुलगुचु शांति नॊंदॆ ?
ररय दत्समानुलगुचु वर्तिचिरि ?
वीनि विनग वलयु दॆलुपवय्य !॥ 507॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ॥ 508॥

सी. नरनाथ ! विनु तन नंदनुलंदरु नमरेंद्रुचे हतुलगुचुनुंड
गोप शोकंबुल प्रुळ्ळुचु दनलोन मंडुचु दिति चाल मरुग दॊडगॆ
भ्रातृ हंतकु नति पातकु निंद्रुनि जंपक नाकेल सौपु गलुगु ?
वीनि भस्ममु सेयु वानिगा नॊक सुतु बडसॆद ननि चाल भर्त गोरि

---

में पंचजन पैदा हुआ। ह्लाद के दमनी नामक भार्या में वातापि-इल्वल पैदा हुए। उन्हें अगस्त्य खा गया। अनुह्लाद के ऊर्मि नामक भार्या में बाष्कल और महिष हुए। प्रह्लाद के देवी नामक भार्या में विरोचन पैदा हुआ। उसके बलि पैदा हुआ। उस बलि के अशना नामक भार्या में सौ पुत्र पैदा हुए जिनमें बाण ज्येष्ठ था। उस बलि के प्रभाव को बाद में समझाऊँगा। बाणासुर ने परमेश्वर की आराधना कर प्रमथ गणों का मुख्य (प्रधान) बना। और उस दिति की सन्तान मरुत् एकोनपंचाशत (उन्चास) की संख्या वाले सभी अनपत्य (निस्संतान) हुए, [उन्होंने] इंद्र से युक्त होकर देवत्व को प्राप्त किया। [ऐसा] कहने पर सुनकर परीक्षित नरेंद्र ने शुक योगीन्द्र से यों कहा— ५०६ [आ.] इन मरुत्समूहों का इंद्र के आप्त बनकर शान्ति प्राप्त करने का कारण क्या है ? सोचने पर उसके समान बन कैसे आचरण किया ? इसे सुनना है। बताओ न ! ५०७ [व.] [ऐसा] कहने पर शुक ने यों कहा— ५०८ [सी.] हे नरनाथ ! सुनो, अपने सभी नन्दनों के अमरेंद्र द्वारा निहत होते रहने पर, कोप और शोक से कुढ़ते हुए, अपने में जलती हुई दिति अधिक तप्त होने लगी। भ्रातृहंतक और अति पापी इंद्र का संहार किये बिना मुझे आनन्द कैसे

आ. प्रियमु सेय दॊडगॆ बॆक्कु भावंबुल
भाषणमुल नधिक पोषणमुल
भक्तियुक्ति चेत बरिच्चर्य गति चेत
सुतुलचेत नतुल रतुल चेत ॥ 509 ॥

चं. कलिकि कटाक्ष वीक्षण विकारमुलन् हृदयानुराग सं-
कलित विशेष वाङ्मधुर गर्जनलन् ललितानॆंदु मं-
डल परिशोभितामृत विडंबित सस्मित सुप्रसन्नता
फल रुचिर प्रदानमुल भामिनि भर्त मनंबु लोगॊनॆन् ॥ 510 ॥

ते. अखिल मॆरिंगिन कश्यपु नंतवानि
हितवु तलकॆक्कु रतुल संगतुलचेत
नवशु गाविंचॆ व्रेलिमिडि नब्जवदन
पतुल भ्रमियिंप नेरनि सतुलु गलरॆ ? ॥ 511 ॥

कं. ए तलपंकुगक निलिचिन, भूतंबुल जूचि धात पुरुषुल मनमुल्
प्रीति गॊलुपंग युवती,-व्रातंबु सृजिंचॆ बतुलु वारल करदे ? ॥ 512 ॥

व. इट्लु निजसतिचेत नुपलालितुंडैन कश्यप प्रजापति, या सतिकि बरम प्रीतुंडै यिट्लनियॆ। ओ तन्वी ! नीकु बसुन्नंडनैति। वरंबु गोरुमु।

---

प्राप्त होगा ? इसे (इंद्र को) भस्म करनेवाले के रूप में एक पुत्र को प्राप्त करूँगी, [आ.] ऐसा पति से अधिक चाहकर [पति को] अनेक भावों से, भाषणों (संवादों) से, अधिक पोषण से, भक्ति-युक्तियों से परिचर्या की गतियों से, नुतियों (स्तुतियों) से, अतुल रतियो से प्रसन्न करने लगी। ५०९ [चं.] सुन्दरी (दिति) ने कटाक्ष-वीक्षण-विकारों से हृदयानुराग से संकलित विशिष्ट वाक् मधुर गर्जनाओं (संवाद) से, ललित आनन रूपी इंदुमण्डल पर परिशोभित अमृत, विडम्बित सस्मित, सुप्रसन्नता रूपी रुचिर फल प्रदान से (अपने चंद्रमुख पर विलसित मंदस्मित के प्रभाव से), भामिनी ने भर्त्ता के मन को अपने वश में कर लिया। ५१० [ते.] समस्त को जाननेवाले कश्यप जैसे व्यक्ति को रतियों की संगतियों से अवश बना दिया। सोचने पर अब्ज वदन वाली ऐसी कौन सतियाँ [नहीं] हैं जो झट पति को भ्रम में न डाल सकती हों ? ५११ [कं.] किसी भी विचार से रहित होकर अव स्थित भूतों को देखकर धाता ने पुरुषों के मन को प्रीत करने के लिए युवती-व्रात (-समूह) की सृष्टि की। क्या पति उन [युवतियों] के लिए असाध्य होते हैं ? (कोई भी पुरुष आसानी से स्त्री के वश में हो जाता है।) ५१२ [व.] इस प्रकार निज सति द्वारा उपलालित होकर कश्यप प्रजापति उस सती के प्रति परम प्रीत होकर यों बोला। हे तन्वी ! मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न हुआ हूँ। वर माँगो, दूँगा। नाथ (पति)

इच्चेंद। नाथुंडु प्रसन्नुंडैन स्त्रीलकु गोरिक संभविंचुट केमि गोरंत? सतिकि बतियें दवंबु। सर्व भूतंबुल मानसंबुलकु वासुदेवुंडे भर्त। नाम रूप कल्पितुलैन सकल देवतामूर्तुलचेतं, बुरुषुलचेतनु भर्तृ रूप-धरुंडैन भगवंतुंडु सेविंपबडुचुंडु। विशेषिंचि स्त्रीलचेत बतिरूपंबुन भजियिंपंबडुचुंडु। कावुन बतिव्रतलैन सुन्दरुलु श्रेयस्कामल येक चित्तंबुन नात्मेश्वरुंडैन यप्परमेश्वरुनि भर्तृभावंबुन सेविंपुचुंडुदुरु। एनुनु नोकी भावंबुन वरदुंडनैति। दुश्शीललैन वनितलकुं बोंदरानि वरंबु नोकिच्चेंद। वेडुमु। अनिन कश्यपुनकु दिति यिट्लनियें ॥ 513 ॥

आ. वरमु गोर नाकु वरदुंडवेनियु
निंद्रु द्रुंचुनट्टि यिद्धबलुनि
नमित तेजु दनयु नमरत्व संप्राप्तु
नेंदु जेंडनि वानि निम्मु नाथ! ॥ 514 ॥

व. अनवुडु ॥ 515 ॥

कं. उट्टिपडुनट्टि वर मी-
कट्टिडि नन्नेट्टु वेडें? गटकट! यनुचुन्
मिट्टिपडि यतडु मदिलो
बुट्टिन तल्लडमुतोड बोंवकुचु नुंडेन् ॥ 516 ॥

---

के प्रसन्न होने पर स्त्रियों की इच्छा के पूर्ण होने मे क्या कमी है? सती के लिए पति ही देव है। सर्व भूतों के मानसों के लिए वासुदेव ही भर्त्ता (पति) है। नाम और रूपों से कल्पित समस्त देवता-मूर्तियों द्वारा और पुरुषों द्वारा भर्तृ रूपधारी भगवान सेवित होता रहता है। विशेष रूप से स्त्रियों द्वारा पति के रूप में पूजित होता रहता है। अतः पतिव्रता सुन्दरियाँ श्रेयस् की कामना करके एक चित्त से (एकाग्रता से) आत्मेश्वर उस परमेश्वर की भर्तृ भाव से सेवा करती रहती हैं। मैं भी तुम्हारे प्रति इसी भाव से वरद बना हूँ। तुम्हें ऐसा वर दूँगा जो दुश्शीलवाली वनिताओं को प्राप्त नहीं होता। निवेदन करो (माँगो)। [ऐसा] कहने पर कश्यप से दिति ने यों कहा— ५१३ [आ.] हे नाथ! वर माँगने के लिए यदि तुम मेरे प्रति वरद होगे तो इंद्र का संहार करनेवाला इद्ध (पूर्ण) वल वाले, अमित तेज, अमरत्व से संप्राप्त, कहीं नष्ट न होनेवाले तनय को दो। ५१४ [व.] ऐसा कहने पर, ५१५ [कं.] अहंकार से अकड़नेवाले वर को इस क्रूरा ने कैसे माँगा? हाय! हाय! कहते हुए विचलित होकर वह मन में उत्पन्न खीझ के कारण व्यथित होता रहा। ५१६ [चं.] प्रकृति के कारण मैं कर्मपाशों से बद्ध हुआ न!

कं. प्रकृतिनि गर्भपाशमुल वद्धुडनैति गवय्य ! नेडु नी
विकट सतीस्वरूपमुन वेदुरु गोल्पिन माय निंद्रिया-
धिक मतियैन वाडु दन पेंपुन जित्तमु वेंचपेट्टि पा-
तकमुल गूलकुन्ने ! ननु दैवमु नव्वदे ? लोलितात्मुनिन् ॥ 517 ॥

सी. खंड शर्करतोड गलहिंचु पलुकुलु पद्मविलास मेपरुचु मोमु
तुहिनांशु कळलतो बुलदूगु चेय्वलु चेमट ग्रोत्तेत्तरु सेयु मेनु
निलुवेल्ल गरगिंचु नेर्पुल यिपुलु पुव्वुल करवैन प्रोविसेत
तमकंबु पुट्टिंचु तरितीपु तलपुलु नेनसिन मदिलोनि यिच्चगित

आ. कलिगि कट्टवनुन्न कालाहि पोलिकि
जेलगुचुन्न सतुल चित्तवृत्ति
देलिय वशमे येंत धृति गल वारिकि
नाके कादु निखिल लोकमुलकु ॥ 518 ॥

आ. कोरि सतुल केल्ल गूर्चेद रेव्वरु
पतुलनैन सुतुल हितुलनैन
बलिमि जेसियैन बरहस्तमुननैन
हिंस सेतु रात्म हितमु कोरकु ॥ 519 ।

व. अनि चिंतिंचि, दीनिकि नेमनि प्रतिवाक्यंबिच्चुवाड ? मद्वचनंबेंडु

---

आज इस विकट सती के रूप में [मुझे] पागल बनानेवाली माया के कारण इंद्रियों पर अधिक मति (संयम) रखनेवाला [मुझ जैसा व्यक्ति] अपने आधिक्य के कारण चित्त के तप्त होने पर पातकों में नहीं फँसेगा ? मुझ चंचलात्मा को [देखकर] दैव नहीं हँसेगा ? ५१७ [सी.] खण्डशर्करा (मिश्री) के साथ झगड़नेवाली बोली (मिश्री से भी बढ़कर मधुर लगनेवाले वचन), पद्म-विलास (-विकास) को दिखानेवाला मुख, तुहिनांशु (चंद्र) की कलाओं से समता करनेवाली चेष्टाएँ, पसीना को नया रक्त बना देनेवाली देह, समस्त शरीर को पिघला देनेवाले चातुर्य की शोभा, फूलों के लिए भी विरल पुष्पराशि, औत्सुक्य को उत्पन्न करनेवाली मीठी भावनाएँ, [ते.] इन सबसे युक्त हो मन में इच्छा रखकर, डँसने के लिए उद्यत कालाहि (काल सर्प) के समान शोभायमान सतियों की चित्तवृत्ति अत्यधिक धृति (धैर्य) धारण करनेवाले मेरे लिए ही नहीं, निखिल लोकों के लिए भी समझ में आ सकनेवाली नहीं है। ५१८ [आ.] चाहकर जो [अपनी] सतियों के लिए समस्त [कार्य] सम्पन्न करते हैं, वे आत्महित के लिए पतियों (मालिकों) के प्रति, सुत और हित-जनों के प्रति बल से हो या दूसरे के द्वारा हो, हिंसा करते हैं। ५१९ [व.] ऐसा चिन्तन कर [कश्यप ने मन में सोचा] इसे क्या कहकर जवाब दूँ ? मेरा वचन तो

नमोघंबु। त्रिलोक परिपालन शीलुंडैन भिदुरपाणि वधार्हुंडे ? ऐननु दीनिकिनैनयदि यॊकटि कल्पिचॆद। अनि दिति जूचि, यो तनुमध्य ! नीकु नट्ल देवबांधवुंडैन यिंद्रहंतयगु पुत्रुंडु गलिगॆडु। ऒक्क संवत्सरं-बी व्रतंबु चरियिंपुमु। दीनि प्रकारंबु विनुमु। ऎल्ल जीवुल बलन हिंसा भावंबु लेक, यतिध्वनि वाक्यंबुलुडिगि, कोपंबु मानि, यनृतंबुलु वलुकक, नख रोमच्छेदनंबु सेयक, यस्थि कपालादुलैन यमंगळंबुल नंटक, नदी नद तटाकादुल नवगाहन स्नानंब कानि घटोदक कूपोदकंबुल स्नानंबु सेयक, दुर्जन संभाषणंबुलु वर्जिंचि, कट्टिन कोकयुनु, मुडिचिन पुव्वुलुनु, ग्रम्मर धरियिंपक, भोजनंबुलयंदु नुच्छिष्टान्नंबुनु, चंडिका-निवेदितान्नंबुनु, कीश शुनक मार्जार कंक क्रिमि पिपीलिकादि विदूषि-तान्नंबुनु, सामिषान्नंबुनु, वृषलाहृतान्नंबुनु, ननु नी पंचविध निषिद्धान्नंबुलु वर्जिंचि, दोयिट नीळ्ळुद्रावक, युच्छिष्ट गाक, संध्या-कालंबुल मुक्तकेशि गाक, मितभाषिणियै, यलंकारविहीन गाक, वॆलुपल दिरुगक, पादप्रक्षाळनंबु जेसिकॊनि कानि शयनिंपक, यार्द्रपादयै पव्वळिंपक, पश्चिम शिरस्सय्युनु, नग्नयय्युनु, संध्याकालंबुल निद्रिंपक,

---

सर्वत्र अमोघ (अप्रतिहत) है। त्रिलोक के परिपालन-शील से युक्त भिदुरपाणी (वज्रपाणी, इंद्र) क्या वध के योग्य है ? जो भी हो इसके लिए कुछ और [उपाय] की कल्पना करूँगा। ऐसा दिति को देखकर कहा— हे तनुमध्ये (पतली कमर वाली) ! तुम्हें इसी प्रकार देव-बांधव और इंद्र का हंता पुत्र प्राप्त होगा। एक संवत्सर भर इस व्रत का आचरण करो। इसके (व्रत के) प्रकार (विधान) को सुनो। समस्त जीवों के प्रति हिंसा भाव न रखकर अतिध्वनि-वाक्यों को छोड़कर (जोर-जोर से बोलना छोड़कर), कोप को छोड़कर, अनृत (झूठ) न बोलकर, नख और रोमों का छेदन न कर, अस्थि (हड्डी), कपाल आदि अमंगलकर [वस्तुओं का] स्पर्श न कर, नदी-नद, तटाक आदियों में अवगाहन (स्नान) के अतिरिक्त, घटोदक या कूपोदक से स्नान न कर, दुर्जनों के साथ संवादों को वर्जित कर, पहनी हुई साड़ी [जूड़े में] रखे फूलों को पुनः धारण न कर, भोजनों में उच्छिष्ट अन्न, चण्डिका देवी को निवेदित (भोग लगाये) अन्न को, कीश (बन्दर), शुनक, मार्जार, कंक, क्रिमि, पिपीलिकादियों से दूषित अन्न को, सामिष (मांस से युक्त) अन्न, को वृषल (नपुंसक) से लाये गये अन्न को —इन पंचविध निषिद्ध अन्नों का वर्जन कर, अंजलि से पानी न पीकर, उच्छिष्ट न बनकर संध्याकालों में मुक्तकेशी (बिखरे बालों वाली) न बनकर, मितभाषिणी होकर, अलंकार-विहीना न बनकर, बाहर न घूमकर, पादप्रक्षालन (पैर धोये) बिना न सोकर, आर्द्र पाद वाली (भीगे पैरों से) न सोकर, पश्चिम की ओर सिर रखकर और नग्न बनकर और

नित्यंबुनु धौतवस्त्रंबुल गट्टि, शुचियै, सर्वमंगळ संयुक्तयै, प्रातःकालंबुन दूर्पु मोगंबै, लक्ष्मीनारायणुल नाराधिंचि, यावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शन सुस्नानवास उपवीत भूषण पुष्प धूप दीपोपहाराद्युपचारंबुल नर्चिंचि, हविश्शेषंबुगा द्वादशाहुतुल वेल्चि, दंड प्रणामंबुलाचरिंचि, भगवन्मंत्रंबुनु दशवारंबुलनु संधिंचि, स्तोत्रंबु चेसि, गंध पुष्पाक्षतल मुत्तैदुवल बूजिंचि, पतिनि सेविंचि, पुत्त्रु गुक्षिगतुंगा भाविंचि, यिव्विधंबुन मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदारंभंबुगा नोक्क संवत्सरंबु सलिपि, याद्वादश मासांत्यदिवसंबुन विध्युक्तंबुगा नुद्यापनबु सेयवलयु। नी वीपुंसवनं बनियेडि व्रतंबु द्वादशमास पर्यंतंबेमरक सल्पिन नीवु गोरिन कुमारुंडु गलिगेडु। अनिन दिति या व्रतंबुतोडने गर्भंबु धरियिंचि, व्रतंबु सलुपुचुनुंड, निंद्रुडु मात्रभिप्रायं बॆरिगि, या यम्म नहरहंबुनु रहस्यंबुन सेविंपुचु, व्रतंबुनकुं दगिन पुष्प फल समित्कुश पत्त्रांकुरंबुलु मोदलैन वस्तु वितति द्रिकालंबुलं देच्चि यिच्चुचु, बुंडरीकंबु हरिणिकि गोचियुन्न भंगि, नायम्म व्रतभंगंबुनकै काचि, शुश्रूषचेयुचु, ना यम्म गर्भंबुन धरियिंचिन तेजोविशेषंबुनकु वेंगलिपुचु, गृशिपुचुनुंडॆ। अंत नोक्कनाडु ॥ 520 ॥

संध्याकाल में न सोकर, नित्य (प्रतिदिन) धौत (धुला हुआ) वस्त्र पहनकर, शुचिता से, सर्व मंगलों से संयुक्त होकर, प्रातःकाल में पूर्व की ओर मुख रखकर लक्ष्मी-नारायणों की आराधना कर [उनकी] आवाहन-अर्घ्य-पाद्य-उपस्पर्शन-सुस्नान-वास-उपवीत-भूषण-पुष्प-धूप-दीप-उपहार आदि उपचारों से अर्चना कर, हविश्शेष रूप से द्वादश आहुतियों का हवन कर, दण्ड प्रणाम कर भगवन्मंत्र का दशवार (दस सप्ताह) अनुसंधान (निरन्तर ध्यान) कर, स्तोत्र कर, गंध, पुष्प, अक्षतों से सुहागिनी स्त्रियों की पूजा कर, पति की सेवा कर, पुत्र को कुक्षिगत मानकर, इस प्रकार मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदा से लेकर एक वर्ष भर [व्रत का आचरण] करके उन बारह मासों के अंतिम दिन पर विधियुक्त रूप से उद्यापन करना चाहिए। तुम इस पुंसवन नामक व्रत को द्वादश मास पर्यंत (बारह मास तक) सावधानी से करोगी तो तुम्हारा अभिलषित पुत्र उत्पन्न होगा। [ऐसा] कहने पर दिति उस व्रत के साथ ही गर्भ धारण कर व्रत का आचरण करती रही। इंद्र भी माता के अभिप्राय (राय) को जानकर उस माता की अहरह (प्रतिदिन) गोप्य रूप से सेवा करते हुए, व्रत के लिए उचित पुष्प, फल समित् (समिधा), कुश, पत्रांकुर आदि वस्तु-वितति (-समूह) को त्रिकालों में ला देते हुए हरिणी की ताक में रहनेवाले पुण्डरीक (सिंह) के समान, उस माता के व्रतभंग के लिए प्रतीक्षा करते हुए, सुश्रूषा करते हुए, उस माता के गर्भ के तेजोविशेष के कारण भीत होते हुए कृशीभूत होता रहा। तब एक दिन ५२० [सी.] वामाक्षी (सुन्दर आँखों वाली, दिति) अनुदिन के

सो. वामाक्षि यनुदिन व्रतधारणोन्नतपरिचर्यविधुलचे बडलि यलसि
यीटि संध्यावेळ नुच्छिष्टयै पद प्रक्षाळनादुल बासि मऱचि
तन कर्म मोहंबु तविलि निद्रिपंग निंद्रुडु चय्यन नॅडरु गांचि
योगमाया बलोद्युक्तुडै या यिंति युदरंबु जॊरबडि युग्रुडगुचु

ते. दिविरि देदीप्यमानमै तेजरिल्लु
नर्भकुनि वज्र धारल नडिचॅ नेडु
दुनुकलुग वाडु वुनिसियु दुनुक दुनुक
जॅडक नॊक्कॊक्क बालुडै चॅलगुचुन्न ॥ 521 ॥

कं. वारेड्वुरगुचु गुयियड, नोरेड्वकुमनुचु द्रुंचॅ नॊक्कॊक्कनि ना
शूरुंडेडेलि दुनुक, गा रयमुन वारु संडक खंडितुलय्युन् ॥ 522 ॥

कं. खंडमु लन्नियु नंदरु
चंडांशु सम प्रकाश शाश्वतुलगुचुन्
मॅंडकोनि निलिचि चनि रा-
खंडलुनकु गरुण पुट्टु गति मदि दोपन् ॥ 523 ॥

व. अंदरु मुकुळितकर कमलुलै, नीकुं दोडबुट्टुवुलमु। मम्मु हिंसिपं बनि लेदु। नीकु बारिषदुलमै, मरुद्गणमुलमै निन्नु सेविचेदमु। मम्मु रक्षिपुमु। अनिन नारायण प्रसादंबुन जॅडनि मरुद्गणंबुल पलुकुलकु गृपाळुंडै, यिंद्रुंडु वारल सहोदरुलुगा गैकॊनि मदि हिंसिपक मानॅ।

---

व्रतधारण की उन्नत महान् परिचर्या की विधियों से श्लथ बनकर, थककर एक दिन संध्या की वेला में उच्छिष्टा होकर पदप्रक्षालन आदियों को छोड़, भूलकर अपने कर्ममोह से बद्ध होकर सोने पर इंद्र ने झट समय पाकर योगमाया के बल से उद्युक्त होकर उस नारी के उदर में घुसकर उग्र होकर, [ते.] क्रम से देदीप्यमान बन प्रकाशमान बने हुए अर्भक को सात टुकड़ों में वज्र की धाराओं से काट दिया। वह (भ्रूण) कटकर भी एक-एक टुकड़े का एक बालक होकर शोभित हुआ। ५२१ [कं.] सात होते हुए रोने पर रे! मत रो! कहते हुए उस शूर ने एक-एक को [दुबारा] सात-सात टुकड़ों में झट से काट दिया। खण्डित होकर (कटकर) भी वे नष्ट न होकर ५२२ [कं.] सभी टुकड़ों के बालक चण्डांश (सूर्य) के समान प्रकाशवाले और शाश्वत होते हुए, अतिशयता से स्थित रहे। और उस आखण्डल (इंद्र) ने मन में करुणा उत्पन्न हो [इस रूप में] यों कहा— ५२३ [व.] सभी ने मुकुलित कर कमल वाले होकर [यों कहा]— हम तुम्हारे सहोदर हैं। हमें हिंसित करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पारिषद् (सभा के सदस्य) बनकर, मरुत्-गण होकर तुम्हारी सेवा करेंगे। हमारी रक्षा करो। [ऐसा] कहने पर नारायण

अश्वत्थाम शराग्नि वलन नारायण रक्षितुंडवैन नीवुनुंबोलॆं, गुलिश-धारल शकलंबुलैन कुमारुलन्नि रूपंबुलै, संवत्सरंबुनकु नॊंचिकत कडमगा हरिं बूजिंचिन नुद्भविंचिन वारु गावुन, निद्रुतोडं गूड नेकोन-पंचाशद्दैवतलैन मरुद्गणंबुलु दिति गर्भंबु वॆलुवडिरि। अंत दिति मेल्कांचि, यनल प्रकाशुलं यिंद्रुतोडं गूडि वॆलुंगुचुन्न कुमारुलं जूचि संतोषिंचक, यिंद्रुं जूचि, नीकु मृत्यु रूपंबैन पुत्रुं गोरि, दुस्तरंबैन व्रतंबु सलिपिति। संकल्पिंचिन पुत्रुंडॊक्करुंडे सप्त सप्त संख्यलं गल कुमारु-लगुट केमि कतंबु? नी वॆऱिंगिन भंगि तथ्यंबु बलुकुमु। अनिन निद्रुंडिट्लनियॆं। ओ तल्लि! भवद्व्रतंबुन जितिंचि, समय विच्छेदनं-बुनं गर्भंबु जॊच्चि, पाप चित्तुंडनै वज्र धारल गर्भंबु विदळनंबु चेसिन, ना शकलंबुलु सॆडक, महाश्चर्यंबुगा निव्विधंबुनं गुमारकुलैरि। महापुरुष पूजा संसिद्धि कार्यानुषंगि गाकुंडुने? भगवदाराधनंबु गोरिकलं वापि यॆव्वरु गॊल्चितुरु, वारिहपरंबुल सर्वार्थ कुशलुलगुदुरु। अम्महापुरुष व्रत समुत्पन्न तेजंबु नडंप नॆव्वंडोपु? कावुन दुर्मदंबुन

---

के प्रसाद से नष्ट न होनेवाले मरुत्-गणों के वचनों से कृपालु बनकर, इंद्र ने उन्हें सहोदरों के रूप में स्वीकार कर और हिंसित करना छोड़ दिया। अश्वत्थामा की शराग्नि से नारायण द्वारा रक्षित बने हुए तुम्हारे समान (परीक्षित के समान), कुलिशधाराओं से शकल (टुकड़े) बने कुमार उतने रूपों से (उन्चास रूपों में) संवत्सर की अवधि से थोड़ा कम हरि की पूजा करने पर, उद्भूत होनेवाले होने के कारण इंद्र के साथ एकोन-पंचाशत (४९) बने मरुत्-गण दिति के गर्भ से बाहर निकले। तब दिति जाग्रत् होकर अनल प्रकाश वाले (अनल के समान प्रकाशमान) बनकर इंद्र के साथ शोभित होनेवाले कुमारों को देखकर प्रसन्न न बनकर, इंद्र को देखकर [कहा]— तुम्हारे लिए मृत्यु रूपी पुत्र की इच्छा कर दुस्तर व्रत का आचरण किया। संकल्पित एक पुत्र के सप्त-सप्त (४९) संख्याओं के कुमारों के रूप में परिवर्तित होने का क्या कारण है? तुम जिस तरह जानते हो वह बात सच्चे ढंग से बताओ। [ऐसा] कहने पर इंद्र ने यों कहा— हे माता! तुम्हारे व्रत का चिन्तन कर, समय (प्रतिज्ञा) के विच्छेदन (भंग) के कारण गर्भ में घुसकर, पाप चित्त वाला बनकर, वज्रधाराओं से गर्भ का विदलन किया तो वे शकल नष्ट न होकर महा-आश्चर्यप्रद रूप से इस प्रकार कुमारक बने। महापुरुषों की पूजा की संसिद्धि से कार्य की सफलता क्यों न होगी? जो इच्छाओं को मिटाकर भगवान की आराधना करते हैं, वे इह-पर[लोकों] में सब प्रकार से कुशलता (कल्याण) प्राप्त करते हैं। उस महापुरुष के व्रत से समुत्पन्न तेज का दमन करने में कौन समर्थ हो सकता है? अतः दुर्मद से पाप स्वभाव से

बालिश स्वभावुंडनै दोषंबु चेसिन ना दौर्जन्य कर्मंबु सहिप दल्लिकन्न नेंव्वरु समर्थुलु ? पापात्मुंडनगु नन्नुं गावुमु। नेनु वीरल तोडिवाड। अनि निष्कपटंबुगा ब्रार्थिचिन, नद्देवि यट्ल काकयनि, शांतचित्तयय्ये। इंद्रुंडुनु वारलंगूडि त्रिदिवंबुनकुं बोयि, सोमपान, हविर्भागंबुलु वारलकुं बंचिपेट्टि, कूडि, सुखंबुंडे। अनि चॅप्पि, परीक्षिन्नरेंद्रुनकु शुक योगींद्रुंडु वेंडियु निट्लनियें ॥ 524 ॥

कं. हरि वरदुंडन व्रतमट
हरि वंशजुलगुचु नेंगडु नमरुल जन्म
स्फुरणंवट, पठियिचिन
नरयग नुरु दीर्घ कर्महरमगुटरुदे ? ॥ 525 ॥

व. अनि विष्णु कथा श्रवण कुतूहलायमान मानसुलैन शौनकादि महामुनुलकु सूतुंडु सॅप्पे। अनि शुकयोगींद्रुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुनकु जॅप्पॅ। अनुटयु ॥526॥

कं. राजीव राज पूजा, श्रीजित गोपी कटाक्ष सेवांतर वि-
भ्राजितमूर्ति ! मदोद्धत राजकुलोत्साद ! राम राजाख्यनिधी ! ॥527॥

त. मुरविदारण ! मुख्य कारण ! मूलतत्त्वविचारणा !
दुरिततारण ! दुःखवारण ! दुर्मदासुर मारणा !

---

दोष करनेवाले मेरे दुर्जन कर्म को माता के अतिरिक्त सहन करने में कौन समर्थ है ? मुझ पापात्मा की रक्षा करो। मैं इनका साथी (सहोदर) हूँ। ऐसा निष्कपट रूप से प्रार्थना करने पर वह देवी तथास्तु कहकर शान्त चित्त वाली हुई। इंद्र ने उनके साथ त्रिदिव को जाकर सोमपान और हविर्भाग उनमें बाँट देकर उनके साथ सुख से रहा। ऐसा कहकर, परीक्षिन्नरेंद्र से शुकयोगीन्द्र ने और यों कहा। ५२४ [कं.] यह हरि के वरद बनने का व्रत है, हरि के वंशज होकर शोभायमान अमरों के जन्म का स्फुरण-कारक है। इसका पाठ करने पर सोचने पर उरु (महान्) दीर्घ कर्महर (पापों के दूर हो जाने में) कौन सी विरलता है ? (इस कथा का पाठ करने से महान् पाप सहज ही दूर हो जायेंगे) ५२५ [व.] [ऐसा] कह विष्णु कथा के श्रवण में कुतूहल बने मनवाले शौनक आदि महामुनियों से सूत ने [यों] कहा— ऐसा शुकयोगीन्द्र ने परीक्षिन्नरेंद्र से कहा। ऐसा कहने पर ५२६ [कं.] राजीवराज (श्रेष्ठ कमलों की पूजा से श्री (लक्ष्मी) को जीतनेवाली गोपियों के कटाक्षों की सेवा से विभ्राजित मूर्ति वाले ! मद से उद्धत राजकुल का उत्साद (संहार) करनेवाले ! राम राज (राजा राम) नाम वाले हे निधि ! [तुम्हें] नमस्कार है। ५२७ [त.] हे मुर-विदारण ! हे मुख्य कारण (समस्त सृष्टि के लिए मूल कारण) ! हे मूलतत्त्वविचारण ! हे दुरित-तारण (पापों से तारनेवाले) ! हे दुःख-

गिरिविहारण ! कीर्तिपूरण ! कीर्तनीय महारणा !
धरणिधारण ! धर्मतारण ! तापसस्तुतिपारणा ! ॥ 528 ॥

तो. करुणाकर ! श्रीकर ! कंबुकरा !
शरणागत संगत जाड्यहरा !
परिरक्षित शिक्षित भक्तमुरा !
करिराज शुभप्रद ! कांतिधरा ! ॥ 529 ॥

गद्य. इदि श्री सकल सुकवि जनमित्र श्रीवत्सगोत्र पवित्र कसुवयामात्य पुत्र बुधजन प्रसंगानुषंग सिंगयनामधेय प्रणीतंबैन श्रीमहाभागवत पुराणंबु नंदु नजामिळोपाख्यानंबुनु, प्रचेतसुल जंद्रुंडामंत्रणंबु सेयुटयु, दक्षोत्पत्तियु, प्रजा सर्गंबुनु, दक्षुंडु श्रीहरिगूर्चि तपंबु सेयुटयु, नतनिकि नप्परमेश्वरुंडु प्रत्यक्षंबगुटयु, हर्यश्व शबलाश्वुल जन्मंबुनु, वारलकु नारदुंडु बोधिंचुटयु, नारद वचन प्रकारंबुनु वारु मोक्षंबु नोंदुटयु, दद्वृत्तांतंबु नारदु वलन विनि, दक्षुंडु दुःखाक्रांतुडगुटयु, दवनंतरंब ब्रह्म वरंबुन दक्षुंडु शबळाश्व-संज्ञुल सहस्र संख्याकु नगु पुत्रुलं गांचुटयु, सृष्टि निर्माणेच्छा निमित्तंबुन दक्षु पंपुन वार लग्र जन्मुलु सिद्धि वोंदिन तीर्थराजंबयिन नारायण

---

वारण (दुःख का निवारण करनेवाले) ! दुर्मद असुरों का मारण करनेवाले ! गिरि पर विहार करनेवाले ! हे कीर्ति से पूर्ण ! हे कीर्तनीय-महा रण वाले ! धरणी को धारण करनेवाले ! हे धर्मतारण ! हे तापस-स्तुति पारण वाले ! [तुम्हें नमस्कार है] ५२८ [तो.] हे करुणाकर ! हे श्रीकर ! हे कम्बुकर (हाथ में शख धारण करनेवाले) ! हे शरणागतों के जाड्य को हरनेवाले ! भक्त मुर (एक असुर) को शिक्षित कर परिरक्षित करनेवाले ! करि-राज को शुभ प्रदान करनेवाले ! हे कान्ति को धारण करनेवाले ! [तुम्हे नमस्कार है] ५२९ [ग.] यह श्री सकल सुकवि जन मित्र और श्रीवत्स गोत्र को पवित्र करनेवाले कसुवय-अमात्य के पुत्र, बुधजन प्रसंग (संगति) मे अनुरक्त सिंगय नामधेय वाले के प्रणीत श्री महाभागवत-पुराण में अजामिलोपाख्यान, प्रचेतसों का चंद्र को आमंत्रित करना, दक्षोत्पत्ति, प्रजासर्ग, दक्ष का श्रीहरि के प्रति तप करना, उसे उस परमेश्वर का प्रत्यक्ष होना (दर्शन देना), हर्यश्व-शबलाश्व का जन्म, उन्हें नारद का प्रबोधित करना, नारद के वचनों का विधान, उनका मोक्ष को प्राप्त करना, उस वृत्तान्त को नारद के द्वारा सुनकर दक्ष का दुःखाक्रान्त होना, उसके बाद ब्रह्मा के वर से दक्ष का शबलाश्व संज्ञा (नाम) वाले सहस्र संख्या वाले पुत्रों को प्राप्त करना, सृष्टि के निर्माण की इच्छा के कारण दक्ष की आज्ञा से उन लोगों का अपने अग्रजों ने जहां मुक्ति पायी उस तीर्थराज नारायण सरोवर को जाना, उन्हें भगवान नारद का ब्रह्मज्ञान

सरस्सुनकुं जनुटयु, वारिकि नारद भगवंतुंडु ब्रह्मज्ञानंबु नुपदेशिंचुटयु, वारु पूर्वजु लेगिन प्रकारंबुन मोक्षंबु नोंदुटयु, दद्वृत्तांतंबुनु दक्षुंडु दिव्यज्ञानंबुन नेरिगि, नारदोपदिष्टंबनि तेलिसि, नारदुनि शपिंचुटयु, नारदुंडु दक्षु शापंबु प्रतिग्रहिंचुटयु, दक्षुनकु मरल ब्रह्मवरंबुन सृष्टि-विस्तारंबु कोरकु कूतु लरुवदि मंदि जन्मिचुटयु, नंदु गश्यपुनकु निच्चिन पदुमुव्बुर वलन सकल लोकंबुलु निंडुटयु, देवासुर, नर, तिर्यङ्मृग, खगादि जन्मंबुलुनु, देवेंद्र तिरस्कारंबुन बृहस्पति यध्यात्म·माय चेतं गान-राकुंडुटयु, दद्वृत्तांतंबु राक्षसुलु विनि शुक्रोपदिष्टुलै वच्चुटयुनु, देवासुर युद्धंबुनु, नाचार्य तिरस्कारंबुन दिविजराज पलायनंबुनु, बलायमानुलै देवतलु ब्रह्म सन्निधिकि जनुटयु, ब्रह्म वाक्यंबुल त्वष्टु कुमारुंडैन विश्वरूपु नाचार्युनिगा देवतलु वरिंचुटयु, विश्वरूपु प्रसादंबुन निंद्रुंडु नारायण वर्मंबनु कवचंबु धरियिंचि राक्षसुल जयिंचुटयु, परोक्षंबुन राक्षसुलकु ननुकूलुंडैन विश्वरूपु निंद्रुंडु वधिंचुटयु, विश्वरूपु वधानंतरंबुन निंद्रुनकु ब्रह्महत्य संप्राप्तंबैन निंद्रुंडु स्त्री, भू, जल, द्रुमंबुल यंदु पंचिपेट्टुटयु, विश्वरूपुंडु हतुंडगुटकु त्वष्ट कोपिंचि यिंद्र वधार्थंबु मारण होमंबु सेय वृत्रासुरुंडु जनिंचुटयु, वृत्रासुर युद्धंबुन पराजितुलै यिंद्र सहितुलैन देवतलु

---

का उपदेश देना, उनका पूर्वजों के मार्ग के प्रकार मोक्ष को प्राप्त करना, उस वृत्तान्त को दक्ष का दिव्य ज्ञान से जानकर उसे नारदोपदिष्ट (नारद से उपदेशित) जानकर नारद को शाप देना, नारद का दक्ष के शाप को प्रतिग्रहीत करना, दक्ष का पुनः ब्रह्मा के वर से सृष्टि के विस्तार के लिए साठ पुत्रियों का जनमना, उनमें कश्यप को दिये तेरह [कन्याओं] द्वारा समस्त लोकों का भर जाना, देव-असुर-नर-तिर्यक्-मृग-खग आदि के जन्म, देवेन्द्र के तिरस्कार से बृहस्पति का अध्यात्म-माया के कारण दिखायी न पड़ना, उस वृत्तान्त को राक्षसों का सुनकर शुक्र से उपदिष्ट होकर आना, देवासुर-युद्ध, आचार्य का तिरस्कार करने के कारण दिविजराज (इंद्र) का पलायन, बल खोकर देवताओं का ब्रह्मा के समक्ष जाना, ब्रह्मा के वाक्य से त्वष्टा के कुमार विश्वरूप को आचार्य के रूप में देवताओं का वरण करना, विश्वरूप के प्रसाद से इंद्र का नारायण वर्म नामक कवच को धारण करके राक्षसों को जीतना, परोक्ष रूप से राक्षसों के लिए अनुकूल विश्व-रूप को इन्द्र का वध करना, विश्वरूप के वध के बाद इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप संप्राप्त होना, इन्द्र का [उस पाप को] स्त्री, भू, जल, द्रुमों में बाँट देना, विश्वरूप के हत हो जाने पर त्वष्टा का क्रुद्ध होकर इन्द्र के वध के लिए मारण-होम करने पर वृत्रासुर का जन्म लेना, वृत्रासुर से युद्ध में पराजित होकर इन्द्र-सहित देवताओं का श्वेत द्वीप को जाना, वहाँ श्रीहरि का

श्वेतद्वीपंबुनकुं जनुटयु, नंदु श्रीहरि प्रसन्नुंडै दधीचि वलन भिदुरंबु गैकोनुटयु, निंद्रुंडु वज्रायुधंबुन वृत्रुनि संहरिचुटयु, निंद्रुंडु ब्रह्महत्या पीडितुंडै मानस सरस्सु ब्रवेशिंचुटयु, नहुषुंडु शताश्वमेधंबुलं जेसि, यिंद्राधिपत्यंबु वडयुटयु, नहुषुंडगस्त्य शापंबुन सुर राज्य च्युतुंडै, यजगर योनि बुट्टुटयु, निंद्रागमनंबुनु, नश्वमेधंबुनु, निंद्रुंडु त्रिलोकाधिपत्यंबु वडयुटयुनु, जित्रकेतूपाख्यानंबुनु, मरुद्गणंबुल जन्म प्रकारंबुनु ननु कथलं गल षष्ठ स्कंधमु संपूर्णम ॥ 530 ॥

प्रसन्न होकर दधीचि से भिदुर को लेना, इन्द्र का वज्रायुध से वृत्र का संहार करना, इन्द्र का ब्रह्महत्या से पीड़ित होकर मानस-सरोवर में प्रवेश करना, नहुष का शताश्वमेध कर इन्द्राधिपत्य को प्राप्त करना, नहुष का अगस्त्य के शाप से सुरराज्य [पद से] च्युत होकर अजगर योनि में जन्म लेना, इन्द्र का [स्वर्ग में] आगमन, अश्वमेध कर इन्द्र का त्रिलोकाधिपत्य को प्राप्त करना, चित्रकेतु का उपाख्यान, मरुत्-गणों का जन्म-प्रकार —नामक कथाओं से युक्त षष्ठ स्कंध संपूर्ण [हुआ] । ५३०

ॐ

# अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

# आन्ध्र महाभागवतमु

## ( सप्तम स्कन्धमु )

कं. श्रीमद्विख्यातिलता, क्रामितरोदोंतराळ ! कमनीय महा
जीमूततुलितदेह !, श्यामलरुचिजाल ! रामचंद्रनृपाला ! ॥ 1 ॥

### अध्यायमु—१

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनिश्रेष्ठुलकु निखिलपुराणव्याख्यान वैखरी-समेतुंडैन सूतुंडिट्लनियें नट्लु प्रायोपविष्टुंडैन परीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुकयोगींद्रु नवलोकिंचि ॥ 2 ॥

सी. सर्वभूतमुलकु समुडु नेंच्चेलि प्रियुंडैन वैकुंठुं डनंतु डाद्युं
डिंद्रुनि कोंरकु दैत्येंद्रुल नेटिकि विषमुनि कैवडि चंपें ?

---

( सप्तम स्कन्ध )

[कं.] हे रामचन्द्र प्रभु ! तुम्हारी कीर्ति नामक लता से रोदसी और अंतराल (सब जगह) आक्रमित है। तुम कमनीय महा मेघों के समान काली देह के श्यामल रुचि-जाल से प्रकाशित हो। [तुमको मेरा प्रणाम।] १

### अध्याय—१

[व.] महनीय गुणगरिष्ठ उन मुनिश्रेष्ठों से सकल पुराणों की व्याख्या करने में निपुण सूत ने कहा। इस प्रकार प्रायोपवेश करनेवाले परीक्षित-नरेन्द्र ने शुकयोगींद्र को देखकर [यों कहा।] २
[सी.] हे मुनिनाथ ! सर्व भूतों के लिए सम, मित्र, प्रिय रहनेवाला

नसुरुल जंपंग नमुरुलचे दन कय्यॆडि लाभ मॆंतॆन गलदॆ ?
निर्वाणनाथुंडु निर्गुणुंडगु तन कसुरुल वलनि भयंबु वगयु

आ. गलुगनेर दट्टि घनुडु दैत्युल जंपि
सुरल गाचुचुनिकि चोद्यमनुचु
संशयंबु नाकु जनियिचॆं मुनिनाथ !
प्रज्ञ मॆरसि तॆलिय बलुकवय्य ! ॥ 3 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 4 ॥

शा. नी संप्रश्नमु वर्णनीयमु गदा ! निक्कंबु राजेंद्र ! ल-
क्ष्मी संभाव्युनि सच्चरित्रमु महाचित्रंबु चिंतिप व-
द्दासाख्यानमु लॊप्पु विष्णुचरण ध्यानप्रधानंबुलै
श्री संधानमुलै मुनीश्वर वचोजेगीयमानंबुलै ॥ 5 ॥

कं. चित्रंबुलु त्रैलोक्य प,-वित्रंबुलु भवलतालवित्रंबुलु स-
न्मित्रंबुलु मुनिजनवन, चैत्रंबुलु विष्णुदेवु चारित्रंबुल् ॥ 6 ॥

व. नरेन्द्रा ! कृष्णद्वैपायनुनकु नमस्करिंचि, हरिकथनंबुलु सॆप्पॆद । विनुमु । व्यक्तुंडु गाक गुणंबुलु लोकप्रकृति जॆंदक भवंबुलु वॊंदक परमेश्वरुंडु दन मायवलन नयिन गुणंबुल नावेशिंचि बाध्यबाधकत्वंबुल नॊंदु । नतंडु

---

वैकुंठवासी, अनंत, आढ्य [भगवान विष्णु] ने विषम के जैसे इन्द्र के लिए दैत्येंद्रों को झट खोजकर क्यों मारा ? उनको मारने से फ़ायदा क्या है ? निर्वाणनाथ और निर्गुण विष्णुदेव को तो असुर लोगो से डर या शत्रुत्व तो नहीं है । [आ.] इसलिए देवताओं की रक्षा करने के लिए दैत्यों को मारना विचित्र-सा लगता है । मेरी शंकाओं को दूर करके, तुम्हारी प्रज्ञा से सब विषयों को मुझे सुनाओ ! ३ [व.] कहा तो शुक ऐसा बोला । ४ [शा.] हे राजेन्द्र ! तुम्हारा सप्रश्न वर्णनीय (प्रशंसनीय) है । श्रीमहाविष्णु का सच्चरित्र सोचने पर महाविचित्र है । उसके दास लोगों की कथाएँ तो विष्णुचरण-ध्यान-प्रधान, श्री-संधान (लक्ष्मी को प्रदान करनेवाली) और मुनीश्वरों से प्रशसा पानेवाली होकर शोभित होती हैं । ५ [कं.] श्री विष्णुदेव की कहानियाँ चित्र हैं । त्रैलोक्य-पवित्र (तीनों लोकों को पवित्र बनानेवाली) है । भवलता-लवित्र (संसार रूपी लता के लिए दराती) हैं । [वे हमारे लिए] सच्चे मित्र हैं । मुनिजन नामक उद्यानवनों के लिए चैत्र (वसंत) हैं । ६ [व.] राजेन्द्र ! कृष्णद्वैपायन को प्रणाम करके हरि की कथाएँ कहूँगा, सुनो । व्यक्त न होकर (दिखाई न देकर), गुणरहित रहकर, प्रकृति से सक्त (प्रभावित) न होकर, भव में लिप्त न होकर, परमेश्वर अपनी माया से जन्मित गुणों पर आविष्ट होकर, बाध्य और वाधकत्व (इन दोनों को) प्राप्त करता

गुणरहितुंडु सत्त्वरजस्तमंबुलु प्रकृतिगुणंबुलु। आ गुणंबुलकु नोक्कोक्क कालंबुन हानिवृद्धुलु गलवु। आ ईश्वरुंडु सत्त्वंबुन देव ऋषुलकु रजोगुणंबुन नसुरुलनु दमोगुणंबुगु यक्षरक्षोगणंबुलनु विभजिंचें। सूर्युंडु पेक्कॅडलं गानंबडियु नोक्करुंडयिन तेरंगुन दह्निभुंडुनु सर्वगतुंडय्युनु भिन्नुंडु गाडु। तत्त्वविदुलयिन पेद्दलु दमलोनं बरमात्मस्वरूपंबुन नुन्न ईश्वरु निव्विधंबुन नेरुंगुदुरु। जीवात्मकु बरुंडेन सर्वमयुंडु दन माय चेत विश्वंबुन् सृजियिपं गोरि रजंबुनु, क्रीडिपं गोरि सत्त्वंबुनु निद्रिपंगोरि तमंबु नुत्पादिंचि चरमैन कालंबुनु सृजियिंचु। आ कालंबुन सर्वदर्शनुंडयिन ईश्वरुंडु कालाह्वयुडै सत्त्वगुणंबयिन देवानीकंबुनकु वृद्धियु रजस्तमोगुणुलयिन राक्षसुलकु हानियु जेयुचुंडु ॥ 7 ॥

कं. जननायक ! यीयर्थमु
घनयशुडगु धर्मजुनकु प्रतुकालमुनन्
मुनु नारदुंडु सेप्पेनु
विनिपिंचेंडु विनुमु चेवुलु विमलत नोंदन् ॥ 8 ॥

व. मुन्नु धर्मराजु सेयु राजसूययागंबुन वालुंडैन शिशुपालुंडु हरिनि निंदिंच निशितनिर्वक्रचक्रधारा दळित मस्तकुंडयि तेजोरूपंबुन वच्चि हरिदेहंबु

---

है। वह तो गुणरहित है। सत्त्व, रजस् और तम —ये तीन प्रकृति के गुण हैं। इनकी एक-एक काल में वृद्धि और हानि होगी। ईश्वर ने सत्त्वगुण से देव और ऋषियों का, रजोगुण से असुरों का और तमोगुण से यक्ष और रक्षगणों का विभाजन किया है। एक ही रहकर कई स्थानों पर दीख पड़नेवाले सूर्य के समान परमेश्वर सर्वगत होकर भी, भिन्न नहीं रहता है। तत्त्ववेदी ज्ञानी अपने में परमात्मा के स्वरूप में रहनेवाले ईश्वर को इसी प्रकार जानते है। जीवात्मा के लिए पर (अन्य, भिन्न) वह सर्वमय ईश्वर अपनी माया से विश्व की सृष्टि करना चाहकर रजोगुण का, क्रीडा करना चाहकर सत्त्व का, निद्रा चाहकर तमोगुण का उत्पादन करके, चर (गतिशील) काल का सृजन करेगा। उस समय सर्वदर्शनवाला ईश्वर 'काल' नामवाला वनकर, सत्त्वगुणवाले देवताओं की वृद्धि और रजस्तमोगुण वाले राक्षसों की हानि करता रहता है। ७ [कं.] हे जननायक (राजन) ! इन सब अर्थों (विषयों) को घन-यश वाले धर्मज को क्रतु के समय में, पूर्व में नारद ने सुनाया। तुम्हारे कान विमल (पवित्र) बन जावें, (ऐसा) सुनाता हूँ। सुनो। ८ [व.] पूर्व में धर्मराज के राजसूय याग करते समय, वालक शिशुपाल हरि की निन्दा करके, निशित (तेज) तथा निर्वक्र चक्रधारा से दलित (खंडित) मस्तक वाला होकर, तेजो-रूप में हरि की देह में जाकर मिला। इसको देखकर चकित होकर

सॊच्चुटं जूचि वॆंड्रगुपडि धर्मजुंडु सभलोनुन्न नारदु वीक्षिंचि इट्लनियॆ ॥ 9 ॥

आ. मॆंट्टिवारिकैन नेकांतुलकुनैन
वच्चि चॊरगरानि वासुदेवु
तत्वमंदु जॆंदि धरणीशु डहितुडै
यॆट्लु सॊच्चॆ? मुनिवरेण्य! नेडु ॥ 10 ॥ ॥

उ. वॆन्नुडु माधवुं दॆगडि विप्रुलु दिट्टिन भग्नुडै तमो
लीनुडु गाडॆ? तॊल्लि मदलिप्तुडु चैद्युडु पिन्ननाटनुं
डेनियु माधवुन् विन सहिंपडु भक्ति वहिंप डट्टिवा-
डे निविड प्रभावमुन नी परमेश्वरुनंदु जॊच्चॆनो? ॥ 11 ॥

म. हरि साधिंतु हरिन् ग्रसिंतु हरि ब्राणांतंबु नॊंदिंतु दा
हरिकिन् वैरि नटंचु वीडु पटुरोषायत्तुडै यॆप्पुडुन्
दिरुगुं ब्रुव्वदु नोरु व्रीलि पड दादेहंबु दाहंबुतो
नरकप्राप्तियु नॊंददेक्रिय जगन्नाथुं ब्रवेशिंचॆनो? ॥ 12 ॥

व. अदियुनुंगाक दंतवक्त्रुंडुनु, वीडुनु निरंतरंबु गोविंदु निंद सेयुदुरु। निखिलजनुलु संदर्शिंप नेडु वीनिकि विष्णुसायुज्यंबु गलुगुट कॆमि

---

धर्मज ने वहाँ सभा में उपस्थित नारद को देखकर, यों कहा। ९ [आ.] हे मुनिवरेण्य! चाहे जैसे भी हो, एकांत लोगों (मुनियों) को भी, वासुदेव के तत्व को पाना बहुत कठिन है। लेकिन आज यह चेदिधरणीश (चेदि नामक देश का राजा = शिशुपाल) अहित (शत्रु) रहकर भी, किस प्रकार ऐसे तत्त्व में जा मिला? १० [उ.] वॆन्न (कृष्ण) [और] माधव की निन्दा करके, ब्राह्मणों के धिक्कारने से तमोगुण में लीन नहीं हुआ? पूर्व मे चैद्य मद-लिप्त होकर शैशव से ही माधव का नाम तक सुनना नही सह सकता। भक्ति भी नहीं की। फिर भी कौन सा निविड (गुप्त) प्रभाव है, जिस के कारण उसने परमेश्वर को प्राप्त किया? ११ [म.] शिशुपाल तो सदा रोष से ऐसा कहता फिरता था कि मैं हरि को जीत लूँगा; हरि को निगल जाऊँगा; हरि को मार डालूँगा और मैं हरि का बद्ध-शत्रु हूँ। ऐसा कहने पर भी उसके मुँह के खण्ड (टुकड़े) नही हुए। उसका शरीर टूटकर गिरा नहीं। तृष्णा से रहने से नरक में भी वह नहीं पड़ा। इन सब के (दुर्गुणों के) होते हुए भी किस प्रकार वह जगन्नाथ में प्रवेश कर पाया? १२ [व.] यही नहीं। दंतवक्त्र और शिशुपाल दोनों निरन्तर गोविंद की निन्दा करते रहते हैं। [भूलोक के] समस्त लोगों के देखते, आज इसको विष्णु-सायुज्य मिलने का क्या कारण है? सुनाओ।

हेतुवु ? विनिर्पिपुमु। पवनचलितदीपशिखयुनुंबोलें ना हृदयंबु च्चलिपुचुन्नदि। अनिन धर्मनंदनुनकु नारदुंडिट्लनियें। दूषण भूषण तिरस्कारंबुलु शरीरंबुनकु गानि परमात्मकु लेवु। शरीराभिमानंबुनं जेसि दंडवाक्पारुष्यंबुलु हिंसलै तोचु तेंरंगुन, नेनु नायदि यनियेंडु वैषम्यंबुनु भूतंबुलकु शरीरंबुनंद संभविंचु। अभिमानंबु बंधंबु। निराभिमानुंडै वधिंचि ननु वधंबु गादु। कर्तृत्वमोल्लनिवानिकि हिंसयु सिद्धिपदु। सर्वभूतात्मकुंडैन ईश्वरुनिकि वैषम्यंबु लेदु। कावुन ॥ 13 ॥

आ. अलुकनैन जेंलिमिनैन गामंबुन-
नैन बांधवमुननैन भीति-
नैन दगिलि तलप नखिलात्मुडगु हरि
जेरवच्चु वेरु सेय डतडु ॥ 14 ॥

कं. वैरानुबंधनंबुन, जेरिनचंदमुन विष्णु जिरतर भक्ति
जेरग रादनि तोचुनु, नारायण भक्ति युक्ति ना चित्तमुनन् ॥ 15 ॥

कं. कीटकमु देंच्चि भ्रमरमु, पाटवमुन वंभ्रमिप भ्रांतंबै त-
त्कीटकमु भ्रमररूपमु, बाटिंचि वहिंचु गादे ! भययोगमुनन् ॥ 16 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 17 ॥

---

पवन-चालित (हवा के कारण हिलनेवाली), दीप-शिखा की तरह मेरा मन संचलित हो रहा है। ऐसा कहनेवाले धर्मनंदन से नारद ने यों कहा। दूषण-भूषण और तिरस्कार-सत्कार —ये सब सिर्फ़ मनुष्य के लिए हैं, परमात्मा के लिए नहीं। शरीर के प्रति अभिमान (मोह) होने के कारण दंड और वाक्पारुष्य हिंसा जैसे दीख पड़ेंगे। उसी तरह 'मैं', 'यह मेरा है' —ऐसा वैषम्यभाव सब भूतों के शरीर में ही (शरीर के कारण ही) पैदा होंगे। अभिमान के अभाव में हत्या करने पर भी वह हत्या नहीं है। जो कर्तृत्व नहीं चाहेगा, उसको हिंसा की सिद्धि नहीं होगी। सर्वभूतात्मक ईश्वर के लिए मानव के जैसे वैषम्य-भाव नहीं हैं। १३ [आ.] इसलिए प्राणी चाहे गुस्से से हो, मैत्री से हो, रिश्ते-नाते से भी हो, लगकर हरि का स्मरण करेगा, तो अखिलात्मा (विष्णु) को प्राप्त कर सकेगा। उसको वह (परमात्मा) [अपने से] अलग नहीं रखेगा। १४ [कं.] 'नारायण की भक्ति-युक्ति के कारण मुझे [ऐसा] लगता है कि वैर के अनुबंधन से हरि को प्राप्त करने के समान चिरतर भक्ति से प्राप्त नहीं कर सकते। १५ [कं.] कीटक (कीड़े) को लाकर भ्रमर के निपुणता से गुंजार करने पर, भ्रांत होकर, वह कीड़ा भय के कारण भ्रमर का रूप धारण करता है न ! १६ [व.] इस प्रकार १७ [शा.] हे धात्रीश्वर ! कामोत्कंठता से गोपियों, भय से

शा. कामोत्कंठत गोपिकल् भयमुनं गंसुंडु वैरक्रिया-
सामग्रिन् शिशुपालमुख्यनृपतुल् संबंधुलै वृष्णुलुन्
प्रेमन् मीरलु भक्ति नेमु निदे चक्रि गंटि मॆट्लॆन नु-
द्दाम ध्यानगरिष्ठुडैन हरि जॆंदन् वच्चु धात्रीश्वरा ! ॥ 18 ॥

श्रीहरि द्वारपालकुलकु सनक सनंदनादुल वलन शापंबु संभविंचुट

व. मरियुं बॆक्कंड्रु कामद्वेषभयस्नेह सेवातिरेकंबुल जित्तंबु हरि परायत्तंबुगा जेसि तद्गति जॆंदिरि। हरि नुद्देशिंचि क्रोधादुलैन येनिटि लोपल नॊक्कटियैन वेन्नुनिकि लेनि निमित्तंबुन नतंडु व्यर्थुंडय्यॆ। मीतल्लिकि जॆल्लॆलि कॊडुकुलयिन शिशुपालदंतवक्त्रुलु दॊल्लि विष्णुमंदिर द्वारपालकुलु। विप्रशापंबुन वदभ्रष्टुलै भूतलंबुन जन्मिंचिरि। अनिन विनि युधिष्ठिरुंडु नारदुन किट्लनियॆ ॥ 19 ॥

म. अलुगंगारणमेमि विप्रुलकु ? मुन्नाविप्रुलॆव्वरु ? नि-
श्चलु लेकांतुलु निर्जितेंद्रियुलु निस्संसारु लीशानु व-
र्तुलु वैकुंठपुरीनिवासुलनविदुन् वारि कॆव्भंगि नी-
खलजन्मंबुलु वच्चॆ ? नारद ! विनं गौतूहलं बय्यॆडिन् ॥ 20 ॥

---

कंस, वैर-भाव से शिशुपाल आदि राजा लोग, संबधी होने के कारण वृष्णि-वंश के लोग, प्रेम के कारण आप लोग, भक्ति-भाव से हम, चक्रि (विष्णु) को देख सके है। जैसा भी हो, उद्दाम-ध्यान-गरिष्ठवाले हरि को प्राप्त कर सकते है। १८

श्रीहरि के द्वारपालों को सनकादि लोगों से शाप की प्राप्ति

[व.] 'और भी कई लोगों ने काम, द्वेष, भय, स्नेह और सेवा की भावनाओं से मन को हरिपरायण (हरि के प्रति एकाग्र) करके, तद्गति (मोक्ष) को प्राप्त किया। क्रोध आदि पाँचों [गुणों] मे एक के भी न रहने से, वेन व्यर्थ बन गया। तुम्हारी माता की छोटी वहिन के पुत्र शिशुपाल और दन्तवक्त्र पूर्वकाल मे विष्णुमंदिर के द्वारपालक थे। विप्र के शाप के कारण पदभ्रष्ट होकर भूतल में जन्म लिया।' इसको सुनकर युधिष्ठिर ने नारद से ऐसा कहा। १९ [म.] 'हे नारद ! विप्रों के लिए गुस्सा करने का क्या कारण था ? पहले यह बताओ कि वे विप्र कौन थे ? वैकुंठपुरी के वासी तो निश्चल, एकान्त, निर्जितेंद्रिय, निस्संसारी और ईश्वर के वशानुवर्ती कहलाते है। उनको कैसे इस प्रकार के खल-जन्म प्राप्त हुए ? सुनने के लिए मुझे बहुत कुतूहल हो रहा है, सुनाओ'। २०

व. अनिन नारदुं डिट्लनियें ओक्कनाडु ब्रह्ममानसपुत्रुलैन सनकसनंदनादुलु दैवयोगंबुन भुवन-त्रयंबुन संचरिंचुचु नैदारेंड्ल प्रायंपु बालकुल भावंबुन दिगंबरुलयि हरिमंदिरंबुनकु वच्चि चोच्चुनेड मोगसाल मुन्न पुरुषुलिरुवुरु वारलंजूचि ॥ 21 ॥

कं. डिंभकुल ननर्गळ वि, स्रंभकुल रमाधिनाथ सल्लाप सुखा-
रंभकुल मुक्तमानस, दंभकुलं जोरगनीक तरिमि रधीशा ! ॥ 22 ॥

कं. वारिंचिन दमकंबुन, वारिंचुक निल्वलेक वडि दिट्टिरि दौ-
वारिकुल नसुरयोनि न, वारितुलै पुट्टुडनुचु वसुधाधीशा ! ॥ 23 ॥

व. मरियु ना पिन्न पेद्दलु वारलं जूचि मीरियेंड नुंड नर्हुलु गारु। नारायण चरणमूलंबु, विडिचि रजस्तमोगुणुलै राक्षसयोनि बुट्टुंडु। अनि शपियिंचिन वारु नाशापवशंबुन बदभ्रष्टुलै कूलुचु मीरलिंडिन नम्महात्मुलु दयाळुवुलै क्रम्मरं गरुणिंचि, मूडु जन्मंबुलकु वैरंबुन भगवत्सन्निधानंबु गलिगेडु ननि निर्देशिंचि चनिरि। इव्विधंबुन शापहतुलै हरि पार्श्वचरुलैन पुरुषु लिरुवुरु हिरण्यकशिपु हिरण्याक्षु लन दितिकि जन्मिंचिरि। अंदु गनिष्ठुंडैन हिरण्याक्षुनि हरि वराह-रूपंबुन संहरिंचें। अग्रजुंडयिन हिरण्यकशिपुंडुनु नरसिंह-मूर्ति ययिन

---

[व.] इसे सुनकर नारद ऐसा बोला— "एक दिन ब्रह्मा के मानसपुत्र सनक, सनंदन आदि मुनींद्रों के दैवयोग से भुवनत्रय में संचार करते हुए, पाँच-छः साल के बालकों के रूप मे, दिगम्बर होकर हरि-मदिर में प्रवेश करते समय, द्वार के पास स्थित दो पुरुषों ने उनको देखकर, २१ [कं.] हे राजन ! उन बालकों को, [भीतर जाने के लिए] बहुत उत्कंठा से आने वालों को, श्रीविष्णु की कथाओं पर अधिक प्रीति रखनेवालों को, कपट को छोड़नेवालों को अन्दर घुसने न देकर, भगा दिया। २२ [कं.] हे वसुधाधीश ! निवारित करने (रोकने) से गुस्से में वे मुनींद्रों ने न रुक सक, द्वार-पालकों को झट गाली दी कि तुम असुरयोनी में अनिवार्य रूप से पैदा हो जाओ। २३ [व.] उन्होंने और भी ऐसा शाप दिया— 'तुम दोनों यहाँ रहने योग्य नहीं हो। नारायण के चरणमूल को छोड़कर रजस्तमोगुण वाले बनकर, राक्षस-योनी में पैदा हो जाओ।' इस शापवश दोनों ने पदभ्रष्ट होकर गिरते हुए, मुनींद्रों से प्रार्थना की कि रक्षा करें। उन महात्माओं ने दयालु बनकर करुणा से यों निर्देशन किया कि वे दोनों तीन जन्मों में वैर-भाव से रहने के बाद भगवान के सन्निधान को प्राप्त करेंगे। ऐसा कहकर वे चले गये। इस प्रकार शापहत हरि के दोनों पार्श्वचर हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम से दिति के पुत्र बने। उन में कनिष्ठ हिरण्याक्ष का हरि ने वराह का रूप धारण कर संहार किया।

श्रीहरि चेत विदळितुंडय्यॆ। अतनि कॊडुकु प्रह्लादुंडु दंड्रिचेत हिंसितुं-डय्युनु नारायण-परायणुंडै शाश्वतुंडय्यॆ। रेंडव भवंबुन गैकसि यनु राक्षसिकि रावणकुंभकर्णुलयि संभविंचिन विश्वंभरुंडु रघुकुलंबुन राघवुंडयि यवतरिंचि वारल वधियिंचॆ। तृतीय जन्मंबुन मी तल्लि चॆलियलिकि शिशुपाल दंतवक्त्रुलन नुद्भविंचि ॥ 24 ॥

शा. वक्रंबितयु लेक पायनि महा वैरंबुतो नित्यजा-
तक्रोधस्मरणंबुलुन् विदळितोद्यत्पापसंघातुलै
चक्रच्छिन्नशिरस्कुलै मुनिवचश्शापावधिप्राप्तुलै
चक्रिं जॆंदिरि वारॆ पार्श्वचरुलै सारूप्यभावंबुनन् ॥ 25 ॥

व. अनिन विनि धर्मनंदनुं डिट्लनियॆ ॥ 26 ॥

कं. बालुन् हरिपदचिंता, शीलुन् सुगुणालवालु श्रीमन्मेधा
जालुन् संतोषिंचक, येला शिक्षिंचॆ राक्षसेंद्रुं डनघा ! ॥ 27 ॥

कं. परिभूतव्यथनंबुलु, निरुपमसंसार जलधि निर्मथनंबुल्
नरकेसरि कथनंबुलु, परिरक्षितदेवयक्षफणि मिथुनंबुल् ॥ 28 ॥

व. मुनींद्रा ! विनिर्पिपुमु। अनिन नारदुं डिट्लनियॆ।

---

अग्रज हिरण्यकशिपु नरसिंहमूर्ति बने हुए श्रीहरि के द्वारा विदलित हुआ। उसका पुत्र प्रह्लाद अपने पिता से हिंसित होकर भी, नारायण-परायण होकर शाश्वत बनकर रह गया। दूसरे जन्म में दोनों कैकसी नामक राक्षसी के रावण और कुंभकर्ण बनकर पैदा हुए। विश्वंभर (विश्व का भार सहने वाला— विष्णु) ने रघुकुल में राघव के अवतार में [पैदा होकर] उनको मार डाला। तीसरे जन्म में तुम्हारी मौसी के शिशुपाल और दंतवक्त्र बनकर पैदा होकर, २४ [शा.] थोड़ी-सी भी वक्रता के अभाव में (सीधे-सादे) महावैरभाव से, प्रतिदिन पैदा होनेवाले क्रोध के स्मरण से, खंडित हुए पापों के समूहवाले (उनके समस्त पाप खंडित हो गये), चक्र के द्वारा छिन्न मस्तक वाले, मुनींद्र के वचनानुसार शापावसान की अवधि पाकर, उन दोनों ने फिर से सारूप्यभाव से पार्श्वचर बनकर, चक्री (हरि) को प्राप्त किया।" २५ [व.] इसे सुनकर धर्मनन्दन ने ऐसा कहा। २६ [कं.] 'हे अनघ ! उस बालक (प्रह्लाद) को, हरिचरणों के चिंताशील को, सुगुणों के आलवाल को, श्रीयुक्त मेधाशाली को देखकर खुश होने के बजाय, राक्षसेंद्र ने क्यों सजा दी ? २७ [कं.] नरकेसरी (श्रीनरसिंहमूर्ति) की कथाएँ तो व्यथाओं को दूर करनेवाली है। असमान संसार रूपी जलधि को मथनेवाली (पार करानेवाली) हैं। देव, यक्ष, फणियों के मिथुनों की रक्षा करनेवाली हैं। २८ [व.] यह सब मुझे सुनाओ।' [ऐसा] कहने पर ारद ऐसा बोला।

## अध्यायमु—२

व. कमलोदरु चेत सहोदरुंडु हतुंडय्यननि विनि हिरण्यकशिपुंडु रोषशोक-
दंदह्यमानमानसुंडयि घूर्णिल्लुचु नाभीलदावदहनज्वालाकराळंबु-
लयिन विलोकनजालंबुल गगनंबुन बोगलेगय निरीक्षिपुचु दटिल्लतांकुर-
संकाश धगद्धगितदंतसंदष्टदशनच्छदुंडुनु नदभ्र भयंकर भृकुटितफाल
भागुंडुनु निरंतराक्रांत दुरंतवैरवेगुंडुनुनै महाप्रभाजालजटालंबगु शूलंबु
गेल नंदुकोनि सभामंडपंबुन निलुवंबडि त्रिमस्तक, त्रिलोचन, शकुनि,
शंबर, शतबाहु, नमुचि, हयग्रीव, पुलोम, विप्रचित्त प्रमुखुलैन दैत्यदानवुल
नवलोकिंचि यिट्लनियें ॥ 29 ॥

शा. नाकुं दम्मुडु मीकु नेच्चेलि रणन्यायैकदक्षुंडु ब-
हाकुंठीकृतदेवयक्षुडुहिरण्याक्षुंडु वानिन् महा
सौकर्यांगमु दाल्चि दानववधूसौकर्यमुल् नीरुगा
वैकुंठुंडु वधिंचि पोयेनट यी वार्तास्थितिन् विंटिरे ! ॥ 30 ॥

चं. वनमुल नुंडु, जोच्चु मुनिवर्गमुलोपल, घोणि गाडु सं-
जनन मेरुंगरेव्वरुन जाड योंकितयु लेदु तन्नु डा-

---

## अध्याय—२

[व.] कमलोदर के द्वारा अपने सहोदर के हत हो जाने (मारे जाने) की बात सुनकर, हिरण्यकशिपु रोष और शोक से दंदह्यमान (बलते) हृदय वाला बनकर, घूर्णित होते हुए, आभील (भयंकर) दावाग्नि की ज्वाला के समान अति कराल विलोकन से गगनभाग को धूम्रमय बनाते देखते हुए, बिजली की तरह प्रकाशमय अपने दाँतों को पीसते, होंठों द्वारा क्रोध प्रकट करते हुए, अदभ्र-भयंकर भृकुटियों से युक्त फाल भाग वाला बनकर, सदा दुरन्त वैर-भाव से आक्रमित हृदय वाला होकर, महाप्रभाजाल से जटिल अपने शूल को हाथ में लेकर, सभामडप में खड़े होकर, त्रिमस्तक, त्रिलोचन, शकुनि, शंवर, शतबाहु, नमुची, हयग्रीव, पुलोम, विप्रचित्त आदि दैत्य और दानवों को देखकर ऐसा बोला। २९ [शा.] मेरा [तो] छोटा भाई है, आप [सब] का मित्र है, रणतंत्र के न्याय में निपुण है, देवता और यक्ष लोगों को जीतनेवाला है हिरण्याक्ष। उसे [ऐसे वीर को] सौकर्यांग (सूकर रूप) धारण कर, दानववधुओं की सुविधाओं को नष्ट कर, सुनते है, वैकुंठ (विष्णु) ने मार डाला। इस बात को सुना है क्या ? ३० [चं.] वह वन में रहता है। मुनियों के समूह में प्रवेश करता (जा छिपता) है। वह घोणी (वराह) नहीं है। उसके संजनन (जन्म) को

क्षिति मरि डाग्गु वॆंटबडि चिक्कक चिक्कडु वीनि नॊक्क की
लुन मनमॆल्ल नेकमइ लोबडग गट्टुकॊनंग वच्चुने ? ॥ 31 ॥

सी. भुजशक्ति नातोड पोराड शंकिंचि मुन्नीट मुनिंगिन मुनुगु गाक
पलायिंचि पॆनगु नायचल संभ्रमुन कॆरलि वॆन्निच्चिन निच्चुगाक
जगडंबु सैरक सौकर्यकांक्षियै बिलप्रविष्टि नॊंदिन नॊंदु गाक
क्रोधिंचि यटुगाक कौत पौरुषमुन हरि भंगि नडरिन नडरु गाक

गी. कठिनशूलधार गंठंबु विदळिंचि
वानिशोणितमुन वाडि नॆडलि
मत्सहोदरुनकु मदि दर्पणमु सेसि
मीऱि वत्तु मीकु मेलु दॆत्तु ॥ 32 ॥

कं. खंडित मूलद्रुममुन, गॊंडिन विटपमुल भंगि नीतड कूल ना
खंडलमुख्युलु कूलुरु, भंडनमुन नितडॆ तमकु प्राणमुलगुटन् ॥ 33 ॥

सी. पोंडु दनुजुलार ! भूसुरक्षेत्रसंगतयैन भूमिकि गमुलुगा गट्टि
मखतपस्स्वाध्यायमौनव्रतस्फूर्ति वॆदकि खंडिंपुडु विप्रुडनग
नन्यु डॊक्कडु लेडु यज्ञंबु वेदंबु नतडॆ भूदेवक्रियादिमूल
मतडॆ देवर्षिपित्रादिलोकमुलकु धर्मादुलकु महाधारमतडॆ

---

कोई नहीं जानता। उसके रहने का स्थान भी किसी को मालूम नहीं। उसके पास जायें तो वह भी पास आता है। लेकिन मिलता नहीं। किसी भी तरह उसके वश में न होकर, हम सबको एक होकर, उसको अपने वश कर सकते हैं क्या? ३१ [सी.] भुजशक्ति से मुझसे युद्ध करने में संदेह कर (डरकर) चाहे वह पानी में डूबे तो डूबे; [अथवा] थकाकर, जूझनेवाले मेरे अचल संभ्रम के कारण, डरकर पीठ दिखाकर दौड़े तो दौड़े, झगड़े में सहन (सामना) न कर सके, सौकर्य-कांक्षी (सुख चाहकर) बनकर, भूमि के नीचे प्रवेश भी करे; ऐसा न करके क्रोध में आकर कुछ पौरुष से हरि (सिंह) के समान विजृंभित हो जाए, [गी.] [तब] अपने कठिन शूल की धार से उसके कंठ का विदलन करके, उसके शोणित (रक्त) से अपने सहोदर का तर्पण करके, पराक्रम से तनकर आऊँगा। तदनन्तर आप सबको भलाई लाऊँगा। ३२ [कं.] मूलवृक्ष के खंडित होने से, टूटी डालों के समान इसके (हरि के) गिरने पर, इसके (हरि के) अपने लिए प्राण होने के कारण, आखंडल (इन्द्र) आदि (देवता) भंडन (युद्ध) में गिर जाएँगे। ३३ [सी.] दानवो! आप सब झुंड बाँधकर भूसुर-क्षेत्र-संगति से पवित्र भूमि को जाइए। यज्ञ, तप, स्वाध्याय और मौनव्रतस्फूर्ति आदि को ढूँढ़कर, [उनका] खंडन कर दो। विष्णु नामक [व्यक्ति] और कोई नहीं है। यज्ञ और वेद वह ही है। भूदेव-क्रियादि का मूल वही है। देव,

ते. ये स्थलंबुन गोभूसुरेंद्रवेद
वर्णधर्माश्रमंबुलु वरुस नुंडु
नास्थलंबुल कॅल्ल मोररिगि चॅरचि
दग्धमुलु सेसि रंडु मी दर्पमॊप्प ॥ 34 ॥

व. अनि इट्लु निर्देशिंचिन दिविजमर्दनु निर्देशंबुलु शिरंबुन धरियिंचि रक्कसुलु पॅक्कंड्रु भूतलंबुनकु जनि ॥ 35 ॥

सी. ग्राम पुर क्षेत्र खर्वट खेट घोषाराम नगराश्रमादिकमुलु
गालिंचि कौलकुलु गलिचि प्राकार गोपुर सेतुवुलु द्रव्वि पुण्य भूज
चयमुलु खंडिंचि सौधप्रपागेहपर्णशालादुलु पाडु चेसि
साधुगोब्राह्मणसंघंबुलकु हिंस गाविंचि वेदमार्गमुलु सॅरचि

आ. कुतलसॅल्ल नट्लु कोलाहलंबुगा, दैत्युलाचरिंप दल्लडिल्लि
नष्टमूर्तुलगुचु नाकलोकमु मानि, यडवुलंदु जॊच्चिरमरवरुलु ॥ 36 ॥

व. अंत हिरण्यकशिपुंडु दुःखितुंडै मृतुंडयिन सोदरुनकु नुदकप्रदानादिकार्यंबु लाचरिंचि यतनि बिड्डलगु शकुनि, शंबर, कालनाभ, मदोत्कच प्रमुखुल नूरडिंचि वारल तल्लितो गूड हिरण्याक्षुनि भार्यल नंदर राविंचि तम तल्लियैन दिति नवलोकिंचि इट्लनियॆ ॥ 37 ॥

---

ऋषि और पितृ आदि लोकों का, धर्मादि [कार्यों का] महान् आधार वही है। [ते.] जहाँ-जहाँ गाय, भूसुरेंद्र, वेद और वर्ण-धर्माश्रम रहते हैं, वहाँ वहाँ आप जाकर, सबका नाश कर, दग्ध कर अपना दर्प दिखाकर आइये। ३४ [व.] इस प्रकार निर्देश करने पर दिविजमर्दन (हिरण्यकशिपु) के निर्देश को शिरोधार्य बनाकर, कई राक्षसों ने भूतल पर जाकर, ३५ [सी.] ग्राम, पुर, क्षेत्र, खर्वट (पहाड़ी गाँव), खेट (किसानों के गाँव), घोष (ग्वालों के गाँव), आराम (उपवन), नगर, आश्रम आदि सभी स्थलों को खोदकर, पुण्य-भूज (-वृक्ष) चयों (समूहों) का खंडन करके; सौध, मधुशाला, गेह (गृह), पर्णशालाओं का नाश करके; वेद-मार्गों को भ्रष्ट बनाकर, [आ.] कुतल (भूतल) में दैत्यों के कोलाहल मचाने पर व्यथित होकर, [इन दुष्ट कार्यों के कारण] नष्ट मूर्ति वाले बनकर, नाकलोक (स्वर्ग) को छोड़कर अमर-वरों (-श्रेष्ठों) ने जंगलों में प्रवेश किया। ३६ [व.] तब हिरण्यकशिपु ने दुःखी होकर मृत सहोदर को उदकप्रदान (तर्पण) आदि कार्य करके, उसके पुत्र शकुनी, शंबर, कालनाभ, मदोत्कच आदि को सांत्वना देकर, उनकी माता के साथ हिरण्याक्ष की सभी पत्नियों को बुलवाकर, अपनी माता दिति को देखकर ऐसा कहा। ३७ [शा.] हे माता! नीरागार (जलाशय) के पास जानेवाले यात्रियों के समान,

शा. नीरागार निविष्टपांशुलक्रियन् निक्कंबु संसार सं-
चारुलु वत्तुरु गूडि वित्तुरु सदा संगंबु लेदोक्कचो
शूरुल् वोयॆडि त्रोवकु वोयॆनु भवत्सूनुंडु दल्ली ! महा
शूरुंडातडु तद्वियोगमुनकुन् शोकिंप नीकेटिकिन् ! ॥ 38 ॥

सी. सर्वज्ञुंडीशुंडु सर्वात्मु डव्ययुं डमलुंडु सत्यु डनंतु डाढ्यु
डात्मरूपंबुन नश्रांतमुनु दन माया प्रवर्तन महिम वलन
गुणमुलु गल्पिंचि गुणसंगमंबुन लिंगशरीरंबु लील दाल्चि
कंपितजलमुलो गदलॆडि क्रिय दोचु पादपंबुल भंगि भ्राम्यमाण

आ. चक्षुवुल धरित्रि चलितयै कानंग
वडिन भंगि विकल भावरहितु
डात्ममयुडु कंपितांतरंगंबुन
गदलिनट्ल तोचु गदल डतडु ॥ 39 ॥

### बालवेषमुदाल्चिन यमुंडु दॆलिपॆडि सुयज्ञोपाख्यानमु

व. अव्वा ! इव्विधंबुन लक्षणवंतुंडु गानि ईश्वरुंडु लक्षितुंडै कर्मसंसरणंबुन योगवियोगंबुल नॊंदिंचु । संभव विनाशशोक विवेकाविवेकचिंता-स्मरणंबुलु विविधंबुलु । ईयर्थंबुनकु वॆद्दलु प्रेतबंधु यमसंवादनंबनु

---

संसार में रहनेवाले साथ आयेंगे और साथ भी छोड़ेंगे। यह सच है कि [सदा] कोई भी संग नहीं रहता है। शूरों की राह में तुम्हारा सून (बेटा) गया है। वह महाशूर है, उसके वियोग के कारण तुम्हें शोक करना क्यों? ३८ [सी.] ईश तो सर्वज्ञ, सर्वात्मक, अव्यय, अमल, सत्य, अनंत, आढ्य है। आत्मरूप में सदा उसने अपनी माया की महिमा से गुणों की कल्पना करके, गुण के संगम से लिंग शरीर धारण करके, कंपित जल में हिलते-से लगनेवाले वृक्षों के समान, [आ.] भ्रमण करनेवाली (घूमनेवाली) की आँखों को धरित्री के चंचल दिखाई पड़ने के समान, वह विकलभाव-रहित, आत्ममय ईश हमारे कंपित-अतरंग में हिलता-सा लगता है, मगर वह हिलता नहीं है। ३९

### बालवेषधारी यम के द्वारा कहा गया सुयज्ञोपाख्यान

[व.] माता ! इस प्रकार लक्षणोपेत न होनेवाला ईश्वर लक्षित होकर, कर्मसंसरण से योग और वियोग को संभव कराता है। संभव, विनाश, शोक, विवेक, अविवेक, चिंता और स्मरण [ये सब] विविध हैं। इनको समझाने के लिए बड़े लोक प्रेतबंधु-यम-संवाद नामक इतिहास

नितिहासंबु नुदाहरिंतुरु। विनुडु चॆप्पॆद। उशीनर देशंबुनंदु सुयज्ञुंडनु राजु गलंडु। अतंडु शत्रुवुलचेत युद्धंबुन निहतुंडयियुन्न यॆड ॥ 40 ॥

सी. चिनिगिन बहुरत्न चित्रवर्ममुतोड, रालिन भूषण राजि तोड
भीकर बाणनिर्भिन्नवक्षमुतोड, दरुचु गारॆडु शोणितंबु तोड
गीर्णमै जारिन केशबंधमुतोड, रयरोषदंष्ट्राधरंबुतोड
निमिषहीनंबैन नेत्रयुग्ममुतोड, भूरजोयुतमुखांबुजमुतोड

आ. द्रुनिसि पडिन दीर्घ दोर्दंडमुलतोड
जीवरहितुडगु नुशीनरॆंद्रु
जुट्टि बंधुजनुलु सौरिदिनुंडग भया-
क्रांतलगुचु नतनि कांतलॆल्ल ॥ 41 ॥

शा. स्रस्त कंपित केशबंधमुलतो संछिन्नहाराळितो
हस्ताब्जंबुलु साचि मोदिकॊनुचु हा नाथ! यनुचु
प्रस्तावोक्तुल नॆड्विरि वगं ब्राणेशु पादंबुपै
नस्तोकस्तनकुंकुमारुणविकीर्णास्रंबु वर्षिचुचुन् ॥ 42 ॥

म. अनघा! निन्नु नुशीनरप्रजल कर्थानंदसंधायिगा
मुनु निर्मिचिन ब्रह्मनिर्दयत नुन्मूलिचॆने? वीरिकिन्

---

का उदाहरण देते है। [उसे] कहूँगा, सुनिये। उशीनर देश में सुयज्ञ नामक राजा था। वह युद्ध में शत्रुओं से निहत हुआ। तब। ४०
[सी.] छिन्न बने अनेक रत्नों से जड़े हुए चित्रवर्म के साथ, गिरी हुई भूषण-राजी (समूह) के साथ, भीकर बाणों से निर्भिन्न वक्षस्थल के साथ, निरंतर स्रवित होनेवाली रक्त-धाराओं के साथ, निमिष-हीन नेत्र-युग्म के साथ, भूरज (धूल) से भरित मुखकमल के साथ, विखरकर, फैले हुए केश-बंधन के साथ झट रोष से काटे हुए होंठ के साथ, [आ.] खंडित होकर पड़ी हुई दीर्घ बाहुओं के साथ, जीवरहित होकर पड़े हुए उशीनरेश के शरीर को [उनके] बंधुओं के घेरे रहने पर, उसकी सभी कांताएँ (पत्नियां) भयाक्रांत होती हुई, ४१ [शा.] च्युत और आकंपित केश-पाशों के साथ, संछिन्न हार-समूह के साथ, हस्ताब्जों को फैलाकर वक्षस्थल पर पीटकर 'हाय नाथ!' कहती हुई, [सब स्त्रियाँ] अपने पति के बारे में बहुत-कुछ कहकर, दुःख के मारे प्राणेश के चरणों पर, बड़े-बड़े स्तनों पर अलंकृत कुंकुम की लालिमा को विकीर्ण करनेवाली अश्रुबिन्दुओं की वर्षा करते रोईं। ४२ [म.] हे अनघ! धात्रीश! जिस ब्रह्मदेव ने उशीनर [देश] की प्रजा के लिए अर्थ से आनंद प्रदान करनेवाला बनाया था, उसी ने निर्दयता के साथ तुम्हें मार डाला है न! [अब से] इन [प्रजा] को, [तुम्हारी] संतान को और हमको कौन-सी गति है? (हमारा कोई रक्षक नहीं रहा।)

दनय-श्रेणिकि माकु दिक्कु गलदे ? धात्रीश ! नी बोटिकन्
जनुने ? पासि चनंग भ्रातृजनुलन् सन्मित्रुलं बुत्रुलन् ॥ 43 ॥

म. जनलोकेश्वर ! निन्नु बासिन निमेषंबुल् महाब्दंबुलै
चनु लोकांतरगामिवै मरलकी चंदंबुनन् नीवु वो-
यिन मेमॆट्लु जरितु मॊल्लमु गदा ! यी लोकवृत्तंबु ने-
डनलज्वालल जोच्चि वच्चॆदमुनीयंघ्रिद्वयिं जूडगन् ॥ 44 ॥

व. अनि इट्लु राजभार्यलाराजशवंबु डग्गरि विलपिपं बोवु पुंकॆ
समयंबुन वारल विलापंबुलु विनि ब्राह्मणबालकुंडै यमुंडु सनुदॆंचि
प्रेतबंधुलं जूचि यिट्लनियॆ ॥ 45 ॥

उ. मच्चिक वीरिकॆल्ल वहुमात्रमु जोद्यमु देहि पुट्टुचुन्
जच्चुचु नुंड जूचॆदरु चावक मानॆडु वारि भंगि नी
चच्चिनवारि केड्चॆदरु चावुनु नॊल्लक डागवच्चुने ?
यॆच्चट बुट्टॆ नच्चटिकि नेगुट नॆजम प्राणिकोटिकिन् ॥ 46 ॥

कं. जननीजनकुल बासियु, घनवृक्षमुल बाध वडक गड्डु विघ्नलमै
मनियॆद मॆव्वडु गर्भ,-बुन मुनु पोषिचॆ वाडॆ पोषकुडडविन् ॥ 47 ॥

---

सहोदरों को, सन्मित्रों को और पुत्रों को छोड़कर ऐसा जाना तुम्हारे जैसे राजा के लिए कहाँ उचित है ? [नहीं है ।] ४३ [म.] हे जनलोकेश्वर ! तुम्हारे वियोग में निमिष हमारे लिए महा अब्धि (लम्बे वर्ष) के समान गुजरेगा । लोकांतर-गामी बनकर, न लौटकर, इस प्रकार जाओगे तो हम तुम्हारे बिना कैसे रह सकती है ? यह लोकवृत्त (संसार) हमें नहीं चाहिए । आज अनल में प्रवेश करके तुम्हारे चरण-युग्म को देखने हम आयेंगी । ४४ [व.] इस प्रकार राजा के शव के निकट राजा की पत्नियों के रोते-रोते, इतने में दिन ढलने का समय हुआ । उनके विलाप सुनकर, यमराज ने ब्राह्मण-वालक के रूप में आकर, उन सबकी बातें सुनकर, प्रेत के बन्धुओं से ऐसा कहा । ४५ [उ.] इन सबको मोह बहुत है । यह अजीब लगता है । देही के पैदा होते और मरते समय न मरनेवालों के समान देखते है । इस मरनेवाले के लिए रोते हैं । क्या कोई मृत्यु से बच सकता है ? प्राणिकोटि के लिए जहाँ से पैदा हुई है, वहीं पर जाना सहज है । ४६ [कं.] माता और पिता से बिछुड़कर भी जंगल में घन वृक्षों की पीड़ा से बचकर रह सकते हैं । जिसने गर्भ में, पूर्व में हमारा पालन-पोषण किया था, वही जंगल में भी हमारा पोषक (रक्षक) है । ४७ [कं.] जो सृजन करता है; प्राणियों की जो रक्षा करता है; जो मार डालता है; जो अनंत है, जो प्रभु है, वह हेला (खेल)

कं. ऍव्वडु सृजिंचु ब्राणुल, नॅव्वडु रक्षिंचु ब्रुंचु नॅव्व डनंतु
ऍव्वडु विभु ऍव्वडु वा, डिव्विधमुन मनुचु वॅनुचु हेलारतुडै ॥ 48 ॥

आ. धनमु वीथि बडिन दैववशंबुन, नुंडु बोवु मूलनुन्ननैन
नडवि रक्ष लेनि यबलुंडु वर्धिल्ल, रक्षितुंडु मंदिरमुन जच्चु ॥ 49 ॥

कं. कलुगुनु मरि लेकुंडुनु
गलभूतमुलॅल्ल गालकर्मवशमुलै
निलबडियु ब्रकृति दद्गुण
कलितुडुगा डात्ममयुडगम्युडु दलपन् ॥ 50 ॥

सी. पांचभौतिकमैन भवनंबु देहंबु पुरुषुंडु दीनिलो बूर्वकम
वशमुन नॊकवेळ वर्तिंचु दीपिंचु दरियैन नॊकवेळ दलगिपोवु
जॆडुनेनि देहंबु चॆडुगानि पुरुषुंडु चॆड डातनिकि नित चॆट्टलेदु
पुरुषुनिकि देहपुंजंबुनकु वेरु गानि येकत्वंबु गान रादु

आ. दारुवुल वॆलुंगु दहनुनि कैवडि, गायमुल जरिंचु गालि भंगि
नाळलीनमैन नभमु चाडुपुन वेरु, दॆलियवलयु देहि देहमुलकु ॥ 51 ॥

व. अनि मरियु निट्लनियॆ ॥ 52 ॥

---

में रत होकर इस प्रकार हमारी देखभाल करता है। ४८ [आ.] अगर [किसी का] धन वीथि (सड़क) पर गिर जाए तो भी, दैववश से वह धन [वहीं] रह जाता है। कोने में रखा रहने पर भी, दैववशात् वह [खो] जाता है। जंगल में बिना रक्षा के रहनेवाला अबल-व्यक्ति वर्धित होता है। सौध में सुरक्षित रहनेवाला [व्यक्ति] मरता है। ४९ [कं.] काल और कर्मवश होकर ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते और नहीं रहते (मरते) हैं। सोचने पर वह आत्ममय और अगम्य (परमात्मा) इला (पृथ्वी) पर आकर भी, उसके (प्रकृति के) गुणों से कलित (युक्त) नहीं होता। ५० [सी.] [यह] शरीर एक पांचभौतिक भवन है। पूर्वजन्म के कर्म के कारण पुरुष इसमें कभी रहता है, कभी दीप्त होता है। समय आने पर कभी [इस देह को] छोड़कर चला जाता है। नाश होता है तो देह का होता है पर पुरुष का नहीं। उसके लिए कुछ भी बुराई नही होती। पुरुष और देह-पुंज [दोनों] अलग हैं, [उन्हें] एकत्व नहीं है। [आ.] दारुओं (वृक्षों) में जलनेवाली दहन (अग्नि) की तरह, काया (शरीरों) में चलनेवाली हवा की भाँति, नाललीन नभ की तरह (नाल के बीच में शून्य होता है), देही और देह [दोनों] अलग है। [इसे हम सबको] जानना चाहिए। ५१ [व.] [ऐसा] कहकर [वह] फिर से यों बोला। ५२ [सी.] अरे पागलो ! राजा सो रहा है या और कुछ है !

सी. भूपालकुडु निद्रवोयेंडि नोंडेमि विलपिंप नेटिकि ? वेर्रुलार !
यॆव्वडु भाषिंचु नॆव्वडाकर्णिंचु नट्टिटवाडॆन्नडो यरिगिनाडु
प्राणभूतुंडैन पवनु डाकर्णिंप भाषिंप नेरडु प्राणिदेह-
मुलकु वेरै तानु मुख्युडै यिंद्रियवंतुडै जीवुंडु वलनु मॆरय

आ. ब्राभवमुन भूतपंचकेंद्रिय मनो-
लिंगदेहमुलनु लील गूडि
विडुचु नित्युडौकडु विभुडु दीनिकि मीरु
वॊगलनेल ? वगल वॊरलनेल ? ॥ 53 ॥

कं. अंदाक नात्मदेहमु, नॊंदॆडु नंदाक गर्मयोगमु लटपै
जेंदवु मायायोग, स्पंदितुलै रित्त जालिवड नेमिटिकिन् ? ॥ 54 ॥

म. चॆलुलुं दंड्रुलु वल्लु लात्मजुलु संसेव्युल् सुतुल् चारु नि-
र्मलगेहंबु लटंचु गूर्तुरु महामायागुणभ्रांतुलै
फललो दोचिन यर्थमुल् निजमुलो ? कर्मानुबंधंबुलं
गलुगुन् संगमु लेक मानु पिदपन् गर्मांतकालंबुनन् ॥ 55 ॥

व. मरियु मायागुणप्रपंचंबु नॆरिंगॆडि तत्त्वज्ञुलु नित्यानित्यंबुलं गूर्चि सुख-
दुःखंबुलं जेंदरु। अज्ञुलु गोंदरु योगवियोगंबुलकु सुखदुःखंबुल नॊंदुदुरु।

---

रोते क्यों हो ? जो बोलता है, सुनता है, वह कभी का चल बसा। प्राण-भूत होकर भी पवन सुन या बोल नही सकता। प्राणि और देह दोनों से अलग होकर भी मुख्य बनकर इंद्रियवान होकर स्वयं जीव को रहना चाहिए। [आ.] जीव तो भूतपंचक, इंद्रिय, मन, लिंग और देहों को लीला के साथ प्राप्त करता और छोड़ देता है। और कोई इसका है। इसके लिए (राजा की मृत्यु पर) दुःखी होना क्यों ? दुःख के मारे लोटना क्यों ? ५३ [कं.] जब तक आत्मा शरीर में रहती है, तब तक कर्म-योग रहते हैं; उसके बाद नहीं। मायायोग से स्पंदित होकर तुम सब व्यर्थ शोक क्यों करते हो ? ५४ [म.] महामाया [नामक] गुण के कारण भ्रांत होकर [ये] 'सखा हैं; [ये] पिता हैं; [ये] माताएँ हैं; [ये] पुत्र हैं; [ये] सेवक हैं; [ये] पत्नियाँ हैं; [ये] सुन्दर और निर्मल गेह (घर) हैं' —ऐसा कह (मान) कर, रहते है। स्वप्न में देखनेवाले अर्थ (विषय) क्या सच होते है ? कर्मबंधनों के कारण [लोगों को] संग (विषयों के प्रति आसक्ति) प्राप्त होता है। कर्म के अन्तकाल में वह छूट जाता है। ५५ [कं.] और (इसके अतिरिक्त) मायागुण-भरित प्रपंच (संसार) को जाननेवाले तत्त्वज्ञ नित्य और अनित्य के कारण सुख और दुःख को प्राप्त नही करते। कुछ अज्ञ [लोग] योग और वियोग के

तॉल्लियॉक्क महागहनंबुन विहंगंबुलकु नंतकभूतुंडैन यॅरुकु गलडु।
अतंडु प्रभातंबुन नॉक्कनाडु लेवि.वाटंबैन वेट तमकंबुन ॥ 56 ॥

कं. वल्लरुलु जिगुरु गंडॅलु
जलिदियु जिक्कंबु धनुवु शरमुलु गॉनुचुं
बुलुगुल बट्टॅडु वेडुक
नलुकुलु बॅडलंग गदलि यडविकि जनियॅन् ॥ 57 ॥

व. इट्लडविकि जनि तत्प्रदेशंबुनंदु ॥ 58 ॥

कं. कट्टलुक दडकचाटुन
बिट्टल नुरिगोल दिगिचि बिरुसुन डॅक्कल्
वट्टि विरिचि चिक्कमुलो
बॅट्टुचु विहरिंचॅ लोक भीकरलीलन् ॥ 59 ॥

व. मरियु नानाविधंबुलगु शकुंतलंबुल नंतंबु नॉंदिपुचु सकलपक्षिसंहार-संरब्धकरुंडैन लुब्धकुंडु दन मुंदट गालचोदितंबै संचरिंपुचुन्न कुळिंगपक्षि मिथुनंबु गनुंगॉनि यंदु गुळिंगि नुरिं दिगिचि, यॉक्क चिक्कंबुलो वैचिनं जूचि, दुःखिचि, कुळिंगपक्षि यिट्लनियॅ ॥ 60 ॥

चं. अडवुल मेत मेसि मनमन्युल कॅन्नडु नॅग्गु सेय कि-
क्कड विहरिंप नेडकट! कट्टडि ब्रह्म किरातु चेतिलो

---

कारण सुख और दुःख को प्राप्त करते है। पूर्वकाल में एक महागहन (बड़े जंगल) में विहंगों (पक्षियों) के लिए अंतभूतक (मारनेवाला) एक शिकारी था। एक दिन प्रभातकाल में वह उठकर, समुचित मृगया (शिकार) की आसक्ति से, ५६ [कं.] [पक्षियों को फँसाने के लिए] जाल, रस्सियाँ, बासी, भात, जालीवाली थैलियाँ, सिकडर, धनुष और बाण [आदि] लेकर, पक्षियों को पकड़ने के उत्साह से, [वह शिकारी] जंगल की ओर चल पड़ा। ५७ [व.] इस प्रकार जगल जाकर, उस प्रदेश में (वहाँ), ५८ [कं.] बहुत ही क्रोध से, टट्टी की आड़ में, पक्षियों को जाल में फँसाकर, उनके पंखों को कठोरता से तोड़कर, [अपनी] थैली में रखते हुए, लोक में भयंकर-रूप से विचरता रहा। ५९ [व.] और बहुत प्रकार के शकुंतों (पक्षियों) को मारते हुए, सब पक्षियों के संहार-संरब्धक (मारने में लगे हुए) लुब्धक ने अपने सामने मृत्यु-वश होकर फिरनेवाले कुळिंग पक्षियों के मिथुन (जोड़े) को देखा। उसमें स्त्री पक्षी (कुळिंगी) को मारकर एक थैली में डाल दिया। तो कुळिंगपक्षी ने देखकर दुःखी होकर ऐसा कहा। ६० [चं.] जंगल में चारा खाते हुए, किसी को भी हानि न पहुँचाते हुए [हम लोग] फिरते रहते हैं। हाय!

वङ्डुमनि व्रासेने ! दुद्दुट बापपु दैवमु कंटिकित यें
वकुड्डु बरुवय्यॆने व्रदुकु ? कोमलि ! येमन नेर्तु जॆल्लरे ! ॥ 61 ॥

कं. ऒकमाट्टु मनलनंदर
व्रकटिंचि किरातु वलल वडजेयक नि
न्नोकतिन् वल वड जेसिन
विकटीकृतदक्षमैन विधिनेमंदुन् ? ॥ 62 ॥

उ. ऱॆक्कलु रावु पिल्ललकु ऱेपटिनुंडियु मेत गानमिन्
वॊक्कुचु गूटिलो नॆगसि पोवग नेरवु मुन्नु तल्लि ये
दिक्कुन नुंडि वच्चुननि त्रिप्पनिचूड्कुल निक्कि निक्कि नल्
दिक्कुलु जूचुचुन्न वतिदीनत नॆट्लु भरिंतु ? नक्कटा ! ॥ 63 ॥

व. अनि यिव्विधंबुन ॥ 64 ॥

कं. कुंठित नादमु तोडनु, गंठमु शोषिंप वगचु खगमुन् हननो
त्कुंठुंडैन किरातु ड, कुंठितगति नेसॆ नॊक्क कोलंगूलन् ॥ 65 ॥

कं. कालमु वच्चिन शबरुनि
कोलनु धर गूलॆ खगमु घोषमुतोडन्
कालमु डासिन नेलं
गूलक पो वशमॆ ? यॆट्टि गुणवंतुलकुन् ॥ 66 ॥

---

आज यहाँ उस निर्दयी ब्रह्मा ने ललाट पर लिखा है न कि इस किरात के हाथ में पड़ो। पापी दैव की दृष्टि में हमारा जीवन इतना भारी हो गया न ! हे कोमली ! मैं क्या कह सकता हूँ ? ६१ [कं.] एक ही बार हम सबके व्यक्त कर, किरात के जाल में न फँसाकर, तुम अकेली को जाल में फँसानेवाले विकटीकृतदक्ष (कार्यो को विकट करने में निपुण) विधि (नियति) को क्या कहूँ ? ६२ [उ.] हाय ! हमारे बच्चों के अभी पंख नही आए हैं। कल से चारे के लिए तरसते हुए भी, घोंसले से उड़कर [बाहर] निकल नही सकते। दीनता से हर तरफ़ इस आशा से देखते रहेंगे कि माँ इस दिशा से आयेगी। इसको मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ? ६३ [व.] ऐसा बोलते हुए इस प्रकार ६४ [कं.] कुंठित-नाद से (हीन स्वर से या गद्गद कंठ से) कंठ सूख जाए, ऐसा रोते हुए खग (पक्षी) के हनन (हत्या) की उत्कंठा से युक्त किरात ने अकुंठित गति से एक बाण से मार गिराया। ६५ [कं.] समय के आने पर शबर के बाण से, खग चिल्लाते हुए धरा पर गिर गया। जितना भी गुणवान क्यों न हो, काल (मृत्यु) के नियराने पर मरे बिना रह सकता है ? (नहीं।) ६६ [उ.] इसलिए मरने के समय को आप नहीं देख (जान) सकते।

उ. कावुन मीरु चच्चु तरि गानरु वच्चि धरित्रि बड्ड धा-
त्रीविभु देहमुं गदिसि दीनत नेड्चनेल पॉंडु चि-
तावतुलार! वत्सरशतंबुलकैन निजेशु चक्किकि-
बोवुट दुर्लभंबु मृति बॉदिनवारलु चेर वत्तुरे ? ॥ 67 ॥

व. अनि इट्लु कपट बालकुंडै क्रीडिचुचुन्न यमुनि युपलालनालापंबुलु विनि सुयज्ञुनि बंधुवुलल्ल वॅरगु पडि, सर्वप्रपंचंबु नित्यंबु गादनि तलंचि, शोकिपक, सुयज्ञुनिकि सांप्रदायिक कृत्यंबुलु सेसि चनिरंत नंतकुं डंतर्हितुंडय्यॆ। अनि चॅप्पि हिरण्यकशिपुंडु दन तल्लिनि, दम्मुनि भार्यलं जूचि यिट्लनियॆ ॥ 68 ॥

कं. परुलॆव्वरु ? दा मॆव्वरु ?
परिकिपग नेकमगुट भाविपरु त-
त्परमज्ञानमु लेमिनि
बरुलुनु मेमनुचु दोचु ब्राणुल कॆल्लन् ॥ 69 ॥

व. अनि तॆलियंबलिकिन, हिरण्यकशिपुनि वचनंबुलु विनि, दिति कोडंड्रनुं, दानुन शोकंबु मानि तत्त्वविलोकनंबु गलिगि, लोकांतरगतुंडैन कॊडुकुनकु वगवक चनियॆ। अनि चॅप्पि नारदुंडु धर्मनंदनुन किट्लनियॆ ॥ 70 ॥

---

धरित्री पर पड़े हुए राजा के शरीर के पास आकर, दीनता से रोते क्यों ? हे चितावतियो ! जाइए। सौ साल के बाद भी तुम्हारे लिए उसके पास जाना दुर्लभ है। क्या मृत लोग कहीं [फिर] पास आयेंगे ? ६७ [व.] ऐसा बोलकर कपट बालक के रूप में खेलानेवाले यम की उपलालना से युक्त आलाप (बातें) सुनकर सुयज्ञ के सभी रिश्तेदार अचंभे में पड़ गये। इस समस्त ससार को अनित्य समझकर, शोक न करके, सुयज्ञ के लिए जो-जो सांप्रदायिक (परम्परागत) कृत्य करने हैं, उनको करके [वे सब] चले गये। यमराज भी अंतर्हित हुआ। इस प्रकार हिरण्यकशिपु ने कहकर, अपनी माता और साथियों को देखकर, आगे ऐसा कहा। ६८ [कं.] पर (अन्य) कौन हैं और स्वयं कौन है ? सोचने पर सब एक हैं। ऐसा होने की बात को नहीं समझ पाते। तत्परमज्ञान के अभाव में प्राणियों को ऐसा सूझता है कि यह अन्य है और ये हम हैं। ६९ [व.] इस प्रकार के हिरण्यकशिपु के वचन सुनकर, दिति और उसकी बहुएँ शोक को छोड़ करके तत्त्वविलोकन पाकर, लोकांतरगत हुए बेटे के लिए दुःखित न होकर, चली गईं। ऐसा कहकर नारद ने धर्मनन्दन से यों कहा। ७०

## अध्यायमु—३

कं. अजरामर भावंबुनु, द्रिजगद्राज्यंबु नप्रतिद्वंद्वमु वो
विजिताखिलाशात्रवमुनु, गजरिपुबलमुनु हिरण्यकशिपुडु गोरॆन् ॥71॥

व. इट्लु गोरि, मंदराचलद्रोणिकि जनि, यंदु पॆनुवेल नेल निलुवंबडि, यूर्ध्वबाहुडयि, मिन्नु सूचुचु, वाडि मयूखंबुलतोडि प्रळयकालभानुंडनं बोलॆ दीर्घजटारुणप्रभाजालंबुलतोड नॆव्वरिकि देरि चूडराक परमदारुणंबैन तपंबु सेयुचुंडॆ। निर्जरुलु निजस्थानंबुल नुंडिरि। अंत ॥ 72 ॥

म. अदरॆं गुंभिनि साद्रियै, कलगॆ नेडंभोनिधुल्, तारकल्
सॆदरॆन्, सग्रहसंधलै विशलु विच्छिन्नांतलै मंडॆ, बॆ-
लल्वरॆन् गुंडॆलु जंतुसंहतिकि, नुग्रचार दैत्येंद्र मू-
र्ध विशोद्धूत सधूम हेतिपत लोदंचत्तपोवह्निचेन् ॥ 73 ॥

व. इट्लु त्रैलोक्यसंतापकरंबैन दैत्यराज तपो विजृंभणंबु सैरिपक, निलिपुलु नाकंबु बडिचि, ब्रह्मलोकंबुनकु जनि, लोकेश्वरुंडयिन ब्रह्मकु विनतुलै यिट्लनि विन्नविंचिरि ॥ 74 ॥

---

## अध्याय—३

[कं.] हिरण्यकशिपु ने अजर और अमर भाव को, त्रिलोक के राज्य को, अप्रतिद्वंद्वता (प्रतिद्वंद्वी का न होना) को, सभी शत्रुओं को जीतने की शक्ति को, सिंह के बल को चाहा। ७१ [व.] ऐसा चाहकर, उसने मंदराचल द्रोणी (घाटी) जाकर, वहाँ पैर के अगूँठे के बल खड़े होकर, ऊर्ध्व बाहु वाला होकर, आकाश को देखते, प्रलयकाल के भानु के समान, दीर्घजटाओं के अरुण प्रभाजाल से युक्त हो, परम-दारुण तप करने लगा। उसकी तरफ़ कोई आँख उठाकर देख नहीं सकता था। निर्जर (देवता) अपने-अपने स्थान पर रह गये। तब, ७२ [म.] [भयंकर तप के कारण] दैत्येंद्र (राक्षसराज) के शिर से निकलनेवाले तथा दिशाओं में उद्धूत धूम हेति-पटल से उदंचित तपो-वह्नि के कारण अद्रियों (पर्वतों) के साथ भूमि हिलने लगी; सप्तसमुद्र उद्वेलित हो गये; तारे दूर-दूर हो गये; विच्छिन्नांत होकर दिशाएँ जलने लगीं। जंतु-संहति (-समूह) के दिल अधिक धड़कने लगे। ७३ [व.] इस प्रकार त्रैलोक्य के लिए संतापकर दैत्यराज (हिरण्यकशिपु) के तप के विजृंभण को सहन न कर, देवता नाक (स्वर्ग) छोड़कर, ब्रह्मलोक जाकर, लोकेश्वर ब्रह्मा को विनती कर, यों बोले। ७४ [कं.] हे देवदेव ! हे कारुण्यनिधी !

कं. दिति कॊडुकु तपमु वेडिमि
नति तप्तुल मैतिमिक नलजडि नमरा-
वति नुंड वॆरतुमॆय्यदि
गति माकुनु देवदेव ! कारुण्यनिधी ! ॥ 75 ॥

शा. शंकालेशमु लेदु देव ! त्रिजगत्संहारमुन् देवता-
संकोचंबुनु वेदशास्त्र पदवीसंक्षेपमुन् लोक ये
बंकन् लेवनटंचु दुस्सहतपोव्यावृत्तिचित्तंबुलो
संकल्पिंचॆ निशाचरुंडु प्रति संस्कारंबु चिंतिपवे ! ॥ 76 ॥

शा. नीवेरीति दपोबलंबुन जगन्निर्माणमुन् जेसि यी-
देवाधीशुल कंटॆ नॆक्कुडु सिरिं दीपिंचितिव्भंगिदा-
नीविश्वंबु दपस्समाधिमहिमन् हिंसिंचि वेरॊक्क वि-
श्वाविर्भावकरत्वशक्ति मदिलो नर्थिंचिनाडीश्वरा ! ॥ 77 ॥

व. अदियुनंगाक कालात्मुलगु जीवात्मलकनित्यत्वंबु गलुगुटं जेसि तपो-
योगसमाधि बलंबुनं दनकु नित्यत्वंबु संपादितुनननि तलचिनाडु। अनि
मरियु निट्लनिरि ॥ 78 ॥

म. भवदीयंबगु नुन्नतोन्नतमहाब्रह्मैकपीठंबु स-
स्तवनीयंबगु भूतियुन् विजयमुन् सौख्यंबु संतोषमुन्

---

दितिपुत्र के तप के ताप से हम अतितप्त हुए। अब [इस] खलबली के कारण अमरावती में रहते हम डरते हैं। हमारी क्या गति है ? [बताओ।] ७५ [शा.] हे देव ! त्रिजगत्संहार, अमरलोगों का दमन, वेदशास्त्रपदवी का संक्षेप (कम कर देना) [आदि] कोई इच्छा नहीं रखकर यों ही वह तप नही कर रहा है। इसमें शंका का लेश नहीं है। इस प्रकार सोचकर ही निशाचर ने दुस्सह तप की व्यावृत्ति का संकल्प किया है। इसकी प्रतिक्रिया की चिन्ता करो न ! ७६ [शा.] हे ईश्वर (प्रभु) ! तुम जिस प्रकार तपोवल से जगत का निर्माण कर, इन देवताओं के अधीश्वरों की अपेक्षा अधिक शोभा से दीप्त हुए, उसी प्रकार वह भी अपनी तपस्समाधि की महिमा से विश्व की हिंसा करके (इस विश्व का नाश कर), और एक अन्य विश्व की आविर्भावक-शक्ति को अपने मन में चाहा है। ७७ [व.] यही नहीं, काल के प्रकार चलनेवाले जीवात्माओं के अनित्य होने से, तपोयोग की समाधि के बल से अपने लिए नित्यत्व की प्राप्ति कराने सोची है। [ऐसा] कहकर फिर वे ऐसा वोले। ७८ [म.] हे भुवनाधीश्वर ! तुम्हारे अत्युन्नत और महान् ब्रह्मपीठ, प्रशसनीय भूति, विजय, सुख और संतोष का प्रदान सर्वलोक को अब तक किया है। इसलिए दैत्य के तप

भुवनश्रेणिकि निच्चु वेंत्तुनि तपस्स्फूर्तिन् निवारिंचि यो
भुवनाधीश्वर ! गाववे ! भुवनमुल् पूर्णप्रसादंबुनन् ॥ 79 ॥

### ब्रह्मदेवुंडु हिरण्यकशिपुनकु वरमुलिच्चुट

व. अनि देवतलु विन्नविंचिन स्वयंभूतुंडुनु भगवंतुंडुनैन नलुमोगंबुल वॆल्पुप्रोड भृगुदक्षादुल तोड मंदरपर्वतंबुनकु वच्चि यंदुनियमयुक्तुंडुनु, विपीलिकावृतमेदोमांसचर्मरक्तुंडुनु, वल्मीक तृणवेणुपटलपरिच्छन्नुंडुनु, महातपःप्रभाव संपन्नुंडुनुनै नीरंध्रनिविडनीरदनिकरनिबिष्ट नीरज बंधुंडुनु बोलं निवसिंचियुन्न निर्जराराति जूचि वॆंरगुपडि नगुचु निट्लनियॆ ॥ 80 ॥

म.को. ओ सुरारिकुलेंद्र ! यीक्रिय नुग्रमैन तपंबु मुन्-
चेसि चूपिनवाडलेरिक जेयुवारुनुलेरु नॆ
नीसमाधिकि मॆच्चितिन् विनु नी यभीष्टमुलिस्तु ना-
यास मेटिकि ? लॆम्मु लॆम्मु महात्म ! कोरुमु कोरिकल् ॥ 81 ॥

शा. दंशव्रातमुलुं विपीलिकलु मेदःक्रव्यरक्तंबुलन्
संशीर्णंबुलु सेसि पट्टि तिनगा शल्यावशिष्टुंडवै

---

की स्फूर्ति का निवारण करके पूर्ण प्रसाद (प्रसन्नता) से भुवनों की रक्षा करो न । ७९

### ब्रह्मदेव का हिरण्यकशिपु को वर देना

[व.] इस प्रकार देवताओं के विनती करने पर, स्वयंभूत और भगवान चतुर्मुख (ब्रह्मा) भृगु, दक्ष आदियों के साथ मंदरपर्वत आकर, वहाँ नियमयुक्त, पिपीलिकाओं (चींटियों) से आवृत मेदो-मांस-चर्म-रक्त-युक्त (शरीर वाला) और वल्मीक के तृण और वेणुपटल से आच्छन्न, महान तप के प्रभाव से संपन्न होकर, आकाश के निबिड मेघों के समूह में प्रवेश करनेवाले सूर्य के समान हिरण्यकशिपु को देखकर, आश्चर्यचकित होकर, हँसते (मुस्कुराते) हुए यों बोला । ८० [म.को.] हे सुरारिकुलेंद्र ! इस प्रकार के उग्र तप को करनेवाले पूर्व में नही हैं और भविष्य में करनेवाले भी नहीं है । मैं तुम्हारी समाधि से प्रसन्न हूँ । सुनो, तुम्हारे अभीष्ट दे दूंगा (पूरा करूँगा) । उठो-उठो, हे महात्मा ! जो चाहो माँगो । ८१ [शा.] मक्खियों के समूह और चींटियों ने तुम्हारे मेदा, मांस और रक्तों का संशीर्ण कर, खाकर, पकड़ खाने पर, शल्यावशिष्ट होकर, वंशच्छन्न-तृणावली से युक्त महा वल्मीक में किंचित भी इंद्रिय-भ्रश

वंशच्छन्न तृणावळीयुतमहावल्मीकमं दिव्रिय
भ्रंशंबितयु लेक नीकु निलुवं ब्राणंबु लॅट्लुंडॅनो ? ॥ 82 ॥

उ. उत्सुकतन् जलान्नमुल नॊल्लक योक्रिय नूरुदिव्य सं-
वत्सरमुल् शरीरमुन वायुवुलन् निलुपंग वच्चुने ?
युत्सवमय्यॅ माकु ममु नुग्रतपंबुन गॅलिचितीवु ने-
वत्सलतन् निनुं गदिय वच्चिति गोरिकलॅल्ल निच्चॅदन् ॥ 83 ॥

व. अनि पलिकि वनमक्षिकापिपीलिकाभक्षितंबैन रक्षोविभुनि देहंबु मीदं गमंडलुजलंबुलु प्रोक्षिंचिन, नद्दानवेंद्रुंडु कमलासन-करकमल-कमनीय-कनक-मय-दिव्यामोघ-संसिक्त-सकलांगुंडयि, तपंबु सालिंचि, सांद्रकीचक संघातसंछादित-वामलूर मध्यंबु वॆलुवडि, महाप्रभावबलसौंदर्य तारुण्य-सहितुंडुनु, वज्रसंकाशदेहुंडुनु, दप्तसुवर्णवर्णुंडुनुनै, नीरसॆंधन-निकर निर्गत वह्नियुं बोलॆ वॆलुंगुचु जनुदॆंचि ॥ 84 ॥

म. दिविजानीकविरोधि म्रॊक्कॆं गनि वाग्देवी मनोनेतकुन्
सविशेषोत्सवसंविधातकु, नमस्संत्रातकुन् सत्तपो-

---

के बिना रहने में (रहते समय) तुम्हारे प्राण कैसे टिक सके ? ८२ [उ.] उत्सुकता से, जल और अन्न (आहार) को न चाहकर, इस तरह सौ दिव्यवर्ष तक शरीर के वायुवों को क्या कोई रोक सकता है ? मुझे यह देखकर उत्सव (प्रसन्नता) हुआ। उग्र तप से तुमने मुझे जीत लिया। वात्सल्य के भाव से तुम्हारी सभी इच्छाओं को पूरा करने [तुम्हारे] पास आया हूँ। ८३ [व.] ऐसा कहकर वनमक्षिका और पिपीलिकाओं से भक्षित उसके शरीर पर [ब्रह्मा ने] अपने कमंडल के जल का प्रोक्षण किया। [जल छिड़कने पर] दानवेंद्र कमलासन (ब्रह्मा) के करकमलों के कमनीय सुवर्णमय दिव्य और अमोघ कमंडल से निर्गत (निकले) निर्मल नीर की धारा के बिंदु-संदोह (-समूह) से संसिक्त शरीर वाला होकर, तप समाप्त करके, सांद्र कीचक (घास) संघात (समूह) से संछादित-वामलूरु [-वल्मीक] के मध्य भाग से बाहर निकलकर, महाप्रभाव-बल-सौंदर्य और तारुण्य से सहित और सुकुमार और वज्रसमान देहवाला और तप्तसुवर्ण वर्ण वाला बनकर, नीरसेंधन (नीरस-इंधन) से निकली हुई वह्नि (अग्नि) की तरह प्रकाशमान होते हुए आकर, ८४ [म.] दिविज (देवताओं के) अनीक (सेना) के विरोधी (हिरण्यकशिप) ने वाग्देवी के मन के नेता को, विशेष रूप से उत्सव का संविधान करनेवाले को, प्रणाम करनेवालों की रक्षा करनेवाले को, सत्-तपस्वियों के निवह (समूह) के

निवहाभीष्टवरप्रदातकु, जगन्निर्मातकुन, धातकुन्,
विविधप्राणिललाटलेखनमहाविद्यानुसंधातकुन् ॥ 85 ॥

व. इट्लु दैत्येश्वरुंडु दिविनुन्न हंसवाहनुनकु धारुणीतलंबुन दंडप्रणामंबु लाचरिंचि, संतोषबाष्पसलिलसंवर्धित पुलकांकुरुंडै यंजलि सेसि, कंजगर्भुनि मीद दृष्टि यिडि गद्गदस्वरंबुन निट्लनि विनुतिचॆं ॥ 86 ॥

सी. कल्पांतमुन नंधकारसंवृतमैन जगमु नॆव्वडु दनसंप्रकाश-
मुन वॆलिगिंचुचु मूडु भंगुल रजस्सत्त्व तमोगुण सहितुडगुचु
गल्पिचु रक्षिचु गडपट प्रहरिंचु नॆव्वडाद्युडु सर्वहेतुडगुचु
शोभितुंडै स्वयंज्योतियै यॊक्कट विलसिल्लु नॆव्वडु विभुत मॆरसि

आ. समयमैन मानसप्राण बुद्धींद्रि, -यमुलतोड नॆव्वडलघुमहिम
नडरु नट्टि सच्चिदानंदमयुनकु, महितभक्ति ने नमस्करिंतु ॥ 87 ॥

व. देवा ! नीवु मुख्यप्राणंबगुटं जेसि प्रजापतिवि। मनोबुद्धिचित्तेंद्रियं-बुलकु नधीश्वरुंडवु। महाभूतगणंबुलकु नाधारभूतुंडवु। त्रयीतनुवुनं ग्रतुवुलु विस्तरिंतुवु। सकलविद्यलु नीतनुवु। सर्वार्थसाधकुलकु साधनीयुंडवु। आत्मनिष्ठागरिष्ठुलकु ध्येयंबगु नात्मवु। काल-मयुंडवै जनुलकु नायुर्नाशंबु सेयुदुवु। ज्ञानविज्ञानमूर्तिवि। आद्यंत-रहितुंडवु। अंतरात्मवु। मूडुमूर्तुलकु मूलंबगु परमात्मवु।

---

देखकर प्रणाम किया। ८५ [व.] इस प्रकार दैत्येश्वर ने आकाश में स्थित हंसवाहनवाले (ब्रह्मा) को, धारुणीतल पर दंडप्रणाम करके, संतोष के बाष्प-सलिल से संवर्द्धित पुलकांकुर वाला बनकर, अंजली जोड़कर, कंजगर्भ पर दृष्टि रखकर गद्गदस्वर से इस प्रकार स्तुति की। ८६ [सी.] कल्पांत में अंधकार से संवृत बननेवाले जगत को जो अपने प्रकाश से कांतिमय करते हुए, तीन प्रकार के गुणों-रजस्सत्त्वतमोगुणों से सहित होते हुए, सृष्टि, स्थिति और लय का कारण होते हुए, अंत में संहार कर देता है और जो आद्य है, सर्व (सृष्टि) का हेतु होकर, शोभित और स्वयंज्योती बनकर, विभुता से विराजमान है, [आ.] समय आने पर मानस, प्राण, बुद्धि, इंद्रियो से जो अलघु महिमा से रहता है, उस सच्चिदानंद-मय को मैं महित भक्ति से नमस्कार करता हूँ। ८७ [व.] हे देव ! मुख्यप्राण होने से तुम प्रजापती हो ! मन-बुद्धि-चित्त-इंद्रियों के अधीश्वर हो। महाभूतगणों के लिए आधारभूत हो। त्रयीतनु से क्रतुओं का विस्तरण करते हो। सकल विद्याएँ तुम्हारे शरीर हैं। सर्वार्थ-साधकों के लिए तुम साधनीय हो। आत्म-निष्ठा-गरिष्ठों के ध्येय रूपी आत्मा हो। कालमय बनकर प्रजाओं की आयु का नाश करते हो। ज्ञान-विज्ञान की मूर्ति हो। आद्यंत-रहित हो। अंतरात्मा हो। त्रिमूर्तियों

जीवलोकंबुनकु जीवात्मवु। सर्वंबुनु नीव। नीवु गानिदि लेशंबुनु लेवु। व्यक्तुंडवु गाक परमात्मवै, पुराणपुरुषुंडवै, यनंतुंडवैन नीवु प्राणेंद्रिय-मनोबुद्धिगुणंबुल नंगीकरिंचि, परमेष्ठिपदविशेषंबुन निलिचि, स्थूल-शरीरंबुनं जेसि यितयु प्रपंचितुवु। भगवंतुंडवैन नीकु म्रोक्कद। अनि मरियु निट्लनियें ॥ 88 ॥

कं. कोरिनवारल कोर्कुल् नेरुपुतो निच्चि मनुप नीक्रिय नन्युल्
नेररु करुणाकर! ने, गोरेंद नीविच्चेदेनि कोरिक लभवा! ॥ 89 ॥

शा. गालि गुंभिनि नग्नि नंबुवुल नाकाशस्थलिन् दिक्कुलन्
रेलन् धस्रमुलन् दमःप्रभल भूरिग्राहरक्षोमृग-
व्यालादित्यनरादिजंतुकलहव्याप्तिन् समस्तास्त्रश-
स्त्रालिन् मृत्युवु लेनि जीवनमु लोकाधीश! यिप्पिपवे! ॥ 90 ॥

## अध्यायमु—४

व. अनि मरियु रणंबुलंदु दन कॅदुरुलेनि शौर्यंबुनु, लोकपालकुल नतिक्रमिंचु महिमयुन्, भुवनत्रयविजयंबुनु हिरण्यकशिपुंडु गोरिन नतनि तपंबुनकु

---

के मूल रूपी परमात्मा हो। जीवलोक के लिए जीवात्मा हो। सर्व (सब कुछ) तुम ही हो। ऐसा लेशमात्र भी नहीं है जो तुम नहीं हो। व्यक्त न होकर (दिखाई न देकर), परमात्मा बनकर, पुराणपुरुष होकर अनंत बने हुए तुम प्राणेंद्रियमनोबुद्धिगुणों को अंगीकार (स्वीकार) करके, परमेष्ठी के पदविशेष (विशिष्ट पद) पर रहकर, स्थूल शरीर के द्वारा यह सब प्रपंचित (सृजन) करते हो। भगवान हो। तुमको प्रणाम करता हूँ। [ऐसा] कहकर फिर [वह] यों बोला। ८८ [कं.] हे करुणाकर! हे अभव! कामनाएँ रखनेवालों की इच्छाओं को निपुणता से पूरा कर सफल करने में [तुम्हारे समान] अन्य कोई समर्थ नहीं है। अगर तुम दोगे तो मैं इच्छाएँ (वर) माँगूंगा। ८९ [शा.] हे लोकाधीश! हवा, कुंभिनी (भूमि), अग्नि, अंबु (जल), आकाश, स्थल पर, दिशाओं में, रात, दिन, अँधेरा, उजाला, बड़े मकर, राक्षस, मृग (जंतु), व्याल (सर्प), आनित्य, नर आदि जतुओं के साथ संघर्ष से, समस्त अस्त्र और शस्त्रों के समूह से मृत्यु-रहित जीवन प्रदान करो न! ९०

## अध्याय—४

[व.] [ऐसा] कहकर फिर उसने युद्धों में आसान शौर्य, लो का अतिक्रमण (विजित) करनेवाली महिमा, भुवनत्रय-विजय (

संतोषिंचि, दुर्लभंबुलयिन वरंबुलन्नियु निच्चि करुणिंचि विरिंचि यिट्लनियॆ ॥ 91 ॥

शा. अन्ना ! कश्यपपुत्र ! दुर्लभमु लीयर्थंबुलॆव्वारिकिन्
मुन्नॆव्वारलु गोररी वरमुलन् मोदिंचितिन् नी यॆडन्
नन्नुंगोरिन वॆल्ल निच्चिति प्रवीणत्वंबुतो बुद्धि सं-
पन्नत्वंबुन नुंडुमी ! सुमतिवै भद्रैकशीलुंडवै ॥ 92 ॥

व. अनि यिट्लमोघंबुलयिन वरंबुलिच्चि, दितिनंदनु चेतं बूजितुंडै यरविंदसंभवुंडु बृंदारक संदोह वंद्यमानुंडगुचु निजमंदिरंबुनकुं जनियॆनु। इव्विधंम्मुन निलिंपाराति वरपरंपरलु संपादिंचुकॊनि ॥ 93 ॥

कं. सोदरु जंपिन पगकै, यादर मिंचुकयु लेक यसुरेंद्रुडु कं-
जोदरु पै वैरमु दु, र्मदिरतुंडगुचु जेसॆ मनुजाधीशा ! ॥ 94 ॥

सी. ऒकनाडु गंधर्वयूथंबु वरिमार्चु, दिविजुल नॊकनाडु वॆरल दोलु,
भुजगुल नॊकनाडु भोगंबुलकु बापु, ग्रहमुल नॊकनाडु गट्टिवैचु
नॊकनाडु यक्षुल नुग्रत दंडिंचु, नॊकनाडु विहगुल नॊडिसिपट्टु
नॊकनाडु सिद्धुल नोडिंचु, वंधिंचु मनुजुल नॊकनाडु मदमडंचु

ते. गडिमि नॊकनाडु किन्नरखचरसाध्य
चारणप्रेतभूत पिशाचवन्य

---

पर विजय) आदि मांगी। [मांगने पर] उसके तप से संतुष्ट होकर, उसको सभी दुर्लभ वरों को प्रदान कर, करुणा से विरिंचि (ब्रह्मा) ने ऐसा कहा। ९१ [शा.] तात ! कश्यपपुत्र ! अन्य लोगों के लिए ये सब विषय (वर) दुर्लभ हैं। पहले किसी ने इन वरों को नहीं चाहा (मांगा)। तुम्हारे प्रति मैं संतुष्ट हुआ और तुमने जो मांगा मैंने दे दिया। प्रवीणता और बुद्धि की संपन्नता से सुमति और भद्रैकशील (मात्र भलाई चाहनेवाले) बनकर रहो। ९२ [व.] इस प्रकार अमोघ (अचूक) वर प्रदान करके, दितिनंदन से पूजित होकर, अरविंदसंभव (ब्रह्मा) बृंदारक (देवताओं) के संदोह (समूह) से वंदित होते हुए, अपने मंदिर चला गया। दानव भी वरपरंपराओं को प्राप्त करके ९३ [कं.] हे राजन ! अपने भाई के मारने से, असुरेंद्र ने दुर्मद में रत होकर कंजोदर (विष्णु) पर तनिक भी आदर न रखकर, वैर-भाव बढ़ा लिया। ९४ [सी.] दितितनूज (हिरण्यकशिपु) एक दिन गंधर्वों के समूह को मारता, एक दिन दिविजों को भगाता, एक दिन भुजगों के भोगों (सुखों) का अपहरण करता, एक दिन ग्रहों को वंदी बनाता, उग्रता से एक दिन यक्षों को दंड देता, एक दिन विहंगों को झपटकर पकड़ता, एक दिन सिद्धों को जीतकर वंदी बनाता, मनुजों के मद का एक दिन दमन करता,

सत्त्वविद्याधरादुल संहरिंचु
दितितनूजुंडु दुस्सहतेजुडगुचु ॥ 95 ॥

कं. अट्टळ्ळतोड गोटलु
कट्टलुकं गूल द्रोचि क्रव्यादुलतो
जुट्टु विडिसि दिक्पालुर
पट्टणमुलु गोनियें नतडु बलमुन नधिपा ! ॥ 96 ॥

कं. कृशलै संप्रापित दु-
र्दशलै सर्वंकषोग्रदैतेयाज्ञा-
वशलै निशलुनु दिवमुलु
दिशलेल्लनु गट्टुवडियें दीनत ननघा ! ॥ 97 ॥

व. मरियु, नव्दानवेंद्रुंडु विद्रुमसोपानंबुलुनु, मरकत-मणिमय प्रदेशंबुलुनु, वैडूर्यरत्नस्तंभ समुदयंबुलुनु, जंद्रिकासन्निभस्फटिक संघटित कुड्यंबुलुनु, पद्मराग-मणिपीठकनककवाट गेहळिविटंकवातायनंबुलुनु, विलंबमान मुक्ताफलदाम वितानशोभितधवळपर्यंकंबुलुनु विविधविचित्र विमानं-बुलुनु, निरंतर सुरभि कुसुम फल भरित पादप महोद्यानंबुलुनु, हेमारविंदसौगंधिक बंधुर सरोवरंबुलुनु, रमणीयरत्नप्रासादविशेषं-बुलुनु, मनोहरपरिमळशीतल मंदमारुतंबुलुनु, मृदुमधुरनिनदकीरकोकिल-

[ते.] एक दिन साहस से किन्नर, खचर, साध्य, चारण, भूत, प्रेत, पिशाच, वन्यसत्त्व और विद्याधरों का संहार करता। ९५ [कं.] उसने बहुत क्रोध से दिक्पालों के क़िलों को गिराकर, घेरकर, क्रव्यादों (राक्षसों) के साथ उनके पट्टणों को बल से वश में कर लेता। ९६ [कं.] सर्वंकष उग्र दैत्य की आज्ञा के अधीन होकर कृश बनकर, दुर्दशा की संप्राप्ति से दिन, रात और दिशाएँ दीनता से [राक्षस के वश में] बंधित हो गईं। ९७ [व.] फिर उस दानवेंद्र ने प्रवाल-सोपान, मरकत मणियों से भरित प्रदेश, वैदूर्य और रत्नों से बने हुए खंभों के समुदय (समूह), चंद्रिका (चाँदनी) के समान स्फटिकों से संघटित (निर्मित) कुड्य (दीवारें), पद्मराग के बने हुए पीठ, कनक-कवाट और गेहलियाँ (देहलियाँ), विटंक और खिड़कियाँ, लटकते हुए मुक्ताफल-दाम (-समूह) के वितान से सुशोभित धवल पर्यंक (पलंग), विविध विचित्र विमान, निरंतर सुरभित कुसुम और फलभरित पादपों (वृक्षों) से युक्त महोद्यान, हेम-अरविंद (स्वर्ण-कमल) और सौगंधित पुष्पों से बंधुर सरोवर, रमणीय रत्नों के बने हुए प्रासाद-विशेष, मनोहर-परिमल से युक्त शीतल मंद मारुत, मृदुमधुर निनाद करनेवाले कीर और कोकिल के कोलाहल से युक्त होकर, विश्वकर्मा से निर्मित, त्रैलोक्य राज्य-लक्ष्मी से शोभित महेंद्र भवन में

कुलकोलाहलंबुलुनु, गलिगि विश्वकर्मनिर्मितंबै त्रैलोक्यराज्यलक्ष्मी-
शोभितंबैन महेंद्रभवनंबु सोच्चि ॥ 98 ॥

म. दितिपुत्रुंडु जगत्त्रयैकविभुडै देवेंद्रसिंहासनो-
द्धतुंडै युंड हराच्युतांबुजसंभवुल् दप्पंग भीतिन् समा
गतुलै तक्किन यक्षकिन्नरमरुद्गंधर्वसिद्धादुला-
नतुलै कानुकलिच्चि कोल्तुरतनिन् माना प्रकारंबुलन् ॥ 99 ॥

शा. ए दिक्पालुर जूचि नेडलुगुनो ? ये वेल्पु बाधिंचुनो ?
ये दिग्भागमु मीद दाडि चनुनो ? ये प्राणुलं जंपुनो ?
यी दैत्येश्वरुडंचु नोडोरुलु दारिद्रादुलास्थान भू
वेदिन् मॅल्लन निक्कि चूतुरु भयाविर्भूत रोमांचुलै ॥ 100 ॥

सी. कोलाहलमु मानि कोलुवुडी सुरलार ! तलगि दीविंपुडी तपसुलार !
फणुलेत्तकुडी निक्कि पन्नगेंद्रमुलार ! प्रणतुलै चनुडु दिक्पालुलार !
गानंबु सेयुडु गंधर्ववरुलार ! .संदडि वडकुडु साध्युलार !
आडुडु नृत्यंबु लप्सरोजनुलार ! चेरिक म्रोक्कुडु सिद्धुलार !

ते. शुद्धकर्पूरवासित सुरभिमधुर
भव्यनूतन मैरेय पानजनित

---

प्रवेश करके, ९८ [म.] दितिसुत के तीन जगतों के एक मात्र विभु (राजा) बनकर, देवेंद्र के सिंहासन पर उद्धत होकर बैठने पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर —इन तीनों को छोड़कर शेष सब यक्ष, किन्नर, मरुत्, गंधर्व, सिद्ध आदि भीति से आनत होकर, उपहार (भेंट) देकर नाना प्रकार से उसकी सेवाएँ करते है। ९९ [शा.] इंद्र आदि लोग भय-जनित रोमांच वाले होकर, धीरे से आस्थान (सभा) की वेदी (सिंहासन) के पीछे से छिप-छिपकर देखते रहते हैं कि [वह दैत्येश्वर] किन दिक्पालों पर आज क्रोधित होगा ? कौन से देवता को बंधित करेगा ? किस दिग्भाग पर आज आक्रमण करेगा ? किन प्राणियों को मार डालेगा ? १०० [सी.] हे राजन् ! चर (गुप्तचर) लोग कहते हैं कि हे सुरलोगो ! कोलाहल छोड़कर दरबार में आइये। तपसियो ! हटकर आशीर्वाद दीजिए। पन्नगेंद्रो ! अपने फणों को ऊपर मत उठाइए। दिक्पालो ! प्रणत होकर जाइए। गंधर्व लोगो ! हमारे राजा के गीत गाइए। साध्यो ! बड़बड़ाना बंद करो। अप्सरस्त्रियो ! नृत्य करो। सिद्ध-लोगो ! मिल आकर प्रणाम कीजिए। [ते.] अमरारि (अमर लोगों का शत्रु— हिरण्यकशिपु) शुद्ध कर्पूर से सुवासित मधुर और भव्य नूतन मैरेय (मद्य) के पान से जनित (उत्पन्न) सुखविलासिता के नशे में है। कहीं भी शांति नही है। (क्योंकि सभी देवता हिरण्यकशिपु के सामने

सुखविलीनत नमरारि सौक्किनाडु
शांति लेदंडू निच्चलु जाए लधिप ! ॥ 101 ॥

शा. लीलोद्यानलतानिवासमुललो लीलावतीयुक्तुड
हालापानविवर्धमानमदलोलावृत्त ताम्राक्षुडै
केळि देलग नेनु दुंबुरुडु संगीतप्रसंगंबुलन्
वालायंबु गरंग जेयुदुमु देवद्वेषि नुर्वीश्वरा ! ॥ 102 ॥

कं. यागमुलु बुधुलु धरणी,-भागमुलं जेयुचुंड बड्तेंचि हवि-
र्भागमुलु दान कर्कोनु, भागिपडु दैत्युडमरसंघंबुनकुन् ॥ 103 ॥

सी. सकलमहाद्वीपसहितविश्वंभरास्थलिनि दुन्नकपंडु सस्यचयमु
कामधेन्वादुलकरणि नर्थुलु गोरुकोर्कुलु गगनंबु गुरियुचुंडु
वननिधुलेडुनु वाहिनीसंदोहमुलुनु वीचुल रत्नमुलु वहिंचु
नुर्वीरुहंबुलु नीक्ककालंबुन नखिलर्तु गुणमुल नतिशयिल्लु

ते. नंबुसंपूरितद्रोणुलगुचु नीप्पु
बर्वतंबुलु सर्वदिक्पालविविध
गुणमुलेल्लनु दानें कैकोनुचु दैत्य
विभुडु त्रैलोक्य राज्य संवृद्धिनुंड ॥ 104 ॥

व. इट्लु सकल दिक्कुल निर्जिचि, लोकैकनायकुंडै, तन यिच्छाप्रकारंबुन

---

ही खड़े हैं।) १०१ [शा.] हे उर्वीश्वर ! (राजन् !) क्रीडोद्यान के लता-निवासों (-कुंजों) में लीलावती के साथ हाला (मधु)-पान से मदमत्त और लीलावृत्त ताम्राक्ष (मधुपान से लाल बनी हुई आँखों वाला) बनकर, जब सुख की केली में रहता है, तब मैं और तुंबुर सदा संगीत प्रसंगों से देवद्वेषी के मन को रंजित किया करते हैं। १०२ [कं.] बुधों के धरणी-भागों (-प्रदेशों) पर यागों के करते समय दैत्य [हिरण्यकशिपु] आकर हविर्भाग अमरलोगों को बाँट देने के बजाय स्वयं ले लेता। १०३ [सी.] [हिरण्यकशिपु के भय से] सकल महाद्वीपों सहित विश्वंभरा-स्थली (-भूमि) हल चलाए बिना ही सस्यचय फलती है। कामधेनु आदि की भाँति अर्थी लोगों की इच्छाओं को आकाश बरसाता (पूरी करता) है। सातों वननिधियाँ (समुद्र), वाहिनी-संदोह (नदियों के समूह) लहरों में रत्नों को वहन करते हैं। उर्वीरुह (वृक्ष) एक ही काल में समस्त ऋतुओं के गुणों से संपन्न रहते है। [ते.] अंबु (जल) से संपूरित द्रोणियों से पर्वत शोभायमान रहते हैं। त्रैलोक्य राजा की संवृद्धि से दैत्यविभु सकल दिक्पालों के विविध-गुणों (-भागों) को स्वयं स्वीकार करता है। १०४ [व.] इस प्रकार सकल दिशाओं को निर्जित

निंद्रियसुखंबुलनुभविंपुचुं, दनियक शास्त्र मार्गंबु नतिक्रमिंचि, विरिंचि-वर-जनित-दुर्वार गर्वातिरेकंबुन, सुपर्वाराति यैश्वर्यवंतुंडै पॆद्दकालंबु राज्यंबु सेयुचुंड ॥ 105 ॥

उ. ऎन्नडु माकु दिक्कु गल ? वॆन्नडु दैत्युनि बाध मानु ? मे
मॆन्नडु वृद्धि वॊंदगल ? मॆव्वडु रक्षकु ? लंचु देवता
किन्नर सिद्ध साध्य मुनि खेचरनायकु लाश्रयिंचिरा-
पन्नगतल्पु भूरि भवबंधविमोचनु बद्मलोचनुन् ॥ 106 ॥

व. इट्लु दानवेंद्रुनि युग्रदंडंबुनकु वॆरचि यनन्यशरण्युलै रहस्यंबुन नंदरुं गूडिकॊनि ॥ 107 ॥

उ. ऎक्कड नुन्नवाडु ? जगदीश्वरु डात्ममयुंडु माधवुं-
डॆक्कडिकेगॆ ? शांतुलु मुनीशुलु भिक्षुलु रारु ग्रम्मरन् ?
दिक्कुलकॆल्ल नॆक्कुडु तुदि जॊर दिक्कगु नट्टि दिक्कुकुन्
म्रॊक्कॆद मेमु हस्तयुगमुल् मुकुळिंचि मदीयरक्षकुन् ॥ 108 ॥

व. अनि मरियु, नाहार-निद्रलु मानि, चित्तंबुलु परायत्तंबुलु गानीक समाहित-बुद्धुलै भगवंतुंडुनु, महापुरुषुंडुनु, महात्मुंडुनु, विशुद्धज्ञानानंदमयुंडुनैन

(जीत) कर, लोकैकनायक बनकर, अपनी इच्छा से इंद्रिय-सुख भोगते हुए, संतृप्त न होकर, शास्त्र-मार्ग का अतिक्रमण करके, विरिंचि के दिये हुए वरों के कारण उत्पन्न दुर्वार गर्व से सुपर्व-अराति (देवताओं का शत्रु) ऐश्वर्यवान बनकर, अनल्पकाल (बहुत समय तक) राज्य करते समय, १०५ [उ.] देवता, किन्नर, सिद्ध, साध्य, मुनि और खेचरों के नायक —सबने यह कहते हुए पन्नगतल्प वाले (विष्णु), भूरिभवबंधविमोचन करनेवाले, पद्मलोचन वाले का आश्रय लिया (शरण में गये) कि किस दिन हमारी सुगति होगी ? किस दिन दैत्य की बाधा (आफ़त) दूर होगी ? हमारी किस दिन वृद्धि होगी ? हमारा कौन रक्षक है ? १०६ [व.] इस प्रकार दानवेंद्र के उग्र दंड (सज़ा) की भीति से अनन्य शरण्य वाले होकर, सब गुप्तस्थान पर (या गुप्त रूप से) इकट्ठे होकर, १०७ [उ.] कहाँ है वह आत्ममय, जगदीश्वर ? माधव कहाँ गया ? शांतजन, मुनीश्वर और भिक्षु (लोग) फिर कभी नहीं आयेंगे ? (फिर से यज्ञ, याग आदि कार्य धर्म-सस्थापन के लिए नही होंगे ?) सब दिशाओं (गतियों) के लिए अधिक (श्रेष्ठ गति, ऐसी गति सर्वश्रेष्ठ शरण्य) हमारे रक्षक को हस्तयुग मुकुलित कर हम प्रणाम करते हैं। १०८ [व.] [ऐसा] कहकर और, निद्रा और आहार छोड़कर, [देवताओं के] चित्त को परायत्त (पराधीन) न होने देकर, समाहित बुद्धि वाले बनकर, भगवान, महापुरुष, विशुद्ध ज्ञानानंदमय उस हृषीकेश का ध्यान करते समय, मेघ की गर्जना के समान

हृषीकेशुनकु नमस्करिंचुचुन्नयड, मेघरवसमानगंभीरनिनदंबुन दिशलु म्रोयिंचुचु, साधुलकु नभयंबु गाविंचुचु, दृश्यमानुंडु गाक परमेश्वरुंडैन हरि यिट्लनियें ॥ 109 ॥

म. भयमुं जेंदकुडय्य ! निर्जरवरुल् भद्रंबु मीकय्येंडुन्
जयमुन् लाभमु भूतसंततिकि मत्संदर्शनप्राप्ति न
व्ययमै चेरु नेरुंगुडुन् दितिसुतव्यापार भाषाविप-
ययमुं गालमु गूड जंपेद जनुंडंदाक मीत्रोवलन् ॥ 110 ॥

आ. शुद्धसाधुलंदु सुरलंदु श्रुतुलंदु, गोवुलंदु विप्रकोटियंदु
धर्मपदवियंदु दगिलि ना यंदु वा, डेन्नडलुगु नाडे हिंस नोंदु ॥ 111 ॥

कं. कन्नकोडुकु शमदमसं, -पन्नुडु निर्वैरुडनक प्रह्लादुनि वा
डेन्नडु रोषंबुन ना, पन्नत नोंदिच नाडे पट्टि वधितुन् ॥ 112 ॥

शा. वेधोदत्त वरप्रसादगरिमन् वीडितवाडै मिमुं
बाधंबेट्टुचुन्नवाडनि मदिन् भावितु भाविंचि ने
साधिपं दरि कादु कावुन गडुन् सैरिंचितिन् मीदटन्
साधितुन् सुरलार ! नेडु सनुडा ! शंकिप मीकेटिकिन् ? ॥ 113 ॥

व. अनि इट्लु दनुजमर्दनुंडु निर्देशिंचिन निर्लिपुलु गुंपुलुगोनि म्रोक्कि

---

गंभीर निनाद से [सब] देवताओं को मुखरित करते हुए, साधुओं को अभय प्रदान करते हुए दृश्यमान न होकर (दिखाई न पड़कर), उस हरि ने ऐसा कहा। १०९ [म.] निर्जर लोगो ! डरो मत। तुम्हारा भद्र (कल्याण) होगा। मेरे दर्शन की संप्राप्ति से भूत की संतति को जय और लाभ अव्यय होकर मिलेगे। दितिसुत के व्यापार और भाषा के विपर्यय को समय आने पर समाप्त कर दूंगा। तब तक अपने रास्ते जाओ। ११० [आ.] शुद्ध साधु लोगो पर, सुरों पर, श्रुतियों पर, गायों पर, विप्रकोटि पर, धर्म-निर्वहण पर और लगकर मेरे प्रति जब वह क्रोधित होगा, तभी उसकी हिंसा (नाश) होगी। १११ [कं.] अपने (सगे) पुत्र को, प्रह्लाद को, शमदमसंपन्न और निर्वैर भाव वाले को न मानकर, जिस दिन वह रोष से आपन्न बनायेगा (दंड देगा)। उसी दिन उसे पकड़कर [उसका] वध करूँगा। ११२ [शा.] सुरलोगो ! मैं ऐसा मानता हूँ कि वेधा (ब्रह्मा) से दिये गये वरों के प्रसाद की गरिमा से वह इतना [दुष्ट] बनकर आप सबको बाधित कर रहा है। मानकर भी उसका वध करने का समय नहीं है, इसलिए सहन किया है। भविष्य में जो करना है, करूँगा। आज जाइए। आपको शंका करना ही क्यों ? ११३ [व.] इस प्रकार दनुजमर्दन (विष्णु) से निर्देशित होकर, निर्लिप (देवता)

रक्कसुंडु ऋगुट निक्कंबनि तम तम दिक्कुलकुं जनिरि। हिरण्य-
कशिपुनकु विचित्रचरित्रुलु नलुवुरु पुत्रुलुद्‌भविंचिरि। अंदु ॥ 114 ॥

प्रह्लाद चरित्र

सी. तनयंदु सकल भूतमुलंदु नॊक भंगि समहितत्वंबुन वरगुवाडु
पॆद्दल बॊडगन्न भृत्युनि कैवडि चेरि नमस्कृतुल् सेयुवाडु
कन्नुदोयिकि नन्यकांतलड्डंबैन मातृभावमु सेसि मरलुवाडु
तल्लिदंड्रुल भंगि धर्मवत्सलतन् दीनुल गाव र्जितिंचुवाडु

ते. समुलयॆड सोदरस्थिति जरुपुवाडु
दैवतमुलंचु गुरुवुल दलचुवाडु
लीलयंदुनु बॊंकुलु लेनिवाडु
ललितमर्यादुडैन प्रह्लादु डधिप ! ॥ 115 ॥

व. मरियुन ॥ 116 ॥

सी. आकार जन्मविद्यार्थवरिष्ठुडै गर्वसंस्तंभ संगतुडु गाडु
विविधमहानेकविषयसंपन्नुडै पंचेंद्रियमुलचे बट्टुवडडु

---

झुंड बाँधकर, उस भगवान को प्रणाम करके, राक्षस के मर जाने को तथ्य मानकर, अपने-अपने स्थान पर चले गये। हिरण्यकशिपु के विचित्र चरित्र वाले चार पुत्र हुए। उनमें, ११४

प्रह्लाद का चरित्र (कथा)

[सी.] हे अधिप (राजन) ! अपने पर और अखिल भूतों पर (समस्त प्राणियों पर) एक ही प्रकार के समभाव से रहनेवाला, बड़े लोगों के दिखाई पड़ने पर भृत्य (सेवक) के समान पास जाकर नमस्कृतियाँ (प्रणाम) करनेवाला, आँखो के सामने अन्य स्त्रियों के आ जाने पर, मातृ भावना से फिर जानेवाला, दीन लोगों की धर्मवत्सलता से, माता और पिता के समान रक्षा करने की चिंता करनेवाला, [ते.] समों (समान आयु, स्थिति-वालों) के प्रति सहोदर भाव से व्यवहार करनेवाला, गुरुओं को देवता माननेवाला, खेल में भी झूठ नहीं बोलनेवाला था, ललित मर्यादा से युक्त था प्रह्लाद। ११५ [व.] और फिर ११६ [सी.] हे धरणीनाथ (राजन) ! आकार, जन्म, विद्या, अर्थ (संपत्ति) —इन सबमें वरिष्ठ (श्रेष्ठ) होकर भी [प्रह्लाद] गर्व के संगति वाला नहीं है। विविध की (अनेकानेक) प्रकार के विषयों से सुसंपन्न होकर भी पंचेंद्रियों के वश में नहीं आया। भव्य वय (उमर) और बल के प्रभाव से उपेत (युक्त) होकर

भव्यवयोबलप्रभावोपेतुडै कामरोषादुल ग्रंदुकोनडु
कामिनीप्रमुख भोगमुलेन्न गलिगिन व्यसनसंसक्ति नावंक बोडु

आ. विश्वमंदु गन्न विन्न यर्थमुलंदु, वस्तु दृष्टि जेसि वांछ यिडडु
धरणीनाथ ! दैत्यतनयुंडु हरिपर, तंत्रुडै हतान्यतंत्रुडगुचु ॥ 117 ॥

आ. सद्गुणंबुलॆल्ल संघंबुलै वच्चि
यसुरराजतनयुनंदु निलिच्चि
पासि चनवु विष्णु बायनि विधमुन
नॆम्मि दगिलियुंडु निर्मलात्म ! ॥ 118 ॥

म. पगवारैन सुरेंद्रुलुन् सभललो ब्रह्लाद संकाशुलन्
सुगुणोपेतुल नॆंडु नेमॆरुग मंचुन् वृत्तबंधंबुलोन्
बॊगडं जॊत्तुरु सत्कवींद्रुलक्रियन् भूनाथ ! मी बोटि स-
द्भगवद्भक्तुलु दैत्यराजतनयुं बाटिंचि कीर्तिपरे ! ॥ 119 ॥

कं. गुणनिधियगु प्रह्लादुनि
गुणमुलनेकमुलु गलवु गुरुकालमुनन्
गणुतिप नशक्यंबुलु
फणिपतिकि बृहस्पतिकिनि भाषापतिकिन् ॥ 120 ॥

---

भी, काम, रोष आदि [भावों] में न पड़ा। कामिनी (स्त्री-सुख) आदि अनेक [सुख] भोगों के होने पर भी व्यसन-संसक्ति से उस ओर नहीं गया। [आ.] विश्व में देखी हुई और सुनी हुई बातों के प्रति वस्तु-दृष्टि से वांछा (इच्छा) नही रखता। हरि-परतन्त्र (-लग्न) होकर, हत-अन्य तंत्र वाला (इतर विषयों के वंधनो से मुक्त) होकर दैत्यतनय (प्रह्लाद) ११७ [आ.] हे निर्मलात्मा वाले ! सभी सद्गुण झुंड बाँधकर असुर-राजतनय में टिककर रह गये। जैसे उसका मन विष्णु को छोड़ता नहीं, वैसे ही [वे सद्गुण प्रह्लाद को] न छोड़कर, प्रेम से लगे रहते हैं। ११८ [म.] हे भूनाथ ! शत्रु होकर भी, सुरेंद्र अपनी-अपनी सभाओं में ऐसा कहकर वृत्तवंधों (काव्यों) में, सत्कवींद्रों की तरह प्रह्लाद की प्रशंसा करने लगते हैं कि प्रह्लाद के समान सुगुणवान को हम कहीं भी नहीं जानते। (प्रह्लाद की प्रशंसा में सुरेंद्र भी सत्कवींद्र बन गये।) सत् भगवद्भक्त [जन] तो दैत्यराजतनय को मानकर [उसकी] प्रशंसा नहीं करेंगे ? (अवश्य करेंगे।) ११९ [कं.] गुणनिधि उस प्रह्लाद में अनेक गुण हैं। गुरुकाल (लबी अवधि लेकर भी) उन गुणों को गिनना फणिपती (आदिशेष), बृहस्पति (इंद्र का गुरु) और भाषापति (ब्रह्मा) के लिए भी अशक्य (शक्ति से परे) है। १२० [कं.] इस प्रकार सद्गुणों में

व. इट्लु सद्गुणगरिष्ठुंडयिन प्रह्लादुंडु भगवंतुंडयिन वासुदेवुनियंदु सहज-
संवर्धमाननिरंतर ध्यानरतुंडै ॥ 121 ॥

सी. श्रीवल्लभुंडु दन्नु जेरिनयट्लैन जॆलिकाडु नॆव्वर जेरमरचु
नसुरारि दन ग्रोल नाडिनयट्लैन नसुरबालुर तोड नाड मरचु
भक्तवत्सलुडु संभाषिंचिनट्लैन वरभाषलकु माऱुपलुक मरचु
सुरवंद्यु दनलोन जूचिनयट्लैन जॊक्कि समस्तंबु जूड मरचु

ते. हरिपदांभोजयुग चिंतनामृतमुन
नंतरंगंबु निंडिनट्लैन नतडु
नित्यपरिपूर्णुडगुचु नन्नियुनु मऱचि
जडतलेकयुनुंडुनु जडुनि भंगि ॥ 122 ॥

शा. पानीयंबुलु द्रावुचुन् गुडुचुचुन् भाषिंपुचुन् हास लो-
ला निद्रादुलु सेयुचुन् दिरुगुचुन् लक्षिंपुचुन् संतत
श्रीनारायण पादपद्मचिंतामृतास्वाद सं-
धानुंडै मऱचेन् सुरारिसुतुडेतद्विश्वमुन् भूवरा ! ॥ 123 ॥

सी. वैकुंठचिंताविवर्जितचेष्टुडै यॊक्कडु नेडुचु नॊक्कचोट
नश्रांतहरिभावनारूढचित्तुडै युद्धतुडै पाडु नॊक्कचोट

---

गरिष्ठ (श्रेष्ठ) वह प्रह्लाद भगवान वासुदेव में सहज ही संवर्धमान (वृद्धि पानेवाले), निरंतर के ध्यान में रत होकर, १२१ [सी.] श्रीवल्लभ के अपने पास आने पर (विष्णु को अपने निकट मानकर) किसी भी मित्र से मिलना भूल जाता, असुरारी (विष्णु) के अपने समक्ष खेलने पर (ऐसी अनुभूति होने पर) असुर-बालकों से खेलना भूल जाता, भक्तवत्सल (विष्णु) के साथ संभाषण करने पर (ऐसा लगने पर) अन्यों की बातों का जवाब देना भूल जाता, सुरवंद्य (देवताओं से पूज्य— विष्णु) को अपने में देखकर तन्मय (मस्त) होकर समस्त (सब जगत) को देखना भूल जाता, [ते.] हरि के पदांभोज-युग (चरण-कमलयुगल) के चिंतनामृत से अंतरंग के भर जाने पर वह नित्य परिपूर्ण होते हुए, सबको भूलकर, जड़ता से रहित होकर भी, जड़ के समान रहता। १२२ [शा.] हे भूवर (राजन) ! पानी पीते हुए, खाते हुए, भाषण करते हुए, हँसते हुए, खेलते हुए, निद्रा के समय, फिरते हुए, देखते हुए, सदा श्रीनारायण के पादपद्म के युगल के चिंतन नामक अमृत के आस्वाद का संधान करते हुए सुरारी का सुत (प्रह्लाद) एतत्-विश्व को भूल गया। १२३ [सी.] वैकुंठ [वासी] के चिंतन के [तन्मयत्व से] चेष्टा-विवर्जित होकर, कभी अकेले में रोता, अश्रांत (सदा) हरि-भावना से भरित चित्त से उद्धत होकर कभी गाता। विष्णु —इसके अतिरिक्त कुछ

विष्णुडितिय कानि येरोंडु लेदनि योत्तिलि नगुचुंडु नोक्कचोट
नलिनाक्षुडनु निधानमु गंटि नेडनि युब्बि गंतुलु वचु नोक्कचोट

आ. बलुकु नोक्कचोट बरमेशु गेशवु
प्रणयहर्ष जनितबाष्प सलिल
मिळितपुलकुडै निमोलित नेत्रुडै
योक्कचोट निलिचि यूरकुंडु ॥ 124 ॥

व. इट्लु पूर्वजन्मपरमभागवत संसर्ग समागतंबैन मुकुंदचरणारविंद सेवातिरेकंबुन नखर्वनिर्वाणभावंबु विस्तरिंपुचु नप्पटप्पटिकि दुजनसंसर्ग-निमित्तंबुन दन चित्तंबन्यायत्तंबु गानीक निजायत्तंबु सेयुचु नप्रमत्तुंडुनु संसारनिवृत्तुंडुनु बुधजनविधेयुंडुनु महाभागविधेयुंडुनु सुगुणमणिगरिष्ठुंडुनु बरम भागवत श्रेष्ठुंडुनु गर्मबंधलतालवित्रुंडुनु बवित्रुंडुनुनैन पुत्रनियंदु विरोधिंचि सुरविरोधि यनुकंप लेक चंपं बंपे ननि पलिकिन नारदुनकु धर्मजुंडिट्लनियें ॥ 125 ॥

शा. पुत्रुल् नेर्चिन नेरकुन्न जनकुल् पोषिंतुरेल्लप्पुडुन्
मित्रत्वंबुन बुद्धि सेप्पि दुरितोन्मेषंबु वारिंतुरे-
शत्रुत्वंबु दलंपरिट्टि यॅड ना सौजन्य-रत्नाकरुन्
बुत्रुन् लोकपवित्रु दंड्रि नॅगुलुं बोंदिप नॅट्लोर्चेनो ! ॥ 126 ॥

भी नहीं है, ऐसा मानकर हँसता, नलिनाक्ष नामक निधि आज मुझे मिल गई —ऐसा कहते हुए कभी छलाँगें भरता, [आ.] कभी परमेश (विष्णु) से बातें करता, कभी केशव के प्रति प्रणय और हर्ष से जनित बाष्प-सलिल से पुलकित होकर, निमीलित नेत्रों से यों ही खड़े रहकर, चुप रह जाता। १२४ [व.] इस प्रकार पूर्व जन्म में परम भागवतों (भक्तों) के संसर्ग से समागत होनेवाली मुकुंदचरणारविंद की सेवा के अतिरेक से चित्त को दुर्जन के संसर्ग के निमित्त (कारण) से अन्यायत्त न होने देकर, अपने वश में ही रखकर, अप्रमत्त (सावधान) और संसार-निवृत्त और बुधजनों का विधेय और महाभाग्यशाली और सुगुण रूपी मणिगणों से गरिष्ठ और परम भागवतों में श्रेष्ठ और कर्मबंधन रूपी लता के लिए लवित्र (दराती, खण्डन करनेवाला) और पवित्र अपने पुत्र के प्रति विरोध रखकर, सुरविरोधी (हिरण्यकशिपु) ने अनुकंपा से रहित होकर, (निर्दय बनकर) उसको मारने का आदेश दिया। ऐसा कहने पर नारद से धर्मनंदन ने यों कहा। १२५ [शा.] पुत्र [विद्याएँ] सीखें या न सीखें, पिता अपने पुत्रों का सदा पोषण करते हैं। मित्रत्व से सीख देकर पाप कार्यों के उन्मेष का निवारण करते हैं। अपनी संतान के प्रति कभी शत्रुत्व नहीं रखते। [पिताओं का स्वभाव ऐसा होता है] ऐसे समय पिता

उ. बालु, प्रभाविशालु, हरिपादपयोरुहचिंतनक्रिया-
लोलु, गृपाळु, साधुगुरुलोक पदानतफालु, निर्मल
श्रीलु, समस्तसभ्यनुतशीलु, विखंडितमोहवल्लिका
जालु, नदेल तंड्रि वडि जंपग वंपॆ ? मुनींद्र ! चॆप्पवे ॥ 127 ॥

## अध्यायमु—५

व. अनिन नारदुं डिट्लनियॆं ॥ 128 ॥

शा. लभ्यंबैन सुराधिराजपदमुन् लक्षिप डश्रांतमुन्
सभ्यत्वंबु नुन्नवाडबलुडै जाड्यंबुतो वीडु वि-
द्याभ्यासंबुन गानि तीव्रमति गाडंचुन् विचारिंचि दै-
त्येभ्युंडॊक्कदिनंबुनं बियसुतुन् वीक्षिंचि सोत्कंठुडै ॥ 129 ॥

क. चदुवनि वाडज्ञुंडगु, जदिविन सदसद्विवेकचतुरत गलुगुं
जदुवग वलयुनु जनुलकु,जदिविंचॆद नार्युलॊद्द जदुवुमु तंड्री ! ॥ 130 ॥

व. अनिपलिकि यसुरलोक पुरोहितुंडुनु भगवंतुंडुनु नगु शुक्राचार्यु कॊडुकुल
ब्रचंडवितर्कुलैन जंडामर्कुल राविंचि सत्करिंचि यिट्लनियॆं ॥ 131 ॥

(हिरण्यकशिपु) सौजन्य-रत्नाकर, लोकपवित्र पुत्र को कैसे दंडित कर सका ? १२६ [उ.] हे मुनीद्र ! वालक, प्रभासेविशाल, हरि के पाद-पयोरुह (चरण-कमल) के चिंतन (जप) करने की क्रिया में लीन रहनेवाला, कृपालु, साधु और गुरुजनों के चरणों में अपने फाल (ललाट) को झुकाने वाला, निर्मल गुणसपत्ति वाला, समस्त सभ्य लोगों की प्रशंसा पानेवाला, मोह रूपी वल्लिका (लता)-जाल को खंडित करनेवाला —[ऐसे प्रह्लाद को] पिता ने शीघ्र ही मार डालने को क्यों कहा ? बताओ। १२७

## अध्याय—५

[व.] कहने पर नारद ने ऐसा कहा। १२८ [शा.] इस प्रकार विचार करके कि उपलब्ध हुए सुराधिराजपद की भी वह परवाह नही करता, अश्रांत (सदा) सभ्यता से रहता है, अबल होकर, व्याधिग्रस्त हो रहता है। विद्याभ्यास से ही वह तीव्रमती (तेज बुद्धि वाला) बन सकता है। [ऐसा सोचकर] एक दिन प्रियसुत को देखकर, उत्कंठा से दैत्येभ्य (दैत्यराज हिरण्यकशिपु) ने [यों कहा।] १२९ [कं.] हे तात ! जो नही पढ़ता है वह अज्ञ (मूढ़) बनता है। पढ़ने से सत्, असत् का विवेक और चतुरता प्राप्त होती है। इसलिए [सभी] लोगों को पढ़ना चाहिए। तुम्हें आर्य लोगों के पास पढ़ाऊँगा। पढ़ो। १३० [व.] ऐसा कहकर

शा. अंधप्रक्रिय नुन्नवाडु पलुकंडस्मत्प्रतापक्रिया-
गंधंबिंचुक लेदु मीरु गुरुवुल् कारुण्यचित्तुल् मनो
बंधुल् मान्युलु माकु बॅद्दलु ममुं बाटिंचि यी बालकुन्
ग्रंथंबुल् चदिविंचि नीतिकुशलुं गाविंचि रक्षिपरे ! ॥ 132 ॥

व. अनि पलिकि, वारलकुं ब्रह्लादु नप्पगिंचि तोड्कॉनि पॉंडनिन, वारुनु दनुजराजकुमारुनि गॉनिपोयि, यतनिकि समानवयस्कुलगु सहश्रोतल नसुरकुमारुलं गॉंदरं गूर्चि ॥ 133 ॥

उ. अंचित भक्ति तोड दनुजाधिपु गेहसमीपमुं ब्रवे-
शिंचि मुरारिराजसुतु जेकॉनि शुक्रकुमारकुल् पठि-
पिंचिरि पाठयोग्यमुलु पॅक्कुलु शास्त्रमुलाकुमारु डा-
लिंचि पठिंचॅ नन्नियु जलिंपनि वैष्णवभक्तिपूर्णुडै ॥ 134 ॥

कं. ए पगिदि वारु सॅप्पिन, ना पगिदि जदुवु गानि यट्टिट्टनि या
क्षेपिपडु तानन्नियु, रूपिंचिन मिथ्यलनि निरूढ मनीषन् ॥ 135 ॥

शा. अंतं गॉन्नि दिनंबु लेगिन सुरेंद्राराति शंकान्वित-
स्वांतुंडै निजनंदनुन् गुरुवु ले जाडं बठिंपिंचिरो ?

असुरलोक के पुरोहित और भगवान शुक्राचार्य के पुत्र, प्रचंड़ वितर्क [मति] वाले चंड और अमर्क को बुलवाकर सत्कार करके, ऐसा बोला। १३१ [शा.] [मेरा पुत्र] अंधे के समान बोलता नहीं है। हमारे प्रताप की क्रियाओं की गंध उसमें लेशमात्र भी नहीं है। मेरे समान प्रतापी बिलकुल नहीं है। आप [हमारे] गुरुदेव है। करुणा-युक्त चित्त वाले और मनोबंधु हैं। हमारी [बात] मानकर इस बालक से ग्रंथ पढ़ाकर, नीतिकुशल बनाकर, इसकी रक्षा कीजिए न ! १३२ [व.] ऐसा कहकर, [हिरण्यकशिपु ने] प्रह्लाद को उनके हाथ सौंपकर, 'ले जाइए' कहा तो, वे भी दनुजराजकुमार को ले जाकर, उसके समान वयस्क और सहश्रोता अन्य कुछ असुरबालकों को एकत्र कर, १३३ [उ.] शुक्रकुमारकों ने प्रह्लाद को अत्यंत भक्ति-भाव से दनुजाधिप के गृह के पास के प्रांत में बिठाकर, पढ़ने योग्य कई शास्त्र पढ़ाये। उसने भी निश्चल विष्णु-भक्ति के साथ उन सबको सुनकर पढ़ा। १३४ [कं.] जिस तरह गुरु पढ़ाते, उसी प्रकार [प्रह्लाद] पढ़ता। अपनी निरूढ़ मनीषा (श्रेष्ठ बुद्धि) से उन सबको मिथ्या कर सकते हुए भी, उसने गुरु की पढ़ाई के बारे में आक्षेप नही किया। १३५ [शा.] कुछ दिनों के बीतने पर, सुरेंद्राराती (सुरेंद्र का शत्रु— हिरण्यकशिपु) ने शंकान्वित मन वाला होकर, इस प्रकार सोचा कि निजनदन (अपने पुत्र) को गुरुओं ने कैसा पढ़ाया ? उस भ्रांत [मन वाले] ने क्या और कैसे पढ़ा ? आज

श्रांतुंडेमि पठिंचॆनो ? पिलिचि संभाषिंचि विद्यापरि-
श्रांति जूचॆद गाक नेडनि महासौधांतरासीनुडै ॥ 136 ॥

उ. मोदमुतोड दैत्यकुलमुख्युंडु रम्मनि चीर बंचॆ प्र-
ह्लादकुमारकुन् भवमहार्णवतारकु गामरोष लो-
भादिविरोधिवर्गपरिहारकु गेशवचिंतनामृता-
स्वादकठोरकुन् गलुषजाल महोग्रवनीकुठारकुन् ॥ 137 ॥

व. इट्लु चारुलचेत नाहूयमानुंडै प्रह्लादुंडु सनुदॆंचिन ॥ 138 ॥

शा. उत्साहप्रभुमंत्रशक्तियुतमै युद्योग मारूढ सं-
वित्संपन्नुंडवैतिवे ? चदिविते वेदंबुलुन् शास्त्रमुल् ?
वत्सा ! रम्मनि चेर जीरि कौङ्कुन् वात्सल्यसंपूर्णुडै
युत्संगाग्रमु जेर्चि दानवविभुंडुत्कंठ दीपिंपगन् ॥ 139 ॥

कं. अनुदिनसंतोषणमुलु, जनित श्रम ताप दुःख संशोषणमुल्
तनयुल संभाषणमुलु, जनकुलकुं गर्णयुगळ सद्भूषणमुल् ॥ 140 ॥

व. अनि मरियु बुत्रा ! नीकु नॆय्यदि भद्रंबै युन्नदि ? चॆप्पु मनिन गन्नतंड्रिकि
प्रियनंदनुंडिट्लनियॆ ॥ 141 ॥

---

[उसको] बुलाकर संभाषण करके, उसकी विद्या की परीक्षा लेकर देखूंगा। उसने महा-सौधांतर (-भवन के भीतर) में आसीन होकर, १३६ [उ.] बहुत मोद (आनंद) से, दैत्यकुलमुख्य (दैत्यराज) ने संसार रूपी महार्णव (महासागर) को तारनेवाले, काम, रोष, लोभ आदि विरोधिवर्ग का परिहार करनेवाले, केशव के चिंतनामृत के स्वाद में कठोर रहनेवाले, कलुषों के समूह रूपी उग्र अवनी (अरण्य) के लिए कुठार (कुल्हाड़ी) हो प्रह्लाद-कुमारक को बुलाने के लिए [सेवकों को] भेजा। १३७ [व.] चरों (सेवकों) से आहूयमान (निमंत्रित) होकर प्रह्लाद के आने पर, १३८ [चं.] हे वत्स ! उत्साह, प्रभु और मंत्र की शक्ति से युक्त अपने उद्योग (प्रयत्न = पढ़ाई) में ठीक ढंग से संवित (ज्ञान) से संपन्न हो गये न ? वेदों और शास्त्रों को पढ़ लिया है न ? [पास आओ] कहते हुए पुत्र को पास बुलाकर, वात्सल्य से संपूर्ण होकर, दानवविभु (हिरण्यकशिपु) ने उत्कंठा के दीप्त होने पर, [उसको अपने] उत्संगाग्र में (गोद मे) बिठाया। १३९ [कं.] जनकों (पिताओं) के लिए पुत्रों के संभाषण रोज संतोष बढ़ानेवाले, [उनके] श्रम के ताप और दुःखों के संशोषक (कम करनेवाले), कर्णयुगल के लिए आभूषण होते हैं। १४० [व.] [ऐसा] कहकर फिर [उसने] पूछा, हे पुत्र ! तुम्हारे लिए क्या अच्छा लगता है ? बोलो। ऐसा कहने पर, पिता से प्रियनंदन ने ऐसा कहा। १४१ [चं.] हे निशाचराग्रणी (निशाचरों

चं. ऍल्ल शरीर धारुलकु निल्लनु चीकटि नूति लोपलं
ब्रॅळ्ळक वीरु नेमनु मतिभ्रमणंबुन भिन्नुलै प्रव-
र्तिल्लक सर्वमुन्नतनि दिव्यकळामयमंचु विष्णुनं
दुल्लमु जेर्चि तारडवि नुंडुट मेलु निशाचराग्रणी ! ॥ 142 ॥

व. अनि कुमारुंडनिन प्रतिपक्षानुरूपंबुलैन सल्लापंबुलु विनि, दानवेंद्रुंडु नगुचु निट्लनियें ॥ 143 ॥

कं. ऍट्टाडिन नट्टाडुदु-
रिट्टिट्टनि पलुक नॅरुगरितरुल शिशुवुल्
बॅट्टिचि यॅव्वरेनियु
बट्टिचिरो ? बालकुनकु बरपक्षंबुल् ॥ 144 ॥

शा. नाकुं जूडग जोद्यमय्यॅडि गदा ! ना तंड्रि ! यी बुद्धि दा
नीकुन् लोपल दोचॅनो ? परुलु दुर्नीतुल् पठिंपिचिरो ?
येकांतंबुन भार्गवुल् पलिकिरो ? यी दानव श्रेणिकिन्
वैकुंठुंडु कृतापराधुडतनिन् वर्णिप नीकेटिकिन् ? ॥ 145 ॥

म. सुरलं दोलुटयो ! सुराधिपतुलन् स्रुक्किवुटो ! सिद्धुलं
बरिवेंधिचुटयो ! मुनिप्रवरुलन् बाधिचुटो ! यक्ष कि-

में अग्रणी अर्थात हिरण्यकशिपु) ! समस्त शरीरधारियों (मनुष्यों) को, घर नामक अंध-कूप में न गिरकर, अपने और पराये नामक मति-भ्रमण (पागलपन) के कारण भिन्नतायुक्त आचरण कर, समस्त (संसार) को उस की (विष्णु की) दिव्यकलामय मानते हुए, विष्णु पर मन लगाकर जंगल में रहना शुभप्रद है। १४२ [व.] प्रतिपक्षानुरूप (शत्रु के अनुकूल) होनेवाले इस प्रकार के सल्लापों को कुमार (प्रह्लाद) के कहने पर सुनकर, दानवेंद्र ने हँसते हुए ऐसा कहा। १४३ [कं.] [बच्चे भला-बुरा नहीं जानते।] जैसे कहलाते हैं, वैसे कहते है। [विरोध में] बालक को, अन्यों के शिशु डराकर परपक्ष में लगाया है क्या ? १४४ [शा.] हे मेरे तात ! देखने पर मुझे आश्चर्य हो रहा है ! ऐसी यह बुद्धि तुम्हारी अपनी है या किसी अन्य ने तुम्हें दुष्ट-नीतियाँ पढ़ायी है ? एकांत में (अकेले में) भार्गवों ने कहा है ? हमारे दानव लोगों के प्रति वैकुण्ठ (विष्णु) कृत-अपराधी (जिसने अपराध किया हो, ऐसा) है। तुम्हें उसका वर्णन करने की आवश्यकता क्या है ? १४५ [म.] हे पुत्र ! सुरों को भगाना, सुराधिपतियों को पीछे हटाना, सिद्धों की हिंसा करना, मुनिश्रेष्ठों को बाधित करना, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, विहंग और नागों के अधिपतियों का नाश करना —[इस प्रकार के कुछ भी काम करो।]

न्नर गंधर्व विहंग नागपतुलन्नाशंबु नॉंदिंचुटो !
हरियंचुन् गिरि यंचु नेल चॅंड ? मोहांधुंडवै पुत्रका ! ॥ 146 ॥

व. अनिन दंड्रिमाटलकु बुरोहितु निरीक्षिंचि, प्रह्लादुंडिट्लनियॅ। मोहनिर्मूलनंबु सेसि, यॅव्वनियंदु दत्परुलैन यॅरुकगल पुरुषुलकु बरुलु दारनियॅडु मायाकृतंबैन यसद्ग्राह्यंबु गानंबडदट्टि परमेश्वरुनकु नमस्करिंचॅद ॥ 147 ॥

शा. अज्ञुल् गॉंदरु मेमु दामनुचु मायं जॅंदि सर्वात्मकुं
ब्रज्ञालभ्यु वरान्वय क्रममुलन् भाषिंपगा नेर रा
जिज्ञासा पथमंदु मूढुलु गदा ! चिंतिंप ब्रह्मादि वे-
दज्ञुल् तत्परमात्मु विष्णु नितरुल् दर्शिंपगा नेर्तुरे ? ॥ 148 ॥

ते. इनु मयस्कांत सन्निधि नॅट्लु भ्रांत-
मगु हृषीकेशु सन्निधि नाविधमुन
गरगुचुन्नदि दैवयोगमुन जेसि
ब्राह्मणोत्तम ! चित्तंबु भ्रांतमगुचु ॥ 149 ॥

सी. मंदार मकरंद माधुर्यमुन देलु मधुपंबु वोवुने ? मदनमुलकु
निर्मल मंदाकिनी वीचिकल दूगु रायंच सनुनॅ ? तरंगिणुलकु

---

लेकिन मोहांध बनकर, हरि, गिरि कहते हुए क्यों [अपने-आप को] बिगाड़ रहे हो ? १४६ [व.] [इस प्रकार के] पिता की बातों पर प्रह्लाद ने पुरोहितों को देखकर (उनकी आज्ञा लेकर) ऐसा कहा। मोह का निर्मूलन करके, जिसके प्रति तत्पर होके, ज्ञानी पुरुषों ने स्व और पर नामक मायाकृत और असद्ग्राह्य (जिसको ग्रहण न करना है) भेदभाव से दिखाई न पड़नेवाले, उस परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ। १४७ [शा.] कुछ अज्ञ लोग 'मैं और तुम' कहते हुए (स्वपर भेद-भाव से) माया में पड़कर, सर्वात्मक और प्रजा से लभ्य (उपलब्ध होनेवाले) [विष्णु को] वर-अन्वय-क्रम के बारे में बोल नहीं सकते (वर्णन नहीं कर सकते)। वे उस जिज्ञासापथ (विष्णु को जाननेवाले मार्ग) में, सोचने पर ब्रह्मा आदि वेदज्ञ मूढ़ (लोग) बन जाते हैं न। अन्य लोग उस परमात्मा और विष्णु के दर्शन कहाँ कर सकते है ? (नहीं कर सकते।) १४८ [ते.] हे ब्राह्मणोत्तम ! जिस प्रकार लोहा अयस्कांत (चुंबक) के सामने भ्रांत होता है, उसी प्रकार [मेरा] चित्त भी हृषीकेश की सन्निधि से दैवयोग से भ्रांत होकर पिघल रहा है। १४९ [सी.] हे विनुतगुणशील वाले (प्रशंसा योग्य गुणशील वाले) ! मंदार (कल्प-वृक्ष के पुष्पों) के मकरंद के माधुर्य से मस्त रहनेवाला मधुप क्या मदन (आकपुष्पों) के पास जाता है ? निर्मल मंदाकिनी की वीचिकाओं (लहरों)

ललित रसाल पल्लव खादियै चौक्कु कोयिल सेरुने ? कुटजमुलकु
बूर्णेंदु चंद्रिका स्फुरित चकोरकमरुगुने ? सांद्र नीहारमुलकु

ते. अंबुजोदर दिव्य पादारविंद
चिंतनामृत पानविशेषमत्त-
चित्त मेरीति नितरंबु जेरनेर्चु ?
विनुत गुणशील ! माटलु वेयुनेल ? ॥ 150 ॥

व. अनिन विनि रोषिंचि, राजसेवकुंडैन पुरोहितुंडु प्रह्लादुं जूचि, तिरस्करिंचि यिट्लनियै ॥ 151 ॥

उ. पंचशरद्वयस्कुडवु बालुड विंचुक गानि लेवु भा-
षिंचेदु तर्कवाक्यमुलु चॅप्पिन शास्त्रमुलोनि यर्थ मौ-
क्तिकचुकयैन जॅप्प वसुरेंद्रुनि मुंदट माकु नौदलल्
वंचुकोनंग जेसितिवि वैरिविभूषण ! वंशदूषणा ! ॥ 152 ॥

चं. तनयुडु गाडु शत्रुवुडु दानवभर्तकु वीडु दैत्य चं-
दनवनमंदु गंटकयुतक्षितिजातमु भंगि बुट्टिना-
डनवरतंबु राक्षसकुलांतकु ब्रस्तुति सेयुचुंडु दं-
डनमुन गानि शिक्षलकु डायडु पट्टुडु कॉट्टुडुद्धतिन् ॥ 153 ॥

---

में झूलनेवाला हंस क्या [अन्य] तरंगिणियों (नदियों) के पास जाता है ? ललित रसाल (आम) के पल्लवों के खादी (खानेवाला) होकर मत्त बना हुआ कोयल क्या कहीं कुटजों (औषध के पेड़ों) के पास जाता है ? पूर्ण-चन्द्र की चंद्रिकाओं का आस्वादन करनेवाला चकोर कहीं सांद्र नीहार (कुहरे) के पास जाता है ? [ते.] अंबुजोदर (विष्णु) के दिव्य-पादारविन्दों (-चरणकमलों) के चिन्तनामृत के पान से विशेष रूप से मस्त बना मेरा चित्त अन्यों को (इतर देवताओं या अन्य विषयों को) कैसे प्राप्त करेगा ? (नहीं कर सकेगा ।) हजार बातों की क्या आवश्यकता है ? १५० [व.] [ऐसा] कहने पर सुनकर, रोष से राजसेवक पुरोहित ने प्रह्लाद की ओर तिरस्कार के भाव से देखकर, ऐसा कहा । १५१ [उ.] अरे वैरिभूषण (वैरी की प्रशंसा करनेवाले) ! वंशदूषण (करनेवाले) ! पाँच साल के हो । बालक हो । इतना भर भी नहीं हो । तर्क-वाक्य कहते हो । [हमसे] सिखाये गये शास्त्रों का अर्थ (तात्पर्य) थोड़ा-सा भी तुम नहीं कहते । असुरेंद्र के सामने [तुमने] ऐसा किया कि हम ललाट (सर) झुका लें । (हमारा अपमान किया) १५२ [चं.] यह दानव-भर्ता (-पति) का तनय (पुत्र) नहीं, बल्कि शत्रु है । दैत्य-चंदनवन में काँटों-युक्त क्षितिजात (वृक्ष) के समान पैदा हुआ है । सदा राक्षसकुल-अंतक (विष्णु) की प्रशंसा करते रहता है । दंड देने से

कं. ई पापनि जदिर्वितुमु, नी पादमुलान यिक निपुणत तोडं
गोपिंतुमु दंडिंतुमु कोपिंपकुमय्य ! दनुजकुंजर ! विटे ॥ 154 ॥

व. अनि मरियु ना राचपापनिकि विविधोपायंबुलं बुरोहितुंडु वॆरपु जूपुचु राजसन्निधि बापि तोडुकॊनि पोयि येकांतंबुन ॥ 155 ॥

कं. भार्गवनंदनु डतनिकि
मार्गमु चॆडकुंड वॆक्कुमाऱुलु निच्चल्
वर्गत्रितयमु जॆप्पॆ न
नर्गलमगु मतिविशेष ममर नरेंद्रा ! ॥ 156 ॥

व. मरियु गुरुंडु शिष्युनकु सामदान भेददंडोपायंबु लन्नियु नॆरिंगिंचि नीतिकोविदुंडय्यॆ नति नम्मि, निश्चयिंचि तल्लिकि नॆरिंगिंचि, तल्लिचेत नलंकृतुंडयिन कुलदीपकु नवलोकिंचि ॥ 157 ॥

उ. त्रिप्पकुमन्न ! मामतमु दीर्घमुलैन त्रिवर्गपाठमुल्
दप्पकुमन्न ! नेडु मन दैत्यवरेण्युनि मोल नेमु मुन्
चॆप्पिन नीति गानि मरि चॆप्पकुमन्न ! विरोधि नीतुलन्
विप्पकुमन्न ! दुष्टमगु विष्णु चरित्र कथार्थजालमुल् ॥ 158 ॥

व. अनि बुज्जगिंचि दानवेश्वरुनि सन्निधिकि दोडि तॆच्चिन ॥ 159 ॥

---

ही यह शिक्षित होगा (हमारी राह पर आयेगा)। इसको पकड़ो और उद्धति (ज़ोर) से पीटो। १५३ [क.] हे दनुजकुंजर (राक्षसों में गज—हिरण्यकशिपु) ! सुना न ! [अब] गुस्सा मत करो। तुम्हारे चरणों की क़सम [खाकर कहते है कि] इस शिशु को अब निपुणता से पढ़ायेंगे। गुस्सा करेंगे और दण्डित करेंगे। १५४ [व.] ऐसा कहकर और उस राजकुमार को विविधोपायों से पुरोहित ने भय दिखाते हुए, राजसन्निधि से दूर ले जाकर, अकेले में, १५५ [कं.] हे राजन ! भार्गवनंदन ने [अच्छे] मार्ग से भटक न जाए, ऐसा कई बार नित्य ही, वर्गत्रितय का अनर्गल (अबाध) मति-विशेष से युक्त होकर, बोधन किया (पढ़ाया)। १५६ [व.] और गुरु ने शिष्य को साम, दान, भेद और दण्ड आदि सब उपायों को सिखाकर, यह निश्चय किया कि वह नीतिकोविद बन जाए। उसकी माता को इसके बारे में कहकर, माता से अलंकृत उस कुलदीपक को देखकर, १५७ [उ.] हे तात ! हमारे मत को मत बदलो। त्रिवर्ग के दीर्घ पाठों से मत हरो। आज हमारे दैत्य-वरेण्य के सामने हमसे सिखाई हुई नीति के अतिरिक्त और कुछ मत बोलो। हमारे विरोधी की नीतियों की, विष्णु की, दुष्ट कथाओं की परम्परा का आरम्भ मत करो। १५८ [व.] इस प्रकार अनुनय कर (मनाकर)

सी. अडुगड्गुनकु माधवानुचिंतनसुधामाधुर्यमुन मेनु मरचुवानि
नंभोजगर्भादुलभ्यासंपगलेनि हरिभक्ति पुंभावमैनवानि
मातृगर्भमु सौच्चि मन्नदि मोदलुगा जित्त मच्युतु मोद जेर्चुवानि
नंकिचि तनलोन नखिलप्रपंचंबु श्रीविष्णुमयमनि चेलगुवानि

ते. विनयकारुण्य बुद्धिविवेकलक्ष-
णादि गुणमुल काटपट्टयिनवानि
शिष्यु बुधलोकसंभाव्यु जीरि गुरुडु
मुंदरिकि द्रोव्व तंड्रिकि म्रोक्कुमनुचु ॥ 160 ॥

कं. शिक्षिचिति मन्यमुलगु, पक्षंबुलु मानि नीतिपारगुडय्येन्
रक्षोवंशाधीश्वर !, वीक्षिपुमु नो कुमारु विद्यानलमुन् ॥ 161 ॥

व. अनि पलिकिन शुक्रकुमारकु वचनंबुलाकर्णिचि दानवेंद्रुंडु दनकु दंडप्रणामंबु चेसि निलुचुन्न कोडुकुनु दीविचि,बाहुदंडंबु साचि, दिग्गनन् डग्गरं दीगचि, पेंद्व तडवु गाढालिंगनंबु सेसि, तन तोडलमीद निडुकोनि, चुंचु दुव्वि, चेवुकंबु बुडिकि, चेक्किलि मुद्दु गोनि, शिरंबु मूर्कोनि, प्रेमातिरेकसंजनित बाष्पसलिल-बिंदु संदोहंबुल नतनि वदनारविंदंबु दडुपुचु, मंदमधुरा-लापंबुल निट्लनियें ॥ 162 ॥

---

[प्रह्लाद को] दानवेश्वर की सन्निधि मे ले आकर। १५९ [सी.] पग-पग पर माधव के अनुचिंतनामृत के माधुर्य मे अपने शरीर को भूलनेवाले; अंभोज-गर्भ (ब्रह्मा) आदि देवता भी जिसका अभ्यास नही कर पाये, ऐसी हरिभक्ति ही पुंभाव (पुरुष-रूप) को धारण किया हो (हरि-भक्ति ने ही प्रह्लाद का रूप धारण किया हो), ऐसे प्रह्लाद को; मातृगर्भ में प्रवेश करते समय से चित्त को अच्युत पर लग्न करनेवाले को; उत्साह से अखिल प्रपंच को श्रीविष्णुमय मानकर संतोष से रहनेवाले को; [ते.] विनय, कारुण्य, बुद्धि, विवेक आदि सर्व लक्षणों का निलय होने वाले प्रह्लाद को; [अपने] शिष्य को, बुधलोक से संभावित (सम्मानित) प्रह्लाद को बुलाकर, गुरु ने प्रणाम करने के लिए पिता के समक्ष ढकेल दिया। १६० [कं.] हे रक्षोवंशाधीश्वर (राक्षस-वंश के अधीश्वर)! [हमने] इसको शिक्षित किया है। [अब] अन्य पक्षों को छोड़कर, नीति-पारग (-पारंगत) बन गया है। अपने पुत्र की विद्या के बल को देखो (परख लो)। १६१ [ऐसा कहने पर शुक्रकुमारक के वचन सुनकर, अपने को प्रणाम कर खड़े हुए पुत्र को [दानवेंद्र ने] आसीस कर, बाहु रूपी दण्डों को पसार कर, [उसको] झट पास खींचकर, गाढ़-आलिंगन करके, गोद में बिठाया, [उसके] बाल सँवार कर, कपोल को छूकर, गाल को चूम लिया, शिर का आघ्राण किया। प्रेमातिरेक से जनित बाष्प-जल

शा. चोद्यंबय्यॆंडि नितकालमरिगॆन् शोधिंचि येमेमि सं-
वेद्यांशंबुलु सॆप्पिरो ? गुरुवु लेवॆंट बठिंपिंचिरो ?
विद्यासार मॆरुंग गोरॆद भवद्विज्ञातशास्त्रंबुलो
वद्यंबॊक्कटि सॆप्पि सार्थमुग दात्पर्यंबु भाषिंपुमा ! ॥ 163 ॥

शा. निन्नुन् मॆच्चरु नीतिपाठमहिमन् नी तोडि दैत्यार्भकुल्
गन्नारन्नियु जॆप्प नेर्तुरु गदा ! ग्रंथार्थमुल् दक्षुलै
यन्ना ! यॆन्नडु नीवु नीतिविदुडौदटंचु महावांछतो-
नुन्नाडन् ननु गन्नतंड्रि ! भवदीयोत्कर्षमुं जूपवे ? ॥ 164 ॥

व. अनिनं गन्नतंड्रिकि प्रियनंदनुंडयिन प्रह्लादुंडिट्लनियॆ ॥ 165 ॥

कं. चदिविंचिरि ननु गुरुवुलु
चदिविति धर्मार्थमुख्यशास्त्रंबुलु ने
जदिविनवि गलवु पॆक्कुलु
चदुवुललो मर्ममॆल्ल जदिविति दंड्री ! ॥ 166 ॥

म. तनु हृद्भाषल सख्यमुन् श्रवणमुन् दासत्वमुन् वंदना-
र्चनमुल् सेवयु नात्मलो नॆरुकयुन् संकीर्तनल् चिंतनं-
बनु नी तॊम्मिदि भक्तिमार्गमुल सर्वात्मुन् हरिन् नम्मि स-
ज्जनुडै युंडुट भद्रमंचु दलतुन् सत्यंबु दैत्योत्तमा ! ॥ 167 ॥

---

की बूंदों से प्रह्लाद के वदन रूपी अरविन्द को भिगोते हुए, मंद मधुर आलापों से यों कहा । १६२ [शा.] बहुत दिन बीत गये । [मुझे] यह [बात] अजीब लगती है कि [तुम्हारे गुरुओं ने) शोध करके क्या-क्या संवेद्य (जानने योग्य) अंश सिखाये ? गुरुओं ने किस प्रकार पढ़ाया ? तुम्हारे विज्ञात (जाने) हुए शास्त्र में कोई एक पद्य पढ़कर, अर्थ के साथ तात्पर्य बताओ । १६३ [शा.] हे तात ! हे प्यारे ! तुम्हारे साथी दैत्य-अर्भक (-बालक) नीतिपाठ-महिमा में तुम्हारी प्रशंसा नहीं करते । (तुमसे अधिक बन गये हैं) । [उन्होंने] सब देख लिया है । ग्रंथार्थों में भी वे दक्ष बन गये है । इसी महा-वांछा (-कामना) से जी रहा हूँ कि तुम किस दिन नीतिकोविद बनोगे । अपनी [प्रज्ञा के] उत्कर्ष को दिखाओ । १६४ [व.] ऐसा बोलने पर अपने पिता से प्रियनंदन प्रह्लाद इस प्रकार बोला । १६५ [कं.] पिताजी ! गुरुओं ने मुझे (खूब) पढ़ाया है। मैंने धर्म, अर्थ आदि मुख्य शास्त्रों को पढ़ा है । मैंने जो पढ़ा, वे बहुत हैं। पढ़ाई के मूल मर्म को मैंने जान लिया है। १६६ [म.] हे दैत्योत्तम ! मैं यह मानता हूँ कि तन, हृदय और भाषा (वचन) से (त्रिकरणों से), श्रवण, दासत्व, वंदना और अर्चना, सेवा, आत्मज्ञान, संकीर्तन और चिंतन नामक इन नौ भक्तिमार्गों से सर्वात्मक, हरि पर विश्वास रखकर, सज्जन

शा. अंधेंदूदयमुल् महाबधिरशंखारावमुल् मूक स-
दग्रंथाख्यापनमुल् नपुंसकवधूकांक्षल् कृतघ्नावळी
बंधुत्वंबुलु भस्महव्यमुलु लुब्धद्रव्यमुल् क्रोड स-
द्गंधंबुल् हरिभक्तिवर्जितुल रिक्तव्यर्थसंसारमुल् ॥ 168 ॥

सी. कमलाक्षु नचिचु करमुलु करमुलु, श्रीनाथु वर्णिचु जिह्व जिह्व
सुररक्षकुनि जूचु चूड्कुलु चूड्कुलु, शेषशायिकि म्रोंवकु शिरमु शिरमु
विष्णु नाकर्णिचु वीनुलु वीनुलु, मधुवैरि दविलिन मनमु मनमु
भगवंतु वलगोनु पदमुलु पदमुलु, पुरुषोत्तमुनि मीदि बुद्धि बुद्धि

ते. देवदेवुनि जिंतिचु दिनमु दिनमु
चक्रहस्तुनि ब्रकटिचु चदुवु चदुवु
कुंभिनोधवु जॅप्पॅडि गुरुडु गुरुडु
तंड्रि हरि जेरुमनियॅडि तंड्रि तंड्रि ॥ 169 ॥

सी. कंजाक्षुनकु गानि कायंबु कायमे ? पवनगुंफितचर्मभस्त्रि गाक
वैकुंठु बॊगडनि वक्त्रंबु वक्त्रमे ? ढमढम ध्वनि तोडि ढक्क गाक

---

बनकर रहना कल्याणप्रद है। यही सत्य है। १६७ [शा.] अंधे के लिए चंद्रोदय, महाबधिर के लिए शखारव, मूक [व्यक्ति] के लिए सद्ग्रंथाख्यापन (सद्ग्रंथों का पढ़ना), नपुंसक के लिए वधूकांक्षा, कृतघ्नों से संपर्क, भस्म बने हव्य, लालची [व्यक्ति] का धन, क्रोड (सुअर) के लिए सुगन्ध —[इन सबकी तरह] हरिभक्ति का वर्जन करनेवालों के लिए संसार शून्य और व्यर्थ है। १६८ [सी.] कमलाक्ष की अर्चना करनेवाले कर (हाथ) ही कर हैं। श्रीनाथ का वर्णन करनेवाली जिह्वा (जीभ) ही ज़िह्वा है। सुररक्षक को देखनेवाली चितवनें ही चितवनें है। शेषशायी को प्रणाम करनेवाला सिर ही सिर है। विष्णु के बारे में आकर्णन करनेवाले (सुननेवाले) कान ही कान हैं। मधुवैरी पर लगा हुआ मन ही मन है। भगवान की प्रदक्षिणा करनेवाले पैर ही पैर है। पुरुषोत्तम पर जानेवाली बुद्धि ही बुद्धि है। [ते.] देवदेव का चिंतन करनेवाला दिन ही दिन है। चक्रहस्त को प्रकट करनेवाली विद्या ही विद्या है। कुंभिनोधव के बारे में बतानेवाला गुरु ही गुरु है। हे पिता ! विष्णु के पास जाने के लिए कहनेवाला पिता ही पिता है। १६९ [सी.] जो शरीर कंजाक्ष (विष्णु) को अर्पित नहीं हुआ, वह भी कोई शरीर है ? वह तो केवल पवन भरा हुआ चर्म का थैला है। जो वक्त्र (कंठ) वैकुंठ (विष्णु) की प्रशंसा नहीं करता, वह भी वक्त्र है ? (नहीं) वह तो केवल, ढम-ढम ध्वनि करनेवाला ढंका (वाद्य) है। जो हस्त हरि की पूजा नही करता वह भी कोई हस्त है ? (नहीं)। वृक्ष की शाखा से बना हुआ डंडा मात्र है। जो आँखें कमलेश

हरिपूजनमु लेनि हस्तंबु हस्तमे ? तरुशाखयिनिर्मितर्दाय गाक
कमलेशु जूडनि कन्नुलु कन्नुले ? तनुकुद्यजालरंध्रमुलु गाक

आ. चक्रि चिंत लेनि जन्मंबु जन्ममे ?
तरळसलिल बुद्बुदंबु गाक ?
विष्णु भक्ति लेनि विबुधुंडु विबुधुडे ?
पादयुगमुतोडि पशुवुगाक ! ॥ 170 ॥

सी. संसारजीमूतसंघंबु विच्चुने ? चक्रिदास्यप्रभंजनमु लेक
तापत्रयाभीलदावाग्नु लाउने ? विष्णुसेवामृतवृष्टि लेक
सर्वंकषाघौघजलरासु लिकुने ? हरिमनीषावडबाग्निलेक
घनविपद्गाढांधकारंबु लडगुने ? पद्माक्षनुति रविप्रभलु लेक

ते. निरुपमानपुरावृत्ति निष्कळंक
मुक्तिनिधि गानवच्चुने ? मुख्यमैन
शार्ङ्गकोदंडचिंतनांजनमु लेक
तामरसगर्भुनकुनैन दानवेंद्र ! ॥ 171 ॥

व. अनि यिव्विधंबुन वॅऱपु मऱपु नॅऱिंगक युलुकु सॅंडि पलिकॅडि कॊडुकु
नुडुवुलु चॅवुलकु मुलुकुल क्रिय नॊंदविन गटमुलदरं बॆदवुलं गऱचुचु

को नहीं देखतीं वे भी कोई आँखें है ? (नहीं) तन रूपी कुड्य (दीवार) जालके रंध्र है। [आ.] चक्री के चिंतन के विना जो जन्म (जीवन) है, वह भी कोई जन्म है ? (नहीं) वह तो तरल-सलिल का बुद्बुद है। जो विबुध (ज्ञानी) विष्णु की भक्ति के विना रहता है वह भी कोई विबुध है ? (नही) वह तो पाद युग के साथ पशुमात्र है। १७० [सी.] हे दानवेंद्र ! संसार रूपी जीमूतों (वादलों) का समूह चक्री के दास्य रूपी प्रभंजन के विना खुल जाता है क्या ? तापत्रय की आभील (भयंकर) दावाग्नियाँ विष्णु के सेवामृत की वृष्टि के विना क्या बुझ सकती हैं ? समस्त पाप रूपी जलराशियाँ हरि पर लगी हुई बुद्धि रूपी वड़वाग्नि के बिना कहीं सूख सकती हैं ? पद्माक्ष (विष्णु) की स्तुति रूपी रविप्रभाओं के विना घन (महान्) विपत्ति रूपी गाढांधकार दव सकता है क्या ? [ते.] निरुपमान और अपुनरावृत्ति (पुनर्जन्म से रहित) निष्कलंक मुक्ति रूपी निधि को तामरसगर्भ (ब्रह्मा) भी कहीं शार्ङ्ग कोदण्ड वाले (विष्णु) के चिंतन रूपी, अंजन के विना देख सकता है ? (नहीं) १७१ [व.] इस प्रकार भय, भूल आदि को न जानकर, (भयरहित और पूर्णज्ञान के साथ) स्थिर निश्चय से, कंप के विना ऐसा कहनेवाले पुत्र के वचन कानों को काँटों के समान चुभने पर दानवेंद्र ने [बहुत क्रुद्ध होकर] कनपट्टियों के हिलने पर, होंठ काटते हुए, चौक पड़कर, गुरुसुत को देखकर कहा कि [तुमने

नदरिपडि गुरुसुतुनि गनुंगोनि विमत कथनंबुलु गऱपिनाडवनि दानवेंद्रुं डिट्लनियें ॥ 172 ॥

चं. पटुतरनीतिशास्त्रचयपारगु जेसेद नंचु बालु नी
वटु गोनिपोयि वानिकि ननर्हमुलैन विरोधिशास्त्रमुल्
कुटिलत जेप्पिनाडवु भृगुप्रवरुडवटंचु नम्मितिन्
गटकट ब्राह्मणाकृतिवि गाक यथार्थपु ब्राह्मणुंडवे ? ॥ 173 ॥

कं. धर्मेतरवर्तनुलुनु, दुर्मंत्रुलुनैन जनुल दुरितमुलोंदुन्
मर्ममुलु गलचि कल्मष, कर्मुल रोगमुलु पोंदु कैवडि विप्रा ! ॥ 174 ॥

व. अनिन राजुनकुं बुरोहितुंडिट्लनियें ॥ 175 ॥

उ. तप्पुलु लेवु मा वलन दानवनाथ ! विरोधि शास्त्रमुल्
चेप्पमु क्रूरलै परुलु सेप्परु मीचरणंबुलान सु-
म्मेप्पुडु मो कुमारकुनकु नितयु नैजमनीष येव्वरुं
जेप्पेडि पाडि गादु प्रतिचिंत दलंपुमु नेर्पु कैवडिन् ॥ 176 ॥

कं. मित्रुलमु पुरोहितुलमु, पात्रुल मेमदियु गाक भार्गवुलमु नी
पुत्रुनि निट्टुवलें जेयग, शत्रुलमे ? दैत्यजलधिचंद्रम ! विटे ॥ 177 ॥

व. अनिनं गुरुनंदनुं गोपिपक दैत्यवल्लभुंडु गोडुकु नवलोकिंचि यिट्लनियें ॥ 178 ॥

---

इसको] शत्रुओं की बातें सिखाई है। और यों कहा। १७२ [चं.] हाय हाय ! नीतिशास्त्र में पारंगत बनाऊँगा—ऐसा कहकर तुमने बालक को ले जाकर, उसको अनर्ह विरोधियों के शास्त्रों को कुटिलता से सिखाया। भृगुप्रवर मानकर [तुम पर मैंने] विश्वास किया। तुम तो केवल ब्राह्मण की आकृति वाले हो। यथार्थ (सच्चे) ब्राह्मण कहाँ हो ? १७३ [कं.] हे विप्र (ब्राह्मण) ! बुरे काम करनेवालों को जिस प्रकार शरीर के मर्मभेदन करनेवाले रोग लग जाते हैं, उसी प्रकार धर्मेतर (अधर्म) बर्तन वाले और दुर्मंत्रियों को भी पाप लग जाते हैं। १७४ [व.] [ऐसा] कहने पर राजा से पुरोहित यों बोला। १७५ [उ.] हे दानवनाथ ! हमसे कोई ग़लती नहीं हुई। हमने उसको विरोधीशास्त्र नहीं पढ़ाये। आपके चरणों की क़सम खाकर कहते हैं कि क्रूर बनकर किसी और ने भी नहीं सिखाया। आपके पुत्र की यह सब प्रज्ञा सहजसिद्ध है। किसी में उसको इसके बारे में सिखाने की सामर्थ्य नहीं है। इस बात की प्रतिक्रिया के बारे में [अपनी] सामर्थ्य के अनुकूल विचार करो। १७६ [क.] हे दैत्यकुल रूपी जलधि के चंद्र ! सुनो। हम तुम्हारे मित्र हैं, पुरोहित है, योग्य हैं। इसके अतिरिक्त हम भार्गव हैं। तुम्हारे पुत्र को ऐसा बनाने को क्या हम [तुम्हारे] शत्रु है ? १७७ [ऐसा] कहने पर, गुरुनंदन पर क्रोध

कं. ऒज्जलु सॆप्पनि यीमति, मज्जातुडवैन नीकु मरि यॆव्वरिचे
नुज्जातमय्यॆ बालक !, तज्जनुलं बेरुकॊनुमु तग ना म्रोलन् ॥ 179 ॥

व. अनिन दंड्रिकि प्रह्लादुं डिट्लनियॆ ॥ 180 ॥

उ. अच्चपुजीकटिं बडि गृहव्रतुलै विषयप्रविष्टुलै
चच्चुचु बुट्टुचुन् मरल जर्वितचर्वणुलैनवारिकि
जॆच्चॆर बुट्टुने ? परुलु सॆप्पिननैन निजेच्छनैन ने
मिच्चिननैन गानलकु नेगिननैन हरिप्रबोधमुल् ॥ 181 ॥

उ. काननिवानि नूतगॊनि काननिवाडु विशिष्टवस्तुवुल्
गाननिभंगि गर्ममुलु गैकॊनि कॊंदरु कर्मबद्धुलै
कानरु विष्णु गॊंदरु गंदुरकिंचनवैष्णवांघ्रि सं-
स्थानरजोभिषिक्तुलगु संहृतकर्मुलु दानवेश्वरा ! ॥ 182 ॥

शा. शोधिंपंबडॆ सर्वशास्त्रमुलु रक्षोनाथ ! वॆय्येटिकिन्
गाथल् माधवशेमुषीतरणिसांगत्यंबुनं गाक दु-
र्मेधं दाटग वच्चुने ? सुतवधूमीनोग्रवांछामद
क्रोधोल्लोलविशालसंसृतिमहाघोरामितांभोनिधिन् ॥ 183 ॥

व. अनि पलिकिन कॊडुकुनु धिक्करिंचि, मक्कुव सेयक, रक्कसुलरेडु दन

---

न कर, दैत्यवल्लभ ने सुत को देखकर यों कहा। १७८ [कं.] रे बालक! मेरे पुत्र होकर तुममें इस प्रकार की बुद्धि, विना गुरुओं के सिखाये, कैसे उत्पन्न हो गयी? जिन्होंने सिखाया उनके नाम मेरे सामने ढंग से बताओ। १७९ [व.] [ऐसा] कहने पर, प्रह्लाद ने पिता से ऐसा कहा। १८० [उ.] गाढांधकार में पड़कर, गृहव्रती और विषयप्रविष्ट बनकर, मरते और जनम लेते, और फिर चर्वितचर्वण होनेवाले (जन्म-मरण के चक्र को दुहरानेवाले) मनुष्यों के मन में हरि के प्रबोध (भक्ति) किसी के सिखाने पर या अपनी इच्छा से या कुछ भी देने पर या जंगल में जाने पर उत्पन्न होती है? (नहीं।) १८१ [उ.] हे दानवेश्वर! जैसे अंधे को साथ लेकर दूसरा अन्धा विशिष्ट वस्तुओं को नहीं देख सकता, वैसे ही कुछ लोग कर्मबद्ध होकर, विष्णु को नही देख सकते। लेकिन विष्णु भक्तों के चरणों की धूल से अभिषिक्त होकर, कर्मबंधनों से छुटकारा पाकर, विष्णु को देख सकते हैं। १८२ [शा.] हे रक्षोनाथ! हजारों कथाएँ कहने की ज़रूरत क्या है? सर्वशास्त्रों का शोधन किया गया है। सुत और वधू रूपी मछलियों से युक्त और वांछा, मद, क्रोध-भरित, उल्लोल (ऊर्मिल) और विशाल संसृति (सृष्टि) रूपी महा भयंकर और अमित (अपार) अंभोनिधि के पार जाना, माधव पर बुद्धि रूपी तरणी (नाव) के सांगत्य के अतिरिक्त, दुर्मेधा (दुष्ट बुद्धि) से संभव हो सकता है? (नहीं) १८३

तोडलपै नुंडनीक, गोब्बुन दिगद्रोब्बि, निब्बरंबगु कोपंबु दीपिप, वेडिचपुल मिट मंटलेगय, मंत्रुलं जूचि यिट्लनियें ॥ 184 ॥

### हिरण्यकशिपुंडु प्रह्लादुनि विविधोपायंबुल हिंसिचुट

शा. क्रोडंबै पिनतंड्रि जंपे ननि ता ग्रोधिचि चित्तंबुलो
वीडं जेयडु वंटु भंगि हरिकिन् विद्वेषिकिन् भक्तुडै
योडंडक्कट ! प्राणवायुवुलु वीडोंप्पिचुचुन्नाडु ना
तोडन् वैरमु पट्टै निट्टि जनकद्रोहिन् महिन् गंटिरे ! ॥ 185 ॥

व. अनि राक्षसवीरुल नीक्षिचि यिट्लनियें ॥ 186 ॥

शा. पंचाब्दंबुलवाडु तंड्रि नगु नापक्षंबु निंदिचि य-
त्किंचिद्भीतियु लेक विष्णु नहितुं गीतिचुचुन्नाडु व-
लदंचुं जेप्पिन मानडंगमुन बुत्राकारतन् व्याधि ज-
न्मिचेन् वोनि वधिचि रंडु दनुजुलु मी मी पट्टत्वंबुलन् ॥ 187 ॥

शा. अंगव्रातमुलो जिकित्सकुडु दुष्टांगंबु खंडिचि शे-
षांगश्रेणिकि रक्ष सेयु क्रिय नी यज्ञुं गुलद्रोहि दु-

---

[व.] ऐसा कहनेवाले पुत्र की बातों का धिक्कार करते हुए, राक्षसराजा ने प्रेमरहित बनकर, गोद में बैठने न देकर, [प्रह्लाद को] झट [भूमि पर] ढकेल देकर, बहुत क्रोध से, क्रुद्ध दृष्टियों के कारण आकाश में ज्वालाओं के फैलने पर, मंत्रियों को देखकर ऐसा कहा । १८४

### हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद को विविध उपायों से हिंसित करना

[शा.] इसने यह भी नहीं सोचा कि उस हरि ने सुअर बनकर, अपने चाचा को मार डाला । [इस कारण से] क्रुद्ध बनकर उसे मन से हटाता भी नहीं । लेकिन हाय! यह तो उस विद्वेषी हरि का दास बनकर, अपना प्राण दे रहा है । मुझसे वैर-भाव रखता है । क्या आपने महि पर कहीं ऐसे जनक-द्रोही को देखा है ? १८५ [व.] ऐसा कहकर राक्षस वीरों को देखकर, फिर यों बोला । १८६ [शा.] हे दनुजो ! यह पाँच साल का है । मैं पिता हूँ । मेरा पक्ष छोड़कर, लेशमात्र भी भय के बिना (अत्यन्त निर्भीक होकर) उस अहित (शत्रु) विष्णु का कीर्तन कर रहा है । मनाने से मानता भी नहीं है । अंग में पुत्राकार से एक व्याधि ने जनम लिया है । अपनी-अपनी पटुता (सामर्थ्य) से आप इसका वध करके आइये । १८७ [शा.] जिस प्रकार बिगड़े हुए अंग को चिकित्सक काटकर शेष शरीर के अंगों की रक्षा करता है, वैसे इस अज्ञ, कुलद्रोही, दुस्संग (दुष्टों के संग रहनेवाले), केशव के पक्षपाती, अधम का वध कराके, वीर-

रसंगु गेशवपक्षपाति नधमुं जंपिचि वीरव्रतो-
त्तुंगख्याति जरिचेंद गुलमु निर्दोषंबु गाविचेंदन् ॥ 188 ॥

कं. हंतव्युडु रक्षिपनु, मंतव्युडु गाडु यमुनि मंदिरमुनकुन्
गंतव्युडु वेधमुन कुप, -रंतव्युडनक चंपि रंडी पडुचुन् ॥ 189 ॥

व. अनि दानवेंद्रुडानतिच्चिन वाडिकोरलु गल रक्कसुलु पॆक्कंड्रु शूलहस्तुलै, वक्त्रंबुलु देरचिकॊनि, युब्बि बॊब्बालिडुचु, धूमसहितदावदहनंबुनुं बोलॆ, दाम्रसंकाशंबुलयिन केशंबुलु मॆरय भेदन बादनच्छेदनंबुलु सेयुचु ॥ 190 ॥

उ. बालुडु राचबिड्डडु कृपाळुडु साधुडु लोकमान्य सं-
शीलुडुवो डवध्युडनि चिक्कक स्रुक्कक क्रूरचित्तुलै
शूलमुलं ददंगमुल सुस्थिरुलै प्रहरिंचिरुग्र वा-
चालत नंदरुन् दिविजशत्रुडु वल्दनडय्यॆ भूवरा ! ॥ 191 ॥

चं. पलुवुर दानवुल् पॊडुव बालुनि देहमु लेशमात्रमु-
न्नॊलियदु लोपलन् रुधिर मुब्बदु कंददु शल्यसंघमु-
न्नलियदु दृष्टिवैभवमु नष्टमु गादु मुखेंदुकांतियुन्
बॊलियदु नूतन श्रममु पुट्टदु पट्टदु दीनभावमुन् ॥ 192 ॥

---

व्रत की ख्याति से रहूँगा। अपने कुल को निर्दोष बनाऊँगा। १८८ [कं.] यह तो हंतव्य (हनन के लिए या हत्या के लिए योग्य) है, रक्षा करने के मत का नहीं। यमराज के मदिर को गंतव्य (जानेवाला) है। वध के लिए उपरंतव्य (योग्य नहीं) है, ऐसा न समझकर, इस बालक को मारकर ही आइये। १८९ [व.] इस प्रकार दानवेंद्र के आज्ञा देते ही, तेज दाढोंवाले कई राक्षस हाथों में शूल लेकर, मुँह बाकर, ताँबे के रंग के समान केशों के प्रकाशित होने पर, [प्रह्लाद के] अंगों को तोड़ते, मारते और काटते हुए, १९० [उ.] हे भूवर ! सब [राक्षसों] ने ऐसा न सोचकर कि यह बालक है, राजकुमार है, कृपालु है, साधु है, लोकमान्य है, यह अवध्य है, न थककर, क्रूरचित्त वाले होकर, शूलों से उसके अंगों पर स्थिर होकर, उग्र वाचालता से (खूब गालियाँ देते हुए), प्रहरण किया। दिविजशत्रु (हिरण्यकशिपु) ने उन्हें मना नहीं किया। १९१ [चं.] कई दानवों के [मिलकर] भोंकने पर भी बालक [प्रह्लाद] की देह को लेश-मात्र भी चोट नहीं लगती। अन्दर का रक्त बाहर नहीं निकलता। उसका शरीर तप्त नहीं होता। शल्य-संघ (हड्डियों का समूह) नहीं टूटता। उसकी दृष्टि का वैभव नहीं बिगड़ता। मुख-चंद्र की कांति नहीं घटती। [उसको] नूतन-श्रम (-थकावट) नहीं होता। [कहीं भी] दीनता की भावना भी नहीं दिखाई पड़ती। १९२ [उ.] निशाचरों के भोंकते वक्त दैत्यकुमार बार-बार 'हे पन्नगशायी ! हे दनुजभंजन ! हे जगदीश ! हे

उ. तन्नु निशाचरुल् पोडुव दैत्यकुमारुडु माटि माटि को
पन्नगशायि ! यो दनुजभंजन ! यो जगदीश ! यो महा
पन्नगशरण्य ! यो निखिलपावन ! यंचु नुतिंचु गानि ता
गन्नुल नीरु देडु भयकंपसमेतुडु गाडु भूवरा ! ॥ 193 ॥

उ. पारडु लेचि दिक्कुलकु बाहुवु लोंड्डडु बंधुराजिलो
दूरडु घोरकृत्यमनि दूरडु तंड्रिनि मित्रवर्गमु
जीरडु मातृसंघमु वसिंचु सुवर्णगृहंबुलोनिकि
दारडु कावरे यनडु तापमु नोंदडु कंटगिपडुन् ॥ 194 ॥

व. इट्लु सर्वात्मकंबै यिट्टिदट्टिदनि निर्देशिंपरानि परब्रह्मंबु दानयै यम्महाविष्णुनियंदु जित्तंबु जेर्चि तन्मयुंडयि परमानंदंबुनं बोंदियुन्न प्रह्लादुनियंदु राक्षसेंद्रुंडु दन किंकरुल चेतं जेयिंचुचुन्न मारणकर्मंबुलु पापकर्मुनियंदु ब्रयुक्तंबुलैन सत्कारंबुलं बोले विफलंबुलगुटं जूचि ॥195॥

उ. शूलमुलन् निशाचरुलु स्रुक्कक देहमु निग्रहिंपगा
बालुडु नेलपै बडडु पारडु चावडु तंड्रि नेन ना
पालिकि वच्चि चक्रधरु पक्षमु मानितिनंचु बादमुल्
फालमु सोक म्रोक्कडनपायत नोंदुट केमि हेतुवो ? ॥ 196 ॥

---

महापन्नशरण्य ! हे निखिल लोकों को पावन करनेवाले ! कहते हुए, हरि की स्तुति करता है। किन्तु आँखों में आँसू नहीं बहाता। हे भूवर ! वह भय से कंपित भी नहीं होता। १९३ [उ.] [प्रह्लाद इधर-उधर] नहीं भागता। हाथों को [अपनी रक्षा के लिए] बीच में नहीं रखता। बंधुओं (रिश्तेदारों) की श्रेणी में नहीं घुसता। 'यह घोर कृत्य है' कहकर, [किसी से] नहीं कहता। पिता या मित्रवर्ग को अपनी रक्षा के लिए नही बुलाता। मातृ-संघ (माँ और अन्य हिरण्यकशिपु की स्त्रियाँ) के स्वर्ण-गृह के अन्दर घुसने नहीं जाता। यह भी नही कहता कि 'कोई आकर मुझे बचाओ।' ताप के भाव को भी नहीं दिखाता। नाराज नहीं होता। १९४ [व.] इस प्रकार सर्वात्मक बनकर रहनेवाले परब्रह्म के बारे में निर्देशन के लिए स्वयं ही बनकर, उस महाविष्णु पर मन लगाकर, तन्मय (लीन) होकर, परमानन्द का अनुभव करनेवाले प्रह्लाद के प्रति राक्षसेंद्र ने अपने किंकरों से जो-जो मारण क्रियाएँ करायीं, वे सब पापकर्म करनेवाले के प्रति प्रयुक्त सत्कार्यों के समान निष्फल हुईं। ऐसे होते देखकर, [हिरण्यकशिपु ने यों सोचा।] १९५ [उ.] निशाचरों के शूलों से [भोंकने पर भी] न थककर, देह पर निग्रह (संयम) रखकर, बालक भूमि पर नहीं गिरता, भागता नहीं, मरता नहीं। पिता हो मेरे पास आकर यह कहते कि मैंने चक्रधर का पक्ष छोड़ दिया, पादों (चरणों) पर फाल (ललाट) को लगाकर, नमस्कार नहीं करता। इस प्रकार अनपाय होकर रहने का

व. अनि शंकिंचि ॥ 197 ॥

सी. ऑकमाटु दिक्कुंभियूथंबु दॅप्पिंचि कॅरलि डिंभकुनि द्रौक्किंप बंपु
नॉकमाटु विषभीकरोरग श्रेणुल गड्डवडि नर्भकु गरव बंपु
नॉकमाटु हेतिसंघोग्रानलमुलोन बिसरि कुमारुनि ब्रेय बंपु
नॉकमाटु कूलंकषोल्लोलजलधिलो मॉत्तिंचि शावकु मुंप बंपु

आ. विषमु बट्ट बंपु विदळिंपगा बंपु
दॉड्ड कॉंड चरुल द्रोय बंपु
बट्टि कट्ट बंपु बाधिपगा बंपु
बालु गिनिसि दनुजपालुडधिप ! ॥ 198 ॥

सी. ऑकवेळ नभिचारहोमंबु सेयिंचु नॉकवेळ नॅंडल नुंड बंचु
नॉकवेळ वानल नुपहति नॉंदिंचु नॉकवेळ रंध्रंबु लुक्क बट्टु
नॉकवेळ दन माय नॉंदविंचि बॅंगडिंचु नॉकवेळ मंचुन नॉंटि निलुपु
नॉकवेळ बॅनुगालि कुन्मुखु गाविंचु नॉकवेळ वातिचु नुर्वियंदु

ते. नीरु नन्नंबु निडनीक निग्रहिंचु
गशल नडिंपिंचु रुव्विंचु गंडशिलल
गदल व्रेयिंचु वेयिंचु घनशरमुल
गॉड्कु नॉकवेळ नमरारि क्रोधि यगुचु ॥ 199 ॥

---

क्या हेतु (कारण) है ? १९६ [व.] ऐसा शंका करते हुए, १९७ [सी.] हे अधिप (राजन) ! बालक पर रुष्ट होकर, दनुजपाल (हिरण्यकशिपु) एक बार दिक्-कुंभि (दिग्गजों) के यूथ (समूह) को लाकर, डिंभक (प्रह्लाद) को रौंदने के लिए भेजता; एक बार भयंकर-विष से उग्र सांपों की श्रेणियों को अर्भक (प्रह्लाद) को डसने के लिए भिजवाता, एक बार पुत्र को हेतिसघ (ज्वालाओं के समूह से) उग्र अनल में फेंक देने के लिए भेजता; एक बार उस शावक (बालक) को मारकर कूलंकष-उल्लोल जलधि में डुबाने को भिजवाता, [आ.] विष खिलाने को भेजता; विदलित करने के लिए भेजता; बड़े पर्वतों के सानुओं से नीचे ढकेलने को भेजता; पकड़कर बाँधने को भेजता और बाधित (पीड़ित) करने को भेजता । १९८ [सी.] अमरारि (हिरण्यकशिपु) क्रोधी होते हुए एक समय अपने पुत्र [प्रह्लाद को मारने के लिए] 'अभिचार' होम कराता; एक समय में धूप में खड़ा रहने को भेजता; एक समय में बरसात में भिगोता; एक समय [उसके शरीर के सभी] रंध्रों को बंद कराता; एक समय में अपनी माया का उद्भव कराकर, भयभ्रांत कराता; एक समय में ओस में अकेले खड़ा कराता; एक समय में तूफ़ान के उन्मुख कराता; एक समय में उर्वी (भूमि) में दफन करा देता; [ते.] जल और आहार न देकर दमन करता;

व. मरियु ननेक मारणोपायंबुल बापरहितुंडैन पापनि रूपु माप लेक येकांतंबुन दुरंतचितापरिश्रांतुंडयि राक्षसेंद्रुंडु दन मनंबुन ॥ 200 ॥

चं. मुंचिति वार्धुलन् गदल मोत्तिति शैलतटंबुलंदु द्रो-
ड्डिंबचिति शस्त्रराजि बोडिपिंचिति मीद निभेंद्र पंक्ति द्रो-
प्पिंचिति धिक्करिंचिति शपिंचिति घोरदवाग्नुलंदु द्रो-
यिंचिति बेक्कुपाट्ल नलयिंचिति जावडिदेमि चित्रमो ! ॥ 201 ॥

चं. ऎरुगडु जीवनौषधमु लॆव्वरु भर्तलु लेरु बाधलन्
दरलडु नैजतेजमुन तथ्यमु जाड्यमु लेदु मिक्किलिन्
मॆरयुचु नुन्न वाडीकनिमेषमु दैन्यमु नोंदडिक ने
तॆरगुन ग्रुंतु ? वेसरिति दिव्यमु वीनि प्रभाव मॆट्टिदो ! ॥ 202 ॥

व. अदियुनं गाक तोलिल शुनश्शेफुंडनु मुनिकुमारुंडु दंड्रि चेत याग पशुत्वंबुनकु दत्तुंडयि तंड्रि दनकु नपकारि यनि तलंपक ब्रदिकिन चंदंबुन ॥ 203 ॥

कं. आग्रहमुन ने जेसिन
निग्रहमुलु पदुल तोड नॆंड्रि नोकनाडुन्

---

कांटों पर चलाता; उस पर बड़ी शिलाओं को फिकवाता; गदाओं से पिटवाता और घनशरों को चलवाता। १९९ [व.] और भी अनेक [प्रकार के] मारणोपायों से पापरहित उस शिशु (प्रह्लाद) को मार न सक, अकेले में दुरन्त चिन्ता से परिश्रांत राक्षसेंद्र ने अपने मन में, [सोचा] २०० [उ.] [इसको] वार्धियों (समुद्रों) में डुबोया, गदाओं से खूब पिटवाया, शैल-तटों से नीचे ढकेलवा दिया, शस्त्रों के समूह से भोंकाया, उसके ऊपर से निभेंद्र-पंक्ति (हाथियों की पंक्ति) को रौंदवाया, उसका धिक्कार किया और शाप दिया, भयंकर दवाग्नियों में ढकेलवा दिया, अनेक पीड़ाएँ [देकर] सताया। [फिर भी यह] मरता नहीं; कैसा आश्चर्य है ! २०१ [चं.] [वह तो किसी] जीवनोषधियों को नहीं जानता, [उसका] भर्ता (रक्षक) कोई नही है, बाधाओं (पीड़ाओं) से चकित नही होता, सच है, नैजतेज में कोई जाड्य नही, अधिक प्रकाशवान बन गया है। एक निमिष के लिए भी दैन्य को प्राप्त नहीं करता। [सब करके] थक गया हूँ। इसको किस विधि से मारूँगा ? पता नहीं, इसका कैसा दिव्य प्रभाव है ! २०२ [व.] यही नही; पूर्व में शुनःशेफ नामक मुनिकुमार ने [अपने] पिता से यज्ञ-पशु के रूप में दत्त होकर (दिया जाकर), यह नहीं सोचा कि पिता मेरे लिए अपकारी है। [ऐसा न] सोचकर [उसके] जीवित रह जाने के समान, २०३ [कं.] आग्रह (क्रोध) से मेरे किये निग्रहों (दमन-कृत्य) के बारे में एक दिन भी अन्यों

विग्रहमुलनुचु वलुक ड-
नुग्रहमुलुगा स्मरिंचु नॊव्वडु मदिलोन् ॥ 204 ॥

व. कावुन वीडु महाप्रभावसंपन्नुंडु वीनि कॆंदुनु भयंबु लेदु। वीनि तोडि विरोधंबुनं दनकु मृत्युवु सिद्धिंचु ननि निर्णयिंचि, चिन्नवोयि खिन्नुंडै प्रसन्नुंडु गाक क्रिंदु सूचुचु विषण्णुंडै चिंतनंबु सेयुचुन्न राजुनकु मंतनंबुन जंडामर्कुलिट्लनिरि ॥ 205 ॥

शा. शुभ्रख्यातिवि नी प्रतापंबु महाचोद्यंबु दैत्यंद्र रो-
षभ्रूयुग्मविजृंभणंबुग दिगीशव्रातमुन् वोरुलन्
विभ्रांतंबुग जेसि येलितिवि गदा विश्वंबु! वीडॆंत? यी
वभ्रोक्तुल् गुणदोष हेतुवुलु चिंतं बॊंद नीकेटिकिन्? ॥ 206 ॥

शा. वक्रुंडैन जनुंडु वृद्धगुरुसेवं जेसि मेधानयो-
पक्रांतिन् विलसिल्लु मीदट वयःपाकंबुतो बालकुन्
शुक्रद्वेषणबद्धु जेयुचु मदि जालिपुमी रोषमुन्
शुक्राचार्युलु वच्चुनंत कितडुन् सुश्रीयुतुंडय्येडुन् ॥ 207 ॥

व. अनि गुरुपुत्रुलु पलिकिन राक्षसेश्वरुंडु गृहस्थुलैन राजुलकु नुपदेशिपं-
दगिन धर्मार्थकामवुलु प्रह्लादुनकु नुपदेशिपुं डनि यनुज्ञ चेसिन वार

---

से कहता नही। उन सबको अपने लिए अनुग्रह ही मानता है। कभी मन में पीड़ित नही होता। २०४ [व.] इसलिए यह महा-तपःप्रभाव-संपन्न है। इसको कहीं भय नही है। इससे विरोध करने से मेरी मृत्यु होगी। इस प्रकार निर्णय करके, दीन और खिन्न बनकर, प्रसन्न न होकर हिरण्यकशिपु नीचे देखते हुए (सिर झुकाकर), विषण्ण बनकर, चिंतन करनेवाले राजा से चंडामार्को ने मंतन (सलाह के रूप) में यों कहा। २०५ [शा.] हे दैत्येंद्र! तुम शुभ ख्यातिवान हो। तुम्हारा प्रताप महा आश्चर्यप्रद है। रोष से भ्रूयुग्म के विजृंभण से दिगीशव्रात (दिग्पालों के समूह) को तुमने विभ्रांत करके विश्व को अपने अधीन में कर लिया। [तुम्हारे उस प्रताप के सामने] यह कितना है? (इसकी विसात ही क्या है?) अल्पवाक्य गुण और दोष के कारण हैं। तुमको चिन्ता क्यों? २०६ [शा.] जो आदमी वक्र है वह वृद्ध और गुरुजनों की सेवा से मेधावी बनेगा और नय के प्रकाश की अतिशयता से विलसित होगा, उस के बाद वयःपाक से प्रकाशित रहेगा। इस बालक को शक्रद्वेषण-बुद्धि (इंद्रद्वेषी) से युक्त करो। मन से इस रोष को छोड़ दो। शुक्राचार्य के आने तक यह सुश्रीयुक्त बनेगा। २०७ [व.] ऐसा गुरुपुत्रों के कहने पर, राक्षसेश्वर ने गृहस्थों को उपदेश देने योग्य धर्मार्थकामों का प्रह्लाद को उपदेश देने की अनुज्ञा दी। उन्होंने भी उसको त्रिवर्गों का उपदेश दिया।

नतनिकि द्रिवर्गमु नुपदेशिंचिन नतंडु रागद्वेषंबुल चेतविषयासक्तुलैन वारलकु ग्राह्यंबुलैन धर्मार्थकामंबुलु दनकु नग्राह्यंबुनियुनु व्यवहारसिद्धि कौरकैन भेदंबु गानि यात्मभेदंबु लेदनियु ननर्थंबुल नर्थकल्पनंबु सेयुट दिग्भ्रमंबनियुनु निश्चयिंचि गुरुपदिष्ट शास्त्रंबुलु मंचि वनि तलंपक गुरुवुलु दम गृहस्थकर्मानुष्ठानंबुलकुं बोयिन समयंबुन ॥ 208 ॥

कं. आटलकु दन्नु रम्मनि, पाटिंचि निशाटिसुतुलु भाषिंचिन दो
षाटकुलेंद्र कुमारुडु, पाटवमुन वारि जेरि प्रज्ञान्वितुडै ॥ 209 ॥

कं. चॆप्पडीक चदुवु मंचिदि
चॆप्पॆडि दगुलमुलु चॆवुलु चिदरगॊनॆंगा !
नॆप्पुडु मनयॆड नॊज्जलु
चॆप्पॆद नीक चदुवु विनुडु चित्तमु ललरन् ॥ 210 ॥

व. अनि राजकुमारुंडु गावुन गरुणिंचि संगडिकांड्र तोड नगियॆडि चंदंबुन क्रीडलाडुचु समानवयस्कुलैन दैत्यकुमारुलकॆल्ल नेकांतंबुन निट्लनियॆ ॥ 211 ॥

## अध्यायमु—६

उ. बालकुलार ! रंडु मनप्रायपु बालुरु कौदरुर्विलो
गूलुट गंटिरे ! गुरुडु क्रूरु डनर्थसंचयंबुनंदु दु-

उसने भी कहा राग-द्वेष से विषयासक्त जनों के लिए ग्राह्य धर्मार्थकाम मेरे लिए अग्राह्य हैं। यह निश्चय किया कि व्यवहार के लिए ही भेद है लेकिन आत्मा के लिए कोई भेद नहीं; अनर्थों में अर्थ की कल्पना करना दिग्भ्रम है। इसलिए उसने यह भी सोचा कि गुरु से सिखाए गये शास्त्र अच्छे नहीं हैं। जब गुरु अपने-अपने गृहस्थ कर्मानुष्ठान करने चले गये तब, २०८ [कं.] निशाट-सुतों (राक्षस-पुत्रों) के सम्मान के साथ खेलने के लिए बुलाने पर, दोषाट-कुलेंद्र (राक्षसराजा)-कुमार (प्रह्लाद) प्रज्ञान्वित होकर, चतुरता से उनके पास जाकर, २०९ [कं.] [हमारा गुरु] अच्छी पढ़ाई [हमें] नहीं पढ़ाता। जो कहता है वे मायाजाल कानों को (मन को) भ्रमित कर देते हैं। इसलिए आज मैं एक पाठ पढ़ाता हूँ जो गुरु कभी नही पढ़ाते। उसे प्रेम से सुनो। २१० [व.] ऐसा कह, राजकुमार होने के कारण, करुणा से साथियों के साथ, हँसते-खेलते, अकेले में उन सब समान वयस्क वाले दैत्यकुमारों से प्रह्लाद ऐसा बोला। २११

## अध्याय—६

[उ.] हे बालको ! आओ, हमारी वय के कुछ बालकों का उर्वी पर

दुशीलट नर्थकल्पनमु जेसेँडि ग्राह्यमु गादु शास्त्रमु लेँन्
मे लेँर्रिगिचेँदन् विनिन मीकु निरंतर भद्रमय्येँडिन् ॥ 212 ॥

व. विनुँडु सकलजन्मंबुलंदुनु धर्मार्थाचरणकारणंबयिन मानुषजन्मंबु दुर्लभं बंदु बुरुषत्वंबु दुर्गमं बदियु शतवर्ष परिमितंबैन जीवितकालंबुन नियतंबै युंड्नु। अंदु सगमंधकारबंधुरंबयि रात्रि रूपंबुन निद्रादिव्यवहारंबुल निरर्थकंबयि चनु। चिक्किन पंचाशद्वत्सरंबुलंदुनु बाल्यकैशोरवयोविशेषंबुल विंशति हायसंबुलु गडचु। गडम मुप्पदि यद्दंबुलु निंद्रियंबुल चेत बट्टुवडि दुखगाहंबुलयिन कामक्रोधलोभमोहमदमत्सरंबुलनु पाशंबुलं गट्टुवडि, विडिवड समथुँडु गाक, प्राणंबुल कंटें मधुरायमाणयैन तृष्णकु लोनै भृत्य तस्करवणिक्कर्मंबुल प्राणहानियैन नंगीकरिंचि, परार्थंबुल नर्थिपुचु, रहस्यसंभोग चातुर्य सौंदर्य विशेषंबुल धैर्यवल्लिका लवित्रंबु लयिन कळत्रंबुलनु, महनीयमंजुलमधुरालपंबुलु गलिग वशुलयिन शिशुवुलनु, शीलवयोरूपधन्यलगु कन्यलनु, विनयविवेकविद्यालंकारुलयिन कुमारुलनु गामितफलप्रदात लगु भ्रातलनु, ममत्वप्रेमदैन्य जनकुलयिन

---

गिर जाना (मरना) आपने देखा है न ? हमारा गुरु बहुत क्रूर चित्तवाला है। अनर्थ की बातों में दुश्शीलता से अर्थ की कल्पना कर रहा है। [उससे सिखाए गये] शास्त्र [हमारे लिए] ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य) नहीं हैं। भलाई [की बातें] कहूँगा। [उन्हें] सुनने से आपका निरन्तर शुभप्रद होगा। २१२ [व.] सुनिये। सकल (समस्त) जन्मों में धर्म और अर्थ के आचरण का धारण-रूप मनुष्य-जन्म दुर्लभ है। उसमें पुरुषत्व दुर्गम है। वह भी सो साल परिमित जीवनकाल में नियत है। उसमें आधा भाग अंधकारमय होकर, रात्रि के रूप में निद्रा आदि व्यवहारों में निरर्थक बीत जाता है। शेष पंचाशत-वत्सरों (पचास सालों) में बाल्य, किशोर अवस्थाएँ आदि में विंशति (बीस) वर्ष बीत जाते हैं। शेष तीस अब्द (वर्ष) इन्द्रियों से बंधित होकर, दुखगाह (पार नहीं किये जा सकनेवाले) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य नामक पाशों में पड़कर, [उनसे] छूटने में समर्थ न बनकर, प्राणों से भी मधुर लगनेवाली तृष्णा के वश में आकर भृत्य (सेवक), तस्कर (चोर), वणिक् (व्यापारी) आदि कर्मों में प्राणहानि को भी स्वीकार करके, दूसरों के अर्थ की याचना करते हुए, [अपने] रहस्य-संभोग-चातुर्य और [अपने] सौंदर्य विशेष से धैर्य रूपी लता के लिए लवित्र (हँसिया) रूपी कलत्रों का महनीय (बहुत ही) मंजुल और मधुर आलापों से युक्त होकर, वश में रहनेवाले शिशुओं का; शील, वय (उम्र) और रूप से धन्य बनी हुई कन्याओं का; विनय, विद्या और विवेक से अलंकृत पुत्रों का; कामित-फल-प्रदाता (इच्छित) सब चीजों को देनेवाले भ्राताओं का; ममता, प्रेम और दैन्य के जनक

जननीजनकुलनु, सकलसौजन्यसिंधुवुलयिन बंधुवुलनु, धनकनकवस्तुवाहन सुंदरंबुलयिन मंदिरंबुलनु, सुकरंबुलैन पशुभृत्यनिकरंबुलनु, वंशपरंपरा-यत्तंबुलयिन वित्तंबुलनु वजिपलेक, संसारंबु निजिचु नुपायंबु गानक, तंतुवर्गंबुन निर्गमद्वारशून्यंबयिन मंदिरंबु जेरि, चिक्कुवडि वेडलेंडि पाटवंबु चालक तगुलुवडु कीटकंबु चंदंबुन, गृहस्थुंडु स्वयंकृतकर्मबद्धुंडै, शिश्नोदरादि सुखंबुल न्रमत्तुंडयि निजकुटुंबपोषणपारवश्यंबुन विरक्तिमार्गंबु देलियनेरक, स्वकीय परकीय भिन्न भावंबुन नंधकारंबुनं ब्रवेशिंचु। कावुन कौमार समयंबुन मनीषागरिष्ठुंडै परमभागवतधर्मंबु ननुष्ठिंपवलयु। दुःखंबुलु वांछितंबुलु गाक चेकुरु भंगि, सुखंबुलुनु गालानुसारंबुलै लब्धंबुलगुं गावुन, वृथाप्रयासंबुन नायुर्व्ययंबु सेयं दगदु। हरि भजनंबुन मोक्षंबु सिद्धिंचु। विष्णुंडु सर्वभूतंबुलकु नात्मेश्वरुंडु, प्रियुंडु। मुमुक्षुवैन देहिकि देहावसानपर्यंतंबु नारायण चरणार-विंदसेवनंबु कर्तव्यंबु ॥ 213 ॥

सी. कंटिरे मनवारु घनुलु गृहस्थुलै विफलुलै कॅकोन्न वेट्टितनमु
मद्रार्थुलै युंडि पायरु संसारपद्धति नूरक पट्टुवडिरि

(उपरोक्त भावों के मूल-उक्त) जननी और जनकों का; सकल सौजन्य के सिन्धु रूपी बंधुजनों (रिश्तेदारों) का; धन, कनक, वस्त्र और वाहनों से सुन्दर बने हुए मंदिरों (निवासगृहों) का; सुकर (सुलभ साध्य) बने हुए पशु और भृत्यनिकर (समूहों) का; वंशपरम्परा से आयत्त (प्राप्त) हुए वित्त का; वर्जन न कर, तंतुवर्ग से निर्गमन करने (बाहर निकलने) के द्वार से शून्य (रहित) मंदिर में पहुँचकर, वहाँ फँसकर, बाहर निकलने के सामर्थ्य के न होने पर, फँसकर रहनेवाले कीड़े के समान, गृहस्थ स्वयंकृत-कर्म-बद्ध होकर, शिश्न (संभोग)-आहार आदि सुखों में प्रमत्त बनकर, अपने कुटुंब (परिवार) के पालन-पोषण करने के पारवश्य में विरक्ति के मार्ग को न जान सककर, स्वकीय (अपने) परकीय (पराया) के भेद-भाव से अन्धकार में प्रवेश करेगा। इसलिए कौमार-दशा में मनीषा-गरिष्ठ बनकर परमभागवतों के धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए। जिस प्रकार अवांछित दुःख आते हैं, उसी प्रकार सुख भी काल के अनुसार (अनुरूप) लब्ध होते हैं। इसलिए वृथाप्रयास में आयु को व्यय नहीं करना (समय को वेकार नहीं खोना) चाहिए। हरि के भजन से मोक्ष की सिद्धि होगी। विष्णु सर्वभूतों के लिए आत्मेश्वर और प्रिय है। जो देही मोक्ष चाहता है, उसके लिए देह के अवसान (मृत्यु) तक नारायण के चरणारविन्दों का सेवन ही कर्तव्य है। २१३

[सी.] हमारे लोग जो घन (महान) है, गृहस्थ बनकर, विफल बनकर

कलयोनुलंदॆल्ल गर्भाद्यवस्थल बुरुषुंडु देहियै पुट्टुचुंडु
दन्नॆरुंगडु कर्मतंत्रुडै कडपट मुट्टडु भवशतमुलकुनयिन

आ. दीन शुभमु लेदु दिव्यकीर्तियु लेदु
जगति बुट्टि पुट्टि चच्चि चच्चि
पॊरलनेल मनकु बुट्टनि चावनि
त्रोव वॆदकिकॊनुट दॊड्डबुद्धि ॥ 214 ॥

शा. हालापानविजृंभमाणमदगर्वातीत देहोल्लास
द्बालालोकन श्रृंखलानिचयसंबद्धात्मुडै लेशमुन्
वेलानिस्सरणंबु गानक महाविद्वांसुंडु गामिनी
हेलाकृष्टकुरंगशावकमगुन् हीनस्थितिन् विंटिरे ! ॥ 215 ॥

आ. विषयसक्तुलैन विविधाहितुलतोडि
मनिकि वलदु मुक्तिमार्गवांछ
नादिदेवु विष्णु नाश्रयिंपुडु मुक्त
संगजनुल गूडि शैशवमुन ॥ 216 ॥

व. कावुन विषयंबुल जिक्कु वडिन रक्कसुलकु हरिभजनंबु शक्यंबु गादु।

---

कैसे दीवाने बन गये हैं। [आपने] देख लिया है न ? उन्होंने भलाई को ही चाहते हुए संसार के बधन में यों ही आपने आपको फाँस लिया। पुरुष तो भूलोक में जितनी योनियाँ है, उन सबमें गर्भस्थता आदि अवस्थाओं में देही बनकर, जनमता रहेगा। [हर एक जनम में] कर्मतंत्र में फँसकर, अपने आप (आत्मत्व) को नहीं जानता। सौ जन्मों के अन्त में भी [आवागमन के] अन्त को प्राप्त नहीं करता। [आ.] इससे शुभ नही [प्राप्त होता], दिव्य कीर्ति भी [प्राप्त] नहीं होती। [इस] जगत में पैदा होते-होते और मरते-मरते हमको क्यों लोटना है ? न कभी पैदा हों और न कभी मरें, ऐसे मार्ग को ढूँढ़ लेना ही बड़ी बुद्धि [का काम] है। २१४ [शा.] महान विद्वान भी हालापान के कारण विजृंभमाण बने, मद के गर्वातिरेक से उल्लसित देहवाला होकर, बाला (स्त्रियों) के आलोकन श्रृंखला-निचय (-समूह) से संबद्ध होकर, लेश [मात्र] भी [इस भवसागर को] पार करने की राह न पाकर, कामिनियों की हेलाओं (श्रृंगार चेष्टाओं) से आकृष्ट कुरंग-शावक (हिरन के बच्चे) के समान हो जाता है। इस हीन स्थिति के बारे में सुना है न ! २१५ [आ.] विषयासक्त और विविध अहितों की संगति में रहना हमें नहीं चाहिए। इस शैशव (बाल्यावस्था) में मुक्ति-मार्ग की वांछा से मुक्तसंग जनों (वैराग्य से युक्त) की संगति से आदिदेव विष्णु के आश्रय में जाइए। २१६ [व.] अतः विषयों में फँसे हुए राक्षसों के लिए हरिभजन अशक्य (असंभव) है।

रम्यमय्युनु बहुतरप्रयासगम्यमनि तलंचितिरेनि जेप्पेद। सर्वभूतात्मकुंडे सर्वदिक्कालसिद्धुंडे ब्रह्म कडपलगा गल चराचरस्थूल-सूक्ष्म जीवसंघंबुलंदु नभोवायुकुंभिनीगगनतेजंबुलनियेडु महा भूतंबुल-यंदुनु भूतविकारंबुलयिन घटपटादुलंदुनु गुणसाम्यंबयिन प्रधानमुनंदुनु गुणव्यतिरेकंबैन महत्तत्त्वादियंदुनु रजस्सत्त्वतमोगुणंबुलयंदुनु भगवंतुं-डव्ययुंडीश्वरुंडु परमात्म परब्रह्म मनियेडु वाचक शब्दंबुलं गलिग केवलानुभवानंद स्वरूपकुंडु नविकल्पितुंडु ननिर्देश्युंडु नयिन परमेश्वरुंडु त्रिगुणात्मकंबैन तन दिव्यमाय चेत नंतर्हितैश्वर्युंडै व्याप्यव्यापक-रूपंबुलं जेसि दृश्युंडुनु द्रष्टयु, भोग्युंडुनु भोक्तयुन नयि निर्देशिपं दगि विकल्पितुंडै युंडु। तत्कारणंबुन नासुर भावंबु विडिचि सर्वभूतंबुलंदुनु दयासुहृद्भावंबुलु कर्तव्यंबुलु। दयासुहृद्भावंबुलु गलिगन नधोक्षजुंडु संतसिंचुनु। अनंतुंडाद्युंडु हरि संतसिंचिन नलभ्यंबेय्यदियुलेदु। जनार्दनचरण सरसीरुहयुगळस्मरण सुधारसपानपरवशुलमैतिमेनि मनकु दैववशंबुन नकांक्षितंबुलै सिद्धिंचु धर्मार्थकामंबुलु, कांक्षितंबै सिद्धिंचु मोक्षंबननेल, त्रिवर्गंबुनु नात्मविद्ययु दर्कदंडनीतिजीविकादु-लन्नियु त्रैगुण्यविषयंबुलयिन वेदंबुल वलनं ब्रतिपाद्यंबुलु। निस्त्रैगुण्य-लक्षणंबुनं बरमपुरुषुंडैन हरिकि नात्मसमर्पणंबु सेयुट मेलु।

रम्य होते हुए भी उसे बहुतर-प्रयासगम्य (बहुत प्रयास से प्राप्त होनेवाला) समझोगे तो बताता हूँ। सर्वभूतात्मक और सर्वकालसिद्ध ब्रह्मा के बाद के चराचर-स्थूल और सूक्ष्म जीवसंघों में, अंभ (जल), वायु, कुंभिनी (भूमि), गगन और तेज नामक महाभूतों में, घट, पट आदि भूतविकारों में, गुणसाम्यवाले प्रधान में, गुणव्यतिकर वाले महत्तत्त्वादि में, रजस्-सत्त्व-तमो गुणों में अव्यय, ईश्वर, परमात्मा, परब्रह्म आदि वाचक शब्दों से युक्त हों भगवान, केवल अनुभवानंद स्वरूप वाला, अविकल्पित, अनिर्देश्य होकर रहेगा। [ऐसा] परमेश्वर त्रिगुणात्मक माया से अन्तर्हितैश्वर्यवाला होकर, व्याप्य और व्यापक रूपों के कारण से, दृश्य और द्रष्टा, भोग्य और भोक्ता बनकर, निर्देश के योग्य और विकल्पित होकर रहेगा। उस कारण से आसुर भाव को छोड़कर, सर्व भूतों पर दया और सुहृद्भाव से युक्त हो रहना हमारा कर्तव्य है। दया और सुहृद्भाव से रहने से अधोक्षज संतुष्ट होगा। अनन्त, आद्य, हरि के सतुष्ट होने पर, हमारे लिए कुछ भी अलभ्य नही होगा। जनार्दन के चरण-सरसीरुह-युगल के स्मरण रूपी सुधारस के पान से परवश हो जाएँ तो दैववश (सयोग से) अवांछित होकर प्राप्त होनेवाले से क्या काम ? त्रिवर्ग, आत्मविद्या, तर्क, दंड-नीति, जीविका आदि सभी त्रैगुण्य विषय वाले वेदों से प्रतिपाद्यहैं। निस्त्रैगुण्य लक्षण से (त्रिगुणों को छोड़कर) [प्रशांत भाव से] परमपुरुष हरि के समक्ष

परमात्मतत्त्वज्ञानोदयंबुनं जेसि स्वपर भ्रांति सेयक पुरुषुंडु योगा-
वधूतत्त्वंबुन नात्मविकल्पभेदंबुनं गललो गन्न विशेषंबुल भंगिदथ्यं-
बनक मिथ्ययनि तलंचुनु। अनि मरियु ब्रह्लादुंडिट्लनियें ॥ 217 ॥

म. नरुडु दानुनु मैत्रितो मॆलगुचुनु नारायणुं डितयुन्
वरुसन् नारदसंयमीश्वरुनन् व्याख्यानमु जेसॆ मुन्
हरि भक्तांघ्रिपरागशुद्धतनु लेकांतुल् महाकिंचनुल्
परतत्त्वज्ञुलु गानि नेररु मदिन् भाविप नी ज्ञानमुन् ॥ 218 ॥

व. तॊल्लि नेनु दिव्यदृष्टि गल नारदमहामुनि वलन सविशेषंबयिन यी
ज्ञानंबुनु बरमभागवत धर्मंबुनु विंटिनि। अनिन वॆरगुपडि दैत्यबालकु
लद्दनुजराजकुमारुनकिट्लनिरि ॥ 219 ॥

उ. मंटिमि कूडि भार्गवकुमारकुलीद्द ननेकशास्त्रमुल्
विंटिमि लेडु सद्गुरुडु वेरॊकडॆन्नडु राजशाल मु-
क्कंटिकिनैन रादु चॊरगा वॆलिकि जनरादु नीकु नि-
ष्कंटकवृत्ति नॆव्वडु प्रगल्भुडु सॆप्पॆ गुणाढ्य चॆप्पुमा! ॥ 220 ॥

कं. सेवितुमु निन्नॆप्पुडु, भावितुमु राजवनुचु बहुमानंबुल्
गावितुमु तॆलियमु नी, कोवितमति प्रकाशमॆक्किय गलिगॆन्? ॥ 221 ॥

---

आत्मसमर्पण करने में भलाई है। परमात्म-तत्त्व के ज्ञानोदय से स्व और पर की भ्रांति को छोड़कर, पुरुष योग-अवधूतत्त्व से आत्मविकल्प के भेद से, सबको स्वप्न में देखी हुई चीज़ों के समान, तथ्य न मानकर मिथ्या मानता है। ऐसा कहकर फिर प्रह्लाद ने इस प्रकार कहा। २१७ [म.] नर (अर्जुन) के साथ अपने (नारायण के) मैत्री से रहते समय, यह सब (नारायण ने) क्रम से संयमीश्वर नारद से व्याख्या के रूप में कहा। हरि के भक्तजनों के अंघ्रि (चरणों) के पराग से शुद्ध तन वाले, ऐकांत (विरागी), महा-अकिंचन लोग, परतत्त्वज्ञों के अतिरिक्त अन्य कोई इस ज्ञान के बारे में मन में नहीं सोच सकते हैं। २१८ [व.] पूर्व में मैंने दिव्यदृष्टि वाले नारद महामुनि से विशेषता से युक्त इस ज्ञान को, परम-भागवत-धर्म को, सुना है। [ऐसा] कहने पर चकित होकर, दैत्य-बालकों ने दनुजराजकुमार से यों कहा। २१९ [उ.] हे गुणाढ्य! हम सब [मिलकर] भार्गवकुमारों के पास रहे, कई शास्त्र उनसे हमने सुने (पढ़े)। हमारे लिए और कोई सद्गुरु कभी नहीं रहा। यह राजशाला में त्रिनेत्र (शिव) भी घुस नहीं सकता। इसमें से बाहर नहीं जा सकते। [हमको यह] बताओ कि तुम्हें निष्कंटक-वृत्ति (बेरोक-टोक) से [इन सब बातों को] किस प्रगल्भ ने सुनाया? २२० [कं.] [हम सब] सदा तुम्हारी सेवा करते हैं, सम्मानित करते हैं। तुम्हें यह विचित्र मतिप्रकाश (विशिष्ट

व. अनि यिट्लु दैत्यनंदनुलु दन्नडिगिन बरम भागवतकुलालंकारुंडैन प्रह्लादुंडु नगि तनकु पूर्वंबु विनंबडिन नारदु माटलु दलंचि यिट्लनियें ॥ 222 ॥

## अध्यायमु—७

शा. अक्षीणोग्रतपंबु मंदरमुपै नर्थिचि मातंड्रि शु-
द्ध क्षांति जनियुंड जीमगमिचेतन् भोगिचंदंबुनन्
भक्षिपंबडॆ बूर्वपापमुलचे बापात्मकुंडंचु मुन्
रक्षस्संघमु मीद निर्जरुलु संरंभिचि युद्धार्थुलै ॥ 223 ॥

शा. प्रस्थानोचित भेरि भांकृतुलतो बाकारियुं दारु शौ-
र्यस्थैर्यंबुल नेगुदेंचिन दर्वीयाटोपविभ्रांतुलै
स्वस्थेमल् दिगनाडि पुत्रधनयोषामित्रसंपत्कळा
प्रस्थानंबुलुडिंचि पारिरसुरुल् प्राणावनोद्युक्तुलै ॥ 224 ॥

मत्त. प्रल्लदंबुन वेल्पुलुद्धति बाडि राजनिवासमुन्
गॊल्लबॆट्ट समस्तवित्तमुं गूरतं गोनिपोवगा

---

ज्ञान) किस तरह प्राप्त हुआ, यह नहीं जानते हैं। २२१ [व.] [ऐसा] कह, इस प्रकार दैत्यनंदनों के अपने से पूछने पर, परमभागवत-कुल के अलंकार [प्रह्लाद] ने हँसकर, पूर्व में नारद के कहे हुए वचनों को याद करके, ऐसा कहा। २२२

## अध्याय—७

[शा.] [बहुत वर्ष पहले] अक्षीण और उग्र तप करने से शुद्ध क्षांति से (सहनशील बना) मेरा पिता चाहकर, मंदर [नामक पर्वत] गया हुआ था। वहाँ चींटियों के समूह से खाये जानेवाले साँप की तरह, पूर्व में किये गये पापों से पापात्मा (हिरण्यकशिपु) का भक्षण हो गया। ऐसा सोच निर्जर लोगों ने युद्ध की इच्छा से राक्षसों के समूह पर आक्रमण किया। २२३ [शा.] [युद्ध के] उचित प्रस्थान भेरियों (वाद्यों) की भांकृतियों (ध्वनियों) से जब पाकारि (इंद्र) और देवता शौर्य और स्थैर्य से आ गये तो उनके आटोप से विभ्रांत बन स्व-स्थेमों (-गृहों) को छोड़कर, पुत्र, धन, योषा (स्त्रियाँ), मित्र, संपत्-कला-प्रस्थानों को छोड़कर असुरलोग प्राण बचाने के लिए भाग गये। २२४ [म. को.] औद्धत्य के साथ देवता राजनिवास में प्रवेश कर समस्त धन को [illegible] ले गये। तब अमरेश्वर ने शंका-रहित होकर, घर

निल्लु सोंच्चि विशंकुडै यमरेश्वरुंडदलिच्चि मा
तल्लि दा जेर पट्टै सिग्गुन दप्तयै विलपिंपगन् ॥ 225 ॥

व. इट्लु सुरेंद्रुंडु मार्तल्लि जेरगोनि पोवुचुंड नम्मुगुद कुररि यनु पुलुगुक्रिय मोरलिडिन वेरुवुन दैवयोगंबुन नारदुंडु पोडगनि यिट्लनियें ॥ 226 ॥

उ. स्वर्भुवनाधिनाथ ! सुरसत्तम ! वेल्पुलोन मिक्किलि
निर्भरपुण्यमूर्तिवि सुनीतिवि मानिनि वट्टनेल ? यो
गर्भिणि नातुरन् विडुवु कल्मष मानसुरालु गादु नी
दुर्भर रोषमुन् निलुपु दुर्जयुडैन निलिंपवैरिपै ॥ 227 ॥

व. अनिन वेल्पुदपसिकि वेयिगन्नुलठबर यिट्लनियें ॥ 228 ॥

उ. अंतनिधानमैन दिविजाधिपु वीर्यमु दीनिकुक्षि न-
त्यंतसमृद्धि नोंदेडि महात्मक ! कावुन बत्प्रसूति प-
र्यंतमु बद्ध जेसि जनितार्भकु वज्रमु धार द्रुंचि नि-
श्चितुडनै तुदिन् विडुतु सिद्धमु दानवराजवल्लभन् ॥ 229 ॥

व. अनि पलिकिन वेल्पुरेनिकि दपसि यिट्लनियें ॥ 230 ॥

शा. निर्भीकुंडु प्रशस्त भागवतुडुन् निर्वैरि जन्मांतरा-
विर्भूताच्युतपाद भक्तिमहिमाविष्टुंडु दैत्यांगना

---

में घुसकर, हमारी माता को क़ैद कर दिया। वह लज्जित और तप्तहृदया बनकर रोने लगी। २२५ [व.] इस प्रकार सुरेंद्र ने हमारी माता को क़ैद कर ले जाते समय वह मुग्धा, कुररि नामक पक्षी के समान, आर्तनाद करने लगी। दैवयोग से [उसी] मार्ग पर नारद दिखायी पड़े और (इंद्र से) यों कहा। २२६ [उ.] हे स्वर्भुवनाधिनाथ [स्वर्भुव (स्वर्ग) के अधिनाथ राजा] ! हे सुरश्रेष्ठ ! देवताओं में तुम बहुत ही पुण्यवान हो। सुनीति-वाले हो ! मानिनी को क्यों बंदी बनाते हो ? इस गर्भिणी और आतुरा को छोड़ दो। [यह] कल्मष मानस वाली नहीं है। अपने दुर्भर रोष को दुर्जय उस निलिंपवैरि (हिरण्यकशिपु) पर दिखाओ। २२७ [व.] कहा तो देवऋषि नारद से शतनेत्रवाला (इंद्र) ऐसा बोला। २२८ [उ.] हे महात्मा ! अंतनिधान (मृत्यु) रूपी दिविजाधिप का वीर्य इसकी कुक्षी (गर्भ) में [अनुदिन] वृद्धि को प्राप्त कर रहा है। अतः प्रसव के समय तक इसको बंदी बनाकर, पैदा होनेवाले को अपने वज्रायुध की धारा से मारकर, फिर निश्चिन्त होकर, इस दानवराज-वल्लभा (-प्रिया) को छोड़ूँगा। यह सच है। २२९ [व.] ऐसा कहनेवाले देवराज (इंद्र) से तापसी (नारद) यों बोला। २३० [शा.] इस दैत्यांगना के गर्भ में जो बालक है, वह निर्भीक, प्रशस्त भागवत (भक्त), निर्वैरी, जन्मांतर

गर्भस्थुंडगु बालकुंडु बहुसंग्रामाद्युपायंबुलन्
दुर्भावंबुन बॊंदि चावडु भवद्दोर्दर्पविभ्रांतुडै ॥ 231 ॥

व. अनि देवमुनि निर्देशिचिन नतनि वचनंबुलु मन्निंचि तानुनु हरिभक्तुंडु गावुन देवेंद्रुंडु भक्तिबांधवंबुन मायव्वनु विडिचि वलगॊनि सुरलोकंबुनकुं जनियॆ। मुनींद्रुंडुनु मज्जननियंदु बुत्रिकाभावंबु सेसि यूरडिंचि निजाश्रमंबुनकुं गॊनिपोयि, नीवु पतिव्रतवु। नी युदरंबुन बरमभागवतुं-डयिन प्राणि युन्नवाडु। तपोमहत्त्वंबुनगृतार्थुंडै नीपेनिमिटि रागलंडु। अंदाक नी त्रिक्कड नुंडुमु। अनिन सम्मतिचि ॥ 232 ॥

शा. योषारत्नमु नाथदेवत विशालोद्योग मातल्लि नि-
र्वैषम्यंबुन नाथुराक मदिलो वांछिचि निर्दोषयै
योषद् भीतियु लोक गर्भ परिरक्षेच्छन्विचारिंचि शु-
श्रूषल् सेयुचुनुंडॆ नारदुनकुन् सुव्यक्तशीलंबुनन् ॥ 233 ॥

व. इट्लु दनकु बरिचर्य सेयुचुन्न दैत्यराजकुटुंबिनिकि नाश्रितरक्षाविशारदुं-डैन नारदुंडु निजसामर्थ्यंबुन नभयंबिच्चि गर्भस्थुंडनैन नन्नु नुद्देशिंचि धर्मतत्त्वंबुनु निर्मलज्ञानंबुनु नुपदेशिंचिन नम्मुद्दिय दद्दयुं बॆद्दकालंबु

---

की वासना से आविर्भूत अच्युत की पादभक्ति की महिमा से आविष्ट है। तुम्हारे बाहुबल के दर्प से विभ्रांत होकर या युद्ध आदि अनेक उपायों से भी वह नहीं मरेगा। २३१ [व.] ऐसा देवमुनि के निर्देशित करने पर, उसके वचनों को मानकर, स्वयं भी हरि के भक्त होने से, देवेंद्र ने भक्ति के बांधव्य (संबंध) से हमारी माता को छोड़कर, प्रदक्षिणा करके, स्वर्ग को चला गया। मुनींद्र मेरी माता को पुत्री के भाव से आश्वस्त कर, अपने आश्रम को ले गया। तुम पतिव्रता हो। तुम्हारे उदर मे परम-भागवत प्राणी है। तुम्हारा पति तप के महत्त्व से कृतार्थ बनकर आ जायेगा। तब तक तुम यहाँ रहो। ऐसा कहने पर, [उन बातों को] स्वीकार कर, २३२ [शा.] स्त्रीरत्न, नाथ ही जिसके लिए देवता हो (पति-व्रता), विशालोद्योगवाली हमारी माता निर्वैषम्य के भाव से, पति के आगमन की मन में इच्छा (प्रतीक्षा) करते, निर्दोषा बनकर, ईषत् (लेशमात्र) भी भीति के विना, गर्भ की परिरक्षा की इच्छा से विचार करके, सुव्यक्तशील से नारद की सुश्रूषाएँ करती रही। २३३ [व.] इस प्रकार अपनी परिचर्या करनेवाली दैत्य-राजकुटुंबिनी (पत्नी) को आश्रितरक्षाविशारद नारद ने अपनी सामर्थ्य से अभयप्रदान करके, गर्भ में रहनेवाले मुझे संबोधित करके, धर्मतत्त्व और निर्मलज्ञान का उपदेश दिया। मुग्धा और स्त्री होने से, परम्परागत न होने के कारण, [उस उपदेश को] वह भूल गई। मुझ पर कृपा

नाटि विनिकि गावुन नाडुदि यगुटं जेसि परिपाटि दप्पि सूटिलेक मऱचॆं। नारदुंडु नायॆड कृप गल निमित्तंबुन ॥ 234 ॥

कं. वॆल्लिगॊनि नाटनुंडियु, नुल्लसितंबैन दैवयोगंबुन शो-
भिल्लॆडु मुनिमतमंतयु, नुल्लंबुन मऱपुपुट्ट दॊकनाडैनन् ॥ 235 ॥

आ. विनुडु नादुपल्कु विश्वसिंचितिरेनि
सतुलकयिन बालजनुलकयिन
दॆलियवच्चु मेलु देहाद्यहंकार
दळननिपुणमैन तपसिमतमु ॥ 236 ॥

व. अनि नारदोक्तप्रकारंबुन बालकुलकु ब्रह्लादुंडिट्लनियॆ। ईश्वरमूर्तियैन कालंबुनं जेसि वृक्षंबु गलुगुचुंड, फलंबुनकु जन्मसंस्थानवर्धनापक्षीणत्वपरिपाकनाशंबुलु प्राप्तंबुलैन तॆऱंगुन, देहंबुनकुं गानि षड्भावविकारंबुलात्मकु लेवु। आत्म नित्युंडु, क्षयरहितुंडु, शुद्धुंडु, क्षेत्रजुंडु, गगनादुलकु नाश्रयुंडु, क्रियाशून्युंडु, स्वप्रकाशुंडु, सृष्टिहेतुवु, व्यापकुंडु, निस्संगुंडु, परिपूर्णुंडु, नॊक्कंडु, ननि विवेकसमर्थंबुलगु नात्मलक्षणंबुलु पंड्रॆंडु नॆऱुंगुचु, देहादुलंदु मोहजनकंबुलगु नहंकार ममकारंबुलु विडिचि पसिडिगनुलु गल नॆलवुन विभ्राजमानकनक लेशंबुललैन पाषाणदुलंदु बुटंबु पॆट्टि, वह्नियोगंबुन गरंग नूदि

---

के कारण नारद ने, २३४ [कं.] दैवयोग से उस दिन से प्रवाह के समान आने वाली मुनि की सब बातें मैंने सुन ली। आज तक एक दिन भी मुनिमत को कुछ भी मैं भूला नहीं हूँ। २३५ [आ.] सुनो, मेरी बात का विश्वास करो तो, स्त्रियों को हो या बालकों को हो, [सबको] देहादि अहंकार का दलन (नाश) मे निपुण उस मुनि का श्रेष्ठ मत समझ में आ जायेगा। २३६ [व.] [ऐसा] कहकर, नारद के कथनानुसार प्रह्लाद ने बालकों से यों कहा। काल ईश्वरमूर्ति है। उससे वृक्ष बनता है। फल के जिस तरह जन्म, संस्थान, वर्धन, अपक्षीणत्व, परिपाक और नाश प्राप्त होते हैं, उसी तरह षड्भावविकार केवल देह के लिए हैं, आत्मा के लिए नहीं। हमको यह जानना चाहिए कि आत्मा नित्य, क्षयरहित, शुद्ध है, क्षेत्रज है, गगन आदियों का आश्रय है, क्रियाशून्य है, स्वप्रकाशवाला है, सृष्टि-कारण है, व्यापक है, निस्संग है, परिपूर्ण है और एक है। विवेकसमर्थ आत्मा के ये बारह लक्षण हैं। यह जानते हुए देह आदि वस्तुओं के प्रति मोहजनक अहंकार, ममकार को छोड़कर, जिस प्रकार हेमकारक (सुनार) निपुणता से, जहाँ सोने की खानें होती हैं, उस स्थान पर, कनकलेश से विभ्राजमान पाषाण आदियों को अग्नि के योग से पिघलाकर, पाटव (समर्थता) से सोना प्राप्त करता है, उसी तरह आत्मकृत कार्यों और

हेमकारकुंडु पाटवंबुन हाटकंबु बडयु भंगि, नात्मकृत्यकारणंबुल नॆरिंगॊडि नेपंरि देहंबुनंदात्मसिद्धि कौरकु नयिन युपायंबुनं जेसि ब्रह्म-भावंबु बडयु मूलप्रकृतियु महदहंकारंबुलुनु बंचतन्मात्रंबुलु निवि यॆनिमिदियुं ब्रकृतुलनियु, रजस्सत्त्वतमंबुलु मूडुनु ब्रकृतिगुणंबुलनियुनु, गर्मेंद्रियंबुलयिन वाक्पाणि पाद पायूपस्थंबुलुनु, ज्ञानेंद्रियंबुलन श्रवणनयन-रसनात्वग्घ्राणंबुलुनु मनंबुनु महीसलिलतेजोवायुगगनंबुलुनु निवि पदारुनु विकारंबुलनियुनु, गपिलादि पूर्वाचार्युल चेत जॆप्पंबडियॆ। साक्षित्वंबुन नीयिरुवदेडिटिनि नात्म गूडि युंडु। पॆक्कंटिकूटुव देहमु। अदियु जंगमस्थावररूपंबुल रॆंडु विधंबुलय्यॆ। मूलप्रकृति मॊदलयिन वर्गंबुनकु वेरैमणिगणंबुलं जॊच्चियुन्न सूत्रंबु चंदंबुन नात्म यिन्निटियंदुनु जॊच्चि दीपिंचु। आत्मकु जन्मस्थितिलयंबुलु गलवंचु मिथ्यातत्परुलु गाक विवेकशुद्धमैन मनंबुनं जेसि विचारिंचि, देहंबुनं दात्म वॆदकवलयुनु। आत्मकु नवस्थलु गल यट्लुंडु गानि यवस्थलु लेवु। जागरणस्वप्न-सुषुप्तुलनु वृत्तुलॆव्वनि चेत नॆरुंगंबडु, नतं डात्मयंड्रु। कुसुम धर्मंबुलैन गंधंबुल चेत गंधाश्रयुं डयिन वायुवुनॆरिंगॆडु भंगि त्रिगुणात्मकंबुलयि कर्मजन्यंबु-लयिन बुद्धि भेदंबुल नात्म नॆरुंगंदगु ननि चॆप्पि ॥ 237 ॥

---

कारणों को जाननेवाला चतुर, देह में आत्मसिद्धि के उपाय हैं, उन्हें करके, ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है। मूल-प्रकृति और महदहंकार और पंचतन्-मात्राएँ —ये आठ प्रकृतियाँ है। रजस्सत्त्वतमोगुण तीनों प्रकृति के गुण हैं। कर्मेंद्रिय वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ है। ज्ञानेंद्रिय श्रवण, नयन, रसना, त्वक् घ्राण हैं। मन, मही, सलिल, तेज, वायु और गगन —ये सोलह विकार कहे जाते हैं। ऐसा कपिल आदि पूर्वाचार्यों से बताया गया है। साक्षित्व से इन सत्ताईस से आत्मा मिलकर रहती है। बहुत से गुणों का आकर देह है। वह भी जंगम और स्थावर के रूप में दो विध हो गई। मूलप्रकृति आदि वर्गों से भिन्न रहकर, मणिगणों के बीच में प्रविष्ट सूत्र के समान आत्मा इन सबमें प्रवेश कर, दीप्त (प्रकाशित) होती है। [ऐसा मानकर] मिथ्यातत्पर नही बनना चाहिए कि आत्मा को जन्म-स्थिति और लय हैं; और विवेक से शुद्ध मन से विचार करके देह में आत्मा की खोज करनी है। ऐसा लगता है कि आत्मा की अवस्थाएँ है, लेकिन हैं नहीं। जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति नामक वृत्तियाँ जिस से जानी जाती हैं उसे आत्मा कहते हैं। कुसुमों के धर्म-गंधों से गंधाश्रय वायु को जानने के समान द्विगुणात्मक और कर्मजन्य बुद्धि के भेदों से आत्मा को जानना चाहिए। ऐसा कह [फिर से कहा।] २३७ [सी.] बालको!

सी. संसारमिदि बुद्धिसाध्यमु गुणकर्मगणबद्ध मज्ञानकारणंबु
कलवंटि दितिय कानि निक्कमु गादु सर्वार्थमुलु मनस्संभवमुलु
स्वप्नजागरमुलु समम्मुलु गुणशून्युडगु परमुनिकि गुणाश्रयमुन
भवविनाशंबुलु पाटिल्लिनट्लुंडु बट्टि चूचिन लेवु वालुरार !

ते. कडगि त्रिगुणात्मकमुलैन कर्ममुलकु
जनकमै वच्चु नज्ञानसमुच्चयमनु
घनतरज्ञानबह्निचे गाल्चि पुच्चि
कर्मविरहितुलै हरि गनुट मेलु ॥ 238 ॥

व. अदि गावुन गुरुशुश्रूषयु, सर्वलाभसमर्पणंबुनु, साधुजनसंगमंबुनु, नीश्वर-प्रतिमासमाराधनंबुनु, हरिकथातत्परत्वंबुनु, वासुदेवुनियंदलिप्रेमयु, नारायणगुणकर्मनामकीर्तनंबुनु, वैकुंठचरणकमलध्यानंबुनु, विश्वंभर-मूर्तिविलोकनपूजनंबुनु, मोदलयिन विज्ञान वैराग्यलाभसाधनंबुलैन भागवतधर्मंबुलपै रति गलिगि, सर्वभूतंबुलयंदुनीश्वरुंडु भगवंतुं डात्म गलंडनि सम्मानंबु सेयुचु, गामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यंबुलन् गैलिचि, यिंद्रियवर्गंबुनु बंधिचि, भक्ति सेयुचुंड नीश्वरुंडयिन विष्णुदेवुनियंदलिगति सिद्धिंचु ॥ 239 ॥

सी. दनुजारिलीलावतारंबुलंदलि शौर्यकर्मंबुलु सद्गुणमुलु
विनि भक्तुडगुवाडु वेड्कतो बुलकिंचि गन्नुल हर्षाश्रुकणमुलोलुक

---

यह संसार बुद्धिसाध्य है। गुण और कर्मों के गणों (समूहों) से बद्ध है। अज्ञान का कारण है। स्वप्न के समान है, स्वप्न नहीं है। सर्व-अर्थ मन के कारण संभव (उत्पन्न) होते हैं। स्वप्न और जागरण दोनों समान हैं। जो गुणशून्य है, उसको लगता है कि गुणाश्रय से जनन और विनाश होते हैं। किन्तु देखने पर वे नहीं हैं। [ते.] प्रयत्न करके त्रिगुणात्मक कर्मों के जनक (उत्पादक) बने, हुए अज्ञान-समुदाय को घनतर (महान्) ज्ञान की वह्नि से जला देकर, कर्मविरहित बनकर, हरि को प्राप्त करना अच्छा है। २३८ [व.] इसलिए गुरुशुश्रूषा, सर्वलाभसमर्पण, साधुजनसंगम, ईश्वर की प्रतिभा का समाराधन, हरिकथा का श्रवण, वासुदेव के प्रति प्रेम, नारायण के गुण, कर्म और नाम का कीर्तन, वैकुण्ठ (विष्णु) के चरण-कमलों का ध्यान, विश्वंभरमूर्ति का विलोकन और पूजन आदि विज्ञान और वैराग्य के लाभ (उपलब्ध) साधन बने भागवत धर्मों के प्रति रति से, सर्वभूतों में ईश्वर, भगवान, आत्मा (स्थित) है —ऐसा सम्मान करते हुए, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य को जीतकर, इन्द्रियों का बंधन करके, भक्ति से रहना चाहिए। इससे विष्णुदेव की गति (मोक्ष) की सिद्धि होगी। २३९ [सी.] दनुजारि

गद्गदस्वरमुतो गमलाक्ष! वैकुंठ! वरद! नारायण! वासुदेव!
यनुचु नॊत्तिलि पाडु नाडु नाक्रोशिचु नगु जितनमु सेयु नतियॊनर्चु

ते. मरलुकॊनियुंडु दनलोनमाटलाडु
वेल्पु सोकिन पुरुषुनि वृत्तिदिरुगु
बंधमुल वासि यज्ञानपटलि गाल्चि
विष्णु ब्रापिंचु दुदि भक्तिविवशुडगुचु ॥ 240 ॥

व. कावुन रागादियुक्तमनस्कुंडयिन शरीरिकि संसारचक्रनिवर्तकंबयिन हरिचिंतनंबु ब्रह्ममंदलि निर्वाणसुखंबॆट्टिदट्टिदनि बुधुल दॆलियुदुरु। हरिभजनंबु दुर्गमंबु गादु। हरि सकलप्राणि हृदयंबुलंदु नंतर्यामियै याकाशंबु भंगि नुंडु। विषयज्ञानंबुल नर्थंडिदि लेदु। निमिषभंगुरप्राणुलयिन मर्त्युलकु ममतास्पदंबुलुनु चंचलंबुलुनुनैन पुत्रमित्रकळत्रपशु भृत्यबलबंधुराज्यकोशमणिमंदिरमंत्रिमातंगमहीप्रमुखविभवंबुलु, निरर्थकंबुलु। यागप्रमुख पुण्यलब्धंबुलैन स्वर्गादिलोक भोगंबुलु पुण्यानुभव क्षीणंबुलु गान नित्यंबुलु गावु। नरुंडु विद्वांसुंड ननि यभिमानिंचि कर्मंबु

(विष्णु) के लीलावतारों के शौर्यकर्मों और सद्गुणों को सुनकर जो भक्त होता है, वह पुलकित होता है, आँखों में हर्ष के अश्रुकण के उमड़ने पर, गद्गद स्वर से हे कमलाक्ष! हे वैकुंठ! हे वरद! हे नारायण! हे वासुदेव! कहते हुए आनन्द से गाता है, नाचता है, आक्रोश (रोदन) करता है, हँसता है, चिंतन करता है, विनत होता है, प्रेम से आविष्ट रहता है, अपने से बातें करता है। [ते.] ऐसा रहता है जैसे किसी व्यक्ति पर भूत का आवेश हो गया हो। बंधनों से मुक्त होकर, अज्ञान की पटलों को जलाकर, भक्तिविवश होकर, अन्त में विष्णु को प्राप्त करता है। २४०
[व.] इसलिए रागादियुक्त मानस वाले शरीरी (मनुष्य) के लिए संसार-चक्र का निवर्तन करनेवाला हरिचिंतन ऐसा लगता है, मानो ब्रह्म का निर्वाण सुख है। ऐसा बुध लोग जानते है। हरि का भजन दुर्गम नहीं है। हरि सकल (समस्त) प्राणियों के हृदयों में अंतर्यामी होकर आकाश के समान रहता है। [केवल] विषयज्ञान (विषयसंपादन) से कुछ होनेवाला नहीं। मनुष्य निमिष-भंगुर (पल भर में नष्ट होनेवाले) प्राणी हैं। उनके लिए ममतास्पद और चंचल हो पुत्र, मित्र, कलत्र, पशु, भृत्य, बल (सेना), बंधु, राज्य, कोष, मणि, मंदिर (महल), मंत्रि, मातंग, भूमि, प्रमुख (आदि) विभव निरर्थक हैं। याग आदि [करने से] जो पुण्य लब्ध होते हैं, वे स्वर्ग आदि लोकों के सुख-भोग जो पुण्यों के अनुभव के अनुसार क्षीण होते हैं, वे नित्य नहीं है। नर (मानव) अपने को महा विद्वान मान गर्व कर, कर्माचरण करके, अमोघ और विपरीत फल पाता है। कर्मों को

लाचरिंचि यसोघंबुलयिन विपरीतफलंबुल नॊंदु। कर्मंबुलु गोरक चेयवलयु, गोरि चेसिन दुःखंबुलु प्रापिंचु। पुरुषुंडु देहंबु कॊरकु भोगंबुलनपेक्षिंचु। देहंबु नित्यंबु गादु, तोड रादु। मृतंबयिन देहमुनु शुनकादुलु भक्षिंचु। देहि कर्मंबु लाचरिंचि कर्मबद्धुंडयि कर्मम्मु गर्मानुकूलंबयिन देहंबु दाल्चुनु। अज्ञानंबुनं जेसि पुरुषुंडु कर्मदेहंबुल विस्तरिंचुनु। अज्ञानतंत्रंबुलु धर्मार्थकामंबुलु ज्ञानलभ्यंबु। मोक्षंबु मोक्षप्रदात यगु। हरि सकलभूतंबुलकु नात्मेश्वरुंडु प्रियुंडु दन चेत नयिन महाभूतंबुल तोड जीवसंज्ञितुंडयि युंडु। निष्कामुलं हृदयगतुं-डयिन हरिनि निजभक्तिनि भजिपवलयु ॥ 241 ॥

कं. दानवदैत्य भुजंगम, मानवगंधर्वसुरसमाजमुलो ल-
क्ष्मीनाथुचरणकमल, ध्यानंबुन नॆव्वडयिन धन्यत नॊंदुन् ॥ 242 ॥

कं. चिक्कडु व्रतमुल क्रतुवुल, जिक्कडु दानमुल शौचशीलतपमुलन्
जिक्कडु युक्तिनि भक्तिनि, जिक्किन क्रिय नच्युतुंडु सिद्धमुसुंडी ! ॥243॥

कं. चालदु भूदेवत्वमु, चालदु दैवत्व मधिकशांतत्वंबुन्
चालदु हरि मॆप्पिप वि, शालोद्यमुलार ! भक्ति चालिन भंगिन् ॥ 244 ॥

आ. दनुजभुजगयक्षदैत्य मृगाभीर
सुंदरीविहंगशूद्र शबरु-

---

[फल की] इच्छा-रहित हो, करना चाहिए। [फल] चाहकर करने से दुःखों की प्राप्ति होती है। पुरुष देह के लिए [सुख] भोग चाहता है। देह नित्य नही है, [हमारे] साथ नही आती। मृत्यु होने के बाद शरीर को कुत्ते आदि [जानकर] खा लेते हैं। देही कर्माचरण करके, कर्मबद्ध होकर, फिर से कर्मानुकूल देह धारण करता है। अज्ञान से पुरुष कर्म-देहों का विस्तार करता है। धर्म, अर्थ, काम आदि अज्ञान-तंत्र हैं। मोक्ष-ज्ञान से लभ्य है। मोक्षप्रदाता हरि सकल भूतों के लिए आत्मेश्वर और प्रिय है। वह अपने में सृजित महाभूतों से जीव-संज्ञा लेकर रहता है। हृदयगत हरि को निज भक्ति से [हमे] निष्काम बनकर भजन करना चाहिए। २४१ [कं.] दानव, दैत्य, भुजंग, मानव, गंधर्व और सुर —इनके समाज में जो भी हो, लक्ष्मीनाथ के चरण-कमलों के ध्यान से धन्य बनता है। २४२ [कं.] व्रत, क्रतु करने से वह नही मिलता है। दान करने से, शौच, शील, तप आदि से भी नहीं मिलता। यह सत्य की बात है कि जैसे भक्ति से [वह] प्राप्त होता है, वैसा और किसी क्रिया से वह प्राप्त नही होता। २४३ [कं.] हे विशाल-उद्योग वालो ! भूदेवत्व और देवत्व, अधिक शांतस्वभाव भी [हरि को संतुष्ट करने के लिए] पर्याप्त नहीं, भक्ति जैसे पर्याप्त होती है। [वैसे और कुछ नहीं] भक्ति ही हरि को पाने का सही मार्ग है। २४४

लैन बापजीवुलैन मुक्तिकि वोदु
रखिलजगमु विष्णुडनुचु दलचि ॥ 245 ॥

कं. गुरुवुलु तमकुनु लोवडु
तैरुवुलु सैप्पुदुरु विष्णुदिव्यपदविकिन्
दैरुवुलु सैप्परु चीकटि
बरुवुलु पैट्टंग नेल? मनकु बालकुलारा! ॥ 246 ॥

कं. तैंडल्ल पुस्तकंबुलु, निडाचार्युनकु मरल नेकतमुनकुन्
रंडु विशेषमु सैप्पेंद, बौडोल्लनिवारु कर्मपुंजमु पालै ॥ 247 ॥

कं. आडुदमु मनमु हरि रति, बाडुदमे प्रोद्दु विष्णुभद्रयशंबुल्
वीडुदमु दनुज संगति, गूडुदमु मुकुंद भक्तिकोटिन् सूटिन् ॥ 248 ॥

कं विलमु संसृतिपटलमु ब्रत्तमु, कामादिवैरिवर्गंबुल ने-
डित्तमु ब्रित्तमु हरिकिनि जौत्तमु, निर्वाणपदमु शुभमगु मनकुन् ॥249॥

व. अनि यिट्लु प्रह्लादुंडु रहस्यंबुन नय्यावेळल राक्षसकुमारुलकु नपवर्गमा र्गबोरिगिचिन, वारुनु गुरुशिक्षितंबुलैन चदुवुलु चालिचि, नारायण भक्ति चित्तंबुलं गीलिचि युंडुटं जूचि, वारल येकांतभावंबु देलिसि वेंड्रचि वच्चि शुक्रनंदनुंडु शक्रवैरि किट्लनियै ॥ 250 ॥

---

[आ.] राक्षस, भुजंग, यक्ष, दैत्य, मृग, आभीर, सुंदरियाँ, विहंग, शूद्र और शबर [जाति के] पापी लोग भी विष्णु को अखिल जग मानकर, मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे। २४५ [कं.] बालको! गुरु लोग तो ऐसे मार्ग बोलते हैं, जिनसे हम उनके वश में हो जाएँ। विष्णु के दिव्य पद के मार्ग नहीं बताते। हमें अन्धकार में क्यों दौड़ना है? (गुरु के सिखाए हुए विषय अब अंधकार[अज्ञान]के समान हैं।) २४६ [कं.] [अपनी अपनी सभी] पुस्तकें लाइये, गुरु को वापस कर दीजिए। फिर अकेले में आइये। मैं आपको विशेष बात बताऊँगा। जो (सुनना) नहीं चाहते, वे कर्मपुंज के भागी बन जाएँगे। २४७ [कं.] [हम सब मिलकर] हरि की रति में नाचेंगे। सदा विष्णु के भद्र यश को गायेंगे। दनुजों की संगति को छोड़ेंगे। मुकुंद के भक्तकोटि से सीधे मिलेंगे। २४८ [कं.] संसृति-पटल (ससार) को छोड़ देंगे, काम आदि वैरिवर्गों का नाश करेंगे, आज हरि को अपने चित्त अर्पण करेंगे। निर्वाण-(मुक्ति) पद में प्रवेश करेंगे। [इससे] हमारा शुभ होगा। २४९ [व.] इस प्रकार रहस्य में (गुप्त रूप से) प्रह्लाद ने उन-उन समयों में राक्षस-कुमारों को अपवर्ग (मोक्ष)-मार्ग बताया तो, वे भी गुरुशिक्षित पढ़ाई को समाप्त करके, मन में नारायण के प्रति भक्ति-भाव रखकर रह गये। उनके एकांत-भाव को जानकर डरते हुए, शुक्रनन्दन ने आकर शक्रवैरी (इन्द्रवैरी = हिरण्यकशिपु) से ऐसा कहा। २५०

## अध्यायमु—८

शा. रक्षोबालुर नॆल्ल नीकॊडुकु चेर जीरि लोलोन ना
शिक्षामार्गमु लॆल्ल गल्ललनि याक्षेपिंचि ता नंदरन्
मोक्षायत्तुल जेसिनाडु मनकुन् मोसंबु वाटिल्लॆ नी
दक्षत्वबुन जक्क जेयवलयुन् दैतेयवंशाग्रणी ! ॥ 251 ॥

कं. उल्लसित विष्णुकथनमु, लॆल्लप्पुडु माकु जॆप्पडीगुरुडनि न-
न्नुल्लंघिंचि कुमारकु, लॆल्लरु चदुवंगदानवोत्तम ! विटे ? ॥ 252 ॥

कं. उडुगडु मधुरिपुकथनमु
विडिवडि जडु पगिदि दिरुगु विकसनमुन नॆ
नॊडिविन नॊडुवुल नॊडवडु
डुडुकनि जदिविंप माकु दुर्लभ मधिपा ! ॥ 253 ॥

कं. चॊक्कपु रक्कसि कुलमुन
वॆक्कुरु जन्मिंचिरंदु विष्णुनियंदुन्
निक्कपु मक्कुव विडुवं-
डॆक्कडि सुतु गंटि राक्षसेश्वर ! वॆर्रिरुन् ॥ 254 ॥

व. अनि यिट्लु गुरुसुतुंडु चॆप्पिन गॊडुकु वलनि विरोधव्यवहारंबुलु कर्ण-
रंध्रंबुलंदु खड्गप्रहारंबुलयि सोकिन विट्टु मिट्टिपडि, पादाहतंबयिन

## अध्याय—८

[शा.] हे दैत्यवंशाग्रणी (राक्षस-वंश के अग्रणी) ! तुम्हारे पुत्र ने सभी राक्षस-बालकों को पास बुलाकर, अकेले में ऐसा आक्षेप किया कि मुझसे सिखाए गये शिक्षा-मार्ग सभी असत्य हैं। उसने [उन] सबको मोक्षायत्त बनाया है। हमको धोखा हुआ है। अपनी दक्षता से [कार्य को] ठीक करना है। २५१ [कं.] हे दानवोत्तम ! सुना है न ! [उन्होंने यह कहकर] मेरी बात का उल्लंघन किया कि उल्लसित विष्णुकथाओं को कभी नहीं सुनाता। [ऐसा कह] वे मुझसे पढ़ना नहीं चाहते। २५२ [कं.] हे अधिप ! [तुम्हारा पुत्र] मधुरिपु (विष्णु) के कथन (वर्णन) को नही छोड़ता (बाज नहीं आता)। सबसे अलग होकर जड़ के समान फिरता है। विकास से मेरे सिखाए हुए वचन फिर से नहीं कहता है। हमारे लिए [इस] दुष्ट को पढ़ाना दुर्लभ है। २५३ [कं.] हे राक्षसेश्वर ! स्वच्छ राक्षस-वंश में कई पैदा हुए हैं। यह तो विष्णु के प्रति सच्चे प्रेम को नही छोड़ता है। ऐसे पागल पुत्र को तुमने कैसे जन्म दिया ? २५४ [व.] इस प्रकार गुरुपुत्र के कहने पर, पुत्र के विरोध-व्यवहार कर्णरंध्रों

भुजंगंबु भंगि, बवन प्रेरितंबैन दवानलंबु चंदंबुन दंडताडितंबयिन कंठीरवंबु कैवडि भीषणरोषरसावेश जाज्वल्यमानचित्तुंडुनु वुत्रसंहारोद्योगायत्तुंडुनु गंपमानगात्रुंडुनु नरुणीकृतनेत्रुंडुनुनै कौडुकुनु रप्पिंचि सम्मानकृत्यंबुलु दप्पिंचि निर्दयुंडै यशनिसंकाशभाषणंबुल नदल्चुचु ॥ 255 ॥

शा. सूनुन् शांतगुणप्रधानु नतिसंशुद्धांचितज्ञानु न-
ज्ञानारण्यकृशानु नंजलिपुटीसंभ्राजमानुन् सदा
श्रीनारायणपादपद्मयुगळी चिंतामृतास्वादना-
धीनुन् धिक्करणंबु सेसि पलिकॅन् देवाहितुंडुग्रतन् ॥ 256 ॥

सी. अस्मदीयंबगु नादेशमुन गानि मिक्किलि रवि मिंट मॅंड्य वॅरचु
नखिलकालमुलंबु ननुकूलुडै कानि विद्वेषियै गालि वीव वॅरचु
मत्प्रतापानलमंदीकृतार्चियै विच्चलविडि नग्नि वॅलुग वॅरचु
नतितीक्ष्णमैन नायाज्ञ नुल्लंघिंचि शमनुंडु प्राणुल जंप वॅरचु

ते. निंद्रु डौदल ना म्रोल नॅत्त वॅरचु
नमरकिन्नर गंधर्वयक्षविहग
नागविद्याधरावलि नाकु वॅरचु
नेल वॅरुववु पलुव ! नीकेदि दिक्कु ? ॥ 257 ॥

---

को खड्ग-प्रहार के समान लगने पर, [हिरण्यकशिपु] अधिक क्रुद्ध होकर पादताडित भुजंग की भाँति, पवनप्रेरित दवानल की भांति, दंडताडित कंठीरव (सिंह) की भाँति भीषण रोषरसावेश से जाज्वल्यमान चित्त वाला और पुत्र-संहार के उद्योगतत्पर और कपमान गात्र वाला और अरुणीकृत नेत्र वाला, बनकर, पुत्र को बुलवाकर, सम्मान करना छोड़, निर्दय बनकर, अशनि-संकाश (वज्र के सम) भाषणों (वचनों) से धमकाते हुए, २५५ [शा.] देवाहित (हिरण्यकशिपु) ने उग्रता से [अपने] पुत्र का, शांतगुण प्रधान वाले का, अतिसंशुद्ध और अंचित ज्ञान वाले का, अज्ञान रूपी अरण्य के लिए कृशान (अग्नि) का, अंजली से विराजमान रहनेवाले का सदा श्रीनारायण पादपद्म-युगली के चिंतन रूपी अमृतास्वादन में अधीन का, धिक्कार करके [यों] कहा २५६ [सी.] अरे दुष्ट ! मेरे आदेश के बिना सूर्य आकाश में अधिक प्रकाशित होने से डरता है। वायु सर्वकालों में अनुकूल बनकर बहता है, लेकिन विद्वेषी बनकर, बहने से डरता है। मेरे प्रताप के अनल से मंदकृतार्ची (मंद बनी ज्वालाओं वाला) बनकर अपने इच्छानुसार जलाने में अग्नि डरता है। शमन (यमराज) भी अतितीक्ष्ण मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके, प्राणियों को मारने में डरता है। [ते.] इंद्र मेरे सामने सिर उठाने को डरता है। अमर, किन्नर, गंधर्व, यक्ष, विहग, नाग,

शा. प्रज्ञावंतुलु लोकपालकुलु शुंभट्द्वेषुलय्युन् मदी-
याज्ञाभंगमु सेय नोड्दुरु रोषापांगदृष्टिन् विवे-
कज्ञानच्युतमै जगत्रितयमुं गंपिचु नीविट्टिचो
नाज्ञोल्लंघनमेंट्लु सेसितिवि ? साहंकारतन् दुर्मती ! ॥ 258 ॥

शा. कंठक्षोभमु गाग नीत्तिलि महागाढंबुगा डिंभ ! वै-
कुंठुं जेप्पेंदु दुर्जयुंडनुचु वैकुंठुंडु वीरव्रतो-
त्कंठाबंधुरुडेनि ने नमरुलन् खंडिप दंडिपगा
गुंठीभूतुडु गाक रावलदे ? मद्घोराहव क्षोणिकिन् ! ॥ 259 ॥

शा. आचार्योक्तमु गाक बालुरकु मोक्षासक्ति बुट्टिंचि नी
वाचालत्वमु जूपि विष्णु नहितुन् वर्णिचि मद्दैत्य वं
शाचारंबुलु नीरु सेसितिवि मूढात्मुं गुलद्रोहि निन्
नीचुं जंपुट मेलु चंपि कुलमुन् निर्दोषंबु जेसेदन् ॥ 260 ॥

कं. दिक्कुलु गेलिचिति नन्नियु
दिक्कॆव्वडु रोरि ! नीकु देवेंद्रादुलु
दिक्कुलराजुलु वेरीक
दिक्कॆरुगक कोलुतु रितडॆ दिक्कनि नन्नुन् ॥ 261 ॥

---

विद्याधर का समूह मुझसे डरते है। तुम क्यों नहीं डरते हो ? तुम्हारा रक्षक कौन है ? २५७ [शा.] हे दुर्मती ! [सभी] लोकपालक प्रज्ञावान, शुंभट-द्वेषवाले होकर भी, मेरी आज्ञा का भंग करने में डरते हैं। तीनों जगत मेरी रोषापांग दृष्टि से विवेक और ज्ञान से च्युत होकर, काँपते हैं। ऐसे में तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन, अहंकारी बनकर कैसे किया ? २५८ [शा.] हे डिंभक ! बहुत ही एकाग्र भाव से, कंठक्षोभ होने पर कहते हो कि वैकुंठ दुर्जय है। यदि [वह] वीरव्रत की उत्कंठा से बेधुर (सच्चा वीरव्रत रखनेवाला) है तो, जब मैं अमरों का खण्डन, दण्डन करता रहा तो, तब मुझसे कुंठीभूत हुए बिना, घोर-आहव-क्षोणि (भयंकर रणभूमि) में आना था। २५९ [शा.] आचार्य के कहे [वचनों को] छोड़, अपनी वाचालता को दिखाकर, बालकों में मोक्ष के प्रति आसक्ति पैदा की। [अपने लिए] अहितू विष्णू का वर्णन करके, मेरे दैत्यवंश के आचारों को व्यर्थ किया। मूढात्मा वाले और कुलद्रोही और नीच हो तुम्हें मार डालना ही अच्छा है। तुम्हें मारकर अपने कुल को निर्दोष बनाऊँगा। २६० [कं.] मैंने सब दिशाओं को जीत लिया है। अरे, तुम्हारी दिशा (रक्षक) कौन ? देवेंद्र आदि और सब दिशाओं के राजा (सभी) अन्य दिशा (रक्षक) को न जानकर, मुझे ही अपना दिशा (रक्षक) मानकर, मेरी सेवा करते है। २६१ [कं.] समस्त जगों में मैं

कं. वलवंतुडने जगमुल, बलमुलतो जनक वीर भावमुन महा
वलुल जयिंचिति नॅव्वनि, वलमुल नाडॅदवु नाकु व्रतिवीरुडवै ! ॥262॥

व. अनिन दंड्रिकि मॅल्लन विनयंबुन गोडुकिट्लनियें ॥ 263 ॥

कं. बलयुतुलकु दुर्बलुलकु, बलमॅव्वडु नीकु नाकु ब्रह्मादुलकुन्
वलमॅव्वडु प्राणुलकुनु, बलमॅव्वडट्टिविभुडु बलमसुरेंद्रा ! ॥ 264 ॥

कं. दिक्कुलु कालमुतो ने-
दिक्कुन लेकुंडु गलुगु दिक्कुल मॊदलै
दिक्कु गल लेनि वारिकि
दिक्कव्वॅडु वाडु नाकु दिक्कु महात्मा ! ॥ 265 ॥

सी. कालरूपंबुल गलविशेषंबुल नलघुगुणाश्रयुंडयिन विभुडु
सत्त्वबलेंद्रियसहज प्रभावात्मुडै विनोदंबुन नखिलजगमु
गल्पिचु रक्षिचु खंडिचु नव्ययुंडन्नि रूपमुलंदु नेतडु गलडु
चित्तंबु सममुगा जेयुमु मार्गंबु दप्पि वर्तिचु चित्तंबु कंटे

ते. वेरुलॅव्वरु चित्तंबु वॅरि गाक
चित्तमुनु नीकु वशमुगा जेयवच्चु !
मवयुतासुर भावंबु मानवय्य !
यय्य ! नी त्रोल मेलाडरय्य ! जनुलु ॥ 266 ॥

---

ही वलवान हूँ। अपने बल से नहीं बल्कि वीरता के भाव से महा बलवानों को जीत लिया है। तुम किसके बल से (किसके वलवूते पर) मेरे लिए प्रतिवीर वनकर बातें करते हो ? २६२ [व.] [इस प्रकार] कहने पर पिता से पुत्र ने विनय के साथ धीरे-धीरे यों कहा। २६३ [कं.] हे असुरेंद्र ! बलवानों और दुर्वलों का बल कौन है ? तुम्हें, मुझे, ब्रह्मा आदियों [सब] का वल कौन है ? [सब] प्राणियों का वल कौन है ? वही विभु मेरा वल (रक्षक) है। २६४ [कं.] हे महात्मा ! दिशाएँ काल के साथ जिस दिशा में होती है और जहाँ दिशाओं का प्रारम्भ होता है, (सर्वत्र) जिनकी दिशा (रक्षा) है, और जिनको नहीं, उन सबके लिए दिशा (शरण्य) जो वननेवाला है, वही मेरे लिए भी शरण्य है। २६५ [सी.] हे आर्य ! काल और रूप के क्रमविशेषों में अलघु (अत्यधिक) गुणाश्रय वाला विभु, सत्त्व, वल, इंद्रिय के सहज प्रभाव से युक्त होकर, विनोद के लिए अखिल जगत की कल्पना करता (बनाता) है, [उसकी] रक्षा करता है और खण्डन (नाश) करता है। वह अव्यय है। सभी रूपों में वह है। अपने चित्त को सम (समदर्शी बनाओ। मार्ग से भटककर विचरनेवाले चित्त के अतिरिक्त वैरी और कौन है ? चित्त ही शत्रु है। [इसलिए] चित्त को अपने वश में कर लो।

उ. लोकमु लन्नियुनु गडियलोन जयिंचिनवाड विंद्रिया-
नीकमु जित्तमुं गॅलुवनेरवु निन्नु निवद्धु जेयु नी
भीकरशत्रुलार्वुर प्रभिन्न जेसिन प्राणिकोटिलो
नीकु विरोधि लेडोकडु नेपुन जूडुमु दानवेश्वरा ! ॥ 267 ॥

कं. पालिंपुमु शेमुषि नु, न्मूलिंपुमु कर्मबंधमुल समदृष्टिन्
जालिंपुमु संसारमु, गीलिंपुमु हृदयमंदु गेशव भक्तिन् ॥ 268 ॥

व. अनिन बरम भागवत -शेखरुनकु दोषाचरशेखरुंडिट्लनियें ॥ 269 ॥

कं. चंपिन चच्चेंद ननुचुनु, गंपिपक योरि पलुव ! कठिनोक्तुल नन्
गुंपिचेंदु चावुनकुं, देंपरियै वदरुवानि तेंड्रगुन गुमती ! ॥ 270 ॥

शा. नातोडं ब्रतिभाष लाडेंदु जगन्नाथुंडु नाकंटे नी
भूतश्रेणिकि राजु लेडोकडु संपूर्णप्रभावुंडु म-
द्भ्रातं जंपिन मुन्न ने वेंदकिति वलुमारु नारायणुं
डेतद्विश्वमुलोन लेडु मरि वाडेंदुंडुरा दुर्मती ! ॥ 271 ॥

कं. ऍक्कड गल डेक्रिय ने-
चक्किन वर्तिचु नॅट्टि जाडनु वच्चुन्

मद-युत (-युक्त) असुर-भाव को छोड़ दो। हे तात ! तुम्हारे सामने जन (लोग) भलाई की बातें नहीं करते। २६६ [उ.] हे दानवेश्वर ! एक घड़ी [के समय] में तुमने सब लोकों को जीत लिया है। [ऐसे तुम] इंद्रियों के समूह और चित्त को जीत न सकते। तुमको निबद्ध करनेवाले ये छः भीकर शत्रु हैं, उनको प्रभिन्न करोगे तो प्राणिकोटि में तुम्हारा विरोधी कोई और नहीं रहेगा। निपुणता से देख लो (सोच लो)। २६७ [कं.] अपनी शेमुषी बुद्धि का पालन करो। समदृष्टि से कर्म-बन्धनों का उन्मूलन करो। इस संसार को छोड़ दो, [अपने] हृदय में केशव-भक्ति को रखो। २६८ [व.] [ऐसा] बोलनेवाले परम-भागवतशेखर (-भक्तश्रेष्ठ) से दोषाचरशेखर (राक्षसश्रेष्ठ) ऐसा बोला २६९ [कं.] अरे दुष्ट ! मार डाले तो मर जाऊँगा, ऐसा सोचकर, कंपित न होकर, कठिन-उक्तियों से मुझे क्रुद्ध बनाते हो। रे कुमती ! साहसी बनकर (मृत्यु का स्वागत करनेवाले के समान) बकवास कर रहे हो। २७० [शा.] रे दुर्मती ! मुझसे प्रतिभाषाएँ करने (बढ़-बढ़कर बात का जवाब देने) लगे हो। मेरे बिना इस भूतश्रेणी के लिए जगन्नाथ, राजा और संपूर्ण प्रभाव वाला अन्य कोई नहीं है। मेरे भ्राता (भाई) को मारनेवाले उसके लिए मैंने पूर्व में कई बार ढूँढा था। लेकिन इस विश्व में कहीं भी नहीं है। फिर वह कहाँ रहता है रे? [बोलो।] २७१ [कं.] वह कहाँ है ? किस क्रिया से, किस प्रकार रहता है ? किस मार्ग

अवक्कडुतु निन्नु विष्णुनि
व्रेक्कुलु प्रेलेंदवु वानि मृत्युनि पगिदिन् ॥ 272 ॥

व. अनिन हरिकिंकरुंडु शंकिपक हर्षपुलकांकुर संकलितविग्रहुंडै याग्रहंबु लेक हृदयंबुन हरि दलंचि नमस्करिंचि बालवर्तनंबुन नर्तनंबु सेयुचु निट्लनियें ॥ 273 ॥

म. कलडंभोधि गलंडु गालि गलडाकाशंबुनं गुंभिनिन्
गलडग्निन् विशलं बगळ्ळ निशलन् खद्योत चंद्रात्मलन्
गलडोंकारमुनं द्रिमूर्तुल द्रिलिंगव्यक्तुलं दंतटन्
गलडीशुंडु गलंडु तंड्रि वेंदकंगानेल नी या यँडन ! ॥ 274 ॥

कं. इंदुगलडंदुलेडनि, संदेहंमु वलदु चक्रि सर्वोपगतुं
डेंदेंदु वेदकि चूचिन, नंदंदे कलडु दानवाग्रणि ! विटे ॥ 275 ॥

व. अनि यिव्विधंबुन ॥ 276 ॥

म. हरि सर्वाकृतुलं गलंडनुचु ब्रह्लादुंडु भाषिप स-
त्वरुडै यँदुनु लेडु लेडनि सुतुन् दैत्युंडु तजिप श्री
नरसिंहाकृति नुंडे नच्युतुडु नानाजंगमस्थावरो-
त्करगर्भंबुल नन्नि देशमुल नुद्दंडप्रभावंबुनन् ॥ 277 ॥

---

से आता है ? तुम और तुम्हारे विष्णु दोनों को मार डालूँगा। उसके भृत्य के समान अधिक बकवास करते हो। २७२ [व.] [ऐसा] कहने पर, हरि-किंकर (हरि का दास, प्रह्लाद) शंका न कर, हर्षजनित पुलकांकुर-संकलित-विग्रह (-देह) वाला बनकर, आग्रह (क्रोध) के विना हृदय में केशव का स्मरण कर, प्रणाम करके, बाल-वर्तनों (बालक-सहज) आचरण से) नाचते हुए ऐसा बोला। २७३ [म.] हे पिता ! इधर-उधर [उसको] ढूंढ़ना क्यों ? ईश तो अंभोधि (समुद्र) में है, वायु में है, आकाश में और कुंभिनी (भूमि) में है, अग्नि, दिशाओं में, दिन और रातों में, खद्योत (सूर्य), चंद्रात्मों में है, ओंकार में, त्रिमूर्तियों में, त्रिलिंग व्यक्तियों में, यहाँ-वहाँ क्या ? सर्वत्र वह है, ईश है। २७४ [कं.] हे दानवाग्रणी ! सुनो। [इस बात का] संदेह मत करो कि चक्री यहाँ है और वहाँ नहीं है। चक्री तो सर्वोपगत है। जहाँ-जहाँ भी ढूंढ़ देखो, वहीं पर वह है। २७५ [व.] [ऐसा] बोलकर, इस प्रकार २७६ [म.] हरि सर्वाकृतियों में [अवस्थित] कहकर प्रह्लाद ने कहा तो, शीघ्रता से हिरण्यकशिपु 'कहीं भी नहीं है' कहते सुत को दैत्य ने धमकाया। [इसी समय में] अच्युत श्रीनरसिंहाकृति धारणकर, [अपने] उद्दण्ड प्रभाव से नाना (समस्त) जंगम, स्थावरोत्कर गर्भों में सर्वप्रदेशों में [तैयार] रहा। २७७

व. अय्यवसरंबुन नद्दानवेंद्रुंडु ॥ 278 ॥

कं. डिंभक ! सर्वस्थलमुल, नभोरुहनेत्रुंडु ननुचु मिगुल सं-
रंभंबुन वलिकॆद वी, स्तंभंबुन जूपगलवॆ चक्रिन गिक्रिन् ॥ 279 ॥

कं. स्तंभंबुन जूपवेनि, गुंभिनि नी शिरमु द्रुंचि कूल्पग रक्षा-
रंभमुन वच्चि हरि वि, -स्तंभंबुन नड्डपडग शक्तुंडगुने ! ॥ 280 ॥

व. अनिन भक्तवत्सलुंडगु श्रीहरि परमभक्तुंडैन प्रह्लादुंडिट्लनियॆ ॥ 281 ॥

शा. अंभोजासनु डादिगाग तृणपर्यंतंबु विश्वात्मुडै
संभावंबुन नुंडु प्रौढ विपुलस्तंभंबुनं बुंडडे
स्तंभांतर्गतुडय्यु नुंडुटकु ने संदेहमुन् लेदु नि-
र्दंभत्वंबुन नेडु गानबडु प्रत्यक्ष स्वरूपंबुनन् ॥ 282 ॥

व. अनिन विनि करालिंचि ग्रद्दन लेचि गद्दिय दिग्गन नुरिकि यॊर
बॆट्टिन खड्गंबु पॆरिकि केल नर्माचि जळिपिंचुचु महाभागवतशिखामणि-
यैन प्रह्लादुनि धिक्करिंचुचु ॥ 283 ॥

म. विनरा ! डिंभक ! मूढचित्त ! गरिमन् विष्णुंडु विश्वात्मकुं-
डनि भाषिंचॆदवैन निदुगलडे यंचुन् मदोद्रेकियै

---

[व.] उस अवसर पर दानवेंद्र ने २७८ [क.] अरे डिंभक बालक ! बहुत ही संरंभ के साथ कहते हो कि अंभोरुहनेत्र सर्वस्थलों में रहता है। इस स्तंभ में उस चक्री-गिक्री को दिखा सकते हो ? २७९ [कं.] स्तंभ में अगर तुम नहीं दिखाओगे तो तुमको मारकर, सिर को कुंभिनी (भूमि) पर गिरा दूंगा तो, तुम्हारी रक्षारंभ के लिए हरि विस्तंभ से, आकर, रोकने में शक्त (समर्थ) बनेगा ? २८० [व.] ऐसा कहने पर, भक्तवत्सल श्रीहरि के परमभक्त प्रह्लाद ने यों कहा। २८१ [शा.] अंभोजानन (ब्रह्मा) से लेकर तृणपर्यंत विश्वात्मक बनकर संभाव (सम्मान) से रहनेवाला प्रौढ़ (विष्णु) इस स्तंभ में क्यों नहीं रहेगा ? [इसमें] कोई संदेह नहीं है कि वह इस स्तंभ के अन्तर्गत रहेगा। निर्दंभत्व से आज प्रत्यक्ष स्वरूप से दिखाई पड़ेगा। २८२ [व.] [ऐसा] कहने पर सुनकर ज़ोर से शोर मचाते हुए, झट आसन से उठकर, सिंहासन से नीचे दौड़कर (झट उतरकर), म्यान से निकाले खड्ग को हाथ में सँभालकर, [उसे] हिलाते हुए, महाभक्तशिखामणि प्रह्लाद को धिक्कारते हुए, २८३ [म.] सुन रे ! डिंभक ! मूर्ख ! गरिमा से विष्णु को विश्वात्मक बताते हो। तो इसमें वह है क्या ? ऐसा कहते हुए दानवेंद्र ने मद के उद्रेक से अपनी हथेली से महा उदग्रप्रभा-शुंभ-(समूह),

दनुजेंद्रुं डड्चेत व्रेसेनु महोदग्रप्रभाशुंभमुन्
जनदृग्भीषणदंभमुन् हरिजनुस्संरंभमुन् स्तंभमुन् ॥ 284 ॥

श्रीहरि नरसिंह रूपमुन स्तंभमुनंदाविर्भविंचुट

व. इट्लु दानवेंद्रुंडु परिगृह्यमाणवैरंडुनु वैरानुबंध जाज्वल्यमानरोषानलुंडुनु रोषानलजंघन्यमानविज्ञानघिनयुंडुनु विनयगांभीर्यधैर्यजेगीयमानहृदयुंडुनु हृदयचांचल्यमानतामसुंडुनु तामसगुणचंक्रम्यमाणस्थैर्युंडुनुनै विस्रंभंबुन हुंकरिंचि बालुनि धिक्करिंचि हरिनिंदु जूपुमनि कनत्कनकमणिमय-कंकण क्रेंकारशब्दपूर्वकंबुगा दिग्दंतिदंत भेदनपाटवप्रशस्तंबगु हस्तंबुन सभामंडपस्तंभंबु व्रेसिन व्रेट्टुतोडन दशदिशलनु मिडुंगुरुलु चेंदर जिटिलि-पॅटिलिपडि बंभज्यमानंबगु नम्महास्तंभंबुवलन प्रळयवेळासंभूतसप्त-स्कंधबंधुरसमीरण संघटितजोघुष्यमाण महावलाहकवर्गनिर्गत-निबिडनिष्ठुरदुस्सहनिर्घात संघनिर्घोषनिकाशंबुलैन छटच्छटस्फटस्फट ध्वनिप्रमुख भयंकरारावपुंजंबुलु जंजन्यमानंबुलयि यॆगसि याकाश-

---

जन-दृग-भीषण-दम्भ (लोगों की आँखों को भय पैदा करनेवाले), हरि-जनुस्-संरंभ (हरि के जन्म के संरंभवाले), स्तंभ को मारा। २८४

श्रीहरि का स्तंभ में से नरसिंह के रूप में आविर्भूत होना

[व.] इस प्रकार दानवेंद्र ने [हरि से] परिगृह्यमाण (ग्रहण किये गये) वैर-भाव वाला, [उस] वैर रूपी अनुबध से जाज्वल्यमान रोष रूपी अनल वाला, रोषानल से जंघन्यमान (खोये हुए) विज्ञान और विनय वाला और विनय, गांभीर्य और धैर्य-जेगीयमान (प्रकाशमान) हृदय वाला, हृदय में चांचल्यमान तामस गुण वाला, तामस गुण के कारण चंक्रमयमाण (चंचल बने) स्थैर्य वाला होकर, हुंकार करके, बालक (प्रह्लाद) का धिक्कार करके, 'हरि को इसमें दिखाओ' कहते हुए, प्रकाशमान कनक और मणिमय कंकणों के क्रेंकार शब्द के साथ, दिग्गजों के दाँतों का बेधन करने के पाटव से प्रशस्त हाथ (हथेली) से सभामंडप के स्तंभ को मारा। उस वार के साथ [फ़ौरन] दस दिशाओं में चिंगारियोंके बिखर पड़ने पर, टूट गिरनेवाले बंभज्यमान (टूटता हुआ) उस स्तंभ से प्रलय के समय में होनेवाले संभूत (उत्पन्न) सात स्कधों के बंधुर (घने) समीरण से संघटित जोघुष्यमाण (गरजता हुआ) महा वलाक वर्ग से निर्गत (निकले हुए)-निबिड-निष्ठुर-दुस्सह निर्घात (अशनि)-संघ के निर्घोष के निकाश (समूह) छट:छट, स्फट:स्फट आदि भयंकर आरावपुंज (ध्वनि-समूह) जंजन्यमान (उत्पन्न होता हुआ) बनकर, ऊपर उठकर, भूमि,

कुहरांतरालंबु निरवकाशंबु सेसि निंडिनं वट्टसालक दोधूयमानहृदयं
लयि परवशंबुलैन पितामह महेंद्र वरुण, वायुशिखिप्रमुख चराचरजं
जालंबुलतोड ब्रह्मांडकटाहंबु पगिलि परिस्फोटितंबुगा प्रफुल्लपद्मयुग
संकाश भास्वर चक्र चाप हल कुलिशांकुश जलचर रेखांकित चारुचर
तलंबुलनु चरणचंक्रमण घनविनमित विश्वविश्वंभराभार धौरेय दिक्कुं
कुंभिनस कुंभिनीधर कूर्म कुलशेखरंबुलनु दुग्धजलधिजात शुंडाल शुंडा
मंडितप्रकांड प्रचंड महोरुस्तंभयुगळंबुलनु घणघणायमान मणिकिंकिणीग
मुखरित मेखलावलयवलयित पीतांबर शोभित कटिप्रदेशंबु
निर्जरनिम्नगावर्तवर्तुल कमलाकरगंभीरनाभिविवरंबुलनु मुष्टिपरिमेय
विनुततनुतरस्निग्धमध्यंबुलनु कुलाचलसानु भागसदृशकर्कशविशा
वक्षंबुलनु दुर्जनदनुज भट धैर्यतिलका लवित्रायमाणरक्षोराजवक्षोभ
विशंकटक्षेत्रविलेखन चुंचुलांगलायमान प्रताप ज्वलनज्वालायमा
शरणागतनयनचकोर चंद्र रेखायमाण वज्रायुध प्रतिमानभासमा
निशातखरतरमुखनखरंबुलनु शंखचक्रगदाखड्गकुंततोमर प्रमु

आकाश के अंतराल (मध्यप्रदेश) को भरकर, समा न सकने पर, दोदूयमान (विचलित) और परवश बने हुए हृदय वाले ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, वायु, अग्नि आदि [समस्त] चर-अचर जंतुजाल के साथ ब्रह्मांड रूपी कटाह (कढ़ाई) फट गया। [फट जाने पर उसमें से] विकसित फूल के समान श्री नृसिंहदेव का आविर्भाव हुआ। प्रफुल्ल (खिले हुए) पद्मयुगल के समान प्रकाशमान [तथा] चक्र, चाप, हल, कुलिश, अंकुश और जलचर (मत्स्य) की रेखाओं से अंकित चरण-तल वाला, चरण के चंक्रमण से (चाल से) विनमित बने समस्त विश्व और विश्वंभरा के भार को धारण करनेवाले दिक्-कुंभि (दिग्गज), कुंभिनस (सर्प-आदिशेष), कुंभिनीधर (कुलपर्वत) और कूल (जल समूह) का शेखर (श्रेष्ठ) दुग्ध-जलधि (क्षीरसागर)-जात (उत्पन्न) शुंडाल (ऐरावत नामक गज) के शुंडादंड (सूंड)के समान मंडित प्रकांड और प्रचंड महा-ऊरु (जाँघ) स्तम्भ-युगल वाला, मणिकिंकिणी गणों से घण-घण ध्वनि से मुखरित मेखलावलय से वलयित, पीतांबर से शोभित कटि-प्रदेश वाला, निर्जर-नदी (देवताओं की नदी— गंगा) के आवर्त (भँवर-से) वर्तुल आकार वाली नाभि रूपी विवर वाला, प्रशंसनीय पतली और मुष्टिपरिमेय (मुट्ठी में आनेवाली) स्निग्धमध्य (कमर) वाला, कुलाचल (कुल-पर्वतों) के सानु-भाग के सदृश कर्कश विशाल वक्ष वाला, दुष्ट दनुज भटों के धैर्य रूपी लताओं के लिए लवित्र (दराती) सम, राक्षसों के राजा (हिरण्यकशिपु) के विशाल-वक्ष-क्षेत्र को जोतने के लायक़ हल-सम, प्रताप की अग्नि से ज्वाला-सम, शरण में आये हुए [लोगों] के नयन-चकोरों के लिए चंद्ररेखा-सम, वज्रायुध के समान, प्रकाशमान निशात

नानायुधमहित महोत्तुंग महीधर शृंगसन्निभ वीरसागरवेलायमान-मालिकाविराजमाननिरर्गळानेकनत भुजार्गळंबुनु मंजुमंजीर मणिपुंज रंजितमंजुल हारकेयूर कंकण किरीट मकरकुंडलादि भूषण भूषितुंडुनु त्रिवळीयुतशिखशिखराभपरिणद्ध बंधुरकंधरंडुनु प्रकंपनकंपित-पारिजातपादपल्लवप्रतीकाशकोपावेशसंचलिताधरंडुनु शरत्कालमेघ-जालमध्यधगद्धगायमान तटिल्लतासमान देदीप्यमान दंष्ट्रांकुरंडुनु कल्पांतकालसकल भुवनग्रसनविलसित विजृंभमाणसप्तजिह्वजिह्वा तुलिततरळतरायमाण विभ्राजमान जिह्वुंडुनु मेरुमंदरमहागुहांतराळ-विस्तार विपुल वक्त्रनासिका वि-रंडुनु नासिकाविवरनिस्सर न्निबिड निश्श्वासनिकर संघट्टन संक्षोभित संतप्यमानसप्तसागरुंडुनु पूर्वपर्वत विद्योतमान खद्योतमंडल सदृक्षसमंचितलोचनुंडुनु लोचनांचलसमुत्कीर्य-माणविलोलकीलाभील विस्फुलिंगवितान रोरुध्यमान तारका ग्रहमंडलुंडुनु शक्रचापसुरुचिरोदग्रमहाभ्रूलताबंधबंधुरभयंकरवदनुंडुनु

---

(तीक्ष्ण) और खरतर नाखून वाला, शंख, चक्र, गदा, कुंत, तोमर आदि अनेक प्रकार के आयुधों से सहित (भूषित) महोत्तुंग (बहुत ही ऊँचे) महीधर (पर्वत) के शृंग (शिखर)-सन्निभ (सम) वीर [रस के] सागर की वेला (सीमा) सम, पुष्पमालिकाओं से विराजमान निरर्गल अनेक शत भुजा रूपी अर्गलाओं वाला, सुंदर मंजीर (पायल) और मणिपुंज से रंजित (प्रकाशमान) मनोहर हार, केयूर, कंकण, किरीट, मकरकुंडल आदि भूषणों से भूषित, त्रिवली (तीन नदी) से युक्त शिखरि (पर्वत) के शिखराभ (शिखर के समान) परिणद्ध बंधुर कंधर वाला, प्रकंपन (वायु) से कंपित पारिजात वृक्ष के पल्लव-सम, कोपावेश से संचलित अधर वाला, शरत्काल के मेघ-जाल (-समूह) के मध्य प्रकाशित तटिल्लता (बिजलियाँ) सम देदीप्यमान दंष्ट्रा रूपी अंकुर वाला, कल्पांत समय में समस्त भुवनों को निगलने की लीला में विजृंभित सप्तजिह्व (अग्नि) की जिह्वा (शिखा) के समान चंचल बनी हुई जिह्वा वाला, मेरु और मंदर [पर्वतों] की बड़ी गुफाओं के बीच के प्रदेश के समान विस्तृत वक्त्र और नासिकाविवर (बिल) वाला, नासिकाविवरों से निकलनेवाली बड़ी-बड़ी निःश्वासों के समूह से सतत संक्षुब्ध बनाये सप्तसागर वाला, पूर्वपर्वत पर प्रकाशमान सूर्यमंडल के समान लोचन वाला, लोचनांचल (कटाक्ष) से निकलती हुई चंचल अग्निज्वालाओं के भयंकर चिंगारियों से ग्रहमंडल और अवरुद्ध नक्षत्रमंडल वाला, शक्र (इन्द्र) चाप के समान सुरुचिर (सुंदर) और उदग्र महा भ्रूलताबंध से बंधुर (युक्त) और भयंकर वदन (मुख) वाला, घनतर बड़ी-बड़ी गंडशिलाओं (चट्टानों) के समान कमनीय (मनोहर) गंड

घनतरगंडशैल तुल्य कमनीय गंडभागुंडुनु संध्याराग रक्त धाराधरमालिकाप्रतिम महाभ्रंकषतंतन्यमान पट्टुतर सटाजालुंडुनु सटाजाल संचालन संजातवात डोलायमान वैमानिक विमानुंडुनु निष्कंपित शंखवर्णमहोर्ध्व कर्णुंडुनु मंथदंडायमानमंदर वसुंधराधरपरिभ्रमणवेग समुत्पद्यमानवियन्मंडलमंडित सुधाराशिकल्लोल शीकराकार भासुर केसरुंडुनु वर्वाखर्व शिशिरकिरण मयूखगौर तनूरुहुंडुनु निजगर्जानिनद निर्दळित कुमुद सुप्रतीक वामनैरावण सार्वभौमप्रमुख दिग्गिभराज कर्णकोटरुंडुनु धवळ धराधर दीर्घ दुखलोकनीयदेहुंडुनु देहप्रभापटल निर्मथ्यमान परिपंथि यातुधान निकुरंब गर्वांधकारुंडुनु प्रह्लादहिरण्यकशिपु रंजनभंजन निमित्तांतरंग बहिरंग जेगीयमान करुणावीररस-संयुतुंडुनु महाप्रभावुंडुनु नयिन श्रीनृसिंहदेवुंडाविर्भविंचिनं गनुंगोनि ॥ 285 ॥

कं. नरमूर्ति गादु केवल, हरिमूर्तियु गादु मानवाकारमु के-
सरियाकारमु नुन्नदि, हरिमायारचितमगु यथार्थमु चूडन् ॥ 286 ॥

उ. तेंपुन बालु डाडिनसुधीरत सर्वगतत्वमुं ब्रति-
ष्ठिंप दलंचि यिट्टु नरसिंहशरीरमु दाल्चि चक्रि शि-

---

भाग वाला, संध्या-समय के रक्त (लाल-रंग) से युक्त धाराधर (मेघ) मालिकाओं के सम, महाभ्रंकश को छूनेवाले, पट्टुतर सटा (केसर)-जाल वाला, सटाजाल के संचालन से संजात (उत्पन्न) वात (हवा) से देवताओं के विमानों को हिलानेवाला, निष्कंपित शंख-वर्ण के महा-ऊर्ध्व (ऊपर उठे) कर्ण वाला, क्षीरसागर को मथने के समय मथानी बना हुआ मंदर पर्वत के परिभ्रमण के वेग से उत्पन्न आकाश को अलकृत करनेवाले बड़े-बड़े तरंगों के शीकरों के समान प्रकाशमान केसर वाला, पर्व के समय मे उदित हुए सम्पूर्ण शशि की किरण-सम श्वेत रोम वाला, अपने गर्जन के निनाद से कुमुद, सुप्रतीक, वामन, ऐरावण, सार्वभौम आदि दिग्गज-राजाओं के कर्ण-कुहरों को फाड़ देनेवाला, धतला (धौत)-धराधर (कैलास) पर्वत के समान दीर्घ और दुर्निरीक्ष देह वाला, अपनी देह की कांति से परिपंथि (शत्रु)-यातुधान (राक्षसों) के गर्व रूपी अंधकार को कुचल देनेवाला, प्रह्लाद और हिरण्यकशिपों के रंजन और भंजन के कारण, भीतर और बाहर जेगीयमान (प्रकाशमान) करुणा और वीररसों से पूर्ण और महाप्रभाव वाला, श्रीनृसिंहदेव के आविर्भूत होने पर, दर्शन कर, २८५ [कं.] [यह] नरमूर्ति नहीं, केवल हरिमूर्ति भी नहीं। मानवाकार और केसरी के आकार में है; देखने पर लगता है कि यह हरि का मायारचित यथार्थ है। २८६ [उ.] साहस से बालक के कहने पर चक्री सधीरता से अपने

क्षिपग वच्चिचनाडु हरिचे मृति यंचु दलंतु नेन ना-
सॉपुन बॅपु नंदरुनु जूड जरितु हरितु शत्रुवुन् ॥ 287 ॥

नरसिंहमूर्ति हिरण्यकशिपुनि वधिचुट

व. अनि मॅत्तंबडनि चित्तंबुन गद यॅत्तिकॉनि तत्तरंबुन नार्चुचु नकुंठित कंठीरवंबु डग्गरु गंधसिधुरंबु चंदंबुन नक्तंचरकुंजरंडु नरसिंहदेवुन कॅदुरु नडचि तदीयदिव्यतेजोजाल सन्निकर्षंबुनंजेसि दवानलंबु डग्गरिन खद्योतंबुनुं बोलॅ गर्तव्याकर्तव्यंबुलु देलियक निर्गतप्रभुंडयि युंडॅनु। अप्पुडु ॥ 288 ॥

म. प्रकटंबै प्रळयावसानमुन मुन् ब्रह्मांड भांडावरो-
धकमै युन्न तमिस्रमुन् जगमु नुत्पादिचुचो द्रावि सा-
त्त्विकतेजोनिधियैन विष्णुनॅड नुद्दीपिचुने नष्टमै
विकलंबै चॅडु गाक तामसुल प्रावीण्यंबु राजोत्तमा ! ॥ 289 ॥

व. अंत नद्दानवेंद्रुंडु महोद्दंडंबगु गदादंडंबु गिरगिरं द्रिप्पि नरमृगेंद्रुनि वेसिन नतंडु दर्पंबुन सर्पंबु नॉडिसिपट्टु सर्पपरिपंथि नेर्पुन दितिपट्टि

---

सर्वगतत्व को प्रतिष्ठित करने के लिए यहाँ नरसिंह का शरीर धारण कर [मुझे] दंड देने के लिए आया है। लगता है कि हरि से मेरी मृति (मौत) होगी। फिर भी [ऐसा] विचरण करूँगा कि जगत मेरे अतिशय पराक्रम को देखे, [और मैं] शत्रु का हरण (संहार) करूँगा। २८७

नरसिंहमूर्ति द्वारा हिरण्यकशिपु का वध

[व.] ऐसा [सोचकर] नरम न बने चित्त (कठिन चित्त) से गदा को ऊपर उठाकर, संभ्रम से चिल्लाते हुए, अकुठित कंठीरव (सिंह) के पास जानेवाले गंधसिंधुर (मदगज) की भाँति नक्तचर-कुंजर (राक्षसराज) नरसिंहदेव के अभिमुख होकर, चलकर, उसके दिव्यप्रकाश के समूह के सन्निकर्ष (आकर्षण) से दावानल के पास गये हुए खद्योत के समान, कर्तव्य और अकर्तव्य को न जानकर निर्गत-प्रभ (अपनी प्रभा खोकर) रह गया। २८८ [म.] हे राजोत्तम ! पूर्व काल में जब जगत की सृष्टि करते समय प्रकट होकर, ब्रह्मांड-भांड के लिए अवरोध बने हुए तमिस्र को पीकर, तब विष्णु सात्त्विक तेजोनिधि बन गया। तामसों का प्रावीण्य क्या [उस विष्णु के प्रति] उद्दीप्त हो सकता है ? नहीं; नष्ट और विकल होकर बिगड़ जायेगा। [इस प्रकार शुक परीक्षित से कह रहा है।] २८९ [व.] तब उस दानवेंद्र ने [अपने] महोद्दंड गदादंड को फिराकर, नरमृगेंद्र (नरसिंह) को मारा। उसने दर्प से दितिसुत को, सर्पपरिपंथी (गरुड़) के

वट्टकोनिन मिट्टिपडि दट्टिंचि विट्टु कट्टलुक नय्यसुरवरुंडु दृढवलंबुन मिडिसि पट्टु दप्पिचुकोनि विडिवडि दिटवु तप्पक कुप्पिचि युप्परं वॅगसि विहंगकुलराजचरण निर्गळितभुजंगंबु तॅरंगुन बलंक नुरिकि तन भुजाटोपंबुन नरकंठीरवुंडु कुंठितुं डय्येडि ननि तलंचि कलंगक चॅलंगुचु दन्नु निविडनीरदनिकरंबुलमाटुन निलिपुलु गुंपुलु गोनि डागि मूगि क्रम्मर नात्मीयजीवनशंकाकळंकितुलै मंतनंबुल जितनंबुलु सेयुचु निरीक्षिप नक्षीणसमरदक्षताविशेषं बुपलक्षिंचि खड्गवर्मंबुलु धरियिंचि भूनभोभागंबुल विविधविचित्रलंघन लाघवंबुलं बरिभ्रमण-भेदंबुलं गराळवदनुंडयि यंतराळंबु दिरुगु साळ्वपुडेगचंदंबुन संचरिंचिन सहिंपक ॥ 290 ॥

सी. पंचाननोद्धूतपावकज्वालल भूनभोंतरमेल्ल बूरितमुग
दंष्ट्रांकुराभील धगधगायितदीप्ति नसुरेंद्रु नेत्रमु लंधमुलुग
गंटकसन्निभोत्कटकेसराहति नभ्ररंध्रमु भिन्नमै चलिप
नळयाभ्रचंचलाप्रतिम भास्वरमुलै खरनखरोचुलु ग्रम्मुदेर

---

सर्प को निपुणता से पकड़ने के समान, पकड़ लिया। असुर-वर अधिक क्रोध में आकर, बहुत प्रयास से, दृढ़वल से हिलकर, उसकी पकड़ से छूट गया। दृढ़ता को न छोड़, आकाश में उछलकर विहंगकुल के राजा (गरुड़) के चरण से निर्गलित (गिरे हुए) भुजंग की तरह, छूट भागकर, उसने ऐसा सोचा कि अपने भुजाटोप (भुजदर्प) से नरकंठीरव (नरसिंह) कुंठित हो गया। [ऐसा सोचकर] विकल न बनकर, उत्साह के साथ [हिरण्यकशिपु ने] निविड नीरदों (मेघों) के पीछे निलिप लोगों (देवता) के छिपकर, झुंड बांधकर, अपने (हिरण्यकशिपु के) जीवन के बारे में, शंकान्वित होकर (कहीं यह राक्षस जीवित बचा न रह जाए) मंतन और चिंतन (सलाह-मशविरा) करते हुए देखते रहने पर, हिरण्यकशिपु ने अपनी अक्षीण-समरदक्षता पर ध्यान देकर, खड्ग और वर्म पहनकर, भू (भूमि) और नभोभाग (आकाश) में विविध और विचित्र लंघन के लाघव (उछलकूद की प्रवीणता) से परिभ्रमण के भेदों से, भयंकर मुख वाले बनकर, अंतराल में फिरनेवाले श्येन के समान संचार करने पर, तब उसको सहन न कर, २९० [सी.] हे अधिप! नरसिंह ने पंचाननों से उद्भूत (बाहर निकलनेवाली) पावक-ज्वालाओं के भूमि और आकाश के मध्य भर जाने पर, दंष्ट्राओं के अंकुरों के भयंकर धगधगायित (चौंधिया देनेवाली) दीप्ति के कारण असुरेंद्र के नेत्रों के अंधे बन जाने पर, कांटों जैसे उत्कट केसरों के मेघसमूह को चूर-चूर बनाने पर, प्रलय [काल के] मेघों में दीख पड़नेवाली चंचलाओं (बिजलियों) के समान भास्वर

ते. सटलु जळिपिंचि गर्जिंचि संभ्रमिंचि
दृष्टिसारिंचि बोमलु बंधिंचि कॅरलि
जिह्व याडिंचि लंघिंचि चेत नोडिसि
पट्टॅ नरसिंहुडा दितिपट्टि नधिप ! ॥ 291 ॥

कं. सरकु गोनक लीलागति, नुरगेंद्रुंडु मूषकंबु नोडिसिनपगिदिन्
नरकेसरि वनुनोडिसिन, सुरविमतुडु प्राणभीति सुडिवडियॅ नृपा! ॥292॥

कं. सुरराजवैरि लोबडॅ, बरिभावित साधुभक्तपटलांहुनकुन्
नरसिंहुनकु नुबंच, न्खरतरजिह्वुनकु नुग्रतररंहुनकुन् ॥ 293 ॥

व. अंत ॥ 294 ॥

म. बिहगेंद्रुडहि ब्रच्चु कैवडि महोद्वृत्तिन् नृसिंहुंडु सा-
ग्रहुडै यूरुवुलंदु जेर्चि नखसंघातंबुलन् ब्रच्चॅ दु-
स्सहु वंभोळिकठोरदेहु नचलोत्साहुन् महाबाहु नि-
ग्रहुताशांतक भीकरुन् घनकरुन् दैत्यान्वय श्रीकरुन् ॥ 295 ॥

शा. चिंचुन् हृत्कमलंबु शोणितमु वर्षिचुन् धरामंडलि
द्रेंचु गर्कशनाडिकावळुलु भेदिंचुन् महावृक्षमुन्

---

(प्रकाशवान) तेज नखों की कांतियों के हर तरफ़ भर जाने पर, [ते.] सटाओं को हिलाकर, गरजकर, संभ्रम से देखकर [गुस्से से] भौं चढ़ाकर, जिह्वा को बाहर [निकाल] हिलाकर, कूदकर दितिसुत (राक्षस) को झटके से हाथ से पकड़ा। २९१ [कं.] हे नृप ! निर्लक्ष्य के भाव (लापरवाही) से जैसे खेल-खेल में मूषक को पकड़नेवाले उरगेन्द्र (सर्पराज) की भाँति, अपने को नरसिंह के पकड़ने पर, सुरविमत वाला (राक्षस) प्राणभीति से विचलित हो गया। २९२ [कं.] अपमानित साधु और भक्तों के पटलों (समूहों) के पापों को मिटानेवाले, प्रकाशमान तीक्ष्ण जीभ वाले, बहुत वेग से कूदनेवाले नरसिंह के वश में सुर-राज-वैरी (इंद्र का शत्रु— हिरण्यकशिपु) आ गया। २९३ [व.] तब २९४ [म.] विहगेंद्र के साँप को नोच डालने के समान, महा-उद्वृत्ति से, साग्रह (क्रुद्ध) बनकर नृसिंह ने अपनी जाँघों पर लिटाकर, दुस्सही (जिसे सहन नहीं किया जा सकता), वज्र के समान कठोर देह वाले, अचल-उत्साह वाले, महाबाहु (पराक्रमी), इंद्र, हुताश (अग्नि), अंतक (यम) [आदि देवताओं के लिए] भीकर, घन-कर वाले और दैत्यवंश के लिए श्रीकर (हिरण्यकशिपु) को अपने नख-संघातों से नोच डाला। २९५ [शा.] नरसिंह उसके हृदयकमल को फाड़ डालता है, धरामंडल पर [उसके] रक्त को बरसाता है, कर्कश नाड़ियों के समूह को तोड़ डालता है, उसके महावक्ष का भेदन

व्रंचुन् मांसमु सूक्ष्मखंडमुलुगा दुष्टासुरुन् व्रच्चि द्रु-
पिचु व्रेवुलु कंठमालिकलु गल्पिचुन् नखोद्भासियै ॥ 296 ॥

सी. वक्षःकवाटंबु व्रक्कलु सेयुचो घनकुठारंबुल करणि नॉप्पु
गंभीरहृदयपंकजमु भेदिंचुचो गुद्दालमु भंगि गॉमरु मिगुलु
धमनीवितानंबु दविलि खंडिंचुचो वट्टुलवित्रंबुल पगिदि मॅरयु
जठरविशालांत्रजालंबु द्रेंचुचो ग्रकचसंघमुल गरिम जूपु

ते. नंकगतुंडैन दैत्युनि नाग्रहमुन
शस्त्रचयमुल नॉपक संहरिंचि
यमरु नरसिंहुनखरंबु लतिविचित्र
समरमुखरंबुलै युंडे जनवरेण्य ! ॥ 297 ॥

कं. स्फुरितविबुधजन मुखमुलु
परिविदळितदनुज निवहपतितनुमुखमुल्
गुरुरुचिजित शिखिशिखमुलु
नरहरिखरनखमु लमरु नतजनसखमुल् ॥ 298 ॥

व. इट्लु केवलपुरुषरूपंबुनु मृगरूपंबुनु गानि नरसिंहरूपंबुन रेयुनं बवलुनं गानि संध्या समयंबुन नंतरंगंबुनु बहिरंगंबुनु गानि समाह्वारंबुनु

---

करता है, मांस को सूक्ष्म खण्ड कर देता है, [उस] दुष्ट असुर को नोचकर दर्प के साथ नखोद्भासी (नखों से प्रकाशमान होकर), उसकी आँतड़ियों को अपने लिए कंठमालाएँ बनाता है। २९६ [सी.] हे जनवरेण्य (राजन्) ! नरसिंह के नख [उस समय] अति विचित्र और समरमुखर होकर विलसित हुए। वक्ष के कवाट को खंडित करते समय घनकुठारों के समान शोभित होते हैं, हृदय-पंकज के भेदते समय कुदाल की भाँति सुन्दर लगते हैं, धमनी-वितान को लगकर खंडित करते समय पट्टलवित्र (हँसिया) की तरह चमक उठते हैं। [ते.] जठर के विशाल-आँतजाल को फाड़ते समय क्रकच-समूहों की भाँति अतिशयता से दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार अंकगत दैत्य का, आग्रह (क्रोध) से शस्त्र-चय-(-समूह) से दमन न कर नृसिंह ने [नाखूनों से ही] वध किया। २९७ [कं.] वे (नृसिंह के नख) विकसित विबुध जनों के मुख हैं। खंडित दनुज-निवह (राक्षस-समूह का)-पति (हिरण्यकशिपु) के मुख और सिर हैं। [अपनी] गुरु-रुचि (कांति) से अग्नि की ज्वालाओं को जीतनेवाले हैं। और जो [उनके समक्ष] हैं उनके लिए सुखप्रद हैं। [इस प्रकार] नरहरि के नाखन शोभित हुए। २९८ [व.] इस प्रकार नारायण ने न केवल पुरुष रूप और न केवल मृगरूप बल्कि नरसिंह के रूप में; रात या दिन दोनों न हों ऐसे संध्याकाल में; अंतरंग और बहिरंग दोनों न हों ऐसे

गगनंबुनु भूमियुनुं गानि यूरुमध्यंबुन ब्राणसहितंबुनु ब्राणरहितंबुलुनु गानि नखंबुलं द्रैलोक्यजनहृदय भल्लुंडयिन दैत्यमल्लुनि वधियिंचि महादहनकीलाभीलदर्शनुंडुनु गराळवदनुंडुनु लेलिहान भीषणजिह्वुंडुनु शोणितपंकांकितकेसरुंडुनुनै प्रेवुलु कंठमालिकलुग धरिंचि कुंभिकुंभ-विदळनंबु सेसि चनुदेंचु पचाननंबुनुं बोलें दनुजकुंजर हृदयकमल विदळनंबु सेसि तदीय रक्तसिक्तंबुलैन नखंबुलु सांध्यरागरक्तचंद्र रेखल चॅलुवु वहिंप सहिंपक लेचि तन कट्टेदुर नायुधंबु लॅत्तुकानि तत्तरंबुन रणंबुनकु नुरवडिचु रक्कसुलं बॅक्कुसहस्रंबुलं जक्रादिनिर्वक्रसाधनंबुल नॊक्कनि जिक्ककुंडं जक्कडिचॆं निव्विधंबुन ॥ 299 ॥

शा. रक्षोवीरुल नॅल्ल द्रुंचि रणसंरंभंबु चालिंचि दृ-
ष्टिक्षेपंबु भयंकरंबुग सभासिंहासनारूढुडै
यक्षीणाग्रहुडै नृसिंहुडु कराळास्यंबुतो नॊप्पॆ दन्
वीक्षिप वलिकिप नोडि यितरुल् विभ्रांतुलै डागगन् ॥ 300 ॥

कं. सुरचारणविद्याधर, गरुडोरगयक्षसिद्धगणमुललो नॊ-
क्करुडैन डाय वॆरचुन्, नरहरि नय्यवसरमुन नरलोकेशा ! ॥ 301 ॥

सभाद्वार पर; आकाश और भूमि न हों ऐसे ऊरु-मध्य (भाग) पर; प्राणसहित और प्राणरहित न हों ऐसे नाखूनों से; तीनों लोकों के जन के हृदय-भल्ल (हृदय में शूल के समान पीड़ा देनेवाले) उस दैत्य-मल्ल का वध करके, महा-दहन (-अग्नि)-कीलाभील-दर्शन (कीलाओं के समान भयंकर दिखाई पड़नेवाला), कराल (भयंकर)-वदन वाला, बार-बार [होंठ] चाटती हुई भीषण जिह्वा वाला, रक्त के पंक से भीगे हुए केसरों से युक्त हो, आंतों की कंठमालिकाएँ धारण कर, कुंभों (गज) के कुम्भ का विदलन करके आनेवाले पंचानन के समान दनुज-कुंजर के हृदयकमल का विदलन करके उसके रक्त से भीगे हुए नखों के संध्या-राग से (लाल बनी) रक्तचंद्र की रेखाओं (किरणों) की सुंदरता को धारण करने पर, [उसे देख] सहन न कर सक, उठकर, अपने समक्ष आयुध लेकर संभ्रम से युद्ध के लिए तैयार होनेवाले कई सहस्र राक्षसों को चक्र आदि निर्वक्र-साधनों से एक को भी न छोड़कर मार डाला। इस प्रकार २९९ [शा.] श्री नरसिंह समस्त राक्षसों को मारकर, युद्ध के संरंभ को समाप्त कर, देखने में भय लगे [ऐसे रूप से] सभा के सिंहासन पर अक्षीण-आग्रह (-क्रोध) से करालवदन वाला हो सुशोभित हुआ। [उसके भयंकर मुख को] देखने का हिम्मत न कर, विभ्रांत हो देवता छिपकर रह गये। ३०० [कं.] हे नरलोकेश (राजन !) उस अवसर पर सुर, चारण, विद्याधर, गरुड़, उरग, यक्ष और सिद्धगणों में से कोई भी नरहरि के पास जाने में डरता था। ३०१ [कं.] हे अधिप ! निर्जर-अंगनाओं, देवता स्त्रियों के

कं. तर्षंबुल नरसिंहुनि, हर्षंबुल जूचि निर्जरांगनलु महो-
त्कर्षंबुल गुसुमंबुल, वर्षंबुल गुरिसि रुत्सवंबुल नधिपा ! ॥ 302 ॥

व. मरियु नय्यवसरंबुन मिंटि ननेक देवताविमानंबुलुन गंधर्वगानंबुलुनु नप्सरोगणनर्तनसंविधानंबुलुनु दिव्यकाहळ भेरीपटह मुरजादि ध्वानंबुलुनु प्रकाशमानंबुलय्यॆ। सुनंद कुमुदादुलयिन हरिपार्श्वचरुलुनु महेश्वर विरिंचि महेंद्रपुरस्सरुलगु त्रिदशकिन्नर किंपुरुष पन्नग सिद्ध साध्य गरुड गंधर्वचारण विद्याधरादुलुनु मुनुलनु, प्रजापतुलुनु नरकंठीरवदर्शनोत्कंठुलयि चनुदेंचि ॥ 303 ॥

### ब्रह्मादिदेवतलु नृसिंहमूर्तिनि वेऱु वेऱ स्तुतिंचुट

कं. करकमल युगळकीलित
शिरुलै डग्गऱक भक्ति जेसिरि वहु सं-
सरणाब्धितरिकि नखरिकि
नरभोजनहस्तहरिकि नरकेसरिकिन् ॥ 304 ॥

व. आसमयंबुन देवतलंदऱु वेऱ्वेऱ विनुतिंचिरि। अंदु गमलासनुं-डिट्लनियॆ ॥ 305 ॥

---

नरसिंह को बहुत ही इच्छा से देखकर, हर्ष से, महोत्कर्ष से, उत्सव से कुसुमवृष्टि की। ३०२ [व.] और उस अवसर पर आकाश में कई देवताविमान और गंधर्व के गान और अप्सरागणों के नर्तन-संविधान और दिव्यकाहल, भेरि, पटह, मुरज आदि की ध्वनियाँ प्रकाशमान हुईं। सुनंद, कुमुद आदि हरि के पार्श्वचर, महेश्वर, विरिंचि, महेंद्र आदि को आगे लेकर त्रिदश, किन्नर, किंपुरुष, पन्नग, सिद्ध, साध्य, गरुड़, गंधर्व, चारण, विद्याधर आदि लोग, मुनि और मनु, प्रजापति नरकंठीरव के दर्शन की उत्कंठा से आकर, ३०३

### ब्रह्मा आदि देवताओं का नृसिंहदेव की अलग-अलग से स्तुति करना

[कं.] बहु-संसरण (-संसार) रूपी अब्धि (सागर) को पार करनेवाली तरी (नाव), नखरी (नखों को ही आयुध किये हुये व्यक्ति), नरभोजनहस्त (राक्षसराज) को हरनेवाले और नरकेसरी के निकट न जाकर, करकमल-युगल को शिर से कीलित करके, भक्ति [भाव] प्रकट किया। ३०४ [व.] उस समय सब देवताओं ने अलग-अलग [नरसिंह की] स्तुति की। उनमे से कमलासन ने ऐसा कहा। ३०५ [म.] घनलीला गुणों के चातुर्य से भुवनों की कल्पना (सृष्टि) करके, रक्षा

म. घनलीलागुणचातुरिन् भुवनमुल् गल्पिचि रक्षिचि भे-
दनमुं जेयु दुरंतशक्तिकि ननंतज्योतिकिन् जित्रवी-
र्युनिकिन् नित्यपवित्रकर्मुनिकि ने नुत्कंठतो नव्यया-
त्मुनिकिन् वंदन माचरिंचेद गृपामुख्यप्रसादार्थिनै ॥ 306 ॥

व. रुद्रुंडिट्लनियें ॥ 307 ॥

चं. अमरवरेण्य ! मीदट सहस्रयुगांतमुनाडु गानि को-
पमुनकु वेळ गादु सुरबाधकुडैन तमस्विनीचरुन्
समरमुनन् वधिचितिवि चालु ददात्मजुडैन वीडु स-
द्विमलुडु नीकु भक्तुडु पवित्रुडु गावुमु भक्तवत्सला ! ॥ 308 ॥

व. इंद्रुंडिट्लनियें ॥ 309 ॥

सी. प्राणिसंघमुलहृत्पद्ममध्यंबुल निर्वसिचि भासिल्लु नीव येरुगु
दितकालमु दानवेश्वरुचे बाधपडि चिक्कियुन्न यापन्नजनुल
रक्षिचितिवि मम्मु राक्षसेश्वरु जंपि क्रतुहव्यमुलु माकु गलिगें मरल
मंटिमि नी सेव मरगिनवारलु कैवल्यविभवंबु कांक्षसेय

आ. रितरसुखमु लेल्ल निच्चयिपग नेल ?
यस्थिरंबु लिवि यनंत भक्ति
गोलुवनिम्मु निन्नु घोरदैत्यानीक-
चित्तभयदरंह ! श्रीनृसिंह ! ॥ 310 ॥

---

करनेवाली और भेदन (लय) करनेवाली दुरंतशक्ति को, अव्ययात्मक को मैं उत्कंठा के साथ, कृपा आदि प्रसाद का अर्थी बनकर, वंदना करता हूँ। ३०६ [व.] रुद्र ने इस प्रकार कहा। ३०७ [चं.] हे अमरवरेण्य.! हे भक्तवत्सल ! भविष्य में सहस्र युगों के अंत के समय ही क्रोध का सही समय है; अब नहीं। सुरबाधक तमस्विनीचर (राक्षस) को समर में तुमने मार डाला। यह पर्याप्त है। उसका पुत्र यह बालक सद्विमल, तुम्हारा भक्त और पवित्र है। उसकी रक्षा करो'। ३०८ [व.] इंद्र ऐसा बोला। ३०९ [सी.] 'हे भयंकर दैत्यों के अनीक (समूह) के चित्त को भयद-युद्ध वाले ! हे श्रीनृसिंह ! प्राणिसघों के हृदय-कमलों के बीच वास करनेवाले तुम ही जानते हो। इतने काल तक दानवेश्वर से पीड़ित होकर कष्टों में फँसे हुए हम आपन्नजनों की, राक्षसेश्वर को मारकर [तुमने] रक्षा की। [उसके संहार से] फिर से क्रतुओं के हव्य हमें संप्राप्त हुए। [अब हम] जी गये (हमें जीवन-दान दिया)। जिन्हें तुम्हारी सेवा का चस्का मिल गया, वे कैवल्यविभव (मोक्ष) की भी कांक्षा नहीं करेंगे, [आ.] तो अन्य सुखों की इच्छा ही क्यों ? ये सब (अन्य

व. ऋषुलिट्लनिरि ॥ 311 ॥

म. भवदीयादरलीन लोकमुल नुत्पादिंचि रक्षिप ने-
डवि दैत्येशुनि चेत भेदितमुलै ह्रस्वंबुलै युंड नी-
यविनीतुन् नरसिंहरूपमुन संहारंबु नोंदिचि वे-
दविधि ग्रम्मर नुद्धरिंचितिगदा ! धर्मानुसंधायिवै ॥ 312 ॥

व. पितृदेवतलिट्लनिरि ॥ 313 ॥

शा. चंडक्रोधमुतोड दत्युड वडिन् श्राद्धंबुलन् मत्सुतुल्
पिंडंबुल् सतिलोदकंबुलुग नर्पिपंग मा कीक यु-
द्दंडत्वंबुन दान कैकोनु महोदग्रुंडु वोडिक्कडन्
खंडिपंबडे नीनखंबुल नुतुल् गाविंतु मात्मेश्वरा ! ॥ 314 ॥

व. सिद्धुलिट्लनिरि ॥ 315 ॥

कं. क्रुद्धुंडै यणिमादिक, सिद्धुलु गैकोनिन दैत्यु जीरितिवि महा-
योद्धवु नी कृप माकुनु, सिद्धुलु मरलंग गलिगॆ श्रीनरसिंहा ! ॥ 316 ॥

व. विद्याधरुलिट्लनिरि ॥ 317 ॥

कं. दानवुनि जंपि यंत, -र्धानादिक विद्यलॆल्लदयतो मरलं-
गा निच्चितिवि विचित्रमु, नी निरुपमवैभवंबु निजमु नृसिंहा ! ॥ 318 ॥

व. भुजंगुलिट्लनिरि ॥ 319 ॥

---

सुख) अस्थिर हैं। अनत भक्ति से तुम्हारी सेवा करने दो' । ३१० [व.] ऋषि लोगों ने ऐसा कहा । ३११ [म.] 'तुम आदरलीला से लोकों का उत्पादन करके, उनकी रक्षा करते समय, उन सबके दैत्येश से भेदित होकर ह्रस्व बन जाने पर, आज उस अविनीति वाले को नरसिंह के रूप मे संहार करके, धर्मानुसंधायी बनकर, तुमने फिर से वेदों की विधि का उद्धार किया' । ३१२ [व.] पितृदेवता इस प्रकार बोले । ३१३ [शा.] 'हे आत्मेश्वर ! हमारे पुत्रों के तिल और पानी के साथ श्राद्धों के समय पिंडों का अर्पण करने पर, हमें न देकर, वह दैत्य चंड क्रोध से महोदग्र बन, झट से खुद ही ले लेता था। आज यहाँ यह खंडित हुआ। [हम] तुम्हारे नखों की स्तुति करते हैं' । ३१४ [व.] सिद्ध लोग ऐसा बोले । ३१५ [क] 'हे श्रीनरसिंह ! क्रुद्ध बनकर, अणिमादि सिद्धियों को लेनेवाले दैत्य का वध किया। तुम महान योद्धा हो। तुम्हारी कृपा से हमें फिर से सब सिद्धियाँ मिली' । ३१६ [व.] विद्याधर लोग ऐसा बोले । ३१७ [कं.] 'हे नृसिंह ! दानव को मारकर, अंतर्धान आदि सब विद्याएँ कृपा से फिर हमको दीं। तुम्हारा असमान वैभव सचमुच बड़ा ही विचित्र है' । ३१८ [व.] भुजंग ऐसा बोले । ३१९ [कं.] 'हे ईश !

कं. रत्नमुलनु मत्कांता-
रत्नंबुलु नुच्चिकॊन्न रक्कसुतुरमुन्
यत्नमुन व्रच्चि वेंचिति,
पत्नुलु रत्नमुलु गलिगि ब्रदिकिति मीशा ! ॥ 320 ॥

व. मनुवुलिट्लनिरि ॥ 321 ॥

कं. दुर्णयुनि दैत्यु बॊरिगॊनि, वर्णाश्रमधर्मसेतुवर्गमु मरलं
बूर्णमु सेसिति वेमनि, वर्णितुमु कॊलिचि ब्रदुकुवारमु देवा ! ॥ 322 ॥

व. प्रजापतुलिट्लनिरि ॥ 323 ॥

म. प्रजलं जेयुटकै सृजिंचिति नमुं बार्टिचि दैत्याज्ञचे
ब्रजलं जेयक यितकालमु महाभारंबुतो नुंटि मी
कुजनुन् वक्षमु जीरि चंपितिवि संकोचमु लो कॆल्लचो
ब्रजलं जेयुचु नुंडुवारमु जगद्भद्रायमाणोदया ! ॥ 324 ॥

व. गंधर्वुलिट्लनिरि ॥ 325 ॥

कं. आडुदुमु रेयु बगलुं, बाडुदुमु निशाटुनॊद्द बाधिचु दयं-
जूडडु नीचे जमुनि, गूडॆ महापातकुनकु गुशलमु गलदे ! ॥ 326 ॥

व. चारणुलिट्लनिरि ॥ 327 ॥

---

रत्न और हमारी कांता-रत्नों को छीन लेनेवाले राक्षस के उर (वक्ष) का यत्न से भेदन कर दिया। पत्नियों और रत्नों से सम्पन्न होकर [हम तो फिर से] जी गये'। ३२० [व.] मनु ऐसा बोले। ३२१ [कं.] 'हे देव ! तुमने दुर्णय (दुर्नीति वाले) दैत्य का संहार करके, वर्णाश्रम धर्मों के सेतुवर्ण को फिर से पूर्ण किया। हम तुम्हारा वर्णन किस प्रकार कर सकते है? हम तो तुम्हारी सेवा करके जीनेवाले हैं'। ३२२ [व.] प्रजापतियों ने ऐसा कहा। ३२३ [म.] 'हे जगद्-भद्रायमाणोदया (जगत की भलाई के लिए उदित) ! हमको तुमने प्रजा की सृष्टि के लिए बनाया था। हम अब तक दैत्य की आज्ञा से प्रजा की सृष्टि न करके, बहुत ही ऊब गये। तुमने उसके वक्ष का भेदन करके मारा। अब निस्संकोच बनकर, सब स्थलों में हम प्रजा की सृष्टि करते रहेंगे'। ३२४ [व.] गंधर्व ऐसा बोले। ३२५ [कं.] 'उस निशाट के पास हम दिन और रात (सदा) नाचते और गाते रहे। हम पर उसने दया नही दिखाई, हमें बाधाएँ दीं। आज तुम्हारी वजह से वह यम से जाकर मिल गया। कही महापातक (-पापी) कुशल से रह सकता है?' ३२६ [व.] चारण ऐसा बोले। ३२७ [कं.] 'हे ईश ! भुवनों के

कं. भुवनजनहृदयभल्लुडु, दिविजेंद्रविरोधि नेडु वॆंगॆ नी चेतन्
भवरोगनिवर्तकमगु, भवदंघ्रियुगंबु जेरि ब्रदिकॆद मीशा ! ॥ 328 ॥

व. यक्षुलिट्लनिरि ॥ 329 ॥

उ. भ्रंशमु लेनि नी भटुल भंगविमुक्तुल मम्मु नॆक्कि नि-
स्संशयवृत्ति दिक्कुल ब्रचारमु सेयुचु नुंडु वोडु नि-
स्त्रिंशमु तोड वीनि गडतेर्चिति वापद मान नो चतु-
र्विंशतितत्त्वशासक ! त्रिविष्टिपमुख्य ! जगन्निवासका ! ॥ 330 ॥

व. किंपुरुषुलिट्लनिरि ॥ 331 ॥

कं. पुरुषोत्तम ! नेरमु किं-
पुरुषुल मल्पुलमु निन्नु भाषिपग दु-
ष्पुरुषुन् सकलसुजन हृ-
त्पुरुषुं जंपितिवि जगमु ब्रदिकॆ नधीशा ! ॥ 332 ॥

व. वैतालिकुलिट्लनिरि ॥ 333 ॥

कं. त्रिभुवनशत्रुडु पडियॆनु, सभलंदुनु मखमुलंदु जगदीश्वर ! नी
शुभगीतमुलु पठिपुचु, नभयुलमै संचरितुमार्तशरण्या ! ॥ 334 ॥

व. किन्नरुलिट्लनिरि ॥ 335 ॥

---

लोगों के हृदयों में भल्ल (भाले के समान पीड़ा देनेवाला), दिविजेंद्र-विरोधी आज तुम्हारे हाथ मर गया। भवरोगनिवर्तक (संसार रूपी रोग का निवारण करनेवाले) तुम्हारे अंघ्रियुग (चरणों) के पास जियेंगे'। ३२८ [व.] यक्षों ने ऐसा कहा। ३२९ [उ.] 'हे चौबीस तत्त्वों के शासक ! त्रिविष्टप (स्वर्ग) [आदि जगतों] का आश्रयभूत ! पदवी की च्युति और अपमानों से विमुक्त हम पर, जो तुम्हारे सेवक है, चढ़कर, बिना संशय के दिशाओं में संचार करता रहा। तुमने आज उसको निस्त्रिंश से (छुरी जैसे नखों से) चीरकर मारा। हमारी आपदाओं का भी अंत हुआ'। ३३० [व.] किंपुरुष ऐसा बोले। ३३१ [कं.] 'हे पुरुषोत्तम ! हे अधीश ! हम तो अल्प किंपुरुष हैं। तुम्हारी प्रशंसा नही कर सकते। दुष्पुरुष और समस्त सुजनों के हृत्-पुरुष (शत्रु) को [तुमने] मार डाला। [अब तो] सारा जगत जिंदा हो गया'। ३३२ [व.] वैतालिक यों बोले। ३३३ [कं.] 'हे जगदीश्वर ! हे अतिशरण्य ! त्रिभुवनों का शत्रु तो अब गिर गया (मर गया)। अब से सभाओं में यज्ञों में तुम्हारे शुभगीत गाते हुए निर्भय होकर फिरेंगे'। ३३४ [व.] किन्नर ऐसा बोले। ३३५ [क.] 'हे हरी ! उसने तो धर्म के बारे में भी न सोचकर, हमसे बहुत ही नीच काम करवाये। उस

कं. धर्ममु दलपड् लघुतर, कर्ममु सेयिच्चु मम्मु गलुपात्मकु दु-
ष्कर्मुनि जंपिति वुन्नत, शर्मलमै नीदु भक्ति सलिपेंदमु हरी ! ॥ 336 ॥

व. विष्णु सेबकुलिट्लनिरि ॥ 337 ॥

उ. संचितविप्रशापमुन जंडनिशाचरुडैन वीनि शि-
क्षिचुट कीडु गादु कृप सेसिति वीश्वर ! भक्ति तोड से-
विचुट कंटॆ वैरमुन वेगमु चेरग वच्चु निन्नु नी-
यंचितनारसिंहतनुवद्भुत मापद बासिरंदरुन् ॥ 338 ॥

## अध्यायमु—९

व. इट्लु ब्रह्मरुद्रेंद्र सिद्धसाध्य पुरस्सरुलैन देवमुख्युलंदुरु नॆड गलिगि यनेकप्रकारंबुल विनुतिंचिरि। अंदु रोषविजृंभमाणुं डयिन नरसिंह देवुनि डग्गर जेर वॆरचि लक्ष्मीदेवि बिलिचि यिट्लनिरि ॥ 339 ॥

कं. हरिकि बट्टपुदेविवि, हरिसेवानिपुणमतिवि हरिगतिवि सदा
हरिरतिवि नीक सनि नर, -हरि रोषमुडिंपवम्म हरिवरमध्या ! ॥340॥

---

कलुषात्मक, दुष्कर्म वाले को तुमने मार डाला। उन्नत कर्म वाले वनकर, तुम्हारे प्रति भक्ति से रहेंगे। ३३६ [व.] विष्णु के सेवक ऐसा बोले। ३३७ [उ.] हे ईश्वर ! सचित किये हुए विप्र के शाप से यह चंड निशाचर बना था। इसको दण्ड देने में बुराई नहीं है। तुमने [हम पर] कृपा की। कोई भी हो, भक्ति से सेवा करने की अपेक्षा वैर का भाव रखने से तुम तक शीघ्र पहुँच सकता है। तुम्हारे अंचित नरसिंह का तनु बहुत ही अद्भुत है। सभी के कष्ट दूर हुए। ३३८

## अध्याय—९

[व.] इस प्रकार ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, सिद्ध, साध्यों को आगे लिये सभी देव-मुख्यों ने [अपने और नरसिंह के मध्य] अन्तर को बनाये रखकर, बहुत प्रकार से नरसिंह की स्तुति की। लेकिन रोष के संरंभ से विजृंभित नरसिंह देव के पास जाने में डरकर, लक्ष्मीदेवी को बुलाकर [देवताओं ने] इस प्रकार कहा। ३३९ [कं.] 'हे हरिवरमध्ये (मृगराज की भाँति पतली कमर वाली) ! तुम हरि की पटरानी हो। हरि की सेवा करने में निपुण मति वाली हो। हरि-गति वाली हो (सिंह जैसी सुंदर चाल वाली हो)। सदा हरि की रति (प्रेम) में निरत रहनेवाली हो। तुम जाकर नर-हरि के रोष (क्रोध) को उतारो (कम करो)'। ३४० [व.] कहने पर, [सुनकर], स्वीकार कर, महा-उत्कंठा से वह कलकंठी (कोयल जैसे बोलने

व. अनिन नित्यकॊनि महोत्कंठ तोड ना कलकंठकंठि नरकंठीरवुनि युपकंठंबुनकुं जनि ॥ 341 ॥

सी. प्रळयार्कबिंबंबुपगिदि नुन्नदि गानि नॆम्मोमु पूर्णेंदुनिभमु गादु
शिखिशिखासंघंबु चॆलुवु सूपॆडु गानि चूड्कि प्रभाभासुरमु गादु
वीररौद्राद्भुतावेश मॊप्पॆडु गानि भूरिकृपारसस्फूर्ति गादु
भयददंष्ट्रांकुर प्रभलु गप्पॆडु गानि दरहसितांबुजातंबु गादु

ते. कठिननखरनृसिंहविग्रहमु गानि
कामिनीजनसुलभ विग्रहमुगादु
विन्नदियु गादु तॊल्लि ने विष्णु वलन
गन्नदियु गादु भीषणाकार मनुचु ॥ 342 ॥

कं. वलिकॆद ननि गमकमु गॊनु
बलिकिन गड्डु नलिगि विभुडु प्रतिवचनमुलं
बलुकडनि निलुचु शशिमुखि
वलुविडि हृदयमुन जनव भयमुनु गदुरन् ॥ 342 ॥ अ

व. इट्लु नरहरि रूपंबु वारिजनिवासिनि वीक्षिंचि शंकिंचि शांतुंडैन वॆनुक डग्गरियॆदनिनि चिंतिपुचुन्न, वारिजसंभवुंडद्देवुनि रोषंबु निवारिप नितरुल कलवि गादनि प्रह्लादुं जीरि यिट्लनियॆ ॥ 343 ॥

---

वाली, लक्ष्मीदेवी) नरकंठीरव के पास जाकर, ३४१ [सी.] प्रलयकाल के अर्क (सूर्य)-विंब जैसा है लेकिन [उनका] मुख-मण्डल पूर्णेन्दु के समान तोनहीं है। चितवन तो शिखि (अग्नि) के शखासंघ (ज्वालाओं के समूह) की शोभा को दिखा रही है, किंतु प्रसाद भासुर तनहीं है। रूप तो वीर, रौद्र अद्भुत के आवेश से भरित है, लेकिन भूरि-कृपारस की स्फूर्ति से युक्त नहीं है। भयद-दंष्ट्रांकुरों की प्रभा से आवृत है, किंतु मुख तो दरहास से विकसित अंबुजात (कमल) नहीं है। [ते.] विग्रह तो कठिन (भयंकर) नखर-नृसिंह का है किंतु कामिनीजन के लिए सुलभ नही है। यह भीषण आकार तो कभी मेरा देखा हुआ नही; विष्णु से सुना हुआ भी नहीं। ३४२ [कं.] [ऐसा] सोचकर, मैं [उनसे] बात करूँगी, यह कुतूहल दिखाती, बात तो क्या अति क्रुद्ध विभु प्रत्युत्तर नहीं देगा तो? सोचकर लक्ष्मी खड़ी रह गई। वह शशिमुख वाली (लक्ष्मी) हृदय में स्नेह और भय दोनों के घिर जाने से दुविधा में पड़ी रह गई। ३४२ (अ) [व.] इस प्रकार नरहरि के रूप को वारिजनिवासिनि (लक्ष्मी) देख, शङ्कित होकर, [ऐसा] सोचने लगी कि शांत होने के बाद निकट जाऊँगी। [ऐसा चिंतन करनेवाली लक्ष्मी को देख] वारिजसंभव (ब्रह्मा) ने यह सोचकर कि उस देव के रोष का निवारण करना प्रह्लाद के सिवा किसी और के लिए साध्य नहीं

कं. तोंड्रमगु रोषमुन मी, तंड्रि निमित्तमुन जक्रि दारुणमूर्तिन्
वेंड्रमु विडुवडु मॅल्लन, तंड्री ! शीतलुनि जेसि दय सेय गदे ! ॥ 344 ॥

व. अनिन नौगाक यनि महाभागवतशेखरुंडयिन बालकुंडु करकमलंबुलु मुकुलिंचि मंदगमनंबुन मंदविनयविवेकंबुल नरसिंहदेवुनि सन्निधिकि जनि साष्टांगदंडप्रणामंबु सेसिन भक्तपराधीनुंडगु नय्यीश्वरुं-डालोकिंचि ॥ 345 ॥

उ. प्राभवमॉप्प नुत्कटकृपामतियै कदियंग जीरि सं-
शोभितदृष्टिसंघमुल जूचुचु बालुनि मौलियंदु लो-
काभिनुतुंडु पट्टॅ नसुरांतकुडुद्भटकालसर्प भी-
ताभयदानशस्तमु ननर्गळमंगळहेतु हस्तमुन् ॥ 346 ॥

व. इट्लु हरिकरस्पर्शनंबुन भयविरहितुंडुनु ब्रह्मज्ञानसहितुंडुनु बुलकित-देहुंडुनु समुत्पन्न संतोषबाष्पसलिल धारासमूहुंडुनु ब्रेमातिशय गद्गद-भाषणुंडुनु विनयविवेक भूषणुंडुनु नेकाग्रचित्तुंडुनु भक्तिपरायत्तुंडुनु नयि यद्देवुनि चरणकमलंबुलु दन हृदयंबुन निलिपिकॉनि करकमलंबुलु मुकुळिंचि यिट्लनि विनुतिचॅ ॥ 347 ॥

---

है, प्रह्लाद को बुलाकर ऐसा कहा। ३४३ [कं.] हे तात (प्रह्लाद) ! तुम्हारे पिता के कारण चक्री (चक्रधारी— विष्णु) ने इस प्रकार प्रचंड रोष से भयंकर रूप ले लिया। शीघ्र [उस रोष को] नहीं छोड़ रहा है। तुम धीरे-धीरे पास जाकर उनको शीतल बनाकर, दया दिखाओ न ! ४४३ [व.] [ऐसा] बोलने पर 'ठीक है' कहकर, महाभागवत-शेखर उस बालक ने करकमलों को मुकुलित करके, मंदगमन से अमंद-विनय-विवेक के साथ नरसिंहदेव की सन्निधि में जाकर, साष्टांगदंडप्रणाम किया तो भक्त-पराधीन होनेवाले ईश्वर ने देखकर, करुणायत्त वाला होकर, ३४५ [उ.] प्राभव (प्रभुता) के शोभायमान होने पर, उत्कट कृपामति बनकर, [बालक को] पास बुलाकर, सुंदर और शांत-दृष्टि से देखते हुए, उस प्रह्लाद के सिर पर लोकाभिनुत (लोक से प्रशंसित— विष्णु), भयंकर काल रूपी (यम रूपी) साँपों से भीत लोगों को अभय देने में शस्त (समर्थ), अनर्गल (बिना रोक-टोक के होनेवाले) मंगलों (कल्याणों) का कारणभूत अपने हस्त को, रखा। ३४६ [व.] इस प्रकार, हरि के करस्पर्शन से भयविरहित और ब्रह्मज्ञान-सहित, पुलकित देह वाला, संतोष के कारण समुत्पन्न बाष्प-सलिलधाराओं के समूह वाला, प्रेमातिशय से गद्गद भाषण करनेवाला, विनय और विवेकों से भूषित, एकाग्र चित्त वाला, भक्ति-परवश बनकर, उस देव के चरण-कमलों को अपने हृदय में स्थापित कर, करकमलों को मुकुलित करके, इस प्रकार [देव को] स्तुति की। ३४७

### प्रह्लादुंडु नरसिंहमूर्तिनि स्तुतिचुट

म. अमरुल् सिद्धुलु संयमीश्वरुलु ब्रह्मादुल् सतात्पय चि-
त्तमुलन् निन्नु बहुप्रकारमुल नित्यंबुन् विचारिंचि सा-
रमु मुट्टन् नुति सेय नोपरट ! ने रक्षस्तनूजुंड ग-
र्वमदोद्रिक्तुड बालुडन् जडमतिन् वर्णिप शक्तुंडने ! ॥ 348 ॥

म. तपमुन् वंशमु देजमुन् श्रुतमु सौंदर्यंबु नुद्योगमुन्
निपुणत्वंबु व्रतापपौरुषमुलुन् निष्ठाबलप्रज्ञलुन्
जपयोगंबुलु चालवीश्वर ! भवत्संतुष्टिकें दंति यू-
थपु चंदंबुन भक्ति सेयवलयु दात्पर्यसंयुक्तुडै ॥ 349 ॥

म. अमलज्ञानसुदानधर्मरति सत्यक्षांतिनिर्मत्सर-
त्वमुलन् यज्ञतपोनसूयल गडुन् दर्पिंचु धात्रीसुरो-
त्तमुकंटॆन् श्वपचुंडु मुख्युडु मनोऽर्थप्राणवाक्कर्ममुल्
समतन् निन्नु नर्पिचॆनेनि निजवंश श्रीकरुंडौ दुविन् ॥ 350 ॥

सी. अज्ञुंडु सेसिन यपराधमुलनु जेपट्ट ईश्वरुडु कृपालुडगुट
जेपट्टु नौकचोट सिद्धमीश्वरुनकु नर्थंबु लेकुंड नतडु पूर्णु-

---

### प्रह्लाद का नरसिंहमूर्ति की स्तुति करना

[म.] अमर, सिद्ध, संयमीश्वर, ब्रह्मा आदि [सब] सतात्पर्य चित्तों (बुद्धि) से नित्य ही बहु प्रकार से विचार करके, सार को पार कर, (पूरी तरह से) स्तुति नहीं करते हैं। मैं तो राक्षस का तनूज (पुत्र) हूं। गर्व से मदोद्रिक्त हूं। बालक हूँ और जड़मति हूँ। मैं तुम्हारा वर्णन करने मे कहाँ शक्त (समर्थ) हूँ ? (वर्णन नहीं कर सकता।) ३४८ [म.] हे ईश्वर ! [तुमको संतुष्ट करने के लिए] तप, वंश, तेज, श्रुत, (पांडित्य), सौन्दर्य, उद्योग, निपुणता, प्रताप, पौरुष, निष्ठा, बल, प्रज्ञा, जप, योग —ये सब भी समर्थ नहीं है। तुम्हें संतुष्ट करने के लिए [मनुष्य को] तात्पर्य से संयुक्त होकर, दंतियूथ की तरह भक्ति करनी चाहिए। ३४९ [म.] अमल ज्ञान, सुदान और धर्म में रति (आसक्ति), सत्य, क्षमा, निर्मत्सरता, यज्ञ, तप और अनसूया (असूया-रहितता) से अधिक दर्पित धात्रीसुरोत्तम (ब्राह्मणोत्तम) से भी, मन, अर्थ, प्राण, वाक् और कर्मो की समता से तुम्हें संतुष्ट करनेवाला श्वपच (चंडाल) भी तुम्हारे लिए मुख्य बनेगा। वह अन्त में अपने वंश का श्रीकर (श्री-कीर्ति, शोभा) से युक्त करनेवाला बनेगा। ३५० [सी.] ईश्वर कृपालु होने से अज्ञ (बुद्धिहीन) द्वारा किये गये अपराधों को क्षमा करता है। जिसके धन नही है उस मानव को अर्थ से पूर्ण (धनवान) होने के बाद,

डेन नर्थमु लीश्वरार्पणंबुलु गाग जेयुट धर्मंबु सेसेंनेनि
नद्दंबु जचिन नळिकललामंबु प्रतिबिंबितंबगु पगिदि मरल

ते. नर्थमुलु दोचु गावुन नधिकबुद्धि
भक्ति सेयंग वलयुनु भक्तिगानि
मॅच्चडर्थंबुलॉसगॅडु मेरलंडु
बरमकरुणुंडु हरि भक्तिबांधवुंडु ॥ 351 ॥

कं. काबुन नल्पुड संस्तुति
गाविचेद वॅरपु लेक कलनेरुपुनन्
नी वर्णनमुन मुक्तिकि
बोवु नविद्यनु जयिचि पुरुषु डनंता ! ॥ 352 ॥

सी. सत्त्वकरुडवैन सर्वेश ! नी याज्ञ शिरमुल निडुकोनि चेयुवारु
ब्रह्मादुलमरुलु भय मोंदुचुन्नारु नी भीषणाकृति नेडु सूचि
रोषंबु मानु नी रुचिरविग्रहमुलु कल्याणकरमुलु कानि भीति
करमुलु गावु लोकमुलकु वृश्चिकपन्नगंबुल भंगि भयमु जेयु

ते. नसुर मर्दिचितिवि साधुहर्षमय्यॅ
नवतरिंचिनपनि दीरॅ नलुक येल ?
कलुषहारिवि संतोषकारि वनुचु
निष्ठुदलतुरु लोकुलु निर्मलात्म ! ॥ 353 ॥

---

अर्थों को ईश्वर को अर्पण करना कर्तव्य है। ऐसा करने से दर्पण को देखने से अपने माथे पर लगा हुआ टीका जिस प्रकार प्रतिबिंबित होता है, वैसे उनको धन-दौलत और भी दिखाई पड़ेंगे। (अर्थ की प्राप्ति उसके प्रति लालसा और बढ़ेगी।) [ते.] इसलिए बहुत श्रद्धा से भक्ति करनी चाहिए। परम दयालु और भक्त-बांधव हरि अर्थ देते समय, अर्थ की अपेक्षा भक्ति को ही मानता है। ३५१ [क.] हे अनन्त ! इसलिए मैं अल्प हूँ [फिर भी] बिना भय के अपनी निपुणता से तुम्हारी संस्तुति करूँगा। तुम्हारा वर्णन करने से अविद्या को जीतकर पुरुष मुक्ति पाता है। ३५२ [सी.] हे सत्त्वाकार (सत्त्व के आकार) सर्वेश ! निर्मलात्मा-वाले ! तुम्हारी आज्ञा को शिरोधार्य मानकर करनेवाले ब्रह्मा आदि अमर लोग, आज तुम्हारी भीषण (भीकर) आकृति को देख डर रहे हैं। रोष को छोड़ दो। तुम्हारा रुचिर (सुंदर) विग्रह (रूप) कल्याणकर है; मगर भीतिकर नहीं। लोकों के लिए वृश्चिकों, पन्नगों की तरह भयद राक्षस का तुमने मर्दन (संहार) किया [ते.] साधु लोगों को हर्ष हुआ। [तुम्हारे] अवतरण से जो काम होना था, वह हो गया। फिर यह क्रोध किसलिए ? लोग तुमको कलुषहारी और सन्तोषहारी मानते हैं। ३५३ [म.] भयंकर

म. खरदंष्ट्राभृकुटीसटानखयु नुग्राध्वानयुन् रक्त के-
सरयुं दीर्घतरांत्रमालिकयु भास्वन्नेत्रयुग्मैन नी-
नरसिंहाकृति जूचि ने वॆरव बूर्णक्रूरदुर्वार दु-
र्भरसंसार दवाग्निकिन् वॆरतु नी पादाश्रयुं जेयवे ! ॥ 354 ॥

व. देवा ! सकलयोनुलंदुनु सुखवियोगदुःखसंयोगसंजनितंबैन शोकानलंबुन् दंदह्यमानुंडनै दुःखनिवारकंबु गानि देहाद्यभिमानंबुन मोहितुंडनै परिभ्रमिंचुचुन्न येनु नाकुं ब्रियुंडवु सखुंडवु वरमदेवतवुनैन नीवगु ब्रह्म-गीतंबुलयिन लीलावतारकथाविशेषंबुल बठियिंचुचु रागादिनिर्मुक्तुंडवै दुःखपुंजंबुल दरियिंचि भवदीय चरणकमल स्मरणसेवानिपुणुलैन भक्तुलं जेरियुंडॆद । वालुनि दल्लिदंड्रुलुनु रोगिनि वैद्यदत्तंबयिन यौषधंबुनु समुद्रंबुन मुनिगॆडिवानि नावयुनु दक्कॊरुलु रक्षिप नेरनि तॆरंगुन संसार तंतप्यमानुंडै नी चेत नुपेक्षितुं डयिन वानि नुद्धरिपु नीवु दक्क नन्युंडु समर्थुंडु गाडु । जगंबुल नॆव्वंडेमिकृत्यंबु नॆव्वनि चेतं ब्रेरितुंडै ये यिंद्रियंबुलं जेसि येमिटि कॊरकु नॆव्वानिकि संबंधियै ये स्थलंबुल ने समयंबुनंदेमि रूपंबुन नेगुणंबुन नपरंबैन जनकादिभावंबु नुत्पादिंचि परंबयिन ब्रह्मादि भावंबुन रूपांतरंबु नॊंदिंचि नट्टि विविध-

दंष्ट्रा (दाढ), [चढ़ी हुई] भौंहें, सटा, नख, उग्र ध्वान (ध्वनि), रक्त-केसर, दीर्घतर [लटकती हुई] आँतड़ियों की माला —इन सबसे तुम्हारा नर-सिंह रूप देखकर मैं डरता नहीं। मगर इस संसार रूपी दावाग्नि से जो सम्पूर्ण रूप से क्रूर, दुर्वार और दुर्भर है, डरता हूँ। मुझे अपना पादाश्रयी बना लो। ३५४ [व.] हे देव ! मैं तो सकल योनियों में (प्रत्येक जन्म में) सुख के वियोग, दुःख के संयोग से जनित शोक रूपी अनल में दंदह्यमान होकर (जलते रहकर), देहाभिमान से जो दुःखनिवारक नहीं है, मोहित होकर, परिभ्रमण करनेवाले मेरे लिए प्रिय, सखा, परदेवता तुम ही हो। तुम्हारे ब्रह्मगीत माने जानेवाले ने लीलावतार के कथाविशेषों का पठन करते तुम्हारे चरणकमल के स्मरण में निपुण भक्तों से मिलकर (की संगति में) रहता हूँ। बालक को माता-पिता, रोगी को वैद्य से प्रदत्त औषध, समुद्र में डूबनेवाले को नाव के अतिरिक्त अन्य कोई जिस प्रकार रक्षा नहीं कर सकते हैं, उसी प्रकार संसार के ताप से संतप्त होकर जो रहते हैं, [और] तुमसे उपेक्षित रहते है, उनका उद्धार करने में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई समर्थ नहीं है। जगों में किसी ने भी, कोई काम, जिससे प्रेरित होकर, जिन-जिन इन्द्रियों के कारण करके, जिसके लिए, जिसके सम्बन्धी बनकर, जहाँ-जहाँ, जिस समय में जिस रूप में, जिस गुण में जनकादि भाव से ऊपर (इहलोक सम्बंधी) उत्पादन करके, जो ब्रह्मादि भाव में पर

प्रकारंबुलन्नियु नित्यमुक्तुंडवु रक्षकुंडवुनैन नी यंशंबैन पुरुषुनिकि नी यनुग्रहंबुन गालंबु चेतं ब्रेरितये कर्ममयंबुनु वलयुतंबुनु प्रधानलिंगंबुनुनैन मनंबुनु नी माय सृजियिंचु नविद्यार्पितविकारंबुनु वेदोक्तकर्मप्रधानंबुनु संसारचक्रात्मकंबैन यी मनमुन निन्नु सेविपक नियमिंचि तरियिंप नोक्करुंडुनु समर्थुंडु लेडु। विज्ञाननिर्जितबुद्धिगुणंडवु नीवु। नी वलन वशीकृतकार्यसाधनशक्तियैन कालंबु माय तोडं गूडि षोडशविकारयुक्तंबयिन संसारचक्रंबु जेयुचुंडु। संसारदावदहनतंतप्यमानुंडनगु नन्नु रक्षिपुमु ॥ 355 ॥

सी. जनुलु दिक्पालुरसंपदायुर्विभवमुलु गोरुदुरु भव्यंबु लनुचु
नवि यंतयुनु रोषसहाजृंभितमैन मातंड्रि बोमथुडि माहम जेसि
विहतंबुलगुनट्टि वीरुंडु नीचेत निमिषमात्रंबुन नेडु मडिसे
गावुन ध्रुवमुलु गावु ब्रह्मादुलु श्रीविभवंबुलु जीवितमुलु

ते. गालरूपकु डगुनुरुक्रमुनिचेत
विदळितमुलगु निलुवदु वेयुनेल ?
यितरमेनोल्ल नी मोदि येरुक कौत
गलिगियुन्नदि कोलुतु गिकरुंडनगुचु ॥ 356 ॥

---

(पारलौकिक) रूपांतर पाता है; वे सभी प्रकार तुम ही हो। नित्यमुक्त और रक्षक बननेवाले तुम्हारा अंश बने हुए पुरुष के लिए तुम्हारे अनुग्रह से, काल से प्रेरित होकर, कर्ममय, वलमय, प्रधानलिंग बने हुए मन का सृजन तुम्हारी माया करती है। अविद्यार्पितविकार, वेदोक्त कर्म-प्रधान, संसार-चक्रात्मक इस मन का तुम्हारी सेवा में नियमन न करके, तरनेवाला कोई समर्थ (पुरुष) नहीं है। विज्ञान से निर्जित बुद्धि और गुण वाले तुम ही हो। तुमसे वशीकृत कार्य-साधक शक्ति काल, माया के साथ जुड़कर, षोडशविकार-युक्त इस संसार-चक्र को बनाती रहती है। संसार रूपी दावानल से सन्तप्त मेरी रक्षा करो। ३५५ [सी.] लोग तो दिक्पालकों से सम्पत्ति, आयु और वैभव को भव्य मानकर, [उन्ही को] माँगते हैं। वे सब रोष, हास से जृंभित मेरे पिता के क्रोध से विहित बनते हैं। ऐसा वीर निमिष मात्र [के काल] में आज तुमसे मारा गया। इसलिए ब्रह्मा आदि देवताओं के श्रीविभव और जीवन ध्रुव (शाश्वत) नहीं हैं। [ते.] काल रूपी उरुक्रम वाले के हाथ से यह सब विदलित बनेंगे, स्थिर रूप से नहीं रह सकते। और बातों की आवश्यकता ही क्या है ? तुम्हारे बारे में किंचित् जानता हूँ। अब से किंकर बनकर रहूँगा। मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए। ३५६ [म. को.] मनुष्य तो मरीचिका जैसे शुभ (कल्याणप्रद विषयों) को सार्थ मानकर (अर्थयुक्त समझकर), रोग-

मत्त. अँडमावुलबंटि भद्रमुलेल्ल सार्थमुलंचु म-
त्युँडु रोगनिधान देहमुतो विरक्तुडु गाक यु-
द्दंड मन्मथवह्नि नॅप्पुडु दप्तुडै यॊकनाडु चे
रंडु पारमु दुष्ट सौख्य परंपराक्रमणंबुनन् ॥ 357 ॥

उ. श्रीमहिळा महेश सरसीरुहगर्भुलकैन नी महो-
द्दाम करंबुचे नभयदानमु सेयनि नीवु बालुडन्
दामस वंश संभवुड दैत्युड नुग्र रजोगुणुंड नि-
स्सीमदयन् गरांबुजमु शीर्षमु जेर्चुट चोद्य मीश्वरा! ॥ 358 ॥

व. महात्मा! सुजनुलैन ब्रह्मादुलंबुनु, दुर्जनुलैन मायंदुनु, सेवानुरूपंबुनं बक्षापक्षंबुलु लेक कल्पवृक्षंबु चंदंबुन फल प्रदानंबु सेयुदुवु। कंदर्प दर्प समेतंबगु संसारकूपंबुन ग्रूलुचुन्न मूढजनुलं गूडि कूलॅडि नेनु, भवदीय भृत्युंडगु नारदुनि यनुग्रहंबुनं जेसि नी कृपकुं बात्रुंडनैति। नन्नु रक्षिंचि, मज्जनकुनि वधियिंचुट ना यंदलं बक्षपातंबु गादु। दुष्टजन संहारंबुनु, शिष्ट भृत्य मुनिजन रक्षाप्रकारंबुनु नीकु नैजगुणंबुलु। विश्वंबु नीव। गुणात्मकंबैन विश्वंबु सृजियिंचि, यंदु ब्रवेशिंचि, हेतुभूतगुणयुक्तुंडवै, रक्षकसंहारादि नाना रूपंबुल नुंडुदुवु। सदसत्कारण कार्यात्मकंबैन

निधान (रोगों के निवास) अपनी देह के प्रति विरक्त न बनकर, उद्दण्ड मन्मथ-वह्नि से सदा तप्त रहकर, दुष्ट सुखों की परम्पराओं के आक्रमण के प्रलोभन से [इस संसार के] पार कभी नही पहुँच पायेगा। ३५७ [उ.] हे ईश्वर! लक्ष्मीदेवी, महेश, सरसीरुहगर्भ (ब्रह्मा) आदि को भी अपने उद्दाम कर से अभयदान नहीं किया। मैं तो बालक हूँ। तामस-वंश में सम्भूत (उत्पन्न) हूँ। दैत्य और उग्र रजोगुण वाला हूँ। निस्सीम दया से अपने करांबुज को मेरे शीर्ष पर रख देना आश्चर्य [की बात] है। ३५८ [व.] हे महात्मा! ब्रह्मा आदि सुजनो और हमारे जैसे दुर्जनों की सेवा के अनुसार पक्ष और विपक्ष का ध्यान दिये बिना, कल्पवृक्ष की तरह तुम फल प्रदान करते हो। कंदर्प-दर्प-समेत इस संसार-कूप मे गिर पड़नेवाले मूढ़जनों के साथ गिर पड़नेवाला मैं, भवदीय भृत्य नारद के अनुग्रह से, तुम्हारी कृपा का पात्र बन गया हूँ। मेरी रक्षा करके, मेरे पिता का वध करना मेरे प्रति पक्षपात से नही है। दुष्ट जन का संहार और शिष्ट भृत्य, मुनिजनों की रक्षा करना तुम्हारे लिए स्वाभाविक (नैज) गुण है। [यह] विश्व तुम ही हो। गुणात्मक विश्व का सृजन करके, उसमें प्रवेश कर, हेतु भूतगुणयुक्त बनकर, रक्षक और संहारक आदि नाना रूपों में रहते हो। सत-असत् और कारण-कार्यात्मक विश्व का परमकारण तुम ही हो। तुम्हारी माया से स्व-पर का बुद्धि-विकल्प से

विश्वंबुनकुं बरमकारणंबु नीवु। नी माय चेत वीडु दा ननियेंडि बुद्धि-विकल्पंबु दोचु गानि, नीकंटें नोंडदि्दयु लेबु। बीजंबुनंदु वस्तुमात्र भूत सौक्ष्म्यंबुनु, वृक्षंबुनंदु नीलत्वादि वर्णंबुनु गलुगु तेंरंगुन विश्वंबुनकु नीयंद जन्मस्थिति प्रकाशनाशंबुलु गलुगु। नी चेतनंन विश्वंबु नीयंद निलुपुकोनि, तोंल्लि प्रळयकाल पारावारंबुन बन्नगेंद्र पर्यंकंबुन क्रिया-रहितुंडवै, निजसुखानुभवंबु सेयुचु, निद्रितुनि भंगि योग निमीलित लोचनुंडवै युंडुचु, गोंतकालंबुनकु निज कालशक्ति चेत ब्रेरितंबुलै, प्रकृति धर्मंबुलैन सत्त्वादि गुणंबुल नंगीकरिंचि, समाधि चालिंचि, वेलुंगुचुन्न नी नाभियंदु, वटबीजमु वलन नुद्भविंचु वटंबु तेंरंगुन, नोंक्क कमलंबु संभविंचें। अद्दिट कमलंबुन नालुगु मोमुल ब्रह्म जन्मिंचि, दिशलु वीक्षिंचि, कमलंबुनकु नोंडेन रूपंबु लेकुंडुट जिंतिंचि, जलांतरालंबु ब्रवेशिंचि, जलंबुलंदु नूरु दिव्यवत्सरंबुलु वेदकि, तन जन्मंबुन कुपादान-कारणंबैन निन्नु दर्शिंप समर्थुंडु गाक, मगिडि कमलंबु कडकुंजनि, बिस्मयंबु नोंदि, चिरकालंबु निर्भरतपंबु चेसि, पृथिवियंदु गंधंबु गनु चंदंबुन दनयंदु नाना सहस्रवदनशिरो नयन नासा कर्ण वक्त्र भुज कर चरणुंडुनु, बहुविधाभरणुंडुनु, मायाकलितुंनु, महालक्षणलक्षितुंडुनु,

---

भासित होता है। लेकिन तुम्हारे सिवा यहाँ और कुछ भी नही है। जिस प्रकार बीज में वस्तुमात्र-भूत-सौक्ष्म्य (-सूक्ष्मता), वृक्ष में नीलत्व आदि वर्ण होते है, उसी प्रकार विश्व का तुममें ही जन्म, स्थिति-प्रकाश और नाश [आदि] होते हैं। तुमसे बने हुए (सृजित) विश्व को तुम्हीं में स्थित करके, पूर्वकाल में प्रलयकाल के पारावार मे पन्नगेंद्र-पर्यंक (-शय्या) पर क्रियारहित होकर, निजसुखानुभव करते हुए, निद्रित [व्यक्ति] के समान, योग-निमीलित-लोचन वाले बनकर रहते हुए, कुछ समय के बाद, अपनी कालशक्ति से प्रेरित होकर, सत्त्व आदि प्रकृति के धर्मगुणों को अंगीकार करके, समाधि समाप्त करके, प्रकाशमान बन गये। [उस समय में] तुम्हारी नाभि में से वट (-बड़)-बीज से उद्भव होनेवाले वट के समान, एक कमल का संभव (उद्भव) हुआ। उसमें चार मुख वाला ब्रह्मा पैदा होकर, दिशाओं को देखकर, उस कमल के सिवा और किसी रूप के अभाव से चिंतित हुआ। जलांतराल में प्रवेश कर, जल में सौ दिव्य वर्ष तक ढूंढकर, अपने जन्म के लिए उपादान-कारण तुम्हारे दर्शन करने में असमर्थ बनकर, फिर से कमल के पास जाकर, विस्मित होकर बहुत काल तक निर्भर-तप करके, पृथ्वी के गन्ध को अनुभव करने की तरह, अपने में नाना-सहस्र (हजारों) वदन, शिर, नयन, नासा, कर्ण, वक्त्र, भुज, कर और चरणों वाले, बहुविध आभरण पहने हुए, माया से कलित, महान् लक्षणों से लक्षित, अपने प्रकाश से तम (अँधेरा) को दूर

निजप्रकाश दूरीकृत तमुंडुनु, पुरुषोत्तमुंडुनुनैन निन्नु दर्शिंचे।
अव्यवसरंबुन ॥ 359 ॥

कं. घोटकवदनुडवै मधु, कैटभुलं द्रुंचि निगमगणमुल नॆल्लन्
वाटिंचि यजुन किच्चिन, कूटस्थुड वीश्वरुडवु कोविदवंद्या ! ॥ 360 ॥

व. इव्विधंबुन गृत त्रेता द्वापरंबुलनु मूडु युगंबुलंदुनु तिर्यङ् मानव मुनि जलचराकारंबुल नवतरिंचि, लोकंबुल नुद्धरिंपुचु, धरियिंपुचु, हरियिंपुचु, युगानुकूल धर्मंबुलं ब्रतिष्ठिंपुचु नुंडुदुवु। देवा ! यवधरिंपुमु ॥ 361 ॥

सी. कामहर्षादि संकलितमै चित्तंबु भवदीय चिंतन पदवि सेरदु
मधुरादिरसमुल मरगि चॊक्कुचु जिह्व नी वर्णनमुनकु निगुडनीदु
सुंदरीमुखमुल जूड गोरॆडि जूड्कि तावकाकृतुलपै दगुलुवडदु
विविधदुर्भाषलु विनगोरु वीनुलु विनवु युष्मत्कथा विरचनमुलु

ते. घ्राण मुरवडि दिरुगु दुर्गंधमुलकु
दनिवि गॊलुपदु वैष्णव धर्ममुनकु
नणगियुंडवु कर्मेंद्रियमुलु पुरुषु
गलचु सवतुलु गृहमेधि गलचुनट्लु ॥ 362 ॥

व. इव्विधंबुन निंद्रियंबुल चेतं जिक्कुवडि, स्वकीय परकीय शरीरंबुलंदु

करनेवाले, पुरुषोत्तम हो तुम्हारे दर्शन किया। उस अवसर पर। ३५९ [कं.] हे कोविद (विद्वानों) के लिए वंद्य (वंदनीय) ! घोटक-वदन (हयग्रीव) बनकर (अवतार लेकर) मधु और कैटभों को मारकर, समस्त निगम (वेद) गुणों की रक्षा करके, उनको अज (ब्रह्मा) को देनेवाले तुम कूटस्थ (सबके मूल कारण) हो। ईश्वर हो। ३६० [व.] इस प्रकार कृत, त्रेता और द्वापर नामक तीनों युगों में जंतु, मानव, मुनि और जलचरों के आकार में अवतरित होकर, लोकों को उद्धार करते हुए, लोकों को धारण करते हुए, नाश करते हुए, युगों के अनुकूल धर्मों का प्रतिष्ठापन करते रहते हो। हे देव ! [मेरी बात] सुनो। ३६१ [सी.] चित्त काम, हर्ष आदि से संकलित होकर, तुम्हारी चिंतन की पदवी में नहीं घुसता है (तुम्हारा चिंतन नहीं करता है)। जिह्वा मधु आदि रसों में मग्न रहते हुए तुम्हारे वर्णन का उद्योग नहीं करती। सुंदरियों के मुख को देखने की इच्छा रखनेवाली चितवनें तुम्हारी आकृतियों से आकृष्ट नहीं होतीं। विविध दुर्भाषाओं को सुनना चाहनेवाले कान तुम्हारी कथाओं को नहीं सुनते। [ते.] दुर्गंधों पर मँड़रानेवाला घ्राण वैष्णव धर्मों पर आसक्त नहीं होता। कर्मेंद्रिय तो पुरुष के वश में नहीं रहते। जिस प्रकार सौतें गृहमेधी (गृहस्थ) को आंदोलित करती हैं, उसी प्रकार कर्मेंद्रिय पुरुष को व्याकुल करती हैं। ३६२ [व.] इस प्रकर इंद्रियों में

मित्रामित्रभावंबुलु सेयुचु, जन्म मरणंबुल नोंदुचु, संसार वैतरणी निमग्नं-
बैन लोकंबु नुद्धरिंचुट, लोकसंभवस्थितिलय कारणुंडवैन नीकुं गर्तव्यंबु।
भवदीय सेवकुलमैन मायंदु प्रियभक्तुलयिन वारल नुद्धरिंपुमु ।। 363 ।।

म. भगवद्दिव्य गुणानुवर्णन सुधा प्राप्तैक चित्तुंडनै
बेंगडन् संसरणोग्र वैतरणिकिन् भिन्नात्मुलै तावकी-
य गुणस्तोत्र पराङ्मुखत्वमुन मायासौख्य भावंबुलन्
सुगति गाननि मूढुलं गनि मदिन् शोकिंतु सर्वेश्वरा ! ।। 364 ।।

व. देवा ! मुनींद्रुलु निजविमुक्तिकामुलै विजन स्थलंबुलं दपंबु लाचरिंतुरु।
कामुकत्वंबु नोल्लक युंडुवारिकि नीकंटें नोंडु शरणंबु लेदु। निन्नु
सेविंचेद। कोंदरु कामुकुलु करद्वयकंडूति चेतं दनियनि चंदंबुन,
तुच्छमै पशु पक्षि क्रिमि कीट सामान्यंबैन मैथुनादि गृहमेधि सुखंबुलं
दनियक, कडपट नतिदुःखवंतुलगुदुरु। नी प्रसावंबु गल सुगुणुंडु
निष्कामुंडै युंडु। मौनव्रत जप तपश्श्रुताध्ययनंबुलुनु, निजधर्मव्याख्यान
विजन स्थल निवास समाधुलुनु, मोक्ष हेतुवुलगु। ऐन निवि पदियु
निंद्रियजयंबु लेनिवारिकि भोगार्थंबुलै, विश्रमिंचुवारिकि जीवनोपायंबुलै,

---

उलझकर, स्वकीय और परकीय शरीरों के प्रति मित्र और अमित्र भाव रखनेवाले जनम और मरण प्राप्त करनेवाले संसार रूपी वैतरणी में निमग्न लोक का उद्धार करना, इन लोकों के संभव, स्थिति और लय के कारण बने हुए, तुम्हारा कर्तव्य है। तुम्हारे सेवक बने हममें से तुम्हारे प्रियभक्त जो हैं, उनका उद्धार करो। ३६३ [म.] हे सर्वेश्वर ! भगवत् (भगवान के) दिव्यगुणानुवर्णन के सुधारस को प्राप्त करनेवाले चित्त वाला बनकर, मैं तो संसार रूपी उग्र वैतरणी से नहीं डरता हूँ। लेकिन भिन्नात्म होकर, तुम्हारे गुण के स्तोत्र के पराङ्मुखत्व से, माया और सौख्य के भावों से जो मूढ़ सुगति नहीं पाते है, उनको देखकर मैं दुःखी होता हूँ। ३६४ [व.] हे देव ! मुनींद्र अपनी विमुक्ति (मोक्ष) के कामी बनकर निर्जन स्थलों में तप करते है। कामुकत्व को न चाहनेवालों के लिए तुम्हारे अतिरिक्त और कोई शरण्य नहीं हैं। [इसलिए] तुम्हारी सेवा करूँगा। कुछ कामुकों के [व्यक्ति] करद्वयकंडूति से तृप्त न होने की तरह, तुच्छ पशु, पक्षी, क्रिमि और कीट के लिए सामान्य बने हुए मैथुन आदि गृहमेधी के सुखों से संतृप्त न होकर, अंत में बहुत ही दुःखी बनते हैं। जिस सुगुणवान पर तुम्हारा अनुग्रह होता है, वह निष्काम बनकर रहेगा। मौनव्रत, जप, तप, श्रुतियों का अध्ययन और निजधर्मव्याख्यान, विजन स्थल-निवास, समाधि —ये सब मोक्ष के हेतु है। फिर भी ये दस विषय इंद्रियों को जीत न सकनेवालों के लिए भोगार्थ, विश्राम (मेहनत)

डांबिकुलकु वार्ताकरंबुलै युंडु। सफलंबुलु गावु। भक्ति लेक भवदीयज्ञानंबु लेदु। रूपरहितुंडवैन नीकु बीजांकुरंबुल कैवडि, गारण कार्यंबुलयिन सदसद्रूपंबुलु रॅंडु, बकाशमानंबुलगु। आ रॅंटि यंदुनु भक्तियोगंबुन बुद्धिमंतुलु, मथनंबुन दारुवुलंदु वह्निन गनियॅडि तॅरंगुन, निन्नु वीडगंदुरु। पंचभूत तन्मात्रंबुलुनु, घ्राण बुद्धींद्रियंबुलुनु, मनोऽहंकार चित्तंबुलुनु नीव। सगुणंबुनु, निर्गुणंबुनु नीव। गुणाभिमानुलै जन्ममरणंबुल नॉंदु विमतुलाद्यंतंबुलु गानक निरुपाधिकुंडवैन निन्नॅरुंगरु। तत्त्वज्ञुलैन विद्वांसुलु वेदाध्ययनादि व्यापारंबुलु मानि, वेदांत प्रतिपाद्युंडवगु निन्नु समाधि विशेषंबुल नॅरिंगि सेवितुरु। अदि गावुन ॥ 365 ॥

सी. नी गृहांगणभूमि निटलंबु मोवंग मोदिंचि नित्यंबु म्रॊक्कडेनि
नी मंगळस्तव निकर वर्णंबुलु पलुमारु नालुक बलुकडेनि
नी यधीनमुलुगा निखिलकृत्यंबुलु प्रियभावमुन समर्पिपडेनि
नी पदांबुजमुल निर्मलहृदयुडै चिंतिप मक्कुव जिक्कडेनि

---

करनेवालों के लिए जीवन के उपाय [और] दंभ से रहनेवालों के लिए वार्ताकर (आत्मस्तुति के कारण) बनकर रहते हैं। सकल नहीं बनते हैं। भक्ति के बिना तुम्हारे बारे में ज्ञान नहीं होता है। रूप-रहित तुम्हारे, बीज और अंकुर के समान, कारण और कार्य बने हुए, सत और असत रूप दोनों प्रकाशमान होते (दिखाई देते) हैं। उन दोनों में बुद्धिमान भक्तियोग से, जैसे मंथन से दारुवों की अग्नि दिखाई देती है, वैसे तुमको देख लेते हैं। पंचभूत और तन्मात्राएँ, प्राणेंद्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त सभी तुम ही हो। सगुण और निर्गुण तुम ही हो। जो मतिहीन गुणाभिमानी बनकर, जन्म और मरण पाते हुए, इस सृष्टि के आदि और अन्त को न देखते हुए निरुपाधिक (जिसकी उत्पत्ति का कारण नहीं है) तुम्हें नहीं जान सकते हैं। तत्त्व जाननेवाले विद्वान वेद, अध्ययन आदि व्यापारों को छोड़कर, वेदांत से प्रतिपादित तुम्हें विशेष समाधियों से जानकर, [तुम्हारी] सेवा करते है। इसलिए, ३६५ [सी.] जो तुम्हारे गृह के आँगन में प्रसन्नता से, ललाट को भूमि से लगाकर, नित्य साष्टांग नमस्कार नहीं करता; जिह्वा से तुम्हारे मंगलदायक स्तव के निकर (समूह) के वर्णो (अक्षरों) को बार-बार नहीं बोलता (तुम्हारे नाम का जप नहीं करता); समस्त कार्यों को तुम्हारे अधीन मानकर प्रियभाव से तुम्हें समर्पित नहीं करता; निर्मल हृदय वाला बनकर तुम्हारे पदांबुजों की चिंता करके, प्रेम नहीं करता; [ते.] तुम्हारे बारे में कान भर नहीं सुनता; तुम्हारी सेवा

ते. निन्नु जॅवुलार विनडेनि नीकु सेव
जेयराडेनि ब्रह्मंबु जॅद गलडॆ
योगियैन दपोव्रत योगियैन
वेदियैन महा तत्त्ववेदियैन ! ॥ 366 ॥

व. कावुन भवदीय दास्ययोगंबु कृपसेयुमु। अनि प्रणतुंडैन प्रह्लादुनि वर्णनंबुनकु मॅच्चि, निर्गुणुंडैन हरि रोषंबु विडिचि यिट्लनियॆ ॥ 367 ॥

शा. संतोषिंचिति नी चरित्रमुलकुन् सद्भद्रमौगाक ! नी-
यंतर्वांछित लाभमॆल्ल गरुणायत्तुंडनै यिच्चॆदन्
जिंतं जॆंदकु भक्तकामदुड ने सिद्धंबुदुर्लोक्युडन्
जंतु श्रेणिकि नन्नु जूचिन पुनर्जन्मंबु लेदर्भका ! ॥ 368 ॥

आ. सकलभावमुलनु साधुलु विद्वांसु, लखिल भद्रविभुडनैननन्नु
गोर्कु लिम्मटंचु गोरुदुरिच्चॆद, गोरु मॆद्दियैन गुर्रड ! नीव ॥ 369 ॥

अध्यायमु—१०

व. अनि परमेश्वरुंडु प्रह्लादुनि यंदु गल सकामत्वंबु दॆलियुकोरकु वंचिंचि-यिट्लानतिच्चिन, नतंडु निष्कामुंडैन येकांतभक्तुडु गावुन, गामंबु भक्तियोगंबुनकु नंतरायंबनि तलंचि यिट्लनियॆ। उत्पत्ति मॊदलु

---

करने नहीं आता; वह चाहे योगी हो, तपोव्रतयोगी हो, वेदी हो या महातत्त्ववेदी हो, वह ब्रह्म को नही पा सकता है। ३६६ [व.] इसलिए मुझे भवदीय दास्य-योग प्रदान करो। ऐसा कहकर प्रणत होनेवाले प्रह्लाद के वर्णनों से संतुष्ट होकर, निर्गुण हरि ने रोष छोड़कर ऐसा कहा। ३६७ [शा.] हे अर्भक (बालक) ! तुम्हारे चरित्र पर मैं संतुष्ट हुआ हूँ। तुम्हारी भलाई हो। करुणायत्त [चित्त वाला] बनकर तुम्हारे अंतरंग में जो भी माँगते हो, वह सब दूँगा। चिंता मत करो। यह सच है कि मैं भक्त-कामद हूँ। मैं जंतु श्रेणी के लिए दुर्लोक्य हूँ। मुझे देख लेने पर पुनर्जन्म नहीं है। ३६८ [आ.] साधु, विद्वान् सभी अखिल भद्रो (कल्याणो) के विभु [बने]मुझसे सदा [अपनी] इच्छाएँ माँगते रहते हैं। मैं देता हूँ। हे बालक ! तुम जो भी माँगोगे मै दे दूंगा। ३६९

अध्याय—१०

[व.] [इस प्रकार] कहकर, परमेश्वर ने प्रह्लाद के सकामत्व को जानने के लिए वंचना में डालते हुए ऐसा आदेश देने (कहने) पर, निष्काम और

कामाद्यनुभवासक्ति गल नाकु वरंबु लिच्चॆद ननि वंचिपनेल ? संसार वीजंबुलुनु, हृदय बंधकंबुलुनैन कामंबुलकु वॆरचि, मुमुक्षुंडनै, सेमंबु कॊरकु नेमंबुन निन्नु जेरिति। कामंबुलुनु, निंद्रियंबुलुनु, मनश्शरीर धैर्यंबुलुनु, मनीषा प्राणधर्मंबुलुनु, लज्जा स्मरण लक्ष्मी सत्य तेजो विशेषंबुलुनु, नशिंचु। लोकंबुलंद भृत्युलर्थंकामुलै राजुल सेवितुरु। राजुलु प्रयोजनंबुलर्थिंचि, भृत्युलकु नर्थंबु लॊसंगुदुरु। अट्टिवाडंबुन गादु। नाकुं गामंबु लेदु। नीकुं ब्रयोजनंबु लेदु, ऐन देवा ! वरदुंड-वय्येदवेनि कामंबु वृद्धि बॊंदनि वरंबु, गृप सेयुमु। कामंबुल विडिन पुरुषुंडु नी तोड समान विभवुंडगु। नरसिंह ! परमात्म ! पुरुषोत्तम ! यनि प्रणव पूर्वकंबुग नमस्करिंचिन, हरि यिट्लनियॆ ॥ 370 ॥

सी. नी वंटि विज्ञान निपुणुलेकांतुलु गोर्कुलु नायंदु गोर नॊल्ल
रट्लैन बह्लाद ! यसुरेंद्र भर्तवै सागि मन्वंतर समयमॆल्ल
निखिल भोगंबुलु नीवु भोगिंपुमु कल्याणवृद्धि नाकथलु विनुमु
सकलभूतमुलंद संपूर्णुडगु नन्नु यज्ञेशु नीश्वरु नात्म निलिपि

---

एकांत भक्त होने से उसने यह सोचकर कि काम (इच्छा) भक्ति के लिए अंतराय (अवरोध) है, ऐसा कहा। उत्पत्ति से लेकर काम आदि के अनुभव की आसक्ति से रहनेवाले मुझको 'वर देता हूँ' ऐसा कहकर वंचना करने की क्या आवश्यकता है ? संसार के वीज, हृदय-बन्धक कामों के डर से मुमुक्षु बनकर, अपने क्षेम (कल्याण) के लिए, नियम से तुम्हारे पास आया हूँ। काम, इन्द्रिय, मन, शरीर, धैर्य, मनीषा (बुद्धि), प्राण, धर्म, लज्जा, स्मरण, लक्ष्मी, सत्य, तेजोविशेष आदि अन्त में नष्ट होते हैं। लोकों में अर्थकामी बनकर भृत्य राजाओं की सेवा करते हैं। राजा लोग भी प्रयोजन के अर्थी बनकर, भृत्यों को अर्थ देते हैं। मैं ऐसा आदमी नहीं हूँ। मुझमें काम (इच्छा) नहीं है। तुम्हारा कोई प्रयोजन [मुझसे] नहीं है। फिर भी हे देव ! अगर तुम वरद (वर देनेवाले) हो तो मुझे ऐसा वर-प्रदान करो जिससे काम की वृद्धि न हो। कामों को छोड़नेवाला पुरुष तुम्हारे समान वैभव वाला होगा। हे नरसिंह ! हे परमात्मा ! हे पुरुषोत्तम ! ऐसा प्रणव-पूर्वक प्रणाम करने पर हरि ने ऐसा कहा। ३७०

[सी.] हे प्रह्लाद ! तुम्हारे जैसे विज्ञान-निपुण और एकांत (निष्ठा वाले) मुझसे कुछ भी माँगना नहीं चाहते। ऐसा होने पर, तुम असुरेंद्र-भर्ता (-राजा) बनकर, मन्वंतर के पूरे समय में निखिल (सर्व)-सुख (-भोग) भोगो। कल्याण-बुद्धि से मेरी कथाएं सुनो। सकल भूतों में संपूर्ण रूप से रहनेवाले मुझ यज्ञेश और ईश्वर का आत्मा में स्थित करके, [आ.] कर्मचयों

आ. कर्मचयमु लॅल्ल खंडिंचि पूजन, माचरिंपु मीश्वरार्पणमुग
भोगमुल नशिंचु बुण्यंबु व्रतमुल, बापसंचयमुलु पायु निन्नु ॥ 371 ॥

व. मरियु निट मीद गालवेगंबुनं गलेवरंबु विडिचि, त्रैलोक्य विराजमानंबुनु, दिविजराज जेगीयमानंबुनु, बरिपूरित दशदिशंबुनु, नैन यशंबु तोड मुक्त बंधुंडवै नन्नु डग्गरियॅदवु विनुमु ॥ 372 ॥

आ. नरुडु प्रियमु तोड ना यवतारंबु
नी युदारगीत निकरमुलनु
मानसिंचॅनेनि मरि संभविंपडु
कर्मबंधचयमु गडचिपोवु ॥ 373 ॥

व. अनिन ब्रह्लादुंडिट्लनियॆ ॥ 374 ॥

सी. दंष्ट्रिवै तॊल्लि सोदरुनि हिरण्याक्षु नीवु संपुट जेसि निग्रहमुन
मा तंड्रि रोष निमग्नुडै सर्व लोकेश्वरु बरमु. निन्नॆरुग लेक
परिपंथि पगिदि नी भक्तुंड नगु नाकु नपकारमुलु सेसॆ नतडु नेडु
नी शांतदृष्टिचे निर्मलत्वमु नॊंदॆ गावुनु पापसंघंबु वलन

ते. वासि शुद्धात्मकुडु गाग भव्यगात्र !
वरमु वेडॆद नाकिम्मु वनजनेत्र !

---

का खण्डन करके, ईश्वरार्पण [की बुद्धि से] पूजाएँ करो। सुख-भोग से पुण्य नष्ट होगा। व्रतों के कारण पाप-समूह तुम्हें छोड़ जाएँगे। ३७१ [व.] फिर उसके बाद कालवश अपने कलेवर (शरीर) को छोड़कर, त्रैलोक्य-विराजमान (तीनों लोकों में स्थित या व्याप्त), दिविज-राजाओं से जेगीयमान (प्रशंसित), दस दिशाओं को भर देनेवाले यश के साथ बंधनों से विमुक्त बनकर, मेरे पास पहुँच जाओगे। सुनो। ३७२ [आ.] यदि मनुष्य प्रीति से मेरे अवतार और इन उदार-गीत-समूह का, मन में चिंतन करेगा तो, फिर [उसका] संभव (जन्म) न होगा। कर्म-बंधन-चय (-समूह) को पार कर जाएगा (मुक्त हो जाएगा)। ३७३ [व.] कहने पर प्रह्लाद ऐसा बोला। ३७४ [सी.] हे भव्यगात्रवाले ! हे वनजनेत्र ! भक्तसंघों के मुखपद्मों के पद्ममित्र (सूर्य) ! भक्त कल्मष-वल्लिका के लिए पटु-लवित्र (-हँसिया) ! पूर्व में दंष्ट्री (वराह) बनकर [अपने] भाई हिरण्याक्ष को तुम्हारे मारने से, मेरे पिता ने निग्रह से रोषनिमग्न बनकर, सर्वलोकेश्वर, परमात्मा तुमको न जान सक कर, परिपंथी (शत्रु) के जैसे तुम्हारे भक्त बने हुए मेरे प्रति अपकार किया। [ते.] उसने आज तुम्हारी शांत दृष्टि से निर्मलत्व को पाया। इसलिए वह पापसंघों से अलग होकर, शुद्धात्मा वाला बने ऐसा वर माँगता

भक्तसंघात मुखपद्म पद्ममित्र !
भक्त कल्मषवल्लिका पटुलवित्र ! ॥ 375 ॥

व. अनिन भक्तवत्सलुंडिट्लनियॆ ॥ 376 ॥

म. निजभक्तुंडवु नाकु निन्नु गनुटन् नी तंड्रि त्रिस्सप्त पू-
र्वजुलं गूडि पवित्रुडै शुभगतिन् वर्तिचु विज्ञान दी-
प जितानेक भवांधकारुलगु मद्भक्तुल् विनोदिंचु दे-
शजनुल् दुर्जनुलैन शुद्धुलु सुमी सत्यंबु दैत्योत्तमा ! ॥ 377 ॥

सी. घन सूक्ष्म भूतसंघातंबु लोपल नॆल्ल वांछलु मानि यॆव्वरैन
नी चंदमुन नन्नु नॆड्य सेविंचिन मद्भक्तुलगुदुरु मत्परुलकु
गुरि सेय नीव योग्युडवैति विटमीद वेदचोदितमैन विधमु तोड
जित्तंबु नामीद जेर्चि मीतंड्रिकि ब्रेत कार्यमुलु संप्रीति जेयु

ते. मतडु रणमुन नेडु ना यंगमर्श
नमुन निर्मलदेहुडै नव्यमहिम
नपगताखिल कल्मषुडै तनर्चि
पुण्यलोकंबुलकु नेगु पुण्यचरित ! ॥ 378 ॥

व. अनि यिट्लु नरसिंहदेवुंडानतिच्चिन, प्रह्लादुंडु हिरण्यकशिपुनकुं
बरलोक क्रियलु सेसि, भूसुरोत्तमुलचेत नभिषिक्तुंडय्यॆ। अय्यॆडं

---

हूँ, मुझे दे दो। ३७५ [व.] बोलने पर भक्तवत्सल (विष्णु) ऐसा बोला। ३७६ [म.] हे दैत्योत्तम ! [तुम] मेरे सच्चे भक्त हो। तुमको जन्म देने से तुम्हारे पिता इक्कीस [पीढ़ी] पूर्वजों के साथ, पवित्र बनकर शुभगति पायेगा। यह सत्य है कि विज्ञान-दीप से अनेक संसार रूपी अंधकार को जीतनेवाले मेरे भक्त जहाँ प्रसन्नता से रहते हैं, देशजन (वहाँ के लोग) दुर्जन होने पर भी शुद्ध बनेंगे। ३७७ [सी.] हे पुण्य-चरितवाले ! घन और सूक्ष्म भूतसंघों में, जो भी हो, सब वांछाएँ छोड़कर, तुम्हारी तरह ढंग से मेरी सेवा करने से मेरे भक्त बनेंगे। [ऐसे लोगों को] मत्परों (असुरों) का लक्ष्य नहीं बनाऊँगा। तुम्हीं योग्य बने हो। अब आगे वेदचोदित विधान से मुझ पर चित्त लगाकर, तुम्हारे पिता के प्रेत-कार्य संप्रीति से करो। [ते.] वह आज युद्ध में मेरे अंग के संस्पर्श से निर्मल देह वाला हो और नव्य महिमा से सब कल्मषों से परे हो, धन्य बनकर, पुण्य लोकों को प्राप्त करेगा। ३७८ [व.] कहकर इस प्रकार नरसिंहदेव की (आज्ञा) देने पर प्रह्लाद पिता को परलोक की क्रियाएँ करके, भूसुरोत्तमों से अभिषिक्त हुआ। उस समय प्रसाद (प्रसन्नता) से परि-पूर्ण मुखवाले श्रीनरसिंहदेव को देखकर, देवता-प्रमुखों से सहित हो

ब्रसादपरिपूणुडैन श्री नरसिंहदेवुनि जूचि, देवता प्रमुख सहितुंडै ब्रह्मदेवुंडिट्लनियें ॥ 379 ॥

सी. देवदेवाखिल देवेश ! भूतभावन ! वीडु ना चेत वरमु वडसि
मत्सृष्ट जनुलचे मरणंबु नोंदक मत्तुडै सकल धर्ममुल जेंड्रिचि
नेडु भाग्यंबुन नी चेत हतुडय्यें गल्याणमय्यें लोकमुल कॅल्ल
बालु नीतनि महा भागवत श्रेष्ठु ब्रतिकिंचितिवि मृत्यु भयमु वापि

ते. वरमु गृप सेसितिवि मेलु वारिजाक्ष !
नी नृसिंहावतारंबु निष्ठ तोड
दगिलि चिंतिंचुवारलु दंडधरुनि
बाध नोंदरु मृत्युवु बारि बडरु ॥ 380 ॥

व. अनिन नृसिंहदेवुंडिट्लनियें ॥ 381 ॥

कं. मन्निंचि देवशत्रुल, कॅन्नडु निटुवंटि वरमु लीकुमु पापो-
त्पन्नुलकु वरमु लिच्चुट, पन्नगमुलकमृतमिडुट पंकजगर्भा ! ॥ 382 ॥

व. अनि यिट्लानतिच्चि, ब्रह्मादि देवतासमूहंबु चेतं बूजितुंडै, भगवंतुंडैन श्री नरसिंहदेवुंडु तिरोहितुंडय्यें। प्रह्लादुंडुनु, शूलिकि ब्रणमिल्लि, तम्मिचूलिकि वंदनंबाचरिंचि, प्रजापतुलकु म्रोक्कि, भगवत्कळलैन देवतलकु नमस्करिंचिनं जूचि, ब्रह्मदेवुंडु शुक्रादि मुनि सहितुंडै, दैत्यदानव राज्यंबुनकु ब्रह्लादुनि बट्टबु गट्टि, यतनि चेत बूजितुंडै

ब्रह्मा ऐसा बोला। ३७९ [सी.] हे देवदेव ! अखिल-देवेश ! हे भूत-भावना वाले ! हे वारिजाक्ष ! यह मुझसे वर पाकर, मुझसे सृष्ट जनों से न मरकर, मदमत्त बनकर, सकल धर्मों का नाश कर, आज भाग्य-वश से तुमसे मारा गया। सब लोकों का कल्याण हुआ। मृत्यु-भय को दूरकर, इस बालक को, महान् भागवत-श्रेष्ठ को बचाया। [ते.] इसको वर भी दिया। यह अच्छा हुआ। तुम्हारे नृसिंहावतार को निष्ठा से जपनेवाले [लोग] दंडधर (यम) से बाधा न पायेंगे। मृत्यु के वश में न जाएंगे। ३८० [व.] कहने पर नृसिंहदेव ने ऐसा कहा। ३८१ [कं.] हे पंकजगर्भ ! [आगे] देवशत्रुओं को मानकर, ऐसे वर कभी मत दो। पापोत्पन्नों को ऐसे वर देना पन्नगों को अमृत पिलाने के समान है। ३८२ [व.] ऐसा आदेश देकर, ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह से पूजित होकर, भगवान श्री नृसिंहदेव तिरोहित हुआ। प्रह्लाद ने भी शूली (शिव) [और] ब्रह्मा को वंदन करके, प्रजापतियों को प्रणाम कर, भगवत्कलाओं वाले देवताओं को नमस्कार किया। [करने पर] देखकर ब्रह्मदेव ने शुक्र आदि मुनीन्द्र-सहित होकर, प्रह्लाद को दैत्य और दानव के राज्य का पट्टाभिषिक्त किया। [तदनंतर] उससे पूजित होकर,

दीविंचें। अंतट नीशानादि निखिल देवतलु, विविधंबुलगु नाशीर्वादंबुल चेत ना ब्रह्लादुनि गृतार्थुनिगा जेसि, तम्मिचूलि मुदर निडुकोनि, तम तमनिवासंबुलकुं जनिरि। इट्लु विष्णुदेवुंडु निज पार्श्वचरुलिरुवुरु ब्राह्मण शापंबुनं जेसि प्रथमजन्मंबुन दितिपुत्रलैन हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुलनु वराह नारसिंह रूपंबुल नवतरिंचि वधियिंचें। द्वितीयभवंबुन राक्षसजन्मंबु दाल्चिन रावण कुंभकर्णुलनु श्रीरामरूपंबुन संहरिंचें। तृतीयजन्मंबुन शिशुपाल-दंतवक्त्रुलनु पेरुल ब्रसिद्धि नोंदिन वारलं गृष्णावतारंबुन संहरिंचें। इव्विधंबुन मूडु जन्मंबुल गाढ वैरानुबंधंबुन, निरंतर संभावित ध्यानुलै, वारलु निखिल कल्मष विनिर्मुक्तुलै, हरि जदिसिरि, अनि चेप्पि नारदुंडिट्लनियें ॥ 383 ॥

उ. श्रीरमणीयमैन नरसिंहविहारमु निंद्रशत्रु सं-
हारमु बुण्यभागवतुडैन निशाचरनाथ पुत्रु सं-
चारमु नेव्वडेन सुविचारत विन्न वठिंचिनन् शुभा-
कारमु तोड ने भयमुं गलगनि लोकमु जेंदु भूवरा! ॥ 384 ॥

म. जलजातप्रभवादुलन् मनमुलो जर्चिंचि भाषावळिन्
बलुकन् लेनि जनार्दनाह्वय परब्रह्मंबु नी यिंटिलो

---

आसीसा। तब ईशान आदि सब देवता लोग भी विविध प्रकार के आशीर्वादों से प्रह्लाद को कृतार्थ बनाकर, ब्रह्मा को आगे कर (ब्रह्मा के आगे-आगे चलने पर) अपने-अपने निवास चले गये। इस तरह विष्णुदेव ने अपने दो पार्श्वचरों का, जो ब्राह्मण के शाप से प्रथम जन्म में दिति के पुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए, वराह और नरसिंह के रूप में वध किया। द्वितीय भव (जन्म) में राक्षस जन्म धारण किए हुए रावण और कुंभकर्ण का श्रीराम के रूप में संहार किया। तृतीय जन्म मे शिशुपाल और दंतवक्त्र नामों से प्रसिद्ध बने हुए [पार्श्वचरों] का संहार श्रीकृष्ण के रूप में किया। इस तरह तीन जन्मों में गाढ़ वैर के अनुबंध के कारण निरन्तर-संभावित ध्यान वाले बनकर, निखिल कल्मषों से विनिर्मुक्त होकर वे हरि के पास गए। ऐसा कहकर, नारद ने फिर से यों कहा। ३८३

[उ.] हे भूवर! श्री (शोभा) से रमणीय बने नरसिंह के विहार, इंद्रशत्रु (हिरण्यकशिपु) का संहार, पुण्य-भागवत (भक्त) और निशाचर-नाथ के पुत्र के संचार (विहार) को सुविचारता (सद्बुद्धि) से सुने या पढ़े, वह शुभाकरता से, भयरहित उस लोक को पायेगा। ३८४

[म.] हे राजोत्तम! जलजात प्रभव (कमल में पैदा हुए ब्रह्मा) आदि भी मन में चर्चा करके, भाषा द्वारा न बोल सकनेवाले (वर्णन से परे)

जॅलियै मेनमऱंदियै सचिवुडै चित्तप्रियुंडै महा
फल संधायकुंडै चरिंचुट महाभाग्यंबु राजोत्तमा ! ॥ 385 ॥

### त्रिपुरासुर संहारमु

कं. बहुमायुडैन मयुचे, विहतंबगु हरुनि यशमु विख्यात जया-
वहमगु नो भगवंतुडु, महितात्मुडु मुन्नॆनर्चॆ मनुजवरेण्या ! ॥ 386 ॥

व. अनिन धर्मनंदनुंडिट्लनियॆ ॥ 387 ॥

कं. ए कर्मंबुन विभुडगु, श्रीकंठुनि यशमु मयुनिचे सुडिवडियॆन्
वैकुंठुंडॆव्विधंबुन, गैकॊनि तत्कीर्ति चक्कगा नॊनरिंचॆन् ॥ 388 ॥

व. अनिन नारदुंडिट्लनियॆ ॥ 389 ॥

कं. चक्रायुध बलयुतुलगु
शक्रादुल कोऱ्ऱटिचि श्रममुन नसुरल्
साक्रोशंबुग नरिगिरि
विक्रममुलु मानि मयुनि वॆनुककु नधिपा ! ॥ 390 ॥

व. इट्लु रक्कसुलु दन वॆनुक जॊच्चिन, मायानिलयुंडुनु, दुर्दमुंडुनुनैन मयुंडु, दन मायाबलंबुन नयो रजत सुवर्ण मयंबुलै यॆव्वरिकिनि

---

जनार्दन नामक परब्रह्म का तुम्हारे घर में मित्र, देवर, सचिव, चित्तप्रिय, महाफल-संधायक बनकर रहना तुम्हारा महाभाग्य है। ३८५

### त्रिपुरासुर का संहार

[कं.] हे मनुजवरेण्य ! इस भगवान, महितात्मा ने बहुत पहले मायावी मय [नामक राक्षस] से विहत किए गए हर के यश को फिर से विख्यात और जयावह बनाया। ३८६ [व.] [ऐसा] कहने पर धर्मनन्दन ने ऐसा कहा। ३८७ [कं.] किस कर्म से प्रभु श्रीकंठ (शिव) का यश मय के कारण संकट में पड़ गया ? किस प्रकार विष्णु ने लगकर उसकी कीर्ति को ठीक किया ? ३८८ [व.] कहने पर नारद ने ऐसा कहा। ३८९ [कं.] हे अधिप ! चक्र आदि आयुधों से बलयुत होनेवाले शक्र (इंद्र) आदि से डरकर, थककर, असुरलोग साक्रोश (आक्रोशयुक्त होकर) विक्रम [दिखाना] छोड़कर, मय के पीछे (आश्रय में) चले गये। ३९० [व.] इस प्रकार राक्षसों के अपने पीछे (आश्रय में) आने पर, माया के निलय और दुर्दम मय ने अपनी माया के बल के साथ अय (लोहा), रजत और सुवर्णमय तीन पुरों को, जिनके गमन-आगमन कोई देख नहीं सकते थे, और जो वितर्क से परे कर्कश परिच्छद वाले थे, बनाकर, दिया। [देने पर] सत्र

लक्षिपरानि गमनागमनंबुलुनु, वितर्किपरानि कर्कश परिच्छवंबुलुनु गलिगिन त्रिपुरंबुलु निर्मिचि यिच्चिन, नक्तंचरुलंदरु नंदु प्रवेशिचि, कामसंचारुलै पूर्ववभवंबु दलंचि, सनायकानीकंबुलयिन लोकंबुल नस्तोकंबुलैन बलातिरेकंबुल शोकंबुल नॊंदिंचिन ॥ 391 ॥

कं. लोकाधिनाथुलॆल्लनु, शोकातुरुलगुचु नेगि चॊच्चिरि दुष्टा-
नीक विदळनाकुंठुन्, श्रीकंठुन् भुवनभरण चित्तोत्कंठुन् ॥ 392 ॥

व. इट्लु सकललोकेश्वरुंडगु महेश्वरुं जेरि लोकपालकुलु प्रणतुलै पूजिचि, करकमलंबुलु मुकुळिंचि ॥ 393 ॥

कं. त्रिपुरालयुलगु दानवु, लपराजितुलगुचु माकु नश्रांतंबुन्
वपुरादि पीड जेसॆद, रपराधकुलनु वधिपु मगजाधीशा ! ॥ 394 ॥

कं. दीनुलमु गाक युष्मद, -धीनुलमै युंडु मम्मु देवाहित दो-
र्लीनुल मैनारमु बल, हीनुलमगु मम्मु गावु मीशान ! शिवा ! ॥ 395 ॥

व. अनिन, भक्तवत्सलुंडगु परमेश्वरुंडु, शरणागतुलैन गीर्वाणुल वॆरवकुं-डनि, दुर्वारबलंबुन बाणासनंबु गेल नंदिकॊनि, मार्तांडमंडलंबुन वॆलुवडु मयूखजालंबुल चंदंबुन, दद्बाणंबु वलन देदीप्यमानंबुलयिन यनेक बाण

नक्तंचरों (निशाचरों) ने उनमें प्रवेश कर, कामसंचारी (अपनी इच्छानुसार संचार करनेवाले) बनकर, पूर्व के वैभव का स्मरण करके नायकरहित सेनाओं वाले लोकों को अपने अस्तोक (अनल्प) बलातिरेक से, शोक में डुबोया। ३९१ [कं.] सब लोकाधिनाथ शोकातुर बनकर, दुष्ट राक्षस का विदलन करने में आकुंठ (कुण्ठित न होनेवाले), श्रीकंठ, भुवन-भरण में चित्तोत्कंठा वाले की शरण में गये। ३९२ [व.] इस तरह सकल लोकेश्वर महेश्वर के पास पहुँचकर, लोकपालकों ने प्रणाम कर, उसकी पूजा करके, करकमलों को मुकुलित करके, [यों कहा।] ३९३ [कं.] हे अगजाधीश (पार्वती के पति) ! त्रिपुरों के वासी बनकर, दानव अपराजित होते हुए, सदा हमें शारीरिक पीड़ाएँ पहुँचाते है। [ऐसे] अपराधियों का वध करो। ३९४ [कं.] हे ! हे शिव ! तुम्हारे अधीन में रहते कभी दीन न बननेवाले हम लोग, अब उन देव-अहित (राक्षसों) के शौर्य के अधीन होकर, बल-हीन बन गए है। हमारी रक्षा करो। ३९५ [व.] [ऐसा] कहने पर, भक्तवत्सल परमेश्वर ने शरणागत गीर्वाणों को अभय प्रदान किया। अपने बाणासन (धनुष) को हाथों में लेकर, दुर्वार शौर्य से एक दिव्य बाण का संधान किया। उसको त्रिपुरासुरों पर छोड़ा। सूर्यमंडल से बाहर आनेवाले मयूख (किरणों) के जाल के समान, उस बाण से देदीप्यमान बाण-सहस्रों का संभव हुआ। उन सबके भूमि और

सहस्रांबुल संभविंचि, भूनभोंतराळंबुलु निंड, मंडि कुप्पलु गोनि, त्रिपुरंबुलपं गप्पें। अप्पुडु तद्बाण पावक हेतिसंदोहदंदह्यमानुलै गतासुलैन त्रिपुरनिवासुल देंच्चि महायोगियैन मयुंडु सिद्धरसकूपंबुन वैचिन ॥ 396 ॥

कं. सिद्धामृत रसमहिमनु, शुद्धमहावज्रतुल्य शोभिततनुलै
वृद्धि बौंदिरि दानवु, -लुद्धत निर्घातपावकोपमुलगुचुन् ॥ 397 ॥

कं. कूपामृतरससंगति, दीपितुलै निलिचि युन्न देवाहितुलन्
रूपिंचि चित वौंदेडु, गोपध्वजु जूचि चक्रि कुहनान्वितुडै ॥ 398 ॥

शा. उत्साहंबुन नोंक्क पाडिमोंदवै यूधंबु व्राणिंचुचुन्
वत्सबं तन वेंट ब्रह्म नडवन् वैकुंठुडेतेंचि यु-
द्यत्सत्त्वंबुन गूपमध्य रसंबु द्रावेन् विलोकिंचुचुन्
दत्सौभाग्य निमग्नुलै मरचिरा दैत्युल् निवारिंपगन् ॥ 399 ॥

व. इट्लु विष्णुंडु मोहनाकारंबुन धेनुवै वच्चि, त्रिपुरमध्य कूपामृत रसंबु द्राविन, नेरिंगि शोकाकुल चित्तुलैन, रसकूप पालकुलं जूचि, महायोगियैन मयुंडु वेंरगुपडि, दैवगति जिंतिंचि, शोकिंपक यिट्लनियें ॥ 400 ॥

---

आकाश और अन्तराल में भरकर जलते हुए, झुंड के झुंड जाकर, त्रिपुरों को आच्छादित कर लिया। तब उन बाणों से आनेवाली हेति (अग्नि) ज्वालाओं से त्रिपुरों के सभी लोग जलकर राख हुए। उन सबको महा-योगी मय ने लाकर सिद्धरस के कूप में डाल दिया। [तब] ३९६ [कं.] सभी दानवों ने सिद्धामृत रस की महिमा से शुद्ध और उद्धत और निर्घात पावक (अग्नि) के समान होते हुए, वृद्धि को प्राप्त किया। ३९७ [कं.] कूप के अमृत के सेवन से दीपित बनकर खड़े हुए देवाहितों (राक्षसों) को देखकर चिन्तित होनेवाले गोपध्वज को देख, चक्री कुहनान्वित होकर (षड्यंत्र रचकर), ३९८ [शा.] उत्साह से एक धेनु बनकर, ब्रह्मा के अपने ऊध (थन) को आघ्राण करनेवाला बछड़ा बनाकर, पीछे चलने पर, वैकुण्ठवासी (विष्णु) आकर उद्धत सत्त्व से उस कूप के मध्यस्थ रस को पी गया। उसके सौभाग्य को देखने में मग्न होकर, दानव लोग उसे रोकना भूल गये। ३९९ [व.] इस प्रकार विष्णु ने मोहनाकार से धेनु बनकर, आकर, त्रिपुर मध्य कूपामृत रस पी लिया तो, उसे जानकर उस कूप के पालक चिन्तित हुए। उसे देखकर, महायोगी मय आश्चर्य में पड़कर, दैवगति की चिन्ता कर, शोकाकुल न बनकर, ऐसा बोला। ४०० [आ.] दनुजो! वह अमर हो, दनुज हो, नर हो,

आ. अमरुलैन दनुजुलैननु नरुलैन, नेॆंतनिपुणुलैन येॆव्वरैन
दैविकार्थचयमु दप्पिगा लेरु, वलदु दनुजुलार ! वगव मनकु ! ॥ 401 ॥

व. अनि पलिकॆ। अंत विष्णुंडु नॆजंबुलैन धर्म ज्ञान विद्या तपो विरक्ति समृद्धि क्रियादि शक्तिविशेषंबुल शंभुनिकि प्राधान्यंबु समर्पिचि, रथ, सूत केतु वर्म बाणासन प्रमुख संग्राम साधनंबुलु सेसिनं गॆकॊनि ॥ 402 ॥

म. शरिय कार्मुकियै महाकवचियै सन्नाहियै वाहियै-
सरथुंडै सनियंतयै सवलुडै सत्केतनच्छत्रुडै
परमेशुं डॊक बाणमुन् विडिचॆ दद्बाणानल ज्वाललन्
बुरमुल्गालॆ जटच्छट ध्वनि नभो भूमध्यमु निडगन् ॥ 403 ॥

व. इट्लु हरुंडु दुरवगाहंबुलैन त्रिपुरंबुल नभिजिन्मुहूर्तंबुन भस्मंबु सेसि कूल्चिन, नमर गरुडसिद्ध साध्य गंधर्व यक्ष वल्लभुलु वीक्षिचि, जय जय शब्दंबुलु सेयुचु गुसुम वर्षंबुलु वर्षिचिरि प्रजलु हर्षिचिरि। ब्रह्मादुलु कीर्तिचिरि। अप्सरादुलु नर्तिचिरि। दिव्यकाहळ दुंदुभि रवंबुलुनु, मुनिजनोत्सवंबुलुनु, प्रचुरंबु लय्यॆ। इट्लु विश्वजनीनंबगुत्रिपुरासुर संहारंबुन नखिल लोकुलुनु संतसिल्लियुंड नय्यवसरंबुन ॥ 404 ॥

---

कितने भी निपुण हो, कोई भी हो, दैवकार्य-चय (समूह) को रोक नही सकता। [अतः] हमें दुःखी नही होना चाहिए। ४०१ [व.] [मय ने] ऐसा कहा। तब विष्णु ने अपने लिए सहज गुण, धर्म, ज्ञान, विद्या, तप, विरक्ति, समृद्धि, क्रिया, शक्ति [आदि] विशेषों से ईश्वर को प्राधान्य समर्पण किया। फिर रथ, सूत, केतु, वर्म, बाणासन आदि संग्राम-सामग्री को भी दिया तो [उनको] स्वीकार करके, ४०२ [म.] शरी (बाणों से युक्त), कार्मुकी (धनुष से युक्त), महाकवची, सन्नाही, वाही (वाहन से युक्त), सरथ (रथ से युक्त), सनियन्ता और सबल होकर, सकेतन और, छत्रयुक्त होकर, परमेश ने एक बाण को छोड़ा। उस बाण की अनल-ज्वालाओं से त्रिपुर, छटच्छट की ध्वनि के आकाश और भूमि के मध्य [प्रांत] में भर जाने पर, जल गए। ४०३ [व.] इस प्रकार हर (शिव) ने दुरवगाह (दिखाई न पड़नेवाले) त्रिपुरों को अभिजिन्मुहूर्त में भस्म बनाकर गिरा दिया तो, अमर, गरुड़, गंधर्व, सिद्ध, साध्य, यक्षवल्लभों ने देखकर 'जयजय' के शब्द करते हुए कुसुमवर्षा बरसाई। प्रजा हर्षित हुई। ब्रह्मा आदि ने कीर्तन किया (प्रशंसा की)। अप्सराएँ नाची। दिव्य काहल, दुंदुभी [वाद्य] के रव और मुनिजनों के उत्सव प्रचुर (बहुल) हुए। इस तरह विश्वजनीन त्रिपुरासुरों के संहार पर (के कारण), अखिल लोकों की प्रजा के संतुष्ट हो रहने पर, उस अवसर पर, ४०४ [आ.] तृणकणों के समान त्रिपुरों को जलाकर परम, अव्यय,

आ. तृणकणमुल भंगि द्रिपुरंबुल दहिंचि, परमुडव्ययुंडु भद्रयशुडु
शिवुडु पद्मजादि जेगोयमानुडै, निजनिवासमुनकु नेग्मि जनियै ॥405॥

व. इट्लु निजमाया विशेषंबुन मर्त्यलोकंबुन विडंविचुचुन्न विष्णुनि पराक्रम विधानंबुलु, मुनिजन वंद्यमानंबुलै, सकल लोक कल्याण प्रदानंबुलैयुंडु। अनिन विनि, नारदुनकु धर्मनंदुनुं डिट्लनियै ॥ 406 ॥

## अध्यायमु—११

### नारदुंडु धर्मराजुनकु वर्णाश्रमधर्मंबुलु तॆलुपुट

सी. अनघात्म ! सकल वर्णाश्रमाचार सम्मति धर्ममॆय्यदि मानवुलकु
ने धर्ममुन नरुं डिद्ध विज्ञानमु भक्तियु ब्रापिंचु बद्मजुनकु
साक्षात्सुतुंडवु सर्वज्ञुंडवु नीकु नॆरुगनिदि धर्म मित लेदु
नारायण परायण स्वांतुलनघुलु शांतुलु सदयुलु साधुवृत्ति

आ. मॆट्रयुचुन्न घनुलु मीवंटि वारॆद्दि
परम धर्म मनुचु भक्ति दलतु-
रट्टि धर्मरूप मखिलंबु नॆरिगिपु
विनग निच्च गलदु विमलचरित ! ॥ 407 ॥

व. अनिन, नारदुंडु धर्मराजुं जूचि, दाक्षायणि यंदु निज वंशंबुन जन्मिंचि,

---

भद्रयश वाला शिव, पद्मज आदि देवताओं की प्रशंसा पाकर, प्रसन्नता से अपने निवास को चला गया। ४०५ [व] इस तरह अपने माया-विशेष द्वारा मानवलोक में प्रकाशित विष्णु के पराक्रम-विधान मुनिजनों से वंद्यमान और सकल लोकों को कल्याण-प्रदान करनेवाले बनकर रहते हैं। ऐसा कहने पर सुनकर, धर्मनंदन ने ऐसा कहा। ४०६

## अध्याय—११

### नारद का धर्मनंदन को वर्णाश्रमधर्मों के बारे में बताना

[सी.] हे अनघात्मा ! विमलचरित [वाले] ! मानवों के लिए, सब वर्णाश्रमा-चार की सम्मति पानेवाला धर्म कौन सा है ? किस धर्म से नर पवित्र विज्ञान और भक्ति को पाएगा ? तुम तो पद्मज के साक्षात् पुत्र हो, सर्वज्ञ हो। यहाँ कोई भी धर्म, जिसे तुम नहीं जानते, ऐसा नहीं है। नारायण-परायण स्वांत वाले, अनघ, शांत, सद्हृदय वाले और साधुवृत्ति में रहनेवाले, तुम जैसे महान मुनिवर, जिस धर्म को परमधर्म कहकर, भक्ति से मानते हैं, [illegible] को बताओ। सुनने की इच्छा है। ४०७

भुवनशोभनंबु कॊऱकु बदरिकाश्रमंबुन दपोनिरतुंडैयुन्न नारायणुनिवलन सनातन धर्मंबुविंटिनि। अदि सॆप्पॆद। सकल वर्णंबुल जनुलकु सत्यंबुनु, दययुनु, नुपवासादि तपंबुनु, शौचंबुनु, सैरणयु, सदसद्विवेकंबुनु, मनोनियमंबुनु बहिरिंद्रिय जयंबुनु, हिंस लेमियु, ब्रह्मचर्यंबुनु, दानंबुनु, यथोचितजपंबुनु, संतोषंबुनु, मार्दवंबुनु, समदर्शनंबुनु, महाजनसेवयु, ग्राम्यंबुलैन कोरिकलु मानुटयु, निष्फलक्रियलु विडुचुटयु, मित-भाषित्वंबुनु, देहंबु गानि तन्नु वॆदकिकॊनुटयु, नन्नोदकंबुलु प्राणुलकुं बंचि-यिच्चुटयु, ब्राणुलंदु देवताबुद्धियु, नात्मबुद्धियुं जेयुटयु, श्रीनारायण-चरण स्मरण कीर्तन श्रवण सेवार्चन नमस्कार दास्यात्मसमर्पण सख्यंबु-लनॆंडि त्रिंशल्लक्षणंबुलु गलुगवलयु। अंदु सत्कुलाचारुंडै मंत्रवंतंबुलैन गर्भादानादि संस्कारंबुलविच्छिन्नंबुगा गलवाडु द्विजुंडु। द्विजुनकु यजन याज नाध्यनाध्यापन दान प्रतिग्रहंबुलनु षट्कर्मंबुलु विहितंबुलगु। राजुनकु ब्रतिग्रह व्यतिरिक्तंबुलैन यजनादि कर्मंबुलैदुनु, ब्रजापालनंबुनु, ब्राह्मणुलु गानिवारिवलन दंड शुल्कादुलनु गॊनुटयु, बिहित कर्मंबुलु। वैश्युनिकि गृषि वाणिज्य-गोरक्षणादि कर्मंबुलुनु, ब्राह्मण कुलानु-सरणंबुनु विहितबुलु। शूद्रुनकु द्विजशुश्रूष चेयवलयु ॥ 408 ॥

---

[व.] [इस प्रकार धर्मनन्दन ने] कहा तो धर्मराज को देखकर, दाक्षायणी में निजांश से उद्भूत होकर, भुवनशोभन के लिए वदरिकाश्रम में तपोनिरति रहनेवाले नारायण द्वारा सनातन धर्म को मैंने सुना था। उसको वताऊँगा। सकल वर्णों में लोगों को सत्य, दया, उपवास आदि तप, शौच, सहनशीलता, सत् और असत् को [जाननेवाला] विवेक, मनोनियम, इंद्रियों पर विजय, ब्रह्मचर्य, दान, यथोचित जप, संतोप, मार्दव, सव प्राणियों को समान दृष्टि से देखना, लोगों की सेवा, ग्राम्य होनेवाली इच्छाओं को छोड़ना, निष्फल क्रियाओं को छोड़ना, मितभाषण, देह के अतिरिक्त अपनी [आत्मा की] खोज करना, अन्न और उदक (पानी) को प्राणियों में बाँटना, प्राणियों पर देवता और आत्मबुद्धि को रखना, श्रीनारायण के चरण के स्मरण, कीर्तन, श्रवण, सेवा, अर्चना, नमस्कार, दास्य, आत्मार्पण और सखयता नामक तीस लक्षणों का [उत्पन्न] होना है। उनमें सत्कुलाचारी, मंत्र-सहित गर्भाधान आदि सत्कारों के अविच्छिन्न रूप से रहनेवाला द्विज है। उसके लिए यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह नामक छः कर्म विहित हैं। राजा के लिए उन छः कर्म में प्रतिग्रह को छोड़कर, वाक़ी पाँचों, प्रजापालन, [तथा] जो ब्राह्मण नहीं हैं उनसे दंडशुल्कादि का ग्रहण विहित कर्म है। वैश्य के लिए कृषी, वाणिज्य, गोरक्षण आदि कर्म और ब्राह्मण-कुल के अनुसार रहना विहित है। शूद्र को द्विज की

सी. विनु कर्षणादिक वृत्ति कंटेनु मेलु यांचिप नोल्लनि यट्टि वृत्ति
प्राप्तंबु गैकोनि व्रतुकु कंटेनु लस्स यनुदिनंबुनु धान्यमडिगिकोनुट
यायावरमु कंटे नधिककल्याणंबु पड्रिग यॆन्नुल धान्य भक्षणंबु
शिलजीवनमु कंटे श्रेयमापणमुल बड्ड गिजल दिनि व्रतुकु गनुट

आ. यॆडरुचोट नृपति की नाल्गु वृत्तुलु
दगु व्रतिग्रहंबु दगदु तलप
नापदवसरमुल नधमु डॆक्कुव जाति
वृत्ति नुन्न दोषविधमु गादु ॥ 409 ॥

व. विनुमु शिलवृत्तियु, नुंछवृत्तियु, ऋतमनियु, नयाचितवृत्ति यमृतमनियु, नित्ययाच्ञावृत्ति मृतमनियु, कर्षकवृत्तियु प्रमृतमनियु नॆन्नुदुरु। अट्टि वृत्तुल जीविंचुट मेलु। वाणिज्यंबु सत्यानृतंबनियु, श्ववृत्ति नीचसेव यनियु बलुकुदुरु। सर्ववेदमयुंडु ब्राह्मणुंडु। सर्वदेवमयुंडु क्षत्रियुंडु। ब्राह्मण क्षत्रियुलकु नीच सेवनंबु कर्तव्यंबु गादु ॥ 410 ॥

कं. दममुनु शौचमु दपमुनु
शममुनु मार्दवमु गृपयु सत्यज्ञान
क्षमलुनु हरिभक्तियु ह-
र्षमु निजलक्षणमुलग्रजातिकि नधिपा ! ॥ 411 ॥

---

शुश्रूषा विहित करना है। ४०८ [सी.] सुनो। खेती-बारी करने से भी वगैरयाचना के जो प्राप्त है, उससे तृप्त होना अच्छा है। उससे रोज धान की याचना अच्छा है। उस धान की याचना से खेतों में पड़े हुए धान चुनकर जीना अच्छा है। उसे शिला-वृत्ति कहते है। उससे दूकानों के आसपास गिरे हुए धान्य इकट्ठा करके जीना अच्छा है। [आ.] राजा को भी क्यों न हो, विधिवश कष्ट की दशा में ऊपर कही हुई इन चारों वृत्तियों को अपनाना अच्छा है, लेकिन प्रतिग्रह (दान) लेना नही। आपदा और अवसर के समय अधम अथवा उत्तम जाति वाले की वृत्ति को अपनाने में कोई दोष नहीं। ४०९ [व.] सुनो। शिलावृत्ति और उंछवृत्ति को ऋत और अयाचितवृत्ति को अमृत, नित्ययाचनावृत्ति को (सदा याचना करना) मृत और कर्षकवृत्ति (खेती-बारी) को प्रमृत मानते हैं। ऐसी वृत्तियों से (करके) जीना अच्छा है। वाणिज्य को सत्यानृत और श्ववृत्ति (पराधीनवृत्ति) को नीच-सेवा कहते है। ब्राह्मण सर्ववेदमय है। क्षत्रिय सर्वदेवमय है। ब्राह्मण और छत्रियों के लिए नीचों की सेवा करना कर्तव्य नहीं है। ४१० [क.] हे राजन ! अग्रजाति वालों (ब्राह्मणों) के लिए दम, शौच, तप, शम, मार्दव, कृपा, सत्य, ज्ञान, क्षमा, हरि के प्रति भक्ति

उ. शौर्यमु दानशीलमु ब्रसादमु नात्मजयंबु देजमुन्
धैर्यमु देवभक्तियुनु धर्ममु नर्थमु गाममुन् बुधा-
चार्य मुकुंद सेवलुनु सत्कृतियुं बरितोषणंबु स-
द्वीर्यमु रक्षणंबु बृथिवीवरशेखर ! राजचिह्नमुल् ॥ 412 ॥

क. धर्मार्थ काम वांछयु, निर्मल गुरु देव विप्र निवहार्चनमुल्
निर्मदभावमु ब्रमदमु, शर्मकरत्वमुनु वैश्यजनलक्षणमुल् ॥ 413 ॥

उ. स्तेयमु लेनि वृत्तियु शुचित्वमु सन्नुतियु न्निजेशुलन्
मायलु लेक डायुटयु मंत्रमु सॆप्पक पंचयज्ञमुल्
सेयुटयुन् धरामरुल सेवयु गोवुल रक्षणंबु न-
न्यायमु लेमियुन् मनुजनाथ ! यॆरुंगुमु शूद्र धर्ममुल् ॥ 414 ॥

सी. नियममु वाटिंचि निर्मल देहियै शृंगार मॆप्पॊद्द जेयवलयु
सत्यप्रियालाप चतुरयै प्राणेशु चित्तंबु प्रेम रंजिपवलयु
दाक्षिण्य संतोष धर्म मेधावुल दैवत मनि प्रियु दलपवलयु
नाथु डे पद्धति नडचु ना पद्धति नडचि सद्बंधुल नडपवलयु

आ. मार्दवमुन बतिकि मज्जन भोजन, शयन पानरतुल जरुपवलयु
विभुडु पतितुडैन वॆलदि पातिव्रत्य, महिम बुण्यु जेसि मनुपवलयु ॥415॥

और संतुष्ट रहना [आदि] निजी लक्षण है। ४११ [उ.] पृथिवीवरशेखर (राजाओं में उत्तम) ! शौर्य, दानशीलता, प्रासाद (प्रसन्नता), आत्मा पर विजय, तेज, धैर्य, देवताओं के प्रति भक्ति, धर्म, अर्थ, काम, बुध [जन], आचार्य और मुकुंद की सेवा, सत्कृति (अच्छे काम), परितोषण (संतृप्ति), सद्वीर्य, रक्षा का भाव [आदि] राजचिह्न हैं। ४१२ [कं.] धर्म, अर्थ और काम —इनकी वांछा, निर्मल भाव से गुरु, देव, विप्र-निवह (-समूह) की अर्चना, निर्मद (मदरहित) भाव, प्रमद (प्रमोद), शर्मकरत्व (अच्छे काम करने का भाव) [आदि] वैश्यजनों के लक्षण है। ४१३ [उ.] मनुजनाथ ! स्तेय (चोरी) रहित वृत्ति, शुचित्व, सन्नुति (सज्जनों की स्तुति), अपने मालिकों के पास बिना कलंक के रहना, मंत्र कहे बिना ही पंचयज्ञ करना, धरामरों (ब्राह्मणों) की सेवा, गायों की रक्षा, अन्याय के बिना रहना, [आदि को] शूद्रों के धर्म जानो। ४१४ [सी.] [स्त्री को] नियम का पालन करते हुए, निर्मल देह वाली बनकर, सदा अलंकृत रहना चाहिए। प्राणेश के चित्त का रंजन प्रेम से, सत्य और प्रिय भाषणों की चतुरता से करना चाहिए। प्रिय को दाक्षिण्य, संतोष, धर्म, मेधा आदि में देवता समझना है। पति जिस पद्धति के अनुसार रहता है, उस पद्धति (विधान) के अनुसार रहकर, बंधुओं को आदर-भाव से देखना चाहिए। [आ.] मार्दव (सुकुमार) भाव से पति के मज्जन, भोजन, शयन, पान

कं. तरुणि तन प्राणवल्लभु, हरि भावंबुग भजिंचि यतडुनु दानुन्
सिरि कैवडि वर्तिंचु, हरिलोकमुनंदु संततानंदमुनन् ॥ 416 ॥

कं. उपवासंबुलु व्रतमुलु
दपमुलु वेंय्येल भर्तदैवतमनि नि-
ष्कपटत गोलिचिन साध्विकि
नृपवर ! दुर्लभमु लेदु निखिलजगमुलन् ॥ 417 ॥

व. मरियु संकरजातुलैन रजक, चर्मकारक, नट, बुरुड, कैवर्तक, मेड, भिल्लुरगु नंत्य जातु लेडुवुरकुनु, चंडाल, पुल्कस, मातंग जातुलकुनु नाया कुलागतंबुलैन वृत्तुल, चौर्यहिंसादुलु वर्जिंचि संचरिंपवलयु। मानवुलकु व्रति युगंबुन नैसर्गिकंबुलैन धर्मंबुलु, रेंडु लोकंबुलंदुनु सुखकरंबुलनि वेदविदु लैन पेद्दलु सेप्पुदुरु। कारु कारुन दुन्नेडु क्षेत्रंबु लावु चेडु। अंदु जल्लिन बीजंबुलंदु निस्तेजंबुलैन युंडि, लेस्सग नंकुरिंपवु। निरंतर घृतधारा वर्षंबुन दडनंबुनकु दाहकत्वंबु शांति जेंदु। अदु वेल्चिन हव्यंबुलु फलिंपवु। तद्विधंबुन ननवरत कामानुसंधानंबुनु गामोन्मुखंबैन चित्तंबु कामंबुलं दनिसि, निष्कामंबै विरक्ति बोंदु गावुन, सत्त्वस्वभावंबु तोड

---

और रति आदि कार्य करना चाहिए। जब पति पतित बनता है तब स्त्री को अपनी पातिव्रत्य-महिमा से उसको फिर से पुण्यी बनाना चाहिए। ४१५ [क.] जिस प्रकार वैकुण्ठ में लक्ष्मी आनन्द के साथ हरि के पास रहती है, उसी प्रकार तरुणी को अपने प्राणवल्लभ को हरि मानकर, सेवा करते हुए रहना चाहिए। ४१६ [कं.] हे नृपवर ! उपवास, व्रत, तप [आदि] हजार क्यों ? (करने की कोई जरूरत नहीं है।) जो साध्वी पति को देवता मानकर, निष्कपटता के साथ उसकी सेवा करती है, उस [स्त्री] के लिए निखिल जगत में कोई भी [बात] दुर्लभ नहीं है। ४१७ [व.] और, रजक, चर्मकारक, नट, बुरुड (बंसोर), कैवर्तक (मल्लाह), मेड, भिल्ल नामक सात संकर और अन्य जाति वालों को, चंडाल, पुल्कस और मातंग जाति के लोगों को अपने-अपने कुलानुसार वृत्तियों को अपनाकर, चौर्य, हिंसा आदि का वर्जन करके रहना चाहिए। वेदविद ऐसा कहते हैं कि हर एक युग में मानवों के नैसर्गिक धर्म ही दोनों लोकों में सुखकर होते हैं। जिस क्षेत्र में हर साल खेती-बारी होती है, वह बल खोता रहता है और उसमें बोये गये बीज निस्तेज बनकर अच्छी तरह फलित नहीं होते। निरन्तर घृतधारा के बरसने से अग्नि में दाहकत्व (दहन करने की शक्ति) शांत हो जाती है। उसके हव्य फल नहीं देते। इसी प्रकार जो चित्त सदा कामानुसंधान में रहता है, वह अन्त में निष्काम बनकर, विरक्ति के भाव को अपनाता है। इसलिए जो मानव सदा सत्त्व स्वभाव के साथ

नॅप्पुडु दप्पक निजवंशानुगत विहित धर्मंबुन वर्तिचु नरुंडु मॅल्लन स्वाभाविक कर्मपरत्वंबु विडिचि मुक्ति नौंदु। जातिमात्रंबुन बुरुषुनि वर्णंबु निर्देशिपलेरु। शमदमादि वर्णलक्षण व्यवहारंबुल गनवलयु। अनि नारदुं डिट्लनियॅ ॥ 418 ॥

## अध्यायमु—१२

कं. क्रममुन वर्णंबुल चि,-ह्नमुलॅल्लनु जॅप्पवडियॅ नाश्रममुल ध-
र्मंमुलॅरिंगिचॅद नमियु, समदाहित हृदयशूल ! सदमलशीला ! ॥419॥

व. विनुमु। ब्रह्मचारि मौंजी, कोपीन यज्ञोपवीत कृष्णाजिन पालाशदंड कमंडलुधरुंडुनु, संस्कारहीन शिरोरुहुंडुनु, दर्भहस्तुंडुनु, शील प्रशस्तुंडुनु, मौनियुनै, त्रिसंध्यंबुनु ब्रह्मगायत्रि जपियिचुचु, सायं प्रातरवसरंबुल नर्क पावक गुरु देवतोपासनंबुलु सेयुचु, गुरुमंदिरंबुनकुं जनि, दासुनि-चंदंबुन भक्ति विनयसौमनस्यंबुलु गलिगि, वेदंबुलु चदुवुचु, नध्ययनोप-क्रमावसानंबुल गुरुचरणंबुलकु नमस्करिपुचु, रेपु मापुनु, विहितगृहंबुल भिक्षिचि, भैक्षंबु गुरुवुनकु निवेदिचि, यनुज्ञ गौनि, मितभोजनंबु गाविपुचु,

---

निजवंशानुगत विहित धर्म के मार्ग में चलेगा, वह धीरे-धीरे स्वाभाविक कर्मपरत्व को छोड़कर मुक्ति को प्राप्त करता है। जाति मात्र से पुरुष के वर्ण का निदर्शन नहीं होता। शम, दम आदि वर्णलक्षणों को व्यवहार में देखना है [ऐसा] बोलकर नारद ने फिर ऐसा कहा। ४१८

## अध्याय—१२

[कं.] समदाहितों (शत्रुओं) के हृदय के शूल ! सदमल (निर्मल) शील वाले ! [मैंने] क्रम के अनुसार वर्णों के चिह्न तुम्हें बताये। अब आश्रमों के समस्त धर्म बताऊँगा। ४१९ [व.] सुनो। ब्रह्मचारी को मौंजी, कोपीन, यज्ञोपवीत, कृष्णाजिन, पलाशदण्ड, कमंडल [आदि] को धारण करनेवाला, संस्कारहीन शिरोरुह (केश) वाला, दर्भयुक्त हस्त वाला, शील से प्रशस्त, मौनी बनकर, तीनों संध्याओं में ब्रह्मगायत्री जपते हुए, प्रातः और सायंकाल के अवसर पर अर्क (सूर्य), पावक (अग्नि), गुरु, देवता [आदि] की उपासना करते रहना चाहिए। गुरु के मंदिर जाकर दास की भाँति भक्ति, विनय, सौमनस्य से वेदों को पढ़ते हुए, अध्ययन को उपक्रम (प्रारंभ) और अवसान के समय पर गुरु के चरणों को नमस्कार करना चाहिए। सुबह और शाम को विहित-गृहों में भिक्षा माँगकर, गुरु को निवेदन कर, फिर उसकी आज्ञा से मितभोजन करना चाहिए।

विहितकालंबुल नुपवसिंचुचु, नंगनलंडु नंगनासक्तुलंडु प्रयोजनमात्र भाषणंबु लोनर्चुचु, गुरु परांगनल नभ्यंग केशप्रसाधन शरीरमर्दन मज्जन रहस्ययोगंबुलु वर्जिंचुचु, गृहंबुन नुंडक, जितेंद्रियत्वंबुन सत्य भाषणंबु संचरिंपवलयु ।। 420 ।।

आ. पोलति दाववह्नि पुरुषुडाज्यघटंबु
करगकेल युंडु गदिसे नेनि
ब्रह्मयेन कूतु बट्टक मानडु
वडुगु किति पोत्तु वलदु वलदु ।। 421 ।।

व. विनुमु । स्वरूप साक्षात्कारंबुन देहि, बहिरिंद्रियादिकंबैन यंतयु नाभासमात्रंबुगा निश्चयिंचि, यंदाक जीवुंडु स्वतंत्रुंडैन यीश्वरुंडु गाकुंडु, नंत दडवु नंगन यिदि, पुरुषुंडु ने ननियेडि बुद्धि मानुट कर्तव्यंबु गादु । ब्रह्मचारि यति गृहस्थुलंदेव्वडैन जित्तंबु परिपक्वंबु गाक यद्वैतानु-संधानंबु सेसिन मूढुंडगु । कावुन रहस्यंबुन बुत्रिकनैन डायकुंड वलयु ।। 422 ।।

---

निहित समयों में उपवास करना चाहिए । अंगनाओं (स्त्रियों) से और अंगनासक्ति रखनेवालों से प्रयोजनमात्र (जितना ज़रूरी हो उतना ही) भाषण करना चाहिए । गुरु के घर की स्त्रियों से और दूसरों की स्त्रियों से अभ्यंग (सिर नहाना), केश-प्रसाधन (बालों का सँवारना), शरीरमर्दन (मालिश कराना), मज्जन (स्नान), रहस्य की बातें बताना आदि का वर्जन करके, घर में न रहते हुए, इन्द्रियों को जीतकर, सत्य-भाषण करते हुए संचार करना चाहिए । ४२० [आ.] स्त्री तो दाव-वह्नि (-अग्नि) है और पुरुष आज्य का घट है । [अगर दोनों एक-दूसरे के] निकट आयें तो, [आज्य] पिघले बिना कैसे रहेगा ? ब्रह्मा भी अपनी बेटी को पकड़े बिना नहीं रहेगा । [औरों की बात कहना क्या ?] [इसलिए] ब्रह्मचारी को स्त्री का संपर्क नहीं चाहिए, नहीं चाहिए । ४२१ [व.] सुनो । स्वरूप के साक्षात्कार (आत्म-साक्षात्कार) में देही बाह्य और इन्द्रियों के सब कुछ को आभास मात्र मानता है । जब तक जीव स्वतंत्र-ईश्वर नहीं बनता (यानी आत्मा को पूरी तरह से ईश्वर नहीं मानता है), तब तक इस विचार को छोड़ना कर्तव्य नहीं है कि 'यह स्त्री है, मैं पुरुष हूँ' । (अर्थात् यह विचार रखना चाहिए ।) ब्रह्मचारी, यति, गृहस्थ —इनमें कोई भी हो, चित्त के परिपक्व होने से पहले अद्वैत का अनुसंधान करेगा तो वह मूढ़ बनेगा । अतः एकांत में प्रकृति के निकट भी नहीं जाना चाहिए । ४२२ [चं.] हे भूवर (राजन)! शिर और शरीर का

कं. शिरमुन मेन संस्कृतुलु चेयक चंदन भूषणाद्यलं-
करणमुलॅल्ल मानि ऋतुकालमुलन्निजभार्य बॊंदुचुं
दरुणुल जूडवारक धृतव्रतुडै मधु मांस वर्जियै
गुरुतर वृत्तिलो मॅलगु कोविदुडॊक्क गृहस्थु भूवरा! ॥ 423 ॥

व. मरियु, द्विजुंडु गृहस्थुंडै गुरुवुल वलन नुपनिषदंग सहितंबैन वेदमंत्रंबुनु बठियिंचि, निजाधिकारानुसारंबुगा नर्थविचारंबु सेसि, तन बलंबु कॊलदि गुरुवुलकु नभीष्टंबु लॊसंगि, गृहंबुन नॊंडॆ, वनंबुन नॊंडॆ, नैष्ठिकत्वंबु नाश्रयिंचि, प्राणुल तोड जीविंपुचु, गुरुवुनंदु, नग्नियंदु, सर्वभूतमुलयंदु नच्युतदर्शनंबु सेयुचु, निंद्रियव्यसनादि मग्नुंडु गाक यॆरुक गलिगि वर्तिंपुचु बरब्रह्मंबुनॊंदु ॥ 424 ॥

कं. विनुमु वनप्रस्थुनकुन्, मुनिकथितमुलैन नियममुलु गलवा चॊ-
प्पुन वनगतुडै मॅलगॆंडि, घनुडु महर्लोकमुनकु गर्मनिचु नृपा! ॥425॥

व. अटमीद गृहस्थाश्रमंबु विडिचि वनंबुनकुं जनि, दुन्नक पंडॆडि नीवारादिकंबु अग्निपक्वंबु चेसि यॊंडॆ, नामंबुलु सेसि यॊंडॆ, नर्कपक्वंबुलैन फलाबु लॊंडॆ, भक्षिंपुचु, वन्याहारंबुल नित्यकृत्यंबुलैन चरुपुरोडाशंबु लॊनर्चुचु, प्रतिदिनंबुनं बूर्वसंचितंबुलु परित्यजिंचि, नूतनद्रव्यंबुलु संग्रहिंचुचु, नग्नि

---

संस्कार न करके, चंदन, भूषण आदि सब अलंकरणों को छोड़कर, ऋतु के समय में अपनी स्त्री से संगम करते हुए, अन्य स्त्रियों को न देखकर, दृढ़व्रती बनकर और मधु, मांस आदि का वर्जन कर, गुरुतरवृत्ति से रहने वाला गृहस्थ ही कोविद है। ४२३ [व.] और द्विज (ब्राह्मण) को गृहस्थ बनकर, गुरुओं के द्वारा उपनिषदों के अंगसहित वेदमंत्रों को पढ़कर, अपने अधिकार के अनुसार अर्थविचार करके, अपनी योग्यता के अनुसार गुरुओं को अभीष्ट (कामित) देकर, गृह में हो या वन में, निष्ठा से रहना चाहिए। प्राणियों के साथ जीते हुए (सहजीवन करते हुए), गुरु, अग्नि, आत्मा और सर्वभूतों में अच्युत को ही देखते हुए, इन्द्रिय-व्यसनों में मग्न न होकर, ज्ञान से युक्त वर्तन करते हुए, परब्रह्म को पाता है। ४२४ [कं.] हे नृप (राजन्)! वानप्रस्थ के लिए मुनियों से कथित (कहे गये) नियम है। उनके अनुसार वन में रहनेवाला महात्मा बनकर, महर्लोक को जाएगा। ४२५ [व.] उसके बाद [गृहस्थ को] गृहस्थाश्रम को छोड़कर, वन जाकर, वहाँ अपने-आप मिलनेवाले नीवार आदि धान्य को अग्नि में पक्व करके या बग़ैर पकाए या सूर्य [के ताप से] पक्व फल आदि खाते हुए, वन्य-आहार से नित्यकृत्य बने यज्ञ के लिए चरु और पुरोडाश आदि बनाते हुए, प्रतिदिन पुरानी वस्तुओं का विसर्जन कर, नूतन-द्रव्यों (वस्तुओं) का संग्रह करते हुए, अग्नि के लिए पर्णशाला हो या पर्वत

कोंड्रकु वर्णशालयैन, बर्वतकंदरंबैन नाश्रयिंपुचु, हिम, वायु, वर्षातपं-बुलकु सहिंपुचु, नख श्मश्रु केश तनूरुहंबुलु प्रसाधितंबुलु सेयक, जटिलुंडै वसियिंपुचु, दंडाजिन कमंडलु वल्कल परिच्छदंबुलु धरियिंचि, पंड्रेंडेन, नॅनिमिदेन, नालुगेन, रेंडेन, नोंकवत्सरंबैन, दपःप्रभावंबुन बुद्धिनाशंबु गाकुंड मुनियै चरिंपुचु, दैववशंबुन जरारोगंबुल चेत जिक्कि, निज धर्मानुष्ठान समर्थुंडु गानि समयंबुन निरशनव्रतुंडै, यग्नुल नात्मा-रोपणंबुलु सेसि, सन्यसिंचि, याकाशंबुनंदु शरीररंध्रंबुलुनु, गालियंदु निश्श्वासंबुनु, तेजंबु लोपल नूष्मंबुनु, जलंबुल रसंबुनु, धरणियंदु शल्य मांस प्रमुखंबुलुनु, वह्नि यंदु व्यक्तंबु तोड वाक्कुनु, निंद्रुनि यंदु शिल्पंबु-तोड गरंबुलुनु, विष्णुनियंदु गतितोड बदंबुलुनु, प्रजापतियंदु रतितोड नुपस्थंबुनु, मृत्युवंदु विसर्गंबुतोड बायुवुनु, दिक्कुलंदु शब्दंबुतोड श्रोत्रंबुनु, वायुवंदु स्पर्शंबुतोड द्वक्कुनु, सूर्युनियंदु रूपंबुतोड जक्षुवुलुनु, सलिलं-बुलंदु व्रचेतस्सहितयैन जिह्वयु, क्षितियंदु गंधसहितंबैन घ्राणंबुनु, जंद्रुनियंदु मनोरथंबुलतोड, मनंबुनु, गवियैन ब्रह्मयंदु बोधंबुतोड बुद्धियु, रुद्रुनियंदहंकारंबुतोड ममत्वंबुनु, क्षेत्रज्ञुनि यंदु सत्त्वंबु तोड जित्तंबुनु, बरंबुनंदु गुणंबुलतोड वैकारिकंबुनु जेर्चि, यटमीद बृथिविनि जलंबुनंदुनु,

---

की कंदरा का आश्रय लेते हुए, हिम, वायु, वह्नि, वर्षा और धूप को सहते हुए, नख, श्मश्रु (मूँछ), केश [आदि] तनूरुहों को साफ न करते हुए, जटिल हो (यति के नियमों से) रहते हुए, दंड, अजिन, कमण्डलु, वल्कल, परिच्छद धारण कर, बारह या आठ, या चार, या दो, या एक वर्ष के लिए तप के प्रयास में बुद्धि नाश न करके, मुनि बनकर रहते हुए, दैववश से जरा और रोग के वश हो जाए, और अपने धर्म का अनुष्ठान करने में समय नहीं हो तो, तब निरशनव्रत को अपनाकर, अग्नियों में आत्मारोपण करके (आत्मा को रख), संन्यास लेना चाहिए। आकाश में शरीर के रंध्रों को, वायु में निःश्वास को, तेज में ऊष्मा को, जल में रस को, धरणि में शल्य, मांस आदि को वह्नि में भाषण के साथ वाक् को, इंद्र में शिल्प के साथ हाथों को; विष्णु में गति के साथ चरणों को; प्रजापतियों में रति के साथ उपस्थ को; मृत्यु में विसर्ग के साथ पायू को; दिशाओं में शब्द के साथ श्रोत्र को; वायु में स्पर्श के साथ त्वक् को; सूर्य में रूप के साथ चक्षुओं को; सलिलों में प्रचेतस् के साथ जिह्वा को; क्षिति में गंधसहित घ्राण को; चंद्र में मनोरथों के साथ मन को; गवी ब्रह्मा में बोध के साथ बुद्धि को; रुद्र में अहंकार के साथ ममता को; क्षेत्रज्ञ में सत्त्व के साथ चित्त को; परमात्मा में गुणों के साथ विकार भावों को लय करना चाहिए। उसके बाद पृथ्वी को जल में; जल को तेज में; तेज को वायु में; वायु को गगन में;

जलंबुनु देजंबुनंदुनु, देजंबुनु वायुवंदुनु वायुवुनु गगनमंदुनु, गगनमु नहंकारतत्त्वमंदुनु, नहंकारमुनु महत्तत्त्वंबुनंदुनु, महत्तत्त्वमुनु प्रकृति यंदुनु, प्रकृति नक्षरंडैन परमात्मयंदुनु लयंबु नॊंदिंचि, चिन्मात्रावशेषितुंडैन क्षेत्रज्ञुनि नक्षरत्वंबुन नॆरिंगि द्वयरहितुंडै, दग्धकाष्ठुंडैन वह्निचंदंबुन परमात्मयैन निर्विकार ब्रह्मंबुनंदु लीनुंडु गावलयु ॥ 426 ॥

## अध्यायमु—१३

कं. अनघ ! वनप्रस्थुंडै, चनि तद्धर्मंबुलिट्लु सलुपुचु मरियुन्
मननेनि सन्न्यासिपं, जनु नटमीदटनु मुक्तिसंगत्वमुन् ॥ 427 ॥

व. इट्लु वानप्रस्थाश्रमंबु जरिपि, सन्न्यसिंचि, देहमात्रावशिष्टुंडुनु, निरपेक्षुंडुनु, भिक्षुंडुनु, निराश्रयुंडुनु, नात्मारामुंडुनु, सकलभूत समुंडुनु, शांतुंडुनु, समचित्तुंडुनु, नारायणपरायणुंडुनुनै, कौपीनाच्छादनमात्रंबैन वस्त्रंबु धरियिंचि, दंडादि व्यतिरिक्तंबुलु विसर्जिंचि, यात्मपरंबुलु गानि शास्त्रंबुलु वर्जिंचि, ग्रहनक्षत्रादि विद्यल नभ्यसिंपक भेदवादंबुलैन तर्कंबुलु तर्किंपक, येंदुनु बक्षोकरिंपक, शिष्युलकु ग्रंथंबुलु वंचिंचि

---

गगन को अहंकारतत्त्व में; अहंकार को महत्तत्त्व में; महत्तत्त्व को प्रकृति में; प्रकृति को अक्षर (नाश न होनेवाले) परमात्मा में, लय करना है। केवल ज्ञानस्वरूप वाले क्षेत्रज्ञ के अविनाशी भाव को जानकर, अद्वैत-भावना से जली हुई लकड़ी वाली वह्नि की भाँति परमात्मा और निर्विकार ब्रह्म में लीन हो जाना चाहिए। ४२६

## अध्याय—१३

[कं.] हे अनघ ! इस प्रकार वनप्रस्थ बनकर, धर्मों को नियमानुसार करते हुए जिएँ तो, संन्यासी बनने और उसके बाद मुक्त-संग होने योग्य बन सकता है। ४२७ [व.] इस प्रकार वानप्रस्थाश्रम बिताकर, संन्यासी बनकर, देहमात्रावशिष्ट, सर्वभूतनिरपेक्ष, भिक्षु, निराश्रित, आत्माराम, सर्वभूतों को समान दृष्टि से देखनेवाला, शांत, समचित्त, नारायण-परायण बनकर, कौपीन रूपी आच्छादनमात्र वस्त्र धारण कर, दंड आदि का विसर्जन कर, जो शास्त्र आत्मपर नहीं हैं, उनका भी वर्जन करके, ग्रह, नक्षत्र आदि विद्याओं का अभ्यास न कर, भेद और विवाद बने हुए तर्कों का वितर्क न करके, किसी पर पक्षपात न दिखाकर, शिष्यों को ग्रंथों को वंचनायुक्त पाठ न पढ़ाते हुए, कई विद्याओं से न जीकर (पेट न भरकर), मत्तक (मादक द्रव्य) आदि व्यापारों में उल्लसित न होकर, कई

युपन्यसिपक, बहुविद्यल जीविंपक, मत्तादि व्यापारंबुल नुल्लसिल्लक, पॆषकुदिनंबुलॊक्कचॊड वसियिंपक, याॡर नॊक्कॊक्क रात्रि निलुचुचु, गार्यकारण व्यतिरिक्तंबयिन परमात्मयंदु विश्वंबु दर्शिचुचु, सदसन्मयं-बैन विश्वंबु नंदु बरब्रह्ममैन यात्म नवलोकिचुचु, जागरण स्वप्न संधि समयंबुल नात्मनिरीक्षणंबु सेयुचु, नात्मकु बंध मोक्षणंबुलु मायामात्रंबुल गानि, वस्तु प्रकारंबुन लेवनियुनु, देहंबुनकु जीवितंबु ध्रुवंबु गादनियुनु, मृत्युव ध्रुवंबनियुनु, नरुंगुचु, भूतदेहंबुल संभवनाशंबुलकु मूलंबैन कालंबु ब्रतीक्षिचुचु, निव्विधंबुन ज्ञानोत्पत्ति पर्यंतंबु संचरिंचि, यटमीद विज्ञान-विशेषंबु संभविंचिन बरमहंसुंडै, दंडादि चिह्नंबुलु धरियिंचि यॊंडॆ धरियिंपक यॊंडॆ, बहिरंग व्यक्तचिह्नुंडु गाक, यंतरंगव्यक्त मैन यात्मानु-संधानंबु गलिगि, मनीषियै, ब्रह्मानुसंधानभावंबुन मनुष्युलकुं दन वलन नुन्मत्तबाल मूकुल तॆरगु जूपुचुंडवलयु ॥ 428 ॥

प्रह्लादाजगर संवादमु

कं. मुनिवल्लभु डजगरुडनु, सुनयुंडु हिरण्यकशिपु सूनुंडुनु मु-
ग्नॊनरिंचिन संवादमु, विनु मी यर्थंबु नंदु वॆलयु नरेंद्रा ! ॥ 429 ॥

---

दिन एक ही प्रदेश में न रहकर, प्रत्येक गाँव में एक-एक रात रहते हुए, कार्य और कारण से परे परमात्मा में विश्व का संदर्शन करते हुए, सत् और असत् से भरित विश्व में परब्रह्म बने हुए आत्मा को देखते हुए, जागरण, स्वप्न और [दोनों की] संधि के समय पर आत्मनिरीक्षण करते हुए, ऐसा जानना चाहिए कि आत्मा के लिए बंधन, मोक्षण सिर्फ़ माया मात्र है, बल्कि वस्तु के अनुसार नहीं हैं; देह के लिए जीवन ध्रुव नहीं है, बल्कि मृत्यु ध्रुव है। भूतों और देहों के संभव और नाश के मूल काल की प्रतीक्षा करते हुए, इस प्रकार ज्ञानोत्पत्तिपर्यंत संचरण कर, उसके बाद विज्ञान-विशेष के संभव से परमहंस बनकर, दंड आदि चिह्नों को धारण कर या न कर; बहिरंगव्यक्त चिह्न वाला न बनकर, अंतरंगव्यक्त आत्मा-नुसंधान से मुक्त होकर, मनीषी होकर, बाह्यानुसंधान के भाव से अन्य मानवों को अपनी उन्मत्त, बालक और गूँगों के विधान को दिखाना चाहिए। (लोग ऐसा समझें कि यह उन्मत्त अथवा बालक अथवा मूक है।) ४२८

प्रह्लाद-अजगर का संवाद

[कं.] हे नरेंद्र ! इसी अर्थ से विलसित एक संवाद को सुनो, जिसे अजगर नामक सुनय (नीतिवान) मुनिवल्लभ और हिरण्यकशिपु के सून (पुत्र)

व. तॉल्लि भगवत्प्रियुंडैन प्रह्लादुंडु कतिपयामात्य सहितुंडै, लोक तत्त्वंबु नॅरिगॅडि कोरकु लोकंबुल संचरिपुचु, नॊक्कनाडु कावेरी तीरंबुन सह्यपर्वततटंबुन धूळि धूसरितंबुलैन करचरणाद्यवयवंबुलतोड गूढंबैन निर्मलतेजंबुलो गर्माकार वचोलिंग वर्णाश्रमादुल नॅव्वरिकि नॅरुंगवडक, नेल निद्रिचुचु, नजगर व्रतधरुंडैन मुनि गनि, डायंजनि, विधि वत्प्रकारंबुन नर्चिचि, मुनिचरणंबुलकु शिरंबु मोपि, यतनि चरित्रंबुलु दॅलिय निच्चगिचि, यिट्लनियॆ ॥ 430 ॥

सी. भूमि नुद्योगियै भोगियै युंडॆडि नरुनि कैवडि मुनिनाथ ! नीवु
घनशरीरमु दाल्चि कदलवु चित्रमुद्यमयुक्तुनकु गानि धनमु लेदु
धनवंतुनकु गानि तगु भोगमुलु लेवु भोगिकि गानि संपूर्णमैन
तनुवु लेदुद्योग धन भोगमुलु लेक नेल नूरक पडि निद्रवोवु

आ. नीकु नॆट्लु गलिगॆ निरुपमदेहंबु ?
समुड वार्युडवु विशारदुडवु
बुद्धिनिधिवि जनुल वॊगडवु दॆगडवु
निद्र प्रतिदिनंबु निलुपनेल ? ॥ 431 ॥

व. अनि यिट्लु प्रह्लादुंडडिगिन, विकसितमुखुंडै मुनींद्रुंडु तदीय मधुरालाप

---

[प्रह्लाद] ने किया था। ४२९ [व.] पूर्व में भगवत्प्रिय प्रह्लाद कतिपय (कुछ) अमात्यों के साथ लोक-तत्त्व को जानने के लिए लोकों में संचार करने गया। एक दिन कावेरी के तट पर, सह्यपर्वत के पास, धूलि से भरे हुए कर, चरण आदि अंगों से, गूढ़ और निर्मल तेज वाले, एक मुनि को उसने देखा। वह कर्म, आकार, वचन, लिंग, वर्ण और आश्रमों से किसी को दिखाई नही देता था। वह धरती पर सोता हुआ, अजगर व्रतधारी था। प्रह्लाद ने उसके पास जाकर, विधि के अनुसार उसकी अर्चना करके, मुनि के चरणों पर अपना सिर रखा। उसके चरित्र को जानने की इच्छा से उसने ऐसा कहा। ४३० [सी.] हे मुनिनाथ! भूमि पर उद्योगी और भोगी बनकर, रहनेवाले नर के समान तुम घन-शरीर धारण कर, हिलते नहीं हो। जो उद्यमयुक्त (प्रयत्नशील) होता है, उसी को धन मिलेगा। धनवान के लिए ही उचित [सुख] भोग मिलते हैं। भोगी को ही संपूर्ण देह होगी। (सुख भोगने के लिए ही वह देह धारण करता है।) उद्योग, धन, भोग —इन सबके बिना यों ही भूमि पर पड़कर सोनेवाले तुमको [इस तरह की] निरुपम देह कैसे प्राप्त हुई? [आ.] समभाव से रहनेवाले, आर्य (श्रेष्ठ), [सकल कलाओं में] विशारद, बुद्धिनिधि हो। लोगों की प्रशंसा या निंदा नहीं करते हो। [ऐसे गुणवाले तुम] प्रतिदिन [ऐसे] सोते क्यों पड़े रहते हो? ४३१

सुधारस प्रवाहंबुलु कर्णंबुल बरिपूर्णंबुलैन नतनि नवलोकिंचि यिट्लनियें ।। 432 ।।

सी. आंतरंगिकदृष्टि नंतयु नेरुगुदु वार्यसम्मतुडवो वसुरवर्य !
विश्वजंतुवुल प्रवृत्ति लक्षणमुलु नी वेरुंगनिवि लेवु
भगवंतुडगु हरि बायक नी मनोवीथि राजिल्लुचु वेलुगुरेनि
क्रममुन बहिरंधकारंबु बरिमार्चु परम सात्त्विकुडवु भद्रबुद्धि-

आ. वैन नीवु मन्नु नडिगेदु गावुन
विन्न धर्ममेल्ल विस्तरिंतु
निन्नु जूड गलिगे नीतोडि माटल
नात्मशुद्धि गलिगे ननघचरित ! ।। 433 ।।

व. विनुमु ! प्रवाहकारिणियै विषयंबुल चेतं वूरिपरानि तृष्णचेतं बडि, कर्मंबुल बरिभ्राम्यमाणुंडनैन नेनु नानाविध योनुलंदु बवेसिपुचु वेडलुचु, नेट्टकेलकु मनुष्यदेहंबु धरियिंचि, यंदु धर्मंबुन स्वर्गद्वारंबुन, नधर्मंबुन शुनक सूकरादि तिर्यग्जंतु योनि द्वारंबुलनु नोंदि, क्रम्मर मनुष्युंडै पुट्टवलयु ननि विवेकिंचि, सुखरक्षण दुःखमोक्षणंबुल कोरकु धर्मंबुलु सेयु दंपतुल व्यवहारंबु गनि, सर्वक्रियानिवृत्ति गलिगिन जीवुंडु स्वतंत्रुंडै

---

[व.] ऐसा कह प्रह्लाद के पूछने पर विकसितमुख वाला बनकर, मुनींद्र ने उसके (प्रह्लाद के) मधुरालाप रूपी सुधारस-प्रवाह से अपने कानों के भर जाने पर, उसको देखकर यों कहा। ४३२ [सी.] हे अनघ-चरित्र (पुण्यचरित) वाले ! हे असुरवर्य ! [तुम] आंतरंगिक दृष्टि से सब जानते हो। आर्यसम्मत हो। (असुर होने पर भी, देवता भी तुम्हें मानते हैं।) विश्व के जंतुओं (प्राणियों) की प्रवृत्ति के लक्षणों में कुछ भी ऐसा नहीं है जो तुम नहीं जानते। भगवान हरि निरंतर तुम्हारी मनोवीथि में प्रकाशित होकर, सूर्य के समान बाह्य-अंधकार को दूर करता रहता है। [आ.] तुम परम-सात्त्विक और भद्र बुद्धि वाले हो। फिर भी मुझे पूछ रहे हो। इसलिए जो धर्म मैंने सुना, वह सब विशद रूप से बताऊँगा। [आज] तुम्हें देख सका। तुमसे बातें करने से आत्मा शुद्ध हो गयी। ४३३ [व.] सुनो। प्रवाहकारिणी और विषयों से पूरी (तृप्त) न होनेवाली तृष्णा में फँसकर कर्मों के कारण परिभ्रमण करते हुए, अनेक प्रकार की योनियों में प्रवेश करते, बाहर निकलते, अन्त में मनुष्य की देह धारण कर, उसमें धर्म के कारण स्वर्गद्वार को और अधर्म के कारण शुनक, सूकर आदि तिर्यक् जन्तुओं की योनिओं के द्वारों को प्राप्त किया। फिर ऐसा विवेक किया (सोचा) कि मनुष्य का जन्म लूं, और सुख का रक्षण और दुःख के मोक्षण (विमुक्ति) के लिए धर्म

प्रकाशिचुननि निर्णयिंचि, भोगंबुलु मनोरथजात मात्रंबुलु गानि शाश्वतंबुलु गावनि परीक्षिंचि, निवृत्तुंडनै युद्योगंबु लेक निद्रिंचुचु, प्रारब्धभोगंबु लनुभविंपुचु नुंडुडु। इव्विधंबुन दनकु सुखरूपंबैन पुरुषार्थंबु दनयंदु गलुगुट यॆरुंगक, पुरुषुंडु शैवालजाल निरुद्धंबुलैन शुद्धजलंबुल विडिचि, यंडमावुल जलंबु गनि पारॆडि मूढुनि तॆरंगुन सत्यंबु गानि द्वैतंबु जॊच्चि, घोर संसारचक्र परिभ्रांतुंडै युंडु। देवतंत्रंबु-लैन देहादुलचेत, नात्मकु सुखंबुनु, दुःखनाशंबुनु गोरुचु, निरीशुंडैन वानि प्रारंभंबुलु निष्फलंबुलगु। अदियुनुं गाक, मर्त्युनकु धनंबु प्राप्तंबैन, नदि दुःखकरंबु गानि सुखकरंबु गादु। लोभवंतुलैन धनवंतुलु निद्राहारंबुलु लेक राज चोर याचक शत्रु मित्रादि सर्वस्थलंबुलंबुनु शंकिंपुचु दान भोगंबुल मरचि युंडुदुरु। प्राणार्थवंतुलकु भयंबु नित्यंबु। शोकमोह भयक्रोध राग श्रमादुलु वांछामूलंबुलु। वांछ लेकुंडवलयु ॥434॥

म. सरघल् गूर्चिन तेनॆ मानवुलकुन् संप्राप्तमैनट्लु लो-
 भरतुल् गूर्चिन वित्तमुल् परुलकुं बापिंचु बाप्ताशियै

[का आचरण] करनेवाले दंपतियों के व्यवहार को देखकर, यह निश्चय किया कि सर्वक्रियाओं की निवृत्ति से युक्त जीव ही स्वतन्त्र होकर प्रकाशित होगा। यह परीक्षा करके देख लिया कि भोगमात्र मनोरथ-जात (-समूह) ही शाश्वत नहीं है! इसलिए निवृत्ति से उद्योग के बिना सोते हुए, प्रारब्ध के भोगों का भोग (अनुभव) करते हुए रहता हूँ। इस प्रकार अपने लिए सुख रूपी पुरुषार्थ के अपने में ही होना जानकर, पुरुष शैवालजाल से निरुद्ध (रोके गए) शुद्धजलों को छोड़कर, मृगतृष्णाओं को जल मानकर भोगनेवाले मूढ़ के समान, जो सत्य नहीं है ·उस द्वैत में प्रवेश कर, घोर संसार-चक्र में भ्रांत बना रहता है। दैवतंत्र रूपी देह आदियों से, आत्मा के लिए सुख और दुःख-नाश को चाहते हुए, जो निरीश (नास्तिक) बना रहता है, उसके प्रयत्न निष्फल होंगे। यही नहीं, यदि मनुष्य को धन प्राप्त होता है तो वह दुःखकर ही होता है, सुखकर नहीं। लोभी [जन] धनवान [होकर भी] निद्रा और आहार को छोड़कर, राजा, चोर, याचक, शत्रु, मित्र आदि सर्व-स्थलों पर (सभी जगह) शंका करते हुए, उसके कारण भोगों को भूलकर रहते हैं। जो प्राण और धन से युक्त रहते हैं, उनके लिए तो भय नित्य बना रहता है। शोक, मोह, भय, क्रोध, राग और श्रम आदि वांछा के मूल हैं। इसलिए वांछा के बिना रहना चाहिए। ४३४ [म.] जिस प्रकार मधु-मक्खियों द्वारा एकत्रित मधु मानव को प्राप्त होता है, उसी प्रकार लोभियों से संचित धन अन्यों को प्राप्त होता है। प्राप्ताशी (जो प्राप्त हो, उसे खानेवाला) महासर्प, न चलते हुए भी लंबे शरीर वाला होकर, बहुत काल तक जिन्दा

तिरुगंबोनि महोरगंबु ब्रतुकुन् दीर्घागमै युंडिनन्
जिरकालंबुनु वानि वर्तनमुलं जिंतिचि येकांतिनै ॥ 435 ॥

कं. अजगरमु जुंटीगयु, निजगुरुवुलुगा दलंचि निश्चिंतुंडनै
विजनस्थलि गर्मंबुल, गजिबिजि लेकुन्नवाड गौरववृत्तिन् ॥ 436 ॥

सो. अजिन वल्कल दुकूलांबरंबुलु गट्टियैन गट्टकयैन नलरुचुंदु
नांदोळिका रथ हय नागमुल नेक्कियैन नेक्ककयैन नरुगुचुंदु
गर्पूरचंदन कस्तूरिका लेपमैन भूरजमैन नलदिकोंदु
भर्म शय्यननैन वर्ण शिलातृण भस्मंबुलंदैन बंडुचुनुंदु

आ. मानयुक्तमैन मानहीनंबैन, दीयनैन मिगुल दिक्तमैन
गुडुतु सगुणमैन गुणवर्जितंबैन, नल्पमैन जाल नधिकमैन ॥ 437 ॥

कं. लेदनि येव्वरि नडुगनु, रादनि चिंतिप बरुलु रप्पिचिनचो
गादनि येंदियु माननु, खेदमु मोदमुनु लेक क्रीडितु मदिन् ॥ 438 ॥

कं. निंदिप बरुल नेन्नडु, वंदिप ननेक पीड वच्चिन मोद ना-
क्रंदिप विभवमुल का,-नंदिप ब्रकामवर्तनंबुन नधिपा ! ॥ 439 ॥

व. इट्लु कोरिक लेक योक्क समयंबुन दिगंबरुंडनै पिशाचंबु चंदंबुन नुंडुचु,

रहेगा। इन दोनों का व्यवहार (आचरण) देखकर, मैंने उनको गुरु मान लिया और यहाँ एकांत मे पड़ा हुआ हूँ। ४३५ [कं.] अजगर और मधुप को अपने गुरु मानकर, निश्चिन्त होकर, यहाँ निर्जन स्थल में कर्मों की गड़बड़ से दूर, गौरववृत्ति से हूँ। ४३६ [सी.] अजिन, वल्कल, दुकूल के अंबर (रेशमी कपड़े) पहनकर या न पहनकर भी संतोष के साथ रहता हूँ। पालकी, रथ, हय और हाथी चढ़कर या न चढ़कर भी फिरता रहता हूँ। कपूर, चंदन, कस्तूरि आदि का लेपन हो या भूमि की धूलि हो शरीर पर लेपन करता हूँ। भर्म-(स्वर्ण) शय्या हो या पर्ण, शिला या भस्म हो, [उस पर] सोता हूँ। [आ.] मानयुक्त या मानहीन; मधुर हो या तिक्त; सुगुण हो या गुणवर्जित; अल्प हो या बहुत अधिक, कुछ भी हो, खाता हूँ। ४३७ [कं.] [मेरे पास कुछ भी] नही है, ऐसा कह किसी से [कुछ] नहीं माँगता। न आने (मिलने) पर चिंता न करता। दूसरे बुलावें तो किसी भी बात को इनकार नही करता। दिल में खेद या मोद के भाव से रहित होकर, क्रीड़ा करता (आनंद से रहता) हूँ। ४३८ [कं.] हे अधिप ! कभी दूसरों की निंदा या प्रशंसा नहीं करता। अनेक पीड़ाओं के आने पर भी मन में आक्रंदन नहीं करता। प्रकामवर्तन से वैभव के कारण आनन्द नहीं करता। ४३९ [व.] इस प्रकार इच्छा-रहित होकर, कभी दिगंबर बन, पिशाच के समान रहते हुए, कई दिन अजगर की तरह

बधकुदिनंबुलंगोलॆ वॆनुबामु वर्तनंबु गॆकॊनि, निमीलित लोचनत्वंबुन नेकांतभावंबु विष्णुनियंदु जेर्चि, विकल्पंबु भेदग्राहक चित्त वृत्तुलनु, जित्तंबु नर्थरूप परिभ्रमंबु गल मनंबुनंबुनु, मनंबु नहंकारंबु नंदुनु, नहंकारंबुनु माययंदुनु, माय नात्मानुभूतियंदुनु, लयंबु नॊंदिंचि, सत्यंबु दर्शिंचि, विरक्ति नॊंदि, स्वानुभवंबुन नात्मस्थितुंडनै युंदुनु। नीवु भगवत्परुंडवु गावुन रहस्यंबन परमहंसधर्मंबु स्वानुभव गोचरंबन तॆरंगुन नीकुं हृदयगोचरं बगुनट्लु चॆप्पिति। अनिन विनि ॥ 440 ॥

कं. घनु नजगर मुनिवल्लभु, दनुजेंद्रुडु पूजचेसि तग वीड्कॊनि नॆ-
म्मनमुन संतोषिंपुचु, जनियॆन् निजगेहमुनकु शशिकुलतिलका ! ॥441॥

## अध्यायमु—१४

व. अनिन युधिष्ठिरुंडिट्लनियॆ ॥ 442 ॥

कं. ननुबोटि जडगृहस्थुडु, मुनिवल्लभ ! यिट्टि पदवि मोदंबुन ने
यनुवुन जॆंदुनु वेगमु, विनिपिंपुमु नेडु नाकु विज्ञाननिधी ! ॥ 443 ॥

व. अनिन नारदुंडिट्लनियॆ। गृहस्थुंडैनवाडु वासुदेवार्पणंबुगा गृहोचितक्रियलनुसंधिंचुचु, महामुनुल सेविंचि, वारलवलन नारायण

---

रहते हुए, निमीलित नेत्रों से एकांत भाव से विष्णु पर चित्त लग्न कर, विकल्पक को भेदग्राहक चित्तवृत्तियों में, चित्त को अर्थ-रूप परिभ्रम करने वाले मन में, मन को अहंकार में, अहंकार को माया में, माया को आत्मानुभूति में लय करके, सत्य का दर्शन करते हुए, विरक्त होकर स्वानुभव से आत्म-स्थित बनकर रहता हूँ। तुम भगवत्पर हो। इसलिए अति रहस्य और परम-हंस-धर्म को जिस प्रकार मेरा अनुभव है, उस रीति से, तुम्हें हृदय-गोचर हो, ऐसा बताया। [ऐसा] कहने पर, सुनकर, ४४० [कं.] शशिकुल के तिलक ! दनुजेंद्र ने [उस] महान् और अजगर-वल्लभ की पूजा कर, समुचित रूप से विदाई लेकर, मन मे बहुत ही आनन्द के साथ अपने घर चला गया। ४४१

## अध्याय—१४

[व.] [ऐसा] कहने पर युधिष्ठिर यों बोला। ४४२ [कं.] हे मुनिवल्लभ ! हे विज्ञाननिधी ! मेरे जैसे जड़गृहस्थ इस प्रकार की पदवी को, मोद से किस प्रकार से, पायेंगे ? [इसे] आज जल्दी सुनाओ। ४४३ [व.] [ऐसा] कहने पर नारद यों बोला। जो गृहस्थ होता है, उसको गृहोचित कार्यों का अनुसंधान वासुदेवार्पण [की बुद्धि से] करते हुए,

दिव्यावतार कथाश्रवणंबु सेयुचु, नय्यै विहितकालंबुल शांत जनुलं गूडियंडुचु, बुत्र मित्र कळत्रादि संगंबुलु गललवंटिवनि यॅरुंगुचु, लोपल नासक्ति लेक सक्तुनि कैवडि वॅलुपल बुरुषकारंबु लोनर्चुचु, दगुलंबुलु लेक, वित्तंबुलिच्चि जनक सुत सोदर सखि ज्ञाति जनुल चित्तंबुलु सम्मदायत्तंबुलु गाविंचुचु, धन धान्य निधान दैव लब्धंबुल वलन नभिमानंबु मानि यनुभविंचुचु, गृहक्षेत्रंबुल जौच्चि युदरपूरणमात्रंबु दॊंगिलिंचिनवानि दंडिपक, भुजग मृग मूषक मर्कटमक्षिका खरोष्ट्रंबुल हिंसिपक पुत्रुल भंगि नीक्षिंचुचु, देश काल दैवंबुल कॊलदिनि धर्मार्थ कामंबुल ब्रवर्तिंचुचु, शुनक पतित चंडालादुलकैन भोज्यपदार्थंबुलु तगिन भंगि निच्चुचु, निजवृत्ति लब्धंबुलगु नशनादुलचेत देव ऋषि पितृ भूत मानवुल संतर्पिंचुचु, बंचमहायज्ञावशेषंबुल नंतर्यामिपुरुषयजनंबु, नात्मजीवनोपायंबुनु समर्थिंपुचु नुंडवलयु ॥ 444 ॥

आ. जनक गुरुलनैन जंपु नर्थमुनकै
प्राणमैन विडुचु भार्य कॊरकु
नट्टि भार्य बुरुषु डतिथि शुश्रूष से-
यिंचि गॅलुचु नजितु नीशुनैन ॥ 445 ॥

महामुनियों की सेवा करते, उनके द्वारा नारायण के दिव्यावतारों का कथाश्रवण करते हुए, उन-उन विहित समयों में शांतजनों (साधुजनों) के साथ मिलकर रहते हुए, पुत्र, मित्र, भार्या आदि के संगम (सांगत्य) को स्वप्न मानकर, जानते हुए भीतर (दिल में) आसक्ति न रखते हुए, किन्तु बाहर से आसक्ति दिखाते हुए, पुरुषकार करते रहते हुए, आसक्ति-रहित होकर, धन देकर पिता, सुत, सहोदर, सखीजन, ज्ञाति आदि जनों के चित्तों को सम्मदायत्त (प्रसन्न) करते हुए, धन, धान्य, निधान (संपति) आदि देवलब्धों पर अभिमान (आसक्ति) छोड़कर, उनका अनुभव (उपयोग) करते हुए, गृह और क्षेत्रों में प्रवेशकर, उदरपूरण के लिए चुरानेवाले को दंड न देते हुए, भुजंग, मृग, मूषक, मर्कट, मक्षिका, खरोष्ट्र (ऊँट) आदि की हिंसा न करके, [अपने] पुत्र के समान उनको देखते हुए, देश, काल और दैव के अनुसार धर्म, अर्थ और काम के भावों से आचरण करते हुए, शुनक, पतित [लोग], चंडाल को भी भोजन-पदार्थ सही रीति से देते हुए, अपनी वृत्ति से जो अशन आदि प्राप्त होते हैं, उनसे देव, ऋषि, पितृ, भूत और मानवों को संतृप्त करते हुए, पंचमहायज्ञ-अवशेषों से अन्तर्यामी पुरुष का यजन और आत्मा [अपने] जीवनोपायों का समर्थन करते हुए रहना चाहिए। ४४४ [आ.] अर्थ (धन) के लिए पुरुष जनक, गुरु की भी हत्या कर सकता है। पत्नी के लिए प्राण तक छोड़ देता है। ऐसी पत्नी से अतिथियों की शुश्रूषा करवाकर, वही पुरुष

आ. परमु डीश्वरुंडु ब्राह्मणमुखमुन, नाहरिंचि तुष्टुडैन भंगि-
नग्नि मुखमुनंदु हव्यरासुलु गोनि, -यैन तुष्टिनोंद डनघचरित्र ! ॥446॥

व. कावुन गृहस्थुंडु ब्राह्मणुलंदुनु, देवतलंदुनु, मर्त्य पशुप्रमुख जातुलंदुनु, नंतर्यामियु, ब्राह्मणाननुंडनुनेन क्षेत्रज्ञुनंदु नय्यं कोरिकल समर्पिंचि, संतर्पणंबु सेयवलयु। भाद्रपदंबुन, गृष्णपक्षबुनंदुनु, दक्षिणोत्तरायणंबु लंदुनु, रेयिंबगलु सममैन कालंबुलंदुनु, व्यतीपातंबुलंदुनु, दिनक्षयंबुलंबुनु, सूर्यचंद्रग्रहणंबुलंदुनु, श्रावणद्वादशि यंदुनु, वैशाखशुक्ल तृतीययंबुनु, कार्तिक शुक्ल नवमि यंदुनु, हेमंतशिशिरंबुलोन नालुगष्टकलंदुनु, माघशुक्ल सप्तमियंदुनु, मासनक्षत्रंबुलतोडं पुन्नमुलदुनु, द्वादशितोडं गूडिन युत्तरात्रय श्रवणानूराधलंदुनु, नुत्तरात्रयसहितलैन येकादशीति थुलंबुनु, जन्मनक्षत्रयुक्तदिवसंबुलंदुनु, मरियु प्रशस्त कालंबुलंदुनु, जननी जनक बंधुजनुलकु श्राद्धंबुलुनु, जप होम स्नानव्रतंबुलुनु, देव ब्राह्मण समाराधनंबुलुनु, नाचरिंपवलयु। भार्यकु वुंसवनादिकंबुनु, नपत्यंबुनकु जातकर्मादिकंबुनु, तनकु यज्ञदीक्षादिकंबुनु प्रेतजनुलकु दहनादिकंबुनु, मृतदिवसंबुन सांवत्सरीकंबुनु जरुपवलयु ॥ 447 ॥

---

अजित (जिसको कभी जीत नहीं सकते) ईश्वर को भी जीत सकता है। ४४५ [आ.] हे अनघचरितवाले ! परमात्मा और ईश्वर ब्राह्मण के मुख से आहारग्रहण कर जैसे तुष्ट (संतृप्त) होता है, वैसा अग्नि के मुख से हव्यराशियों को स्वीकार करके भी, तृप्त नहीं बनता है। ४४६ [व.] इसलिए गृहस्थ को ब्राह्मण, देवता, मर्त्य, पशु आदि जातियों में अंतर्यामी और ब्राह्मणानन (जिसका मुख ब्राह्मण है) माने गये क्षेत्रज्ञ के प्रति उन-उन इच्छाओं को समर्पित करके, संतर्पण करना, सतुष्ट बनाना चाहिए। भाद्रपद [महीने] के कृष्णपक्ष में, दक्षिण और उत्तरायणों में, ऐसे समय मे जब रात और दिन सम होते हैं, व्यतीपातो में, संध्याकालों में, सूर्य और चन्द्र के ग्रहण के दिनों मे, श्रवणद्वादशी में, वैशाख शुक्ल तृतीया में, कार्तिक शुक्ल नवमी में, हेमन्त और शिशिर के चार अष्टकों में, माघ के शुक्ल सप्तमी में, मास-नक्षत्र सहित पूर्णिमा के दिनों में, द्वादशीसहित उत्तरात्रय (उत्तरा, उत्तराभाद्र, उत्तराषाढा), श्रवण, अनुराधा (नक्षत्रों के समय) में, उत्तरात्रयसहित एकादशियों में, जन्म नक्षत्रयुक्त दिनों में और प्रशस्त कालों में, माता, पिता और बंधुजनों को श्राद्ध और जप, होम, स्नान, व्रत और देव-ब्राह्मणों का समाराधन करना चाहिए। पत्नी को पुंसवनादिक, संतान को जातकर्म आदि, अपने लिए यज्ञदीक्षा आदि, प्रेतजनों को दहन आदि, मृति के दिन में सांवत्सरीक (बरसी) आदि करना चाहिए। ४४७ [म.] सुनो। हे भूवर ! जिन

म. विनुमे देशमुलं दयागुण तपो विद्यान्वितंबैन वि-
प्रनिकायंबु वसिंचु ने स्थलमुलन् भागीरथी मुख्य वा-
हिनुलुंडुन् हरिपूजलेय्येडल भूयिष्ट प्रकारंबुलन्
दनरुन् भूवर ! यिट्टि चोट्ल दगुन् धर्मंबुलं जेयगन् ।। 448 ।।

कं. हरियंदु जगमुलुंडुनु, हरिरूपमु साधुपात्रमंदुंडु शिवं-
कर मगु पात्रमु गलिगिन, नरयग नदि पुण्यक्षेत्र मनघचरित्रा ! ।।449।।

व. मरियु कुरुक्षेत्रंबुनु, गयाशीर्षंबुनु, प्रयागंबुनु, पुलहाश्रमंबुनु नैमिशंबुनु, फल्गुनंबुनु, सेतुवुनु, प्रभासंबुनु, कुशस्थलियुनु, वारणासियु, मथुरापुरियुनु, पंपाबिंदुसरोवरंबुलुनु, नारायणाश्रमंबुनु, सीतारामाश्रमंबुनु, महेंद्र मलयादुलन कुलाचलंबुलुनु, हरिप्रतिमार्चन प्रदेशंबुलुनु, हरिसेवापर-परमभागवतुलु वसिंचंडु पुण्यक्षेत्रंबुलुनु, शुभकामुंडैन वाडु सेविप वलयु ।। 450 ।।

आ. भूवरेंद्र ! यिट्टि पुण्यप्रदेशंबु, -लंदु नरुडु सेयुनट्टि धर्म-
मल्पमैन नदि सहस्रगुणाधिक, फलमु निच्चु हरि कृपावशमुन ।। 451 ।।

व. विनुमु । चराचरंबैन विश्वमंतयु विष्णुमयंबगुटं जेसि, पात्रनिर्णयनिपुणु-लैन विद्वांसुलु नारायणुंडु मुख्य पात्रमनि पलुकुदुरु । देवऋषुलुनु, ब्रह्मपुत्रुलैन सनकादुलुनु नुंड, भवदीय राजसूयंबुन नग्रपूजकु हरि सम्मतुं

देशों में दयागुण, तप, विद्या से अन्वित विप्रनिकाय (ब्राह्मणसमूह) रहता है, जिन स्थलों में भागीरथी आदि नदियाँ हैं, जहाँ हरि की पूजाएँ सर्वत्र अधिक प्रचुरता से विलसित होती हैं, ऐसे प्रदेशों में धर्म [कार्य] करना उचित है । ४४८ [कं.] हे अनघचरित वाले ! हरि में जग हैं । हरि का रूप साधु-पात्र (-व्यक्ति) में रहता है । शिवंकर (मंगलप्रद) पात्र जहाँ होता है, सोचने पर वही पुण्यदेश बनता है । ४४९ [व.] और शुभों की कामना करनेवाले व्यक्ति को कुरुक्षेत्र, गयाशीर्ष, प्रयाग, पुलहाश्रम, नैमिष, फल्गुन, सेतु (रामेश्वर), प्रभासतीर्थ, कुशस्थली, वाराणसी, मथुरा-पुरी, पंपा और बिंदु सरोवर और नारायणाश्रम, सीतारामाश्रम और महेंद्र, मलय आदि कुलपर्वत, हरि की प्रतिमार्चन होनेवाले प्रदेश, हरि-सेवा में रत परमभागवत जहाँ रहते हैं, ऐसे पुण्यक्षेत्र —इन सबका सेवन (संदर्शन) करना चाहिए । ४५० [आ.] भूवरेंद्र ! ऐसे पुण्यप्रदेशों में नर के द्वारा किया जानेवाला धर्मकार्य अल्प होने पर भी, हरि के कृपावश से वह (धर्मकार्य) सहस्रगुणाधिक फल देता है । ४५१ [व.] सुनो । चराचर समस्त के विष्णुमय होने से पात्रनिर्णय में निपुण विद्वान् कहते हैं कि नारायण मुख्य पात्र है । देव, ऋषि, ब्रह्मपुत्र, सनक आदि के रहते हुए भी, तुम्हारे राजसूय में अग्रपूजा के लिए हरि स्वीकृत हुआ । अनेक जंतुओं के समूह

इय्यॆ। अनेक जंतुसंघात संकीर्णंबैन ब्रह्मांड पादपंबुनकु नारायणुंडु मूलंबु। दन्निमित्तंबुन नारायण संतर्पणंबु सकलजंतु संतर्पण मनि यॆरुंगुमु। ऋषि नर तिर्यगमर शरीरंबुलु पुरंबुलु। वानियंदु दारतम्यंबुलतोड जीवरूपंबुन भगवंतुडैन हरि वर्तिचुटंजेसि, पुरुषुंडन प्रसिद्धुंडय्यॆ। अंदु दिर्यग्जातुल कंटॆ नधिकत्वंबु बुरुषुनियंदु विलसिल्लटं जेसि पुरुषुंडु पात्रंबु। पुरुषुललोन हरि तनुवैन वेदंबु नुद्धरिपुचु संतोष विद्या तपोगरिष्ठुंडैन ब्राह्मणुंडु पात्रंबु। ब्राह्मणुललोन नात्मज्ञान परिपूर्णुंडैन योगि मुख्यपात्रंबनि पलुकुदुरु। परस्पर पात्रंबुलकु सहिंपनि मनुष्युलकु बूजनार्थंबु त्रेतायुगंबु नंदु हरिप्रतिमलु गल्पिपबडियॆ। कोंदरु प्रतिमार्चनंबु जेयुदुरु। पुरुषद्वेषुलैन वारलकु नट्टि प्रतिमार्चनंबु मुख्यार्थप्रदंबु गादु। मंदाधिकारुलकु ब्रतिमार्चनंबु पुरुषार्थप्रदं बगुनु ॥ 452 ॥

आ. अखिल लोकमुलकु हरि दैवतमु सूड, हरिकि दैवतमु धरामरुंडु
पदपराग लेशपंक्तिचे द्रैलोक्य, पावनंबु जेयु ब्राह्मणुंडु ॥ 453 ॥

---

से संकीर्ण इस ब्रह्मांड रूपी पादप (वृक्ष) के लिए नारायण मूल है। इस कारण से नारायण-संतर्पण को सकल जंतुओं का संतर्पण जानो। ऋषि, नर, तिर्यक् और अमर के शरीर पुर (निवासस्थान) हैं। उनमें भेदभाव से जीव रूप में भगवान हरि के निवास करने से [वह] 'पुरुष' नाम से प्रसिद्ध हुआ है। उसमें तिर्यग्जातियों से अधिकत्व पुरुष में विलसित होने से, पुरुष पात्र (योग्य) है। पुरुषों में हरि का तनु माने जानेवाले वेद का उद्धार करते हुए, संतोष, विद्या, तप से उत्तम बना हुआ ब्राह्मण-पात्र है। ब्राह्मणों में आत्मज्ञान की परिपूर्णता से जो योगी होता है, वह मुख्य-पात्र है। परस्पर (एक-दूसरे से) पात्रों को सहन नहीं करनेवाले मनुष्यों की पूजा के लिए, त्रेतायुग में हरि की प्रतिमाओं की कल्पना की गई। कुछ लोग प्रतिमा की अर्चना करते हैं। जो पुरुषद्वेषी हैं, उनके लिए प्रतिमार्चना मुख्यार्थप्रद नहीं है। मंदाधिकारियों के लिए प्रतिमार्चना पुरुषार्थ-प्रद होता है। ४५२

[आ.] सब लोकों के लिए हरि ही दैव है। उस हरि का दैव धरामर (ब्राह्मण) है। ब्राह्मण अपने पद-पराग (चरणों की धूलि) के लेशमात्र से त्रैलोक्यों को पावन करता है। ४५३

## अध्यायमु—१५

व. अट्टि ब्राह्मणजनुलंदु गर्मनिष्ठुलु, तपोनिष्ठुलु, वेदशास्त्रनिपुणुलु, ज्ञानयोगनिष्ठुलुनै कोंदरु वर्तितुरु। अंदु ज्ञाननिष्ठुनिकि ननंत फलकामियैन गृहस्थुंडु पितृजनुल नुद्देशिंचि कव्यंबुलुनु, देवतल नुद्देशिंचि, हव्यंबुलुनु, वॅट्टुट मुख्यंबु। दैवकार्यंबुनकु निरुवुरनैन, नोकरिनैन, पितृकार्यंबुनकु मुव्वुरनैन, नोकरिनैन, भोजनंबु सेयिंप वलयु। धनवंतुनकैननु, श्राद्ध विस्तारंबु कर्तव्यंबु गादु। देश काल प्राप्त कंदमूल फलादिकंबैन हरि नैवेद्यंबुन, विधि चोदित प्रकारंबुगा, श्रद्धतोड बात्रंबुनंदु वॅट्टिन यन्नंबु कामदंबै यक्षयफलकारि यगु। धर्मतत्त्ववेदियैनवाडु श्राद्धंबुलंदु मांसप्रदानंबु सेयक, भक्षिंपक, चरिंपवलयु, कंदमूलादि दानंबुन नय्येडि फलंबु, पशुहिंसनंबुन संभविंपदु। प्राणिहिंस सेयक वर्तिंचुटकंटे मिक्किलि धर्मंबु लेदु। यज्ञविदुलैन प्रोडलु निष्कामुलै, बाह्यकर्मंबुलु विडिचि, यात्मज्ञान दीपंबुलंदु गर्ममयंबुलयिन यज्ञंबु लाचरिंतुरु ॥454॥

कं. पशुवुल बोरिगोनि मखमुलु
विशदमुलुग जेयु बुधुनि वीक्षिंचि तमुन्

---

## अध्याय—१५

[व.] ऐसे ब्राह्मणजनों में कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, वेदशास्त्रनिष्ठ, ज्ञानयोगनिष्ठ बनकर कुछ आचरण करते हैं। अनन्त फल की कामना करनेवाले गृहस्थ के लिए पितृजनों को उद्दिष्ट करके ज्ञाननिष्ठ [ब्राह्मण] को कव्य, देवताओं को उद्दिष्ट कर हव्य, समर्पित करना मुख्य [कर्तव्य] है। दैवकार्य के लिए दो आदमियों को, या एक को, पितृकार्य के लिए तीन को या एक को, भोजन कराना चाहिए। धनवान के लिए भी श्राद्ध-विस्तार (बड़े पैमाने पर करना) कर्तव्य नहीं है। देश और काल के अनुसार कंद, मूल, फल आदि भी क्यों न हो, नैवेद्य के रूप में विधि के बताए अनुसार श्रद्धा के साथ पात्र में रखें तो, वही अन्न कामद होकर, अक्षय फलकारी बनता है। जो धर्मतत्त्ववेदी है, उसको श्राद्ध के समय मांस-प्रदान न करके, [मांस का] भक्षण न करके, रहना चाहिए। कंद, मूल आदि के दान से मिलनेवाला फल परहिंसा से नही मिलता है। प्राणि-हिंसा से बिना रहने से बढ़कर अन्य कोई श्रेष्ठ धर्म नही है। यज्ञविद होनेवाले प्रौढ़ (निपुण) निष्काम बनकर, बाह्यकर्मों को छोड़कर, आत्म-ज्ञान रूपी दीपों में कर्ममय यज्ञों का आचरण करते है। ४५४ [कं.] हे नरेंद्र! पुरुषों का वध करके, विशद रूप से यज्ञ करनेवाले बुध (पडित)

विशसनमु जेयुनो यनि
कसिमसि बॆंगटॊंदु भूतगणमु नरेंद्रा ! ॥ 455 ॥

व. अदि गावुन धर्मवेदि यॆनवाडु, प्राप्तंबुलॆन कंदमूलादिकंबुलचेत नित्य नैमित्तिक क्रियल जेयवलयु। निज धर्म बाधकंबॆयिन धर्मंबुनु, परधर्म प्रेरितंबॆन धर्मंबुनु, नाभास धर्मंबुनु, पाषंड धर्मंबुनु, गपट धर्मंबुनु, धर्मज्ञुंडॆन वाडु मानवलयु। नैसर्गिक धर्मंबु दुरितशांति समर्थंबगु। निर्धनुंडु धर्मार्थंबु यात्र सेयुचुनॆन धनंबु गोर वलदु। जीवनोपायंबुनकु निट्टट्टु दिरुगक, कार्पण्यंबु लेक जीविंचुचु, महासर्पंबु तॆरंगुन संतोषंबुन नात्मारामुंडै, यॆद्दियु गोरक वर्तिंचु सुगुणुनकि गल सुखंबु, कामलोभंबुलं दशदिशलं बरिधावनंबु सेयुवानिकि सिद्धिंपदु। पादरक्षलु गलवानिकि कर्कश कंटकादुलवलन भयंबु लेक मॆलंग नलवडु भंगि, गामंबुलवलन निवृत्ति गलवानिकि नॆल्ल कालंबुनु भद्रंबगु। उपस्थकुनु, जिह्वादैन्यंबुनकुनु बुरुषुंडु गृहपालक शुनकंबु कैवडि संचरिंचुचु संतुष्टि लेक चॆडु। संतोषि गानि विप्रुनि विद्या तपो विभव यशंबुलु निरर्थकंबुलु। इंद्रियलोलत्वंबुन ज्ञानंबु नशिंचु। सकल भूलोक भोगंबुलु भोगिंचियु, दिग्विजयंबु सेसियु, बुभुक्षा पिपासवलन कामपारंबुन,

को देखकर, 'हमारा भी कहीं ऐसा ही वध न कर दे', ऐसा सोचकर, भूतगण व्याकुल और भयभीत होते हैं। ४५५ [व.] इसलिए धर्मवेदी को दैव-प्राप्त कंदमूल आदि से नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं को करना चाहिए। निजधर्म में बाधा डालनेवाले धर्म को, परधर्म, प्रेरित धर्म को, आभास धर्म को, पाषंड धर्म को, कपटधर्म को —इन सबको धर्मज्ञ को छोड़ देना चाहिए। नैसर्गिक धर्म दुरितों को शांत करने में समर्थ होगा। निर्धन को धर्मार्थ यात्रा करते हुए भी धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए। जीवनोपाय के लिए यहाँ-वहाँ न घूमकर, कार्पण्य के बिना जीवन-यापन करते हुए, महासर्प के असमान संतोष से आत्माराम बनकर, कुछ भी न चाह कर, जीनेवाले सुगुणात्मा को जो सुख मिलता है, वह [सुख] काम और लोभ के मारे दस दिशाओं में परिधावन करनेवाले (भागनेवाले) को नहीं मिलता है। जैसे पादरक्षाओं (जूतों) को धारण करनेवाले को कर्कश और काँटे आदि से निर्भय रह चलना आता है, वैसे कामों से निवृत्त बनकर, रहनेवालों का सभी कालों में कल्याण होगा। पुरुष उपस्थ, जिह्वादैन्य के लिए गृहपालक (पालतू) शुनक के समान विचरण करते हुए, संतृप्ति के बिना बिगड़ जाता है। जो विप्र संतुष्ट नहीं है, उसकी विद्या, तप, विभव, यश —[सभी] निरर्थक होते हैं। इन्द्रिय के लोलत्व (लोलुपता) से ज्ञान नष्ट होता है। भूलोक के सकल सुख भोगने पर भी, दिग्विजय करके भी, बुभुक्षा और पिपासा (तृष्णाओं) से काम [वासना]

हिंसवलन क्रोधपारंबुनु जेरट दुर्लभंबु। संकल्प वर्जनंबुन गामंबुनु, गामवर्जनंबुन क्रोधंबुनु, नर्थानर्थ दर्शनंबुन लोभंबुनु, नद्वैतानुसंधानंबुनु भयंबुनु, नात्मानात्म विवेकंबुल शोकमोहंबुलुनु, सात्त्विकसेवनंबुन दंभंबुन, मौनंबुन योगांतरायंबुनु, शरीरवांछलेमि हिंसयु, हिताचरणंबुन भूतजंबैन दुःखंबुनु, समाधिबलंबुन दैविकव्यथयुनु, प्राणायामादिकंबुन मन्मथ व्यथयुनु, सात्त्विकाहारंबुल निद्रयु, सत्त्वगुणंबुन रजस्तमंबुलुनु, नुपशमनंबुन सत्त्वंबुनु, गुरुभजनकुशलुंडै जयिंपवलयु ॥ 456 ॥

कं. हरि महिम तनकु जॆप्पॆडि
गुरुवु नरुडनुचु दलचि कुंठित भवितन्
विरुगु पुरुषु श्रम मॆल्लनु
करि शौचमु क्रिय निरर्थकंबगु नधिपा ! ॥ 457 ॥

उ. ई वनजातनेत्रु बरमेशु महात्मु प्रधानपूरुषुन्
देवशरण्यु सज्जनविधेयु ननंतु बुराणयोगि सं-
सेवित पादपद्मु दमचित्तमुल नरुडंचु लोकु लि-
च्छाविधि जूचुचुंडुदुरु सन्मति लेक नरेंद्रचंद्रमा ! ॥ 458 ॥

---

को पार पा सकना, हिंसा से क्रोध को पार कर सकना, दुर्लभ हैं। संकल्प के वर्जन से काम को, काम के वर्जन से क्रोध को, अर्थ और अनर्थ के दर्शन से लोभ को, अद्वैत के अनुसंधान से भय को, आत्मा और अनात्मा के विवेक से शोक और मोह को, सात्त्विक-सेवा से दंभ को, मौन से योगांतराय (योग के अवरोध) को, शरीर की वांछा छोड़ने से हिंसा को, हिताचरण से भूतज्ञ (प्राणियों के लिए सहज) दुःख को, समाधि के बल से दैविक व्यथा को, प्राणायाम आदि से मन्मथ की व्यथा को, सात्त्विक आहार से निद्रा को, सत्त्वगुण से रजस् और तमोगुणो को, उपशमन से सत्त्व को, गुरु के भजन (सेवा) करने में कुशल बनकर, जीतना चाहिए। ४५६ [कं.] हे राजन ! जो व्यक्ति हरि-महिमा को कहनेवाले गुरु को [सामान्य] मानव मानकर, कुंठित भक्ति से रहता है, उसका श्रम करि-शौच के समान निरर्थक है। (गज-स्नान के समान अर्थात् हाथी अपनी सूंड़ से अपने शरीर पर पानी छिड़क देता है। किंतु उससे न मैल दूर होता है, न शरीर ही भीगता है। वह निरर्थक है।) ४५७ [उ.] हे नरेंद्रचंद्र ! इस वनजात (कमल)-नेत्र वाले को, परमेश को, महात्मा को प्रधान पुरुष को, देवताओं को शरण देनेवाले को, सज्जनों के विधेय को, अनन्त को, पुराणयोगियों से संसेवित पादपद्म वाले को, लोभ अपनी-अपनी पसंद से अपने दिलों में [सामान्य] मानव मानते, उसके प्रति सन्मति के बिना रहते हैं। ४५८ [व.] सुनो। जो षडिंद्रियों (छः इन्द्रियों) में एक

ध. विनुमु । षडिंद्रियंबुललोन नौंकटि यंदु दत्परुलै, यिच्छा पूरणविधानंबुल जरितार्थुलमैतिमनुवारलु धारणाभ्यास समाधियोगंबुल साधिंपलेरु । कृषिप्रमुखंबुलु संसारसंधानंबुलु गानि मोक्षसाधनंबुलु गावु । कुटुंब-संगंबुन जित्तविक्षेपंबगु । चित्तविजयप्रयत्नंबुन सन्न्यासिचि, संगंबु वर्जिचि, मितवैनभिक्षान्नंबु भक्षिपुचु, शुद्ध विविक्त समप्रदेशंबुन नौक्करुडु नासीनुंडै सुस्थिरत्वंबुन प्रणवोच्चारणंबु सेयुचु, रेचक पूरक कुंभकंबुल प्राणापानंबुल निरोधिचि, कामाहतंबैन चित्तंबु परिभ्रमणंबु मानि, कामविसर्जनंबु चेसि मरलुनंतकु निज नासाग्रनिरीक्षणंबु सेयुचु, निव्विधंबुन योगाभ्यासंबु सेयुवानि चित्तंबु, काष्ठरहितंबैन वह्नि तॅरंगुन शांति जैंदु । कामावुलचेत बेंधिपवडक, प्रशांत समस्तवृत्तंबैन चित्तंबु ब्रह्मसुख सम्मर्शनंबुन लोनवै मरि्रयु नॅगयनेरदु ॥ 459 ॥

म. धरणीदेवुडु सन्न्यासिचि यतियै धर्मार्थ कामंबुलन्
वरिवर्जिचि पुनर्विलंबमुन बत्प्रारंभियौनेनि लो-
भ रति गविकनकूडु मंचिदनुचुन् भक्षिचि जीविंचु दु-
र्नरु चंदंबुन हास्यजीवनुडगुन् नानाप्रकारंबुलन् ॥ 460 ॥

---

में तत्पर होकर, इच्छापूरण के विधानों से अपने को चरितार्थ माननेवाले धारणा, अभ्यास, समाधि [आदि] योगो की साधना नहीं कर सकते । कृषि इत्यादि संसार के साधन हैं, मोक्ष के नही । कुटुंब के संग (सांगत्य) से चित्त का विक्षेप होगा । चित्त को जीतने के प्रयत्न में संन्यासी बनकर, संगति का वर्जन करके भिक्षा के अन्न को मित रूप में खाते हुए, शुद्ध और विविक्त (एकांत) समप्रदेश में अकेले आसीन होकर, सुस्थिर भाव से प्रणव का उच्चारण करते हुए, रेचक-पूरक-कुंभकों, प्राण और अपान आदि का निरोध (रोक) करके, काम से आहत चित्त के परिभ्रमण को छोड़कर, काम का विसर्जन करके, अपनी नासा के अग्र भाग को देखते हुए, योग का अभ्यास करनेवाले का चित्त काष्ठ-रहित (बिना इंधन की) वह्नि के समान शांति पाता है । काम आदि से व्यथित न होकर, समस्त वृत्तियों से प्रशांत रहनेवाला चित्त ब्रह्मसुख के सम्मर्शन में लीन होकर, बाहर नही छूट सकता है । ४५९ [म.] धरणीदेव (ब्राह्मण) संन्यासी होकर, यति बनकर, धर्मार्थकामों का वर्जन करके, फिर से अगर उन (धर्मार्थकामों) का प्रारंभ करेगा (अगर फिर से विषयों मे लिप्त हो जाएगा), तो लोभ-रति के कारण, वमन किये गये भोजन को अच्छा मानकर, खाकर, जीवित रहनेवाले दुष्ट नर की भाँति, नाना प्रकार के हास्य जीवन बितानेवाला (हास्य का कारण) बन जायगा । ४६० [कं.] हे इलेश (राजन्) ! मल में पड़नेवाले क्रिमि के समान भूमि पर

कं. मलमुन ग्रिमियुनु बडु क्रिय
निल बडु नोंडलात्म गाडु हेयंबनुचुन्
दलतुरु तद्ज्ञुलु वोंगडुदु
रलसत नोंडलात्म यनुचु नज्ञुलिलेशा ! ॥ 461 ॥

आ. व्रतमु मान दगदु वडुगु गुरुड्रनिकिनि
ग्रियलु मान दगदु गृहगतुनिकि
दपसिकूरनुंड दगदु सन्न्यासिकि
दरुणितोडि पोत्तु तगदु तगदु ॥ 462 ॥

सी. रथमु मेनॅल्ल सारथि बुद्धि यिंद्रियगणमु गुर्रमुलु पग्गमुलु मनमु
प्राणादि दशविधपवनंबुलिरुसु धर्माधर्मगतुलु रथांगकमुलु
वहुळतरंबैन बंधंबु चित्तंबु शब्दादिकमुलु संचार भूमि
लभिमानसंयुतुंडैन जीवुडु रथि घनतर प्रणवंबु कार्मुकंबु

ते. शुद्धजीवुंडु बाणंबु शुभदमैन
ब्रह्म मंचितलक्ष्यंबु परुलु राग
भय मद द्वेष शोक लोभ प्रमोह
मान मत्सर मुखमुलु मानवेंद्र ! ॥ 463 ॥

व. इट्लु मनुष्य शरीररूपंबैन रथंबु दनवशंबु सेसिकोंनि, महाभागवत चरणकमल सेवानिशितंबैन विज्ञानखड्गंबु धरियिंचि, श्रीमन्नारायण करुणावलोकन बलंबुन रागादि शत्रुनिर्मूलनंबु गाविंचि, प्रणवबाणा-

---

यह शरीर पड़ जायगा। शरीर आत्मा नहीं है। अज्ञ लोग तो अलसता से इस शरीर को ही आत्मा मानकर, उसी की प्रशंसा करते हैं। उसी को तद्ज्ञ (ज्ञानी) लोग हेय मानते हैं। ४६१ [आ.] ब्रह्मचारी को [ब्रह्मचर्य] व्रत नहीं छोड़ना चाहिए। गृहगत (गृहस्थ) को अपनी क्रियाओं को न छोड़ना चाहिए। तपसी को बस्ती (गाँव) में नही रहना चाहिए। संन्यासी को तरुणी का संग नहीं चाहिए, नहीं चाहिए। ४६२ [सी.] मानवेंद्र ! यह सारा शरीर एक रथ है। बुद्धि [उसका] सारथी है। इंद्रियगण [उसके] घोड़े हैं। मन लगाम है। प्राण आदि दसविध पवन धुरी हैं। धर्म और अधर्म की गतियाँ रथ के अंग हैं। चित्त उसका वहुलतर बंधन हैं। शब्द आदि संचार की भूमियाँ हैं। अभिमान से संयुत (युक्त) जीव रथी है। घनतर प्रणव कार्मुक है। [ते.] शुद्धजीव बाण है। शुभग ब्रह्म अंचित-लक्ष्य है। अन्य लोग राग, भय, मद, द्वेष, शोक, लोभ, प्रमोह, मान और मत्सर आदि हैं। ४६३ [व.] इस प्रकार मनुष्य के शरीर रूपी रथ को अपने वश में करके महाभागवतों के चरणकमलों की सेवा से निशित बने हुए विज्ञान नामक खड्ग धारण कर, श्रीमन्नारायण के

सनंवुन शुद्धजीवशरंबुनु संधिंचि, ब्रह्म मनियेडि गुरि यंदु वड नेसि, यहंकार रथिकुंडु रथिकत्वंबु मानि, निजानंदंबुन नुंडवलयु। अट्टि विशेषंबुन संभविंपनि समयंबुन, बहिर्मुखंबुलैन यिंद्रिय घोटकंबुलु बुद्धि-सारथि सहितंबुले, स्वाभिमान रथिकुनि प्रमत्तत्वंबु येरिंगि, प्रकृति मार्गंबु नोंदिंचि, विषय शत्रुमध्यंबुन गूल्चिन ॥ 464 ॥

आ. विषयशत्रुलेल्ल विक्रांति तोड सा, -रथिसमेतुडैन रथिकु बट्टि
उग्र तिमिर मृत्युयुतमगु संसार, कूप मध्यमंदु गूल्तु रधिप ! ॥465॥

व. विनु। वैदिककर्मंबु प्रवृत्तंबुनु, निवृत्तंबुननु रेंडु तेरंगुलय्ये। अंदु प्रवृत्तंबुन बुनरावृत्तंबुनु, निवृत्तंबुन मोक्षंबुनु सिद्धिंचु। प्रवृत्त कर्मंबु लोन निष्टापूर्तंबुलन रेंडु मार्गंबुलु गलवु। अंदु हिंसा द्रव्यमय काम्यरूपंबु-लैन दर्श पूर्णमास पशुसोमयाग वैश्वदेवबलिहरणप्रमुखंबुलैन यागादिकंबु-लिष्टंबुलु। देवालय वन कूप तटाक प्रमुखंबुलु पूर्तंबुलु। प्रवृत्त कर्मंबुन देहंबु विडिचि, देहांतरारंभंबुन देहि हृदयाग्रंबुन वेलुंगु वानि तोड निंद्रियंबुलुं गूडि, भूत सूक्ष्मयुक्तुडै धूम दक्षिणायन कृष्णपक्ष रात्रि दर्शंबुलवलन सोमलोकंबु जेरि, भोगावसानंबुन विलीनदेहुंडै, वृष्टि-

---

करुणावलोकन के बल से राग आदि शत्रुओं का निर्मूलन (नाश) करके, प्रणव रूपी बाणासन (धनुष) पर शुद्धजीव नामक शर का संधान करके, ब्रह्मम् नामक लक्ष्य पर छोड़कर, अहंकार रूपी रथिक को रथिकत्व को छोड़कर, निज आनंद के साथ रहना चाहिए। ऐसा विशेष (विशिष्ट कार्य) न हुआ तो, बहिर्मुखी इंद्रिय रूपी घोटक, बुद्धि नामक सारथी के साथ स्वाभिमानी रथिक के प्रमत्तत्व (असावधानी) को जानकर प्रवृत्ति मार्ग में लगाकर, [उसको] विषय रूपी शत्रुओं के मध्य मे गिराते हैं। तब ४६४ [आ.] हे अधिप ! तब सब विषय-शत्रु विक्रांति (विक्रम) के साथ सारथी के साथ रथिक को पकड़कर, उग्र, तिमिर-मृत्यु-युत संसार नामक कूप के मध्य में गिरा देंगे। ४६५ [व.] सुनो। वैदिक कर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति नामक दो प्रकार के हैं। उनमे प्रवृत्ति से पुनरावर्तन और निवृत्ति से मोक्ष की सिद्धि होती है। प्रवृत्तिकर्म में इष्ट और पूर्त नामक दो मार्ग हैं। उनमें हिंसा, द्रव्यमय, काम्य रूपी, दर्श, पूर्णमास, पशु, सोमयाग, वैश्वदेव, बलिहरण, आदि याग इष्ट [माने जाते] हैं। देहांतर के आरंभ में देही देवतालय, वन, कूप, तटाक (तालाब) आदि पूर्त हैं। प्रवृत्तिकर्म में देह को छोड़कर, देहान्तर के आरंभ में देही हृदय के अग्र में प्रकाशित होता है। उसके साथ इंद्रिय मिलकर, भूतसूक्ष्मयुक्त बनकर, दक्षिणायन के कृष्णपक्ष की रात्रि के दर्श (अमावास्य) से सोमलोक पहुँचकर, सुख भोगने के बाद विलीनदेही बनकर, वृष्टि के द्वार से क्रममार्ग

द्वारंबुन ग्रमंबुन नोषधिलतान्न शुक्लरूपंबुल ब्रांपिचि, भूमियंदु जन्मिचु। इदि पुनर्भवरूपंबेन पितृमार्गंबु। निवृत्त कर्मनिष्ठुंडेन वाडु, ज्ञानदीप्तंबुलेन यिद्रियंबुलंदु ग्रियायज्ञंबुल यजिचि, यिंद्रियंबुल दर्शनादि संकल्परूपंबेन मनंबु नंदुनु, विकारयुक्तंबेन मनंबुनु वाक्कुनंदुनु, विद्यादि लक्षणयेन वाक्कुनु वर्णसमुदायंबु नंदुनु, वर्णसमुदायंबु नकारादिस्वरत्रयात्मकंबेनु ओंकारंबु नंदुनु, नोंकारंबुनु बिदुवंदुनु, बिदुवुनु नादंबु नंदुनु, नादंबुनु प्राणंबुनंदुनु, प्राणंबुनु ब्रह्मंदुनु निलुपवलयु। देवमार्गंबुलेन युत्तरायण शुक्लपक्ष दिवा प्राह्णराकलवलन सूर्यब्रह्म लोकंबुनंदु जेरि, भोगावसानंबुन स्थूलोपाधियैन विश्वुंडै, स्थूलंबुनु सूक्ष्मंबुनंदु लयिचि सूक्ष्मोपाधियेन तेजसुंडै, सूक्ष्मंबुनु गारणंबुनंदु लयिचि तुरीयुंड, सूक्ष्मलयंबु नंदु शुद्धात्मुंडै यिव्विधंबुन मुक्तुंडगुनु ॥ 466 ॥

आ. अमरनिर्मितंबुलै यॉप्पु पितृ देव
सरणु लॅव्वडेरुगु शास्त्र दृष्टि
नट्टिवाडै देहियै मोहमुन नींद
डतिशयिचु बुद्धि नवनिनाथ ! ॥ 467 ॥

व. विनुमु। देहादुलकु गारणत्वंबुन नादियंदुनु, नवधित्वंबुन, नंत्यमंदुनु गलुगुचु, बहिरंगंबुन भोग्यंबुनु, नंतरंगंबुन भोक्तयु, बरंबुनु, नपरंबुनु,

---

में ओषधी, लता, अन्न और शुक्ल रूपों को प्राप्त (धारण) कर, भूमि पर पैदा होगा। यह पुनर्भव रूपी पितृमार्ग है। निवृत्तिकर्म निष्ठा में रहनेवाले को ज्ञान से दीप्ति पानेवाले इंद्रियों में क्रिया यज्ञों को करके, इंद्रिय आदि के दर्शन आदि संकल्प के रूप में होनेवाले मन में, विकारयुक्त मन में और वाक् में, विद्यादिलक्षण वाले और वर्णसमुदाय में, वर्णसमुदाय में अकारादि स्वरत्रय-सहित ओंकार में, ओंकार को बिंदु में, बिंदु को नाद में, नाद को प्राण में, प्राण को ब्रह्म में, स्थिर करना चाहिए। देवमार्ग कहलानेवाले उत्तरायण के शुक्लपक्ष के दिन और प्राह्ण (प्रातःकाल) के आने पर (उक्त समय में) सूर्यद्वार से ब्रह्मलोक पहुँचकर, भोगों के अवसान के बाद स्थूल को सूक्ष्म में लय करके, कारणोपाधी बने हुए प्राज्ञ होने के कारण, कारण को साक्षी के स्वरूप में लय करके, तुरीय बनकर, सूक्ष्म-लय में शुद्धात्मा बनकर, इस प्रकार मुक्त बनेगा (मुक्ति बनेगा)। ४६६
[आ.] हे अवनीनाथ ! अमरों द्वारा निर्मित पितृ और देवसरणियों (विधानों) को शास्त्र की दृष्टि से जो जानता है, वही देही बनकर, मोह में नहीं पड़ेगा। और [उसकी बुद्धि] विकसित होगी। ४६७ [व.] सुनो ! देह आदियों को कारणत्व से आदि में, अधिकत्व से अन्त में होते हुए, बहिरंग से भोग्य, अन्तरंग से भोक्ता और पर और अपर, ज्ञान, ज्ञेय, वचन,

ज्ञानंबुनु, ज्ञेयंबुनु, वचनंबुनु, वाच्यमुनु, नप्रकाशमुनु, प्रकाशंबुनैन वस्तु-वुनकु वेरोंडु लेदु। प्रतिबिंबादिकंबु वस्तुत्वंबुनं जेसि विकल्पितंबै तलंपंबडु भंगि, नैंद्रियकंबैन सर्वबनु नर्थत्वंबुन विकल्पितंब तोचुं· गानि परमार्थंबु गादु। देहादिकंबुलु विनाश्यंबुलु। वानिकि हेतुबुलैन क्षितिप्रमुखंबुलुनु विनाश्यंबुलगुट सिद्धंबु। परमात्मकु नविद्यचेत नेंत तडवु विकल्पंबु दोचु, नंत तडवुनु भ्रमंबु दोचु। अविद्यानिवृत्तियैन सर्वंबुनु मिथ्यययि शास्त्रविधि निषेधंबुलु कल लोपल मेलु गन्न तेरंगु-लगु। भावाद्वैत, क्रियाद्वैत, द्रव्याद्वैतंबुलु मूडु गलवु। अंदु बटतंतु न्यायंबुन गार्यकारणंबुलंदु वस्तु वोक्कटियै युंडुननि येरिगि, येकत्वा-लोचनंबु चेसि, विकल्पंबु लेदनि भाविचुट भावाद्वैतंबु। मनो वाक्काय-कृतंबुलैन सर्वकर्मंबुलुनु फल भेदंबु सेयक, परब्रह्मार्पणंबु सेयुट क्रियाद्वैतंबु। पुत्रमित्रकळत्रादि सर्वप्राणुलकुं दनकुनु देहमुनकुं बंचभूतात्मकत्वंबुन भोक्त योक्कंडनु परमार्थंबुन नर्थकामंबुलयेंड नैक्यदृष्टि जेयुट द्रव्याद्वैतंबु। नेर्पुन नात्मतत्त्वानुभवंबुन नद्वैत त्रयंबुनु विलोकिंचि, वस्तुभेदबुद्धियु, गर्म भेदबुद्धियु, स्वकीय परकीय बुद्धियु, स्वप्नंबुलुगा दलंचि मुनिबैनवाडु मानवलयु ॥ 468 ॥

---

वाच्य, अप्रकाश और प्रकाश वाली वस्तु के लिए अन्य कुछ नहीं है। [ऐसा] माना जाता है कि प्रतिबिंब आदि वस्तु के रहने से विकल्पित हो, [अलग] माने जाने की तरह, ऐंद्रिय हुए सर्व अर्थत्व में विकल्पित होकर दीख पड़ता है, किंतु [वस्तुतः] परमार्थ नहीं है। देह आदि विनाश्यक (नष्ट होनेवाले) हैं। यह तथ्य है कि उनके कारण भूत, क्षिति आदि भी नश्वर ही हैं। परमात्मा के लिए अविद्या से जितनी देर विकल्प दिखाई पड़ेगा, उतनी देर भ्रम होता रहेगा। अविद्या से निवृत्त होनेवाला सर्व (सब कुछ) मिथ्या बनकर, शास्त्रविधिनिषेध, स्वप्न में से जाग्रत् होने की तरह, भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत नामक तीन [बातें] हैं। उनमें से पटुतंतुन्याय से कार्य और कारणों मे यह जानकर कि वस्तु एक ही है, एकत्व की आलोचना (विचारण) करके, विकल्प नहीं है —ऐसा सोचना भावाद्वैत है, मन, वाक्, कायकृत सर्व कर्मों में फल-भेद न करके, परब्रह्म को अर्पण करना क्रियाद्वैत है। पुत्र, मित्र, कलत्र आदि सर्व प्राणियों में और अपने में, देह में पंचभूतात्मक में भोक्ता एक ही है —इस परमार्थत्व में अर्थ और काम के प्रति एक ही दृष्टि रखना द्रव्याद्वैत है। मुनि को तो निपुणता से आत्मा के तत्त्वानुभव से अद्वैतत्रय को देखकर, वस्तु की भेदबुद्धि, कर्म की भेदबुद्धि और स्वकीय और परकीय बुद्धि —इन सबको स्वप्नमात्र मानकर, इनको छोड़ देना चाहिए। ४६८

कं. वादमुलु चेयु नेटिकि, वेदोक्तविधि जरिंचु विबुधुडु गृहमं-
दादरमुन नारायण, पादंबुलु गोलिचि मुक्तिपदमुनकेगुन् ॥ 469 ॥

शा. भूपालोत्तम ! मीरु भक्तिगरिमस्फूर्तिन् सरोजेक्षण
श्रीपादांबुजयुग्ममु न्नियतुलै सेविंचि कादे महो-
ग्रापत्संघमुलोन जिक्कक समस्ताशांतनिर्जेतलै
येपारंग मखंबु सेसितिरि देवेंद्रप्रभावंबुनन् ॥ 470 ॥

### नारदुनि पूर्वजन्म वृत्तांतमु

व. विनुमु । पोयिन महाकल्पंबुनंदु गंधर्वुललोन नुपबर्हणुंडनु पेर गंधर्वुंड-
नैन नेनु सौंदर्य चातुर्य माधुर्य गांभीर्यादि गुणंबुलकु सुंदरुलकु न्रियुंडनै
क्रीडिंपुचु, नोक्कनाडु विश्वस्रष्टलैन ब्रह्मलु देवसत्र मनियेंडि यागंबु-
लोन नारायण कथलु गानंबु चेयुकोरकु नप्सरोजनुलनु, गंधर्वुलनं
जीरिन ॥ 471 ॥

आ. क्रतुवुलोनि केनु गंधर्वगणयुतो
गलसि पोयि विष्णुगाथ लच्चट
गोन्नि पाडि सतुल गूडि मोहितुडनै
तलगि चनिति नंत धरणीनाथ ! ॥ 472 ॥

---

[कं.] सहस्रों विवादों की क्या जरूरत है ? जो विविध वेदोक्त मार्ग में चलकर, गृह में आदर से नारायण की पाद-सेवा करता है, वह मुक्ति-पद को प्राप्त कर सकता है। ४७९ [शा.] हे भूपालों में उत्तम ! आप सबने भक्ति की महिमा की स्फूर्ति से ही सरोजेक्षण (विष्णु) के श्रीपादांबुजयुगल की नियत सेवा की थी। इसीलिए भयंकर विपत्तियों के समूह को जीतकर, समस्त अशांति के विजेता बनकर (अशांति को जीतकर), देवेंद्र के प्रभाव से अतिशयता से यज्ञ किया है न ! ४७०

### नारद के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

[व.] सुनो। पिछले महाकल्प में, गंधर्वो में उपवर्हण नामक गंधर्व मैं था। सौन्दर्य, चातुर्य, माधुर्य, गांभीर्य आदि गुणों से सुंदरियों के प्रिय बनकर रहते हुए, क्रीड़ाएँ करते हुए, एक दिन, विश्वस्रष्टा ब्रह्माओं के देवसत्र नामक याग में नारायण की कथाओं का गान करने के लिए अप्सरा और गंधर्वों को बुलाने पर, ४७१ [आ.] हे धरणीनाथ ! मैंने भी गन्धर्वगण के साथ वहाँ जाकर, विष्णु की कतिपय कथाएँ गाईं। फिर कुछ स्त्रियों के प्रति मोहित होकर, क्रतु भूमि छोड़कर [बाहर] गया। ४७२ [कं.] राजन् !

कं. वारिजगंधुल पॊत्तुन, वारि गॆकॊनक दलगिवच्चिन बुद्धिन्
वारॆंद्रिगि शापमिच्चिरि, वारिपगरानि रोषवशमुन नधिपा ! ॥ 473 ॥

आ. पंकजाक्षु निचट बाडक कामिनी-
गणमु गूडि चनित कल्मषमुन
दग्ध कांति वगुचु धरणीतलंबुन
शूद्रजातिसतिकि सुतुड वगुम ! ॥ 474 ॥

व. अनि यिट्लु विश्वस्रष्टलु शपिंचिन, नॊक्क ब्राह्मण दासिकि बुत्रुंडनै जन्मिचि, यंदु ब्रह्मवादुलैन पॆद्दलकु शुश्रूष चेसिन भाग्यंबुन, निम्महाकल्पंबुनंदु ब्रह्मपुत्रुंडनै जन्मिचिति ॥ 475 ॥

आ. कौशलमुन मोक्षगतिकि गृहस्थुडॆ
धर्ममाचरिंचि तगिलिपोबु
नट्टि धर्ममॆल्ल नतिविशदंबुगा
बलुकबडियॆ नीकु भव्यचरित ! ॥ 476 ॥

म. अखिलाधारु डजादि दुर्लभुडु ब्रह्मंबैन विष्णुंडु नी
मखमंदर्चितुडै निवासगतुडै मर्त्याकृतिन् सेव्युडै
सखियै चारकुडै मनोदयितुडै संबंधियै मंत्रियै
सुखदुंडय्यॆ भवन्महामहिम दा जोद्यंबु धात्रीश्वरा ! ॥ 477 ॥

व. अनि यिट्लु नारदुंडु चॆप्पिन वृत्तांतं बंतयु विनि, धर्मनंदनुंडु प्रेमविह्वलुं-

---

उस समय में वारिज-गंधियों (कमल की गन्ध जैसी गन्धवालियों) के साथ रहते हुए, उनकी (मुनियों की) परवाह न करके आ जाने से, उन्होंने दुर्निवार रोष से [मुझे] शाप दिया। ४७३ [आ.] 'यहाँ पंकजाक्ष (विष्णु) का गान न करके, कामिनियों के साथ जाने से कलमष (पाप) से दग्ध कांति वाले होते हुए, धरणीतल में शूद्र जाति की स्त्री के सुत बनो'। ४७४ [व.] ऐसा विश्वस्रष्टाओं ने शाप दिया तो मैं एक ब्राह्मण की दासी का पुत्र बना। उस [जन्म] में ब्रह्मवादी महात्माओं की शुश्रूषा करने के भाग्य से, इस महाकल्प में ब्रह्मा का पुत्र बनकर पैदा हुआ। ४७५ [आ.] हे भव्यचरित्र वाले! कौशल से गृहस्थ किस धर्म का आचरण करके मोक्ष की गति पाता है, वह सब तुमको [मुझसे] अतिविशदरूप से कहा गया। ४७६ [म.] धात्रीश्वर! जो इस संसार का आधार, ब्रह्मा आदि के लिए भी दुर्लभ और ब्रह्मभूत वह विष्णु तुम्हारे मख (यज्ञ) में अर्चित हुआ। उसने तुम्हारे घर में मानव की अकृति में रहकर, [तुम्हारे लिए] सेव्य, सखा, चाटक (परिचारक), मनोदयित (इष्ट सखा), संबंधी, और मंत्री बनकर सुखद बना। तुम्हारी महान् महिमा आश्चर्यप्रद है। ४७७ [व.] इस प्रकार नारद से कहे गये समस्त वृत्तांत को सुनकर, धर्मनंदन

डु वासुदेवुनि बूजिचें। वासुदेव धर्मनंदनुलचेत बूजितुंडै, नारदमुनियु देवमार्गंबुन जनियें। अनि शुकयोगींद्रुंडु पांडवपौत्रुनकुं जॅप्पॅननि सूतुंडु शौनकादुलकुं जॅप्पॆ ॥ 478 ॥

कं. राजीवसदृश लोचन !
राजीवभवादि देवराजविनुत ! वि-
भ्राजित कीर्तिलतावृत !
राजीवभवांडभांड ! रघुकुलतिलका ! ॥ 479 ॥

मा. धरणीदुहितृरंता ! धर्ममार्गानुगंता !
निरुपमनयवंता ! निर्जराराातिहंता !
गुरुबुधसुखकर्ता ! कुंभिनीचक्रभर्ता !
सुरभयपरिहर्ता ! सूरिचेतोविहर्ता ! ॥ 480 ॥

गद्य. इदि श्रीपरमेश्वर करुणाकलित कविताविचित्र केसनमंत्रिपुत्र सहजपांडित्य पोतनामात्य प्रणीतंबैन श्रीमहाभागवतंबनु महापुराणंबुनंदु धर्मनंदनुनकु नारदुंडु हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुल पूर्वजन्म वृत्तांतंबु सॅप्पुटयु, हिरण्यकशिपदिति संवादंबुनु, सुयज्ञचरित्रंबुनु, यमसल्लापंबुनु, ब्रह्मवरलाभ गर्वितुंडैन हिरण्यकशिपु चरित्रंबुनु, प्रह्लाद विद्याभ्यास

---

ने प्रेम-विह्वल बन, वासुदेव की पूजा की। नारद मुनि भी वासुदेव और धर्मनंदन से पूजित होकर, देवमार्ग से चला गया। ऐसा शुकयोगींद्र ने पांडवों के पौत्र (परीक्षित) से कहा। इस प्रकार सूत ने शौनक आदि [ऋषियों] से कहा। ४७८ [कं.] हे रघुकुल के तिलक ! राजीव (कमल) सदृश (समान) सुंदर लोचनवाले ! राजीवभव (ब्रह्मा) आदि श्रेष्ठ देवों से स्तुति पानेवाले ! शोभायमान कीर्ति लता से आवृत ब्रह्मांड-भांड वाले ! [तुम्हें नमस्कार है।] ४७९ [मा.] हे धरणी-दुहिता (भूमि-सुता सीता) के पति ! धर्म-मार्ग में चलनेवाले ! निरुपम नीति से युक्त ! निर्जर-अराति (देवताओं के शत्रुओं) का वध करनेवाले ! गुरु और पंडितों को सुख देनेवाले ! कुंभिनीचक्र (भूमण्डल) के भर्ता (अधिप) ! देवताओं के भय का निवारण करनेवाले ! सूरि (विद्वानों) के मन में विहार करनेवाले ! [तुम्हें नमस्कार है।] ४८० [गद्य] श्री परमेश्वरकरुणा-कलित, कविताविचित्र, केसन मन्त्री के पुत्र, सहजपांडित्य वाले, पोतनामात्य से प्रणीत (विरचित), श्री महाभागवत नामक महापुराण में धर्मनंदन को नारद का हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के पूर्व जन्म-वृत्तांत सुनाना; हिरण्यकशिपु और दिति का संवाद; सुयज्ञ का चरित्र; यम का सल्लाप; ब्रह्मा से वरों के लाभ से गर्वित हिरण्यकशिपु का चरित्र; प्रह्लाद के

कथयुनु, प्रह्लाद हिरण्यकशिपुल संवादंबुनु, ब्रह्लादु वचनंबु प्रतिष्ठिप हरि नरसिंहरूपंबुन नाविर्भविंचि, हिरण्यकशिपुनि संहरिंचि, प्रह्लादुनकु नभयंबिच्चि, निखिल देवतानिवह ब्रह्लादादि स्तूयमानुंडै, तिरोहितुं-डगुटयु, द्रिपुरासुर वृत्तांतंबुनु, ब्रह्लादाजगर संवादंबुनु, नारदु पूर्वजन्म वृत्तांतंबुनु ननु कथलं गल सप्तमस्कंधमु संपूर्णमु ॥ 481 ॥

---

विद्याभ्यास की कथा; प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु का संवाद; प्रह्लाद के वचन को प्रतिष्ठापित करने को हरि के नर-सिंह के रूप में आविर्भूत होकर, हिरण्यकशिपु का वध करना; प्रह्लाद को अभय देना; निखिल-देवता-समूह से और प्रह्लाद आदियों से स्तुति पाते हुए तिरोहित होना; त्रिपुरासुर का वृत्तांत; ईश्वर का त्रिपुरों का दहन करना; वर्णाश्रमों के धर्मों का विवरण; प्रह्लाद और अजगर का संवाद; नारद के पूर्व जन्म का वृत्तान्त आदि कथाओं से युक्त सप्तम स्कंध संपूर्ण हुआ । ४८१

ॐ

# अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

# आन्ध्र महाभागवतमु

## ( अष्टम स्कन्धमु )

श्रीमन्नाम ! पयोद, श्याम ! धराभृल्ललाम ! जगदभिरामा !
रामाजनकाम ! महो, -द्दाम ! गुणस्तोमधाम ! दशरथरामा ! ॥ 1 ॥

### अध्यायमु—१

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनि श्रेष्ठुलकु निखिल पुराणव्याख्यान वैखरीसमेतुंडैन सूतुंडिट्लनिये। अट्लु प्रायोपविष्टुंडैन परीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुकयोगींद्रु गनुंगोनि ॥ 2 ॥

कं. विनबडियॅनु स्वायंभुव, मनुवंशमु वर्ण धर्म मर्यादलतो
मनुजुल दनुजुल वेल्पुल, जननंबुलु स्रष्टलॅल्ल जनिंयिचुटयुन् ॥ 3 ॥

---

( अष्टम स्कन्ध )

श्रीमत् (श्रीयुक्त) नामवाले ! हे पयोदश्याम (मेघश्याम)! धराभृत्-ललाम (राजश्रेष्ठ) ! हे जगदभिराम ! रामाजन-(स्त्रीजनों) के लिए कामदेव ! महान्-उद्दाम (प्रबल) ! गुणों के स्तोम (समूह) के आगार ! हे दशरथ-राम ! (तुम्हें नमस्कार) । १

### अध्याय—१

[व.] निखिल-पुराण-व्याख्यान वैखरी-समेत (व्याख्यान-शक्ति-युक्त) सूत ने, महनीय गुणों में गरिष्ठ (श्रेष्ठ) उन मुनिश्रेष्ठों से यों कहा । "उस प्रकार प्रायोपविष्ट परीक्षित नरेंद्र ने शुकयोगींद्र को देखकर [कहा] २ [कं.] स्वायंभुव मनु का वंश, वर्णधर्म की मर्यादाएँ, मानवों, दानवों, देवों का जनन तथा स्रष्टाओं (ब्रह्माओं) की उत्पत्ति

उ. ए मनुकालमंदु हरि यीश्वरुडेटिकि संभविंचॆ ने-
मेमि यॊनर्चॆं नम्मनुवु ले रत डॆक्किय जेयुचुन्नवा-
डेमि नटिंचु मीद गतमॆय्यदि सज्जनुलैनवारु मु-
न्नेमनि चॆप्पुचुंदुरु मुनीश्वर ! ना कॆरिंगिपवे ! दयन् ॥ 4 ॥

व. अनिन शुकुडिट्लनियॆ ॥ 5 ॥

कं. ई कल्पंबुन मनुवुल्
प्राकटमुग नार्वुरैरि पदुनलुवुरलो
लोकमुल जनुल पुट्टुवु
लाकथितमुलय्यॆ वरुस नखिलमुलु नृपा ! ॥ 6 ॥

व. प्रथम मनुवैन स्वायभुवुनकु नाकूति, देवहूतुलनु निरुवुरु कूतुलु गलरु। वारिकि ग्रमंबुन गपिल, यज्ञ नामंबुल लोकंबुलकु धर्मज्ञान बोधंबुलु सेयुकॊरकु हरि पुत्रत्वंबु नॊंदॆ। अंदु गपिलुनि चरित्रंबुलु मुन्नु चॆप्पंबडियॆ। यज्ञुनि चरित्रंबु चॆप्पॆद विनुमु ॥ 7 ॥

म. शतरूपापति कामभोग विरतिन् संत्यक्त भूभारुडै
सतियुं दानु वनंबु केगि शतवर्षंबुल् सुनंदानदिन्
व्रतिय येकपदस्थुडै नियतुडै वाचंयम स्फूर्तितो
गतदोषुंडु तपंबु सेसॆ भुवन ख्यातंबुगा भूवरा ! ॥ 8 ॥

---

आदि सब [वृत्तांत तुम्हारे मुँह से] मैं सुन चुका हूँ। ३ [उ.] किस मनु के काल में हरि, जो ईश्वर है, किस प्रकार अवतरित हुआ ? [उसने] कौन-कौन से आचरण किये ? [तब के] वे मनु कहाँ हैं ? वे क्या करते रहे ? [हरि ने] पहले कौन सा नटन किया ? आगे क्या करेंगे ? सज्जन लोग [इस विषय में] पूर्व में क्या कहते रहते है ? हे मुनीश्वर ! दया-पूर्वक यह सब मुझे समझाओ"। ४ [व.] [यों] पूछने पर शुक इस प्रकार बोले : ५ [कं.] "हे नृप (राजन्) ! इस कल्प के चौदह मनुओं में से छः मनु अब तक हो चुके है। लोक में जिन लोगों का सृजन हुआ है, उनके समस्त वृत्तान्त क्रमशः [मुझसे] कथित हो चुके हैं। ६ [व.] प्रथम मनु स्वायंभुव के आकूति तथा देवहूति नामक दो पुत्रियाँ हुईं। उनके क्रमशः कपिल और यज्ञ के नाम से हरि ने लोकों को धर्म-ज्ञान का बोध कराने के निमित्त पुत्रत्व ग्रहण किया। उनमें से कपिल का चरित पहले बताया जा चुका है, [अब] यज्ञ का चरित बताता हूँ, सुनो। ७ [मं.] हे भूवर (राजन्) ! शतरूपा के पति [स्वायंभुव] ने कामभोग पर (के प्रति) विरक्ति [उत्पन्न होने] के कारण, भू-भरण को त्याग कर, पत्नी-सहित वनों में जाकर, सुनंदानदी में (के

व. इट्लु तपंबु सेयुचु स्वायंभुव मनुवु दन मनंबुलोन ॥ 9 ॥

सी. सृष्टिचे नॆव्वडु चेतन पडकुंडु सृष्टि यॆव्वनि चेतचे जनिंचु
जगमुलु निद्रिप जागरूकत नुंडि यॆव्वडु ब्रह्मंबु नॆरुगुचुंडु
नात्म काधारंबु नखिलंबु नॆव्वडु नॆव्वनि निजधनं बितवट्टु
पॊडगान राकुंड बॊडगनु नॆव्वडु नॆव्वनि दृष्टिकि नॆदुरु लेदु

आ. जनन वृद्धि विलय संगति जॆंदक
नॆव्वडॆडपकुंडु नॆल्लयॆडल
दन महत्तत्त्वसंज्ञ तत्त्वमॆव्वडु दान
विश्वरूपुडनग विस्तरिंचु ॥ 10 ॥

व अनि मरियु, निरहंकृतुंडुनु, बुधुंडुनु, निराशियु, बरिपूर्णुंडुनु, ननन्य प्रेरितुंडुनु, नृशिक्षापरुंडुनु, निजमार्ग संस्थितुंडुनु, नखिल धर्मभावनुंडुनैन परमेश्वरुनकु नमस्करिंचॆद। अनि युपनिषदर्थंबुलु पलुकुचुन्न मनुवं गनुंगॊनि ॥ 11 ॥

कं. रक्कसुलु दिनग गडगिन, वॆक्कसमुग यज्ञ नाम विष्णुडु वारिं
जक्कडिचॆ जक्रधारल, मिक्कटमुग वेल्पुलॆल्ल मॆच्चनि पॊगडन् ॥ 12 ॥

---

पास) एक पैर पर खड़े रहने का व्रत रख कर, मुनिवृत्ति की स्फूर्ति के साथ, सौ वर्ष तक, दोष (पाप) रहित हो, भुवन (जगत) में विख्यात रूप से तपस्या की। ८ [व.] यों तप करते हुए, स्वायंभुव मनु ने अपने मन में [यों विचारा।] ९ [सी.] जो सृष्टि के द्वारा चैतन्य नहीं पाता; [परंतु] सृष्टि जिसके कार्य से उत्पन्न होती है; जग जिस समय सोये रहते है, उस समय जो जागरूक रहकर ब्रह्म को जाने रहता है; जो अखिल आत्मा का आधार बना हुआ है; यह समस्त जिसका निज धन है; जो गोचर न होते हुए भी [सब कुछ] देखता रहता है; जिसकी दृष्टि के सामने [कोई] रुकावट नही है; [आ.] जो जनन, वृद्धि [और] विलय (नाश) के वशीभूत न होकर, सर्वत्र बना रहता है; जो अपने-आप महत्तत्त्व की संज्ञा से तत्त्व [बना हुआ] है, जो विस्तृत होकर विश्वरूप कहलाता है; १० [व.] इतना ही नही और जो निरहंकारी है, बुद्ध है, निराशी (वांछारहित) है, परिपूर्ण है, अन्य से प्रेरित नही है, नृशिक्षापर (नरों को शिक्षा देता रहता) है, निजमार्ग में संस्थित है, अखिल धर्म-भावन [वाला] है, उस परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ।" इस प्रकार उपनिषदर्थों को उच्चरित करनेवाले मनु को पाकर, ११ [कं.] राक्षस [जन] जब उसे खाने आये तो यज्ञ नामक विष्णु सह न सके, अपने चक्र के आघात से उनका वध कर डाला जिसकी देवताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। १२ [व.] यह प्रथम मन्वंतर [का वृत्तान्त] है। अब

व. इदि प्रथममन्वंतरंबु, इंक रेंडव मन्वंतरंबु विनुमु ॥ 13 ॥

सी. स्वारोचिषुं डन सप्तार्चि विड्डडु मनुवु वानिकि ना द्युमत्सुषेण
रोचिष्मदाद्युलारूढ पुत्रुलु धात्रि येलिरि रोचनुंडिद्रुड्य्ये
नधिकुलु तुषितादुलमरुलूर्जस्तंब मुख्युलाढ्युलु सप्तमुनुलु नाड्
वेदशिरुंडनु विप्रुनि दयितकु दुषितकु बुत्रुडै तोयजाक्षु

आ. डवतरिंचेनु विभुडन नशीत्यष्ट स-
हस्रमुनुलु नधिकुलैनवारु
घनुलनुग्रहिंप गौमारक ब्रह्म-
चारि यगुचु नतडु सलिपें व्रतमु ॥ 14 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 15 ॥

सी. मनवु मूडववाडु मनुजेंद्र ! युत्तमुंडन प्रियव्रतुनकु नात्मजुंडु
पालिचें निल येल्ल ववन सृंजय यज्ञहोत्रादुलातनि पुत्रु लधिक
गुणुलु वसिष्ठुनि कोडुकुलु प्रमथादुलेरि सप्तऋषुलु नमरविभुडु
सत्यजित्तनुवाडु सत्य भद्राद्युलु सुरलु धर्मुनिकिनि सूनृतकुनु

आ. बुद्दिट सत्यनिर्याति बुरुषोत्तमुडु सत्य-
सेनु डनग दुष्टशीलयुतुल
दनुज यज्ञपतुल दंडिचें सत्यजि-
न्मित्रु डनग जगमु मेलनंग ॥ 16 ॥

---

दूसरा मन्वंतर सुनो। १३ [सी.] सप्तार्चि (अग्नि) का पुत्र स्वारोचिष मनु है; द्युमंत, सुषेण, रोचिष्मंत आदि उनके प्रसिद्ध पुत्र है। [उन्होंने] धात्रि (भूमि) का पासन किया। रोचन इंद्र बना। तुषित आदि [लोग] महान देवता बने; ऊर्जस्तंब आदि आढ्य (सपन्न) पुरुष सप्तर्षि बन गये; [आ.] वेदशिर नामक विप्र की तुषिता नाम की दयिता (पत्नी) [के गर्भ] से कमलाक्ष-(हरि) पुत्र के रूप में अवतरित होकर विभु कहलाये। अठासी श्रेष्ठ मुनि हुए जो महान् हैं। उन घनों (महानों) के अनुग्रह पाकर विभु ने कौमारक-ब्रह्मचारी होकर व्रत का साधन किया। १४ [व.] उसके अनंतर। १५ [सी.] हे मनुजेंद्र (राजन्) ! प्रियव्रत का आत्मज (पुत्र) उत्तम तीसरा मनु हुआ और भूमंडल पर शासन चलाया। पवन, सृजय, यज्ञ, होत्र आदि उसके पुत्र हुए, जो अधिक गुण वाले है। प्रमथ आदि वसिष्ठ के पुत्र सप्तर्षि बने। सत्यजित् इंद्र बन गया, सत्यभद्र आदि देवता बने। पुरुषोत्तम भगवान ने धर्म और सूनृत का पुत्र होकर जन्म लिया, [आ.] और सत्यसेन का नाम रखकर दुष्टशील वाले दनुजों (राक्षसों) और यक्षों को दंडित किया; [यों] सत्यजित का मित्र बनकर जग में प्रशंसित हुआ। १६

गजेंद्रमोक्षण कथ

व. चतुर्थमनुनु कालप्रसंगंबु विवरिंचेद ॥ 17 ॥

सी. मानवाधीश्वर ! मनुवु नालववाडु तामसुंडनग नुत्तमुनि वात
पृथ्वीपतुलु केतु पृथु नर ख्यातादुलतनि पुत्रुलु पदुरधिकबलुलु
सत्यक हरिवीर संज्ञुलु देल्पुलु त्रिशिख नाममुवाडु देवविभुडु
मुनुलु ज्योतिर्व्योम मुख्युलु हरि पुट्टें हरिमेधुनकु प्रीति हरिणियंदु

आ. ग्रहनिबद्धुडैन गजराजु विडिपिंचि
प्राण भयमुवलन बापि काचें
हरि दयासमुद्रु डखिल लोकेश्वरु-
डनिन शुकुनि जूचि यवनिविभुडु ॥ 18 ॥

कं. नीराट वनाटमुलकु, बोराटं बॅट्लु गलिगें, बुरुषोत्तमु चे
नाराट मॅट्लु मानेंनु, घोराटवि लोनि भद्रकुंजरमुनकुन् ॥ 19 ॥

कं. मुनिनाथ ! यी कथास्थिति
विनिपिंपुमु विनग नाकु वेडुक पुट्टॅन्
विनियॅद गणेंद्रियमुलु पॅनु बंडुवु
सेय मनमु प्रीति बॉदन् ॥ 20 ॥

---

गजेंद्र-मोक्षण की कथा

[व.] अब चतुर्थ मनु के काल (समय) का प्रसंग (वृत्तांत) बतलाऊँगा। १७ [सी.] हे मानवाधीश्वर (राजन्) ! उत्तम का भ्राता (भाई) तामस नाम से चतुर्थ मनु बना। केतु, पृथु, नर और ख्यात आदि उसके दस पुत्र हुए जो अधिक बलशाली पृथ्वीपति (राजा) हुए। सत्यक और हरिवीर कहलानेवाले देवता बने और त्रिशिख नामधारी देवेंद्र बन गया। ज्योतिस्, व्योम आदि मुनि बने। भगवान हरि हरिमेध और हरिणी के प्रियपुत्र के रूप में पैदा हुआ। [आ.] उसी ने ग्राह (मकर)-निबद्ध गजराज को बचाकर उसका प्राणभय दूर किया। अखिल लोकेश्वर हरि दया-समुद्र है। [इतना] कहने पर अवनि-पति (परिक्षित) शुक को देखकर, [पूछा] १८ [कं.] नीराट[1] (जलचर, मकर) तथा वनाट[1] (वनचर गज) में पोराट[1] (मुठभेड़) कैसे हुई ? घोर-अटवी (-जंगल) के भद्र-कुंजर का आराट[1] (सकट) पुरुषोत्तम (भगवान) के द्वारा किस प्रकार दूर हुआ ? १९ [कं.] हे मुनिनाथ ! इस कथा की स्थिति (हालत) [मुझे] सुनाओ; मुझे [उसे] सुनने की उत्कंठा हो रही

---

१ तेलुगु भाषा के देशी शब्द।

कं. ए कथलयंदु वुण्य, श्लोकुडु हरि सप्पबडुनु सूरिजनमुचे
ना कथलु पुण्यकथलनि, यार्कणिपुदुरु पेद्दलति हर्षमुनन् ॥ 21 ॥

व. इव्विधंबुन प्रायोपविष्टुंडैन परीक्षिन्नरेंद्रुंडु वादरायणि नडिगे; अनि चेप्पि, सभासदुलैन मुनुल नवलोकिंचि, सूतुंडु परम हर्षसमेतुंडै चेप्पे। अट्लु शुकुंडु राजुनकिट्लनियें ॥ 22 ॥

## अध्यायमु—२

सी. राजेंद्र ! विनु सुधाराशिलो नोक पर्वतमु त्रिकूटंबन दनरुचुंडु
योजनायुतमगु नुन्नतत्वंबुनु नंतिय वेडलुपु नतिशयिल्लु
गांचनायस्सार कलधौत मयमुलै मूडु श्रृंगंबुलु मीनसियुंडु
दटश्रृंग बहुरत्न धातु चित्रतमुलै विशलु भूनभमुलु देजरिल्लु

ते. भूरि भूज लता कुंज पुंजमुलुनु
म्रोसि परतेंचु सेलयेटि मोत्तमुलुनु
मरगि तिरिगेडु दिव्य विमानमुलुनु
जड्डल क्रीडिंचु किन्नरचयमु गलिगि ॥ 23 ॥

---

[मैं] उसे श्रवण करूँगा जिससे मेरी कर्णेंद्रियों को बड़ा उत्सव होगा और मन प्रीति प्राप्त करेगा । २० [कं.] जिन कथाओं में सूरिजनों (विद्वज्जनों) द्वारा पुण्यश्लोक-हरि बखाना जाता है उन्हें पुण्यकथाएँ मानकर वृद्ध-जन (बड़े लोग) हर्षपूर्वक श्रवण करते हैं ।" २१ [व.] इस प्रकार प्रायोपविष्ट परीक्षिन्नरेंद्र ने वादरायणि (शुक) से प्रश्न किया। ऐसा कह सभासद (सभा में बैठे) मुनियों का अवलोकन कर, सूत ने परम हर्ष के साथ [यह बात] कही। इस प्रकार शुक ने राजा से यों बताया । २२

## अध्याय—२

[सी.] हे राजेंद्र ! सुनो। सुधा-राशि (क्षीरसमुद्र) में त्रिकूट नामक एक पर्वत सुशोभित रहता है। वह दस हज़ार योजन उन्नत और उतना ही चौड़ा हो विलसित है। उसके तीन श्रृंग (चोटियाँ) कांचन (सोना), अयस्सार (फ़ौलाद) और कलधौत (चाँदी) के बने विराजमान हैं। अनेक रत्नों और धातुओं से वे गिरिशिखर चित्रित (रंग-विरंगे) दिखाई देते और भूमि, आकाश और दिशाएँ उनकी कांति से प्रकाशित हो उठती हैं। [ते.] बड़े-बड़े वृक्ष, लता और कुंज पुंजों और मुखरित झरनों के समूहों, चक्कर काटते हुए घूमतेवाले दिव्य विमानों, उसकी घाटियों में झुंड के झुंड क्रीड़ाएँ करनेवाले किन्नरों से [वह पर्वत सुंदर बना हुआ था] । २३ [व.] वह [पर्वत] मातुलुंग, लवंग, लुंग, चूत (आम), केतकी

व. अदि मट्रियुनु मातुलुंग लवंग लुंग चूत केतकी भल्लातकाम्रातक सरळ पनस बदरी वकुळ वंजुळ वट कुटज कुंद कुरुवक कुरंटक कोविदार खर्जूर नारिकेळ सिंदुवार चंदन पिचुमंद मंदार जंबू जंभीर माधवी मधूक ताल तक्कोल तमाल हिंताल रसाल साल प्रियाळु बिल्वामलक क्रमुक कदंब करवीर कदळी कपित्थ कांचन कंदराळ शिरीष शिंशुपाशोक पलाश नाग पुन्नाग चंपक शतपत्र मरुवक मल्लिका मतल्लिका प्रमुख निरंतर वसंतसमय सौभाग्य संपदंकुरित पल्लवितकोरकित कुसुमित फलित ललित विटप विटपि वीरुन्निवहालंकृतंबुनु, मणिवालुकानेक विमल पुलिन तरंगिणी संगत विचित्र विद्रुम-लता महोद्यान शुक पिक निकर निशित समंचित चंचूपुट निर्दळित शाखि शाखांतर परि क्व फल रंध्र प्रवर्षित रसप्रवाह बहुळंबुलुनु, कनकमय सलिल कासार कांचन कुमुद कल्हार कमल परिमळ मिळित कबळाहार संततांगीकार भार परिश्रांत कांता समालिंगित कुमार मत्त मधुकर विट समुदय समीप संचार समुदंचित

---

(केवड़ा), भल्लातक, आम्रातक, सरळ, पनस (कटहल), बदरी (बेर), वकुल (मौलसिरी), वंजुल, वट (बरगद), कुटज (कुरैया), कुंद (कनेर), कुरुवक, कुरंटक, कोविदार, खर्जूर, नारिकेल, सिंदुवार, चंदन, पिचुमंद, मंदार, जबू (जामुन), जंबीर, माधवी, मधूक (महुआ), ताल (ताड़), तक्कोल, तमाल, हिंताल (छोटा खजूर), रसाल (आम), साल, प्रियालु, विल्व (वेल), आमलक (आँवला), क्रमुक (सुपारी), कदब, करवीर (कनेर), कदली (केला), कपित्थ (कैथ), कांचन (नागकेसर), कंदराल, शिरीष (सिरिस), शिंशुप (शीशम), अशोक, पलाश (टेसू), नाग, पुन्नाग, चंपक, शतपत्र (कमल), मरुवक, मल्लिका-मतल्लिका (-श्रेष्ठ) आदि फलफूलों के वृक्षों के साथ निरंतर वसंत समय की सौभाग्य-संपत्ति से युक्त हो; अंकुरित, पल्लवित, कोरकित, कुसुमित, फलित, ललित-विटप-विटपी-लता-निवह (पेड़-पौधे और लतासमूह) से वह अलंकृत [रहता था।] और तरंगिणी (नदी) के मणिवालुकामय (मणि और रेत से युक्त) अनेक विमल पुलिनों (तटों) की संगति से विचित्र विद्रुम (मूँगे के रग के कोंपल वाले) लताओं के महोद्यान के शाखि-शाखांतरों पर के शुक-पिक-निकर (-समूह) अपने निशित (तेज) और समंचित चंचू-पुटों से परिपक्व फलों को निर्दलित करता था (काटता था); उन फलों के रंध्रों से रस का प्रवाह बहुलता से प्रवर्षित होता (बह निकलता) था। कनकमय (सुनहले) सलिल (जल) से भरे कासारों (पोखरों) में खिले कांचन-कुमुदों, कल्हारों और कमलों के परिमल से सुवासित मधु का आहार ग्रहण करते-करते, भार से परिश्रांत (थके) हुए मत्त मधुकर-विट-समुदय को उसकी कांताएँ (भौरियाँ) समालिंगित करती फिरती थीं। उनके

शकुंत कलहंस कारंडव जलकुक्कुट चक्रवाक बलाहक कोयष्टिक मुखर जलविहंग विसर विविध कोलाहल बधिरीभूत भू नभोंतराळंबुनु, तुहिनकरकांत मरकत कमलराग वज्र वैडूर्य नील गोमेधिक पुष्यराग मनोहर कनक कलधौत मणिमयानेक शिखरतट दरी विहरमाण विद्याधर विबुध सिद्ध चारण गंधर्व गरुड किन्नर किंपुरुष मिथुन संतत सरस सल्लाप संगीत प्रसंग मंगळायतनंबुनु, गंधगज गवय गंडभेरुंड खड्ग कंठीरव शरभ शार्दूल चमर शल्य भल्ल सारंग सालावृक वराह महिष मर्कट महोरग मार्जालादि निखिल मृगनाथ समूह समर सन्नाह संरंभ संचकित शरणागत शमनकिंकरंबुनुने यॊप्पु नप्पर्वत समीपंबुनंदु ॥ 24 ॥

कं. भिल्ली भल्ल लुलायक
भल्लुक फणि खड्ग गवय बलिमुख चमरी
झिल्ली हरि शरभक किटि
मल्लाद्भुत काक घूकमय मगु नडविन् ॥ 25 ॥

समीप में उड़कर संचार करनेवाले शकुंत, कलहंस, कारंडव, जलकुक्कुट, चक्रवाक, बलाहक, कोयष्टिक आदि जलविहंगों का विसर (झुंड) अनेक प्रकार से जो कोलाहल मचाता था, उससे भू-नभोंतराल (आकाशमंडल) बधिरीभूत होता था (बहरा बन जाता था)। तुहिनकरकांत (चंद्रकांत), मरकत, कमलराग (पद्मराग), वज्र, वैडूर्य, नील, गोमेधिक, पुष्यराग, आदि रत्नों से मनोहर बने, कनक (सोना), कलधौत (चाँदी) और मणियों से निर्मित अनेक शिखर-तटों पर तथा कंदराओं में विबुध (देवता), सिद्ध, चारण, गंधर्वगरुड़, किन्नर और किंपुरुषों के मिथुन (पति-पत्नियों की जोड़ियाँ) विहार किया करते थे, उनके संतत (लगातार किये जानेवाले) सरस सल्लाप संगीत के प्रसंगों से वे प्रदेश मंगलायतन बने रहते थे। गंधगज (मत्तगज), गवय (वनवृषभ), गंडभेरुंड, खड्गमृग (गैंडा), कंठीरव (सिंह), शरभ, शार्दूल (बाघ), चमर, शल्य (साही), भल्ल (भालू), सारंग (हिरन), सालावृक (भेड़िया), वराह, महिष (भैंसा), मर्कट, महोरग (अजगर), मार्जाल (बिलाव) आदि समस्त मृग-समूह का समर-सन्नाह-संरंभ (लड़ने-भिड़ने का कोलाहल) देखकर यमभट भी संचकित होकर [उस पर्वत की] शरण लेते थे। इस प्रकार से सुशोभित उस पर्वत के समीप में। २४ [कं.] जो वन था, उसमें भिल्ली (वनबिलाव), भल्ल (भालू), लुलायक (वनमहिष), भल्लुक, फणि (साँप), खड्ग (गैंड़ा), गवय (वनवृषभ), बलिमुख (बंदर), चमरी, झिल्ली (झींगुर), हरि (सिंह), शरभक (ऊँट), किटिमल्ल (जंगली सूअर), काक (कौआ), घूक (उल्लू) आदि अद्भुत [जीव-जंतु] भरे हुए

शा. अन्यालोकन भीकरंबुलु जिताशानेकपानीकमुल्
वन्येभंबुलु गौन्नि मत्त तनुलै व्रज्याविहारागतो-
दन्यत्वंबुन भूरि भूधर दरी द्वारंबुलंदुंडि सौ-
जन्य क्रीडल नीरुगालिवडि गासारावगाहार्थमै ॥ 26 ॥

आ. अंधकार मॆल्ल नद्रि गुहांतर-
वीथुलंदु बगलु वेऽचि डागि
यॆडरु वेचि संध्य निनुडु वृद्धत नुन्न
वॆडलॆ ननग गुहलु वॆडलॆ गरुलु ॥ 27 ॥

कं. तलगवु गौंडलकैननु, मलगवु सिंगमुलकैन मार्कॊनु कडिमि
गलगवु पिडुगुलकैननु, निल बल संपन्न वृत्ति नेनुगु गुन्नल् ॥ 28 ॥

सी. पुलुल मॊत्तंबुलु पॊदरिंड्ललो दूरु घोर भल्लूकमुल् गुहलु सॊच्चु
भूदारमुलु नेलबॊरियललो डागु हरिदंतमुल केगु हरिणचयमु
मडुगुल जॊरबारु महिषसंघंबुलु गंडशैलंबुल गपुलु प्राकु
वल्मीकमुलु सॊच्चु वनभुजंगंबुलु नीलकंठंबुलु निंगि कॆगयु

ते. वॆऽचि चमरी मृगंबुलु विसरु वाल
चामरंबुल विहरण श्रममु वाय

थे। २५ [शा.] दूसरों के देखने में भीकर, दिग्गजों को मात करनेवाले कुछ वनगज के झुंड, मत्त-तनुवाले, अपनों के साथ धूमधाम कर थक जाते; और प्यासे रहने के कारण पर्वत की कंदराओं में से निकलकर जल की खोज में, अवगाहन के लिए कासार (पोखरे) की ओर बढ़ते रहते थे। २६ [आ.] पर्वत की गुहाओं से निकलते समय करि (हाथी) ऐसा दीखते थे, मानो वह अंधकारसमूह हो जो [सूर्य से] भयभीत हो, दिन के समय अद्रि-गुहांतरों में जा छिपा था, और समय की प्रतीक्षा में संध्याकाल में सूर्य को मंद पड़ा पाकर [सहसा] बाहर निकल पड़ा था। २७ [कं.] वहाँ पर के कलभ (हाथी के बच्चे) भी, बलसंपन्न थे; [सामने पड़नेवाले] पहाड़ों से भी वे हटकर नहीं निकलते; सिंहों का सामना होने पर भी वापस नहीं मुड़ते; साहस से जूझते, बिजली के गिरने पर भी घबड़ाते नहीं थे। २८ [सी.] [उन गजों को देखकर] व्याघ्रों के झुंड झाड़ियों में छिप जाते; घोर भल्लूक (भालू) गुफाओं में घुस जाते; भूदार (जंगली सूअर) बिलों में जा लुकते; हिरनों का समूह चतुर्दिक् भाग निकलता, महिषों के संघ जलाशयों में पैठ जाते; कपिवृंद गंड-शैलों (चट्टानों) पर चढ़ जाते; वनभुजग (जंगल के सर्प) वल्मीकों (बाँबियों) में घुस जाते; नीलकंठ (मोर) आकाश में उड़ जाते, [ते.] भयद (भयंकर) परिहेला (खिलवाड़) करते हुए जब वे भद्रगज वनविहार करते, तब उनकी हवा

भयद परिहेल विहरिंचु भद्रकरुल
गालि वाड्रिन मात्रान जालि बॊंदि ॥ 29 ॥

कं. मदगज दानामोदमु, कदलनि तमकमुल द्रावि कडुपुलु निंडन्
बॊंदलुचु दुम्मॆदकॊदमल, कदुपुलु जुंजुम्मटंचु गानमु सेसॆन् ॥ 30 ॥

कं. तेटि यॊकटि यॊरु प्रियकुनु
माटिकि माटिकिनि नाग मदजल गंधं-
बेटिकनि तन्नु बॊंदॆडि
बोटिकि नंदिच्चु निडु बोट्टुदनमुनन् ॥ 31 ॥

क. अंगीकृत रंगन्मा, -तंगी मदगंधमगुचु ददुदयु वेड्कन्
संगीत विशेषंबुल, भृंगीगण मॊप्पं ग्रानु पॆट्टॆडि माड्किन् ॥ 32 ॥

कं. वल्लभलु वारि मुन्पड, वल्लभमनि मुसरिरॆनि वारणदानं
बॊल्लक मधुकरवल्लभु, -लुल्लंबुल बॊंदिरॆल्ल युल्लासंबुल् ॥ 33 ॥

व. अप्पुडु ॥ 34 ॥

म. कलभंबुल् चॆरलाडु वल्वलमु लाघ्राणिंचि मट्टाडुचुन्
फलभूजंबुलु रायुचुन् जिवुरुजॊंपंबुल् वडिन् मेयुचुन्
बुलुलं गारॆनुपोतुलन् मृगमुलन् पोनीक शिक्षिपुचुन्
गॊलकुल् सॊच्चि कलंपुचुन् गिरुलपै गॊंडिबळ्ळु गोराडुचुन् ॥ 35 ॥

---

लगने मात्र से भयभीत होकर, चमरी मृग अपनी पूँछों से हवा करते हुए, उन गजों के विहरण के श्रम का परिहार करते थे। २९ [क.] मदगजों का सुवासित दानजल को अचंचल आसक्ति से पेट भर पी-पीकर, मस्त भौंरों के झुंड 'झु-झुं' शब्द करते हुए, झंकार के साथ गान किया। ३० [कं.] एक भौंरे ने यह कहकर कि अन्य [भौंरे] की प्रिया को मैं बार-बार गजमदजल-गंध क्यों दूँ, अपने में आसक्त प्रिया (भौंरी) को सरसता के साथ वह सुगंधद्रव्य पहुँचा दिया। ३१ [कं.] भृंगीगण (भौंरियों का समूह) मातंगियों (हथिनियों) की मदगंध में अत्यंत आसक्त हो, मानो अपने को भूलकर, संगीत विशेष (झंकार) में अति उत्साह से झूमने लगा। ३२ [कं.] वल्लभाएँ (भौंरी, प्रियाएँ) जब दौड़कर सामने आतीं और प्रेम से [मदजल को] घेर लेतीं तब उनके मधुकर-वल्लभ (प्रेमी भौंरे) वारणदान (गज के मदजल) की आसक्ति छोड़कर, हृदय में उल्लास भरकर प्रियाओं से जा मिलते। ३३ [व.] उस समय। ३४ [म.] कलभ (हाथी के बच्चे) पल्वलों (पोखरों) में लोटते; सूँघकर विचरते; फलवृक्षों से अपने शरीर रगड़ते; कोमल पल्लव-ग्रास चरते, व्याघ्रों, भैंसों और वनमृगों को न जाने देकर (रोककर) उन्हें दंडित करते; तालाबों में

कं. तोंडंबुल मदजलवृत, गंडंबुल कुंभमुलनु घट्टन सेयं
गोंडलु दलक्रिंद्रै पडु, बेंडु पडुन् दिशलु सूचि बेंगडुन् जगमुल् ॥ 36 ॥

कं. ऎक्कड जूचिन लॆक्ककु, नॆक्कुवयै यडवि नडचु निभयूथमुलो-
नॊक्क करिनाथु डॆडतॆगि, चिक्कॆ नॊक करेणुकोटि सेविंपंगन् ॥ 37 ॥

व. इट्लु वॆनुक मुंदर नडुम नुभय पार्श्वंबुल दृषार्दितंबुलै यरुगुदॆंचु नेनुंगु
गमुलं गानक तॆरुंगुतप्पि तॊलंगुडुपडि, यीश्वरायत्तंबैन चित्तंबु संवित्तंबु
गाकुंडुटंजेसि तानुनु, दन करेणु समुदयंबुनु नॊक्क तॆरुवै पोवुचु ॥ 38 ॥

सी. पल्वलंबुल लेतपच्चिक मच्चिक जॆलुल कंदिच्चु निच्चिकमु लेक
निवुरुजॊंपमुल ग्रोव्वॆलयु पूगोम्मल ब्राणवल्लभुलकु बालु वॆट्टु
घन दान शीतल कर्णताळंबुल दयितल चॆमटार्चु दनुवु लरसि
मृदुवुगा गोम्मल मॆल्लन गळमुलु निवुरुचु ब्रेमतो नॆरपु वलपु

ते. पिरुदु चक्कट्ल डग्गरि प्रेमतोड
डासि मूर्कोनि दिविकि दोंडंबु सापु
वॆद विवेकिंचु ग्रीडिंचु विश्रमिंचु
मत्त मातंगमल्लंबु महिमतोड ॥ 39 ॥

---

घुसकर [उन्हें] गँदला बनाते; चट्टानों को दाँतों से कुरेदते रहते। ३५ [कं.] सूँड़ से, मदजल भरे गंडस्थलों (गालों) से, कुंभस्थलों से प्रहार करने पर पहाड़ भी उलटकर गिर जाते, दिशाएँ निस्तेज पड़ जातीं और जग भयकंपित होता। ३६ [कं.] जहाँ देखो वही, वन में विचरते हुए असंख्य गजयूथ में से एक करिनाथ (हाथी) अलग हो चला। करोड़ों करेणु (हथिनियाँ) उसकी सेवा में साथ-साथ चलीं। ३७ [व.] यों आगे, पीछे, बीच में, उभय (दोनों) पार्श्वों में तृषार्दित होकर (प्यास से पीड़ित होकर) चलनेवाले हस्तिसमूह से अलग होकर, रास्ता भूल-भटककर, व्याकुल होते, ईश्वरायत्त बने अपने चित्त के बुद्धियुक्त न होने के कारण [वह गजराज] अपनी करेणु-समुदाय के साथ दूसरे मार्ग से जाते हुए, ३८ [सी.] वह मत्त मातंगों का मल्ल (पहलवान) पोखरों में लगी हरी-हरी (मुलायम) घास, प्यार में कसर न रखकर, अपनी सखियों को पहुँचाता; नरम झाड़ियों के रसदार फूलों और टहनियों को [चुन कर] अपनी प्राणवल्लभाओं (प्रियाओं) में बाँट देता; अपने घने मदजल से शीतल बने हुए कर्ण रूपी पखों से हवा करके उन प्रियाओं के तनु (शरीर) पर का पसीना सुखा देता; [ते.] उनके गालों पर अपने दाँत मृदुता से फेरते हुए उन पर अपना प्रेम जताता; उनके पृष्ठ भाग (जांघ) के समीप खिसक कर प्रेम से सूँघता और अपनी सूँड़ ऊपर आकाश की तरफ़ फैलाता; करिणी का ऋतुकाल परखता, उसके साथ क्रीडा करता और विश्राम करता। ३९

सी. तन कुंभमुल पूर्णतकु डिग्गि युवतुल कुचमुलु पय्येद कॊंगु लोग
दन यानगंभीरतकु जाल कबलल यानंबु लंदॆल नंडगोनग
दन करश्री गनि तलगि बालल चिरु दॊडलु मेखलदीप्ति दोडुपिलुव
दन दंतरुचि कोडि तरुणुल नगवुलु मुखचंद्र दीप्तुल मुसुगु दिगुव

ते. दनदु लावण्यरूपंबु दलचि चूड
नंजनाभ्रमु कपिलादि हरिदिभेंद्र
दयितलंदरु दनवॆंट दगिलि नडुव
गुंभिविभुडॊप्पॆ नॊप्पुल कुप्प बोलि ॥ 40 ॥

व. मरियु नाना गहनविहरण महिमतो मदगजेंद्रंबु मार्गंबु दप्पि, पिपासा
परायत्त चित्तंबुन मत्तकरेणुवुल मॊत्तंबुनुं दानुनु जनि चनि ॥ 41 ॥

म. अट गांचॆन् गरिणीविभुंडु नव फुल्लांभोज कल्हारमुन्
नटदिंदिंदिर वारमुन् गमठ मीन ग्राह दुर्वारमुन्
वट हिंताळ रसाल साल सुमनो वल्ली कुटी तीरमुन्
चटुलोद्धूत मराळ चक्र बक संचारंबु गासारमुन् ॥ 42 ॥

---

[सी.] उस गजराज के कुंभों की पूर्णता (स्थूलता) से हार कर युवतियों के कुच [युगल] मानो [ओढ़नी के] अंचल में छिप जाते; उसके यान (चाल) की गंभीरता की समता न कर सकने के कारण अबलाओं का यान (चाल) मानो नूपुरों की सहायता लेता; उसकी करश्री (सूंड़ की शोभा) देखकर बालाओं की छोटी जाँघें डर जातीं और मेखला (करधनी) की दीप्ति (सौंदर्य) का सहारा लेती; उसके दाँतों की रुचि (चमक) से हार खाकर, तरुणियों (युवतियों) की हँसियाँ मुखचंद्र की दीप्तियों में डूब जातीं; [ते.] उसका लावण्यरूप (सुंदर आकार) देखने के लिए अंजना, अभ्र, कपिल आदि दिग्गजों की दयिताएँ (स्त्रियाँ) [उसके] पीछे लगकर चलतीं। वह कुंभी-विभु (गजराज) इस प्रकार सौंदर्यराशि बन शोभित रहा। ४० [व.] और अनेक गहन वनों में विहरण करते रहने के कारण वह मदगजेंद्र पिपासा-ग्रस्त कंठ से मत्त-करेणुसंघ के साथ स्वयं चल-चलकर, ४१ [म.] उस करिणी-विभु (गजपति) ने एक स्थान पर एक ऐसा कासार (सरोवर) देखा, जिसमें नव-फुल्लांभोज-कल्हार (टड़के खिले कमल और कल्हार) थे; नटत् (नाचते हुए) इंदिंदिरों (भौंरों) का समूह था; कमठ (कछुए), मीन, और ग्राहों (मगरों) के कारण जो दुर्गम था; जिसके तीर पर वट (बरगद), हिंताल (खजूर), रसाल (आम), और साल के वृक्ष थे तथा सुमनो-वल्ली और कुटी (पुष्पों वाली लताएँ) थी, और वर तेज़ी से ऊपर उड़नेवाले मराल (हस), चक्र (चकवा) और बकों के संचार से युक्त था। ४२

व. इट्लनग्य पुरुषसंचारंबुनु, निष्कळंकंबुनुनैन यप्पंकजाकरंबु
चूडगनि ॥ 43 ॥

सी. तोयजगंधंबु दोगिन चल्लनि मेल्लनि गाड्पुल मेनु ललर
गमल नाळाहार विमल वाक्कलहंस रवमुलु सेवुल पंडुवुलु सेय
फुल्लदिंदीवरांभोरुहामोदंबु घ्राणरंध्रंबुल गारविंप
निर्मल कल्लोलनिर्गतासारंबु वदनगह्वरमुल वाडु दीपं

ते. द्रिजगदभिनव सौभाग्य दीप्तमैन
विभव मीक्षणमुलकुनु विंदु सेय
नरिगि पंचेंद्रिय व्यवहारमुलनु
मरचि मत्तेभयूथंबु मडुगु जोच्चें ॥ 44 ॥

कं. तोंडंबुल बूरिपुचु, गंडंबुल जल्लुकोनुचु गळगळ रवमुल्
मेंडुकोन वलुदकडुपुलु; निंडन् वेदंडकोटि नीरं द्रावेन् ॥ 45 ॥

व. अप्पुडु ॥ 46 ॥

म. इभलोकेंद्रुडु हस्तरंध्रमुल नीरेक्किंचि पूरिंचि चं-
डभ मार्गंबुन केत्ति निक्कि वडि नुड्डाडिंचि पिंजिप ना

---

[व.] यों अनन्य (अन्य जीवों के)-संचार-रहित, निष्कलंक बने हुए उस पंकजाकर (कमलाकर, सरोवर) को देखकर, ४३ [सी.] जबकि तोयज-गन्ध (कमलगन्ध) में सनकर शीतल मंद पवनों से शरीर के विश्रान्त होने पर, कमलनाल का आहार ग्रहण करने से विमलवाक् (बोल) उच्चरित करनेवाले कलहंसों के कलरव (मधुर ध्वनि) के कर्णोत्सव करने पर, फुल्लत् (विकसित) इंदीवर (नीलकमल) और अंभोरुह के आमोद (सुगध) के घ्राणरंध्रों (नाक के छेदों) को गौरवान्वित करने पर, निर्मल-कल्लोल (-जल की तरंगों) से निकले फुहार के वदन-गह्वर (वदन रूपी गुफा) के सूखेपन को दूर करने पर, [ते.] त्रिजगत (तीनों लोकों) के अभिनव-सौभाग्य से दीप्त (प्रकाशित) [प्रकृति] वैभव के वीक्षणों (नेत्रों) को उत्सव करने (आनन्द देने) पर, वह मत्तेभयूथ (मत्तगज-समूह) ने पंचेंद्रियों के व्यापार को भूलकर (होश-हवास भूलकर), उस पोखरे में प्रवेश किया। ४४ [कं.] सूंड़ों में भरकर, गडस्थलों (गालो) पर छिड़कते हुए, 'गट-गट' शब्दों के अधिक होने पर, उस वेदंडकोटि (गज्जूह) ने अपने बड़े-बड़े पेट भरकर पानी पी लिया। ४५ [व.] उस समय। ४६ [म.] इभलोकेंद्र (गजराज) ने हस्त (सूंड़) के रंध्रों में पानी चढ़ाकर, भरकर, चंडभ (सूर्य, आकाश) की ओर उठाकर, उसे इधर-उधर घुमाकर ज़ोर से जब पिचकारी-सी छोड़ी तो उस पानी के साथ नक्र, ग्राह

रभटि न्नीरमुलोन वॆल्लॆगसि नक्र ग्राह पाठीनमुल्
नभमंदाडॆडु मीन कर्कटमुलन् वट्टॆन् सुरल् श्रान्पडन् ॥ 47 ॥

व. मरियु, नग्गजेंद्रंबनर्गळ विहारंबुन ॥ 48 ॥

सी. करिणी करोज्झित कंकण च्छट दोगि सॆलयेटि नीलाद्रि चॆलुवु दॆगडु
हस्तिनी हस्तविन्यस्त पद्मंबुल वेयुगन्नुल वानि वॆरपु सूपु
कलभ समुत्कीर्ण कल्हार रजमुन गनकाचलेंद्रंबु घनत दाल्चु
गुंजरी परिचित कुमुद कांडंबुल फणिराजमंडन प्रभ वहिंचु

आ. मदकरेणु मुक्त मौक्तिक शक्तुल, मॆरुगु मॊगिलुतोड मेलमाडु
नॆदुरुलेनि गरिम निभराज मल्लंबु, वनजगेह केळि व्रालु नपुडु ॥ 49 ॥

व. मरियु ना सरोवरलक्ष्मि मदगजेंद्र विविध विहार व्याकुलित नूतन लक्ष्मीविभवयै, यनंगविद्या निरूढ पल्लवप्रबंध परिकंपित शरीरालंकारयगु कुसुमकोमलियुनुं बोलॆ, व्याकीर्ण चिकुर मत्तमधुकर निकरयु,

(मगर) और पाठीन उछलकर नभ में विचरनेवाले मीन और कर्कट (ग्रह) को पकड़ने लगे। इसे देख देवता लोग विस्मित हुए। ४७ [व.] और वह गजेंद्र अनर्गल (अवाध) रूप से [उस सरोवर मे] विहार करते हुए, ४८ [सी.] वह इभराजमल्ल (गजराजवीर) वनजगेह (कमलाकर, सरोवर) में केलि (स्वच्छंद विहार) करते समय असमान गरिमा (महिमा) से सपन्न हुआ। करिणी की सूंड़ से छूटी जलधारा में तर होकर वह निर्झर से युक्त नीलाद्रि की शोभा को विनिंदित करता, हस्तिनी (हथिनी) के हस्त (सूंड़) से विन्यस्त (रखे हुए) पद्मों के साथ [वह गजराज] सहस्रनेत्र (-इंद्र) की रीति (ढंग) व्यक्त करता, कलभों (हाथी के बच्चों) से छिड़के गये कल्हार-रज (कमलों का पराग) को धारण कर वह हाथी कनकाचल (सुमेरु पर्वत)-सा गौरव प्राप्त करता, [आ.] कुंजरियों (हथिनियों) से दिये गये कुमुदकाण्डों (कमलनालों) द्वारा वह गजराज फणिराज-मंडन (नागभूषण— शिव) की प्रभा (कान्ति) वहन करता; मदकरेणुओं (हथिनियो) से छूटे मौक्तिक शुक्तियों (मोती के सीपो) के कारण वह मत्तगज कौंधनेवाले वादल की हँसी उड़ाता [इस प्रकार वह गजराज शोभित हो रहा था।] ४९ [व.] और वह सरोवर-लक्ष्मी उस मदगजेंद्र के किये विविध विहारों से व्याकुलित हो नूतन लक्ष्मी (शोभा)-विभव से संपन्न होकर, उस कुसुमकोमल युवती के समान दीखती थी जो अनंगविद्या (कामतत्व) में निरूढ़ (प्रसिद्ध) विटपुरुषों की कामकेलि द्वारा कंपित शरीर से अलंकृत हुई हो; [सरोवर में व्याप्त] मत्तमधुकर निकर (मदमस्त-भ्रमर-समूह) उस युवती के व्याकीर्ण (बिखरा) चिकुर-जाल (केशपाश) हो; मकरंद-रहित कमल उस कोमली का

६७

विगतरसवदनकमलयु, निजस्थान चलित कुच रथांगयुगळयु लंपटित
जघन पुलिन तलयुनै युंडे। अंत ॥ 50 ॥

सी. भुगभुगायुत भूरि बुद्बुद च्छटलतो गदलुचु दिविकि मंगंबु लॅगय
भुवन भयंकर फूत्कार रवमुन घोर नक्र ग्राहकोटि बॅगड
वाल विक्षेप दुर्वार झंझानिल वशमुन घुमघुममावर्त मडर
गल्लोल जाल संघट्टनंबुल दटी तरुलु मूलमुलतो धरणि गूल

ते. सरसिलोनुंडि पॊडगनि संभ्रमिंचि
युदिरि कुप्पिंचि लंघिंचि हुंकरिंचि
भानु गर्वाळिंचि पट्टु स्वर्भानुपगिदि
नीवक मकरेंद्रुडिभराजु नीडिसि पट्टे ॥ 51 ॥

कं. वडि दप्पिंचि करींद्रुडु, निडुद करंबॆत्ति ब्रेय नीराटं बुं-
बॊड वडगिनद्लु जलमुल, बडि कडुवडि वट्टॆ बूर्व पदयुगळंबुन् ॥ 52 ॥

चं. पदमुल बट्टिनं दलकुबाटॊकयितयु लेक शूरतन्
मदगज वल्लभुंडु धृतिमंतुडु दंतयुगांत घट्टनन्

---

विगत-रस-वदन (अधर-रस-हीन-मुख) हो; रथागयुगल (चक्रवाकों की जोड़ी) जो निजस्थान (अपने वासस्थान) से संचलित [हट गई], उस नायिका का कुच-युग्म हो, सरोवर का पुलिनतल (रेतीला तट) जो [हाथियों के संचार के कारण] छितरा गया, उस युवती का जघन स्थल (नितंब प्रदेश) हो [यों वह सरोवर दीख पड़ा।] तब। ५० [सी.] एक मकरेंद्र (मगर) ने सरसी (तालाव) मे से उस इभराज (गजराज) को देख, व्यग्र हो, दम भरकर, क्रोध से हुंकार करता हुआ उसे जकड़कर ऐसा पकड़ लिया जैसा स्वर्भानु (राहु ग्रह) भानु (सूर्य) को दबोच पकड़ता है। उस समय [सरोवर में से] "भुग-भुग" शब्द करते हुए बुदबुदों के साथ बड़ी-बड़ी लहरें आकाश तक उछल पड़ीं; [उस मकरेंद्र के किये] लोक-भयंकर फूत्कार-रव (ध्वनि) से घोर नक्र-ग्राह भी भयभीत हो उठे; [ते.] मगर के वालविक्षेप (पूँछ फटक मारने) के कारण जो प्रबल झंझानिल चल पड़ा, उसके प्रभाव से तालाव में "घुम-घुम" घुमरियाँ फैल गईं; कल्लोलजाल (बड़ी-बड़ी लहरो) के संघट्टनों (धक्कों) से तट पर के तरु (वृक्ष) समूल धराशायी हुए। ५१ [क.] करींद्र ने आक्रमण को बचाकर, अपनी लंबी सूंड़ उठाकर, जब आघात किया तो वह जलचर

जॅदरग जिम्मॅ नम्मकरि चिप्पलु पावुलु दप्प नॉप्पड्न्
वदलि जलग्रहंबु करि वालमु मूलमु जॉरॅ गोड्लन् ॥ 53 ॥

कं. करि दिगुचु मकरि सरसिकि
गरि दरिकिनि मकरि दिगुचु गरकरि वॅरयन्
करिकि मकरि मकरिकि गरि
भरमन निटलतल कुतल भटुलदरिपडन् ॥ 54 ॥

व. इट्लु करिमकरंबुलु रॅडुनु नॊडॊंड समुद्दंड दंडंबुलं तलपडि, निखिल लोकालोकन भीकरंबुलॆ, यन्योन्य विजयश्री वशीकरंबुलॆ, संक्षोभित कमलाकरंबुलॆ, हरि हरियुनु, गिरिगिरियुनुं दाकि, पिरु तिवियक पॆनंगु तॆरंगुन, नीराटंबॆन पोराटंबुन बट्टुचु वॅलिकि लोनिकि बिगुचुचु, गॊलंकु कलंकं बंद, गडुवडि नट्टट्टुपडि, तडवडक, बुडबुडानुकारंबुलॆ, भुगुलु भुगुल्लनु चप्पुळ्ळतो नुरुवुलु गट्टुचु, जलंबुलुप्परंबुन कॆगयं जप्परिपुचु, दप्पक वदनगह्वरंबुल नप्पळिपुचु निशित नितांत दुरंत दंतकुंतंबुल नितितलु दुनियलॆ, नॆप्पळंबुनंबुनुकचिप्पलु कुदुळ्ळु रक्तंबुलु ग्रम्मुदेर, हुम्मनि यॊक्कुम्मडि बिम्मुचु, नितरेतर समाकर्षणंबुलं गदलक, पदंबुल् मॊदलिपट्टु

---

से मगर की पीठ की हड्डियों को बुरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया; तब उस जलग्रह (मगर) ने पकड़ छोड़कर, हाथी के पैर झट छोड़कर, उसकी पूंछ का मूलभाग दाँतों से चीर डाला। ५३ [कं.] वह मकरी, करी (हाथी) को सरसी (पोखरे) मे खीचता, और करी मकरी को दरी (किनारे) पर खीचता, [यों दोनों में] वैर बढ़ता गया। "करी से मकरी बढ़कर है, मकरी से करी बढकर है" —इस तरह कहते हुए अतल और कुतल [लोकों] के वीर चकित हुए। ५४ [व.] यों करि (हाथी) और मकर (मगर) दोनों परस्पर एक-दूसरे को समुद्दंड दंड (अतिशय पीड़ा) देते हुए भिड़ पड़े। वे अखिल लोकों के देखने में भीकर (भयंकर) लगे। अन्योन्य (एक-दूसरे) पर विजयश्री पाना चाहते हुए उन दोनों ने कमलाकर (सरोवर) को संक्षोभित कर दिया; हरि (सिंह) हरि से, गिरि (पहाड़) गिरि से टकराकर पीठ फेरे बिना जैसे लड़ते हैं वैसे ये दोनों [हाथी और मगर] जलयुद्ध में एक-दूसरे को पकड़ते, [पोखरे के] अंदर खीचते, बाहर घसीटते, इधर-उधर जोर से गिरते पड़ते, जलाशय को गंदला बनाते, "बुड़", "बुड़" शब्द करनेवाले बुलबुले निकालते, फेनिल पानी मुंह में भरकर 'भुगुल', 'भुगुल', —शब्द के साथ ऊपर आकाश की तरफ़ वेग से फेंकते। नितांत, दुरन्त (डरावने), नितान्त-निशित कुंतों (अत्यंत तेज भालों) रूपी दाँत [एक-दूसरे के] खोपरों में भोंककर उसके चिप्पे [हवा में] उड़ाते; हुंकार कर सहसा किये जानेवाले आघातों से

वडलक कुदुरैयुंडुचु, बरिभ्रमण वेगंबुन जलंबुलं दिरुगुचु, मकर कमठ कर्कटगंडक मंडूकादि सलिल निलयंबुल प्राणंबुलु क्षीणंबुलगा नौकटौकटि दाकु रभसंबुन निवकलुवड त्रवकं द्रोक्कुचु, मेंडुचेंडि, बेंडुवडि, नाचु गुल्लचिप्प तंडंबुलं बरस्पर ताडनंबुलकु नड्डंबुगा नोड्डुचु नोल मासगोनक गेलुपुदलंपुलु बेट्टिदंबुलै रेट्टिप, नहोरात्रंबुलं बोलें ग्रमक्रम विजृंभमाणंबुलै, बहुकाल कलहविहारंबुलै, निर्गत निद्राहारंबुलै, यवक्र पराक्रमघोरंबुलै, पोरुचुन्न समयंबुन ॥ 55 ॥

कं. जवमुनु जलमुनु बलमुनु
विविधमुलुग बोरु करटि वीरतकु भुविन्
दिवि मकर मीन कर्कट
निवहमु लोक्कटन मित्रनिलयमु बोवेन् ॥ 56 ॥

शा. आटोपम्मुन जिम्मु ड्रोम्मगल वज्राभील दंतम्मुलन्
दाटिचुन् मेंड जुट्टिपट्टि हरि दोर्दंडाभ शुंडाहतिन्
नीटन् माटिकि माटिकि दिगुवगा नीराटमुन्नोटि पो-
राटं दोटमिपाटु जूपुट करण्याटंबु वाचाटमै ॥ 57 ॥

---

उनके अंग छिद जाते और उनसे रक्तधाराएँ फूटकर फव्वारे-सदृश ऊपर निकलती; समान बलपूर्वक एक-दूसरे को खींचते रहने से उनके पैर निश्चल रहकर अपनी पहली पकड़ नहीं छोड़ते; जल के अन्दर वेग से परिभ्रमण करते समय, मकर, कमल, कर्कट, गंडक, मंडूक आदि चलचरों के प्राण क्षीण कर देते; एक-दूसरे से जूझने के संरंभ में [जलचरों को] रौंद डालते, बल खोकर, बलहीन बनकर, एक-दूसरे के आघातों से बचने के लिए सेवार और घोंघों की आड़ लेते; [वे दोनों करि-मकर] लड़ने से विमुख न हुए, [उनका] जीतने का विचार दुगुना तीव्र हुआ, अहोरात्र (दिन और रातें) के समान (एक के बाद दूसरे के क्रम से) उनका संघर्ष क्रमशः बढ़ता गया, निद्रा और आहार छोड़ बहु काल तक वे कलह करते रहे। अवक्र-पराक्रम से उनके घोर संग्राम करते समय, ५५ [कं.] जव (वेग), चल (दृढ़ता) और बल का प्रयोग करते हुए वह करटि (गज) वीरता के साथ जब युद्ध करने लगा तब [उस संघर्ष से त्रस्त होकर] भूमि पर के मकर, मीन, और कर्कट-निवह (-समूह) आकाश में स्थित मकर, मीन और कर्कट राशियों में पहुँचकर, मित्रनिलय (मित्र के घर, सूर्य) को प्राप्त किया (वहाँ एकत्र हुए)। ५६ [शा.] वह गजराज अपने वज्राभील (वज्र-समान भयंकर) दाँतों से मगर की छाती को अत्यत वेग से चीर डालता, [उसके] गले को लपेटकर लट्ठ-समान सूँड़ से पीटता किन्तु वह मगर बार-बार पानी के भीतर उस गज को खींच लेता, [अतः] उस जलप्राणी से जल के भीतर ही भीतर

व. अप्पुडु ॥ 58 ॥

आ. मकरितोड वोरु मातंगविभुनि नॊ-
  क्करुनि डिचिपोव गाळ्ळु राक
  कोरि चूचुचुंडॆ गुंजरीयूथंवु
  मगलु तगुलुगारॆ मगुवलकुनु ॥ 59 ॥

व. अंत ॥ 60 ॥

आ. जीवनंबु वनकु जीवनंबै युंट, नलवु चलमु नंतकंत कॆक्कि
  मकर मॊप्पॆ डस्सॆ मत्तेभमल्लंबु, बहुळपक्ष शीतभानु पगिदि ॥ 61 ॥

म. उरुकुं गुंभयुगंबुपै हरिक्रियन् हुम्मंचु पादंबुलं
  दिरुकुं गंठमु वॆन्नुदन्न नॆगयुन् हेलागतिन् वालमुन्
  जरुचुन्नुग्गुग दाकु मुंचु मुनुगुन् शल्यंबुलुन् दंतमुल्
  विरुगन् व्रेयुचु वॊचि पॊचि कदियुन् वेदंड यूथोत्तमुन् ॥ 62 ॥

म. पॊड गानंबडकुंड डागु वॆलिकि बोवंग दा नड्डमै-
  पॊडचूपुं जरणंबुलं वॆनगॊनुं बोराक राराक बं-
  ग्गडिलं गूलग दाचु लेचुतडि नुद्घाटिंचु लंघिंचु ब-
  लिवडि जोरुन् दलगुन् मलंगु नॊडियुन् वेधिंचु ग्रोधिंचुचुन् ॥ 63 ॥

---

लड़ने में अपनी शक्तहीनता देखकर वह वनचारी (गज) हहराने लगा। ५७ [व.] उस समय ५८ [आ.] मकर के साथ जूझते अपने मातंगविभु (गजपति) को अकेले छोड़ जाने मे पैरो के [आगे] न वढने पर, कुंजरीयूथ (हथिनी-समूह) चाह से देखता रह गया। पत्नियों के लिए पति ही बंधन हैं न! ५९ [व.] तव ६० [आ.] जीवन (जल) ही अपने लिए जीवन (प्राणाधार) होने के कारण से मकर का वल और हठ (शत्रु पर द्वेष) क्रमशः बढ़ता गया, [किंतु] मत्तेभमल्ल (मदगज-वीर) बहुलपक्ष (कृष्णपक्ष) के चन्द्रमा के समान थकित [और निर्बल] होने लगा। ६१ [म.] वह मगर [हाथी के] कुंभयुग पर हरि (सिंह) की तरह हुंकार करता हुआ झपटता, टाँगों के बीच मे आ जाता, कंठ कस देता; हेला गति से [धावा] करते हुए पूँछ उठाकर हाथी की पीठ पीटता और उसे चूर-चूर करता; पानी में डूबता और उसे डुबोता; हाथी की हड्डियों और दाँतों को तोड़ने लगता; और उस वेदंड-यूथोत्तम (हाथियों के नायक) पर ताककर धावा करता। ६२ [म.] वह हाथी की दृष्टि से छिपा रहता किंतु जब हाथी जल से बाहर जाने लगता तो आड़े पड़कर दीखता (रोक लेता), पैरों से लिपटकर हाथी को न बाहर जाने देता न भीतर। हाथी जब विह्वल हो खड़ा रहता तो मगर उसे ऐसा लात मारता कि वह गिर पड़ता। उठते समय सामने आकर आघात करता, लाँघता, उसका

व. इट्लु विस्मित नक्र चक्रंबै, निर्वक्र विक्रमंबुन, नल्प हृदय ज्ञानदीपंबु नतिक्रमिचु महा मायांधकारंबुनुं बोलें, नंतकंतकु नुत्साह कलह सन्नाह बहुविध जलावगाहंबैन ग्राहंबुनु महा साहसंबुन ॥ 64 ॥

शा. पादद्वंद्वमु नेल मोपि पवनुन् बंधिचि पंचेंद्रियो-
न्मादंबुं बरिमार्चि बुद्धिलतकुन् माऽाकु हत्तिचि नि-
ष्खेद ब्रह्मपदावलंबन गति ग्रीडिचु योगींद्रु म-
र्यादन्नक्रमु विक्रमिचें गरि पादाक्रांत निर्वक्रमै ॥ 65 ॥

आ. वनगजंबु नॅगुचु वनचारि बोंडगनि, वनगजंबै कान वज्रिगजमु
बॅल्लनै सुरेंद्रु वेचि सुधांधुल, बट्टु पट्टनीक बयलु व्राकें ॥ 66 ॥

उ. ऊह कलंगि जीवनपुटोलमुनं बडि पोरुचुन् महा-
मोहलता निबद्ध पदमुन् विडिपिंचुकोनग लेक सं-
देहमु बोंदु देहिक्रिय दीनदशन् गजमुंडु भीषण
ग्राह दुरंतदंत परिघट्टित पाद खुराग्र शल्यमै ॥ 67 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 68 ॥

---

शरीर ज़ोर से, चीरता, हटकर वापस मुड़ता, फिर सहसा पकड़कर क्रोध से पीडा पहुँचाता। ६३ [व.] इस प्रकार अन्य मगरों के समूह को विस्मित करते हुए निर्वक्र (अकुंठित) पराक्रम से, अल्पहृदय वाले के ज्ञानदीप का अतिक्रम करनेवाले महामाया रूपी अन्धकार के समान, क्रमशः बढ़नेवाले उत्साह के साथ कलह का सन्नाह करते हुए अनेक प्रकार से जल में निमज्जित हो, ग्राह (मकर) महासाहस से, ६४ [शा.] अपना पादद्वंद्व (दोनों पैर) धरती पर टेक कर, पवन (श्वास वायु) को रोक, पंचेंद्रियों का उन्माद (चंचलता) नष्ट करके, बुद्धि रूपी लता के बढ़ने के लिए सहारा (थूनी) लगाकर, दुःखरहित ब्रह्मपद का अवलबन लेनेवाले योगींद्र के समान वह मगर उस गजराज के पैर पकडकर निर्वक्र (निश्चल) हो बना रहा। ६५ [आ.] यों वनगज को बाधा पहुँचानेवाले वनचारी (जलचर, मगर) को देखकर वज्रिगज (ऐरावत), स्वयं भी वनगज होने के कारण, चिंता से सफ़ेद पड़ गया (पीला पड़ गया) और इंद्र आदि सुधांधों (देवताओं) की पकड़ में (वश में) न रहकर आकाश की ओर निकल भागा। ६६ [उ.] सोच-विचार में गड़बड़ा कर, जीवन के आटोप में फँसकर, उससे जूझते हुए, महामोह-लता-निबद्ध पदों को (मोह के बंधन में जकड़े हुए पैरों को) छुड़ाने में अशक्त हो, सदेह की अवस्था में पड़े देही (मानव) के समान वह गजराज भीषण ग्राह (मगर) के दुरंत (भयंकर) दंतों (डाढों) से परिघट्टित (खुरचे हुए) पाद-खुराग्र (टाँगों के खुरों) के शल्य (हड्डी) वाला होकर, अत्यन्त दीन दशा में रहा। ६७ [व.] इस प्रकार से। ६८

कं. अलयक सॊलयक वेसट, नॊलयक करि मकरितोड नुद्दंडत रा-
त्रुलु संध्यलु दिवसंबुलु, सलिपॆन् वोरॊक्क वेयि संवत्सरमुल् ॥ 69 ॥

म. पृथुशक्तिन् गज मा जलग्रहमुतो बॆक्कॆंड्लु पोराडि सं-
शिथिलंबै तनलावु वैरिबलमुं जिंतिंचि मिथ्या मनो-
रथ मिंकेटिकि दीनि गॆल्व सरि पोरं जालरावंचु स-
व्यथमै यिट्लनु बूर्व पुण्य फल दिव्यज्ञान संपत्ति तोन् ॥ 70 ॥

## अध्यायमु—३

शा. ए रूपंबुन दीनि गॆल्तु, निट मीदे वेल्पु जिंतितु, न-
व्वारिं जीरुदु, नॆव्वरड्डमिक, निव्वारि प्रचारोत्तमुन्
वारिपं दगुवार लॆव्व, रखिल व्यापारपारायणुल्
लेरे, य्रॊक्कॆद दिक्कुमालिन मॊरालिपं ब्रपुण्यात्मकुल् ॥ 71 ॥

शा. नानानेकप यूथमुल् वनमुलोनं बॆव्दकालंबु स-
न्मानिपन् दशलक्षकोटि करिणीनाथुंडनै यॆंडि म-

[कं.] विना थके, विना मूर्च्छित हुए, श्रम से चूर हुए विना करि (गजराज) ने उस मकरि से उद्दंडतापूर्वक, रात्रि-सध्या-दिवस (लगातार) एक सहस्र वर्ष तक युद्ध किया। ६९ [म.] उस जलग्रह (मगर) के साथ वर्षों तक पृथुशक्ति (असीम वल) से लड़कर, [अन्त में] शिथिल हो, अपने और वैरी (शत्रु) के वल का अनुमान लगा कर, उस गज ने [अपने मन में] कहा— "अव इसे जीतने का मेरा मनोरथ मिथ्या (असत्य) है, अब और क्यों ? [इसके साथ] वरावरी का युद्ध करना [मेरे लिए] साध्य नही है।" अपने पूर्वपुण्य के फलस्वरूप जो दिव्यज्ञान-संपत्ति उसे प्राप्त थी उसके प्रभाव से, विना व्यथा के, उस [गजराज] ने यों सोचा। ७०

## अध्याय—३

[शा.] अब मैं किस रूप (प्रकार) से जीतूंगा ? किस देवता की स्तुति करूँ ? किसे सहायता के लिए बुलाऊँगा ? कौन आड़े आयेंगे ? इस वारि (जल)-चर श्रेष्ठ (मगर) को कौन रोक सकेंगे ? सब प्रकार से कार्य साधनेवाले कोई नहीं हैं ? [मुझ] अनाथ की गुहार सुननेवाले पुण्यात्मा जो हों मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। ७१ [शा.] अनेक गज-यूथ (-समूह) इस वन में बहुकाल से मेरा सम्मान करते आ रहे हैं, दश-लक्ष-कोटि करिणियों (हथिनियों) का मैं नाथ (पति) वना हुआ हूँ; अपने दान-जल से परिपुष्ट चंदनलताओं की पुष्पछाया में [सुख से] न रहकर

वृदानांभः परिपुष्ट चंदन लतांतच्छायलंदुंडले
की नीराश निटेल वच्चिति, भयं बेट्लोकदे, योश्वरा ! ॥ 72 ॥

उ. ऍव्वनिचे जनिंचु जग मॆव्वनिलोपल नुंडु लीनमै
यॆव्वनियंदु डिंदु बरमेश्वरु डॆव्वडु मूलकारणं
बॆव्व डनादि मध्य लयु डॆव्वडु सर्वमु दानयैन वा-
डॆव्वडु वानि नात्मभवु नीश्वरु ने शरणंबु वेडॆदन् ॥ 73 ॥

कं. ऒकपरि जगमुलु वॆलिनिडि
यॊकपरि लोपलिकि गॊनुचु नुभयमु दानै
सकलार्थ साक्षियगु न-
य्यकलंकुनि नात्ममूलु नर्थि दलंतुन् ॥ 74 ॥

कं. लोकंबुलु लोकेशुलु, लोकस्थुलु दॆगिनतुदि नलोकंबगु पॆं-
जीकटि कव्वल नॆव्वडु, नेकाकृति वॆलुगु नतनि ने सेवितुन् ॥ 75 ॥

कं. नर्तकुनिभंगि बॆक्कगु, मूर्तुलतो नॆव्वडाडु मुनुलुन् दिविजुल्
कीर्तिप नेररॆव्वनि, वर्तन मॊरुलॆरुगरट्टि वानि नुतिंतुन् ॥ 76 ॥

आ. मुक्तसंगुलैन मुनुलु दिदृक्षुलु, सर्वभूत हितुलु साधुचित्त-
लसवृश व्रताढ्युलै कॊल्तु रॆव्वनि, दिव्यपदमु, वाडु दिक्कु नाकु ॥ 77 ॥

---

जल [पीने] की आशा लेकर, मैं इधर क्यों आया ? हे ईश्वर ! यह भय (संकट) कैसे दूर होगा ? ७२ [उ.] जिससे यह जग उत्पन्न होता है, जिसमें (जिसके भीतर) जग [स्थित] रहता है, फिर जिसमें लीन हो जाता है, यह जग जिस परमेश्वर में दबकर रहता है, जो [सबका] मूल कारण है, जिसके आदि, मध्य और लय (अन्त) नही है, जो सब कुछ आप ही बना हुआ है, उस आत्मभव-ईश्वर की ही शरण माँगता हूँ । ७३ [कं.] जो लोकों को कभी अपने बाहर रखता और कभी अपने भीतर ले लेता है, फिर कभी उभय (लोक और आप) एक होकर देखता रहता है, जो सकलार्थसाक्षी है, उस अकलंक (निष्कलंक) आत्ममूल ईश्वर को इच्छापूर्वक मनाता हूँ । ७४ [कं.] जब ये [समस्त] लोक, लोकेश (लोकपालक) तथा लोकस्थ (लोकनिवासी) विनष्ट होकर कुछ भी शेष नहीं रह जाता और गाढ़ांधकार सर्वत्र व्याप्त हो जाता है, तब उस अंधतमस् के उस पार जो एकाकृति में प्रकाशमान रहता है, उसकी मैं सेवा करता हूँ । ७५ [कं.] जो अनेक मूर्तियों के आकार में, नर्तक (नट) की भाँति खेलता रहता है, मुनि और देवता जिसकी कीर्ति गा नहीं सकते, जिसका वर्तन (आचरण) कोई अन्य जान नहीं सकता, उस व्यक्ति की मैं नुति (प्रशसा) करता हूँ । ७६ [आ.] जो मुक्तसंगी (विरागी) मुनि हैं, जो दिदृक्षु (दर्शनाभिलाषी) हैं,

सी. भवमु दोषंबु रूपंबु कर्मंबु नाह्वयमुनु गुणमु लॅव्वनिकि लेक
जगमुल गलिगिंचु समयिंचु कॉरकुनै निजमाय नॅव्वडिन्नियुनु दाल्चु
ना परमेशुनकु ननंतशक्तिकि ब्रह्म किद्धरूपिकि रूपहीनुनकुनु
जित्रचारुनकु साक्षिकि नात्मरुचिकिनि वरमात्मुनकु वरब्रह्ममुनकु
आ. माटलन्नॅरुकल मनमुल जेरंग, गानि शुचिकि सत्त्वगम्युडगुचु
निपुणुडैनवानि निष्कर्मतकु मॅच्चु, वानिके नॉनर्तु वंदनमुलु ॥ 78 ॥

सी. शांतुन कपवर्ग सौख्य संवेदिकि निर्वाण भर्तकु निर्विशेषु-
नकु, घोरुनकु गूढुनकु गुणधर्मिकि सौम्युन कधिकविज्ञानमयुन-
कखिलेंद्रियद्रष्ट कध्यक्षुनकु बहु क्षेत्रज्ञुनकु दयासिंधुमतिकि
मूलप्रकृतिकात्ममूलुनकु जितेंद्रिय ज्ञापकुनकु दुःखांतकृतिकि
आ. नॅरि नसत्य मनॅडि नीडतो वॅलुगुचु-
नुंडु नॉवकटिकि महोत्तमुनकु
निखिल करणुनकु, निष्कारणुनकु न-
मस्करिंतु नन्नु मनुचु कॉरकु ॥ 79 ॥

कं. योगाग्नि दग्धकर्मुलु
योगीश्वरुले महात्मु नॉडॅरुगक स-

---

जो सर्वभूतहितकारी हैं, और जो साधुचित्त वाले हैं, वे असदृश (असमान) व्रत साधकर जिसके दिव्य चरणों की सेवा करते हैं, वही (देव) मेरा सहारा (रक्षक) है। ७७ [सी.] जिसके लिए जन्म, दोष, रूप, कर्म, आह्वय (नाम) और गुण नहीं हैं; जग का सृजन करने तथा अन्त करने के निमित्त जो अपनी माया से इतने रूप धारण करता है, उस परेश को, अनंत शक्ति (वाले) को, ब्रह्म को, निष्कलंक रूपवान को, रूपहीन को, विचित्रवर्तनवाले को, साक्षीभूत को, आत्मज्योति को, परमात्मा को, परब्रह्म को, [आ.] वाक्, मन और ज्ञान के द्वारा जिसे पा नहीं सकते उस परिशुद्ध को, जो सत्त्वगुण-प्रधान निपुण व्यक्ति की निष्कर्मता (नैष्कर्म्य) से प्रसन्न होता है, उस [परमेश्वर] की मैं वंदना करता हूँ। ७८ [सी.] शांत को, अपवर्ग (मोक्ष) के सौख्य (सुखानंद) के संवेदी (जाननेवाले) को, निर्वाण भर्ता (मोक्ष के अधिपति) को, निर्विशेष को, घोर, गूढ़ और गुण-धर्मी को, सौम्य को, अधिक विज्ञानमय को, अखिलेंद्रिय के द्रष्टा को, अध्यक्ष को, बहुक्षेत्रज्ञ को, दयासिंधु को, मूलप्रकृति और आत्मा के मूलकारण को, जितेंद्रियज्ञापक को, दुःखांतकृति को, [आ.] असत्य की छाया में प्रकाश-मान रहनेवाले को, एकाकी को, महोत्तम को, निखिल (समस्त) के कारण-भूत को, [अपने लिए] कारणरहित को, मुझे बचाने के निमित्त नमस्कार करता हूँ। ७९ [क.] योगीश्वर, जो योग की अग्नि से अपने कर्म

द्योग विभासित मनमुल
वागुग निरीक्षितुरट्टि परमु भजितुन् ॥ 80 ॥

सी. सर्वागमाम्नाय जलधिकि नपवर्ग मयुनिकि नुत्तम मंदिरुनकु
सकल गुणारणिच्छन्न बोधाग्निकि दनयंत राजिल्लु धन्यमतिकि
गुणलयोद्दीपित गुरुमानसुनकु संवर्तित कर्मनिर्वर्तितुनकु
दिशलेनि नाबोटि पशुवुल पापंबुलणचुवानिकि समस्तांतरात्मु-

आ. डै वेलुंगुवानि, -कच्छिन्नुनकु, भग, -वंतुनकु दनुज सुवस्तु देश
दारसक्तुलैनवारि कंदगरानि, वानि कार्चरितु वंदनमुलु ॥ 81 ॥

व. मरियु ॥ 82 ॥

सी. वर धर्म कामार्थ वर्जितकामुलै विबुधुलेव्वानि सेविंचि यिष्ट-
गति बोंदुदुरु चेरि कांक्षिचुवारि कव्यय देह मिच्चु नेव्वाडु करुण
मुक्तात्मुलेव्वनि मुनुकोनि चिंतितुरानंद वार्धि मग्नांतरंगु-
लेकांतुलेव्वनि नेमियु गोरक भद्रचरित्रंबु बाडुचुंदु-

---

[वन्धनों] को जला चुके हैं, अन्य भावना छोड़कर जिस महात्मा को अपने योगविभासित मनों में (योग के प्रभाव से प्रकाशमान मनों में) भलीभाँति देख पाते है, उस परम (ईश्वर) का मैं भजन करता हूँ। ८० [सी.] समस्त आगमों (शास्त्रों) और आम्नायों (वेदों) का जलधि (समुद्र, आकर) वने हुए वाले को; अपवर्गमय (मुक्तिरूप वने हुए) को; उत्तममंदिर (उत्तम पुरुषों का आश्रयस्थान वने हुए) को; सकल गुणों की अरणि (काठ) में छिपे हुए वोध रूपी अग्नि को; अपने आप प्रकाशित होनेवाले (स्वयं-प्रकाश) को; गुणों (सत्त्वरजस्तम) के लय (नाश) से उद्दीपित (प्रकाशमान) गुरुमानस वाले को; कर्मों की परिपूर्ति कर चुकने वालों (महात्माओं) को प्राप्त होने-वाले को, मुझ जैसे अनाथ पशुओं के पापों को विनष्ट करनेवाले को; [आ.] सब में अंतरात्मा होकर विलसित रहनेवाले को; अच्छिन्न (नाशरहित) को, स्त्री, पुत्र, धन, गृह आदि में आसक्त रहनेवालो के लिए अलभ्य भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ। ८१ [व.] और, ८२ [सी.] श्रेष्ठ धर्म, अर्थ और काम मे वर्जित-काम वाले (अभिलाषा छोड़नेवाले) बुद्धिमान पुरुष जिसकी सेवा (भजन) करके अपनी इष्टगति (मोक्ष) प्राप्त करते है, अपने आश्रय में आये प्रार्थियों को जो करुणापूर्वक अव्यय (अक्षय) देह प्रदान करता है, मुक्तात्मा [पुरुष] सप्रयत्न जिसका ध्यान किया करते हैं, आनंद की वार्धि (समुद्र) में निमग्न हृदय रखनेवाले, एकान्त (एकाग्रचित्त वाले) किसी [कामना] की अभिलाषा किये विना, जिसका पुण्यचरित गाते रहते हैं,

आ. रा महेशु नाद्यु नव्यक्तु नध्यात्म, योगगम्यु बूर्णु नुन्नतात्मु
ब्रह्ममैनवानि बरुनि नतींद्रियु, नीशु स्थूलु सूक्ष्मु ने भजितु ॥ 83 ॥

व. अनि मरियु निट्लनि वितर्किंचें ॥ 84 ॥

सी. पावकुंडर्चुल भानुंडु दीप्तुल नॅब्भंगि निगिडितुरॅट्लडंतु-
रा क्रिय नात्मकरावळिचेत ब्रह्मादुल वेल्पुल नखिलजंतु-
गणमुल जगमुल घन नाम रूप भेदमुलतो मॅरयिंचि तग नडंचु-
नॅव्वडु मनमु बुद्धींद्रियमुलु दानयै गुण संप्रवाहंबु बरपु

ते. स्त्री नपुंसक बुरुष मूर्तियुनु गाक
तिर्यगमर नरादि मूर्तियुनु गाक
कर्म गुण भेद सदसत्प्रकाशि गाक
वेंनुक नन्नियु दानगु विभु दलंतु ॥ 85 ॥

कं. कलडंदुरु दीनुलयॅड, गलडंदुरु परमयोगि गणमुलपालं
गलडंदुरन्नि दिशलनु, गलडु गलंडनॅडुवाडु गलडो लेडो ॥ 86 ॥

सी. कलुगडे नापालि कलिमि संदेहिंप गलिमिलेमुलु लेक गलुगुवाडु
ना कड्डपडराडॅ नलि नसाधुवुलचे बडिन साधुल कड्डपडॅडु वाडु

---

[आ.] उस महेश का मैं भजन करता हूँ, जो आद्य, अव्यक्त, अध्यात्म-योग-गम्य (आत्मयोग से प्राप्त होनेवाला), पूर्ण, उन्नतात्मा, ब्रह्म, पर (परात्पर), अतींद्रिय (इन्द्रियों से अतीत), ईश, स्थूल और सूक्ष्म है। ८३ [व.] [यों] कहने के बाद [उसने] फिर यों वितर्क किया : ८४ [सी.] पावक (अग्नि) अपनी अर्चियो (लपटों) को तथा भानु (सूर्य) अपनी दीप्तियों (किरणों) को जिस प्रकार फैलाकर फिर उन्हें बुझा देते हैं (पलटा लेते है), उसी प्रकार जो अपने कर-अवली (हाथों के समूह) से ब्रह्मा आदियों, देवों, अखिल जंतुगणों और जगों को अनेक नाम-रूप-भेदों से रचकर, फिर उनका लय कर देता है, जो स्वयं मन, बुद्धि और इंद्रियाँ बनकर [जग में] गुण-प्रवाह व्याप्त करता है, [ते.] जो स्त्री, पुरुष और नपुंसक के रूप मे न होकर, तिर्यक् (पशु), अमर, नर आदि के रूप में न होकर, गुण और कर्म के भेद से रहित है, सत् और असत् के रूप में भी व्यक्त नही है, फिर भी जो इनके पीछे सब कुछ आप ही बना हुआ है, उस विभु (प्रभु) का मैं ध्यान (चिंतन) करता हूँ। ८५ [कं.] कहते हैं, [वह भगवान] दीनों के पक्ष में है (हित में है); कहते हैं, [वह] परमयोगीगण का पालक है; कहते हैं, वह सब दिशाओं में [व्याप्त] है, [परन्तु] वह जिसे "है", "है" कहा जाता है— [पता नही] वह है या नहीं ! [उसके अस्तित्व के बारे में संदेह है।] ८६ [सी.] भाग्य (संपत्ति) और अभाग्य (अभाव) के भेद के विना रहनेवाला भगवान मेरी भाग्य-

चूडडे ना पाटु चूपुल जूडक चूचुवारल गृप जूचुवाडु
लीलतो ना मौऱालिपडे मौऱगुल मौऱलेंडुगुचु दन्नु मौऱगुवाडु

ते. नखिल रूपुल् दनरूपमैनवाडु, नादि मध्यांतमुल् लेक यडरुवाडु
भक्तजनमुल दीनुल पालिवाडु, विनडे चूडडे तलपडे वेग राडे ॥ 87 ॥

कं. विश्वकरु विश्वदूरुनि, विश्वात्मकु विश्ववेद्यु विश्वु नविश्वुन्
शाश्वतु नजु ब्रह्मप्रभु, नीश्वरुनि बरमपुरुष ने भजियितुन् ॥ 88 ॥

व. अनि पलिकि, तन मनंबुन नग्गजेंद्रुंडीश्वर सन्निधानंबु गल्पिचुकोनि यिट्लनियें ॥ 89 ॥

शा. लावोंक्किंतयु लेदु, धैर्यमु विलोलंबय्यॆ, ब्राणंबुलुन्
ठावुल् दप्पॆनु, मूर्छ वच्चॆ, दनुवुन् डस्सॆन्, श्रमंबय्यॆडिन्
नीवे तप्प नितः परं बॆरुग, मन्निपंदगुन् दीनुनिन्
रावे यीश्वर! काववे वरद! संरंक्षिचु भद्रात्मका! ॥ 90 ॥

---

हीनता देख क्या मेरा हित न करेगा? असाधुओं (दुष्टों) के हाथ में पड़ कष्ट भोगनेवाले साधुओं को बचानेवाला [भगवान] क्या मुझे बचाने नहीं आयेगा? आँखों से न देखकर भी साक्षात् कर लेनेवालों को (ज्ञानियों को) कृपापूर्वक देखनेवाला भगवान क्या मेरा संकट न देखेगा? वंचकों की गुहार सुन उन्हें बचाने में अपने आपको वंचित करनेवाला वह भगवान क्या मेरी आर्तध्वनि पर कान न देगा? [ते.] अखिल (समस्त) रूपों को अपना ही रूप बनाये रखनेवाला, आदि, मध्य और अन्त के बिना विलसित रहनेवाला, दीन भक्तजनों का पक्षपाती वह ईश्वर क्या [मेरी पुकार] सुनेगा नही? [मेरा कष्ट] देखेगा नही? [मेरा] ख्याल नहीं करेगा? शीघ्र आवेगा नहीं? ८७ [कं.] विश्व-कर (-निर्माता) विश्वदूर (विश्व से भिन्न), विश्वात्मा, विश्ववेद्य (विश्व के द्वारा समझा जानेवाला) स्वयं विश्व बना हुआ, अविश्व (जो विश्व मात्र नही है), शाश्व त(नित्य), अज (जिसका जन्म नही है), ब्रह्म, प्रभु, ईश्वर और जो परमपुरुष है, उसका मैं भजन करता हूँ। ८८ [व.] यों कहकर, अपने मन में ईश्वर के सन्निधान (नैकट्य) को कल्तित करके, उस गजेंद्र ने [फिर] इस प्रकार कहा: ८९ [शा.] [अब मुझमें] बल किंचित् भी नहीं है, धैर्य विलोल (विचलित) हुआ, प्राणों ने अपना स्थान छोड़ दिया है, मूर्च्छा आ गयी, शरीर शिथिल (चूरचूर) हुआ, तुम्हें छोड़ अन्य कुछ भी मैं नहीं जानता, इस दीन को क्षमा करो; हे ईश्वर! [रक्षा करने] आ जाओ; हे वरद (अभीष्ट पूरा करनेवाले)! [मुझे] बचाओ; हे भद्रात्मक (मंगलमय)! [मेरा] संरक्षण करो। ९० [कं.] कहा जाता है [कि तुम] जीवों की

कं. विनुदट जीवुल माटलु जनुदट च्चनरानिचोट्ल शरणार्थुल को-
यनुदट पिलिचिन सर्वमु, गनुदट संदेह मय्ये गरुणावार्धी ! ॥ 91 ॥

उ. ओ कमलाप्त ! यो वरद ! यो प्रतिपक्ष विपक्षदूर ! कु-
य्यो ! कवियोगिवंद्य ! सुगुणोत्तम ! यो शरणागतामरा-
नोकह ! यो मुनिश्वर मनोहर ! यो विपुलप्रभाव ! रा-
वे, करुणिपवे, तलपवे, शरणार्थिनि नन्नु गाववे ॥ 92 ॥

व. अनि पलिकि, मऱियु नरक्षित रक्षकुंडैन योश्वरुंडापन्नुंडैन नन्नुं गाचु गाक यनि, निगि निक्कि चूचुचु, निट्टूर्पुलु निगिडिपुचु, बयलालकिपुचुचु, न-ग्गजेंद्रुंडु मोऱ सेयुचुन्न समयंबुन ॥ 93 ॥

आ. विश्वमयत लेमि विनियु नूरक युंडि-
रंबुजासनादु लड्डपडक
विश्वमयुडु विभुडु विष्णुंडु जिष्णुंडु
भक्तियुतुन कड्डपड दलंचि ॥ 94 ॥

म. अल वैकुंठपुरंबुलो नगरिलो ना मूलसौधंबु दा-
पल मंदार वनांतरामृतसरःप्रांतेंदुकांतोपलो-

---

बातों पर कान देते हो, शरणार्थियों के निमित्त तुम ऐसे स्थानों पर भी पहुँच जाते हो जो अगम्य हैं, दुहाई देकर बुलाने पर तुम "हाँ" (हाँ आया) कह उठते हो और सब कुछ देखते हो, [परन्तु] हे करुणावार्धी (दया समुद्र) ! मुझे तो इसमें सदेह हो रहा है। ९१ [उ.] हे कमलाप्त (कमला के आप्त) ! हे वरद ! हे प्रतिपक्ष विपक्षदूर (शत्रु-अशत्रु से परे) ! [तुम्हें] दुहाई है ! हे कवि (ज्ञानी) और योगियों के वंद्य (वंदनीय) ! हे सुगुणोत्तम ! शरणागतो के लिए अमरानोकह (कल्पवृक्ष) ! हे मुनीश्वरों के लिए मनोहर ! हे विपुलप्रभाव वाले ! [मेरे पास] आओ न, करुणा दिखाओ न ! मेरा ख्याल करो न, मुझ शरणार्थी की रक्षा करो न। ९२ [व.] यों कहकर और यह चाहते हुए कि अरक्षितों (निस्सहायों) के रक्षक, ईश्वर, मुझ आपन्न (विपद्ग्रस्त) को बचावेगा, वह गजेंद्र उचक-उचककर आकाश को देख दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ, अंतराल की ओर कान देकर सुनता हुआ, गुहाई दे रहा था; उस समय, ९३ [आ.] अंबुजासन (ब्रह्मा) आदि देवता [गजेंद्र की पुकार] सुनकर भी अपने में विश्वमयता (विश्वरूपकता) न होने के कारण से आड़े (रक्षा करने) न आकर, चुप रह गये; विश्वमय प्रभु, जिष्णु (विजयशील) विष्णु ने भक्तियुक्त गजेंद्र की [रक्षा के लिए] आड़े आना चाहा। ९४ [म.] उधर वैकुंठपुरी के राजमहल में कोने पर के सौध (भवन) में, वामदिशा में स्थित मंदार (एक पुष्प) वन के मध्य में, जो अमृतसर है, उसके

त्पल पर्यंक रमाविनोदि यगु नापन्न प्रसन्नुंडु वि-
ह्वलनागेंद्रमु "पाहि" "पाहि" यन गुय्यालिचि संरंभियै ॥ 95 ॥

म. सिरिकिं जॅप्पडु शंख चक्र युगमुं जेदोयि संधिप डे-
परिवारंबुनु जीर डभ्रगपति बन्निप डाकर्णि का-
तर धम्मिल्लमु जक्क नोत्तडु विवाद प्रोत्थित श्री कुचो-
परि चेलांचलमैन वीडडु गज प्राणावनोत्साहियै ॥ 96 ॥

व. इट्लु भक्तजनपालन परायणुंडुनु, निखिल जंतु हृदयारविंद सदन संस्थितुंडुनु नगु नारायणुंडु, करिकुलेंद्र विज्ञापित नानाविध दीनालापंबु-लाकर्णिचि, लक्ष्मीकांता विनोदंबुलं दनिवि सालिचि, संभ्रमिचि, दिशलु निरीक्षिचि, गजेंद्र रक्षापरत्वंबु नंगीकरिंचि, निज परिकरंबुनु मरल नवधरिंचि, गगनंबुन कुद्गमिंचि, वेंचेयु नप्पुडु ॥ 97 ॥

म. तनवेंटन् सिरि, लच्चिवेंट नवरोध व्रातमुन्, दानि वें-
न्कनु बक्षींद्रुडु, दानि पोंतनु धनुः कौमोदकी शंख च-

---

तट पर चंद्रकांत शिलाओं पर बिछे उत्पल पुष्पों से लदे पर्यंक (पलंग) पर रमा (लक्ष्मी) के साथ विनोद कर रहे आपन्न-प्रसन्न (विपदग्रस्तों पर प्रसन्न होनेवाले) विष्णु [भगवान] ने विह्वल (व्याकुल) नागेंद्र (गजेंद्र) की "पाहि", "पाहि" की गुहार को सुन लिया और संरभी (व्यथित) हुआ। ९५ [म.] गजेंद्र के प्राणों की रक्षा करने के उत्साह से [विष्णु] न लक्ष्मी [देवी] से [कुछ] कहता, न शख और चक्र को हाथों में संधान (धारण) करता, न किसी परिवार (परिजन) को बुलाता, न अभ्रगपति (गरुड़) को आदेश देता, न कानों पर लटकनेवाली धम्मिल (केशराशि) को ठीक से सँवारता और प्रणय-कलह के कारण पकड़े गए लक्ष्मी के कुचोपरिचेलांचल (स्तनांशुक) तक को अपने हाथ से नहीं छोड़ता। ९६ [व.] इस प्रकार भक्तजनों के पालन में परायण, निखिल जंतुओं के हृदयारविंद रूपी सदन में संस्थित (विद्यमान) नारायण ने करिकुलेंद्र (गजेंद्र) के विज्ञापित (निवेदित) नाना प्रकार के दीनालाप (दीनवचन) सुनकर, अपनी प्रेयसी लक्ष्मी के साथ के विनोदों पर आसक्ति छोड़, संभ्रमित (उतावले) हो, दिशाओं का निरीक्षण करके, गजेंद्र की रक्षापरता (रक्षा करने का दायित्व) स्वीकार कर, और अपने उपकरणों को जाने का आदेश देकर, आकाशमार्ग से निकला। जब वह पधारने लगा तब··· ९७ [म.] अपने पीछे [पीछे] लक्ष्मी, लक्ष्मी के पीछे अवरोध-व्रात (अन्तःपुर की परिचारिकाएँ), उनके पीछे पक्षींद्र (गरुड़), उसके पार्श्व में धनुष (शार्ङ्ग), कौमोदकी (गदा), शंख और चक्र का निकाय (समुदाय), तथा नारद, और ध्वजनीकांत (सेनापति विष्वक्सेन) के आने पर उनके पीछे से शीघ्रता से वैकुंठपुर-

क निकायंबुनु, नारदुंडु, ध्वजिनीकांतुंडु, वा वच्चि रॊ-
य्यन वैकुंठपुरंबुनं गलुगुवाराबाल गोपालमुन् ॥ 98 ॥

व. तदनंतरंब मुखारविंद मकरंद बिंदुसंदोह परिष्यंदमानानंदर्विंदिविर यगु न यिंदिरादेवि, गोविंद करारविंद समाकृष्यमाण संवाद चेलांचलयै पोवुचु ॥ 99 ॥

म. तन वच्चेयु पदंबु बेर्कोनडनाथ स्त्री जनालापमुल्
विनॆनो, म्रुच्चुलु म्रुच्चिलिंचिरो खलुल् वेदप्रपंचंबुलन्
दनुजानीकमु देवता नगरिपै दंडॆत्तॆनो, भक्तुलं-
गनि चक्रायुधुडेडि चूपुडनि धिक्कारिंचिरो दुर्जनुल् ॥ 100 ॥

व. अनि वितर्किंपुचु ॥ 101 ॥

शा. ताटंकाचलनंबुतो, भुज नटद्धम्मिल बंधंबुतो
शाटी मुक्त कुचंबुतो, नवृढ चंचत्कांतितो, शीर्ण ला-
लाटालेपमुतो, मनोहर करालग्नोत्तरीयंबुतो
गोटींदु प्रभतो, नुरोज भर संकोच द्वलग्नंबुतोन् ॥ 102 ॥

---

वासी आबाल-गोपाल (सबके सब) चले आए। ९८ [व.] पश्चात् अपने मुखारविंद से निष्यंदमान (रिसते) मकरंद-बिंदु-संदोह (समूह) रूपी आनंद रस पाने के निमित्त घिरी हुई इंदिंदरा (भ्रमरी) बनी हुई इन्दिरादेवी (लक्ष्मीदेवी), गोविंद के करारविंद (हस्तकमल) से (समाकृष्यमाण) खींचे जा रहे, चेलांचल वाली होकर, [विष्णु के पीछे] चलते समय [अपने-आप यों सोचने लगी] : ९९ [म.] "[भगवान ने] अपना गम्यस्थान बताया नहीं, संभवतः अनाथ स्त्रीजनों का आलाप (गुहार) सुना होगा, [या] दुष्ट तस्करों ने, खलजनों ने वेद-समूह चुराया होगा, (अथवा) दनुज-अनीक (राक्षससमूह या सेना) ने देवता-नगरी [अमरावती] पर चढ़ाई की होगी, [अथवा] दुर्जनों ने भक्तों को यह कहकर धिक्कारा होगा (चुनौती दी होगी) कि "चक्रायुध (विष्णु) कहाँ है, हमें दिखाओ।" १०० [व.] यों वितर्क करती हुई, १०१ [शा.] हिलते हुए ताटंकों (कुंडलों) के साथ, भुजा पर नाचते हुए धम्मिल्ल-बंधन (जूड़े) के साथ, दुपट्टी (ओढ़नी) से बाहर हुए कुचों के साथ, झिलमिल कांति के साथ, ललाट पर बिखरी चंदनखौर के साथ, मनोहर (पति) के हाथ में पकड़े गए उत्तरीय के साथ, करोड़ों चंद्रों की प्रभा के साथ, उरोजों (कुचों) के भार से संकुचित वलग्न (कमर) के साथ [वह लक्ष्मी चलने लगी।] १०२ [कं.] मैं

कं. अडिगेंद ननि कडुवडि जनु
नडिगिन दनु मगुड नुडुगडनि नट युडुगुन्
वेंड वेंड सिडिमुडि तडबड
नडुगिडु नडुगिडदु जडिम नडुगिडु नेंडलन् ॥ 103 ॥

सी. निटलालकमु लंटिनिवुर जुंजुम्मनि मुखसरोजमु निड मुसरु देंट्लु
नळुल जोपग जिलक ललल नल्लन जेरि योष्ठबिंब द्युतु लोंडिय नुरुकु
शुकमुल दोल जक्षुर्मीनमुलकु मंदाकिनी पाठीनलोकमेंगुचु
मीनपंक्तुलु दाट मयिदीगतो राय शंपालतलु मिट सरणि गट्टु

आ. शंपलनु जयिप जक्रवाकंबुलु
कुचयुगंबु दाकि क्रोव्वु चूपु
मेलत मोगुलु पिरिदि मेरुगु दीगयु बोले
जलदवर्णु वेनुक जरुगु नपुडु ॥ 104 ॥

म. विनुवीथि जनुदेर गांचिरमरुल् विष्णुन् सुराराति जी-
वनसंपत्ति निराकरिष्णु गरुणा वर्धिष्णु योगींद्र हृ-

---

उनसे [गम्यस्थान के बारे में] पूछूंगी" —कहकर अधिक वेग से आगे बढ़ती, "पूछने पर भी वह उत्तर नहीं देंगे" —ऐसा कहकर फिर वह ठहर जाती; किंचित् संभ्रम से लड़खड़ाती, उतावलेपन से पैर आगे बढ़ाती फिर जड़तावश ठिठक जाती। १०३ [सी.] जलदवर्ण वाले (मेघश्याम, विष्णु) के पीछे-पीछे शंपा के समान जाते समय, लक्ष्मी के निटल (ललाट) पर के अलकों से लगकर उन्हें हराने के लिए झंकार के साथ आकर भौरे लक्ष्मी के मुखसरोज (मुखकमल) पर भिनभिनाते; अलियों (भौंरों) को उड़ा देने पर तोते धीरे-धीरे पहुँचकर, लक्ष्मी के बिंब-समान द्योतित (कांति वाले) ओष्ठ काटने दौड़ते; उन शुकों को भगाने पर मंदाकिनी से आये पाठीन (मीन) लक्ष्मी के [मीनाकार] चक्षुओं के पास आकर अपनी श्रेष्ठता जताने लगते; [आ.] [उन] मीनपंक्तियों से पार पाने के पश्चात् शंपालताएँ (विद्युल्लताएँ) लक्ष्मी की तनुलता से घर्षण करने (रगड़ जाने) के निमित्त अंतरिक्ष में ताँता बाँधने लगते। उन शंपाओं (बिजलियों) को जीतने के पश्चात् चक्रवाक लक्ष्मी के कुचयुग्म से टक्कर लेकर घमंड दिखाने लगते। [इस प्रकार वह] सुंदरी (लक्ष्मी) मेघ के पीछे बिजली के समान चलने लगी। १०४ [म.] विनुवीथि (आकाशमार्ग) से आ पहुँचनेवाले उस विष्णु को जो सुरारातियों (असुरों) को उनकी जीवन-संपत्ति से वंचित करनेवाला (प्राण-हरण करनेवाला) है; करुणा के कारण वृद्धि पानेवाला (महान बना हुआ) है; योगींद्र के हृदय रूपी वन में वास करनेवाला है, जो सहिष्णु है, और

द्दन वर्तिष्णु सहिष्णु भक्तजन बृंदप्राभवालंकरि-
ष्णु नवोढोल्लसदिंदिरा परिचरिष्णुन् जिष्णु रोचिष्णुनिन् ॥ 105 ॥

व. इट्लु पोडगनि ॥ 106 ॥

म. चनुदेंचेन् घनुडल्ल वाडॆ हरि पज्जं गंटिरे लक्ष्मि शं-
खनिनादंबदॆ चक्रमल्लदॆ भुजंगध्वंसियुन् वाडॆ क्र-
न्नन नेतेंचे नटंचु वेल्पुलु नमो नारायणायेति नि-
स्वनुलै श्रोवकरि मिट हस्तिदुखस्थावक्रिकि जक्रिकिन् ॥ 107 ॥

व. अय्यवसरंबुन गुंजरेंद्रपालन पारवश्यंबुन·देवतानमस्कारंबु लंगीकरिपक, मनस्समान संचारुंडै, पोयि पोयि, कोंत दूरंबुन शिशुमार चक्रंबुनुंबोले गुरु मकर कुळीर मीन मिथुनंबै. किन्नरेंद्रुनि भांडागारंबुनुंबोले स्वच्छ वर कच्छपंबै, भाग्यवंतुनि भागधेयंबुनु बोले शंख चक्र कमलालंकृतंबै,

---

भक्तजनों के समूहों को प्राभव (प्रभुता) से अलंकृत करनेवाला है; नयी दुलहिन-समान प्रकाशमान इंदिरा (लक्ष्मी) की परिचर्याएँ लेनेवाला है; जिष्णु (जयशील) है और जो रोचिष्णु (ज्योतिमान) है, (उस विष्णु को) अमरों ने देखा। १०५ [व.] यों देखकर १०६ [म.] "महानुभाव हरि आ पहुँचा, वही देखो; हरि के पार्श्व में लक्ष्मी को देखा है न? वही शंखध्वनि है, वही चक्र है, लो यह भुजंगध्वंसी (गरुड़) भी शीघ्र आ पहुँचा"—यों कहते हुए— "नमो नारायणाय" —का उच्चारण करते हुए उन देवताओं ने हस्ति की दुरवस्था (संकट)-वक्री (दूर करनेवाले) चक्री (विष्णु भगवान) की आकाश में ही वंदना की। १०७ [व.] उस अवसर पर, कुंजरेंद्र (गजेंद्र) का पालन (रक्षण) करने के पारवश्य मे [विष्णु ने] देवताओं के नमस्कार भी स्वीकार नही किये; मनोवेग से चल-चलकर कुछ दूरी पर उस पंकजाकर (सरोवर) को देखा जो शिशुमार-चक्र (ग्रहमंडल) के समान गुरु (बड़े-बड़े) मकर, कुलीर (केकड़ों) और मीन (मछलियों) के मिथुनों (जोड़ियों) का आवास था, (श्लेषार्थ से : वह ग्रह-मंडल जो गुरु, मकर, कर्कट, मीन और मिथुन राशियों से युक्त); जो किन्नरेंद्र (कुवेर) के भांडागार (कोश) के समान स्वच्छ और श्रेष्ठ कच्छपों (कछुवे) का आवास था (श्लेष से : कुवेर के भांडागार में वर और कच्छप नामक निधियाँ); भाग्यवान (धनवान) के भागधेय (संपत्ति) के समान जिसमें परागयुक्त जल भरा हुआ था (श्लेष से : धनवान की संपत्ति में अनुराग-प्रसिद्धि-युक्त जीवन रहता है); वैकुंठपुर (नगर) के समान शंखों (बड़े घोंघों), चक्रों (चक्रवाकों) तथा कमलों से अलंकृत था (श्लेष से : वैकुंठ शंख, चक्र और लक्ष्मी से अलंकृत रहता है); तथा संसारचक्र के समान जो जलचर-द्वंद्वों (-समूहों) और संकुल पक (घने कीचड़) से संकीर्ण (भरा हुआ) वना हुआ दिखाई देता

संसारचक्रंबुनुंबोलें द्वंद्व संकुल पंक संकीर्णंबे योप्पु नप्पंकजाकरंबु वॊंडगनि ॥ 108 ॥

म. करुणासिंधुडु शौरि वारिचरमुन् खंडिपगा बंपे स-
त्वरिताकंपित भूमिचक्रमु महोद्यद्विस्फुलिंगच्छटा
परिभूतांबर शुक्रमुन् बहुविध ब्रह्मांडभांडच्छटां-
तर निर्विक्रमु बालिताखिल सुधांधश्चक्रमुं जक्रमुन् ॥ 109 ॥

व. इट्लु पंचिन ॥ 110 ॥

शा. अंभोजाकर मध्य नूतन नळिन्यालिंगन क्रीडना-
रंभुंडैन वॆलुंगुरेनि चॆलुवारन् वच्चि नीटन् गुभुल्
गुंभध्वानमुतो गॊलंकुनु गलंकं बॊंदगा जॊच्चि दु-
ष्टांभोवर्ति वसिंचु चक्कटिकि डायंबोयि हृद्वेगमै ॥ 111 ॥

शा. भीमंबै तल द्रुंचि प्राणमुल बापें जक्र माशुक्रियन्
हेमक्ष्माधर देहमुं जकित वन्येभेंद्र संदोहमुन्
गाम क्रोधन गेहमुन् गरटि रक्तस्राव गाहंबु नि-
स्सीमोत्साहमु वीतदाहमु जयश्रीमोहमुन् ग्राहमुन् ॥ 112 ॥

---

था (श्लेष से : ज्यों संसार दुःखों के द्वंद्वों और पापों से सकीर्ण [संकुल] बना रहता है)। १०८ [म.] करुणासिंधु शौरि (विष्णु) ने उस वारिचर (जलचर, मगर) को खंडित करने के निमित्त, अपना चक्र (आयुध) भेजा, जिसके सत्वर गमन के कारण भूमिचक्र कंपित हुआ; जिसमें से ऊपर छूटे हुए विस्फुलिंगों (अग्निकणों) ने अंबर (आकाश मे) के शुक्र ग्रह की छटा को परिभूत (अपमानित) किया; ब्रह्मांडभांड के भीतर जो निर्वक्र गति से (अबाध गति से) आगे बढ़ चला; वह चक्र अखिल सुधांध-चक्र को (देवतासमूह को) पालनेवाला था। १०९ [व.] इस प्रकार [चक्र को] भेजने पर, ११० [शा.] वह चक्र अंभोजाकर (सरोवर) के मध्य में, टटके खिली कमलिनी का आलिंगन कर क्रीड़ा करनेवाले सूर्य की शोभा को [अपनी कांति से] नष्ट करते हुए, पानी में 'गुभुल-गुभुल' की घोर ध्वनि करते हुए, सरोवर को अपने प्रवेश से कलंकित (कल्लोलित) करते हुए, उस दुष्ट अंभोवर्ती (जल में स्थित) मगर के समीप मनोवेग से जा पहुँचा। १११ [शा.] उस चक्र (आयुध) ने भीम (भयंकर) बनकर, सिर काटकर, आशुक्रिया (सरलता) से उस ग्राह के प्राण हर लिये जिसकी (मकर की) देह मेरुपर्वत के समान भारी और भयानक थी, जिसे देख वनगजेंद्र-संदोह (-समूह) चकित रह गया था, जो काम और क्रोध का घर बना हुआ था; जो करटी (हाथी) के रक्तस्राव में भीग गया था, और जो भूख-प्यास छोड़ असीम उत्साह से जयश्री (विजयलक्ष्मी) को

व. इट्लु निमिषस्पर्शंबुन सुदर्शनंबु मकरि तल द्रुंचु नवसरंबुन ॥ 113 ॥

कं. मकर मॊकटि रवि जॊच्चॆनु
मकरमु मऱियॊकटि धनदु माटुन डागॆन्
मकरालयमुन दिरिगॆडु
मकरंबुलु कूर्मराजु मरुवुन करिगॆन् ॥ 114 ॥

म. तममुं बासिन रोहिणीविभु क्रियन् दर्पिंचि, संसारदुः-
खमु वीड्कॊन्न विरक्तचित्तुनि गतिन् ग्राहंबु पट्टूड्चि पा-
दमु लल्लार्चि, करेणुकाविभुडु सौंदर्यंबुतो नॊप्पॆ सं-
भ्रम दाशा करिणी करोज्झित सुधांभस्स्नान विश्रांतुडै ॥ 115 ॥

शा. पूरिंचॆन् हरि पांचजन्यमु, गृपांभोराशि सौजन्यमुन्
भूरिध्वान चलाचलीकृत महाभूत प्रचैतन्यमुन्
सारोदार सितप्रभाचकित पर्जन्यादि राजन्यमुन्
दूरीभूत विपन्न दैन्यमुनु, निर्धूत द्विषत्सैन्यमुन् ॥ 116 ॥

---

पाने के मोह मे पड़ा हुआ था। ११२ [व.] इस प्रकार जब सुदर्शन (चक्र) निमेष मात्र के स्पर्श से मगर का सिर काट रहा था, उस अवसर पर, ११३ [कं.] [भयभीत होकर] एक मकर ने जाकर सूर्यमंडल में प्रवेश किया; दूसरा मकर कुबेर की आड़ में (नवनिधियों में) छिप गया; उस मकरालय (सरोवर) मे विचरनेवाले शेष मकर कूर्म राजा (विष्णु के कूर्मावतार) की शरण में गये। ११४ [म.] तब तम (अंधकार) से छूटे रोहिणीविभु (चंद्रमा) के समान दर्पित हो, संसार के दुःखों से छुटकारा पाये विरक्तचित्त [वाले] (योगी) के सदृश, ग्राह (मगर) की पकड़ छुड़ाकर करेणु का विभु (गजपति) अपने पैर झटककर सुशोभित हुआ। संभ्रांत दिग्गजों की सूँड़ से छूटे सुधा-सम नीरधारा में स्नान करके वह गजेंद्र विश्रांत हुआ। ११५ [शा.] हरि ने [अपना] पांचजन्य [शंख] पूरा (मुखरित किया) जो सौजन्य और कृपा का अंभोराशि (समुद्र) था, जो ऐसा चैतन्य (प्राणशक्ति) से पूर्ण था कि अपनी भूरि (बड़ी) ध्वनि से पंचमहाभूतों को चल-विचल बनानेवाला था; जो अपनी सारभूत सितप्रभा (श्वेत कांति) से पर्जन्य (इंद्र) आदि राजाओं को चकित (मात) करनेवाला था, जो विपन्नों (संकटग्रस्तों) का दैन्य दूर कर देनेवाला तथा जो शत्रु-सैन्य की धज्जियाँ उड़ा देनेवाला था। ११६

## अध्यायमु—४

म. मोरसॅन्निर्जरदुंदुभुल्, जलरुहामोदंबुलै वायुवुल्
दिरिगॅन्, बुव्वुल वानजल्लु गुरिसॅन्, देवांगनालास्यमुल्
परगॅन्, दिक्कुलयंदु जीव जय खेल ध्वानमुल् निंडॅ, सा-
गर मुप्पॅंगॅ दरंगचुंबित नभोगंगा मुखांभोजमै ॥ 117 ॥

कं. निडुदगु केल गजमुनु, मडुवुन वॅडलंग दिगिचि मदजल रेखल्
दुडुचुचु मॅल्लन पुणुकुचु, नुडिपॅन् विष्णुंडु दुःख मुर्वीनाथा ! ॥ 118 ॥

कं. श्रीहरिकर संस्पर्शनु, देहमु दाहंबु मानि धृति गरिणी सं-
दोहमुनु दानु गजपति, मोहन घींकारशब्दमुलतो नॊप्पॅन् ॥ 119 ॥

कं. करमुन मॅल्लन निवुरुचु, गर मनुरागमुन मॅरसि कलयंबडुचुन्
गरि हरिकतमुन ब्रतुकुचु, गरपीडन माचरिंचॅ गरिणुल मरलन् ॥120॥

सी. जननाथ ! देवल शाप विमुक्तुडॅ पटुतर ग्राहरूपंबु मानि
घनुडु हूहूनाम गंधर्वुडप्पुडु तन तॊंटि निर्मलतनुवु दाल्चि

---

## अध्याय—४

[म.] देवताओं की दुंदुभियाँ (नगाड़े) वज उठीं; जलरुहों (कमलों) को आमोद (हर्ष) पहुँचाते हुए वायुएँ बहने लगी; पुष्पवृष्टि हुई; देवांगनाओं के लास्य (नृत्य) चल पड़े; दिशाएँ जीवों के 'जय जय' की ध्वनियों से भर गयी; सागर उमड़ उठा जिसकी तरंगे नभोगंगा (आकाशगंगा) का मुखांभोज (मुखकमल) चूमने लगीं। ११७ [कं.] हे उर्वीनाथ (भूपाल)! विष्णु ने अपना लंबा हाथ (सहारा) देकर गज को उस पोखरे से वाहर निकाला, उसकी मदजल-रेखाएँ पोंछकर धीरे से पुचकार कर (प्यार जताकर), उसका दुःख दूर किया। ११८ [कं.] श्रीहरि का करस्पर्श (हस्तस्पर्श) से (पाकर) [अपनी] देह का दाह निवारण कर, धैर्य प्राप्त कर, वह गजपति अपनी करिणी-संघ के साथ सुहावने घींकार शब्द (चिंघाड़) करता हुआ शोभायमान हुआ। ११९ [कं.] हरि [के किये रक्षण] के कारण [मृत्यु से] बचकर गजेंद्र ने करिणियों को हौले-हौले सहलाते हुए, अनुराग के साथ हिलते-मिलते (संस्पर्श हुए) पुनः उनसे करपीडन (हस्तस्पर्श) किया। १२० [सी.] हे जननाथ (राजन्)! देवल के शाप से विमुक्त होकर, पटुतर ग्राह (मकर) रूप छोड़कर, [उस] महान् हूहू नामक गंधर्व ने अपने पूर्व का निर्मल (शुद्ध) तनु (शरीर) धारण कर लिया; [और उसने] अति भक्ति से, अव्यय (अविनाशी) हरि को प्रणाम किया, फिर चाव से उसकी कीर्ति के गीत गाये और उस देव

हरिकि नव्ययुनकु नतिभक्तितो नौविक तविलि कीर्तिचि गीतमुलु वाडि
या देवु कृप नोंदि यंदंद मरियुनु विनतशिरस्कुडै वेड्कतोड

आ. दळितपापुडगुचु दनलोकमुन केगॆ, नपुडु शौरि केल नंट दडव
हस्तिलोकनाथु डज्ञानरहितुडै, विष्णुरूपुडगुचु वॆलुगुचुंडॆ ॥ 121 ॥

म. अवनीनाथ ! गजेंद्रुडा मकरितो नालंबु गाविचॆं, मुन्
द्रविळाधीशुडतंडु पुण्यतमुडिंद्रद्युम्न नामुंडु, वै-
ष्णवमुख्युंडु, गृहीत मौन नियतिन् सर्वात्मु नारायणुन्
सविशेषंबुग बूज चेसॆनु महाशैलाग्र भागंबुनन् ॥ 122 ॥

म. ऒकनाडा नृपु डच्युतुन् मनमुलो नूहिंपुचुन् मौनियै
यकलंकस्थितिनुन्नचो गलशजुंडच्चोटिकिन् वच्चि ले-
वक पूजिपक युन्न राजु गनि नव्यक्रोधुडै मूढ ! लु-
ब्ध करींद्रोत्तम योनि बुट्टुमनि शापं बिच्चॆं भूवल्लभा ! ॥ 123 ॥

कं. मुनिपति नवमानिचिन, घनु डिंद्रद्युम्न विभुडु गोंजरयोनि
जननंबंदॆनु विप्रुल, गनि यवमानिप दगदु घनपुण्युलकुन् ॥ 124 ॥

कं. करिनाथु डय्यॆ नातडु, करुलैरि भटादुलॆल्ल गजमै युंडिन्
हरिचरणसेव कतमुन, गरिवरुनकु नधिक मुक्ति गलिगॆ नरेंद्रा ! ॥125॥

---

की कृपा पाकर, सर्वत्र उमंग में आकर, विनतशिरस्क होकर; [आ.] [यों] दलितपाप (पापरहित) होकर, वह अपने लोक को गया। तब शौरि (विष्णु) का हस्तस्पर्श होते ही, वह हस्तिलोकनाथ (गजपति) अज्ञान-रहित होकर, विष्णु-रूप बन, प्रकाशमान होकर रहा। १२१ [म.] हे अवनीनाथ (पृथ्वीपति) ! जिस गजेंद्र ने उस मगर से युद्ध किया, वह पूर्व में द्रविड़ देश का इन्द्रद्युम्न नामक पुण्यतम राजा था। वह वैष्णव मुख्य (प्रसिद्ध विष्णुभक्त) था; और महाशैल के अग्रभाग पर [स्थित होकर], मौनव्रत को ग्रहण कर, [उसने] सर्वात्मा नारायण की पूजा विशेष रूप से की थी। १२२ [म.] हे भूवल्लभ (राजन्) ! एक दिन जब वह राजा मन में अच्युत (विष्णु) का ध्यान करते हुए, मौन हो, अकलंक स्थिति में मग्न था, तब कलशज (अगस्त्य मुनि) के वहाँ आने पर राजा उठा नहीं, [और] पूजा [अर्चना] नहीं की, तो अत्यंत क्रोध में आकर, शाप दिया कि "हे मूढ ! तुम लुब्ध करींद्रोत्तम (गजेंद्र) की योनि में जाकर जनम पाओ"। १२३ [कं.] उस महान् राजा इंद्रद्युम्न ने, मुनीश्वर का अपमान करने के कारण कुंजरयोनि में जन्म पाया। [अतः] घन (बड़े-बड़े) पुण्यशालियों के लिए भी विप्रों को देख, उनका अपमान करना उचित नहीं है। १२४ [कं.] हे नरेंद्र ! वही [इन्द्रद्युम्न]

आ. कर्मतंत्रु डगुचु गमलाक्षु गोल्चुचु, नुभयनियतवृत्ति नुंडनेनि
जेंड्डु गर्ममेल्ल शिथिलमै मेल्लन, ब्रबलमैन विष्णुभक्ति चेंडवु ॥126॥

कं. चेंड्डु गरुलु हरुलु धनमुलु
जेंड्डुरु निजसतुलु सुतुलु जेंड्डु चेंनटुलकुन्
जडक मनु नेंड सुगुणुलकु
जेंडनि पदार्थमुलु विष्णुसेवा निरतुल् ॥ 127 ॥

व. अप्पुडु जगज्जनकुंडगु नप्परमेश्वरुंडु दरहसित मुखकमल यगु नवकमल किट्लनियें ॥ 128 ॥

कं. बाला ! ना वेंनुवेंटनु, हेलन् विनुवीथिनुंडि येतेंचुचु नी
चेलांचलंबु वट्टुट, कालो नेमंटि नन्नु नंभोजमुखी ! ॥ 129 ॥

कं. अॅरुगुदु तेंडवा ! येंप्पुडु
मडवनु सकलंबु नन्नु मडचिन येंडलन्
मडतुननि येंडिगि मोंडगक
मडवक मोंडयिडरयेनि मडि यन्यमुलन् ॥ 130 ॥

---

करिनाथ (गजों का राजा) बन गया, उसके भट आदि अनुचरहाथी हुए; हाथी [के रूप में] होने पर भी, हरि-चरण-सेवा के प्रभाव से, उस करिवर को उत्तम गति (मुक्ति) मिल गयी। १२५ [आ.] जो मनुष्य कर्मतन्त्र (कर्मनिष्ठ) होकर, कमलाक्ष (विष्णु भगवान्) की भक्ति करता हुआ यदि दोनों व्रतों के नियमों का पालन करेगा तो उसका सारा कर्म (बंधन) शिथिल होकर [क्रमशः] नष्ट हो जायेगा, परंतु उसकी प्रबल विष्णुभक्ति बिगड़ नही जाएगी (निष्फल नही होती)। १२६ [कं.] कुत्सितों के हाथी, घोड़े, धन-दोलत सब नष्ट होते हैं, उनके स्त्री-पुत्र नष्ट होनेवाले हैं, [किन्तु] गुणवानों के लिए नष्ट हुए बिना सदा बने रहनेवाला पदार्थ [केवल] विष्णु-सेवा-निरति (लग्न-बुद्धि) है। १२७ [व.] उस समय जगज्जनक (जगत्पिता), परमेश्वर ने दरहसित मुखकमल वाली (कमल-समान मुख से मुस्कुराती हुई) कमला (लक्ष्मी) से यों कहा, १२८ [कं.] "हे बाला ! संभ्रम के साथ आकाशमार्ग से आते समय मैंने तुम्हारा चेलांचल पकड़ रखा था, हे अंभोजमुखी (कमलमुखी) ! मेरे पीछे-पीछे आते हुए तुमने मुझे अपने मन में [न जाने] क्या कहा था ? १२९ [कं.] हे सुंदरी ! यह जानकर कि मुझे भूलने पर मैं समस्त को (उन भूलनेवालों) को भूल जाता हूँ, यह [बात] जानकर कि [हम लोग भगवान को] नहीं भूलेंगे, कपट छोड़ मुझे जो पुकारते हैं (गुहारते है), मैं अन्य सब कुछ भूलकर उन्हें बचाता

व. अनि पलिकिन, नरविंद मंदिर यगु नथ्यिंदिरादेवि मंदस्मित चंद्रिका वदनारविंद यगुचु मुकुंदुनकिट्लनियॆ ॥ 131 ॥

कं. देवा! देवर यड्गुलु, भावंबुन निलिप कॊलुचु पनि नापनि गा-
को वल्लभ ! येमनियॆद, नी वॆंटनॆ वच्चुचुंटि निखिलाधिपती ! ॥132॥

कं. दीनुल कुय्यालिपनु, दीनुल रक्षिप मेलु दीवन बॊंदन्
दीनावन ! नी कॊप्पुनु, दीनपराधोन ! देवदेव ! महेशा ! ॥ 133 ॥

व. अनि मद्रियुनु, समुचित संभाषणंबुल नंकिचुचुन्न परम वैष्णवीरत्नंबुनु सादर सरस सल्लाप मंदहास पूर्वकंबुगा नालिगनंबु गाविंचि, सपरिवारुंडै, गंधर्व सिद्ध विबुधगण जेगीयमानुंडै, गरुडारूढुंडगुचु, निज सदनंबुनकुं जनियॆ। अनि चॆप्पि शुकयोगींद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 134 ॥

सी. नरनाथ ! नीकुनु नाचेत विवरिपवडिन यी कृष्णानुभवमैन
गजराज मोक्षण कथ विनुवारिकि यशमुलिच्चुनु गल्मषापहंबु
दुस्स्वप्न नाशंबु दुःखसंहारंबु ब्रॊद्दुल मेल्कांचि पूतवृत्ति
नित्यंबु वठियिंचु निर्मलात्मकुलैन विप्रुलकुनु बहु विभव ममरु

ते. संपदलु गल्गु, वोडलु शांति बॊंदु
सुखमु सिद्धिंचु वर्धिल्लु शोभनमुलु

---

हूँ।" १३० [व.] यों कहने पर, वह अरविंदमंदिरा (कमलालया = लक्ष्मी) इंदिरादेवी वदनारविंद (मुखकमल) पर मंदहास की चंद्रिका से युक्त होकर, मुकुंद से यों बोली : १३१ [कं.] "हे देव ! प्रभु के चरणों को अपनी भावना में स्थिर करके ध्यान करते रहने के सिवा मेरा कोई अन्य कार्य नहीं है। हे वल्लभ (प्रिय) ! हे निखिलाधिपति ! मैं तुम्हें क्या कहूँगी, तुम्हारे पीछे ही मैं चली आ रही थी। १३२ [कं.] हे दीनावन (दीनरक्षक) ! दीनपराधीन ! (दीनों के वशवर्ती) ! हे महेश ! दीनों का वार्तालाप सुनना, दीनों की रक्षा करना, उनसे उत्तम स्तुतियाँ पाना— हे देव-देव ! तुम्हीं को सोहता है" । १३३ [व.] [ऐसा] कह, और समुचित संभाषणों से स्तुति कर रही परमवैष्णवीरत्न-लक्ष्मी को सादर सरस सल्लाप और मंदहासपूर्वक आलिंगन करके [भगवान् विष्णु] सपरिवार, गंधर्व-सिद्ध-बिबुध (देव) गणों से जेगीयमान होते हुए, गरुड़ारूढ़ होकर, निज सदन पधारे। ऐसा कहकर शुकयोगींद्र ने फिर यों सुनाया : १३४ [सी.] हे नरनाथ ! तुम्हें मुझसे वर्णित कृष्णानुभवात्मक यह गजराज-मोक्षण की कथा श्रोताओं को यश प्रदान करेगी; यह कल्मषापह (पापविमोचक), दुस्स्वप्न-नाशक और दुःखसंहारक है; प्रातः ही जागकर (पूतवृत्ति) पवित्रता से नित्य [इसे] पढ़नेवाले निर्मलात्मा विप्रों को [इसके प्रभाव से] बहुविध वैभव संप्राप्त होगा। [ते.] संपदाएँ

मोक्ष मरुचेतिदै युंडु मुवमु चेरु
ननुचु विष्णुंडु प्रीतुडै यानतिच्चें ॥ 135 ॥

व. अनि मरियु, नप्परमेश्वरुंडिट्लनि यानतिच्चें। ऍव्वरेनियु नपरात्रंबुन मेल्कांचि, समाहित मनस्कुलै, श्वेतद्वीपंबुनु, नाकु प्रियंबैन सुधासागरंबुनु, हेमनगंबुनु, निग्गिरिकंदर काननंबुलनु, वेत्र कीचक वेणुलता गुल्म सुर-पादपंबुलनु, एनुनु ब्रह्मयु फाललोचनुंडुनु निवसिंचियुंडु नक्कोंडशिखरं-बुलनु, कौमोदकी कौस्तुभ सुदर्शन पांचजन्यंबुलनु, श्रीदेविनि, शेष गरुड वासुकि प्रह्लाद नारदादि ऋषुलनु, मत्स्य कूर्म वराहाद्यवतारंबुलनु, तदवतारकृतकार्यंबुलनु, सूर्य सोम पावकुलनु, प्रणवंबुनु, धर्म तपस्सत्यं-बुलनु, वेदंबुनु, वेदांगंबुलनु, शास्त्रंबुलनु, गो भूसुर साधु पतिव्रताजनं-बुलनु, चंद्र काश्यपजाया समुदयंबुनु, गौरी गंगा सरस्वती काळिंदी सुनंदा प्रमुख पुण्यतरंगिणी निचयंबुनु, नमरुलनु, नमरतरुवुलनु, नैरावतं-बुनु, नमृतंबुनु, ध्रुवुनि, ब्रह्मर्षि निवहंबुनु, बुण्यश्लोकुलैन मानवुलनु, समाहित चित्तुलै तलंचुवारलकु प्राणावसानकालंबुन मदीयंबगु विमल-गति नित्तु। अनि हृषीकेशुंडु निर्देशिंचि, शंखंबु पूरिंचि, विहगपरिवृढ

---

मिलेंगी, पीड़ाओं का निवारण होगा, सुख की सिद्धि होगी, शोभन बढ़ेंगे; मोक्ष उनके करतल (मुट्ठी) में होगा; संतोष (मोद) पहुँचेगा। इस प्रकार प्रीत हो विष्णु ने आज्ञा दी। १३५ [व.] [ऐसा] कह और उस परमेश्वर ने यों आज्ञा दी : "जो कोई पुरुष अर्धरात्रि को जागकर समाहित-मनस्क [वाला] हो, श्वेतद्वीप का, मेरे लिए प्रिय क्षीरसागर का, हेमनग (सुमेरु) का, उस गिरि की कंदराओं तथा काननों का, वेत्र (बेंत), कीचक (बाँस), वेणुलता गुल्म का, सुरपादप (कल्पवृक्ष) का, उस पर्वत के शिखरों का, जिन पर मैं, ब्रह्मा और फाललोचन (शिव) निवास करते हैं, कौमोदकी, कौस्तुभ, सुदर्शन और पांचजन्यों का, श्रीदेवी (लक्ष्मी) का, शेष, गरुड़ और वासुकी का, प्रह्लाद नारद आदि ऋषियों का, मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतारों का, उन अवतारों के किये कार्यों का, सूर्य, सोम (चंद्र) पावकों (अग्नि) का, प्रणव (ओंकार) का, धर्म, तप और सत्य का, वेदों का, वेदांगों का, शास्त्रों का, गो, भूसुर (ब्राह्मण), साधु, पतिव्रताजनों का, सोम काश्यपों की पत्नियों का, गौरी, गंगा, सरस्वती, कालिंदी (यमुना), सुनन्दा आदि पुण्यतरंगिणियों (नदियों) का, अमरों (देवताओं) का, अमर-तरुओं (वृक्षों) का, ऐरावत का, अमृत का, ध्रुव का, ब्रह्मर्षि-निवह (-संघ) का, तथा पुण्यश्लोक मानवों का ध्यान चिंतन करेंगे, उन्हें प्राणावसान (मृत्यु) के समय मैं अपनी विमल गति (मोक्ष-पद) प्रदान करूँगा।" इस प्रकार निर्देश करके हृषीकेश (विष्णु) शंख बजाकर, विहगपरिवृढ़ (गरुड़-वाहन) पर चढ़ [निजस्थान] पधारे।

वाहनुंडॆ वॆचॆसॆं। विबुधानीकंबु संतोषिंचॆं। अनि चॆप्पि शुकुंडु राजुन-
किट्लनियॆं ॥ 136 ॥

## अध्यायमु—५

कं. गजराज मोक्षणंबुनु, निजमुग बठियिंचुनट्टि नियमात्मुलकुन्
गजराजवरदुडिच्चुनु, गजतुरग स्यंदनमुलु गैवल्यंबुन् ॥ 137 ॥

कं. तामसु तम्मुडु रैवत, नामकुडॆ वॆलसॆं मनुवु नलुवुर मीदन्
भूमिकि व्रतिविंध्यार्जुन, नामादुलु नृपुलु मनुवु नंदनुलु नृपा ! ॥138॥

सी. मुनुलु हिरण्यरोमुडु नूर्ध्वबाहुंडु वेदशीर्षुंडनु वीरु मॊदलु
नमरुलु भूतरयादुलु शुभ्रुनि पत्नि विकुंठाख्य परम साध्वि
या यिद्दरकु बुत्रुडॆ तनकळलतो वैकुंठुडन बुट्टि वारिजाक्षु
डवनिपै वैकुंठ मनियॆडि लोकंबु गल्पिचॆं नॆल्ललोकमुलु म्रॊवक

तॆ. रम यॆदुर्कॊलु चेकॊनॆं राजमुख्य !
तदनुभाव गुणंबुलु दलप दरमॆ ?

---

विबुधानीक (देवगण) संतुष्ट हुआ। यों बताकर शुक ने राजा से फिर ऐसा कहा। १३६

## अध्याय—५

[कं.] गजराज-मोक्षण [की कथा को] सच्चाई (ईमानदारी) के साथ पढ़नेवाले नियतात्माओं (नीतिमानों) को गजराजवरद (गजेंद्ररक्षक, विष्णु) गज, तुरग (घोड़े), स्यदन (रथ) और कैवल्य (मोक्ष) प्रदान करेगा। १३७ [कं.] हे नृप ! तामस का छोटा भाई रैवत नाम वाला चार मनुओं के बाद भूमि पर पाँचवाँ [मनु] हुआ; प्रतिविंध्य और अर्जुन आदि राजा [उस] मनु के नंदन (पुत्र) हैं। १३८ [सी.] हिरण्य-रोम, ऊर्ध्वबाहु, वेदशीर्ष आदि [लोग] ऋषि हुए। ये और भूतरय आदि देवता हैं। शुभ्र की, परमसाध्वी विकुंठ नामक पत्नी थी, उन दोनों के पुत्र के रूप में वारिजाक्ष (विष्णु) ने वैकुंठ के नाम से, अपनी कलाओं के साथ उत्पन्न होकर अवनि (भूमि) पर वैकुंठ नामक लोक की कल्पना (रचना) की। समस्त लोकों ने उसे नमस्कार किया। [तॆ.] हे राज-मुख्य (-श्रेष्ठ) ! रमा (लक्ष्मी) ने उसका स्वागत किया; उसकी महिमा और गुणों का वर्णन क्या साध्य (संभव) है। इस धरा पर के रेणुपटल (धूलिकणों) को जान सकते हैं, किन्तु हरि के गुणगणों की संख्या गिनी

यी धरारेणु पटलंबु नॆरुगवच्चु
गानि रादय्य हरि गुणगणमु संख्य ॥ 139 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 140 ॥

सी. चक्षुस्तमुजुंडु चाक्षुषुंडनु वीरुडारव मनुवय्यॆ नवनिनाथ !
भूमीश्वरुलु पुरुः पुरुष सुद्युम्नादुलातनि नंदनुलमरविभुडु
मंत्रद्युमाख्युडमर्त्युलाप्यादिकु लाहविष्मद्वीरकादि घनुलु
मुनुलंदु विभुडु संभूतिकि वैराजुनकु बुट्टि यजितुंडु नाग नॊप्पॆ

आ. नतड काडॆ कूर्ममै मंदराद्रिनि
नुदधिजलमुलोन नुंडि मोसॆ
नतडु सुवर्ण दिविजुलथिप नमृताब्धि
द्रच्चि यिच्चॆ ना सुधारसंबु ॥ 141 ॥

व. अनि पलिकिनं, बरीक्षिन्नरेंद्रुनि मुनींद्रुनिकिट्लनियॆ ॥ 142 ॥

म. विनु मुन्नेटिकि द्रच्चॆ पालकडलिन् विष्णुंडु कूर्माकृतिन्
वनधि जॊच्चि यवॆट्लु मोसॆ वलु कव्वंबन शैलंबु दे-
वनिकायं बमृतंबु नॆट्लु वडसॆन् वाराशि नेमेमि सं-
जनितंबय्यॆ मुनींद्र ! चोद्यमु गदा सर्वंबु जॆप्पंगदे ॥ 143 ॥

कं. अप्पटिनुंडि बुधोत्तम !, चॆप्पॆदु भगवत्कथाविशेषंबुलु ना
कॊप्पुडु दनिवि जनिपदु. सॆप्पगदे चॆवुलु निंड श्रीहरिकथलन् ॥ 144 ॥

---

नहीं जा सकती। १३९ [व.] तदनंतर। १४० [सी.] हे अवनीनाथ ! चक्षुस का तनूज (पुत्र) चाक्षुस नामक वीर छठा मनु बन गया। पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि भूमीश्वर (राजा) उनके पुत्र हैं; मंत्रद्युम नाम वाला अमरविभु (इन्द्र) हुआ; आप्यादिक हविष्मत्, वीरक आदि अमर्त्य (देवता) हुए। मुनियों में विभु, संभूति और वैराज के पुत्र होकर, जन्म लेकर, अजित के नाम से प्रसिद्ध हुआ। [आ.] उसी ने तो कूर्म बनकर मंदराद्रि (मंदर पर्वत) को उदधि (सागर) के जल में रहकर, ढोया था, [तथा] उसी ने तो देवताओं के अभ्यर्थना (प्रार्थना) करने पर, क्षीरसागर मथकर, सुधारस (अमृत) ला दिया था। १४१ [व.] ऐसा कहने पर, परीक्षिन्नरेंद्र ने मुनींद्र से यों कहा। १४२ [म.] विष्णु ने पूर्व में कूर्म की आकृति में क्षीरसमुद्र का किसलिए मन्थन किया ? समुद्र में पैठकर महान् शैल को उसने किस तरह ऊपर उठाकर मथानी बनाया ? देवनिकाय (समूह) ने किस प्रकार अमृत प्राप्त किया ? वाराशि (सागर) में क्या-क्या संजनित (उत्पन्न) हुए ? हे मुनींद्र ! आश्चर्यप्रद है न, मुझे सब कुछ समझा कर कहो। १४३ [कं.] हे बुधोत्तम ! तुम तो तब से (बहुत

व. अनि मऱियु नडुगंबडिनवाडै यतनि नभिनंदिंचि, हरिप्रसंगंबु चॅप्प नुपक्रमिंचॅ। अनि सूतुंडु द्विजुल किट्लनियॆ। अट्लु शुकुंडु राजुं जूचि ॥ 145 ॥

कं. कसिमसगि यसुरविसरमु
लसिलतिकल सुरल नगुव नसुवुलु वॅडलं
वसचॅडिरि पडिरि कॅडसिरि
यसम समरविलसनमुल ननुवॅडलि नृपा ! ॥ 146 ॥

कं. सुरपति वरुणादुलतो, सुरमुख्युलु कॊंदऱरिगि सुरशैलमु पै-
सुरनुतुडगु नजु गनि या, सुरदुष्कृति जॆप्पिरपुडु सॊलयुचु नतुलै ॥147॥

कं. दुर्वासुशापवशमुन, निर्वीयत जगमुलॆल्ल निश्श्रीकमुलै-
पर्वतरिपुतो गूड न, पर्वमुलै युंडॆ हत सुपर्वावळुलै ॥ 148 ॥

आ. नॆलवु वॆडलियुन्न निस्तेजुलैनट्टि
वेल्पुगमुल जूचि वेल्पु पॆद्द
परमपुरुषु दलचि प्रणतुडै संफुल्ल
पद्म वदनुडगुचु वलिकॆ वॆलिय ॥ 149 ॥

---

समय से) भगवत्-कथा-विशेष सुनाते आ रहे हो; फिर भी मुझे तृप्ति न होती। [अतः] श्रीहरि की कथाएँ कर्णपेय रूप में [आगे भी] कहते जाओ। १४४ [व.] यों और पूछा जाकर, राजा का अभिनंदन करके [मुनि ने] हरि-प्रसंग सुनाने का उपक्रम किया। यों सूत ने द्विजों से कहा; उस प्रकार शुक मुनि राजा को देखकर [कहने लगे।] १४५ [कं.] हे नृप ! असुरों के समूह, बिना किसी अवरोध के, असिलतिकाएँ (तलवारें) लेकर सुरों के पीछे पड़, उन्हें खदेड कर प्राण लेने लगे तो वे लोग उस असमान समर के विलास (चपेट) में अपना बल और उपाय खोकर, युद्ध-भूमि पर गिर पड़े और मर गये। १४६ [कं.] तब सुरपति (इन्द्र) वरुण आदियों को साथ लेकर, कुछ प्रमुख देवता [लोग] सुरशैल (मेरुपर्वत) पर विराज-मान, सुरवंद्य अज (ब्रह्मा) के समीप पहुँचे; और उनके [चरणों पर] नत होकर, थकान से, आसुरदुष्कृति (राक्षसों के अत्याचार) कह सुनाया। १४७ [कं.] दुर्वासा के शापवश, सारे जग निर्वीर्य हो, निश्श्रीक (शोभा-हीन) बनकर, पर्वतरिपु (इन्द्र) के समेत, सुपर्व (देवता) अवली (समूह) के निहत होने पर, बिना उत्सव के (आनन्दहीन) रह गये। १४८ [आ.] स्थानभ्रष्ट होकर निस्तेज बने, देवगणों को देखकर, सुरज्येष्ठ (ब्रह्मा) ने परमपुरुष का ध्यान कर, [मन ही मन] णाम करके, संफुल्ल-पद्मवदन वाला होकर, देवताओं को समझाकर कहा : १४९ [कं.] "मैं और तुम लोग तथा काल, मानव, तिर्यक्

कं. एनुनु मीरुनु गालमु
मानव तिर्यग्लता द्रुम स्वेदजमुल्
मानुग नॆव्वनि कळलमु
वानिकि म्रॊक्कॆदमु गाक वगवग नेला ? ॥ 150 ॥

क. आद्युंडु रक्षकुंडु न, साध्युडु मान्युंडु लोक सर्ग त्राणां-
ताद्यादुलॊनर्चु नतं, डाद्यंत विधानमुलकु नर्हुंडु मनकुन् ॥ 151 ॥

कं. वरदुनि वरमु जगद्गुरु
गरुणापरतंत्रु मनमु गनुगॊन दुःख
ज्वरमुलु चॆंडु ननि सुरलकु
सरसिजजनि चॆप्पि यजितु सदनंबुनकुन् ॥ 152 ॥

व. तानुनु, देवतासमूहंबुनु नतिरयंबुनजनि, गानंबडनि यव्विभु नुद्देशिंचि, दैविकंबुलगु वचनंबुल नियतेंद्रियुडै यिट्लनि स्तुतियिंचॆ ॥ 153 ॥

सी. ऎव्वनि मायकु नंतयु मोहिंचु दरिमि यॆव्वानिमाय दाटरादु
तनमाय नॆव्वडंतयुनु गॆल्चिनवाडु नॆव्वनि बॊडगानरॆट्टि मुनुलु
सर्वभूतमुलकु समवृत्ति नॆव्वडु चरियिंचु दनचेत जनितमैन
धरणि पादमुलु चित्तमु सोमुडग्नि मुखंबुनु गन्नुलु कमलहितुलु

---

(पशु), लताद्रुम (पेड़-पौधे) और स्वेदज (कीड़े-मकोड़े) सबके सब जिसकी कलाएँ बने हुए है, उस [भगवान्] के पैरों पड़ेंगे; दुःख क्यों करते हो ? १५० [कं.] [वह भगवान् विष्णु] जो आद्य है, [हमारा] रक्षक है, [किंतु] असाध्य है (जिसे पाना कठिन है), मान्य है, लोकों के सर्ग (सृजन), त्राण (रक्षण) और अन्त (लय) आदि कर्म करनेवाला है, वही हमारे द्वारा किए जानेवाले विधानों के आदि और अन्त के योग्य [विधायक] है" । १५१ [कं.] देवताओं को यह समझाकर कि उस वरदायक परम जगद्गुरु और करुणापरतंत्र को [हमारे] देख पाते ही [हमारे] दुःखज्वर टल जायेंगे, सरसिजजनि (ब्रह्मा) अजित (विष्णु) के सदन को [गए] १५२ [व.] [आप] स्वयं तथा देवतासमूह अत्यन्त वेग के साथ जा पहुँचकर, उस अदृष्ट (जो दिखाई नहीं पड़ता) प्रभु को उद्दिष्ट (लक्ष्य) करके नियतेंद्रिय (समाहितमनस्क) हो दिव्य वचनों से स्तुति की । १५३ [सी.] जिसकी माया से समस्त [विश्व] मोहित होता है, बलात् भी जिसकी माया को पार नहीं किया जा सकता, जो अपनी माया के बल से समस्त को जीते हुए है, कैसे भी मुनि हों, जिसके दर्शन नहीं कर सकते, जो समस्त भूतों (जीवों) के प्रति समवृत्ति (समभाव) वरतता है, स्वरचित धरणी जिसका चरणतल है, सोम (चंद्र) जिसका मन है, अग्नि जिसका मुख है, सूर्य-चंद्र जिसके नेत्रयुग हैं, [ते.] दिशाएँ जिसके कान हैं, प्रसिद्ध

ते. चॅवुलु दिक्कुलु रेतंबु सिद्धजलमु
मूडुमूर्तुल पुट्टिल्लु मौदलिनॅलवु
गर्भ मखिलंबु मूर्धंबु गगनमगुचु
मलयु नॅव्वनि वानि नमस्करिंतु ॥ 154 ॥

व. मरियु, नॅव्वनि बलंबुन महेंद्रुंडुनु प्रसादंबुन देवतलुनु, गोपंबुन रुद्रुंडुनु, पौरुषंबुन विरिंचियु, निंद्रियंबुलवलन वेदंबुलुनु मुनुलुनु, मेढ्रंबुन प्रजापतियु, वक्षंबुन लक्ष्मियु, छायवलन पितृदेवतलुनु, स्तनंबुलवलन धर्मंबुनु, पृष्ठंबुवलन नधर्मंबुनु, शिरंबुवलन नाकंबुनु, विहारंबुवलन नप्सरोजनंबुलुनु, गुह्यंबुवलन ब्रह्मंबुनु, मुखंबुवलन विप्रुलुनु, भुजंबुवलन राजुलुनु बलंबुनु, नूरुवुलवलन वैश्युलुनु नैपुण्यंबुनु, पदंबुलवलन शूद्रुलुनु अवेदंबुनु, अधरंबुवलन लोभंबुनु, नुपरि रदच्छदंबु वलन प्रीतियु, नासापुटंबुवलन द्युतियु, स्पर्शंबुन गामंबुनु, भ्रूयुगळंबुन यमंबुनु, वक्षंबुन गालंबुनु संभविंचॅ, नॅव्वनि योगमाया विहितंबुलु द्रव्य वयः कर्मगुण विशेषंबुलु, चतुर्विध भूत सर्गंबॅव्वनि यात्मतंत्रंबु नॅव्वनिवलन सिद्धिंचि लोकंबुलुनु लोकपालुरुं ब्रतुकुचुंदुरु, पॅरुगुचुंदुरु, दिविजुलकु नायुवु बलंबुनै, जगंबुलकु नीशुंडै, परम महाभूतियगु नप्परमेश्वरुंडु माकुं ब्रसन्नुंडु गाक! अनि मट्रियुनु ॥ 155 ॥

---

जल जिसका रेतस् (वीर्य) है, जिसका मूलस्थान त्रिमूर्तियों की जन्मभूमि है, समस्त ब्रह्मांड जिसका गर्भ (उदर) है, गगन जिसका शिरोभाग है, इस प्रकार व्याप्त महामहिम को मैं प्रणाम करता हूँ। १५४ [व.] और जिसके बल से महेंद्र और प्रसन्नता से देवता, कोप से रुद्र, पौरुष-लता से विरिंचि (ब्रह्मा), इन्द्रियों से वेद और मुनि, मेढ्र (पुरुषांग) से प्रजापति, वक्ष से लक्ष्मी, छाया से पितृदेवता, स्तनो से धर्म, पृष्ठ से अधर्म, शिर से नाक (स्वर्ग), हास से अप्सराएँ, गुह्य से ब्रह्मा, मुख से विप्र, भुजाओं से राजा और बल, ऊरुओं (जाँघों) से वैश्य और नैपुण्य, पदों (चरणों) से शूद्र और अवेद (वेदविरुद्ध), अधर से लोभ, उपरि-रदच्छद (-ऊपर के ओंठ) से प्रीति, नासापुटों (नथुनों) से द्युति (कांति), स्पर्श से काम, भ्रूयुगल (भौंहों) से यम, पक्ष (पार्श्व) से काल, संभूत (उत्पन्न) हुए जिसकी योगमाया के अनुकूल द्रव्य, वय, कर्म और गुणविशेष प्रवर्तित होते हैं, चतुर्विध भूतसर्ग (जीवसृष्टि) जिसके आत्मतंत्र [का परिणाम] है, जिसके कारण लोक और लोकपाल उत्पन्न होकर जीते और बढ़ते रहते हैं, जो दिविजों (देवों) के लिए आयु और बल बनकर, तथा जगों के लिए ईश (स्वामी) बनकर, परम महाभूति (ऐश्वर्य) वाला वह परमेश्वर हम पर प्रसन्न होवे। [ऐसा] कह. और १५५ [कं.] जड़

कं. मौदल जलमिडिन . भूजमु
बुदि नडुमनु जल्लदनमु दोरकौनु माड्किन्
मौदलनु हरिकिनि म्रौक्किन
मुदमंदुदुमेल्ल वेल्पुमूकलु नेमुन् ॥ 156 ॥

कं. आपन्नुलगु विदृक्षुल, को पुण्य ! भवन्मुखाब्जमौय्यन तड्रितो
ब्रापिप जेयु संपद, नो परमदयानिवास ! युज्वलतेजा ! ॥ 157 ॥

## अध्यायमु—६

व. अनि यिट्लु देवगणसमेतुंडै यनेक विधंबुल गीतिपुचुन्न
परमेष्ठियंदु गरुणिंचि दयागरिष्ठुंडगु विश्वगर्भुंडाविर्भविंचे ॥158॥

म. औक वेयकुंलु गूडि गट्टिकदुपै युद्यत्प्रभामूतितो
नौक रूपैचनुदेंचुमाड्कि हरि दानौप्पारॆ नावेलुपुल्
विकलालोकनुलै, विषण्णमतुलै, विभ्रांतुलै म्रोल गा-
नक शंकिंचिरि कौंतप्रौद्दु विभु गानं बोलुने वारिकिन् ॥ 159 ॥

व. अप्पुडु ॥ 160 ॥

---

में जल देने पर, वृक्ष के मध्य और अन्त में भी शीतलता प्राप्त करने के समान, आरंभ में हरि की वंदना करने पर, देवगण और हम सब मोद पाएँगे। १५६ [कं.] हे पुण्यात्मा ! हे परम दया के निवास ! हे उज्ज्वल तेज वाले ! आपन्न दिदृक्षुओं को (संकटग्रस्त दर्शनाभिलाषियों को) तुम्हारा मुखाब्ज (मुखकमल) झट से, अवसर पर [अनायास ही] संपत्ति प्राप्त करावेगा।" १५७

## अध्याय—६

[व.] इस रीति से देवगण-समेत हो, अनेक प्रकार से कीर्तन कर रहे परमेष्ठि (ब्रह्मा) पर कृपा करके, दयागरिष्ठ, और विश्वगर्भ [भगवान विष्णु] आविर्भूत (प्रत्यक्ष) हुआ। १५८ [म.] वह हरि यों प्रकाशमान हो दिखाई दिया, मानो एक साथ एक सहस्र सूर्यों की प्रभा पुंजीभूत रूप में उदित हुई हो। तब वे देवता चकित विलोकनों से, विषण्ण मति वाले बन, विभ्रांत होकर अपने सामने का प्रदेश भी देख न सके, [इस कारण] कुछ समय तक [वे लोग] शंकित (स्तंभित) बने रहे; प्रभु को देख पाना उनके लिए कहाँ संभव होता ? १५९ [व.] तब (उस अवसर पर)। १६० [सी.] हार, किरीट, केयूर, कुंडल, पादकटक (पाजेब),

सी. हरि किरीट केयूर कुंडल पाद कटक कांचन रत्न कंकणादि
कौस्तुभोपेतंबु गोमोदकी शंख चक्र शरासन संयुतंबु
मरकतश्यामंबु सरसिजनेत्रंबु कर्णाभरण कांति गंडयुगमु
कलित कांचनवर्ण कौशेयवस्त्रंबु श्रीवनमालिका सेवितंबु-

आ. नै मनोहरंबुनै दिव्य सौभाग्य,-मैन यतनिरूपु हर्ष मॅसग
जूचि ब्रह्म हरुडु सुरलुनु दानुनु, वॉगि नम्रुलगुचु वागड दॉडगॅ ॥161॥

कं. जनन स्थिति लय दूरुनि, मुनिनुतु निर्वाणसुख समुद्रुनि सुगुणुं
वनुतनुनि बृथुल बृथुलुनि, ननघुडगु महानुभावु नभिनंदितुन् ॥ 162 ॥

कं. पुरुषोत्तम ! नीरूपमु, परमश्रेयंबु भुवनपंक्तुल कॅल्लन्
स्थिर वैदिक योगंबुन, वरुसनु मोयंदु गानवच्चॅनु माकुन् ॥ 163 ॥

कं. मॉदलुनु नीलो दोचॅनु
दुवियुन्नट दोचॅ नडुमु दोचॅनु नीवे
मॉदलु नडुमु दुदि सृष्टिकि
गदियग घटमुनकु मन्नु गति यगु माड्किन् ॥ 164 ॥

कं. नी मायचेत विश्वमु, वेमारु सृजितुवनुचु विष्णुडवनुचुन्
धीमंतुलु गुणपदविनि, नेमंबुन सगुणुडॅन निनु गांतु रॉगिन् ॥ 165 ॥

---

कांचन-रत्न-कंकण आदि से [बिभूषित तथा] कौस्तुभोपेत (कौस्तुभमणि सहित), कौमोदकी (गदा), शंख, चक्र, शरासन (धनुष) आदि से संयुत (युक्त), मरकतश्याम (मरकत मणि के समान श्यामल), सरसिजनेत्र (कमल जैसे नेत्र)- कर्णाभरण की कांति से झलकते गंडयुग सुन्दर कांचन-वर्ण का कौशेयवस्त्र [से युक्त], श्री (लक्ष्मी) और वनमालिका से संसेवित, [आ.] मनोहर और दिव्य सौभाग्यप्रद विष्णु के रूप को बढ़ते हर्ष से देखकर, हर (शिव) और सुरों-सहित ब्रह्मदेव विनम्र हुए और फूलते हुए [आनन्द से] स्तोत्र करने लगे । १६१ [कं.] जनन-स्थिति-लय से दूर (परे), मुनिनुत (मुनियों से प्रशंसित), निर्वाण-सुख के समुद्र, सुगुणी, सूक्ष्म से सूक्ष्म, पृथुल (स्थूल) से पृथुल (स्थूल), अनघ (पापरहित) होनेवाले महानुभाव का अभिनंदन करता हूँ । १६२ [कं.] हे पुरुषोत्तम ! तुम्हारा रूप समस्त भुवन-पंक्तियों (-समूहों) के लिए परम श्रेयस्कर है, वेदोक्त स्थिर समाधि द्वारा हमें तुम्हारे भीतर के ये [विविध] रूप क्रम से दिखाई दिए । १६३ [कं.] तुममें मूल (आदि) दिखाई पड़ा, फिर अंत और मध्य गोचर हुआ, इस सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त तुम्हीं हो, जिस प्रकार घट (घड़े) के लिए मिट्टी गति (सामग्री, आधार) है, [वैसे ही समस्त सृष्टि के लिए तुम्हीं आधार हो ।] १६४ [कं.] [तुम] अपनी माया से इस विश्व का बार-बार सृजन करते रहते हो, तुम्हें विष्णु

आ. अन्नमवनि यंदु नमृतंबु गोवुल, यंदु वह्नि समिथलंदु नरुलु
योगवशत बोंदु नोजनु बुद्धिचे, सगुणु निन्नु गांतुरात्मविदुलु ॥ 166 ॥

मत्त. पट्टुलेक बहु प्रकार विपन्न चित्तुलमैति मे-
मॅट्टकेलकु निन्नु गंटि मभीप्सितार्थमु वच्चॅ बॅन्
वॅट्टयॅन दवानलंबुन वेगु नेनुगु मौत्तमुल्
निट्ट लेचिन गंग लोपल नीरु गांचिन चाड्पुनन् ॥ 167 ॥

मत्त. नोकु नेमनि विन्नवितुमु नीवु सर्वमयुंडवै
लोकमॅल्लनु निंडि युंडग लोकलोचन ! नी पदा-
लोकनंबु शुभंबु माकुनु लोकपालकुलेनु नो-
नाकवासुलु नीव वह्नि दनर्चु केतु ततिक्रियन् ॥ 168 ॥

व. अनि कमल संभव प्रमुखुलु विनुति चेसिरि। अनि चॅप्पिन नरेंद्रुनकु शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 169 ॥

शा. ई रीति जतुराननादि नुतुडै येपार जीमूत गं-
भीरंबैन रवंबुनं ब्रलिकॅ संप्रीतात्मुडै यीश्वरुं-

---

मान कर धीमान् लोग तुम्हारे गुण-पद को नियम-पूर्वक समझकर, तुम्हें क्रम से सगुण मानते हैं। १६५ [आ.] अवनि (भूमि) में [कृषि-कर्म के द्वारा] अन्न, गौओं में [दोहन द्वारा] अमृत (दूध), समिधाओं (लकड़ी) में [मंथन के द्वारा] अग्नि को मनुष्य अपने उपाय-योग के द्वारा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार आत्मविद् (ज्ञानी बुद्धिमान) अपनी बुद्धि द्वारा सगुण बने देखते है। १६६ [मत्त.] सहारे के अभाव में बहुत प्रकार से [हम लोग] विपन्न-चित्त हुए हैं, अन्त में किसी तरह तुम्हें देख सके। इससे हमारा अभीष्ट सिद्ध हो गया। जिस प्रकार अधिक गरम दवानल में झुलसता हुआ गजसमूह, बाढ़ के कारण उमड़नेवाली गगा का जल पा जाता है [उसी प्रकार हम लोगों ने तुम्हें प्राप्त किया है।] १६७ [मत्त.] हे लोकलोचन (लोक के नेत्रसमान प्रभु) ! तुम सर्वमय हो (सबमें भरे हुए हो), जबकि तुम लोक भर में समाये हुए हो, तुमसे हम क्या कहकर निवेदन करेंगे ? तुम्हारे पदों का (चरणो का) आलोकन (दर्शन) हमारे लिए शुभप्रद है; तुम वह्नि (अग्नि) हो, ये लोकपालक, मैं और ये नाकवासी (देवगण) सब उसमें से फैले हुए कांतिपुंज के सदृश हैं। १६८ [व.] [यों] कहकर कमलसंभव (ब्रह्मा) प्रमुख (आदि) ने विनुति (स्तुति) की। इस प्रकार बखान करके शुक ने नरेंद्र से यों कहा। १६९ [शा.] इस प्रकार चतुरानन (ब्रह्मा) आदि से सन्नुत (प्रशंसित) होकर, संप्रीतात्मा बनकर, ईश्वर (विष्णु) जीमूतगंभीर (मेघ-सदृश गंभीर) स्वर में उन देवताओं से, जिनके शरीर [हर्ष से] रोमांचित

डा रोमांचित कायुलन्नव विमुक्तापायुलन् प्रेयुल
न्नारब्धोग्र महार्णवोन्मथन वांछानल्पुलन् वेल्पुलन् ॥ 170 ॥

कं. ओ नलुव ! यो सुरेश्वर !
यो निटलतटाक्ष ! यो सुरोत्तमुलारा !
दानवुलतोड निप्पुडु
मानुग बोरामि गलिगि मनुटे योप्पुन् ॥ 171 ॥

व. अदि यॅट्लंटिरेनि ॥ 172 ॥

क. ऍप्पुडु दनकुनु सत्वमु, चॊप्पडु नंदाक रिपुल जूचियु दन मै-
गप्पिकोनि युंडवलयु, नॊप्पुग नहि मूषकमुन कोंदिगिन भंगिन् ॥ 173॥

क. अमृतोत्पादन यत्नमु, विमलमति जेयुटॊप्पु वेल्पुलु विनुडी
यमृतंबु द्रावि जंतुवु, लमृतगति नतुकुचुंडु नायुर्वृद्धिन् ॥ 174 ॥

सी. पालमुन्नीटिलोपल सर्वतृण लतौषधमुलु दॅप्पिचि चाल वैचि
मंदर शैलंबु मंथानमुग जेसि तनर वासुकि दरित्राडु सेसि
ना सहायंबुन नलि नंदरुनु मीरु तरुवुडु बेग नतंद्रुलगुचु
फलमु मोदय्यॅडु बहुळदुःखंबुल बडुदुरु दैत्युलु पापमतुलु

आ. अलसटयुनु लेक यखिलार्थमुलु गल्गु
विषधिलोन नौवक विषमु पुट्टु

हुए, जो अपाय (संकट) से अभी-अभी विमुक्त हुए, जो [ईश्वर के] प्रेमपात्र बने, और जो प्रारब्ध (दुर्भाग्य) रूपी क्षुब्ध महार्णव (महासागर) को मथ डालने की वांछा करनेवाले अनल्प (महान्) थे, इस प्रकार के वचन सुनाये : १७० [कं.] हे ब्रह्मा ! हे सुरेश्वर (इन्द्र) ! हे निटलतटाक्ष (फाललोचन, शिव) हे सुरोत्तम (देवगण) ! इस समय दानवों (राक्षसों) से युद्ध किये बिना बचे रहना ही उचित है। १७१ [व.] यदि पूछेंगे कि कैसे [क्यों] ? तो सुनो। १७२ [कं.] जब तक अपने को सत्त्व (बल) प्राप्त नहीं होता, तब तक शत्रुओं को [सामने] पाकर भी अपने को छिपा लेना चाहिए, जैसे [कभी-कभी]अहि (सर्प) मूषक से दबकर (छिपा) रहता है। १७३ [कं.] विमल-मति (बुद्धिमत्ता) से अमृतोत्पादन (अमृत को उत्पन्न) करने का यत्न करना उचित है; हे देवताओ ! सुनो, अमृत पीने पर जीव-जंतु, आयुर्वृद्धि पाकर अमृत गति से (मृत्युरहित स्थिति में) जीवित रह सकते हैं। १७४ [आ.] क्षीरसागर में समस्त तृण (घास), लता, औषध मँगवाकर, अधिकता से डाल देना, मंदर शैल को मथानी बनाकर, वासुकी (शेषनाग) को रस्सी बनाकर, मेरी सहायता से, क्रम से, तुम सब अतंद्र (आलस्य-रहित) बनकर शीघ्र ही मंथन करो। फल तुम्हें

गलगि वरुव वलदु कामरोषंबुलु
वस्तुचयमुनंदु वलदु चेय ॥ 175 ॥

व. अनि युपदेशिंचि ॥ 176 ॥

कं. अंतादि रहितु डच्युतु, डंतर्धानंबु नोंदें नज फालाक्षुल्
संतोषंबुन दम तम, कांतालयमुलकु जनिरि गौरवमोप्पन ॥ 177 ॥

कं. कय्यंबु सेय नोल्लक, नेय्यंबुन नतुलु वेट्टि निर्जरनिकरं-
बिय्यप्पनमुलु वेट्टुचु, दिय्यंबुन गोल्चं बलिनि देवद्वेषिन् ॥ 178 ॥

कं. पस चेंडि तनकुनु वशमै, सुसरमुतो गोल्चुचुन्न सुरसंघमुलन्
गसिमसगि चंप बूनिन, नसुरुल वारिचें बलियु नति नययुक्तिन् ॥179॥

व. अट्लु वारिंचि, वैरोचनि राक्षस समुदयंबुनकिट्लनियें ॥ 180 ॥

कं. पगवारु शरणु चोच्चिन, मगतनमुलु नेरप दगदु मगवारलकुन्
दगु समय मेरुगवलदे, मगटिमि पाटिपवलदमर्त्युल तोडम् ॥ 181 ॥

व. अनि पलिकि, कोलुवुकूटंबुन नसुरनिकर परिवृतुंडै, निखिल लोक राज्य

---

मिलेगा, पापमति वाले दैत्य बहुत से दुःखों में फँसेंगे। इसमें बिना थकान के (अनायास ही) अखिलार्थ (सब मनोरथ) प्राप्त होगे। विषधि (समुद्र) में एक विष उत्पन्न होगा, किंतु [तुम लोग] घबड़ाकर भयभीत मत होओ, वस्तु-चय (समूह) के प्रति [उसके अच्छे होने पर] काम (अभिलाषा), और [बुरे होने पर] रोष (क्रोध) नही करना चाहिए। १७५ [व.] इस प्रकार उपदेश देकर, १७६ [कं.] आद्यंत-रहित, अच्युत (विष्णु) अन्तर्धान हुआ। तब ब्रह्मा और फालाक्ष (शिव) संतोष के साथ, गौरव का अनुभव करते हुए, अपने-अपने कान्त-आलयों (प्रियनिवासों) को [लौट] गए। [अनंतर] १७७ [कं.] देव-द्वेषी (-शत्रु) बलि से युद्ध करने का विचार छोड़कर, उसे स्नेहपूर्वक उपहार अर्पण करते हुए, निर्जरनिकर (देवगण) मधुर व्यवहार से उसकी नति (नमस्कार) करने लगा। १७८ [कं.] बल खोकर, अपने वशवर्ती हो, सद्व्यवहार से अपनी सेवा करनेवाले सुरसंघों को असुर (राक्षस) लोग जब उद्धत हो, मारने चले तो बलि ने अत्यन्त नीति के साथ उन्हें रोक दिया। १७९ [व.] वैसा उन्हें मनाकर, वैरोचनी (बलि) ने राक्षस-समुदाय (संघ) से यों कहा : १८० [कं.] वैरी लोग जब शरण में आते हैं, तब शूरों को अपनी शूरता उनपर दिखाना उचित नही है, [इसके लिए] उपयुक्त अवसर जानना चाहिए, [इस समय] अमर्त्यों (देवताओं) पर पौरुष का प्रयोग मत करो। १८१ [व.] यों कह (आदेश देकर), राजसभा में असुरनिकरों से (राक्षसवृन्द से) परिवृत होकर (घिरकर)

लक्ष्मीसहितुंडै, यखिल विबुध वीर विजयाहंकार निजालंकारुंडै, सुखंबुन गोलुवुन्न विरोचन नंदनुं गनि, शचीविभुंडुत्तम सचिवुंडनुं बोले सांत्ववचनंबुल शांति वोंदिंचि, पुरुषोत्तम शिक्षितंबैन नीति मार्गंबुन शंवरुनिकि प्रियंबु सेप्पि, यरिष्टनेमि ननुनयिंचि, त्रिपुरवासुलगु दानवुल नोडंबरिचि, जंभुनि सम्मतंबु चेसिकोनि, हयग्रीवुनि विग्रहंबु मान्चि, नमुचि तारक बाणादुलतो सख्यंबु नेरपि विप्रचित्तिकि वोत्तु हत्तिंचि, शकुनि विरोचन प्रहेतुलकु वोरामि सूपि, मय मालि सुमालि प्रमुखुलकु मैत्रि येरिगिंचि, कुंभ निकुंभुलकु सौजन्यंबु गैकोलिपि, पौलोम कालकेय निवात कवचादुल येड बांधवंबु प्रकटिंचि वज्रदंष्ट्रिकि वशुंडै, यितर दानव दैत्य समूहंबु वलन नति स्नेहंबु संपादिंचि, मनकु नक्क चेलियंड्र बिड्डलकु नोड्डारंबु लेमिटिकि ? एक कार्य परत्वंबुन नड्डंबु लेक ब्रतुकुदमु। अन्योन्य विरोधंबुलेल ? तोलिलि यन्योन्य विरोधंबुन नलंगितिमि। इदि मोदलु दनुज दिविज समुदयंबुलकु राजु विरोचन नंदनुंडु। मनमंदरु मतनि पंपु सेयंगलवारमु। उभयकुलंबुन वर्धिल्लुनट्टि युपायं

---

निखिललोक की राज्यलक्ष्मी-सहित होकर, अखिल विबुध-वीरों पर पायी गयी विजय के अहंकार (गर्व) से अलंकृत हो, सुखपूर्वक सिंहासन पर आरूढ़ विरोचननंदन (बलि) को देखकर, शचीविभु (शचीपति = इंद्र) ने उत्तम सचिव के समान, सांत्ववचन कहकर, [उसके मन को] शान्त किया। पुरुषोत्तम (विष्णु) से शिक्षित (उपदिष्ट) नीतिमार्ग का अवलंबन कर, इन्द्र ने शंवर (एक असुर) को प्रियवचन सुनाकर; अरिष्टनेमि के प्रति अनुनय दिखाकर; त्रिपुरवासी दानवों को राज़ी कर; जंभु को सहमत बनाकर; हयग्रीव का निग्रह (विद्वेष) भुला देकर; नमुचि, तारक, बाण आदि से सख्य (स्नेह) बरत कर; विप्रचित्ति के साथ साझा जोड़कर, शकुनि, विरोचन तथा प्रहेतुओं के मध्य वैर को दूरकर, मय, माली, सुमाली आदि से मैत्री व्यक्त कर; कुंभ-निकुंभ से सौजन्य (सज्जनता) ग्रहण कराकर; पौलोम, कालकेय, निवात, कवच आदि के प्रति बांधव्य प्रगट कर; वज्रदंष्ट्री के वशवर्ती होकर; तथा अन्य दानव-दैत्य-समूह से अत्यंत स्नेह अर्जित कर, फिर उसने [दानवों को यों समझाया]। "हम लोग बड़ी बहिन और छोटी बहिन की संतानें हैं, [अतः] हम एक-दूसरे से द्वेष क्यों करें ? एक-कार्य-परता (एकनिष्ठ कर्म) द्वारा हम अविरोध रूप से जियेंगे; अन्योन्य विरोध क्यों ? पूर्व में परस्पर के विरोध के कारण हम दोनों ने क्षति पायी थी; अब से लेकर आगे दनुज और दिविज [उभय] समुदायों का राजा विरोचन-नंदन (बलि) ही रहेगा। हम सब उसकी आज्ञा का पालन करेंगे। मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे

वॅरिगितु। अनि यमृतजलधि मथनप्रारंभ कथनंबु दॅलियं जॅप्पि, अट्लु सुरासुर यूथंबुलु बलाराति बलि प्रमुखंबुलॅ, परमोद्योगंबुन सुधा संपादनायत्तचित्तुलॅ, सख्यंबु नोंदि, मंदगमनंबुन मंदरनगंबुनकुं जनि ॥ 182 ॥

सी. वासवु वर्धकि वाडिगा जरचिन कुद्दालमुखमुल गीत द्रव्वि
मॊसलाग्रमुलु सॊन्पि मॊदलिपातर्गलिचि दीर्घपाशंबुल बिड्डुसुट्टि
पॅकलिचि बाहुल बॊडिचि कदॅलिचि पल्लार्चि तम तम पेरु वाडि
पॅट्रिकि मीट्रिकि नॅत्ति पृथुल हस्तंबुल दलल भुजंबुल दरलकुंड

ते. नानि मॅल्लन कुरुतप्पुटडुगु लिडुचु
भारमधिकंबु मरुवक नट्टुडनुचु
मंदरनगंबु दॅच्चिरमंदगतिनि
देवदैत्युलु जलराशि तॅरुवु वट्टि ॥ 183 ॥

कं. मंदरमु मोव नोपमि, नंदरिपै बडियॅ नदियु नति चोद्यमुगा
गॊंदरु नेलं गलसिरि, कॊंदरु नुग्गैरि चनिरि कॊंदरु भीतिन् ॥ 184 ॥

कं. एला हरिकड केगिति, मेला दॊरकॊटिमधिक हेलन शैलो-
न्मूलनमु चेसि तॅच्चिति, मेला पॅक्कंड्रु मडिसिरेला नडुमन् ॥ 185 ॥

---

हमारे उभय कुलों की श्रीवृद्धि होगी।" यों [कहकर] उसने अमृत-जलधि (क्षीरसागर) के मथन-प्रारंभ (-उद्योग) का वृत्तांत समझाया। इस रीति से सुरासुर-यूथ (देव-दानव-दल) बलाराति (इंद्र) और बलि को प्रमुख (नेता) बनाकर, परम उद्योग (महान् यत्न) द्वारा सुधा (अमृत) के संपादन में दत्तचित्त हो, सख्य-भाव प्राप्त कर मंद-गमन से मंदर-नग (पर्वत) पर पहुँचकर। १८२ [सी.] [अनन्तर] वासव-वर्धकी (इंद्र का बढ़ई— विश्वकर्मा) द्वारा ठोंक-पीटकर तेज बनायी गयी कुदाली की नोक से कुछ-कुछ खोदकर, मुसलायुधों के अग्रभागों को घुसेड़ कर, मूल हिलाकर, दीर्घपाशों (लंबे रस्सों) से लपेटकर, उखाड़कर, बाहुओं से हिला-डुलाकर, अपना-अपना पौरुष-नाम ले-लेकर जोर से चिल्लाते हुए, समूल उठाकर बड़े-बड़े हाथों, सिरों और भुजाओं से थामकर, [ते.] धीरे-धीरे, छोटे अटपटे डग बढ़ाते हुए, [बीच-बीच में एक-दूसरे को] सचेत करते हुए कि "भार अधिक है, पकड़ ढीली मत करो"—देव और दैत्य उस मंदर नग (पर्वत) को अमंदगति (तेजी) से ढोकर, जलराशि (सागर) की दिशा में बढ़ चले। १८३ [कं.] मंदर को ढो न सकने के कारण वह उन सब पर गिर पड़ा; कुछ लोग मिट्टी में मिल गये, कुछ चूर-चूर हुए, और कुछ लोग भीति (भय) से भाग निकले। [वे लोग सोचने लगे :] १८४ [कं.] हरि के पास हम गये ही क्यों ? अधिक-हेलन (खेल, हँसी-मज़ाक) समझ इसे ढोने का यत्न ही क्यों किया ? [जड़

कं. एटिकि ममु बनिपंचॆं, -ब्रेटिकि मनवोटिवारिकिंतलु पनुलि-
केटिकि राडु रमेश्वरु, -डेटिकुपेक्षिचं मऱव नेटिकि मनलन् ॥ 186 ॥

व. अनि कुलकुधर पतनजन्यंबगु वेदन सहिंपनोपक, पलविंचुचुन्न दिविज दितिजुल भयंबु मनंबुन नॆऱिगि, सकलव्यापकुंडगु हरि तत्समीपंबुन ॥ 187 ॥

म. गरुडारोहकुडै गदादिधरुडै कारुण्य संयुक्तुडै
हरिकोटि प्रभतो नोहो वॆऱकुडीयंचु प्रदीपिंचि त-
द्गिरि गेलन्नीवकुंड, गंदुकमु माड्किन वॆट्टि वक्षींद्रुपै
गरुणालोकसुधन् सुरासुरुल प्राणंबुल् समर्थिपुचुन् ॥ 188 ॥

कं. वारलु गीतुवग हरियुनु
वारिधि दरिकरुगुमनग वसुधाधरमुन्
वारिजनयनुनि गोंचु न-
वारितगति जनियॆ विहगवल्लभु डरुकन् ॥ 189 ॥

कं. चनि जलराशि तटंबुन
वनजाक्षुनि गिरिनि डिंचि वंदनमुलु स-

---

से] उन्मूलन कर (उखाड़कर) इसे हम क्यों उठा लाये ? मार्ग-मध्य में ही उतने लोग क्यों मरे ? १८५ [कं.] [हरि ने इस कार्य में] हमें क्यों नियुक्त किया ? इतना कठिन कार्य हमारे सदृश लोग कैसे करेंगे ? रमेश्वर (रमा-पति) [हमारे पास अब तक] क्यों नहीं आया ? उसने उपेक्षा क्यों की ? हमें भुला क्यों दिया ? १८६ [व.] [ऐसा] कह कुल-कुधर (कुलपर्वत) के पतन-जन्य (गिरने से उत्पन्न) वेदना सह न सक, यों विलाप कर रहे दिविजों (देवताओं) और दितिजों (दानवों) की भीति को मन ही मन जानकर सकल-व्यापक हरि, उनके समीप में— १८७ [म.] गरुड़ारोहक (गरुड़ पर सवार) हो, गदा आदि [साधन] धरकर, कारुण्य-संयुक्त (करुणायुक्त) हो, हरि-कोटि-प्रभा (करोड़ सूर्यों की कांति) से प्रदीप्त होते हुए [प्रत्यक्ष हुआ]। उसने— "ओहो [लोगो !] डरो मत" कहते हुए उस गिरि (पर्वत) को कंदुक (गेंद) के सदृश हाथ में उठा कर, पक्षींद्र (गरुड़) पर ऐसा रख दिया जिससे उसे चोट न लगे। [भगवान ने] करुणालोक-सुधा से (कृपादृष्टि रूपी अमृत से) सुरासुरों के प्राणों का समर्थन (रक्षण) किया। १८८ [कं.] जब लोग उसका कीर्तन करने लगे तो, हरि ने कहा कि तुम लोग वारिधि (समुद्र) के पास जाओ। अनंतर विहग-वल्लभ (पक्षिराज) गरुड़ उस वसुधाधर (पर्वत) को तथा वारिजनयन (कमलनेत्र) विष्णु [दोनों] को लेकर, अवारित-गति से (बिना रुके) सागर के समीप पहुंचा। १८९ [कं.] जाकर जलराशि के

द्विनतुलु सेसि खगेंद्रुडु
पनिविनियेंनु भक्ति नात्मभवनंबुनकुन् ॥ 190 ॥

व. अप्पुडु ॥ 191 ॥

## अध्यायमु—७

सी. भूनाथ ! विनवय्य, भोगींद्रु वासुकि बिलिपिंचि यतनिकि प्रियमु सेप्पि
फलभाग मी नोंडबडि सम्मतुनि जेसि मेल्लन जेतुलु मेनु निमिरि
नीव कार्केव्वरु नेर्तुरी पनि किय्यकोम्मनि यतनि गैकोलु वडसि
कव्वंपुगोंड निष्कंटकंबुग जेसि, घर्षिंचि यतनि भोगंबु जुट्टि

आ. कडगि यमृतजलधि गलशंबु गाविंचि
त्रच्चु नच्चलमुन दलपुलमर
बद्ध वस्त्र केश भारुलै या रेंडु
गमुलवार तरुव गदिसि रचट ॥ 192 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 193 ॥

कं. हरियुनु देवानीकमु
नुरगेंद्रुनि तललु वट्ट नुद्योगिंपन्

---

तट पर वनजाक्ष को उतारकर, उसकी वंदना और सद्विनुति करके, खगेंद्र (गरुड़) भक्ति-पूर्वक विदा ले अपने भवन पर पहुँचा । १९० [व.] उस समय । १९१

## अध्याय—७

[सी.] हे भूनाथ (राजन्) ! भोगींद्र (सर्पराज) वासुकी को बुलवाकर, उससे प्रियवचन कहकर, [अमृत रूपी] फल जो मिलेगा उसमें उसे भी भाग देने का समझौता करके उसे मनाकर, धीरे से उसके बदन पर हाथ फेरकर (सहलाकर), "तुम्हें छोड़ दूसरा कौन [इस कार्य में] समर्थ होंगे, अतः इस कार्य के लिए मान जाओ" —यों कहकर [देव-दानवों ने] उसकी स्वीकृति प्राप्त की । मथानी बनाये जानेवाले पहाड़ को निष्कंटक बनाकर तराश कर, [उसे साफ़ और चिकना करके] सर्प के शरीर से उसे लपेटकर, यत्न करके, [आ.] [उन लोगों ने] अमृत-जलधि (क्षीरसागर) को कलश बनाकर, फिर मंथन करने के हठ मे उनके विचार पल्लवित हुए; यों दोनों दलों के लोगों ने [शरीर पर के] वस्त्र और सिर के बाल कसकर बाँध लिये और वहाँ मंथन करने जुट गये । १९२ [व.] उसके अनंतर । १९३ [कं.] जब हरि और देवानीक (देवगण)

हरिमाया परवशुलै
सुरविमतुलु गूडि पलुक जोच्चिरि कडिमिन् ॥ 194 ॥

मत्त. स्वच्छमैन फणंबु सुरलु चक्कबट्टि मथिपगा
बुच्छमेटिकि माकु बट्टग बूरुषत्वमु गलिग मे
मच्छमैन तपोबलाध्ययनान्वयंबुल वारमै
यिच्छयितुमे तुच्छवृत्तिकि निडु माकु फणाग्रमुल् ॥ 195 ॥

व. अनि पलुकु दनुजुलं जूचि ॥ 196 ॥

कं. विस्मयमु बोंदि दानव
घस्मरुडहिफणमु विडुव गैकोनि यसुरुल्
विस्मितमुखुलै यार्चि र-
विस्मेरत गोनिरि सुरलु वोकन् वोकन् ॥ 197 ॥

व. इट्लु समाकर्षण स्थान भाग निर्णयंबुलेर्पड्चुकोनि, देवतलु पुच्छंबुनु, पूर्वदेवतलु फणंबुलं बट्टि, पयोराशि मध्यंबुनं बर्वतंबु बेट्टि, परमायत्त-चित्तुलै, यमृतार्थंबु द्रच्चुचुन्न समयंबुन ॥ 198 ॥

कं. विडु विडुडनि फणि पलुकग
गडु भरमुन मोदल गुदुरु गलुगमि वेडगै

---

उरगेंद्र (वासुकी) का शिरोभाग पकड़ने लगे तो हरिमाया के वश होकर सुरविमति (देवविरोधी) लोग मिलकर (एक साथ) साहस से [यों] बोलने लगे। १९४ [मत्त.] "जबकि तुम [सुर] लोग स्वच्छ फण भाग को अच्छी तरह पकड़कर, मंथन करोगे तब हम पूंछ क्यों पकड़ें ? हम लोग पौरुष से युक्त हो निर्मल तपोबल के साथ अध्ययन [करने] वाले अन्वय (वंश) में उत्पन्न हैं; तुच्छ कर्म करना क्यों चाहेंगे ? हमें फण वाला अग्रभाग दे दो"। १९५ [व.] इस प्रकार बोलनेवाले दनुजों को देखकर, १९६ [क.] दानवघस्मर (दानव-हंतक) विष्णु ने विस्मित होकर, अहिफण सर्प का शिरोभाग उनके लिए छोड़ना स्वीकार किया; [इस पर] असुर लोग विस्मित-मुख (हँसमुख) वाले होकर चिल्ला उठे। सुरों ने साहस (सावधानी) से पूंछ का हिस्सा ले लिया। १९७ [व.] इस प्रकार समाकर्षण (खींचने) के स्थान भाग का निर्णय करके, देवता लोग पुच्छ (पूंछ) को, (और पूर्वदेवता (देवताओं के अग्रज) फण वाला भाग पकड़ कर, पयोराशि (सागर) के मध्य में पर्वत को रखकर, परम आयत्त (पूरी तरह से तैयार) चित्त वाले होकर, अमृत के निमित्त सागर का मंथन करते समय, १९८ [कं.] "छोड़ो, छोड़ो" —कहकर फणि (सर्प) पुकार उठा, अत्यन्त भारी होने के कारण पहाड़ का निचला भाग (पेंदी) बराबर टिक न सकने के कारण वह तल की ओर को लुढ़कने लगा; [अतः] वह महाद्रि (महापर्वत)

बुडबुड रवमुन नखिलमु
वडवड वडकग महा द्र वनधि मुनिगॅन् ॥ 199 ॥

उ. गौरवसैन भारमुन गव्वपु गोंड भरिंपलेक दो-
स्सारविहीनुलै युभयसैनिकुलन् गडु सिग्गुतो नकू-
पारतटंबुन बडिरि पौरुषमुं जेडि; पांडवेय ! ये-
व्वारिकि नेरवोलु बलवतपु दैवमु नाक्रमिपगन् ॥ 200 ॥

कं. वननिधि जलमुल लोपल
मुनिगेंड गिरि जूचि दुःखमुन जिताब्धिन्
मुनिगेंडि वेल्पुल गनुगोनि
वनजाक्षुडु वार्धिनडुम वारलु सूडन् ॥ 201 ॥

### कूर्मावतार कथा प्रारंभमु

सी. समरनै लक्षयोजनमुल वेडलुपै कडु गठोरंबैन कर्परमुन
नदनैन ब्रह्मांडमैन नाहारिंचु घनतरंबमु मुखगह्वरंबु
सकल चराचर जंतुरासुल तेल्ल म्रिंगि लोगोनुनट्टि मेटि कडुपु
विश्वनु पै वेरु विश्वंबु पैबडड नागिन गदलनियट्टि काळ्ळु

ते. वेलिकि लोनिकि जनुदेंचु विपुलतुंड-
मंबुजंबुल बोलेडि यक्षियुगमु

---

'बुड़', 'बुड़' (चभक-चभक) शब्द करता हुआ, जिसे सुन निखिल [सृष्टि] के थर-थर काँपने पर, वनधि (सागर) मे डूब गया। १९९ [उ.] मथानी बनाया गया पर्वत के अत्यन्त भारी होने के कारण उभय पक्षों के सैनिक उसे धरने में असमर्थ हुए, वे दोस्सार (भुजबल)-हीन हो, पौरुष खोकर, लज्जा से अकूपार (सागर) तट पर गिर पड़े; हे पांडवेय ! (पांडुवंशी राजा !) बलवान् दैव का अतिक्रमण करना, किसी के लिए भी असंभव है। २०० [कं.] वनधि (सागर) जल के भीतर डूब रहे गिरि को देखकर चिताब्धि (चितासमुद्र) में मग्न होनेवाले देवताओं को देखकर, वनजाक्ष (कमलनयन) वार्धि के बीच में उनके देखते हुए (समक्ष में)··· २०१

### कूर्मावतार की कथा का प्रारंभ

[सी.] समतल बनी, [और] लक्षयोजन विशाल, अत्यन्त कठोर बनी हुई कर्पर; अवसर आने पर ब्रह्माण्ड को भी खा जानेवाला घनतर मुख-गह्वर (-गुफा), सकल चराचर जंतुराशि को समूचा निगलकर भीतर ले सकनेवाला भारी पेट; विश्व पर अन्य विश्व भी यदि आकर ऊपर गिरकर पड़ा रहे तो भी विचलित न होनेवाले चरण; [ते.] भीतर और

सुंदरंबुग विष्णुंडु सुरलतोडि
कूर्मि चॅलुवॉद नॉक महाकूर्ममय्यॆ ॥ 202 ॥

म. कमठंबै जलराशि जॊच्चि लघु मुक्ताशुक्ति चंदंबुनन्
समदद्रींद्रमु नॆत्ते वासुकि महानगंबुतो लीलतो
नमरेंद्रादुलु मौळिकंपमुलतो नो नो गदे बापुरे
कमलाक्षा ! शरणचु भू दिशलु नाकाशंबुनुन् म्रोयगान् ॥ 203 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 204 ॥

कं. तरिगांड्रलोन नॊकडट, तरिकडवकु गुदुरु नाक त्राडुनु जेरुल्
दरिगव्वंबुनु दानट, हरि हरि हरि चित्रलील हरिये यॆरुगुन् ॥ 205 ॥

आ. जलधि गडवसेय शैलंबु कव्वंबु
सेय भोगि द्राडुसेय दरव
सिरियु सुधयु वडय श्रीवल्लभुडु दक्क
नॊरुडु शक्तिमंतुडौकडु गलडॆ ? ॥ 206 ॥

आ. गॊल्लवारि ब्रतुकु गॊरुतन वच्चुने
गॊल्लरीति वालकुप्प द्रच्चि

---

वाहर आता-जाता विपुल तुंड (मुख); अंबुजों (कमलों) के सदृश अक्षियुग (नेत्रद्वय); इस प्रकार आकृतिवाला एक महाकूर्म वनकर, विष्णु ने देवों के साथ अपना स्नेह विकसित किया (वढ़ाया)। २०२ [म.] [यों विष्णु ने] कमठ (कछुआ) वनकर, जलराशि में पैठकर, उस समत्-अद्रींद्र (पर्वतराज = मंदराचल) को वासुकी महानाग के साथ, खेल ही खेल में, छोटी सी मुक्ताशुक्ति (सीपी) के समान ऊपर उठाया। [जिसे देख] अमरेंद्र (इंद्र) आदि "ओ हो हो ! वाप रे, हे कमलाक्ष ! तुम्हारी शरण [लेते है]" कहकर आकाश और दिशाओ को प्रतिध्वनित करते हुए पुकार उठे। २०३ [व.] इस प्रकार। २०४ [कं.] मंथन करनेवालों में एक होकर, हरि [आप ही] हाँड़ी की गेंडुरी, आप ही रस्सा और रस्सियाँ, आप ही मथानी वन गया। हरि ! हरि ! हरि की यह विचित्र लीला हरि ही जानता है [कोई दूसरा जान नहीं सकता]। २०५ [आ.] जलधि (समुद्र) को हांड़ी (मटका) वनाने, शैल को मथने का डंडा वनाने, भोगी (सर्प) को रस्सा वनाने, श्री (लक्ष्मी) और सुधा (अमृत) पाने के निमित्त [सागर का मंथन करने के लिए] श्रीवल्लभ (लक्ष्मीपति— विष्णु) को छोड़कर अन्य कोई समर्थ (शक्तिशाली) है ? (नहीं है।) २०६ [आ.] ग्वालों के जीवन के (जिंदगी) हीन कैसे कहा जाय ? ग्वालो के जैसे ही क्षीरसागर मथकर सारे देवता लोग ग्वाले वन गये, विष्णु भी

गॊल्ललैरि सुरलु गॊल्लय्यॆ विष्णुंडु
चॆट्टुलेनिमंदु सिरियु गनिरि ॥ 207 ॥

व. इट्लु सुरासुर यूथंबुलु हरिसनाथंबुलै, कवचंबुलु नॆट्टंबुलु वॆट्टिकॊनि, पुट्टंबुलु पिरिचुट्टुकॊनि करंबुलु गरंबुलु नप्पळिचुचु, भुजंबुलु भुजंबुलु नॊरयुचु, लॆंडु लॆंडु दरुवं दॊडंगुडु रंडनि, यमंदगति बॆरुगु द्रच्चु मंदगॊल्लल चंदंबुन, महार्णव मध्यंबुन मंथायमान मंदरमहीधर विलग्न भोगि भोगाद्यंतंबुलं गरंबुलं दॆमलचुचु,बॆनु बॊब्बलं ब्रह्मांड कटाहंबु निर्भरंबै गुब्बु-गुब्बनि युरल, गीत कव्वंबु गुत्ति जिरजिरं दिरुगु वेगंबुन, छटच्छटायमानंबु-लै भुगुलु भुगुळ्ळनु चप्पुळ्ळ नुप्परं बॆगसि, लॆक्ककु मिक्किलि चुक्कल कॊम्मल चॆक्कुल निक्कलुवडु मिसिमिगल मीदि मीगडपाल तेटतॆग्गु तुंपरल परंपरलवलन निजकर क्रमक्रमाकर्षणपरिभ्रांत फणि फणागर्भ समुद्भूत निर्भर विषकीलि कीलजालंबुलप्पटप्पटिकि नुप्प-तिल्लिन, दप्पिनॊदक, मंदगति जॆंदक, यक्कूपार वेला तटकुटज कुसुम गुच्छ पुच्छ पिच्छल स्वच्छमकरंद सुगंधि गंधवहावहनंबुनं ग्रॊंजॆमटनीटि पॆनु

---

ग्वाला बना। [मथन करके ही इन लोगों ने] अचूक दवा (-अमृत) और श्री (लक्ष्मी) को प्राप्त किया। २०७ [व.] इस प्रकार सुरासुर-यूथ (देव-दानव-समाज) हरि (विष्णु) को नाथ (नायक— नेता) बनाकर, कवच और शिरस्त्राण पहनकर, वस्त्रों को लपेट बाँधकर, हाथ हाथ से बजाते हुए, भुजा भुजा से रगड़ते हुए, "उठो, उठो, मथने लगे, आओ" —कहकर, अमंद गति से दही मथनेवाले मंद [बुद्धि वाले] ग्वालों की भाँति, महार्णव (महासागर) के मध्य मे मंथायमान मंदर महीधर (पर्वत) से लिपटे सर्प के सिर और पूँछ को अपने हाथों से खींचते हुए, कड़ाके की चीख-चिल्लाहट से, ब्रह्मांड-कटाह (विश्व की छत) निर्भर (पूर्ण, असह्य) रूप से दरक कर छप-छप लुढ़कने लगे, मथानी की कड़ियाँ तेजी से थिरकने लगे, उसके वेग मे दुग्धफेन से निकलकर, चिकने, चिटकते नवनीत के छीटों की परंपराएँ चटचट ध्वनि के साथ ऊपर आकाश मे उछले जिनसे असंख्य तारिका-सुन्दरियों के कपोलों पर धब्बे बन जावे, उन देवासुरों के हाथो से क्रम-क्रम से (दायें से बायें और बायें से दायें) खींचे जाने से विभ्रांत (व्याकुल) हुए सर्पराज के फणिगर्भ से उद्भूत (निकले) निर्भर (असह्य) विषाग्नि का ज्वाला-जाल फैल गया, पर इससे वे लोग थके-माँदे न हुए, मथन की गति भी मंद न हुई; उस कूपारवेल तटवर्ती (सागर के किनारे पर लगे) कुटज (वृक्षों) के कुसुम गुच्छों में जमे हुए स्वच्छ मकरंद से लदकर बहने वाले सुगंधित गंधवह (पवन) के स्पर्श से शरीरों पर के स्वेदजल के प्रवाह के सूखते चलने पर, [पुनः] शरीरो से [पसीने की] अत्यधिक बाढ़ के प्रवाहित

वड्रदगमुलोंडळ्ळ निगुर, नोंडोरुलं वरिहंसिचुचु, वेरबाडि विलसिंचुचु, मेलु मेलनि यगिगचुचु, गाडु कादनि भंगिचुचु, निच्च मेंच्च मच्चरंबुवलन वनधिबलमान वैशाख वसुंधराधर परिवर्तन संजनित घुमघुमारावंबुनु, मथनगुणायमान महाहींद्रप्रमुख मुहुर्मुहुरुच्चलित भूरि घोर फूत्कार घोषंबुनु, गुलकुधर परिक्षेपण क्षोभित समुल्लंघन समाकुलितंबुलै, वेंड्रचड्रचि, गुबुरुगुबुरुलै यौरलु कमठ कर्कट काकोदर मकर तिमि तिमिंगिल मराळ चक्रवाक वलाहक भेक सारसानीकंबुल मोंड्रलुनं गूडिकोंनि मुप्पिरिगोंनि, दनुज दिविज भटाट्टहास तर्जन गर्जन ध्वनुल नलुपुरियै मोत्ति नट्लैन, दशदिगंत भित्तुलुनु बेडेंत्ति पेंल्लगिल्लं द्रुळ्ळुचु गिकुरु पोंडुचुचु, नोंकनिकोंकनिकंटें वडियुनुं, दडपुनुंगलुग द्रच्चुचु, वंतंबुलिच्चुचु, सुधा जननंबु जितिपुचु, नूतन पदार्थंबुलकु नेंदुळ्ळु सूचुचु, नेंततडबु द्रत्तमनि हरि नडुगुचु, नेंडपडनि तमकंबुल नंतकंतकु मुरवु डिपक त्रच्चु समयंबुन ॥ 208 ॥

---

होने पर, एक-दूसरे का परिहास करते हुए, अपना नाम ले-लेकर आत्मोत्कर्ष बताते हुए, 'वाह', 'वाह' कहकर प्रशंसा करते हुए, 'नहीं', 'नहीं' कहकर खंडन करते हुए; मन में न चाहने के कारण मात्सर्य से अत्यन्त वेग से वनधि (समुद्र) में घुमाये जानेवाले, वैशाख (मथानी) बने वसुन्धराधर (पर्वत) के संचलन से संजनित घुम-घुम की ध्वनि; मथनगुणायमान (मथानी का रस्सा बने हुए) महाहीद्र (महा-अहीद्र = सर्पराज) के मुख से बार-बार उच्चलित भूरि घोर, फूत्कारों का घोष (भारी ध्वनि), कुलकुधर (कुल-पर्वत) के परिक्षेपण (गिर पड़ने) से क्षोभित (कल्लोलित) जलराशि के अतिक्रमण से व्याकुल होकर, भयभीत हो, भीड़ लगाकर दु.खित होनेवाले कमठ (कछुवे), कर्कट (केकड़े), कालोदर (सर्प), मकर (मगर), तिमि, तिमिंगिल, मराल (हंस), चक्रवाक, बलाहक, भेक (मेंढक), सारसों [आदि जलचरों] की आर्त ध्वनियों के तुमुल हो उठने पर, दनुज (राक्षस), दिविज (देव) भटों के अट्टहासों और तर्जन-गर्जन की ध्वनियों ने घनीभूत होकर, जब धक्का-सा दिया तो दशदिगंत की भित्तियाँ (दसों दिशाओं की दीवारें) दरककर, उखड़कर, हिलते हुए गिरने लगीं; [मथने में] एक-दूसरे से अधिक तेजी अथवा मंदता (आलस्य) दिखा रहे थे; वे लोग एक-दूसरे से होड़ लगाकर; अमृत के निकलने का विचार करते हुए तथा नूतन पदार्थ प्राप्त करने का रास्ता देखते हुए, हरि से यह पूछते हुए कि 'और कितनी देर बिलोते जायँ', अधिक व्यग्रता से, मोह को बिना छोड़े मंथन करते जा रहे थे। उस समय २०८ [कं.] उस क्षीरसागर में मंदरागम (पर्वत)

कं. अप्पालवॅल्लि लोपल, नप्पटि कप्पटिकि मंदरागमु तिरुगं
जप्पुडु निंडॅ नजांडमु, चॅप्पॅडिदेमजुनि चॅवुलु चिदरु गॊनियॅन् ॥ 209 ॥

व. अंत नप्पयोराशि मध्यंबुन ॥ 210 ॥

कं. ऎंडम गुडि मुनुपु दिरुगुचु
गुडि नॆडमनु वॆनुक दिरुगु कुलगिरि कडलिन्
गड वॆडल सुरलु नसुरुलु
दॊडितॊडि फणिफणमु मोदलु दुदियुनु दिगुवन् ॥ 211 ॥

कं. वडिगॊनि कुलगिरि दरुवग
जडनिधि खग मकर कमठ झष फणि गणमुल्
सुडिवडु दडबडु गॆलकुल
बडु भयपडि नॆगसि बयलवड नुरलिपडन् ॥ 212 ॥

कं. अमरासुर करविपरि, -भ्रमण धराधरवरेंद्र भ्रमणंबुनु दा-
गमठेंद्रु वीपु तीटनु, शमियिंपग जालदय्यॆ जगतीनाथा ! ॥ 213 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 214 ॥

कं. आलोल जलधिलोपल, नालो नहि विडिचि सुरलु नसुरुलु बरवं
गीला कोलाहलमै, हालाहल विषमु पुट्टॆ नवनीनाथा ! ॥215॥

---

के थिरकते-थिरकते उसकी जो ध्वनि अजांड (ब्रह्मांड) में भर गयी, [उसकी बात] क्या कहें ! ब्रह्मदेव के कान भी फट गये। २०९ [व.] उस समय उस पयोराशि के मध्य में २१० [क.] सागर में वह कुलगिरि (पर्वत) पहले बायें से दायें को, पश्चात् दायें से बायें को जैसे-जैसे घूमने लगी, [वैसे-वैसे] ऊँची लहरें उठने लगी, और असुर तथा सुर संभ्रम के साथ फणि (साँप) का फण (शिरोभाग) और पृष्ठ भाग और भी ज़ोर से खींचने लगे। २११ [कं.] कुलगिरि जब तेज़ी के साथ मथी जाने लगी तो जड़निधि (समुद्र) के खग (पक्षी), मकर, कमठ (कछुए), झष (मीन), और फणिगण (सर्पसमूह) संतप्त होकर किनारे पर आ गिरने लगे, भयभीत हो उछलकर बाहर निकल लुढ़कने लगे। २१२ [कं.] हे जगतीनाथ (पृथ्वीनाथ) ! सुर और असुरों द्वारा होनेवाले धराधरवरेंद्र (पर्वतराज-मंदराचल) के भ्रमण और विपरिभ्रमण (सीधा और उलटा पड़नेवाले चक्कर) से भी उस कमठेंद्र (महाकूर्म) की पीठ की खुजली शांत नहीं हो सकी। २१३ [व.] तदनंतर २१४ [कं.] हे अवनीनाथ (भूपाल) ! उस आलोडित-जलधि (-सागर) के गर्भ में से ज्वालाओं से हलचल मचाता हुआ हालाहल विष उत्पन्न हुआ, [उसे देख] सुर और असुर सर्प को वहीं छोड़कर भाग खड़े हुए। २१५

व. अदियुनुं, प्रळयकालाभील फाललोचनु लोचनानलशतंबु चंदंबुन नमंदंबै, विलयदहन सहस्रंबु कैवडि वडियै, कडपटि पट्टपगटिटि वॆलुंगुल लक्ष तॆरंगुन दुर्लक्षितंबै, तुदिरेयि वॊलिगिन मॊगुलु गमुलवलनं वडु बलुपिडुगुल वडुवुन वॆडिदंबै, पंच भूतंबुलुं देजोरूपंबुलैन चाड्पुन दुस्सहंबै, भुगभुगायमानंबुलैन पॊगलुनु, जिटचिटायमानंबुलैन विस्फुलिंगंबुलुनु, धगद्धगायमानंबुलैन नॆऱमंटलुं गलिगि, महार्णव मध्यंबुन मंदरनगंबमंदरंबुगं दिरुगुनॆड जनिर्यिचि, पटपटायमानंबै, निगिडिकि वॊगि, दिशलकुं गेलुसाचि, बयळ्ळु प्रव्विकॊनि, तरिगव्वंबु गॊड नंट गॊनक, नलुगडलकुं नऱचि, दरुल कुरिकि, सुरासुर समुदयंबुलं दरिकॊनि, गिरिवर गुहागह्वरंबुल सुडिवडक, कुलशिखरि शिखरंबुल नॆरगलि वडि, गहनंबुलु दहिंचि, कुंज मंजरीपुंजंबुल भस्मंबुचेसि, जनपदंबुलेर्चि, नदी नदंबुलॆरियिंचि, दिक्कुंभि कुंभंबुलु निक्कलुवड निविक, तरणि तारामंडलंबुलपै मिट्टिचि, महर्लोकंबु दरिकॊनि, युपरि लोकंबुनकु माऱुगॊनलिडि, सुडिवडि, मुसरुकॊनि, ब्रह्मांडगोळंबु चिटिलिपडं दाटि, पाताळादि लोकंबुलकु, ब्रेळ्ळुवारि, सर्वाधिकंबै शक्यंबुगाक, यॆक्कड जूचिनं दानयै

[व.] वह (आग) भी, भयंकर प्रलयकाल के फाललोचन (रुद्र) के सैकड़ों नेत्राग्नियों के समान अमंद (तीक्ष्ण) होकर, सहस्र विलयदहनों (हज़ारों प्रलयाग्नियों) के सदृश वेगयुक्त हो, लाखों संध्याकालीन अरुण ज्योतियों के समान दुर्लक्षित हो, अंतिम रात्रि (प्रलय की रात) के मेघ-समूह से गिरकर कौंधनेवाली अनेकों बिजलियों के बराबर भयानक होकर, तेजोरूप में बदले हुए पंचभूतों की तरह दुस्सह होकर, भुगभुगायमान धुओं, चिटचिटायमान विस्फुलिंगों, धगद्धगायमान (धधकती) लाल लपटों से युक्त होकर, महार्णव के मध्य में मंदरनग के अमदगति (वेग) से घूमते समय उत्पन्न होकर पटपटायमान हो आकाश तक उफ़न कर, दिशाओं की तरफ़ जीभ फैलाकर, खुली जगह व्याप्त होकर, मथानी बने पर्वत का आश्रय छोड़, चारों तरफ़ फैलकर, किनारों तक दौड़कर, सुरासुर-समुदाय के पास पहुँचकर, गिरि की गुहा-गह्वरों में (-गुफाओं में) धँसकर नष्ट हुए बिना कुलशिखरी (कुलपर्वत = मंदराचल) के शिखरों को दग्ध करते हुए, वनों को जलाकर, कुंज-मंजरी-पुंजों को भस्मीभूत करके, जनपदों और नदी-नदों का दहन करके, दिक्कुंभि-कुंभों को (दिग्गजों के मस्तकों को) दागते हुए फैलकर, तरणि (सूर्य) और तारामंडलों पर चढ़कर, महर्लोक से समीप पहुँचकर, ऊर्ध्वलोक तक विस्तृत होकर, ब्रह्मांड को घेरकर, उसके आवरण को तड़काते हुए, पाताल आदि लोकों में जड़ जमाकर, सर्वाधिक हो, अशक्य हो, वह विषाग्नि सर्वत्र आप ही आप फैलकर कुरंग (हिरन) की तरह

कुरंगंबुक्रियं ग्रेळ्ळुरुकुचु, भुजंगंबु विधंबुन नोंडियुचु, सिंगंबुभंगि लंघिपुचु, विहंगंबु पगिदि नेंगयुचु, मातंगंबु पोलिक निलुवंबडुचु, निट्लु हालाहल दहनंबु जगंबुलं गोलाहलंबु सेयुचुन्न समयंबुन, मेलकु संगल मिडुकं जालक नीरैन देवतलुनु, नेलंगूलिन रक्कसुलुनु, डुल्लिन तारकंबुलुनु, गीटणंगिन किन्नर मिथुनंबुलुनु, गमलिन गंधर्व विमानंबुलुनु, जीकाकुवड्ड सिद्ध-चयंबुलुनु, जिक्कुवडिन ग्रहंबुलुनु, जिदरवंदरलैन वर्णाश्रमंबुलुनु, निगिरि पोयिन नदुलुनु, निंकिन समुद्रंबुलुनु, गालिन काननंबुलुनु, बोगिलिन पुरंबुलुनु, बीनुगु पडिन पुरुषुलुनु, बोक्किपडिन पुण्यांगना-जनंबुलुनु, बगिलि पडिन पर्वतंबुलुनु, भस्मंबुलैन प्राणिसंघंबुलुनु, वेगिन लोकंबुलुनु, विवशलैन दिशलुनु, नोड्ड गंडपुलैन भूजचयंबुलुनु, नडवड-लैन भूमुलुनुनै यकाल विलयकालंबै तोचुचुन्न समयंबुन ॥ 216 ॥

कं. ओड्डरिचि विषंबुन, कड्डमु चनुवेंचि काव नधिकुलु लेमिन्
गोड्डेरि स्त्रंदि रालन, बिड्डन नेडलेक जनुलु पृथ्वीनाथा ! ॥ 217॥

व. अप्पुडु ॥ 218 ॥

म. चनि कैलासमु जोच्चि शंकरु निवासद्वारमुं जेरि यी-
सुन दौवारिकुलड्डपेट्ट दल मंचुं जोच्चि कुय्यो मोरो

---

छलांग भरते हुए, भुजंग (सर्प) के समान उछलते हुए, सिंह की भाँति लाँघते हुए, विहग (पक्षी) के तुल्य उड़ते हुए, मातंग-सम (गज के समान) स्थिर खड़े होकर, वह हालाहल, कोलाहल मचाते हुए जगों को भस्मसात् करने लगा। उस समय प्रज्वलित ज्वालाओं से बचकर जीने में असमर्थ होकर, राख बने हुए देवता लोग; भूमि पर गिरे राक्षसगण; उखड़े हुए तारे; मरे हुए किन्नर-मिथुन (जोड़े); झुलसे हुए गंधर्व-विमान; थके हुए सिद्ध-समूह; उलझ पड़े हुए ग्रह-संघ; चल-विचल हुए वर्णाश्रम; निर्जल बनी नदियाँ; सुखे हुए समुद्र; दग्ध हुए कानन (जगल); संतप्त नगर; नीरस पड़े हुए पुरुष, शोकग्रस्त हुई पुण्यांगनाएँ; फट पड़े पर्वत, भस्म हुआ प्राणिसंघ; भुन गये लोक, विवश हुई दिशाएँ; ऊपर-नीचे हुए भूजचय (वृक्षसमूह) और टूक-टूक हुए भूखंडों के साथ अकाल विलयकाल (असमय के प्रलयकाल) सा दिखायी दिया। २१६ [कं.] हे पृथ्वीनाथ (भूपति) ! विष का सामना करके उसे रोकनेवाले किसी महान् [व्यक्ति] के अभाव में लोग— स्त्री-शिशु के भेद के बिना —अनाथ होकर मर मिटते गये। २१७ [व.] तब २१८ [म.] अंबुजासन (कमलासन = ब्रह्मदेव) आदि प्रमुख देवता कैलास पहुँचकर, शंकर के निवास (गृह)-द्वार पर गये, दौवारिक (द्वारपाल) ने क्रोध से जब रोका तो यह कहकर भीतर घुस गये कि हम रुकेंगे नहीं, फिर "हाय ! हाय ! दुहाई

विनु मालिपुमु चित्तगिपुमु दयन् वीक्षिपु मंचंबुजा-
सन मुख्युल् गनिरार्तरक्षण कळासंरंभुनिन् शंभुनिन् ॥ 219 ॥

कं. वारलु दीनत वच्चुट, गूरिमितो नॆरिगि वक्षुकूतुरु, दानुन्
बेरोलगमुन नुंडॆ द, -यारतुडॆ चंद्रचूडुडवसरमिच्चॆन् ॥ 220 ॥

व. अप्पुडु भोगिभूषणुनकु साष्टांग दंडप्रणामंबुलु गाविंचि, प्रजापति मुख्यु लिट्लनि स्तुतियिंचिरि ॥ 221 ॥

सी. भूतात्म ! भूतेश ! भूतभावनरूप ! देव ! महादेव ! देववंद्य !
यी लोकमुलकॆल्ल नीश्वरुंडवु नीव बंधमोक्षमुलकु प्रभुडु वीव
यार्तशरण्युंडवगु गुरुंडवु निन्नु गोरि भजितुरु कुशलमतुलु
सकल सृष्टि स्थिति संहार कर्तवै ब्रह्म विष्णु शिवाख्य बरगु वीवु

आ. परम गुह्यमैन ब्रह्मंबु सदसत्त, -मंबु नीव शक्तिमयुड वीव
शब्दयोनि वीव जगदंतरात्मवु, नीव प्राण मरण निखिलमुनकु ॥222॥

कं. नीयंद संभविंचुनु, नी यंद वसिंचि युंडु निखिल जगंबुल्
नीयंद लयमु बॊंदुनु, नी युदरमु सर्वभूत निलयमु रुद्रा ! ॥ 223 ॥

---

है ! हमारी सुनो, कृपया हमारी दशा देखो" यों पुकारते हुए उन लोगों ने शंभु (शिव) के दर्शन किये जो आर्त-रक्षण-कला में संरंभ (आतुर) रहता है। २१९ [कं.] उनको दीन (निस्सहाय) होकर आये देखकर, दक्षपुत्री (पार्वती) ने स्वयं स्नेहपूर्वक सभा [स्थल] में आकर, दयारत होकर चंद्रचूड़ (शिव) से उन्हें [मिलने का] अवसर दिया। २२० [व.] तब भोगिभूषण (शिव) को साष्टांग-दंड [वत्] प्रणाम करके प्रजापति (ब्रह्मा) आदि मुख्यों ने उनकी यों स्तुति की : २२१ [सी.] हे भूतात्मा ! भूतेश ! भूतभावनरूपा ! देव ! महादेव ! हे देववंद्य ! इन लोकों के ईश्वर तुम ही हो; तुम ही [जीवों के] बंध और मोक्ष के प्रभु हो; आर्तों (दुखियों) के लिए शरण्य गुरु तुम ही हो; कुशलमति वाले (बुद्धिमान व्यक्ति) चाह से तुम्हारा भजन करते हैं; समस्त सृष्टि, स्थिति और संहार का कर्ता होकर तुम ब्रह्मा, विष्णु और शिव के नाम से प्रसिद्ध हो; [आ.] परम गुह्य (रहस्यमय) ब्रह्म और सदसत्तम तुम ही हो, तुम ही शक्तिमय (शक्तियुक्त) हो, शब्दकारण तुम ही हो, जगदंतरात्मा और निखिल (समस्त) का प्राण तुम्हीं हो। २२२ [कं.] हे रुद्र ! निखिल जग तुम्ही में उत्पन्न होते हैं, तुम्हीं में वास करते है, फिर तुम्हीं में लय होते है, तुम्हारा उदर (पेट) समस्त भूतों का निलय (घर) है। २२३ [सी.] अग्नि तुम्हारा मुख है, परापरात्मक [शक्ति] तुम्हारी आत्मा है;

सी. अग्निमुखंबु, परापरात्मक मात्म, कालंबु गति, रत्नगर्भ पदमु,
श्वसनंबु नो यूर्पु, रसन जलेशुंडु, दिशलु कर्णंबुलु, दिवमु नाभि,
सूर्युंडु गन्नुलु, शुक्लंबु सलिलंबु, जठरंबु जलधुलु, चदरमु शिरमु,
सर्वौषधुलु रोमचयमुलु, शल्यंबुलद्रुलु, मानसममृतकरुडु,

ते. छंदमुलु धातुवुलु, धर्मसमिति हृदय
मास्यपंचक मुपनिष दाह्वयंबु-
लैन नीरूपु परतत्वमै शिवाख्य-
मै स्वयंज्योतियै योप्पु नाद्यमगुचु ॥ 224 ॥

कं. कौंदरु कलडंदुरु निनु, गोंदरु लेडंदुरतडु गुणि गाडनुचुन्
गोंदरु कलडनि लेडनि, कौंदलमंदुदुरु निन्नु गूर्चि महेशा ! ॥ 225 ॥

सी. तलप प्राणेंद्रिय द्रव्य गुण स्वभावुडवु, काल क्रतुवुलुनु नीवु
सत्यंबु धर्म मक्षरमु ऋतंबुनु नीव मुख्युंडवु निखिलमुनकु
छंदोमयुंडवु सत्व रजस्तमश्चक्षुंडवै युंदु सर्वरूप
कामपुराध्वर कालगतादि भूतद्रोहिजयमु चोद्यंबुगादु

---

काल तुम्हारी गति (चाल) है, रत्नगर्भा (भूमि) तुम्हारा पद (चरण) है, वायु तुम्हारा निःश्वास है, जलेश (वरुण) तुम्हारी रसना (जीभ) है, दिशाएँ तुम्हारे कर्ण (कान) हैं, आकाश तुम्हारी नाभि है, सूर्य नेत्र हैं, सलिल (जल) तुम्हारा शुक्ल (वीर्य) है, समुद्र तुम्हारा जठर (कुक्षि) है, आकाश सिर है, सर्व ओषधियाँ तुम्हारी रोमावली हैं, पर्वत शल्य (हड्डियाँ) हैं, अमृतकर (चंद्रमा) मानस (मन) है, [ते.] छंद (वेद) तुम्हारी [सप्त] धातुएँ हैं, धर्मसमूह हृदय है, उपनिषद् तुम्हारा आस्यपंचक (पाँच मुख) हैं, यों [इस प्रकार स्थित] तुम्हारा रूप परतत्त्व है, शिवाख्य (शिव कहलानेवाला) हैं, स्वयंज्योतिर्मान है, आद्य होकर विराजमान है। २२४ [कं.] हे महेश ! कुछ लोग कहते हैं कि तुम विद्यमान हो, और कुछ लोग कहते है कि नही हो, अन्य कुछ लोग तुम्हें गुणयुक्त नही मानते; और कुछ लोग तुम्हारे अस्तित्व के विषय में "है" और "नहीं है" कहकर व्याकुल रहा करते है। २२५ [सी.] विचार करने पर [जान पड़ता है कि] प्राण, इंद्रिय, द्रव्य, गुण तुम्हारा स्वभाव है; काल और क्रतु (यज्ञ आदि कर्म) तुम ही हो; सत्य, धर्म, अक्षर (ओंकार) और ऋत (सत्य) तुम ही हो; समस्त का मुख्य (प्रधान) हो; छंदोमय हो, सत्त्व, रज और तम तुम्हारे नेत्रत्रय हैं; तुम सर्व रूपी हो; काम (मन्मथ), पुर (त्रिपुरासुर), अध्वर (दक्षकृत यज्ञ), कालगति (मृत्यु) आदि भूतद्रोहियों पर तुमने जो विजय पायी उसमें अचरज नही है; [ते.] हे राजखंडावतंस

ते. लील लोचन वह्नि स्फुलिंग शिखल
नंतकादुल गाल्चिन यट्टि नीकु
राजखंडावतंस ! पुराणपुरुष !
दीनरक्षक ! करुणात्म ! देवदेव ! ॥ 226 ॥

आ. मूडु मूर्तुलकुनु मूडु लोकमुलकु, मूडु कालमुलकु मूलमगुचु
भेदमगुचु मदि नभेदमै यॊप्पारु, ब्रह्ममनग नीव फालनयन ! ॥ 227 ॥

कं. सदसत्तत्त्व चराचर, सदनंबगु निन्नु बॊगड जलजभवादुल्
पॆदवुलु गदलुप वॆरतुरु, वदलक नितु बॊगड नॆंतवारमु देवा ! ॥228॥

मत्त. बाहुशक्ति सुरासुरल् सनि पालवॆल्लि मथिंप हा-
लाहलंबु जनिंचॆ नेरि कलंघ्यमै भुवनंबु को-
लाहलंबुग जेसि चिच्चुनु लालनं गॊनि प्राणि सं-
दोहमुं ब्रतिकिंपवे दय दॊंर्गलिपग नीश्वरा ! ॥ 229 ॥

कं. लंपटमु निवारिंपनु, संपद कृपसेय जयमु संपादिपन्
जंपॆडिवारि वधिपनु, सॊंपारग नीकॆ चॆल्लु सोमार्धधरा ! ॥ 230 ॥

---

(चंद्रकला से विभूषित मस्तकवाले)! हे पुराणपुरुष! दीनरक्षक! करुणात्मा! हे देवदेव ! प्रलयकाल में, अपने लोचन-वह्नि-स्फुलिंग-शिखाओं से नेत्राग्नि-ज्वालाओं से) लीला से (खेल के समान) अंतक (मृत्यु) आदि समस्त को जला डालनेवाले तुम्हारे लिए ये सब कोई गर्व के विषय नहीं हैं। २२६ [आ.] तीनों मूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर) के, तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) के, तथा तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान) के तुम ही मूल बने हुए हो; हे फालनयन ! भिन्न होते हुए भी, [ज्ञानियों के] हृदय में अभिन्न होकर विलसनेवाले ब्रह्म कहे जानेवाले तुम ही हो। २२७ [क.] हे देव ! सदसत्तत्त्व और चराचर विश्व के तुम सदन (आश्रय) हो, तुम्हारी प्रशंसा करने में जलजभवादि [ब्रह्म आदि देवता] भी होंठ (जीभ) हिलाते डरते हैं, [ऐसी दशा में] हम कौन बड़े हैं जो तुम्हारी प्रशंसा कर सकें ? २२८ [मत्त.] सुर और असुरों ने चलकर अपनी बाहु शक्ति से क्षीरसागर का मंथन किया तो उसमें से हालाहल उपजा, जिसने किसी के लिए भी अलंघ्य होकर भुवन (जग) में कोलाहल (बिध्वंस) मचा रखा है, हे ईश्वर ! लाघव से (अनायास) उसे ग्रहण कर, दया छिड़काते हुए प्राणि-संदोह (-संघ) की प्राणरक्षा करो। २२९ [कं.] संकट का निवारण करना, सपत्ति प्रदान करना, विजय का संपादन (प्राप्ति) कराना, हंतकों का अंत करना, हे सोमार्धधरा ! (अर्धचंद्र-धारी !) तुम्ही को शोभा देता है। २३० [कं.] निखिल-लोक-स्तुत्य

कं. नीकंटॆ नॊंडॆरुंगमु, नीकंटॆ बरुलु गावनेररु जगमुल्
नीकंटॆ नॊडयडॆव्वडु, लोकंबुलकॆल्ल निखिल लोकस्तुत्या ! ॥ 231 ॥

ईश्वरुंडु देवबृंद प्रार्थितुंडै हालाहलमुनु बानमुसेयुट

व. अनि मरियु नभिनंदिपुचुन्न प्रजापति मुख्युलं गनि, सकल भूतसमुंडगु नद्देवुंडु तन प्रियसतिकिट्लनिये ॥ 232 ॥

कं. कंटे जगमुल दुःखमु, विंटे जलजनित विषमुवेडिमि प्रभुवै
युंटकु नार्तुल यापद गॆंटिचुट फलमु दान गीर्ति मृगाक्षी ! ॥ 233 ॥

कं. प्राणेच्छ वच्चि चॊच्चिन
प्राणुल रक्षिपवलयु प्रभुवुलकॆल्लन्
प्राणुल कित्तुरु साधुलु
प्राणंबुलु निमिष भंगुरमुलनि मगुवा ! ॥ 234 ॥

कं. परहितमु सेयु नॆव्वडु, परम हितुंडगुनु भूत पंचकमुनकुन्
बरहितमॆ परमधर्ममु, परहितुनकु नॆदुरुलेदु पर्वेंदुमुखी ! ॥ 235 ॥

---

(समस्त लोक जिसकी स्तुति करता है) ! हम तुम्हें छोड़ अन्य किसी को नही जानते, तुम्हारे सिवा और कोई भी जगों की रक्षा नहीं कर सकते; तुमसे बढ़कर लोकों का स्वामी और कौन है ?" २३१

देवबृंद से प्रार्थित होकर ईश्वर का हालाहल पान करना

[व.] यों और भी अभिनंदन कर रहे प्रजापति (ब्रह्मा) आदि को देखकर, सकलभूत-सम [वर्ती] उस महादेव ने अपनी प्रिय सति (पत्नी) से यों कहा— २३२ [कं.] "जग का दुःख [तुमने] देखा न ? जल-जनित (पानी से उत्पन्न) विषाग्नि की बात सुनी है न ? प्रभु बने रहने का फल (प्रयोजन) आर्त-जनों का संकट दूर करना ही है, हे मृगाक्षी ! उससे कीर्ति प्राप्त होती है। २३३ [कं.] प्राण [रक्षण] की इच्छा से [शरण में] आये प्राणियों को बचाना सभी प्रभुओं के लिए आवश्यक [कर्तव्य] है, हे रमणी ! प्राणों को क्षणभंगुर मानकर, साधु [जन अन्य] प्राणियों को [रक्षा में] अपने प्राण दे देते है। २२४ [कं.] जो परहित (दूसरों का भला) करता है, वह [पृथ्वी, जल, आकाश आदि] पंचभूतों का भी परम हितू (मित्र) हो जाता है। परहित (परोपकार) ही सबका परम धर्म है, हे पर्वेंदुमुखी (पूर्णचंद्र-मुखी) ! परहित करने वाले के लिए कोई विरोध (असंभव) नही है। २३५ [कं.] हे हरिणाक्षी (मृगनयनी) ! हरि के मन को यदि आनंद हो तो सारे जग आनंदित

कं. हरि मदि नानंदिंचिन, हरिणाक्षि ! जगंबुलॆल्ल नानंदिंचुन्
हरियुनु जगमुलु मॆच्चग, गरळमु वारिपुटॊप्पु गमलदळाक्षी ! ॥ 236 ॥

कं. शिक्षितु हालहलमुनु, भक्षितुनु मधुर सूक्ष्म फलरसमु क्रियन्
रक्षितु ब्राणिकोट्लनु, वीक्षिपुमु नेडु नीवु विकचाब्जमुखी ! ॥ 237 ॥

व. अनिपलिकिन, ब्राणवल्लभुनकु वल्लभ यिट्लनियॆ। देवा ! चित्तंबु कॊलंदि नवधरिंतु गाक। अनि पलिकॆननि चॆप्पिन यम्मुनींद्रुनकु नरेंद्रुं-डिट्लनियॆ ॥ 238 ॥

म. अमरन् लोकहितार्थमंचु नभवुंडौ गाक यंचाडॆ बो
यमरुल् भीतिनि म्रिंगुमी यनिरिवो यंभोज गर्भादुलुं
दमु गावन् हर ! लॆम्मु लॆम्मनिरिवो ता जूचि कन्गॊंट न
य्युम प्राणेश्वरु नॆट्लु म्रिंगु मनॆ नय्युग्रानल ज्वाललन् ॥ 239 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 240 ॥

कं. म्रिंगॆडुवाडु विभुंडनि
म्रिंगॆडिदियु गरळ मनियु मेलनि प्रजकुन्
म्रिंगुमनॆ सर्वमंगळ
मंगळसूत्रंबु नॆंत मदि नम्मिनदो ! ॥ 241 ॥

---

होते है, हे कमलदलाक्षी (कमललोचनी) ! [मेरे लिए] इस गरल विष का निवारण करना समुचित होगा जिसे हरि और जग भी सराहेंगे। २३६ [कं.] हे विकचाब्जमुखी ! (विकसित कमल-समान मुख वाली) आज तुम देख लो, मैं [किस प्रकार] इस हालाहल को शिक्षित (दंडित) करूँगा, मधुर सूक्ष्म फल-रस के समान भक्षण करूँगा [और] प्राणि-कोटि की रक्षा करूँगा।" २३७ [व.] यों कहने पर [अपने] प्राण-वल्लभ (प्रिय) से [वह] वल्लभा (प्रिया) यों बोली। हे देव ! अपने चित्त के अनुकूल (जैसा जी चाहे) अवधारण कीजिए (ध्यान दीजिए)। [पार्वती ने] ऐसा कहा। ऐसा [मुनींद्र] के कहने पर नरेंद्र ने मुनींद्र से इस प्रकार पूछा : २३८ [म.] अभव (शिव) ने लोक-हितार्थ कहकर भले ही "हाँ" कह दिया हो, अमरों (देवताओं) ने भीति (भय) के कारण "निगल लो" कहा हो, अंभोजगर्भ (ब्रह्मा) आदि ने "हमें बचाने के लिए, हे हर ! उठो, उठो" कहा हो, फिर भी उस उमा (पार्वती) ने अपनी आँखों से देखते हुए, प्राणेश्वर से उन उग्र (भयंकर) अनल-ज्वालाओं को निगलने के लिए कैसे कहा था ? २३९ [व.] [ऐसा] कहने पर शुक ने यों कहा (उत्तर दिया)। २४० [कं.] सर्वमंगला (पार्वती) ने यह जानकर [हालाहल] निगलने को कहा था कि निगलने

म. तन चुट्टुन् सुरसंघमुल् जयजय ध्वानंबुलन् बोब्बिडन्
घन गंभीर रवंबुतो शिवुड् लोकद्रोहि ! हुं ! पोकु र-
म्मनि कॅगेल दॅमल्चि कूचि कडिगा नंकिचि जंबू फलं-
बन सर्वंकषमुन् महाविषमु नाहारिचॅ हेलागतिन् ॥ 242 ॥

व. अय्यविरळ गरळ दहन पान समयंबुन ॥ 243 ॥

म. कदलंबाड्वु पापपेरुलॊडलन् घर्मांबुजालंबु पु-
ट्टदु नेत्रंबुलु नॆर्रगावु निज जूटार्धेंदुड् गंदडुन्
वदनांभोजमु वाड दा विषमु नाह्वानिचुचो डायुचो
बदिलुंडॆ कडिसेयुचो दिगुचुचो भक्षिपुचो मिंगुचोन् ॥ 244 ॥

कं. उदरमु लोकंबुलकुनु
सदनं, बगु टॅरिगि शिवुड् चटुल विषाग्निन्
गुदुरुकॊन गंठबिलमुन
बदिलंबुग निलिपॆ सूक्ष्म फलरसमु क्रियन् ॥ 245 ॥

कं. मॆच्चिन मच्चिक गलिगिन
निच्चिन नीवच्चु गाक यिच्च नॊरुलकुं

---

वाला विभु है, निगली जानेवाली चीज़ गरल है, और इससे प्रजा का भला होनेवाला है। पता नहीं उस [देवी] ने अपने मंगलसूत्र (मांगल्य) पर मन में कितना भरोसा रखा होगा ! २४१ [म.] अपने चारों तरफ़ के सुरसंघ के जय-जयध्वनि के साथ चिल्लाने पर, शिवजी, घन (मेघ) के से गंभीर स्वर में— "अरे ! लोकद्रोही ! मत जा, हुँ ! आ जा" —कहते हुए, हाथ से पकड़, फटकार कर, फिर लोंदा (निवाला) बनाकर, उस महाविष को मानो जंबूफल (जामुन) के समान, खेल ही खेल में, समूचा निगल गए। २४२ [व.] उस अविरल-गरल-दहन (-विषाग्नि) का पान करते समय, २४३ [म.] विष का आह्वान करते समय, पास पहुँचते समय, स्थिरता से खड़े होकर उसे [समेटकर] लोंदा बनाते समय, उसे गले से उतारते समय, भक्षण करते समय, [अंत में] निगल जाते समय [शिव के गले के] साँपों के हार (लड़ियाँ) हिले-डुले तक नहीं, शरीर पर घर्मांबुजाल (पसीने की बूँदें) भी न निकला; न नेत्र लाल हुए, न जटा-जूट में बँधे अर्धचंद्र कुम्हला गया, न [उनका] वदनांभोज (मुखकमल) मुरझा गया। २४४ [कं.] शिव ने यह जानकर कि [अपना] उदर (कुक्षि) लोकों का सदन (निवासस्थान) है, उस चटुल (भयंकर) विषाग्नि को, सूक्ष्म फलरस के समान अपने कंठबिल में सावधानी से स्थिरता से रख लिया। २४५ [कं.] यदि हम किसी दूसरे से संतुष्ट

जिच्चु गडि गॊनग वच्चुनॆ
चिच्चरकूपच्चुपडिन शिवुनकु दक्कन् ॥ 246 ॥

आ. हरुडु गळमुनंदु हालाहलमु वॆट्ट
गप्पु गलिगि तॊडवु करणि नॊप्पॆ
साधुरक्षणंबु सज्जनुलकु नॆन्न
भूषणंबु गादॆ भूवरॆंद्र ! ॥ 247 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 248 ॥

कं. गरळंबु गंठबिलमुन
हरुडु धरिंचुटकु मॆच्चि "यौनौ" ननुचुन्
हरियु बिरिंचियु नुमयुनु
सुरनाथुडु बॊगडिरंत सुस्थिरमतितो ॥ 249 ॥

कं. हालहल भक्षण कथ, हेलागतिनॆन्न विन्न नॆलमि बठिपन्
व्याळानल वृश्चिकमुल, पालॆ चॆंडरॆट्टि जनुलु भयविरहितुलॆ ॥250॥

---

हुए [अथवा] स्नेह रखें, तो उन्हें अपना अभीष्ट (पदार्थ) दें तो दे सकते हैं, [किंतु] उनके लिए स्वयं आग निगल सकते हैं क्या ? आग्नेय दृष्टि (नेत्र) वाले शिव को छोड़कर, किसी दूसरे के लिए ऐसा करना साध्य नहीं है। २४६ [आ.] हालाहल रख लेने के कारण हर के गले में कालिमा उत्पन्न होकर, एक आभूषण के समान शोभायमान हुई। हे भूवरेंद्र (राजेंद्र) ! विचार करने पर [जान पड़ता है कि] साधुरक्षण सज्जनों के लिए आभूषण (अलंकार) है न। २४७ [व.] तदनंतर। २४८ [कं.] हर ने जब कंठबिल में गरल को धारण किया तो हरि (विष्णु), बिरिंचि (ब्रह्मा), उमा (पार्वती), तथा सुरनाथ (इंद्र) —[इन सब] ने सुस्थिर मति से वाह ! वाह ! कहकर उनकी प्रशंसा की। २४९ [कं.] हालाहल-भक्षण की यह कथा जो कोई जन हेलागति (खेल ही खेल) में (अप्रयास) सुनें अथवा प्रेम से पढ़ें तो वे सर्प, अनल (अग्नि) तथा वृश्चिक (बिच्छू) के पाले पड़कर भी, भयरहित हो नष्ट नहीं होंगे। २५०

## अध्यायमु—८

### पालकडलिलो नैरावतादुलु जनियिंचुट

व. मरियु ना रत्नाकरंबु सुरासुरुलु द्रच्चु नेड ॥ 251 ॥

कं. तेल्लनि मेनुनु नमृतमु, जिल्लुन जल्लिचु पोदुगु शित शृंगमुलुन्
वेल्लुग नर्थुल कोर्कुलु, वेल्लिगोलुपु मोदवु पालवेल्लि बुट्टेन् ॥ 252 ॥

आ. अग्निहोत्रि यनुचु ना सुरभिनि देव
मुनुलु पुच्चुकोनिरि मुदमुतोड
विबुध संघमुलकु वेरवुतो नच्वर
हवुलु वेट्टुकोरकु नवनिनाथ ! ॥ 253 ॥

व. मरियु ना जलराशियंदु ॥ 254 ॥

कं. सच्चंद्रपांडुरंबै, युच्चैश्रव मनग दुरग मुदधि जनियिंचेन्
बुच्चिकोनियें बलिदैत्युं, -डिच्च गोनंडय्ये निद्रुडीश्वरशिक्षन् ॥ 255 ॥

कं. ओड्रपगु नुरमुनु पिरुदुनु
नेड्रिदोकयु मखमु सिरियु निर्मल खुरमुल्
कुरुच चंवुलु वेलिगन्नुलु
दड्रचगु कंदंबु चूड दगु ना हरिकिन् ॥ 256 ॥

---

## अध्याय—८

### क्षीरसागर में ऐरावत आदि का जनमना

[व.] और, उस रत्नाकर (सागर) को सुरासुर के मथने पर, २५१ [कं.] उस क्षीरसागर में गाय उत्पन्न हुई जो सफ़ेद बदन, अमृत की झड़ी लगा देनेवाली खीरी (थन), [और] शित (सफ़ेद) शृंगों (सींग) से युक्त हो, याचकों के मनोरथ पूर्ण करनेवाली है। २५२ [आ.] हे अवनिनाथ (राजा)! उस सुरभि (गाय) को अग्निहोत्री कहकर, विबुध-संघ को (देवगण को) विधिपूर्वक यज्ञहविस् (होमद्रव्य) देते रहने के निमित्त देव-मुनियों ने मोद से उसे ले लिया। २५३ [व.] और उस जलराशि (समुद्र) में। २५४ [कं.] उस उदधि (सागर) में उच्चैश्रव नामक [एक] तुरग (घोड़ा) उत्पन्न हुआ जो सत् (निर्मल)-चंद्र के समान पांडर (सफ़ेद) वर्ण का था, उसे वलि दैत्य ने ले (अपना) लिया, इच्छा रहते हुए भी ईश्वर के आदेश पर इंद्र ने उसे नहीं लिया। २५५ [कं.] उस हरि (घोड़े) का बलिष्ठ उर (छाती) और पृष्ठभाग गुच्छेदार पूँछ, मुखश्री, निर्मल खुर, छोटे-छोटे कान, सफ़ेद आँखें,

व. अंत ना पालकुप्पयंदु ।। 257 ।।

कं. दंत चतुष्टाहति शै, -लांतंबुलु विरिगि पडग नवदातकु भू-
रकांतंबगु नैरावण, दंतावळमुद्भविंचॆ धरणीनाथा ! ।। 258 ।।

कं. तडलेनि नडपु वडिगल, यॊडलुनु बॆनु निडुदकरमु नुरुकुंभमुलुन्
वॆडगॆ युवतुल मुरिपॆपु, नडतलकुन् मूल गुरुवनन् गजमॊप्पॆन् ।। 259 ।।

व. मरियु नत्तरंगिणीवल्लभु मथिपु नय्यॆड ।। 260 ।।

ते. ऎल्ल ऋतुवुलंदु नॆलरारि परुवमै, यिंद्रु विरुलतोट केपु दॆच्चि
कोरि वच्चुवारि कोर्कुल नीनंडु, वेल्पु म्रानु पालवॆल्लि बुट्टॆ ।। 261 ।।

व. मरियुनु गॊडकव्वंबुनं गडलि मथिप नप्सरोजनंबु जनिंचॆ । अंत ।। 262 ।।

कं. क्रॊवकारु मॆरुगु मॆनुलु
ग्रिक्किरिसिन चन्नुगवलु ग्रिस्सिन नडुमुल्
विक्कटिलिपुन्न तुरुमुलु
जक्कनि चूपुलुनु दिविजसतुलकु नॊप्पॆन् ।। 263 ।।

व. मरियु ना रत्नाकरंबुनंदु सुधाकरंडुद्भविंचि, विरिंचि यनुमतंबुन बन यथास्थानंबुनं प्रवर्तिंचुचुंडॆ । अंत ।। 264 ।।

---

स्थूल स्कंध (कंधे) देखने योग्य थे। २५६ [व.] तब उस दुग्धराशि में २५७ [कं.] हे धरणीनाथ (भूपति) ! अपने चार दंतों की आहति (टकराहट) से शैलशिखरों को भी गिरा देनेवाला, अवदात (सफ़ेद) रंग का (स्वच्छ) पर्वतराज (कैलास) के समान, महान् ऐरावत [नामक] दंतावल (हाथी) उत्पन्न हुआ। २५८ [क.] अकुंठित गमनवेग, महाकाय (शरीर), बड़ी लंबी सूंड़, ऊँचा कुंभस्थल, युवतियों को विलासयुक्त चाल सिखानेवाले मूलगुरु (गमन की शोभा का मूल) वह गज अत्यंत शोभायमान हुआ। २५९ [व.] और भी, उस तरंगिणी-वल्लभ (सागर) को मथते समय। २६० [ते.] उस क्षीरसागर में वह देवतावृक्ष (कल्पवृक्ष) उपजा जो सभी ऋतुओं में लहलहाकर शोभित रहता, इंद्र की पुष्प-वाटिका को महिमान्वित करता, तथा अपने पास आनेवाले याचकों की कामनाएँ पूर्ण कर देता। २६१ [व.] और भी उस पर्वत रूपी मथानी से सागर को मथने पर [उसमें] अप्सराजन पैदा हुआ। २६२ [कं.] नव-वर्षाकालीन बिजली के समान चमचमाते वदन, कसमसाता स्तनयुगल, पतली कमरें, भरे हुए केशपाश, आकर्षक दृष्टियाँ —[इन सबसे वे] देववनिताएँ शोभित रहीं। २६३ [व.] फिर उस रत्नाकर (सागर) में सुधाकर (चंद्र) उद्भव (आविर्भूत) होकर, विरिंचि (ब्रह्मा) की अनुमति पर अपने यथास्थान पर जाकर रहने लगा। अनंतर २६४

कं. तॊलुकारु मॆऱुगु कॆवडि
तळतळ यनि मेनु मॆऱय धगधग यनुचुन्
गलुमुल नॊनॆडु चूपुल
चॆलुवंबुल मॊदलिटॆंकि सिरि पुट्टॆ नृपा ! ॥ 265 ॥

सी. पालमुन्नीटिलोपलि मीदि मीगड मिसिमि जिड्डुन जेसि मेनुवडसि
क्रॊक्कारु मॆऱुगुल कॊनल तळुक्कुल मेनिचेगल निग्गुमॆऱुगु चेसि
नाडु ताटिकि क्रोदि नवकंपु दीगल नुनुबोद नॆय्यबु नूलुकॊलिपि
क्रॊव्वारु कॆंदम्मि कॊलकुल क्रॊद्दुन बॊलसिन वलपुल क्रोदिवॆट्टि

ते. पसिडि चंपकदानंबु बागु गूर्चि
व्रालु क्रॊन्नॆल चॆलुवुन वाडि दीर्चि,
जाणतनमुन जेतुल जिड्डु विडिचि
नलुव यी कॊम्म नॊगि जेसिनाडु नेडु ॥ 266 ॥

कं. कॆंपारॆडु नधरंबुनु, जंपारॆडि नडुमु सतिकि शंपारुचुलन्
सोंपारु मोमु गन्नुलु, बॆंपारुचु नॊप्पु गॊप्पु बिरुदुनु गुचमुल् ॥ 267 ॥

व. अनि जनुलु पॊगडुचुंड ॥ 268 ॥

सी. तरुणिकि मंगळस्नानंबु सेयितुमनि पॆट्टॆ निंद्रुडनर्घमैन
मणिमयपीठंबु मंगळवतुलेन वेलुपु गरितलु विमल तोय-

---

[कं.] हे राजन् ! वर्षारंभ की विद्युत् की भाँति चमकीले बदन के शोभित होने पर, संपत्ति-जनक दृष्टियाँ लेकर सौंदर्य का मूलस्थान लक्ष्मीदेवी उत्पन्न हुई। २६५ [सी.] दुग्धसागर के ऊपर की मलाई की सुंदर चिकनाई से देह रचकर, वर्षारभ की विद्युत् के छोरों पर की चमक के सार से उस पर तेज़ चढ़ाकर; दिन-दिन पाल-पोसकर बढ़ाई हुई स्निग्ध-वल्लरी की कोमलता से उसे सँवारकर, प्रातःकाल कमलालय (सरोवर) में व्याप्त होनेवाली सुगंधों से उसे पुष्ट बनाकर, [ते.] कनकचंपक पुष्पों का सौंदर्य उसमें जोड़कर, अस्त हो रहे नवीन चंद्र की सूक्ष्मता (बारीकी) से उसे तेज बनाकर, सावधानी से, अपने हाथों की जड़ता दूर करके, ब्रह्मा ने इस रमणी को आज ही बनाया। (इससे पूर्व ऐसी सुंदरी नहीं बनाई।) २६६ [कं.] उस सती (रमणी) के अधर (ओंठ) पद्मराग सम, कमर सूक्ष्म (पतली), मुख और नेत्र शंपा की रुचि (विद्युत्-कांति) को फीका करनेवाले, चूड़ा, नितंब और कुच शोभा के आधिक्य से युक्त थे। २६७ [व.] इस प्रकार लोगों के प्रशंसा करते समय २६८ [सी.] [उस] तरुणी को मंगलस्नान कराने के निमित्त इंद्र ने अनर्घ (अमूल्य) मणिमय-पीठ (चौकी) [लाकर] रख दिया; मंगलवती (सौभाग्यवती) देवता-गृहिणियों ने विमलतोय-पूर्ण (निर्मल-जल से पूर्ण) पुण्याह-कलश ला दिये;

पूर्णंबुलैयुन्न पुण्याह कलशंबु लिडिरि पल्लवमुल निच्चं भूमि
कडिमि गोवुलु पंचगव्यंबुलनु निच्चें मलसि बसंतुड् मधुवु नौसगें

ते. मुनुलु गल्पंबु जॆप्पिरि मॊगिलिगमुलु
पणव गोमुख काहळ पटह मुरज
शंख वल्लकि वेणु निस्वनमु निच्चॆं
पाडिराडिरि गंधर्वपतुलु सतुलु ॥ 269 ॥

कं. पंडित सूक्तुलतोडुत, दुंडंबुलु साचि तीर्थ तोयमुलॆल्लन्
गुंडमुल मुंचि दिग्वे, -दंडंबुलु जलक माचं दरुणीमणिकिन् ॥ 270 ॥

सी. कट्टंग पच्चनि पट्टु पुट्टमु दोयि मुदितकु दॆच्चि समुद्रुडिच्चें
मत्ताळिनिकरंबु मधुवान मूगिन वैजयंतीमाल वरुणुडिच्चें
गांचन केयूर कंकण किंकिणी कटकादुलनु विश्वकर्म यिच्चें
भारति यॊक मंचि तारहारमु निच्चें वाणि पद्ममु निच्चें बद्मभवुडु

आ. कुंडलिव्रजंबु कुंडलमुल निच्चॆं
श्रुतुलु भद्रमैन नुतुलु सेसॆं
नॆल्ललोकमुलकु नेलिकसानिवै
ब्रतिकॆं दनुचु दिशलु पलिकॆं नधिप ! ॥ 271 ॥

---

भूमि ने पल्लव (पत्ते) दिये, प्रशस्त गौओं ने पंचगव्य (गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत) दिये; वसंत ने लगाव से मधु (शहद) ला दिया; [ते.] मुनियों ने कल्प (मंत्र) पढ़े; मेघसंघ ने पणव, गोमुख, काहल, पटह, मुरज, शंख, वल्लकी तथा वेणु का निस्वन (वादन) प्रस्तुत किया; गंधर्वपति और उनकी सतियों (स्त्रियों) ने गाने गाये और नृत्य किये। २६९ [कं.] पडितों के द्वारा किये गये सूक्ति-पाठ (वेदपाठ) के साथ दिग्वेदंडों (दिग्गजों) ने घड़ों में भर-भरकर, सूंड़ फैलाकर तीर्थतोय (पुण्यनदीजल) डालकर उस तरुणी-मणि को स्नान करवाया। २७० [सी.] पहनने के लिए पीले पाटंबर की जोड़ी उस मुदिता (रमणी) को समुद्र ने ला दी; वरुण ने वैजयंती माला ला दी जिसके पुष्पों पर मधुपान करते हुए मत्तालिनिकर (मस्त भौरों का झुंड) झूम रहा था; कांचन (सोने के) केयूर (कुंडल), कंकण, किंकिणी और कटक आदि (आभूषण) विश्वकर्मा (देवशिल्पी) ने दिये; भारती (सरस्वती) ने एक श्रेष्ठ तारहार (मुक्ताहार) दिया; पद्मभव (ब्रह्मा) ने पैर रखने के लिए पद्म दिया; [आ.] कुंडलीव्रज (नाग-सर्प-समूह) ने कुंडल दिये; श्रुतियों (वेदों) ने शुभप्रद स्तोत्रपाठ किया; हे अधिप (राजन्) ! दिशाओं ने 'समस्त लोकों की स्वामिनी होकर जियो।" कहकर [आशीर्वाद के

व. मरियुनु ॥ 272 ॥

सी. पलुकुल नमृतंबु चिलुक नॅव्वानितो भाषिंचु नतडॅ पो ब्रह्मयनग
नॅलयिंचि कॅंगेल नॅव्वनि बरियिंचॅ वाडॅ लोकमुलकु वल्लभुंडु
मॅयिदीगॅ नॅव्वनि मेनितो गदियिंचॅ वाडॅ पो परम सर्वज्ञमूर्ति
नॅलतुक यॅप्पुडु निवसिंचु नॅयिंट ना यिल्लु परमगु नमृतपदमु

आ. नॅलत चूपुवारु नॅच्चोटि कच्चोट्, जिष्णुधनदधर्म जीवितंबु
कॉम्म पिन्ननगवु गुरुतर दुःख नि, -वारणंबु सृष्टिकारणंबु ॥ 273 ॥

व. मरियु नक्कॉम्म नॅम्मनंबुन ॥ 274 ॥

सी. भाविंचि यॊकमाटु ब्रह्मांडमंतयु नाटल बॊम्मरिल्लनि तलंचु
बॊलिंचि यॊकमाटु भुवनंबुलन्नियु दन यिंटिलो दीतुलनि तलंचु
बाटिंचि यॊकमाटु ब्रह्मादि सुरलनु दन यिंटिलो बॊम्मलनि तलंचु
गॊनकॊनि यॊकमाटु कुंभिनीचक्रंबु नलवड बॊम्मपीटनि तलंचु

आ. सॊलसि यॊक्क माटु सूर्येंदुरोचुल
नच्चटि दीपकळिकलनि तलंचु
भाम यॊक्कमाटु भारती दुर्गल
नात्मसखुलटंचु नादरिंचु ॥ 275 ॥

---

वचन] उच्चारे। २७१ [व.] और भी [ऐसा लगता था कि] २७२ [सी.] अमृत छिड़कनेवाले वचनों से वह जिससे सभाषण करेगी वही ब्रह्म (परतत्त्व) होगा; वह अपने अरुण हस्त से प्रोत्साहित कर जिसका वरण करेगी वही लोकों का वल्लभ (स्वामी) बनेगा; वह अपनी तनुलता जिसके शरीर से सटावेगी वही परम सर्वज्ञमूर्ति होगा। वह वनिता सदा जिस घर में निवास करेगी वह घर परम अमृतपद (वैकुंठ) होगा। [आ.] उस स्त्री की दृष्टि जिस स्थान पर पड़ेगी, वहाँ पर विजय, धन और धर्म का प्रसार होगा; उस सुंदरी की मुस्कुराहट गुरुतर (तीव्र) दुःख का निवारण करनेवाली तथा सृष्टि का कारण बनेगी। २७३ [व.] और वह रमणी अपने मन में २७४ [सी.] भावना करके इस ब्रह्मांड को कभी तो खेलने का पुतलीघर समझती; कभी तो तुलना करके सारे भुवनों को अपने घर की वस्तुओं की पंक्तियाँ समझती, बूझकर कभी तो ब्रह्मा आदि देवताओं को अपने घर के खिलौने मानती; कभी तो यत्नपूर्वक कुंडलिनी (भू)-चक्र को गुड़िया बिठाने का पीढ़ा समझती, [आ.] कभी तो थककर सूर्य और चंद्र के प्रकाशों को [अपने घर की] दीपकलिका समझती, वह भामा कभी तो सरस्वती और दुर्गा (पार्वती) को अपनी आत्मीय सखी कहकर आदर करती। २७५ [व.] तदनंतर २७६

व. तदनंतरंब ॥ 276 ॥

आ. चंचरीक निकर झंकार निनदंबु
दनरु नुत्पलमुल दंड बट्टि
मेघकोटि नडिमि मॅरुगु बुत्तडि माड्कि
सुरल नडुम निल्चॅ सुंदरांगि ॥ 277 ॥

कं. आ कन्नुलु ना चन्नुलु
नाकुरुला पिरुदु नडुमु नामुखमा न-
व्याकारमु गनि वेल्पुलु
चोकाकुन बडिरि कलगि श्रीहरि दक्कन् ॥ 278 ॥

व. अट्लु निलिचि, दशदिशलं बरिवेष्टिंचियुन्न यक्ष रक्ष सिद्ध साध्य दिविज गरुड गंधर्व चारण प्रमुख यूथंबुलं गनुंगॉनि, यप्पुराण प्रौढ कन्यकारत्नंबु दनमनंबुन निट्लनि वितर्किंचॅ ॥ 279 ॥

सी. ऐदुवनै युंड नलवड दीकचोट नीकचोट सवतितो नोर्वरादु
तग नीकचोट संतत वैभवंबुगा दीकचोट वेडिमि नुंड बोल
दीकचोट गरुणलेदींविकत वॅदकिन नीकचोट डग्गरि युंट बॅट्ट
नॅरयंग नीकचोट निलुकड चालदु चर्चिप नीकचोट जडत गलदु

आ. कॉन्नि चोट्लु काम गुणगरिष्ठंबुलु, क्रोध संयुतमुलु कॉन्नि यॅडलु
कॉन्नि मोहलोभ कुंठितंबुलु कॉन्नि, प्रमद मत्सरानुभावकमुलु ॥ 280 ॥

---

[आ.] चंचरीक-निकर (भ्रमर-समूह) के झंकार-निनाद (शब्द) से युक्त उत्पल पुष्पों की माला हाथ में लेकर, वह सुंदरांगी सुरों के मध्य में आकर ऐसी खड़ी हुई मानो मेघकोटि के बीच में चमकनेवाली बिजली की पुतली हो। २७७ [कं.] उन आँखों, उन स्तनों, उन लटों, उन नितंबों को तथा वह कमर, वह मुख, और वह नव्य आकार देखकर देवता लोग, एक श्रीहरि को छोड़, संभ्रम से विह्वल हो उठे। २७८ [व.] वैसे खड़ी होकर, दसों दिशाओं में अपने को घेरकर खड़े हुए यक्ष, रक्ष, सिद्ध, साध्य, दिविज, गरुड़, गंधर्व, चारण-प्रमुख (-आदि) यूथों (संघों) को निरखकर, वह पुराण, प्रौढ़ कन्यका-रत्न अपने मन में यों वितर्क करने लगी। २७९ [सी.] "इस जगह मैं सुहागिन बन नहीं रह सकती; उस जगह सौत के साथ रहना मुझे सह्य न होगा; और इस स्थान पर संतत वैभव नहीं रहेगा; इस जगह गरमी के कारण मुझसे रहा नहीं जायगा; अन्य स्थान पर खोजने पर करुणा का लेश भी दिखाई नहीं देता; उस प्रदेश में सहवास करना कठिन है; और उस जगह स्थिरता की कमी है; विचार करने पर उस अन्य प्रदेश में जड़ता (मूर्खता) दिखाई देती है; [आ.] कुछ प्रदेश

व. अनि सकल सत्पुरुष जनन वर्तनंबुलु मानसिंचि परिहरिंचि ॥ 281 ॥

सी. अमर मुत्तैदुवनै युंडवच्चुनु वरुसकु सवतु लॅव्वरुनु लेरु
वॅलयंग नश्रांत विभव मीतनि यिल्लु श्रृंगार चंदन शीतलुंडु
गलगडॅन्नडु शुद्ध कारुण्यमयमूर्ति विमलुंडु गदिसि सेविंचवच्चु
नॅरि नाडि तिरुगडु निलुकड गलवाडु सकल कार्यमुलंदु जडत लेदु

आ. साधुरक्षकुंडु षड्वर्गरहितुंडु, नाथुडय्यॅनेनि नडपनोपु
नितडे भर्त यनुचु निंति सरोजाक्षु, बुष्पदामकमुन बूजसेसॅ ॥ 282 ॥

कं. इंदीवर दाममुन मु, -कुंदुनि बूजिंचि तनकु गूडि वसिंपन्
मंदिरमुग द्वक्षमु, नंद सलज्जासुदृष्टि नालोकिंचॅन् ॥ 283 ॥

आ. मोहरुचुलवलन मुद्दिय तलयॅत्तु
सिग्गुवलन बाल शिरमुवंचु
निंति वॅरगुवलन नॅत्तदु वंपदु
तनदु मुखमु प्राणदयितु जूचि ॥ 284 ॥

---

काम-गुण से भरे हुए हैं; अन्य कुछ स्थान क्रोधसंयुत (युक्त) हैं; कुछ तो मोह और लोभ से कुंठित (बेकार) पड़े हैं; वाकी कुछ प्रदेश मद-मत्सर के अनुभावक (प्रभावित) है"। २८० [व.] इस प्रकार समस्त सत्पुरुषों के जन्म, और व्यवहार पर सोच-विचार करके उनका परिहार किया (छोड़ दिया)। २८१ [सी.] "[यहाँ तो मैं] शाश्वत रूप से सौभाग्यवती बनी रह सकूंगी, किसी सौत का नाता नहीं रहेगा; इसका भवन अश्रांत वैभव से शोभित रहता है; शोभा वाले चदन के समान यह [पुरुष] शीतल [स्वभाव का] है; उद्विग्न कभी नही होता; शुद्ध कारुण्य-मय मूर्ति है; विमल है, इसके साथ रहकर इसकी सेवा की जा सकती है; [बात] कहकर यह कभी मुकरता नहीं है; स्थैर्यवान है; किसी भी कार्य में जड़ता (आलस्य) नहीं करता; [आ.] साधुरक्षक है; [काम, क्रोध आदि] षड्वर्ग-रहित है; यह मेरा पति बने तो अच्छा [जीवन] बीतेगा। यही मेरा पति है।" इस प्रकार मन में भावना करती हुई उस रमणी ने पुष्प-दामक (-माला) से सरोजाक्ष (कमलनयन विष्णु) का सम्मान किया। २८२ [कं.] इंदीवरदाम (कमलपुष्प की माला) से मुकुंद (विष्णु) की पूजा कर, उसके वक्ष (छाती) को अपने निवास के लिए [योग्य] मदिर (घर) के रूप में पाने के उद्देश्य से, उसकी तरफ़ सलज्ज-दृष्टि से अवलोकन किया (निहारा)। २८३ [आ.] वह मुग्धा (लक्ष्मी) मोहरुचि के वश में आकर [देखने को] सिर उठाती, फिर वह बाला लज्जावश सिर झुका लेती वह रमणी प्राणपति का मुख देख, चकित हो, न अपना झुकाती। २८४ [कं.] हरि [उसकी ओर] देख—

कं. हरि सूचिन सिरि सूडदु
सिरि चूचिन हरियु जूड सिग्गुनु वोंदुन्
हरियुनु सिरियुनु दमलो
सरि चूपुल जूड मरुडु संदडि वॅट्टॅन् ॥ 285 ॥

चं. जगमुल तंड्रियै दनरु शौरि जगंबुल तल्लि निंदिरं
दग नुरमंदु दाल्चॅ नट दत्करुणारस दृष्टिचे ब्रजल्
मगुडग दोंटिभंगि नतिमंगळ साध्विपतित्वसंपदन्
नॅगडिन लोकमुल् गनिरनेकशुभंबुल वोंदिरत्तरिन् ॥ 286 ॥

व. अटमुन्न यब्धिराजु दनयंदुनुन्न यमूल्यंबैन कौस्तुभंबु पेरिटि यनर्घ मणि-
राजंबु नय्यंबुजाक्षुनकु समर्पिचिन दानि दन वक्षस्थलंबुन धरिचॅं।
अप्पुडय्यादिलक्ष्मियु श्रीवत्सकौस्तुभवैजयंती वनमालिकादि तार-
हारालंकृतंबैन पुंडरीकाक्षु वक्षस्थलंबुन वसियिचॅ, नय्यवसरंबुन॥287॥

शा. म्रोसॅन् शंख मृदंग वेणु रवमुल् मुन्नाडि पॅंजीकटुल्
वासॅन् नर्तन गानलोलल सुरल् भासिल्लिरार्युल् जग-
द्वासुल् विष्णुनि ब्रह्म रुद्र मुखरुल् दल्लिगमंत्रंबुलं
बासक्तिन् विनुतिचिरुल्लसित पुष्पश्रेणि वर्षिपुचुन् ॥ 288 ॥

---

तो श्री (लक्ष्मी) नहीं देखती, श्री के देखने पर हरि देखते लजाता; एक-दूसरे को बराबर [अनुराग से] देख लेने के निमित्त मन्मथ (कामदेव) हरि और श्री के अंतर् (हृदयों) में हलचल मचाने लगा। २८५ [चं.] तब जगत का पिता होकर शोभित शौरि (विष्णु) ने जगन्माता इंदिरा (लक्ष्मी) को अपने वक्ष में धारण किया। उनकी करुणारसदृष्टि के बल से प्रजा को फिर से पूर्ववत् अत्यंत मंगलों से युक्त अधिपतित्व (प्रभुता) संपत्ति प्राप्त हुआ। उस अवसर पर; लोक अनेक प्रकार के शुभ (कल्याण) प्राप्त कर वृद्धि पा गये। २८६ [व.] तब अब्धिराजा (समुद्र) ने, पूर्व ही से अपने में स्थित कौस्तुभ नामक अनर्घ (अमूल्य) मणिराज उस अंबुजाक्ष (-विष्णु भगवान्) को समर्पित किया; उसने उसे वक्षःस्थल पर धारण किया। [इस प्रकार] श्रीवत्स, कौस्तुभ, वैजयंती, वनमालिका आदि तारहारों से समलंकृत पुंडरीकाक्ष (विष्णु) के वक्षःस्थल पर उस आदिलक्ष्मी ने वास किया। उस अवसर पर, २८७ [शा.] शंख, मृदंग, और वेणु के रव (ध्वनियां) बज उठे; पूर्व के घने अंधकार विचलित हो दूर हुए; सुर (देव)-बृंद नर्तन-गान-लीलाओं से शोभित हुए; जगद्वासी आर्य लोगों तथा ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओं ने विष्णु पर उल्लसित (प्रफुल्ल) पुष्प-श्रेणी (समूह) बरसाते हुए, देवतापरक मंत्रों द्वारा, आसक्तिपूर्वक [भगवान् की] स्तुति की। २८८ [कं.] हे

कं. आ पालवेल्लि कूतुरु, तोपुल जूपुलनु दोगि तिलकिंचि प्रजल्
चेपट्टिरि संपदलनु, बापिचेनु मेलु जगमु ब्रतिके नरेंद्रा ! ॥ 289 ॥

कं. पालेटिराच कन्निय, मेलारेडु चूपुलेक मिडुमिडुकंचुं
जालि बुरबुर बोक्कुचु, दूलिरि रक्कसुलु कीडु दोचिन नधिपा ! ॥290॥

कं. वारिधि दरुवग नंतट, वारुणि यनु नोक्क कन्य वच्चिन नसुरुल्
वारिजलोचनु सम्मति, वारे कैकोनिरि दानि वारिजनेत्रिन् ॥291॥

व. मरियु दरुवं दरुव नप्पयोराशियंदु ॥ 292 ॥

सी. तरुणुंडु दीर्घ दोर्दंडुंडु कंबुकंधरुडु पीतांबरधारि स्रग्वि-
लालित भूषणालंकृतुं डरुणाक्षु डुन्नतोरस्कु डत्युत्तमुंडु
नील कुंचित केश निवहुंडु जलधरश्यामुंडु मृगराज सत्त्वशालि
मणिकुंडलुडु रत्नमंजीरु डच्युतु नंशांश संभवुं डमलमूर्ति

आ. भूरि यागभाग भोक्त धन्वंतरि
यनग नमृतकलश हस्तुडगुचु
निखिल वैद्यशास्त्र निपुणु डायुर्वेदि
वेलपुवेज्जु कडलि वेडलिवच्चे ॥ 293 ॥

---

नरेंद्र ! उस क्षीरसागर की कन्या के प्रिय-दृगों को देख, [आनंद में] भीग कर, प्रजा ने संपत्तियाँ हस्तगत कर ली; उसे क्षेम प्राप्त हुआ, जग सजीव हुआ। २८९ [कं.] हे अधिप (राजा) ! क्षीरसागर की राजकुमारी (लक्ष्मी) की कल्याणकारी [कृपा] दृष्टि के अभाव में बिसूरते हुए, खेद में सिसक-सिसककर, राक्षस लोग हानि की आशंका से दुःखी हुए। २९० [कं.] वारिधि (समुद्र) को मथने पर, उसमें से वारुणि नामक एक कन्या निकल आयी तो वारिजलोचन (कमल-नेत्र, विष्णु) की सम्मति से उस वारिजनेत्री को असुरों ने अपना लिया। २९१ [व.] और भी मथन करते रहने पर उस पयोराशि (समुद्र) में से २९२ [सी.] धन्वंतरि नामक आयुर्वेदी देववैद्य निकल आया जो तरुण (युवक), दीर्घदोर्दंड (दीर्घबाहु) वाला, कंबुकंधर (शंख-समान कंठ) वाला, पीतांबरधारी, स्रग्विलसित (माला पहना हुआ), भूषणालंकृत (गहनों से सजा हुआ), अरुणाक्ष (लाल नेत्र वाला), उन्नत उरस्क (ऊँची भुजाओं वाला), अत्युत्तम, नील-कुंचित-केश-निवह (काली घुंघुराली लटों) वाला, जलधरश्याम (मेघश्याम), मृगराज-सत्त्वशाली (सिंह जैसा बलवान), [आ.] मणिकुंडल-रत्नमंजीरधारी, अच्युतांश-संभव (विष्णु के अंश से उत्पन्न), अमलमूर्ति वाला तथा यागभागभोक्ता (यज्ञ की आहुति में भाग खानेवाला) तथा अमृतकलश-हस्त (हाथ में अमृत भरा कलश लिये हुए) था। २९३

व. तदनंतरंब ॥ 294 ॥

आ. अतनिचेन नुन्न यमृतकुंभमु सूचि
कॊरलु वॊडिचि सुरल गिकुरवॆट्टि
पुच्चुकॊनिरि यसुर पुंगवु लॆल्लनु
मारुलेनि बलिमि मानवेंद्र ! ॥ 295 ॥

व. वॆंडियु ॥ 296 ॥

आ. चावुलेनि मंदु चक्कग मन कब्बॆ
ननुचु गडव यसुरु लाचिकॊनिन्
वॆरचि सुरलु हरिकि मॊऱलु वॆट्टिरि सुधा
पूर्णघटमु पोयॆ वोयॆ ननुचु ॥ 297 ॥

### श्रीविष्णुमूर्ति मोहिनीस्वरूपंबु नॊंदुट

व. इट्लु शरणागतुलैन वेल्पुल दैन्यंबु वॊडगनि, भृत्यजन कामदुंडगु नप्परमेश्वरुंडु मीरलु दुःखिपवलदु एन ना मायावलंबुनं जेसि मी यर्थंबु मरल साधिचॆद। अनि पलिकॆ। तत् समयंबुन नय्यमृत पूरंबु नेमुं द्रावुदुमनि तमकिचु दैत्यदानवजनंबुल लोपल नमंगळंबगु कलि संभविचिन कतंबुन प्रबलुलगु रक्कसुल विलोकिचि सत्रयागंबुनंदु नडचु-

---

[व.] तदनंतर २९४ [आ.] हे मानवेंद्र (राजा) ! उसके हाथ में अमृत-कलश देखकर, असुर-पुंगवों (श्रेष्ठों) ने आगे बढ़-बढ़कर, अप्रतिहत बल से देवों को वंचित कर उसे ले लिया। २९५ [व.] और। २९६ [आ.] असुर लोग, यह कहते हुए कि मृत्युभय-रहित औषध हमें मिल गयी। [वह] घड़ा ले गये तो सुर लोग भयभीत हो— "सुधा-पूर्ण-घट गया, चला गया" पुकारते हुए हरि को दुहाई देने लगे। २९७

### श्रीविष्णु का मोहिनीस्वरूप ग्रहण करना

[व.] यों शरणागत हुए देवों का दैन्य (दीनता) निरखकर, भृत्यजनकामद (सेवकजनों का अभीष्ट पूरा करनेवाला) वह परमेश्वर यों बोला— "तुम लोग दुःख मत करो, मैं दुबारा अपनी माया के बल से तुम्हारा हितसाधन करूँगा।" उस समय, "ये अमृतधाराएँ हम भी पीयेंगे" —यों कहकर तमकनेवाले दैत्य-दानव लोगों में अमंगलकारी कलि (कलह) उत्पन्न हुआ; प्रबल राक्षसों को देख, [कुछ ने] यों कहा— "सत्रयाग में जैसा बरता गया वैसा ही [अमृत पाने के यत्न में] सुरों का भी तुल्य प्रयास रहा है, इस हेतु वे भी सुधा में भाग पाने के हक़दार है, अतः

चंदंबुन दुल्यप्रयास हेतुवुलगु सुरलुनु सुधाभागंबुन कहुलगुटं बंचि कुडुचुट कर्तव्यंबु। इदि सनातन धर्मंबगुटं जेसि यय्यमृतकुंभंबु विडुवुंडु। अनि, दुर्बलुलगु निशाचरुलु जातमत्सरुलै तमवारल वारिंपुचुन्न समयंबुन ॥ 298 ॥

ते. ऑकनिचेत नुंड नॊकडु बलिष्ठुडे
पुच्चिकॊनिन वानि बॊबुग बट्टि
यंतकंटे नधिकुडमृतकुंभमु नॆत्ति
कॊंचु बारें बरुलु गुय्यिडंग ॥ 299 ॥

व. अंत ॥ 300 ॥

सी. मॆत्तनि यडुगुल मॆरुगारु जानुवुलरटिकंबमुल दोडैन तॊडलु
घनमगु जघनंबु कडु लेत नडुमुनु बल्लवारुणकांति पाणियुगमु
गडु दॊड्ड पालिड्लु गंबु कंठंबुनु बिंबाधरमु जंद्रबिंब मुखमु
देलि गन्नु गवयुनु नळिकुंतलंबुनु बालेंदु सन्निभ फालतलमु

ते. नमर गुंडल केयूर हार कंक-
णादु लेपार मंजीरनाद मॊप्प
नल्लनव्वुल वद्मदळाक्षु डसुर-
पतुल नणगिप नाडुरूपंबु दालिच ॥ 301 ॥

व. अय्यवसरंबुन जगन्मोहनाकारंबुन ॥ 302 ॥

---

[आपस में] बाँटकर खाना ही कर्तव्य है, यह सनातन धर्म है, इसलिए वह अमृतकुंभ छोड़ दो।" यों कहनेवाले [दुर्बल] निशाचर मात्सर्य (ईर्ष्या) के वश बलवानों को रोकने लगे। तब २९८ [ते.] जब वह अमृत-कुंभ एक के हाथ में था, तब एक बलिष्ठ व्यक्ति उससे खीच ले गया, फिर उससे भी अधिक शक्तिशाली उसे दबोच कर, घड़ा ले भागा, यह देख अन्य जन चीखने-चिल्लाने लगे। २९९ [व.] तब, ३०० [सी.] मृदु चरण, चिकने जानु, कदली के खंभों के तुल्य जाँघें, घने जघन (नितंब), अति सुकुमार कटि-प्रदेश, पल्लवों-सा अरुण कांति वाला पाणियुगल (हस्तद्वय), भारी स्तन, कंबु (शंख) जैसा कंठ, बिंब (फल सदृश अरुण) अधर; चंद्रबिंब सरीखा मुख, स्वच्छ नेत्रयुग्म, अलियों (भौरों) के समान (काले) कुंतल (केश), बालेन्दु-सन्निभ (-समान) फालतल, [ते.] कुंडल, केयूर (बाजूबंद), हार, कंकण आदि से शोभायमान, मंजीरों (घुंघुरुओं) का मधुर निनाद (ध्वनि), मंदहास— [इस प्रकार की वेष-भूषा के साथ] पद्माक्ष (विष्णु) ने असुरपतियों (सरदारों) को दबा देने के निमित्त स्त्री का रूप धारण कर, ३०१ [व.] उस अवसर पर, जगत् को मोहने

सी. पालिंड्लपैनुन्न पय्यॆद जारिंचु जारिंचि मॆल्लन जवक नोसु
दळुतळुकनु गंड फलकंबु लॊलयिंचु नॊलयिंचि कॆगेल नुज्जगिंचु
गड्डु मऱुंगुलुवारु कडकन्नु लल्लार्चु नल्लार्चि ऱॆप्पल नंड गॊलुपु
नवरसदरहास चंद्रिक जिलिकिंचु जिलिकिंचि कॆम्मोवि जिवकु पऱचु

ते. दळित धम्मिल्ल कुसुम गंधम्मु नॆऱपु
गंकणादि क्षणंकृतुल् गडलु कॊलुप
नॊडलिकांतुलु पट्टुलेकुलुकवारु
सन्नवलिपंपु वय्यॆद चॊक्कलिप ॥ 303 ॥

## अध्यायमु—९

व. इट्लिविधंबुन नक्कपट युवतीरत्नंबु जगन्मोहन देवतयुनुंबोलॆ, नॆम्मॊगंबु-दाविकि मत्तिल्लिन तेटि मॊत्तंबुलं गॊलिचि, चिगुरु जॊपंबुल नॆडगलुग जडियुचु मुरियुचुंड राक्षसवरुलु गनुंगॊनि ॥ 304 ॥

सी. औ गदे लावण्यमौ गदे माधुर्यमौ गदे सति ! नव यौवनांगि !
यॆटनुंडि वच्चितिवेमि यिच्छिचॆदु नी नाम मॆय्यदि नीरजाक्षि !

---

वाला आकार लेकर, ३०२ [सी.] [वह मोहिनी] स्तनों पर का अंचल (उपरना) खिसकाती, खिसकाकर धीरे से उसे सँवारती; झलझलाते कपोलों को घुमाती, घुमाकर अरुण हस्त से उन्हें ढाँप लेती; बहुतेरे चमचमाती कनखियाँ मटकाती, मटकाकर फिर पलकें झुकाकर छिपा लेती; नवरसभरी मुस्कुराहट की चाँदनी छिटकाती, छिटकाकर फिर अरुणाधर से बंद कर लेती; [ते.] धम्मिल्ल (केशपाश) उघाड़कर कुसुमगंध फैलाती; कंकण आदि की झणकृति (झनझनाहट) व्याप्त करती, महीन सेला (दुपट्टे) का अंचल उड़ाकर शरीर की कांति [चारों तरफ़] प्रसारित करती। ३०३

## अध्याय—९

[व.] इस प्रकार वह कपट-युवतीरत्न जगन्मोहिनी देवी के समान, अपने मुखकमल के मधुपान से मस्त हो झूमनेवाले मधुपों को उड़ाती हुई, पल्लवनिकुंजों को रास्ते से हटाती हुई, कुलकती हुई जब दीख पड़ी, तो उसे देखकर राक्षस-प्रमुख [कहने लगे।] ३०४ [सी.] "अहा ! क्या लावण्य है ! क्या माधुर्य है ! अहो, वनिते ! नवयौवनांगी ! कहाँ से आयीं ? क्या चाहती हो ? हे नीरजाक्षी (कमलनयनी) ! तुम्हारा नाम क्या है ? अमर (देव), गंधर्व, सिद्ध, असुर, चारण, और मनुजकन्याओं में

यमर गंधर्व सिद्धासुर चारण मनुजकन्यलकु नी महिम गलदे .
प्राण चित्तेंद्रिय परिमाण दायियै निर्मिचें बो ! विधि निन्नु गरुण

ते. वनित ! कश्यपु संततिवार मेमु
भ्रातलमु सुरल केमिद्धपौरुषुलमु
ज्ञातुलकु माकु नेकार्थ संगतुलकु
बालु दीरनि यर्थंबु पंचि यिम्मु ॥ 305 ॥

कं. सभयै युडेंद मिदऱ, मभयंबुन वच्चुकोलदि नमृतंबुनु नी
विभराजगमन ! तप्पक, विभजिपु विपक्षपक्ष विरहितमतिवै ॥ 306 ॥

व. अनि मंत्रिचिन दैत्युलं गनि, मायायुवति रूपुंडगु हरि तन वाडि चूपुटं-
परल वलन बारल तालुमुल नर्गलिचि चिरुनगवुलेगय मोगमेत्ति
यिट्लनियें ॥ 307 ॥

कं. सुंदरुलगु पुरुषुल गनि, पोंदेडु नायंदु बुद्धि पुट्टेनें मीकुन्
बृंदारक-रिपुलारा ! चेंदरु कामिनुल विश्वसिपरु पेद्दल् ॥ 308 ॥

कं. पलुकुलु मधु रसधारलु, दलपुलु नानाप्रकार दावानलमुल्
सॅलुमुलु सालावृकमुलु, चॅलुवल नम्मंग वेदसिद्धांतमुले ॥ 309 ॥

---

तुम्हारी जैसी कमनीयता कहाँ ? लगता है, ब्रह्मा ने करुणापूर्वक प्राणियों के चित्त तथा इद्रियों को संतोष देने के उद्देश्य से, तुम्हारा निर्माण किया है। [ते.] हे वनिते ! हम लोग कश्यप की सतति (वशज) हैं; हम सुरों के भ्राता है, प्रसिद्ध पौरुषवान हैं; एकार्थ (एक इच्छा, अमृत) में लग्न हम ज्ञाती [बराबर] बँटवारा कर नही सके, तुम [वह वस्तु] हम लोगों में बाँट दो। ३०५ [कं.] हम लोग सब, सभा लगाकर निर्भय बैठ जायेंगे, हे इभराजगमना (गजगामिनी) ! तुम अपने मन में पक्ष और विपक्ष (मित्र-शत्रु) का विचार न रखकर, यह अमृत जितना उपलब्ध है, हम लोगों में बाँट दो।" ३०६ [व.] यों परामर्श करनेवाले दैत्यों को देखकर, माया-युवती रूपी हरि ने अपने चुभनेवाले कटाक्ष रूपी बाणों से उनका धैर्य भेदकर, दरहास फैलाते हुए मुँह उठाकर, इस प्रकार कहा : ३०७ [कं.] "सुन्दर पुरुषों को देख, उनसे संगति करने वाली मुझ पर तुम्हारा मन हुआ, हे बृंदारक-रिपुओ (देव-शत्रुओ) ! गुरुजन (शिष्ट लोग) न [मुझ जैसी] कामिनियों को अपनाते न उनका विश्वास करते हैं। ३०८ [कं.] [उन] सुंदरियों के वचन मधुरसधारा के समान होते हैं [किंतु] उनके विचार नाना प्रकार के दावानल जैसे होते हैं; उनके स्नेह-संबंध भेड़ियों की संगति के समान भयंकर होते हैं, उनकी [बातें] वेदसिद्धांत नहीं हैं जिनका विश्वास किया जा सकता

कं. ना नेर्पुकॊलदि मीकुनु, मानुग विभजिंचि यित्तु मानुडु शंकन्
गानिडनवुडु निच्चिरि, दानवुलमृतंपु गडव दरुणीमणिकिन् ॥ 310 ॥

कं. आ शांतालोकनमुलु, ना शीतलभाषणमुलु ना लालितमुल्
राशि परंपरलगुचुनु, पाशमुलै वारिनोळ्ळु वंधिचॆं नृपा ! ॥ 311 ॥

व. इट्लु सुधाकलशंबु चेत नंदुकॊनि, मंदस्मित भाषणंबुल सुंदरीरूपंडगु मुकुंदुंडु, मेलु कीडनक नेनु वंचियिच्चिन तॆरंगुन नंगीकरिंपुट कर्तव्यंबु। अनवुडु नगुं गाक यनि, सुरासुर दैत्यदानव समूहंबुपवसिंचि, कृतस्नानुलै, होमंबु लाचरिंचि, विप्रुलकु गो भू-हिरण्य दानंबुलु सेसि, तदाशीः प्रवचनंबुलु गैकॊनि, धवळ परिधानुलै, गंधमाल्य धूप दीपालंकृतंबगु कनक रत्नशाला मध्यंबुन, प्रागग्र कुशपीठंबुलं बूर्वदिशाभिमुखुलै, पंक्तुलु गॊनियुन्न समयंबुन ॥ 312 ॥

कं. श्रोणीभर कुचयुगभर, वेणीभरमुलनु डस्सि विविधाभरण
क्वाणययि युविद वच्चॆनु, पाणि सरोजमुन नमृत भांडमु गॊंचुन् ॥313॥

कं. भासुर कुंडल भासित, नासा मुख कर्ण गंड नयनांचलयै
श्रीपति यगु सति गनि दे,-वासुर यूथंबु मोहमंदॆ नरेंद्रा ! ॥ 314 ॥

---

है। ३०९ [कं.] फिर भी, मैं अपने चातुर्य के अनुसार तुम लोगों में बँटवारा कर दूँगी, शंका छोड़ दो। "इस पर दानवों ने "वैसा ही करो" —कहकर उस तरुणीमणि को वह अमृतकलश दे दिया। ३१० [कं.] हे (राजन्) ! [उस विलासिनी के] वे शांतिपूर्ण आलोकन (दृष्टियाँ), वे शीतल संभाषण तथा वह लालन —इन सबने राशि-परंपराएँ (असंख्य) होकर, पाश (रस्से) बनकर, उन [राक्षसों] का मुँह बाँध रखा। ३११ [व.] यों सुधाकलश हाथ में लेकर सुंदरीरूप धरे मुकुंद ने मंदस्मित भाषणों से कहा— "भला-बुरा न कहकर, मैं जैसा बाँट दूँगी वैसा ही स्वीकारना [तुम्हारा] कर्तव्य होगा"; ऐसा कहने पर, तथास्तु कहकर, उस सुरासुर दैत्य-दानवसमूह ने उपवास कर, स्नान कर, होम रचकर, विप्रों को गो-भू-हिरण्य (सोने) का दान देकर, उनके आशीर्वचन पाकर, धवल-परिधान (सफ़ेद-वस्त्र) पहनकर, गंध-माल्य-धूप-दीपों से अलंकृत कनक-रत्न-शाला के मध्य में, प्रागग्र (पूर्वाग्र) कुशासन बिछाकर, पूर्वदिशाभिमुख हो, क़तार बाँध बैठ गये : उस समय ३१२ [कं.] श्रोणी (नितंबों) का भार, कुच-युग का भार, तथा वेणी (केशबंध) का भार —इससे थकी-सी, विविध-आभरणों को क्वणित (ध्वनित) करती हुई, पाणिसरोज (कमल रूपी हाथ) में अमृतभांड लिये वह वनिता चली आयी। ३१३ [कं.] हे नरेन्द्र ! भासुर-कुंडलों की कांति से भासित नाक, मुख, कान, कपोल और नयनांचल (लोचनकोर) से युक्त होकर, [आनेवाली उस] सती

व. अप्पुडु ॥ 315 ॥

कं. असुरुल कमृतमु वोयुट
पॉसगदु पामुलकु बालु पोसिन माड्किन्
दॉसगगुनंचुनु वेरॉक
दॅसनं गूचुँड बॅट्टॆ देवाहितुलन् ॥ 316 ॥

व. इट्लु रॅंडु पंक्तुलु गा नेर्परिचि ॥ 317 ॥

सी. वेगिरपडकुडी विनुडु दानवुलार ! तडवु सेयक वत्तु दैत्युलार !
यटु चक्क गूचुँडुडनि कन्नुलल्लार्चि चनुगव पय्यॆद जारॆ दिगिचि
वदिनॆ मरंदुल वावुलु गल्पिंचि मर्मंबुलॆंडलिंचि मरुगु सेसि
मॆल्लनि नगवुल मेनुलु मर्रपिंचि कडु जाणमाटल गाकु परिचि

ते. यसुरवरुल नॆल्ल नर्णाकिंचि सुरलनु
दडवु सेयवलदु द्रावुडनुचु
वच्चुकॊलदि नमृतवारि विभागिंचॆ
दरुणि दिविजुलॆल्ल दनिसि पॊगड ॥ 318 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 319 ॥

सी. मनकु वेल्पुलकुनु माराटमुलु राक पंचिपॆट्टॆद ननि पणति पूनॆ
दा नेल तप्पुनु दप्पदु तरळाक्षि गाक रम्मनुचुनु गणक बिलव

---

को [जो असल मे] श्री का पति था, विलोक कर, वह देवासुर-यूथ (समूह) विमोहित हुआ। ३१४ [व.] तब। ३१५ [कं.] "साँपों को दूध पिलाने के सदृश असुरों को अमृत पिलाना संगत नहीं होगा, दोष होगा" —यों समझकर उसने देवाहितों (देवशत्रुओं) को दूसरी तरफ़ बिठाया। ३१६ [व.] इस प्रकार दो पंक्तियाँ बनाकर, ३१७ [सी.] [उसने कहा] "हे दानवो ! सुनो, जल्दी मत करो, हे दैत्यो ! तुम्हारे पास मैं विलंब किये बिना आ जाऊँगी; वहाँ बराबर बैठे रहो" —यों कहकर, उसने आँखें मटकाकर, स्तनों पर से अंचल खिसका कर, भौजाई और देवर का नाता जोड़कर, मर्म खोलकर, छिपाकर, मुस्कुराहटों से [उनके] शरीर पर की सुध-बुध भुला देकर; चतुर वचनों से दिल्लगी उड़ाते हुए, [ते.] उन असुरवरों को वंचित कर, सुरों से यह कहती हुई कि "देर मत करो, पीओ" वह अमृत-जल जितना बँट सकता था, उतना सुरों में बाँट दिया। दिविज लोग इससे तृप्त होकर उस तरुणी की प्रशंसा करने लगे। ३१८ [व.] उस अवसर पर ३१९ [सी.] "हम में और देवों में कलह हुए विना [अमृत] बाँट देने का काम इस युवती ने अपने ऊपर लिया, यह तरलाक्षी (चंचलाक्षी) अपने वचन से मुकर

मरुमाट लाडदो मरि चूडकुंडुनो चनुगव गप्पुनो चालु ननुचु
नॊडाड कलुगुचु नॊविकत सॊलयुनो मनयॆड गंदुनो मगुवयनुचु

आ. नॆलत चूड्किगमुलु नीरै कलंगुचु, ब्रणयभंग भीति वढ्लगुचु
नूरकुंड्रि गानि युविद ! ते तॆम्मनि, यडुग जालरैरि यसुरवरुलु ॥320॥

व. अप्पुडु ॥ 321 ॥

म. अमरव्रातमुलोन जॊच्चि दिविजुंडै राहु पीयूष पा-
नमु सेयं गनि चंद्र भास्करुलु सन्नल् सेय नारायणुं-
डमराराति शिरंबु चक्रहति दुन्माडॆन् सुधासिक्तमै
यमरत्वंबुनु जॆंदॆ मूर्धमु तदन्यांगवु नेलं बडॆन् ॥ 322 ॥

आ. अजुडु वानि शिरमु नंबरवीथिनि, ग्रहमु सेसि पॆट्टि गारविंचॆ
वाडु पर्वमुलनु वॆरंबु दप्पक, भानुचंद्रमुलनु वट्टुचुंडु ॥ 323 ॥

कं. ऒक चॊट्टु जिवककुंडग, सकल सुधारसमु नमर संघंबुलकुं
बकटिंचि पोसि हरि दन, सुकराकृति दालॆ नसुरसूरुलु बॆगडन् ॥ 324 ॥

---

क्यों जायगी ? काम अवश्य पूरा करेगी। यदि हम उसे अपनी पंक्ति पर आने को बुलावें तो [संभव है] हमसे बात न करे, या हमें देखे भी नहीं, अथवा 'अब बस है' कहकर स्तनों को आच्छादित कर ले, या कुछ न कहकर वापस चली जाय, अथवा हम पर कोप करे।" [आ.] ऐसा कहते हुए, कामिनी के दृष्टिपात मात्र से पानी-पानी होकर, पिघलते हुए, प्रणय के [रंग में] भंग होने का भय करते हुए, वे लोग वँधे से चुप रह गये, किंतु 'हे वनिते, लाओ, हमें अमृत पिलाओ' कहकर माँग नहीं सके। ३२० [व.] तब। ३२१ [म.] अमरव्रात (देवसंघ) में घुसकर, दिविज (देव) [सदृश] बन, राहु ने पीयूष (अमृत) का पान किया तो उसे देख चंद्र और भास्कर (सूर्य) ने इशारा किया। तब नारायण ने उस अमराराति (देवशत्रु) का शिर चक्राघात से खंडित किया, सुधासिक्त हो (अमृत में भीग) कर उस [राक्षस] का मूर्ध (सिर) अमरत्व (मृत्यु-रहित स्थिति) को प्राप्त हुआ, शरीर का अवशिष्ट भाग भूमि पर गिर पड़ा। ३२२ [आ.] अज (ब्रह्मा) ने उसके सिर को ग्रह बनाकर, अंबरवीथी (आकाशमार्ग) में स्थापित कर, आदर किया; [किंतु] वह वैर छोड़े बिना भानु और चंद्र को पर्व (पूर्णिमा और अमावास्या) के दिनों में पकड़ता रहता है। ३२३ [कं.] सारा सुधारस, एक बूँद तक बचा रखे बिना, अमरसंघ में प्रकट रीति से बाँटकर, हरि ने अपना सहज रूप धारण किया तो [उसे देख] असुर शूर भयभीत हुए। ३२४

### देवासुर युद्धमु

म. अमरुल् रक्कसुलं बयास बल हेत्वार्थाभिमानंबुलन्
समुलै लब्धविकल्पुलैरि सुरलुन् संश्रेयसंयुक्तुलै-
रमरारुल् बहुदुःखमुं गनिरि तामत्यंत दोर्गर्वुलै
कमलाक्षुन् शरणंबु वेडनि जनुल् कल्याणसंयुक्तुले ? ॥ 325 ॥

## अध्यायमु—१०

कं. दानवुलमृतमु द्रावं, बूनि पयोराशि द्रच्चि पोगिलन माड्किन्
श्रीनाथ पराङ्मुखुलगु, हीनुलु नीदंगजालरिष्टार्थंबुलन् ॥326॥

कं. शोधिंचि जलधि नमृतमु, साधिंचि निलिंपवैरि चक्षुर्गतुलन्
रोधिंचि सुरल किडि हरि, बोधिंचि खगेंद्रु नेक्कि पोये नरेंद्रा ! ॥327॥

कं. शुद्धुलगु सुरल कमृतमु
सिद्धिंचिन नसुरवरुलु सिडिमुडि पडुचुन्
गृद्धुलु नानायुध स-
न्नद्धुलुनै युद्धमुनकु नडिचिरि बलिमिन् ॥ 328 ॥

---

### देवासुर-युद्ध

[म.] अमर (देवता) लोग और राक्षस वर्ग के प्रयास (मेहनत), बल, सत्व (शक्ति), अर्थ तथा अभिमान में समान [रूप वाले] होकर, [अमृत पाने से] सफल मनोरथ वाले हुए, [परिणाम में] सुर लोग संश्रेय-संयुक्त (कल्याणयुक्त) हुए। अमरारि (राक्षस) अत्यंत गर्वोद्धत होकर, बहुदुःख के भागी हुए। जो जन कमलाक्ष [विष्णु] की शरण नहीं माँगते, क्या वे कभी शुभसयुक्त हो सकते हैं ? (नही।) ३२५

## अध्याय—१०

[कं.] ज्यों दानव अमृत पीने की चाह से पयोराशि (क्षीरसागर) मथ कर, संतप्त हुए, उसी प्रकार श्रीनाथ-पराङ्मुख (विष्णु से मुख मोड़नेवाले) हीन लोग इष्टार्थ (अभिलषित फल) कभी भी पा नही सकेंगे। ३२६ [कं.] हे नरेन्द्र ! जलधि (समुद्र) का शोधन (मंथन) कर, यत्न से अमृत पाकर, निलिंपवैरियो (राक्षसों) की आँखें मूँदकर, उसे देवों को देकर, हरि उन्हें प्रबोधित कर खगेंद्र (गरुड़) पर आरूढ़ हो, चला गया। ३२७ [क.] परिशुद्ध देवताओं को जब अमृत की सिद्धि (प्राप्ति) हुई तो असुरवर चिढ़ गये, वे क्रुद्ध हो नाना [प्रकार के]

कं. धन्युलु वैरोचनि शत, -मन्यु प्रमुखुलु मदाभिमानुलु तमलो-
नन्योन्य रणमु बाहा, विन्यासंबुलनु वेचि चेसिरि कडिमिन् ॥ 329 ॥

म. अरुदं कामगमै मयासुरकृतंबै लोकितालोक्यमै
वर शस्त्रास्त्र समेतमै तरळमै वैहायसंबै महा-
सुर योधान्वितमैन यानमुन संशोभिल्लॆ बूणदु सु-
स्थिर कांतिन् बलि चामर ध्वज चमू दीप्तस्थितिन् मुंदटन् ॥ 330 ॥

व. मरियु, नमुचि, शंबर, बाण, द्विमूर्ध, कालनाभ, शकुनि, निकुंभ, कुंभ, अयोमुख, प्रहेति, हेति, भूतसंताप, हयग्रीव, कपिल, मेघदुंदुभि, मय, त्रिपुराधिप, विप्रचित्ति, विरोचन, वज्रदंष्ट्र, तारक अरिष्ट, अरिष्टनेमि, शुंभ, निशुंभ, शंकु, शिरोमुख प्रमुखुलुनु, पौलोम, कालकेयुलुनु, निवात-कवच प्रभृतुलुनु, दविकन दंडयोधुलुनु गूडिकॊनि, यरदंबुल, दुरंगंबुल, मातंगंबुल, हारणंबुल, हरि, किरि, शरभ महिष गवय खड्ग गंडभेरुंड चमरी जंबुक शार्दूल गो वृषादि मृगंबुलनु, गंक गृध्र काक कुक्कुट बक श्येन हंसादि विहंगंबुलनु, दिमि तिमिंगलादि जलचरंबुलनु, नरुलनु, नसुर सुरनिकर विकृत विग्रह रूपंबुलगु जंतुवुलनु नारोहिंचि, तमकु

---

आयुधों से सन्नद्ध होकर, बलपूर्वक, युद्ध करने निकल पड़े। ३२८ [कं.] धन्य पुरुष वैरोचनी (राजा बलि) तथा शतमन्यु (इंद्र) आदि प्रमुखों ने मद और अभिमान (गर्व) में चूर हो, खड्गहस्त होकर, अपना-अपना बल दिखाते हुए एक-दूसरे से युद्ध किया। ३२९ [म.] [राजा] बलि, चामर, ध्वजा, और चमू (सेना) के साथ पूर्णेंदु (पूर्णचंद्र) की स्थिर कांति (चाँदनी) से प्रदीप्त यान (रथ) पर आसीन हो सबसे आगे शोभित रहा, उसका यान (रथ) अनोखा था, कामग (जहाँ जाने को कहें वही जानेवाला) था, मय [नामक] असुर से निर्मित होकर देखने योग्य था, वर शस्त्रास्त्र समेत, तरल, वैहायस (आकाशगामी) और महा असुर योद्धाओं से अन्वित (युक्त) था। ३३० [व.] और [राक्षसों के पक्ष में] नमुचि, शंबर, बाण, द्विमूर्ध, कालनाभ, शकुनि, निकुंभ, कुंभ, अयोमुख, प्रहेति, हेति, भूतसंताप, हयग्रीव, कपिल, मेघदुंदुभी, मय, त्रिपुराधिप, विप्रचित्ति, विरोचन, वज्रदंष्ट्र, तारक, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, शुंभ, निशुभ, शंकु, शिरोमुख प्रमुख (आदि) वीर तथा पौलोम, कालकेय, निवात-कवच प्रभृति (आदि) असुर तथा अन्यान्य दंडयोद्धा सब के सब इकट्ठे होकर, रथ, तुरंग (घोड़े), मातंग(हाथी), हरिण, हरि(सिंह), किरि (वराह), शरभ (ऊँट), महिष (भैंसा), गवय (वनवृषभ), खड्ग, गंडभेरुंड, चमरी, जंबुक (सियार), शार्दूल (बाघ), गो, वृष (बैल) आदि जानवरों पर तथा कंक (सफ़ेद चील), गृध्र (गीध), काक (क़ौआ), कुक्कुट (मुर्ग़ा), बक, श्येन (बाज़), हंस आदि विहंगों (पक्षियों) पर

नडियालंबुलगु गोंडुगुलु, पडगलु, जोडुलु, कैदुवुलु, पक्केरलु, बोमिडिकंबुलु मोदलगु पोटुमुट्लायितंबुग गैकोनि, वेरु वेरु मोनलै, विरोचन नंदनुंडगु बलिमुंदट निलुवंबडिरि। देवेंद्रुडु नैरावतारूढुंडै, वैश्वानर वरुण वायु दंडधराद्यनेक निर्जरवाहिनी सदोहंबुलुनु दानु नेदुरुपडि, पिरुतिवियक मोहरिंचे। अट्लु संरंभ सन्नाह समुत्साहंबुल रेंडु देरंगुल वारु बोराडु वेडुकल मोटगु माटल संदडिपुचुन्न समयंबुन ॥331॥

सी. वज्रदंष्ट्रांचित व्यजनंबुलुनु बर्ह चामरंबुलु सितच्छत्रमुलुनु
जित्रवर्ण ध्वजचेलंबुलुनु वातचलितोत्तरोष्णीष जालमुलुनु
जप्पुळ्ळ नैसगु भूषण कंकणंबुलु जंडांशु रोचुल शस्त्रमुलुनु
विविध खेटकमुलु वीरमालिकलुनु बाणपूर्णमुलैन तूणमुलुनु

आ. निंडि पेंच्चु रेगि निर्जरासुरवीर, सैन्ययुग्मकंबु चाल नोप्पे
ग्राह ततुलतोड गलहंबुनकु वच्चु, सागरमुल भंगि जनवरेण्य ! ॥332॥

कं. भेरी भांकारंबुलु, वारण घींकारमुलुनु वर हरि हेषल्
भूरि रथनेमि रवमुलु, घोरमुलै वेल्लगिंचे गुलशैलमुलन् ॥ 333 ॥

और तिमि, तिमिंगिल आदि जलचरों पर, नरों पर तथा सुर, असुरों के विकृत रूप वाले जंतुओं पर चढ़कर, अपने-अपने चिह्न रूपी छत्र, पताका, कवच, हथियार, अंगी, किरीट आदि परिकर साथ लेकर, अलग-अलग दलों में बँटकर, विरोचननंदन-बलि के सन्मुख आ खड़े हुए। देवेंद्र ऐरावत पर आरूढ़ हो, वैश्वानर (अग्निदेव), वरुण, वायु, दंडधर (यम) आदि की अनेक निर्जरवाहिनियाँ (देवसेनाएँ) साथ लेकर [शत्रु के] सामने आकर पीठ फेरे बिना भिड़ गया। इस प्रकार समर-सन्नाह के समुत्साह से दोनों पक्षों के योद्धा वीरोक्तियों से अपनी उमंग बढ़ाते हुए हुल्लड़ मचा रहे थे; उस अवसर पर ३३१ [सी.] हे जनवरेण्य (नरेश)! वज्रदंतों से बने व्यजन (पखे), मयूरपिछ वाले चामर, सितच्छत्र (श्वेतछत्र), चित्रवर्ण वाले (रंग-बिरंगे) ध्वजपट, हवा में उड़नेवाले उष्णीष (पागे), बज उठनेवाले कंकण-भूषण, सूर्यकिरणों सी कांति फैलानेवाले अस्त्र-शस्त्र (हथियार), विविध खेटक (ढाल) वीरमालिकाएँ, [आ.] बाणपूर्ण तूणीर (तरकस) इन सबसे उद्दंड बनी हुई सुरासुर वीरों की उभय-सेनाएँ ग्राहततियों (मगरमच्छों के समूहों) से युक्त हो भिड़ जानेवाले सागरों की भाँति अधिक शोभायमान हुई। ३३२ [कं.] भेरियों के भांकार (शब्द), वारणों (हाथियों) के घींकार (चिंघाड़ें), उत्तम हरियों (घोड़ों) की हेषाएँ (हिनहिनाहटें), भूरि (बड़े-बड़े) रथ-नेमि-रव (रथचक्रों की गड़गड़ाहटें) —इन सब ध्वनियों ने घोर (भयंकर) बनकर कुलशैलों को उखाड़ दिया। ३३३ [व.] इस

व. इव्विधंबुन नुभय बलंबुलु मोहरिंचि, बलितो, निंद्रुंडुनु, दारकुनितो गुहुंडुनु, हेतितो वरणुंडुनु, प्रहेतितोड मित्रुंडुनु, गालनाभुनितोड यमुंडुनु, मयुनितो विश्वकर्मयु, त्वष्टतो शंबरुंडुनु, सविततोड विरोचनुंडुनु, पराजित्तुतो नमुचियु, वृषपर्वुनितो नश्विनी देवतलुनु, बाणादि बलिपुत्र शतंबुतो सूर्युंडुनु, राहुवुतो सोमुंडुनु, बुलोमुतो ननिलुंडुनु, निशुंभशुंभुलतो भद्रकाळी देवियुनु, जभुनि तोड वृषाकपियुनु, महिषुनितो विभावसुंडुनु, ब्रह्मपुत्रुलतोड निल्वल वातापुलुनु, गामदेवुनितोड दुर्मर्षणुंडुनु, मातृगणमुतोड नुत्कलुंडुनु, शुक्रुनितोड बृहस्पतियुनु, नरकुनितो शनैश्चरुंडुनु, निवात कवचुलतो मरुत्तुलुनु, गालेयुलतोड वसुवुलन नमरुलुनु, ग्रोधवश पौलोमुलतो रुद्रविश्वेदेवगणंबुलुनु, निव्विधंबुन गलिसि पेनंगि, द्वंद्वयुद्धंबु सेयुचु, मरियु रथिकुलु रथिकुलनु, बदातुलु पदातुलनु, वाहनारूढुलु वाहनारूढुलं दाकि, सिंहनादंबुलु सेयुचु, नट्टहासंबुलिच्चुचु, नाह्वानंबु लोसंगुचु, नन्योन्य तिरस्कारंबुलु सेयुचु, बाहुनादंबुल विजृंभिचुचु, वेनु बोब्बल नुव्विरेगुचु, हुंकरिपुचु, नहंकरिपुचु, धनुर्गुणंबुल डंकरिपुचु, शरंबुल नाटिपुचु, बरशुवुल नरुकुचु, जक्रंबुलं जेक्कुचु, शक्तुलं द्रुनुमुचु, गशलं वेट्टुचु, गुठारंबुलं नोडुचुचु, गदल नड्चुचु, गरंबुलं बोडुचुचु, गरवालंबुल व्रेयुचु, बट्टसंबुल नोचुचु, प्रासंबुलं देंचुचु,

---

प्रकार उभय (दोनों) सेनाएँ व्यूह बाँधकर, बलि के साथ इंद्र, तारक से गुह, हेति से वरुण, प्रहेति से मित्र (सूर्य), कालनाभ से यम, मय से विश्वकर्मा, त्वष्टा से शबर, सविता से विरोचन, पराजित से नमुचि, वृषपर्व से अश्विनी देवता, वाण आदि बलि के शत (सौ) पुत्रों से सूर्य, राहु से सोम (चंद्र), पुलोम से अनिल शुभ-निशुंभ से भद्रकाली देवी, जंभ से वृषाकपि, महिष से विभावसु, ब्रह्मपुत्रों से इल्वल-वातापि, कामदेव से दुर्मर्षण, मातृगण से उत्कल, शुक्र से बृहस्पति, नरक से शनैश्चर, निवात-कवचों से मरुत्, कालेयों से वसु नामक देवता, क्रोधी पौलोमियों से रुद्र-विश्वेश्वरगण —इस प्रकार एक-दूसरे से टकराकर, द्वंद्व-युद्ध करने लगे। और रथिक रथिकों पर, पदाति (पैदल सैनिक) पदातियों पर, वाहनारूढ़ वाहनारूढ़ों पर आक्रमण करके, सिंहनाद करते हुए अट्टहास के साथ चुनौती देते हुए, अन्योन्य तिरस्कारपूर्वक बाहुदंड बजाते हुए, चीखते-चिल्लाते, उमंग में उमड़ते, हुंकारते, अहंकार से अकड़ते हुए, धनुष की डोरियाँ टंकारते हुए, बाण चुभाते हुए, परशु (कुल्हाड़े) से काटते हुए, चक्रों से छेदते हुए, शक्तियों से बेधते हुए, कराघात करते हुए, गदा चलाते हुए, करवाल चलाते हुए, पट्टिसों से दावते हुए, बर्छियों से चुभोते हुए, पाशों (रस्सों) से बाँधते हुए, परिघों (लोहे के डंडों) से पीटते हुए, मूसलों से

बाशंबुल गट्टुचु, बरिघंबुल मौत्तुचु, मुसलंबुल मोदुचु, मुद्गरंबुल जडुपुचु, मुष्टिवलयंबुल घट्टिपुचु, दोमरंबुल नुरुमुचु, शूलंबुल जिम्मुचु, नखंबुलं जीरुचु, दरुशैलंबुल रुव्वुचु, नुल्मुकंबुलं जूरिडुचु, निट्लु बहुविधंबुलं गलह विहारंबुलु सलुपु नवसरंबुन, भिन्नंबुलैन शिरंबुलुनु, विच्छिन्नंबुलैन कपालंबुलुनु, विकलंबुलैन कपोलंबुलुनु, जिक्कुलु वडिन केशबंधंबुलुनु, भग्नंबुलैन दंतंबुलुनु, गृत्तंबुलैन भुजंबुलुनु, खंडितंबुलैन करंबुलुनु, विदळितंबुलैन मध्यंबुलुनु, विकृतबुलैन वदन बिंबंबुलुनु, विकलंबुलैन नयनंबुलुनु, विकीर्णंबुलैन कर्णंबुलुनु, विशीर्णंबुलैन नासिकलुनु, विरिगि-पडिन यूरुदेशंबुलुनु, वितथंबुलैन पदंबुलुनु, जिनिगिन कंकटंबुलुनु, व्रालिन केतनंबुलुनु, गूलिन छत्रंबुलुनु, स्रोगिन गजंबुलुनु, नुग्गैन रथंबुलुनु, नुरुमैन हयंबुलुनु, जिदरु वंदरलैन भटसमूहंबुलुनु, ब्राणंबुल वीरलैडु मेनुलुनु, नुब्बि याडेडु भूतंबुलुनु, वारेडु रक्तप्रवाहंबुलुनु, गट्लु गौन्न मांसंबुलुनु, नेंगसि तिरिगेडि कळेवरंबुलुनु, गलकलंबुलु सेयु कंक गृध्रादि विहंगंबुलुनै यौप्पु नप्पोरतिघोरंबय्ये। अप्पुडु ॥ 334 ॥

शा. नाकाधीशु बदिट मूट गजमु न्नालिगट गुर्रंबुल-
न्नेकास्त्रंबुन सारथि जौनिपै दैत्येंद्रुडु वीकन् विय-
ल्लोकाधीशुडु द्रुंचे नन्निटिनि दोड्तो नन्नि भल्लंबुलन्
राकुंडन् रिपुवर्गमुं दुनिमे गीर्वाणुल् नुतिपन् वेसन् ॥ 335 ॥

---

कूटते हुए, मुद्गरों से ठोंकते हुए, मुष्टियों से घट्टित करते हुए, तोमरों से पीसते हुए, शूलों से भोंकते हुए, नखो से चीरते हुए, तरु-शैलों को फेंक मारते हुए, मुराड़ों से जलाते हुए, और भी अनेक रीतियों से वीर विहार कर रहे थे। तब वह युद्धभूमि कटे हुए सिर, विच्छिन्न कपाल, बिकल बने कपोल, उलझे हुए केशबंध, भग्न-दंत, कटी हुई भुजाएँ, खंडित हुए कर (हाथ), विदलित कटिप्रदेश, विकृत वदनबिंब, विकल बने नयन, विकीर्ण हुए कर्ण [कान], विशीर्ण नासिकाएँ, कटकर गिरे हुए ऊरुप्रदेश (जाँघें), अलग पड़े हुए पैर, फटे हुए कवच, गिरे पड़े केतन (झंडे), ढेर हुए छत्र, नीचे झुके हाथी, चूर-चूर हुए रथ, पिसे हुए घोड़े, तितर-बितर हुए भटसमूह, अंतिम साँसों से लुढकते हुए शरीर, फूलकर नाचने वाले भूत, बहनेवाले रक्तप्रवाह, ढेर में पड़े मांस-खंड, उछल पड़नेवाले कलेवर, कलकते हुए कंक, गृध्र आदि विहंग —इन सबसे भयानक बन गयी। ३३४ [शा.] दैत्येंद्र बलि ने दस बाणों से नाकाधीश इंद्र को, तीन बाणो से उसके गज को, चार बाणों से घोड़ों को और एक अस्त्र से सारथी को मारा, तो उस स्वर्गलोकाधीश इंद्र ने उत्साह से तुरंत ही उतने ही भाले चलाकर, उन बाणों को काट डाला

सी. तन तूपुलन्नियु दरमिडि शक्रुंडु नरिकिन जोडु विन्ननुवु मॅरसि
बलि महाशक्ति जेपट्टिन नदियुनु नतडु खंडिचॅं नत्यद्भुतमुग
मरि प्रास शूल तोमरमुलु गैकॉन्न दोड्तोन नवियुनु दुनिमिवॅचॅं
नंतट बोकयॅट्यदि वाडु संधिचॅं दौडरि ता नदियुनु दुमुरु सेसॅ
आ. नसुरभर्त विरथुडै पोयि पगरकु, गानवडक विविध कपटवृत्ति
नेर्पु मॅरसि माय निर्मिचॅं मिटनु, वेल्पुगमुलु सूचि वॅरगुपडग ।।336।।

व. इट्लु दानवेंद्रुनि मायाविशेष विधानंबुन सुरानीकंबुलपै वर्वतंबुलु वडियॅ। दावाग्नि दंदह्यमान तरु विस्फुलिंगंबुलु गुरिसॅ। शिखिशिखासारंबुलु गप्पॅ। महोरग दंदशूकंबुलु गरचॅं। वृश्चिकंबुलु मीटॅ। वराह व्याघ्र सिंहंबुलु कदिसि, विदळिपं दौरकॉनियॅ। वनगजंबुलु मट्टि मल्लाडं जॉच्चॅ। शूलहस्तुलु दिगंबरुलुनै, वलु रक्कसुलु शतसहस्र संख्यलु भेदनच्छेदन भाषणंबुलाडं दौडगिरि। विकृतवदनुलु गदादंडधारुलु नालंवित केशभारुलुनै, यनेक राक्षसवीरुलु "पोनीकु पोनीकुडु, तुनुमुंडु" अनि वॅनुतगिलिरि। वर्षगंभीर निर्घात समेतंबुलैन जीमूत संघातंबुलु,

और रिपुवर्ग (शत्रुदल) को अपनी ओर बढ़ने से रोकते हुए उसे मारा, यह देख गीर्वाणों (देवताओं) ने उसे तुरंत सराहा। ३३५ [सी.] जब शक्र (इंद्र) ने समान निपुणता प्रकट करते हुए, अपने सारे बाणों को एक-एक करके खंडित किया तो बलि ने महाशक्ति [नामक अस्त्र] हाथ में लेकर चलाया, [किंतु] इंद्र ने अति अद्भुत रीति से उसे भी तोड़ डाला। फिर प्रास, शूल और तोमर बलि ने उठाये तो उन्हें भी लगकर इंद्र ने काट दिया। इतना ही नहीं, उसने (बलि ने) जिस-जिस अस्त्र का संधान किया, इंद्र ने उन सबको चूर-चूर कर डाला। [आ.] तब असुरभर्ता (राक्षसेंद्र) बलि विरथ (रथ-रहित) हो गया, उसने शत्रु को गोचर न होते हुए, विविध कपटवृत्तियाँ अपनाकर, नैपुण्य प्रदर्शित करके आकाश में माया का निर्माण किया। उसे देख देवसमूह आश्चर्य-चकित रह गया। ३३६ [व.] यों दानवेंद्र बलि के माया-विशेष के प्रभाव से सुरानीक (देव-सेना) पर पर्वत आकर गिरे; दावाग्नि से दंदह्यमान (जलते हुए)-तरु विस्फुलिंग (अग्निकण) बरसे; पर्वत के शिखरों से शिलाखंड गिरे; महोरग और दंदशूकों (सर्पों) ने डसा; वृश्चिकों (बिच्छुओं) ने डंक मारे; वराह, व्याघ्र, सिंह झपटकर काटने लगे; वनगज मिट्टी उछालने लगे; शतसहस्र वली राक्षस, दिगंबर और शूलहस्त हो [देवों को] भेदने, और छेदने की बातें करने लगे; विकृत-वदन [मुँह] वाले, गदादंडधारी, लंबे खुले केश लटकाये अनेक राक्षसवीर यह चिल्लाते हुए कि— "जाने मत दो, पकड़ के काट डालो" —देवों को

वाताहतंबुलै युप्पतिल्लि, निप्पुल कुप्पलु, मंटल प्रोवुलुं गुरिसें। महापवन विजृंभितंबैन कार्चिच्चु प्रळयानलंबु चंदंबुनं दरिकोंनियें। प्रचंड झंझानिल प्रेरित समुत्तुंग तरंगावर्त भीषणंबैन महार्णवंबु चॆलियलिकट्टु दाटि वॆल्लि विरिसिनट्लय्यॆं। आ समयंबुन ब्रळयकालंबुनं बोलॆ मिन्नु मन्नु रेयुंबगलनि यॆरुंगरादय्यॆं। अय्यवसरंबुन ॥ 337 ॥

कं. आ यसुरेंद्रुनि बहुतर, मायाजालंबुलकुनु मारॆरुगक व-
ज्त्रायुध मुखरादित्यु ल, पायंबुनु बॊंदि चिक्कुवडि नरेंद्रा ! ॥ 338 ॥

व. अप्पुडु ॥ 339 ॥

कं. इय्यसुरुलचे जिक्किति, मॆय्यदि दॆरुवॆदु जॊत्तु मिट्टु वॊलय गदे
यय्या ! देव ! जनार्दन ! कुय्यो ! मॊर्रो ! यटंचु गूयिडि रमरुल् ॥340॥

व. अट्लु मॊऱयिडु नवसरंबुन ॥ 341 ॥

म. विहगेंद्रासन रूढुडै मणि रमा विभ्राजितोरस्कुडै-
बहु शस्त्रास्त्र रथांग संकलितुडै भास्वत्किरीटादिदु-
स्सहुडै नव्य पिशंगचेलधरुडै संफुल्ल पद्माक्षुडै
विहितालंकृतितोड माधवुडु दा वेंचेसं नच्चोटिकन् ॥ 342 ॥

खदेड़ने लगे। गंभीर जीमूतसंघ (घनघोर घटाएं) वज्रपात-समेत [चारों तरफ़] फैलकर, अग्निराशियाँ और ज्वाला-समुदाय बरसा रहे थे। महापवन से विजृंभित दावानल ने प्रलयकालीन अग्नि के सामान उन्हें घेर लिया। [राक्षसों का वह आक्रमण] प्रचंड झंझानिल से प्रेरित, समुत्तुंग तरंगों और आवर्तो (भँवरों) से भीषण बन, वेला (किनारा) लाँघकर बहनेवाले महार्णव-सा दिखाई दे रहा था। उस अवसर पर, प्रलयकाल में जैसे होता है, भूमि और आकाश मे, रात और दिन में भेद जान नहीं पड़ता था। तब ३३७ [कं.] हे नरेंद्र ! उस असुरेंद्र (वलि) के बहुतेरे मायाजालों का प्रतिकार न जान कर, वज्रायुध-इंद्र आदि आदित्य (अदिति की संतान, देवता) लोग अपाय (संकट) में फँस गये। ३३८ [व.] तब ३३९ [क.] "हम इन असुरों के हाथ में फँस गये है, [निकलने का] मार्ग कौन सा है ? रक्षा के लिए कहाँ जायें ? हे देव ! हे जनार्दन ! हाय ! हाय ! अब यहाँ पहुँच जाओ न ?" —यों कहकर, अमर लोग दुहाई देने लगे। ३४० [व.] यों [उनके] आर्तनाद करने के अवसर पर। ३४१ [म.] विहगेंद्र (गरुड़) के आसन पर आरूढ़ हो, वक्ष पर [कौस्तुभ] मणि तथा रमा (लक्ष्मी) की शोभा लिये हुए, वहु-शस्त्रास्त्र-रथांग-संकलित हो, भास्वत (प्रकाशमान)-किरीट आदि से दुस्सह (असाध्य) हो, नव्य (नूतन) पिशंग (पीला) वर्ण का वस्त्र

चं. असुरुल मायलन्नियुनु नब्जदळाक्षुडु वच्चिनंतटन्
गसिबिसियै निरर्थमयि ग्रक्कुन बोयॆनु निद्रनॊंदि सं-
तसमुन मेलुकॊन्न गति गांचि चॆलंगिरि वेल्पु लंदरुं
बसचॆंड केल युंडु हरिपाद परिस्मृति सेय नापदल् ॥ 343 ॥

व. अय्यॆड ॥ 344 ॥

आ. कालनेमि घोर कंठीरवमु नॆक्कि, तार्क्ष्युशिरमु शूलधार वॊडुव
नतनि पोटुमुट्टु हरि केल नॊंकिंचि, दान जाववॊडिचॆ दानवुनिन ॥345॥

क. पदपडि मालि सुमालुलु, बॆदरिंचिन दललु द्रुंचॆ बृथु चक्रहतिन्
गद गॊनि गरुडुनि रॆक्कलु, चॆदरिंचिन माल्यवंतु शिरमुन् व्रेसॆन् ॥346॥

## अध्यायमु—११

व. इट्लु परमपुरुषुंडगु हरि करुणा परत्वंबुन प्रत्युपलब्धमनस्कुलयिन वरुण वायु वासव प्रमुखुलु पूर्वंबुन नॆव्वरॆव्वरितो गय्यंबु सेयुदुरु, वार वारलं दलपडि नॊप्पिचिरि । अय्यवसरंबुन ॥ 347 ॥

---

धर कर, संफुल्ल (विकसित) पद्म-सम नेत्रों और विहित (योग्य) अलंकारों के साथ माधव (विष्णु) उस जगह पधारा। ३४२ [चं.] अब्जाक्ष (कमललोचन, विष्णु) के वहाँ पहुँचते ही, असुरों का सारा मायाजाल अस्तव्यस्त हो निरर्थक बन तुरंत अदृश्य हुआ; देवता सब निद्रा से जागृति पाये हुए-से प्रसन्न हुए, हरिचरण का परिस्मृति करने पर आपदाएँ तितर-बितर हुए बिना क्योंकर रहेंगी ? ३४३ [व.] तब ३४४ [आ.] कालनेमि के जब भयंकर कंठीरव (सिंह) पर चढ़कर तार्क्ष्य (गरुड़) सिर को शूलधारा से भोक देने पर, हरि ने उसका भाला झड़पकर फिर उसी से उस दानव को भोंककर, मार डाला। ३४५ [कं.] [और] उसके बाद माली-सुमालि के भयभीत करने पर, अपना बड़ा चक्र चलाकर, उनके सिर काट डाले, तथा माल्यवंत ने गरुड़ के पंख गदा से न्यस्त किये तो [हरि ने] उसका भी सिर फोड़ डाला। ३४६

## अध्याय—११

[व.] इस प्रकार परमपुरुष उस हरि की करुणापरता के कारण, फिर से प्रत्युपलब्ध-मनस्क होकर वरुण, वायु तथा इंद्र आदि देवता उन्हीं शत्रुओं से जूझने को सन्नद्ध हुए जिनसे उन्होंने पूर्व में भिड़ने का यत्न किया था। उस समय— ३४७ [कं.] बाहुबलयुक्त हो, इंद्र ने साहस के साथ राजा बलि को जीतना चाहा, इस यत्न में उसने जब

कं. बाहुबलंबुन निद्दुडु, साहसमुन बलिनि गॅलुव समकट्टिन स-
न्नाहमुन वज्र मॅत्तिन, हा हा निनदंबु सेसि रखिल जनंबुल् ॥ 348 ॥

व. इट्लु समुद्यत भिदुरहस्तुडं, यिद्दुडु तन पुरोभागंबुनं बराक्रमिचुचुन्न बिरोचननंदनु नुपलक्षिचि यिट्लनियॅ ॥ 349 ॥

म. जगतिन् वैरि मोरंगि गॅल्चुटदियुन् शौर्यंबे धैर्यंबे ता-
मगवाडय्युनु दन्नु दा नॅरिगि सामर्थ्यंबुनुं गलिगयुन्
बगवानि गनि डागॅनेनि मॅयि सूपंजालडॅनि गटा!
नगरे बंधुलु, दिट्टरे बुधुलु, कन्यल् गूर्तुरे दानवा! ॥ 350 ॥

उ. मायल् सेयगरादुपो!. नगवुले मातोडि पोराटमुल्?
दाया! चिक्कितिवक्कलिचॅद गनद्दंभोळि धाराहतिन्
नी यिष्टार्थमुलॅल्ल जूडुमु वॅसन्नीवारलं गूडुको
नी याटोपमु निर्जरेंद्रुडडचुन् नेडाजिलो दुर्मती! ॥ 351 ॥

व. अनि पलिकिन वज्रितो विरोचननंदनुंडिट्लनियॅ ॥ 352 ॥

शा. नीवे पोटरिवे सुरेंद्र! तॅगडन्नी केल गॅल्पोटमुल्
लेवे यॅव्वरिपाल बोयिनवि मेल्कोडुल् विरिंचादुलुन्

---

वज्रायुध उठाया तो निखिल जन हाहाकार कर उठे। ३४८ [व.] तब भिदुर-हस्त हो (हाथ में वज्रायुध लिये) [बलि पर प्रहार करने को] उद्यत इंद्र ने अपने सामने पराक्रम से बढ़ आनेवाले विरोचन-नंदन (बलि) को लक्ष्य करके यों कहा : ३४९ [म.] "वैरी को धोखे से जीतना जग में धैर्य और शौर्य का काम नही होता; पौरुषवान् होकर, अपने-आप को जानकर, सामर्थ्य रखते हुए भी शत्रु को देख यदि कोई छिप जाय, अपना शरीर (स्वरूप) दिखा न सके तो, भला! भाई-बंधु [ऐसे को देख] हँसेगे नही क्या? बुद्धिमान् निंदा न करेंगे? हे दानव! उसकी तो स्त्रियाँ तक प्रशंसा नही करेंगी। ३५० [उ.] तुम्हारा मायाजाल काम नही दे सकेगा, हमारे साथ युद्ध हँसी-खेल नहीं है, हे वैरी! अब तुम मेरे हाथ लगे हो, दंभोलिधारा (वज्रधारा) से आहत कर तुम्हें खडित करूँगा; हे दुर्मती! अब तुम अपना इष्टार्थ देख लो; अपने सगों से मिल लो; आज के युद्ध में यह निर्जरेंद्र (देवेंद्र) तुम्हारा सारा आटोप (आडंबर) कुचल डालेगा"। ३५१ [व.] यों कहनेवाले वज्री (इंद्र) को विरोचन-नंदन (बलि) ने इस प्रकार उत्तर दिया : ३५२ [शा.] हे सुरेंद्र! [जग में] तुम अकेले ही शूरवीर हो क्या? मेरी निन्दा तुम क्यों करते हो? हार और जीत किसके पल्ले नहीं पड़तीं? विरिंची (ब्रह्मा) आदि भी किसी भी विधान से अपने को प्राप्त होनेवाले

द्रोवंजालुदुरॅव्विधानमुन संतोषिंप शोकिंप ना
दैवंबेमि करस्थलामलकमे दर्पोक्तुलुं बाडिये ? ॥ 353 ॥

आ. जयमु लपजयमुलु संपद लापद, लनिलचलित दीपिकांचलमुलु
चंद्रकळलु मेघचयमु तरंगलु, मॅरुगुलमरवर्य ! मिट्टिपडकु ॥ 354 ॥

व. अनि यिट्लाक्षेपिंचि ॥ 355 ॥

कं. वीरुडु दानवनाथुडु, नारसमुलु निद्रु मेन् नाटिंचि महा-
घोरायुध कल्पमुलगु, शूरालापमुलु सॅवुल जॊनिपॅ मरलन् ॥ 356 ॥

व. इट्लु तथ्यवादियैन बलिचे निराकृतुंडै ॥ 357 ॥

कं. शात्रुवु नक्षेपंबुन, दोत्राहत गजमुभंगि द्रळ्ळुचु बलि ना-
वृत्रारि वोचि वैचिन, गोत्राकृति नतडु नेल गूलॅ नरेंद्रा ! ॥ 358 ॥

कं. चॅलिकानि पाटु गनुगॊनि
बलिसखुडगु जंभुडतुल बाहाशक्तिन्
जॅलितनमु साल नॅरपुचु
निलु निलु मनि वीक दाकॅ निर्जरनाथुन् ॥ 359 ॥

कं. पंचानन वाहनुडै, चंचद्गद जंभुडॅत्ति शैलारिनि दा-
किंचि सुरेभंबुनु नॊ, प्पिंचि विजृंभिंचि यांचि पेचॅ" गडिमिन् ॥ 360 ॥

---

हानि-लाभ को टाल नही सकते (दूर नही कर सकते)। वह दैव (अदृष्ट) जिसके कारण हर्ष और शोक होते हैं, क्या हमारे हाथ का आँवला है (वशवर्ती है क्या ?) दर्पोक्तियाँ कहना (डीग मारना) श्रेयस्कर नही है। ३५३ [आ.] जय और अपजय सपति और विपत्ति के समान है, जो अनिल-चालित (हवा मे हिलनेवाली) दीपशिखा, चंद्रमा की कलाओं, मेघपटलों, तरंगों और बिजली की चमकों के समान चचल हुआ करती हैं, अतः हे अमरवर्य ! घमण्ड से ऐंठो मत। ३५४ [व.] यों [कहकर] आक्षेप (निंदा) कर ३५५ [कं.] वीर दानवनाथ (राक्षसराजा बलि) ने इन्द्र का शरीर नाराचों (बाणों) से छेदकर, घोर आयुधों (शस्त्रों) के समान तीखे शूरालापों (वीरतापूर्ण वचनों) से उसके कान घायल कर दिये। ३५६ [व.] इस प्रकार तथ्य (सत्य)- वादी बलि से तिरस्कृत होकर, ३५७ [कं.] हे नरेंद्र ! शत्रु के किये तिरस्कार से, अंकुश की चोट खाये गज की भाँति, विकल हो, वृत्रारि (वृत्र-शत्रु, इन्द्र) ने बलि को पकड़ (बलात्) फेंक दिया तो वह पर्वत-सा भूमि पर गिर पड़ा। ३५८ [कं.] अपने सखा की दुर्गति देखकर अतुल बाहुशक्ति-युक्त जंभासुर, जो बलि का मित्र था, अपनी मैत्री निभाते हुए, "ठहरो, ठहरो" पुकारकर निर्जरनाथ (देवपति) इन्द्र पर पराक्रम के साथ झपट पड़ा। ३५९

कं. वीक चॅडि घन गदाहृति, दोकयु गदॅलिपलेक दुस्सहपीडन्
स्रोकरिल बडियॅ नेलनु, सोकोर्वक दिग्गजंबु सुडिसुडि गोॅचुन् ॥ 361 ॥

व. अय्येंड ॥ 362 ॥

कं. सारथि वेयु हयंबुल, तेरायितपरिचि तेर देवेंद्रुडु दा-
नारोहिचॅनु दैत्युडु, -दारत मातलिनि शूलधारं बॉडिचॅन् ॥ 363 ॥

आ. शूलनिहति नॊंदि सुक्कुचु नोच्चिचन, सूतु वॅरकु मंचु सुरबिभुंडु
वानि शिरमु दुनिमॅ वज्रघातंबुन, दैत्यसेनलॅल्ल दल्लडिलग ॥364॥

चं. चनि सुरनाथुचे गलन जंभुडु सच्चुट नारदुंडु चॅ-
प्पिन विनि वानि भ्रातलु गभीरबलाधिकुडा बलुंडु पा-
क नमुचुला पुरंदरुनि गांचि खरोक्तुल दूलनाडुचुन्
घन जलधारलन्नगमु गप्पिन चाड्पुन गप्पिरम्मुलन् ॥ 365 ॥

सी. विबुधलोकेंद्रुनि वेयुगुर्रंबुलनन्नि कोलल बलुंडदर नेसॅ
निन्नूट मातलि निन्नूट रथमुनु नारीति निंद्रु प्रत्यंगकमुल
वेधिचॅ बाकुंडु विट वाडस्त्रंबु लेयुट दॊडुगुट यॅरुगरादु
कनकपुंखंबुल कांडंबु लोकपदि यॅनिट नमुचियु नेसि याचॅ

[कं.] पंचानन (सिंह) के वाहन पर बैठकर, जम्भासुर ने गदा घुमाते हुए, शैलारि (इन्द्र) को दे मारा और उसके ऐरावत को भी घायल किया, यों वह अतिशय पराक्रम से दहाड़ उठा। ३६० [कं.] उस प्रचंड गदाहति (गदाघात) से तेज खोकर, दुस्सह पीड़ा से पूँछ तक हिला न सक, चोट खाकर, वह दिग्गज घूम-घूमकर, घुटनों के बल नीचे गिर गया। ३६१ [व.] उस अवसर पर ३६२ [कं.] मातलि सारथी के एक सहस्र घोड़े जोतकर एक रथ ले आने पर देवेंद्र उस पर आरूढ़ हुआ, वह दैत्य सारथी को शूल (बर्छी) की धारा से उदारता से (बार-बार) भोंकता रहा। ३६३ [आ.] शूल-निहति (-घात) से दुःखित हो रहे सूत [सारथी] को "भयभीत मत होओ", कहकर सुरपति— इन्द्र ने वज्राघात से उस दैत्य का सिर काट डाला, जिसे देख समस्त दैत्य-सेनाएँ भयकंपित हुईं। ३६४ [चं.] युद्ध में सुरनाथ (इन्द्र) के हाथ जम्भासुर का निहत होना, नारद के कहने पर सुनकर, उसके महान् बलवान् भ्राता— बल, पाक और नमुचि ने पुरन्दर (इन्द्र) को देखकर, कठोर वचनों से भर्त्सना की, और उसे बाणों से ऐसा ढँक दिया जैसे जलधाराएँ पर्वत को ढक लेती हैं। ३६५ [सी.] विबुध-लोकेंद्र (देवेंद्र) के हज़ार घोड़ों को उतने ही (हज़ार) बाणों से बल (नामक राक्षस) ने मार गिराया; दो सौ बाणों से मातलि को; दो सौ से रथ को, उसी प्रकार (दो सौ से) इंद्र के हर एक अंग को पाक ने विद्ध किया; वह धनुष पर कब बाण चढ़ाता और कब

आ. वलिमि निट्लु मुगुरु पगवानि रथ सूतु
सहितु मुंचिरस्त्रजालमुलनु
वनजलोक सखुनि वानकालंबुन
मॊगुलुगमुलु मुनुग मूगिनट्लु ॥ 366 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 367 ॥

म. अमरारातुल बाणजालमुल पालै पोयिते चॆल्लरे
यमराधीश्वर ! यंचु भिन्न तरुलै यंभोधिलो जंचल-
त्वमुनं ग्रुंकु वणिग्जनंबुल क्रियं दैत्याधिपव्यूह म-
ध्यमुनं जिक्करि वेल्पु लंदरु विपद्ध्वानंबुलन् जेयुचुन् ॥ 368 ॥

शा. ओहो देवतलार ! कुय्यिडकुडॆनुन्नाडनंचंबु भृत्-
वाहुंडा शरबद्ध पंजरमु नंतं जिंचि तेजंबुनन्
वाहोपेत रथंबुतोड वॆलिकिन् वच्चॆन् निशांतोल्लस-
न्माहात्म्यंबुन दूर्पुनं बॊडुचु ना मार्तांडु चंदंबुनन् ॥ 369 ॥

व. इट्लु वॆलुवडि ॥ 370 ॥

चं. विरिगिन सेन गांचि सुरवीरुडॊहो यनि बिट्टु चीरि क्र-
म्मर बुरिकॊल्पि पाक बल मस्तकमुल् निशितास्त्रधारल-

---

छोड़ता, कोई जान नहीं पाता था। सुनहरे पंखों वाले पंद्रह बाण नमुचि ने भी चलाकर, सिंहनाद किया। इस प्रकार पराक्रम के साथ तीनों [राक्षसों] ने अपने शत्रु को, [आ.] उसके रथ तथा सूत (सारथी) समेत अस्त्रों के जाल में इस प्रकार डुबो दिया जैसे वनज-लोक-सखा (कमलबधु— सूर्य) को वर्षाकाल में मेघ-समूह घेरकर छिपा देता है। ३६६ [व.] उस अवसर पर। ३६७ [म.] "हाय रे! अमराधीश्वर! (हे इंद्र)! [आखिर तुम] अमरों के अरातियों (शत्रुओं) के बाण-जाल के पाले पड गये हो न!" —यों कहकर सारे देवता विपध्वान (आर्तनाद) करते हुए, भिन्नतरुओं (कटे वृक्षों) के समान, अंभोधि (समुद्र) में चंचलता (विकलता) से डूबते हुए वणिक्जनों (व्यापारियों) की भांति, दैत्याधिप (राक्षसराजा) के व्यूह के मध्य में फंसकर विलाप करने लगे। ३६८ [शा.] "ओहो, देवताओ! आर्तनाद मत करो; यह देखो, मैं [विद्यमान] हूं।" —ऐसा कहते हुए अंबुभृत (मेघ)-बाहन [-इंद्र) उस शरबद्ध समस्त पंजर को चीर-फाड़कर, अपने अश्वचोदित रथ समेत तेज से, बाहर निकल आया जैसे निशांत (प्रातःकाल) में पूर्वदिशा को चीरते हुए मार्तांड (सूर्य) प्रकाश के साथ उदित होता है। ३६९ [व.] यों बाहर आकर। ३७० [चं.] अपनी टूटी सेना को देख "ओह!" कह सुरवीर (इंद्र) ने शीघ्रता से सबको बुला-बुलाकर, और फिर से सबको उत्साहित किया।

ञ्रॆरसिन तीक्ष्णवज्रमुन नेलकु व्राल्चॆनु वानि चुट्टमुल्
वॆरचिरि तच्चमूपतुलु विह्वलुलै चॆडि पार्रिरारितो ॥ 371 ॥

व. अप्पुडु नमुचि निलुवंबडि ॥ 372 ॥

म. तन चुट्टंबुल जपॆ वीडनुच नद्यत्क्रोध शोकात्मुडै
कनकांतंबुनु नश्मसारमयमुन् घंटासमेतंबुनै
जनदृग् दुस्सहमैन शूलमु नॊगिन् सारिंचि वैचॆन् सुरॆं-
द्रुनिपै दीन हतुंडवौदनि मृगेंद्रुं बोलि गर्जिंचुचुन् ॥ 373 ॥

शा. आकाशंबुन वच्चु शूलमुनु जंभाराति खंडिंचि ना-
ना कांडंबुल वानि कंठमु दॆगन् दंभोळियुन् वैचॆ न-
स्तोकेंद्रायुधमुन् सुरारिगळमुन् द्रुंपंगलेदय्यॆ वा-
डाकंपिपक निल्चॆ देवविभुडत्याश्चर्यमुन् बॊंदगन् ॥ 374 ॥

व. इट्लु निलिचियुन्न नमुचि गनुंगॊनि वज्रंबु प्रतिहतंबगुटकु शंकिंचि,
बलभेदि तन मनंबुन ॥ 375 ॥

सी. कॊंडल रॆक्कलु खंडिंचि वैचुचो वज्रमॆन्नडुनित वाडि सॆडदु
वृत्रासुरादुल विदळिंचॆ नो पवि तिरुगदॆन्नडु पग दॊंचि कानि

---

फिर निशित (तेज़) अस्त्रधाराएँ [चारों तरफ़] फेंकते हुए पाकासुर और बलासुरों के सिर तीक्ष्ण वज्राघात से नीचे लुढ़का दिया। उनके संबंधी जन और चमूपति (सेनापति) भीति से विह्वल हो, हिम्मत हारकर भाग निकले। ३७१ [व.] तब नमुचि स्थिर खड़ा रहकर, ३७२ [म.] अपने बंधुओं का इस [इन्द्र] ने वध किया, इस कारण नमुचि अत्यंत क्रोध और शोक से भर गया, फिर उसने एक शूल, जिसकी अनी सोने की थी, और जो अश्मसार (फौलाद) का बना था, और घंटा-समेत था तथा जन-दृक्-दुस्सह (देखने में भयंकर) था, तानकर सुरेंद्र पर दे मारा, उसने मृगेंद्र के समान गरजते हुए कहा कि "इससे तुम अवश्य निहत हो जाओगे"। ३७३ [शा.] आकाश [मार्ग] से आ रहे उस शूल को जम्भाराति (इन्द्र) ने खण्डित कर शत्रु पर अनेक बाण मारे। फिर उसका कण्ठ काटने के लिए दम्भोलि (वज्र) का प्रयोग किया, [किंतु] वह महान् अचूक आयुध (अस्त्र) भी सुरारि (राक्षस) का गला काट न सका, शत्रु अचंचल (स्थिर) खड़ा रहा, इसे देख, देवविभु (इन्द्र) ने अत्यन्त आश्चर्य किया। ३७४ [व.] यों स्थिर खड़े नमुचि को देखकर, वज्र के प्रतिहत होने पर शंका करते हुए, बलभेदी (इन्द्र) अपने मन में [यों सोचने लगा] ३७५ [सी.] पर्वतों के पंख खण्डित करते समय [यह] वज्र इतना कुंठित कभी नहीं हुआ था; वृत्रासुर आदि का [इसी ने] विदलन

यिद्रुड गानोको येनु दंभोळियु गादोको यिदि प्रयोगंबु चेडेनो
दनुजाधमुंडु मोनताकु दप्पिचेनो भिदुरंबु नेडेल बेंडुवडियें

आ. ननुचु वज्रि वगव नार्द्रशुष्कंबुल
जावकुंड दपमु सलिपे नीत-
डितरमेद्वियैन निद्र प्रयोगिपु
वेळमनुचु दिव्यवाणि वलिकॅ ॥ 376 ॥

व. इट्लुपदेशिचिन दिव्यवाणि पलुकुलाकणिचि यिद्रुंडु ॥ 377 ॥

आ. आत्मबुद्धि दलचॅ नार्द्रंबु शुष्कंबु, गानि साधनंबु फेनमनुचु
नदिय वैचि दान नमरुलु मेच्चंग, नमुचि शिरमु द्रुंचॅ नाकविभुडु ॥378॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 379 ॥

सी. पुरुहूतु नग्गिचि पुष्पांजलुलु सेसि मुनुलु दीविचिरि मुदमुतोड
गंधर्व मुख्युलु घनुलु विश्वावसुड्नु परावसुडु निपॅनय वाडि-
रमरांगनाजनुलाडिरि देवता दुंदुभुलुनु म्रोसॅ दुरमुलोन
वायु वह्नि कृतांत वरुणादुलुनु व्रति द्वंद्वुल गॅल्चिरुद्दंडवृत्ति

किया, शत्रु का वैर चुकाये विना यह पवि (वज्र) कभी वापस नहीं मुड़ता, क्या मैं इन्द्र नहीं हूँ ? क्या यह दंभोलि (वज्र) न रहा ? या इसका प्रयोग बिगड़ा क्या ? [संभवतः] दनुजाधम (नीच राक्षस) ने इसका वार बचा लिया हो, पता नही यह भिदुर (वज्र) आज क्यों कुंठित हुआ है ?" [आ.] इस प्रकार वज्रि (इन्द्र) जब चिन्ता करने लगा तो दिव्यवाणी यों बोल उठी, "इस [राक्षस] ने किसी भी आर्द्र (भीगी) अथवा शुष्क (सूखी) वस्तु से मृत न होकर बचे रहने के लिए तप किया था, अतः हे इंद्र ! वेग से किसी इतर (अन्य) आयुध (हथियार) का प्रयोग करो।" ३७६ [व.] यों उपदेश देनेवाली दिव्यवाणी के वचन सुनकर, इंद्र ने··· ३७७ [आ.] अपनी आत्मबुद्धि से सोचा कि वह साधन जो न आर्द्र है और न शुष्क [केवल] फेन है; [अतः] नाकविभु (स्वर्गाधिप) इन्द्र ने उसी [फेन] का प्रयोग करके, अमरों (देवताओं) की प्रशंसा पाते हुए, नमुचि का सिर खंडित किया। ३७८ [व.] उस अवसर पर। ३७९ [सी.] मुनियों ने पुरुहूत (इन्द्र) की स्तुति करके, पुष्पांजलियाँ अर्पण कर, मोद के साथ उसे आशीर्वाद दिया। गंधर्वों में प्रमुख और महान् विश्वावसु तथा परावसु ने मधुरस्वर में [प्रशंसाएँ] गायीं; अमरांगना-जन (देवांगनाओं) ने नृत्य किया, देवदुंदुभियाँ बज उठीं; युद्ध में वायु, अग्नि, कृतांत (यम), वरुण आदि ने अपने प्रतिद्वंद्वियों को उद्दंडता से जीत लिया, [ते.] अमरवर्यों (देवताओं) ने दनुजों को

ते. नल्पमृगमुल सिंहंबुलट्ल तोलि
रमरवर्युलु दनुजुल नदटुवाय
नजुडु पुत्तेर नारदुडरुगुदेंचे
दैत्य हरणंबु वारिप धरणिनाथ ! ॥ 380 ॥

व. वच्चि सुरलकु नारदुंडिट्लनियें ॥ 381 ॥

शा. सिद्धिचॅन् सुरलार ! मी कमृतमुन् श्रीनाथ संप्राप्तुलै-
वृद्धि बॊंदितिरॆल्लवारलुनु विद्वेषुल् मृतिबॊंदिरी-
युद्धं बेटिकि निक जालि बनि लेदोहो पुरे यंचु सं-
बद्धालापमु लाडि मान्चॆ सुरलं बांडव्य वंशाग्रणी ! ॥ 382 ॥

व. इट्लु नारदवचन नियुक्तुलै, राक्षसुलतोडि संग्रामंबु सालिंचि, सकल देवमुख्युलुनुं द्रिविष्टपंबुनकुं जनिरि। हतशेषुलैन दैत्यदानवुलु विपन्नुंडैन बलि दोड्कॊनि, पश्चिम शिखरि शिखरंबु जेरिरि। विध्वंसमान-कंधरुलै, विनष्टदेहुलगु यामिनीचरुल नॆल्लनु शुक्रुंडु मृतसंजीवनि विद्यपेंपुनंजेसि ब्रतिकिंचॆ। बलियुनु भार्गवानुग्रहंबुन विगत शरीर वेदनुंडै पराजितुंडय्युनु, लोकतत्त्व विचक्षणुंडगुटंजेसि दुःखिपक युंडॆ। अनि चॆप्पि राजुनकु शुकुंडिट्लनियॆं ॥ 383 ॥

---

निर्भय होकर ऐसा खदेड़ा जैसा अल्प जंतुओं को सिंह खदेड़ते हैं। तब हे धरणिनाथ (राजन्) ! अज (ब्रह्मा) के भेजने पर नारद दैत्यों का निवारण (विनाश) रोकने के निमित्त आ पहुँचा। ३८० [व.] आकर सुरों से नारद ने यों कहा : ३८१ [शा.] "हे देवताओ ! तुम लोगों को अमृत की सिद्धि (प्राप्ति) तो हो गयी, श्रीनाथ (विष्णु) की कृपा से तुम सबने वृद्धि पायी। तुम्हारे विद्वेषी (शत्रु) मृत हुए; अब यह युद्ध क्यों ? बंद करो, ओहो, वाह रे !" इस प्रकार संबद्ध-आलाप (उचित प्रकार की बातें) करके, हे पांडववंशाग्रणी ! (हे राजा परीक्षित् !) नारद ने देवताओं को युद्ध करने से मना कर दिया। ३८२ [व.] इस प्रकार नारद के वचनों से नियुक्त होकर (आज्ञा पाकर), राक्षसों के साथ संग्राम समाप्त करके, सकल देवमुख्य (प्रमुख देवता) त्रिविष्टप (स्वर्गलोक) जा पहुँचे। हतशेष (बाकी बचे) दैत्य-दानव लोग विपन्न (संकटग्रस्त) बलि को साथ लेकर, पश्चिम पर्वत-शिखर पर चले गये। कटे सिर और विनष्ट देह वाले समस्त यामिनीचरों को (रात्रिचर-राक्षसों को) शुक्र ने अपनी मृतसंजीवनी विद्या के बल से [पुनः] जीवित किया। बलि भी भार्गव (शुक्र) के अनुग्रह से शरीर की बाधा (पीड़ा) खोकर, पराजित होने पर भी, लोकतत्त्व-विचक्षण (-जाननेवाला) होने के कारण दुःख-रहित हो रहा। यों सुनाकर, राजा से शुक ने इस प्रकार कहा : ३८३

## अध्यायमु—१२

सी. कैलासगिरिमीद खंडेंदुभूषणुंडोकनाडु कोलुवुननुन्न वेळ
नंगनयै विष्णुडसुरुल वंचिंचि सुरलकु नमृतंबु चूरलिडॅट
विनि देवियुनु दानु वृषभेंद्रगमनुडै कडुवेड्क भूतसंघमुलु गोलुव
मधुसूदनुंडुन्न मंदिरंबुनकेगि पुरुषोत्तमुनिचेत बूजलोंदि

ते. तानु गूर्चुंडि पूजिंचॆ दनुजवैरि
गुशलमे मीकु माकुनु गुशलमनुचु
मधुरभाषल हरिमीद मैत्रि नॆरपि
हरुडु पद्माक्षु जूचि यिट्लनियॆ प्रीति ॥ 384 ॥

सी. देव ! जगन्मय ! देवेश ! जगदीश ! काल ! जगद्व्यापकस्वरूप !
यखिल भावमुलकु नात्मयु हेतुवुनैन यीश्वरुडवाद्यंतमुलुनु
मध्यंबु बयलुनु मरि लोपलयु लेक पूर्णमै यमृतमै भूरि सत्य-
मानंद चिन्मात्र मविकार माद्य मनन्य मशोकंबु सगुण मखिल

ते. संभवस्थिति लयमुल संगरहित-
मैन ब्रह्मंबु नीव नी यंघ्रियुगमु

## अध्याय—१२

[सी.] कैलास गिरि पर [स्थित] खंडेंदुभूषण (शशिकला-भूषण, शिव) ने एक दिन सभा में विराजमान रहकर, सुना कि विष्णु ने अंगना (स्त्री) बनकर, असुरों को धोखे में रख, सुरों (देवों) को अमृत पिलाया। तब वह [अपनी] देवी के साथ, वृषभ पर आरूढ़ हो, भूतसंघ से परिवृत होकर, उत्कण्ठापूर्वक, मधुसूदन के मन्दिर पर जा पहुँचा; [ते.] और पुरुषोत्तम से पूजित होकर स्वयं भी बैठकर, दनुजवैरी (विष्णु) का पूजन किया, फिर अपनी कुशल बताकर, उनकी कुशल पूछी। [अनन्तर] मधुर भाषण द्वारा हरि पर का अपना स्नेह जताकर, हर (शिव) ने पद्माक्ष को देख प्रीति से यों कहा : ३८४ [सी.] "हे देव ! जगन्मय जगदीश ! कालरूप ! जगद्व्यापक स्वरूप वाले ! समस्त भावों की आत्मा और हेतु, ईश्वर (प्रभु) तुम्हीं हो। आदि, और अन्त, मध्य तथा अन्तर और बाहिर के (भेद के) बिना पूर्ण होकर, अमृत होकर विद्यमान हो तुम। तुम वह ब्रह्म हो जो भूरि (महान्) सत्य है, आनन्द और चिन्मात्र है, विकार-रहित आद्य है, अनन्य, अशोक और अगुण है, [ते.] तथा अखिल संभव (जन्म), स्थिति और लय (नाश) से अछूता है। अब संग-रहित मुनि लोग मुक्तिकामी (चाहनेवाले) होकर, सदा

नुभय संग विसृष्टुलै युन्न मुनुलु
कोरि कैवल्यकामुलै कोल्तुरंपुड ॥ 385 ॥

सी. भाविंचि कोंदरु ब्रह्मंबु नीवनि तलपोसि कोंदरु धर्ममनियु
जर्चिंचि कोंदरु सदसदीश्वरुडनि सरवि गोंदरु शक्ति सहितुडनियु
जिंतिंचि कोंदरु चिरतरुंडव्ययुडात्मतंत्रुडु परुंडधिकुडनियु
दोडरि यूहिंतुरु तुदि नद्वय द्वय सदसद्विशिष्ट संश्रयुड वीवु

ते. तलप नोक्कित वस्तुभेदंबु गलदे
कंकणादुल पसिडि योक्कटिय गादे
कडलु वेक्केन वार्धि योक्कटिय गादे
भेदमंचुनु निनु विकल्पिप वलदु ॥ 386 ॥

सी. यद्विलासमु मरीच्यादु लेरुंगरु नित्युडनैयुन्न नेनु नेरुग
नम्माय नंधुलै यमरासुरादुलु वनरेदरट युन्नवारलेंत
ने रूपमुन बोंदकेपारुदुवु नीवु रूपिवै सकलंबु रूपु सेय
रक्षिप जेरुप गारणमैन सचराचराख्यमै विलसिल्लुदंबरमुन

ते. ननिलुडेरीति विहरिंचु नट्ल नीवु
गलसि वर्तिंतु सर्वात्मकत्व मोप्प

तुम्हारा अंघ्रियुग (चरण युग) भजते रहते है। ३८५ [सी.] कुछ लोग तुम्हें ब्रह्म कहकर भावना करते है; अन्य कुछ धर्म कहकर सोचते हैं; कुछ लोग सत्-असत् ईश्वर कहकर चर्चा करते है; और कुछ जन तुम्हारा चिंतन शक्ति सहित कहकर करते है; अन्य कुछ का अनुमान है कि तुम चिरतर (शाश्वत), अव्यय (नष्ट न होनेवाले) आत्मतंत्र, पर, और श्रेष्ठ हो; आखिर, तुम अद्वय और द्वय, सत् और असत् का एक विशिष्ट संश्रय (मिलाप) हो। [ते.] विचार करने पर कंकण आदि (आभूषणों) में वस्तुभेद (पदार्थभेद) है क्या? उनमें सुवर्ण (सोना) एक ही प्रकार का है न? लहरों के अलग होने पर भी समुद्र एक ही है, तुमको [सबसे] भिन्न कहकर, विकल्प (भेद) करना ठीक नही है। ३८६ [सी.] तुम्हारा विलास (क्रीड़ा) जो है, उसे मरीचि आदि ऋषि भी नहीं जानते, नित्य (शाश्वत) होकर मैं भी नही जानता; जब कि सुर-असुर तुम्हारी माया में उलझकर, अंधे बन तड़पते रहते हैं, तो अन्यों की क्या गिनती? कोई रूप ग्रहण किये बिना तुम विलसते हो, फिर रूपवान बनकर समस्त को स्वरूप देते हो (रचते हो); और उसकी रक्षा करने और नाश करने का कारण बनते हो; चराचर बनकर, अंबर में विलसित (प्रकाशमान) रहते हो। [ते.] अनिल (वायु) जैसे (सर्वत्र) विहार करता रहता है, वैसे ही तुम सबमें मिलकर (समाकर) रहते हो, यों सर्वात्मकत्व से शोभित

जगमुलकु नॆल्ल बंधमोक्षमुलु नीव
नीव सर्वंबु दलपोय नीरजाक्ष ! ॥ 387 ॥

म. घनतन्नी मगपोडुमुल् पलुमरुं गन्नारमुन् वीनुलन्
निनु विन्नारमु चूडमॆन्नडुनु मुन्नी याडु चंदंबु मो-
हिनिवै दैत्युल गन्नु ब्रामि यमृतंबिद्रादि देवाळि कि-
च्चिन नो रूपमु जूपुमा कुतुकमुन् जित्तंबुनं बुट्टॆडिन् ॥ 388 ॥

कं. मगवाडवै जगंबुल, दगिलिचि चिक्कुलनु बॆट्टुदंटवु नीकुन्
मगुवतनंबुन जगमुल, दगुलमु बॊंदिप नॆंततडवु मुकुंदा ! ॥ 389 ॥

व. अनि पलुकुचुन्न शूलपाणिचे नपेक्षितुंडै, विष्णुंडु भावगंभीरंबगु नव्वु निव्वटिल्ल नव्वामदेवुनकिट्लनियॆ ॥ 390 ॥

शा. श्रीकंठा ! निनु नीव येमरकुमी चित्तंबु रंजिचंदन्
नाकद्वेषुलडागुरिचुटकुनै नाडेनु गैकॊन्न कां-
ताकारंबु जगन्निमज्जनमु नीवे चूचॆदे जूपॆदन्
गैकोनर्हमुलंड्रु कामुकुलु संकल्प प्रभूतार्थमुल् ॥ 391 ॥

---

हो, हे नीरजाक्ष (कमलनयन) ! विचार करने पर जगों के लिए सब प्रकार के बंधन और मोक्ष (के कारक) तुम्हीं हो, सब कुछ तुम्ही हो। ३८७ [म.] तुम्हारे पुरुष-चरित्र जो महिमान्वित है कई बार हमने देखे, किन्तु तुम्हारी यह स्त्री-चर्या (-वर्तन) पहले कभी देखी नही गई; केवल कानों से सुनी है; मोहिनी बनकर दैत्यो की आँख बचाकर इन्द्र आदि देवों के समूह को तुमने जो अमृत बाँटा था, वह रूप हमें दिखा दो, चित्त में उसे देखने की उत्कंठा हो रही है। ३८८ [कं.] पुरुष बनकर, जगों को मोह में डाल, उन्हें उलझानेवाले चतुर हो तुम, हे मुकुंद ! [ऐसी दशा में] स्त्रीत्व से जगों को मोहित करने में तुम्हें क्या देरी लगती है ?" ३८९ [व.] यों बोलनेवाले शूलपाणि (शिव) से अपेक्षित (प्रार्थित) होकर, विष्णु ने भावगंभीर हास फैलाकर, उस कामदेव ]शिव[ से इस प्रकार कहा : ३९० [शा.] हे श्रीकंठ (शिवजी) ! [जब] मैं तुम्हारे चित्त को रंजित करूँगा, तब तुम अपने आप को भूल न जाना। नाकद्वेषियों (दैत्यों) को वंचित करने (धोखा देने) के लिए उस दिन मैंने कांताकार (कामिनीरूप) जो ग्रहण किया था, वह जगत को मोह में डुबो देनेवाला है, वह मैं दिखा दूंगा, तुम स्वयं देख लो। कामुक लोग यह मानते हैं कि उनके संकल्प के अनुरूप प्राप्त होनेवाले अर्थ (कामितार्थ) भोगने योग्य हैं। ३९१

### श्रीहरि तन मोहनी स्वरूपमुचेत नीश्वरुनि मोहिंप जेयुट

व. अनि पलिकि, कमललोचनुंडंतर्हितुंडय्यें। अय्युमासहितुंडन भवुंडु विष्णुंडेड बोयेनो, यँदु जोच्चेनो यनि दशदिशलुं गलय नवलोकिचुचुंड वन पुरोभागंबुन ॥ 392 ॥

सी. ऒक यॅल दोटलो नॊक वीथि नॊक नोड गुचकुंभमुलमीदि कॊंगु दोलग
गबरिका बंधंबु गंपिप नुदिटिपै जिकुरजालंबुलु चिक्कु वडग
ननुमानमै मध्य मल्लाड जॅक्कुल गर्णकुंडल कांति गंतुलिडग
नारोहभरमुन नडुगुल दडबड दृग्दीप्तिसंघंबु दिशलु गप्प

ते. वामकरमुन जारिन वलुव बट्टि
कनक नूपुरयुगळंबु घल्लनंग
गंकणंबुल झणझणत्कार मॅसग
बंतिचे नाडु प्रायंपुटिति गनियॆ ॥ 393 ॥

व. कनि, मुन्नु मगुव मरगि सगमैन मगवाडम्मगुव वयोरूपगुण विलासंबुलु तन्नु नूरिपं गनुरॆप्प वेट्टक तप्पक चूचि, मॆत्तनैन चित्तंबुन ॥ 394 ॥

---

### श्रीहरि का अपने मोहिनीस्वरूप के द्वारा ईश्वर को मोहित करना

[व.] ऐसा कहकर, कमललोचन (विष्णु) अंतर्हित हुआ; तब उमा-सहित वह भव (शिव)— "विष्णु कहाँ गया, किसमें प्रविष्ट हुआ" —कहते हुए जब दसों दिशाएँ अवलोकित करते रहे, तब पुरोभाग में (सामने), ३९२ [सी.] एक उद्यानवन के मार्ग में, एक वृक्ष की छाया में, गेंद खेलनेवाली एक नवयुवती सुंदरी प्रत्यक्ष हुई। कुचकुंभों पर से अंचल के खिसकने, कवरिकाबंध (वेणीबंध) के हिलते रहने, माथे पर चिकुरजाल (लट, बाल) के उलझने, संदेहास्पद (है या नहीं, इस संदेह को उत्पन्न करनेवाली) होकर कमर के इठलाने; कपोलों पर कर्ण-कुंडलों की कांति के झलकने; नितंब के भार के कारण पाँवों के अटपटे पड़ने; दृग्दीप्ति (आँखों की ज्योति)-संघ (-समूह) के दिशाओं को ढाँक देने पर; [ते.] वामकर (बायें हाथ) से खिसकी साड़ी को थामकर; कनकनूपुर-युगल (सोने के पायजेब) के झनझनाने पर; कंकणों के झणत्कार के व्याप्त होने पर [वह सुंदरी दिखाई पड़ी]। ३९३ [व.] [उसे] देखकर, पहले ही स्त्री मे आसक्त होकर अर्धशरीरी बना हुआ पुरुष (शिव), उस कामिनी के वयोरूपगुण-विलासों के अपने को ललचाने पर, वह उसे बिना पलक मारे देखता रहा; फिर नरम बने (पिघले, आसक्त बने) हृदय में (विचार करने लगे)। ३९४ [शा.] "यह कांतारत्न पता नही किसकी है? ऐसा स्त्रीरूप पूर्व में किसी भी कल्प में नहीं देखा; निश्चय ही इस ललना

शा. ई कांताजनरत्न मंव्वरिदोको यो याडुरूपंबु मु-
न्नेकल्पंबुलयंदु गानमजुडोयितिन् सृजिपंग दा-
लेकुंटॅल्ल निजंबु वल्लभत नी लोलावति जेरगा
नेकांतुंडु गलंडो क्रीडलनु ना की यिति सिद्धिचुने ॥ 395 ॥

व अनि मरियुं जेरकुविलुतुनि कोललु मेरमोरि दरुम, नॅरबिरुदु वॅरगुपडं, दॅरव दुरिमन तुरुमु बिगिमुडि वदलि भुजमुल मॅडल नदरि चॅदरि कुरुलु नॉसलि मृगमद तिलकंपुटसलु मसल, विसविस नगु मॉगमु मॅरुंगुलु दशदिशलं बसलु गॉलुव, जिरुनगवु मॅरय, नुनु जॅमट दडंवडि पुलकलु गॉन, हृदयानंद कंदंबगु कंदकंबु करारविंदंबुनं दर्माचि, यक्कुन जेर्चि, चक्कुन हत्तिचि, चुबुकंबु मोपि, चूचुकंबुलं गदियिचि, नखंबुल मोटुचु, मॅल्लमॅल्लन गॅल्लाडु करकमलमुल गनक मणिवलयमुलु झणझणयनं, गुच कलशमुलु नॉकटि नॉकटि नॉरय, नॅडम कुडिनि दडबड, प्रम्मन नंगुर जिम्मुचु, नॅगर जिम्मि, तनकु दानॅ कॉन्नि चिन्न पन्निदंबुलु चेसिकॉनि, वड्डु नडुमु बॅडसि वडवड वडंक, नरिति नरुलु कलयंबड दिरुगुचु वॅनकुवलु गॉन, जॅवुलतॉडवुल रुचुलु कटमुल नटनमुलु सलुप, बविरि तिरिगि यॉडियुचु, नॉडिसि कॅलंकुलं जडियुचु, जडिसि जडनु वडक, वलुव नॅलवु वदलि दिगंवडं, गटिस्थलंबुनं गांचो कनकमणि किंकिणुलु मोरय, जरण कटकमुलु घल्लु घल्लुमनंग, मितिदप्पिन मोहातिरेकंबुप्पॉग,

---

का सृजन करनेवाला अज (ब्रह्मा) नहीं रहा; वह कौन-सा कांत (सुंदर पुरुष) है जो वाल्लभ्य (प्रेम) से इस लीलावती का पतित्व ग्रहण करेगा! यह क्रीडा करनेवाली सुंदरी मुझे प्राप्त होगी क्या ?" ३९५ [व.] (उस विलासिनी के गेंद खेलते देख) इक्षु-शर (मन्मथ) का वाणों के बेहद पीछा करने पर (प्रभावित करने पर), महाशूरता के आश्चर्य में पड़ जाने पर, [उस रमणी का] कसकर बँधा हुआ केशबंध (जूड़ा) के खुलकर भुजा और कधे पर हिलने पर, बिखरे चिकुरों के माथे पर के मृगमद (कस्तूरी) तिलक को बिखेर देने पर, उसके हँसते मुख की चमक के दसों दिशाओं को शोभित करने पर (मुख पर) मुस्कुराहट के दमकने पर, हलके प्रस्वेद (पसीने) के कम्पित होकर, पुलकों को उत्पन्न करने पर, हृदयानंद का का कंद (मूल) बने हुए कदुक (गेंद) को अपने करारविंद (हस्तकमल) में थामकर, उसे कभी छाती से लगाकर, कभी कपोल से सटाकर, कभी उस पर चुबुक (ठुड्डी) टेककर, कभी चूचुकों को छुआकर, और कभी उसमें नख (नाखून) चुभोकर, [इस प्रकार] धीरे-धीरे खेलने पर करकमलों के कनक-मणि-वलय (सोने के कंगन) झनझना उठते। कुच-कलश एक-दूसरे से रगड़ खाते। कभी दायें से बायें और बायें से दायें

वॅनुकॉनि युरिकि पट्टुचु, बट्टि पुडमि बडवैचि, पाटु वॅटने मिटि कॅगसिनं, गॅटक करंबुनं गरंबु दिरंवै पलुमरु नॅगय नडुचुचु, नॅगयुलॅड दिगंबडुतरिनि, नीलंपु मॅरुंगुनिग्गु सोगपग्गंबुल वललु बैचि, रा दिगिचिन पगिदि वॅनुकॉनंग, विलोकन जालंबुलु निगिडिचुचु, मगिडिचुचु, गरलाघवंबुन नॉकटि, पदि, नूरु, वेयु नेसि, नेर्पु वाटिपुचु नरुण चरणकमल रुचुल नुदयशिखरि शिखर तरणि करणि सेयुचु, मुखचंद्र चंद्रिकलु मंडलंबुलु गाविपुचु, नॅडनॅड नुरोजदुर्ग निर्गत चेलांचलंबु जक्क नॉत्तुचु, गपोलफल-कालोल घर्मजल बिंदुबृंदंबुल नखांतंबुल नोनरिपुचु, नधर बिंबारुण संभ्रांत समागत राजकीरंबुलं जोपुचु, मुखसरोज परिमळासक्त मत्तमधुपंबुल निवारिपुचु, मंदगमनाभ्यास कुतूहलायत्त मराळ युग्मंबुलकुं दलंगुचु, विलासवीक्षणानंदित मयूरमिथुनंबुलकु नॅडगलुगुचु, बॉदरिड्ल यीरंबुलकुं बॉक मलंगुचु, गरकिसलयास्वादकामुककलकंठ दंपतुलकु

को हाथ बदल (कंदुक को) उछालकर, अपने-आप कुछ शर्त बाँधकर, अपनी पतली कमर के लचक काँप उठने पर, कंठहार के उलझकर अस्त-व्यस्त हो जाने पर, उसके कर्णभूषणो की किरणो के कनपटियों पर नाचने पर, वह चक्राकार में उचकती; उचक कर चारों दिशाओं में दौड़ती; दौड़कर, बिना थके, उमड़ते अमित मोहातिरेक से गेंद का पीछा कर उसे पकड़ लेती, उस समय उसकी साड़ी अपने स्थान से खिसक पड़ती, कटि पर की कनक-मणि-मय किंकिणी और चरणों पर के कड़े बज उठते। पकड़े हुए गेंद को फिर से ज़मीन पर दे मारकर, मार खाकर गेंद के ऊपर उड़ते ही उसके साथ ही वह भी ऊपर को उछलती; नीचे गिरने के पहले ही वह उसे दोनों हाथो से फिर ऊपर उछालती, नीचे गिर रहे कंदुक पर वह अपने दीर्घापांगों (विलोकनों) का जाल ऐसा फैलाती मानो घने नीलवर्ण के लंबे धागों से बने जाल मे उसे फाँसकर नीचे खींच कर उतार रही हो। ऐसा कई बार वह करती रही। हाथों की फुर्ती से उसने, एक, दस, सौ नहीं (वरन्) सहस्रों बार गेंद खेलकर, अपना नैपुण्य प्रदर्शित किया। उसके अरुण-चरणकमलों की रश्मियाँ उदयगिरि के शिखर पर उगे तरणि (सूर्य) की छटा दिखा रही थी। उसके मुख-चन्द्र की जुन्हाई से मंडल (आवर्त) विरचित हुए। रह-रहकर उरोजदुर्ग (कुचकुंभों पर) से खिसक रहे चेलांचल को सँवारती हुई; कपोल-फलकों पर व्याप्त घर्मजल (पसीने) के बिंदुवृंद को नखांतों से गिराती हुई, अरुण अधरों को बिंबफल समझ, संभ्रांत हो आये हुए राजकीरों को उड़ाती हुई; अपने मुखसरोज के परिमल में आसक्त मत्तमधुपों को रोकती हुई; मदगमन का अभ्यास करने के कुतूहल में लग्न मरालयुग्म (हंस की जोड़ी) से बचती हुई; अपने विलास-वीक्षणों से आनंदित मयूर-मिथुन (मोरों की जोड़ी) से दूर जाती

दूरिंचुचु, दीगँ युय्यॅलल नूगुचु, माधवीमंटपंबुलॅक्कुचु, गुसुम रेणुपटलं-
बुल गुब्बळ्ळुन्नाकुचु, मकरंदस्यंद विंदुबृंदंबुत्तरिंपुच, गृतकशैलंबुल
नारोहिंपुचु, बल्लवपीठंबुलं बरिश्रमंबु पुच्चुचु, लतासौधमागंबुन
बॉडसूपुचु, नुन्नत केतकीस्तंभंबुल नॊरगुचु, बुष्पदळखचित वातायनंबुल
दॊंगि चूचुचु, गमलकांड पालिकल नालॅबिंचुचु, जंपक गेहळि मध्यंबुल
निलुवंबडुचु, गदळिकापत्र वातंबुल नॊऱयुचु परागनिर्मित सालभंजिका-
निवहंबुल नादरिंपुचु, मणिकुट्टिमंबुल सुरियुचु, जंद्रकांत वेदिकल
नॅलयुचु, रत्नपंजर शारिकानिवहंबुलकुं जदुवुलु चॅप्पुचु, गोरिनक्रियं
जूचुचु, जूचिनक्रिय मॅच्चुचु, मॅच्चिनक्रिय वॅऱगुपडुचु, वॅऱगुपडिनक्रिय
मऱचुचु, मऱवक येकांतंबगु नव्वनांतंबुन ननंतविभ्रमंबुल जगन्मोहिनियै
विहरिंपुचुन्न समयंबुन ॥ 396 ॥

आ. वालुगंटि वाडि वालारु जूपुल
शूलि धैर्यमॆल्ल गोलु पोयि
तऱलि यॆरुकलेक मऱचॆ गुणंबुल
नालि मऱचॆ निज गुणालि मऱचॆ ॥ 397 ॥

---

हुई; निकुंजों के झुरमुटों में न जाकर बाहर विहार करती हुई; अपने [कोमल] हस्त को किसलय समझ आस्वादन करने की कामना से आने वाली कलकंठ (कोयल)-दंपति (जोड़ी) को दूर उड़ाती हुई; लताओं के झूलों पर झूलती हुई; माधवी [लता के] मंडपों पर चढ़ती हुई; कुसुम-पराग-पटलों के ढूहों पर रेंगती हुई; मकरंद-स्यंद-बिंदुओं को सोखती हुई; कृतकशैलों (क्रीडाशैलों) पर चढ़ती हुई; पल्लवपीठों (पत्तों के ढेरों) पर श्रम दूर करती हुई; लतासौधों (लतागृहों) पर दीख पड़ती हुई; उन्नत केतकीस्तभों पर टेकती हुई; फूलों और पत्तों से निर्मित वातायनों (खिड़कियों) से झांकती हुई; कमलकांड की नलियों को फूंक बजाती हुई; चंपक वृक्षों की देहली के बीच खड़ी हुई; कदलिका-पत्तों (केले के पत्तों) से हवा कर लेती हुई; पुष्प-पराग की बनी पुतलियों (सालभंजिकाओं) का आदर करती हुई; मणिकुट्टिमों (मणियों से बने चबूतरों) पर इठला कर चलती हुई; चंद्रकांत शिलानिर्मित वेदिकाओं पर विहरती हुई; रत्नपंजरों में स्थित शारिकाओं को पाठ पढ़ाती हुई; चाह (अभिलाषा) से देखती हुई; देखकर प्रसन्न बनती हुई; प्रीति से ठिठकती हुई; भूली हुई-सी देखती हुई, उस एकांत वनांत में अनंत विभ्रमों के साथ वह युवती जगन्मोहिनी बन-बिहार करती रही। उस समय ३९६ [आ.] उस दीर्घनयनी (विशालाक्षी) की तीखी चितवनों से शूली (शिव) धैर्य खोकर, विचलित हुआ और अनजाने ही अपने गुण भूल गया, वह अपनी पत्नी को भूला और

व. अप्पुडु ॥ 398 ॥

आ. अँगुर वैचि पट्ट नॅडलेमि जेदप्पि, व्रालुबंति गॉनग वच्चुनॅडनु
बडति वलुव वाडि पडियें मारुतहृति, जंद्रधरुनि मनमु संचलिप ॥399॥

म. रुचिरापांगिनि वस्त्रबंधनपरन् रोमांच विभ्राजितन्
गुचभारानमितं गरद्वयपुटी गूढीकृतांगि जल-
त्कचबंधं गनि मन्मथातुरत नाकंपिचि शंभुंडु ल-
ज्ज चलिपं दन कांत सूड गदिसें जंद्रास्य केलुदम्मिकिन् ॥ 400 ॥

आ. पदमु सेरवच्चु फालाक्षु बॉडगनि, चीर वीडिपडिन सिग्गुतोड
मगुव नगुचु दरुलमाटुन डागॅनु, वेल्पुरेडु नबल वॅट बडियें ॥ 401 ॥

म. प्रबलोद्यत् करिणि गरींद्रुडु रमिपन् वच्चुलीलन् शिवुं-
"डबला ! पोकुमु पोकुवे" यनुचु डायं बारि कॅगेल दा-
गबरीबंधमु वट्टि संभ्रममुतो गौगिळ्ळ नूरार्चं नं-
त बहिः प्रक्रिय नॅट्टकेनि गदियं ददबाहु निर्मुक्तयै ॥ 402 ॥

---

अपने गणों को (अनुचरों को) भी भूला। ३९७ [व.] उस समय। ३९८ [आ.] उछाला हुआ गेंद जब नीचे आ रहा था तो पकड़ने के यत्न में उस वनिता का हाथ छूट गया और हवा का झोंका लगकर उसकी साड़ी खुलकर नीचे गिर पड़ी, इसे देख चन्द्रधर (शिव) का मन संचलित हुआ। ३९९ [म.] वह रुचिर-अपांगिनी (सुनयनी, सुंदर नेत्रवाली) को वस्त्र बाँधनेवाली को, रोमांच से शोभायमान बनी हुई [उस नारी] को, कुचभार से झुकी हुई को, अपने करद्वय-पुट (दोनों हाथों) से शरीर छिपानेवाली को, छूटे कचबंध (कबरी) वाली को, [कामिनी को] देखकर शभु कामातुरता से आकंपित होकर, लज्जा के विचलित होने पर, अपनी कांता (पार्वती) के देखते रहने पर (आँख के सामने ही) वह उस चद्रास्या (चंद्रमुखी) का हस्तकमल पकड़ने लपक पड़ा। ४०० [आ.] फालाक्ष (शिव) को चरण के [अपने पास] पहुँचते देखकर, वह तरुणी, चीर के छूटने की (विवस्त्र रहने की) लज्जा से मुस्कुराती हुई, वृक्षों की आड़ में जा छिप गई; [और] सुरनाथ (शिव) [उस] अबला के पीछे लग गया। ४०१ [म.] प्रबलता से उद्यत् होकर, करिणी (हथिनी) से रमने (संभोग करने) के निमित्त आनेवाले करीद्र (गजराज) के समान शिव— "हे अबला ! जाना मत, मत जाओ न!" कहते हुए उसके पास दौड़कर पहुँचा, और अपने अरुण हस्त से उसकी कबरी बंध (जूड़े) को पकड़कर, संभ्रम से आलिंगन किया। अंत में वह तरुणी तब बहि-प्रक्रिया से किसी प्रकार उसकी (शिव की) बाहुओं से छूट गयी। ४०२ [सी.] पीठ पर

सी. वोडि वॆन्नुन नाडु वेणीभरंबुतो जघन भारागत श्रांतितोड
मायावधूटियै मऱचि चूचुचु वाऱु विष्णु नद्भुतकर्मु वॆंट दगिलि
यीशानु मरल जयिंचॆ मरुंडन गरिणि वॆंन्चनु करि करणि दालिच
कॊंडलु नेरुलु कॊलकुलु वनमुलु दाटि शंभुंडु सनं दन्महात्मु

ते. निर्मलामोघ वीर्यंबु नेलमीद
वडिन चोटॆल्ल वॆंडियु वॆंटियय्यॆ
धरणि वीर्यंबु वड दप्पु दानॆऱिंगि
देवमाया जडत्वंबु दॊलिसॆ हरुडु ॥ 403 ॥

कं. जगदात्मकुडगु शंभुडु, मगिडॆनु हरि नॆऱिंगि तनदु महात्म्यमुनन्
विगत त्रपुडं निलचॆनु, मगुवतनंबुडिगि हरियु मगवाडय्यॆन् ॥404॥

आ. कामु गॆलुव वच्चु गालारि गावच्चु
मृत्युजयमु गलिगि मॆऱयवच्चु
नाडुवारि चूपु टंपऱ गॆलुवंग
वशमुगादु त्रिपुरवैरिकॆन ॥ 405 ॥

व. इट्लु पुरुषाकारंबु वहिंचिन हरि हरुनि किट्लनियॆ ॥ 406 ॥

खेलनेवाले (बिखरे) वेणीबंध के साथ, जघन (नितंब के)-भार से थक, श्रांत बनकर, माया-वधूटि (-स्त्री) बन, रह-रहकर पीछे घूमकर देखते चलनेवाले और अद्भुत कर्म करनेवाले उस विष्णु का पीछा करते हुए, मानो मन्मथ ने ईशान (शिव) को फिर से जीत लिया हो और वह करि (हाथी) बनकर, करिणी (हथिनी) के पीछे लगा हो, [इस प्रकार] शंभु पर्वतों, नदियों, सरोवरों और वनों को पार कर दौड़ते चले। [ते.] तब उस महात्मा का निर्मल, और अमोघ वीर्य भूमि पर जहाँ-जहाँ गिरा वहाँ वह सोना और चाँदी बन गया। अपना वीर्य जब धरती पर गिरा तब हर (शिव) अपने-आप को जानकर, उसने समझ लिया कि देवमाया के वश [उसमें यह] जड़ता आ गयी है। ४०३ [कं.] जगदात्मक शंभु अपनी महिमा के प्रभाव से हरि को जानकर वापस मुड़ा; वह त्रपा (लाज) छोड़ स्थिर खड़ा हो गया, हरि भी स्त्रीत्व छोड़ पुरुष बन गया। ४०४ [आ.] कामदेव को जीता जा सकता है, काल (यम) का अरि (विरोधी) बना जा सकता है। मृत्यु को जीत कर, प्रसिद्धि पायी जा सकती है [किंतु] स्त्रियों की चितवन रूपी बाण-परंपरा को जीतना त्रिपुरवैरी (शिव) के भी वश में नहीं है। ४०५ [व.] इस प्रकार [फिर से] पुरुषाकार पाये हरि, हर (शिव) से यों बोले : ४०६ [सी.] "हे निखिल देवोत्तम ! तुम अकेले को छोड़, (तुम्हारे अतिरिक्त) मेरी माया जान लेनेवाला

सी. निखिल देवोत्तम ! नी वोक्करुडु दक्क नॆव्वडु ना माय नॆरुगनेर्चु
मानिनियेन ना मायचे मुनुगक धृति मोहितुंडवै तॆलिसितीवु
कालरूपंबुन गालंबुतोड ना यदुनु नीमाय यधिवसिंचु
नीमाय नन्नु जयिंपनेरदु निज मकृतात्मुलकु नॆल्ल ननुपलभ्य

ते. यिपुडु नी निष्ठ पॆंपुन नॆरिंगितनुचु
सत्करिंचिन सख्यंबु चाल नॆरपि
दक्षतनय गणंबुलु दन्नु गॊलुव
भवुडु विच्चेसॆ दन निजभवनमुनकु ॥ 407 ॥

शा. पारावारमु द्रच्चुचो गिरि समुद्वाहार्थमै कच्छपा-
कारुंडैन रमेशुवर्तनमु नाकर्णिप सं-
सारांभोनिधिलो मुनुंगु कुजनुल् संश्रेयमुं बॊंदि वि-
स्तारोदार सुखंबु जॆंदुदुरु तथ्यंबितमुन् भूवरा ! ॥ 408 ॥

म. ऒंलयिन् दैत्युल नाडुरूपमुन मोहिंपिंचि पीयूषमुं
जलितापन्नुलकुन् सुरोत्तमुलकुं जक्कन् विभागिंचि नि-
र्मलरेखन् विलसिल्लु श्रीविभुनि दन्मायावधू रूपमुं
दलतुन् म्रॊक्कुदु नात्मलोन दुरित ध्वांतोग्र रूपंबुगन् ॥ 409 ॥

---

अन्य कौन है ? मानिनी बनी हुई मेरी माया में डूबे बिना, मोहित होकर भी, धैर्यपूर्वक तुम चेत गये हो; यह माया काल के रूप में, काल के साथ ही मुझमें वास करती है, किंतु यह (माया) मुझे जीत नहीं सकती, अकृतात्माओं (आत्मज्ञान-विहीनों) को यह अनुपलभ्य (उपलब्ध होने वाली नहीं) है, यह सत्य है। [ते.] तुम अपनी (आत्म)-निष्ठा के बल, इसे जान गये हो।" इस प्रकार कह कर [विष्णु ने शिव का] सत्कार किया। भव (शिव) भी विष्णु पर अपना गहरा स्नेह प्रकट कर, दक्षतनया (पार्वती) तथा [प्रमथ] गणों से सेवित होते हुए निजभवन पधारा। ४०७ [शा.] हे भूवर (राजन्) ! पारावार (क्षीरसागर) मथते समय [मदर] गिरि का वहन करने के निमित्त, कच्छप का आकार (रूप) ग्रहण करनेवाले रमेश (विष्णु) का वर्तन-व्यवहार (चरित) सुनने पर [तथा] कीर्तन करने पर संसार रूपी अंभोनिधि (समुद्र) में डूबनेवाले कुजन संश्रेय (कल्याण, मोक्ष) प्राप्त करेंगे, और विस्तार से समस्त सुख भोगेंगे, यह सब तथ्य (सत्य) है। ४०८ [म.] संतोष से दैत्यों को अपने स्त्री-रूप के द्वारा, विमोहित कर, विपत् में पड़े देवों को पीयूष (अमृत) बाँट देनेवाले, निर्मल ज्योति से शोभायमान श्रीविभु (लक्ष्मीपति) विष्णु का और उसके उस मायवधू-रूप का मन में चिंतन करते हुए मैं सिर नवाता हूँ, वह मेरे दुरित (पाप) रूपी ध्वान्त (अंधकार) को दूर करनेवाला उग्ररूप है। ४०९

## अध्यायमु—१३

व. अनि चॆप्पि शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 410 ॥

ते. नरवराधीश ! यिप्पुडु नडचुचुन्न
वाडु सप्तम मनुवु वैवस्वतुंडु
श्राद्धदेवुंडनंदगु जनवरेण्य !
पदुरु नंदनुलतनिकि व्रकटवलुलु ॥ 411 ॥

व. वारलिक्ष्वाकुंडुनु, नभगुंडुनु, धृष्टुंडुनु, शर्यातियु, नरिष्यंतुडुनु, नाभागुंडुनु, दिष्टुंडुनु, गरूशकुंडुनु, वृषध्रुंडुनु, वसुमंतुंडु ननु वारु पदुगुरु राजुलु। पुरंदरुडनवाडिंद्रुंडुनु, आदित्य मरुदश्विव वसु रुद्र संज्ञलं गलवारु देवतलुनु, गौतम, कश्यपात्रि विश्वामित्र जमदग्नि भरद्वाज वसिष्ठुलनु वारु सप्तर्षुलुनै युन्नवारु। अंदु गश्यपुन कदितिगर्भंबुन विष्णुंडु वामनरूपुंडै जनियिंचि यिंद्रावरजुंडय्यॆ। इप्पुडेडु मन्वंतरंबुलु सॆप्पंबडियॆ। रागल मन्वंतरंबुलुनु श्रीहरि पराक्रमंबुनु जॆप्पॆद। दत्तावधानुंडवै विनुमु। अनि शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 412 ॥

सी. जननाथ ! संज्ञयु छाययु ननुवारु गलरर्कुनकु विश्वकर्म तनय-
लिरुवुरु वल्लभलिटमुन्न चॆप्पिति वरग दृतीयमु बडव यनग

---

## अध्याय—१३

[व.] ऐसा कहकर शुक ने यों सुनाया : ४१० [ते.] "हे नरवराधीश! अब जो चल रहा है, वह वैवस्वत मनु [का काल] है, जो सप्तम मनु है, और [वह] श्राद्धदेव कहलाता है। हे जनवरेण्य ! उसके प्रसिद्ध [और] बलवान् दस पुत्र हैं। ४११ [व.] वे इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, अरिष्यंत, नाभाग, दिष्ट, करूशक, वृषध्रु, वसुमंत नामवाले दस राजा हैं। पुरंदर कहलानेवाला इन्द्र है; आदित्य, मरुत्, अश्वि, वसु, रुद्र संज्ञा (नाम) वाले देवता हैं; गौतम, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, सप्तर्षि बने हुए हैं; उनमें से कश्यप के अदिति के गर्भ में विष्णु ने वामनरूप धर जन्म लिया और इन्द्रावरज (इन्द का अनुज) बन गया। अब [तक] सात मन्वंतरों का हाल बताया गया। आनेवाले मन्वंतरों और उनमें श्रीहरि द्वारा होनेवाले पराक्रमों का वृत्तांत सुनाऊँगा। दत्त-अवधान से (ध्यान देकर) सुनो।" इतना कहकर शुक फिर यों बोले। ४१२ [सी.] हे जननाथ (राजा) ! इसके पहले मैंने बताया था कि विश्वकर्मा की छाया और संज्ञा नाम की दो पुत्रियाँ थी, जो अर्क (सूर्य) की पत्नियाँ बनी थीं। इनके अतिरिक्त उसके बडबा नामक एक तीसरी पत्नी भी थी। संज्ञा के यम,

संज्ञकु यमुड्डनु श्राद्धदेवुंडुनु यमुनयु बुट्टिरि हर्षमेसग
छायकु दपतियु सार्वणियुनु शनैश्चरुड्डनु गलिगिरि संवरुणुड्डु

ते. तपति नालिग गैकोनि ता वरिंचे
नश्वियुगळंबु बडबकु नवतरिंचे
वच्चु नष्टमवसुवु सार्वणिवाड्डु
तपमु सेयुचुन्नाड्डु धरणिनाथ ! ॥ 413 ॥

कं. ऒकपरि चूचिन वेंडियु, नॊकपरि चूडंगलेक युंड्डु सिरुलकुन्
नॊकनॊकनि चेट्टवेळकु, नॊकडॊकड्डु मनुंड्डु गाचियुंड्डु नरेंद्रा ! ॥ 414 ॥

व. सूर्यसावर्णि मन्वंतरंबुन ननतनि तनयुलु, निर्मोह विरजस्काद्युलु राजुलुनु, सुतपो विरजामृत प्रभुलनुवारु देवतलुनु गागलरु गालवुंडुनु, दीप्तिमंतुंडनु, बरशुरामुंड्डनु, द्रोणपुत्रुंडगु नश्वत्थामयु, गृपुड्डनु, मज्जनकुंडगु बादरायणुंडुनु, ऋष्यश्रृंगुड्डु ननुवारु सप्तर्षुलय्येदरु। वार लिप्पुड्डु दम तम योगबलंबुल निजाश्रममंडलंबुलं जरियिपुचुन्नवारु। विरोचननंदनुंडगु बलि यिंद्रुंडय्येंड्डु। अनि चेप्पि शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 415 ॥

सी. बलि मुन्नु नाकंबु बलिमिमै जेकॊन्नवामनुंडै हरि वच्चि वेड
वादत्रयंबिच्चि भगवन्निबद्धुंडै सुरमंदिरमुकंटॆ सुभगमैन

---

श्राद्धदेव, और यमुना के नामों से तीन संतानें हुईं, इससे उसका हर्ष बढ गया। छाया के तपती, सावर्णि, और शनैश्चर [नामक] तीन [सन्तानें] हुईं। [ते.] उनमें से तपती को संवरण ने भार्या के रूप में स्वीकार कर, वरण कर लिया। वडवा के अश्वि [देव]-युगल अवतरित हुए। सावर्णि आठवाँ मनु होकर आनेवाला है, हे धरणिनाथ ! वह (भूपाल) इस समय तप कर रहा है। ४१३ [कं.] हे नरेंद्र ! जो एक समय संपदा देख लेता [और उसका उपभोग करता है], वह जब दूसरे समय में देखता है तो वह संपदा उसे दिखाई नही देती; [संपदा चंचल होती है] एक के दुर्दिन के लिए दूसरा एक मनु प्रतीक्षा करता रहता है। ४१४ [व.] सूर्य-सावर्णी के मन्वंतर में उसके पुत्र निर्मोह, विरजस्क आदि राजा होंगे; सुतप, विरज, अमृत, प्रभु आदि देवता बनेंगे; गालव, दीप्तिमंत, परशुराम, द्रोणपुत्र-अश्वत्थामा, कृप, मेरा जनक वादरायण तथा ऋष्यश्रृंग सप्तर्षि बन जायेंगे; वे इस समय अपने-अपने योगवल से निज आश्रम-मंडलों (प्रदेशों) में संचार कर रहे हैं। विरोचन का नंदन (पुत्र) बलि इन्द्र बनेगा। इतना कहकर शुक [फिर] यों कहने लगा। ४१५ [सी.] पहले बलि ने बलात्कार से नाक (स्वर्ग)-लोक छीन लिया था, तब हरि ने वामन बनकर जब उससे याचना की तो उसे पादत्रय (तीन पग) भूमि देकर [बलि] भगवान से निबद्ध हुआ और स्वर्गलोक से बढ़कर प्रशस्त सुतल (पाताल)

सुतललोकंबुन सुस्थिति नुन्नाडु वॆंतलेक निट मीद वेदगुहिकि
ना सरस्वतिकि दा नट सार्वभौमुंडु ना व्रभुवै हरि नाकविभुनि

आ. बवविहीनु जेसि बलि वॆंच्चि निलुपुनु
बलियु निर्जरेंद्रु पदमु नॊंदु
निंद्रपदमु हरिकि निच्चिनकतमुन
दानफलमु चॆडदु धरणिनाथ ! ॥ 416 ॥

व. अटमीदटि कालंबुन वरुणनंदनुंडगु दक्षसावर्णि तॊम्मिदव मनुवय्येंडि। अतनि कॊडुकुलु धृतकेतु दीपकेतु प्रमुखुलु राजुलुनु, बरमरीचि गर्गादुलु निर्जरुलुनु, नद्भुतुंडनुवाडिद्रुंडुनु, द्युतिमत्प्रभृतुलगुवारलु ऋषुलु नय्येंदरु। अंदु ॥ 417 ॥

आ. दनुजहरणु डंबुधारकायुष्मंतु, -नकु जनियिंचि रक्षणंबु सेय
मूडु लोकमुलनु मोदंबुलो नेलु, नद्भुताख्य नॊप्पु नमर विभुडु ॥ 418 ॥

व. मरियु, नुपश्लोकसुतुंडगु ब्रह्मसावर्णि दशम मनुवय्येंडि। तत्पुत्रुलु भूरिषेणादुलु भूपतुलुनु, हविष्मत्प्रमुखुलु मुनुलुनु, शंभुंडनु वाडिद्रुंडुनु, विबुद्ध्यादुलु निर्जरुलु नय्येंदरु, अंदु ॥ 419 ॥

आ. विश्वसृजुनि यिंट विभुडु विषूचिकि
संभविंचु नंश सहितु विष्वक्सेनु

---

लोक में जाकर सुखस्थिति में रहा। उसे कोई कष्ट नहीं हुआ। आगे हरि वेदगुह और सरस्वती का पुत्र होकर सार्वभौम के नाम से अवतार लेने वाला है। वह प्रभु ही नाक-विभु (स्वर्गपति) को पदच्युत कर उस पद पर बलि को बिठावेगा, [आ.] इद्रपद को हरि को [दान के रूप में] देने के कारण बलि निर्जरेंद्र (इंद्र) का पद पावेगा। हे धरणिनाथ (राजा) ! दान का फल विगड (व्यर्थ) नही जायगा। ४१६ [व.] अनतर काल में वरुण का नदन (पुत्र) दक्ष-सावर्णी नौवाँ मनु बनेगा; उसके पुत्र धृतकेतु तथा दीपकेतु आदि राजा होंगे; पर मरीचि, गर्ग आदि देवता रहेंगे, अद्भुत नामक [देव] इंद्र बनेगा, द्युतिमान प्रभृति लोग (आदि) ऋषि बनेंगे। उनमे, ४१७ [आ.] दनुजहरण (विष्णु) अंबुधारा और आयुष्मान का पुत्र होकर उत्पन्न होगा और [लोक का] रक्षण करता रहेगा, उस समय अद्भुत नामी देवराज इन्द्र तीनो लोकों को संतुष्ट रखकर शासन करेगा। ४१८ [व.] अनंतर, उपश्लोक का सुत (पुत्र) ब्रह्म-सावर्णी दसवाँ मनु होगा। उसके पुत्र भूरिषेण आदि राजा बनेंगे, हविष्मान आदि प्रमुख मुनि होंगे, शंभु नामी देव इंद्र बनेगा, विबुद्धि आदि निर्जर (देवता) हो जायेंगे। उनमें, ४१९ [आ.] हे अवनिनाथ !

जॅलिमि शंभुतोड जेयु विष्वक्सेनु-
डनग जगमु गाचु नवनिनाथ ! ॥ 420 ॥

व. मरियुं, ददागमिष्यत्कालंबुन धर्मसावर्णि पदुनोकंडव मनुवय्यॆडि मनुतनूजुलु, सत्यधर्मादुलु पदुंड्रु धरणि पतुलुनु, विहंगम कामगमन निर्वाणरुचुलनुवारु सुरलुनु, वैधृतुंडनवाडिंद्रुंडु, नरुणादुलु ऋषुलुनु नय्यॆदरु। अंदु ॥ 421 ॥

आ. अंबुजात नेत्रुडा सूर्यसूनुडै, धर्मसेतु वनग दग जनिंचि
वैभवाढ्युडगुचु वैधृतुडलरंग, गरुण द्रिजगमुलनु गाव गलडु ॥422॥

व. मरियुं दद्भविष्यत्समयंबुन भद्रसावर्णि पंडॆंडव मनुवय्यॆडि। अतनि नंदनुलु देववंतुडुपदेव देवज्येष्ठादुलु वसुधाधिपतुलुनु, ऋतुधामुंडनुवाडिंद्रुंडुनु, हरितादुलु वेल्पुलुनु, दपोमूर्ति तप आग्नीध्रकादुलु ऋषुलु नय्यॆदरु। अंदु ॥ 423 ॥

आ. जलज लोचनुंडु सत्य तप स्सूनृ, -तलकु संभविंचु दनयुडगुचु
धरणि गाचु नंचित स्वधामाख्युडै, मनुवु संतसिप मानवेंद्र ! ॥424॥

व. मरियु ददेष्यत्कालंबुन नात्मवंतुंडगु देवसावर्णि पदुमूडव मनुवय्यॆडि। मनुकुमारकुलु चित्रसेन विचित्रादुलु जगतीनायकुलुः सुकर्म सुत्राम

भगवान् विश्वसृज के घर उसका और विषूची का पुत्र होकर विष्वक्सेन के नाम से अपने अंश के साथ जन्म लेगा, और शंभु से स्नेह करते हुए जग की रक्षा करेगा। ४२० [व.] और (अनंतर) आगामी (भविष्यत्)-काल में धर्म-सावर्णी ग्यारहवाँ मनु होगा। सत्य, धर्म आदि उसके दस पुत्र धरणीपति (राजा) बनेंगे। विहंगम, कामगमन, निर्वाणरुचि कहलानेवाले देवता होंगे। वैधृत कहा जानेवाला इन्द्र बनेगा तथा अरुण आदि ऋषि बन जायेंगे। उनमें ४२१ [आ.] अंबुजातनेत्र (कमलनेत्र, विष्णु) धर्मसेतु के नाम से सूर्य का पुत्र होकर जन्म लेगा, वह वैभवशाली होकर वैधृति के साथ मिलकर, तीनों लोकों का करुणापूर्वक पालन करेगा। ४२२ [व.] और (बाद के) भविष्यत्काल में भद्र-सावर्णी बारहवाँ मनु बनेगा। उसके नंदन (पुत्र) देववंत, उपदेव और देवज्येष्ठ आदि वसुधाधिपति (राजा) होंगे। ऋतुधाम इंद्र बनेगा और हरित आदि देवता होंगे तथा तपोमूर्ति, तप,आग्नीध्रक आदि लोग ऋषि बन जायेंगे। उनमें ४२३ [आ.] हे मानवेंद्र ! (राजा) जलजलोचन (कमलनयन, विष्णु) सत्यतप और सूनृता का पुत्र होकर, स्वधामा के नाम से अवतरित होगा, और मनु को संतुष्ट करते हुए धरणी (भूमि) का पालन करेगा। ४२४ [व.] उसके अनंतर काल में आत्मवान देवसावर्णी तेरहवाँ मनु बनेगा। उसके पुत्र चित्रसेन, विचित्र आदि जगत् के नायक (राजा)

संज्ञलं गलवारु बृंदारकुलुनु, दिवस्पति यनुवाडिद्रुंडुनु, निर्मोह तत्व-दर्शाद्युलु ऋषुलु नय्येदरु। अंदु ॥ 425 ॥

आ. धरणिदेव ! होत्रदयितकु बृहतिकि
योगविभुडु नाग नद्भविंचि
वनजनेत्रुडा दिवस्पति कॆंतयु
सौख्य मार्चरिंचु जगतिनाथ ! ॥ 426 ॥

व. मरियु नचट वच्चुकालंबुन निंद्रसावर्णि पदुनालगव मनुवय्येडि। मनु नंदनुलु उरुगंभीर वस्वादुलु राजुलुनु, पवित्र चाक्षुषुलनुवारु देवगणं-बुलुनु, शुचियनुवाडिद्रुंडुनु, नग्नि राहु शुचि शुक्र मागधादुलु ऋषुलु नय्येदरु। अंदु ॥ 427 ॥

ते. तनर सत्रायणुनकु वितानयंदु
भवमु नॊंदॆडु हरि बृहद्भानुडनग
विस्तरिंचु क्रियातंतु विसरमुलनु
नाकवासुलु मुदमोंद नरववेण्य ! ॥ 428 ॥

कं. जगदीश ! त्रिकालमुलनु, वॆलगडॊदु मनुप्रकारमुलु सॆप्पबडॆन्
दग बदुनलुवुरु मनुवुलु, दॆग युगमुलु वेयु नडुव दिव मजुनकगुन् ॥429॥

---

होंगे। सुकर्मा, सुत्रामा नाम वाले बृंदारक (देवता) बनेंगे। दिवस्पति कहलानेवाला इंद्र होगा। निर्मोह, तत्त्वदर्शी आदि लोग ऋषि बनेंगे। उनमे, ४२५ [आ.] हे जगतीनाथ (राजन्) ! देवहोत्र और बृहती का पुत्र होकर, वनजनेत्र (कमलनयन, विष्णु) योगविभु के नाम से जन्म लेकर, इंद्र के साथ गहरा स्नेह निभावेगा। ४२६ [व.] और आनेवाले काल में इन्द्र-सावर्णी चौदहवाँ मनु रहेगा। उसके पुत्र उरुगंभीर और वसु आदि राजा होंगे। पवित्र और चाक्षुष् कहलानेवाले देवगण होंगे। शुचि कहा जानेवाला इन्द्र बनेगा। अग्नि, राहु, शुचि, शुक्र, मागध आदि लोग ऋषि बन जायेंगे। उनमें, ४२७ [ते.] हे नरवरेण्य ! सत्रायण और [उसकी पत्नी] विताना का पुत्र होकर जन्मने वाला हरि बृहद्भानु के नाम से स्वर्गवासियों को संतोष देते हुए, जग में क्रिया-तंतु (-विधान) का विस्तार करेगा। ४२८ [कं.] हे जगदीश (राजन्) ! तीनों कालों मे प्रसिद्धि पानेवाले मनुओं का प्रकार (विवरण) [तुम्हें] बताया गया है। जब चौदह मनुओं के गुज़रने पर और जब हजार युगों का समय पूरा बीतेगा, तब ब्रह्मा का एक दिन होगा। ४२९

## अध्यायमु—१४

व. अनिन बरीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुकयोगीद्रुन किट्लनियें ॥ 430 ॥

आ. ई पदंबुलंदु नी मनुप्रमुखुल
नॆव्वरनुपुवारलेमि कतन
नधिक विभवुलैरि हरि येल जनियिंचॆ
नॆरुग बलुकु माकु निद्धचरित ! ॥ 431 ॥

व. अनिन बाराशर्य-कुमारुंडिट्लनियें ॥ 432 ॥

सी. मनुवुलु मुनुलुनु मनुसुतु लिंद्रुलु नमरुलु हरियाज्ञ नडगुवारु
यज्ञादुलंदरु हरि पौरुषाकृतुला मनुवुलु तत्सहाय शक्ति
जगमुलु नडुपुदुरॊगि नालु युगमुल कडपट गालसंग्रस्तमैन
निगमचयंबुनु निज तपोबलमुल मरल गांतुरु ऋषिवरुलु वॊटि

ते. पगिदि धर्मंबु नालुगु पादमुलनु
गलिगि वर्तिंचु मनुवुलु गमलनेत्रु
नाज्ञ दिरुगुदुरेलुदुरवनिपतुलु
जगति भागिंचि तम तम समयमुलनु ॥ 433 ॥

---

## अध्याय—१४

[व.] [यों] बताने पर, परीक्षिन्नरेंद्र ने शुकयोगीद्र से इस प्रकार कहा। ४३० [आ.] "हे परिशुद्धचरित वाले मुनि! इन मनु प्रमुखों को उन पदों पर किसने नियुक्त किया? ये लोग किस प्रकार से इतने अधिक वैभवशाली हुए? [उन कालों मे] हरि ने जन्म क्यों लिया? ये सब विषय मुझे समझाकर कहो"। ४३१ [व.] [यों] कहने (पूछने) पर पाराशर्यकुमार (शुकयोगी) यों बोले! ४३२ [सी.] "मनु, मुनि, मनुओं के पुत्र, इन्द्र तथा देवता ये सब लोग हरि के आज्ञानुवर्ती हैं, यज्ञ आदि लोग हरि का पौरुष (अंश) वाले (लेकर जन्म लेते) हैं। उनकी सहायता और शक्ति पाकर मनु लोग जग [का व्यवहार] चलाते हैं, [कृत, त्रेता आदि] चार युगों के अंत में [जग के] कालसंग्रस्त (लय) हो जाने पर ऋषि लोग अपने तपोबल से वेदों को फिर से प्राप्त करते हैं। [ते.] तदनंतर जग में धर्म फिर से चार पादों में प्रवर्तित होता है। मनु लोग कमल-नेत्र (विष्णु) की आज्ञा के अनुसार चलते हैं और अवनिपति (राजा लोग) अपने-अपने समय (प्रदेश) में जगत् का विभाजन करके शासन करते हैं। ४३३ [व.] प्राप्त (विभूति प्राप्त) लोगों को इन्द्रपद पर,

व. मरियुं ब्राप्तुलैन वारल निद्रपदंबुलनु, बहुप्रकारंबुल देवपदंबुलनु हरि प्रतिष्ठिचुचुंडु। वारलु विहित कर्मंबुल जगत्त्रयंबुनुं बरिपालितुरु। लोकंबुलु सुवृष्टुलै युंडु, अंदु ॥ 434 ॥

सी. योगीशरूपुडै योगंबु चूपुनु मौनिरूपमुन गर्मंबु दाल्चु
सर्गंबु सेय प्रजापति रूपुडै यिद्रुडै दैत्युल नेपडंचु
ज्ञानंबु नॆरिगिंचु जतुर सिद्धाकृति गालरूपमुन वाकंबु सेयु
नाना विधाकार नामरूपंबुल गर्मलोचनुलकु गान बडदु

आ. चनिन रूपमुलनु जनु रूपमुलु निक, जनग नुन्न रूपचयमु नतडु
विविधुडै यनेक वृत्ति वॆलुंगुनु, विष्णुडव्ययुंडु विमलचरित ! ॥435॥

## अध्यायमु—१५

व. अनिन भूवरुंडिट्लनिय ॥ 436 ॥

---

और बहु प्रकार के देव पदों पर हरि ही प्रतिष्ठित करता है, वे लोग विहित कर्माचरण करते हुए, जगत्त्रय का परिपालन करते हैं, इससे लोकों में अच्छी वृष्टि (वर्षा) होती रहती है। उनमें, ४३४ [सी.] हे विमल चरित वाले राजा ! अव्यय विष्णु योगीश के रूप में [जग को] योग [मार्ग] दिखाता है; मौनी के रूप में कर्म का रूप धारण करता है; प्रजापति का रूप लेकर सर्ग (सृजन) किया करता है; इन्द्र बनकर दैत्यों का औद्धत्य दबा देता है; चतुर सिद्धों के रूप में ज्ञान सिखाता है; काल के रूप में लय करता है; [अपनी माया से] नाना प्रकार के आकार, नाम और रूपों से प्रवर्तित होते हुए, वह कर्मलोचनों (केवल कर्मपर-तंत्र मानवों) को अगोचर रहता है। [आ.] भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालों में वह विविध रूपों और वृत्तियों को ग्रहण करता हुआ भासित होता रहता है"। ४३५

## अध्याय—१५

[व.] [शुक के इतना] कहने पर भूवर (राजा) ने यों कहा (पूछा) : ४३६

### वामनचरित्र प्रारंभमु

म. बलि नंभोरुहनेत्रुडेमि कोरकै पादत्रयिन् वेडें नि-
श्चलुडु बूर्णुडु लब्धकामुडु रमासपन्नुडै ता बर-
स्थलिकिन् दीनुनिमाड्कि नेल चनियेन् दप्पेमियुन् लेक नि-
ष्कलुषुन् बंधनमेल चेसेनु विनं गौतूहलंबय्येडिन् ॥ 437 ॥

व. अनिन मुनिनंदनुंडिट्लनियें ॥ 438 ॥

सी. पुरुहूतुचे नोच्चि पोयि भार्गवुलचे बलि यँट्टकेलकु ब्रतिकि वारि
चित्तंबु रा गोल्चु शिष्युडै वर्तिप वारु नातनि भक्ति वलन मेच्चि
विश्वजिद्यागंबु विधितोड जेयिप भव्य कांचन पट्टबद्ध रथमु
नर्क वाजुल बोलु हरुलु कंठीरव ध्वजमु महादिव्य धनुवु बूर्ण

ते. तूण युगळंबु गवचंबु दोलुत होम
पावकुंडिच्चें नम्लान पद्ममाल
कलुषहरुडगु तनतात करुण नोसगें
सोमसंकाश शंखंबु शुक्रु डिच्चें ॥ 439 ॥

---

### वामन-चरित्र का प्रारम्भ

[म.] "अंभोरुहनेत्र (कमलनयन) विष्णु ने बलि से किसके लिए पादत्रयी (तीन पैंड) भूमि माँगी ? [आप स्वयं] निश्चल, परिपूर्ण, लब्धकाम (जिसकी सारी अभिलाषाएँ पूरी हुई हैं), रमासंपन्न (लक्ष्मीसंपन्न) होकर भी, दीन [मनुष्य] की तरह, परस्थली (दूसरे के यहाँ) क्यों गया ? निष्कलुष (निष्पाप) बलि को, बिना किसी अपराध के [विष्णु ने] बाँध क्यों दिया ? ये सभी विषय सुनने का मुझे कुतूहल हो रहा है।" ४३७ [व.] [यों] पूछे जाने पर मुनिनंदन (शुक) ने इस प्रकार कहा : ४३८ [सी.] पुरुहूत (इंद्र) के हाथ क्षत-विक्षत होकर, बलि शुक्र के द्वारा किसी प्रकार जीवित बच कर उस (भार्गव, शुक्र) का आज्ञापालक शिष्य बनकर, सेवा करता रहा। उनके (शुक्र) उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उससे विधिपूर्वक विश्वजित् यज्ञ कराने पर [परिणाम मे] होम-पावक (अग्निदेवता) ने उसे सोने की पट्टी बँधा हुआ रथ, सूर्य के अश्वों के समकक्ष हरि (घोड़े), कंठीरव (सिंह) ध्वज, महा-दिव्य धनुष, बाणों से परिपूर्ण दो तूणीर तथा कवच प्रदान किया, [ते.] उसके दादा (प्रह्लाद) कलुषहर (निष्पाप) ने करुणापूर्वक एक अम्लान (कभी न सूखनेवाली) पद्ममाला तथा शुक्र ने सोम-संकाश (चंद्र के समान धवल) शंख दिया। ४३९ [व.] इस

व. इव्विधंबुन ॥ 440 ॥

कं. पाणियु रथियु गृपाणियु
तूणियु धन्वियुनु स्रग्वि तुरगियु देह-
त्राणियु धिक्कृत विमत-
प्राणियु मणिकनक वलय पाणियु नगुचुन् ॥ 441 ॥

म. पलु दानंबुलं दनिपि तद् भद्रोक्तुलं बोंदि पॅ-
द्दलकुन् म्रोक्कि विशिष्ट देवतल नंतर्भक्ति बूजिचि नि-
र्मलु प्रह्लादुनि जोरि नम्रशिरुडै राजद्रथारूढुडै
वॅलिगॅन् दानवभर्त शैलशिख रोद्द्वेल द्दवाग्नि प्रभन् ॥ 442 ॥

कं. दंडित मृत्यु कृतांतुलु, खडित सुर सिद्ध साध्य गंधर्वादुल्
पिंडित दिशुलमराहित, दंडाधीश्वरुलु समुलु दप्पुं गोलुवन् ॥ 443 ॥

कं. चूपुल गगनमु म्रिंगुचु, नेपुन दिवि भुवियु नाव लीवल सेयन्
रूपिपुचु दनजेंद्रुडु, प्रापिंचॅनु दिविज नगर पथमु नरेंद्रा! ॥ 444 ॥

व. इट्लु बलवंतुडगु बलि सुरेंद्रुनि साधिप समकट्टि दंडगमनंबु सेसि निडुद पयनंबुलं जनि चनि ॥ 445 ॥

---

रीति से, ४४० [कं.] [बलि] पाणी (शस्त्र से युक्त हस्त वाला) रथी, कृपाणी (कृपाण वाला), तूणी* (तूणीर वाला), धन्वी (धनु वाला), स्रग्वी (माला वाला), अश्व वाला, देहत्राणी (कवच) वाला, मणिकनक-वलय (कंकण) पाणी (हाथ वाला), विमतप्राणी (शत्रु लोगों) को धिक्कारने वाला होता हुआ ४४१ [म.] विप्रों को अनेक दानों से तृप्त कर, उनकी भद्र-उक्तियाँ (आशीर्वाद) पाकर, बड़ों के पाँव लगकर, इष्टदेवताओं को अंतर्भक्ति से पूजा कर, निर्मल प्रह्लाद को आह्वानित कर [बलि उन के समक्ष] नतमस्तक हुआ। [तब] वह दानवभर्ता (राजा बलि) सुशोभित रथ पर आरूढ़ होकर, ऐसा दीप्तिमान हुआ मानो शैलशिखर पर प्रज्वलित दवानल हो। ४४२ [कं.] [बलि की सेवा में ऐसे] दानव-दंडनाथ (सरदार) जमा हुए जो हर तरह से उसकी समता करते थे, जिन्होंने मृत्यु को जीतकर यम को दंडित किया था, सुर, सिद्ध, साध्य और गंधर्व आदि को खडित किया था, और जिन्होंने दसों दिशाओं को पिंडित किया (लोंदा बनाया) था। ४४३ [कं.] हे नरेंद्र! अपनी दृष्टियों से गगन को निगलते हुए, भूमि और आकाश को बलात् उलटते-पलटते हुए, वह दनुजेंद्र (दैत्यराज) दिविजनगर (अमरावती) के पथ पर जा पहुँचा। ४४४ [व.] इस प्रकार बलवान् बलि सुरेंद्र को साधने (वश में कर लेने) के यत्न में, [अमरावती पर] धावा बोलने के लिए

---

* जिसके पास ज्यादा घोड़े हों।

म. कनियेन् बुण्यजनौकमुन् विगतरोग स्वप्न पीडान्नखा-
दन संशोकमु बुष्प पल्लव फलोद्दाम द्रुमानीकमुन्
स्वनितोद्धूत पताकमुन् ब्रविचरद् वैमानिकानीकमुन्
घन गंगा सलिलैकमुन् मघवयुक्त श्रीकमुन् नाकमुन् ॥ 446 ॥

व. कनि, रक्कसुलरेडु बॅक्कसंबै चाल्पुगल वेल्पुल नॅलवु दरियं जॉच्चि, चॅच्चॅर मुंदटकुं जनि चनि, मुंदट नडपडक मीनमॉग्ग यिगुरु चिगुरु तलिराकु जॉपंबुन नन मॉगुडु मॉग्ग यरविरि नॅड्डविरि गुत्ति पिंदे पूप दोरगाय पंडु गॅलल तंडंबुल व्रेगु लागलेक, मूगि वोगि येकलगु प्राकुल प्रोकलकु बेटलगु पॅंदोटसुनु, तोटल गाटंबुलै निव्वटिल्लु मव्वंपु ग्रॉव्वि-रुलकुगवलु विव्वक कसि मसलु गलिकि, मुसरिकॉसरि पूनि पादुकॉनि तेनियलानि विसरु गलिगि, मसरु गविसि, क्रॉव्वि, रिम्मुकॉनि, झुम्मु झुम्मंचु जंजाटिंचु तेटिदाटुलुनु, दाटु वडक नाटुकॉनि, कूडि, जोडु वीडक, क्रॉम्मावुल कम्मनि कॉम्मल निम्मुल मुसरि, पसिमिगल किसलयंबुलु पौसगंग मेसगि, किसरुवडक कसरुवॅडि, बिट्टु रट्टडि-तनंबुल मिंचि कराळिंचु कॉयिलल मॉत्तंबुनु, मॉत्तंबुलै चित्तंबुलु

---

लंबी यात्रा करके, ४४५ [म.] [चलकर] उसने मघवयुक्त (इंद्र-समेत), श्रीक (संपत्ति का आस्पद), नाक (स्वर्ग) को देखा जो पुण्यजनों का अड्डा (स्थान) है, जो रोग, स्वप्न-पीड़ा, अन्न (आहार) खादन, संशोक (दु:ख) रहित है; जो पुष्प, पल्लव, फलों से लदे द्रुमानीक (वृक्षसमूह) से युक्त है; जो स्वनित-उद्धूत फड़फड़ानेवाली पताकाओं से युक्त है, वैमानिकानीक (देवतासंघ) के संचार से युक्त है, विशाल गंगा (वियद्गंगा) के सलिल (जल) से युक्त है। ४४६ [व.] देखकर वह राक्षसों का राजा (बलि) अत्यंत विशाल देवनगर के पास पहुँचा और शीघ्रता से आगे बढ़ने पर उसने वृक्षों से खचाखच भरे अनेक उपवन देखे; वहाँ के पेड़-पौधे कोरकों, कोंपलों, पल्लवों, कलियों, अधखिले फूलों, प्रफुल्ल पुष्पगुच्छों, बतियों, अधपके और पूरी तरह पके फलों की घौरियों (गुच्छों) आदि से लदे रहकर, भार सह न सकने के कारण झुक-झुक पड़ते थे और झूम-झूमकर एक-दूसरे से रगड़ खाते थे। उन उद्यानों में अधिक विस्तार से विकसित कोमल कुसुमों पर भिनकनेवाला मधुपवृंद, परस्पर संग छोड़े बिना, चाव से मकरंद पीकर मदमस्त हो झूमते हुए झंकार कर रहा था। झुंड के झुंड कोयल पक्षी, मिल-जुलकर, बिना संगति छोड़े, नये उगे आम की डालियों पर इकट्ठे होकर, हरित कोमल किसलय रुचि से खाकर कषाय विकार से ईषत् क्रोध में आ, कूक-कूक कर हल्ला मचा रहे थे। अनेक प्रकार के मदमत्त कीरों (तोते) के समूह मीठे फलों के लिए उतावली से दौड़कर, एक-दूसरे से झगड़ते हुए, फलों

मत्तंबुलग दत्तरंबुनं दीयनि पंड्लकु गदियंबडि, कय्यंबु सेसि, यॆसरेगि बेसंबुलु गासंबुलु गॊनि, वासिकॆक्कि, पलुवासलाडु बहुप्रकारंबुलगु कीरंबुलुनु, गोरंबुलकु सरि गडचि, मिटनंट नॆगसि, पॆट्टलं बट्टि, चीरि, यिट्टट्टु चनक नॆट्टुकॊनि, नॆलवुल व्रालुचु, निपुगल रवमुलं गलुगु कलवरंबुलुनु, कलवरंबु ललरं, दॊलंकुल कॊलंकुल कॆलंकुल गडंकलं ब्रियलनिड्कॊनि, क्रम्म, दॊम्मिचेसि, यॆलदम्मि तूडुल वाडुलगु चंचुवुलं जिचि, मॆक्कि चॊक्कि, मिक्कलि कलकलपडुचु नलवलंबुलु सेयु हंसंबुलुनु, हंसरुचि जनित विकसनमुल विकविकनगुचुं बस गलिगि, मिसमिस मॆरुचु पसिडि कॆंदम्मुलिंदिरामंदिरंबुल चॆंदंबुल नंदंबुलगु कॊलंकुलुनु, कॊलंकुल करणि दडिसि, वडवड वडंकुचु, नल्लिबिल्लुलु गॊनि, सागिन तीगॆयिड्ल गंड्ल यीरमुलं दोरमुलु सॆडि, पलुविरुल कम्मवलपुल व्रेगुनं दूरलेक योडिगिलंबडु गाड्पुलुनु, गाड्पुलवलन नॆगसि, गगनमुन विरिसि, पलुवन्नॆलं जॆन्नगु मेलुकट्टु पुट्टंबुल तॆरंगुन दट्टंबु-लैन कुसुम परागंबुलुनु, बरागंबुलगु सरागंबुलगु वागुल बंतल चॆंतल गड्डिक-जॊपंबुल लंपुलु दिनि, मंपुलु गॊनि, गुंपुलु गॊनि, नेमर्लु वॆट्टुचु नॊबुवु-गल पॊदुवुलुगदल, वाडल जाडलं बरुगुलिड्डु दूडल क्रीडल बेडुकलं

के भीतर का गूदा खाकर, कई तरह के बोल बढ़-बढ़कर बोल रहे थे। कीरों से आगे बढ़कर, आकाश को छूकर उड़नेवाले कल-हंस पक्षी, हंसियों को बुलाकर उन्हें पकड़ साथ लेकर सीधे अपने स्वस्थान पर उतर, मधुर ध्वनि में कलरव करते थे; कलरवों में पगकर वे हंस उत्साह के साथ अपनी प्रियाओं को लहराते सरोवरों पर ले जाकर, उन्हें घेर छेड़छाड़ करते; कोमल कमलनालों को अपनी पैनी चोंचों से चीरकर खाते-खाते परवश होते और कलकल ध्वनि से कोलाहल मचाते थे। और उस नगर में हंसरुचि-जनित (सूर्यरश्मि से हुए) विकसन से विहँसते हुए, सारवान, और चिकनाते हुए स्वर्णकमलों वाले, इंदिरामंदिर (लक्ष्मी-सदन) सदृश शोभित सुंदर सरोवर थे। शीतल पवन, जो सरोवर के सलिल (जल) में भीगा हो, थरथर काँपता हुआ, [चारों ओर] चक्कर लगाता हुआ, विस्तृत लतावितानों और झाड़ियों के झरोखों में फँसकर पतला पड़ जाने से, विविध कुसुमों की कमनीय गंधों का भार वहन करने में अशक्त हो मानो वहीं अटका हुआ जान पड़ता था। कुसुम पराग हवा [के झोंकों] से उड़कर, गगनतल में गहरा छाकर, रंग-बिरंगे चंदोवे के समान मनोहर लग रहा था। पराग से सराग बने (पराग-रंजित) नदी-नालों के तटवर्ती शाद्वलों (हरियालियों) में चारा खाकर वहाँ की कामधेनुएँ मस्त हो, भीड़ लगाकर जुगाली करती रहतीं; और नगर-वीथियों मे छलाँग मार क्रीडा-विनोद में लगे हुए,

गूडुकोंनि, यिळ्ळ वाकिळ्ळकुं जेरि, पौरुल कोरिकल कनुसारिक लगुचु, नमृतंबु गुरियु कामधेनुवुलुनु, गामधेनुवुलकु निलुवनीडलगुचु, नडिगिन जनमुलकु धनमुलु घनमुग बुड्कु कल्पतरुवुलुनु, गल्पतरुवुल पल्लवमंजरुल गुंजरुलकु विड्रिचि यिच्चुचु, मच्चिकल कलिमिनि मॅच्चुचु गृतकगिरुल चरुल नडरु पडतुल नडलकु गुरुवुलगु मत्तेभंबुलुनु, निभंबुल सरस नोरसिकोंनि, वरुस बरुसदनमुलेंडलि सुकरमुलगु मकरतोरणस्तंभंबुलुनु, दोरणस्तंभंबुल चेरुव निलिचि, कुचेंड्र विलुतुं-डोर वॅरिक्कि बॅडिदमुलगु नवकंपु मॅड्रुगुजिगुरुटडिदमुल तॅड्रंगुन निलुकड संपदलु गलुगु शंपल सोपुन, गरचरणादि शाखलं गल चंद्ररेखल पोडिमिनि, वाहिनिगल मोहिनी विद्यल ग्रद्दन चूपुलकुं दीपु लोदविचुचु, धर्मकर्मंबुल यशंबुल वशंबु गलिगि, यनूनंबुलगु विमानंबुलेक्कि, चच्चि वच्चिन सच्चरित्रुलकुं जॅच्चॅर नॅदुरु सनि, तूकोंनि, तोकोंनि पोवु रंभादि कुंभिकुंभकुचल कलकलंबुलुनु, गलहंस कारंडव कोक सारस बृंद सुंदर

---

अपने बछड़ों के साथ वे गायें भी, अपनी बड़ी-बड़ी खीरियाँ हिलाते हुए, दौड़कर [मालिकों के] फ़ाटकों पर पहुँचती और उन पुरजनों की कामना के अनुसार अमृत (दूध) बरसाती थी। वहाँ के कल्पतरु (वृक्ष) कामधेनुओं को खड़े होने के लिए छाया (आश्रय) तथा याचकों को मनचाहा धन प्रदान करते थे। कल्पवृक्षों के पल्लव और मंजरी को भी तोड़ कर कुंजरों (हाथियों) को देते हुए उनके मोह में पड़ संपर्क की चाह से क्रीडाचलों के तटों पर संचार करते हुए, गुरु बनकर युवतियों को गमन-विन्यास (चाल) सिखानेवाले मत्तेभों (मत्त गजों) से वह नगर शोभायमान था। गजों के पार्श्व में उनसे सटकर पंक्ति में मकर-तोरण के स्तम्भ विराजमान थे जो खुरदुरे न होकर साफ़ चिकने थे। उन तोरणस्तंभों के पार्श्व में खड़ी होकर, रम्भा आदि अप्सराएं कलकल ध्वनि से कोलाहल मचाती थीं जो— कुंभि-कुंभ-स्तनी (गज-कुंभ-समान पीन स्तनों वाली) थी, जो इक्षुधन्वा (मन्मथ) के द्वारा म्यान से, खींची हुई नवपल्लव रूपी कोमल किंतु पैनी कटारियाँ जैसी लगती थी। स्थिर शोभायुक्त शंपालता (विद्युल्लता) के समान सुघड़ थीं; करचरण (हाथ-पैर) आदि अंग (अवयव) समेत चंद्ररेखाओं के सदृश चमचमाती थीं; वाक्चतुरता और मोहिनी विद्या के बल अपनी चितवनों में मिठास घोले हुए थीं, और जो धर्म-कर्मों के मर्मज्ञ, यशस्वी और सच्चरित्रवान् मनुष्य जब मरणोपरांत सर्व-समृद्ध विमानों पर चढकर सीधे [स्वर्ग] आ पहुँचते तब झट से उनकी अगवानी को दौड़कर उन्हें बुला ले जाया करती थीं। [नगरी को चारों ओर से घेर कर] ऐसी प्रशस्त परिखा (खाई) थी जिसे देख यह भ्रम होता था कि कलहंस, कारंडव, कोक और सारस-

सुंदरियु, निंदीवरारविंद नंदर्दिदिरयु, सभंगयु, नभंगयु नगु गंग निगिकि बोगि, मिगुल दिगुलुबड बोगड्तल कॅक्किन यगड्तलुनु, नगड्तल मिन्नेटि तेटनीट नीटु लोनु पाटि सूटि चल्लुलाटल मेटि कूटुवलु गोनुचु, नेचिन खेचरकन्यका वारंबुलुनु, वारवनितासुपूजित देहळी पाटवंबुलगु गोपुर कनककवाटंबुलुनु, गवाटवेदिका घटित मणिगण किरणोदारंबुलगु निंद्रनील स्तंभ गंभीरतलुनु, गंभीर विमल कमलराग पालिका मालिकावारंबुलगु चतुर्द्वारंबुलुनु, द्वारदेशंबुल सावळ्ळं गावळ्ळुंडि, प्रोद्दुलु पोक रक्कसुल वेल्पुल कय्यंबुलु नेय्यंबुलु सेप्पिकोनु-चुन्न यस्त्र शस्त्र धारुलुनु, शूरुलुनैन महा द्वारपालक वीरुलुनु, वीररस-जलधि वेलाकारंबुलयि, शुद्ध स्फटिक बद्ध महोत्तालंबु लगु सोपान सुभगाकारंबुलुनु, प्रदीपंबुलगु महारजत वप्रंबुलुनु, वप्रोपरि वज्रकुड्य शिरोभाग चंद्रकांत तरुण हिमकर किरण मुखरंबुलगु साल शिखरंबुलुनु, शिखरस्तोम धाम निकृत्ततारकंबुलुनु, तारकाकार मणि-शिला कठोरंबु-लगुचु, मिगुल गरितयगु नगरिसिरि पेरिम गल मगल मोगमुलु पोडगानि

---

वृन्दों से सुंदर, इंदीवर (नीलकमल) और अरविंदों पर अनुरक्त भृंगावली के कारण मनोहर, बनी अखंड लहरों से भरी हुई गंगानदी आकाश तक उमड़कर कही उन खाइयों में भर न गई हो। उस परिखा (खंदक़) में आकाशगंगा का जो स्वच्छ जल भरा हुआ था, उसमें खेचर (देव) कन्याएँ, भीड़ लगाकर अपना लावण्य और रूपगर्व दिखाती हुई, [एक-दूसरी पर] छीटें मारती हुई क्रीड़ा किया करती थीं। वारवनिताओं से सपूजित देहलियों से सुदृढ़ बने हुए गोपुरों के कनक-कवाट (सोने के किवाड़); द्वारों के दोनों ओर मणियों से घट्टित चबूतरे और प्रकाश की किरणें फैलानेवाले इंद्रनील मणि-निर्मित गंभीर स्तंभ; बिमल पद्मराग-मणि-निर्मित पालिका-मालिकाओं से विभूषित चतुर्द्वार (चारों दिशाओं में बने दरवाज़े); द्वारों के बगल में स्थित सभामंडपों पर से [नगर पर] पहरा देते हुए, कालयापन के लिए देव-दानवों की मित्रता-शत्रुता पर बतकही करते रहनेवाले शस्त्रास्त्रधारी, महाशूरवीर चौकीदार (पहरेदार); वीर-रस-समुद्र की वेला (बाँध सीमा) के समान बने हुए शुद्ध-स्फटिक-बद्ध सुविशाल सोपान (सीढ़ियों)-सहित महारजत (सुवर्ण) के सुंदर आकार में दीप्तिमान परकोटे; परकोटे के ऊपर [निर्मित] वज्रकुड्य के शिरोभाग में, चंद्र की किरणों से दिल्लगी करनेवाले चंद्रकांत शिलानिर्मित प्राकार-शिखर; तारकों (नक्षत्रों) को अपनी कांति से कतरनेवाले (छिपानेवाले) शिखर-समूह [इन सबसे वह नगर शोभायमान बना हुआ था]। उस नगरी का प्राकार, जो तारकों (नक्षत्रों) के सदृश कठोर मणि-शिलाओं से निर्मित था, ऐसा मनोहर लगता था

निलुकडलकु नलुव नडिगिकोनि पडसिन पसिडि तेर वलुवल वडुवुन वेंड्गुनं दोरंबुलगु प्राकारंबुलुनु, प्राकार कांचनांचित युद्धसन्नद्ध महाखर्व गंधर्ववाहिनी पालकंबुलगु मरकताट्टालकंबुलुनु, नट्टालकोत्तुंग वज्रमय स्तंभोदंचनंबुलुनु, बरभट प्राणवंचनंबुलुनु, समुदंचनंबुलुनगु दंचनंबुलुनु, दंचनंबुल तुदलु रथंबुल यिरुसुलोरसिकोनं गोट योवलावल कावलि-दिवियल करणि रुचिरमुलगुचुन्न दिनकर हिमकर मंडलंबुलुनु, हिमकर मंडलंबु निद्दंपुटद्दंबनि मूगि, तोंगिचूचुचु, नळिक फलकमुल गुलकमुलु गोनु नलकमुलं दरिमि, तिलकमुलं देरगु परचुकोनु समयमुल वेनुक नोंदिगि, कदिसि, मुकुरमुनं ब्रतिफलितुलैन पतुलितर सतुल रतुल कनुमतुलनि, कलगि, तलगिचनि, कांतुलकु सोलयु मुगुदलकु नेकांतंबुल, गगन समुच्छेदनंबुलैन राजसौधंबुलुनु, सौधंबुल सीमल मुत्तियपु सरुलतोडि निव्वरपु गुब्बचन्नुल येन्नुलं ब्रक्कलं जुक्कल पदुपुलुंड, मंडित सौधशिखरंबुलकु श्रृंगारंबुलैन भृंगारंबुलुनु, भृंगारशयन जालक डोलिका निश्रेणिकादि विशेषरम्यंबुलैन हर्म्यंबुलुनु, हर्म्यकनक गवाक्ष रंध्र निर्गत

---

मानो वह सुनहला पर्दा हो जिसे उस पतिव्रता नगरश्री ने ब्रह्मा से माँगकर प्राप्त कर लिया जिसके सहारे उसे गौरववान् पुरुषपुंगवों का मुँह देखना न पड़े और यों अपनी पातिव्रत्य महिमा स्थिर रख सके। प्राकारों पर कांचन (सोना) और मरकत मणियों से बने अट्टालक (गुंबज) थे जहाँ युद्धसन्नद्ध, महाखर्व की संख्या में गंधर्वों की वाहिनी (सेना) रक्षण-कार्य किया करती थी। उन अट्टालकों (बुर्जों) पर उत्तुंग (ऊँचे) वज्रमय उदंचन (आच्छादन) वाले स्तंभ खड़े थे; उन पर परभटों (शत्रुवीरों) के प्राणवंचक (प्राणांतक) आच्छादनयुक्त दचन (बड़ी-बड़ी तोपें) रखी हुई थी। उन दंचनों (तोपों) के मुँह की नलियाँ रथों की धुरियों से रगड़ खानेवाली थीं। दुर्ग के इधर-उधर (दोनों पार्श्वों में) आरक्षक दीपों के समान सूर्यमंडल और चंद्रमंडल रुचिर (सुंदर) बने हुए थे। वहाँ के गगन-चुंबी राजसौध (महल) उन मुग्धा बालाओं के लिए एकांत विहार स्थान बने हुए थे जो हिमकर (चंद्र) मंडल को निर्मल दर्पण मान चाव से झाँकतीं, अपने ललाट-फलक पर आ गिरी अलकों को हटा कर तिलक सँवारने लगतीं; और जब उनके पति छिपे-छिपे पास आ पीछे खड़े होते तो उनकी परछाइँ मुकुर में देखकर उन्हें परस्त्री-संगम के इच्छुक मानकर विकलता से दूर हटकर खीज उठती थीं। उन अलंकृत सौधों पर के रखे सुवर्ण-कलश इर्द-गिर्द चमचमाते हुए तारासमूहों के साथ यों शोभायमान दीखते थे मानो मुक्ताहारों के साथ मनोहर लगनेवाले कुचकुंभ हों। शयनागारों के सोने के झरोखों, डोलियों, निश्रेणियों आदि से वहाँ के हर्म्य (भवन)

कर्पूर कुंकुमागरु धूप धूमंबुलुनु, घनंबुलु जीमूत स्तोमंबुलनि प्रेमंबुन गॉव्वुन गिव्वट्टु पव्वंबुलव्वेननि परुलु गोनि पुरुलु वन्नियल सिरुलु गोनं गुटविटप-मुलं दटवट नटिंपुचु, वलुकुलु विरिसि, किकुरुवोड्डुचुचु, वलरेनि मङ्गु-चदुवुल टीकलनं गेकलिड्ड नेमळ्ळुनु, नेमळ्ळ पुरुल नारलु नारुलगु विड्ल निनदमुलनु तलंपुल दोकलु वडसि, वीकलु मेंरसि, मूकलु गोनि, दिवि कॅगिरि, रविकि गविसिन राहुवुक्रियं दिवि दडवड्डु पडगलुनु, पडगलुनु गोड्डुगुलुनु दमकु नालंबुलकु नडियालंबुलुग दोरंवुलैन सारंवुल वीरंवुलु मॅंरसि, वॅव्वुलुल प्रव्वुनं गरुल सिरुल, सिगंबुल भंगंबुल, शरभंबुल रभसंबुल धूमकेतुवुल रीतुल वॅरि जीरिकि गोनक, शंकलुडिगि, ङ्कॅलिड्डचु, लंकॅले लॅक्ककु मिक्किलगुचु, रक्कसुल चक्कट यॅक्कटि कय्यमुल दय्यमु लॅरुंगं दिरुगु वीरभट्टुल कदंबंबुलुनु, गदंव करवाल शूलादुल मॅरुंगुलु मॅरुपुल तॅरगुल दिशल चॅरंगुलं दुरंगलिप, नेमि निनदंबुलु तुरुमुलगु नुरुमुलुग, नडमोगुळ्ळ पॅल्लुनं वर्षित रथिक मनोरथंबुलगु रथंबुल गमुलुनु, गमुलु-

---

विशेष रम्य (मनोहर) बने हुए थे। उन हर्म्यों के कनक (सुवर्ण) गवाक्ष-रध्रों से कर्पूर, कुंकुम, अगरु आदि के धूपों का धुआँ वाहर निकला आता था। उन धूम्रराशियों को जीमूत-स्तोम (मेघपटल) समझ उसे अकस्मात् प्राप्त आनंदपर्व मान उमंग में फूला हुआ मयूर-संघ अपने पखों की वर्ण-छवि (रंगों की शोभा) छिटकाते हुए, झाड़ियों में और डालियों पर थै-थै नृत्य करते हुए, मीठी वोलों से [लोगों का] जी चुराते हुए कूक रहे थे मानो वे मदन के कामशास्त्र की टीका (व्याख्या) कर रहे हों। मोरपंखो के रेशे से वनी डोरी वाले धनुषों के निनादों (टंकारों) का संकेत पाकर वहाँ की ध्वजाएँ, खुलकर, पूंछ जैसे किनारे सगर्व हिलाते हुए, आकाश में उड़कर राहु के समान रवि (सूर्य) को ढांपते हुए अंतरिक्ष में फैल जाती थी। अनगिनत वीर भटों के कदंब (समूह), अपने ऐसे डण्डों और छत्रों को लेकर जो युद्ध में अपने पराक्रम के चिह्न व्यक्त करते थे, शत्रुवल की परवाह किये विना, विजय में शंका छोड़कर गर्जन करते हुए, शार्दूलों का गर्व, हाथियों की शोभा, सिंहों का विन्यास, शरभों का रभस (आवेग) और धूमकेतुओं का विध्वस लेकर, राक्षसों को संकुल समर में असहाय बना कर, देवों के सामने अपना शौर्य प्रदर्शित करते घूमते थे। करवालों (तलवारों), शूलों आदि के समूहों की झलझलाहट विद्युत् की भाँति दिशाओं की छोरों को प्रकाशित करती थी। रथों की चक्रनेमियों का निनाद (गमगमाहट) मेघगर्जनों के सामान [सर्वत्र व्याप्त होता] था। वहाँ के रथसमूह जो चलायमान वादलों के सदृश थे, रथिकों के मनोरथ पूर्ण करते हुए वाणों की वर्षा किया करते थे। वहाँ के सुरंग वाले (रम्य वर्ण के) तुरंग (घोड़े), जिनका जमघट

**गोनि, गमनवेगमुल वलन हरिहरुल नगि, गालि बालिबड गेलिकोनि, घनंबुलगु मनंबुलं दॅगडि, नॅगडु सुरंगंबुलगु तुरंगंबुलुनु, रंगदुत्तुंग विशद मद कल करि कटतट जनित मदसलिल कणगण विगळित दशशतनयन भुज सरळ मिळित ललित निखिल दिगधिपति शुभकर कर कनक कटक घटित मणिसमुदय समुदित रेणुवर्ग दुर्गमंबुलैन निर्वंक्र मार्गंबुलुनु, मार्ग स्थलोपरि गतागत शतायुतानेक गणनातीत रोहणाचल तट विराजमानंबुलगु विमानंबुलुनु, विमान विहरमाण सुंदर सुंदरी संदोह संपादित भूरि भेरी वीणा पणव मृदंग काहळ शंखादि वादनानून गान साहित्य नृत्य विशेषंबुलुनु, विशेष रत्न संघटित श्रृंगार श्रृंगाटक वाटिका गेह देहळी प्रदीपंबुलुनु, दीपायमान मानित सभामंटप खचित रुचिर चिंता रत्नंबुलुनुं गलिगि, रत्नाकरंबुनु बोलॅ ननिमिष कौशिक वाहिनी विश्रुतंबै, श्रुतिवाक्यंबुनुं बोलॅ नकल्मष सुवर्ण प्रभूतंबै, भूतपति कंठंबुनुं बोलॅ भोगिराज**

---

लगा रहता था, अपने गमन-वेग से हरि-हरों की (सूर्य के घोड़ों की) हँसी उड़ाते, पवन (वायु) की दिल्लगी करके उसे लज्जित करते, सुदृढ़ मन के [वेग का] तिरस्कार कर अपना आधिक्य जताते थे। उस नगर के निर्वंक्र (सीधे बने) मार्ग, उत्तुंग (ऊँचे) विशद (स्वच्छ) मदकल-करि-कटतट-जनित (मत्त गजों के गंडस्थल से निकले) मदसलिल-कणगण से (मदजल की बूंदों से) सनकर फिसला देनेवाले होते थे; और सहस्र-नयन (इन्द्र) की भुजाओं से रगड़ खाकर निखिल दिक्पतियों के सुवर्ण कर-कंकणों में जड़ी मणियों से गिरी धूल के ढेरों से वे रास्ते विकट (दुर्गम) बने हुए थे। उन मार्गों के ऊपर से शतायुत (दस लाख) से भी अधिक संख्या में जानेवाले यातायात के विमान रोहणाचल (रत्नपर्वत) के तट पर केंद्रित हो विराजमान थे। उन विमानों में विहार करनेवाले सुंदर-सुंदरियों का संदोह (झुंड), भूरि-भेरी, वीणा, पणव, मृदंग, काहल, शंख आदि का वादन तथा अनून (समृद्ध) संगीत, साहित्य, नृत्य आदि विशेषता संपादित करता था। [उस नगर के] श्रृंगाटक (चौराहे), वाटिकाएँ, गेह और देहलियाँ विशेष प्रकार के रत्नदीपों से प्रदीप्त रहती थी। वहाँ का सभामंडप रुचिर (सुंदर) चिंता-मणियों से खचित होकर, दीप्त रहता था। वह नगर रत्नाकर (समुद्र) के समान अनिमिष-कौशिक-वाहिनियों[1] से विश्रुत (प्रसिद्ध) था; श्रुतिवाक्य (वेदवाक्) के समान वह नगर अकल्मष सुवर्ण-संभूत था[2];

---

१. समुद्र के अर्थ मे : अनिमिष = मछलियाँ; कौशिक-वाहिनी = कौशिक नामक नदी और अमरावती के अर्थ मे : अनिमिष = देवता लोग; कौशिक-वाहिनी = इंद्र की सेनाएँ।

२. वेदवाक्य के अर्थ में : अकल्मष = परिशुद्ध; सुवर्ण संभूतवर्णो = अर्थात् सु-वर्णों से उत्पन्न और अमरावती के अर्थ मे : शुद्ध (चोखे) सोने से निर्मित।

कांतंबै, कांताकुचंबुनुं बोलॅ सुवृत्तंबै, वृत्तजालंबुनुं बोलॅ सदा गुरु लघु नियमाभिरामंबै, रामचंद्रुनि तेजंबुनुं बोलॅ खरदूषणादि दोषाचरानुपलब्धंबै, लब्धवर्ण चरित्रंबुनुं बोलॅ विमलांतरंग द्योतमानंबै, मानधनुनि नडवडियुनुं बोलॅ सन्मार्गभाति सुंदरंबै, सुंदरोद्यानंबुनुं बोलॅ रंभांचिताशोक पुन्नागंबै, पुन्नागंबुनुं बोलॅ सरभि सुमनो बिशेषंबै, शेषाहि मस्तंबुनुं बोलॅ नुन्नत क्षमा विशारदंबै, शारद समुदयंबुनुं बोलॅ

भूतपति (शिवजी) के कठ की भाँति वह नगर भोगिराज-कांत[1] था; कांता (युवती) के कुचों के समान वह नगर सुवृत्त[2] था; सुवृत्त-जाल (छंदोवद्ध पद्य) की भाँति वह नगर सदा गुरु-लघु-नियमाभिराम[3] था; रामचन्द्र के तेज के समान वह नगर खर-दूषणादि दोषाचरों को अनुपलब्ध (अप्राप्य)[4] था; लब्धवर्ण (विद्वान् पुरुष) के चरित के समान वह नगर विमलांतरंग से द्योतमान[5] था; मानधनी (अभिमानी) के चालचलन के समान वह अमरावती नगर सन्मार्गभाति[6] से सुंदर था; सुंदर उद्यान की तरह वह अमरावती नगर रंभांचित-अशोक-पुन्नाग[7] बना हुआ था; पुन्नाग के समान वह नगर सुरभि-सुमनों से विशिष्ट[8] बना हुआ था; शेषाहि (शेषनाग) के मस्तक के समान वह नगर उन्नत-क्षमा-विशारद[9] था;

१. शिव के कंठ के विषय मे : भोगिराज = सर्पराज से; कांत = सुंदर। अमरावती के विषय मे : भोगिराज = सुखभोगी राजा से; कांत = शोभित।

२. कुचों के अर्थ मे : सुवृत्त = गोलाकर। अमरावती के अर्थ मे : सुवृत्त = उत्तम आचरण वाला।

३. छंदोवद्ध वृत्तों के विषय मे : गुरु-लघु-नियमाभिराम = गुरु, लघु मात्राओं के नियम से मनोहर। अमरावती के विषय मे : छोटे-बड़े का विचक्षण करनेवाली प्रथा या रीति।

४. रामचंद्र के अर्थ मे : रामचंद्र का पराक्रम खर और दूषण आदि दोषाचरों (राक्षसों) को अप्राप्य था। अमरावती के अर्थ में : तीव्र दूषण करना आदि दोषपूर्ण आचरण करनेवालों को कभी न मिलनेवाला था।

५. विद्वान के अर्थ में : विमलांतरंग = स्वच्छ मानस से; द्योतमान = प्रकाशित होनेवाला। नगर के अर्थ मे : विमलातरंग = मनोहर रंगस्थल से; द्योतमान = उज्ज्वल।

६. मानधनी के चालचलन के अर्थ में : सन्मार्गभाति = सन्मार्ग की कांति। नगर के अर्थ में : सन्मार्गभाति = आकाशमार्ग की कांति से शोभायमान।

७. उद्यानवन के अर्थ मे : रंभा = केले; अंचित = फबनेवाले; अशोक-पुन्नाग = अशोक और पुन्नाग नामक वृक्षों से शोभित। अमरावती के अर्थ में : रंभांचित = रंभा नामक अप्सरा द्वारा सम्मानित; अशोक-पुन्नाग = शोक-रहित पुरुषश्रेष्ठों से शोभित।

८. पुन्नाग के अर्थ मे : सुरभि-सुमनो विशेष = परिमलयुक्त पुष्पों से विशिष्ट। अमरावती के अर्थ में : सुरभि = कामधेनु; सुमनस् = देवताओं से अलंकृत।

९. शेषनाग के मस्तक के अर्थ मे : क्षमा-विशारद = भूमि का भार ढोने से प्रसिद्ध। नगर के अर्थ में : क्षमा-विशारद = क्षमा गुण से प्रसिद्ध।

धवळ जीमूत प्रकाशितंबै, सितेतराजिनदानंबुनुं बोलॅ सरस तिलोत्तमंबै, युत्तमपुरुष वचनंबुनुं बोलं ननेक सुधारस प्रवर्षंबै, वर्षादियुनुं बोलॅ नुल्लसदिंद्रगोपंबै, गोपति नूपुरंबुनुं बोलॅ विचक्षुरार्यालंकृतंबै, कृतार्थंबैन यमरावति नगरंबु चेरं जनि, कोट चुट्टुनुं बट्टु गलुग बलंबुनु जलंबुन विडियिंचि, पोंचि, मार्गंबु लॅल्ल नरिकट्टुकोनि, येमऱक युंडे। अंत ॥ 447 ॥

कं. मायरु नगवुलकुनु गनु, -मूयरु कालंबु कतन मुदियरु खलुलं
डायरु, पुण्यजनंबुल, बायरु सुरराजु वीटि प्रमदा जनमुल् ॥ 448 ॥

व. अप्पुडु ॥ 449 ॥

कं. दुर्भर दानव शंखा, -विर्भूत ध्वनुलु निंडि विबुधेंद्र वधू-
गर्भमुलु वगिलि लोपलि, यर्भकततुलावुरनुचु नाक्रोशिचॅन् ॥ 450 ॥

---

शारद-समुदय (शरत्कालीन प्रभात) के समान वह नगर धवल-जीमूत-प्रकाशित[1] था; कृष्णाजिन (काले हिरन का चर्म) के दान के समान वह नगर सरस-तिलोत्तम[2] था; उत्तम पुरुष-वचन के समान वह नगर अनेक सुधारस-प्रवर्षी[3] था; वर्षादि (वर्षाऋतु के आरम्भ) के समान वह नगर उल्लसत्-इन्द्रगोप[4] बना हुआ था; गोपति (सांड़) के डिल्ले (कूबड़) के समान वह नगर विचक्षुस् और आर्या[5] से अलंकृत था; इस प्रकार उस कृतार्थ अमरावती नगर पर पहुँच कर [दानवराजा बलि ने सेना-सहित] शत्रुभाव के साथ दुर्ग को घेरकर पड़ाव डाला, और सब मार्ग घेरकर, सजगतासे ताक में बैठा रहा। तब ४४७ [कं.] सुरराजा-इंद्र के नगर की प्रमदाएँ [दूसरी की] हँसियाँ देख कलुषित (प्रभावित) नहीं होतीं। काल (समय) की गणना करके आँख नही मूँदतीं (सोती नही); कभी बुढ़ाती नहीं, खलों (दुष्टों) के पास नहीं जातीं, और पुण्यजनों का साथ नहीं छोड़ती। ४४८ [व.] उस समय। ४४९ [कं.] दानवों के शंखों से निकली ध्वनियाँ दुर्भर हो [सर्वत्र] फैल गईं, उन से देवेंद्र की

---

१. शारद-प्रभात के अर्थ में : धवल-जीमूत-प्रकाशित = सफ़ेद बादलों से चमकनेवाला। नगर के अर्थ में = श्वेतवर्ण के इंद्र से सुशोभित।

२. कृष्णाजिन-दान के अर्थ में : सरस-तिलोत्तम = रस वाले तिलों से युक्त उत्तम दान। नगर के अर्थ में : सरस-तिलोत्तम = रसीली तिलोत्तमा नामक अप्सरा-युक्त।

३. वचन के अर्थ मे : सुधारस-प्रवर्षी = अमृत-समान माधुर्य बरसानेवाला। अमरावती के अर्थ में : अमृत की वर्षा करनेवाला।

४. वर्षादि के अर्थ में : उल्लसंत-इंद्रगोप = वीरबहूटियों से सुशोभित। नगर के संदर्भ मे : उल्लसत इंद्रगोप = इद्र से सुरक्षित संतुष्ट नगर।

५. वृषभ के डिल्ले के अर्थ में : विचक्षुस् = शिवजी, आर्या = पार्वती। नगर के अर्थ मे : विचक्षुस् = विचक्षण वाले (चतुर); आर्या = आर्य (पूज्य) जनों से।

व. अंत ॥ 451 ॥

सी. वलि वच्चि विडियुट वलभेदि वीक्षिंचि गट्टिगा गोटकु गापु वॅट्टि
देववीरुलु दानु देवतामंत्रिनि रप्पिंचि सुरवैरि राक जॅप्पि
प्रळयानलुनि भंगि मासिल्लुचुन्नाडु घोर राक्षसुलनु गूडिनाडु
मनकोडि चनि नेडु मरल वीडेतॅंचॅ ने तपंबुन वीनि किंत वच्चॅ

आ. नी दुरात्मकुनकु नॅव्वडु तोडय्यॅ, निंक वीनि गॅल्वनेदि त्रोव
येमि चेयुवार मॅक्कडि मगटिमि, यॅदुरु मोहरिप नॅव्वडोपु ॥ 452 ॥

कं. मिंगेंडु नाकाशंबुनु, वींगेंडु नमराद्रिकंटॅ वॅडवै वीडुन्
म्रिंगेंडु कालांतकु क्रिय, भंगिंचुनु मरलबडॅड वंकजगर्भुन् ॥ 453 ॥

कं. ईराडु राज्य मॅल्लनु, वोराडु रणंबु सेय वोयिति मेनिन्
राराडु दनुजु चेतनु, जारादिटमीद नेमि जाड महात्मा ! ॥ 454 ॥

व. अनिन सुरराजुनकु नाचार्युंडिट्लनियॅ ॥ 455 ॥

---

वधुओं के गर्भ विच्छिन्न हुए, और अंदर का शिशुसमूह हाहा कहकर आक्रंदन करने लगा। ४५० तब। ४५१ [सी.] बलि का आकर [नगर पर] घेरा डालना देखकर, वलभेदी (इंद्र) ने दुर्ग पर गहरा पहरा बिठाया, और देववीरों सहित देवमंत्री (बृहस्पति) को बुलवा कर सुरवैरी (बलि) के आगमन की वार्ता उसे सुनाकर [उसने यों कहा— यह बलि] प्रलयकाल के अनल (अग्नि) की भाँति बल रहा है, घोर राक्षसों को साथ ले आया है। हमसे पहले हार खाकर, यह भाग निकला था, किंतु फिर से यह चढ़ आया है; पता नहीं किस तप के प्रभाव से इसे इतना बल मिल गया [आ.] इस दुरात्मा का [मालूम नही] कौन सहायक हुआ है; अब इसे जीतने का कौन सा मार्ग (उपाय) है ? क्या करें ? यह कहाँ का पौरुष है ? कौन इसका सामना कर सकता है। ४५२ [कं.] लगता है यह आकाश को ही निगल जायगा; मेरुपर्वत से भी ऊँचा बढ़ रहा है; जैसे कालांतक (यमराज) को भी आत्मसात करने जा रहा हो; यदि भिड़ जाय तो पंकजगर्भ (ब्रह्मदेव) को भी चित कर देगा। ४५३ [कं.] न इसे समस्त राज्य सौंपा जा सकता; न इसके साथ युद्ध किया जा सकता है। यदि हम लड़ने जायेंगे तो इस दनुज के हाथ से बचकर निकल नही सकेंगे, हमें वैसा मरना नही चाहिए; हे महात्मन् ! अब हमें क्या करना होगा ? क्या मार्ग (उपाय) है ? [कृपया बताइये।]" ४५४ [व.] [ऐसा] कहने पर आचार्य ने सुरराजा (इन्द्र) से यों कहा। ४५५ [सी.] "हे देवेंद्र ! सुनो; ब्रह्मवादी भृगुप्रवरों ने इसकी प्रार्थना मान कर, यह संपदा प्रदान की है, [इस] राक्षस का सामना

सी. विनवय्य ! देवेंद्र ! वीनिकि संपद ब्रह्मवादुलु भृगुप्रवरु लथि
निच्चिरि राक्षसु नेंदिरिप वारिप, हरि यीश्वरुडु दक्क नन्यजनुलु
नीवुनु नी समुल् नीकंटे नधिकुलु जालरु राज्यंबु सालु नीकु
विडिचि पोवुट नीति विबुध निवासंबु विमतुलु नलगेंडु वेळ सूचि

ते. मरलि मरुनाडु वच्चुट मा मतंबु
विप्र बलमुन वीनिकि वृद्धि वच्चें
वारि गैकॊन निटमीद वाडि चेंडुनु
दलगु मंदाक रिपु पेरु तडववलदु ॥ 456 ॥

कं. परु गॆलुव वलयु नॊंडॆनु
सरि पोरगवलयु नॊंडॆ जावलॆ नॊंडॆन्
सरि गॆलुवु मृतियु दॊरकमि
सरसंबुग मुन्ने तॊलगि चनवलॆ नॊंडॆन् ॥ 457 ॥

व. अनिन गार्यकाल निर्दशियगु बृहस्पति वचनंबुलु विनि, कामरूपुल
दिविजुलु त्रिविष्टपंबुन् विडिचि, तम तम पॊंदुपट्लकुं जनिरि।
बलियुनुं ब्रतिभट विसर्जितयगु देवधानि नधिष्ठिंचि, जगत्त्रयंबुनुं दनवशंबु
चेसिकॊनि, विश्वविजयुंडै, पॆद्दकालंबु राज्यंबु सेयुचुंडॆ। शिष्य-

---

करना और रोकना हरि (विष्णु) तथा महेश्वर को छोड़ किसी अन्य के लिए साध्य नहीं है; तुम, तुम्हारे समान बल वाले अथवा तुमसे अधिक बल वाले कोई भी, इसके सामने ठहर नहीं सकते। अब तक तुमने जो राज किया वह पर्याप्त है, अब यह विबुध-निवास (देवनगर : अमरावती) छोड़कर जाना ही तुम्हारे लिए उचित होगा, [ते.] वही नीति [संगत] है; शत्रुओं के बुरे दिन (पतन) देखकर वापस आना मेरे मत में ठीक रहेगा। विप्रों के दिये बल से इसकी श्रीवृद्धि हुई है, उनकी परवाह न करके, आगे (भविष्य मे) [वह] विगड़ जायगा। [तुम] तब तक हट जाओ, शत्रु [से लड़ने] का नाम मत लो। ४५६ [क.] शत्रु को जीतना चाहिए अथवा बराबरी के साथ लड़ना चाहिए नहीं तो [युद्धक्षेत्र में] मर जाना चाहिए। समानता का युद्ध अथवा मृत्यु दोनों के न मिलने पर सरसता से (औचित्य के साथ) पहले ही हट जाना चाहिए। ४५७ [व.] [यों] कहने पर, कार्यों का आरंभ [शुभमुहूर्त] जतानेवाले गुरु (बृहस्पति) के वचन के अनुसार, कामरूप (इष्टानुसार रूप धरनेवाले) बनकर, दिविज त्रिविष्टप (स्वर्ग) छोड़ कर, अपने-अपने अनुकूल स्थलों पर रहने चले गये। बलि ने शत्रुओं से विसर्जित (छोड़ी हुई) राजधानी अमरावती पर अधिकार करके जगत्त्रय को अपने वश में कर, विश्वविजयी होकर, बहुत काल पर्यंत राज्य करता रहा।

वत्सलुलगु भृग्वादु लतनिचेत शताश्वमेधंबुलु सेयिंचिरि।
तत्कालंबन ॥ 458 ॥

शा. अर्थुल् वेडरु दातलुं जॆडरु सर्वारंभमुन् पंडु प्र-
त्यर्थुल् लेरु महोत्सवंबुलनु देवागारमुल् वॊल्चु पू-
र्णार्थुल् विप्रुलु वर्षमुल् गुरिय गालाहंबुलै धात्रिकिन्
सार्थंबय्यॆ वसुंधरात्व मसुरेंद्राधीशु राज्यंबुनन् ॥ 459 ॥

व. अंत ॥ 460 ॥

## अध्यायमु—१६

सी. तन तनूजुल प्रोलु दनुजुलु गॊनुटयु वेल्पु लॆल्लनु डाग वॆडलुटयुनु
भाविंचि सुरमात परितापमुनु बॊंदि वग ननाथाकृति वनरुचुंड
नायम्म पॆनिमिटियगु कश्यपब्रह्म मरि यॊकनाडु समाधि मानि
तन कुटुंबिनि युन्न धामंबुनकु नेगि नातिचे विहितार्चनमुलु वडसि

आ. वंदि व्रालि कुंदि वाडिन यिल्लालि
वदन वारिजंबु वडुवु जूचि

शिष्यवत्सल भृगु आदि ने उससे शत अश्वमेध यज्ञ करवाये। तत्काल मे (उस समय) ४५८ [शा.] उस असुरेंद्राधीश (असुरराजा बलि) के राज्य में [सर्वसमृद्धि के कारण] अर्थी (याचना करनेवाले) याचना नही करते थे, ऐसे दाता भी नहीं थे जिन्हें [दान देने के कारण धन हानि हुई हो, [लोगों के] समस्त आरंभ (यत्न) सफल होते थे, राजा के कोई प्रत्यर्थी (विरोधी) भी नहीं थे, देवागारों में (देवगृहों में) नित्य महोत्सव होते थे, विप्र (ब्राह्मण) पूर्णार्थी (पूर्ण संतुष्ट) थे, ऋतुओं के अनुकूल (विहित) वर्षा होती थी, जिसके कारण धात्री (भूमि) का वसुधरात्व (सुवर्ण धारण करनेवाला नाम) सार्थक हुआ। ४५९ [व.] अनन्तर। ४६०

## अध्याय—१६

[सी.] अपने तनूजों (पुत्रों) के नगर का दनुजों के, हस्तगत होना, सभी देवताओं का वहाँ से निकलकर, अन्यत्र छिप जाने के लिए [निकल] जाना [यह सब] जानकर, सुरमाता (अदिति) के परिताप से अनाथ के समान दुःखी होने पर उसके पति कश्यप ब्रह्मा, एक दिन समाधि छोड़, अपनी कुटुंबिनी (पत्नी) के निवास पर पहुँचा और नारी (पत्नी) से विहित अर्चनाएँ पाकर, [आ.] उस गृहिणी के दुःख से तप्त [और] कुम्हलाया हुआ

चेर दिगिचि मगुव चुबुकंबु पुणुकुचु
वारिजाक्षि येल वगचेंदनुचु ॥ 461 ॥

व. अम्महात्मुंडिट्लनियें ॥ 462 ॥

म. तॅरवा ! विप्रुलु पूर्णुले जरुगुने देवार्चनाचारमुल्
तप्पितो वेलुतुरे गृहस्थुलु सुतुल् धर्मानुसंधानुले
नॅरि नभ्यागतकोटि कन्नमिडुदे नीरंबुनुं बोयुदे
मप्लेकर्थुल दासुलन् सुजनुलन् मन्निपुदे पैदलो ! ॥ 463

आ. अन्नमैन दोयमैन द्रव्यंबैन
शाकमैन दनकु जरुगुकोलदि
नतिथिजनुल कड्डमाडक यिडरेनि
लेम ! वारु कलिगि लेनिवारु ॥ 464 ॥

व. मरियुनु ॥ 465 ॥

आ. नलत विष्णुनकुनु निखिल देवात्मुन
काननंबु शिखियु नवनिसुरुलु
वारु दनिय दनियु वनजातलोचनु-
डतडु दनिय जगमुलन्नि दनियु ॥ 466 ॥

---

मुखकमल देखा; फिर उसे पास बिठाकर, ठुड्डी पकड़, पुचकारते हुए पूछा— "हे वारिजाक्षी (कमलाक्षी) ! [तुम] दुःख क्यों कर रही हो ?" ४६१ [व.] उस महात्मा ने यों कहा। ४६२ [म.] हे सुमुखी ! क्या विप्र (ब्राह्मण) [सब प्रकार से] परिपूर्ण (संतुष्ट) हो रहते हैं न ? देवताओं की पूजा-अर्चना तथा उनके [विहित] आचार बराबर चल रहे हैं न ? क्या गृहस्थ लोग यथासमय अग्निहोत्र चला रहे हैं न ? तुम्हारे पुत्र लोग धर्म के अनुसार आचरण कर रहे है या नही ? तुम विधिपूर्वक अतिथि-अभ्यागतों को अन्न प्रदान कर रही हो या नहीं ? उन्हें [प्यास बुझाने को] पानी पिला रही हो न ? हे वनिता ! याचकों, नौकर-चाकरों तथा सज्जनों का तुम समादर कर रही हो न ? ४६३ [आ.] जो लोग अतिथियों को अपनी सुविधा (सामर्थ्य) के अनुसार, अन्न हो, जल हो, शाक हो अथवा कोई द्रव्य हो, बिना नाही किये, प्रदान नहीं करते, वे लोग, हे सुंदरी ! संपन्न (धनी) होकर भी, निर्धन ही हैं। ४६४ [व.] और। ४६५ [आ.] हे रमणी ! विष्णु के लिए, निखिल देवात्मा अग्नि और ब्राह्मण मुख के समान हैं, जब वे संतुष्ट होते है तब वनजात-लोचन (कमलनयन) भी संतुष्ट होते है, और विष्णु के तृप्त होने पर सभी जग तृप्त होते हैं। ४६६ [कं.] तुम्हारी संतान तुमसे डरती है न ?

कं. विड्डलु वॆऽतुरॆ ? नो कोऽ, -गोड्डॆवुलु सेय कॆल्ल कोडंड्रुनु मा-
रोड्डारिपक नडतुरॆ, यॆड्डमु गाकुन्नदे मृगेक्षण यिटन् ॥467॥

व. अनि पलिकिनं बतिकि सति यिट्लनियॆ ॥ 468 ॥

उ. प्रेम यॊकित लेक दिति विड्डलु विड्डल विड्डलुन् महा
भीम बलाढ्युलै तनदु विड्डल नंदऱि दोलि साहसा-
क्रामित वैरुलय्यु नमरावति नेलुचु नुन्नवारु नी-
केमनि विन्नवितु हृदयेश्वर ! मेलु दलंचि चूडवे ॥ 469 ॥

कं. अवक्काचॆल्लॆंड्रय्युनु, दयकदु ना तोडि पोरु तानुनु दितियुन्
रक्कसुलु सुरल मॊत्तग, नक्कट वलदनदु चूचु नो नो ननुचुन् ॥ 470 ॥

सी. अॆंडकन्नॆरुगनि यिंद्रुनि यिल्लालु पलुपंचलनु जालिवडियॆ नेडु
त्रिभुवन साम्राज्य विभवंबु गोल्पोयि देवेंद्रु डडवुल दिरिगॆ नेडु
कलिमि गारापु विड्डलु जयंतादुलु शबराभकुल वॆंट जनिरि नेडु
नमरुल काधारमौ नमरावति यसुरुल काटपट्टय्यॆ नेडु

आ. बलि जगमुल नॆल्ल बलियुचुनुन्नाडु, वानि गॆलुवराडु वासवुनकु
यागभागमॆल्ल नतडाहरिंचॆनु, खलुडु सुरल कॊक्क कडियु नीडु ॥471॥

---

क्या तुम्हारी सभी बहुएँ, दुष्टता छोड़ तुम्हारा विरोध किये विना ठीक बर्ताव करती है न ? हे मृगेक्षणे (मृगनयनी) ! घर पर तुम्हें कोई अड़चन तो नही हो रही है न ? ४६७ [व.] यो पूछने पर पति से सती (स्त्री) ने यो कहा : ४६८ [उ.] "हे हृदयेश्वर ! दिति के पुत्रों, और उन पुत्रों के भी पुत्रों ने लेश भी प्रेम न रखकर, अत्यंत भीम-बली वन, मेरे पुत्रों को साहस के साथ भगा कर, अपने पराक्रम से, अमरावती को हस्तगत कर लिया और वैरी वने वे शासन कर रहे हैं। मैं तुमसे क्या निवेदन करूँ ! भलाई के वारे में सोचकर देखिए। ४६९ [कं.] यद्यपि मैं और दिति [संवंध में] वड़ी वहिन और छोटी वहिनें हैं, तो भी वह दिति मेरे साथ वैर बनाये रखती, छोड़ती नही। राक्षस जव सुरों को पीटने लगते हैं तो देखकर भी वह उन्हें मना नही करती, हाय ! वह 'वाह !' 'वाह ! 'कहती रहती है। ४७० [सी.] इंद्र की गृहिणी, जिसने धूप क्या है, यह आँखों से नहीं देखा, आज वह पराये द्वार पर पड़ी तरस रही है; अपने त्रिभुवन-साम्राज्य का वैभव खोकर, देवेंद्र आज काननों में भटक रहा है; जयंत आदि संपत्ति-सौभाग्य के वरपुत्र आज शबरों के वच्चों के साथ घूम रहे हैं; अमरों (देवताओं) का प्रधान आवास अमरावती आज असुरों का अड्डा वन गया; [आ.] वलि जग में अपना वल बढ़ा रहा है; वासव (इंद्र) उसे जीत न सकेगा; याग का भाग सव वह स्वयं भोग रहा है, सुरों को वह दुष्ट एक कौर भी नहीं देता। ४७१ [कं.] तुम सारी प्रजा के

कं. प्रजलकु नॆल्लनु समुडवु, प्रजलनु गडुपार गन्न ब्रह्मवु नीवुं
ब्रजलंदु दुष्टमतुलनु, निजमुग शिक्षिप वलदॆ नीवु महात्मा ! ॥ 472 ॥

म. सुरलन् सभ्युल नार्तुलन् विरथुलन् शोकंबु वारिंचि नि-
र्जरधानिन्निलुपंग रात्रिचरुलन् शासिप सत्कार्य मे-
वॆरवेरीति घटिंचुनट्टि क्रममुन् वेवेग र्जितपवे
करुणालोक सुधाझरिं दनुपवे कल्याणसंधायका ! ॥ 473 ॥

व. अनिन, मनोवल्लभ पलुकुलाकर्णिंचि मुहूर्त मात्रंबु चिंतिंचि, विज्ञानदृष्टि नवलंबिंचि, भाविकाल कार्यंबु विचारिंचि कश्यप ब्रह्म यिट्लनियॆ ॥474॥

म. जनकुंडॆव्वडु जातुडॆव्वडु जनस्थानंबु लॆच्चोटु सं-
जननं बॆय्यदि मेनुलेकोलदि संसारबुले रूपमुल्
विनुमा यंतयु विष्णुमाय दलपन् वेरेमियुन्लेदु मो-
ह निबंधंबु निधान मित्तटिकि जाया ! विन्न बो नेटिकिन् ॥ 475 ॥

व. अगुनेननुं गालोचित कार्यंबु यॆव्वॆद ॥ 476 ॥

म. भगवंतुं बरमुन् जनार्दनु गृपापारीणु सर्वात्मकुन्
जगदीशुन् हरि सेव सेयु मतडुन् संतुष्टिनिं बॊंदि नी

---

लिए समान हो; प्रजा को ममता से जन्म देनेवाले ब्रह्मा हो तुम; हे महात्मा ! प्रजा मे जो दुष्ट बुद्धि वाले होगे उन्हें दंड देना वास्तव में तुम्हारा ही काम है न ? ४७२ [म.] देवों को, जो सज्जन, दुःखी तथा निस्सहाय हैं, [उनका] शोक दूर कर, [उन्हें] अमरावती में पुनः प्रतिष्ठित करना और रात्रिचरों (राक्षसों) को शासित (दंडित) करना तुम्हारे लिए सत्कार्य होगा। किस प्रकार से वह सिद्ध होगा, वह क्रम शीघ्र सोच निकालो। हे कल्याण-संधायक ! (हितकारी) कृपादृष्टि की अमृत-धारा बहाकर उन्हें तृप्त करो।' ४७३ [व.] इस प्रकार मनोवल्लभा [प्रिय पत्नी— अदिति) के कहे वचन सुनकर, कश्यप ब्रह्मा एक मुहूर्त मात्र सोचते रहे, फिर विज्ञान-दृष्टि के अवलंबन से भाविकाल (भविष्य) के कार्य पर विचार करके यों बोले : ४७४ [म.] "हे सती ! [इस जग में] जनक कौन है ? जात (उत्पन्न, पुत्र) कौन है ? जन्म लेने की स्थितियाँ कौन सी हैं ? उत्पन्न होना क्या ? इन शरीरों की हस्ती ही क्या है ? इन संसारों का क्या स्वरूप है ? सुनो, सोचने पर [जान पड़ता है] यह सब विष्णु की माया है; अन्य कुछ भी नहीं। हे जाये (पत्नी) ! इस सबका निधान (आश्रय) मोह का बंधन है। इसमें फँसकर, अधीर न होना चाहिए। ४७५ [व.] तब भी मैं तुम्हें समयोचित कार्य बताऊँगा। ४७६ [म.] तुम हरि की सेवा करो जो परम है, भगवान् है, और जनार्दन,

कगु निष्टार्थमु लॅल्ल निच्चु निखिलार्थावाप्ति चेकूरॅडिन्
भगवत्सेवल बॉंदरावॅ बहु सौख्यंबुलुं बेयसी ! ॥ 477 ॥

व. अनिन गृहस्थुनकु गृहिणि यिट्लनियॅ ॥ 478 ॥

कं. नारायणु बरमेश्वरु, नेरीति दलंतु मंत्र मॅय्यदि विहिता-
चारंबु लेप्रकारमु, लाराधनकाल मॅद्दि यानति यीवे ॥ 479 ॥

व. अनिनं गश्यप प्रजापति सतिकि बयोभक्षणंबनु व्रतं बुपदेशिंचि, तत्कालंबुनु, दन्मंत्रंबुनु, दद्विधानंबुनु, बदुपवास दान भोजन प्रकारंबुलु नॅऱिगिंचॅनु ।

## अध्यायमु—१७

व. अदितियुनु, फाल्गुणमासंबुन शुक्लपक्षंबुन प्रथमदिवसंबुनं बॉरकॉनि पंड्रॅंडु दिनंबुलु हरिसमर्पणंबुग व्रतंबु सेसि, व्रतांतंबुन नियतयै युन्न यॅड, जतुर्बाहुंडुनु, पीतवासुंडुनु, शंख चक्र गदा धरुंडुनुनै, नेत्रंबुल कगोचरुंडैन नारायण देवुंडु प्रत्यक्षंबैनं गनुंगॉनि ॥ 480 ॥

---

कृपापारीण, सर्वात्मक, जगदीश है; जब वह संतुष्ट होगा तुम्हें समस्त इष्टार्थ (मन-चाहा-फल) देगा; तुम्हें निखिलार्थ-प्राप्ति होगी; हे प्रेयसी ! भगवान् की सेवा के द्वारा अतुल सौभाग्य क्यों नहीं प्राप्त करती ?" ४७७
[व.] यों कहने पर गृहस्थ से गृहिणी ने इस तरह कहा : ४७८
[कं.] "परमेश्वर, नारायण का मैं किस प्रकार ध्यान करूँ ? मंत्र कौन सा है ? उसके लिए विहित आचार किस प्रकार के हैं ? आराधना का समय कौन सा है ? इन सब बातों का [कृपया] आदेश दो" । ४७९
[व.] [यों] पूछने पर, कश्यप प्रजापति ने अपनी सती (पत्नी) को पयोभक्षण नामक व्रत का उपदेश दिया; और उससे [संबंधित] समय, मंत्र, विधान, उपवास, दान, भोजन आदि सब प्रकार (की रीतियाँ) समझाईं ।

## अध्याय—१७

[व.] अदिति ने फाल्गुण मास के शुक्लपक्ष के प्रथम दिन से लेकर बारह दिन तक हरि को समर्पण करते हुए, व्रत साधा; व्रत के अंत में नियत रीति के अनुसार जब वह प्रतीक्षा में रही तो (चार हाथ वाले) पीतवसन और शंख, चक्र, गदा-धारी तथा नेत्रों को अगोचर रहनेवाला नारायण देव [उसके सामने] प्रत्यक्ष हुआ तो उसे देखकर, ४८० [कं.] [अदिति

कं. कन्नुल संतोषाश्रुलु, चन्नुलपै बडय बुलक जालमु लॆसगन्
सन्नतुलुनु सन्नुतुलुनु, नुन्नतरुचि जेसि निटल युक्तांजलियै ॥ 481 ॥

कं. चूपुल श्रीपति रूपमु, नापोवक त्रावि त्रावि हर्षोद्धतयै
वापुच्चि मंद मधुरालापंबुल, बॊगडॆ नदिति लक्ष्मीनाथुन् ॥ 482 ॥

सी. यज्ञेश ! विश्वंभराच्युत ! श्रवण मंगळ नामधेय ! लोकस्वरूप !
यापन्न भक्तजनार्ति विखंडना ! दीनलोकाधारा ! तीर्थपाद !
विश्वोद्भव स्थिति विलयकारणभूत ! संततानंद शश्वद्विलास !
यायुवु देहंबु ननुपम लक्ष्मियु वसुधयु दिवमु द्रिवर्गमुलुनु

ते. वैदिक ज्ञानयुक्तियु वैरिजयमु
निन्नु गॊलुवनि नरुलकु नॆट्टय गलदॆ
विनुतमंदार ! गुणहार ! वेदसार !
प्रणतवत्सल ! पद्माक्ष ! परमपुरुष ! ॥ 483 ॥

आ. असुरवरुलु सुरल नदरिंचि बॆदरिंचि, नाक मेलुचुन्न नाटनुंडि
कन्नकडुपु गान कंट गूरुकु रादु, गडुपु पॊक्कु मान्पि काववय्य ॥ 484 ॥

के] नेत्रों से संतोष (आनन्द) के आँसू स्तनों पर गिरे, [शरीर पर] पुलक-जाल फैल गया, उसने अत्यंत आसक्ति से सन्नतियाँ (नमस्कार) और सन्नुतियाँ (स्तोत्र) अर्पण की, फिर माथे पर अंजलि जोड़ कर : ४८१ [कं.] श्री पति (विष्णु) का रूप नेत्रों द्वारा पी-पीकर अघायी नहीं; हर्षोद्धत होकर अदिति ने मुँह खोल मंद, मधुर आलापों से लक्ष्मीनाथ की स्तुति गायी। ४८२ [सी.] हे यज्ञेश ! विश्वंभर ! अच्युत ! श्रवण-मंगल-नामधेय (कर्ण-मधुर नाम) वाले ! लोकस्वरूप वाले ! आपन्न (विपद्-ग्रस्त) भक्तजनों की आर्ति (बाधा) खडित करनेवाले ! दीनलोकाधार, तीर्थपाद ! विश्व के उद्भव, स्थिति तथा विलय (नाश) के कारणभूत देव ! संतत-आनंदस्वरूप ! शश्वद्विलास वाले ! तुम्हारी सेवा जो नर नहीं करते, उन्हें, आयु, देह [पुष्टि], अनुपम लक्ष्मी (संपत्ति), वसुधा (इहलोक) और दिव (परलोक), त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम), [ते.] वैदिक-ज्ञान-बोध, शत्रुओं पर विजय —[ये सब] कैसे प्राप्त होंगे (प्राप्त नही होंगे)। हे विनुत-मंदार (भक्तों के लिए कल्पवृक्ष) ! गुण-हार ! वेदसार ! प्रणतवत्सल (विनीतों पर दया करनेवाले) ! हे पद्माक्ष ! हे परमपुरुष ! ४८३ [आ.] सुरों (देवों) को डरा-धमकाकर जिस दिन से असुर लोग स्वर्ग पर शासन करने लगे तब से, जननेवाली (माता) होने के कारण मेरे पलक नहीं लगते; हे स्वामी ! मेरी कोख की जलन मिटा कर रक्षा करो। ४८४ [व.] यह सुनकर, आश्रितों के कामधेनु (सब

व. अनिन विनि. दरहसितवदनुंडयि, याश्रित कामधेनुवैन यप्परमेश्वरुं-
डिट्लनियॆ ॥ 485 ॥

शा. नी कोडंडु नु नी कुमारवरुलुन् नो नायुडुन् नीवु सं-
श्लोकिपन् सतुलुन् वतुल् मिगुल सम्मोदिप रात्रिचरुल्
शोकिपन् भवदीय गर्भमुन देजोमूर्ति जन्मिचॆदन्
नाकुन् वेडुक पुट्टु नी सुतुडनै वर्तिचि वर्तिपगान् ॥ 486 ॥

म. वलिमिन् दत्युल जंपरादु विनयोपायंबुलं गानि सं-
चलनं बॊंदकु नेनु नी नियतिकिन् सद्भक्तिकिन् मॆच्चितिन्
वलिविद्वेषियु ना निलिपगणमुन् बोलोमियुन् मॆच्च वॆं-
त्युल राज्यंबु हरितु निद्रुनिकि नित्तुन् दुःखमिकेटिकिन् ॥ 487 ॥

कं. नी रमणुनि सेविपुमु, ना रूपमु मानसिचि ननिनी गर्भा-
गारंबु वच्चि चॊच्चॆद, गारामुन वॆंपवम्म करुणन् नन्नुन् ॥ 488 ॥

कं. एलितु दिवमु सुरलनु, वालितु महेंद्रयुवति भाग्यश्रीलन्
दूलितु दानवुल नि, -र्मूलितु रिपु प्रियांगमुल भूषणमुल् ॥ 489 ॥

व. अनि यिट्लु भक्तजन परतंत्रुंडगु पुराणपुरुषुंडानतिच्चि, तिरोहितुंडय्यॆ।

---

कुछ देनेवाले) उस परमेश्वर ने दरहसित-वदन (हँसमुख वाला) हो यों कहा : ४८५ [शा.] "तुम्हारा पुत्र बनकर रहने और वर्तन करने का मुझे कुतूहल हो रहा है. [अतः] मैं तुम्हारे गर्भ मे तेजोमूर्ति होकर जन्म लूंगा, जिससे तुम्हारे पुत्र और पुत्र-वधुएँ, तुम्हारे पति और तुम संतोष प्राप्त करेंगे, पति-पत्नी सब आनंदित होगे और रात्रिचर (राक्षस) शोक प्राप्त करेंगे। ४८६ [म.] बलप्रयोग से इन दैत्यों को मारा नहीं जा सकता, विनयोपायों से ही यह साध्य है। तुम व्याकुल मत होओ। तुम्हारी नियति (व्रत-नियम), और सद्भक्ति से मैं प्रसन्न हुआ, मैं दैत्यों के हाथ से राज्य हरण कर इन्द्र को दूंगा जिससे बलि का शत्रु (इन्द्र), [उसकी पत्नी] पोलोमी (शचीदेवी) और देवगण संतुष्ट होगे। तुम्हें अब दुःख नही करना है (दुःख मत करो)। ४८७ [कं.] मेरा रूप मन में रखकर, तुम अपने रमण (पति) की सेवा करो, मैं क्रम से तुम्हारे गर्भ में प्रवेश करूंगा; करुणापूर्वक तुम मेरा पालन-पोषण, लाड़-प्यार से करो। ४८८ [कं.] देवताओं द्वारा स्वर्ग का शासन कराऊँगा, इन्द्र की पत्नी को सौभाग्य और संपत्ति से लालित करूंगा, दानवों को हटा दूंगा, शत्रु की प्रियाओं (स्त्रियों) के अंगभूषण (गहनों) का निर्मूलन कर दूंगा।" ४८९ [व.] इस प्रकार भक्तजन-परतंत्र और पुराण-पुरुष विष्णु आज्ञा देकर तिरोहित (अंतर्धान) हुआ। अनंतर अदिति कृतकृत्य

अय्यदितियु, गृतकृत्ययै संतोषंबुन दन मनोवल्लभुंडगु कश्यपु नाश्रयिंचि, सेविंपुचुंडे। अंत नोक्क दिनंबुन ॥ 490 ॥

आ. घन समाधिनुंडि कश्यपु डच्युतु
नंश मात्म नोलय नदितियंदु
दनदु वीर्य मधिकतरमु सेचें नु गालि
शिखिनि दारुवंदु जेर्चिनट्लु ॥ 491 ॥

व. इट्लु गश्यप चिरतर तपस्संभृत वीर्यप्रतिष्ठित गर्भयै, सुरल तल्लि युल्लंबुन नुल्लसिल्लुचुंडे। अंत ॥ 492 ॥

कं. चलचलनै पिदपिदनै, गललंबै करुडुगट्टि गळनाळमुतो
दल येर्पडि गर्भंबै, नेल मसलं जोरेंचिवर्क नेलतकु नधिपा ! ॥ 493 ॥

कं. नेलतकु चूलै नेल रें, ब्नेलले मरि मूडु नालमु नेललै वरुसन्
नेललंतकंत कॆक्कग, नेललुनु डग्गरियें नसुर निर्मूलतकुन् ॥ 494 ॥

कं. महिततर मेघमाला, -पिहितायुत चंडभानु बिंबप्रभतो
विहितांगंबुल गश्यपु, गृहिणीगर्भमुन शिशुवु ग्रीडिंचें नृपा ! ॥ 495 ॥

---

(सफल मनोरथवाली) हो, संतोष से अपने मनोवल्लभ (प्रियपति) कश्यप का अनुनयपूर्वक सेवा करती रही। तब एक दिन ४९० [आ.] घन (महान्) समाधि में रहते हुए कश्यप की आत्मा मे अच्युत (विष्णु) का अंश प्रविष्ट हुआ; उसने अदिति में अपना वीर्य अधिकता से स्थापित किया जिस रीति से वायु दारु (लकड़ी) मे शिखि (आग) को रख देता है। ४९१ [व.] इस प्रकार कश्यप की चिरतर (चिरकालीन) तपस्या में संभृत (निहित, संपादित) वीर्य को अपने गर्भ में प्रतिष्ठित पाकर सुरमाता (अदिति) मन में उल्लसित होती रही। अनंतर। ४९२ [कं.] [वह गर्भस्थ वीर्य] द्रवरूप मे हो, फिर जरायु (झिल्ली) बन, कीचड़ होते हुए लौदा बन गया। [अनंतर] गाढ़ा होकर पिंड बन गया। अनंतर कठनाल के साथ सिर निर्मित हुआ। हे राजन् ! यों उस रमणी का महीना टल गया, चीर तंग होकर (मासिक-धर्म टलकर), वह गर्भवती बन गयी। ४९३ [कं.] उस रमणी को गर्भ रहते, एक, एक से दो, दो से तीन, तीन से चार —क्रमशः मास बीतते गये। जैसे-जैसे गर्भ धारण के महीने बीतते गये वैसे-वैसे असुरों का निर्मूलन होने के महीने नजदीक आते गये। ४९४ [कं.] हे नृप (राजन्) ! हेततर (बड़ी से बड़ी) मेघमाला से छिपे हुए दस हजार चंड भानु बिंबों की प्रभा (कांति) के साथ कश्यप की गृहिणी के गर्भ में शिशु विहित अंगो (अवयवों) को लेकर क्रीड़ा करने लगा। ४९५ [कं.] अपने पेट के एक कोने में जगों

कं. तनकड्डुपुन नॊकवॆरवुन
गॊनकॊनि जगमुलनु निमुड्डकॊनियॆडि मुदुकं-
डनिमिषुल जननि कड्डुपुन
दनुगति कड्डु नडगि महगि तनरॆं वॆडगं ॥ 496 ॥

व. अंत नक्कांतातिलकंबु क्रमक्रमंबुन ॥ 497 ॥

म. निलिपॆन् रॆप्पल बृंदिमन् विशदिमन् नेत्रंबुलं जूचुकं-
बुल नाकाळिम मेखलन् द्रढिम नॆम्मोमुन् सुधापांडिमन्
वलिमि जन्नुल श्रोणिपाळि गरिमन् मध्यंबुनन् बृंहिमन्
ललितात्मन् लघिमन् महामहिम मेनन् गर्भदुर्वारयं ॥ 498 ॥

कं. पॆट्टुदुरु नुदुट भूतिनि, बॊट्टिटदुरु मेन बट्टु बुट्टपु दोयिन्
वॆट्टुदुरु वेल्पुटम्मकु, गट्टुदुरु सुरक्ष पञति गर्भंबुनकुन् ॥ 499 ॥

व. इ व्विधंबुन ॥ 500 ॥

ते. विश्वगर्भुंडु तन गर्भविवरमंदु
बूट पूटकु बूर्णुडै पॊटकरिप
बॆक जूलालितनमुन वेल्पु पॆद्द
पॊलति कंतट नीळ्ळाडु प्रॊद्दु लय्यॆ ॥ 501 ॥

व. तदनंतरंबुनं जतुराननुं डरुगुदेंचि, यदिति गर्भपरिभ्रम विभ्रमुंडगु न-
प्परमेश्वरु नुद्देशिंचि यिट्लनि स्तुतियिचॆं ॥ 502 ॥

को यत्नपूर्वक समाकर रखनेवाला वृद्ध पुरुष (विष्णु) अनिमिषों (देवों) की जननी (अदिति) के गर्भ में शिशु के रूप में दबकर, शोभित होता रहा। ४९६ [व.] तब वह कांतातिलक (श्रेष्ठ स्त्री) क्रमशः ४९७ [म.] गर्भ के बढ़ जाने पर अपने महिमान्वित शरीर पर, लालित्य और लघिमा (कृशता) दिखाई पड़ने लगी। उसकी पलकों पर बृंदिमा (मांद्य), नेत्रों में वैशद्य (स्वच्छता), चूचुकों पर गहरी कालिमा, मेखला, (करधनी, कमर) में दृढ़ता, मुखमंडल पर पांडुवर्ण, स्तनों में बल (काठिन्य), श्रोणिपालि (नितंब-प्रदेश) में विशालता, कटिप्रदेश में स्थौल्य (स्थूलता) का आधिक्य दिखायी दिया। ४९८ [कं.] [लोग] उस देवमाता के माथे पर भस्म का तिलक लगाते, शरीर पर पटोरी (रेशमी साड़ी) की जोड़ी पहनाते और उसके गर्भ पर सुरक्षा का तावीज़ बाँधते। ४९९ [व.] इस प्रकार। ५०० [ते.] जब विश्वगर्भ (विश्व को पेट में धरनेवाला) विष्णु अपने गर्भ-विवर (कोख) में दिन पर दिन बढ़कर पूर्ण [शिशु] बन गया और जब अपने गर्भ-धारण की अवधि परिपूर्ण हो गयी तो तब ज्येष्ठ-देव-माता [अदिति] के प्रसव के दिन आ पहुँचे। ५०१ [व.] अनंतर

सी. त्रिभुवनमयरूप ! देव ! त्रिविक्रम ! पृथुलात्म ! शिपिविष्ट ! पृश्निगर्भ !
प्रीतत्रिनाभ ! त्रिपृष्ठ जगंबुलकाद्यंत मध्यंबु लरय नीव
जंगम स्थावर जननादि हेतुवु नीव कालंबवै निखिल मात्म
लोपल धरियिंतु लोनि जंतुल नॅल्ल स्रोतंबु लोगोनु सुंदरतनु

आ. ब्रह्मलकु नॅल्ल संभवभवन मीव
दिवमुनकु बासि वुर्दश दिक्कुलेक
शोकवार्धि मुनिगिन सुरल कॅल्ल
देल नाधारमगुचुन्न तॅप्प वीव ।। 503 ।।

कं. विच्चेयु मदितिगर्भमु, चॅच्चॅर वॅलुवडु महात्म ! चिरकालंबुन्
विच्चलविडिलेकमरुलु मुच्चट पडियुन्नवारु मुदमंदिपन् ।।504।।

व. अनि यिट्लु कमलसंभवुंडु विनुति सेय नय्यवसरंबुन ।। 505 ।।

---

चतुरानन (चार मुख वाला, ब्रह्मदेव) वहाँ पहुँचकर अदिति के गर्भ में परिभ्रमण करने वाले विभ्रांत परमेश्वर को लक्ष्य कर उसकी यों स्तुति की : ५०२ [सी.] "हे त्रिभुवनमय रूप वाले (तीनों लोकों में भरकर निखायी देनेवाले) ! हे देव ! हे त्रिविक्रम (तीनों लोकों को लाँघने वाले) ! पृथुलात्मा (विस्तृत आत्मा वाले) ! हे शिपिविष्ट (प्राणियों में प्रविष्ट हो रहनेवाले) ! हे पृश्निगर्भ (अदिति का पूर्व-जन्म में 'पृश्नि' नाम था, अतः उसके गर्भ अर्थात् पुत्र) ! प्रीतत्रिनाभ (तीनों लोकों को प्रीति से नाभि में धरनेवाले) ! त्रिपृष्ठ (तीनों लोकों के पीछे रहनेवाले) ! सोचने पर, जगों के लिए आदि, मध्य और अंत तुम्ही हो; स्थावर और जंगम (चराचर) [संसार] की उत्पत्ति का कारण तुम्हीं हो; काल (मृत्यु) रूप बनकर समस्त को तुम अपने अंदर रख लेते हो; निखिल जंतुओं को अपने भीतर खींच लेते हो; तुम सुंदर-तनु (शरीर)-धारी हो; [आ.] सब ब्रह्म देवों के तुम उत्पत्तिस्थान हो; स्वर्ग छोड़, दुर्दशा में पड़, अनाथ हो, शोक-वार्धि (सागर) में डूबे हुए सुरों का उद्धार करनेवाली आधारभूत नाव तुम्हीं हो। ५०३ [क] हे महात्मा ! अदिति का गर्भ छोड़ शीघ्र बाहर पधारो, अमर (देव) गण स्वतंत्रता खोकर तुम पर आशा रख चिरकाल से पड़े हुए हैं, उन्हें संतोष दिलाओ। ५०४ [व.] इस प्रकार कमल-संभव ब्रह्मा ने जब स्तुति की तब। ५०५

## अध्यायमु—१८

### वामनमूर्त्याविर्भावमु

म. रवि मध्याह्नमुनं जरिप ग्रह तारा चंद्र बद्ध स्थितिन्
श्रवण द्वादशिनाडु श्रोण नभिजित्संज्ञात लग्नंबुनन्
भुवनाधीशुडु पुट्टॆ वामनगति बुण्य व्रतोपेतकुन्
दिविजाधीश्वरु मातकुं बरम पातिव्रत्य विख्यातकुन् ॥ 506 ॥

व. मरियु नद्देवुंडु, शंख चक्र गदा कमलकलित चतुर्भुजुंडुनु, पिशंगवर्ण-वस्त्रुंडुनु, मकर कुंडल मंडित गंडभागुंडुनु, श्रीवत्स वक्षुंडुनु, निरंतर श्रीविराजित रोलंकदंबालिंचित वनमालिका परिष्कृतुंडुनु, गनककंकण कांचीवलयांगद नूपुरालंकृतुंडुनु, गमनीय कंठ कौस्तुभाभरणुंडु, निखिलजन मनोहरुंडुनुनै यवतरिंचिन समयंबुन ॥ 507 ॥

शा. चिंतं बासिरि यक्ष तार्क्ष्य सुमनस्सिद्धोरगाधीश्वरुल्
संतोषिंचिरि साध्य चरण मुनीश ब्रह्म विद्याधरुल्
गांति जेंदिरि भानु चंद्रमुलु रंगद्गीत वाद्यंबुलन्
गंतुल् वैचिरि मिट किंपुरुषुलुन् गंधर्वुलुन् गिन्नरुल् ॥ 508 ॥

---

## अध्याय—१८

### वामनमूर्ति का आविर्भाव

[म.] सूर्य जब मध्याह्न में संचार कर रहा था, ग्रह, तारा और चंद्र की स्थिति जब शुभप्रद थी, श्रावण मास की द्वादशी के दिन, अभिजित् लग्न में भुवनाधीश (लोकाधीश) विष्णु, वामन के रूप में अदिति का पुत्र होकर, पैदा हुआ जो पुण्यव्रत रखनेवाली, दिविजाधीश्वर (इन्द्र) की माता, विख्यात (प्रसिद्ध) परम पतिव्रता थी। ५०६ [व.] वह देव, शंख-चक्र-गदा-पद्म-युक्त चतुर्भुजाओं वाला, पिशंग (पीले) वर्ण वाले वस्त्रधारी, मकरकुंडल-मंडित (अलंकृत)-गंडस्थल वाला, वक्ष (छाती) पर श्रीवत्स-लांछन (भृगु की लात का चिह्न) रखनेवाला, श्री (शोभा) से विराजित, रोलंब-कदंब (भँवरों के झुंड) से ढकी वनमालिका से परिष्कृत (अलंकृत), कनक-कंकण, कांची, वलय, अंगद (बाजूबंद), नूपुर आदि से सजा हुआ, कमनीय (सुंदर) कण्ठ-कौस्तुभ से विभूषित, निखिल-जन-मनोहर होकर अवतरित हुआ; उस समय। ५०७ [शा.] यक्ष, गरुड़, देव, सिद्ध, और नाग लोगों ने चिंता करना छोड़ दिया; साध्य, चारण, मुनीश, ब्रह्म और विद्याधर लोग संतोष (आनन्द) मनाने लगे; भानु (सूर्य) और चन्द्र और भी प्रदीप्त हुए, किंपुरुष, गंधर्व और किन्नर लोग आह्लादकारी गीत-वाद्यों से

कं. दिक्कुल काविरि विरिसॅ, -ग्रॅक्कुव निर्मलत नॉंदॅ नेडु पयोधुल्
निक्कमयिनिलिचॅ धरणियु, जुक्कल त्रोवयुनु विप्रसुर सेव्यमुलै ॥509॥

कं. मुंपुकॉनि विरुलवानल, जॉपंबुल गुरिय सुरलु सुमनोमधुवुल्
तुंपरलॅगय बरागपु, रॉपुल भूभाग मतिनिरूषितमय्यॅन् ॥ 510 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 511 ॥

आ. ई महानुभावु डॅट्लितकालंबु
नुदरमंदु निलिचियुंडॅ ननुचु
नदिति वॅरगु पडियॅ नानंद जयशब्द-
मुलनु गश्यपुंडु मॉगि नुतिचॅ ॥ 512 ॥

व. अंत नविभुंडु सायुध सालंकारंबगु तन दिव्यरूपंबु नुज्जगिचि, रूपांतरं-बंगीकरिंचि, कपटवटुनि चंदंबुन, नुपनयन वयस्कुंडॅ, बालकुंडु तल्लि-मुंदट समुचितालापंबुलाडुचु ग्रीडिचु समयंबुन, नदितियुं दनय विलोकन परिणाम पारवश्यंबुन ॥ 513 ॥

आ. नन्नु गन्नतंड्रि ! ना पालि दैवम !, ना तपः फलंब ! ना कुमार !
नाडु चिन्निवडुग ! ना कुलदीपक !, रागदय्य भाग्यराशिवगुचु ॥514॥

---

आकाश में उछल-कूद मचाने लगे । ५०८ [कं.] दिशाओं में से काला रंग हट गया (दिशाएँ प्रकाशमान हुईं); समुद्र अत्यन्त शांत बन गये; भूमि और नक्षत्रमार्ग (आकाश) विप्रों और देवताओं के लिए सेव्य हुए (विचरण योग्य हुए) । ५०९ [कं.] देवताओं ने भीड़ की भीड़ में आकर पुष्पवर्षा की धारा बहा दी, सुमनों (पुष्पों) से मधु की झड़ियाँ लग गईं, इनसे भूभाग पर कीचड़ जम गया । ५१० [व.] तदनन्तर । ५११ [आ.] "यह महानुभाव इतने काल तक [मेरे] उदर में कैसे रहा ?" —यों कहकर अदिति चकित हुई । कश्यप ने आनन्द-विभोर हो, जय-जय शब्द से स्तुति की । ५१२ [व.] तब उस विभु (प्रभु) ने अपना सायुध (आयुध— सहित) और सालंकार (अलंकारों के साथ का) दिव्य रूप छोड़, रूपांतर (अन्य रूप) स्वीकार कर, कपट-वटु (ब्रह्मचारी) के समान बन, उपनयन के योग्य वयस्क (उमरवाला) बन [वह] बालक, माता अदिति के सामने समुचित सम्भाषण करते हुए, खेलने लगा । उस समय अदिति पुत्र का विलोकन करने (देखने) के परिणाम [स्वरूप] पारवश्य में भरकर [कहने लगी] ५१३ [आ.] "मेरे जन्मदाता बाबा ! मेरे दैव ! मेरे तप का फल ! मेरे कुमार ! मेरे नन्हा ! वटुक ! मेरे कुलदीपक ! मेरे भाग्य-राशि बनकर आओ न लाल !" ५१४ [कं.] "आओ मेरे लाल !" कहकर अपने पास [गोद

कं. अन्ना ! रम्मनि डग्गरि, चन्नुल पालेरुवारु संश्लेषिंणि य
चिन्नारि मोंगमु निवुरुचु, गन्नारं जूचॆ गन्न कडुपे युंटन् ॥ 515 ॥

कं. पुरुडी बोटिकि निदिर, -पुरुडंबिक गाक योरुलु पुरुडॆ यनुचुन्-
बुरुटालिकि पदिदिनमुलु पुरुडु प्रवर्तिंचि रॆलमि बुण्यपु गरितल् ॥516॥

व. अंत नव्वालुनकु संतसंबुन महर्षुलु कश्यपप्रजापति बुरस्करिंचुकोनि समुचितोपनयन कर्मकलापंबुलु चेयिंचिरि। सवित सावित्रि नुपदेशिंचॆ। बृहस्पति यज्ञोपवीतंबुनु, गश्यपुंडु मुंजियु, गौपीनं बदितियु, धरणि कृष्णाजिनंबुनु, दंडंबु सोमुंडुनु, गगनाधिष्ठानदेवत छत्रंबुनु, गमंडलुवु ब्रह्मयु, सरस्वति यक्षमालिकयु सप्तर्षुलु कुशपवित्रंबुलु निच्चिरि। मरियुनु ॥ 517 ॥

कं. भिक्षापात्रिक निच्चॆनु, यक्षेशुडु वामनुनकु नक्षयमनुचुन्
साक्षात्करिंचि पॆट्टॆनु, भिक्षुनकु भवानि पूर्णभिक्ष नरेंद्रा ! ॥ 518 ॥

---

में] ले लिया, उसके स्तनों से दूध की धारा बह चली तो बच्चे को छाती से लगा लिया। उसके मनोज्ञ मुख पर हाथ फेरती हुई उसे आँख भर निहारती रही, जननेवाली कोख जो थी ! ५१५ [कं.] "इस रमणी की समता केवल इन्दिरा (लक्ष्मी) और अम्बिका (पार्वती) ही कर सकती हैं, अन्य कोई नही।" —यों कहते हुए, पुण्यवती स्त्रियों ने (सुहागिनों ने) उस प्रसूता [अदिति] की दस दिन तक सूतिका परिचर्या सँभाली। ५१६ [व.] अनन्तर महर्षियों ने सहर्ष कश्यप प्रजापति को अध्यक्ष बनाकर उस बालक का समुचित उपनयन कर्मकलाप सम्पन्न करवाया। सविता (सूर्य) ने सावित्री (गायत्री) का उपदेश दिया। बृहस्पति ने यज्ञोपवीत (जनेऊ), कश्यप ने मुंजी (मौंजी) अदिति ने कौपीन (कांछा), धरणी (पृथ्वी) ने कृष्णाजिन (मृगचर्म), सोम (चंद्र) ने दंड, गगन (आकाश) के अधिष्ठान-देवता ने छत्र, ब्रह्मा ने कमण्डल, सरस्वती ने अक्षमालिका (रुद्राक्षमाला), सप्तर्षियों ने कुशपवित्र (कुश से बनी अँगूठियाँ) प्रदान किए। और ५१७ [कं.] यक्षेश (कुबेर) ने वामन को 'अक्षय' कहकर भिक्षापात्र दिया; हे नरेंद्र ! भवानी (अन्नपूर्णा) ने साक्षात् (प्रत्यक्ष) होकर, उस भिक्षुक (वामन ब्रह्मचारी) को पूर्ण-भिक्षा प्रदान की। ५१८

### बलिचक्रवर्ति कडकु वामनमूर्ति येतेंचुट

कं. शुद्ध ब्रह्मर्षि समा, राढ्युंडै विहित मंत्रराजि जदुवुचु-
न्निद्धंबगु ननलंबुन, वृद्धाचारमुन वटुडु वेल्चें गडिमिन् ॥ 519 ॥

व. इट्लु कृतकृत्युंडै मायामाणवकुंडु देशांतर समागतुलगु ब्राह्मणुल गोंदर नवलोकिंचि यिट्लनियें ॥ 520 ॥

कं. वत्तुरॆ विप्रुलु वेड, -न्नित्तुरॆ दातलुनु वेड्क निष्टार्थमुलं
देत्तुरॆ मीरुनु संपद, लित्तेरगुन दानवीरुडॆव्वडो सॆपुडा ॥ 521 ॥

व. अनिन नखिल देशीयुलगु भूसुरुलिट्लनिरि ॥ 522 ॥

म. कलरुन् दातलु नित्तुरुन् धनमुलुं गाम्यार्थमुल् गॊंचु वि-
प्रलु नेतेंतुरु कानि योविनि बलि बोलन् वदान्युंडु ले-
डलघुंडै यॊनरिंचॆं नध्वर शतंबा भार्गवानुज्ञतो
बलि वेडं बडयंग वच्चु बहु संपल्लाभमुल् वामना ! ॥ 523 ॥

व. अनि तॆलिय जॆप्पिन ब्राह्मणवचनंबुलालकिंचि, लोकंबुलकुं ब्रीति पुट्टिप बयनंबै, लाभवचनंबुलु गैकॊनि, तल्लिदंड्रु ल वीड्कॊनि, शुभमुहूर्तंबुनं गदलि ॥ 524 ॥

---

### बलि चक्रवर्ती के पास वामनमूर्ति का आना

[कं.] शुद्ध ब्रह्मर्षियों के समान तेजस्वी होकर, उनसे पूजित उस बटुक ने विहित मंत्र पढ़ते हुए, वृद्धाचार (परंपरा) के अनुसार प्रज्वलित अग्नि में होम किया। ५१९ [व.] यों कृतकृत्य (कार्य से निवृत्त) होकर, उस माया-माणवक (बालक) ने देशांतरों से समागत (आए हुए) कुछ ब्राह्मणों को अवलोक कर (उनसे) इस प्रकार कहा : ५२० [कं.] "विप्रलोग याचना करने जाते है न ? दाता लोग उन्हें इष्टार्थ देते हैं न ? तुम लोग उनसे धन-धान्य (संपद्) माँग, बटोरते हो न ? (कृपया) मुझे बता दो वैसा दानवीर यहाँ कौन है ?" ५२१ [व.] यों पूछने पर देश-देश से आये भूसुरों ने कहा— ५२२ [म.] "ऐसे दाता लोग कई हैं जो धन देते हैं; विप्र लोग उनसे काम्यार्थ (मनचाही सम्पत्ति) माँग ले जाते हैं। किंतु दातृत्व में बलि के तुल्य (समान) वदान्य (दाता) दूसरा कोई नहीं है; उस भार्गव (शुक्र) की आज्ञा पर अलघु (महान्) बनकर उसने सौ यज्ञ रचे है, हे वामन ! बलि से याचना करने पर तुम बहुत सी संपत्ति का लाभ पा सकोगे"। ५२३ [व.] इस प्रकार ब्राह्मणों के समझाये वचन मुनकर, लोक को प्रीति उत्पन्न करने [के उद्देश्य से], लाभवचन (शुभाशीर्वाद) लेकर, माता-पिता से विदा

कं. प्रक्षोण दिविजवल्लभ, रक्षापरतंत्रुडगुचु राजीवाक्षुं-
डु क्षणमुन बलियिंटिकि, भिक्षागमनंबु सेसॆ वॆंदड्रिकमुतोन् ॥ 525 ॥

कं. हरि हरि सिरि युरमुनगल
हरि हरिहयु कॊरकु दनुजुनडुगन् जनियॆन्
बरहित रतमतियुतुलगु
दीरलकु नडुगुटलु नॊडलि तॊडवुलु पुडमिन् ॥ 526 ॥

कं. सर्वप्रपंच गुरुभर, निर्वाहकुडगुट जेसि नॆड्रि जनुदेरन्
खर्वुनि व्रेगु सहिंपक, नुर्वीस्थलि ग्रुंगं, स्रॊग्गॆ नुरगेंद्रुंडुन् ॥ 527 ॥

व. इट्लु चनि चनि ॥ 528 ॥

कं. शर्मद यमदंडक्षत, वर्मद नतिकठिन मुक्तिवनिता चेतो-
मर्मद नंबुनिवारित, दुर्मद नर्मद दरिचॆ द्रोवन् वटुडुन् ॥ 529 ॥

व. दाटि तत्प्रवाहंबुन कुत्तर तटंबुनंदु ॥ 530 ॥

शा. चंडस्फूर्ति वटुंडु गांचॆ बहुधा जल्पन्निशाटंबु, नु-
द्दंडाहूत मुनीभ्य बिभ्य दमृतांधस्सिद्धकूटंबु, वे-

---

पाकर, शुभ मुहूर्त में [वामन] घर से चल पड़ा। ५२४ [कं.] प्रक्षीण (दुर्दशा मे पड़े हुए, कृश बने) दिविजवल्लभ (स्वर्गाधिप— इंद्र) की रक्षा में परतत्रहो (निमग्न हो), वह राजीवाक्ष (कमलयन— विष्णु) दरिद्रता साथ ले, उसी क्षण, वलि के यहाँ भीख माँगने गया। ५२५ [कं.] हरि! हरि! (चितासूचक संबोधन) श्री (लक्ष्मी) को उर पर धारण करनेवाला हरि (विष्णु), हरिहय (इंद्र) के निमित्त दनुज से भीख माँगने गया। परहित (परोपकार) में रत-मति से युत (युक्त) रहनेवाले उन प्रभुओं के लिए दूसरों से माँगना इस जग में शारीरिक आभूषण के समान होगा। ५२६ [कं.] समस्त प्रपच (संसार) का गुरु [तर]-भार ढोनेवाला होने के कारण, जब वह [वामन माँगने] चला तो उसका भार सहने में अशक्त होकर, उर्वी-स्थलि (भूमि) धसक गयी, और [भूभार वहन करनेवाला] उरगेंद्र (शेषनाग) भी झुक गया। ५२७ [व.] इस प्रकार चल-चलकर ५२८ [क.] वटु (ब्रह्मचारी) ने रास्ते में [पडनेवाली] उस नर्मदा [नदी] को पार किया जो शर्मदा (संतोष देनेवाली) है; यमदण्ड के आघातों के लिए [बचानेवाला] कवच है; अतिकठिन मुक्तिवनिता के मानस का मर्म [भेद] देनेवाली (मुक्ति का रहस्य बतानेवाली) है, और अपने [पवित्र] जल [के प्रभाव] से दुर्मद (अहंकार) का निवारण करनेवाली है। ५२९ [व.] पार करके, उसके प्रवाह के उत्तरी तट पर, ५३० [शा.] प्रचंड तेजस्वी उस वटु ने बलि के उस यज्ञ-वेदिका-मंडप को देखा जहाँ बहुप्रकार से वकवाद कर रहे निशाट (राक्षस) इकट्ठे थे; जहाँ अधिक संख्या में

दंडाश्वध्वजिनी कवाटमु, महोद्यद्धूमसंछन्न मा-
तांड स्यंदन घोटमुन्, बलिमखांतर्वेदिकावाटमुन् ॥ 531 ॥

व. कनि, दानवेंद्रुनि हयमेधवाटिक दाटि, दरियं जोच्चु नय्यवसरंबुन ॥532॥

शा. शंभुंडो, हरियो, पयोजभवुडो, चंडांशुडो, वह्नियो
दंभाकारत वच्चेंगाक, धरणिन् धात्रीसुरुंडेव्वडी
शुंभद्द्योतनुडी मनोज्ञतनुडंचुन् विस्मय भ्रांतुलै
संभाषिंचिरि ब्रह्मचारि गनि, तत्सभ्युल् रहस्यंबुनन् ॥ 533 ॥

कं. गुजगुजलु वोवुवारुनु
गजिबिजि पडुवारु चाल गलकल पडुचुन्
गजिबिजियैरि सभास्थलि
ब्रजलेल्लनु वोंट्टि वडुगु पापनि राकन् ॥ 534 ॥

व. आ समयंबुन बलि सभामंटपंबु दरियं जोच्चि ॥ 535 ॥

सी. चवुलुगा जेवुलकु सामगानंबुलु सविवेंडु नुद्गातल चदुवु विनिचु
मंत्रतंत्रार्थ संबंध भावंबुलु गोनियाडु याजुल गूडिकोनुचु
होमकुंडंबुलं दुन्न त्रेताग्नुल वेलिगिंचु होतल वितति गनुचु
वक्षुलं बहुविधाध्वर विधानंबुलु सेप्पेडु सभ्युल जेर जनुचु

---

आहूत (निमंत्रित) मुनीभ्य (मुनिश्रेष्ठों) के कारण अमृतान्धों (देवों) और सिद्धों का कूट (सघ) घबड़ा रहा था [यह सोच कर कि इन मुनिश्रेष्ठों के प्रभाव से बलि कही और भी प्रबल न बने]; जिस कवाट (द्वार) पर वेदंड (हाथी), अश्व और ध्वजिनी (सेना) का पहरा बैठा था; और ऊपर उठे हुए होम-धूम से मार्तांड-स्यंदन-घोट (सूर्य के रथ के घोड़े) सछन्न हो गये थे (ढक गये थे)। ५३१ [व.] देखकर, दानवेंद्र (बलि) के अश्वमेध के यज्ञ-मंडप को पार कर, समीप आते उस अवसर पर, ५३२ [शा.] उस ब्रह्मचारी को देखकर, वहाँ के सदस्य (सभासद) विस्मय-भ्रांत (आश्चर्य-चकित) होकर, रहस्य मे एक-दूसरे से [यों] कहने लगे : "यह या तो शंभु (शिव) होगा, या हरि (विष्णु) होगा, अथवा पयोजभव (कमलसंभव, ब्रह्मा) होगा, नही तो चंडांशु (सूर्य) या वह्नि (अग्निदेव) होगा जो मायावेष लेकर आये है। ऐसा न होता तो भूमि पर इतना प्रखर तेजस्वी और मनोज्ञ रूपवान् कौन सा धात्रीसुर (ब्राह्मण) है? [कोई नहीं है।]" ५३३ [कं.] नाटे (बौने) ब्रह्मचारी के आगमन पर सभास्थल में बैठे सभी जन संक्षोभ में पड़ गये, कुछ लोग आकुल हुए, कुछ चकरा गये, अन्य कुछ संभ्रम में रहे। ५३४ [व.] तब वामन ने बलि के सभामंडप में प्रवेश किया। ५३५ [सी.] वहाँ पर,

ते. वॆट्टुगोरॆडु वेडुक पट्टु पथुप
नदिति पुट्टुवु लच्चिकि नाटपट्टु
कोरि चरियिचॆ समलोन गीततडवु
पुट्टुवॆन्नडु नॆळुगनि पॊट्टिवड्गु ॥ 536 ॥

व. मळियुनु ॥ 537 ॥

कं. वॆरचुचु वंगुचु व्रालुचु
नरिमुरि गुबुरुलकु जनुचु हरिहरि यनुचुन्
मरुगुचु तुलुकुचु दिरदिर
गुरुमट्टपु पॊट्टि वड्गु गीत नटिचॆन् ॥ 538 ॥

कं. कॊंदरितो जर्चिचुनु, गॊंदरितो जटलु सॆप्पु गोष्ठि जेयुं
गॊंदरितो दर्किचुनु, गॊंदरितो मुच्चटाडु गॊंदर नव्वुन् ॥ 539 ॥

व. मरियु ननेक विधंबुल नंदरिकि नन्निरूपुलॆ विनोदिंचुचु ॥ 540 ॥

कं. वॆडवॆड नडकलु नडचुचु
नॆड नॆड नडुगिडग नडरियिल दिगवडगन्
बुडिबुडि नॊडुवुलु नॊडुवुचु
जिडिमुडि तडवडग वड्गु सेरॆन् राजुन् ॥ 541 ॥

---

उद्गाता लोग जो साममंत्र गा रहे थे उनका कर्णमधुर गायन सुनते हुए, मंत्र-तंत्रों का अर्थ संबंधी भाव व्यक्त कर रहे होताओं से मिलते हुए, होमकुंडों में त्रेताग्नियाँ प्रज्वलित करनेवाले याचक लोगों को देखते हुए, दक्षता से बहुविध अध्वरविधान (यज्ञों का क्रिया-विधान) समझानेवाले सभिक लोगों से परिचित होते हुए, [ते.] दान माँगने के अपने उत्साह को इंगित करते हुए वह अदिति का पुत्र— वामन, जो स्वयं लक्ष्मी का आश्रयस्थान था, और कभी जन्म (पैदा होने को) न जाननेवाला था, ऐसा वह बौना ब्रह्मचारी उस सभा में कुछ समय तक चाह से घूमता रहा। ५३६ [व.] और फिर, ५३७ [कं.] डरता हुआ, झुकता हुआ, हिलता हुआ, संभ्रम से झाड़ियों के पीछे से चलता हुआ, "हरि", "हरि" कहते हुए, छिपते हुए, चौंकते हुए, घूम-घूमकर थिरकते हुए वह अल्प आकार का बौना ब्रह्मचारी कुछ समय तक स्वांग रचता रहा। ५३८ [कं.] [वह] कुछ लोगों से चर्चा करता, कुछ के साथ वेद का जटापाठ करता, कुछ को लेकर गोष्ठी रचता, कुछ लोगों से तर्क करता, और कुछ से बतकही करता, अन्यों के साथ हँसता। ५३९ [व.] यों अनेक प्रकार सबसे सभी तरह विनोद करते हुए। ५४० [कं.] धीमी चाल चलते हुए, जगह-जगह पग धरने पर, घबराकर धरती के नीचे धसकने पर, छोटी-

व. इट्लु डग्गरि मायाभिक्षुकुंडु रक्षोवल्लभुं जूचि यिट्लनियें ॥ 542 ॥

म. इतडे दानवचक्रवर्ति सुरलोकेंद्राग्नि कालादि दि-
क्पति गर्वापनय प्रवर्ति गत लोभस्फूर्ति नानामख-
व्रत दान प्रवणानुवर्ति सुमनोरामा मनोभेदनो-
द्धत चंद्रातपकीर्ति सत्यकरुणा धर्मोल्लसन्मूर्तिदान् ॥ 543 ॥

व. इट्लु कुश पवित्राक्षत संयुतंबगु दक्षिणहस्तंबु साचि यिट्लनियें ॥ 544 ॥

उ. स्वस्ति जगत्त्रयी भुवन शासनकर्तकु हासमत्र वि-
ध्वस्त निर्लिपभर्तकु नुदारपद व्यवहर्तकुन् मुनीं-
द्रस्तुत मंगळाध्वर विधानविहर्तकु निर्जरी गळ-
न्यस्त सुवर्णसूत्र परिहर्तकु दानवलोक भर्तकुन् ॥ 545 ॥

व. अनि दीविंचि, करचरणाद्यवयवंबुलु धरियिंचिन वेदराशियुनं बोलें मुंदट नकुटिलुंडुनु, जटिलुंडुनु, सदंडच्छत्रुंडुनु, गक्षलंबित भिक्षात्रुंडुनु, गर कलित जल कमंडलुंडुनु, मनोहर वदन चंद्रमंडलुंडुनु, मायावादन

---

छोटी बातें (तुतली बोली) बोलते हुए, [वह] ब्रह्मचारी लड़खड़ाते हुए राजा के पास पहुँचा। ५४१ [व.] इस तरह समीप जाकर, उस माया भिक्षुक ने रक्षोवल्लभ (राक्षस राजा) को देख यों कहा : ५४२ [म.] यही दानवों का चक्रवर्ती (सम्राट्) है, सुरलोक (देवता), इंद्र, अग्नि, यम आदि दिक्पतियो का गर्व भंग करने में प्रवर्ती (लगा रहनेवाला) है, लोभ की स्फूर्ति को छोड़ अनेक प्रकार के यज्ञ, व्रत, दान आदि मे प्रवणमूर्ति (आसक्त रहनेवाला) है, सुमनोरामा (देववनिताओं) के मानसों को विचलित कर डालनेवाले चंद्रातप (चाँदनी) सी कीर्ति वाला है, सत्य, करुणा, धर्म से उल्लसित मूर्ति वाला [बलि] यही है ? ५४३ [व.] फिर कुश, पवित्र और अक्षत से संयुक्त अपना दक्षिण (दाहिना)-हस्त फैलाकर यों कहा : ५४४ [उ.] त्रिभुवन जगत के शासनकर्ता को; हास मात्र से निलिप-भर्ता (देवेंद्र) को विध्वस्त (नष्ट) करनेवाले को; उदार-पद (उदारता से) व्यवहार (आचरण) करनेवाले को; मुनींद्रो से प्रशंसित मंगलकारी अध्वविधान (यज्ञक्रतु) के विहर्ता (रचनेवाले) को; निर्जरियों (देव-पत्नियों) के गल-न्यस्त-सुवर्ण-सूत्रों को (गले में बँधे सोने के मांगल्य-सूत्रों को) तोड़ देनेवाले को; दानवलोक-भर्ता को (दैत्यों के अधिपति को) स्वस्ति (मंगल हो)। ५४५ [व.] ऐसा आशीर्वाद देकर, करचरण (हाथ-पैर) आदि अवयव धारण की हुई वेदराशि के समान, सामने खड़े हुए उस अकुटिल (सीधे), जटिल (ज़टाधारी), दंड और छत्र-सहित वाले को, बगल में भिक्षापात्र लटकाये हुए, हाथ में कलित जल से भरे कमंडलधारी को चंद्रमंडल-

पटुंडुनु नगु वटुनि गनि, दिनकर किरण पिहितंबुलैन ग्रहंबुल चंदंबु
दिरोहितुलयि भृगुवुलु गूर्चुन्न यॆड लेचि सेमं बडिगि, तिय्यनि माटल
नादरिंचिरि। बलियुनु नमस्करिंचि, तगिन गद्दॆय नुनिचि, पादंबुलु
वुडिचि, तन प्राण वल्लभ पसिडि कलशंबुन नुदकंबुलु वोय, वडुगु
कोमरुनि चरणंबुलु गडिगि, तडियोत्ते तत्समयंबुन ॥ 546 ॥

आ. वटुनि पादशौचवारि शिरंबुन, वरमभद्रमनुचु बलि वहिंचॆ
ने जलमु गिरीशु डिदुजूटुडु देव, -देवु डुद्वहिंचॆ धृति शिरमुन ॥ 547 ॥

व. मरियु नय्यजमानुंडभ्यागतुनकिट्लनियॆ ॥ 548 ॥

म. वडुगा ! यॆव्वरिवाड वॆव्वडवु संवासस्थलंबॆय्यदि-
य्यॆडकुं नी वरुदेंचुटन् सफलमय्यॆन् वंशमुन् जन्ममुन्
गडु धन्यात्मुडनैति नी मखमु योग्यंबय्यॆ ना कोरिकल्
गडतेरॆन् सुहुतंबुलय्यॆ शिखुलुं गल्याण मिक्कालमुन् ॥ 549 ॥

म. वरचेलंबुलो माडलो फलमुलो वन्यंबुलो गोवुलो
हरुलो रत्नमुलो रथंबुलो विमृष्टान्नंबुलो कन्यलो

---

सम्पन्न मनोहर वदन (मुख) वाले को, मायावादन (मर्म भाषण) में पटु (समर्थ), उस [वामन] वटु को देखकर, भृगु (शुक्राचार्य) आदि राक्षसगुरु दिनकर-किरणों (सूर्य-किरणों) से पिहित (ढके हुए) ग्रहों के समान तिरोहित (निस्तेज) हो, [कुछ क्षण के बाद] अपने स्थान से उठकर, कुशल पूछ मधुर भाषणों से [वामन] का आदर किया। बलि ने भी नमस्कार किया, फिर उचित आसन पर बिठाकर, चरण पोंछ, प्राणप्रिय पत्नी के सुवर्ण-कलश से डाले जल से उस वटु कुमार के चरण धोकर पोंछ दिये। उस समय में : ५४६ [आ.] उस वटु के पैरों के धोवन को बलि ने परम शुभप्रद मानकर शिर पर डाल लिया जिस [विष्णुपादोदक को] जल को गिरीश, चंद्र-चूड़ देवदेव (शिव) ने संतोष से शिर पर धारण किया था। ५४७ [व.] अनंतर उस यजमान (यज्ञकर्ता) बलि ने अभ्यागत वामन से यों पूछा : ५४८ [म.] हे ब्रह्मचारी ! किसके पुत्र हो ? कौन हो ? संवास-स्थल (निवास-स्थान) कौन सा है ? यहाँ पर तुम्हारे आगमन से मेरा वंश और जन्म सफल हुए; मैं धन्यात्मा बन गया; यह मख सुयोग्य (सुसंपन्न) हुआ; मेरी कामनाएँ सफल हुईं; यज्ञ की अग्नियों में पड़ी आहुतियाँ प्रशस्त हुईं, यह समय कल्याण-प्रद हुआ। ५४९ [म.] हे धात्रीसुरेंद्र-उत्तम (ब्राह्मणोत्तम) ! वर-चेल (उत्तम वस्त्र) हों, सुवर्ण-मुद्राएँ हों, फल हों, वन्य [वस्तुएँ] हों, गौएँ हों, घोड़े हों, रत्न हों, रथ हों, मृष्टान्न हों, कन्याएँ हों, करि

करुलो कांचनमो निकेतनमुलो ग्रामंबुलो भूमुलो
धरणी खंडमों काक ये मडिगेंदो धात्रीसुरेंद्रोत्तमा ! ॥ 550 ॥

## अध्यायमु—१९

व. अनि धर्मयुक्तंबुगा बलिकिन वैरोचनि वचनंबुलु विनि, संतोषिंचि, यीश्वरं-डिट्लनियें ॥ 551 ॥

सी. इदि नाकु नॅलवनि येरीति बलुकुदु नॊकचोटनक निंडि युंडनेर्तु
नॅव्वनिवाडनंचेमनि पलुकुदु नायंतवाडनै नडवनेर्तु
नी नडवडि यनि यॅट्लु वक्काणितु बूनि मुप्पोकल बोवनेर्तु
नदि नेर्तु निदि नेर्तु ननि येल चॅप्पंग नेरुपुलन्नियु नेन नेर्तु

आ. नॊरुलु गारु नाकु नॊरुलकु नेनौदु
नॊंटिवाड जुट्टमॊकडु लेडु
सिरियु दॊल्लि गलदु सॆप्पॆद ना टॆंकि
सुजनुलंडु दड्रू जॊच्चियुंदु ॥ 552 ॥

व. अदि यट्लुंडनिम्मु ॥ 553 ॥

---

(हाथी) हों, कांचन (सोना) हों, निकेतन (मकान) हों, ग्राम हों, जमीन हों अथवा भूखंड हो, इनके अतिरिक्त तुम क्या माँगते हो [बता दो] । ५५०

## अध्याय—१९

[व.] इस प्रकार वैरोचनी (वलि) के कहे धर्मसंगत वचन सुनकर, संतुष्ट हो, ईश्वर यों बोले : ५५१ [सी.] मैं कैसे कहूँ कि यह (अमुक) मेरा निवास स्थान है— [क्योंकि] किसी एक जगह न रहकर मैं [सर्वत्र] भर (फैल) कर रह सकता हूँ; मैं कैसे बताऊँ कि अमुक [व्यक्ति] का [पुत्र] हूँ, [क्योंकि] मैं सबका होकर रह सकता हूँ; "यह मेरी चाल है" —कहकर मैं किस प्रकार बखान करूँ ? [क्योंकि] मैं तीनों गतियों से चलना जानता हूँ (तीनों लोक अथवा सत्त्व, रज और तम नामक त्रिगुणी मार्ग); "मैं यह जानता हूँ, या वह जानता हूँ" —ऐसा कैसे कहूँ ? [क्योंकि] मुझे सब जानकारी प्राप्त है; दूसरे मेरे कोई नही लगते (मेरे नही होते) सबका संबध मेरे ही साथ है । [आ.] मैं एकाकी हूँ, मेरा सगा (बंधु) एक भी नही है; संपत्ति (श्री) मेरे पास पहले थी; अपना स्थान बताता हूँ [सुनो :] सज्जनों में अकसर मैं मिलकर रहता हूँ । ५५२ [व.] [किंतु इन बातों से क्या ?] इन्हें वैसे रहने दो । ५५३ [सी.] हे

सी. जननाथ ! नी माट सत्यंबु सत्कीर्तिदंबु कुलार्हंबु धर्मयुतमु
करुणानुवर्तुलु घन सत्वमूर्तुलु गानि मीकुलमंदु गलुगरॊरलु
रणभीरुवुलु वितरणभीरुवुलु लेरु प्रत्यर्थुलर्थुलु प्रार्थिकॊनिन
दानशौंडुलगुचु दनुपुदुराधिकुलै मीतातलदक मेटिमगलु

आ. मीकुलंबुनंदु मॆरयु प्रह्लादुंडु, मिंटि चंद्रु माड्कि मॆलि रुचुल
प्रथित कीर्तितोड भवदीयवंशंबु, नीरराशि भंगि नॆगडुचुंडु ॥ 554 ॥

व. तॊल्लि मी मूडवतात हिरण्याक्षुंडु विश्वजयंबु सेसि, गदायुधुंडै भूतलंबुन प्रतिवीरुलं गानक संचरिप, विष्णुंडु वराहरूपंबुन नतनि समयिंचॆं। तदभ्रातयगु हिरण्यकशिपुंडदि विनि, हरि पराक्रमंबुनकु नाश्चर्यंबु नॊंदि, तन जयंबुनु, बलंबुनु, बरिहसिंचि, प्रद्दन नुद्दविडि नद्दनुजमर्दनु मंदिरंबुनकुं जनियॆ नप्पुडु ॥ 555 ॥

कं. शूलायुध हस्तुंडै, कालाकृति वच्चु दनुजु गनि विष्णुंडुन्
गालज्ञात मायागुण, शीलत निट्लनि तलंचॆ जित्तमुलोनन् ॥ 556 ॥

म. ऎदुरै पोर जयिपरादितनि गाकॆदेनियुं बोव भी
प्रदुडै प्राणुल दोलु मृत्युवु क्रियंबॆ वच्चुनंचुं प्रिया

---

जननाथ (राजन्) ! तुम्हारी बात सत्य है, कीर्ति-प्रद है, तुम्हारे कुल के अर्ह (योग्य) है, और धर्मसंगत है। तुम्हारे कुल में करुणानुवर्ती (करुणापारीण), और सत्वमूर्ति ही उत्पन्न हुए हैं, अन्य कोई नहीं; रणभीरु (युद्ध से डरनेवाले) और वितरण-भीरु (दान देने से पिछड़ जानेवाले) [तुम्हारे कुल में] है ही नहीं। याचक और विरोधी भी यदि तुमसे माँगेंगे तो श्रेष्ठ दानवीर बनकर उन्हें [सब कुछ देकर] तृप्त करोगे। तुम्हारे तात (बाप-दादा) सब प्रसिद्ध वीर थे; [आ.] तुम्हारे कुल में प्रह्लाद, आकाश में चंदमा के समान, दिव्य कांति से चमकते रहते हैं; [उसके कारण] तुम्हारा वंश अनुपम कीर्ति से पयोराशि (समुद्र) की तरह प्रवर्धित होता रहेगा। ५५४ [व.] पूर्व में तुम्हारा तीसरा दादा हिरण्याक्ष विश्व को जीतकर, गदायुध हो अपने प्रतिवीर (बराबरी के वीर) को न पाकर जब भूतल पर विहार कर रहा था तब विष्णु ने वराह का रूप ले उसका संहार किया। उसका भ्राता हिरण्यकशिपु वह [समाचार] सुन, हरि के पराक्रम पर आश्चर्यचकित हुआ, वह अपनी विजय और बल की भर्त्सना करते हुए तुरंत उस दनुजमर्दन (राक्षसांतक—विष्णु) के मंदिर में गया। तब ५५५ [कं.] हाथ में शूलायुध लिये यम के समान आगे बढ़ रहे दनुज को देखकर, विष्णु ने अपनी कालज्ञता और मायागुणशीलता के कारण चित्त में यों विचार किया : ५५६ [म.] सामना करके इसे जीतना संभव नहीं है। यदि कहीं जाकर

विदु डब्जाक्षुडु सूक्ष्मरूपमुन नावेशिंचें निश्श्वास रं-
ध्रदिशन् दैत्यु हृदयांतराळमुन ब्रत्यक्षक्रियाभीरुडै ॥ 557 ॥

व. अंत नद्दैत्यवल्लभुंडु वैष्णवालयंबु सोच्चि, वेंदकि, हरि गानक, मिन्नु मन्नु नन्वेषिंचि, त्रिदिवंबन नरसि, दिशलं बरिकिंचि, भूविवरंबुलु वीक्षिंचि, समुद्रंबुलु वेंदकि, पुरंबुलु शोधिंचि, वनंबुलु विमर्शिंचि, पाताळंब परीक्षिंचि, जगंबुन नदृष्ट शत्रुंड, मार्गणंबु सालिंचि तनलो निट्लनिये ॥ 558 ॥

कं. पगवाडु मडिय नोपुनु
वेंगडेनियु नेंदुरु पडडें तेंगुव नरुलकुं
दंगिनयेंड बगऱ मोदनु
बग गोनदगदनुचु मानें ब्राभवशक्तिन् ॥ 559 ॥

व. अतंडु मी प्रपितामहुंडु, अतनि गुणंबुलनेकंबुलु गलवु। अदि यट्लुंड-निम्मु ॥ 560 ॥

कं. आतुर भूसुरगति बुरु-हूतादुलु दन्नु वेड नोंगि गोंम्मनुचुन्
मी तंड्रि यिच्चें नायुवु, नेतन्मात्रुडवं नीवु नी लोकमुनन् ॥ 561 ॥

---

छिप जाऊँ तो यह भयंकर वन प्राणियों का पीछा करनेवाली मृत्यु की भाँति मुझ पर चढ़ आवेगा; यों कहकर क्रियाविद् (कर्तव्य जाननेवाला) अब्जाक्ष (कमलनेत्र विष्णु) ने प्रत्यक्ष (आमने-सामने) लड़ने से डर कर, सूक्ष्मरूप में नासारंध्रों की राह दैत्य के हृदंतराल में प्रवेश किया। ५५७ [व.] तब उस दैत्यवल्लभ (राक्षसों के राजा) ने विष्णु के आलय (वासस्थान) में घुसकर ढूंढ़ा; हरि को न पाकर वह भूमि और आकाश में खोजने लगा; उसने स्वर्ग देख लिया, दिशाओं में परखा, भूविवरों (सुरंगों) में पता लगाया, समुद्रों को छान डाला, पुरों (नगरों) को शोधा, वनों का विमर्शन किया, पाताल की परीक्षा ली, जग में कहीं भी शत्रु को न पाकर, उसने ढूंढ़ना छोड़, अपने मन में यों सोचा : ५५८ [म.] "मेरा शत्रु मर गया होगा, यदि मरा न होता तो मनुष्यों को कहीं न कही दिखाई न देता ? [अवश्य मर गया होगा] मरे हुए शत्रु से वैर रखना अनुचित होगा" —इस प्रकार सोचकर उसने अपनी प्रभुशक्ति के वल पर [विष्णु के लिए] अन्वेषण छोड़ दिया। ५५९ [व.] वह तुम्हारा प्रपितामह (परदादा) था। उसके अनेक गुण हैं। उस बात को वैसे रहने दो। ५६० [कं.] अति दीन ब्राह्मणों जैसे पुरुहूत (इंद्र) आदि देवताओं ने जब विनती की तो तुम्हारे पिता ने उन्हें अपनी आयु का दान दिया। इस लोक में तुम भी उनके समान ही [महान्] बने हो, साधारण जन नहीं हो। ५६१

कं. एलितिवि मूडु जगमुलु,
दोलितिविद्रादि सुरुल दोल्लिटिवारि
ब्रोलितिवि दानगुणमुल
जालिति वी राक्षसुलनु संरक्षिपन् ॥ 562 ॥

व. अदियुनुंगाक ॥ 563 ॥

कं. राज्यंबु गलिगॆनेनियु, बूज्युलकुनु याचकुलकु भूमिसुरुलकुन्
भाज्यमुग ब्रतुकडेनियु, द्याज्यंबुलु वानि जन्म धर गेहंबुल् ॥ 564 ॥

कं. मुन्नॆन्नुदुरु वदान्युल, -नॆन्नॆडुचो निन्नु द्रिभुवनेशुड वनुचु-
न्निन्नि दिनंबुलनुंडियु, नॆन्नडु निनु बॆट्टुमनुचु नॊंड्मु सेयन् ॥ 565 ॥

आ. ऒंटिवाड नाकु नॊकटि रॆंडडुगुल
मेर यिम्मु सॊम्मु मेर यॊल्ल
गोर्कॆ दीर ब्रह्मकूकटि मुट्टॆद
दानकुतुकसांद्र ! दानवॆंद्र ! 566

व. अनिन बरम याचकुनकु ब्रवातयिट्लनियॆ ॥ 567 ॥

आ. उन्नमाटलॆल्ल नॊप्पुनु विप्रुंड
सत्यगतुलु वृद्धसम्मतंबु

---

[कं.] तुमने तीनों लोकों पर अपना शासन स्थिर किया, इंद्र आदि देवताओं को मार भगाया, दानगुण में अपने पूर्वजों के तुल्य बने हो, और इन राक्षसों का संरक्षण कर सके हो। ५६२ [व.] इसके अतिरिक्त। ५६३ [कं.] यदि किसी को राज्य प्राप्त हुआ तो उसके लिए, पूज्य व्यक्तियों, याचकों तथा भूमिसुरों (ब्राह्मणों) को भी भाग देते हुए जीना (भोगना) समुचित है, यदि ऐसा न किया तो उसका जन्म, उसका राज्य और घर-द्वार त्याज्य (छोड़ देने योग्य) हैं। ५६४ [कं.] लोग त्रिभुवनेश्वर कह कर तुम्हें दाताओं की गणना में सबसे प्रथम गिनेंगे। इतने दिनों तक मैंने कभी तुमसे किसी वस्तु की याचना, ज़िद से नहीं की। ५६५ [आ.] मैं एकाकी हूँ, मुझे [केवल] एक दो पग भूमि दे दो, अपार धन-संपत्ति मुझे नही चाहिए। हे दानवेंद्र ! (राक्षसराजा) ! दान देने का गहरा कुतूहल रखनवाले राजा ! [यह तीन पग भूमि पाने मात्र से] मेरी कामना की पूर्ति होगी और मैं संतोष से ब्रह्मानंद की चोटी पर पहुँच जाऊँगा। ५६६ [व.] इतना कहने पर उस परमयाचक [वामन] से प्रदाता [बलि] ने यों कहा : ५६७ [आ.] "हे ब्राह्मण ! तुमने जो वचन कहे वे सब समुचित हैं, सत्य हैं और वृद्ध (गुरुजन)-सम्मत है। किंतु हाय ! दान माँगने की चाह रखकर भी यह थोड़ी-सी माँग क्यों की ?

लडुग दलचि कोंचेमडिगिति वोचेल्ल !
दातपेंपु सोंपु दलपवलदे ॥ 568 ॥

म. वसुधाखंडमु वेडितो गजमुलन् वांछिचितो वाजुलन्
वेंस नूहिचितो कोरितो युवतुलन् वीक्षिचि कांक्षिचितो
पसिबालुंडव् नेरवीवडुग नी भाग्यंबुलोपाटिगा-
कसुरेंद्रुंडु पदत्रयंबडुग नी यल्पंबु नी नेर्चुने ॥ 569 ॥

व. अनिन मोगंबुनं जिरुनगव् मोलकलोत्त, गृहमेधिकि मेधावि यिट्लनियें ॥ 570 ॥

म. गोंडुगो जन्निदमो कमंडलुवो नाकुन् मुंजियो दंडमो
वडुगेनेक्कड भूमु लेक्कड करुल् वामाक्षुलश्वंबुले-
क्कड नित्योचितकर्ममेक्कड मदाकांक्षामितंबन मू-
डडुगुल् मेरय त्रोव किच्चुटये ब्रह्मांडंबु नापालिकिन् ॥ 571 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 572 ॥

कं. व्याप्ति बोंदक वगवक, प्राप्तंबगु लेशमैन बदिवेलनुचुन्
दृप्ति जेंदनि मनुजुडु, सप्तद्वीपमुलनैन जक्कंबडुने ॥ 573 ॥

शा. आशापाशमु दा गडुन्निडुपु लेदंतंबु राजेंद्र ! वा-
राशिप्रावृत मेदिनीवलय साम्राज्यंबु चेकूडियु

---

[माँगते समय] दाता के ऐश्वर्य और गरिमा का भी विचार रखना चाहिए न ? ५६८ [म.] तुम वसुधाखंड (भूखंड) माँगते, गज चाहते, घोडों की इच्छा करते, देखकर युवतियों की अभिलाषा करते, [तो ठीक होता ।] तुम अभी [दुधमुँहे] बच्चे हो, याचना करना नही जानते । इतना ही तुम्हारा भाग्य था । [मैं क्या करूँ ?] असुरों का प्रभु होकर तीन पग भूमि का यह अल्प दान कैसे दूँ ?" ५६९ [व.] इतना कहने पर, उस गृहमेधी (गृहस्थ बलि) से मेधावी (बुद्धिमान) वामन ने, जिसके मुख पर मंदहास अकुरित हो रहा था यों उत्तर दिया : ५७० [म.] छत्री, जनेऊ, कमंडल, मुंजी अथवा दंड (डंडा) चाहनेवाला मैं ब्रह्मचारी कहाँ और ये भूमि, हाथी, वामाक्षियाँ (सुंदरियाँ) और अश्व कहाँ ? मेरा विहित नित्यकर्मानुष्ठान कहाँ ? [और यह सुखभोग की सामग्री कहाँ ?] मेरी माँगी हुई तीन पग की भूमि देना ही मेरे लिए ब्रह्मांड देने के समान है । ५७१ [व.] इसके अतिरिक्त । ५७२ [कं.] लालच में पड़े बिना, अभाव में भी दुःख न करते हुए, आपसे आप प्राप्त द्रव्य-लाभ के बहुत अल्प होने पर भी, उसी को महान भाग्य समझ कर, जो मनुष्य तृप्त नही होता उसे सप्त-द्वीपों की संपत्ति देने पर भी वह संतुष्ट न होगा । ५७३ [शा.] हे राजेंद्र !

गासि बॉदिरि गाक वैन्य गय भूकांताद्दुलुन्नर्थका-
माशन् बायगनेर्चिरे मुनु निजाशांतंबुलं जूचिरे ॥ 574 ॥

सी. संतुष्टुडी भूडुजगमुल बूज्युंडु संतोषिकॅप्पुडु जरुगु सुखमु
सतोषि गाकुंट संसरहेतुवु, संतसंबुन मुक्तिसतियु दॉरकु
बूट पूटकु जगंबुन यदृच्छालाभ तुष्टिटनि देजंबु तोन पॅरुगु
परितोषहीनत ब्रभ चॅडिपोवुनु जलधार ननलंबु समयुनट्लु

आ. नीवु राजवनुचु निखिलंबु नड्डुगुट
लगवु गादु नाकु दगिन कॉलदि
येनु वेडिगॉनिन यी पदत्रयमुनु
चाल दनक यिम्मु चालु चालु ॥ 575 ॥

व. इट्लु पलुकुचुन्न खर्वुनकु नुर्वीश्वरंडुर्वीदानंबु सेयं दलंचि, कर कलित सलिल कलशुंडैन यव्वितरणगुण मुखरुनि गनि, निज विचारयुक्त दनुज राज्यचक्रुंडगु शुक्रुंडिट्लनियॆ ॥ 576 ॥

सी. दनुजेंद्र ! यीतडु धरणीसुरुड्डु गाडु देवकार्यंबु साधिंचु कॉडकु
हरि विष्णु डव्ययुं डदितिगर्भंबुन गश्यपसूनुडै गलिगॆ नकट
यॆरुग कीतनि कोर्कॆ निच्चॆद नंटिवि दैत्य संतति कुपद्रवमु वच्चु
नी लक्ष्मि तेजंबु नॆलवु नैश्वर्यंबु वंचिचि यिच्चुनु वासवुनकु

---

आशापाश (आशा रूपी रस्सी) बड़ा लंबा है, उसका अंत नहीं होता, वाराशि (समुद्र) से घिरा हुआ मेदिनी-साम्राज्य (भूमंडल का राज्य) हाथ में रखकर भी वैन्य, गय आदि भूकान्त (राजा लोग) कष्ट भोगते रहे, अर्थ (धन) और काम की आशा को वे लोग छोड़ नहीं सके, अपनी तृष्णा का अंत क्या वे देख सके ? (तृप्त नही हुए) । ५७४ [सी.] संतुष्ट रहनेवाला इस जग मे पूज्य होता है, संतोषी का [जीवन] सदा सुख में ही बीतता है; संतोष का न होना ही संसार के (बंधन का) कारण है; संतुष्ट मनुष्य को मुक्तिकांता का भी लाभ होता है । यदृच्छा-लाभ (अपने आप प्राप्त लाभ) से संतुष्ट होने (रहने) वाले का तेज (बल) जग में दिन पर दिन बढ़ताजाता है । जिस प्रकार जल-धारा से अनल (अग्नि) बुझकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार परितोषहीनता (संतोष के न होने) से मनुष्य की प्रभा (तेज) विनष्ट हो जाती है । [आ.] तुम्हें राजा जानकर तुमसे सब कुछ माँग लेना मेरे लिए समुचित नही है, [मेरे लिए जो योग्य है वह] तीन पग धरती मैंने माँगी है, उसे अपर्याप्त न कहकर दे दो, वही मुझे चाहिए। ५७५ [व.] यों कहनेवाले खर्व (बौने) को उर्वीश्वर (राजा बलि) ने उर्वीदान (भूदान) करने को सोचकर, सलिल से भरे कलित कर-कमल (हाथ) वाला होने पर (हाथ में जल भर लेने पर), उस वितरणगुण

आ. मॉनसि जगमुलॅल्ल मूडुपादंबुल
नखिल कायुडगुच्नु नाक्रमिचु
सर्वधनमु विष्णु संतर्पणमु चेसि
बड्गु पगिदि यॅट्लु ब्रतिकॅदीवु ? ॥ 577 ॥

कं. ऑक्क पदंबुन भूमियु, नॉक्कट द्रिदिवंबु ग्रॉक्कि युन्नत मूर्तिन्
दिक्कुलु गगनमु दानै, वॅक्कस मैयुन्न नॅदु वॅडलॅदु चॅपुमा ॥ 578 ॥

सी. इच्चॅद ननि पलिकि योकुन्न नरकंबु ग्रोव नीवुनु समर्थुडवॅ देव !
ये दानमुन नाश मेतॅंचु नदियुनु दानंबु गादंड्रु तत्वविदुलु
दानंबु यज्ञंबु तपमु कर्मंबुलु दा वित्तवंतुडॅ तलपवलयु
दनयिट गल सर्व धनमॅल्ल नॅदु भागमुलुगा विभजिचि काममुनकु

आ. नर्थमुनकु धर्मयशमुल काश्रित, बृंदमुलकु समत बॅट्टुनट्टि
पुरुषुडिदु नंदु बूर्णुडॅ मोविचु, दन्नु मानि चेत तगवुगादु ॥ 579 ॥

---

(दान-गुण) के कारण प्रसिद्ध [बलि] को देखकर, अपने विचार के अनुसार दनुजराज्य का चक्र घुमानेवाले शुक्र ने इस प्रकार कहा : ५७६ "[सी.] हे दनुजेंद्र ! यह तो धरणीसुर (ब्राह्मण) नहीं है, देवों का कार्य साधने के निमित्त, अदिति के गर्भ से कश्यप का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ अव्यय, हरि, विष्णु है। हाय ! यह न जानकर तुमने इसका चाहा दान देने को कहा, [इससे] दैत्य-संतति (संतान) को उपद्रव (संकट) उत्पन्न होगा, यह तुम्हारी लक्ष्मी (संपत्ति), तेज, आवास और ऐश्वर्य को वंचित कर (धोखे से लेकर) वासव (इन्द्र) को दे देगा। [आ.] लगकर यह अपनी काया (शरीर) को विराट् बनाकर तीन डगों में समस्त जग को आक्रांत कर लेगा, अपने सर्वधन (समस्त ऐश्वर्य) को विष्णु के हस्तगत करके, दरिद्र के समान तुम कैसे जीओगे ? ५७७ [कं.] जब यह एक पग में भूतल, और दूसरे में स्वर्गलोक नापकर अपनी विशाल मूर्ति से दिशाओं में और आकाश में फैलकर दुस्सह हो रहेगा, तब तुम कहाँ जाओगे ? बोलो। ५७८ [सी.] हे देव ! "दूँगा" कहकर वचन देने के बाद न दिया तो नरक प्राप्त होगा, [किंतु] तुममें उससे बच जाने की सामर्थ्य है। जिस दान के कारण नाश होगा, उसे तत्त्वविद् (शास्त्रज्ञ) दान नहीं कहते। दान, यज्ञ, तप, और कर्माचरण के बारे में स्वयं वित्तवान् (धनवान्) होकर ही विचार करना चाहिए। अपने पास का समस्त धन-संपत्ति पाँच भागों में विभाजित कर, काम (भोग), [आ.] अर्थ, धर्म, यश, और आश्रित जनों पर समान रूप से जो पुरुष व्यय करेगा, वह इह और पर (लोक-परलोक) में पूर्ण रूप से आनंद प्राप्त करेगा। अपने को वंचित रखकर किया जानेवाला [दान] कर्म उचित नहीं है। ५७९ [व.] इसके अतिरिक्त

व. अद्दियुनुं गाक यी यर्थंबुनंदु वहुभंगि वह्वृचगीतार्थंबु गल दॊकटि। सावधानुडवै यार्कणिपुमु ॥ 580 ॥

सी. अंगीकरिंचिन नखिलंबु पोवुचो ननृतंबु गादु लेदनिन नधिप !
यात्मवृक्षमु मूल मनृतंबु निश्चय मनृतमूलंबु गल्ग नात्म चॆडदु
पुष्पफलमु लात्मभूजंबुनकु सत्यमा स्रानु ब्रतुकमि नवियु जॆडुनु
फलपुष्पमुलु लेक पसचॆडि वृक्षंबु मूलंबुतो वृद्धि बॊंदुगावॆ

ते. चेटु गीडतयु लघिमयु जेंदकुंड,
निच्चु पुरुषुंडु चॆडकुंडु निद्धचरित !
काक यंचित सत्यसंगति नटंचु
निजधनंबर्थिकिच्चिन नीकु लेदु ॥ 581 ॥

आ. सर्वमैन चोट सर्वधनंबुलु
नडुग लेदटंचु ननृतमाडु
चॆनटि पंद नेमि चॆप्प ब्राणमुतोडि
शवमु वाडु वानि जन्ममेल ? ॥ 582 ॥

व. मरियु नॊक्क विशेषंबु गलदु विवरिंचॆद ॥ 583 ॥

इस संदर्भ में भाँति-भाँति के अनेक ऋचा और गीताओं का अर्थ-कथन [उपलब्ध] है, सावधान होकर सुनो। ५८० [सी.] हे राजन् ! पहले देना स्वीकार कर लेने पर भी, यदि उस दान के कारण [दाता का] सर्वस्व नष्ट होता हो तो बाद को देने से इनकार करना अनृत (असत्य) नहीं कहा जा सकता; क्योंकि आत्म रूपी वृक्ष [अस्तित्व] के लिए अनृत (असत्य) निश्चय ही मूल (जड़) के समान है, और वह अनृत रूपी मूल जब तक सुरक्षित रहता है तब तक [वृक्ष] रूपी आत्मा नष्ट नहीं होती। सत्य उस आत्मा रूपी वृक्ष के लिए फल-फूल के समान है, वृक्ष के जीवित न रहने पर उसके फल-फूल भी नष्ट हो जाते हैं, फल-फूलों के झड़ जाने पर यद्यपि वृक्ष शोभाहीन बन जाता है, फिर भी, मूल सुरक्षित रहने के कारण वृक्ष फिर से बढ़कर लहलहा सकता है। [ते.] हे इद्ध (शुद्ध) चरित वाले राजन् ! जो पुरुष स्वयं हानि, कमी या हीनता सहे बिना [दूसरों] को देता है, वह कभी विनष्ट नहीं होता। [अतः] ऐसा न करके, सत्य-संगत कहकर यदि तुम इस अर्थी (याचक) को अपना धन दे दोगे तो फिर तुम निर्धन ही रह जाओगे, [तुम्हारे लिए] कुछ भी शेष नहीं रहेगा। ५८१ [आ.] समस्त धन-संपत्ति रखते हुए भी, याचकों के माँगने पर नाहीं करके जो झूठ बोलता है, उस नीच भीरु को क्या कहना ? वह प्राण के साथ रहनेवाला शव है, उसका जन्म व्यर्थ है। ५८२ [व.] और एक विशेषता है, विवरण बतलाता हूँ, सुनो। ५८३ [आ.] हे राजन् ! वारिजाक्षियों

आ. वारिजाक्षुलंदु वैवाहिकमुलंदु
प्राण वित्त मान भंगमंदु
जकित गोकुलाग्रजन्म रक्षणमंदु
बोंकवच्चु नघमु पोंद दधिप ! ॥ 584 ॥

## अध्यायमु—२०

म. कुलमुन् राज्यमु तेजमुन् निलुपु मी कुब्जुंडु विश्वंभरुं-
डर्लति बोडु त्रिविक्रमस्फुरण वाडे निडु ब्रह्मांडमुन्
गलडे मान्प नोकंडु ना पलुकुलाकर्णिपु कर्णंबुलन्
वलदी दानमु गीनमुन् बनुपुमा वर्णिन् वदान्योत्तमा ! ॥ 585 ॥

व. अनि यिट्लु हितंबु पलुकुचुन्न कुलाचार्युनकु क्षणमात्र निमीलितलोचनुंडै यशस्वि यिट्लनियें ॥ 586 ॥

सी. निजमानतिच्चिति नीवु महात्मक, महिनि गृहस्थधर्मंबु निदिय
यर्थंबु गामंबु यशमुनु वृत्तियु, नेय्यदि प्राथिप नित्तु ननियु
नर्थलोभंबुन नर्थि बोम्मनुटेट्लु, पलिकि लेदनुकंटे बापमेद्दि
येट्टि दुष्कर्मुनि ने भरिचेंद गानि, सत्यहीनुनि मोवजाल ननुचु

---

(स्त्रियों) के तथा विवाहों के संबंध में, प्राण, वित्त (धन), मान का भग होते समय में, तथा भयभीत गो-कुल (समूह) [तथा] अग्रजन्माओं के (ब्राह्मणों के) रक्षण के समय में असत्य कहा जा सकता है, उससे अघ (पाप) न लगेगा। ५८४

## अध्याय—२०

[म.] हे वदान्योत्तम (उत्तम दाता) ! तुम अपने कुल, राज्य और तेज को बचाये रखो, यह कुब्ज (बौना) विश्वभर (विष्णु) है, यह थोड़े में नही जायगा (तृप्त न होगा); त्रिविक्रम बनने के स्फुरण से (तीनों लोकों को तीन पदों में नाप लेने के विचार से) यह सारे ब्रह्मांड में व्याप्त हो जावेगा, इसे रोकनेवाला एक भी नहीं है। मेरी बात पर कान देकर सुनो, यह दान-वान कुछ नहीं चाहिए, इस वर्णी (ब्रह्मचारी) को [वापस] भेज दो"। ५८५ [व.] इस रीति से हितवचन कह रहे कुलाचार्य (कुलगुरु) से उस यशस्वी (कीर्तिवान्) बलि ने क्षणमात्र निमीलित-लोचन होकर (आँखें मूंदकर) यों कहा। ५८६ [सी.] "हे महात्मा ! तुमने जो कहा वह सत्य है, भूतल पर गृहस्थ धर्म भी यही है। [मैं अस्वीकार नही करता] किंतु यह वचन देकर कि अर्थ (धन-संपत्ति), काम (सुखभोग), यश और वृत्ति (आजीविका) जो माँगो देता हूँ, अब अर्थ-लोभ में पड़कर याचक को [कुछ भी दिये बिना खाली हाथ] लौटा कैसे

ते. बलकदे तोंलिल भूदेवि ब्रह्मतोड
समरमंदड्गु दिरुगक च्चुकंटे
वलिकि बोंकक निजमुन बरगुकंटे
मानधनुलकु भद्रंबु मरियु गलदे ॥ 587 ॥

कं. धात्रिनि हालिकुनकु सु, -क्षेत्रमु बीजमुलु लेस्स चेकुरु भंगि
जित्रमुग दात कोवियु, बात्रमु समकूरुनट्टि भाग्यमु गलदे ? ॥ 588 ॥

शा. कारे राजुलु राज्यमुल् गलुगवे गर्वोन्नति बोंदरे
वारेरी सिरि मूटगट्टुकोंनि पोवंजालिरे भूमिप
बेरैनं गलदे शिबि प्रमुखुलं ब्रीतिन् यशः कामुलै
यीरे कोर्कुलु वारलन् मरचिरे यिक्कालमुन् भार्गवा ! ॥ 589 ॥

कं. उडुगनि ऋतुवुल व्रतमुल
बोंडगन जननट्टि पोंडवु पोंडवुन गुरुचै
यडिगेंडिनट ननु बोटिकि
निडरादे महानुभाव ! यिष्टार्थंबुल् ॥ 590 ॥

---

दूँ ? वचन देकर इनकार करने से बढकर पाप कौन सा है ? पूर्व में भूदेवी ने ब्रह्मा से कहा था न कि किसी भी प्रकार के दुष्कर्मों का भार मैं वहन कर सकती हूँ किंतु सत्यहीन का बोझा मैं कदापि सहन नहीं कर सकती। [ते.] युद्ध में विना पैर पीछे रखे (पीठ दिखाये) मर जाना, दिये हुए वचन को झूठा किये बिना सत्य पर डटे रहना —इन दोनों से वढ़कर मानधनी (अभिमानी) के लिए शुभप्रद और कुछ भी नहीं है। ५८७
[कं.] इस जग में हालिक (कृषक) को [उसके भाग्य से ही] अच्छा [उर्वर] क्षेत्र (खेत) और श्रेष्ठ बीज प्राप्त होते हैं, उसी रीति से दाता को यदि दान करने का अवकाश (अवसर) और [पाने के लिए] योग्य पात्र संयोग से मिलजाय, तो उससे वढ़कर सौभाग्य क्या होगा ? [मुझे ऐसा ही सौभाग्य अब प्राप्त हुआ है, यह एक विचित्र [संयोग है]। ५८८
[शा.] हे भार्गव (शुक्राचार्य) ! [संसार में] अब तक क्या राजा नही हुए ? क्या उनके [वड़े-व्रड़े] राज्य नहीं थे ? वे [अपने प्राभव को लेकर] क्या गर्व से फूल नहीं उठे थे ? पर, अब वे लोग कहाँ हैं ? मरकर, जाते समय क्या वे अपना ऐश्वर्य गाँठ बाँधकर ले जा सके ? इस भूमि पर उन लोगों का नाम तक है ? [इसके विपरीत] शिबि आदि नरेशों ने यश की कामना से याचकों को दान देकर उनके अभीष्ट प्रीतिपूर्वक पूर्ण किये थे न ? उन्हें इस काल में भी भुलाया तो नहीं गया (वे विस्मृत नहीं हुए)। ५८९
[कं.] हे महानुभाव ! यज्ञों और व्रतों को अविरत रूप से करते जाने पर भी जिसे देखा नहीं जा सकता वैसा सर्वोन्नत [विष्णु] छोटे आकार का

शा. आदिन् श्रीसति कोप्पुपै दनुवुपै नंसोत्तरीयंबुपै
पादाब्जंबुलपै गपोलतटिपै बालिड्लपै नूत्न म-
र्यादं जेंदु करंबु ग्रिदगुट मीदै ना करंबुट मे-
ल्गादे राज्यमु गोज्यमुन् सततमे कायंबु नापायमे ? ॥ 591 ॥

म. निरयंबैन निबंधमैन धरणीनिर्मूलनंबैन दु-
र्मरणंबैन गुलांतमैन निजमुन् रानिम्मु कानिम्मु पो
हरुडैनन् हरियैन नीरजभवुंडभ्यागतुंडैन नौ-
दिरुगन्नेरदु नादु जिह्व विनुमा धीवर्य ! वेयेटिकिन् ॥ 592 ॥

आ. नोडिविनंत यिट्टु मसलक यिच्चुचो
नेल कट्टु विष्णुडेटिमाट
कट्टेनेनि दान करुणिंचि विडुचुनु
विडुवकुंडनिम्मु विमलचरित ! ॥ 593 ॥

कं. मेरुवु तलक्रिंदैननु, बारावारंबुलिंक बाङिन लोलो
धारुणि रजमै पोयिन, दाराध्वमु बद्धमैन दप्पक यित्तुन् ॥ 594 ॥

---

बौना बन, मुझ जैसे से याचना करने आया तो उसे उसके इष्टार्थ क्यों न दिये जायँ? ५९०  [शा.] प्रथम लक्ष्मीदेवी की कबरी (जूड़े)पर, फिर उसके बदन पर, उत्तरीय (उपरने) पर, पादाब्जों (चरण-कमलों) पर कपोलतटि पर, स्तनों पर [रहकर] नूतन शोभा पानेवाला [विष्णु का] हाथ [दान लेते समय] नीचे हो और मेरा हाथ ऊपर हो —यह क्या [मेरे लिए] महत्त्व-पूर्ण नहीं है ? यह राज्य और वाज्य क्या चिरस्थायी रहेगा ? [मेरी] काया (शरीर) क्या निरपाय (नाशहीन) है ? ५९१  [म.] [यह दान देने से] चाहे मैं नरक में जाऊँ, चाहे बंधन में पड़ूँ, चाहे मेरी धरणी (राज्य) निर्मूल हो जाय, चाहे मुझे दुर्मरण मिले, [अथवा] मेरे कुल का नाश हो जाय, पर सत्य को [स्थिर] होने दो; यह अभ्यागत (अतिथि) चाहे हर (शिव) हो, [या] हरि (विष्णु) हो, [अथवा] नीरजभव (कमलसभव— ब्रह्मा) हो तो होने दो; हे धीवर्य (बुद्धिमान्) ! सुनो, मेरी जिह्वा (जीभ) कभी मुकर नहीं सकती (मेरा वचन झूठा नहीं हो सकता) हज़ार [बातें] क्यों ? ५९२  [आ.] जितना देने का [मैंने] वचन दिया, बिना संकोच, उतना देने पर भी विष्णु मुझे बंधन में क्यों डालेगा ? यह कैसी बात है (कैसी बात तुम कहते हो) ? हे विमल-चरित (पवित्र चरित्र वाले) ! यदि वह मुझे बाँध दे तो वही कृपापूर्वक फिर छोड़ देगा, यदि छोडेगा नहीं तो जाने दो, न छोड़ने दो [कोई चिंता नहीं] । ५९३  [कं.] चाहे मेरुपर्वत उलट जाय, पारावार (समुद्र) सूख जायँ, पृथ्वी अंदर ही अंदर रज (धूल) बन जाय, या चाहे तारापथ (आकाश) टूट पड़े, [मैं यह दान]

मत्त. ऎन्नडुं वरु वेडवोडट येकलंबट कन्नवा-
रन्नदम्मुलुनैन लेरट यन्निविद्यल मूल गो-
ष्ठि ऎऱिंगिन प्रोडगुज्जट येतुलॊग्गि वसिप नी
चिन्नि पापनि त्रोसिपुच्चग जित्त मॊल्लदु सत्तमा ! ॥ 595 ॥

व. अनि यिट्लु सत्यपदवी प्रमाण तत्परुंडुनु, वितरण कुतूहल सत्वरुंडुनु, विमल यशस्कुंडुनु, दृढमनस्कुंडुनु, नियत सत्यसंधुंडुनु, नर्थिजन कमल-बंधुंडुनुनैन बलि जूचि, शुक्रुंडु कोपिंचि, मदीयशासन मतिक्रमिंचुटंजेसि शीघ्रकालंबुन बदभ्रष्टुंडवु गम्मनि शपियिंचॆनु । बलियुनु, गुरुशापतप्तुं-डय्युनु, सूनृतमार्गंबुन कभिमुखुंडै युंडॆ । अप्पुडु ॥ 596 ॥

आ. व्रतुकवच्चु गाक बहुबंधनमुलैन, वच्चुगाक लेमि वच्चुगाक
जीवधनमुलैन जॆडुगाक पडुगाक, माट दिरुगलेरु मानघनुलु ॥ 597 ॥

व. अनुनव्यवसरंबुन ॥ 598 ॥

आ. दनुजलोकनाथु दयित विध्यावळि
राजवदन मदमराळगमन

---

अवश्य दूंगा [टलूंगा नहीं] । ५९४ [मत्त.] हे सत्तम (श्रेष्ठ) ! इसका कथन है कि यह कभी मांगने नहीं गया, यह अकेला है, इसके जन्मदाता और भाई-बहिन तक नहीं हैं। समस्त-विद्याओं के मूल-प्रसंग जाननेवाला प्रवीण है यह बौना। ऐसा यह जब हाथ पसार कर [मांग] रहा है तो इस नन्हें [छुटभैये] का निरादर करने को मेरा जी नहीं मानता" । ५९५ [व.] यों सत्यपद को प्रमाणित करने में तत्पर रहनेवाले, वितरण (दान) देने के कुतूहल से उतावले होनेवाले, विमल-यशस्वी (स्वच्छ कीर्ति वाले), दृढमनस्क, नियत-सत्यसंध (सदा-सत्यभाषी), याचक रूपी कमलों के लिए मित्र (सूर्य) बने हुए उस बलि को देखकर शुक्राचार्य कुपित हुआ और शाप दिया कि मेरे शासन (आज्ञा) का अतिक्रमण करने के कारण तुम शीघ्र पदभ्रष्ट हो जाओ। गुरु के शाप से तप्त (दुःखित) होकर भी, बलि सूनृतमार्ग (सत्य के मार्ग) के प्रति ही अभिमुख हो रहा। तब ५९६ [आ.] मानधनी (आत्माभिमान को ही अपनी संपत्ति माननेवाले) मनुष्यों को किसी भी प्रकार का जीवन बिताना पड़े, चाहे अनेकों बंधनों में फँस जायँ, या दरिद्रता भोगें, जीव-धन (जीवन और संपत्ति) नष्ट हो जाय, या स्वयं गिर जायँ, वे सब कुछ सह सकते हैं, किंतु बचन देकर मुकर नहीं सकते । ५९७ [व.] उस अवसर पर, ५९८ [आ.] दनुजपति बलि की दयिता (पत्नी), राजवदना (चंद्रमुखी) और मदमरालगमना (मस्त हंस की चाल चलनेवाली) विध्यावली पति का संकेत जानकर, वटु के पैर धोने के निमित्त, वर-हेम-

वट्टुनि काळ्ळु गडुग वर हेमघटमुन
जलमु दॆच्चॆ भर्त सन्न यॆड्गि ॥ 599 ॥

व. अय्यवसरंबुन गपटवटुनकु नद्दानवेंद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 600 ॥

कं. रम्मा माणवकोत्तम ! लॆम्मा नी वांछितंबु लेदनकित्तुन्
दॆम्मा यडुगुल निटु रा, -निम्मा गडुगंगवलयु नॆंटिकि दडयन् ॥ 601 ॥

म. बलि दैत्येंद्र करद्वयीकृत जलप्रक्षाळन व्याप्तिकिन्
जलजाताक्षुडु साचॆ योगिसुमनस्संप्राथित श्रीदमुन्
गलितानम्र रमाललाट पदवी कस्तूरिका शादमुन्
नळिनामोदमु रत्ननूपुरित नानावेदमुं बादमुन् ॥ 602 ॥

कं. सुरलोक समुद्धरणमु, निरत श्रीकरण मखिल निगमांतालं-
करणमु भवसंहरणमु, हरिचरणमु नीट गडिगॆ नसुरोत्तमुडुन् ॥ 603 ॥

व. इट्लु धरणीसुर दक्षिणचरण प्रक्षाळनंबु चेसि, वामपादंबु गडिगि, तत्पावन जलंबु शिरंबुनं जल्लुकॊनि, वाचि देशकालादि परिगणनंबु सेसि ॥ 604 ॥

---

घट (सुंदर सोने के कलश) में जल भरकर लायी। ५९९ [व.] उस अवसर पर, कपट-वटु से दानवेंद्र (राक्षसराजा) ने यों कहा: ६०० [कं.] "हे माणवकोत्तम (उत्तम बाल ब्रह्मचारी)! आओ, तुम्हारा वांछित [इच्छा] नकारे बिना दे देता हूँ; उठो! अपने पग इधर दो, धोना चाहिए आगे बढ़ाओ, अब देर क्यों करनी है?" ६०१ [म.] दैत्येंद्र बलि के करद्वयी (दोनों हाथों) से किये जा रहे प्रक्षालन के निमित्त जलजाताक्ष (कमललोचन— विष्णु) ने अपने चरण आगे बढ़ाये जो योगियो तथा देवों को उनसे प्राथित (माँगी हुई) श्री (सपत्ति) प्रदान करनेवाले हैं, जो आनम्र (झुकी = दंडवत् करनेवाली) रमा (लक्ष्मी) देवी के ललाट-पदवी (माथे) पर लगे कस्तूरिका-शाद (कस्तूरी-पक) से कलित (सुंदर) है, जो नलिनामोद (अलियों को प्रसन्न करनेवाले = कमल) हैं, और रत्न-जटित-नूपुर बने नाना वेदों से सुशोभित है। ६०२ [कं.] असुरोत्तम (उत्तम राक्षस— बलि) ने हरि का वह चरण पानी से धोया जो सुरलोक (स्वर्ग) का समुद्धार करनेवाला है, जो सदा संपत्तिप्रद है, अखिल वेदांतों (दर्शनों) का अलंकरण (भूषण) बना हुआ है, और भव (जनन-मरणादि संसार) का संहार करनेवाला है (भक्तों का भवबध छुड़ानेवाला है)। ६०३ [व.] यों धरणीसुर (ब्राह्मण) का दक्षिण चरण (दाहिने पैर) का प्रक्षालन करके [फिर] वामपाद (बायाँ पैर) धोकर, वह पावन जल शिर पर छिड़ककर [अनंतर] बलि ने आचमन करके, देश-काल आदि का परिगणन करके, ६०४ [शा.] "विप्राय प्रकट व्रताय भवते विष्णु-

शा. "विप्राय प्रकट व्रताय भवते विष्णुस्वरूपाय वे-
दप्रामाण्य विदे त्रिपाद धरणीं दास्यामि" यंचु ग्रिया-
क्षिप्रुंडै दनुजेश्वरुंडु वडुगुं जेसाचि पूजिचॆं ब्र-
ह्मप्रीतम्मनि धारवोसॆं भुवनंबाश्चर्यमु वोंदगन् ॥ 605 ॥

व. तत्कालंबुन ॥ 606 ॥

आ. नीरधार बडगनीक यड्डंबुगा
गलशरंध्र मापगानु दॆलिसि
हरियु गाव्युनेत्रमट्टु कुशाग्रंबुन
नडुव नेकनेत्रुडय्यॆ नतडु ॥ 607 ॥

व. अंत ॥ 608 ॥

म. अमराराति कराक्षतोज्झित पवित्रांभः कणश्रेणिकिं
गमलाधीश्वरुडॊड्डॆ खंडित दिवौकस्वामि जिन्मस्तमु
गमलाकर्षण सुप्रशस्तमु रमाकांता कचोपास्तमुन्
विमल श्रीकुच शात चूचुकतटी विन्यस्तमुन् हस्तमुन् ॥ 609 ॥

कं. मुनिजन नियमाधारनु, जनितासुर युवति नेत्र जलकण धारन्
दनुजेंद्र निराधारनु, वनजाक्षुडु गॊनियॆं बलिविवर्जित धारन् ॥ 610 ॥

---

स्वरूपाय वेदप्रामाण्य विदे त्रिपाद धरणी दास्यामि"— (ब्रह्मचर्य व्रत में प्रगट हुए, वेद के प्रमाण से समझे जानेवाले, विष्णुस्वरूपी, तुम ब्राह्मण को त्रिपाद धरणी [तीन पग ज़मीन] दे दूंगा) —यों कहते हुए तुरंत क्रिया-शील हो, उस दनुजेश्वर (बलि) ने हाथ फैलाकर वटु का पूजन किया, फिर "ब्रह्मार्पण" कहकर जल की धारा छोड़ी, जिसे देख सारा भुवन (विश्व) आश्चर्यचकित हुआ। ६०५ [व.] तत्काल (उस समय) ६०६ [आ.] जब शुक्र ने [सूक्ष्म रूप से] जलधारा को नीचे गिरने से रोकते हुए कलश का रंध्र मूंद दिया तो उसे जानकर हरि ने कुश की नोक उसकी आंख में चुभो दी जिससे वह (शुक्र) एक नेत्र वाला (काना) बन गया। ६०७ [व.] तब ६०८ [म.] अमराराति (देवशत्रु) बलि के हाथ से अक्षतों-सहित गिरनेवाली पवित्र जलधारा को ग्रहण करने के लिए कमलाधीश्वर (लक्ष्मीपति— विष्णु) ने अपना हाथ पसारा जो इन्द्र को जीतनेवालों (राक्षसों) के मस्तकों को खंडित करनेवाला है, कमला के आकर्षण (निकट खींचने के कारण) से प्रशस्त है, रमाकांता (लक्ष्मीदेवी) के कचभार (केशपाश) को संवारनेवाला है, और जो लक्ष्मी के तने हुए कुचों के चूचुकों पर रखा जाता है। ६०९ [कं.] बलि ने [दान देते हुए] जो जलधारा विवर्जित की (छोड़ी), उसे वनजाक्ष ने (कमललोचन— विष्णु ने) स्वीकार किया, दान की वह जलधारा मुनिजनों के नियमों

आ. कमलनाभु नॆंड्रिगि कालंबु देशंबु
नॆंड्रिगि शुक्रु माट लॆंड्रिगि नाश-
मॆंड्रिगि पात्रमनुचु निच्चॆ दानमु बलि
महि वदान्युडोकडु मरियु गलडॆ ? ॥ 611 ॥

कं. क्षिति दानमिच्चु नतडुनु, नतिकांक्ष बरिग्रहिंचु नतडुनु दुरित-
च्युतुलै शतवत्सरमुलु, शतमख लोकमुन ग्रीड सलुपुदुरॆलमिन् ॥ 612 ॥

व. अट्लु गावुन ने दानंबुनु भूमिदानंबनकु सदृशंबु गानेरदु। कावुन वसुंधरा-
दानं बिच्चिति। उभयलोकंबुलं गीर्ति सुकृतंबुलु वडयुमु। अनि
पलिकि यम्मायावटुंडिट्लनियॆ ॥ 613 ॥

कं. इदि येमि वेडितनि नी
मदि वगवक धारवोयुमा, सत्यमु पॆं-
पॊंदवग गोरिन यर्थ-
विदि यिच्चुट मुज्जगंबुलिच्चुट माकुन् ॥ 614 ॥

व. अनि पलिकिन पलुकुलकु हर्ष निर्भर चेतस्कुंडै वैरोचनुंडु ॥ 615 ॥

आ. पुट्टि नेर्चुकॊनेनॊ पुट्टक नेर्चॆनो,
चिट्टि बुद्धुलिट्टि पॊट्टि वडुगु

---

का आधार है, असुर युवतियों के नेत्रों की अश्रुधारा है, दनुजेंद्र को निराधार बनानेवाला है। ६१० [आ.] यह जानकर कि दान लेनेवाला विष्णु है, काल और देश को [अपने अनुकूल नहीं है] ऐसा जानकर, शुक्राचार्य के वचनों को [अपने हित में नहीं है] ऐसा जानकर [यह दान अपने] विनाश का कारण बनेगा, बलि ने [वामन को योग्य] पात्र मानकर उसे यह दान दिया। महि (भूतल) पर ऐसा वदान्य (दाता) दूसरा कौन होगा ? (कोई नहीं है।) ६११ [कं.] [वामनने कहा :] "क्षिति (भूमि) का दान करनेवाला, और चाह से उसे स्वीकार करनेवाला —दोनों पाप से मुक्त होकर, शतमख-लोक में (स्वर्गलोक में) शतवत्सर सुखभोग करते हुए प्रेम से रहेंगे। ६१२ [व.] अतः और कोई भी दान भूमिदान के सदृश नहीं है, तुमने वसुंधरा (भूमि) का दान दिया। इस कारण से दोनों लोकों में तुम कीर्ति और सुकृत (पुण्य) प्राप्त करोगे।" यों कहकर उस मायावटु ने [फिर] कहा। ६१३ [कं.] "यह क्या दान माँगा तुमने" —यों कहकर तुम मन में चिंता मत करो, संकोच छोड़ तुम भूमि धारादत्त करो। इससे सत्य की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, मेरा मनचाहा दान देना तीनों लोकों को देने के समान होगा।" ६१४ [व.] इस प्रकार कहे वचनों से वैरोचन (बलि) का चित्त हर्ष-निर्भर हुआ, ६१५ [आ.] "इस बौने वटु ने यह चोचलापन जन्म लेने के बाद सीखा या

पॊट्टनुन्न वल्ल वूमॆलु ननि नव्वि
यॆलमि धरणिदानमिच्चॆ नपुडु ॥ 616 ॥

कं. बलिचेसिन दानमुनकु
नळिनाक्षुडु निखिलभूतनायकुडगुटं
गलकलमनॆ दशदिक्कुलु
भळिभळि यनि पॊगडॆ भूतपंचक मनघा ! ॥ 617 ॥

आ. ग्रह मुनींद्र सिद्ध गंधर्व किन्नर, यक्ष पक्षि देवताहि पतुलु
पॊगडिरतनि पॆंपु वुष्पवर्षंबुलु, गुरिसॆ देवतूर्यकोटि मॊरसॆ ॥ 618 ॥

व. इट्लु धारा परिग्रहंबु चेसि ॥ 619 ॥

### वामनमूर्ति विश्वरूपमु नॊंदि विजृंभिंचुट

शा. इंतिंतै वटु डिंतयै मरियु दानिंतै नभोवीथिपै
नंतै तोयद मंडलाग्रमुन कल्लंतै प्रभाराशिपै
नंतै चंद्रुनि कंतयै ध्रुवुनिपै नंतै महर्वाटिपै
नंतै सत्यपदोन्नतुंडगुचु ब्रह्मांडांत संवर्धियै ॥ 620 ॥

---

जनमने के पूर्व ही, पता नहीं ! सारी मोहिनी विद्या इसके पेट में भरी पड़ी है।" —यों कहकर वलि हँस पडा और फिर आनंद से भूमि का दान दे दिया। ६१६ [कं.] हे अनघ (निष्पाप) राजन् ! नलिनाक्ष (कमल-नेत्र— विष्णु) अखिल भूतों का नायक होने के कारण, बलि ने जब दान दिया तो उसे देख दसों दिशाएँ खिल उठी, भूतपंचक ने ! वाह ! कहकर सराहा। ६१७ [आ.] ग्रह, मुनींद्र, सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, यक्ष, पक्षी, देवता, और अहिपतियों (नाग राजाओं) ने भी बलि की महानता की प्रशंसा गायी। फूल बरसाये, देवों ने तूर्यनाद किया (तुरही बजायी)। ६१८ [व.] इस प्रकार धारा [दत्त दान] स्वीकार करने के बाद। ६१९

### वामन मूर्ति का विश्वरूप धारण कर विजृंभित होना

[शा.] वह बौना वटु इतना-इतना बढता हुआ नभोवीथी (आकाश मार्ग) पर उतना ऊँचा हुआ, [फिर] मेघमंडल से उतना ऊपर होता हुआ प्रभाराशि (कांतिसमूह) से उतना ऊँचा बन गया, [फिर] चंद्र से उतना [उन्नत] होता हुआ ध्रुव से उतना आगे हो गया, [पश्चात्] महर्लोक से उतना ऊपर हुआ, फिर सत्यपद (ब्रह्मलोक) से उन्नत होता हुआ [अंत में] ब्रह्मांड के छोर तक वर्धित हुआ (बढ़ गया)। ६२० [म.] वटु के

म. रविबिंबंबुपमिंप बात्रमगु छत्रंबै शिरोरत्नमै
श्रवणालंकृतमै गळाभरणमै सौवर्ण केयूरमै
छविमत्कंकणमै कटिस्थलि नुवंचद्घंटयै नूपुर
प्रवरंबै पदपीठमै वट्टुडु दा ब्रह्मांडमुन्निडुचोन् ॥ 621 ॥

व. इट्लु विष्णुंडु गुणत्रयात्मकंबगु विश्वरूपंबु धरियिंचिन, नभंबुनु, दिवंबुनु, भुवनंबुनु, दिशलुनु, समुद्रंबुलुनु, जलदचलदखिलभूत निवहंबुलुं दानयै येकीभविंचि, क्रमक्रमंबुन भूलोकंबुनकुं वोडवै, भुवर्लोकंबु नतिक्रमिंचि, सुवर्लोकंबुनुं दलकडचि, महर्लोकंबु दाटि, जनोलोकंबुनकु मीदै, तपोलोकंबुनकु नुच्छ्रबुंडै, सत्यलोकंबुकंटें नौन्नत्यंबु वहिंचि, येंडलिरुमुलु, संदुलु, रंध्रंबुलु लेकुंड निंडि, महादेहमहितुंडै, चरणतलंबुन रसातलंबुनु, वादंबुल महियुनु, जंघल महीध्रंबुलुनु, जानुवुलं बतत्रि समुदयंबुलुनु, नूरुवुल निंद्रसेन, मरुद्गणंबुलुनु, वासस्थलंबुन संध्ययु, गुह्यंबुन ब्रजापतुलुनु, जघनंबुनं दनुजुलुनु, नाभिनि नभंबुनु, नुदरंबुन नुदधि सप्तकंबुनु, नुरंबुन दारकानिकरंबुनु, नुरोजंबुल ऋतसत्यंबुलुनु, हृदयंबुन धर्मंबुन, मनंबुन जंद्रुंडुनु, वक्षंबुन गमलहस्तयगु लक्ष्मियु, गंठंबुन सामादि समस्त वेदमुलुनु, भुजंबुलं बुरंदरादि देवतलुनु, गर्णंबुल दिशलुनु, शिरंबुन नाकाशंबुनु,

---

[क्रमशः बढ़कर] ब्रह्मांड में व्याप्त होते समय, रविबिंब प्रथमतः उसके छत्र से उपमित होने योग्य दिखाई दिया; फिर शिरोरत्न हो, फिर करनफूल हो, फिर कंठाभरण हो, फिर सुवर्ण केयूर (बाजूबंद) हो, फिर छबीला कंकण हो, फिर कटि पर बँधा सुंदर घंटा हो, फिर श्रेष्ठ नूपुर हो, [अंत में] पादपीठ (पीढ़ा) बनकर गोचर हुआ। ६२१ [व.] इस प्रकार विष्णु ने जब गुणत्रयात्मक विश्व का रूप धारण किया तो नभ (आकाश), दिव, भुवन, दिशाएँ, समुद्र, चल-अचल भूतों का समूह सब वही होकर एक हुए। वह क्रम-क्रम से भूलोक से ऊँचा हो, भुवर्लोक का अतिक्रमण कर (पारकर), सुवर्लोक को लाँघकर, महर्लोक से आगे बढ़, जनोलोक के ऊपर हो, तपोलोक से दीर्घ हो, सत्यलोक से औन्नत्य पाकर, स्थल, आड़, संधि, सूराख, छेद, रंध्र को न छोड़े सर्वत्र समाकर महादेह से महिमान्वित होकर रहा। उसके चरणतल में रसातल, पादों में भूमि, जाँघों में महींध्र (महीधर), जानुओं में पतत्रि-समुदय (पक्षिसमूह), ऊरुओं में इंद्रसेन और मरुद्गण, कपड़े में संध्या, गुह्य स्थान में प्रजापति, जघन (चूतड़) में दनुज, नाभि में नभ (आकाश), उदर (पेट) में उदधि-सप्तक (सप्त समुद्र), उर में तारकानिकर (नक्षत्रसमूह), उरोजों (स्तनों) में ऋत और सत्य, हृदय में धर्म, मन में चंद्र, वक्ष पर कमलहस्त लक्ष्मी, कंठ में साम आदि समस्त वेद, भुजाओं पर पुरंदर (इंद्र) आदि देवतागण, कर्णों में दिशाएँ, शिर पर

शिरोजंबुल मेघंबुलुनु, नासापुटंबुन वायुवुलुनु, नयनंबुल सूर्युँडुनु, वदनंबुन वह्निनयु, वाणि नखिलच्छंदस्समुदयंबुनु, रसनंबुन जलेशुंडुनु, भ्रूयुगळंबुन विधिनिषेधंबुलुनु, ड्रॆप्पल नहोरात्रंबुलुनु, ललाटंबुन गोपंबुनु, नधरंबुन लोभंबुनु, स्पर्शंबुन गामंबुनु, रेतंबुन जलंबुनु, पृष्ठंबुन नधर्मंबुनु, ग्रमणंबुन यज्ञंबुनु, छायवलन मृत्युवु, नगव् वलन ननेक माया विशेषंबुलुनु, रोमंबुल नोषधुलुनु, नाडीप्रदेशबुल नदुलुनु, नखंबुल शिललुनु, बुद्धि नजुंडुनु, ब्राणंबुल देवर्षिगणंबुलुनु, गात्रंबुन जंगम स्थावर जंतु संघंबुलुनु गलवाडै, जलधर निनद शख शार्ङ्ग सुदर्शन गदादड खड्गाक्षय बाण तूणीर विभ्राजितुंडुनु, मकरकुंडल किरोट केयूर हार कटक कंकण कौस्तुभ मणिमेखलांबर वनमालिका विराजितुंडुनु, सुनंद नंद जय विजय प्रमुख परिचरवाहिनी संदोह परिवृतुंडुनु, नसमान तेजोविलसितुंडुनुनै, ब्रह्मांडंबु तन मेनि कप्पु तॆरंगुन नुंड विजृंभिंचि ॥ 622 ॥

म. ऒक पावंबुन भूमि गप्पि दिवि वेऱॊकटन् निरोधिंचि यॊं-
डॊकटं मीद जगंबु लॆल्ल दॊडि नॊंडॊकटन् विलंघिंचि प-
ट्टक ब्रह्मांड कटाहमुं बगिलि वेंड्रंबै पगुल् गान रा
नॊकडै वाग्वृगलभ्युडै हरि विभुंडॊप्पारॆ विश्वाकृतिन् । 623 ॥

आकाश, शिरोजों (बालों) में मेघ, नासापुटों (नथुनों) में वायु, नयनों में सूर्य, वदन (मुँह) मे वह्नि (आग), वाणी में अखिल छदस्समुदाय (समस्त वेद), रसना (जीभ) पर जलेश (वरुण), भ्रूयुगल (भौंहों) में विधिनिषेध, पलकों पर अहोरात्र (रात-दिन), ललाट पर कोप, अधर (ओठ) पर लोभ, स्पर्श (चमड़े) में काम, रेतस् (वीर्य) में जल, पृष्ठ में अधर्म, क्रमण (पदचलन) में यज्ञ, छाया में मृत्यु, हँसी में अनेक माया विशेष, रोमों में ओषधियाँ, नाड़ी-प्रदेशों में नदियाँ, नखों में शिलाएँ, बुद्धि में अज (ब्रह्मा), प्राणों में देवर्षिगण, गात्र (शरीर) में स्थावर जगम जंतुसंघ समाये हुए थे । जलद-निनद (मेघ-सा गर्जन) करनेवाला शंख, शार्ङ्ग, सुदर्शन, गदादंड, खड्ग, अक्षय बाणों वाले तूणीर से विभ्राजित (प्रकाशमान) होकर, मकरकुंडल, किरीट, केयूर, हार, कटक, कंकण, कौस्तुभ, मणिमेखला (जड़ाऊ कमरबंद), अंबर (वस्त्र) और वनमालिका से विराजित होकर, सुनंद, नंद, जय, विजय, प्रमुख (आदि) परिचर-वाहिनी-संदोह से परिवृत होकर, असमान तेज से विलसित होकर, ब्रह्मांड को अपने शरीर के ऊपर का आवरण-सा बनाते हुए विष्णु परिव्याप्त हो रहा । ६२२ [म.] [वटु ने] एक पग से भूमि ढककर, दूसरे से स्वर्ग का निरोध किया, एक और पग से ऊपर के लोकों को एक-एक करके लाँघता चला गया, किंतु ब्रह्मांड रूपी कटाह में अट न सका तो

आ. ऒक पदंबु क्रिंद नुर्वि पद्ममुनंटि
कोनिन बंकलवमु कोमरु दाल्चॆ
नॊकटि मीद दम्मि कॊदिगिन तेटि ना
वॆलसॆ मिन्नु नृप ! त्रिविक्रिममुन ॥ 624 ॥

व. तत्समयंबुन ॥ 625 ॥

आ. जगमु लॆल्ल दाटि चनिन त्रिविक्रमु
चरणनखरचंद्र चंद्रिकलनु
बॊनुगु वडियॆ सत्यमुन ब्रह्मतेजंबु
दिवसकरुनि रुचुल दिविय भंगि ॥ 626 ॥

## अध्यायमु—२१

सी. भवबंधमुल बासि ब्रह्मलोकंबुन गापुरंबुलु सेयु घनुलु राजु-
ला मरीच्यादुलु ना सनंदादुलु ना दिव्ययोगींद्रु लचट नॆपुडु
मूर्तिमंतंबुलै म्रोयु पुराण तर्काम्नाय नियमेतिहास धर्म
संहितादुलु गुरु ज्ञानाग्नि निर्दग्ध-कर्मुलै मरियुनु गलुगुनट्टि

---

ब्रह्मांड का कटाह (आवरण) फट पड़ा और प्रचंड ताप व्याप्त हुआ; छप्पर के विवर में वह प्रभु (हरि) जो वाक्-दृक्-अलभ्य (वाक् और दृष्टि के लिए अलभ्य) है, एक ही एक होकर विश्वाकार में विलसित हो रहा । ६२३ [आ.] उसके एक चरण के नीचे की पृथ्वी, कमल के नीचे लगे हुए पंक-लव (ज़रा-से कीचड़) के समान, शोभित हुई; हे राजन् ! दूसरे चरण पर का गगन, कमल के ऊपर लगकर बैठा हुआ भ्रमर-सा, गोचर हुआ । ६२४ [व.] उस समय ६२५ [आ.] सभी जगों को पार कर व्याप्त हुए उस त्रिविक्रम (विष्णु) के चरण-नखचंद्र की चंद्रिका के सामने सत्यलोक का ब्रह्मतेज उसी प्रकार फीका पड़ गया जैसे दिनकर (सूर्य) की किरणज्योति के सामने दीपक कांतिहीन हो जाता है । ६२६

## अध्याय—२१

[सी.] भवबंधों (संसार के बंधनों) से छूटकर, ब्रह्मलोक में वास करनेवाले वे महान राजा लोग, मरीचि आदि [तथा] वे सनंद आदि, वे दिव्य योगींद्र, उस प्रदेश में सदा मूर्तिमान् होकर मुखरित होनेवाले पुराण, तर्क, आम्नाय (वेद), नियम (धर्मशास्त्र), इतिहास, संहिता आदि; और महान् ज्ञानाग्नि से जिनके कर्म दग्ध नहीं हुए, [आ.] ऐसे

आ. वारलॆल्ल जॊच्चि वच्चि सर्वाधिपु
नंघ्रि जूचि म्रॊक्कि रधिकभक्ति
दम मनंबुलंदु दलचु निधानंबु
गंटि मनुचु नेडु मंटि मनुचु ॥ 627 ॥

मा. तन पुट्टिल्लिदॆ पॊम्मटंचु नजुडुंबन्नाभि पंकेरुहं-
बु निरीक्षिंचि नटिंचि युन्नतपदंबुं जूचि तत्पाद से-
चनमुं जेसॆ गमंडलूदकमुलं जल्लिंचि तत्तोयमुल्
विनुवीथिं ब्रवहिंचॆ देवनदि ना विश्वात्मु कीर्ति प्रभन् ॥ 628 ॥

व. तत्समयंबुन ॥ 629 ॥

सी. योगमार्गंबुन नूहिंचि बहुविध पुष्पदामंबुल बूज चेसि
दिव्य गंधंबुलु दॆच्चि समर्पिंचि, धूपदीपमुल दोड्तोड निच्चॆ
भूरि लाजाक्षतंबुलु सल्लि, फलमुल गानुक लिच्चि रागमुल बॊगडि
शंखादि रवमुल जयघोषमुलु सेसि, करुणांबुनिधि ! त्रिविक्रम ! यटंचु

आ. ब्रह्म मॊदलु लोकपालुरु गॊनियाडि-
रॆल्ल दिशल वनचरेश्वरुंडु
जांबवंतुडरिगि चाटॆ भेरीध्वनि
वॆलय जेसि विष्णु विजयमनुचु ॥ 630 ॥

---

सभी लोग वहाँ चले आये और सर्वाधिप (विष्णु) के चरण का दर्शन कर, अधिक भक्तिपूर्वक सिर नवाये। उन सबने मन में कहा कि यही हमारी मनोवांछित निधि है, इसे पाकर हम जी गए हैं। ६२७ [म.] विष्णु की नाभि से निकले पंकेरुह (कमल) को निरख ब्रह्मदेव उसे अपना जन्मस्थान जान आनंदित हुआ, फिर उसका (विष्णु का) समुन्नत पद (चरण) देखकर, कमंडल के जल से उसका अभिषेचन किया (धोया)। वह तोय (जल) देवनदी (गंगा) के रूप में विश्वात्म की कीर्ति की प्रभा के समान आकाश-मार्ग से प्रवाहित हुआ। ६२८ [व.] उस समय में। ६२९ [सी.] ब्रह्म से लेकर सभी लोकपालों ने योगमार्ग से चिंतन करके बहुविध पुष्पदामों (मालाओं) से उस विष्णुपाद का पूजन किया, दिव्यगंध लाकर समर्पित की, धूप-दीप जलाकर, झट समर्पित किया, लाजा और अक्षत डालकर, फलों का उपहार देकर, राग गाकर, उसकी स्तुति की, [आ.] "हे करुणांबुनिधी (करुणासागर)! त्रिविक्रम!" कहकर शखारव (शंख की ध्वनि) से जयघोष किया। वनचरेश्वर जांबवंत ने "विष्णु की जय" पुकारते हुए चलकर दशों दिशाओं में जय-भेरी लगा दी। ६३० [कं.] सभी जगों में आप ही

कं. अग्नि जगंबुल दानै, -युन्न जगन्नाथु जूड नीगि भाविपं-
गन्नंदक मनमंदक, सन्नुतुलं जेसिरपुडु सभ्युलु बलियुन् ॥ 631 ॥

व. अंत नांध्यन बूर्वप्रकारंबुननुन्न वामनुनि गनि, पदत्रय व्याजंबुन नितडु सकल महीमंडलंबु नाक्रमिचें। कपट वटुरूप तिरोहितुंडगु विष्णुंडनि येरुंगक मन दानवेंद्रुंडु सत्यसंधुंडु गावुन माटदिरुगक यिच्चें। अतनि वलन नेरंबु लेदु। ई कुब्जुंडप्रतिहततेजःप्रभावंबुन निज्जगंबुलं बरिग्रहिंचि, पर्जन्यादुलकु विसर्जनंबुसेयंदलंचि युन्नवाडु। ई वटुनि दूरि पारनीक निजिचुट कर्जंबनि, तर्जनंबुलु गर्जनंबुलु सेयुचु, वज्रायुधादि मरुज्जेतलगु विप्रचित्ति राहु हेतिप्रहेति मुख्युलगु रक्कसुलुक्कु मिगिलि, युद्धंबुनकु सन्नद्धुलै, परशु पट्टस भल्लादि साधनंबुलु धरियिंचि. कसिमसंगि, मुसरिकोनि, दशदिशल ब्रसरिंचिनं जूचि, हरि परिचरुलगु सुनंद नंद जय जयंत विजय प्रबलोद्बल कुमुद कुमुदाक्ष तार्क्ष्य पुष्पदंत विष्वक्सेन श्रुतदेव सात्वतुलनु दंडनाथु लयुत वेदंड समुद्दंड बलुलै, तमतम यूधंबुल नायुधंबुलतो गूडकोनि, दानवानीकंबुलं बरलोकंबुन कनुपुवारलै

---

आप होकर भरे हुए उस जगन्नाथ (विष्णु) को अच्छी तरह देखने और विधिपूर्वक भावना करने के लिए न आँख पहुँचती थी, न मन; तब वलि और सभ्यों [एकत्रित सदस्यों] ने [भगवान की] सन्नुतियाँ की। ६३१

[व.] तब धीरे से पहले की रीति पर वटु बने वामन को देखकर [दानवों ने आपस में कहा] "पदत्रय (तीन पग) के व्याज से (बहाने से) इसने समस्त महीमंडल (भूमंडल) पर आक्रमण किया; यह न जानकर कि यह कपट-वटु के रूप में छिपा हुआ विष्णु है, हमारे दानवेंद्र ने, सत्यसंध होने के कारण, वचन-भंग किये बिना, इसे दान दे दिया। इसमें उसका (राजा का) कोई अपराध नहीं है; यह बौना अप्रतिहत (जो रोका नहीं जा सकता) तेज के प्रभाव से इस जगत को अपनाकर, पर्जन्य (इंद्र) आदि को दे देना चाहता है। [अतः] इस वटु की निंदा कर, भागने न देकर जीत लेना हमारा काम (कर्तव्य) है।" यों कहकर, वज्रायुध (इंद्र) आदि मरुत्-जेता (देवों पर) [पूर्व में] (विजय पाये हुए) विप्रचित्ति, राहु, हेति, प्रहेति आदि राक्षस वीर, प्रबल होकर तर्जन-गर्जन करते हुए, युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए। जब वे लोग परशु, पट्टस, भाला आदि साधन लिये, उभड़ कर एकत्रित हो दसों दिशाओं में फैल गये, तो उन्हें देखकर, सुनंद, नंद, जय, जयंत, विजय, प्रबल, उद्बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, तार्क्ष्य, पुष्पदंत, विष्वक्सेन, श्रुतदेव, सात्वत् नामक हरि के परिचर (सेवक) जो दंडनाथ, और दस हज़ार हाथियों के समान उद्दंड बली थे, अपने-अपने सायुध (सशस्त्र) दलों को साथ लेकर दानव-संघ को परलोक भेजनेवाले थे,

युंड, वारल नॆंदुकॊनि, कदनंबुनकुं बरवसंबु सेयुचुन्नं गनुंगॊनि, शुक्रु शापंबु दलंचि दनुजवल्लभुंडिट्लनियॆं ॥ 632 ॥

सी. राक्षसोत्तमुलार ! रंडु पोराडक कालंबुगादिदि कलहमुनकु
सर्वभूतमुलकु संपदापदलकु ब्रभुवैन दैवंबु परिभविंप
मन मोपुदुमॆ ? तॊल्लि मनकु राज्यंबुनु सुरलकु नाशंबु सॊरिदि निच्चि
विपरीतमुग जेयु वेल्पु नेमंदुमु मनपालि भाग्यंबु महिम गाक

ते. वॆरचि पलुमारु बारॆडि विष्णुभट्टुलु
मिम्मु गॆलुचुट दैवंबु मेर गादॆ
मनकु नॆप्पुडु दैवंबु मंचि दगुनु
नाडु गॆलुतमु पगवारि नेडु वलदु ॥ 633 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 634 ॥

कं. बलु दुर्गंबुलु सचिवुलु, बलमुलु मंत्रौषधमुलु बहुशेमुषियुं
गलिगियु सामोपायं, -बुल गालंबॆरिगि नृपुडु पोरुट यॊप्पुन् ॥ 635 ॥

व. अट्लु गावुन रणंबुन किप्पुडु शत्रुल कॆदुरु मोहरिचुट कार्यंबु गादु।

---

तब उनका सामना करके, युद्ध करने जा रहे अपने अनुचरों से दनुजवल्लभ ने (राक्षसराज बलि ने) शुक्र के दिये शाप के बारे में सोचकर यों कहा। ६३२ [सी.] हे राक्षसोत्तम ! आ जाओ, युद्ध मत करो। कलह के लिए यह [उपयुक्त] काल (समय) नहीं है; सर्वभूतों (प्राणियों) की संपत्ति और विपत्तियों के प्रभु-[विष्णु] दैव का पराभव करना हमारे लिए उचित नही है। पूर्व में हम लोगों को राज्य और सुरों (देवताओं) को विनाश यथाक्रम देकर, इस समय विपरीत करनेवाले देवता (विष्णु) को हम क्या कहे ? (उसका हम क्या कर सकते है ?) यह तो हमारे भाग्य का प्रभाव है, नही तो और क्या है ? (दुर्भाग्य का ही फल है)। [ते.] भयभीत होकर कई बार[हार कर]भाग जानेवाले विष्णु के भटों (सैनिकों) का तुम पर विजय पाना दैव का ही विधान है, और कुछ नहीं]। -जिस दिन दैव हमारे लिए अनुकूल होगा, उस दिन शत्रुओं को हम जीतेगे, आज नहीं। ६३३ [व.] इसके अतिरिक्त। ६३४ [कं.] बहुत से दुर्ग, सचिव (मंत्री), सेना, मंत्र, औषध, और बहु-शेमुषी (-बुद्धि-वैभव) रखते हुए भी राजा को सामोपाय से (मीठे वचनों से) काम लेना या [अनुकूल] समय जानकर [शत्रु से] युद्ध करना उचित है। ६३५ [व.] अतः इस समय रण में शत्रुओं का सामना करने से काम न चलेगा; अनुकूल समय के आने पर हम उन्हें जीतेंगे। अब बिना खोज किये हट जाओ।" —इस प्रकार कहने पर हटकर राक्षस वर्ग

मनकुनुंदगु कालंबुन जयितमु। नलगक तलंगुंडनिन, दलंगि, भागवत-
भट भीतुलै, चिविक, रक्कसुलु रसातलंबुकुं जनिरि। अप्पुडु हरि हृदयं-
बॅरिगि, ताक्ष्यनंदनुंडु यागस्तुत्याहंबुन वारुणपाशंबुल नसुरवल्लभुनि
बंधिंचॆ। अंत ॥ 636 ॥

कं. बाहुलु पदमुलु गट्टिन, श्रीहरिकृप गाक येमि सेयुदु ननि सं-
देहिंपक बलि निलिचॆनु, हाहारवमॆसगॆ दशदिगंतमुलंतुन् ॥ 637 ॥

कं. संपद चॆडियुनु दैन्यमु, गंपंबुनु लेक दॊटिकंटॆनु बॆंपुं-
बॆंपुनु नॆरुकयु धैर्यमु, वंपनि सुरवैरि जूचि वटुडिट्लनियॆन् ॥ 638 ॥

सी. दानव! त्रिपदभूतल मित्तु नंटिवि तरणि चंद्राग्नुलॆंदाक नुंडु-
रंत भूमियु नॊक्क यडुगय्यॆ नाकुनु स्वर्लोकमुनु नॊकचरणमय्यॆ
नी सॊम्मु सकलम्मु नेडु रॆंडडुगुलु गडम पादमुनकु गलदॆ भूमि
यिच्चॆद नन्नर्थमीनि दुरात्मुंडु निरयंबु नॊंदुट निजमु गाद

ते. कान दुर्गतिकिनि गॊंत काल मरुगु
गाक यिच्चॆद वेनि वेगंबु नाकु
निपुडु मूडव पदमुन किम्मु चूपु
ब्राह्मणाधीनमुलु द्रोव ब्रह्मवशमॆ ॥ 639 ॥

---

भगवान के भटों से डरकर, निस्तेज पड़, रसातल (पाताल) चले गये। तब हरि का हृदय (मनोभाव) जानकर, ताक्ष्यनंदन (गरुड़) ने यागस्तुत्याह के दिन (यज्ञ में सोमपान करने के दिन) असुरवल्लभ (राक्षसराजा) को वारुणपाशों से बाँध दिया। तब। ६३६ [कं.] जब हाथ-पैर बाँध दिये गये तब "भगवान की ऐसी ही कृपा है, मैं क्या कर सकूँगा" —यों सोचकर बिना हिचकिचाये बलि चुपचाप खड़ा रहा, दसों दिशाओं की सीमा तक [लोगों का] हाहाकार फैल गया। ६३७ [कं.] संपत्ति के नष्ट होने पर भी बलि ने दैन्य अथवा भय-कंपन का अनुभव नहीं किया, उसमें पहले से बढ़कर गौरव, साहस, परिज्ञान और अटूट धैर्य को देखकर वटु ने यों कहा : ६३८ [सी.] "हे दानव! तुमने त्रिपद (तीन पग) भूमि देने को कहा था, तरणि (सूर्य), चंद्र और अग्नि जितनी दूर तक विद्यमान रहते हैं, वहाँ तक की भूमि मेरे एक चरण में आ गयी, स्वर्लोक एक और पग में रहा, तुम्हारा सारा राज्य मेरे दो चरणों में समा गया, तीसरे पग के लिए भूमि कहाँ है? जो अर्थ (इच्छा) देने (पूर्ति करने) को कहता है, उसे न देनेवाला दुरात्मा (दुष्ट) सचमुच निरय (नरक) पावेगा। [ते.] इसलिए तुम जाकर कुछ काल तक दुर्गति भोगते रहो, अथवा यदि दे सकते हो तो तीसरे पग की भूमि मुझे शीघ्र दे दो। उसे (उस भूमि को) दिखा दो। ब्राह्मण का स्वत्व छीनना ब्रह्मा के भी वश की बात नहीं है"। ६३९

## अध्यायमु—२२

व. अनि यिट्लु वामनुंडु वलुक, सत्यभंग संदेह विषदिग्ध शल्यनिकृत्त हृदयुं-डय्युनु, विषण्णुंडु गाक, वैरोचनि प्रसन्नवदनंबुतोड जिन्नि प्रोड वडुगुन किट्लनियें ॥ 640 ॥

आ. सूनृतंब कानि सुडियदु ना जिह्व
बोंक जाल नाकु बोंकु लेदु
नी तृतीयपदमु निजमु ना शिरमुन
नॅलवु सेसि पॅट्टु निर्मलात्म ! ॥ 641 ॥

आ. निरयमुनकु ब्राप्त निग्रहंबुनकुनु
वदविहीनतकुनु बंधमुनकु
नर्थभंगमुनकु नखिल दुःखमुनकु
बॅरव देव ! बोंक वॅरचिनट्लु ॥ 642 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 643 ॥

सी. तल्लिदंड्रुलु नन्नदम्मुलु चॅलिकाड्रु गुरुवुलु शिक्षिप गीडुत बडुनॅ
पिदप मेलगुगाक पृथु मदांधुलकुनु दानवुलकु माकु दरियॅरिगि
विभ्रंश चक्षुवुल् वॅलय निच्चुट जेसि गुरुवुललो नादिगुरुव वीव
नीवु बंधिचिन निग्रहमो लज्जयो नष्टियो बाधयो तलंप

---

## अध्याय—२२

[व.] वामन के इस प्रकार कहने पर सत्यभंग होने का सदेह, विष में भीगे शल्य (हड्डी) के समान [बलि के] हृदय को छेदने लगा, फिर भी वैरोचनी ने (बलि ने) विषण्ण (दुःखित) हुए बिना, प्रसन्न-वदन हो, उस छोटे से निपुण ब्रह्मचारी को यों बताया : ६४० [आ.] हे निर्मलात्मा ! मेरी जिह्वा सूनृत (सत्य) को छोड़ और कुछ नहीं निकालती (कहती), मैं झूठ नहीं बोल सकता, मेरे पास असत्य नही है। तुम अपना तृतीय पद (चरण) मेरे सिर पर स्थिरता से रखो, मैं सच कह रहा हूँ। ६४१ [आ.] हे देव ! मैं नरक से, इस रोक-थाम से, पदच्युति से, बंधन से, अर्थभंग (धननाश) से [अथवा] समस्त दुःखों से जो मुझे प्राप्त होंगे, वैसा नहीं डरता जैसा असत्य बोलने से डरता हूँ। ६४२ [व.] इतना ही नही, ६४३ [सी.] माता-पिता, भाई-बंधु, साथी-संगी और गुरु यदि दड दे तो उससे हानि नहीं होती, बाद को [उससे] भला ही होगा; अत्यत मद से अंधे बने और भ्रष्ट हुए (गिरे हुए) हम दानवों को तुमने समय जानकर (ठीक समय पर) ज्ञान-चक्षु (नेत्र) प्रदान किये, [इस कारण] तुम हमारे

ते. निन्नु नॅविरिंचि पोराडि निर्जरारु-
लादि योगींद्रुलंदॅडनट्टि टॅकि
नंदरे तॉलिल पॅक्कंड्रु हर्षमूर्ति !
वॅरिभक्तुलु गट्टिगा वॅलयुगाक ॥ 644 ॥

म. चॅलिये मृत्युवु चुट्टमे यमुडु संसेवार्थुले किंकरुल्
शिललं जेसॅनॆ ब्रह्म दम्मु दृढमे जीवंबु नो चॅल्लरे
चलितंबौट यॅरुंगरी कपट संसारंबु निक्कंबुगा
दलचुन् मूढुडु सत्य दान करुणा धर्मादि निर्मुक्तुडै ॥ 645 ॥

सी. चुट्टालु दॉंगलु सुतुलु ऋणस्थुलु कांतलु संसार कारणमुलु
धनमु लस्थिरमुलु दनुवति चंचल, कार्यार्थुलन्युलु गडचु गाल
मायुवु सत्वर मतिशीघ्र मनिकादॆ, यनघुंडु दमतंड्रि नधिकरिंचि
मातात साधुसम्मतुडु प्रह्लादुंडु, नी पादकमलंबु नियति जेरॆ

ते. भद्रुडतनिकि मृतिलेनि ब्रतुकु गलिगॆ
वॅरुलॆ कानि तॉलिल मावारु गान-

गुरुओं में आदिगुरु बने हो; अतः तुमसे प्राप्त इस बंधन, रोकथाम, लज्जा, विनाश या बाधा से मैं दुःखी नही हूँ। [ते.] हे हर्षमूर्ति ! (आनंदमूर्ति !) पूर्व में अनेक निर्जरारि (राक्षस) लोगों ने तुमसे वैर रखकर युद्ध किया था; फिर भी उन्होने वह [मुक्ति का] स्थान प्राप्त किया जो योगींद्र प्राप्त करते हैं, इससे उन वैरि-भक्तों को (वैरी होकर भी भक्त बने उन राक्षसों को) बड़ा अचरज हुआ। ६४४ [म.] मानव के लिए सखी (प्रिया) मृत्यु ही है, बंधु यम ही है, सेवक जन ही यमकिंकर (यमदूत) हैं, ब्रह्मा ने मनुष्य को शिला (पत्थर) जैसा तो नहीं बनाया, यह जीवन दृढ़ (स्थिर) नहीं है, इसका चंचल होना लोग नही जानते। हाय रे ! मूढ़ात्मा ! सत्य, दान, करुणा, धर्म आदि [सद्गुणों] को त्याग कर इस कपट (माया) संसार को यथार्थ मानता रहता है। ६४५ [सी.] सगे-सम्बन्धी चोर हैं, सुत (पुत्र) ऋणस्थ (क़र्ज़दार) हैं, कांताएँ (पत्नियाँ) संसार के कारण हैं (हेतु-भूत है); धन-दौलत अस्थिर हैं, तनु (शरीर) अत्यंत चंचल है, अन्य लोग कार्यार्थी (अपना कार्य साधकर जानेवाले स्वार्थी) हैं, काल (समय) चलता ही रहता है, [किसी के लिए रुका नही रहता] आयु अति शीघ्रता से घटती जाती है। यह सब समझकर ही तो मेरे दादा प्रह्लाद ने, जो अनघ (निष्पाप) और साधुसम्मानित था, अपने पिता का धिक्कार कर, तुम्हारे पादकमलों का आश्रय पाया। [ते.] [फलतः] उस भद्र पुरुष को अमर (मृत्युरहित) जीवन प्राप्त हुआ। हमारे लोग अब तक तुमसे वैर ही करते रहे, उन्होंने [प्रीति] नहीं जानी। हे

र्थिवै वच्चि नीवु नन्नडुगुटेल्ल
वद्मलोचन ! ना पुण्यफलमु गादे ॥ 646 ॥

व. अनि यिट्लु पलुकुचुन्न यवसरंबुन ॥ 647 ॥

आ. आ दैत्येंद्रुडु पीनवक्षु नवपद्माक्षुन् विशंगांबरा-
च्छादुन् निर्मल साधुवादु घन संसारच्छदच्छेदु सं-
श्रीदुन् भक्तिलता तिरोहित हरिश्रीपादु निःखेदु प्र-
ह्लादुन् बोधकळाविनोदु गनियेन् हर्षंबुतो मुंदटन् ॥ 648 ॥

व. इट्लु समागतुंडैन तम तातं गनुंगोनि, विरोचननंदनुंडु वारुणपाशबद्धुंडु गावुन दनकुं दगिन नमस्कारंबु सेयरामि जेसि, संकुलाश्रु विलोल-लोचनुंडै, सिग्गुपडि, नतशिरस्कुंडै, नम्रभावंबुन म्रोक्कु चेल्लिचे। अंत ब्रह्लादुंडुनु मखमंटपंबुन सुनंदादि परिचर समेतुंडै, कूर्चुन्न वामदेवुनि-गनि, यानंदबाष्प जलंबुलं, बुलकांकुरंबुलुन्नेउय, दंडप्रणामंबाचरिंचि यिट्लनि विन्नविंचे ॥ 649 ॥

सी. इतनिकि मुन्नु नी विद्रपदंबिच्चि नेडु त्रिप्पुटयुनु नेउय मेलु
मोहनाहंकृति मूलंबु गर्वांध तमस विकारंबु दानि मान्पि
करुण रक्षिचुट गाक वंधिचुटे तत्वज्ञुनकु महेंद्रत्वमेल
नो पादकमलंबु नियति गोल्चिन दानि बोलुने सुरराज्य भोगपरत

---

पद्मलोचन ! तुम्हारा याचक वनकर मेरे पास आना और दान माँगना —यह सब मेरे पुण्य का ही फल है, और कुछ नहीं । ६४६ [व.] यों कहने के अवसर पर ६४७ [शा.] उस दैत्येन्द्र ने (राक्षसराजा ने) अपने सामने हर्ष के साथ प्रह्लाद को [खड़ा] पाया जो पीनवक्ष (चौड़ी छाती वाला) नवपद्माक्ष (टटके खिले कमल-से नेत्र वाला), पिशंगांबर (भूरे रंग के वस्त्र धरे), निर्मल-साधुवादी (मृदुभाषी), संसार रूपी दृढ़ आवरण को चीर फाड़नेवाला और शुभप्रद था और हरि (विष्णु) के श्रीचरणों मे भक्ति रूपी लता के समान लिपटे हुए था, तथा खेद (दुःख) रहित और बोधकलाविनोदी (सुज्ञानी) था । ६४८ [व.] इस प्रकार समागत (आये) अपने दादा को देख, विरोचन-नंदन (बलि) वरुण-पाश-बद्ध हो रहने के कारण उचित रीति से नमस्कार नहीं कर सका; वह संकुल-अश्रु-विलोल-लोचन वाला हुआ (आँखों में आँसुओं के भर जाने से दृष्टि चंचल हुई)। वह लज्जा से नत-शिरस्क हो (सिर झुकाकर) वंदना अर्पण कर सका । इतने में यज्ञमडप में सुनंद आदि परिचर-समेत बैठे हुए वामन-देह वाले को देख कर, आनंद के वाष्पजल (आँसू) और पुलकांकुरों से भरे प्रह्लाद ने दंड-प्रणाम किया और इस प्रकार उससे विनती की । ६४९ [सी.] इसे (बलि को) पूर्व में इंद्र का पद देकर आज उसे वापस लेकर तुमने बहुत

ते. गव मेपार गन्नुलु गानरावु
चॅवुलु विनरावु चित्तंबु चिक्कु वड्नु
मरचु नी सेवलन्नियु महिम मान्चि
मेलु चेसिति नी मेटि मेर सूपि ॥ 650 ॥

व. अनि पलिकि, जगदीश्वरुंडुनु, निखिल लोकसाक्षियुनगु नारायण देवुनकु नमस्करिंचि, प्रह्लादुंडु पलुकुचुन्न समयंबुन ॥ 651 ॥

म. ततमत्तद्विपयानयै कुच निरुंधच्चोळ संव्यानयै
धृत बाष्पांबु वितानयै करयु गाधी नालिक स्थानयै
"पति भिक्षां मम देहि कोमलमते ! पद्मापते !" यंचु द-
त्सति विंध्यावळि सेरवच्चॅ द्रिजगद्रक्षामनुन् वामनुन् ॥ 652 ॥

व. वच्चि यच्चेडिय तच्चरण समीपंबुनं ब्रणतयै निलुवंबडि यिट्लनियॅ ॥ 653 ॥

कं. नीकुं ग्रीडार्थमुलगु, लोकंबुल जूचि परुलु लोकुलु कुमतुल्
लोकाधीशुलमंदुरु, लोकमुलकु राजवीव लोकस्तुत्या ! ॥ 654 ॥

---

भला किया, वह पद था मोह और अहंकार का मूल, गर्व से अंधा बनाकर इसमें विकार उत्पन्न किया; तुमने वह विकार दूर करते हुए इसे जो बंधन दिया, वह [वास्तव में] करुणापूर्वक इसकी रक्षा करना ही है। तत्त्वज्ञानी को इंद्रत्व (इंद्रपद) क्यों ? (वह अनावश्यक है)। सुरराज्य (स्वर्ग राज्य) का भोग-विलास तुम्हारे चरण-कमलों के सेवन के तुल्य कभी नही हो सकता। [ते.] जब घमंड बढ़ जाता है तो मनुष्य की आँखें देखती नहीं, कान सुनते नही, चित्त उलझ जाता है, तुम्हारी महिमा का विचार छोड़कर वह तुम्हारी सेवाएँ भूल जाता है, तुमने अपनी महानता प्रकट करके इसका बड़ा उपकार किया है। ६५० [व.] यों कहकर प्रह्लाद ने उस जगदीश्वर, निखिल लोकसाक्षी, नारायणदेव को नमस्कार किया। प्रह्लाद के बोलते समय— ६५१ [म.] राजा बलि की पत्नी विंध्यावली, मत्तद्विपयान हो (मस्त हाथी की चाल चलकर), कुचों को चोली और उत्तरीय से निरुद्ध कर (बाँधकर), बाष्पांबुओं का (अश्रुजल) वितान (परदा) फैलाकर, करयुग (दोनों हाथ) लिलार पर चढाकर "हे कोमलमते ! हे पद्मापते (लक्ष्मीपते) ! मम (मुझे) पतिभिक्षां देहि (दे दो)" कहती हुई तीनों जगों के लिए रक्षामंत्र बने हुए उस वामन के समीप आ पहुँची। ६५२ [व.] आकर उस रमणी वामन के चरण-समीप प्रणत होकर, खड़ी हो गई और यों बोली : ६५३ [कं.] हे लोक-स्तुत्य (लोक से स्तुति पानेवाले) ! ये लोक तुम्हारी क्रीड़ा के निमित्त बने हुए हैं, पर कुछ दुष्ट बुद्धि वाले लोग अपने को इनके अधीश

कं. कादनडु पॉम्मु ले दी, -रादनडु जगत्त्रयैक राज्यमु निच्चॅ-
न्ना दयितु गट्टनेटिकि, श्रीदयिता ! चित्तचोर ! श्रितमंदारा ! ॥ 655 ॥

व. अनि यिट्लु विंध्यावळियुनुं, ब्रह्लादुंडुनु विन्नविंचु नवसरंबुन हिरण्य-
गर्भुंडु सनुदेंचि यिट्लनियॆ ॥ 656 ॥

सी. भूतलोकेश्वर ! भूतभावन ! देव देव ! जगन्नाथ ! देववंद्य !
तनसॊम्मु सकलंबु दप्पक नीकिच्चॆ दंडयोग्युडु गाडु दानपरुडु
करुणिप नर्हुंडु कमललोचन ! नीकु विडिपिंपु मीतनि वॆरपु दीर्चि
तोयपूरमु चल्लि दूर्वांकुरंबुल, जेरि नी पदमुलर्चिचुनट्टि

ते. भक्तियुक्तुडु लोकेशपदमु नंदु
नीवु प्रत्यक्षमुग वच्चि नेडु वेड
नॆरिगि तनराज्यमंतयुनिच्चिनट्टि
बलिकि दगुनय्य दृढ पाशबंधनंबु ॥ 657 ॥

व. अनि पलिकिन ब्रह्मवचनंबुलु विनि भगवंतुंडिट्लनियॆ ॥ 658 ॥

सी. ऍव्वनि गरुणिप निच्छयिंचिति वानि यखिल वित्तंबु ने नपहरितु
संसार गुरुमद स्तब्धुडै यॆव्वडु वॆंगडि लोकमु नन्नु धिक्करिंचु
नतडॆल्लकालंबु नखिल योनुलयंदु बुट्टुचु दुर्गति बॊंदु बिदप
वित्त वयो रूप विद्या बलैश्वर्य, कर्मजन्मंबुल गर्वमुडिगि

बताते हैं। किंतु [वास्तव में] लोकों के राजा तुम्ही हो। [दूसरा कोई नही] ६५४ [कं.] हे लक्ष्मीरमणी के चित्तचोर ! आश्रितों के मंदार ! (कल्पवृक्ष) ! मेरे पति ने तुम्हे [दान] देने से इनकार नही किया; नाहीं न कहकर उसने तीनों लोकों का राज्य तुम्हे अर्पण कर दिया, फिर उसे तुमने बांध क्यो रखा ? ६५५ [व.] इस प्रकार विंध्यावली के और प्रह्लाद के निवेदन करते समय हिरण्यगर्भ (ब्रह्मदेव) ने आकर यों कहा : ६५६ [सी.] "हे भूतलोकेश्वर (जीवलोक के अधिपति) ! हे भूतभावन ! हे देव-देव ! हे जगन्नाथ ! हे देववंद्य ! इस [बलि] ने वचन भंग किये बिना अपना सकल ऐश्वर्य अवश्य तुम्हें दे दिया, यह दड देने योग्य नही है, बड़ा दानशील है; हे कमललोचन ! यह तुम्हारी करुणा का पात्र है, इसका भय दूर कर, इसे मुक्त कर दो। [ते.] जो कोई मनुष्य भक्तियुक्त (भक्ति करनेवाला) होकर तुम्हारे चरणों को जल से धोकर, दूर्वा के अंकुरों से अर्चना करेगा, वह लोकेश्वर का पद (स्वर्ग) प्राप्त करेगा। जब तुमने आज प्रत्यक्ष (स्वयं) आकर याचना की, तो तुम्हें [विष्णु] जानकर भी जिसने अपना सारा राज्य दे दिया उस बलि को, हे आर्य ! दृढ़ पाश से बाँधना क्या उचित है ?" ६५७ [व.] यों कहे ब्रह्मा के वचन सुनकर, भगवान ने कहा : ६५८ [सी.] "जिस पर करुणा

ते. येक विधमुन विमलुडै यॅव्वडुंडु
वाडु नाकूचि रक्षिपवलयु वाडु
स्तंभ लोभाभिमान संसारविभव-
मत्तुडै चॅडनोल्लडु मत्परुंडु ॥ 659 ॥

शा. बद्धुंडै गुरु शप्तुडै छलितुडै बंधुव्रज त्यक्तुडै
सिद्धैश्वर्यमु गोलुपोयि विभवक्षीणुंडुनै पेदयै
शुद्धत्वंबुनु सत्यमुन् गरुणयुन् जोप्पेमियुं दप्पडु-
द्बुद्धुंडै यजयाख्य माय गॅलिचॅ बुण्युंडितंडल्पुडे ॥ 660 ॥

आ. असुरनाथुडनुचु ननघुनि मर्याद
येनु जूतमनुचु नित वलुक
निजमु वलिकॅ नितडु निर्मलाचारुंडु
मेलु मेलु नाकु मॅच्चु वच्चॅ ॥ 661 ॥

कं. सावर्णि मनुवु वेळनु, देवेंद्रुंडगु नितंडु देवतलकु सं-
भावितमगु ना चोटिकि, रावित्तॅद नंतमीद रक्षितु दयन् ॥ 662 ॥

---

दिखाने की मैं इच्छा करूँगा उसके समस्त वित्त (संपत्ति) का मैं अपहरण करूँगा; संसार [संबंधी] मद से मूढ़ बनकर जो मनुष्यलोक की ओर मेरी उपेक्षा करते हुए मुझे धिक्कारेगा, वह सदा नाना योनियों में जन्म लेता रहेगा और बाद को दुर्गति भोगेगा। जो अपने वित्त (धन), वय (अवस्था), रूप, विद्या, बल, ऐश्वर्य, [ते.] कर्म और जन्म का गर्व छोड़कर स्थिरता से विमल (निर्मल) हो रहेगा वह मेरे लिए रक्षा करने योग्य बनेगा। मत्पर (मेरा भक्त) जड़ता, लोभ, अभिमान, संसार का वैभव [आदि] से मत्त होकर कभी भ्रष्ट होना नहीं चाहेगा। ६५९ [शा.] यह बलि, बद्ध हो, गुरु से शप्त होकर (शापग्रस्त होकर) मुझसे छलित होकर (धोखा खाकर), बधु-व्रज (-समूह) जनों से त्यक्त होकर, (छोड़े जाकर), सिद्ध (अपने हाथ प्राप्त) ऐश्वर्य खोकर, वैभव-रहित होकर, दरिद्र बनकर भी परिशुद्ध चरित, सत्य, करुणा और सन्मार्ग से किंचित् भी विचलित नहीं हुआ (हटा नहीं)। [इतना ही नहीं] ज्ञानवान् रहकर मेरी अजेय माया को भी जीत लिया। यह बड़ा पुण्यवान् है। [दैत्यराज] अल्प (छोटा) है क्या? (नहीं।) ६६० [आ.] इसे असुरों का राजा जान, यह सोचकर कि इस महान् की मर्यादा कितनी है देख लूँ, मैंने इसके साथ यों बरताव किया, [असल में] यह तो निर्मल (शुद्ध) आचरण करनेवाला है, इसने सत्य का निर्वाह किया, बहुत अच्छा रहा, मैं इसकी प्रशंसा करता हूँ। ६६१ [कं.] सावर्णिमनु के समय में यह देवों का प्रभु इंद्र बन जायगा, अनंतर इसे मैं अपने संभावित (सम्मान्य)

कं. व्याधुलु दप्पुलु नोप्पुलु, वाधलु चेंडि विश्वकर्म भावित दनुजा
राधित सुतलालयमुन, नेधितविभवमुन नुंडु नितडंदाकन् ॥ 663 ॥

व. अनि पलिकि, बलि जूचि, भगवंतुंडिट्लनियें ॥ 664 ॥

सी. सेमंबु नींक्रिदसेन महाराज ! वेंरवकु मेलु नी वितरणंबु
वेलुपुलंबुंड वेडुक पड्डुरु दुःखंबुलिड्डुमलु दुर्मरणमु
लातुरतलु नोप्पुलंदुंडुवारिकि नोंदवु सुतलमं दुडु नीवु
नी पंपु सेयनि निर्जरारातुल ना चक्र मेतेंचि नड़कुचुंडु

आ. लोकपालकुलकु लोनुगावक्कड, नन्युलेंतवारलचट निन्नु
नेंलल प्रोवुदु वच्चि येनु रक्षिचेंद, गरुणतोड नीकु गानवत्तु ॥ 665 ॥

कं. दानव दैत्युलु संगति, बूनिन नी यसुरभावमुनु दोड्तो म-
द्ध्यानमुन दोलगि पोवुनु, मानुग सुतलमुन नुंड्मा मा याज्ञन् ॥ 666 ॥

## अध्यायमु—२३

व. अनि यिट्लु पलुकुचुन्न मुम्मूर्तुल मुदुक वेल्पु तिय्यनि नेय्यंपु बलुकु जेंड़कु

वासस्थान (विष्णुलोक) पर बुला लूंगा और दयापूर्वक इसकी रक्षा करूँगा। ६६२ [कं.] तब तक यह, व्याधि, भूख-प्यास, दुःख-बाधा से रहित होकर विश्वकर्मा से रचित सुतल लोक के आवास में दनुजों से आराधित होते हुए, अत्यंत वैभव से निवास करेगा"। ६६३ [व.] इस प्रकार कहकर, बलि को देख, भगवान ने कहा : ६६४ [सी.] "हे इंद्रसेन महाराज ! तुम्हारा कल्याण ही होगा, डरो मत। तुम्हारी दानशीलता उत्तम है; जहाँ तुम रहोगे वहाँ रहने के लिए देवता लोग भी उत्सुक होंगे; दुःख, कष्ट, दुर्मरण, आतुरताएँ या बाधाएँ वहाँ के निवासियों को नहीं होंगी। उस सुतल में रहते समय जो निर्जराराति (राक्षस लोग) तुम्हारा आज्ञा-पालन नहीं करेंगे, मेरा चक्र आकर उनका वध करता रहेगा। [आ.] वैसा सुखावास लोकपालों को भी दुर्लभ है, अन्यों की बात क्या कहना ? वहाँ आकर मैं सदा तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा, दयापूर्वक तुम्हें दिखायी देता रहूँगा। ६६५ [कं.] दानवों और दैत्यों की संगति (सहवास) के कारण तुमने जो आसुर-भाव (राक्षस-स्वभाव) स्वीकार किया, वह मेरा ध्यान करते रहने से दूर होगा, (अतः) तुम हमारी आज्ञा मानकर सुतल में जाओ और सुखपूर्वक रहो"। ६६६

## अध्याय—२३

[व.] यों बतानेवाले त्रिमूर्तियों में वृद्ध-देवता-(विष्णु) के मीठे

रसंपु सोनलु वीनुल तॆरवुलं जॊच्चि, लोबयलु निंडि, उत्पल कप्पु तप्पं द्रोचिकॊनि, कनुगव कॊलंकुल नलुगुलु वॆडलिन चंदंबुन संतसंबुनं गन्नीरु मुन्नीरै परव, नुरःफलकंबुनं बुलकंबुलु कुलकंबुलै, तिलकंबुलोत्त गेलु मॊगिड्चि, नॆक्कॊन्न बेड्कं द्रॊक्कुडु वडुचु, जिक्कनि चित्तंबुन जक्कनिमाटल रक्कसुलड्रॆडिट्लनियॆ ॥ 667 ॥

उ. अॆन्नडु लोकपालकुल नी कृप जूडनि नीवु नेडु न-
न्नुन्नतु जेसि ना ब्रतुकु नोजयु नानति यिच्चि काचितो-
मन्नन नी दयारसमु माटल पॆद्दरिकंबु चालदे
पन्नगतल्प! निन्नॆरिगि पट्टिन नापद गलग नेर्चुने ॥ 668 ॥

व. अनि पलिकि, बंधविमुक्तुंडै, हरिकि नमस्करिंचि, ब्रह्मकुं ब्रणामंबु सेसि, यिदुधरुनकु वंदनंबाचरिंचि, तनवारलतो जेरिकॊनि बलि सुतलंबुनकुं जनियॆ। अंत हरिकृपावशंबुनं गृतार्थुंडै, कुलोद्धारकुंडैन मनुमनि गनि, संतोषिंचि, प्रह्लादुंडु भगवंतुनकिट्लनियॆ ॥ 669 ॥

सी. चतुराननुडु नी प्रसादंबु गानडु शर्वुडी लक्ष्मुल जाड बॊद-
डन्युल कॆक्कडि दसुरुलकुनु माकु ब्रह्मादि पूजित पदुडवन
दुर्लभुंडवु नीवु दुर्गपालुडवैति पद्मजादुलु भवत्पादपद्म
मकरंदसेवन महिम नॆश्वर्यंबु, -लंदिरि काक मेमल्पमतुल-

---

और स्नेहार्द्र वचन, इक्षु-रस की धारा बनकर बलि के कर्ण-मार्ग से (कानों की राह) प्रवेश कर, भीतर और बाहर भर गये, [फलतः] आनंदाश्रु उसके नेत्रों के कोनों से पनाली के पूर के समान वह निकले; वक्षःस्थल पर पुलकों का समूह फैलकर, तिलकों के समान शोभित हुआ; और [उस राक्षस नरेश ने] हाथ जोडकर, बढ़ी हुई उमंग से, अवरुद्ध कंठ से, स्थिर-चित्त से यों मधुर वचन कह सुनाये : ६६७ [उ.] "हे पन्नगतल्प [वाले] (शेष-शयन) ! तुमने लोकपालों पर भी ऐसी कृपा कभी नहीं दिखायी, किंतु आज तुमने मुझे समुन्नत बनाया; जीवन और तेज प्रदान कर आदेश देकर रक्षा की है; यह आदर और दयारस, और वचनों की उदारता [मेरे लिए] पर्याप्त नही है क्या ? तुम्हें जानकर तुममें आश्रय लेने पर किसी को आपदाएँ भोगनी नहीं होंगी।" ६६८ [व.] यों निवेदन करके, बंधन-मुक्त हो, हरि को नमस्कार कर, ब्रह्मा को प्रणाम करके बलि ने इंदुधर (शिव) की वंदना की। [फिर] अपना परिवार लेकर वह सुतल को चल पड़ा। तब हरि की कृपा के प्रभाव से कृतार्थ होकर कुलोद्धारक बने हुए अपने पोते को पाकर प्रह्लाद आनंद से भर गया और भगवान् से यों कहा : ६६९ [सी.] "जब कि चतुरानन (ब्रह्मदेव) तुम्हारा प्रसाद (अनुग्रह) नहीं जानता, और ईश्वर (शिव) को इस संपत्ति का

ते. मधिक दुर्योनुलमु कुत्सितात्मकुलमु
नी कृपादृष्टि मार्गंबु नेलवु सेर
नेमि तपमाचरिंचिति मैन्न गलमे
मम्मु गाचुट चित्रंबु मंगळात्म ! ॥ 670 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 671 ॥

आ. सर्वगतुडवय्यु समदर्शनुडवय्यु
नोकट विषमवृत्ति नुंडुदरय
निच्चलेनिवारिकीवु भक्तुलु गोरु
तलपुलिच्चु कल्पतरुवु मार्ड्कि ॥ 672 ॥

व. अनि विन्नविंचुचुन्न प्रह्लादुं जूचि, परमपुरुषुंडिट्लनियें ॥ 673 ॥

ते. वत्स ! प्रह्लाद ! मेलु नी वारु नीवु
सौरिदि मनुमनि वोड्कोनि सुतलमुनकु
वेंनमै पोम्मु ने गदापाणिनगुचु
जेरि रक्षितु दुरितंबु चेंददचट ॥ 674 ॥

व. अनि, यिट्लु नियमिचिनं वरमेश्वरुनकु नमस्करिंचि, वलगोनि, करकमल

---

पता नही लगा तब अन्यों को यह कैसे प्राप्त हो ? ब्रह्मा आदि से पूजित-पद (पूजित-चरण वाले) और दुर्लभ होने पर भी तुम [आज] हम-असुरों के दुर्गपाल (प्राणरक्षक) बन गये हो; पद्मज (ब्रह्मा) आदि लोगो ने तो तुम्हारे पादपद्मो के मकरद का सेवन करके, उसकी महिमा के कारण ऐश्वर्य प्राप्त किया था, किंतु हम अल्पमति (नीच बुद्धि) वाले हैं, अत्यन्त दुष्ट योनियों मे जन्मे है, [ते.] कुत्सितात्मा हैं। केवल तुम्हारी कृपा-दृष्टि के द्वारा ही हम ठिकाने लगे हैं, इसके लिए हमने कौन सा तप किया था— कह नहीं सकते। हे मंगलात्मा ! तुमने हमारी रक्षा जो की है, वह एक विचित्र [संयोग] है। ६७० [व.] इसके अतिरिक्त ६७१ [आ.] सर्वगत (सर्वान्तर्यामी) और समदर्शन (सबको समदृष्टि से देखने वाले) होकर भी, तुम कुछ लोगों के विषय में विषमवृत्ति (भेदभाव) बरतते हो, जिनको तुम नही चाहते उनको कुछ नहीं देते हो, किंतु अपने भक्तों को कल्पवृक्ष के समान उनकी मनचाही सम्पत्ति दे देते हो" । ६७२ [व.] यों निवेदन करनेवाले प्रह्लाद को देखकर परमपुरुष ने यों कहा : ६७३ [ते.] "हे वत्स ! प्रह्लाद ! अच्छा है, तुम्हारे लोग और तुम क्रम से अपने पौत्र को साथ लेकर प्रयाण करके सुतल पहुँच जाओ; मैं गदापाणि होकर (हाथ में गदा लेकर) वहाँ आऊँगा और तुम्हारी रक्षा करूँगा, वहाँ तुम्हे कोई कष्ट न होगा" । ६७४ [व.] इस प्रकार नियमन करने वाले परमेश्वर को, नमस्कार कर, प्रदक्षिणा करके [प्रह्लाद]

पुट-घटिल-निटलतटुंडै, वीड्कोनि, बलि दोड्कोनि, सकलासुर यूथंबुनुं, दानु, नोक्क महाबिलद्वारंबु सोच्चि प्रह्लादुंडु सुतललोकंबुनकुं जनियें। अंत ब्रह्मवादुलैन याजकुल सभामध्यंबुनं गूर्चुन्न शुक्रुनि जूचि, नारायणुं-डिट्लनियें ॥ 675 ॥

आ. एमि गोरत वडियें नीतनि यागंबु, विस्तरिंपु कडम विप्रवर्य !
विषममैन कर्म विसरंबु ब्राह्मण, -जनुलु सूचिनंत समत बोंदु ॥ 676 ॥

व. अनिन शुक्रुंडिट्लनियें ॥ 677 ॥

सो. अखिल कर्मंबुल कधिनाथुडवु नीवु यज्ञेशुडवु नीवु यज्ञपुरुष !
प्रत्यक्षमुन नीवु परितुष्टि नोंदिन गडमेल गलुगु नेक्कर्ममुलकु
धन देश कालार्ह तंत्र मंत्रंबुल कोरतलु निन्नु बेकोंनिन मानु
नैन गावितु नी यानति भवदाज्ञ मेलुट जनुलकु मेलु गादे

ते. यितकंटेनु शुभमु ना कॆचट गलुगु
ननुचु हरिपंपु शिरमुन नावहिंचि
काव्युडसुरेंद्रु जन्नंबु कडम दीर्चे
मुनुलु विप्रुलु साहाय्यमुन जरिप ॥ 678 ॥

व. इव्विधंबुन वामनुंडै हरि बलि नडिगि, महिं बरिग्रहिंचि, तनकु नन्न

---

करकमल-पुट-घटित-निटल-तट [वाले] होकर (करकमल माथे से लगा कर), बिदा होकर, बलि को साथ लिये सकल असुरयूथ (राक्षस-समूह) और आप (स्वय)एक महाविलद्वार(सुरग) में प्रवेश कर प्रह्लाद सुतललोक जा पहुँचा। अनन्तर ब्रह्मवादी याजको की सभा के मध्य मे बैठे हुए शुक्र को देखकर नारायण ने ऐसा कहा : ६७५ [आ.] "हे विप्रवर्य (ब्राह्मणोत्तम) ! इस बलि के यज्ञ में क्या कसर रह गयी [उसे सविस्तर] बता दो; कर्म-कलाप में जो कुछ अश विषम (अपूर्ण) रह जाता है, वह ब्राह्मणों के पर्यवेक्षण से सम (पूर्ण) हो जायगा"। ६७६ [व.] तब शुक्र ने यों कहा : ६७७ [सी.] "हे यज्ञपुरुष ! अखिल कर्मों के तुम अधिनाथ (अधिपति) हो, तुम यज्ञेश हो, प्रत्यक्ष रूप से जब तुम परितुष्ट हुए तो फिर किसी भी कर्म में कमी क्यों रह जाएगी ? धन, देश, काल, औचित्य, तंत्र, मंत्र आदि में आनेवाली न्यूनताएँ तुम्हारा नाम लेने मात्र से (स्मरण करने से) दूर हो जाती है। फिर भी तुम्हारे आदेश के अनुसार काम करूँगा, [ते.] तुम्हारा आज्ञा-पालन जनों के लिए शुभप्रद होगा। इससे बढ़कर क्षेम मुझे अन्यत्र कहाँ प्राप्त होगा ?" इस प्रकार कहकर हरि का आदेश सिर आँखों पर लेकर, काव्य ने (शुक्र ने) असुरेंद्र (बलि) के यज्ञ का परिशिष्ट कार्य पूरा किया, मुनि और विप्रों ने सहायता पहुँचायी। ६७८

यगु नमरेंद्रुनकुं द्रिदिवंबुनु सदयुंडै यिच्चॆनु। अप्पुडु दक्ष भृगु प्रजापतुलुनु, भवुंडुनु, गुमारुंडुनु, देवर्षिपितृगणंबुलुनु, राजुलुनु, दानुनु, गूडिकॊनि चतुराननुंडु, कश्यपुनकु नदितिकि संतोषंबुगा लोकंबुलकुनु, लोकपालुरकुनु वामनुंडु वल्लभुंडनि नियमिंचॆ। अंदरुनु धर्मंबुनकु, यशंबुनकु, लक्ष्मिकि, शुभंबुलकु, देवतलकु, वेदंबुलकु, स्वर्गापवर्गंबुलकु, नुपेंद्रुंडु प्रधानुंडनि संकल्पिंचिरि। आ समयंबुन ॥ 679 ॥

क. कमलजुडु लोकपालुरु, नमरेंद्रुनि गूडि देवयानंबुन न-
व्यमरावतिकिनि वामनु, नमरं गॊनिपोयिरंत नटमीद नृपा ! ॥ 680 ॥

आ. बलिलदंपु दोडु प्रापुन निंद्रुनि, क्रिंदपदमु चेरुटिट्लु गलिगॆ
दनकु नाढ्युडैन तम्मुडु गलिगिन, गोर्कुलन्न केल कॊरत नॊंदु ॥ 681 ॥

कं. पालडुगडु मेलडुगं, -डेलडु भिक्षिंचि यन्न किच्चॆ द्रिजगमुल्
वेलुपुलतल्लि कडपटि, चूलुं बोलंग गलरॆ सॊलयनि तम्मुल् ॥ 682 ॥

आ. कडुपु बरुवुगाग गॊडुकुल गनुकंटॆ
तल्लि कॊकडॆ चालु बलिलवुंडु

---

[व.] इस प्रकार वामन बने हरि ने बलि से माँगकर भूमि का दान लिया और अपने भाई अमरेंद्र (इंद्र) को सदय (दयालु) होकर त्रिदिव (स्वर्गलोक) दे दिया। तब दक्ष, भृगु प्रजापति, महेश्वर, सनत्कुमार, देवर्षि तथा पितृगण और अन्य राजाओं को साथ लेकर चतुरानन ने (ब्रह्मदेव ने) कश्यप और अदिति [के पास जाकर] उन्हें संतोष देते हुए यह नियमन किया कि वामन [आगे से] लोकों का तथा लोकपालों का अधिपति होगा। सबने यह संकल्प किया कि धर्म, यश, लक्ष्मी, शुभ, देवता, वेद, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के लिए उपेंद्र ही प्रधान हो। उस समय ६७९ [कं.] हे नृप (राजन्) ! कमलज (ब्रह्मा), लोकपाल, और अमरेंद्र —सब मिलकर देवयान पर चढ़कर वामन को शोभा से अमरावती नगर बुला ले गये। ६८० [आ.] इस रीति से बलवान् भ्राता के आश्रय में इंद्र को पहले का खोया हुआ अपना इंद्रपद पुनः प्राप्त हुआ। सर्व-संपन्न (-समर्थ) छोटे भाई के रहते बड़े भाई की अभिलाषाएँ कैसे अपूर्ण रहेंगी ? ६८१ [कं.] [यह छोटा भाई] अपनी कमायी सपत्ति में न भाग माँगता, न लाभ; अथवा न स्वयं शासन चलाना चाहता। [उलटा] भीख माँगकर (कमाया) त्रिजगत् का राज्य बड़े भाई को अर्पण किया। देवमाता [अदिति] की अंतिम संतान (वामन) सदृश [बड़े भाई से] विमुख न होनेवाला छुटभैया [जग में और] कहाँ होगा ? ६८२ [आ.] गर्भभार बढ़ानेवाले [अनेक] पुत्रों को जन्म देने की अपेक्षा माता के लिए एक ही एक

द्रिदशगणमु गन्न यदिति कानुपु दीर्चि
चिन्नि मेटि वडुगु गन्न यट्लु ॥ 683 ॥

व. इट्लु देवेंद्रुंडु वामन भुजपालितंबगु त्रिभुवन साम्राज्यविभवंबु मरल नंगीकरिचें। अप्पुडु ब्रह्मयु, शर्वुंडुनु, गुमारुंडुनु, भृगु प्रमुखुलैन मुनुलुनु, बितृदेवतलुनु, दक्षादि प्रजापतुलुनु, सिद्धलुनु, वैमानिकुलुनु, मरियुं दक्किन वारलु नद्भुत प्रकाशुंडैन विष्णु प्रभावंबुलकु नाश्चर्यंबु नोंदुचु, व्रशंसिपुचु, नाडुचुं, बाडुचुं, दमतम निवासंबुलकुं जनिरि। अनि चेप्पि शुकुंडिट्लनियें ॥ 684 ॥

ते. मनुजनाथ ! त्रिविक्रम महिम कोलदि
येंड्रिगि तर्किप लेंक्किप नेव्वडोपु
गुंमिनी रेणुकणमुलु गुरुतु वेंट्टु
वाडु नेरडु तक्किनवारि वशमें ॥ 685 ॥

कं. अद्भुतवर्तनुडगु हरि, सद्भावितमैन विमुलचरितमु विनुवा
डुद्भट विक्रमुडै तुदि, नुद्भासितलील बोंदु नुत्तम गतुलन् ॥ 686 ॥

ते. तगिन मानुष पैतृक दैवकर्म
वेळलंदु द्रिविक्रम विक्रमंबु

---

बलवान पुत्र को जनना पर्याप्त होगा, जैसे छोटे वामन ब्रह्मचारी को जन्म देकर, अनेकों देवों को जननेवाली अदिति ने अपना मातृत्व सफल बना लिया। ६८३ [व.] इस प्रकार देवेंद्र ने वामन-भुज-पालित (वामन द्वारा शासित) त्रिभुवन-साम्राज्य का वैभव फिर से स्वीकार किया। अनंतर ब्रह्मा, शर्व (महेश्वर), सनत्कुमार, भृगु आदि मुनि, तथा पितृदेवता, दक्ष आदि प्रजापति, सिद्ध, वैमानिक तथा अन्य लोग अद्भुत कर्म करनेवाले विष्णु के प्रभाव पर आश्चर्य प्रगट करते हुए, प्रशंसा करते हुए, नाचते-गाते अपने-अपने निवासों पर जा पहुँचे।'' ऐसा कहकर शुक ने फिर यों सुनाया। ६८४ [ते.] "हे मनुजनाथ (नरेश) ! त्रिविक्रम (वामन रूपी विष्णु) की महिमा का नाप-जोख (अंदाज़ा) जानकर तर्कपूर्वक उसे गिनने की सामर्थ्य किसमें है ? भू-रेणु-कणों को [अलग-अलग] पहचानने वाला भी नहीं गिन सकता, औरों की शक्ति ही क्या है ? ६८५ [कं.] अद्भुत-वर्तन वाले हरि का, सद्भाव-भरित विमल चरित सुननेवाला उद्भट विक्रमी (शूरवीर) होकर अंत में उज्ज्वल रूप से उत्तम गति (मोक्ष) प्राप्त कर लेगा। ६८६ [ते.] हे भूवरेंद्र (राजेंद्र) ! विधिविहित मानुष, पैतृक और दैविक कर्म-कलाप करते समय, जो-जो जहाँ-जहाँ त्रिविक्रम के पराक्रम का कीर्तन करेंगे वे सब नित्य (शाश्वत) सौख्य भोगेंगे''। ६८७ [व.] इस प्रकार शुक ने राजा को वामनावतार के

लॆक्कडॆक्कड गीतितुरॆव्वरेनि
बॊंदुदुरु नित्य सौख्यंबु भूवरॆंद्र ! ॥ 687 ॥

व. अनि, यिट्लु शुकुंडु राजुनकु वामनावतार चरितंबु सॆप्पॆ। अनि सूतुंडु मुनुलकुं जॆप्पिन विनि वारलतनिकिट्लनिरि ॥ 688 ॥

## अध्यायमु—२४

### मत्स्यावतार कथ

सी. विमलात्म ! विन माकु वेडुकय्यॆनु मुन्नु हरि मत्स्यमैन वृत्तांत मॆल्ल
गर्मबद्धुनि भंगि घनु डीश्वरुडु लोक निंदितंबै तमोनिलयमैन
मीनरूपमु नेल मेलनि धरियिंचॆ नॆक्कड वर्तिंचॆ नेमि चेसॆ
नाद्यमै वॆलयु नय्यवतारमुनकु नॆय्यदि कारणंबु कार्यांशमॆट्लु

आ. नीवु तगुदु माकु निखिलंबु नॆरिंगिंप
दॆलिय जॆप्पवलयु देवदेवु
चरित मखिललोक सौभाग्यकरणंबु
गाद विस्तरिंपु क्रममुतोड ॥ 689 ॥

व. अनि, मुनिजनंबुलु सूतु नडिगिन, नतंडिट्लनियॆ। मीरलडिगिन यी यर्थंबु बरीक्षिन्नरॆंद्रुडडिगिन, भगवंतुंडगु बादरायणि यिट्लनियॆ ॥ 690 ॥

---

चरित का वर्णन किया। यह वृत्तांत जब सूत ने मुनियों को सुनाया, तब उसे सुनकर उन लोगों ने उससे यों कहा : ६८८

## अध्याय—२४

### मत्स्यावतार की कथा

[सी.] "हे विमलात्मा (शुद्धात्मा) ! पूर्व में हरि जब मत्स्य बने थे तब का सारा वृत्तान्त सुनने की हमें उत्कंठा हो रही है, घन (महान्) ईश्वर ने कर्मबद्ध [प्राणी] की भांति, लोकनिंदित और तमोनिलय (अज्ञान का घर, समुद्र) में मीन (मछली) का जन्म किस कारण से अच्छा समझ कर लिया ? वह कहाँ रहा ? क्या किया ? उस आद्य (सर्वप्रथम) प्रशस्त अवतार का क्या कारण था ? [आ.] काम-काज किस प्रकार चले ? हमें सब कुछ समझाने के तुम्हीं समर्थ हो, अतः हमें बता देना चाहिए। देवदेव का चरित अखिल लोक के लिए सौभाग्यप्रद है, उसे यथाक्रम हमें विस्तार से सुनाओ"। ६८९ [व.] मुनिजनों के इस प्रकार पूछने पर सूत ने यों कहा : "तुमने जो विवरण पूछा वही परीक्षिन्नरेंद्र ने भी जब पूछा

सी. विभुडीश्वरुडु वेद विप्र गो सुर साधु धर्मार्थमुल गाव दनुवु दाल्चि
गालि चंदंबुन घनरूपमुल यंदु दनुरूपमुल यंदु दगिलियुंडु
नॅक्कुव तक्कुव नॅन्नडु नौंदक निर्गुणत्वंबुन नंद्रियु घनुडु
गुरुतयु गॉऽतयु गुणसंगति वहिंचु मनुजेश ! चोद्यमे मत्स्यमगुट

ते. विनुमु पोयिन कल्पांतवेळ दॉल्लि
द्रविळ देशपुराजु सत्यव्रतुंडु
नीरु द्रावुचु हरि गूर्चि निष्ठतोड
दपमु गाविंचॅ नॉक येटि तटमुनंदु ॥ 691 ॥

व. मरियु नॉक्क नाडम्मेदिनीकांतुंडु कृतमालिकयनु नेटि पॉत हरि समर्पणंबुगा जलतर्पणंबु सेयुचुन्न समयंबुन, ना राजु दोसिटि नॉक्क मीनु पट्टि, दविलि वच्चिन नुलिकपडि, मरलं दरंगिणी जलंबुनंदु शकुल शाबकंबु विडिचॅं। विडिवडि नीटिलो नुंडि जलपोतंबु भूतलेश्वरुनकिट्लनियॅं ॥ 692 ॥

मत्त. पाटुवच्चिन ज्ञातिघातुलु पापजाति झषंबु लो
येट गॉडीक मीनु पिल्लल नेरि पट्टि वधिप न-

तब भगवान बादरायणी (शुक) ने यों बताया: "। ६९० [सी.] प्रभु, जो ईश्वर है, वेद, विप्र (ब्राह्मण), गो, सुर (देव), साधु और धर्मार्थों की रक्षा करने के निमित्त शरीर धारण करता रहता है। वह घन-पदार्थों में तथा [प्राणियों के] शरीरों में भी वायु की भाँति लगा रहता है। वह छोटे-बड़े का भेद छोड़ सर्वत्र व्याप्त रहता है। निर्गुण होकर भी वह महान[ पुरुष] कभी गुणों को ग्रहण करता है तथा गुरु और लघु भी बनता है। हे मनुजेश्वर ! उसका मत्स्य बनना अचरज का कोई विषय नहीं है। [ते.] सुनो, पिछले कल्प के अंत में सत्यव्रत नामक द्रविळ देश के एक पूर्व राजा ने केवल जलाहार करता हुआ, एक नदी तट पर निष्ठा के साथ हरि का ध्यान करते हुए तप किया था। ६९१ [व.] उस समय, एक दिन वह मेदिनीकांत (भूपति—राजा) कृतमालिका नामक एक नदी में हरिसमर्पणपूर्वक जल तर्पण कर रहा था तब उसकी अंजलि में मछली का एक बच्चा एकाएक उछलकर आ गिरा। राजा चौंक पड़ा और उस शकुल-शावक (मीन-शिशु) को तरंगिणी के जल में वापस डाल दिया। यों गिरकर जल के भीतर से वह जलपोत (मछली) भूतलेश्वर से यों कहने लगा : ६९२ [मत्त.] "इस नदी के झष (मत्स्य) पापजाति के हैं, ज्ञातिघातक (सगों को मार डालनेवाले) हैं, उनके कारण मुझे संकट पैदा हुआ है, वे छोटे बच्चों को पकड़-पकड़कर वध कर रहे है, [उनसे भयभीत होकर] वहाँ न रह कर मैं तुम्हारी अंजुलि में आ पड़ा हूँ।

च्चोट नुंडक नीदुदोसिलि सॊच्चि वच्चिन नन्नु न-
ट्टेट द्रोवग बाडिये कृप यितलेक दयानिधी ! ॥ 693 ॥

आ. वललु दारु निक वच्चि जालरि वेट
कारु नेड्र गलचि गार वॆंट्टि
मिडिसि पोवनीक मॆंड बट्टुकॊनियॆद
रप्पु डॆंदु जॊत्तु ननघचरित ! ॥ 694 ॥

कं. भक्षिंचु नॊडॆ झषमुलु, शिक्षितुरु धूर्तुलॊडॆ चॆंडकुंड ननुन्
रक्षिंपु दीनवत्सल ! प्रक्षीणुल गाचुकंटॆ भाग्यमु कलदे ॥ 695 ॥

व. अनिन विनि, करुणाकरुंडगु नव्विभुंडु, मॆल्लन शकुल डिंभकंबुनु गमंडलु जलंबुनं बॆट्टि, तन नॆलवुनकुं गॊनिपोयॆ। अदियु नॊक्क रात्रंबुन गुंड निंडि, तनकु नुंड निम्मु चालक राजन्युनकिट्लनियॆ ॥ 696 ॥

कं. उंड निदि कॊंचॆ मॆंतयु, नॊडॊकटि दॆम्मु भूवरोत्तम ! यनुड्न्
गंडकमु दॆच्चि विडिचॆनु, मंडलपति कलश सलिल मध्यमुनंदुन् ॥ 697 ॥

व. अदियुनु, मुहूर्तमात्रंबुनकु मूडु चेतुल निडुपै, युदंचनंबु निंडि, पट्टु लेक वेरॊडु दॆम्मनवुडाराचपट्टि करुणागुणंबुलकु नाटपट्टु गावुन, गंडकंबुनु

हे दयानिधि ! किंचित् भी दया न करके मुझे मँझधार में डुबो देना क्या न्याय [संगत] है ? ६९३ [आ.] अब शिकारी मछुवे जाल लेकर यहाँ पहुँच जायेंगे, नदी के जल को कल्लोलित करके वे लोग मुझे उड़ जाने से रोक कर बाँध लेंगे और गला दबा देंगे। हे अनघ-चरित (पुण्य चरितवाले) ! तब मैं कहाँ जा छिपूँगा ? ६९४ [कं.] या तो बड़ी मछलियाँ मुझे खा जायेंगी अथवा धूर्त लोग पीड़ा पहुँचायेंगे। हे दीनवत्सल ! नष्ट होने से मुझे बचाओ; प्रक्षीणों (अत्यंत निर्बलों) की रक्षा करने से बढ़कर भाग्य (पुण्य) क्या होगा ?" ६९५ [व.] यह सुनकर उस करुणाकर प्रभु (राजा) ने उस शकुल-डिंभक (मछली के बच्चे) को धीरे से उठाकर, अपने कमंडल मे रख लिया और निज निवास पर ले गया। वह एक ही रात में बढ़कर पात्र में भर गया, रहने के लिए जगह न पाकर उसने राजन्य से यों कहा : ६९६ [कं.] "हे भूवरोत्तम (राजन्) ! यह तो मेरे रहने के लिए बहुत छोटा (तंग) है, दूसरा कोई [बरतन] लाओ।" तब उस मंडलपति ने (भूपति ने) उस गंडक (मछली के बच्चे) को लाकर कलश-जल के मध्य में छोड़ दिया। ६९७ [व.] तब वह एक मुहूर्त मात्र में तीन हाथ भर लंबा हो गया, कलश के भर जाने से दूसरा लाने को कहा, जो बड़ा हो। वह राजा करुणा गुण का वासस्थान था, अतः उस गंडक को एक गड्ढे में रख दिया। किंतु उस पोखरे के जल के

नौवक चिरुत मड्गुन नुनिचॆ । अदियुनु ना मरोवर जलंबुलकु नग्गलंबै, तनकु संचरिप नदि कॊचॆंबनि बलिकिन बुडमिरेडु मंचिवाडगुटंजेसि, या युदकचरंबु नुदंचित जलास्पदंबैन ह्लदंबुनंदु निडियॆ। अदियुनु जलाशयंबुनकु नधिकंबै, पंरग निम्मुलेदनि चॆप्पिकॊनिन, नप्पुण्यु डॊप्पॆडि नडवडि दप्पनिवाडैन कतंबुन, नम्महामीनंबुनु महार्णवंबुन विडिचॆ। अदियुनु, मकराकरंबुनं बडि, पॆनु मॊसळ्ळु मुसरिकॊनि, कसिमसंगि, म्रिगॆडिनि। इंतकालंबु नडपि, कडपट दिगविड्वक-वॆडलं दिगुवुमु। अनि यॆलुगिप नन्नोटि पोडवुनकुं बुडयिड्डु दॆलिसि यिट्लनियॆ ॥ 698 ॥

सी. ऒक दिनंबुन शतयोजन मात्रमु विस्तरिंचॆदु नीवु विनमु चूड-
मिट्टुवंटि झषमुल नॆन्नडु नॆरुगमु मीनजातुलकिट्टि मेनु गलदे
येमिटि कॊव्वड वीलील द्रिप्पॆदु करुण नापन्नुल गाववेडि
यंभश्चरंबैन हरिवि ने नॆरिगिति नव्यय ! नारायणाभिधान !

ते. जनन संस्थिति सहार चतुरचित्त !
दीनुलगु भक्तुलकु माकु दिक्कु नीव

लिए भी वह उदक-चर (मत्स्य) बड़ा बन गया; यह कहने पर कि अपने संचार के लिए वह अपर्याप्त है, भूमीश (राजा) ने, [स्वयं] सत्पुरुष होने से, उस उदकचर को एक जल-प्रपूर्ण विशाल ह्लद में रख दिया। तब भी, वह उस जलाशय से कहीं बड़ा बन गया, और कहा कि यहाँ मेरे बढ़ने के लिए जगह नहीं है। तब, सच्चरित्र से हटनेवाला न होने के कारण, उस पुण्यपुरुष ने उस महामीन को ले जाकर महासमुद्र में छोड़ दिया। तब उस मकराकर (समुद्र) में रहकर उसने राजा को सुनाकर कहा कि इसमें बड़े-बड़े मगर है जो मुझे घेरकर आक्रमण करेंगे और निगल जायेंगे; इतने दिनो तक तुमने मेरा निर्वाह किया, अब अंत में त्याग दिये (छोड़) बिना मुझे बाहर निकाल लो। यह सुनकर और [उसका निज रूप] जानकर भूपति ने उस जलगामी (मत्स्य) से इस प्रकार कहा : ६९८ [सी.] "तुम एक ही दिन में शत योजन तक बढ़ जाते हो, ऐसे मत्स्य को हमने कभी देखा नहीं, न सुना, न जाना। मीन जाति के प्राणियों का इस प्रकार का शरीर नहीं होता। [आखिर] तुम कौन हो ? मुझे क्यों इस रीति से घुमाते हो ? विपद्-ग्रस्तों की करुणापूर्वक रक्षा करने के लिए जलचर (मीन) बने हुए हरि हो तुम। तुम्हें मैंने जान लिया। हे अव्यय ! नारायणनामी ! [ते.] जनन (सृष्टि) स्थिति, संहार करनेवाले चतुर-चित्त देव ! हम दीन भक्तों का आसरा तुम्हीं हो; तुम्हारा [यह] मीनावतार निखिल भूतों (समस्त प्राणियों) के

नीदु मीनावतारंबु निखिलभूत
भूति हेतुवु ग्रॊक्केद वुरुषवर्य ! ॥ 699 ॥

कं. इतरुलमु गामु चित्सं, -गतुलमु मापाल नीवु गलिगिति भक्त
स्थितुडवगु निन्नु नॆप्पुडु, नतिसेसिन वानिकेल नाशमु गल्गुन् ॥ 700 ॥

कं. श्रीललना कुचवीथी, केलीपरतंत्र वुद्धि ग्रीडिंचु सुखा-
लोलुडवु तामसाकृति, नेला मत्स्यंबवैति नॆरिगिंपु हरी ! ॥ 701 ॥

व. अनि पलुकु सत्यव्रतुंडनु महाराजुनकुनय्युगंबु कडपट प्रलयवेळ समुद्रंबुन नेकांतजनप्रीतुंडै विहरिंप निच्चर्यिचु मीनरूपुंडैन हरि यिट्लनियॆ ॥ 702 ॥

सी. इटमीद नी रात्रि केडव दिनमुन वद्मगर्भुन कॊक्क पगलु निंडु
भूर्भुवादिक जगंबुलु मूडु विलयाब्धिलोन मुनुंगु नालोन बॆद्द
नावचेरगवच्चु ना पंपु पॆंपुन दानिपै नौषधततुलु बीज-
रासुलु निडि पयोराशिलो विहरिंप गलवु सप्तर्षुलु गलसि तिरुग

आ. ग्रोल गानराक मुंचु बॆंजीकटि
मिनुकुंडु मुनुल मेनि वॆलुगु
दॊलकुचुंडु जलधि दोधूयमानमै
नाव तेलुचुंडु नरवरेण्य ! ॥ 703 ॥

---

लिए ऐश्वर्य का कारण बनता है; हे पुरुषवर्य ! तुम्हें नमस्कार करता हूँ। ६९९ [कं.] हम इतर (पराये) नही है; [तुम्हारी] चित् शक्ति से युक्त है, तुम हमारे पल्ले (पक्ष में) हो, भक्तो मे [स्थित] रहनेवाले तुम्हारी विनती जो कोई करता है, उसका नाश क्योंकर होगा ? ७०० [कं.] हे हरि ! लक्ष्मी-रमणी के कुच-प्रदेश में केलीरत रहने के विचार से क्रीडा करनेवाले सुखाभिलाषी होनेवाले, तुम इस तामसी आकार वाले मत्स्य क्यों बने हो? मुझे जताओ"। ७०१ [व.] यों निवेदन करनेवाले सत्यव्रत नामी महाराज से मीनरूप धरे उस हरि ने, जो उस युग के अंत में होने जा रहे प्रलय के समय एकांतजनप्रिय हो विहार करने की इच्छा कर रहा था—यों उत्तर दिया : ७०२ [सी.] "आज की रात से लेकर आगे के सातवें दिन पद्मगर्भ (ब्रह्मा) का एक दिन पूरा होनेवाला है, [उस समय] भूर्भुवादि (भूः, भुवः, सुवः) तीनों लोक प्रलयजल में डूब जायेंगे, उसके पहले ही मेरी आज्ञा से एक बड़ी नाव तुम्हारे पास पहुँच जायगी; उसमें औषध-समूह और बीजों की राशियाँ लादकर तुम उस पयोराशि (समुद्र) में विहार करो; सप्तर्षि भी तुम्हारे साथ घूमेंगे, [आ.] सामने कुछ न दीखेगा, गाढ़ांधकार परिव्याप्त रहेगा, केवल मुनियों की देहकांति टिमटिमाती रहेगी; हे नरवर (राजा) ! उस दोधूयमान (कल्लोलित)

व. मरियु, नन्नाव मुन्नीटि करळ्ळकु लोनुगाकुंड, निरर्गलंबुल वेंनुक मुंदर नेमरकुंड, पॅन्नॅरुलगु ना गरुलं जडियुचु, बौडुववच्चिन बलु ग्राहंबुल नीडियुचु, संचरिंचेद, ओक्क पॅनुबामु चेरुव, ना यनुमति बौडचूपॅडु। दानंजेसि सुडिगाड्पुलकतंबुन नाव वडि दिरुगंबडकुंड ना कोम्मुतुदि बदिलंबुग जेसि, नीकुनु मुनुलकु, नलजडि चेंदकुंड मुन्नीटि निप्पाटं दम्मिचूलि रेयि वेगुनंतकु मॅलंगॅद। अदि कारणंबुगा जलचररूपंबु गैकॉटि। मरियुनु प्रयोजनंबु गलदु। ना महिम परब्रह्मंबनि तॅलियुमु। निन्नु ननुग्रहिंचिति। अनि सत्यव्रतंडु सूड हरि तिरोहितुंडय्ये। अय्यवसरंबुन ॥ 704 ॥

आ. मत्स्यरूपियैन माधवु नुडुगुलु
तलचिकोनुचु राचतपसि यॉक्क
दर्भशय्य दूर्पु दलगडगा बंडि
काचि युंडे नाटि कालमुनकु ॥ 705 ॥

व. अंत कल्पांतंबु डासिन ॥ 706 ॥

कं. उल्लसित मेघपंक्तुलु
जल्लिचि महोग्रवृष्टि जडिगॉनि गुरियन्

---

जलधि (समुद्र) पर तुम्हारी नाव डगमगाती रहेगी। ७०३ [व.] और, जिससे वह नाव सागर की लहरों में फँसकर डूब न जाय, आगे, पीछे और पार्श्वों में सजग होकर अपने विशाल पंखो को हिलाते हुए, आक्रमण करने आनेवाले अनेक जलग्राहों को पकड़ते हुए मैं संचार करता रहूँगा। मेरी अनुमति से एक महासर्प उस नाव के समीप दिखाई देगा, उसके प्रभाव से अंधड़ के वेग में नाव उलट जाने से बचकर सुरक्षित रहेगी। मैं अपनी दाढ़ की नोक नाव से लगाकर उसे हिलने न दूंगा जिससे तुम्हें और मुनियों को भीति न हो। इस प्रकार उस महासागर में मैं पद्मगर्भ (ब्रह्मा) की रात बीतकर जब तक भोर न हो, विचरण करता रहूँगा। इस कारण से मैंने जलचर (मत्स्य) का रूप ग्रहण किया। इसका और एक प्रयोजन है। मेरी महिमा को तुम परब्रह्म जानो; तुम पर मैं अनुग्रह दिखाता हूँ।" इस प्रकार कहकर सत्यव्रत की दृष्टि के सामने ही हरि तिरोहित हुआ। उस अवसर पर, ७०४ [आ.] मत्स्य रूपी माधव (विष्णु) के वचनों पर विचार करते हुए वह राजतपस्वी दर्भ-शय्या बिछाकर पूर्वदिशा को सिर रखकर लेट गया और उस दिन की प्रतीक्षा करता रहा। ७०५ [व.] अनंतर जब कल्पांत समीप आया तब ७०६ [कं.] उमड़े हुए मेघों के समूह ने महाभयंकर वृष्टि करके निरंतर झड़ी लगा दी तो जलराशियाँ उमड़ पड़ीं और अपने बाँध तोड़कर भू-सीमाओं

वॆलिल विरिसि जलरासुलु
सॆल्लॆलिकट्टलनु दाटि सीमल मुंचॆन् ॥ 707 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 708 ॥

ते. मुन्नु पोयिन कल्पांतमुन नरेंद्र !
ब्राह्ममनग नैमित्तिक प्रळयमैन
निगिपै दॊट्टि तॊलकु मुन्नीटिलोन
गूलॆ भूताळि जगमुल कॊलदुलॆडलि ॥ 709 ॥

व. अंत नम्महारात्रियंदु ॥ 710 ॥

म. नॆरि नॆल्लप्पुडु निल्चि प्राणिचयमुन् मीलिप निर्मिचि वी
पिरिय न्नीलुगुचु नावुलिपुचु नजुंडे सृष्टियुन् मानि मे-
नॊरगन् ड्रॆप्पलु मूसि केल्दलगडंयुंडग निद्रिपुचुन्
गुरु वॆट्टं दॊडगॆन् गलल्गनुचु निर्घोषिपुचुन् भूवरा ! ॥ 711 ॥

आ. अलसि सॊलसि निदुर नॊंदिन परमेष्ठि
मुखमुनंदुवॆडलॆ मॊदटि श्रुतुलु
नपहरिंचॆ नॊक नॊक हयग्रीवुडनु दैत्य-
भट्टु दॊंग दॊडर वशलवशमॆ ॥ 712 ॥

कं. चदुवुलु तनचेपडॆ ननि
चदुवुचु बॆन् बयल नुंड शंकिंचि वडिन्

---

को डुबो दिया । ७०७ [व.] तदनंतर । ७०८ [ते.] हे नरेंद्र ! गत-कल्पांत के समय जब ब्राह्म कहलानेवाला नैमित्तिक प्रलय आ पहुँचा तब आकाश को छूते हुए लहरानेवाली जलराशि मे सारे जगों की सीमाएँ विलीन हुईं और समस्त भूतालि (जीवसमूह) मर मिट गयी । ७०९ [व.] तब उस महारात्रि के समय ७१० [म.] अज (ब्रह्मदेव) बड़े-बड़े प्राणिकोटि का निरंतर सृजन करते-करते थक गया, उसकी पीठ दुखने लगी, अँगड़ाई लेकर सृष्टि का कार्य बंद करके उसने जँभाई ली, वह लेट गया, और नेत्र मूँदे, हाथ को (सिर के नीचे) तकिया बनाकर सो गया । हे भूवर (राजन्) ! वह स्वप्न देखते हुए खर्राटे लेने लगा । ७११ [आ.] थके-माँदे गहरी नीद सोते रहे परमेष्ठि (ब्रह्मा) के मुख से प्रथमतः वेद बाहर निकले । उसे हयग्रीव नामक एक दैत्य भट ने चुरा लिया, उस चोर का सामना करना अन्य किसी के लिए साध्य था ? (नहीं) ७१२ [क.] जब विद्या (वेद) अपने हाथ लगी तो उसे पढ़ते हुए, बाहर खुली जगह रहने में उसे [सुरक्षा की] शंका हुई उस वेदतस्कर ने शीघ्रता से, जबकि वेदस्वरूपी वृद्ध ब्रह्मा सोये हुए,

जड्डुवुलमुदुकड्ड गुरुक
जड्डुवुलतस्करुड्ड सोच्चॆ जलनिधिकड्डुपुन् ॥ 713 ॥

व. इट्लु वेदंबुलु दौंगिलि दौंगरक्कसुंडु मुन्नोट मुनिगिन, वानि जयिंप वलसियु, म्रानुदीगॆलयंदु वित्तनंबुल पॊत्तरुलु पॆन्नीट नानि चॆडकुंड मनुपवलसियु, नॆल्लकार्यंबुलकु गावलियगु ना पुरुषोत्तमुंडप्पॆनुरेयि चॊरुदलयंदु ॥ 714 ॥

कं. कुरुगरुलु वलुदमीसलु
चिरुदोकयु व्रसिडि यॊडलु सिरिगल पॊडलुन्
नॆरिमोगमु नॊक्क कॊम्मुनु
मिरुचूपुलु गलिगि विभुडु मीनंबय्यॆन् ॥ 715 ॥

व. इट्लु लक्ष योजनायतंबैन पाठीनंबै, विश्वंभरुंडु जलधि सॊच्चि ॥ 716 ॥

सी. ऒकमाटु जलजंतु यूथंबुतो गूडु नॊकमाटु दरुलकु नुरिकिवच्चु
नॊकमाटु मिटिकि नुदरि युल्लंघिचु नॊकमाटु लोपल नॊदिगि युंडु
नॊकमाटु वाराशिनॊडलु मुंपमि सूपु नॊकमाटु ब्रह्मांड मॊरय दलचु
नॊकमाटु झषकोटि नॊडिसि याहारिंचु नॊकमाटु जलमुल नुमिसिवैचु

ते. गरुलु सारिचु मीसलु गडलु गॊलुपु
बॊडलु मॆरिपिचु गन्नुल पॊलुपु मार्चु
नॊडलु झळिपिचु दळतळ लॊलयु मीन-
वेषि पॆन्नीट निगम गवेषि यगुनु ॥ 717 ॥

---

था, समुद्र के गर्भ मे पैठकर छिप गया। ७१३ [व.] यों वेदों की चोरी करके वह तस्कर दैत्य जब सागर में डूब गया तो उसे जीतना आवश्यक हुआ, और पेड़ों और लताओ के वीजो के गट्ठों को समुद्र-जल में भीगकर नष्ट होने से बचाना भी आवश्यक था, अतः सब कार्यों के प्रबंधकर्ता वह पुरुषोत्तम (विष्णु) इस महारात्रि के आरंभ में ७१४ [कं.] छोटे पंख, घनी मूँछे, छोटी दुम, सुनहला बदन, रम्य रूप, सुंदर मुख, एक सींग, झिलमिल आँखे लेकर प्रभु (विष्णु) मीन बन गया। ७१५ [व.] इस प्रकार लक्षयोजन दीर्घ पाठीन (मछली) बना हुआ विश्वंभर (विष्णु) जलधि (समुद्र) में प्रवेश कर ७१६ [सी.] कभी जलजंतुओ से मिल जाता, कभी किनारे पर दौड़ आता; कभी उछलकर आकाश पर जा लगता, कभी [जल के] भीतर सिकुड़कर रह जाता, कभी समुद्र-जल से अनभीगा शरीर दिखाता, कभी ब्रह्मांड से टकराने को होता, कभी झषों को पकड़कर खा जाता, कभी जल थूककर उगलने लगता, [ते.] पंख फैलाता, कभी मूँछो को ऊपर उठाकर पसारता, कभी शरीर पर के फूल (धब्बे) चमकाता, कभी तेवर वदलता, कभी बदन झझोड़ता, और कभी वह मीनवेषी सागर मे निगम (वेदों) की गवेषणा (खोज) करता हुआ झिलमिला जाता

व. अंतकुमुन्नु सत्यव्रतुंडु महार्णवंबुलु महीवलयंबु मुंचु नवसरंबुन भक्त-
पराधीनंडगु हरि दलचुचुनुंड, नारायण प्रेरितयै, यॊक्क नाव वच्चिनं
गनुंगॊनि ॥ 718 ॥

म. च्चनि सत्यव्रत मेदिनीदयितुडोजं बूनि त्रान् दीगॆ वि-
त्तनमुल् पॆक्कुलु नावपै निडि हरिध्यानंबुतो दानिपै
मुनिसंघंबुलु दानि नॆक्कि वॆरतो मुन्नीटिपै देलुचुन्
गनियॆन् मुंदट भक्तलोक हृदलंकर्मीणमुन् मीनमुन् ॥ 719 ॥

व. कनि, जलचरेंद्रुनि कॊम्मुन नॊक्क पॆनुबापत्राट नन्नावगट्टि, संतसिचि,
डॆंदंबु निबिरिकॊनि, तपस्वुलतोड गूडिकॊनि, या राचपॆद्द मीनाकारुंडगु
वेल्पुरेनि निट्लनि पॊगडॆ। अप्पुडु ॥ 720 ॥

म. तमलो बुट्टु नविद्य गप्पुगॊनगन् दन्मूल संसार वि-
भ्रमुलै कॊदरु देलुचुन् गलगुचुन् वल्बॆट्टलन् दैव यो-
गमुनंदे परमेशु गॊल्चि घनुलै कैवल्य संप्राप्तुलै
प्रमदंबंदुदुरट्टि नीवु करुणं बालिपु मम्मीश्वरा ! ॥ 721 ॥

उ. कन्नुलु गल्गुवाडु मरि काननिवानिकि द्रोव सूपगा
जन्न तॆरंगु मूढनकु सन्मति दा गुरुडौट सूर्युडे

था। ७१७ [व.] इसके पूर्व ही सत्यव्रत, जब महार्णव (सागर) महीवलय (भूमंडल) को डुबो रहा था, उस समय भक्त-पराधीन हरि का ध्यान करते बैठा था; तब नारायण से प्रेरित होकर एक नाव वहाँ आ पहुँची; उसे पाकर, ७१८ [म.] सत्यव्रत भूपाल उत्साह से कई ओषधी लताओं तथा बीजों को उस नाव में रखकर, मुनिसंघ के साथ उस पर चढ़, हरि का ध्यान करते हुए, डरते-डरते, प्रलयजल पर उतरा रहा था, तब उसने अपने सामने भक्तलोक के हृदलंकरण (हृदयालंकार) बने उस मीन को देखा। ७१९ [व.] देखकर, उस जलचरेंद्र (महामत्स्य) के सींग से अपनी नाव एक महासर्प रूपी रस्से से बाँधकर, संतोष से शांतचित्त हो, उन तपस्वियों के संग उस महाराज ने मीनाकार देव की इस प्रकार स्तुति की : ७२० [म.] "अपने अंदर उत्पन्न अविद्या से आवृत होने के कारण, संसार के विभ्रम (मोह) में फँसकर, डूबते-उतराते हुए जो लोग अनेक प्रकार से संक्षोभ पाते हैं, वे भी दैवयोग से जिस परमेश्वर को भजकर, महान् बन, कैवल्य प्राप्त कर प्रमोदित (आनंदित) होते हैं, वही भगवान् हो तुम; हे परमेश्वर ! करुणापूर्वक हमारी रक्षा करो। ७२१ [उ.] नेत्रवान् [व्यक्ति] अंधे को जब रास्ता दिखाता है तब वह मार्ग में चलने लगता है। सन्मति वाला (सद्बुद्धि रखनेवाला) मूढ़ का गुरु बनकर, ज्ञानमार्ग बताता है। तुम सूर्य को नेत्र बनाकर, समस्त भूतों को देखते

कन्नुलुगाग भूतमुल गांचुचु नुंडु रमेश! माकु नु-
द्यन्नयमूर्तिवै गुरुववै यल सद्गति जाड जूपवे ॥ 722 ॥

कं. इंगलमुतोडि संगति, बंगारमु वन्नॅ गलुगु भंगिनि नी से-
वांगीकृतुल यघंबुलु, भंगंबुल वोंदु मुक्ति प्रापिंचु हरी! ॥ 723 ॥

कं. हृदयेश! नी प्रसन्नत, पदिवेलवपालि लेशभागमु कलनं
द्रिदशेंद्रत्वमु गल दिट, तुदि निनु मॅप्पिप नेदि दोरकदु श्रीशा! ॥ 724 ॥

कं. पॅरवाडु गुरुडटंचुनु, गॉरगानि पदंबु सूप गुजनुंडगु नी
नॅरुत्रोव नडवनेर्चिन, नरुमड लेनट्टि पदमु नंदु दयाब्धी! ॥ 725 ॥

म. चॅलिवै चुट्टमवै मनस्थितुडवै चिन्मूर्तिवै यात्मवै
वलनै कोर्कॅल पंटवै विभुडवै वर्तिल्लु निन्नोल्ल के
पलुवेंट बडि लोक मक्कट! वृथा बद्धाशमै पोयॅडिन्
निलुव न्नेर्चुनॅ हेमराशि गनियु न्निर्भाग्यु डंभश्शया! ॥ 726 ॥

आ. नीरराशिलोन निजकर्मबद्धमै
युचित निद्र बॉंदियुन्न लोक-
मे महात्मुचेत नॅप्पटि मेलकांचु
नट्टि नीवु गुरुड वधिप! माकु ॥ 727 ॥

---

रहते हो। हे रमेश! तुम श्रेष्ठ नयमूर्ति (ज्ञानमूर्ति) होकर हमारे गुरु बनो और हमे सद्गति (मुक्ति) का मार्ग दिखाओ। ७२२ [कं.] हे हरि! जैसे अगार की संगति से सुवर्ण को कांति मिल जाती है, वैसे ही तुम्हारी भक्ति स्वीकार करनेवालों के अघ (पाप) भग्न (नष्ट) हो जाते हैं, उन्हें मुक्ति मिल जाती है। ७२३ [क.] हे हृदयेश! तुम्हारे अनुग्रह के दस हज़ारवाँ भाग भी त्रिदशेंद्र (इन्द्र) का पद प्राप्त करा सकता है। हे श्रीश (श्रीपति)! तुम्हें प्रसन्न करने पर हमे क्या नही मिल सकता? (सर्वसमृद्धि होगी) ७२४ [कं.] हे दयाब्धी (दयासमुद्र)! और किसी को (अन्य को) गुरु मानकर चले तो वह निरर्थक मार्ग बतावेगा और मनुष्य (शिष्य) दुर्जन बन जायगा। यदि तुम्हें गुरु बनाकर विशाल मार्ग पर चलें तो जन (मानव) निस्सदेह उत्तम गति प्राप्त करता है। ७२५ [म.] हे अंभश्शया (सागर पर शयन करनेवाले)! तुम्हीं हमारे सखा (मित्र), बन्धु, मनोगत आनंदमूर्ति, आत्मा, कामना, कामना की पूर्ति और प्रभु बने हुए हो, ऐसे तुम्हें स्वीकार कर अपनाने के बदले लोग अनेक मार्गो पर चलकर, हाय! व्यर्थ ही आशापाशों में बँध जाते है। अभागा नर सुवर्णराशि पाकर भी आशा (लालच) छोड़ स्थिरचित्त से रहना नही जानता। ७२६ [आ.] लोक अपने कर्मो के बंधन में फँसकर ससार के समुद्र-जल में मग्न हो, अज्ञान की नींद सोता है, फिर भी जिस महात्मा की

कं. आलिपुमु विन्नपमिदे
वेलुपुगमिरेनि निन्नु चेटिकोनियेदन्
नालोनि चिक्कु मानिचि
नीलोनिकि गोंचु वोम्मु निखिलाधीशा ! ॥ 728 ॥

व. अनि यिट्लु सत्यव्रतुंडु पलिकिन संतसिंचि मत्स्यरूपंबुन महासमुद्रंबुन विहरिंचु हरि, पुराणपुरुषुंडगुट जेसि, सांख्योग क्रियासहितयगु पुराण संहित नुपदेशिंचे। अम्महाराजु मुनिनमेतुंड, भगवन्निगदितंबैन, सनातनंबगु ब्रह्मस्वरूपंबु देलिसिकोनि, कृतार्थुंडय्ये। इम्महाकल्पंबुन विवस्वतुंडनं वरगिन सूर्युनकु श्राद्धदेवुंडन जन्मिंचि श्रीहरि कृपावशंबुन नेडव मनुवय्ये। अंत नव्विधंबुनं वेनु रेयि निडु नंतकु संचरिंचि जलचराकारुंडगु नारायणुंडु दन्निशांत समयंबुनदु ॥ 729 ॥

म. उरुकंभोनिधि लोनि वेदमुल कुय्युं देन्यमुं जूचि वे-
गरु लाडिंचि मुखंबु साचि नलुवोफन् दोक सारिंचि मेन्
मॆरुयन् वोडलु गोडि मीस लडरन् मीनाकृतिन् विष्णुट-
वकरुंटि दाकि वधिंचे मुष्टि दळित ग्रावुन् हयग्रीवुनिन् ॥ 730 ॥

व. अंत प्रळयावसान समयंबुन ॥ 731 ॥

कृपा से ज्ञान पाकर यथापूर्व जाग उठता है, हे प्रभु ! हमारे वह गुरु तुम्हीं हो। ७२७ [कं.] हे निखिलाधीश (समस्त के स्वामी) ! हमारी इस विनती पर कान दो, तुम देवता-सार्वभौम को मैं प्रार्थना करता हूँ; मेरे अंदर की उलझन दूर कर, मुझे तुम्हारे भीतर विलीन कर लो।" ७२८ [व.] सत्यव्रत के यों किये निवेदन से प्रसन्न होकर, मत्स्यरूप में महासमुद्र में विहार करनेवाले हरि ने स्वयं पुराणपुरुष होने के कारण राजा को सांख्ययोगक्रिया-सहित (-युक्त)-पुराण-संहिता का उपदेश दिया। वह महाराजा मुनिगण समेत भगवान् से निगदित (उपदिष्ट) सनातन ब्रह्म का स्वरूप जानकर कृतार्थ हुआ। फिर इस महाकल्प में विवस्वत नामक प्रसिद्ध सूर्य का, श्राद्धदेव के नाम से पुत्र होकर जन्म लिया और श्रीहरि की कृपा पाकर सातवाँ मनु बन गया। अनंतर उस रीति से महारात्रि के पूर्ण होते (बीतते) समय तक संचार करके जलचराकार का वह नारायण निशांत के समय··· ७२९ [म.] मीनाकृति (मछली के आकार) में स्थित विष्णु ने, खोजकर जलनिधि (समुद्र) में बंद पड़े वेदों की दीनता देख और उनकी गुहार सुनकर, वेग से, अपने पंख फड़फड़ाये, मुँह फुलाया, पूँछ फैलायी, बदन चमकाया, जबड़े हिलाये, और मूँछ उठाते हुए मुष्टिघातों से पत्थर को भी चूर करनेवाले उस क्रूर राक्षस हयग्रीव से भिड गया और उसका वध किया। ७३० [व.] तब प्रलय के अवसान (अंत) के समय

सी. ॲप्पुडु वेगुनं चॅंदुरु सूचुचु नुंडु मुनुल डेंदंबुलु मुदमु नोंद
दॅलिवितो ब्रवक निद्रिंचु भारति लेचि योर पय्यॅद चक्क नोत्तिकॉनग
मलिनमै पॅनुरेयि म्रविकन तेजंबु तॉंटि चंदंबुन दॉंगलिप
प्राणुल संचित भागधेयंबुलु गन्नुल कॉलुकुल गानबडग

ते. नवयवंबुलु कदलिचि यावुलिंचि
निदुर दॅप्पिरि मेल्कांचि नीलिग मलंग
यॉडलु विरुचुचु गनुगव नुसुमु कॉनुचु
धात गूचुंडे सृष्टि संधात यगुचु ॥ 732 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 733 ॥

आ. वासवारि जंपि वानि चेपडियुन्न
वेदकोटि चिक्कु विच्चि तॅच्चि
निदुर मानि युन्न नीरजासनुनकु
निच्चॅ गरुणतोड नीश्वरुंडु ॥ 734 ॥

कं. जलरुह नाभुनि कोरकॅ
जलतर्पणमाचरिंचि सत्यव्रतु डा
जलधि ब्रतिकि मनुवय्यॅनु
जलजाक्षुनि गॉलुव कॅंदु संपद गलदे ॥ 735 ॥

आ. जनविभुंडु तपसि सत्यव्रतुंडुनु मत्स्यरूपियैन माधवुंडु
संचरिंचि नट्टि सदमलाख्यानंबु विनिनवाडु बंध विरहितुंडु ॥ 736 ॥

---

में : ७३१ [सी.] "भोर कब होगा" कहकर प्रतीक्षा में बैठे मुनियों के हृदय मोद (आनंद) से भर गये, [पति के] पार्श्व में निद्रागत भारती ने (सरस्वती ने) जागकर आधा खुला पल्लो सँवार लिया, कालरात्रि के समय मलिन हो अस्त हुआ तेज पूर्ववत् प्रकाशमान हुआ, प्राणियों का संचित भागधेय (भाग्य) उनके लोचन-कोर में झलकने लगा। [ते.] धाता (ब्रह्मा) ने अवयवों को हिलाकर जँभाई ली, नींद से जागकर, ऐंठकर, अँगड़ाई ले, आंखे मलते हुए उठ बैठा और [फिर से] सृष्टि करने का विधान सोचने लगा। ७३२ [व.] उस अवसर पर ७३३ [आ.] वासवारि (इन्द्र के शत्रु) हयग्रीव [नामक] राक्षस को मारकर उसके हाथ में उलझकर पड़े हुए वेदों को सुलझाकर ईश्वर ने करुणापूर्वक निद्रा छोड़ बैठे हुए नीरजासन (ब्रह्मदेव) को ला दिया। ७३४ [कं.] जलरुहनाभ (कमलनाभ— विष्णु) को लक्ष्य कर जल-तर्पण करके सत्यव्रत उस जलधि (महासागर) से निकलकर मनु बन गया। जलजाक्ष को भजे विना संपत्ति कहाँ से मिल सकती है? ७३५ [आ.] राजा होकर तपस्वी बने हुए

कं. हरि जलचरावतारमु, बरुवडि प्रतिदिनमुन जदुव वरमपदंबुन्
नरुडंदु वानि कोर्कॆलु, धरणीश्वर ! सिद्धिबॊंदु दथ्यमु सुम्मी ॥ 737 ॥

मा. प्रळयांभोनिधिलोन मेन् मरचि निद्रं जॆंदु वाणीशु मो-
मुल वेदंबुलु गॊन्न दैत्युनि मृति बॊंदिचि, सत्यव्रतुं-
डलरन् ब्रह्ममु माटलं दॆलिपि सर्वाधारुडै मीनमै
जलधिं ग्रुंकुच देलुचुन् मॆलगु राजन्मूर्तिकिन् म्रॊक्कॆदन् ॥ 738 ॥

व. अनि चॆप्पि ॥ 739 ॥

कं. राजेंद्र ! दैत्यदानव, राज महागहन दहन ! राजस्तुत्या !
राजावतंस मानित ! राजधरार्चित ! गुणाढ्य ! राघवरामा ! ॥ 740 ॥

मा. दिविजरिपुविदारी ! देवलोकोपकारी !
भुवनभरनिवारी ! पुण्यरक्षानुसारी !
प्रविमल शुभमूर्ती ! बंधुपोष प्रवर्ती !
धवळ बहुळ कीर्ती ! धर्मनित्यानुवर्ती ! ॥ 741 ॥

गद्य. इदि श्री परमेश्वर करुणाकलित कविताविचित्र केसनमंत्रिपुत्र सहज

---

सत्यव्रत तथा मत्स्यरूपधारी माधव (विष्णु) जिस पवित्र आख्यान में वर्णित हुए हैं, उसे सुननेवाला बंधन-रहित (विमुक्त) है। ७३६ [कं.] हे धरणीश्वर (हे राजा) ! यह जान जाओ कि हरि की जलचरावतार-कथा को जो नर (मनुष्य) नियमपूर्वक प्रतिदिन पढ़ेगा, वह परमपद (मोक्ष) प्राप्त करेगा, उसकी अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी, यह तथ्य (सत्य) है। ७३७ [म.] मैं उस श्रीहरि की वंदना करता हूँ जिसने प्रलयांभोनिधि में (प्रलयकालीन सागर मे) सुध-बुध भूलकर निद्रासक्त हुए वाणीश (ब्रह्म) के मुँह से वेदों को चुरानेवाले दैत्य का वध किया था, परब्रह्म [तत्त्व] का वर्णन करके जिसने सत्यव्रत को संतोष दिया था, सर्वाधार होकर भी जो मीन बन जलधि (समुद्र) में डूबते-तिरते विराजमान हुआ था। ७३८ [व.] यों कहकर ७३९ [क.] हे राघव राम ! राजेंद्र ! दैत्य-दानव-राज-महागहन-दहन (राक्षराज रूपी जंगल के लिए दहन स्वरूप) ! राजाओं से प्रशंसित ! मानित-राजावतंस (सम्मानित राजाओं के भूषण) ! राजलोक से पूजित ! हे गुणाढ्य ! ७४० [मा.] हे दिविजरिपु-बिदारी (देवशत्रु-राक्षसों को मारनेवाले) ! देवलोकोपकारी ! भुवन-भर-निवारी (भूमि का भार दूर करनेवाले) ! पुण्यरक्षानुसारी ! (पुण्यवानों की रक्षा में लगे रहनेवाले) ! प्रविमल-शुभमूर्ति ! बंधुपोष-प्रवर्ती (बंधुओं के पोषण में प्रवृत्त रहनेवाले) ! धवल-बहुल-कीर्ती ! धर्म-नित्यानुवर्ती (सदा धर्म का अनुवर्तन करनेवाले) ! [तुम्हें नमस्कार।] ७४१ [गद्य.] यह श्रीपरमेश्वर-करुणाकलित-कविताविचित्र, केसन-मंत्री-पुत्र, सहज-

**पांडित्य पोतनामात्य प्रणीतंबैन श्रीमह्भागवत पुराणंबनु महा, प्रबंधंबुनंदु स्वायंभुव स्वारोचिषोत्तम तामस मनुवुल चरित्रंबुनु, करिमकरि युद्धंबुनु, गजेंद्ररक्षणंबुनु, रैवत चाक्षुष मनुवुल वर्तनंबुनु, समुद्रमथनंबुनु, कूर्मावतारंबुनु, गरळ भक्षणंबुनु, अमृतादि संभवंबुनु,देवासुर कलहंबुनु, हरि कपट कामिनी रूपंबुन नसुरुल वंचिचि देवतल कमृतंबु वोयुटयु, राक्षस वधंबुनु, हरिहर सल्लापंबुनु, गपट कामिनीरूप विभ्रमणंबुनु, वैवस्वत, सूर्यसावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, भद्रसावर्णि, देवसावर्णि, इंद्रसावर्णि मनुवुल वृत्तांतंबुनु, बलि युद्धयात्रयुनु, स्वर्गवर्णनंबुनु, देवपलायनंबुनु, वामनावतारंबुनु, शुक्रबलि संवादंबुनु, त्रिविक्रम विस्फुरणंबुनु, राक्षस सुतल गमनंबुनु, सत्यव्रतोपाख्यानंबुनु, मीनावतारंबुनु ननु कथलु गल यष्टमस्कंधमु संपूर्णमु ॥ 742 ॥**

---

पांडित्य [युक्त], पोतनामात्य-प्रणीत श्रीमहाभागवतपुराण नामक महा प्रबंध में स्वायंभुव-स्वारोचिष, उत्तम, तामस, मनुओं के चरित्र, करि-मकरि-युद्ध, गजेंद्र-रक्षण, रैवत-चाक्षुष-मनुओ का वर्तन, समुद्र-मंथन, कूर्मावतार, गरळ-भक्षण, अमृत आदि-संभव, देवासुर-कलह, हरि का कपट कामिनी के रूप में असुरों को वंचित करके देवताओ को अमृत देना, राक्षस-वध, हरि-हर-सल्लाप (सवाद), कपट-कामिनी-रूप-विभ्रमण, वैवस्वत, सूर्यसावर्णी, दक्षसावर्णी, ब्रह्मसावर्णी, भद्रसावर्णी, देवसावर्णी, इंद्रसावर्णी मनुओं का वृत्तांत, बलि की युद्ध-यात्रा, स्वर्ग-वर्णन, देवपलायन, वामनावतार, शुक्र-बलि-संवाद, त्रिविक्रम-विस्फुरण, राक्षसों का सुतल-गमन, सत्यव्रतोपाख्यान, मीनावतार नामक कथाओं से युक्त अष्टम-स्कंध संपूर्ण है। ७४२

---

ॐ

# अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

# आन्ध्र महाभागवतमु

## ( नवम स्कन्धमु )

कं. श्री राजित ! मुनिपूजित ! वारिधि गर्वातिरेक वारणवाणा !
सुरित्राण ! महोज्ज्वल, सार यशस्सांद्र ! रामचंद्र नरेंद्रा ! ॥ 1 ॥

### अध्यायमु—१

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनिश्रेष्ठुलकु निखिल पुराण व्याख्यान वैखरी समेतुंडयिन सूतुंडिट्लनियें। अट्लु प्रायोपविष्टुंडयिन परीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुकयोगींद्रुं गनुंगोनि ॥ 2 ॥

---

( नवम स्कन्ध )

[कं.] श्री (लक्ष्मी) से विराजित, मुनियों से पूजित, वारिधि के गर्वातिरेक (गर्व के आधिक्य) को रोकनेवाले वाण को धारण करनेवाले, वीरों की रक्षा करनेवाले, महान् उज्ज्वलता का सार होनेवाले यश की सांद्रता को रखनेवाले, हे रामचद्र नरेंद्र ! [तुम्हें नमस्कार] १

अध्याय—१

[व.] महान् गुणों से गरिष्ठ उन मुनिश्रेष्ठों से निखिल-पुराण-व्याख्यान (आलोचना) वैखरी-समेत सूत ने इस प्रकार कहा। उस प्रकार प्रायोपविष्ट परीक्षित् नरेंद्र ने शुक योगींद्र को देखकर [कहा] : २

सी. मनुवुल नडवळ्ळु, मर्यादलुनु विंटि मन्वंतरंबुल, माधवुंडु
दिरिगिन जाडलु, देलिसें सत्यव्रतुडनु राजु द्रविळ देशाधिपुडु
पोयिन कल्पांतमुन विष्णु सेविंचि विज्ञानमुन वॅलुगुरेनि
कतडु वैवस्वतुंडै पुट्टि मनुवय्यॅ नतनिकि निक्ष्वाकुडादिगाग

ते. बदुरु गॊडुकुलु गलरंडु परगवारि
वंशमेरीति वर्तिंचॅ वारिलोन
जनिन वारिनि जनुवारि जनॅडिवारि
जॆप्पवे व्यासनंदन ! चित्तगिंचि ॥ 3 ॥

कं. चॆवुलार नेडु विनियॆद, रविवंशमुनंदु गलुगु, राजुल कीर्तुल्
विवरिंपु वरुसतोडनु, भुवि बुण्युल कीर्ति विनिन बुण्यमु गादे ॥ 4 ॥

व. अनिन पराशर मुनि मनुमंडिट्लनियॆ ॥ 5 ॥

आ. विनुमु मनुव कुलमु, वेयि नूरेंड्लु
बरग विस्तरिंचि पलुकराडु
नाकु दोचिनंत नरनाथ ! वेगंब
यॆरुक पडग प्रीति नेर्परितु ॥ 6 ॥

कं. ऎक्कुव दक्कुव पॊडवुल
कॊक्कटि मॊदलयिन पुरुषुंडितयु जॆडदा
नॊक्कडु गल्पांतंबुन
नक्कजमै निलिचि विश्वमयुडै युंडन् ॥ 7 ॥

---

[सी.] मैने मनुवो की चाल-चलन और उनकी मर्यादाओं (आचार-व्यवहार) के विषय में सुना है। विदित हुआ कि मन्वंतरों में माधव ने क्या-क्या व्यवहार किये; द्रविळ देश के अधिप ने गत कल्पांत में विष्णु की सेवा करके और विज्ञान को पाकर सूर्य के गर्भ से वैवस्वत के रूप में जन्म लिया और मनु बन गया। [ते.] उसके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हुए। उनका वंश किस प्रकार चला? हे व्यासनंदन! कृपा करके कहिए कि उनमें से कौन-कौन चल बसे, कौन-कौन जीवित है और कौन-कौन रहेंगे। ३ [कं.] रवि-वंश में उत्पन्न राजाओं की कीर्ति के बारे में आज कान भर सुन लूँगा। क्रम के अनुसार स्पष्ट बतलाइए। इस भुवि (संसार) में पुण्यात्माओं की कीर्ति के बारे में सुनें तो पुण्य ही है न! ४ [व.] यों कहने पर पराशर मुनि के पौत्र ने इस प्रकार कहा। ५ [आ.] हे नरनाथ! सुनो; मनु का वंश एक सहस्र शत वर्ष पर्यंत विस्तृत हुआ; उसके संबंध में कहना कठिन है। (फिर भी) जहाँ तक मैं जानता हूँ प्रीति के साथ ऐसा कहूँगा कि शीघ्र ही तुम्हारी समझ में आ जाय। ६ [कं.] अधिक और अल्प रूपों के लिए अकेला और अद्वितीय (परमात्मा) की आत्मा का कुछ भी नाश

सी. भूमीश ! यम्महापुरुषुनि नाभि मध्यमुन वंगारु गेंदम्मि मोलचें
नातम्मि पूवुलो नटमीद दनयंत नालुगु मोमुल नलुव बुट्टॆ
ना ब्रह्म मनमुन नट मरीचि जनिचॆ गश्यपुंडतनिकि गलिगॆनंत
नाकश्यपुनिकि दक्षात्मज यदितिकि गॊमरुडॆ योकटि गॊग वॊडमॆ

ते. जलजबंधुनि पॆंड्लामु संज्ञयंदु
श्राद्ध देवुंडु मनुवु संजातुडय्यॆ
मनुवुनकु श्रद्ध यनियॆडि मगुवयंदु
वदुगुरीदविरि कॊडुकुलु भद्रयशुलु ॥ 8 ॥

व. वार लिक्ष्वाकुंडुनु नृगुंडुनु शर्यातियु दिष्टुंडुनु, दृष्टुंडुनु, करूशकुंडुनु, नरिष्यंतुंडुनु वृषद्ध्रुंडुनु नभगुंडुनु गवियु नन नॆगडिरि। अटमुन्न मनुव गॊडुकुलु लेनिवाडॆ मित्रावरुणुल नुद्देशिचि ॥ 9 ॥

सी. मनुवु बिड्डलु बुट्ट मखमाचरिंचुचो नतनि भार्ययु होत नाश्रयिंचि
कूतुरु बुट्ट नाकुंजेयुमनि पलिकि वर भक्ति तो बयोव्रतमु सल्पॆ
नासति सॆप्पिनट्लध्वर्युंडुनु होत नगु गाक वेलुमु मनुचु बलिकॆ
हवि नंदुकॊनि कूतुरय्यॆडुमनि वषट्कारंबु सॆप्पुचु गविसि वेल्व

नहीं होता। वह अकेले कल्पांत में आश्चर्ययुक्त तथा विश्वमय होकर रह जाता है। ७ [सी.] हे भूमीश (राजा) ! उस महान् पुरुष की नाभि के मध्य एक सुवर्ण-कमल उत्पन्न हुआ। उस कमल में से, इसके अनंतर, उसी के समान चतुर्मुख ब्रह्मा का जन्म हुआ। उस ब्रह्मा के मन में मरीचि का जन्म हुआ। मरीचि से कश्यप ने जन्म लिया। तदनंतर उस कश्यप और दक्ष की पुत्री अदिति के गर्भ से सूरज का जन्म हुआ। [ते.] जलज-बंधु (सूरज) की पत्नी संज्ञा के गर्भ से श्राद्धदेव नामक मनु पैदा हुआ। श्रद्धा नामक स्त्री के द्वारा मनु के भद्र (श्रेष्ठ) यश प्राप्त दस पुत्र पैदा हुए। ८ [व.] वे इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, दृष्ट, करूशक, नरिष्यंत, पृषद्ध्र, नभग और कवि (नाम से) विख्यात हुए। उसके पूर्व मनु पुत्र-हीन होकर मित्रावरुणों को उद्दिष्ट कर, ९ [सी.] जब मनु संतान-प्राप्ति के लिए यज्ञ कर रहा था, उसकी पत्नी ने होता के आश्रय में जाकर कहा कि ऐसा कीजिए कि मेरे एक पुत्री हो; यों कहकर [उसने] बड़ी भक्ति के साथ पयोव्रत का आचरण किया। जब उस सती ने कहा वैसे ही अध्वर्यु ने होता से कहा कि होम करो। "हवि को लेकर लड़की बनो", यों कहते हुए और वषट्कार का उच्चारण करते हुए होम करने पर, [ते.] होता के वाम हस्त में इला नामक कन्या का जन्म हुआ। उसको देखकर मनु दुःखित हुआ और अपने में यह कहकर कि अगर पुत्र

ते. होत पॅंड चेत निलयनु नुविद वुट्टॅ
दानि बॉडगनि मनुवु संतापमंदि
कॉडुकु मेल् गाक येटिकि गूतुरकट !
चॅप्पवे यनि पोयॅ वसिष्ठुकडकु ॥ 10 ॥

व. चनि यिट्लनियॅ ॥ 11 ॥

कं. अय्या कॉडुकुल कॉरकॅ, यिय्यागमु नी यनुज्ञ ने जेयंगा
निय्याडुदेल पुट्टॅनु, मीयंतटि वारि कॉडु मेरयु गलदे ॥ 12 ॥

व. अदियुनुंगाक मीरु ब्राह्मबादुलरु मंत्रवादुलरु। वेदवादुलरु। पापंबु लंदकुंड जेयिचुवारिदियेमि यनवुडु मा तात वसिष्ठुंडु होतृव्यभिचारं बॅरिगि मनुवुनकिट्लनियॅ ॥ 13 ॥

ते. अधिप ! संकल्प वैषम्यमगुट जेसि
होत कल्लतनंबुन नुविद गलिगॅ
नॅन्न गलिगिंतु नीकु ब्रियात्मजुनिग
नीवु मॅच्चंग जूडु ना नेर्पु बलिमि ॥ 14 ॥

व. अनि पलिकि भगवंतुंडगु वसिष्ठुंडु गीर्तितत्परुंडु गावुन मनुवुकूतु मगतनंबु कॉरकु नेकचित्तंबुन नादि पुरुषुंडगु हरि बॉगडिन नप्परमेश्वरुंडु मॅच्चि तपसि कोरिन वरंबिच्चॅ। अदि निमित्तंबुगा निला कन्यक सुद्युम्नुंडनु कुमारुंडयि राज्यंबु सेयुचु ॥ 15 ॥

---

उत्पन्न हुआ होता तो अच्छा होता, कन्या किसलिए ? यह कहते वह वसिष्ठ के पास गया। १० [व.] जाकर यों बोला ११ [कं.] स्वामी ! पुत्रों के लिए आपकी आज्ञा से मेरे यह यज्ञ करने पर, यह पुत्री क्यों पैदा हो गई ? आपके जैसों (महानुभावों) को क्या कोई अन्य धर्म होता है ? १२ [व.] इसके अतिरिक्त आप ब्रह्मवादी हैं, मंत्रवादी (वेदवादी) हैं और ऐसे कराते हैं कि पाप न लग जायँ। यह क्या है ? (ऐसा क्यों हुआ ?) इस प्रकार कहने पर हमारे पितामह वसिष्ठ ने होतृव्यविचार (होता की बुरी चाल) को जान लेकर मनु से यों कहा। १३ [ते.] हे अधिप (राजा) ! संकल्प वैषम्य तथा होता के असत्य आचरण के कारण पुत्री का जन्म हुआ। फिर भी ऐसा करूँगा कि तुम्हारे प्रिय आत्मज (पुत्र) हो जिसकी तुम प्रशंसा करो। देखो मेरी कुशलता और बल। १४ [व.] इस प्रकार कहकर चूँकि भगवान वसिष्ठ कीर्तितत्पर है, इसलिए मनु की पुत्री के पुंसत्व के लिए एकचित्त (एकाग्रता) से आदिपुरुष हरि की प्रशंसा (प्रार्थना) करने पर, उस परमेश्वर ने संतुष्ट होकर तपस्वी को (उसका) वांछित वर दे दिया। इस निमित्त (कारण) इला कन्या

सी. प्रौद्दुवोकोक नाडु वोयि पेरडवुल वॆंट वेटाडुचु वेड्कतोड
गॊंदरु मंत्रुलु गूड रा सॆंधवंबयिन गुर्रमु नॆक्कि यडवि केगि
वलु विल्लु ग्रोव्वाडि बाणंबुलुनु दाल्चि पॆनु मॆकंबुल वॆंट विरुसु तोड
नुत्तर दिशकु महोग्रुडॆ चनि चनि मेरुवुपॊत गुमारवनमु
ते. जेरॆनंदु महेशुंडु शिवयु नॆपुडु, रति सलुपु चुंदुरंदु जॊरंगवोव
नाडुदय्यॆनु राजु राजानुचरुलु, वडतुलैरितदश्वंबु वडवयय्यॆ ॥ 16 ॥
व. इट्लु मगतनंबु सॆडि मगुवलै योंडोरुल मोंगंबुलु सूचि मरुगुचुंडिरनिन
विनि शुकुनकु राजिट्लनियॆ ॥ 17 ॥
आ. राजु दोडिवारु रमणुलैरंटिवि, कांतलगुटकेमि कारणम्मु ?
इट्टिदेशमॆरुगमॆन्नडु ना कथलॆल्ल, वेड्क दीर नाकु विस्तरिंपु ॥ 18 ॥
व. अदियुनुंगाक ॥ 19 ॥
आ. मगुवतनमु मानि मगवाडु गावच्चु, गाक पेरु वॆंपु गासि गाग
मगतनंबु मानि मगुव गावच्चुनॆ, मानवंतुडॆन मानवुनकु ॥ 20 ॥
व. अनि यडिगिन नर्जुन पौत्रुनकु व्यास पुत्रुंडिट्लनियॆ ॥ 21 ॥

---

सुद्युम्न नाम का पुत्र बनी और राज्य (का पालन) करते हुए, १५ [सी.] समय के न कटने से एक दिन, कौतुकवश, कुछ मंत्रियों के साथ आने पर, सिंधु देश के अश्व पर आरोहित होकर बृहत् अरण्यों में आखेट खेलते हुए एक जंगल में प्रवेश करके, अपने धनुष पर तीक्ष्ण बाणों का संधान करके, बड़े-बड़े जंतुओं के पीछे शौर्ययुक्त होकर, महान् उग्र बनकर और उत्तर दिशा मे (बहुत दूर) जाकर मेरु [पर्वत] के समीप (स्थित) कुमार-वन में पहुँचा। [ते.] वहाँ महेश तथा शिवा सदा रतिक्रीड़ा करते रहते। उसमे घुस जाने लगा तो वह राजा स्त्री बना; राजा के अनुचर स्त्रियाँ बन गये (और) उसका अश्व अश्विनी बना। १६ [व.] इस प्रकार पुरुषत्व को खोकर, स्त्रियाँ बनकर और एक-दूसरे का मुख देखकर (वे) दुःखित हुए —ऐसा कहने पर [वह] सुनकर, शुक से राजा ने इस प्रकार कहा (पूछा)। १७ [आ.] आपने कहा कि राजा और उसके साथी रमणियाँ बन गये। उनके कान्ता बनने का कारण क्या है ? ऐसे देशों को (हम) कभी नही जानते। मेरे कौतुक को दूर करने के लिए उन कथाओ को विस्तार-सहित कहिए। १८ [व.] इसके अतिरिक्त १९ [आ.] स्त्रीत्व को त्याग कर [कोई] पुरुष बन सकता है; ऐसा न होकर नाम और औन्नत्य को खोकर कही मानी मानव पुरुषत्व को खोकर नारी बन सकता है ? २० [व.] ऐसा पूछने पर अर्जुन के पौत्र से व्यास-पुत्र ने इस प्रकार कहा। २१ [सी.] हे राजा, एक दिन शिवजी के दर्शन करने के कौतुक

सी. पुरवैरि कॉकनाड् पॉडसूपु वेडुक दद्दयु दिक्कुल तममु लॅल्ल
दमतम वॅलुगुलु दगिलि गॉंदुलु सॊर गोदरु मौनुलु गौलिचि राग
व्राणेशु तॉडलपै भासिल्लु नंबिक वारल जूचि मैवलुव लेमि
सिग्गु पुट्टिन लेचि चीर गट्टिन जूचि देवियु देवुंडु दीर्घ लील

ते. नॊंटि दमलोन ग्रीडिचुचुन्नवारु
मनकु समयंबुगादनि मरलि मुनुलु
नरुडु नारायणुंडु ननारतंबु
मॅलगु चोटिकि नडचिरि मेदिनीश ! ॥ 22 ॥

व. अदि कारणंबुगा भगवंतुंडगु शिवुंडु तन प्रियुरालि वेडुकल कॊरकु
निट्लनि वक्काणिचॅ ॥ 23 ॥

कं. ई नॅलवॅव्वडु सॊच्चिन
मानिनियगु ननिन तॉंटि माट कतमुनन्
मानवुडु मगुवपोडिमि
मानक पेरडवुलंदु मरियुं दिरिगॆन् ॥ 24 ॥

व. इट्लु चॅलिकत्तियल मॊत्तंबुलुं दानुनु नाराच-पूर्वोडि वाडि चूपुल
नाडुपोडिमि नॆरपुचु दैवयोगंबुन सोमसुतुंडुनु भगवंतुंडुनु नगु बुधुनि
याश्रमबु सेरि मॅलंगुचुन्नयॆड ॥ 25 ॥

आ. राजु कॊडुकु जूचॅ राजीवदळनेत्र, -राज वदन चूचॅ राजु पट्टि
दॊंग कामुडंत दॊंदडि जिगुराकु, वालु वरिकि युरिकि वारिमॊत्तॆ ॥ 26 ॥

से दिशाओं में व्याप्त अधिक तम को अपने प्रकाश से गलियों मे भगाते हुए कतिपय मुनि (शिवजी की प्रार्थना करने) आये तो अपने प्राणेश की ऊरुओं पर विराजमान अंबिका उनको देखकर, अपने शरीर पर वस्त्रों के न रहने से लज्जित हो, उठकर चीर धारण करने पर (उनको) देखकर, [ते.] "देवी और देव दीर्घलीला से एकांत में (रहकर) आपस मे क्रीड़ामग्न है; (यह) समय हमारे लिए [अनुकूल] नही है", यो (अपने मन में) कहकर मुनि लौट कर, नर और नारायण के निरंतर रहने की जगह की ओर चल पड़े। २२ [व.] इस कारण भगवान शिव ने अपनी प्रिया के संतोष के लिए इस प्रकार कहा। २३ [कं.] इस प्रदेश में जो कोई प्रवेश करेगा [वह] स्त्री बन जायगा। यों कहने से पूर्व-वचन के कारण मानव ने मानिनी के विलास को न छोड़कर महान् अरण्यों में भ्रमण किया। २४ [व.] इस प्रकार सहेलियों के समूह तथा स्वयं उस राजकुमारी के तीक्ष्ण दृष्टियों से स्त्री का विलास प्रदर्शित करते हुए, संयोग से सोम-सुत भगवान बुध के आश्रम में जाकर रहते समय, २५ [आ.] उस राजीवदळनेत्रा (कमल-पत्रों के जैसे विशाल नेत्र वाली स्त्री) ने चंद्रमा के पुत्र बुध को

व. इट्लु पूर्वंबैंदुवुलु गल नॅंड बिरुदु चिगुरुटडिदंबु मोनकु नोर्हटिचिवार-लिरुवुरुं वेपडि वेडुकलकुं जोच्चिन वारलकुं बुरूरवुंडनु कुमारुंडु वुट्टॅ। इव्विधंबुन ॥ 27 ॥

आ. मनु सुतुंडु घनुडु मगनालितनमुन
गॉडुकु गांचि विसिवि कुंदि कुंदि
चित बॉदि गुरु वसिष्ठुनि भाविंचॅ
नतनि तलपुतोन यतडु वच्चॅ ॥ 28 ॥

व. वच्चि सुद्युम्नुंडु मगवाडगुकोरकु नम्मुनि पुंगवुंडु शंकरु नाराधिप नीश्वरुंडनु दपसि प्रयासंबुनकु संतसिल्लि यिट्लनियॅ ॥ 29 ॥

म. तनु मुन्नाडिन माटयुन् निजमुगा वन्मौनिकि प्रीतिगा
मनुजुंडुन् नॅलवो नॅलं बुरुषुडै मासांतरंबॅन गा-
मिनियै यो गति वोडुपाटमर भूमिदान रक्षिचु बो-
म्मनिनन् वच्चॅ वसिष्ठुडामनुसुतुंडारीति राज्यस्थुडै ॥ 30 ॥

आ. मगुव यगुचु मरल मगवाडु नगुचुनु, भूत धात्रि यंत नातडेलॅ
प्रजलु संतसिप ब्राहावलमुतोड, गुरुनि करुण जेसि कुवलयेश ! ॥ 31 ॥

व. अतनिकि नुत्कलुंडुनु गयुंडुनु विमलुंडुनु ननु कॉडुकुलु मुव्वुरु गलिगि धर्म

---

देखा। बुध ने राजवदना (चंद्रमुखी) को देखा। चोर होनेवाले काम (मन्मथ) ने शीघ्र ही पल्लव रूपी कटार को ले, दौड़कर उनको मारा। २६ [व.] इस प्रकार पराक्रमी पुष्पायुध के पल्लव रूपी कटार के कोने से पराजित होकर वे दोनों रति-क्रीड़ाओं में निमग्न होकर कौतुक से रहे तो उनके पुरूरवा नाम का पुत्र पैदा हुआ। इस प्रकार २७ [आ.] मनु का सुत महान है। स्त्रीत्व से पुत्र को देख अब जाकर और दुःखित तथा चिंतित होकर गुरु वसिष्ठ का स्मरण किया। मन में स्मरण करते ही वह आया (प्रत्यक्ष हुआ)। २८ [व.] आकर सुद्युम्न के पुरुष बनने के लिए उस मुनिपुंगव (श्रेष्ठ) ने शंकर की आराधना की तो शंकर ने (उस) तपस्वी के प्रयास (कष्ट) को [देख] संतुष्ट होकर इस प्रकार कहा। २९ [म.] पहले कही हुई अपनी बात को सत्य बनाने और उस मुनि की प्रीति करने के लिए मनुज एक मास पुरुष तथा मास के बीत जाने पर स्त्री बन कर, इस प्रकार की व्यवस्था से भूमि की रक्षा करेगा, तुम जाओ। [शिव के] इस प्रकार कहने पर वसिष्ठ [लौट] आया। उस मनुसुत ने उस प्रकार राज्यस्थ होकर ३० [आ.] हे कुवलय (भूमि) के ईश (राजा)! स्त्री बनते हुए और फिर पुरुष बनते हुए, समस्त भूत-धात्री पर अपने बाहुबल से और गुरु की करुणा से ऐसा पालन किया कि प्रजा संतुष्ट हो। ३१ [व.] उसके उत्कल, गय और विमल नामक तीन पुत्र हुए जो

परुलै युत्तरापथंबुनकु राजुलयिरि। सुद्युम्नुंडु मुदुसलियै प्रतिष्ठानपुरंबु
विडिचि पुरूरवुनकु भूमि निच्चि वनंबुनकु जनियें। इव्विधंबुन ॥ 32 ॥

## अध्यायमु—२

सी. कोडुकु सुद्युम्नुंडु घोराटवुलकेग वंडुचु मनुवु वैवस्वतुंडु
दनकु बिड्डलु गलग दपमाचरिंचेनु हरि गूर्चि नूरेंड्लु यमुनलोन
हरि यंत निक्ष्वाकुडादिगा बदुगुरु पुत्रुल निच्चेनु बोसग वारि
यंदु वृषध्राख्यु डनुवाडु गुरुनाज्ञ विमल धर्मंबुलु वेलयबूनि

ते. पसुल कदुपुल गाचुचु वलु मोगिळ्ळु
वच्चि नडुरेयि जोरुन् वान गुरिय
मंद विडियिचि चुट्टु नेमरक युंडे
नडवि मेकमुलु सोरकुंड नरसि कोनुचु ॥ 33 ॥

व. अंत ॥ 34 ॥

कं. प्रब्बिकोनिन पेंजोकटि
निब्बरमुन नडिकि नडिकि निगिकि वडितो
गोब्बुन नेंगसि तटालुन
बेब्बुलि मंदाबु बट्टे बेल्कुरि यरुवन् ॥ 35 ॥

---

धर्म पर (धर्मात्मा) होकर उत्तरापथ के राजा बने। सुद्युम्न बृद्ध होकर, प्रतिष्ठानपुर को छोड़कर और पुरूरवा को भूमि देकर वन में चला गया। इस प्रकार, ३२

## अध्याय—२

[सी.] जब पुत्र सुद्युम्न गहन अरण्यों में चला गया, मनु वैवस्वत ने दुःखित होकर अपनी संतान पाने की इच्छा से हरि को उद्दिष्ट करके जमुना में (एक) शत वर्ष तप किया। तब हरि ने इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रों को दिया। उनमे सोभायमान पृषध्र नामक [कुमार] गुरु की आज्ञा से प्रकाशमान विमल धर्मों को ग्रहण करके, [ते.] पशुओं के झुंडों की रक्षा करते हुए, अनेक मेघों के आने पर, अर्धरात्रि के समय, जब जोर से पानी बरसा [पशु-] झुंड को [एक जगह पर] ठहरा कर, उसके चारों ओर अप्रमत्त होकर निरीक्षण करता रहा कि कहीं वन्यमृग प्रवेश न करें। ३३ [व.] तब, ३४ [कं.] घोर अंधकार व्याप्त हो गया। धीरे-धीरे एक बाघ ने दबे पाँव आकर जोर से आकाश में झपट कर तुरंत झुंड की एक गाय को, जो विह्वल होकर रँभाने लगी, पकड़ लिया। ३५

कं. उल्लमुलु गलगि मॊदवुल
वॆल्लुव लन्नियुनु लेचि विच्चलविडितो
जॆल्लाचॆदरॆ पाऱॆनु
बल्लुग नंबा यटंचु वॆब्बुलि गालिन् ॥ 36 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 37 ॥

शा. आ पॆंजीकटि नॊलगान कडिदंबॆकिंचि शार्दूल मं-
चा पुल्लावु शिरंबु द्रुंचि तॆगदोयंचुन् बुलिन् वॆंडियुन्
वापोवं दॆगव्रेसि भूवरुडु द्रोवन् खड्ग रक्तंबु चे-
वॆ पॆ गोयुचु जेरि चूचॆ दल द्रॆव्वंबड्ड यद्धेनुवन् ॥ 38 ॥

व. चूचि दुःखितुंडयुन्न वृषद्ध्रुनिगनि कुलगुरुंडगु वसिष्ठुंडुनु गोपिंचि नीवु राजत्वंबुनकु बासि यी यपराधंबुन शूद्रुंडवु गम्मनि शपियिंचॆ। अतंडुनु गृतांजलियै तनकुलाचार्युनिवलन मरलं गंकोलु वडसि यतनि यनुमतंबुन ॥ 39 ॥

सी. अखिलात्मुडगुचुन्न हरियंदु वरुनंदु भक्तितो जाल दप्परत मॆऱसि
यूर्ध्वरेतस्कुडै युन्न प्राणुल कॆल्ल नाप्तुडै सर्वेंद्रियमुलु गॆल्चि
संगंबुनकु बासि शांतुडै यपरिग्रहुंडनै कोरक युंडि तनकु
वच्चिन यदिय जीवनमु काविंचुचु दनुदान निलुपुचु धन्य बुद्धि

---

[कं.] भयकंपित मन से बछड़ो वाली गायों के सब झुंड मनमाने तितर-बितर होकर रँभाते हुए, व्याघ्र की गंध को पहचान कर दौड़ पड़ीं। ३६ [व.] उस समय पर, ३७ [शा.] उस गहन अंधकार में (ठीक-ठीक) देख न सककर, अपनी तलवार को हिलाकर शार्दूल समझ [के भ्रम से], उस कपिल धेनु का सिर काटकर, इस संदेह से कि वह कट गया कि नहीं, फिर से गरजते हुए बाघ को काटकर भूवर (राजा) ने मार्ग में खड्ग पर संलग्न रक्त को पोछते हुए उस धेनु को देखा जिसका सिर कटा हुआ था। ३८ [व.] [उसको] देख दुःखित होनेवाले पृषध्र को देखकर कुलगुरु वसिष्ठ ने क्रोधित होकर (उस राजा को) शाप दिया कि तुम राजत्व (प्रभुता) को खोकर [गोहत्या के] इस अपराध के कारण शूद्र बन जाओ। उस [राजा] ने भी कृतांजलि होकर (हाथ जोड़कर) अपने कुलाचार्य से पुनः दया प्राप्त करके उसकी अनुमति से, ३९ [सी.] अखिलात्मा हरि में और पर [परलोक] में भक्ति तथा बड़ी तत्परता से मन लगाकर, ऊर्ध्वरेतस्क हो, सभी प्राणियों का आप्त बनकर, सब इंद्रियों को जीतकर, [स्त्री] सांगत्य को छोड़, शांत बनकर, परिग्रही बन (कुछ न चाह कर), जो कुछ प्राप्त होता था उसी से जीवन-निर्वाह करते हुए, वह धन्य बुद्धि वाला अपने (मन) में आपको स्थापित कर जड़ की तरह, [ते.] अंधे के जैसे, बहरे की नाईं,

ते. जडुनि तॅऱगुन नंदुनि चंदमुननु
जॅविटि भंगिनि महिनॅल्ल जॅल्ल दिरिगि
यडवुलकु नेगि काचिच्चु नंदु जॊच्चि
चिक्कि नियतुडै ब्रह्मंबु जॆंदे नतडु ॥ 40 ॥

कं. कवियनु कडपटि कॊमरुडु
भवनमु राज्यंबु विडिचि बंधुलतो ने-
गि वनमुन वरम पुरुषुनि
ब्रविमल मति दलचि तलचि परमुं बॊंदॆन् ॥ 41 ॥

व. मरियु गरूशुंडनु मानवुनि वलन गॊंदरु कारूशुलु क्षत्रियुलु गलिगि धर्मंबुतोडि प्रियंबुन ब्रह्मण्युलै युत्तरापथंबुनकु रक्षकुलैरि। धृष्टुनि वलन धार्ष्टंबनु वंशंबु गलिगि भूतलंबुन ब्रह्मभूयंबु नॊंदि नॆगडॆ। नृगुनि वंशंबुन सुमति पुट्टॆ, नतनिकि भूतज्योति पुट्टॆ, नतनिकि वसुवु जनियिंचॆ,वसुवुनकुं ब्रतीतुंडु गलिगॆ, ब्रतीतुनिकि नोघवंतुंडु जनिंचॆ। अतनि कूतुरोघवतियनु कन्यकनु सुदर्शनुंडु विवाहंबय्यॆ। नरिष्यंतुंडनु मनुपुत्रुनिकि जित्रसेनुंडा विभुनकु दक्षुंडा पुण्युनकु मीढास्वुंडा सुजनुनिकि शर्वुंडम्महात्मुनिकि निंद्रसेनुंडा राजुनकु वीतिहोत्रुंडा सुमतिकि सत्यश्रवुंडा घनुनिकि नुरुश्रवुं डावीरुनकु देवदत्तुंडा पंडितुनकु नग्नि वेशुंडु सुतुलयि जनियिंचिरि।

सारी मही (भूमि) पर घूम-फिरकर जंगलों में जाकर तीक्ष्ण अग्नि में प्रवेश करके दुबला-पतला और नियत होकर उसने ब्रह्म को प्राप्त किया (ब्रह्म में लीन हो गया)। ४० [कं.] कवि नामक कनिष्ठ पुत्र ने भवन तथा राज्य को छोड़कर बन्धुओं के साथ जाकर वन में प्रविमल मति से परमपुरुष के प्रति मनन करके पर (लोक) को प्राप्त किया। ४१ [व.] और करूश नामक मानव से कुछ कारूश-क्षत्रिय उत्पन्न होकर धर्म से होनेवाले प्रेम से ब्रह्मण्य होकर उत्तरापथ के रक्षक हुए। धृष्ट से धार्ष्ट नामक वंश होकर भूतल पर ब्रह्मत्व को पाकर प्रसिद्ध हुआ। नृग के वंश में सुमति का जन्म हुआ, उससे भूतज्योति हुआ, उससे वसु पैदा हुआ, पुत्री वसु का पुत्र प्रतीत हुआ, प्रतीत को ओघवंत उत्पन्न हुआ। उसकी पुत्री ओघवती नामक कन्या से सुदर्शन ने विवाह कर लिया। नरिष्यंत नामक मनुपुत्र को चित्रसेन, उस बिभु को दक्ष, उस पुण्य (मूर्ति) को मीढ्वास, उस सुजन को शर्व, उस महात्मा को इंद्रसेन, उस राजा को वीतिहोत्र, उस सुमति को सत्यश्रव, उस घन (श्रेष्ठ) को उरुश्रव, उस वीर को देवदत्त, उस पंडित को अग्निवेश सुत होकर पैदा हुए। वह अग्निवेश कानीन (कन्या से उत्पन्न) के रूप में प्रसिद्ध होकर जातकर्ण नामक महर्षि बनकर विख्यात हुआ। उससे अग्निवेश्यायन नामक ब्रह्मकुल हुआ। इस विधि

अय्यग्निवेशुंडु कानीनुंडन नेगडि जातकर्णुंडनु महर्षियै वेलसें।
अतनिवलन नाग्निवेश्यायनंबनु ब्रह्मकुलंबु गलिगें। इव्विधंबुन ॥ 42 ॥

कं. तेलुपवडें नरिष्यंतुनि, कुल मेल्लनु नीकु दिष्ट कुलमुं देलियन्
देलिपेद राजेंद्रोत्तम! तेलियुमु सर्वंबु नीकु देट पडंगन् ॥ 43 ॥

व. दिष्टुनि कोडुकु नाभागुंडनुवाडु कर्मवशंबुन वैश्यत्वंबु नोंदनु। आ नाभागुनि हलधनुंडु गलिगें। अतनिकि वत्सप्रीतियु वत्सप्रीतिकि प्रांशुवु नतनिकि प्रमतियु प्रमतिकि खमित्रुंडु खमित्रुनिकि जाक्षुषुंडु नतनिकि विविंशतियु विविंशतिकि रंभुंडु रंभुनिकि धार्मिकुंडैन खनिनेत्रुंडु नतनिकि गरंधनुंडु गरंधनुन कविक्षीत्तुनु ना यविक्षित्तुनकु मरुत्तुंडु जनियिंचिरि। आ मरुत्तुंडु चक्रवर्ति यय्यें नतनि चरित्रंबु विनुमु ॥ 44 ॥

सी. अंगिरस्सुतुडु महायोगि संवर्तुडतनि यागमुनकु याजकुंडु
दिरिगि युंडेडिवारु मरुदाख्यगणमु लॉप्पारु विश्वेदेवुलचटि सभ्यु-
लधिक दक्षिणल ब्राह्मण कोटि दनिपेनु सोमपानंबुन सुरवरुंडु
मदि नुब्बि बंगारु मयमु गाविंचेनु यागवस्तुवु लेल्ल नधिक नियति

ते. ना मरुत्तुंडु सेसिन यट्टि भंगि
धीर भावंबु जागंबु देंपु गलिगि

---

(प्रकार) से, ४२ [कं.] हे राजेन्द्रोत्तम, तुमको अरिष्यन्त के कुल के बारे में सब कुछ बतला दिया गया है। [अब] दिष्ट के कुल के बारे में समझा दूँगा। ऐसा जान लो कि सब कुछ तुम्हारी समझ में आ जाय। ४३ [व.] दिष्ट के पुत्र नाभाग ने कर्मवश [होकर] वैश्यत्व को प्राप्त किया। उस नाभाग को हलधन उत्पन्न हुआ, उसको वत्सप्रीति, वत्सप्रीति को प्रांशु, उसको प्रमति, प्रमति को खमित्र, खमित्र को चाक्षुष, उसको विविंशति, विविंशति को रंभ, रंभ को धार्मिक खनिनेत्र, उसको करंधन, करधन को अविक्षीत्, उस अविक्षीत् को मरुत्त पैदा हुए। वह मरुत्त चक्रवर्ति हुआ। उसका चरित्र (कथा) सुनो। ४४ [सी.] अंगिरस्सुत (अंगिरस का पुत्र) तथा महान् योगी संवर्त उसके (मरुत्त के) यज्ञ के लिए ऋत्विक् था। वहाँ चलने-फिरनेवाले मरुदाख्य (मरुत्त नामक) गण थे। शोभायमान विश्वेदेव वहाँ के सभ्य (सदस्य) थे। (मरुत्त ने) अधिक दक्षिणाओं से ब्राह्मण कोटि (समूह) को तृप्त किया। सोमपान से सुरवर (इन्द्र) ने मन में फूले न समाकर अधिक नियति (नियम) से सभी प्रयाण-साधनों को सुवर्णमय बनाया। [ते.] हे नरेंद्रमुख्य (राजाओं में प्रधान)! उस मरुत्त के किये हुए (प्रदर्शित) वैसे धीर-भाव, त्याग और साहस के साथ मख (यज्ञ) करनेवाले और

मखमु सेसिन वारिनि मरियु नेंरुग
मॆल्ल लोकमुलंदु नरेंद्रमुख्य ! ॥ 45

व. आमरुत्तुनकु दमुंडुनु दमुनकु राजवर्धनुंडुनु राजवर्धनुनकु सु
सुधृतिकि सौधृतेयुंडुनु सौधृतेयुनकु गेवलुंडुनु गेवलुनकु बंधु
नतनिकि वेदवंतुंडुनु वेदवंतुनिकि बंधुंडुनु बंधुनकुं दृणबि
संभविंचिरि । अंत ॥ 46 ॥

कं. अच्चर कन्य यलंबुन, ऋच्चर दृणबिंदु जूचि कामिंचि तुदिन्
बच्च बिलुकानि यम्मुल, मुच्चिच्चुन वॆच्चि पोंदॆ मोहातुरयै ॥ 47 ॥

व. आ दंपतुलकु निलबिलयनु कूतुरु जन्मिंचॆ । आ कॊम्मनु विश्रवसुंडु वॊदिन नैलबिलुंडनं गुबेरुंडु पुट्टॆ मरियु नातृणबिंदुवुनकु विशालुंडुनु शून्य बंधुंडुनु धूम्रकेतुंडुनु ननुवारु मुव्वुरु गॊडुकुलु गलिगिरि । अंदु विशालुंडु वंशवर्धनुंडै वैशालियनु नगरंबु निर्मिंचॆ आ राजुनकु हेमचंद्रुं डानरेंद्रुनकु धूम्राक्षुंडा पुडमिऱेनिकि सहदेवुंडाबलिष्ठुनकु गृशाश्वुं डातनिकि सोमदत्तुंडु जनिंचॆ । अतंडु ॥ 48 ॥

आ. अमर विभुडु मॆच्च नश्वमेधमु सेसि
भूरि पुण्यगतिकि पोयॆ नॆलमि
सोमदत्तु कॊडुकु सुमतिकि जनमेज-
युंडनंग गॊमरुडुप्पतिल्लॆ ॥ 49 ॥

किसी को सभी लोकों में (किसी भी लोक में) [हम] नही जानते । ४५ [व.] उस मरुत्त का दम, दम का राजवर्धन, राजवर्धन का सुधृति, सुधृति का सौधृतेय, सौधृतेय का केवल, केवल का बधुमंत, उसका वेदवत, वेदवंत का वंधु और बंधु का तृणविन्दु पैदा हुए । तब, ४६ [कं.] अलबुसा नामक अप्सरा-कन्या तृणबिंदु को देखते ही उसको (पाने को) चाहकर अंत में मन्मथ के वाणों की अग्नि के कारण (विरहानल से) मोहित होकर पीड़ित हुई । ४७ [व.] उस दंपति को इलबिल नामक पुत्री का जन्म हुआ । उस स्त्री को विश्रवस् ने ग्रहण किया तो ऐलबिल नामक कुबेर पैदा हुआ; और उस तृणबिंदु के विशाल, शून्यबंधु और धूम्रकेतु नामक तीन पुत्र हुए । उनमे विशाल ने वंशवर्धन बनकर वैशाली नामक नगर का निर्माण किया । उस राजा को हेमचद्र, उस नरेंद्र को धूम्राक्ष, उस पृथ्वीपति को सहदेव, उस बलिष्ठ (बलवान) को कृशाश्व (और) उसको सोमदत्त पैदा हुए । वह (सोमदत्त) ४८ [आ.] अश्वमेध यज्ञ करके जिससे अमरविभु (इंद्र) खुश हो, भूरि (श्रेष्ठ) पुण्य गति (लोक) को गया । सोमदत्त के पुत्र सुमति को जनमेजय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ४९

व. वीरलु वैशालुरनं बरगि तृणविंदुनि कीर्ति वहिंचि राज्यंबु सेसरि। मरियुनु ॥ 50 ॥

## अध्यायमु—३

सी. शर्यातियनु राजु जनियिंचॆ ब्रह्मपरुंडैन मनुवुकु दृढि तोड
नतडंगिरुनि सत्रमंदु रॆंडवनाटि विहित कर्ममु लॆल्ल बॆलय जॆप्पॆ
ननि कूतुरु सुकन्यकयनु वनजाक्षि दन तंड्रितो दपोवनिकि नरिगि
च्यवनाश्रममु जेरि सखुलुनु दानुनु फल पुष्पमुलु गोय बारि तिरिगि

आ. यॊक्क वुट्टलोन नॊप्पारु ज्योतुल
रॆंटि गांचि वाडि मुंट बॊडिचॆ
गन्य मुगुद मरचि खद्योतयुगमंचु
दैववशमु कतन दमकि यगुचु ॥ 51 ॥

क. ज्योतुल मुंट बॊडिचिन, वातुल नॆत्तुरुलु गुरिसॆ वसुधेश भट
व्रातमुल कॆल्ल नच्चट, नातरि मलमूत्र बंधमय्यॆ नरेंद्रा ! ॥ 52 ॥

व. वारलंजूचि राजर्षियगु शर्याति विस्मितुंडै मीर लियाश्रमंबुन नकृत्यंबु

---

[व.] इन्होंने वैशाल नाम से तृणविंदु की कीर्ति को पाकर राज्य [का पालन] किया। और ५०

## अध्याय—३

[सी.] ब्रह्म पर मन लगाए हुए मनु के शर्याति नामक राजा पैदा हुआ। स्थिरता के साथ उसने अंगिरस के सत्रयाग के दूसरे दिन के विहित सब कर्मों को स्पष्ट कह दिया। उसकी बेटी सुकन्यका नामक वनजाक्षी (कमल जैसे आँखोंवाली) अपने पिता के साथ तपोवन में जाकर, च्यवन के आश्रम मे गयी। (वहाँ) अपनी सखियों के साथ स्वयं फल और पुष्प का चयन करने के लिए (इधर-उधर) घूम-फिरकर, [आ.] उसने एक बिल में दो सुन्दर ज्योतियों को देखा। फिर उस मुग्धा ने भूल से और विधिवश जल्दबाजी से उन दोनों ज्योतियों को खद्योत समझा और उन्हें एक नुकीले कांटे से चुभो दिया। ५१ [कं.] हे नरेन्द्र ! जब उसके काँटे से उन ज्योतियों को चुभो दिया तब उस वसुधेश के भटों के सारे समूह के मुँहों से रक्त की धारा बहने लगी और उनके मल-मूत्र बंद हो गये। ५२ [व.] उनको देखकर राजर्षि शर्याति ने विस्मित होकर कहा, "तुम लोगों ने इस आश्रम में कोई अकृत्य (बुरा काम) किया होगा; इस कारण तुम लोगों की यह दशा हुई है"।

सेय नोपुवुरु। अदि कारणंबुगा मीकी निरोधंबु सिद्धिचॆं ननि पलुकु नव-सरंबुन दंड्रिकि सुकन्यक यिट्लनियॆं ॥ 53 ॥

ते. अय्य ! यीपुट्ट चेरुव नाडि याडि
यिदुलो रॆंडु ज्योतुल नेनु गांचि
कंटकंबुन बॊडुव रक्तंबु गुरिसॆं
नेविधंबुन गुरिसॆंनो यॆरुगु मीवु ॥ 54 ॥

व. अनिन विनि शर्याति भीतुंडै कूतुं दोड्कॊनि वल्मीकंबु कडकुं जनि यंदु दपंबु सेयुचुन्न च्यवन मुनिगनि तन नेर्पुन नतनि वलन ब्रसन्नत वडसि तपसि चित्तंबु नॆरिंगि तन पुत्रिक निच्चि यॆट्टकेलकुन् ब्रदिकिन वाडै मुनीश्वरुनि वीड्कॊनि पुरंबुनकुं जनियॆं। अंत ॥ 55 ॥

आ. परम कोपुडयिन भार्गवु बति जेरि
मिगुल बनुल यॆडल मॆच्च दिरिगि
यतनि पर्णशाल नासुकन्यकयनु
मगुव गॊन्नि यॆड्लु मनुवु मनियॆं ॥ 56 ॥

व. अंत नॊक्कनाडय्याश्रमंबुनकु वेल्पु वॆज्जुलैन नासत्युलिद्दरु वच्चिन वारलं बूजिंचि तन मुदिमि सूपि च्यवनुंडिट्लनियॆं। मीकु मुन्नु याग भागंबुल लेनि सोमपानंबु नेनु गल्पिंचि यिच्चॆद। सोमपान समयंबुन बानपात्रंबु मीकु नंदिच्चॆद। ना मुदिमि मानुपुंडनि यिट्लनियॆं ॥ 57 ॥

---

(यह सुनकर) सुकन्यका ने अपने पिता से यों कहा : ५३ [ते.] पिता (जी) ! इस बिल के पास खेल-खेलकर इसमें दो ज्योतियों को देख (उनको) काँटे से मेरे चुभो देने पर रक्त की धारा बह गयी। आप जान (देख) लीजिए कि यह धारा कैसे बरसी। ५४ [व.] यह सुनकर शर्याति भीति से पुत्री को साथ लेकर वल्मीक के पास गया और उसमें तप करते हुए च्यवन मुनि को देखकर अपनी (बुद्धि) कुशलता से उस (मुनि) को प्रसन्न बनाकर, मुनि के मन को जानकर, अपनी पुत्रिका को देकर (मुनि से उसका विवाह करके) किसी न किसी तरह जीवित [बच] रहकर और मुनि से बिदा लेकर अपने पुर (नगर) को गया। तब ५५ [आ.] सुकन्यका नामक उस स्त्री ने परम क्रोधी पति भार्गव की पर्णशाला में जाकर कुछ वर्ष जीवन बिताया (अपने) काम-काज में अधिक श्रद्धा दिखाते हुए ऐसा बर्ताव करने लगी कि वह (मुनि) संतुष्ट हो जाय। ५६ [व.] इसके बाद एक दिन उस आश्रम में देव-वैद्य अश्विनी देवता दोनों आये तो च्यवन ने (उनसे) इस प्रकार कहा, "आपको (इसके) पहले याग-भागों में सोमपान (का हक़) नहीं था; उसका प्रबंध मैं कर दूँगा। सोमपान के समय पान-पात्र आपको (के पास) पहुँचा दूँगा;

कं. नवकंबगु प्रायंबुन
जवरांड्र गरंचु मेनि चक्कदनंबुन्
शिव तरमुग गृपसेयुडु
दिविजाधिप वैद्युलार ! दीविंतु मिमुन् ॥ 58 ॥

व. अनिन नश्विदेवतलु संतोषिंचि सिद्धनिर्मितंबयिन यी मडुगुन मुनुगुमनि पलिकि ॥ 59 ॥

सी. मुसलितापसु बट्टि मोंगि नॅत्तुकोनि पोगि मुगुरु नामडुगुन मुनिगि लेचि
वनिता जनुल नॅल्ल वलपिंचु वारले सुन्दर मूर्तुलै सुभगुलगुचु
गमल मालिकलतो गनक कुंडलमुलतो बुष्पसायकु तोड दुल्यु-
लै सूर्य तेजस्कुल युन्न वारल मुव्वुर वीडगांचि मुग्धबाल

ते. यंदु बॅनिमिटि वीडनि यॅरुग लेक
गरित गावुन निजनाथु गान गोरि
सुभगमतुलार ! नानाथु जूपुडनुचु
नश्विदेवतल कपुडय्यबल म्रोक्कॅ ॥ 60 ॥

व. वारला पतिव्रत निजमरितनंबुनकु मॅच्चि वयोरूप संपन्नुंडयिन च्यवनुं जूपि दंपतुल वीड्कोनि विमानारूढुलै वेल्पुल प्रोलिकि जनिरि। अंत ॥ 61 ॥

---

बुढ़ापे को दूर कर दीजिए"। (यों कहकर) और कहा, ५७ [कं.] "हे दिविजाधिप वैद्य ! कोमल वय में (रहनेवाली) यौवनवतियों को पिघला देनेवाले सौन्दर्य को शिवतर (मंगलप्रद) रूप से दीजिए; मैं आपको आशीष दूंगा"। ५८ [व.] यह सुनकर अश्विनी देवता संतुष्ट हुए और कहा कि तुम इस सिद्ध-निर्मित-तटाक में डुबकी लगाओ। यह कहकर ५९ [सी.] उस वृद्ध तापसी को आपाद-मस्तक पकड़कर उठा ले गये और वे तीनों उस तटाक में डूबकर उठे तो ऐसे सुंदर मूर्तिवाले बने कि सब स्त्रियाँ मोहित हो जाएँ। वे सुभग कमल-मालिकाओं और कनक-कुंडलों से (अलकृत होकर) पुष्पसायक (मन्मथ) से तुलना करते हुए, सूरज के समान तेजस्वी बनकर (बाहर निकलकर) रहे तो उन तीनों को देखकर वह मुग्धा (सुकन्यका) उन (तीनों) में से अपने पति को पहचान न सकी। [ते.] चूंकि वह पतिव्रता थी, इसलिए अपने पति को जानने की इच्छा से उसने उन अश्विनी देवताओं से प्रार्थना की कि हे सुभगमति वालो ! मेरे नाथ (पति) को दिखाइए। ६० [व.] उन्होंने उस पतिव्रता की ऋजुता से संतुष्ट होकर, वय और रूपसंपन्न च्यवन को दिखाया और उन दंपतियों से बिदा लेकर और विमानारूढ़ होकर देवताओं के स्थान (लोक) को चले गये। ६१ [सी.] याग (यज्ञ)

सी. यागंबु सेयग नर्थिचि शर्याति च्यवन मुनींद्रु नाश्रममु कडकु
गूतुनल्लुनि दोड्कोनि पोवु वेडुक वच्चि पुत्रिककु बाश्वंबुनंदु
सूर्य तेजंबुन सॉपारु वरु गनि वीडेव्वडो दीनि विभुडु गाडु
चॅल्लरे ! यनि पुत्रि सेसिन प्रियमुलु म्रोक्कुलु नोल्लक मोमु वांचि

ते. मारु माटाड दीविप मनसु रोसि
च्यवनुडधिकुंडु मुनि जनसत्तमुंडु
भुवन सन्नुतु डतडॆंदु बोये नात-
डॆट्लु वंचिप बडियॆ वीडॆव्व डवल ! ॥ 62 ॥

म. तगवे धर्ममे शीलमे कुलजवै दर्पिचि मोदिप ना
जगदाराध्युनि बुण्यशीलु दपसिन् साध्वी मनस्सम्मतुन्
मगनिन् मानि भुजंगु बोंद दगुने मानंबु वाटिपगा
दगदॆ दुर्गति द्रोचिते कठिनवै तंड्रि बति गूतुरा ! ॥ 63 ॥

आ. पद्मनयन मगडु प्रायंपु वाडैन
गापु वॆट्टि कोंत गावनेर्चु
गडगि मुसलि तपसि गावंग नेर्चुने
युवति मुदुक गूर्प नोप्पदंडु ॥ 64 ॥

करने की अभिलाषा से शर्याति अपनी पुत्री तथा जामाता को निमन्त्रण देने के कुतूहल से च्यवन मुनि के आश्रम में आया और पुत्री के पार्श्व में सूरज के तेज से प्रकाशमान होनेवाले वर को देखकर समझा कि ओह ! यह कोई पराया है, इसका (सुकन्यका का) पति नहीं है। यद्यपि उसकी पुत्री प्रियवचन बोली और प्रार्थना की, [ते.] फिर भी उनकी अनसुनी करके अपना मुँह नीचे झुकाकर (शर्याति ने) न कुछ कहा न आशीष दिये; मन में घृणा करते हुए उसने कहा, "अबला, च्यवन अधिक (बड़ा) है, मुनिजन-सत्तम (-श्रेष्ठ) है; भुवन-सन्नुत (पूज्य) है; वह कहाँ गया है ? उसे कैसे (यह) धोखा दिया गया है ? यह कौन है ? ६२ [म.] बेटी, क्या (यह) युक्त है ? धर्म है ? शील (चरित्र) है ? उत्तम वंश में जन्म लेकर (भी) गर्व (मद) से सुख पाने के लिए उस जगदाराध्य, पुण्यशील, तपस्वी तथा साध्वी-मन के लिए युक्त (होनेवाले) पति को छोड़कर (इस) जार को पाना संगत है ? (तुमने) कठिन (चित्तवाली) बनकर और मान (गौरव) को खोकर अपने पिता को एवं पति को (भी) दुर्गति में छोड़ (डाल) दिया न ? ६३ [आ.] पद्मनयना ! पति युवा है तो रखवाली रखकर उसको (पत्नी को) थोड़ा वश मे रख सकता है ? [लेकिन] प्रयत्न करके भी वृद्ध तपस्वी कहीं रक्षा कर सकता है ? युवती का वृद्ध के साथ विवाह कहीं भी उचित नहीं है"। ६४ [व.] ऐसा बोलने पर उस

व. अनि पलिकिन नप्परम पतिव्रता ललामंबु चिरु नगवु सॆक्कुटद्दंबुल निडिमुडि पड दंड्रि किट्लनियॆ ॥ 65 ॥

कं. नीयल्लुडितडु भार्गवु
डय्या ! जारुंडु गाडु हर्षमु तोडन्
नय्यंबु निल्पु मंचुनु
दोय्यलि सर्वंबु दंड्रितो विनिपिंचॆन् ॥ 66 ॥

व. अंत शर्यातियु नप्रमत्तुंडकूतुं गौगिलिचुकॊनि गारवंबुन नयिदुववु गम्मनि दीविचॆ नंतभार्या सहितुंडै च्यवनुंडु सनि तन मामकु यागंबु सेयिंचि यॊक्क पात्रंबुन सोमभागंबु बट्टि निज तपोबलंबुन नश्वि देवतल कर्पिचिनं जूचि ॥ 67 ॥

कं. कोपमु तोडनु वासवु-
डेपुन मुनि वैव वज्र मॆत्तिन मरलं
दापसुडु वज्रि भुजमुन
ना पवि निलिपॆन् जगंबु लाश्चर्यपडन् ॥ 68 ॥

व. इव्विधंबुन नश्विदेवतलिद्दरु वॆज्जुलै सोमपानंबु लेनिवारय्यु च्यवनु सामर्थ्यं-बुन व्राप्त भागुलयि चनिरि। शर्यातिकि नुत्तानबर्हियु नानर्तुंडुनु भूरिषेणुंडु ननु मुव्वुरु कॊडुकुलु गलिगिरंदु ॥ 69 ॥

---

परम पतिव्रता-ललामा (-स्त्री) ने, मुस्कुराहट के कारण अपने गंडस्थलों के चंचल होने पर, अपने पिता से इस प्रकार कहा, ६५ [कं.] "पिता (जी) ! यह तुम्हारा जामाता भार्गव है; जार नहीं है; सहर्ष इसके साथ स्नेह (प्रकट) करो"। यों कहते हुए उस स्त्री ने [जो कुछ गुज़रा वह] सब पिता को [कह] सुनाया। ६६ [व.] तब शर्याति ने भी अप्रमत्त होकर पुत्री से आलिंगन करके प्रेम से आशीर्वाद दिया कि सुहागिन बनो। तदुपरांत पत्नी के साथ च्यवन ने जाकर अपने श्वशुर से यज्ञ कराया और एक पात्र में सोम भाग भरकर, अपना तपोबल अश्विनी देवताओं को देने पर, देखकर ६७ [कं.] क्रोध से वासव (इन्द्र) ने मुनि पर डालने (प्रहार करने) के लिए वज्रायुध उठाया तो फिर (उस) तपस्वी ने उस पवि (वज्रायुध) को इन्द्र की भुजा पर ही ऐसा रोक दिया कि सारा जग आश्चर्यचकित हो गया। ६८ [व.] इस प्रकार दोनों देवता-वैद्य अश्विनी देवता सोमपान से वंचित होकर भी, च्यवन की सामर्थ्य से प्राप्त-भागी (अपने भाग को पाकर) बन कर चले गये। शर्याति के उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण नामक तीन पुत्र हुए, उनमें (से) ६९ [सी.] आनर्त का रेवत नामक पुत्र पैदा हुआ। उसने नीरधि (समुद्र) के अन्दर

सी. आनर्तुनकु रैवताह्वयुंडुदयिंचें नतडु कुशस्थलियनु पुरंबु
नीरधि लोपल निर्मिचें बेंपुतो नानर्तमुख विषयंबु लेलॅ
गनियु गकुद्मिमुख्यंबैन नंदनशतमु रैवतुडु विशाल यशुडु
दनकूतु रेवति धात मुंदट बॅट्टि तगु वरु नडिगॅडि तलपु तोड

ते. गन्य दोड्कॉनि ब्रह्मलोकमुन केगि
यचट गंधर्व किन्नरुलजुनि म्रोल
नाट पाटलु सलुपग नवसरंबु
गाक निलुचुंडॅ नतडॉक्क क्षणमु दडवु ॥ 70 ॥

व. अंत नवसरंबयिन नजुनिकि नमस्करिंचि रैवतुंडु रेवति जूचि
यिट्लनिय ॥ 71 ॥

आ. चाल मुद्दरालु जवरालु गॉमरालु
नी शुभात्मुरालि कॅव्वडॉक्कॉ
मगडु सॅप्पु मनिन मदि चूचि पक पक
नव्वि भूमिपतिकि नलुव पलिकॅ ॥ 72 ॥

सी. मनुजेश ! दीनिकै मदिलोन दलचिन वारलॅल्लनु गालवशत जनिरि
वारल बिड्डल वारल मनुमल वारल गोत्रंबु वारिनैन
विनमु मेदिनि मीद विनुमु नीवच्चिन यीलोन निरुवदि येडुनारु
लॉंडॉंड नालुगु युगमुलु जनियॅ नी वटुगान धरणिकि नरुगु मिपुडु

---

कुशस्थलि नामक पुर का निर्माण किया और बड़ी लगन के साथ आनर्तमुख [नामक] देश का पालन किया। उसके ककुद्मि आदि सौ पुत्र पैदा हुए। विशाल यश वाला रैवत अपनी पुत्री रेवती को धाता के सामने रखकर (ले जाकर), [ते.] उसके लिए योग्य वर को जानने के अभिप्राय से रैवत अपनी कन्या को साथ लेकर ब्रह्मलोक गया। वहाँ गंधर्व और किन्नर अज (ब्रह्मा) के सम्मुख नृत्य-गीत कर रहे थे; इसलिए असमय जानकर वह एक क्षण के लिए वहाँ खड़ा रहा। ७० [व.] जब अवसर मिला, रैवत ने अज को नमस्कार करके रेवती को दिखाकर यों कहा— ७१ [आ.] "(यह) बड़ी मुग्धा है, युवती है, सुंदरी है, कहिये कि इस सौभाग्यवती का पति कौन होगा" ? ब्रह्मा अपने मन में देख (सोच) कर ठठाकर हँसा और (उस) भूमिपति (राजा) से कहा— ७२ [सी.] "[हे] मनुजेश (राजा) ! इसके लिए मन में जितने लोगों के बारे में सोचा, वे सब कालवश होकर चले गए। भूमि पर न उनके पुत्रों के बारे में, न उनके पौत्रों के बारे में, न कम से कम उनके गोत्रीयों के बारे में सुनते हैं। सुनो, तुम्हारे (यहाँ) आने के बाद, इस बीच में सत्ताईस बार एक-एक करके चार युग बीत गये। इसलिए, हे उन्नतात्मा (उदार मनवाले) ! तुम

ते. देवदेवुंडु हरि बलदेवुडनग
भूमि भारंबु मान्पंग बुट्टिनाडु
सकल भूतात्मकुडु निजांशंबु तोड
युवतिमणि निम्मु जनमणिकुन्नतात्म ! ॥ 73 ॥

व. अनि यानतिच्चिन ब्रह्मकु नमस्करिंचि भूलोकंबुनकुं जनुवेंचि सोदर स्वजन हीनंबगु तननगरंबुन का राजु वच्चि बलभद्रुं गांचि रेवतीकन्य नतनि किच्चि नारायणाश्रमंबगु बदरिकावनंबुनकु नियमंबुन दपंबु सेयं जनियें ॥ 74 ॥

## अध्यायमु—४

कं. नभगुडनु मनुजपतिकिनि
शुभमति नाभागुडनग सुतुडुदयिंचेन्
बभुलै कवियनु तलपुन
विभजिंचिरि भ्रातलतनि वित्तमु नधिपा ! ॥ 75 ॥

व. अंत नाभागुंडुनु ब्रह्मचारियै तन तोडंबुट्टुवुलनु धनंबु पालडिगिन वारलु दंड्रि चेप्पिन क्रमंबुन निच्चेंदमनिन नाभागुंडु तंड्रियगु नभगु कडकुंजनि विभागंबु सेयुमनि पलिकिन नतंडिट्लु नंगिरसुलु मेधगल वारलय्युनु

धरणी (भूमि) को अब जाओ। [ते.] देवदेव (देवों का देव) हरि बलदेव के नाम से भूमि का भार कम करने के लिए पैदा हो गया। वह सकल भूतात्मा (परमात्मा) के निज-अंश के साथ पैदा हुआ है। उस जनमणि (श्रेष्ठ जन) को (इस) युवतीमणि (युवतियों में श्रेष्ठ) को (विवाह में) दे दो।" ७३ [व.] इस प्रकार (ब्रह्मा के) आज्ञा देने पर, ब्रह्मा को नमस्कार करके, भूलोक में लौट कर, सहोदर-स्वजन-हीन अपने नगर मे आकर, वह राजा बलभद्र को देखकर, रेवती-कन्या को उसे (विवाह में) देकर और नियम से तप करने के लिए नारायण के आश्रम बदरिका-वन में (चला) गया। ७४

## अध्याय—४

[कं.] हे अधिप (राजा) ! नभग नामक मनुजपति (राजा) का नाभाग नाम से एक शुभमति (सद्‌बुद्धि वाला) सुत हुआ; उसके भाइयों ने प्रभु (राजा) बनकर और उसे (नाभाग को) कवि (ब्रह्मज्ञानी) समझकर उसके वित्त (संपत्ति) को (आपस में) बाँट लिया। ७५ [व.] तब नाभाग ने ब्रह्मचारी होकर अपने भ्राताओं से संपत्ति का अपना भाग माँगा तो उन्होंने कहा कि (हमारे) पिताजी जैसा कहेंगे वैसा दे देंगे; (तब)

सत्रयागंबु सेयुचु नारव दिनंबुन नर्हं कर्मंबुलु दोपक मूढुलय्येद वारलकु नीवु वैश्वदेव सूक्तंबुलु रेंडरिगिचिन गवि यनं ब्रसिद्धि कैक्कॆदवु दानं जेसि वारु कृतकृत्युलै, स्वर्गंबुनकु बोवुचु सत्रपरिशेषितंबैन धनंबु नीकिच्चॆदरनि पलिकिनं दंड्रिवीड्कॊनि नाभागुंडु सनि यट्लु सेसिन नंगिरसुलु सत्र परिशेषित धनंबु लतनि किच्चि नाकंबुनकुं जनिरि। अंत ॥ 76 ॥

कं. अंगिरसु लिच्चु पसिडिकि
मंगळमति जेरु नृपुनि मानिचि यॊकडु-
त्तंगुडु गृष्णांगुडु दग
मंगल निलुचुंडि वित्तमु जेकॊनियॆन् ॥ 77 ॥

व. वानिं जूचि नाभागुंडु दनकु मुनुलिच्चुटं जेसि तन धनंबनि पलिकिन नम्महापुरुषुंडु मीतंड्रि सॆप्पिन क्रमंबु कर्तव्यं बनिन नाभागुंडु नभगुनडिगिन नतंडु यज्ञ मंदिर गतंबै युच्छिष्टंबगु धनंबु दॊलिल महामुनुलु रुद्रुन किच्चिरि। अदि कारणंबुगा नादेवुंडु सर्व धनंबुनकु नर्हुंडनिन विनि वच्चि नाभागुंडु महादेवुनकु नमस्करिंचि देवा ! यी धनंबु नीयधीनं-

---

नाभाग (अपने) पिता के पास गया और संपत्ति का विभाजन करके की प्रार्थना की; उसने (नभग ने) कहा, "अंगिरस यद्यपि मेधा-संपन्न है, फिर भी सत्रयाग करते हुए (समय) छठे दिन अर्ह (युक्त) कर्म न सूझने से मूढ़ बनेंगे। अगर उनको तुम दो वैश्वदेव-सूक्त सूचित करोगे तो (तुम) कवि नाम से प्रसिद्ध बनोगे। उससे वे कृतकृत्य होकर, स्वर्ग को जाते हुए सत्रपरिशेष धन तुम्हें दे देंगे।" ऐसा कहने पर अपने पिता से बिदा लेकर नाभाग चला गया और [पिता के कहे अनुसार] किया तो अंगिरस सत्रपरिशेष धन को उसे देकर नाक (स्वर्ग) चले गये। तब ७६ [कं.] अंगिरसों ने जो धन दिया, उसे लेकर जब वह मंगलमति जाने लगा तो उसके सामने एक राजपुरुष, जो उत्तुंग (ऊँचा) और कृष्णांग (काला शरीर वाला) था, उसके सामने आकर खड़ा हो गया और उस धन को ले लिया। ७७ [व.] उसे देखकर नाभाग ने कहा कि चूँकि मुनियों ने इस (धन) को मुझे दिया है, इसलिए यह मेरा धन है; उसके इस प्रकार कहने से उस महापुरुष ने कहा कि तुम्हारा पिता जो कहेगा वह तुम्हारा कर्तव्य है; ऐसा कहने से नाभाग ने नभग से पूछा तो उसने (नभग ने) कहा, "यज्ञ-मंदिर (मंडप) में जो धन उच्छिष्ट होकर बच जाता है उसे पहले महामुनियों ने रुद्र को दिया था। इसलिए वह देव (रुद्र) सर्व धन के लिए अर्ह है।" यह सुनकर नाभाग लौट आया और महादेव को नमस्कार करके कहा, "हे देव ! मेरे पिता ने मुझसे कहा कि यह धन तुम्हारे अधीन

बनि मातंड्रिनाकुं जॅप्पॅ, ने नपराधंबु सेसिति·सहिंपु मनवुडु भक्तवत्सलुंडगु नम्महापुरुषुंडु नभगु सत्यवचनंबुनकु नाभागुनि निजंबुनकु मॅच्चि नीवु दप्पक पलिकितिवि कावुन सत्रपरिशेषंबगु धनंबु नीकु निच्चिति ननि पलिकि यंतर्दर्शित्वंबुनु सनातनंबगु ब्रह्म ज्ञानंबुनु नुपदेशिंचि तिरोहितुंडय्यॅ। इव्विधंबुन ॥ 78 ॥

कं. भुविलो नाभागुनि कथ
दविलि मतिन् रेपु मापु दलचिन मात्रं
गवि यगु मंत्रज्ञुंडगु
नविमलगति बॊंदु नरुडु भद्रात्मकुडै ॥ 79 ॥

व. अंत नाभागुनकु नंबरीषुंडु जनियिंचॅ। अतनियंदु जगदप्रतिहतंबैन ब्राह्मण शापंबु निरर्थकंबय्यॅ ननिन विनि येमि कारणंबुन दुरंतंबैन ब्रह्मदंडंबु-वलन नतंडु विडुवंबडियॅ ननिन नप्पुडमिरेनिकि शुकुं डिट्लनियॅ ॥ 80 ॥

### अंबरीषोपाख्यानमु

शा. सप्तद्वीप विशाल भूभरमु दोस्तंभंबुनं बूनि सं-
प्राप्त श्रीयुतुडै महाविभव संपच्छातुरि गल्गि दु-

है; मैंने अपराध किया; सहन (क्षमा) करो।" तब वह भक्तवत्सल महापुरुष नभग के सत्यवचन तथा नाभाग की सच्चाई को देखकर संतुष्ट हुआ और कहा कि तुम सच बोले; इसलिए सत्रपरिशेष धन को तुम्हें दे रहा हूँ। यों कहकर और अंतर्दर्शित्व तथा सनातन ब्रह्मज्ञान की दीक्षा देकर (वह) तिरोहित हुआ। इस प्रकार ७८ [कं.] भुवि में नाभाग की कथा के प्रति मन लगाकर प्रातः और सायंकाल में (उसका) स्मरण करने मात्र से [कोई भी] नर कवि बनेगा, मंत्रज्ञ बनेगा और मंगलस्वरूप (वाला) बनकर प्रविमल गति (मोक्ष) को प्राप्त करेगा। ७९ [व.] इसके बाद नाभाग से अंबरीष पैदा हुआ। उसमें (पर) जगदप्रतिहत ब्राह्मण-शाप निरर्थक हुआ; यह सुनकर (परीक्षित ने पूछा कि) किस कारण दुरंत ब्रह्मदंड से वह (अंबरीष) छोड़ दिया गया है? यह सुनकर शुक ने उस राजा से इस प्रकार कहा। ८०

### अंबरीषोपाख्यान

[शा.] सद्गुणगरिष्ठ (वह) अंबरीष इस पृथ्वी पर सप्तद्वीप-विशाल-भूभार को अपनी बाहु रूपी स्तंभों पर वहन करते हुए, संप्राप्त

व्याप्ति जेंदक वैष्णवार्चनल मेरं गालमु बुच्चुचुन्
सुप्ति बोंदक योप्पें सद्गुण-गरिष्ठुंडंबरोषुंडिलन् ॥ 81 ॥

सी. चित्तंबु मधुरिपु श्रीपादमुल यंद पलुकुलु हरिगुण पठनमंद
करमुलु विष्णुमंदिर मार्जनमुलंद श्रवमुलु माधवश्रवणमंद
चूपुलु गोविंद रूप वीक्षणमंद शिरमु गेशव नमस्कृतुलयंद
पदमुलीश्वर गेह परिसर्पणमुलंद कामंबु चक्रि कैंकर्यमंद

ते. संघमच्युत जनतनुसंगनंद
घ्राण मसुरारि भक्तांघ्रिकमलमंद
रसन दुलसी दळमुलंद रतुलु पुण्य-
संगतुलयंद या राजचंद्रमुनकु ॥ 82 ॥

व. मरियु नम्महीविभुंडु ॥ 83 ॥

सी. घन वैभवंबुन गल्मषदूरुडै यज्ञेशु नीशु नब्जाक्षु गूर्चि
मौनसि वसिष्ठादि मुनि वल्लभुल तोड दगिलि सरस्वती तटमुनंद
मेधतो बहु वाजि मेधंबुलोनरिचें गणुतिपरानि दक्षिणलु वेट्टि
समलोष्टहेमुडै सर्वकर्मंबुलु हरि परंबुलु गाग नवनि येलें

---

श्रीयुत होकर, महा विभव-संपच्छातुरि (चातुर्य) से युक्त होकर भी दुर्व्याप्ति को न पाकर (बुरे व्यसनो में न पड़कर), वैष्णवार्चनों से काल व्यतीत करते हुए, सुप्ति को न पाकर (प्रमत्त न वनकर) विराजमान हुआ। ८१ [सी.] उस राजा (अंबरीष) का चित्त मधुरिपु (हरि) के श्रीचरणों मे ही, उसकी बातें हरिगुण-पठन में ही, कर (हाथ) विष्णु-मंदिरों को साफ़ करने में ही, उसके कान माधव [की कथाओं] को सुनने में ही, उसकी दृष्टि गोविंदरूप-वीक्षण (गोविंद के रूप को देखने) मे ही, उसका सिर केशव-नमस्कृतियों में ही, काम (इच्छा) चक्री के कैंकर्य (समर्पण) मे ही, उसके पद (पाँव) ईश्वर के मंदिरों की प्रदक्षिणा करने में ही, [ते.] संग (संगति) अच्युत-जन (हरि-भक्त)-संगम में ही (संगति में ही), घ्राण (नाक) असुरारि (विष्णु) के भक्तों के कमल-चरणों पर ही, उसकी रसना (जीभ) तुलसीदलों में ही और रतियाँ (अनुरक्तियाँ) पुण्य विषयों में ही लगी रहती थीं। ८२ [व.] और उस महीवि[भु] (राजा) ने ८३ [सी.] घन (महान्)-वैभव में कल्मषदूर होकर अ[...] यज्ञेश (विष्णु) ईश तथा अब्जाक्ष (विष्णु) के प्रति वसिष्ठ आदि मु[नि] वल्लभों के साथ मिलकर, सरस्वती (नदी) के तट पर मेधस् (सुनि[श्चित] बुद्धि) से अनेक वाजि-(अश्व) मेधों को संपन्न किया और अनगि[नत] दक्षिणाएँ दीं। समलोष्ट-हेम (मिट्टी और सोने के प्रति समदृ[ष्टि] रखकर) सब कर्मों को हरि के नाम पर (अर्पित) करते हुए, अ[...]

आ. विष्णु भक्तुलंदु विष्णुवुनंदु ग-
लंक मॆंडल मनसु लंकॆवॆट्टि
विहित राज्यवृत्ति विडुवनि वाडुनै
यतडु राच तपसि यनग नॊप्पॆ ॥ 84 ॥

व. वॆंडियु नम्महाभागवतुंडु ॥ 85 ॥

कं. हरियनि संभाविचुनु
हरियनि दर्शिचु नंटु नाघ्राणिचुन्
हरियनि रुचिगॊन दलचुनु
हरिहरि ! घनु नंवरीषु नलवियॆ पॊगडन् ॥ 86 ॥

व. इट्ल पुण्यचित्तुंडु नीश्वरायत्तुंडुनै यल्लनल्लन राज्यंबु सेयुचुन्न समयंबुन ॥ 87 ॥

आ. अतनि कीह मानॆ हरुलंदु गरुलंदु
धनमुलंदु गेळिवनमुलंदु
बुत्रुलंदु वंधुमित्रुलयंदुनु
बुरमुनंदु नंतिपुरमुनंदु ॥ 88 ॥

व. अंत गॊंतकालंबुनकम्मेदिनीकांतुंडु संसारंबु वलनि तगुलंबु विडिचि विनिर्मलुंडै येकांतंबुन भक्ति परवशुंडयि युंड नाराचतपसिकि भक्त लोक वत्सलुंडगु पुरुषोत्तमुंडु प्रतिभट शिक्षणंबुनु निजजन रक्षणंबुनु निखिल जगवक्रंबुनुनगु चक्रंबु निच्चि चनियॆ । अंत ॥ 89 ॥

(राज्य) का पालन किया। [आ.] विष्णु, विष्णुभक्तों के प्रति कालुष्य से मुक्त मन लगाकर, विहित राज्यवृत्ति को न छोड़कर, वह राजर्षि नाम से विख्यात हुआ। ८४ [व.] और भी वह महान भागवत (भक्त) ८५ [क.] उसके पास (किसी के आने पर) उसे हरि मानकर सम्मान करता था, हरि मानकर देखता था, स्पर्श करता था और सूंघ लेता था। [उसे] हरि मानकर अपनी इच्छा प्रकट करना चाहता था। हरि-हरि ! क्या (उस) श्रेष्ठ अंबरीष की प्रशंसा करना साध्य है ? ८६ [व.] इस प्रकार (उस) पुण्यचित्त (वाले) के ईश्वरायत्त होकर धीरे-धीरे राज्य करते समय ८७ [आ.] घोड़ों में, हाथियों में, धन में, क्रीडा-वनों में, पुत्रों मे, बंधु-मित्रों में, पुर में या अंतःपुर में (के प्रति) उस (राजा) की इच्छा न रही। ८८ [व.] इसके कुछ काल के बाद वह मेदिनी-कांत (राजा) अपने परिवार का मोह छोड़कर, विनिर्मल होकर और एकांत में भक्ति-परवश होकर रहा तो उस राजर्षि को भक्त-लोक-वत्सल पुरुषोत्तम प्रतिभट (शत्रु) को दंड देनेवाला और निज-जन की रक्षा करनेवाला, निखिल जगदचक्र (सारे

कं. तनतोडि नीड कैवडि
ननुरूप गुणाढ्ययैन यात्ममहिषितो
जन विभुडु द्वादशी व्रत-
मोनरन् हरिगूर्चि चेसे नोकयेडधिपा ! ॥ 90 ॥

व. इट्लु व्रतंबु सेसि या व्रतांतंबुनं गार्तिकमासंबुन मूडु रात्रुलुपवसिंचि, काळिंदीजलंबुल स्नातुंडयि मधुवनंबुन महाभिषेक विधानंबुन विहित परिकर संपन्नुंडयि हरि नभिषेकंबु सेसि मनोहरंबुलयिन गंधाक्षतंबुलु समर्पिचि यभिनवामोदंबुलैन पुष्पंबुलं बूजिंचि तदनंतरंब ॥ 91 ॥

शा. पालेरै प्रवहिंप नंग रुचुलुं ब्रायंबुलुन् रूपमुल्
मेलै धूर्तलु गाक वेंडिगोरिजल् हेमोरुशृंगंबुलुन्
ग्रालं ग्रेपुल यरुं नाकुचुनु रंगच्चेललैयुन्न मं-
दालन् न्यर्बुदषट्क मिच्चे विभुडुद्यद्वैदिक श्रेणिकिन् ॥ 92 ॥

कं. पेक्कंड्र विप्रवरुलकु, ग्रक्कुन नति भक्ति तोड गडुपुलु निंडन्
जोक्कपुटन्नंबिडि विभु, -डोक्कोंड बारणमु सेय नुद्योगिपन् ॥ 93 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 94 ॥

---

संसार मे अकुंठित) चक्र देकर चला गया। तब ८९ [कं.] हे राजा! एक वर्ष उस जनविभु (राजा) ने अपनी छाया की तरह अनुरूपवती और गुणाढ्या (गुणवती) होकर रहनेवाली अपनी पट्टमहिषी के साथ हरि को उद्दिष्ट करके द्वादशी व्रत (का पालन) अच्छी तरह किया। ९० [व.] इस प्रकार व्रत करके उस व्रत के अंत में कार्तिक मास में तीन रात्रियाँ उपवास [रह] करके, कालिंदी (के) जलों में स्नान करके, मधुवन में महाभिषेक-विधान से विहित परिकरों से सपन्न हो, हरि का अभिषेक करके, मनोहर गंधाक्षत समर्पित करके और अभिनव आमोदयुक्त पुष्पों से पूजा करके तदुपरांत ९१ [शा.] उस राजा ने श्रेष्ठ वैदिक ब्राह्मणों को छः सौ अर्बुद ऐसी गायों के झुंडों को (दान में) दिया जिनकी शारीरिक कांतियाँ क्षीर-नदी के समान प्रवाहमान हो रही थी, जो वय में छोटी थी, जिनका रूप उत्तम था, जो धूर्त न थी, जिनके खुरों में चाँदी के पत्तों से और जिनके ऊँचे सींग सुवर्ण के पत्तों से मढ़ दिये गये थे, जो अपने बछड़ों के कठों के नीचे लटकनेवाले चमड़े को चाट रही थी और जो रंग-बिरंगे वस्त्रों से ओढ़ी हुई थी। ९२ [कं.] अनेक विप्रवरों को शीघ्र ही बड़ी भक्ति के साथ पेट भर उत्तम भोजन देकर जब वह राजा (अंबरीष) निवेदित पदार्थ का पारण (भोजन) करने के लिए उद्युक्त हुआ ९३ [व.] तब ९४ [कं.] प्रकाशमान होनेवाला, वेदों के पदों

कं. भासुर निगमपदोप, -न्यासुडु सुतपोविलासुडनुपम योगा-
भ्यासुडु रवि भासुडु दु, -र्वासुडतिथियय्यॆ दन्निवासंबुनकुन् ॥ 95 ॥

व. अट्लतिथियै वच्चिन नम्मुनि वल्लभुनकु ब्रत्युत्थानंबु सेसि कूर्चुंडु गद्दिय यिडि पादंबुलु गडिगि पूजिंचि सेमंबरसि तनयिट नन्नंबु गुडुवुमनि नमस्करिंचिन नम्महात्मुंडु संतसिंचि भोजनंबुनकु नंगीकरिंचि निर्मलंबुलगु कालिंदीजलंबुलं बरम ध्यानंबु सेयुचु मुनिगि लेचिराक तडवु सेसिन मुहूर्तार्धावशिष्टयगु द्वादशियंदु बारण सेयवलयुट जिंतिंचि ब्राह्मणातिक्रमदोषंबुनकु शंकिंचि विद्वज्जनंबुल राविंचि वारल नुद्देशिंचि ॥ 96 ॥

कं. मुनि नीरु सॊच्चि वॆडलडु
चनियॆडु द्वादशियु नित जनियॆडु नीलो
ननपारण चेयवलयु
विनिपिंपुंडर्ह धर्म विध मॆट्टिदियो ॥ 97 ॥

व. अनि पलिकिन ना राजुनकु ब्राह्मण जनुलिट्लनिरि ॥ 98 ॥

आ. अतिथि वोयि रामि नधिप! यी द्वादशि
पारणंबु मान बाडि गादु

---

का श्रेष्ठ पंडित, उत्तम तपस्वी, अनुपम योगाभ्यास करनेवाला, सूरज के समान तेजस्वी, दुर्वासा उस (राजा) के निवास स्थान पर आया। ९५ [व.] इस प्रकार अतिथि के रूप में आये हुए उस मुनिवल्लभ का प्रत्युत्थान करके राजा ने बैठने के लिए गद्दी देकर, उसके चरण धोकर, पूजा करके और उनका कुशल पूछकर अपने घर में भोजन करने की प्रार्थना की तो वह महात्मा संतुष्ट हुआ और भोजन करने के लिए अपनी स्वीकृति देकर [गया और] कालिंदी के निर्मल जलों में परम ध्यान करते हुए डुबकी लगाकर उठकर (राज-प्रासाद में) आने में देरी की तो [राजा ने, जिसे] मुहूर्तार्धावशिष्ट द्वादशी में पारण करना था, चिंतित होकर और ब्राह्मणातिक्रम दोष की शंका करके विद्वानों को बुलवाया और उनको उद्दिष्ट करके [कहा]— ९६ [कं.] "मुनि जल में घुसकर, बाहर नहीं निकलता; इतने में द्वादशी की घड़ियाँ चली जा रही हैं; उनके चले जाने के पहले ही पारण करना चाहिए। आप लोग सुनाइए, अब अर्ह [धर्म] विधि क्या है?" ९७ [व.] राजा के इस प्रकार कहने (पूछने) पर उस राजा से ब्राह्मण-जन इस प्रकार बोले— ९८ [आ.] "हे अधिप [राजा]! अतिथि के जाकर न आने से इस द्वादशी-पारण का त्याग करना ठीक नहीं है। सलिल-भक्षण [जल पीना] करने से वह

गुड्डवकुंट गादु कुडुचुटयुनु गादु
सलिल भक्षणंबु सम्मतंबु ॥ 99 ॥

व. अनि धर्म संदेहंबु वापिन ना राजर्षि श्रेष्ठुंडुनु मनंबुन हरिं दलंचि नीरु पारणंबु सेसि जलंबुल मुनिंगिन तपसि राक कॅदुरुचूचुचुन्न समयंबुन ॥ 100 ॥

सी. यमुन लो गृतकृत्युडै वच्चि राजुचे सेवितुंडै राजु चेष्टितंबु
बुद्धिलो नूहिंचि बॊममुडि मॊगमुतो नदरॆडि मेनितो नाग्रहिंचि
रट्टिंचि याकलि गॊट्टु मिट्टाडंग नोसंपदुन्मत्तु नी नृशंसु
नी दुरहंकारु निदरु गंटिरे विष्णु भक्तुडु गाडु वीडु नष्टु

ते. गुड्डव रम्मनि मुनुमुट्टु गुडिचिनाडु
धर्म भंगंबु सेसि दुष्कर्मुडय्यॆ
नयिन निप्पुडु सूपॆद नन्नि दिशल
नेनु गोपिप माप्पु वाडॆव्वडनुचु ॥ 101 ॥

चं. पॆटपॆट बंड्लु गोट्टुचुनु भीकरुडै कनुक्रेव निप्पुकल्
पॊट पॊट राल गंडमुलु पॊंग, मुनींद्रुडु हुंकरिंचुचुन्
जट मॊदलंटगा बॆरिकि चक्कन दानन कृत्य नायुधो-
त्कट वर शूल हस्तयुतगा नॊनरिंचिवु वेचॆ राजुपैन् ॥ 102 ॥

---

खाये बिना रहना न होगा और खाकर रहना न होगा; यह [शास्त्र] सम्मत है।" ९९ [व.] इस प्रकार [जब उन्होंने] धर्म-संदेह को निवृत्त किया तो वह राजर्षि-श्रेष्ठ मन में हरि का नाम स्मरण करके, जल पीकर जल में डूबे हुए मुनि की प्रतीक्षा करता रहा, तो १०० [सी.] [वह दुर्वासा] यमुना में [संध्यावंदन आदि] कृत्यों से निवृत्त हो आकर, राजा से सेवित होकर, [अपनी] बुद्धि के अनुसार राजा की चेष्टा का अनुमान करके और भौंहें सिकोड़कर, फड़कनेवाले शरीर से क्रोधित हुआ और [राजा को] ललकार करके, द्विगुणित बनी भूख के सताने पर [यों कहने लगा], "क्या तुम लोगों ने संपत्ति से उन्मत्त होनेवाले ऐसे (राजा) को, इस नृशंस को, इस दुरहंकारी को देखा है न ? यह विष्णु का भक्त नहीं है; [ते.] इसने मुझे भोजन के लिए निमन्त्रण देकर [मुझसे] पहले ही खा लिया है; धर्म का भंग करके दुष्कर्म करने वाला बन गया है। ऐसा होने पर अब मैं (अपनी शक्ति को) दिखाऊँगा; मेरे क्रुद्ध होने पर किसी भी दिशा में मुझे रोकनेवाला कौन है ?" यों कहते हुए १०१ [चं.] दाँत कटकटाते हुए, रगड़ते हुए, भीकर होकर, दोनों आँखों से आग बरसाते हुए और गालों के फूलने पर, हुंकारते

कं. कालानल सन्निभयै, शूलायुध हस्त यगुचु सुर सुर स्त्रुक्कन्
नेल वदंबुल द्रोक्कुचु, वालि महाकृत्य मनुज वल्लभु जेरेन् ॥ 103 ॥

आ. आ प्रकार मॅरिगि हरि विश्वरूपुंडु
वॅरि तपसि सेयु वेडवंबु
जक्क बॅट्टु मनुचु जक्रंबु बंचिन
वच्चें नदियु ब्रळय वह्नि पगिदि ॥ 104 ॥

व. वच्चि मुनि पंचिन कृत्यनु दहिंचि तनिवि सनक मुनि वॅटवडिन मुनियुनु मेरु गुह सॉच्चिन नदियु नुरगंबु वॅनुकॊनु दवानलंबु चंदंबुन दोन चॊच्चि मरियुनु ॥ 105 ॥

म. भुवि दूरन् भुविदूरु नब्धि जॊर नब्धि जॊच्चु, नुद्वेगियै
दिवि ब्राकन् दिवि ब्राकु, दिक्कुलकु बो दिग्वीथुलं बोवु जि-
क्किवॅसं ग्रुंगिन ग्रुंगु, निलव निलुचु, ग्रेडिप ग्रेडिचु नॊ
क्कवडिन् दापसु वॅंट नंटि हरि चक्रंबन्यदुर्वक्रमै ॥ 106 ॥

म. ए लोकंबुनकॅन वॅंट बडितो नेतेंचु चक्रानल-
ज्वालल् मानुपुवारु लेमि जनि देव ज्येष्ठु लोकेशु बा-

हुए, अपनी एक जटा को समूल उखाड़ लिया और अच्छी तरह उसे 'कृत्या' नामक दानवी को, आयुध रूप में शूल हस्तयुता बनाकर, राजा पर छोड़ दिया। १०२ [क.] कालानल (प्रलयकाल की अग्नि) के समान बनकर, हाथ में शूल को लेकर अति वेग से घूमते हुए और जमीन को पाँवों से कुचल डालते हुए नीचे आकर [वह] महा कृत्या मनुज-वल्लभ (राजा) के पास पहुँची। १०३ [आ.] विश्व रूपी हरि ने उस विधान को जानकर और यह कहते हुए कि उस पागल तपस्वी की वंचना को ठीक करो, [ऐसा आदेश दे अपने] चक्र को भेज दिया तो वह भी प्रलय-वह्नि की तरह आया। १०४ [व.] आकर मुनि की भेजी हुई कृत्या को जलाकर, [फिर भी] तृप्त न होकर मुनि का पीछा किया। मुनि मेरु (पर्वत) की गुफा में गया तो वह (चक्र) भी सर्प का पीछा करनेवाले दावानल की तरह गुफा मे घुस गया और १०५ [म.] (वह मुनि) भुवि (पाताल) में घुस जाता तो (वह भी) भुवि में घुस जाता; समुद्र में जाता तो समुद्र में जाता, उद्वेग से दिवि मे चढ़ जाता तो दिवि मे चढ़ जाता, दिशाओं मे भाग जाता तो (वह चक्र भी) दिग्वीथियों में जाता, (दुर्वासा) थक कर (अपना) वेग कम करता तो [वह भी] कम करता, अगर वह (मुनि) खड़ा रहता तो [वह भी] खड़ा रहता; और (दुर्वासा) हट जाता तो वह भी हट जाता; [इस प्रकार] हरि का वह चक्र अन्य-दुर्वक्र बनकर एक ही प्रकार से दुर्वासा का पीछा करने लगा। १०६ [म.] चाहे

डालोकिंचि विधात विश्वजनन व्यापार पारीण रे-
खालीलेक्षण ! काववे करुण जक्कंबुन् निवारिपवे ॥ 107 ॥

व. अनिन ब्रह्म यिट्लनियें ॥ 108 ॥

म. करमर्थिन् द्विपरार्थ संज्ञ गल यी कालंबु गालात्मुडै
सौरिदिन निङग जेसि लोकमुलु नाचोट्न् विभुंडव्वडो
परिपूर्तिन् गनु ग्रेवु गेंपुगदुरन् भस्मंबुगा जेयु ना
हरि चक्रानल कील कन्युडोकरुंडड्डुंबु गा नेर्चुने ॥ 109 ॥

आ. एनु भवुडु दक्षुडिंद्रादुलुनु ब्रजा
पतुलु भृगुडु भूतपतुलु शिरमु
लंदु दाल्तु मतनि याज्ञ जगद्धितं-
बंचु भूरि कार्यमतुलमगुचु ॥ 110 ॥

व. कावुन सुदर्शनानल निवारणंबुनकु नोपननि विरिंचि पलिकिन, संचलिंचि दुर्वासुंडु कैलासंबुनकुं जनुदेंचि शर्वुनालोकिंचि चक्रि चक्रानल सारंबु तेरंगेरिंगिचिन नम्महादेवुंडिट्लनियें ॥ 111 ॥

[वह मुनि] किसी भी लोक में जावे, उसका पीछा करनेवाली [उस] चक्रानल ज्वाला को रोकनेवाले किसी के न रहने के कारण [दुर्वासा ने] देवताओं में ज्येष्ठ लोकेश (ब्रह्मा) के पास जाकर और [उसे] देखकर [कहा], "हे विधाता ! विश्वजनन-व्यापारपारीण-रेखालीलेक्षण (सृष्टि की रचना करने में कुशलता दिखाने की विलासमय दृष्टि रखनेवाले) ! दया करके (मेरी) रक्षा करो और (इस) चक्र को रोको न"। १०७ [व.] [दुर्वासा ने] यों कहा तो ब्रह्मा ने इस प्रकार कहा, १०८ [म.] बहुत चाहने पर द्विपरार्थ नामक यह काल कालात्मा बनकर जो विभु (प्रभु) सारे लोकों को भर देगा वह हरि उस प्रदेश को [अपनी] आँख के कोने की लालिमा से भस्म कर देगा; ऐसे हरि के चक्र की अग्नि की ज्वाला को क्या कोई दूसरा रोक सकता है ? १०९ [आ.] "मैं, भव (शिव), दक्ष (प्रजापति), इंद्र आदि [देवतागण], सब प्रजापति, भृग और सब भूतपति, भूरि कार्य मति होते हुए [काम करने में अधिक मग्न होकर] जगत् की हेतु (भलाई) के लिए मानकर, उसकी आज्ञा को अपने सिर पर धारण कर लेते हैं। ११० [व.] इसलिए सुदर्शन (चक्र) के अनल को मैं नहीं रोक सकता।" ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर घबड़ाकर, दुर्वासा के कैलास में जाकर और शर्व को देखकर चक्री के चक्र के अनल की बात कहने पर, उस महादेव ने इस प्रकार कहा, १११ [सी.] "अजी, सुनो ! जिस विश्वेश्वर मे अनेक सहस्रों की संख्या मे चतुरास्य जीवकोश एकत्रित

सी. विनवय्य ! तंड्रि ! यी विश्वेश्वरुनियंदु जतुरास्य जीवकोशमुलु पॆक्कु
वेल संख्यलु गूडि वेळतो निब्भंगि नगुचुंडु जनुचुंडु नदियुगाक
यॆव्वानिचे भ्रांति नेमंदुचुन्नारमेनु देवलुडसुरेंद्रसुतुडु
नारदुडजुडु सनत्कुमारुडु धर्मुंडा कपिलुडु मरीच्यादुलन्य

आ. पारविदुलु सिद्ध पतुलु नॆव्वनिमाय
नॆरुगलेमु दान नित वड्डु
मट्टि निखिल नाथु नायुध श्रेष्ठंबु
दॊलग जेय माकु दुर्लभंबु ॥ 112 ॥

व. मुनींद्रा ! नीवु नम्महात्मुनि शरणंबु वेडुमु। अतंडु मेलु सेयंगलवाडनि पलिकिन नीश्वरुनि वलन निराशुंडै दुर्वासुंडु वैकुंठनगरंबुनकुं जनि ॥ 113 ॥

शा. आ वैकुंठमुलोनि भर्म मणि सौधाग्रंबुपै लच्चितो-
ग्रेवन् मॆल्लन नर्मभाषणमुलं ग्रीडिंच पुण्युन् हरिन्
देवाधीश्वरु गांचि यो वरद ! यो देवेश ! यो भक्त र-
क्षा विद्या परतंत्र ! मानुपगदे चक्रानल ज्वाललन् ॥ 114 ॥

उ. नी महिमार्णवंबु तुदि निक्कमुगा नॆरुगंगलेक नी
प्रेमकु वच्चु दासुलकु ग्रिचतनंबुन नॆग्गु सेसितिन्
ना मड्पुन् सहिंपुमट नारकुडैन मनंबुलो भव-
न्नाममु चिंत सेसिन ननंतसुख स्थिति नॊंदकुंडुने ॥ 115 ॥

---

होकर काल के साथ इस प्रकार बनते और बिगड़ते हैं; इसके अतिरिक्त जिसके कारण भ्रांति से मैं, असुरेंद्र का सुत, देवल, नारद, अज (ब्रह्मा), सनत्कुमार, धर्म्य, कपिल, मरीचि आदि अन्य ज्ञानी और सिद्धपति (श्रेष्ठ सिद्ध) जीवित रहते हैं, [आ.] जिसकी माया को [हम] नहीं जानते, जिसके मूल के बारे में नही जानते, वैसे निखिलनाथ के आयुध श्रेष्ठ को हटाना हमारे लिए दुर्लभ है। ११२ [ब.] "हे मुनीन्द्र ! तुम उस महात्मा की शरण में जाओ। वह तुम्हारी भलाई कर सकेगा।" उसके ऐसा कहने पर (दुर्वासा) ईश्वर से निराश होकर वैकुंठ नगर को जाकर ११३ [शा.] उस वैकुंठ के भर्म (सुवर्ण) मणि सौध के अग्र भाग पर, लक्ष्मी के साथ धीरे-धीरे नर्म (हास्य) भाषणों से खेलनेवाले पुण्य (पुरुष) और देवाधीश्वर हरि को देखकर [बोला], "हे वरद, हे देवेश, हे भक्त-रक्षा-विद्या-परतंत्र, चक्र के अनल की ज्वालाओं को रोक दो। ११४ [उ.] "तुम्हारी महिमा के अर्णव के अंत को सचमुच (यथार्थ) न जान सक कर, (अपनी) नीचता के कारण, तुम्हारे प्रेम को [पाने के लिए] आने वाले दासों (भक्तों) की बुराई की। मेरे अज्ञान को सहो (क्षमा करो)।

व. अनि पलिकि पादकमलंबुलकु म्रोविक लेवकयुन्न दुर्वासुनि गनि हरि यिट्लनियें ॥ 116 ॥

चं. चलमुन बुद्धिमंतुलगु साधुलु नाहृदयंबु लील दों-
गिलिकॉनि पोवुचुंड्डुरकिल्बिषभक्ति लता चयंबुलन्
निलुवग बट्टि कट्टुदुरु नेरुपुतो मदकुंभि कैवडिन्
वललकु जिक्कि भक्तजन वत्सलतं जनकुंदु तापसा ! ॥ 117 ॥

आ. नाकु मेलुगोरु ना भक्तुडगु वाडु
भक्त जनुल केन परम गतियु
भक्तु डेंदु जननि बरतेंतु वेंनु वेंट
गोवु वेंट दगुलु कोडॆ भंगि ॥ 118 ॥

व. अदियुनुंगाक ॥ 119 ॥

आ. तनुवु मनुवु विडिचि तनयुल जुट्टाल
नालि विडिचि संपदालि विडिचि
नन्न कानि यन्यमॆन्नडु नॆरुगनि
वारि विडुव नॆट्टि वारिनैन ॥ 120 ॥

कं. पंचेंद्रियमुल तॆरुवुल, वंचिचि मनंबुनंदु वरमतुलु प्रति-
ष्ठिंचि वहिंतुरु नन्नुनु, मंचिवरं बुण्य सतुलु मरगिन भंगिन् ॥ 121 ॥

---

उधर नारकी भी मन में तुम्हारे नाम की चिंता [उच्चारण] करने मात्र से सुख की स्थिति को नही पा सकता ?" (पा सकता है) ११५ [व.] यों कहकर [विष्णु के] चरण-कमलों को नमस्कार करके [दुर्वासा] न उठा तो दुर्वासा को देखकर हरि ने इस प्रकार कहा, ११६ [चं.] हठ करके बुद्धिमान साधु-गण लीला से मेरे हृदय को चुरा ले जाते हैं; अकिल्बिष भक्तिलताचयों से मुझे बड़ी चतुरता के साथ मत्त कुंभि (हाथी) की तरह बाँधकर खड़ा कर देते हैं। (उनके) जालों में फँसकर भक्तजनवत्सलता के कारण, मै [उन्हें छोड़कर] नही जा (सकता)। ११७ [आ.] मेरी भलाई चाहना केवल मेरे भक्तों का ही (काम) है; लेकिन (अपने) भक्तजनों की परमगति मैं ही हूँ। जहाँ-जहाँ मेरा भक्त जाता है, उसके पीछे-पीछे मैं भी जाता हूँ जैसे गाय के पीछे [उसका] बछड़ा जाता है। ११८ [व.] इसके अतिरिक्त ११९ [आ.] अपना तन व जीवन छोड़कर, अपने बेटों को, भाई-बन्धुओं को, [अपनी] पत्नी को, और [अपनी] संपदाओं को छोड़कर जो [भक्त] केवल मुझे ही जानते है और दूसरे किसी को चाहे वे कैसे भी हों, उनको नहीं छोड़ता। १२० [कं.] पंचेन्द्रियों के मार्गो को बंद करके, वर मतिमान (श्रेष्ठ बुद्धिमान)

कं. साधुल हृदयमु नायदि, साधुल हृदयंबु नेनु जगमुल नॆल्लन्
साधुल नेन यॆऱुंगुदु, साधुलॆऱुगुदुरु नादु चरितमु विप्रा ! ॥ 122 ॥

आ. धारुणीसुरुलकु दपमु विद्ययु रॆंडु
मुक्ति सॆयुचुंडु मुदमु तोड
दुर्विनीतुलगुचु दुर्जनुलगु वारि
किन्नियु गीडु सेय केल युंडु ॥ 123 ॥

कं. ना तेजमु साधुललो, नाततमै युंडु वारि नलचु जनुलकुन्
हेति क्रिय भीति निच्चुं, जेतोमोदंबु जॆरुचु सिद्धमु सुम्मी ॥ 124 ॥

कं. अदॆपो ब्राह्मण ! नीकुनु, सदयुडु नाभागसुतुडु जनविनुतगुणा-
स्पदुडिच्चु नभयमातनि, मदि संतसपऱचि वेडुमाशरणंबुन् ॥ 125 ॥

## अध्यायमु—५

म. अनि श्रीवल्लभुडानतिच्चिन महोद्यच्चक्र कीलावळी
जनितायासुडु निर्विकासुडुदितश्वासुंडु दुर्वासु ड-
ल्लन येतॆंचि सुभक्ति गाँचॆ गरुणा लावण्य वेषुन् विदो-
षु नयोदारमनीषु मंजु मित भाषुन्नंबरीषुन् वॆसन् ॥ 126 ॥

अपने मन में मुझे प्रतिष्ठित (स्थापित) करके ठीक वैसे ही स्वीकार करते हैं जैसे पुण्य सतियाँ अच्छे वर को चाहती हैं। १२१ [कं.] हे विप्र ! साधुओं का हृदय मेरा है, साधुओं का हृदय मैं हूँ; जग भर के साधुओं को मैं ही जानता हूँ; मेरी कथा को साधु लोग जानते हैं; १२२ [आ.] धारुणीसुरों (ब्राह्मणों) को तप और विद्या —ये दोनों [कर्म] मोद (संतोष) से मुक्ति करते (देते) हैं। जो दुर्विनीतिमान बनते हुए दुर्जन बननेवाले है, उनकी बुराई किये विना ये कैसे रहते ? १२३ [कं.] यह सिद्ध (सच) है कि मेरा तेज साधुओं में व्याप्त होकर रहता है; जो लोग उसका तिरस्कार करते है उनको ज्वाला के समान डराता है और मानसिक मोद (संतोष) को बिगाड़ देता है। १२४ [कं.] [इसलिए] हे ब्राह्मण ! दयायुक्त और जन-विनुत गुणास्पद वह नाभागसुत (अंबरीश) तुमको अभय देगा; उसके मन को संतुष्ट करके, उसकी शरण में जाओ। १२५

## अध्याय—५

[म.] इस प्रकार श्रीवल्लभ के आज्ञा देने पर महान और उन्नत चक्र की ज्वालाओं के समूह के कारण थके हुए और निर्विकास (विगत विकास वाला) दुर्वासा ने लंबी साँस लेते हुए धीरे-धीरे आकर करुणा-लावण्य वेष

व. कनि दुःखितुंडयि यम्महीवल्लमु पादंबुलु वट्टि विडुवकुन्न नानरेंद्र चंद्रु चरणस्पर्शनंबुनकु नोडुचु गरुणा रस भरित हृदयुंडयि हरि चक्रंबु निट्लनि स्तुतियिंचें ॥ 127 ॥

सी. नीव पावकुडवु नीव सूर्युंडवु नीव चंद्रुंडवु नीव जलमु
नीव नेलयु निगि नीव समीरबु नीव भूतेंद्रिय निकरमीव
नीव ब्रह्मंबुनु नीव सत्यंबुनु नीव यज्ञंबुनु नीव फलमु
नीव लोकेशुलु नीव सर्वात्मयु नीव कालंबुनु नीव जगमु

ते. नीव बहुयज्ञ भोजिवि नीव नित्य
मूलतेजंबु नीकु ने म्रोक्कुवाड
नीरजाक्षुंडु चाल मन्निचुनट्टि
शस्त्रमुख्यम ! कावबे चालु मुनिनि ॥ 128 ॥

म. हरिचे नीवु विसृष्टमै चनग मुन्नालिचि नी धारलन्
धरणिन् व्रालुट निक्कमंचु मुनुपे दैत्येश्वर व्रातमुल्
शिरमुल् पादमुलुन् भुजायुगळमुल् छेदिल्लि यंगंबुलं-
दुरुलन् व्राणसमीरमुल् वदलु नी युद्धंबुलं जक्रमा ! ॥ 129 ॥

---

(मूर्ति), विदोषी (दोषरहित), नयोदार-(नय-उदार)-मनीषी और मंजु-मित-भाषी अंबरीष को सुभक्ति-सहित शीघ्र देखा। १२६ [व.] देखकर (और) दुःखित होकर, जब उस महीवल्लभ (राजा) के चरणों को पकड़कर (दुर्वासा ने) नहीं छोड़ा तो उस नरेंद्रचंद्र ने (अपने) चरण-स्पर्श के लिए डरते हुए करुणा-रस भरित हृदय से हरि (के) चक्र की इस प्रकार प्रार्थना की १२७ [सी.] "तुम ही पावक हो; तुम ही सूर्य हो, तुम ही चंद्र हो, तुम ही जल हो, तुम ही पृथ्वी हो, तुम ही आकाश हो, तुम ही समीर हो, तुम ही भूतेंद्रिय-निकर (समूह) हो, तुम ही ब्रह्मा हो, तुम ही सत्य हो, तुम ही यज्ञ हो, तुम ही फल हो, तुम ही लोकेश (गण) हो, तुम ही सर्वात्मा हो, तुम ही काल हो, तुम ही जग हो, [ते.] तुम ही बहुयज्ञ-भोजी हो, तुम ही नित्य मूल तेजस् हो। मैं तुम्हारी प्रार्थना कर रहा हूँ; जिसका नीरजाक्ष (विष्णु) बड़ा आदर करता है, ऐसे हे शस्त्र-मुख्य ! बस, मुनि की रक्षा करो"। १२८ [म.] हे चक्र ! हरि से तुम्हारे विसृष्ट होने (छोड़ दिये जाने) पर, पहले (यह बात) सुनकर यह कहते हुए कि तुम्हारी धाराओं से धरणी पर गिर पड़ना तथ्य है, इसके पूर्व ही दैत्येश्वर व्रात (संघ) के सिर, चरण और भुजायुगळ कटकर; उनके अवयवों के गिर जाने पर युद्धों में (अपने) प्राण समीर छोड़ देंगे। १२९ [आ.] "व्याकुल होकर सो जाने पर, स्वप्न में दिखाई पडने वाले तुमको देखकर असुरवर दीर्घ निद्रा में ऐसे पड़ जाते (मर जाते) कि

आ. कलगि निद्र वोव गल लोन वच्चिन
निन्नु जूचि दोघं निद्र वोदु-
रसुरवरुलु शय्यलंदुन्न सतुलु प्र-
भातमंदु लेचि पलवरिंप ॥ 130 ॥

उ. चीकटि वापुचुन् वॆलुगु सेयुचु सज्जनकोटि नॆल्ल स
श्रीकुल जेयु नीरुचुलु सॆल्वग धर्म समेतलै, निनुन्
वाकुन निट्टि दट्टिदनि वर्णन सेय विधात नेरड-
स्तोकमु नीदु रूपु गलदुं दुदिलेदु परात्पराद्यमै ॥ 131 ॥

आ. कमललोचनुंडु खलुल शिक्षिपंग
बालु सेय नीवु पालु वडिति-
वॆन निक जालु नापन्नुडॆ युन्न
तपसि गावु मीवु धर्मवृत्ति ॥ 132 ॥

व. अनि विनुतिंचि केलु दम्मि दोयि नॊसलं वॊसंगिचि यिट्लनियॆ ॥ 133 ॥

आ. ए नमस्करिंतु निद्रशात्रवधूम, -केतुवुनकु धर्म सेतुवुनकु
विमल रूपमुनकु विश्वदीपमुनकु, जक्रमुनकु गुप्त शक्रमुनकु ॥ 134 ॥

व. अनि मट्रियु निट्लनियॆ ॥ 135 ॥

आ. बिहित धर्ममंदु विहरिंतु नेनियु
निष्टमैन द्रव्य मित्तुनेनि
धरणिसुरुडु माकु दैवतंबगुनेनि
विप्रुनकु शुभंबु वॆलयुगाक ॥ 136 ॥

---

उनकी शय्याओं पर पड़ी हुई सतियाँ प्रभात में उठ (जाग) कर रो पड़ें। १३० [उ.] "तुम्हारी कांतियाँ अंधकार को दूर करते हुए और प्रकाश को दिखाते हुए (और) धर्म समेत होकर सारी सज्जन-कोटि को उच्च बनाती हैं। विधाता वातों में तुम्हारा ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर सकता; तुम्हारा रूप अस्तोक (अधिक) है; वह है, (पर) वह परात्पराद्य होकर-अनंत है। १३१ [आ.] "कमल-लोचन ने खलों को दंड (सज़ा) देने के लिए तुमको मेरे वश किया तो तुम मेरे वश हो गये; फिर भी अब बस है; धर्मवृत्ति से तुम (इस) तपस्वी की रक्षा करो।" १३२ [व.] इस प्रकार प्रार्थना करके और (अपने) दोनों हाथ जोड़कर भौंहों पर रखकर (राजा ने) इस प्रकार कहा— १३३ [आ.] इन्द्र-शात्रव-धूमकेतु को, धर्मसेतु को, विमल रूप को, विश्वदीप को, चक्र को (और) गुप्त शक्र को मैं नमस्कार कर रहा हूँ।" १३४ [व.] फिर इस प्रकार कहा— १३५ [आ.] "अगर मैं विहित धर्म में विहार करता, मुँह माँगा द्रव्य देता [और] धरणिसुर हमारे लिए देवता हों तो [इस]

कं. अखिल गुणाश्रयुडगु हरि
सुखियै नाकॊलुवु वलन जीवकॊंडिनेनिन्
निखिलात्म मयुंडगुटनु
सुखमंदुंगाक भूमिसुरु डिव्वेळन् ॥ 137 ॥

व. अनि यिव्विधंबुनं बॊगडु पुडमिऱेनि वलन मन्निंचि तपसिनि दाहंबु नॊंदिपक रक्कसुलगॊंग चक्रंबु तिरिगि चनियें। अंत दुर्वासुंडु शांति बॊंदि मॆल्लनि मेलि माटल नाराजुनु दीविंचि यिट्लनियें ॥ 138 ॥

म. नरनाथोत्तम ! मेलु सेसिति कदा ना तप्पु मन्निंचि श्री
हरि पादाब्जमुलित मुट्ट गॊलुते याश्चर्यमौ नॆंनचो
नरुवंड्रे निनु बोटि साधुनकु दानै यिच्चुटल गाचुटल
सुरिदिन् नैजगुणंबुलै सरस वच्चुंगादे मित्राकृतिन् ॥ 139 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 140 ॥

म. ऒकमाटॆव्वनि पेरु कर्णमुललो नॊय्यारमै सोकिनन्
सकलाघंबुलु पल्लटिल्लि तॊलगुन् संभ्रांतितो नट्टि स-
त्सुकरुन् मंगळ तीर्थ पादु हरि विष्णुन् देव देवेशुनिन् वा-
रकलंक स्थितिगॊल्चु भक्तुलकु लेदड्डंबु राजाग्रणी ! ॥ 141 ॥

मत्त. तप्पु लोगॊनि चक्रपावक दाहमुं बॆड बापितौ
नॊप्पु नॊप्पु भवद्दयारसमो नरेश्वर ! प्राणमुल्

---

विप्र का शुभ हो। १३६ [कं.] "अखिल गुणों का आश्रय (दाता) हरि सुखी बनकर अगर मेरी सेवा से परवश (सतृप्त) हों (तो) निखिलात्मामय (स्वरूप) होने के कारण (यह) भूमिसुर (ब्राह्मण) आज सुख पावे।" १३७ [व.] इस प्रकार प्रशंसा करनेवाले राजा के कारण क्षमा करके, तपस्वी को न जलाकर, राक्षससंहारी चक्र लौट गया। तब दुर्वासा ने शांति पाकर और अच्छी-अच्छी बातों से उस राजा को आशीष देकर कहा, (तुमने) १३८ [म.] हे नरनाथोत्तम ! मेरे अपराध को क्षमा करके मेरी भलाई की है। श्रीहरि-पादाब्जों की इतनी सेवा करते हो, यह आश्चर्य है। यह गणना करने पर विरल है कि तुम्हारे जैसे साधु को स्वयं देना और रक्षा करता सहज गुण बनकर सरस हो मित्राकृति की तरह मिलें। १३९ [व.] इसके अतिरिक्त १४० [म.] हे राजाग्रणी (राजश्रेष्ठ) ! एक बार जिसका नाम विलास से कर्णों को स्पर्श करने मात्र से सभी अघ (पाप) तितर-वितर होकर संभ्राति से हट जाते है, ऐसे सत्सुकर, मंगलतीर्थपाद, हरि, विष्णु (और) देव-देवेश की, अकलंक स्थिति से सेवा करनेवाले भक्तों को (कुछ भी) प्रतिबंध (अड़चन) नहीं है। १४१ [मत्त.] "(मेरे) अपराध को क्षमा करके, चक्रपावक दाह को (तुमने)

सॅप्प मुन्नुनुवोयि क्रम्मरु जेरॅं धन्युडनैति नी
कॅप्पुडुन् शुभमेनु गोरॅद निक बोयॅद भूवरा ! ॥ 142 ॥

कं. अनिन विनि राजमुख्युडु
मुनिवल्लभु पादमुलकु म्रॉक्कि कडुन् म-
न्नन सेसि यिष्ट भोजन-
मनुवुग बॅट्टिचॅ दृप्तुडय्यॅ नतंडुन् ॥ 143 ॥

व. मरियु नम्मुनींद्रुंडिट्लनियं ॥ 144 ॥

शा. कंटिन् नेटिकि निन्नु नीवचनमुल् कर्णद्वयि म्रीतिगा
विंटिन्नन्नमु गॉटि नीगृहमुनन् वेड्कन् फलंबब्बॅ ने
नॅटि बोयॅद नी चरित्र ममरुल् मर्त्युल् सुखासीनुलै
मिटन् मेदिनि सन्नुतिपगलरीमोदन् नरेंद्राग्रणी ! ॥ 145 ॥

व. अनि चॅप्पि दुर्वासुंडंबरीषुनि दीविंचि कीर्तिचि मिंटि तेरुवुन ब्रह्मलोकं-बुनकुं जनियॅ । मुनीश्वरुंडु वच्चि मगुड जनुवेळकु नॉक्क वत्सरंबु निंडि व्रतंबु परिपूर्णंबैन ॥ 146 ॥

आ. अवनिसुरुडु गुडुव नतिपवित्रंबैन
वंटकंबु भूमिवरुडु गुडिचॅ
दपसि नॅगुलु मान्प दानॅंतवाडनु
हरि कृपामहत्त्वमनुचु दलचि ॥ 147 ॥

---

दूर कर दिया। हे नरेश्वर! भवद्दयारस अच्छा है। (मेरे) प्राण पहले जाकर फिर लौट आये हैं; मैं धन्य बना; मैं सदा तुम्हारी भलाई चाहूँगा; हे भूवर (राजा)! अब मै जाऊँगा"। १४२ [कं.] (मुनि के) ऐसा कहने पर सुनकर (उस) राजमुख्य ने मुनिवल्लभ के चरणों को नमस्कार करके (और) अधिक सत्कार करके इष्ट (वांछित) भोजन अच्छी तरह खिलाया। वह भी तृप्त हुआ। १४३ [व.] फिर उस मुनींद्र ने इस प्रकार कहा, १४४ [शा.] "आज तो मैंने तुमको देखा; कर्णद्वय के लिए प्रीति करनेवाले तुम्हारे वचनों को सुना, तुम्हारे गृह में इच्छानुसार अन्न को ले लिया (भोजन किया); फल मिला। मैं लौट जाऊंगा। हे नरेंद्राग्रणी! अमर और मर्त्य (क्रम से) स्वर्ग तथा मेदिनी पर सुखासीन होकर अब से (तुम्हारी) प्रशंसा करेंगे"। १४५ [व.] इस प्रकार कहकर दुर्वासा अंबरीष को आशीष देकर और (उसकी) प्रशंसा करके आकाश-मार्ग से ब्रह्मलोक को चला गया। मुनीश्वर को आकर फिर जाने में एक वर्ष पूरा हुआ और व्रत के पूर्ण होने पर १४६ [आ.] यह सोचकर कि तपस्वी की आपदा को दूर करने में मैं कौन हूं, यह तो हरि की कृपा का महत्त्व है, अवनिसुर (दुर्वासा) के खाने के बाद अति पवित्र खाद्य

व. मरियुनु ॥ 148 ॥

कं. हरिगोल्चुचुंडु वारिकि, परमेष्टि पदंबु मोदलु पदभोगंबुल्
नरक समम्मुलनु तलपुन, धरणी राज्यंबु तोडि तगुलमु मानेन् ॥ 149 ॥

व. इट्ल विरक्तुंडै ॥ 150 ॥

आ. तनकु सदृशुलैन तनयुल रांविचि
धरणि भरमु वारि दाल्प वंचि
काननंबु सोच्चें गामादि विजयुडै
नर विभुंडु हरि सनाथुडगुचु ॥ 151 ॥

कं. ई यंबरीषु चरितमु, दोयंबुन विन्न जदुव धीसंपन्नुं-
डै युंडुनु भोगपरुं, -डैयुंडुनु नरुडु पुण्युडै युंडु नृपा ! ॥ 152 ॥

## अध्यायमु—६

व. विनुमय्यंबरीषुनकु विरूपुंडुनु गेतुमंतुंडुनु शंभुंडुनु ननुवारु मुव्वुरुगोडुकु-
लंदु गेतुमंतुंडुनु शंभुंडुनु हरि गूर्चि तपंबु सेयु वारै वनंबुनकुं जनिरि।
विरूपुनिकि बृषदश्वुंडुनु बृषदश्वुनकु रथीतरुंडुनु गलिगिरि।
अम्महात्मुनिकि संतति लेकुन्न नंगिरसुडनु मुनींद्रुं डतनि भार्य यंदु ब्रह्म

---

को भूमिवर (अंबरीष) ने खाया, १४७ [व.] और भी १४८ [कं.] इस उद्देश्य से कि हरि की सेवा करनेवालों के लिए परमेष्ठि का पद प्रथम है, पदवी-भोग (ओहदे से संबंधित भोग) नरक के समान है, (अंबरीष ने) धरणीराज्य के प्रति अपना मोह छोड़ दिया। १४९ [व.] इस प्रकार विरक्त होकर १५० [आ.] नरविभु (राजश्रेष्ठ) हरि को अपना नाथ (रक्षक) मानकर, अपने सदृश पुत्रों को बुलवाकर, धरणी का भार उनमें बाँटकर और काम आदि (शत्रुओं को) जीतकर कानन को चला गया। १५१ [कं.] हे नृप (परीक्षित) ! अंबरीष की इस कथा को श्रद्धा के, साथ सुनने पर (या) पढ़ने पर, नर धी (बुद्धि) सपन्न बनेगा, भोगपर (भोगी) वनेगा और पुण्यात्मा बनेगा। १५२

## अध्याय—६

[व.] सुनो, उस अंबरीष के विरूप, केतुमान (और) शंभु नामक तीन पुत्र हुए; उनमें केतुमान (और) शभु हरि को उद्दिष्ट करके तप करने के लिए वन में गये। विरूप का पृषदश्व (और) पृषदश्व का रथीतर पैदा हुए। उस महात्मा (रथीतर) की संतान न होने के कारण अंगिरस नामक मुनीद्र ने उसकी पत्नी में ब्रह्म-तेजोनिधि होनेवाले पुत्रों को पैदा

तेजोनिधुलयिन कौडकुलं गलिगिच्चॆं। वारलु रथीतर गोत्रुलु नांगिरसु-
लनु ब्राह्मणुलुनै यितरुलंदु मुख्युलयि प्रवर्तिल्लिरि अनि चॆप्पि
शुकुंडिट्लनियॆं ॥ 153 ॥

इक्ष्वाकुवंशानुक्रममु

कं. ऒकनाडु मनुवु दुम्मिन
विकलुडु गाकतनि घ्राण विवरमु वॆंटन्
प्रकटयशुं डिक्ष्वाकुं
डकलंकुडु वुट्टॆ रविकुलाधीशुंडै ॥ 154 ॥

सी. इक्ष्वाकुनकु बुत्रुलॊंलमि बुट्टिरि नार्वुरमर विकुक्षियु निमियु दंड-
कुंडु, नातनि पेद्द कॊडुकुलु मुव्वुरार्यावर्तमंदु हिमाचलंबु
विंध्याद्रि मध्यमुर्वी मंडलमु गॊंत येलिरि यिरुवदि येवुरॊक्क
पॊंदुन ना तूर्पु भूमि पालिच्चिरि, यंदरु पडमटि कधिपुलैरि

ते. युन्न नलुवदि येडवुरु नुत्तरोर्वि
दक्षिणोर्वियु गाचिरि तंड्रियंत
नष्टकाश्राद्ध मॊनरितु ननुचु नग्र
सुतु विकुक्षि निरीक्षिंचि शुद्धमैन
मांसखंडंबु दॆम्मनॆं महितयशुडु ॥ 155 ॥

---

किया। वे रथीतर गोत्री तथा आंगीरस ब्राह्मण बनकर (और) अन्यों में मुख्य होकर प्रवर्तित हुए; इस प्रकार कहकर (फिर) शुक यों बोले— १५

इक्ष्वाकुवंशानुक्रम

[कं.] एक दिन मनु ने छींक मारा तो विकल न होकर उसके घ्राण-विवर से प्रकट यशस्वी और अकलंक इक्ष्वाकु, रविकुलाधीश होकर पैदा हुआ। १५४ [सी.] इक्ष्वाकु के विकासयुक्त एक सौ पुत्र ढंग से उत्पन्न हुए; विकुक्षि, निमि तथा दंडक उसके बड़े बेटे थे। (उन) तीनों ने आर्यावर्त में हिमाचल और विंध्याद्रि के मध्य उर्वी-मंडल के कुछ भाग पर पालन किया। पचीस (पुत्रों) ने एक साथ पूर्वी-भूमि पर पालन किया। (और) पचीस (पुत्र) पश्चिम के अधिप हुए। [ते.] शेष सैंतालीस (पुत्रों) ने उत्तर और दक्षिण की उर्वी की रक्षा की। तब महित यशस्वी पिता ने अग्र सुत विकुक्षि का निरीक्षण करके (देखकर) कहा, "अष्टका श्राद्ध करूँगा; शुद्ध मांसखंड लाइए"। १५५ [म.] "ऐसा ही हो

म. अगुगाकंचु विकुक्षि वेट सनि घोरारण्य भूमि दगन्
मृगसंघंबुल जंपि बिट्टलसि तामेनोल्ल बो नाकटन्
सगमै योक्क शशंबु बट्टि तिनि शेषंबैन मांसंबु शी-
घ्रगति दंड्रिकि देच्चि यिच्चें नकलंक स्फूर्ति वर्धिल्लगान् ॥ 156 ॥

त. कुलगुरुंडु वसिष्ठुडंत विकुक्षि कुंदेलु दिट लो-
पल नेरिगि यनर्हमेंगिलि पैतृकं बोनरिपगा
वलदु वीडु दुरात्मकुंडन वानि तंड्रियु वानि जं-
तलनु जेरग नीक देशमु दाटि पोनडिचेंन् वडिन् ॥ 157 ॥

आ. कोडुकु वेडल गोट्टि गुणवंतुडिक्ष्वाकु
डा वसिष्ठु डेमि यानतिच्चे
नदियु जेसि योगियै वनंबुन गळे-
बरमु विडिचि मुक्ति पदमु नोंदे ॥ 158 ॥

चं. जनकुडु मुक्ति केग नयशालि विकुक्षि शशादुडंचु भू-
जनुलु नुतिप नी धरणि चक्र मशेषमु नेलि यागमुल्
गोनकोन चेसें ब्रोति हरि गूर्चि पुरंजयु बुत्रु गांचे बे-
र्कोनें नमरेंद्रवाहुडु गकुत्स्थुडु नंचुनु वानि लोकमुल् ॥ 159 ॥

(जो आज्ञा)" कहकर विकुक्षि शिकार खेलने जाकर, घोरारण्य में बहुत से मृग-संघों को मारकर और अधिक थककर भूख से आधा [दुबला-पतला] बनकर, एक शश (खरगोश) को पकड़ा और [उसे] खाकर शेष मांस को शीघ्र गति से लाकर पिता को दिया (जिससे) अकलंक स्फूर्ति की वृद्धि हो। १५६ [त.] तब कुलगुरु (पुरोहित) वसिष्ठ ने [आत्मा के] अन्दर जान लिया कि विकुक्षि ने खरगोश को खाया और कहा, "जूठन अनर्ह है; पैतृक [कर्म] न करना चाहिए; यह दुरात्मा है।" उस (विकुक्षि) के पिता ने उसको अपने पास न आने दिया तो वह देश को पार करके शीघ्र चला गया। १५७ [आ.] बेटे को निकालकर गुणवान इक्ष्वाकु ने, वसिष्ठ ने जो आज्ञा दी वह सब किया और योगी बनकर वन में जाकर, शरीर का त्याग करके मुक्ति-पद को पाया। १५८ [चं.] जनक के मुक्ति पाने पर नयशाली विकुक्षि ने भूजन (प्रजा) के 'शशाद' (शश को खानेवाला) कहकर प्रशंसा करने पर, इस अशेष धरणी-चक्र का पालन करके अतिशय रूप में हरि के प्रति प्रीति से याग किये। पुरंजय नामक पुत्र को पाया। लोकों ने उसको अमरेंद्रवाह और ककुत्स्थ कहकर बुलाया। १५९ [सी.] कृतयुग के अंत में दितिसुत और अमरों में रण हुआ; उसमें उन राक्षसों के हाथ अमर-वल्लभ ने हारकर हरि से कहा

सी. कृतयुगांतंबुन दिति सुतामरुलकु रणमय्यॆ नंदु ना राक्षसुलकु
नमरवल्लभु डोडि हरि तोड जॆप्पिन जलजनेत्रुडु पुरंजयुनि यंदु
वच्चि नेनुंडॆद वासव ! वृषभंबवै मोवुमनि वलक नमरविभुडु
गोराजमूर्ति गकुत्प्रदेशंबुन नापुरंजयु मोचॆ नंत नतडु

ते. विष्णु तेजंबु दनयंदु विस्तरिल्ल
दिव्य चापंबु चेबट्टि दीर्घ निशित
बाणमुल बूनि वेल्पुलु प्रस्तुतिंप
नंत गालाग्नि चाड्पुन ननिकि नडचॆ ॥ 160 ॥

चं. नडचि शरावळिन् दनुजनाथुल मेनुलु सिवि कंठमुल्
दौडिदौडि द्रुंचि कालपुरि कोवकु गॊंदर बुच्चि गॊंदरन्
वडिनुरगालयंबुन निवासमु सेयग दोलि यंत नू
रडक निशाचरेंद्रुल पुरंबुलु गूल्चॆ बुरंजयाख्यतन् ॥ 161 ॥

व. इव्विधंबुन शशादपुत्रुंडु राक्षसुल पुरंबुलु जयिंचिन कतनं बुरंजयुंडनु
वृषभरूपुंडैन यिंद्रुंडु वाहनं बगुटं जेसि यिंद्रवाहनुंडनु नतनि मूपुरंबॆक्कि
रणंबु सेसिन कारणंबुन गकुत्स्थुंडुनु नन नीमूडु नामंबुलं ब्रसिद्धि कॆक्कि,
दैत्युल धनंबुल निंद्रुनि किच्चॆ नप्पुरंजयुनि पुत्रुंडनेनसुंडतनि पुत्रुंडु पृथुंडु
पृथुकॊडुकु विश्वगंधुंडु विश्वगंधुनकु नंदनुंडु चंद्रुंडु। चंद्रसुतुंडु यवनाश्वुंडु
यवनाश्वतनूभवुंडु शवस्तुंडतंडु शावस्ति नाम नगरंबु निर्मिचॆ। शवस्त

---

तो जलजनेत्र ने कहा, "वासव, पुरंजय में आकर मैं रहूँगा; तुम वृषभ बनकर ढोओ।" अमरविभु ने गोराजमूर्ति (वृषभ) के ककुत्प्रदेश पर उस पुरंजय को ढोया। [ते.] तब वह विष्णु का तेज उसमें विस्तृत होने पर, दिव्य चाप को कर में लेकर दीर्घ-निशित बाणों को लेकर, देवताओं के [अपनी] प्रशंसा करने पर, काल की अग्नि की तरह युद्ध के लिए गया। १६० [चं.] जाकर, शरावली से दनुजनाथों की तनुओं को चीरकर, कंठों को जल्दी-जल्दी काटकर, कुछ को काल-पुरि भेजकर, कुछ को उरगालय में रहने भेजकर और तब भी तृप्त न होकर पुरंजयाख्य हो निशाचरेंद्रों के पुरों का ध्वंस कर डाला। १६१ [व.] इस प्रकार शशाद-पुत्र राक्षसों के पुरों को जीतने के कारण पुरंजय, वृषभ रूपी इंद्र का [अपने] वाहन बनने के कारण इंद्रवाहन, उसके (इंद्र के) ककुत्स्थ (ककुद) पर चढकर युद्ध करने के कारण ककुत्स्थ, इन तीनों नामों से प्रसिद्ध होकर, उसने दैत्यों के धनों को (छीनकर) इंद्र को दिया। उस पुरंजय का पुत्र अनेनसुत (हुआ); उसका पुत्र (था) पृथु; पृथु का बेटा विश्वगंध (था); विश्वगध का नंदन (था) चद्र; चंद्र का सुत (था) यवनाश्व; यवनाश्व

तनयुंडु बृहदश्ववुंडु बृहदश्व तनूजुंडु गुवलयाश्वुंडु। आ नरेंद्रचंद्रुडु ॥ 162 ॥

कं. लावु मॅंडसि यिरवदि यॉक-
वेवुरु नंदनुलु दानु वीरुडतडु भू-
देवु डुदंकुडु वनुप दु-
रावहुडै चंपे दुंदु नावहमंदुन् ॥ 163 ॥

व. आदि कारणंबुगा दुंदुमारुंडन नेगडॆ। नय्यसुरमुखानलंबुन गुवलयाश्वकुमारुलंदरु भस्मंबैरंदु दृढाश्वुंडुनु गपिलाश्वुंडुनु भद्राश्वुंडुनु ननुवारलु मुग्गुरु सिक्किरंदु दृढाश्वुनकु हर्यश्वुंडुनु हर्यश्वुनकु निकुंभुंडुनु निकुंभुनकु बर्हिणाश्वुंडुनु बर्हिणाश्वुनकु गृताश्वुंडुनु गृताश्वुनकु सेनजित्तुनु सेनजित्तुनकु युवनाश्वुंडुनु जनिंचिरि। अय्युवनाश्वुंडु गोडुकुलु लेक नूर्वुरु भार्यलुं दानुनु निव्वॆर पडियुंड नाराजुनकु मुनुलु गृप चेसि यिंद्रुनि गूर्चि संतति कॊरकु नैंद्रयागंबु सेयिंचिरि। अंदु ॥ 164 ॥

सी. भूमीशु मार्यकु बुत्र लाभमुनकै पोयु तलंपुन भूमिसुरुलु
जलमुलु मंत्रिंचि जलकलशमु दाचि नियमंबुतो गूडि निद्रवोव
धरणीश्वरुडु पेरु दप्पितो ना रात्रि धृति लेक यज्ञ मंदिरमु जॊच्चि
या नीरु द्राविन नंत मेल्कनि वार. लॆव्वडु द्रावॆ नीरॆंदु बोयॆ

का तनूभव (हुआ) शवस्त। उसने शावस्ति नामक नगर का निर्माण किया। शवस्त का तनय था बृहदश्व; बृहदश्व का तनूज था कुवलयाश्व। उस नरेन्द्रचन्द्र ने १६२ [कं.] अधिक बल से चमक (प्रसिद्ध बन) कर, इक्कीस हजार नंदनों के साथ, वह वीर [विलसित] था। भूदेव (ब्राह्मण) उदंक के भेजने पर दुरावह बनकर, अमराबंधु (अमर+ अबधु = राक्षस) दुंदु को मार डाला। १६३ [व.] इस कारण [उसने] दुंदुमार नाम से उन्नति (ख्याति) पायी। उस असुर मुख के अनल से कुवलयाश्व [राजा] के सब कुमार (पुत्र) भस्मीभूत हुए। उनमें दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व नामक तीन बच गये। उनमें दृढाश्व का हर्यश्व, हर्यश्व का निकुंभ, निकुंभ का बर्हिणाश्व, बर्हिणाश्व का कृताश्व, कृताश्व का सेनजित्, सेनजित् का युवनाश्व पैदा हुआ। उस युवनाश्व के पुत्र न हुए तो [उसकी] एक सौ पत्नियाँ [और] वह दुःखित होकर रहे तो उस राजा पर कृपा करके मुनियों ने इन्द्र के प्रति, संतान के लिए, ऐंद्रयाग करवाया। उसमें १६४ [सी.] भूमीश की भार्या को पुत्र-लाभ कराने की इच्छा से, भूमिसुर जल को मंत्रपूत करके जल-कलश को छिपाकर नियमपूर्वक सो गये तो धरणीश्वर ने बड़ी प्यास से उस रात को धृति (धैर्य) न रहने से यज्ञ-मंदिर में प्रवेश करके उस जल को पिया; इसके बाद वे (भूमिसुर)

आ. ननुचु राजु द्रावुटंतयु भाविंचि
यॆरिगि चोद्यमंदि यीश्वराज्ञ
यॆव्वडोपु गडव नीश्वरुनकु नम-
स्कारमनुचु नेदि कार्यमनुचु ॥ 165 ॥

व. वारलु दुःखिचुचुंडु नंत गॊंत तडवुनकु युवनाश्वुनि कडुपु व्रक्कलिचुकॊनि चक्रवर्ति चिह्नंबुलु गल कुमारुंडु जन्मिंचि तल्लिलेनि कतंबुन गडुपुनकु लेक एड्चुचुंड निद्रुंडु वच्चि शिशुवुनकु नाकलि दीरुकॊरकु वानि नोटं दन व्रेलिडिनं द्राविन कतंबुन वानि पेरु मांधात यनि निर्देशिंचि चनियॆ नित्तिबधंबुन ॥ 166 ॥

आ. कडुपु वगुल मुद्दु कॊडुकु जन्मिंचिन
दीरडय्यॆ दंड्रि देव विप्र
करुण यट्लकादॆ कडिदि दैवमु लावु
गलुगु वाडु व्रतुकु गाक चॆडुनॆ ॥ 167 ॥

व. इट्लु व्रतिकि युन्न युवनाश्वुंडु गॊंतकालंबुनकु दपंबु सेसि सिद्धि बॊंदॆ नंत ॥ 168 ॥

सी. पडमट बॊडमॆंडु वाल चंद्रुनि माड्कि बूट पूटकु बृद्धि बॊंदॆ वालु-
डल्लन परिपूर्ण यौवनारूढुडॆ रावणादि रिपुल राजवरुल
दंडिंचि तनुव्रस दस्यु बंचु सुरॆंद्रु डॊंकिप शूरुडॆ यखिल देव
मयु नतींद्रियु विष्णु माधबु धर्मात्मु नजुनि यज्ञाधीशु नात्मगूःच

---

जागकर कहने लगे कि वह कौन है जिसने [मंत्रपूत] जल को पिया ? जल कहाँ चला गया ? [आ.] उन्होंने जान लिया कि राजा ने उस जल को पिया और चकित होकर कहा कि ईश्वर की आज्ञा का कौन तिरस्कार कर सकता है ? ईश्वर को नमस्कार है। यह सोचते हुए कि अब क्या कार्य है (क्या करना चाहिए)। १६५ [व.] जब वे दुःखित हुए तब कुछ समय के बाद युवनाश्व के पेट को फाडकर चक्रवर्ति-चिह्न युक्त कुमार का जन्म हुआ। माँ के न रहने से जब [वह शिशु] स्तन्य के लिए रोने लगा तो इन्द्र आया और शिशु की भूख को मिटाने के लिए उसके मुँह में अपनी उँगली रखी तो [उस शिशु ने] उसे पिया और इस कारण उसका नाम मांधाता निर्दिष्ट करके [इंद्र] चला गया। इस प्रकार १६६ [आ.] पेट फटकर लाडले पुत्र का जन्म होने पर भी पिता की मृत्यु न हुई। देवताओं तथा विप्रों की करुणा ऐसी ही है न। दैव का बल जिस पर कठिन (बलवान) होता है वह जिन्दा न रहता तो क्या मर जाता ? १६७ [व.] इस प्रकार सजीव युवनाश्व ने कुछ काल तक तप करके सिद्धि को प्राप्त किया। तब १६८ [सी.] पश्चिम की ओर निकलनेवाले

ते. चेसॅ ग्रतुवुलु भूरि दक्षिणल निच्चि
द्रव्य यजमान विधि मंत्र धर्मयज्ञ
काल ऋत्विक्प्रदेश मुख्यंबुलॅल्ल
विष्णुरूपंबुलनुचु भाविंचि यतडु ॥ 169 ॥

कं. बलिमि नडंचुचु नरुलं
जलिवॅलुगुन् वेडिवॅलुगु जनुचोट्लॅल्लन्
जलरुह नयनुनि करुणनु
जॅलुवुग मांधात येलॅ सिरि निंडारन् ॥ 170 ॥

व. अंत नाराजुनकु शर्तबिंदुनि कूतुरगु बिंदुमतियंदु बुरुकुत्सुंडु नंबरीषुंडुनु मुचुकुंदुंडुनु ननु वारु मुग्गुरु गॉडुकुलु नेबंड्रु, गूतुलुनु जनिर्यिचि पॅरुगु चुन्नयॅड ॥ 171 ॥

सी. यमुनाजलमु लोन नधिकुडु सौभरि तपमु सेयुचु जलस्थलमु नंदु
बिल्ललु दन प्राण वल्लभयुनु गूडि मॅलग नानंदिचु मीनराजु
गनुगॉनि संसारकांक्षियै मांधात नॉक कन्य नडुग नृपोत्तमुंडु
दरुणि नित्तुनु स्वयंवरमुन जेकॉनुमनवुडु ननु जूचि यौवनांगि

आ. येल मुसलि गोरु निट्टट्टु वडकॅडि
वाड जाल नरसिनाड नॉंडल

---

बाल-चंद्र की तरह (वह) वालक दिन-दिन प्रवर्द्धमान हुआ। कालक्रमेण परिपूर्ण यौवनारूढ़ होकर रावण आदि रिपुओ को और राजवरों (श्रेष्ठों) को दंड देकर, सुरेंद्र के अपने को सदस्य कहने पर, शूर बनकर अखिल देवमय, अतींद्रिय, विष्णु, माधव, धर्मात्मा, अज तथा यज्ञाधीश पर मन लगाकर, [ते.] भूरि दक्षिणाएँ देकर, द्रव्य, यजमान, विधि, मंत्र, धर्म, यज्ञ, काल, ऋत्विक् और प्रदेश मुख्यों (आदि) को विष्णु के रूप मानकर, उसने ऋतु किये। १६९ [कं.] जहाँ-जहाँ चंद्रमा और सूरज का प्रकाश पहुँचता है, वहाँ-वहाँ (अपने) बल से नरों को दबाते हुए जलरुह-नयन (विष्णु) की करुणा से श्रीयुक्त-होकर मांधाता ने राज्य किया। १७० [व.] तब उस राजा के शर्तबिंदु की बेटी बिंदुमति से पुरुकुत्स, अंबरीष और मुचिकुंद नामक तीन पुत्र और पचास पुत्रिकाएँ पैदा होकर बढ़ रही थी; उस समय १७१ [सी.] यमुना के जल में अधिक (बड़ा) तप करते हुए सौभरि ने जल-स्थल मे अपने बच्चों और प्राण-वल्लभा (पत्नी) के साथ रहते हुए आनंदित होनेवाले मीन-राजा को देखकर और संसार (गृहस्थ-जीवन का)-कांक्षी बनकर, मांधाता से एक कन्या को माँगा तो नृपोत्तम ने कहा कि तरुणि को दूंगा, स्वयंवर में ले लो। तब "[मुझे देखकर कोई भी] यौवनांगी [मुझ जैसे] बूढ़े की क्यों इच्छा करेगी; [आ.] डाँवाँडोल

जिगियु बिगियु लेनि शिथिलुंड गर्गिप
बाल दिगिचि कॊनु नुपायमॆट्लु ॥ 172 ॥

व. अदियुनुंगाक ॥ 173 ॥

आ. बाल पुव्वुबोडि प्रायंपु वानिनि
जॆन्नु वानि धनमु जेर्चुवानि
मरगॆनेनि कॊंत मरगु गाकॆंदिरि द-
न्नॆरिगि मुसलि तपसि नेल मरगु ॥ 174 ॥

व. अनि विचारिंचि सौभरि दन तपोबलंबुनं जेसि मुसलितनंबु विडिचि यॆलप्रायंपु गॊमरुंडयि यलंकरिंचुकॊनि मंदट निलुवं बडिन मांधातयु गन्नियल नगरु गाचिकॊनि युन्न वारिकि सॆलवु सेसिन वारम्मुनींद्रुनि नाराजपुत्रिकलुन्न यॆडकुं गॊनिपोयि चूपिन ॥ 175 ॥

उ. कोमलुलार ! वीडु नलकूबरुडो मरुडो जयंतुडो
येमरि वच्चॆं वीनि दडवेल वरिंतुमु नेम येम यं-
चा मुनिनाथु जूचि चलितात्मिकलै सॊरिदिन् वरिंचिरा
भामिनुलंदरुन् गुसुमबाणुडु गीर्यनि घंट क्रेयगन् ॥ 176 ॥

व. इट्लु राजकन्यकल नंदरं जेकॊनि सौभरि निजतपःप्रभावंबुन ननेक लीला विनोदंबुल गल्पिंचि ॥ 177 ॥

---

हो रहा हूँ, बहुत सोच चुका हूँ; शरीर का गठन चला (ढीला पड़) गया, शिथिल बन गया हूँ; बाला को पिघलाकर उसे आकर्षित करने का उपाय क्या है ? १७२ [व.] इसके अतिरिक्त १७३ [आ.] बाला जो युवती है युवक को, सुंदर [पुरुष] को और धन देनेवाले को चाहेगी तो कुछ चाहेगी ही; (अपने) सामने, स्वयं जानते हुए, बूढ़े तपस्वी को क्यों चाहेगी !" १७४ [व.] इस प्रकार सोचकर सौभरि अपने तपोबल से बुढ़ापे को छोड़कर, नवयुवक बनकर और अलंकृत होकर सामने खड़ा रहा तो मांधाता ने (अपनी) कन्याओं के नगर (अंतःपुर) की रक्षा करनेवालों को आज्ञा दी तो उन्होंने उस मुनींद्र को उस जगह पर ले जाकर (राज-कुमारियों को) दिखाया तो १७५ [उ.] उन सभी भामिनियों ने यों कहते हुए कि "कोमलियो ! यह या तो नलकूबर होगा या मर (मन्मथ) होगा या जयंत होगा; भूल से (इधर) आया; देरी क्यों ? इसको हम चाहेंगी, हम चाहेंगी" —उस मुनिनाथ को देखकर और चलितात्मा [वाली] बनकर उसे क्रम से ऐसे चाहा मानो कुसुम-बाण ने उनको मोहित किया हो। १७६ [व.] इस प्रकार सभी राजकन्याओं को लेकर सौभरि ने निज तपःप्रभाव से अनेक लीला-विनोदों की कल्पना करके १७७ [सी.] गृहराजों मे (श्रेष्ठ गृहों में), कृतक (बनावटी) अचलों में,

सी. गृहराजमुलयंदु गृतकाचलमुलंदु गलुवलु विलसिल्लु कोलकुलंदु
गलकंठ शुक मधुकर निनादमुलचे वर्णनीयमुलैन वनमुलंदु
मणिवेदिकलयंदु महनीय पर्यंक पीठलीला शैल बिलमुलंदु
शृंगारवतुलगु चेलुवलु पलुवुरु तन पंपु सेय सुस्थलमु लंदु

ते. वस्त्रमाल्यानुलेप सुवर्णहार
भूरि संपद निष्टान्न भोजि यगुचु
बूट पूटकु नोक्कवित पोलुपु दाल्चि
राजकन्यल नंदरु रतुल देल्चे ॥ 178 ॥

कं. पंकरुह राजमुखुलकु, नोक्कडु मगडय्यु दनियकुंडे मुनींद्रुं-
डेक्कुडु घृतधारलचे, नक्कजमै तृप्ति लेनि यनलुनि भंगिन् ॥ 179 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 180 ॥

कं. आरामंबुन् मुनिवरु, डारामल तोड बहु विहारमयुंडै
गारामुल दन किट्टट्ट, पोरामुल जेसि कोन्नि प्रोद्दुलु पुच्चेन् ॥ 181 ॥

व. अंत नोक्कनाडु मांधातृ मेदिनो वल्लभुंडु मुनीश्वरुंडेदु बोये गूतु लेक्कड नलजडि पडुचुन्न वारलो यनि तलंचि वेदक वच्चि योक्क महागहनंबुन मणिमय सौधंबुलं जक्रवर्तियु बोले ग्रीडिंचुचुन्न तापस राजुंगनि संतसिंचि वेरगुपडि मन्ननलं बोंदि मेल्लन कूतुलं बोडगनि सत्करिंचि यिट्लनिये ॥ 182 ॥

---

विकसित कमलों के सरोवरों मे, कलकठ-शुभ-मधुकर-निनादो से वर्णनीय वनों में, मणि-वेदिकाओ में, महनीय-पर्यक-पीठ-लीलाशैल-बिलों में और ऐसे स्थलों में जहाँ वह अनेक शृंगारवती सखियो को भेजा करता था, [ते.] वस्त्रमाल्यानुलेप सुवर्णहार भूरि संपदाओ के साथ इष्टान्नभोजी बनाते हुए एक-एक दिन एक-एक आश्चर्यकर लीला का प्रदर्शन करते हुए सभी राजकन्याओं को रतियों से तृप्त किया। १७८ [कं.] कई राजमुखियो के लिए (चंद्रमुखियों के लिए) एक ही पति होकर भी, अनेक घृतधाराओं से आश्चर्य प्रकट करते हुए तृप्त न होनेवाले अनल की तरह वह मुनींद्र तृप्त न हुआ। १७९ [व.] इस प्रकार १८० [कं.] उस मुनिवर ने उस आराम (वन) मे उन रामाओं (स्त्रियों) के साथ बहुविहारमय होकर प्रेमातिशय से स्नेह करते हुए कुछ दिन बिताए। १८१ [व.] इसके बाद एक दिन यह सोचते हुए कि मुनींद्र कहाँ गया और पुत्रियाँ कहाँ घबराती हुई पड़ी हुई हैं, मांधातृ-मेदिनीवल्लभ ढूँढ़ते हुए आया, एक महान गहन (वन) में मणिमय सौधों में चक्रवर्ति की तरह क्रीड़ा करते हुए तापस-राजा को देखा, संतुष्ट हुआ और आश्चर्य (चकित) हुआ। [उनकी] प्रशंसा पाकर धीरे-धीरे [अपनी] पुत्रियों को देखा और

कं. नातोड्डुलार ! मीपति, मीतोड्डे पनुल यॅंडल मेले यनुडुन्
नातोडिदॅ नातोडिदॅ, ताता मेलनुचु ननिरि तरुणुलु वरुसन् ॥ 183 ॥

व. अंत गौतकालमुनकु बहुभार्या चयुँडगु, सौभरि येकांतंबुन दन्नु दान चिंतिंचु कॉनि मीन मिथुनसंग दोषंबुनं गापुरंबु दनकु नग पट्टॅ यॅरिंगि पश्चात्तापंबुन निट्लनियॅ ॥ 184 ॥

म. उपवासंबुल डय्युटो विषयसंभोगंबु वर्जिंचुटो
तपमुं बूनि चरिंचुटो हरिपद ध्यानंबुनन् निल्चुटो
यपलापंबुन नेल पॉदिदिति हतंबय्यॅ दपंबॅल्ल, नी
कपट स्त्री परिरंभमुल् मुनुलकुं गैवल्य संसिद्धुले ॥ 185 ॥

चं. मुनियट तत्त्ववेदिनट मोक्षम कानि सुखंबु लॅव्वियुं
जनवट कांत लॉप्परट सौधचयंबट वासदेशमुं
दनयुलु नेडुवेलट निदानमु मीन कुटुंबि सौख्यमुं
गनुटट चॅल्लरे नगवु गाक महात्मुलु सूचि नॅत्तुरे ॥ 186 ॥

आ. तपमु सेयुवाडु तत्वज्ञुडगुवाडु, नॅलमि मोक्षमिच्छयिंचु वाडु
नेकतंबु विडिचि येपड नेरडु, कापुरंबु सेयु करटि तपसि ॥ 187 ॥

---

[उनका] सत्कार करके इस प्रकार कहा, १८२ [कं.] "बेटियो ! तुम लोगो का पति तुम लोगों मे से किसके काम से तुम्हारी प्रशंसा करता है ?" [उन] तरुणियो ने एक-एक करके कहा कि हे तात (पिता) ! मेरे काम से, मेरे काम से (वे सतुष्ट होते हैं) । १८३ [व.] इस प्रकार कुछ काल बीत जाने पर बहुभार्याचारी सौभरि ने एकांत मे अपने आप में चिंतित होकर और यह जानकर कि मीन-मिथुन-संग-दोष से गृहस्थी दिखाई पड़ी, पश्चात्ताप से यों कहा, १८४ [म.] "उपवासो से कष्ट सहना, विषय-संयोग को वर्जित करना, तप को स्वीकार कर चलना या हरिपदध्यान में रहना (मैं) क्यों भूल गया ? (मेरा) सारा तप हत (नष्ट) हो गया। क्या ये कपट स्त्री-परिरंभ मुनियों के लिए कैवल्य-संसिद्ध (-सिद्धिप्रद) हैं ? १८५ [चं.] मुनि है, तत्त्ववेदी है, मोक्ष के अतिरिक्त (अन्य) किसी सुख की इच्छा न रखनेवाला है और कांताओं की इच्छा न रखकर (क्यों न रहा ?) सौध-चय में (रहते हुए) वास देश में पाँच हज़ार पुत्र (हैं); (इसका) निदान (असली कारण) मीन परिवार के सुख को देखना (ही है), क्या (ये सब) मेरे लिए योग्य है ? जग-हँसाई नही होगी ? क्या महात्मा लोग (मुझे) देखकर (मेरी) प्रशंसा करेगे ? १८६ [आ.] "तप करनेवाला, तत्त्वज्ञ (और) मोक्ष की बड़ी इच्छा रखनेवाला एकांत को छोड़ नही सकता। मूर्ख तपस्वी ही गृहस्थ जीवन बिताता है।" १८७

व. अनि दुःखिंचि तन्नुंदान निंदिंचुकॊनि, तन वेडबंबु विवेकिंचुचु निह्-परसाधकुंडै कापुरंबु विडिचि सतुलुं दानुनु वानप्रस्थ धर्मंबुन नडविकिजनि घोर तपंबु सेसि शरीरंबु गुर्दियिंचि यग्निसहितुंडै परब्रह्मंबु सॊच्चॆं। अंत ॥ 188 ॥

कं. मुनिपति वनमुन करिगिन
वनितलु दोनरिगि प्राणवल्लभुगतिकिं
जनिरि वॆनुतविलि विडुवक
ननलमु सन शिखलु निलुव करिगिन भंगिन् ॥ 189 ॥

## अध्यायमु—७

व. अंत मांधात पॆद्दकॊडुकगु नंबरीषुनि दत्पितामहुंडगु युवनाश्वुंडु दनकु बुत्रुंडु गावलयुननि कोरि पुच्चुकॊनियॆ। अय्यंबरीषुनकु यौवनाश्वुंडतनिकि हारितुंडु जनियिंचिरि। अदि कारणंबुन नंबरीष यौवनाश्व हारितुलु मांधातृ गोत्रंबुनकु व्रवरुलैरि। मांधात रॆंडव कॊडुकु पुरुकुत्सुडतनि नुरगलोकंबुनकु गॊनिपोयि नाग कुमारुलु दम चॆल्लॆलि नर्मदयनु कन्यकनु विवाहंबु चेसिरि। पुरुकुत्सुंडु नक्कड ननेक गंधर्वनाथुल वधिंचि

[व.] इस प्रकार दुःखित होकर अपनी निंदा करके अपने अज्ञान के बारे में सोचते हुए इह-परसाधक बनकर, गृहस्थी को छोड़कर, सती और स्वयं वानप्रस्थ धर्म से जगल में जाकर घोर (कठिन) तपस्या करके और शरीर का निग्रह करके अग्नि-सहित होकर परब्रह्म मे लीन हो गया। तव १८८

[कं.] मुनिपति के वन में जाने पर (उसकी) वनिताएँ (भी) उसके पीछे जाकर, फिर वापस न आकर, इस प्रकार प्राणवल्लभ के रास्ते से गईं जिस प्रकार अनल के जाने पर शिखाएँ (ज्वालाएँ) भी न ठहर कर (पीछे न रहकर) चली जाती हैं। १८९

## अध्याय—७

[व.] इसके बाद मांधाता के ज्येष्ठ पुत्र अंबरीष को, उसके पिता युवनाश्व ने यह इच्छा प्रकट कर कि मेरे लिए एक पुत्र चाहिए, ले लिया। उस अबरीष के यौवनाश्व और उसके हारित पैदा हुए। इस कारण अंबरीष, यौवनाश्व और हारित मांधातृ-गोत्र के प्रवर बन गये। मांधाता का द्वितीय पुत्र पुरुकुत्स था। उसको उरग-लोक में ले जाकर नाग-कुमारों ने अपनी छोटी बहिन नर्मदा नामक कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। पुरुकुत्स (तो) वहाँ अनेक गंधर्वनाथों का वध करके ऐसा वर

तन नागलोक संचरणंबु दलंचु वारिकि नुरग भयमु लेकुंड वरंबु वडसि तिरिगि वच्चॆ । आ पुरुकुत्सुनकु द्रसदस्युंडु, द्रसदस्युनकु ननरण्युंडु, नायनरण्युनकु हर्यश्वुंडु, हर्यश्वुनकु नरुणुंडु, नरुणुनकु द्रिवंधनुं,डु द्रिबंधनुनकु सत्यव्रतुंडुनु जन्मिचिरि । आ सत्यव्रतुंड त्रिशंकुंडनं बरगॆनु । अतंडु ॥ 190 ॥

सी. गुरु शापवशमुन गूलि चंडालुडै यनघात्मु गौशिकु नाश्रयिंचि
यतनि लावुन दिविजालयंबुन केग मन्निपकमरुलु मरल द्रोव्व
दलक्रिदुगा बडि दैन्यंबुतो राग गौशिकु डॆप्पटि घनत मॆरसि
निलिपॆ नाकसमुन नेडु नुन्नाडु त्रिशंकुडातडु हरिश्चंद्रु गनियॆ

ते. ना हरिश्चंद्रु गौशिकुडर्थि जेरि
याग दक्षिणामिषमुन नखिल धनमु
गॊल्लगॊनि मोद गुलहीनु गॊलुव वॆट्ट
बॊंक कलजाडि बॊंदॆ ना भूवरुंडु ॥ 191 ॥

व. इट्लु विश्वामित्रुंडु हरिश्चंद्रु नॆगुल पॆट्टुट विनि वसिष्ठुंडु विश्वामित्रुनि गृध्रम्मवु गम्मनि शपिचॆ । विश्वामित्रुंडुनु वसिष्ठुनिबकंबवु कम्मनि शपिचं । पक्षिरूपुलय्युनु वॆरंबु मानक यय्यिरुवुरुनु युद्धंबु सेसिरि । अंत

---

पा लिया कि उसके (पुरुकुत्स के) नागलोक में संचरण करने की चिंता करनेवालों को उरग-भय न रहे; (इसके बाद) वह लौट आया। उस पुरुकुत्स के त्रसदस्य, त्रसदस्य के अनरण्य, अनरण्य के हर्यश्व, हर्यश्व के अरुण, अरुण के त्रिबंधन और त्रिबंधन के सत्यव्रत पैदा हुए। वही सत्यव्रत त्रिशंकु नाम से विदित हुआ। वह १९० [सी.] गुरु के शापवश (नीचे) गिरकर चंडाल बना और अनघात्मा कौशिक के आश्रय में जाकर उसके बल से दिविजालय को गया। (लेकिन) अमरों ने उसे स्वीकार न किया और नीचे ढकेल दिया। वह सिर नीचे और पाँव ऊपर रखकर (उलटा) गिर पड़ा। वह दैन्य के साथ आया तो कौशिक ने सदा की तरह अपने बड़प्पन के प्रकाशमान होने पर (उस त्रिशंकु को) आकाश पर ठहरा दिया। आज (भी) त्रिशंकु वर्तमान है। उसने हरिश्चन्द्र को देखा (पाया)। [ते.] उस हरिश्चन्द्र के पास जाकर कौशिक ने यागदक्षिणा-मिष से (हरिश्चन्द्र का) सारा धन लूट लिया था। इसके बाद कुलहीन की सेवा करने नियमित किये जाने पर भी झूठ न बोलकर उस भूवर ने अशान्ति (मानसिक क्लेश) पायी। १९१ [व.] इस प्रकार विश्वामित्र का हरिश्चन्द्र को पीड़ा देना सुनकर, वसिष्ठ ने विश्वामित्र को शाप दिया कि वह गृध्र बन जाय। विश्वामित्र ने भी वशिष्ठ को शाप दिया कि वह

हरिश्चंद्रुंडु पुत्रुलुलेक नारदु नुपदेशंबुन वरुणोपासनंबु नति भक्तितो जेय ना वरुणुंडु प्रत्यक्षंबैन नतनिकि म्रोक्कि यिट्लनियें ॥ 192 ॥

आ. वरुणदेव ! नाकु वर वीर गुणमुल
कॉडुकु पुट्टॅनेनि कॉडुकुबट्टि
पशुवु जेसि नीवु परिणमिंपग वेल्तु
गॉडुकु नीगदय्य कॉसरुलेक ॥ 193 ॥

व. अनि पलिकिनं गुमारुंडु गलिगॅडु मनि वरंबिच्चि वरुणुंडु सनियें। अंत हरिश्चंद्रुनकु वरुण प्रसादंबुन रोहितुंडनु कुमारुंडु जन्मिचॅ। वरुणुंडुनु हरिश्चंद्र कुमारु नुद्देशिचि ॥ 194 ॥

सी. पुरिटि लोपल वच्चि पुत्रु वेलुवुम न्नबुरुडु वोयिन गानि पॉसगदनियॅ
बलु राकमुन्नु वच्चि बालु वेलुवुमन्न बंड्लु कुंट नभाव्युडनियॅ
बंड्लु राजूच्चि डिभकुनि वेलुवुमन्न बडिपंड्लु रामि नभाव्यु डनियॅ
बडि पंड्लु वॉडमिन गॉडुकु वेलुवुमन्न बोरुल कॉदवक पोसगदनियॅ

आ. दॉडरि यिट्लु गॉडुकु तोडि मोहंबुन
ब्रोद्दु गडुपुचुंडॅ भूवरुंडु
दंड्रि तलपु कॉलदि दनलोन जिंतिचि
यिटनुंड कडवि केगॅ गॉडुकु ॥ 195 ॥

---

बक बन जाय। पक्षी के रूप प्राप्त करके भी वैर को न छोड़कर, उन दोनों ने युद्ध किया। इसके बाद हरिश्चन्द्र के पुत्र न होने से नारद के उपदेश पर वरुण की उपासना बड़ी भक्ति के साथ करने पर, वह वरुण प्रत्यक्ष हुआ तो उसकी वन्दना करके इस प्रकार बोला। १९२ [आ.] हे वरुणदेव ! अगर मेरे वर-वीर-गुण-युक्त पुत्र पैदा होगा तो पुत्र को पशु बनाकर जिससे तुम खुश हो जाओ, उसका होम कर (बलि के रूप में दे) दूंगा। बिना संशय किये (मुझे एक) बेटे को दे दो। १९३ [व.] ऐसा बोलने पर (उसके एक) पुत्र हो जाने का वर देकर वरुण चला गया। इसके बाद वरुण के प्रसाद से हरिश्चन्द्र के रोहित नाम के पुत्र का जन्म हुआ। वरुण ने हरिश्चन्द्र कुमार को उद्दिष्ट करके। १९४ [सी.] सूतक के काल में आकर पुत्र को बलि देने के लिए माँगा तो (हरिश्चन्द्र ने) कहा कि सूतक के टल जाने तक (पुत्र को देना) न होगा। दाँतों के आने के पहले आकर बालक का हवन कर देने के लिए माँगा तो (हरिश्चन्द्र ने) कहा कि दाँतों के न होने से अभाव्य (अयोग्य) है। दाँतों का आना देखकर बालक की बलि देने के लिए माँगा तो (हरिश्चन्द्र ने) कहा कि बड़ों के लिए उपयुक्त न होने से (अब) अच्छा न लगता। [आ.] सप्रयत्न अपने पुत्र पर होनेवाले मोह के कारण भूवर (इस प्रकार)

व. इट्लु वनंबुनकुं जनि शरशरासन धरुंडयि रोहितुंडु दिरुगुचुंडॅ। वरुणग्रस्तुंडै हरिश्चंद्रुंडु महोदरव्याधिचे बीडितुंडुगा नुंडुट विनि पुरंबुनकुं दिरिगि रागमॅंकिप निंद्रुंडु मुसलि तपसियै वच्चि यिट्लनियॆं ॥ 196 ॥

आ. पुण्य भूमुलरुगु पुण्यतीर्थंबुल
ग्रुंकु पुण्यजनुल गोरि चूडु
पुण्यकथलु विनुमु भूपाल पुत्रक !
मेलु गलुगु निंटि मेर वलदु ॥ 197 ॥

व. अनि यिट्लु मर्गिडिचिनं दिरिगि चनि रोहितुंडोक्कयेडव्वनंबुनं दिरिगि क्रम्मर जनुदेर, निंद्रुंडु वच्चि तोंटि यट्ल निवारिंचॆ। इव्विधंबुन ॥ 198 ॥

सी. ऐदेंड्लु मरलिचॆ नमरेंद्रुडाबालु नारवयेट दा नडवि नुंडि
यिंटिकि वच्चुचु नॅलमि नजीगर्तु मध्यम पुत्र सम्मान्य चरितु
घनु शुनश्शेफुनि गोनि याग पशुवुग ना हरिश्चंद्रुन कातडिच्चॆ
बुरुष मेधमु सेसि भूपाल वर्युडु वरुणादि निखिल देवतल दनिपॆ

ते. होत कौशिकु डध्वर्यु डॉनर भृगुडु
ब्रह्म जमदग्नि सामंबु पाडुवाडु

---

दिन बिताता था। अपने पिता की इच्छा के बारे में अपने में चिंता करके [वह] बेटा घर पर न रहकर जंगल में [चला] गया। १९५ [व.] इस प्रकार वन में जाकर रोहित शरशरासन-धर (-धारी) होकर घूम रहा था। वरुणग्रस्त होने के कारण हरिश्चन्द्र का महोदरव्याधि से पीड़ित होना सुनकर (रोहित ने) पुर में आने का प्रयत्न किया (तो) इन्द्र वृद्ध तपस्वी बनकर आया और इस तरह बोला— १९६ [आ.] हे भूपालपुत्र ! पुण्यभूमियों में जाओ; पुण्यतीर्थों में स्नान करो। पुण्यजनों की इच्छा रखकर (उन्हें) देखो। पुण्यकथाएँ सुनो। तुम्हारी भलाई होगी। घर मत जाओ। १९७ [व.] यों कहकर, इस प्रकार लौटाने पर, फिर (वापस) जाकर रोहित एक साल उस वन में घूम-फिरकर वापस आया तो इन्द्र ने आकर पूर्व की तरह निवारण किया। इस प्रकार। १९८ [सी.] अमरेंद्र ने उस बालक को पाँच बरस तक वापस भेज दिया। छठे साल में उसने जंगल से घर आते हुए संतोष के साथ अजीगर्त के मध्यम पुत्र, सम्मान्य चरित्र वाले और घन (बड़े) शुनश्शेफ को लाकर याग-पशु के रूप में उस हरिश्चन्द्र को दिया। पुरुष-मेध करके भूपाल-वर्य (-श्रेष्ठ) ने वरुण आदि निखिल देवताओं को तृप्त किया। [ते.] होता कौशुक था। अध्वर्यु श्रेष्ठ भृगु था। ब्रह्मा जमदग्नि था। सामगान करनेवाला मुनि वसिष्ठ था। उस मख (यज्ञ) से संतुष्ट होकर इन्द्र ने उस

मुनि वसिष्ठु डा मखंबुन मुदमु बोंदि
कनक रथ मिच्चें निद्रुडा मनुजपतिकि ॥ 199 ॥

व. शुनश्शेफुनि प्रभावंबु वेनुक विवरिचेंद। अंत भार्यासहितुंडैन हरिश्चद्रु वलनं ब्रीतुंडै विश्वामित्रुंडु निरस्त दोषुंडैन यतनिकि मुख्य ज्ञानंबु गृपसेसिन। मनंबन्नमयंबु गावुन मनंबुन नन्नरूपियैन पृथिवि नरिगि पृथिविनि जलंबुवलन नडंचि, जलंबु देजंबुवलन निकिचि, तेजंबु वायुवु वलनं जेचि, वायुवु नाकाशंबुनं गलिपि, याकसंबु दामसाहंकारंबुनंदु लयंबु सेसि, यहंकार त्रयंबु महत्तत्त्वंबुनंदु डिंदिचि, परतत्त्वंबुनकु लोकंबुलु सृजिचेंद ननु तलंपैन महत्तत्त्वंबुनंदु विषयाकारंबु निर्वतिचि विषय विवर्जितंबैन महत्तत्त्वंबुनु बरतत्त्वंबुगा नेरुगुचु नय्येरुक वलन संसार हेतुवैन प्रकृतिनि भस्मंबु सेसि यय्येरुकनु निर्वाणसुख पारवश्यंबुनं बरिहरिंचि सकलबंध विमुक्तुंडै हरिश्चंद्रुंडवाङ्मानसगोचरंबयिन निजरूपंबुतो वेलुंगुचुंडे।

## अध्यायमु—८

व. अतनि कुमारुनकु लोहितुनकु हरितुंडु पुट्टे। हरितुनकु जंपनामधेयुडु जनियिचें। अतंडु दन पेर जंपानगरंबु निर्मिचें। आ चंपुनिकि सुदेवुंडु,

मनुजपति को कनकरथ दिये। १९९ [व.] शुनश्शेफ के प्रभाव के बारे में बाद को बतलाऊँगा। तब भार्या-सहित हरिश्चन्द्र से प्रीतियुक्त होकर विश्वामित्र ने उस निरस्त-दोषी (दोष-रहित) को मुख्य ज्ञान [प्रदान करने की] कृपा की तो [हरिश्चन्द्र ने जान लिया कि] मन अन्नमय है; इसलिए मन में अन्न रूपी पृथ्वी को जानकर पृथ्वी को जल से दबा कर, जल को तेजस् से सुखाकर, तेजस् को वायु से जोड़कर, वायु को आकाश में मिलाकर, आकाश को तामसाहंकार में लय करके, अहंकार-त्रय का महत्तत्त्व में नाश करके "परतत्त्व के लिए लोकों का सृजन करूँगा"— इस चिंता रूपी महत्तत्त्व में विषयाकार को निर्वतित करके विषय विवर्जित महत्तत्त्व को परतत्त्व (के समान) जानते हुए उस ज्ञान से संसार-हेतु (होनेवाली) प्रकृति को भस्म करके उस ज्ञान का निर्वाण सुख-पारवश्य में परिहार करके, सकल बंध-विमुक्त बनकर हरिश्चन्द्र अवाङ्मानसगोचर-निजरूप से प्रकाशमान हो रहा था।

## अध्याय—८

[व.] उसके बेटे को हरित पैदा हुआ। हरित से चंप नामधेय

सुदेवुनिकि विजयुंडु, विजयुनकु रुरुकुंडु, रुरुकुनकु वृकुंडु, वृकुनकु बाहुकुंडु जनियिंचिरि। अंदु बाहुकुंडु ॥ 200 ॥

### सगर चक्रवर्तिकथा प्रारंभमु

सी. दंडिंचि पगवारु दन भूमि जेकॊन्न नंगनलुनु दानु नडवि केगि
यडविलो मुसलियै यातडु सच्चिन नातनि भार्य दाननुगमिंप
गदियुचो ना स्त्रीकि गर्भंबु गलुगुट यौर्वमुनीश्वरुडात्मनेरिगि
वारिंचॆ नंत नव्वनजाक्षि सवतुलु सूलु निडारिन जूड जाल

ते. कथि नन्नंबु गुडुचुचोनंदु गलिपि
विषमु बॆट्टिटरि पॆट्टिटन विरिसि पडक
गरमुतो गूड सगरुंडु घनुडु पुट्टि
बर यशस्फूर्तितो जक्रवर्ति यय्यॆ ॥ 201 ॥

शा. चंडस्फूर्ति नतंडु तंड्रि पगकै संग्राम रंगंबुलन्
जॆंडॆन् हैहय बर्बराडुल वधिंचॆन् दाळ जंघादुलन्
मुंडी भूतुलुगा निरंबरुलुगा मूर्तुल सबीभत्सलै
युंडं जेसॆ निजारुलन् सगरनामोर्वी विभुंडल्पुडे ॥ 202 ॥

---

का [पुत्र] पैदा हुआ। उसने अपने नाम पर चंपा नगर का निर्माण किया। उस चंपा के सुदेव, सुदेव के विजय, विजय के रुरुक, रुरुक के वृक (और) वृक के बाहुक का जन्म हुआ। उनमें बाहुक के। २००

### सगर चक्रवर्ति की कथा का प्रारंभ

[सी.] दंडित कर शत्रुओं के अपनी भूमि ले लेने पर अपनी अंगनाओं (स्त्रियों) के साथ जगल में जाकर, जंगल में बूढ़ा बनकर मर जाने पर, उसकी पत्नी उसका अनुगमन करने का प्रयत्न करने पर, उस स्त्री का गर्भवती होना और्व मुनीश्वर ने अपनी आत्मा में जानकर, [उसे] रोक दिया। तब उस वनजाक्षी की सौतों ने [उसका] पूर्ण गर्भवती होना देख न सक कर, जान-बूझकर, [ते.] अन्न खाते समय, उसमें विष मिला कर खिलाया। खिलाने पर मर न जाकर गर (गरल) के साथ घन (बड़ा श्रेष्ठ) सगर पैदा हुआ। [वह] वर (श्रेष्ठ)-यश-स्फूर्ति से चक्रवर्ति बना। २०१ [शा.] [प्र-] चंड स्फूर्ति से उसने [अपने] पिता के (शत्रुओं से) बदला लेने के लिए संग्राम-रंगों में हैहय बर्बरादियों का संहार किया। ताळजंघादियों का वध किया। अपने अरि (शत्रु) यों को मुंडीभूत [और] निरंबर बनाकर, उनकी मूर्तियों को सबीभत्स बनाया; (क्या)

कं. खगराजरुचुलु गल यल
पगराजुल नडचि येलॅ वाहाशक्तिन्
नगराजधीरु शूरुन्
सगरुन् हतविमत नगरु जनु विनुतिपन् ॥ 203 ॥

सी. और्वुँडु सॅप्पग नमर वेदात्मकु हरिनीशु नमृतु ननंतु गूर्चि
वाजि मेधंबुलु वसुधेश्वरुडु सेसॅ नंदोक्क मखमुन हयमु विडुव
नगभेदि गॊनुपोयि नाग लोकंबुन गपिलुनि चेरुव गट्टि तॊलगॅ
नंत गुर्रमु गान का राजु दन पुत्र निवहंबु दिशलकु नॆमक वंप

ते. वारु नी येडु दीवुल वरुस वॆदकि
मखतुरंगंबु लेकुन्न मगिडि राक
प्राभवंबुन दोर्दंड बलमु मॆरसि
ग्रॊच्चि कोराडि त्रव्विरि कुतल मॆल्ल ॥ 204 ॥

व. इट्लु सुमति कॊडुकुलु नेल द्रव्वि पाताळंबुनं दूर्पु मुट्टियुन्न युत्तर भागंबुनं गपिल महामुनि पॊंतनुन्न तुरंगंबु गनि ॥ 205 ॥

चं. एऱिगिति मव्विदरय्य! तडवेटिकि गुर्रपु दॊंग सिक्कॅ नी
जरभिनि बट्टि चंपुडति साधु मुनींद्रुडु बोलॅ नेत्रमुल्

सगर नामक उर्वी-विभु (राजा) अल्प है; (नहीं है)। २०२ [कं.] भूमि पर खगराज (सूर्य), की रुचि (कांति) यों से युक्त शत्रुराजाओं को दबा कर [अपनी] बाहा (बाहु)-शक्ति से पालन किया। नगराजधीर, [एवं] शूर, हतविमत नगर (शत्रुओं के नगरों का नाश करनेवाला) कहकर विनुति (प्रशंसा) करना संगत है। २०३ [सी.] और्व के कहने पर अमर, वेदात्मा, हरि, ईश और अमृत होनेवाले अनत के प्रति वसुधेश्वर ने वाजिमेध किये। उनमें एक मख में हय को छोड दिया (तो) नगभेदी (इंद्र) (उसे) ले जाकर (और) नागलोक में कपिल के पास बाँधकर हट गया। तब घोड़े को न पाकर उस राजा ने अपने पुत्र-निवह (समूह) को (सब) दिशाओं में ढूंढ़ने भेज दिया तो, [ते.] उन्होंने इन सातों द्वीपों में एक-एक करके ढूंढ़कर, मख-तुरग के न रहने (मिलने) पर वापस न आकर, [अपने] प्रभाव [और] दोर्दंड-बल से सारे कुतल (पृथ्वी) को [मिट्टी] खरोंच-खरोंचकर खोद डाला। २०४ [व.] इस प्रकार सगर के बेटे मिट्टी को खोदकर पाताल (लोक) में पूरब की ओर लगकर रहनेवाले उत्तर भाग में कपिल महामुनि के पास स्थित तुरग को देखकर। २०५ [चं.] "लो, [हमने] जान लिया। देरी किसलिए? घोड़े का चोर मिल गया। इसे जान-बूझकर पकड़ कर मार डालो। अति साधु मुनींद्र की तरह नेत्र न खोलकर, विशाल मुँह को न खोलने का (उसने)

दॆऱवक वाकि नोरु मॆंदलिपक बॆसुक पट्टॆनंचु न
य्यरुवदि वेवुरुन् निज करायुधमुल् जळिपिंचि डायुचोन् ॥ 206 ॥

चं. कपिलुडु नेत्रमुल् दॆऱवगा दममेतुल मंट पुट्टि ता-
रपगत धैर्युलै पडि यघाळि कतंबुन मूढचित्तुलै
नृपसुतुलंदरुन् धरणि नीऱयिराक्षणमंद साधुलं
दपसुल गासि वॆट्टॆडि मदस्फुरितात्मुलु निल्व नेर्तुरे ॥ 207 ॥

सी. कॊंदरु कपिलुनि कोपानलंबुन ग्रंदिरि सगर कुमारुलनुचु
नंदुरामुनि शांतु डानंदमय मूर्ति तॊंदरि कोपिंचुने दुव्वनेल
गाक जन्मिंचुने गगन स्थलंबुन नेसांख्य मतमुन निद्धमतुलु
भवसमुद्रमु मृत्यु पदमुनु लंघितुराबुद्धि जेयु परात्मभूतु-

ते. डखिल बोधकु . डतनिकि नरसिचूड
सखुलमित्रुलु नॆव्वरु सगरसुतुलु
दामु दम चेयु नेरमि दनुवुलंदु
ननल कीललु वुट्टि नीऱरि गाक ॥ 208 ॥

व. मऱियु सगरुंडु गेशिनि यंदु गन्न पुत्रुंडसमंजसुंडनुवाडु समंजस गुणंबुलु
लेक पूर्वजन्मंबुन योगीश्वरुंडै युंडि संग दोषंबुवलन योगभ्रष्टुंडयि

---

शपथ किया।" यों कहते हुए वे साठ हज़ार [राजकुमार] निज करायुधों को चमकाकर पास आये तो। २०६ [चं.] कपिल के नेत्र खोलने पर उनके शरीरों मे आग पैदा हुई; वे अपगत धैर्य हो गिरकर [और] अघालि के कारण मूढचित्त बनकर [सभी नृपसुत] उसी क्षण धरणि पर भस्म बने। (क्या) साधुओं और तपस्वियों को दुःख देनेवाले मदस्फुरितात्मा [कभी] टिक सकते हैं? २०७ [सी.] कुछ [लोग] कहते हैं कि कपिल के कोपानल से सगर कुमार मर गये। वह मुनि शांत है; आनंदमूर्ति है। क्या जल्दबाज़ी करके कोप करता है? (क्या) धूलि ज़मीन को छोड़कर गगनस्थल मे पैदा होती है? जिस सांख्य-मत के कारण इद्धमती (परिशुद्धमति रखनेवाले) भव-समुद्र [और] मृत्युपद का लंघन करते हैं, उस बुद्धि (मत) की स्थापना करनेवाले परात्मभूत [ते.] [तथा] अखिल-बोधक (-सिखानेवाले) को जानकर (सोचकर) देखें तो सखा (कौन हैं), अमित्र कौन हैं? सगरसुत स्वयं अपनी करतूत [के परिणाम] को न जानने से शरीरों में अनल-कीलाओं के पैदा होने से भस्म बन गये। २०८ [व.] और, सगर का केशिनी से उत्पन्न असमंजस नामक पुत्र समंजस गुणों के न रहने से, पूर्वजन्म में योगीश्वर होकर भी संगदोष से योगभ्रष्ट बनकर, सगर को पैदा होकर, [पूर्व] जातिस्मर-ज्ञान से लोक में रहनेवालों (परायों) और अपने लोगों को अप्रिय होनेवाली

सगरुनकु जन्मिचि जातिस्मर ज्ञानंबु गलिगि लोकंबुवारलकु दमवार-
लकु नप्रियंबगु वर्तनंबुनं दिरुगुचु नोक्कनाडु ॥ 209 ॥

चं. वरुसनयोध्य लोन गलवाडल नाडेडु पिन्नवांड्रना-
सरयुवु लोन वैचि जनसंघमु दंड्रियु दिट्टुचुंड वा-
डुरुमति गोन्नि प्रोद्दुलकु योग बलंबुन जेसि बालुरं
दिरिगि पुरंबु लोपलिकि दॆच्चिन निव्वेऱ गंदिरंदरुन् ॥ 210 ॥

व. अय्यसमंजसुनि कोडुकंशुमंतुंडनु वाडु विनीतुंडयि तनयोद्द बनुलु सेयुचुंडु नंत सगरुंडम्मनुमनि नंशुमंतु नश्वंबु वेदकि तॆम्मनि पंचिन नतंडु दन तंड्रुल चॊप्पुनं जनि वारलु द्रव्विन महाखातंबु सोच्चि यंदु भस्मरासुल पोंतनुन्न हयंबुनुंगनि या समीपंबुनंदुन्न कपिलाख्युंडयिनं विष्णुदेवुनिकि दंड प्रणामंबु सेसि यिट्लनि स्तुतियिंचे ॥ 211 ॥

सी. मति सिक्क बट्टि समाधि गौरवमुन वासिगा दनकु नव्वल वॆलुंगु
निनुगानडोकनाडु निर्दरुगुर्न ब्रह्म यजुनि मनंबुन नवयवमुल
बुद्धि जन्मिचिन भूरि जंतुवुलंदु हीनुलमैन माकु नॆरुग वशमे
तमलोन नोवुंड दार्मेरुंगरु निन्नु गुणमुल जूतुरु गुणमुलेन

ते. गानरोकवेळ जीकटि गंदुरात्म-
लंदु दॆलियरु वॆलुपल नमरु पोदु-

---

चाल-चलन से घूमते-फिरते हुए एक दिन। २०९ [चं.] एक के बाद एक अयोध्या के मुहल्लों मे खेलनेवाले बच्चों को उस सरयू में ढकेलकर, जनसंघ के और पिता के गालियाँ देते रहने पर, वह उरु (बड़ी) मति से कुछ दिनों के बाद योग-बल से बालकों को फिर पुर में लाया तो सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। २१० [व.] उस असमंजस का अंशुमान नामक बेटा विनीत बनकर [सगर के पास] काम (सेवा) करता रहा तो सगर ने उस पोते अंशुमान को अश्व को ढूँढ़ लाने के लिए भेज दिया तो उसने अपने पितरों के (गये हुये) मार्ग से जाकर, उनके खोदे हुए महान अखात (खाड़ी) में प्रवेश करके उसमें भस्म राशियों के पास स्थित हय को देखकर और वहीं समीप में रहनेवाले कपिलाख्य विष्णुदेव को दंड प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति की। २११ [सी.] मन को वश में रखकर समाधि-गौरव से भली-भाँति अपने से बाहर प्रकाशमान होनेवाले वह ब्रह्मा तुमको एक दिन भी (कभी) जानता है ? अज के मन से, अवयवों की बुद्धि से जन्मे भूरि जंतुओं में हीन होनेवाले हमारे लिए क्या [तुम्हें] जानना संभव है ? अपने में रहनेवाले तुमको नही जानते। तुम्हें गुणों में देखते हैं। गुणों को भी नहीं देख, अंधकार को देखते हैं। [ते.] आत्माओं में नहीं जानते; देहधारी अति अंध होते हुए बाहर के संपर्क को जानते हैं। तुम्हारी माया

लरयुदुरु देहधारुलत्यंधुलगुचु
गडिदि नीमाय नन्नडु गडुवुलेक ॥ 212 ॥

व. अनि विनुति सेयुचु हयंबु विडुवुमनि चॅप्पक तन तंड्रुलु नीरुगुटं दडवक म्रोविक निलुचुन्न यंशुमंतुनिकि गरुणाविपुलुंडगु कपिलुंडिट्लनियें ॥ 213 ॥

कं. गुर्रमु गॉनिपो बुद्धुल, कुर्रड मीतात यॉद्दकुन् नीतंड्रुल्
वॅर्रुलु नीरैरदॅ यी, -मिर्रुन गंगाजलंबु मॅलग शुभमगुन् ॥ 214 ॥

व. अनि पलिकिन नमस्करिंचि तुरंगंबु गॉनिवच्चि या सगरुनिकिच्चिन, सगरुंडा पशुवु वलन जन्नंबु कडम निर्डिचि यंशुमंतुनकु राज्यंबिच्चि मुक्त बंधनुंडै यौर्वुंडु सॅप्पिन मार्गंबुन नुत्तम गतिकि जनियॅनु। अंत ॥ 215 ॥

## अध्यायमु—९

कं. जनकुलु म्रग्गिन चोटिकि
ननिमिष नदि दॅत्तुननुचु नटवी स्थलिकिन्
जनि तपमु सेयजालक
मनमुन वगलॉलय नंशुमंतुडु दीरॅन् ॥ 216 ॥

---

कठिन है। [उसको] कभी कोई नही समझ सकता। २१२ [व.] यों बिनति करते हुए यह न कहकर कि हय को छोड़ो (और) अपने पितरों के भस्म (के रूप में) बनने से (का कारण) बिना सोचे नमस्कार करके खड़े हुए अंशुमान से करुणा-विपुल कपिल ने इस प्रकार कहा। २१३ [क.] "ऐ बुद्धिमान लड़के ! घोड़े को अपने दादा के पास ले जाओ। तुम्हारे पितागण मूर्ख बनकर, देखो, भस्म बन गये। अगर इस भूमि पर गंगा का जल बहे तो शुभ होगा।" २१४ [व.] ऐसा कहने पर, नमस्कार करके तुरग को लाकर, उस सगर को दिया तो, सगर ने उस पशु से शेष यज्ञ की पूर्ति करके, अंशुमान को राज्य देकर और मुक्त-बन्धन बनकर औवं के कहे हुए मार्ग से उत्तम गति को प्राप्त किया। तब। २१५

## अध्याय—९

[कं.] यह कहते हुए कि जहाँ (मेरे) जनक (पितृगण) मर गये, वहाँ अनिमिष नदी को ला दूंगा, [तदर्थ] अटवी-स्थलि को जाकर तप न कर सक और मन में दुःखित होकर अंशुमान चल बसा। २१६ [कं.] उसका पुत्र दिलीप भूतल पर गंगा को लाने के लिए प्रीति से तप करते

कं. आतनि कॊडुकु दिलीपुडु, भूतलमुन गंग दॆच्चि पॊंदिंचुटकै
प्रीति दपंबु सेयुचु, भातिग देलेक काल परवशुडय्यॆन् ॥ 217 ॥

कं. अतनि सुतुंडु भगीरथु, डतितप मॊनर्चिरिचि कनियॆ नमृतापांगन्
सुतरंगन् मुखवनरुह, -रत भृंगन् शिवजटाग्र रंगन् गंगन् ॥ 218 ॥

व. कनि नमस्करिंचिन गंग गृप चेसि वरंबु वेडुमनिन नाराचपट्टि यिट्लनियॆ ॥ 219 ॥

कं. माबारि भस्मरासुल, नी वारि गलिपि कॊनुमु नेड्रि मावारल्
नी वारि गलय नाकमु, मा वारिकि गलुगु निदि प्रमाणमु दल्ली ॥220॥

इंद्र. चॆल्लन् मदिन् निन्नु भजितु गंगन्
फुल्लांतरंगन् बहुपुण्यसंगन्
गल्लोल लक्ष्मी जितकाश मल्लिन्
दल्लिन् सुधीकल्प लतामतल्लिन् ॥ 221 ॥

व. अनि विनुति सेयुचुन्न राजकुमारुनकु लोकपावनि यिट्लनियॆ ॥ 222 ॥

म. विनुवीथि वरतॆंचि नेलबडु ना वेगंबुनुन् निलप नो-
पिन वाडॆव्वडु ? मेदिनीतलमु ने भेदिंचि पाताळमुन्
जनुदुन् वच्चितिनेनि ना जलमुलन् संस्नातुलै मानवुल्
ननुबॊंदिच नघव्रजं बॆचट ने नाशंबु बॊंदिंचॆदन् ॥ 223 ॥

---

हुए ठीक ढंग से न ला सक, काल-परवश हो गया (मर गया) । २१७ [कं.] उसके सुत भगीरथ ने अति (अधिक) तप करके अमृतापांगा, सुतरंगा, मुखवनरुहरत भृंगा [तथा] शिव-जटाग्र-रंगा [होनेवाली] गंगा को देखा । २१८ [व.] देखकर नमस्कार किया तो गंगा ने कहा कि वर माँगो; [यह सुनकर] उस राजकुमार ने यों कहा, २१९ [कं.] माता ! हमारे लोगों (पितरों) की भस्मराशियों को अपने वारि (जल) में मिला लो; हमारे उन श्रेष्ठ लोगों को तुम्हारे वारि में मिलने से, उनको स्वर्ग मिलेगा, यह प्रमाण है । २२० [इंद्र.] फुल्लांतरंगा, बहुपुण्यसंगा, कल्लोल-लक्ष्मीजितकाशमल्लिका, माता, सुधीकल्पलताओं में श्रेष्ठ हे गंगे ! मैं अपने मन में अच्छी तरह तुम्हारी पूजा करूँगा । २२१ [व.] इस प्रकार विनुति करनेवाले राजकुमार से लोकपावनी ने इस प्रकार कहा । २२२ [म.] "विनुवीथि (आकाश) से आकर भूमि पर गिरने पर मेरे वेग को रोक सकनेवाला कौन है ? मेदिनीतल को भेदकर पाताल में जाऊँगी । अगर मैं आऊँ (तो) मेरे जल में संस्नात होकर मानवों से मुझमें लगाये जानेवाले अघव्रज (पाप-समूह) का कहाँ नाश कर डालूँगी ? २२३ [व.] इस कारण से मैं सोच रही हूँ"; यों कहती

व. अदि कारणंबुगा विचारिंचॅदननि पलुकुचुन्न लोक मातकु राजन्यवर्युँडगु भगीरथुंडिट्लनियॅ ॥ 224 ॥

म. परतत्त्वज्ञुलु शांतचित्तुलु तपःपारीणुलार्युल् घनुल्
पुरुष श्रेष्ठुलु वच्चि तल्लि भवदंभोगाहमुल् सेयगा
नरसंघाघमु निन्नु वॉदुनॅ जगन्नाथुंडु नानाघ सं-
हरुडा विष्णुडु वारि चित्तमुल दानॆ युंट मंदाकिनी ! ॥ 225 ॥

म. तनलो निन्नि जगंबुलुं गलुगुटं दानिन्निटं गल्गुटन्
जननी तंतुवुलंदु जोर गल या चंदंबुलन् विश्वभा-
वनुडै यॉप्पु शिवुंडु गाक मरि नी वारिन् निवारिंप ने-
र्चिनवारॆव्वरु निन् धरिंचु कोरकै श्रीकंठनि गोल्चॆदन् ॥ 226 ॥

व. अनि यॅर्रिगिंचि वीड्कॉनि चनि, भगीरथुंडु महेश्वरुनुद्दॆशिंचि प्रद्दन दपंबु सेसिन ॥ 227 ॥

आ. भक्तवत्सलुंडु फालाक्षुडा भगी-
रथुनि मॆच्चि निजशिरंबुनंदु
शौरि-पाद-पूत-सलिलयै दिवि नुंडि
धरकु वच्चु गंग दाल्चॆनपुडु ॥ 228 ॥

---

हुई लोकमाता से राजन्यवर भगीरथ ने यों कहा— २२४ [म.] "हे मंदाकिनी ! परतत्त्वज्ञ शांतचित्त, तपपारीण, आर्य (तथा) घन (श्रेष्ठ) [होनेवाले] पुरुषश्रेष्ठ आकर हे माता ! जब भवदंभोगाह (तुममें स्नान) करेंगे, (तब) नरसंघाघ (नरसंघ के पाप) तुम्हें (कैसे) लगेंगे ? [क्योंकि] उनके चित्तों में जगन्नाथ और नानाघसंहारकर्ता वह विष्णु स्वयं रहता है न ! २२५ [म.] अपने में इतने जगों को धारण करने से (और) उन सबमें स्वयं रहने से, हे जननी ! जिस प्रकार तंतुओं में वस्त्र (स्वयं) समाया रहता है, विश्वभावन होकर उपस्थित शिव के अतिरिक्त तुम्हारे वारि का निवारण कर सकनेवाला और कौन है ? तुम्हें धारण करने के लिए श्रीकंठ से प्रार्थना करूँगा ।" २२६ [व.] इस प्रकार कहकर, विदा लेकर और जाकर भगीरथ ने महेश्वर के प्रति शीघ्र ही तप किया तो २२७ [आ.] भक्तवत्सल [होनेवाले] फालाक्ष ने उस भगीरथ से प्रसन्न होकर शौरिपादपूतसलिला बनकर, दिवि से धरा पर आनेवाली गंगा को तब अपने सिर पर धारण कर लिया । २२८

### श्री परमेश्वरजटाजूटनिर्गत गंगानदीप्रवाह महिमानुवर्णनमु

व. इट्लम्महानदी प्रवाहंबु पुराराति जटाजूट रंध्रंबुल वलन वलुवडि निर्गळायमानंबै नेलकु जल्लिलचि नॅऱसि निंडि पॅल्लु वॅल्लिगॉनि पॅच्चु पॅरिगि विच्चलविडि ग्रेपु वॅंबडि नुऱक ऱॆळ्ळुरुकु प्रायंपु गामधेनुवु चंदंबुन मुंदरिकि निगुड्चु, मुद्दुजंदुरु तोडि नॅय्यंबुन ग्रय्य नडरि चॉप्पु दप्पक सागि चनुदॆंचु सुधार्णवंबु कैवडि बॆंपु गलिगि, महेश्वरु वदन गह्वरंबु वलन नोंकारंबु पिरुंद वॅलुवडु शब्द ब्रह्मंबु भंगि नदभ्र विभ्रमंबै यम्महीपाल तिलकंबु तॆरुवु वेंट नंटि वच्चु वॅलि येनुगु तोंडंबुल ननुकरिंचि परचु वरद मॊगंबुलुनु, वरद मॊगंबुल पिरुंद नंदंद क्रंदुकॊनि पॊडचूपि तॊलंगु बाल शारदा कुचकुंभंबुल पगिदि कग्गलंबैन बुग्गलुनु, बुग्गल संगडंबुनं बारिजात कुसुम स्तबकंबुल चॆलुवंबुलं दॆगडु वॅलिनुरुवुलुनु, वॅलिनुरुवुल चॆंगट नर्थोन्मीलित कर्पूर तरु किसलयंबुल जवकंदनमु गेलिगॊनु सुळ्ळु, सुळ्ळ कॆलकुल धवळ जलधर रेखाकारंबुल बागु मॆच्चनि निड्डु येरुलुनु, नॆरुलंगलसि वायु वशंबुन नॊंडॊंटि दाकि बिट्टुमुट्टिचि मीदकॆगयु दुरित भंगंबुलैन भंगंबुलुनु, भंगंबुल कॊनल भिन्न भिन्नंबुलै कुप्पिचि युप्परंबॆगयु मुत्तियंपु सरुल वडुवुन मल्लिकादामंबुल तॆरंगुन गर्पूर खंड कदंबंबुल

---

### श्रीपरमेश्वर-जटा-निर्गत गंगा-प्रवाह-महिमानुवर्णन

[व.] इस प्रकार वह महानदी [का प्रवाह] पुराराति के जटाजूट-रंध्रों में से निकलकर, निर्गलायमान होकर भूमि की ओर छनकर गिरकर, भरकर, बड़ा प्रवाह बनकर, बहुत बढ़कर, मनमाना बछड़े के पीछे बड़े वेग से दौड़नेवाली वय में रहनेवाली (हृष्ट-पुष्ट) कामधेनु की तरह आगे बढ़ते हुए, लाड़ले चंद्रमा के साथ मित्रता के कारण नाले का मार्ग न छोड़कर आगे बढ़ते हुए, सुधार्णव की तरह बढ़कर, महेश्वर के वदन-गह्वर से ओंकार के पीछे निकलनेवाले शब्द-ब्रह्म की तरह अदभ्रविभ्रम से, उस महीपाल-तिलक के मार्ग से आते हुए, श्वेतहस्ति के दाँतों का अनुकरण करते हुए भागनेवाली बाढ़ के मुख, बाढ़ के मुखों के पीछे इधर-उधर विस्तृत हो अपना अस्तित्व दिखाकर हटनेवाले बालशारदा-कुचकुंभों की तरह बड़े बुदबुद, बुदबुदों के संग परिजात कुसुमस्तबकों के सौंदर्य का परिहास करनेवाले श्वेत फेन, श्वेत फेन के निकट अर्थोन्मीलित कर्पूर तरु किसलयों के सौंदर्य का ह्रास करनेवाले भँवर, भँवरों के समीप धवल जलधर रेखाकारों का धिक्कार करनेवाले प्रवाह, प्रवाहों से मिलकर वायुवश हो एक-दूसरे से छूकर अधिक होकर ऊपर उड़नेवाले दुरितों का भंग करनेवाले भंग (लहरें), भंगों के कोनों पर भिन्न-भिन्न होकर, कूद

चॆलुवंबु निंदुशकलंबुल तेजंबुन दारका निकरंबुल पॊलुपुन मॆऱयुचु मुक्ति कन्या वशीकरंबुलैन शीकरंबुलनुं गलिगि मध्यम लोक श्रीकरंबै श्रीकरंबु तॆऱंगुन विष्णु पदंबुमुट्टि विष्णु पदंबु माति नुल्लसित हंस रुचिरंबै रुचिर पक्षंबु रीति नतिशोभितकुवलयंबै कुवलयंबु चॆन्नुन बहु जीवनंबै जीवनंबु लागुन सुमनो विकास प्रधानंबै प्रधान पर्वंबु पॊलुपुन ननेक चक्रबक भीम महाभंग सुभद्रार्जुन चरित्राभिरामंबै, राम चित्तंबु मॆलपुनं बन वारिलो जॊच्चिन दोषाचरुल कभय प्रदान चणंबै प्रधानचण वर्तनंबु भाति समुपासित मृत्युंजयंबै मृत्युंजयु रूपंबुपोलिक विभूति सुकुमारंबै कुमार चरित्रंबु ठेवनु ग्रौंच प्रमुख विजयंबै विजयरथंबु भाति हरिहया-मंथरंबै मंथर विचारंबु ग्रद्दन महारामगिरिवन प्रवेशकामंबै कामकेतनंबु पॆल्लुन नुद्दीपित मकरंबै मकरकेतनु बाणबु कंवडि विलीन परवाहिनी कलित शंबरंबै शंबराराति चिगुरु गौतंबु सूटि नध्वग वेदना शमनंबै, शमन दंडंबु जाड निम्नोन्नत समवृत्तंबै वृत्त शास्त्रंबु विधंबुन बडि गलिगि सदागुरु लघु वाक्यच्छटा परिगणितंबै गणित शास्त्रंबु कॊलदि निघन घनमूलवर्ग संकलित भिन्न मिश्र प्रकीर्ण खात भीष्मंबै भीष्म पर्वंबु पॆंपुन ननेक भगवद्गीतंबै गीतशास्त्रंबु निलुकडनु महासुविरतनु

---

कर, आकाश की ओर उड़नेवाले मोतियों के हारों की तरह, मल्लिकादामों के जैसे, कर्पूरखंड-कदंबों के सौंदर्य से, इंदुशकलों के तेज से तारका-निकरों के समान चमकते हुए, मुक्तिकन्यावश होनेवाले शीकरों से युक्त होकर मध्यम लोकश्रीकर हो, श्रीकर (लक्ष्मी का हस्त) की तरह विष्णुपद को छूकर, विष्णुपद के समान उल्लसित हस रुचिर होकर, रुचिर पक्ष के जैसे अति शोभित कुवलय बनकर, कुवलय के समान बहुजीवन बनकर, जीवन की तरह सुमनोविकास प्रधान होकर, प्रधान पर्व के जैसे एकचक्र-बक-भीम-महाभंग-सुभद्रार्जुन-चरित्राभिराम होकर, राम के चित्त की तरह अपने लोगों में घुसे हुए दोषाचरों (राक्षसों) का अभय प्रदान-चण (-समर्थ) बनकर, प्रधानचणवर्तन की भांति समुपासित-मृत्युंजय होकर, मृत्युंजय के रूप की तरह विभूति-सुकुमार हो, कुमार के चरित्र की तरह क्रौंच-प्रमुख (-आदि) विजयी होकर, विजय के रथ की भांति हरिहयामंथर (इंद्र के घोड़े के समान अमंथर) होकर, मंथर विचार (को) शीघ्र ही महाराम-गिरिवन में प्रवेशकाम हो, कामकेतन के अतिशय से उद्दीपित मकर होकर, मकरकेतन के बाण की तरह विलीन परवाहिनी कलित शबर (मछली) होकर, शबराराति (मन्मथ) के पल्लव-आयुध के समान अध्वग-वेदना-शमन बनकर, शमन दंड की तरह निम्नोन्नत समवृत्त होकर, वृत्तशास्त्र की तरह वेग से युक्त हो, सदा गुरु लघु-वाक्य-च्छटा परिगणित हो, गणित शास्त्र के अनुसार घन, घनमूलवर्ग संकलित

घन नानाशब्दंबै शब्दशास्त्रंबुमर्याद नच्चुवडि हल्लु गलिगि महाभाष्य रूपावतारवृत्ति वृद्धि गुण समर्थंबै यर्थशास्त्रंबु महिमनु बहु प्रयोजन प्रमाण दृष्टांतंब्र दृष्यतंबु तेरंगुन सर्वसामान्यगुण विशेषबै शेष व्यापारंबुकरणिनि सुस्थिरोद्धरण तत्परंबै परब्रह्मंबु गरिमनतिक्रांतानेक निगमबै निगमंबु नडवडिनि ब्रह्मवर्णपदक्रम संग्रहंबै ग्रह शास्त्रंबु परिपाटिनि गर्कट मीन मिथुन मकरराशि सुंदरंबै सुंदरीमुखंबु पोडिमिनि निर्मल चंद्रकांतंबै कांताधरंबु रुचिनि शोणच्छाया विलासंबै विलासवति कोंप्पु नोप्पुन गृष्णनागाधिकंबै यधिकमति शास्त्र संवादंबु सोंपुन नपार सरस्वती विजय विभ्रमंबै विभ्रमपति चनुदोयि पगिदि निरंतर पयोव्याप्ताखिल लोक जीवन प्रद तुंगभद्राति रेखा सललितंबै ललितवति नगवु मिचुननपहसित चंद्रभागधेयंबै भागधेयवंतुनि विवाहंबु लील महा मेखल कन्यकाविस्तारंबै तार कॅगेलि योडिकंबु ननाक्रांत सूर्यतनयंबै सूर्य तनयु शर वर्षंबु पोलिक भीमरथ्याटोप वारणंबै वारणंबु परुसुनं बुष्करोन्नत संरंभंबै रंभनेम्मोमु डालुन सुरक्षातिशय दशंबै दशरथतनयु बोमसुडि चाड्पुन सिंधु गर्व प्रभंजनंबै प्रभंजनतनयु गद पेंट्टु माड्किनि समीपगत दुश्शासन दुर्मद

---

भिन्न-भिन्न-प्रकीर्णखात भीष्म होकर, भीष्म पर्व की तरह अनेक भगवद्गीत होकर, गीताशास्त्र की तरह स्थैर्य से, महासुषिरात से, नाना घन शब्दों से भरकर, शब्द-शास्त्र की मर्यादा से स्वर और हल (व्यंजन) के साथ महाभाष्य रूपावतारवृद्धि-गुण समर्थ होकर, अर्थशास्त्र की महिमा को वहु-प्रयोजन-प्रमाण-दृष्टांत बनकर, दृष्टांत की तरह सर्व-सामान्य गुण विशेष होकर, शेष-व्यापार की तरह सुस्थिरोद्धरण-तत्पर होकर, परब्रह्म की गरिमा से अतिक्रान्तानेक निगम होकर, निगम की चाल से ब्रह्म-वर्ण-पद-क्रम-संग्रह होकर, ग्रहशास्त्रपरिपाटि से कर्कट-मीन-मिथुन-मकर-सुंदर होकर, सुंदरी के मुख की तरह निर्मल चंद्रकांत हो, कांता के अधर की तरह शोणच्छाया विलास हो, विलासवती के शिरोज-बंधन की तरह कृष्णनागाधिक होकर, अधिक मति से शास्त्र-संवाद की तरह अपार सरस्वती-विजय-विभ्रम होकर, विभ्रमवति के स्तनद्वय की तरह निरंतर-पयोव्याप्ताखिल-लोक जीवनप्रद तुंगभद्रातिरेखा-सललित हो, ललितवती के हास का अधिगमन करते हुए अपहसित चंद्रभागधेयी होकर, भागधेयवान के विवाह की तरह महामेखल-कन्यका-विस्तार होकर, तारा के हस्त-कमल में आक्रांत सूर्यतनया होकर, सूर्यतनय की शरवर्षा की तरह भीमरथ्याडंबर वारण हो, वारण के जैसे पुष्करोन्नत संरंभ से रंभा के सुंदर मुख की तरह सुरसातिशयदल हो, दशरथतनय के भौहों की सिकुड़न की तरह सिंधुगर्व-प्रभंजन होकर, प्रभंजन-तनय (भीम) की गदा की चोट की तरह समीपगत-दुश्शासन-दुर्मद-निवारण करनेवाला बनकर,

निवारकंबै वारकन्यक मुंजेतिगतिनि मुहुर्मुहुरुच्चलित कंकणालंकृतंबै कृतयुगंबुनोजनपंकंबै पंकजासनु मुखंबुनीऽपुन वेमूत मुख्य वर्णंबै वर्णगुणितंबु तेऽकुवनु बहुदीर्घ विंदु विसर्गंबै सर्ग बंध काव्यंबु विन्ननुवुन गंभीर भाव मधुरंबै मधुरापुरंबु सोवगुन महानंद नंदनंबै नंदनवनंबु पोदुन विहरमाण कौशिकंबै कौशिक हयंबु रीति सुदश ध्रुवंबै ध्रुवु तलंपु क्रियं ग्रिया वरिशीलत विश्वंभरंबै विश्वंभरुनि शंखंबु रूपुन दक्षिणावर्तोतरंबै युत्तरा विवाहंबु चबंवुन प्रमुदित नरंबै नरसिंहु नखरंबुल भाति नाश्रित प्रह्लाद गुरु विभव प्रदानंबै दान कांडंबु सिरि गामधेनु कल्पलताद्यभिनवंबै नवसूतिका कुचंबु पेर्मिनि निरंतर पयोवर्धनंब धनदु निलयंबु तूनिकबै संभृत मकर पद्म महापद्म कच्छपंबै कच्छप कर्परंबु बलिमिनि पतित शैल समुद्धरणंबै धरणीधरंबु साटि नुत्तुंगतट मुख्यंबै मुख्य वराहंबु गरिम नुन्नत क्षमंबै क्षमासुर हस्तंबु गरगरिकनु सत्पवित्र मनोरामंबै रामचंद्रुनि बाणंबु कडिंदि नभ्यागत खरदूषण मदापहरणमुखरंबै मुखर राम कुठारंबु रीति भूभृन्मूलच्छेदन प्रबलंबै बलरामहलंबु भातिनि प्रतिकूल सन्निकर्षण प्रबुद्धंबै बुद्धदेवुनि मेनि योऽपुन नभियाति रक्षोदार मनोहरंबै हरतांडवंबु मेरनुल्लसितानिमिषंबै यनिमिषावतारंबु कीर्तिनि श्रुतिमंगळ प्रदंबै प्रदात

---

वारकन्यका (वेश्या) के हस्त की तरह मुहुर्मुहुरुच्चलित-कंकणालंकृत हो, कृतयुग की तरह अपंक होकर, पंकजासन के मुख की तरह प्रभूत-मुख्य-वर्ण हो, वर्णगुणित के उपाय से बहुदीर्घ-बिंदु-विसर्ग होकर, सर्गबंध-काव्य को सुनने के समान गंभीर भाव मधुर हो, मधुरापुर की तरह महानंदनंदन होकर, नंदन वन की तरह विहरमाण-कौशिक होकर, कौशिक के हय की तरह सुदश ध्रुव होकर, ध्रुव के संकल्प के समान परिशीलित-विश्वंभर होकर, विश्वंभर के शंख की तरह दक्षिणावर्तोत्तर होकर, उत्तरा के विवाह की तरह प्रमुदित नर होकर, नरसिंह के नखों की तरह आश्रित प्रह्लाद-गुरु-विभव प्रदान होकर, दानकांड के वैभव से काम-धेनु-कल्पलताद्यभिनव होकर, नवसूतिकाकुच की तरह निरंतर पयोवर्द्धन होकर, धनद के निलय के समान संभृत-मकर-पद्म-महापद्म-कच्छप होकर, कच्छप के कर्पर के बल से पतित-शैल-समुद्धरण होकर, धरणीधर की तरह उत्तुंग-तट-मुख्य हो, मुख्यवराह की गरिमा से उन्नत क्षमा से युक्त हो, क्षमासुर-हस्त की स्वच्छता से सत्पवित्र मनोराम होकर, रामचंद्र के बाण की तरह अभ्यागत-खरदूषण-मदापहरण मुखर होकर, मुखर रामकुठार की तरह भूभृन्मूलच्छेदन प्रबल होकर, बलराम के हल की भाँति प्रतिकूल सन्निकर्षण प्रबुद्ध होकर, बुद्धदेव के शरीर की कांति के समान अभियाति-रक्षोदार-मनोहर होकर, हरतांडव के जैसे उल्लसित-अनिमिष होकर, अनिमिषावतार की कीर्ति से श्रुतिमंगलप्रद होकर, प्रदाता के त्याग के समान

योगिमूर्ति नर्थपरंपरा वामनंबै वामन चरण रेखनु वलिवंश व्यपनयंबै नयशास्त्रंबु मार्गंबुन सामभेद मायोपाय चतुरंबै चतुराननांडंबु भावंबुन नपरिमित भुवन जंतु जाल सेव्यमानंबै मानिनियन लोतु सूपक गरितयन सडि चप्पुडु सेयक मुग्दयन वयलु पडक प्रमदयन ग्रय्यं बारुचु बतिव्रत यन निट्टट्टु जनक तल्लियन नॅव्वियैन लोगोनुचु देवंबेन भक्त मनोरथंबु-लिच्चुचु नंतकंतकु गुरि गडचि यवाङ्मानस गोचरंबै प्रवहिंचि ॥ 229 ॥

म. जगतीनाथु रथंबु वज्ज बहुदेशंबुल वडि दाटि त-
त्सगरक्ष्मापकुमार भस्ममुल मीदन् मुंचि पारन् मरु-
न्नगरावासमुवारु वॊंदिरि नवीनश्रीलतो गंग नी-
रु गतिन् गाक महा दुरंत सुजन द्रोहानलं बारुनॆ ? ॥ 230 ॥

म. हरु मॆप्पिंचि महातपोनियतुडै याकाशगंगा नदिन्
धरकुं दॆच्चि नितांत कीर्ति लतिका स्तंभंबुगा नव्य सु-
स्थिर लीलं बितृकृत्यमंतयु नॊनर्चॆन् वारितानेक दु-
स्तर वंशव्यथुडाभगीरथुडु नित्य श्रीकरुंडल्पुडे ! ॥ 231 ॥

---

अर्थपरंपरा-वामन होकर, वामनचरण-रेखा से वलिवंश के व्यपनय होकर, नयशास्त्र के मार्ग से साम-भेद-मायोपाय चतुर होकर, चतुराननांड के भाव से अपरिमित भुवन जंतु-जाल-सेव्यमान होकर, मानो मानिनी हो ऐसा (अपनी) गहराई न दिखाकर, मानो गृहिणी हो ऐसा बिना कुछ शब्द किये, मानो मुग्धा हो ऐसा बाहर प्रकट न होकर, मानो प्रमदा हो ऐसा मद से बहते हुए, मानो पतिव्रता हो ऐसा इधर-उधर न जाकर, मानो माँ हो ऐसा जो कुछ भी हो (उसे) अपने अन्दर लेते हुए, मानो दैव हो ऐसा भक्तों के मनोरथों को देते (पूरा करते) हुए, आगे-आगे बढ़ते हुए, लक्ष्य को पार कर, अवाङ्मानस-गोचर होकर (और) प्रवाहमान होकर। २२९ [म.] जगतीनाथ (राजा भगीरथ) के रथ के पीछे बहु देशों को वेग से पार कर उस सगर क्ष्मापति (राजा) के कुमारों के भस्मों के ऊपर से [उन्हें] डुबोकर प्रवाहमान होने से, उन्होंने (सगर-कुमारों ने) नवीन श्रियों से मरुन्नगरावास (स्वर्गवास) को पाया। क्या गंगा के जल [अपनी] गति को छोड़कर (के अतिरिक्त), महान्-दुरन्त-सुजन द्रोहानल बुझ सकता है? २३० [म.] हर को संतुष्ट करके, महान् तपोनियम के साथ, आकाश, गंगानदी को नितान्त कीर्ति की लतिका के स्तंभ के समान धरा पर लाकर, नव्य सुस्थिरता से, उस भगीरथ ने समस्त पितृकर्मों को संपन्न किया। वारित-अनेक-दुस्तर-वंश-व्यथा वाला, नित्य श्रीकर (होनेवाला) [वह] भगीरथ क्या अल्प (सामान्य) है? २३१ [कं.] उस समय मुनींद्र [गण] हरि को अपने मनों में रखकर, हरिपादांभोज-जनिता (उस) नदी

कं. हरि वन मनमुललो निडि
हरि पादांभोज जनितमैन नदिन् सु-
स्थिरुलै क्रुंकि मुनींद्रुलु
हरि गलिसिरि त्रिगुण रहितुलै यव्वेळन् ॥ 232 ॥

व. अंत ना भगीरथुनकु श्रुतुंडुनु श्रुतुनकु नाभावरुंडुनु नाभावरुनकु सिंधुद्वीपुंडुनु सिंधु द्वीपुनिकि नयुतायुवुनु नयुतायुवुनकु ऋतुपर्णुंडुनु जनियिंचेनु अतंडु ॥ 233 ॥

आ. नय विशाल बुद्धि नल चक्रवर्तितो
संगडीनितनमु साल जेसि
यक्ष हृदय मतनि कव्यस्तमुग निच्चि
यश्व विद्य नेर्चें नतनि वलन ॥ 234 ॥

व. आ ऋतुपर्णुनकु सर्वकामुंडुनु सर्वकामुनकु मदयंती वल्लभुंडैन सुदासुंडुनु बुट्टॆ. आ राजशेखरुनि मित्रसतुडुनु गल्माषपादुंडुननि चॆप्पुदुरु आ भूवरुंडु वसिष्ठुनि शापंबुन राक्षसुंडयि तन कर्मंबुन ननपत्युंडय्येनु अनिन विनि परीक्षिन्नरेंद्रुंडेमिकारणंबुन सुदासुनकु गुरु शापंबु प्राप्तंबय्ये ननि यडिगिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 235 ॥

सी. आ सुदासुडु वेटकै वनंबुन केगि गर्विंचि यॊक्क रक्कसुनि जंपि
वानितो बुट्टिन वानि वोविडिचिन वाडुनु दनतोडिवानि चावु
वोनीक कपटियै भूपालु गृहमुन नडवाल तनमुन नयि गॊलिचि
युंड वसिष्ठुन कुर्वीशु डॊक्कनाडन्नंबु सेयंग नतनि वनुप

---

में सुस्थिर होकर स्नान करके (और) त्रिगुण-रहित हो हरि में लीन हुए। २३२ [व.] तब उस भगीरथ के श्रुत, श्रुत के नाभावर, नाभावर के सिंधुद्वीप, सिंधुद्वीप के अयुनायुव और अयुतायुव के ऋतुपर्ण (नामक) पुत्र हुए। उसने (ऋतुपर्ण ने)। ३३३ [आ.] नय विशाल बुद्धि वाले नल चक्रवर्ति के साथ बड़ी मैत्री करके (और) उसे अक्षहृदय (जुआ खेलने के रहस्य की विद्या) अभ्यस्त रूप से देकर, उससे अश्वविद्या सीख ली। २३४ [व.] उस ऋतुपर्ण का सर्वकाम और सर्वकाम का मदयंती-वल्लभ सुदास पैदा हो गया। उस राजशेखर को मित्रसह और कल्माषपाद कहते हैं। वह भूवर वसिष्ठ के शाप से राक्षस बनकर अपने कर्म से अनपत्य हुआ। यह सुनकर परीक्षिन्नरेन्द्र ने पूछा कि किस कारण से सुदास को गुरु का शाप प्राप्त हुआ तो शुक ने इस प्रकार कहा। २३५ [सी.] उस सुदास ने आखेट के लिए वन में जाकर गर्व से एक राक्षस को मार डालकर और उसके सहोदर को जाने (छोड़) दिया तो वह अपने भाई

ते. वाडु मानव मांसंबु वंडि तॆच्चि
मुनिकि वड्डिप गोपिंचि मुनि नरेंद्रु
बिलिचि मनुजामिषंबुनु बॆट्टितनुचु
नलुकतो राक्षसुडवु गम्मनि शपिंच ॥ 236 ॥

व. इट्लु शपियिंचि पवंपडि राक्षसुंडु वंडि तॆच्चुटयु सुदासुंडॆरुंगमियु दन मनंबुन नॆरिंगि वसिष्ठुडु पंड्रॆंडेंलु रक्कसुंडवयि युंडुमनि नियमिंचॆनु अय्यवसरंबुन ॥ 237 ॥

म. गुरुवुन् मारु शपितुनंचु जलमुल् गोपंबुतो दोयिटन्
नरनाथुंडु धरिंप दत्सति पतिन्वारिंप, मिन्नुं दिशल्
धरयुन् जीवमयंबका निखिलमुंदा जूचि चल्लॆन् धरा-
वरु डात्मीय पदंबुलं गरपुटीवाःपूरमुं बॊक्कुचुन् ॥ 238 ॥

व. इट्लु मित्र सहुंडु गावुन गळत्रानुकूलुंडॆ शपियिंप नोल्लक सुदासुंडु राक्षस-भावंबु नॊंदि कल्माषवर्णंबुलैन पादंबुलतो नडवुलं दिरुगुचु ॥ 239 ॥

कं. आकट मलसल माडुचु वीक नतंडडविनुन्न विप्रमिथुनमुं
दाकि तटालुन विप्रुनि गूकटि चेबट्टि म्रिंग गॊनिपोवु तरिन् ॥ 240 ॥

---

की मृत्यु के कारण अतिदुखी बनकर, उस भूपाल के गृह में रसोइया बनकर शोभा से रहा। ऐसा रहते समय एक दिन उर्वीश ने वसिष्ठ के लिए अन्न पकाने के लिए उसको भेजा, [ते.] तो वह मानव-मांस को पकाकर लाया और मुनि को परोसा तो मुनि क्रोधित हुआ और नरेन्द्र को बुलाकर कहा कि तू ने मनुजामिष को खिलाया; उसने (मुनि ने) क्रोध से [राजा को] शाप दिया कि तू राक्षस बन जा। २३६ [व.] इस प्रकार शाप देकर बाद को वसिष्ठ ने अपने मन में जान लिया कि राक्षस [मानव-मांस] पकाकर लाया, लेकिन सुदास [इसके बारे में] कुछ नहीं जानता। [अतः] उसने नियमित किया कि वह (राजा) बारह वर्ष तक राक्षस बनकर रहे। उस अवसर पर। २३७ [म.] यह कहते हुए कि गुरु को फिर शाप दूँगा, नरनाथ ने अपनी अंजलि में क्रोध से जल को धारण किया (लिया) तो उसकी सती ने पति को रोका तो आकाश, दिशाएँ (और) धरा का भी जीवमय होना देखकर धरावर ने उस जल की धारा को, जो करपुटि में थी, आत्मीय पादों पर छिड़का दिया। २३८ [व.] इस प्रकार मित्रसह होने के कारण कलत्रानुकूल होकर, शाप न दे सक कर, और राक्षस-भाव को पाकर, कल्माष (काले) वर्ण के पाँवों से जंगलों में घूमते हुए। २३९ [कं.] [सुदास के] भूख से बहुत तड़पते हुए दीनता के साथ जंगल में रहनेवाले विप्र-मिथुन पर आक्रमण करके और शीघ्र ही विप्र के बाल पकड़कर निगलने जाते समय। २४० [व.] तब उस ब्राह्मण की

व. अंत ना व्राह्मणुनि भार्य मोदिकोनुचुं वेंगडिल्लि डग्गुत्तिकतो वतिकि नड्डंबु वच्चि येड्चुचु राचरक्कसुनकिट्लनियें ॥ 241 ॥

कं. मानुष देहम्मु गलुगुट भूनायक ! दुर्लभंबु पुट्टिन मीदन्
दानमु बरोपकारमु भूनुत कीर्तियुनु वलदे पुरुषुन केंडुन् ॥ 242 ॥

म. रवि वंशाग्रणिवै समस्त धरणी राज्यानुसंधातवै
भुवन स्तुत्युडवै परार्थ रतिवै पुण्यानुकूलुंडवै
विवरंबेमियु लेक ना पतिनिमिटिन् विप्रुं दपश्शीलु स-
त्प्रवरुन् ब्रह्मविदुन् जगन्नुतगुणुन् भक्षिपगा वाडिये ॥ 243 ॥

शा. तंड्री ! मीकु दिनेश वंशजुलकुन् दवंबगुन् ब्राह्मणुं-
डंड्रा माटलु लेव भूमि सुर गोहत्याभिलाषंबु गै-
कोंड्रे मीयट्टुवंटि साधुवुलु रक्षो भाव मिट्लेल मी
तंड्रिन् दातल वूर्वुलं दलपवे धर्मंबुनं बोगवे ॥ 244 ॥

शा. अन्ना ! चेल्लेल नय्येदन् विड्डवु नीकन्नंबु वेंट्टितु ना-
हृन्नाथुन् द्विजु गंगि कुर्रि नकटा हिंसिप नेलय्य ? नी
वेन्नडितुल तोड वुट्टवे निजं बिट्टन मुन् मुट्ट ना
पन्नन् नन्नु शिरंबु व्रुंचि मरि मत्प्राणेशु भक्षिपवे ॥ 245 ॥

---

पत्नी ने (सिर) पीट लेते हुए, डरकर, रुद्धकंठ से अपने पति के रास्ते में आकर रोते हुए राज-राक्षस से यों कहा। २४१ [कं.] हे भूनायक ! मानुषदेह का होना दुर्लभ है; पैदा होने के बाद क्या कहीं भी पुरुष को दान, परोपकार (और) भूनुत कीर्ति का न होना चाहिए ? २४२ [म.] रविवंशाग्रणी होकर, समस्त धरणी राज्यानुसंधाता होकर, भुवनस्तुत्य हो, परार्थरत हो और पुण्यानुकूल बन, विना किसी विवरण (कारण) के मेरे पति को (जो) विप्र है, तपश्शील है, सत्प्रवर है, ब्रह्मविद् है और जगन्नुत-गुणी है, भक्षण करना [तुम्हारे लिए] धर्मसंगत है ? २४३ [शा.] तात ! कहते है कि ब्राह्मण आपके लिए (और) दिनेशवंशजों के लिए देव हैं, क्या वे बातें [अब] नही हैं ? आपके जैसा साधु कहीं भूमिसुर तथा गोहत्या की अभिलाषा रखते हैं ? ऐसा रक्षो-भाव (राक्षसी-प्रवृत्ति) किसलिए ? अपने पिता, पितामह (तथा) पूर्वजो का स्मरण करो न। धर्म (के मार्ग) से चलो न ! २४४ [शा.] भाई ! मैं तुम्हारी (छोटी) बहिन होती हूँ। तुम को अन्न खिलाऊँगी। मेरे हृन्नाथ की, द्विज की, गाय के जैसे साधु की, ओह, हिंसा क्यों कर रहे हो ? क्या तुम कभी इंतियों (स्त्रियों) के साथ पैदा नहीं हुए ? अगर यह सच हो, तो पहले आपन्ना (होनेवाली) मेरे सिर को काटकर, फिर मत्प्राणेश का भक्षण करो। २४५

कं. अनि करुण वुट्ट नाडुचु
वनितामणि पलवरिंप वसुधादेवुं-
दिनियें नतडु, पुलि पशुवुं-
दिनु क्रिय, शापंबु कतन धी रहितुंडै ॥ 246 ॥

व. अंत ना ब्राह्मणि गोपिंचि कामार्तनयिन नादु पेनिमिटिनि भक्षिंचितिवि गावुन नीवु नेलतलं बोंद जेरिन वेळ मरणंबु बोंदुमनि कल्माषपादुनि शपिंचि पतिशल्यंबुलतो नग्नि प्रवेशंबुसेसि सुगतिकि जनियेनु। अंत बंड्रेंडेंड्लु सनिन ना राजु मुनिशाप निर्मुक्तुंडै ॥ 247 ॥

आ. रतुल कोंरकु नालि राविप नदियुनु
बेंदरि विप्रसति शपिंचुटेरिंगि
मगनि नड्डपेट्टि मैथुन कर्मंबु
मान्पे सतुल गोष्ठि मानें नतडु ॥ 248 ॥

क. आदि कारणमुग बुत्रा, भ्युदयमु लेदा सुदासभूपालुनकुं
ददनुमति नव्वसिष्ठुडु, मदयंतिकि गड्डपु सेसें मदनु क्रीडन् ॥ 249 ॥

व. इट्लु सुदासुनि भार्य यगु मदयंति वसिष्ठुवलन गर्भिणियै येडेंड्लु गर्भंबु धरियिंचि नोळ्ळाड, संकट पडुचुन्न वसिष्ठुडु वाडियगु नश्मंबुन नागर्भंबुनु

---

[कं.] इस प्रकार करुणा को पैदा करते हुए बोलती हुई (उस) वनितामणि के रोने पर शाप के कारण, धी (बुद्धि)-रहित होकर, उसने (सुदास ने) वसुधादेव (ब्राह्मण) को, बाघ के पशु को खाने की तरह, खाया। २४६ [व.] तब वह ब्राह्मणी क्रोधित होकर [और] यह कहकर कि मुझ कामार्ता के पति को तुमने खाया, इसलिए जब तुम स्त्रियों से [रति-क्रीड़ा के लिए] मिलोगे तब मृत्यु को पाओगे, ऐसा कल्माषपाद को शाप देकर और पति के शल्यों के साथ अग्नि-प्रवेश करके, सुगति (स्वर्ग) को गयी। इसके बाद बारह बरस बीत जाने पर उस राजा ने मुनि-शाप-निर्मुक्त हो, २४७ [आ.] रतियों के लिए पत्नी को बुलवाया तो वह भी डर कर, विप्रसति के शाप को जानकर और पति को रोककर, मैथुन-कर्म को बन्द कराया; उसने (राजा ने) सतियों की गोष्ठी (संगति) को बन्द किया (छोड़ दिया)। २४८ [कं.] इस कारण उस सुदास भूपाल का पुत्राभ्युदय नहीं रहा (हुआ); उसकी अनुमति से वसिष्ठ ने मदन-क्रीड़ा से मदयंती को गर्भवती बनाया। २४९ [व.] इस प्रकार सुदास की पत्नी मदयंती ने वसिष्ठ से गर्भिणी बनकर और सात बरस (तक) गर्भ धारण करके प्रसव होने में कष्ट (का अनुभव) किया तो वसिष्ठ ने तेज़ अश्म (पत्थर) से उस गर्भ को चीर डाला तो अश्मक नामक पुत्र पैदा हुआ। उसका (पुत्र)

जीरिन नश्मकुंडनु कुमारुंडु पुट्टेनु। अतनिकि मूलकुंडु पुट्टनु अतंडु ॥ 250 ॥

कं. वीरुडगु परशुरामुडु, घोर कुठारमुन नृपुल गूलुचु वेळन्
नारी जनमुलु दाचिन, नारी कवचुंडनंग नलि नुति कॅक्कॅन् ॥ 251 ॥

व. आ नारीकवचुंडु निर्मूलंबयिन रविवंशंबुनकु मुलंबगुटंजेसि मूलकुंडनं बरगॅनु। आमूलकुनकु विश्वसहुंडु पुट्टॅ विश्व सहुनकु खट्वांगुंडु पुट्टि चक्रवर्ति यय्यनु अतंडु ॥ 252 ॥

सी. अमरुलु वेडिन नसुरनाथुल जंपि त्रिदशुलतो दन ब्रदुकु काल
मंतनि यडिगिन निदें निङ्चुन्नदि तडवु लेदेमैन नडुगु मनिन
वरमुलु गोरक वर विमानंबॅक्कि तन पुरिकेतेंचि तत्त्वबुद्धि
बरमेश्वरुनि यंद भावंबु गोलिचि कुलदैवत द्विज कुलमु कंटॅ

ते. नंगनाप्राण राज्य पुत्रादु लॅल्ल
गावु प्रियमुलु धर्मंबु गडचि नादु
मति प्रवतिपदॅन्नडु मति नॅरुंग
नन्यमा यीश्वरुनि दक्क ननुचु मरियु ॥ 253 ॥

म. इल मोदन् ब्रदुकेल वेल्पुल वरंबेला धनंबेल चं-
चल गंधर्वपुरी विडंबनमुलैश्वर्यंबुलेला जगं

---

मूलक हुआ। वह (मूलक)। २५० [कं.] वीर परशुराम के [अपने] घोर कुठार से नृपों का सहार करते समय नारीजन से छिपाया गया तो नारीकवच नाम से अधिक विख्यात हुआ। २५१ [व.] उस नारीकवच के निर्मूलित-रविवंश के का मूल होने के कारण मूलक कहलाया। उस मूलक का विश्वसह पैदा हुआ। विश्वसह का खट्वांग पैदा होकर चक्रवर्ति बना। वह। २५२ [सी.] अमरों के प्रार्थना करने पर असुरनाथों को मार डालकर, त्रिदशो से पूछा कि मेरा जीवनकाल (आयु) कितना है, तो उन्होंने कहा कि (वह) पूरा हो ही रहा है, अधिक समय नहीं है; कुछ माँगो। वर न माँगकर वर विमान पर चढ़कर अपनी पुरी में आकर तत्त्व बुद्धि से परमेश्वर में ही भाव (मन) लगाकर, यह सोचते हुए कि कुलदैवत द्विजकुल की अपेक्षा, [मेरे लिए] [ते.] अंगना-प्राण-राज्य-पुत्र आदि सब प्रिय नहीं है; धर्म को तिरस्कृत कर मेरी बुद्धि कभी प्रवर्तित नहीं होती; उस ईश्वर को छोड़कर और किसी को अपनी मति से नही जानता। और। २५३ [म.] (इस) भूमि पर जीवन किसलिए? देवताओं का वर किसलिए? धन किसलिए? चंचल तथा गंधर्वपुरी की विडंबना करनेवाले ऐश्वर्य किसलिए? जगों को पैदा करने के उद्देश्य से प्रकृति से

बुल बुद्दिटचु तलंपुनं ब्रकृति तो बॉत्तं तुदिबासि नि-
र्मलमै वाङ्मनसासितंबगु परब्रह्मंबु ने जेंदेदन् ॥ 254 ॥

व. अनि निश्चयिंचि ॥ 255 ॥

म. कलसॅन् संगमुलॅल्ल बासि नियतिन् खट्वांगुडश्रांतमै
कलदय्युन् मरि मीद लेदनॅडिदै कल्याणमै यात्मलो
दलपं बल्कगरानिदै परममै तत्वज्ञुलूहिंचि हृ-
ज्जलजातंबुल वासुदेवुडनि संस्थापिंचुना ब्रह्ममुन् ॥ 256 ॥

## अध्यायमु—१०

व. इट्टि खट्वांगुनकु दीर्घबाहुंडु दीर्घबाहुनकु रघुवु रघुवुनकु बृथुश्रवुंडु बृथुश्रवुनकु नजुंडु नजुनकु दशरथुंडुनु बुट्टिरि। आदशरथुनकु सुरप्रार्थितुंडै परब्रह्ममयुंडैन हरि नाल्गु विधंबुलै श्रीराम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न नामंबुल निजांशसंभूतुंडै जन्मिंचॅ तच्चरित्रंबु वाल्मीकि प्रमुखुलन मुनुल चेत वर्णितंबैनदि यैननुं जॅप्पॅद सावधान मनस्कुंडवै याकर्णिपुमु ॥ 257 ॥

---

मिलकर अन्त को छोड़कर, निर्मल होकर वाङ्मनसातीत होनेवाले परब्रह्म को मैं पहुँचूंगा। २५४ [व.] यों निश्चय करके। २५५ [म.] अश्रांत हो, अस्ति और नास्ति के रूप में रहनेवाले, कल्याणकारी हो, आत्मा में चिंतन करने से कहने में अशक्य, परम हो, तत्त्वज्ञ अनुमान करके हृज्जलजातों से वासुदेव कहकर जिसकी सस्थापना करते है, उस ब्रह्म से, खट्वांग, नियति से सभी संगों को (सगतियों को) छोड़कर, मिल गया (ब्रह्म में लीन हो गया)। २५६

## अध्याय—१०

[व.] ऐसे खट्वांग के दीर्घबाहु, दीर्घबाहु के रघु, रघु के पृथुश्रव, पृथुश्रव के अज [और] अज के दशरथ पैदा हुए। उस दशरथ के सुर-प्रार्थित होकर परब्रह्ममय होनेवाले हरि ने चार प्रकार के होकर श्रीराम, लक्ष्मण भरत [और] शत्रुघ्न (के) नामों से निजांश संभूत हो जन्म लिया। तच्चरित्र वाल्मीकि-प्रमुख (आदि) मुनियों से वर्णित हुआ; फिर भी कहूँगा; सावधान मनस्क होकर सुनो। २५७

## श्रीरामचरित्रमु

म. अमरेंद्राशकु बूर्णचंद्रुडुदितुंडैनट्लु नारायणां-
शमुनं बुट्टॆ मदांध रावण शिरस्संघात संछेदन
क्रमणोद्दामुडु रामुडागरितकुं गौसल्यकुन सन्नुता-
सम नैर्मल्यकतुल्यकंचित जनुस्संसार साफल्यकुन् ॥ 258 ॥

म. सवरक्षार्थमु दंड्रि बंप जनि विश्वामित्रुडुं दोड रा
नबलीलं दुनुमाडॆ रामुडदयुंडै बालुडै कुंतल-
च्छवि संपज्जित हाटकं गपट भाषा विस्फुरन्नाटकन्
जवभिन्नार्यमघोटकं गरविराजत्खेटकं दाटकन् ॥ 259 ॥

कं. गारामुन गौशिक मख-
मा रामुडु गाचि दैत्यु नधिकु सुबाहुन्
घोराजि द्रुंचि तोलॆनु
मारीचुन् नीचु गपट मंजुल रोचुन् ॥ 260 ॥

म. ऒक मुन्नूरु गदलिच तॆच्चिन ललाटोग्राक्षु चापंबु बा-
ल करींद्रंबु सुलीलमै जॆरकु गोलं द्रुंचु चंदंबुनन्
सकलोर्वीशुलु सूडगा विरिचॆ दोश्शक्तिन् विदेहक्षमा
पक गेहंबुन सीतकै गुणमणि प्रस्फीतकै लील तोन् ॥ 261 ॥

---

## श्रीराम का चरित्र

[म.] अमरेंद्राशा में (पूरव में) पूर्ण चंद्र के उदय होने के समान मदांध रावण (के) शिरस्संघात-संछेदन-क्रमजोद्दाम राम उस गृहिणी कौसल्या को [जो] सन्नुता, असम नैर्मिल्या, अतुल्या (और) अंचित जनुस्संसार-साफल्या थी, नारायणांश से पैदा हुआ। २५८ [म.] यज्ञ के रक्षार्थ पिता के भेजने पर जाकर, विश्वमात्रि [के] साथ आने पर, राम ने अदय हो और बालक हो, केशों की शोभा की संपदा से जित सुवर्णवाली, कपट-भाषा-विस्फुरन्नाटका, वेग में सूर्य के घोड़ों को हरानेवाली [और] कर-विराजत्-खेटका (ढालवाली) ताटका का बड़ी सुगमता से संहार किया। २५९ [कं.] गौरव से कौशिक के मख की रक्षा करके उस राम ने अधिक बली दैत्य सुबाहु को घोर युद्ध में मार डालकर नीच और कपट मंजुल कांति-युक्त मारीच को (दूर) भगा दिया। २६० [म.] ललाटोग्राक्ष (शिवजी) के चाप को जिसे एक तीन सौ [आदमी] हिला [ढो] कर लाये, सकल उर्वीशों के देखते रहने पर, [अपनी]-दोश्शक्ति (बाहुबल) से, विदेह-क्षमापक (राजा)-गृह में, गुणमणि [तथा] प्रस्फीता सीता के लिए लीला

कं. भूतलनाथुडु रामुडु, प्रीतुंडै पॅंड्लि याडॆं बृथुगुणमणि सं-
घातन् भाग्योपेतन्, सीतन् मुखकांति विजित सित खद्योतन् ॥ 262 ॥

कं. रामुडु निजबाहु बल, स्थेमंबुन भंगपरिचॆं दीर्घकुठारो-
द्दामुन् विदळीकृत नृप, भामुन् रणरंगभीमु भार्गवरामुन् ॥ 263 ॥

कं. दशरथुडु मुन्नु गैककु
वशुडै तानिच्चिनट्टि वरमु कतन वा-
ग्दश सॆडक यडवि कनिचॆनु
दशमुख मुखकमल तुहिन धामुन् रामुन् ॥ 264 ॥

कं. जनकुडु वनिचिन मेलनि
जनकजयुनु लक्ष्मणुंडु संसेविपन्
जनपति रामुडु विडिचॆनु
जनपालाराध्य द्विषदसाध्य नयोध्यन् ॥ 265 ॥

कं भरतुन् निजपदसेवा-
निरतुन् राज्यमुन नुनिचि नृपमणि यॆक्कॆन्
सुरुचिर रुचि परिभावित
गुरु गोत्राचलमु जित्रकूटाचलमुन् ॥ 266 ॥

उ. पुण्युडु रामचंद्रुडटवोयि मुदंबुन गांचॆ दंडका-
रण्यमु दापसोत्तम-शरण्यमु नुद्धत बर्हि बर्ह ला-
वण्यमु गौतमी विमल वाकण पर्यटन प्रभूत सा-
द्गुण्यमु नुल्लसत्तरुनिकुंजवरेण्यमु नग्रगण्यमुन् ॥ 267 ॥

---

से ऐसे तोड़ डाला जैसे बाल-करींद्र सुलीला से ईख के दंड को तोड़ डालता है। २६१ [कं.] भूतलनाथ राम ने प्रीति से पृथु गुणमणि-संघाता, भाग्योपेता और मुखकांति-विजित-सित-खद्योता (-चद्र) सीता से विवाह किया। २६२ [कं.] राम ने निज बाहुबल से दीर्घ कुठार के कारण उद्दाम का, विदलीकृत-नृपतेजस् (वाले) का और रणरंग भीम, भार्गव राम का भंग किया (हरा दिया)। २६३ [कं.] दशरथ ने पहले कैकेयी के वश होकर अपने दिये हुए वर के कारण ताकि वाग्दशा (वचन) बिगड़ न जाय, दशमुख के मुख-कमल के लिए तुहिन-धाम (चंद्र) होनेवाले राम को जंगल में भेज दिया। २६४ [कं.] जनक (पिता) के भेज देने पर (उसे) अच्छा समझकर, जनकजा (सीता) और लक्ष्मण के सेवा करने पर, जनपति रामने जनपालाराध्या और द्विषदसाध्या (शत्रुओं के लिए जीतने असाध्य) अयोध्या को छोड़ दिया। २६५ [कं.] निजपदसेवा-निरत भरत को राज्य में नियुक्त करके राम सुरुचिर-रुचि-परिभावित (-तिरस्कृत करनेवाले) और गुरु-गोत्राचल चित्रकूटाचल (पर) चढ़ गया। २६६ [उ.] पुण्यवान रामचन्द्र

सी. आ वनंबुन रामुडनुज समेतुडै सति तोड नॉक पर्णशाल नुंड
रावणु चॅल्लॅलु रति गोरि वच्चिन मॉगि लक्ष्मणुंडु दानि मुक्कु गोय
नदि विनि खरदूषणादुलु पदुनालुगु वेलु वच्चिन रामविभुडु गलन
बाणानलंबुन भस्मंबु गाविप जनकनंदन मेनि चक्कदनमु

ते. विनि दशग्रीवुडंगज विवशुडगुचु
नर्थि बंचिन बसिडिर्रियै नटिंचु
नीचु मारीचु रामुडु नॅरि वधिचॅ
नंतलो सीत गॉनिपोयॅ नसुरविभुडु ॥ 268 ॥

उ. आ यसुरेश्वरुंडु वडि नंबरवीथि निलातनूज न-
न्यायमु सेसि निष्करुणुडै कॉनिपोवग नड्डमैन घो-
रायतहेति द्रुंचॅ नसहायत रामनरेंद्र कार्य द-
त्तायुवु बक्षवेग परिहासित वायुवु नज्जटायुवुन् ॥ 269 ॥

व. अंत ना रामचंद्रुंडु लक्ष्मण सहितुंडै सीत वॅदक नरुदेंचि निजकार्य
निहतुंडैन जटायुवुनकु बरलोक क्रियलु काविंचि ऋश्यमूकंबुनकुं
जनि ॥ 270 ॥

---

ने वहाँ जाकर संतोष से तापसोत्तम-शरण्य, उद्धत वर्हि-वर्ह-लावण्य [से युक्त], गौतमी-विमल-वा: (-जल)-कण-पर्यटन प्रभूत साद्गुण्य [वाले], उल्लसत्तरु-निकुंज से वरेण्य और अग्रगण्य [होनेवाले] दंडकारण्य को देखा। २६७ [सी.] उस वन में जब राम अनुज समेत होकर सती के साथ एक पर्णशाला में रहता था, रावण की छोटी बहिन [शूर्पणखा] रति [क्रीडा] की इच्छा से आयी तो लक्ष्मण ने जान-बूझकर उसकी नाक काटी। वह (बात) सुनकर खर-दूषण आदि चौदह हजार [राक्षसों] के आने पर रामविभु ने युद्ध में [अपने] बाणानल से [उन्हें] भस्म कर डाला तो जनकनंदना के शरीर के सौंदर्य (के बारे में) सुनकर, [ते.] दशग्रीव अंगज (मन्मथ) विवश होते हुए, चाहकर [उसके] भेजने पर, सोने का हिरण बनकर, नटन करनेवाले नीच मारीच का राम ने (अपने) पराक्रम से वध किया; इस बीच में असुरविभु (रावण) सीता को ले गया। २६८ [उ.] जब वह असुरेश्वर शीघ्रगति से अंबर-वीथि में इला-तनूजा (सीता) को अन्याय करके निष्करुण हो ले जा रहा था, उसके रास्ते को रोकनेवाले, असहाय (अकेले) हो रामनरेंद्र (के) कार्य (के लिए) दत्तायु (प्राण देनेवाले) और पक्षवेग वाले परिहासित वायु से जटायु को (रावण ने) घोरायतहेति (घोर-विशाल खड्ग) से मार डाला। २६९ [व.] तब वह रामचन्द्र लक्ष्मण-सहित हो, सीता का अन्वेषण करने आकर निजकार्य-निहत जटायु की परलोक क्रियाओं को (पूरा) करके ऋष्यमूक को जाकर। २७०

कं. निग्रहमु नीकु वलदिक, नग्रजु वालिन् वधितुनिनि नियममुतो
नग्रेसरुगा नेलँनु, सुग्रीवुं जरणघात चूर्णग्रावुन् ॥ 271 ॥

व. लीलन् रामविभुंडोक कोलं गूलंग नेसँ गुरु नयशालिन् शीलिन् सेवित-
शूलिन् मालिन् वालिन् दशास्यमनोन्मूलित् ॥ 722 ॥

कं. इलमीद सीत वेँदकग, नलघुडु राघवुडु वनिचेँ हनुमंतु नति-
च्छलवंतुन् मतिमंतुन्, वलवंतुन् शौर्यवंतु व्राभववंतुन् ॥ 273 ॥

कं. अलवाटु कलिमि मारुति, ललितामित लाघवमुन लंघिचेँनु शैं-
वलिनीगण संबंधिन्, जलपूरित धरणि गगन संधि ःगंधिन् ॥ 274 ॥

व. इट्लु समुद्रंबु दाटि सीतं गनि हनुमंतुंडु दिरिगि चनुदेंचुचु नक्षकुमारादुल
वधियिंचि ॥ 275 ॥

कं. समुदग्रत ननिल सुतुं, डमराहित दत्तवाल हस्ताग्नुल भ-
स्ममु सेसँ निरातंकन्, समदा सुर सुभट विगत शंकन् लंकन् ॥ 276 ॥

व. इट्लु लंकादहनंबु सेसि वच्चि वायुजुंडु सीता कथनंबु सेँप्पिन विनि
रामचंद्रुंडु वनचरनाथ यूथंबुलुं दानुनु जनि चनि ॥ 277 ॥

---

[कं.] 'तुमको निग्रह (बधन) की आवश्यकता नही है; अब अग्रज बालि का वध करूँगा' यों कहकर (राम ने) नियम से चरणघात से चूर्ण-ग्राव(-पत्थर) वाले सुग्रीव को अग्रेसर (प्रथम) की तरह पालन किया [अपनी शरण में ले लिया]। २७१ [कं.] रामविभु ने एक ही बाण से लीला से गुरु (बड़े) नयशाली, शीली (शीलवान), सेवित शूली (जो शिवजी की सेवा करता है), माली (इन्द्र की दी हुई माला को कंठ में धारण करनेवाले) और दशास्यमानोन्मूली बालि को मार डाला। २७२ [कं.] भूमि पर सीता को ढूंढ़ने के लिए अलघु राघव ने अति उपायशाली, मतिमान, बलवान, शौर्यवान और प्राभववान हनुमान को भेजा। २७३ [कं.] अभ्यस्त होने के कारण मारुति ने शैवलिनीगण-सबंधी (नदियो के समूह के रिश्तेदार) और जलपूरित-धरणि-गगन-सधि (जल से धरणि और गगन के मध्य रहने वाली संधि को भरनेवाले) होनेवाले कधि(समुद्र) का लंघन किया। २७४ [व'] इस प्रकार समुद्र को पार कर [और] सीता को देखकर लौट आते समय हनुमान अक्षयकुमार आदि का वध करके। २७५ [कं.] अनिलसुत ने अमराहितदत्त पूंछ रूपी हस्ताग्नियों से समुद्रगता, निरातका, सुर-असुर-सुभट-निर्भय होनेवाली लंका को भस्म कर डाला। २७६
प्रकार लका-दहन करके आकर वायुज ने सीता को कथा को सुनकर रामचन्द्र वनचरनाथ-यूथ और स्वयं जा-ज क

शा. आ राजेंद्रुडु गांचॆ भूरि विध रत्नागारमुन् मीनकुं-
भीर ग्राहकठोरमुन् विपुल गंभीरंबु! नभ्र भ्रम-
द्घोरान्योन्य विभिन्न भंग भव निर्घोषच्छटांभः कण
प्राग्द्धांबर पारमुन् लवण पारावारमुं जेरुवन् ॥ 278 ॥

व. कनि तनकु द्रोव यिम्मनि वेडिन नदियु मार्गंबु सूपक मिन्नंदिन ना राच-
पट्टि रॆट्टिचिन कोपंबुन ॥ 279 ॥

कं. मॆल्लनि नगवुन नयनमु
लल्लार्चि शरंबु विल्लु नंदिन मात्रन्
गुल्ललु नाचुलु जिप्पलु
बॆल्ललुनै जलधि पॆद्द वीडै युंडॆन् ॥ 280 ॥

व. इट्लु विपन्नुंडगु समुद्रुंडु नदुलतो गूडि मूर्तिमंतुंडयि चनुदॆंचि रामचंद्रुनि
चरणंबुलु शरणंबु जॊच्चि यिट्लनि स्तुतियिंचॆ ॥ 281 ॥

शा. ओ काकुत्स्थकुलेश ! यो गुणनिधी ! यो दीनमंदार ! ने
नी कोपंबुन कॆंतवाड जडधिन् नीवेमि भूराजवे
लोकाधीशुडवादिनायकुड वी लोकंबु लॊल्लप्पुडुन्
नीकुक्षिन्नभविंचुचुंडु नडगुन् निक्कंबु सर्वात्मका ! ॥ 282 ॥

---

[शा.] उस राजेंद्र ने समीप में भूरि विध रत्नागार, मीन-कुंभीर-ग्राह से कठोर, विपुल गंभीर और अभ्रभ्रमत्-घोर-अन्योन्य-विभिन्न भंग-भव-निर्घोषच्छटांभ-कण-प्राग्द्धांबरपार आकाश में भयंकर रूप में आपस में टकराकर और संसार को गर्जन-ध्वनि से भर देनेवाले कांतिपूर्ण जलकणों से आकाश की सीमा को रोकनेवाले) लवण पारावार को देखा। २७८ [व.] देखकर रास्ता देने की प्रार्थना की तो वह (समुद्र) मार्ग न दिखाकर [गर्व से] आकाश की ओर उठा तो उस राजकुमार ने द्विगुणीकृत क्रोध से। २७९ [कं.] थोड़ी सी हँसी से नयनों को घुमाकर शर [और] धनुष को स्पर्श करने मात्र से [वह] जलधि सीपों, शैवाल, घोंघों और ढेलों से [भरकर] बड़ा बीहड़ बन गया। २८० [व.] इस प्रकार विपन्न बन समुद्र ने नदियों के साथ मूर्तिमान होकर, आकर और रामचन्द्र के चरणों की शरण में जाकर इस प्रकार स्तुति की। २८१ [शा.] हे काकुत्स्थकुलेश ! हे गुणनिधे ! हे दीनमंदार ! मैं तुम्हारे कोप के सामने कितना हूँ; मैं जडधि (जलधि) हूँ। तुम तो भू राजा हो, लोकाधीश हो, आदिनायक हो, ये लोक सदा तुम्हारी कुक्षि में उत्पन्न होते, रहते (पोषित होते) और नाश होते (हैं)। हे सर्वात्मक ! यह सच है। २८२ [कं.] हे गुणगणालंकार ! तुम धाताओं को रजस् (रजो) गुण में, देव-व्रात (-समूह) को सत्त्व (गुण) में

कं. धातल रजमुन, देव, -व्रातमु सत्त्वमुन, भूतराशि दममुनन्
जातुलुगा नौनर्चिचु गु, णातीतुडवीवु गुणगणालंकारा ! ॥ 283 ॥

कं. कट्टुमु सेतुव लंकन्, -जुट्टुमु नी बाण शिखल, सुरवैरि तलल्
गौट्टुमु नेलंबड जे, -पट्टुमु नीयबल नधिक भाग्य प्रबलन् ॥ 284 ॥

आ॰ हरिकि माम नगुदु नट मीव श्रीदेवि
तंड्रि नूरकेल ता गंडिप
गट्टट गट्टि दाटु कमलाप्तकुलनाथ !
नी यशोलतलकु नैलवु गाग ॥ 285 ॥

व. अनि बिन्नविंचिन रामचंद्रुंडु समुद्रुनि बूर्व प्रकारंबुन नुंडु पौम्मनि वीडु कौल्पैनु । अंत ॥ 286 ॥

कं. घन शैलंबुलु दरुवुलु
घन जवमुन बैरिकि तैच्चि कपिकुल-नाथुल्
घन जलराशि गट्टिटरि
घनवाह प्रमुख दिविजगणमु नुतिपन् ॥ 287 ॥

व. इट्लु समुद्रंबु दाटि रामचंद्रुंडु रावणु तम्मुंडैन विभीषणुंडु शरणंबु वेडिन नभयंबिच्चि कूडुकौनि लंककु जनि विडिसि बेडॅ पॅट्टिचि लग्गलु पट्टिचिन ॥ 288 ॥

---

और भूतराशि को तम (तमो) गुण में जात (पैदा) करनेवाले गुणातीत हो। २८३ [कं.] बाँधो पुल, घेरा डालो लंका का, अपनी बाण-वह्नि से सुर-वैरि के सिर ऐसे काट डालो कि वे भूमि पर गिर पड़ें; ग्रहण करो अपनी अबला (पत्नी) को जो अधिक भाग्य-प्रबला है। २८४ [आ.] मैं हरि का मामा हूँ; इस पर श्रीदेवी का पिता हूँ। अनावश्यक पीड़ा किसलिये ? हे कमलाप्त-कुलनाथ, सेतु बांधकर ऐसे पार करो कि [जिससे वह] तुम्हारी यशोलताओं का स्थान बने। २८५ [व.] इस प्रकार प्रार्थना की तो रामचन्द्र ने समुद्र से यह कहकर कि पूर्व प्रकार से रहो, जाओ, [कह उसे] बिदा कर दिया। तब २८६ [कं.] घन शैलों को और तरुओं को, घन जव (बड़े वेग) से उखाड़कर, लाकर, कपिकुल-नाथों ने घन जलराशि पर [पुल] को बांधा ताकि घनवाह-प्रमुख (इन्द्र-आदि) दिविजगण स्तुति करें। २८७ [व.] इस प्रकार समुद्र को पारकर रामचन्द्र ने रावण के छोटे भाई विभीषण के शरण माँगने पर, [उसे] अभय देकर, उसके साथ लंका में जाकर, घेरा डालकर, और मोर्चा लगवाकर प्राकारों को पार करने का प्रारंभ किया। २८८ [सी.] प्राकारों को खोदकर, परिखाओं को भरकर,

सी. प्राकारमुलु द्रव्वि परिखलु पूडिचि कोट कॊम्मलु नेल गूल द्रोचि
वप्रंबुलगलिचि वाकिळ्ळु वॆर्कलिचि तलुपुलु विरिचि यंत्रमुलु सॆरिचि
घन विटंकंबुलु खंडिचि पडवेचि गोपुरंबुलु नेल गूल दन्नि
मकर तोरणमुलु महि गूल्चि केतनंबुलु सिंचि सोपानमुलु गदल्चि

आ. गृहमुलॆल्ल व्रच्चि गृहराजमुल ग्रॊच्चि
भर्मकुंभचयमु पारवेचि
करुलु कॊलनु सॊच्चि कलचिन कॆवडि
गपुलु लंक जॊच्चि कलचिरपुडु ॥ 289 ॥

व. अंत नय्यसुरेंद्रुंडु बचिन गुंभ निकुंभ धूम्राक्ष विरूपाक्ष सुरांतक नरांतक दुर्मुख प्रहस्त महाकाय प्रमुखुलगु दनुजवीरुलु शर शरासन तोमर गदा खड्ग शूल भिंदिपाल परशु पट्टिस प्रास मुसलादि साधनंबुलु धरियिंचि मातंग तुरंग स्यंदन संदोहंबुतो ववरंवुसेय सुग्रीव पवनतनय पनस गजगवय गंधमादन नीलांगद कुमुद जांबवदादुला रक्कसुल नॆक्कटि कय्यंबुलंदु, दरुल गिरुल गदाघातंबुल नुक्कडिचि त्रुंचिरंत ॥ 290 ॥

कं. आयॆड लक्ष्मणु डुज्ज्वल, सायकमुल द्रुंचॆ शैल समकायु सुरा-
जेयु ननर्गळ मायो, -पायुन् नयगुण विधेयु नय्यतिकायुन् ॥ 291 ॥

---

क़िले के शिखरों को ज़मीन पर गिराकर, वप्रों को (भीतरी दीवारों को) उखड़वाकर, दरवाज़ों को निकलवाकर, किवाड़ों को तोड़कर, यंत्रों का नाश कर, घन विटंको (गृहोपरिकलशो) को तोड़-गिराकर, गोपुरों को ज़मीन पर ढकेलकर, मकरतोरणो को मही पर गिराकर, केतनों को (झंडों को) फाड़कर, सोपानों को हिलाकर, [आ.] सभी गृहों को तोड़कर, गृहराजों को खोदकर और भर्म (सुवर्णमय) कुभचय को फेककर, कपियों ने लंका में प्रवेश करके, तब ऐसा नाश किया जैसे करि (हाथी) सरोवर मे प्रवेश करके नाश करते है। २८९ [व.] तब उस असुरेंद्र (रावण) के भेजने पर कुंभ, निकुंभ, धूम्राक्ष, विरुपाक्ष, सुरांतक, नरांतक, दुर्मुख, प्रहस्त, महाकाय प्रमुख दनुज-वीरों ने शर-शरासन-तोमर-गदा-खड्ग-शूल-भिंदिपाल-परशु-पट्टिस-प्रास-मुसलादि साधनों को धारण करके मातंग-तुरंग-स्यंदन-संदोह (-समूह) से युक्त होयुद्ध किया तो सुग्रीव, पवनतनय, पनस, गज-गवय, गंध-मादन, नील, अंगद, कुमुद, जांबवान आदियों ने उन राक्षसों को भयंकर युद्धों में तरुओं, गिरियों और गदाघातों से मार डाला; तब। २९० [कं.] तब लक्ष्मण ने उज्ज्वल सायकों (बाणों) से शैलसम काय वाले, सुराजेय (देवताओं के लिए अजेय), अनर्गल मायोपाय (अवाध) वाले और नयगुण विधेय (होनेवाले) उस अतिकाय को मार डाला ने। २९१ [आ.] रामचन्द्र विभु

आ. रामचंद्र विभुडु रणमुन खंडिचें
मेटि कडिमि नीलमेघवर्णु
बाहुशक्ति पूर्णु बटु सिंहनाद सं-
कुचित दिगिभ कर्णु गुंभकर्णु ॥ 292 ॥

कं. अलवुन लक्ष्मणु डाजि-
स्थलि गूल्चेन् मेघनाथु जटुलाह्लादुन्
बलभेदि जय विनोदुन्
बल जनित सुपर्व सुभट भाव विषादुन् ॥ 293 ॥

व. अंत ॥ 294 ॥

कं. तनवारंदरु त्रगिन, ननिमिषपति वैरि पुष्पकारूढुंडै
यनिकि नडचि रामुनितो, घन रौद्रमु तोड नंप कय्यमु सेसेन् ॥ 295 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 296 ॥

कं. सुरपति पंपुन मातलि
गुरुतरमगु दिव्य रथमु गॉनि वच्चिन ना
धरणीवल्लभु डॅक्कॅनु
खरकरु डुदयाद्रि नॅक्कु केवडि दोपन् ॥ 297 ॥

व. इट्लु दिव्य रथारूढुंडयि रामचंद्रुंडु रावणुनकिट्लनियें ॥ 298 ॥

म. चपलत्वंबुन डागि हेममृगमुन् संप्रीति बुत्तॅचुटो
कपट ब्राह्मण मूर्तिवै यबल ना कांतार मध्यंबुनं

---

रण में बड़े पराक्रम से नीलमेघ वर्ण वाले, बाहुशक्तिपूर्ण और पटु सिंहनाद से दिगिभ (दिग्गजों) के कर्णों को संकुचित (बहरा) करनेवाले कुंभकर्ण का खंडन किया (काट डाला)। २९२ [क.] प्रयास से लक्ष्मण ने आजिस्थल (युद्ध भूमि) में चटुल आह्लादवाले, बलभेदी की परा जय पर विनोद करनेवाले (इंद्र को जीत कर विनोद करनेवाले) और बल-जनित सुपर्व-सुभट-भाव-विषाद करनेवाले (अपने बल से देव भटो के मनों को विषाण्ण बनाने वाले) मेघनाद को मार डाला। २९३ [व.] तब। २९४ [कं.] अपने सब लोगों के मर जाने पर अनिमिष-पति-वैरि ने (इन्द्र का शत्रु = रावण) पुष्पकारूढ़ होकर, युद्ध में जाकर, राम के साथ घन-रौद्र से बाण-युद्ध किया। २९५ [व.] उस अवसर पर। २९६ [कं.] सुरपति के भेजने पर मातलि गुरुतर-दिव्य-रथ लाया तो वह धरणीवल्लभ (उस पर) ऐसे चढ़ा मानो खरकर (सूरज) उदयाद्रि पर चढ़ रहा हो। २९७ [व.] इस प्रकार दिव्य रथारूढ़ होकर रामचन्द्र ने रावण से यों कहा। २९८ [म.] हे रावण ! चपलता से छिपकर हेममृग को संप्रीति से भेज देना हो;

दपलापिंचुटयो मदीय शित दिव्यामोघ वाणाग्नि सं-
तपनंबे गति नोर्चुवाडवु दुरंतबॆंतयुन् रावणा ! ॥ 299 ॥

कं. नी चेसिन पापमुलकु, नीचात्मक यमुडु वलदु नेडिट ना ना-
राचमुल द्रुंचि वैचॆद, खेचर भूचरुलु गूडि क्रीडं जूडन् ॥ 300 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 301 ॥

म. बलु विंटन् गुण टंकृतंबु निगुडन् ब्रह्मांड भीमंबुगा
प्रळयोग्रानल सन्निभंबगु महा बाणंबु संधिंचि रा-
ज ललामुंडगु रामुडेसॆं खर भाषा श्रावणुन् देवता-
बलविद्रावणु वैरि दार जन गर्भस्रावणुन् रावणुन् ॥ 302 ॥

कं. दशरथ सूनुंडेसिन, विशिखमु हृदयंबु दूर विवशुंडगुचुन्
दशकंधरुडु गूलॆनु, दशवदनंबुलनु रक्त धारलु दोरगन् ॥ 303 ॥

व. अंत ना रावणुंडु दॆगुट विनि ॥ 304 ॥

सी. कॊप्पुलु विगि वीडि कुसुम मालिकलतो नंसभागंबुल नावरिंप
सेस मुत्यंबुलु सॆदर गणिकलूड गंठहारंबुलुग्रुंकु कोनग
वदन पंकजमुलु बाडि वातॆंड्रलॆंड गन्नोळ्ळ वरुदलंगमुलु दडुप
सन्नपु नडुमुलु जव्वाड वालिड्ल बरवुलु नडुमुल ब्रब्बिकोनग

---

कपट, ब्राह्मण-मूर्ति बनकर (मेरी) अबला को उस कांतार के मध्य में रुलाना हो, [इन कार्यों के समान]; मदीय शत दिव्यामोघ वाणाग्नि (के) संतपन को किस प्रकार सह सकते हो? यह (कितना ही) दुरंत (अति कष्ट प्रद) है ! । २९९ [कं.] तुम्हारे किये हुए पापों के लिए, हे नीचात्मक ! यम की आवश्यकता नही है; आज यहाँ अपने नाराचों (बाणों) से [तुम्हें] काट डालूँगा ताकि खेचर और भूचर मिलकर क्रीडा (आनन्द)-सहित देखें । ३०० [व.] यों कहकर । ३०१ [म.] राज-ललाम राम ने (अपने) बड़े धनुष पर गुण-टंकार के विस्तृत होने पर, ब्रह्मांड के लिए भीम रूप में, प्रळयोग्रानल-सन्निभ होनेवाले बाण का संधान करके, खर-भाषा-श्रावण (कठिन वचन सुनानेवाले), देवताबल-विद्रावण (-भगानेवाले) और वैरिदारा-जन-गर्भ-स्रावण (शत्रुओं की पत्नियों के गर्भस्राव करनेवाले), रावण पर छोड़ा । ३०२ [कं.] दशरथसून के छोड़े हुए विशिख के हृदय में घुस जाने पर, विवश होकर, दशकंधर दश वदनों से रक्त की धाराओं के बहते समय ढेर हो गया । ३०३ [व.] तब उस रावण का कट जाना (मर जाना) सुनकर । ३०४ [सी.] जूड़ों के खुलकर, कुसुम-मालिकाओं के अंश (कंधों) भागों-पर बिखरने पर, माँग के मोतियों के विकीर्ण होने पर, कर्णा-भूषणों के छूट जाने पर, कंठहारों के टूट जाने पर, वदन-पंकजों के

आ. नत्ति मोदिकोनुचु नॅरि बय्यॅदलु जारु
नट्टु निट्टु दप्पुटडुगुलिड्डुचु
नसुरसतुलु वच्चिरट भूत भेताळ-
सदनमुनकु घोर कदनमुनकु ॥ 305 ॥

व. इट्लु वच्चि तम तम नाथुलं गनि शोकिंचिरि अंदु मंदोदरि रावणु जूचि यिट्लनि विलपिंचॅ ॥ 306 ॥

उ. हा दनुजेंद्र ! हा सुर गणांतक ! हा हृदयेश ! निर्जरें-
द्रादुल गॅलिचि नीवु कुसुमास्त्रुनि कोलल कोर्वलेक सो-
न्मादमुगन् रघुप्रवरु मानिनि नेटिकि दॅच्चितप्पुडे
गादनि चॅप्पितन् विनक कालवशंबुन बॊंदितक्कटा ॥ 307 ॥

आ. एंड गाय वॅरचु निनुडु, वॅन्नॅल गाय
वॅरचु विधुडु, गालि वीव वॅरचु
लंकमीद, निट्टि लंकापुरिकि माकु
नधिप ! विधवभावमडरॅ नेडु ॥ 308 ॥

कं. दुरितमु दलपरु गानरु
जरुगुदुरॅटकैन निमिष सौख्यंबुलकै
परवनिता सक्तुलकुनु
बर धन रक्तुलकु निहमु बरमुं गलदे ॥ 309 ॥

---

कुम्हलाकर, ओठों के सूख जाने पर, अश्रुओं की बाढ़ों के अंगों को भिगो देते समय, पतली कमरों के शिथिल हो जाने पर और स्तनों का (भार) कटियों में व्याप्त होने पर, [आ.] सिर पीटते हुए, आँचलों के फिसल जाने पर, इधर-उधर लड़खड़ाते हुए असुर-सतियाँ तब भूत-बैताल-सदन होनेवाले घोर कदन (भूमि) में आयीं। ३०५ [व.] इस प्रकार आकर अपने-अपने नाथों को देखकर शोकित हुईं। उनमें मंदोदरी ने रावण को देखकर इस प्रकार विलाप किया। ३०६ [उ.] हा दनुजेंद्र ! हा सुर गणांतक ! हा हृदयेश ! तुम निर्जरेंद्रादि को जीतकर, कुसुमास्त्र के बाणों को सह न सककर, सोन्माद हो, रघु-प्रवर की मानिनी को क्यों लाये ? तभी मना करने पर भी न सुनकर, ओह, कालवश हो गये हो न ! । ३०७ [आ.] हे अधिप ! इन (सूरज) प्रकाशमान होने के लिए डरता, विधु (चंद्रमा) प्रकाशमान होने के लिए डरता, लंका पर बहने के लिए वायु डरता, ऐसी लंकापुरी को और हमको आज वैधव्य संप्राप्त हुआ। ३०८ [कं.] दुरित (पाप) के बारे में नहीं सोचते, न (उसे) देखते। निमिष (क्षणिक)-सौख्यों के लिए कहीं भी जाते; क्या [ऐसे] परवनितासक्तों और परधनरक्तों को इह [लोक] और पर [लोक] [होते] हैं ? । ३०९

व. अनि विलपिंप नंत विभीषणुंडु रामचंद्रुनि पंपु वडसि रावणुनकु दहनादि क्रियलु गाविंचॅ। अंत राघवेंद्रुंडु नशोकवनंबुन केगि शिशुपा तरु समीपंबुनंदु ॥ 310 ॥

शा. दैतेय प्रमदापरीत, नतिभीतन्, ग्रंथि बंधालक
व्रातन्, निश्श्वसनानिलाश्रुकंण जीवं, जीव दारामभू
जातन्, शुष्क कपोल कीलित कराब्जातं बभूतं, गृशी
भूतं, व्राण समेत सीत गनियॅन् भूमीशुडा मुंदरन् ॥ 311 ॥

व. कनि रामचंद्रुंडुनु दापबु नॊंदि भार्य वलन दोषंबु लेकुंट वह्नि मुखंबुनं ब्रकटंबु सेसि देवतल पंपुन देवि जेकॊनि ॥ 312 ॥

उ. शोषित दानवुंडु नृप सोमुडु रामुडु राक्षसेंद्रता-
शेष विभूति गल्प समजीविवि गम्मनि निलॅपॅ नर्थि सं-
तोषणु बाप शोषणु नदूषणु शश्वदरोषणुन् मिता-
भीषणु नार्य पोषणु गृपा गुण भूषणु नव्विभीषणुन् ॥ 313 ॥

व. इट्लु विभीषण संस्थापनुंडै रामचंद्रुंडु सीता लक्ष्मण समेतुंडै सुग्रीव

---

[व.] इस प्रकार विलाप करने पर, तब विभीषण ने रामचन्द्र की आज्ञा पाकर रावण का दहन आदि क्रियाये कर डालीं। तब राघवेंद्र ने अशोक वन में जाकर शिशुपा तरु के समीप। ३१० [शा.] भूमीश ने वहाँ सामने दैतेय-प्रमदापरीता, (राक्षस-स्त्रियों से परिवृत) अतिभीता, ग्रंथिबंधालक-व्राता (ग्रंथिबधनों से उलझे हुए अलकों से युक्ता), निश्वसनानिलाश्रुकण-जीवंजीवदाराम-भूजाता (निश्वासों की हवाओं से और अश्रुकणों से जिन्दा (पोषित) रहनेवाले उद्यान-वृक्षों मे रहनेवाली सीता), शुष्क कपोल-कीलित-कराब्जाता (सूखे हुए कपोलों पर अपने कर-कमलो को लगाकर बैठी हुई), प्रभूता (प्रख्याता), कृशीभूता [तथा] प्राणसमेता सीता को देखा। ३११, [व.] देखकर रामचन्द्र तप्त होकर [अपनी] भार्या से (में) दोष न होने को वह्नि-मुख से प्रकटित करके, देवताओं की आज्ञा से [अपनी] देवी को लेकर। ३१२ [उ.] शोषित-दानव (दानवों का जिसने शोषण किया हो) [और] नृपसोम (रजचंद्र) राम ने राक्षसेंद्रताशेष-विभूति में (राक्षस राजा के ऐश्वर्य से युक्त) कल्प (हजारयुग)-सम जीवी वनो, यों कहकर अर्थी-सतोषण (करनेवाला) पापशोषण (पाप को शोषित करनेवाला), अदूषण (दूषण न करनेवाला), शश्वदरोषण (कभी रोष न करनेवाला), मिताभाषण (मित रूप से दुष्ट भाषण करनेवाला), आर्य-पोषण (पूज्यों का पोषण करनेवाला), कृपागुण-भूषण (से विराजित) उस विभीषण को खड़ा कर दिया (राजा बनाया)। ३१३ [व.] इस प्रकार विभीषण (की) संस्थापना करनेवाला

हनुमदादुलं गूडिकॊनि पुष्पकारूढुंडै वेल्पुलु गुरियु पुव्वुल सोनलं दडियुचु दॊल्लि वच्चिन तॆरुवु जाडलु सीतकु नॆरिंगिचुचु मरलिनंदिग्रामंबुनकु वच्चॆनु। अय्यवसरंबुन ॥ 314 ॥

आ. रामचंद्र विभुनि राक वीनुल विनि
भरतुडुत्सहिंचि पादुकलनु
मोचिकॊनुचु वच्चि मुदमुतो बुरजनु-
लॆल्ल गॊलुव नन्न कॆदुरु वच्चॆ ॥ 315 ॥

व. वच्चि पादुकल मुंदट निडिकॊनि यॆडनॆड साष्टांगदंडप्रणामंबुलु सेयुचु मॆल्लमॆल्लन डासि रामचंद्रुनि पादंबुलु तन नॊसलं गदियिंचि तच्चरणरेणुवुलु दुडिचि शिरंबुनं जल्लिकॊनि तनिवि सनक मरियु नप्पदकमलंबुलवकुनमोपिकॊनुचु संतसंपु गन्नीटं गडिगि सेमंबु लरयु चुंडॆनु। अंत सीता लक्ष्मण सहितुंडै विभुंडुनु दन कॆदुरु वच्चिन ब्राह्मण जनंबुलकु नमस्करिंचि तक्किन वारलचेत मन्ननलु वॊंदि वारल मन्निंचॆनु। अय्यवसरंबुन ॥ 316 ॥

चं. नृपवर! पॆक्कुनाळ्ळ गॊलॆ निन् गनकुंडिन यट्टि नेडु मा
तपमुलु पंडॆ, निदरमु धन्युलमैतिमटंचु बुट्टमुल्

---

बनकर रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण समेत हो, सुग्रीव और हनुमदादि के साथ पुष्पकारूढ़ होकर देवताओं से बरसायी जानेवाली पुष्प-वर्षा में भीगते हुए, पहले अपने आये हुए मार्गों का विवरण सीता को बताते हुए, लौटकर नंदिग्राम में आया। उस समय पर, ३१४ [आ.] रामचंद्र विभु के आगमन [का समाचार] कानों से सुनकर भरत उत्साह से पादुकाओं को ढोते हुए आकर, मुद (मोद) से, सभी पुरजनों के सेवा करने पर, बड़े भाई के सामने आया। ३१५ [व.] आकर पादुकाओं को सामने रखकर बीच-बीच में साष्टांग दंड-प्रणाम करते हुए, धीरे-धीरे समीप आकर, रामचंद्र के पाँवों को अपने भाल पर लगाकर, तच्चरणरेणुओं को साफ़ करके, सिर पर मार्जन करके, संतृप्त न होकर, फिर उन पदकमलों को [अपनी] छाती पर रखते हुए और आनद-बाष्पों से धोकर उनका कुशल जान ले रहा था! तब सीता लक्ष्मण सहित विभु ने अपने सामने आये हुए ब्राह्मण जनों को नमस्कार करके शेष जनों से प्रशंसित होकर उनका आदर किया। उस समय। ३१६ [च.] "नृपवर! बहुत दिनों से तुम्हें न देखने के कारण से आज हमारे तप सफल हुए (तुम्हें देख पाए); हम सब धन्य हुए", यों कहते हुए चपलता से (अपने) वस्त्र घुमा-फिराकर (हिलाकर), पुष्पों का वसंत खेलते हुए, गाते हुए, गत-त्रप (विगत

चपलत द्रिप्पि पुव्वुल वसंतमुलाडुचु वाडुचुन् गत-
त्रपुलयि याडुचुं व्रजलु दद्वयु वंडुगु सेसि रॆल्लॆडन् ॥ 317 ॥

सी. कवगूडि यिरु वॆंस गपि राजु राक्षस राजु नॊवकट जामरमुलु वीव
हनुमंतु डति धवळातपत्रमु वट्ट बादुकल् भरतुंडु भक्ति दॆर
शत्रुघ्नु डम्मुलु जापंबु गॊनि राग सौमित्रि भृत्युडै चनुवु सूप
जलपात्र चेवट्टि जनकज गूडि रा गांचन खड्ग मंगदुडु मोव

आ. वसिडि कॆडॆ मर्थि भल्लूक पति मोचि
कॊलुव बुष्पकंबु वॆलय नॆक्कि
ग्रहमुलॆल्ल गॊलुव गडु नॊप्पु संपूर्ण-
चंद्रु पगिदि रामचंद्रुडॊप्पॆ ॥ 318 ॥

व. इट्लु पुष्पकारूढुंडै कपि बलंबुलु सेरि कॊलुव श्रीरामुं डयोध्यकुं जनियॆ नंतकु मुन्न यप्पुरंबुनंदु ॥ 319 ॥

सी. वीथुलु सवरगाविंचि तोयंबुलु सल्लि रंभास्तंभ चयमु निलिपि
पट्टु जोरॆलु सुट्टि बहु तोरणंबुलु गलुवडंबुलु मेलुकट्लु गट्टि
वेदिक ललिकिंचि विविधरत्नंबुल म्रुग्गुलु पलुचंदमुलुग वॆट्टि
कलय गोडल राम कथलॆल्ल व्रायिंचि प्रासादमुल देव भवनमुलनु

---

लज्जाशील) होकर खेलते हुए, प्रजा ने सब जगहों पर अधिकता से त्यौहार (उत्सव) मनाया। ३१७ [सी.] कपिराजा और राक्षस राजाओं का जोड़ा एक बनकर चामरों का विजन (हिलाना) करने पर, हनुमान के अति धवल आतपत्र (छात्र) को पकड़ने पर, भक्ति से भरत के पादुकाओं को लाने पर, शत्रुघ्न के बाण और चाप (धनुष) ले आने पर, सौमित्रि के भृत्य होकर अधिक सन्निहितत्व दिखाने पर, जल-पात्र को हाथ में लेकर जनकजा के साथ आने पर, अंगद के कांचन खड्ग को ढोने पर, [आ.] सुवर्ण झंडे को ले प्रेम से भल्लूक पति के ढोकर सेवा करने पर, पुष्पक को प्रकाशमान करते हुए चढ़ कर, सारे ग्रहों की प्रार्थना करने पर, बहुत सुंदर दिखाई पड़नेवाले संपूर्ण चंद्रमा की तरह रामचंद्र प्रकाशमान हुआ। ३१८ [व.] इस प्रकार पुष्पकारूढ़ होकर कपिसेना के आकर सेवा करने पर, श्रीराम अयोध्या में गये; इसके पहले ही उस पुर में। ३१९ [सी.] वीथियों को साफ़ कराकर, जल छिड़काकर, रंभास्तंभचय (केले के तनों का समूह) खड़ाकर, [उन्हें] रेशमी साड़ियों से लपेटकर, बहुतोरण [और] सुवर्णमय कमलों से युक्त चंदोवाओं को बांधकर, वेदिकाओं को लीप-पोत कराकर, विविध रत्नों से अनेक प्रकार की रंगवल्लियाँ रचाकर, सुंदर दीवारों पर सभी रामकथाओं को

ते. गोपुरंबुल बंगारु कुंड लॅत्ति
यॅल्ल वाकिड्ल गानुक लेर्परिचि
जनुलु गॅसेसि तूर्य घोषमुल तोड
नॅदुरु नडतेंचिरा राघवेंद्रु कडकु ॥ 320 ॥

कं. समद गजदानधारल, दुमदुमलै युन्न पॅद्द त्रोवल तोडन्
रमणीयमय्यॅ नप्पुरि, रमणुडु वच्चिन गरंगु रमणिय पोलॅन् ॥ 321 ॥

आ. रामचंद्रविभुनि राक दूर्यमुलतो
रथ गजाश्व सुभटराजि तोड
नमरॅ बुरमु चंद्रुडरुदेर घूर्णिल्लु
जंतु भंग मिळित जलधि भंगि ॥ 322 ॥

व. इट्लॊप्पुचुन्न यप्पुरंबु प्रवेशिंचि राजमार्गंबुल् रामचंद्रुंडरुगुचुन्न समयंबुन ॥ 323 ॥

म. इतडे रामनरेंद्रुडी यवल का यिंद्रारि खंडिचॅ न-
ल्लतडे लक्ष्मणु, -डातडे कपिवरुंडा पॊत वाडे मरु-
त्सुतुडा चॅंगट ना विभीषणुडटंचु चेतुलं जूपुचुन्
सतुलॅल्लं बरिकिंचि चूचिरि पुरी सौधाग्रभागंबुलन् ॥ 324 ॥

व. इट्लु समस्त जनंबुलु चूचुचुंड रामचंद्रुंडु राजमार्गंबुनं जनि चनि ॥ 325 ॥

---

लिखवाकर, प्रासादों, [ते.] देवभवनों (और) गोपुरों पर स्वर्णकुंभों को रखवाकर, सब द्वारों पर उपहारों का प्रबंध करके, लोग तूर्यघोषों के साथ आकर, राघवेंद्र के पास प्रतिदिशा में (अभिमुख हो) पैदल गये। ३२० [कं.] समद-गज-दान-धाराओ से भीगे हुए बड़े रास्तों (राजमार्गों) से वह नगरी उसी प्रकार रमणीय बन गई जिस प्रकार रमण (प्रियतम) के आने पर रमणी पिघल जाती है। ३२१ [आ.] रामचन्द्र विभु का आगमन तूर्य (नादों) से (और) रथगजाश्वसुभटराजि के साथ उसी प्रकार प्रकाशमान हुआ जिस प्रकार चद्र के आने पर (निकलने पर), जतु [और] भंग (तरंग)-मिलित-जलधि घूर्णित हो जाता है। ३२२ [व.] इस प्रकार सुंदर लगने वाले उस पुर में प्रवेश करके जब रामचद्र राजमार्ग से जा रहा था। ३२३ [म.] "यही राम नरेंद्र है; इस अबला (सीता) के लिए उस इन्द्रारि (रावण) का खंडन किया (वध किया); वह देखो, वही लक्ष्मण है, वही कपिवर है, वहाँ समीप रहनेवाला ही मरुत्सुत है; वहाँ समीप ही वह विभीषण है"; यों कहते हुए हस्तो से दिखाते हुए (इशारा करके), सभी सतियों ने पुरीसौधाग्र भागों पर (से) ध्यान से देखा। ३२४ [व.] इस प्रकार सभी जनों के देखते समय रामचन्द्र राजमार्ग से जा-जाकर, ३२५

सी. पटिकंपु गोडलु ववडंपु वाकिड्लु नीलंपुटरुगुलु नॅऱय गलिगि
कमनीय वैडूर्यक स्तंभ चयमुल मकर तोरणमुल महितमगुचु
बडगल माणिक्यबद्ध चेलंबुल जिगुरु दोरणमुल जेलुवु मीऱि
पुष्पदामकमुल भूरिवासनलनु बहुतर धूप दीपमुल मॆऱसि

ते. माऱु वेल्पुल भगिनि मलयुचुन्न
सतुलु बुरुषुलु नॅप्पुडु संदडिंप
गुरुतुलिडरानि घनमुल कुप्पलुन्न
राजसदनंबुनकु वच्चॆ रामविभुडु ॥ 326 ॥

व. इट्लु वच्चि ॥ 327 ॥

उ. तल्लुल कॆल्ल म्रॊक्कि तम तल्लिकि वंदनमाचरिंचि य-
ल्लल्ल बुधाळिकिन् विनतुडै चॆलिकाड्रनु दम्मुलं ब्रसं-
फुल्लत गौगिलिंचुकॊनि भूवरुडोलि गृपारसंबु रं-
जिल्लग जाल मन्ननलु सेसॆ नमात्युल बूर्व भृत्युलन् ॥ 328 ॥

व. तत्समयंबुन दल्लुलु ॥ 329 ॥

चं. कॊडुकुलु वॆद्द कोडलुनु गॊब्बुन म्रॊक्किन नॆत्ति चेतुलन्
बुडुकुचु मोमुलुं दरलु बोरन मुद्दुलु गॊंचु नव्वुचुन्
दॊडलकु वारि रा दिगिचि तोगग जेसिरि नेत्र धारलन्
वडलिन प्राणमुल् दग नविष्टमुलय्यॆ नटंचु नुब्बुचुन् ॥ 330 ॥

[सी.] स्फटिक की दीवारें, विद्रुम के दरवाजे (और) नीलम के चबूतरों के साथ, कमनीय वैडूर्य के स्तभचयों के मकरतोरणो से महान् होकर, झंडों, माणिक्यबद्ध चेलों, (और) पल्लवों के तोरणों से वहुत सुन्दर वनकर, पुष्पदामकों की भूरिवासनाओं से और बहुतर धूप-दीपों से प्रकाशमान होकर [ते.] अपर देवताओं की तरह घूमती हुई सतियों और पुरुषों से सदा भरकर, गिनी न जा सकनेवाली धनराशियों से युक्त राज-सदन में रामविभु आया। ३२६ [व.] इस प्रकार आकर। ३२७ [उ.] सभी माताओं को नमस्कार करके, अपनी माँ की वंदना करके, धीरे-धीरे बुधालि (पंडितों का समूह) को विनीत होकर, सखाओं और भाइयों को (से) प्रफुल्ल हो, एक-एक करके (क्रम से) आलिंगन करके, भूवर ने कृपा-रस से भरकर, अमात्यों और पूर्वभृत्यों का आदर किया। ३२८ [व.] तत्समय मातायें ३२९ [चं.] जब पुत्र और बड़ी वहू ने शीघ्र नमस्कार किया, (उनके) सिरों पर हाथों से फेरते हुए, मुँह पर अत्यधिक चूमते हुए, हँसते हुए, [उन्हें] जाँघों पर लेकर, अपनी अश्रु-धाराओं से आनंद से फूलते हुए उनको डुबो दिया, मानो गये हुए प्राण फिर से प्रवेश कर गये हों। ३३०

व. अंत वसिष्ठुंडरुगुदेंचि श्रीरामचंद्रुनि जटाबंधंबु विडिपिंचि कुल वृद्धुलुं दानुनु समंत्रकंबुग, देवेंद्रुनि मंगळ स्नानंबु सेयिंचु बृहस्पति चंदंबुन, समुद्र नदी जलंबुल नभिषेकंबु सेयिंचें। रघुवरुंडुनु सीतासमेतुंडै जलकंबु लाडि मंचि पुट्टंबुलु गट्टुकोनि कम्मनि पुव्वुलु दुरिमि सुगंधबुललंदिकोनि तोंडवुलु दोडिगिकोनि तनकु भरतुडु समर्पिंचिन राजसिंहासनंबुनं गूर्चुंडि यतनि मन्निंचि कौसल्यकु प्रियंबु सेयुचु जगत्पूज्यंबुग राज्यंबु सेयुचुंडेनु। अप्पुडु ॥ 331 ॥

सी. कलगुटेल्लनु मानें जलधु लेंडिटिकि जलवंबु मानें भूचक्रमुनकु
जागरूकत मानं जलजलोचनुनकु दीनभावमु मानें दिक्पतुलकु
मासि युंडुट मानें मार्तांड विधुलकु गाविरि मानें दिग्गगनमुलकु
नुडिकि पोवुट मानें नुर्वीरुहंबुल कडगुट मानें त्रेताग्नुलकुनु

आ. गडिदि व्रेगु मानें गरि गिरि किटि नाग
कमठमुलकु प्रजल कलक मानें
रामचंद्र विभुडु राजेंद्र रत्नंबु
धरणि भरणरेख दाल्चु नपुडु ॥ 332 ॥

व. मरियुनु ॥ 333 ॥

---

[व.] तब वशिष्ठ ने आकर श्रीराम के जटाबंधन को खुलवाकर, कुलवृद्ध और (वह) स्वयं मंत्र-सहित, देवेंद्र से मंगल-स्नान करानेवाले बृहस्पति की तरह, समुद्र (और) नदी-जलों से अभिषेक कराया। रघुवर भी सीता समेत होकर स्नान करके, शुभ्र-वस्त्र पहनकर, सुगंधपूरित पुष्पों को धारण करके, सुगंध-लेपन करके, आभूषण धारण कर, अपने को भरत द्वारा समर्पित राजसिंहासन पर बैठकर और उसका आदर करके कौसल्या को प्रिय करते हुए, जगत्पूज्य बनकर राज्य करता रहा। तब ३३१ [सी.] जब राजेंद्ररत्न रामचन्द्रविभु धरणिभरण रेखा का भार लेता था तब सातों जलधियों का संक्षुभित होना बन्द हो गया; भूचक्र का चलन (कंपन) होना बन्द हो गया; जलजलोचन ने सावधानी छोड़ दी; दिक्पतियों का दीन भाव न रहा; मार्तांड (सूरज) [और] विधु (चन्द्रमा) का कांतिहीन होना समाप्त हुआ; दिग्गगनों की कालिमा दूर हो गयी; उर्वीरुहों (वृक्षों) का कुम्हलाना बन्द हो गया; त्रेताग्नियाँ (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आह्वनीय) कभी बुझी नहीं; [आ.] करि (दिग्गज), गिरि, किटि (वराह), नाग (शेष) और कमठ (कूर्म) का भार दूर हुआ, प्रजा का कष्ट दूर हुआ। ३३२ [व.] और भी ३३३ [सी.] स्त्रियों के कटाक्षों में ही चंचलता, अबलाओं की कमरों में ही अभाव, कांताओं के

सी. पोलतुल वालुचूपुलयंद चांचल्य मवलल नडुमुल यंद लेमि
कांतालकमुलंद कौटिल्य संचार मतिवल नडपुलयंद जडिम
मगुदल परिरंभमुल यंद पीडन मंगना कुचमुल यंद पोरु
पडतुल रतुलंद वंधसद्भावंबु सतुल वयिटलंद संज्वरंबु

ते. प्रियुलु प्रियरांड्र मनमुल वॅरसि तार्पु
लंद चौर्यंबु वल्लभु लात्म सतुल
नागि कॊम्मुळ्ळु वट्टुलं दक्रमंबु
रामचंद्रुंडु पालिचु राज्यमंदु ॥ 334 ॥

कं. तंड्रिक्रिय रामचंद्रुडु, तंड्रुल मर्रपिंचि प्रजल दा रक्षिपन्
दंड्रुल नंदरु मर्रचिरि, तंड्रि गदा रामचंद्र धरणिपुडनुचुन् ॥ 335 ॥

व. मरियु नारामचंद्रुंडु राजर्षि चरितुंडुनु निज धर्म निरतुंडुनु नेकपत्नी-
व्रतुंडुनु सर्वलोक सम्मतुंडुनु नगुचु धर्म विरोधंबु गाकुंड गोरिकलनुभविंपुचु
त्रेतायुगंबैन गृतयुग धर्मंबु गाविंचुचु वाल मरणंबु मोदलगु नरिष्टंबुलु
प्रजलकु गलुगकुंड राज्यंबु सेयुचुंडे नय्येड ॥ 336 ॥

आ. सिग्गु वड्ट गलिग सिंगारमुनु गलिग
भक्ति गलिग चाल भयमु गलिग
नयमु भ्रियमु गलिग नरनाथु चित्तंबु
सीत दनकु वशमु सेसिकॊनियॆ ॥ 337 ॥

---

अलकों में ही कुटिलता का संचार, वनिताओं की चालों में ही जडत्व, मुग्धाओं के परिरभों मे ही पीड़ा, अगनाओं के कुचों में ही तनाव, सुंदरियों की रतियों में ही बंध-सद्भाव, सतियों के विछुड़ने में ही संज्वर, [ते.] प्रियो के प्रियतमाओं के मनों मे व्याप्त होने में ही चौर्य और वल्लभों (प्रियतमों) के आत्मसतियों के नीवी-बंधनो को पकड़ने में ही अक्रम, [ये] रामचन्द्र के पालित राज्य में पाये जाते थे। ३३४ [क.] जब अपने पिता की तरह रामचन्द्र, पितरों को भुला दे, इस प्रकार प्रजा की रक्षा कर रहा था, यह कहते हुए कि रामचन्द्र-धरणीश (राजा राम) ही तो पिता है, सब लोग (अपने) पिताओं को भूल गये। ३३५ [व.] और वह रामचन्द्र राजर्षिचरित, निजधर्म-निरत, एकपत्नीव्रत (वाला) और सर्वलोकसम्मत होते हुए धर्म का विरोध न करके, इच्छाओं का अनुभव करते हुए, त्रेतायुग होने पर भी कृतयुग के धर्म का पालन करते हुए बालमरण आदि अरिष्ट प्रजा को न हो, ऐसा राज्य करता रहा। तब ३३६ [आ.] लज्जित होते हुए, शृंगार करके, भक्ति और अधिक भययुक्त होकर, नय और भय के साथ नरनाथ के चित्त को सीता ने अपने वश कर लिया। ३३७

## अध्यायमु—११

व. अनिन विनि परीक्षिन्नरेंद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 338 ॥

आ. भ्रातृ जनुलयंदु बंधुवुलंदुनु, प्रजलयंदु, राजभावमॊंदि
यट्लु मॆलगॆ राघवेश्वरुंडीश्वरु, गूर्चि क्रतुवु लॆट्लु गोरि चेसॆ ॥ 339 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 340 ॥

सी. भगवंतुडगु रामभद्रुंडु प्रीतितो देवोत्तमुनि सर्वदेवमयुनि
दनु दान गूर्चि यध्वरमुलु सेसॆनु होतकु दूरुपु नुत्तरंबु
सामगायकुनिकि शमन दिग्भागंबु ब्रह्मकु ग्रममुन बडमरॆल्ल
नध्वर्युनकु शेषमाचार्युनकु निच्चि सोम्मुल बंचि भूसुरुल कीसगि

ते. तनकु रॆंडु पुट्टंबुलु दनकु नयिन
मॆलत मंगळ सूत्रंबु मिनुकु दक्क
विनतुडै युंडॆ ना रामु वितरणंबु
पांडवोत्तम ! येमनि पलुक वच्चु ॥ 341 ॥

व. अंत ना रामचंद्रुनि दानशीलत्वंबुनकु मॆच्चि विप्रवरुलु दम तम भूमुलु
मरल निच्चि यिट्लनिरि ॥ 342 ॥

---

## अध्याय—११

[व.] (इस प्रकार) कहने पर सुनकर परीक्षिन्नरेन्द्र ने यों कहा : ३३८ [आ.] भ्रातृ जनों में, बधुओं में (और) प्रजा (लोगों) में राजा (का) भाव पाकर राघवेश्वर ने कैसा व्यवहार किया और ईश्वर के प्रति इच्छा करके क्रतु कैसे किये ? ३३९ [व.] (यों) कहने पर शुक ने इस प्रकार कहा । ३४० [सी.] भगवान होनेवाले रामभद्र ने प्रीति से देवोत्तम (और) सर्वदेवमय (होनेवाले) अपने आपके प्रति अध्वर (यज्ञ) किये; होता को पूर्व (दिशा), सामगायक को उत्तर (दिशा), ब्रह्मा को शमन दिक् (दक्षिण)-भाग और सारे पश्चिम को अध्वर्यु को क्रम से देकर; [ते.] शेष आचार्य को देकर और आधा-आधा बाँटकर भूसुरों को देकर अपने लिए दो वस्त्र (और) अपनी स्त्री के मंगलसूत्र को छोड़कर [और सब कुछ दान-धर्म में देकर] विनम्र होकर रहा तो उस राम के वितरण (गुण) के बारे में, हे पांडवोत्तम ! क्या कह सकते हैं ? (वर्णन नहीं कर सकते) । ३४१ [व.] तब उस रामचंद्र की दानशीलता से संतुष्ट होकर विप्रवरों ने अपनी-अपनी भूमियाँ वापस करके इस प्रकार कहा : ३४२

आ. धरणि वलदु माकु दपसुल केल नी-
यखिल लोक गुरुडवैन हरिवि
मा मनंबुलंदु मलगु चीकटि वापु
भवदुदार दृष्टि पार्थिवेंद्र ! ॥ 343 ॥

व. अनि पलिकिन ब्रह्मण्यदेवुंडै रामचंद्रुनि विनयोक्तुलं बूजिंचि मुनुलु चनिरि। इट्लु पेद्द कालंबु राज्यंबु सेसि राघवेंद्रुंडौकनाडु दिनंबुन ॥ 344 ॥

सी. वसुधपै बुट्टेडु वार्त लाकर्णिंप कोरकुनं रामुंडु गूढवृत्ति
नडुरेयि दिरुगुचो नागर जनुललो नोपकुडु दनसति नोल्लकुन्न
नोरु निंट गापुरंबुन्न चंचलुरालि नायंग लेक चेपट्टनेमि
ता वेर्रियगु राम धरणीश्वरुंडने चेल ! पोम्मनु माट विटडु पलुक

आ. नालकिंचि मरियु नामाट चारुल
वलन जगमु लोन गलुग विलिसि
सीत निद्रवोव जेप्पक वाल्मीकि
पर्णशाल वेट्ट पनिचे रात्रि ॥ 345 ॥

व. अंत सीतयु गर्भिणि गावुन कुशलवुलनियेडि कोडुकुलं गनिये। वारिकि वाल्मीकि जातकर्मंबु लोनरिचे। लक्ष्मणुनकु नंगदुंडुनु जंद्रकेतुंडुनु, भरतुनकु दक्षुंडुनु बुष्कलुंडुनु शत्रुघ्नुनकु सुबाहुंडुनु, श्रुतसेनुंडुनु संभविंचिरि अय्येड ॥ 346 ॥

---

[आ.] "हे पार्थिवेंद्र ! हमको धरणि न चाहिए। तपस्वियों को [भूमि] किसलिए ? तुम अखिल लोकगुरु होनेवाले हरि हो। हमारे मनों में होनेवाले अंधकार को अपनी उदार रुचियों से दूर करो।" ३४३ [व.] यों कहकर विनयोक्तियों से ब्रह्मण्यदेव होनेवाले रामचंद्र की पूजा करके मुनि (गण) चले गये। इस प्रकार बहुत काल तक राज्य करके राघवेंद्र एक दिन ३४४ [सी.] वसुधा पर पैदा होनेवाले समाचारों को सुनने के लिए [राम] गूढ़ वृत्ति से आधी रात में जब घूम रहा था तब नागरिकों में एक [नागरिक] अपनी सती को, जो अपने प्रिय होनेवाले किसी दूसरे के घर में गृहस्थी करते हुए रहनेवाली चंचला थी, जिसने दोष नहीं माना था, स्वीकार करने के लिए [तिरस्कार करके इस प्रकार बोला] "रे मूढे ! क्या मैं मूर्ख राम धरणीश्वर हूं, चली जाओ।" [आ.] यों धीठता से (बिना सोचे) कहा तो यह सुनकर और उस बात को गुप्तचरों के द्वारा जग में व्याप्त हुआ जानकर (राम ने) सीता के सो जाने पर उससे कहे बिना वाल्मीकि की पर्णशाला में छोड आने के लिए रात को भेज दिया। ३४५ [व.] तब सीता गर्भिणी थी, अतः कुश (और) लव नामक दो बेटों को जन्म दिया। वाल्मीकि ने उनके जातकर्म किये। लक्ष्मण के अंगद और

कं. वंधुर बलुडगु भरतुडु, गंधर्व चयंबु द्रुंचि कनकादुल स-
द्बंधुडगु नन्न किच्चेनु, वंधुवुलुनु मातृ जनुलु ब्रजलुन् मेच्चन् ॥ 347 ॥

आ. मधुवनंबु लोन मधुनंदनुंडगु, लवणु जंपि भुजबलंबु मेरसि
मधुपुरंबु सेसे मधु भाषि शत्रुघ्नु, -डन्न रामचंद्र-डौननंग ॥ 348 ॥

व. अंत गोंत कालंबुनकु रामचंद्रुनि कुमारुलयिन कुशलवुलिद्दरुनु वाल्मीकि वलन वेदादि विद्यलयंदु नेर्परुलै पेक्कु सभल सतानंबुगा राम कथाश्लोकंबुलु पाडुचु नोक्कनाडु राघवेंद्रुनि यज्ञशालकुंजनि ॥ 349 ॥

मत्त. वट्टि म्राकुलु पल्लविंप नवारियै मधु धार दा
नुट्ट बाडिन वारि पाटकु नुर्वराधिपुडुन् ब्रजल्
विट्टु संततमंदिरय्यॆड ब्रीति गन्नुल बाष्पमुल्
दोट्ट नौदललूचि वारल तोडि मक्कुव वुट्टगान् ॥ 350 ॥

व. अंत ना रामचंद्रुंडु कुमारुल किट्लनियें ॥ 351 ॥

आ. चिन्नयन्नलार ! शीतांशुमुखुलार !
नळिनदळ विशाल नयनुलार !
मधुरभाषुलार ! महिमीद नेव्वरु
दल्लि दंड्रि मीकु धन्युलार ! ॥ 352 ॥

---

चंद्रकेतु, भरत के दक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्न के सुबाहु और श्रुतसेन संभव हुए (पैदा हो गये)। तब ३४६ [कं.] बहुत बलवान भरत गंधर्वचय का नाश करके कनक आदि को सद्बधु होनेवाले [अपने] बड़े भाई को दिया (समर्पित किया), ताकि बंधु, मातृजन और प्रजा [उसकी] प्रशंसा करे। ३४७ [आ.] मधुवन मे मधुनंदन बने लवण को मार डाल कर, भुजबल से प्रकाशित होकर, मधुभाषी शत्रुघ्न ने (उस वन को) मधुपुर बनाया जिसकी बड़े भाई रामचद्र प्रशंसा करें। ३४८ [व.] इसके कुछ काल के बाद रामचंद्र के पुत्र कुश और लव दोनों वाल्मीकि से वेद आदि विद्याओं में प्रवीण बनकर अनेक सभाओं में तान सहित रामकथा के श्लोक गाते हुए एक दिन राघवेंद्र की यज्ञशाला में जाकर ३४९ [मत्त.] सूखे हुए पेड़ों को (भी) पल्लवित करते हुए (और) बिना रुके मधुधारा को बरसाते हुए गाये गये उनके गीत को (सुनकर) उर्वराधिप (राजा) [और] प्रजा अधिक संतुष्ट हुए। तब प्रीति से आँखों में से [आनंद] बाष्प बरसाते हुए सिर हिलाकर, उनसे (उन पर) प्रेम के पैदा होने पर, ३५० [व.] तब उस रामचंद्र ने कुमारों से यों कहा : ३५१ [आ.] "छोटे बच्चो ! शीतांशुमुखवालो ! नलिन-दल-विशाल-नयनवालो ! मधुरभाषी ! धन्य ! मही पर कौन तुम्हारे माता-पिता हैं ?" ३५२

व. अनिन, वार "लेमु वाल्मीकि पौत्रुलमु। राघवेश्वरुनि यागंबु चूड वच्चितिमि" मनवृडु मॆल्लन नगि यॆल्लि ब्रॊद्दुन मीतंड्रि नॆरिगॆॆदरुंडुंडनि यीक्क निवासंबुनकु सत्करिंचि पनिचॆ। मरुनाडु सीतं दोड्कॊनि कुशलवुल मुंदट निडुकॊनि वाल्मीकि वच्चि रघुपुंगवुनि गनि यनेक प्रकारंबुल विनुतिंचि यिट्लनियॆ ॥ 353 ॥

आ. सीत सुद्दरालु चित्तवाक्कमंबु-
लंदु सत्यमूर्ति यमल चरित
पुण्यसाध्वि विडुव बोलदु चेकॊनु
रवि-कुलाब्धिचंद्र ! रामचंद्र ! ॥ 354 ॥

व. अनि वाल्मीकि वलुक रामचंद्रुंडु पुत्रार्थियै विचारिंप गुशलवुलनु वाल्मीकिकि नॊप्पगिंचि रामचंद्र चरण ध्यानंबु सेयुचु निराशयै सीत भूविवरंबु सॊच्चॆनु। अय्यॆड ॥ 355 ॥

म. मुदिता ! येटिकि ग्रुंकितीवु मनलो मोहंबु चिंतिपवे
वदनांभोजमु चूपवे मृदुवु नी वाक्यंबु विन्पिपवे
तुदि सेयं दगदंचु नीश्वरुडुनै दुःखिंचॆ भूपालु डा-
पद गादे प्रियुरालि बासिन तद्रिन् भाविंप नॆव्वारिकिन् ॥ 356 ॥

---

[व.] यों कहने पर उन्होंने कहा, "हम वाल्मीकि के पौत्र हैं। राघवेश्वर का याग देखने आये हैं।" तब (राम ने) कुछ हँसकर कहा, "परसों सुबह को अपने पिता को जान लोगे, ठहर जाओ।" उनका सत्कार करके उनको एक निवास-स्थल को भेज दिया। दूसरे दिन सीता को साथ लेकर, कुश और लव को सामने रखकर, वाल्मीकि आये और रघुपुंगव को देखकर, अनेक प्रकार से विनति करके इस प्रकार कहा, ३५३ [आ.] "सीता शुद्धा है; चित्त, वाक् और कर्म में सत्यमूर्ति है; अमल-चरिता है। पुण्य-साध्वी है; परित्यक्ता होने योग्य नहीं है। हे रविकुलाब्धिचंद्र ! रामचंद्र ! [इसको] स्वीकार करो।" ३५४ [व.] वाल्मीकि के इस प्रकार कहने पर रामचन्द्र के पुत्रार्थी हो विचारने पर, कुश और लव को वाल्मीकि को सौंप कर, रामचंद्र के चरणों का ध्यान करते हुए, निराश हो, सीता भूविवर में घुस गयी। तब ३५५ [म.] "मुदिते ! तुम क्यों (भूमि में) घुस गयी ? क्या हममें होनेवाले मोह के बारे में नहीं सोचा ? [अपना] वदनांभोज दिखाओ न। अपने मृदु वाक्य (वचन) सुनाओ न। [इस प्रकार अपना] अन्त नहीं करना चाहिए। यों कहते हुए ईश्वर होकर भी भूपाल दुःखित हुआ। प्रिया को छोड़ने पर, चाहे कोई भी हो, वह आपदा (दुःख का कारण) नहीं है ? ३५६ [व.] यों रोकर रामचंद्र ब्रह्मचर्य धारण

व. अनि वगचि रामचंद्रुंडु ब्रह्मचर्यंबु धरियिंचि पदुमूडवेल येंड्लॅंडतॅंगकुंड नग्निहोत्रंबुलु सॅल्लिंचि तानीश्वरुंडु गावुन दन मोदलि नॅलवु नकुं जनियॅनु । इव्विधंबुन ॥ 357 ॥

आ. आदिदेवुडैन या रामचंद्रुनि-
कब्धि गट्टुटॅंत यसुरकोटि
जंपुटॅंत कपुल साहाय्यमदि यॅंत
सुरल कोरकु ग्रीड सूपें गाक ॥ 358 ॥

चं. वशुडुग ग्रोक्कॅंदन् लवण वार्धि विजृंभणता-निर्वतिकिन्
दशदिगधीश मौळिमणि दर्पण मंडित दिव्य कीर्तिकिन्
दशशत भानुमूर्तिकि सुधारुचि भाषिकि साधु पोषिकिन्
दशरथ राजुपट्टिकिनि दैत्यपति बॊरिगॊन्न जॅट्टिकिन् ॥ 359 ॥

उ. नल्लनिवाडु पद्मनयनंबुल वाडु महाशुगंबुलुन्
विल्लुनु दाल्चुवाडु गडु विप्पगु वक्षमुवाडु मेलु पॅं
जल्लॅडुवाडु निक्किन भुजंबुलवाडु यशंबु दिक्कुलं
जल्लॅडुवाडुनैन रघुसत्तमु डीवुत माकभीष्टमुल् ॥ 360 ॥

आ. रामचंद्रु गूडि राकल बोकल
गदिसि तिरुगुवारु गन्नवारु
नंटि कॉन्नवारु ना कोसल प्रज-
लरिगि रादियोगुलरुगु गतिकि ॥ 361 ॥

---

करके, तेरह हजार साल लगातार अग्निहोत्र पूरा करके, स्वयं ईश्वर होने से अपने आदि स्थान को चला गया। इस प्रकार ३५७ [आ.] आदि देव होनेवाले उस रामचंद्र के लिए अब्धि का बंधन कितना है ? (कौन बड़ी बात है ?) असुर कोटि को मार डालना कितना है ? कपियों का साहाय्य कितना है ? यों तो सुरों के लिए केवल क्रीडा (करके) दिखाया। ३५८ [चं.] (उसके) वश होकर, लवण-वार्धि विजृंभणता-निर्वति (रोकनेवाले) को, दशदिगधीश मौलि-मणि रूपी दर्पण-मंडित-दिव्य कीर्तिवाले को, दश शत-भानुमूर्ति को, सुधारुचि भाषी को, साधु-पोषक को, दशरथ राजा के लाडले बेटे को दैत्यपति (रावण) को मार डालनेवाले को और शूर को सिर नवाऊँगा। ३५९ [उ.] नील वर्णवाला, पद्मनयन वाला, महान् तेज बाणों और धनुष को धारण करनेवाला, बहुत विशाल वक्षःस्थल वाला, (हमारे) ऊपर भलाइयों की वर्षा करनेवाला, उन्नत भुजावाला, [अपने] यश को दिशाओं में फैलानेवाला, रघु-सत्तम हमको अभीष्ट दे दे। ३६० [आ.] रामचंद्र के साथ रहकर, आने-जाने में उनके पास घूमने-फिरनेवाले,

कं. मंतनमुलु सद्गतुलकु, बौंतनमुलु घनमुलैन पुण्यमुलकुदा
निंतन पूर्व महाघ नि, कृंतनमुलु राम नाम कृति चिंतनमुल् ॥ 362 ॥

## अध्यायमु—१२

व. आ रामचंद्रुनकु कुशुंडुनु कुशुनकु नतिथियु नतिथिकि निषधुंडुनु निषधुनकु नभुंडुनु नभुनिकि बुंडरीकुंडुनु बुंडरीकुनकु क्षेमधन्वुंडुनु क्षेमधन्वुनकु देवानीकुंडुनु देवानीकुनकु नहीनंडुनु नहीनुनकु बारियात्रुंडुनु बारियात्रुनकु बलुंडुनु बलुनकु जलंडुनु जलुनकु नर्कसंभवुंडगु वज्रनाभुंडुनु वज्र नाभुनकु शंखणुंडुनु शंखणुनकु विधृतियु विधृतिकि हिरण्यनाभुंडुनु जनियिंचिरि। अतंडु जैमिनि शिष्युंडैन याज्ञवल्क्य मुनिवलन नध्यात्मयोगंबु नेर्चि हृदय कलुषंबुलं बासि योगचर्युंडय्यै। आ हिरण्यनाभुनकु बुष्युंडुनु बुष्युनकु ध्रुवसंधियु ध्रुवसंधिकि सुदर्शनुंडुनु सुदर्शनुनकु नग्निवर्णुंडुनु नग्निवर्णुनकु शीघ्रुंडुनु शीघ्रुनकु मरुवनु राजश्रेष्ठंडुनु बुट्टिरि। आ राजयोगि सिद्धुंडयि कलाप ग्रामंबुन नुन्नवाडु कलियुगांतंबुन नष्टंबय्येडु सूर्यवंशंबु ग्रम्मर बुट्टिपंगल वाडु। आ मरुवुनकु ब्रशुश्रुकुंडुनु ना प्रशुश्रुकुनकु संधियु,

उनको देखे हुए लोग, उनके साथ लगकर रहनेवाले कोसल के वे लोग उस गति को गये जहाँ आदि योगी जाते है। ३६१ [कं.] रामनाम कृति-चिंतन, सद्गतियों का मंतन (उपाय) है, घन (बड़े) पुण्यों के लिए पूर्वमहाघनिकृतन (पूर्व जन्म के महान् पापों को काट देनेवाले) है। ३६२

## अध्याय—१२

[व.] उस रामचंद्र के कुश, कुश के अतिथि, अतिथि के निषध, निषध के नभ, नभ के पुंडरीक, पुडरीक के क्षेमधन्व, क्षेमधन्व के देवानीक, देवानीक के अहीन, अहीन के पारियात्र, पारियात्र के बल, बल के जल, जल के अर्क संभव होनेवाले वज्रनाभ, वज्रनाभ के शंखण, शंखण के विधृति (और) विधृति के हिरण्यनाभ पैदा हुए। वह जैमिनि के शिष्य याज्ञवल्क्य मुनि से अध्यात्मयोग को सीखकर (और) हृदय (के) कलुषों से मुक्त होकर योगचर्य हुआ। उस हिरण्यनाभ के पुष्य, पुष्य के ध्रुवसंधि, ध्रुवसंधि के सुदर्शन, सुदर्शन के अग्निवर्ण, अग्निवर्ण के शीघ्र (और) शीघ्र के मरु नामक राज-श्रेष्ठ पैदा हुए। वह राजयोगी सिद्ध बनकर कलाप ग्राम में रहता था। कलियुग के अंत में नष्ट होनेवाले सूर्यवश को फिर से सृष्टि कर सकनेवाला है। उस मरु के प्रशुश्रुक, उस प्रशुश्रुक के संधि, उसके अमर्षण, उस अमर्षण के महस्वान, उस महस्वान के विश्वसाह्व

ननिकि नमर्षणुंड्नु ना यमर्षणुनिकि महस्वंतुडुनु ना महस्वंतुनकु विश्वसाह्युंडुनु ना विश्वसाह्युनकु बृहद्बलुंडुनु जनियिंचिरि। आ बृहद्बलुडु भारतयुद्धंबुन मी तंड्रि यगु नभिमन्युनि चेत हतुंडय्यें विनुमु ।। 363 ।।

भविष्यद्राजेतिहासमु

ते. परग निक्ष्वाकुडुनु बृहद्बलुडु मोदलु
 दुदयु गा गल राजुल दोडु तोड
 नॆरुग जॆप्पिति नोवारि निक मीद
 बुट्टगल वारि जॆप्पॆद भूवरेंद्र ! ।। 364 ।।

व. आ बृहद्बलुनकु बृहद्रणुंडुनु बृहद्रणुनकु नुरुक्षतुंडुनु नातनिकि वत्सप्रीतुंडुनु वत्सप्रीतुनकु ब्रतिव्योमुंडुनु ब्रतिव्योमुनकु भानुंडुनु भानुनकु सहदेवुंडुनु सहदेवुनकु बृहदश्वुंडुनु बृहदश्वुनकु भानुमंतुंडुनु भानुमंतुनकु ब्रतीकाश्वुंडुनु ब्रतीकाश्वुनकु सुप्रतीकुंडुनु सुप्रतीकुनकु मेरुदेवुंडुनु मेरुदेवुनकु सुतक्षत्रुंडुनु सुतक्षत्रुनकु ऋक्षकुंडुनु ऋक्षकुनकु नंतरिक्षुंडुनु नंतरिक्षुनकु सुतपुंडुनु सुतपुनकु नमित्रजित्तुनु नतनिकि बृहद्राजियु नतनिकि बर्हियु बर्हिकि धनंजयुंडुनु धनंजयुनकु रणंजयुंडुनु नतनिकि सृंजयुंडुनु सृंजयुनकु शाक्युंडुनु शाक्युनकु शुद्धादुंडुनु शुद्धादुनकु लांगलुंडुनु लांगलुनकु ब्रसेनजित्तुनु नतनिकि क्षुद्रकुंडुनु क्षुद्रकुनकु ऋणकुंडुनु ऋणकुनकु सुरथुंडुनु सुरथुनकु सुमित्रुंडुनु,बुट्टुदुरु। सुमित्रुनि यनंतर कालंबुन सूर्यवंशंबु नशिप

---

(और) उस विश्वसाह्य के बृहद्बल उत्पन्न हुए। वह बृहद्बल भारत युद्ध में तुम्हारे पिता अभिमन्यु से हत हुआ। सुनो : ३६३

भविष्यद्राजेतिहास

[ते.] हे भूवरेंद्र ! प्रसिद्ध इक्ष्वाकु और बृहद्बल (से) आदि तथा अंत (क्रम से) होनेवाले तुम्हारे (वंश के) राजाओं को एक-एक करके (तुम को) समझा दिया; इसके बाद पैदा होनेवालों को (के बारे में) कहूँगा; [सुनो] ३६४ [व.] उस बृहद्बल के बृहद्रण, बृहद्रण के उरुक्षत, उसके वत्सप्रीत, वत्सप्रीत के प्रतिव्योम, प्रतिव्योम के भानु, भानु के सहदेव, सहदेव के बृहदश्व, बृहदश्व के भानुमान, भानुमान के प्रतीकाश्व, प्रतीकाश्व के सुप्रतीक, सुप्रतीक के मेरुदेव, मेरुदेव के सुतक्षत्र, सुतक्षत्र के ऋक्षक, ऋक्षक के अंतरिक्ष, अंतरिक्ष के सुतप, सुतप के अमित्रजित्, उसके बृहद्राजि, उसके बर्हि, बर्हि के धनंजय, धनंजय के रणंजय, उसके सृंजय, सृंजय के शाक्य, शाक्य के शुद्धाद, शुद्धाद के लांगल, लांगल के प्रसेनजित, उसके क्षुद्रक, क्षुद्रक

गलदु। वीरलु बृहद्बलुनि नुंडि क्रमंबुनं बुट्टंगलवारलनि चॆप्पि शुकुंडिट्लनियॆं ॥ 365 ॥

## अध्यायमु—१३

सी. धन्युडा यिक्ष्वाकु तनयुडौ निमि याग माचरिंपग गोरि या वसिष्ठु
नार्त्विज्यमुनकु दानर्थिंप गनि यार्तडिंद्रुनि मखमु सेयिंप निच्च
कॊनिनाड मरि वत्तु गॊदव लेदन वच्चि संसार मॆतयु जंचलंबु
कालयापन मेल क्रतुवु सेसॆदननि यन्य ऋत्विक्कुल नतडु गूर्चि

ते. सेय निंद्रुनि यागंबु सॆल्ल जेसि
गुरुडु सनुदॆंचि शिष्युपैं गोपमॆत्ति
योरि नावच्चु नंदाक नुंडवनुचु
नतनि देहंबु वडु गातयनि शपिंचॆं ॥ 366 ॥

व. इट्लु वसिष्ठुंडु शपिंचिन निमियुनु वसिष्ठुनि देहंबु वडुगाक यनि मरल शपियिंप नव्वसिष्ठुंडु मित्रावरुणुल वलन गडपट नूर्वशिकि जन्मिंचॆं। गुरु शापंबुन ब्रह्मज्ञानियैन निमि विगतदेहुंडैन नतनि देहंबु मुनीश्वरुलु गंध-

---

के ऋणक, ऋणक के सुरथ, और सुरथ के सुमित्र पैदा होंगे। सुमित्र के अनंतर काल में सूर्यवंश का नाश होगा। ये बृहद्बल से, क्रम से पैदा होंगे, यों कहकर शुक ने इस प्रकार कहा : ३६५

## अध्याय—१३

[सी.] उस इक्ष्वाकु के तनय धन्य निमि ने याग करने की इच्छा करके आर्त्विज्य (ऋत्विक् का कार्य) के लिए उस वसिष्ठ से प्रार्थना की तो यह देखकर उसने (वसिष्ठ ने) कहा, "इंद्र का मख कराने के लिए मैंने स्वीकार किया, फिर [कभी] आऊँगा; कुछ परवाह नहीं है।" [यह सुनकर निमि घर] आकर यों सोचकर कि यह सारा संसार चंचल है; काल को वृथा करना किसलिए ? क्रतु को संपन्न करूँगा, [ते.] अन्य ऋत्विकों को बुलाकर [यज्ञ] किया तो इंद्र का याग पूरा करके गुरु (वसिष्ठ) आ गये [और] शिष्य [निमि] से कोप करके [और] इस प्रकार कहकर कि, रे, मेरे आने तक नहीं रुके, उसे शाप दिया कि उसकी (निमि की) देह का नाश हो जाय। ३६६ [व.] इस प्रकार वसिष्ठ के शाप देने पर निमि ने भी यह कहकर शाप दिया कि वसिष्ठ की देह भी नष्ट हो जाय, तो वसिष्ठ आखिर मित्रावरुणों को उर्वशी द्वारा पैदा हो गया। गुरु के शाप से ब्रह्मज्ञानी निमि के विगतदेही होने पर, उसकी देह को गंध वस्तुओं में ढक कर छिपा रखकर, मुनीश्वरों ने [निमि के]

वस्तुवुलं बॊदिवि दाचि दॊरगॊंस सत्रयागंबु सॆल्लिचिरि। कडपट देवगणंबुलु मॆच्चि वच्चिन वारलकु निमि देहंबु सूपि ब्रदुकंजेयुडनवुडु वारलु निमि प्राणंबु वच्चुगाक यनि पलिकिन निमि तन देहंबु सॊर नॊल्लक यिट्लनियॆ ॥ 367 ॥

म. अति मोहाकुलितंबु सांद्र ममताहंकार मूलंबु सं-
तत नाना सुख दुःख पीडित मनित्यंबिट्टि देहंबु सं-
कृति नाकेटिकि मीन जीवनमु भंगिन् भीति बाहुल्य मं-
चितरुल् पॆद्दुलु दीनि जेकॊनरु सर्वेशुन् हरिं गॊल्चुचुन् ॥ 368 ॥

व. अनि पलिकिन निमि माटलु कम्मरिपनेरक शरीरुलु गन्नुलु दॆरचिनप्पुडुनु, मूसिनप्पुडुनु निमि गान वच्चुंगाक यनि पलिक देवतलु चनिरि। अंत ॥ 369 ॥

आ. पॆद्दलॆन मुनुलु पृथिवीस्थलिकि राजु
लेमि जूचि निमि कळेबरंबु
दरुव नॊकडु पुट्टॆ दनयुंडु वानिनि
जनकुडनुचु बलिकॆ जगमुलॆल्ल ॥ 370 ॥

व. मरियु नतंडु विदेहजुंडु गावुन वैदेहुंडनियु मथन जातुडु गावुन मिथिलुंडनियु ननं बरगॆनु। अम्मिथिलुनि चेत निर्मितंबयिनदि मिथिलानगरंबु ना बरगॆ।

---

शुरू किए सत्रयाग को संपन्न किया। यज्ञ के अंत में देवगणों के प्रसन्न बन, आने पर, उनको निमि की देह दिखाकर (उसे) जिलाने को कहा तो उन्होंने कहा कि निमि के प्राण आ जायँ। (उनके) ऐसा कहने पर निमि ने अपनी देह में प्रवेश करने का इच्छुक न होकर यों कहा : ३६७ [म.] "अति मोहाकुलित, सांद्र ममताहंकारमूल, संतत नाना सुख-दुःख पीड़ित (और) अनित्य होनेवाली ऐसी देह संकृति (आग की ढेर) है। मुझे किसलिए? मीन-जीवन की तरह भीति-बाहुल्य है।" ऐसा कहते हुए [कहा] दूसरे बड़े लोग (ज्ञानी) सर्वेश हरि की सेवा करते हुए इसे स्वीकार नहीं करते। ३६८ [व.] ऐसा कहने पर निमि की बातों का तिरस्कार न कर सक "शरीरियों के आँखें खोलने पर (और) बन्द करने पर निमि दिखाई पड़ेगा", यों कहकर देवता चले गये। तब ३६९ [आ.] बड़े मुनिगणों ने पृथ्वीस्थली के राजा का न होना देखकर निमि के कलेवर को मथ डाला तो एक तनय (पुत्र) पैदा हुआ। उसको सारे जगों ने जनक कहा। ३७० [व.] और वह विदेहज होने से वैदेह और मथन-जात होने से मिथिल कहलाया। उस मिथिल से निर्मित हुआ (वह नगर) मिथिला नगर कहलाया। उस जनक के उदावस, उदावस के नंदिवर्द्धन,

आ जनकुनकु नुदावसुंडुनु नुदावसुनकु नंदिवर्धनुंडुनु नंदिवर्धनुनकु सुकेतुंडुनु सुकेतुनकु देवरातुंडुनु देवरातुनकु बृहद्रथुंडुनु बुट्टिरि। अतनिकि महावीर्युंडुनु नतनिकि सुधृतियु नतनिकि धृष्टकेतुंडुनु नतनिकि हर्यश्वुंडुनु नतनिकि मरुवुनु नतनिकि प्रतिधकुंडुनु नतनिकि गृतरथुंडुनु नतनिकि देवमीढुंडुनु नतनिकि विधृतुंडुनु नतनिकि महाधृतियु नतनिकि गीर्तिरातुंडुनु नतनिकि महारोमुंडुनु नतनिकि स्वर्ण रोमुंडुनु नतनिकि ह्रस्वरोमुंडुनु नतनिकि सीरध्वजुंडुनु बुट्टिटरि ॥ 371 ॥

आ. अतडु मखमु सेय नवनि दुन्निपंग
लागलंबु कोननु लक्षणांगि
सीत जात यय्ये सीरध्वजुंडन
दान जेंप्प वडियें धन्युडतडु ॥ 372 ॥

व. आ सीरध्वजुनकु, गुशध्वजुंडुनु गुशध्वमुनकु धर्मध्वजुंडुनु धर्मध्वजुनकु गृतध्वजमितध्वजुलनु वारिद्दरु बुट्टिरि। अंदु गृतध्वजुनकु गेशिध्वजुंडुदयिंचेनु! अतंडु तन्नु दानेरिगेंडि विद्ययंदु नेर्परि यय्यें, मितध्वजुनकु खांडिक्युंडनु वाडु जन्मिंचि तंड्रिवलन नेंरुक गलवाडै कर्मतंत्रंवु नेर्चि केशिध्वजुनि वलन भीतुडै येगें। खांडिक्युनकु भानुमंतुंडुनु भानु मंतुनकु शतद्युम्नुंडुनु शतद्युम्नुनिकि शुचियु शुचिकि सनध्वाजुंडु सनध्वाजुनकु नूर्ध्वकेतुंडुनु नूर्ध्वकेतुनकु नजुंडुनु नजुनकु गुरुजित्तुनु गुरुजित्तुनकु नरिष्टनेमि नरिष्टनेमिकि श्रुतायुवुनु श्रुतायुवुनकुकु बार्श्वकुंडुनु बार्श्वकुन

---

नंदिवर्द्धन के सुकेत, सुकेत के देवरात (और) देवरात के बृहद्रथ पैदा हुए। उसके महावीर्य, उसके सुधृति, उसके धृष्टकेत, उसके हर्यश्व, उसके मरु, उसके प्रतिधक, उसके कृतरथ उसके देवमीढ, उसके विधृत, उसके महाधृति, उसके कीर्तिरात, उसके महारोम, उसके स्वर्णरोम, उसके ह्रस्वरोम (और) उसके सीरध्वज पैदा हुए। ३७१ [आ.] मख करने के लिए उसके अवनि को जोतने पर हल की नोक से लक्षणांगी सीता का जन्म हुआ। इसलिए वह सीरध्वज कहलाया। वह धन्य है। ३७२ [व.] उस सीरध्वज के कुशध्वज, कुशध्वज के धर्मध्वज, धर्मध्वज के कृतध्वज और मितध्वज नामक दो (पुत्र) पैदा हुए। उनमे कृतध्वज के केशिध्वज का उदय हुआ। वह अपने आपको जानने की विद्या में प्रवीण बन गया। मितध्वज के खांडिक्य नामक [पुत्र] पैदा होकर, पिता द्वारा ज्ञानी बनकर, कर्मतत्त्व सीखकर (और) केशिध्वज से भीत होकर चला गया। खांडिक्य के भानुमान, भानुमान के शतद्युम्न, शतद्युम्न के शुचि, शुचि के सनद्वाज, सनद्वाज के ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतु के अज, अज के गुरुजित, गुरुजित के अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमि के श्रुतायु, श्रुतायु के पार्श्वक, पार्श्वक के चित्ररथ, चित्ररथ

जित्ररथुंड्नु जित्ररथुनकु क्षेमापियु क्षेमापिकि हेमरथुंड्नु हेमरथुनकु सत्य-रथुंड्नु सत्यरथुनकु नुपगुरुंड्नु नुपगुरुनकु नग्निदेवु प्रसादंबुन नुपगुर्वुंड्नु नुपगुर्वुनकु सावनुंड्नु सावनुनकु सुवर्चनुंड्नुं गलिग रतंडे सुभूषणुं डनि विनंबड्ड ना सुभूषणुनकु जयुंड्नु जयुनकु विजयुंड्नु विजयुनकु धृतुंड्नु धृतुनकु ननघुंड्नु ननघुनकु वीतिहव्युंड्नु वीतिहव्युनकु धृतियु धृतिकि बहुळाश्वुंड्नु बहुळाश्वुनकु गृतियु गृतिकि महावशियुनु जन्मिंचिरि। वीरलु मैथिलुलगु राजुलनि चेप्पंबड्डुरु योगीश्वर प्रसादंबुन गृहस्थुलै युंडियु बंधनिर्मुक्तुलै यात्मज्ञानंबु गलिगि निरंतर ब्रह्मानुसंधानंबु सेयुचु नुंड्डुरु। अनि पलिकि शुकयोगींद्रुंडिट्लनिये ॥ 373 ॥

## अध्यायमु—१४

### चंद्रवंश्युलगु राजुल यितिहासमु

आ. चंद्र गौरमैन चंद्रवंशमुनंदु, जंद्र कीर्ति तोड जनितमैन
यट्टि पुण्यमतुल नैळादि राजुल, निक विनुमु मानवेंद्र-चंद्र ! ॥ 374 ॥

सी. ऒक वेयितललतो नुंडु जगन्नाथु बोड्डु दम्मिनि ब्रह्म पुट्टे मॊदल
ननिकिं गुणमुल ननि बोलिन दक्षुडगु नत्रि संजातुडय्ये नत्रि
कडगंटि चूड्कुल गलुवलसंगडोड्डुर्दयिंचि विप्रुल कोषधुलकु
नमर दारातति कजुनि पंपुन नाथुडैयुंडि राजसूयंबु चेसि

---

के क्षेमापि, क्षेमापि के हेमरथ, हेमरथ के सत्यरथ, सत्यरथ के उपगुरु, उपगुरु के, अग्निदेव के प्रसाद से, उपगुर्व, उपगुर्व के सावन और सावन के सुवर्चन पैदा हुए; वही सुभूषण कहलाया। उस सुभूषण के जय, जय के विजय, विजय के धृत, धृत के अनघ, अनघ के वीतिहव्य, वीतिहव्य के धृति, धृति के बहुलाश्व, बहुलाश्व के कृति, कृति के महावशि का जन्म हुआ। ये मैथिल राजा कहलाते है। योगीश्वर प्रसाद से गृहस्थ होकर रहकर भी, बंध-निर्मुक्त होकर आत्मज्ञान युक्त होकर, निरंतर ब्रह्मानुसंधान करते (हुए) रहते है। इस प्रकार कहकर शुकयोगीद्र ने यों कहा : ३७३

## अध्याय—१४

### चंद्रवंश्य होनेवाले राजाओं का इतिहास

[आ.] हे मानवेंद्रचंद्र ! चंद्र-गोर (चंद्र के समान गोर वर्ण वाले) चंद्रवंश में चंद्र-कीर्ति के साथ जनित पुण्यमति ऐळ आदि राजाओं के बारे में अब सुनो। ३७४ [सी.] एक हज़ार सिरों (आदि शेष) के साथ रहनेवाले जगन्नाथ की नाभि में स्थित कमल में पहले ब्रह्मा पैदा हुआ।

ते. मूढु लोकमुलनु गॆल्चि मोऱकमुन
जनि बृहस्पति पॆंड्लामु जारुमूर्ति
दार निलु सॊच्चि कॊनिपोयि तन्नु गुरुडु
वेडुनंदाक नय्यिति विडुवडय्यं ॥ 375 ॥

व. अंत वेल्पुलतो रक्कसुलकु गय्यंबय्यॆ। बृहस्पति तोडि वैरंबुनं जेसि राक्षसुलुं दानुनु शुक्रुंडु चंद्रुनि जेपट्टि सुराचार्युनिवो दोलिन हरुंडु भूतगण समेतुंडै तन गुरु पुत्रुंडैन बृहस्पति जेपट्टॆ। देवेंद्रुंडु सुरगणंबुलुं दानुनु बृहस्पतिकि नड्डंबु वच्चॆनु। अय्यवसरंबुन बृहस्पति भार्या निमित्तंबुन रणंबुन सुरासुर विनाशकरंबय्यॆनु। •आलोन बृहस्पति तंड्रि यगु नंगिरसुंडु सॆप्पिन विनि ब्रह्मदेवुंडु वच्चि चंद्रुनि गोपिंचि गर्भिणियैन तारनु मरल निप्पिंचिनं जूचि बृहस्पति दानि किट्लनियॆ ॥ 376 ॥

उ. सिग्गोक यित लेक वॆलचेडिय कैवडि धर्म कीर्तुलन्
वॊग्गुलु सेसि जारु शशि बॊंदि कटा! कडुपेल दॆच्चुकॊं-
टॆग्गु दलंपगा वलदॆ यिप्पुडु गर्भमु दिचुकॊम्मु निन्
म्रग्गग जेसॆदं जॆनटि! मानवतुल् निनु जूचि मॆत्तुरे ॥ 377 ॥

उसको गुणों में उसके अनुरूप दक्ष (समर्थ) होनेवालाअत्रि संजात (पैदा) हुआ, अत्रि के कटाक्षों से चंद्रमा पैदा होकर विप्रों का, ओपधियों का, तारातति का (नक्षत्रों के लिए), अज (ब्रह्मा) की आज्ञा से, युक्त रूप में नाथ (पति) बनकर राजसूय करके, तीनों लोकों को जीत कर, [ते.] मूर्खता से जाकर बृहस्पति की पत्नी, चारुमूर्ति (होनेवाली) तारा के घर में घुसकर और [उसे] ले जाकर तब तक उस इंति (स्त्री) को नही छोड़ दिया जब तक गुरु ने प्रार्थना नही की। ३७५ [व.] तब (इसके बाद) देवताओं से राक्षसों का झगड़ा हुआ। बृहस्पति के साथ होनेवाले वैर से राक्षसों ने, स्वयं उसने और शुक्र ने चंद्र को पकड़कर सुराचार्य को भगा दिया तो हर ने भूतगण समेत होकर अपने गुरु-पुत्र बृहस्पति को अपना लिया। देवेंद्र ने, सुरगणों ने और स्वयं उसने बृहस्पति को रोक दिया। उस समय बृहस्पति की भार्या के निमित्त (कारण) रण सुरासुर-विनाशक हुआ। इतने में बृहस्पति के पिता अंगिरस के कहने पर, सुनकर, ब्रह्मा ने आकर, चंद्र को भला-बुरा कहकर, गर्भवती तारा को फिर दिलवा दिया तो देखकर बृहस्पति ने उससे इस प्रकार कहा। ३७६ [उ.] "कुछ भी लज्जित न होकर, वेश्या की तरह धर्म और कीर्ति का नाश करके, जार (होनेवाले) शशि को पाकर, ओह! गर्भ-धारण क्यों किया? (क्या) इसे पाप न समझना चाहिए? अब गर्भस्राव कराओ; मैं तुझको जला दूंगा। ऐ दुर्मार्ग में चलनेवाली! क्या मानवती (स्त्रियाँ) तुझे देखकर, तेरी प्रशंसा

व. अनि कोपिंचुचुंड ना चॅलुवकु बॉसिडि चाय मेनु गल कुरॅडु वुट्टॅ। वानिजूचि मोहबु सेसि बृहस्पति दन कॉडुकनियुनं जंद्रुंडु दनकन्न वाडनियुनं जगडिचिरि अप्पुडु ॥ 378 ॥

आ. वारि वादु सूचि वारिपगा वच्चि
येर्परिपलेक यॅल्ल मुनुलु
नमरवरुल नडुग ना वेडुकल कत्तॅ
यॅरुगु गानि यितरुलॅरुगरनिरि ॥ 379 ॥

व. आ पलुकुलु विनि सिग्गु पडियुन्न तारं जूचि चिन्नि कॉमरुंडिट्लनियॅ ॥ 380 ॥

कं इलुवरुस चॅडग बंधुलु
दल वंपग मगडु रोय दल्ली ! कट्टा
वॅलि नेल नन्नु गंटिवि
कलिगिचिनवाडु शीतकरुडो ! गुरुडो ! ॥ 381 ॥

व. अनि पलुकुचुन्न कॉडुकुनकु मरुमाटलाडनेरक यूरक युन्न तार नेकांतंबुनकु जीरि मंतनंबुन ब्रह्म यिट्लनियॅ ॥ 382 ॥

म. चॅलुवा ! नीयंलसिग्गुवालि गुरुडो शीतांशुडो यॅव्वडी
ललिताकारु गुमारु गन्न यतडेला वाप नी पाटु नी
तलने पुट्टॅनॅ ! वॅच्च नूर्पकुमु कांतल् गामुकल् गारॅ मा-
टलनिदेमिधु बोदु पो यॉरुल तोडं जॅप्प विन्निपवे ॥ 383 ॥

---

करेंगी ?"३७७ [व.] जब (वह) इस प्रकार क्रोधित हो रहा था, उस स्त्री का, सुनहले रंग के शरीर वाला (एक) पुत्र पैदा हुआ। उसे देखकर मोहवश होकर बृहस्पति ने [उस शिशु को] अपना पुत्र कहकर और चंद्र ने अपने को पैदा हुआ लड़का कहकर झगड़ा किया। तब ३७८ [आ.] उनके वाद को देखकर उनको रोकने आकर, उनको अलग न कर सककर सभी मुनियों ने अमरवरों से पूछा तो उन्होंने कहा कि वही विलासवती [असली बात] जानती है, अन्य [लोग] नहीं जानते। ३७९ [व.] उन बातों को सुनकर लज्जित [होनेवाली] तारा को देखकर छोटे बच्चे ने यों कहा। ३८० [कं.] "वंश का विधान नष्ट हो, बंधु (गण) सिर झुकायें (लज्जित हों), पति घृणा करे, [इस रूप में], ओह ! माँ, बंधु बहिष्कृत (होनेवाले) मुझको तुमने क्यों पैदा किया ? मुझे जन्म देनेवाला शीतकर (चन्द्रमा) है या गुरु (बृहस्पति) है ? (कहो)" ३८१ [व.] इस प्रकार पूछनेवाले पुत्र को जवाब न दे सककर, तारा चुप रही तो उसे एकांत में ले जाकर रहस्य में ब्रह्मा ने इस प्रकार कहा। ३८२ [म.] "हे सुंदरी ! अपनी लज्जा को छोड़कर कहो कि इस ललिताकार वाले कुमार को किसने जन्म

व. अनि पलिकिन ब्रह्मकु नेंदुरु माटाड वेंरुचि मंतनंबुन नय्यिति चंद्रुनिकि गन्न दान ननवुडु ना बालकुनकु बुधुंडनि पेरु वेंट्टि चंद्रुनि किच्चि ब्रह्म सनियेंनु अंत ॥ 384 ॥

आ. बुद्धिमंतुडयिन बुधुडु पुत्रुंडैन, मेनु वेंचि राजु मिन्नु मुट्टें
बुद्धि गल सुतुंडु पुट्टिनचो दंड्रि, मिन्नु मुट्टकेल मिन्नकुंडु ॥ 385 ॥

व. आ बुधुनकु दोंलिलि चेंप्पिन यिळा कन्यक वलन बुरूरवुंडु पुट्टेनु। आ पुरूरवुनकुं गल शौर्य सौंदर्य गांभीर्यादिगुणंबुलु नारदुनि वलन निंद्र सभलोन नूर्वशि विनि मित्रावरुण शापंबुन मनुष्य स्त्री रूपंबु दालिच भूलोकंबुनकु वच्चि यप्पुरूरवु मुंदट निलुवंबडि ॥ 486 ॥

त. सरसिजाक्षु मृगेंद्रमध्यु विशालवक्षु महाभुजुन्
सुरुचिरानन चंद्रमंडलशोभितुन् सुकुमारु ना
पुरुषवर्यु बुरूरवुं गनि पुव्वुटंपर जोदुचे
दोंरगु क्रोंव्विरितूपुलन् मदि दूलि पोवग भ्रांतयं ॥ 387 ॥

व. ऊर्वशि निलिचियुन्नंत ॥ 388 ॥

---

दिया, गुरु ने या शीतांशु ने ? क्यों छिपा रही हो ? क्या यह इच्छा तुम्हारे ही मस्तिष्क मे पैदा हुई ? गरम आहे मत भरो। क्या कांताएँ (स्त्रियाँ) कामुक नही होती ? बात कहने से कुछ भी नही बिगड़ता; मैं दूसरों से नहीं कहूँगा; [यथार्थ] कहो।" ३८३ [व.] ऐसा बोलने से (पूछने पर) ब्रह्मा को जवाब देने में डरकर रहस्य में उस स्त्री ने कहा कि चंद्र से पैदा किया; तब उस बालक को बुध नामकरण करके और उसे चंद्र को देकर ब्रह्मा चला गया। तब ३८४ [आ.] बुद्धिमान बुध जब पुत्र हुआ तो राजा (चंद्र) ने अपने शरीर को बढ़ाकर आकाश को छू लिया। जब बुद्धिमान सुत पैदा होता है तो पिता आकाश को छुये बिना (गर्व किये बिना) कैसे रहता ? ३८५ [व.] उस बुध का, पहले कही गयी इळाकन्या से पुरूरवा पैदा हुआ। उस पुरूरवा में होनेवाले शौर्य, सौंदर्य, गांभीर्य आदि गुणो के बारे में इंद्रसभा में रहनेवाली उर्वशी ने नारद से सुना। सुनकर मित्रावरुण के शाप से मनुष्य-स्त्री का रूप धारण करके, भूलोक में आकर और उस पुरूरवा के सामने खड़ी होकर ३८६ [त.] सरसिजाक्ष, मृगेंद्रमध्य, विशाल वक्ष (वाला), महाभूज (वाला), सुरुचिरानन (वाला), चंद्रमंडलशोभी, सुकुमार और पुरुषवर्य (होनेवाले), उस पुरूरवा को देखकर कामदेव से छोड़े गये नूतन पुष्पबाणों से मन के विकंपित हो जाने पर भ्रांति में पड़कर ३८७ [व.] उर्वशी खड़ी रही तो ३८८ [उ.] "(यह) भावज (मन्मथ) का बाण है या मेघमुक्त प्रकाश है या मोहिनी देवता है या नभोरमा है ? अगर इसका कर-ग्रहण

उ. भावजु दोममो मॊगुलुबासि वॆलुंगु मॆरुंगो मोहिनी
देवतयो नभोरमयो वीनि करग्रहणंबु लेनिचो
जीवन मेटिकंचु मरु चे जिगुराकडिदम्मु जिम्मुलं
दावडकॆन् बुरूरवुडु तामरपाकजलंबु कंवडिन् ॥ 389 ॥

व. इट्लाराचपट्टि चॆरकु विटिवानि दाडिकि नोडि यॆट्टकेलकु संरण सेसि निलुकड वॆच्चुकोनि यच्चॆलुव किट्लनियॆ ॥ 390 ॥

उ. एक्कडनुंडिराक, मनकिद्दरकुंदगु, नीकु दक्किति
मुक्कडि वच्चॆने यलरु मुल्कुल वाडडिदंबुद्रिप्पुचे
दिक्कुनॆरुंग जूडु ननु देहमु देहमु गेलु गेल नी
चॆक्कुन जॆक्कु मोपि तगु चॆय्वुल नन्नु विपन्नु गाववे ॥ 391 ॥

व. अनिनं ब्रोड चेडिय यिट्लनियॆ ॥ 392 ॥

म. इवॆ ना कूर्चुतगळ्ळु रॆंडु दग नीवॆल्लप्पुडुं गाचॆ दे-
नि विवस्त्रुंडवु गाक नाकड दगन् नीवुंडुदेनिन्, विशे-
ष विलासाधिक ! नीकु ना घृतमु भक्ष्यंबय्यॆ नेनिन् मनो-
ज विनोदंबुल निन्नु देल्तु नगुने चंद्रान्वयग्रामणी ॥ 393 ॥

व. अनि पलिकिन वेल्पुल वॆलयालि प्रतिन माटल किय्यकोनि तन मनंबुन ॥ 394 ॥

---

न हो तो [यह] जीवन किसलिए [है] !" यों कहते हुए मन्मथ के कोपलों की तलवारों की भोकों से वह पुरूरवा कमलदल के ऊपर स्थित जल की तरह कंपित हुआ। ३८९ [व.] इस प्रकार वह राजकुमार इक्षुधन्वा (मन्मथ) के प्रहारों से हारकर, अन्त को सहकर (झुँझलकर) और स्थिर होकर उस सुन्दरी से इस प्रकार कहा ३९० [उ.] "कहाँ से आयी हो? हम दोनों एक-दूसरे के लिए है, [इसीलिए] मैं तुमको मिल गया (मैं तुम्हारा हो गया); दुष्ट पुष्पवाण (मन्मथ) के खड्ग घुमाते आने से मुझे [कोई] दिशा नहीं दिखाई पडती; हे अबला ! मेरी देह को अपनी देह से, मेरे हाथ को अपने हाथ से और मेरे गाल को अपने गाल से लगाकर युक्त चेष्टाओं से मुझ विपन्न की रक्षा करो।" ३९१ [व.] ऐसे कहने पर [उस] प्रौढ़ा ने इस प्रकार कहा : ३९२ [म.] "ये दोनों मेरी लाड़ली बकरियाँ है। अगर तुम सदा इनकी देखरेख करते हुए, विवस्त्र न होकर मेरे पास रहोगे तो, हे विशेष विलासाधिक ! तुमको मेरा घृत भक्ष्य बने तो मनोज के विनोदों में तुम्हें ऊभचूभ कर दूंगी; क्या तुम्हें स्वीकार है, हे चन्द्रान्वय-ग्रामणी (-श्रेष्ठ) ! ३९३ [व.] ऐसा कहने पर देवताओं की वेश्या के शपथ-वचनों के लिए राजी होकर अपने मन में ३९४ [कं.] "[कहते है कि]

कं. मंचिदट, रूपुसंगति
नंचितयो देवगणिक यट, मरुचेतन्
संचलित चित्तयै का-
मिंचिनदट, यितकंटॆ मेलुं गलदॆ ॥ 395 ॥

व. अनि निश्चयिंचुकॊनि ॥ 396 ॥

आ. राजु राजमुखिनि रति देल्चॆ बंगारु
मेडलंदु दरुल नीडलंदु
दोटलंदु रत्नकूटंबुलंदुनु
गॊलकुलंदु गिरुल कॊलकुलंदु ॥ 397 ॥

व. अंत नय्यिद्दरकुं दगुलंबु नॆलकॊनि ॥ 398 ॥

कं. ऒक दिक्ककानि चन वो-
रॊक चोटन कानि निलिचि युंडरु दमलो
नॊकटिय कानि तलंपरु
नॊक निमिषमु वायलेरु नुविदयु ड्रेडुन् ॥ 399 ॥

कं. दय्य मॆरुंगुन् वारल
नॆय्यंबुलु मक्कुवलुनु निजमरितनमुल्
विय्यमुलुनु नॆडसंदिनि
पय्यदकॊगड्डमैन प्राणमु वॆडलुन् ॥ 400 ॥

व. इट्लूर्वशियुं बुरूरवुंडु नॊंडॊरुल वलन मक्कुवलु चॆक्कुलॊत्त बगळ्ळु रेलु नॆल्लॆडल विहरिंप नॊक्कनाडु देवलोकंबुन देवेंद्रुंडु गॊलुवुंडु तद्गॊलुवुन नूर्वशि लेकुंडुटं जूचि ॥ 401 ॥

---

अच्छी है, रूप में अनुरति से युक्त है, देवगणिका है, मन्मथ के हाथ संचलित चित्ता होकर प्रेम किया है, इससे बढ़कर और भलाई कहाँ है?" ३९५ [व.] ऐसा निश्चय करके ३९६ [आ.] राजा ने राजमुखी (चंद्रमुखी) को सुवर्ण-मय प्रासादों मे, तरुओं की छायाओं में, बागों में, रत्नकूटों में, सरों में, पहाड़ों की तराइयो में, रतियों (रतिक्रीड़ाओं) से प्रसन्न कर दिया। ३९७ [व.] तब उन दोनों मे (एक-दूसरे के प्रति) आसक्ति स्थिर हो गयी। ३९८ [क.] वह स्त्री और राजा एक ही दिशा मे जाते, एक ही जगह पर ठहर जाते, आपस में एक ही बात सोचते और एक निमिष (पल) के लिए भी एक-दूसरे को छोड़कर नही रह सकते। ३९९ [कं.] उनके स्नेह को, प्रेम को, रहस्यों को और सम्बन्धों को दैव जानता है। उन दोनों के बीच में आँचल की आड़ होने पर भी [उनके] प्राण चले जाते। ४०० [व.] इस प्रकार उर्वशी और पुरूरवा एक-दूसरे से प्रेम के

कं. इन्नि दिनंबुलकुनु मन
मुन्न सभामध्यवेदि यूर्वसि लेमिन्
विन्नदनंबुन नुन्नदि
वन्नॅ दरिगि युन्न बसिडि वडुवन ननुचुन् ॥ 402 ॥

व. इंद्रुंडु गंधर्वुलं बनिचिन वारु नडुरेयि जनि चीकटि नूर्वशिपॅंचुचुन्न येडकंबुलं बट्टिटन नवि रॅंडुनु मॊरवॅट्टिटन वानि मॊऱ विनि रति खिन्नुंडै मेनु मऱचि कूरकुचुन्न पुरूरवु कौगिट नुंडि यूर्वशि यिट्लनियॆ ॥ 403 ॥

म. अदॆ ना बिड्डल बट्टि दॊंगलु महाहंकारुलै कॊंचु नु-
न्मदुलै पोयॆद रड्डपाटुनकु सामर्थ्यंबुनन् हीनुंडै
कदलंडी मगपंद कूरुकु गति गन्मूसि गुर्वॆट्टुचुन्
वदलं जालडु नादु कौगिलियु दा वंध्यात्मुडै चॆल्लरे ॥ 404 ॥

कं. पगतुरु दॊंगल रेपग
मगटिमि वाटिंपलेक मगतनमॆल्लन्
मगुवल कौगिट जूपॆडु
मगवाडगुटकंटॆ मगडु मगुवगुटॊप्पुन् ॥ 405 ॥

आ. अधमुडैन वानिकालगुकंटे न, -त्यधिकु निट दासि यगुट मेलु
होनु बॊंदि योनि हिंसिपगा नेल, युवति जनुल कूरकुंट लॆस्स ॥ 406 ॥

बढ़ जाने पर [और] दिन-रात हर जगह विहार करते रहने पर एक दिन देवलोक में देवेंद्र [के अपनी] सभा में रहते समय सभा में उर्वशी का न रहना देखकर ४०१ [कं.] यह कहते हुए कि इतने दिनों तक रही (उपस्थित) उर्वशी के अभाव में हमारी सभा की मध्य-वेदी कांति के खोए हुए सोने की तरह गौरव-हीन हो गई है। ४०२ [व.] इन्द्र ने गंधर्वो को भेजा तो उन्होने आधी रात मे जाकर अंधकार मे उन बकरियों को पकड़ लिया जिन्हें उर्वशी पाल रही थी, तो उन दोनों ने पुकार किया तो उनकी दुहाई सुनकर, रतिखिन्न होकर और [अपने] शरीर को भूलकर बैठे (सोए) हुए पुरूरवा के आलिंगन में रहकर उर्वशी ने इस प्रकार कहा, ४०३ [म.] लो, मेरे बच्चों को पकड़कर चोर महान अहंकारी बनकर, [पकड़] लेकर उन्मद हो जा रहे हैं; उनको रोकने में सामर्थ्यहीन बनकर यह मर्द जो कायर है, सोनेवाले की तरह खुर्राटे लेते हुए, आँखें बन्द करके नही हिलता। मेरे परिष्वग को छोड़ नही सकता। क्या वह वंध्यात्मा बनकर नहीं रहेगा? ४०४ [कं.] शत्रु व चोरों के छेड़ने पर, मर्दानगी का निर्वाह न कर सक [अपने सारे] पौरुष को स्त्रियों के परिरंभ में प्रदर्शित करनेवाले पति का पुरुष होने की अपेक्षा स्त्री होना अच्छा होगा। ४०५

कं. एटिकि नी राचरिकं-
बाटदि मीऱुवॆट्ट वशुवुलातुर पड नो
नाटदनि लेचि दॊंगल
गोटवु वॆडलंग शवमु क्रिय नुंडॆदिदे ॥ 407 ॥

कं. विनियु विनवु रणभीरुवु, मनुजाधमु निदुर पोतु मंदुनि नकटा-
निनु जक्रवर्ति जेसिन, वनजासनु कंटॆ वॆऱिवाडुनु गलडे ॥ 408 ॥

व. अनि पॆक्कु भंगुल नद्दियति परुसनि पलुकुलनु कड्कु वालम्मुलु सॆवुल जीनुप नाराजशेखरुंडंकुशंबु पोट्ल नडरु मदगजंबु चंदंबुन जीर मऱचि दिगंबरुंडै लेचि वालु केलनंकिंचि यानडुरेयि दॊंगल नऱकिवैचि मेषंबुल विडिपिंचुकॊनि तिरिगिवच्चुनॆड ॥ 409 ॥

आ. चीर लेनि मगनि जॆलुव दा नीक्षिंचि
कन्नु मीऱगिपोयॆ गढक नतडु
वॆऱिवानि भंगि विवशुडै पडिलेचि
पॊरलि तॆरलि स्रुक्कि पॊक्कि पडियॆ ॥ 410 ॥

व. मऱियु वुरूरवुंडु मदनातुरुंडै वॆदकुचु सरस्वती नदी तीरंबुनं जॆलिकत्तॆलतो गूडियुन्न यूर्वशि गनि विकसित मुखकमलुंडै यिट्लनियॆ ॥ 411 ॥

[आ.]अधम की पत्नी बनने से अति श्रेष्ठ व्यक्ति के घर दासी बनना बेहतर है। हीन को पाकर योनि को दुःख क्यों देना ? इससेयुवति-जनों का चुप रहना अच्छा है। ४०६ [कं.] तुम्हारी प्रभुता किसलिए जब[एक]स्त्री गुहारे, पशु पुकारते (व्याकुल हो रहे) हो ? तुम उठकर चोरों को क्यों न भगा देते, शव की तरह यहाँ क्यों पड़े रहते हो। ४०७ [कं.] सुनकर भी नहीं सुनते; युद्ध करने में भीरु हो। मनुजाधम निद्रामग्न, मद, ओहो ! तुम [जैसे] को चक्रवर्ति बनानेवाले उस वनजासन से बढ़कर मूर्ख (और) कोई हो (सक) ता है ? ४०८ [व.] इस प्रकार उस स्त्री ने अनेक प्रकार के परुष वचन रूपी तेज कटारों को कानों मे घुसा दिया तो वह राजशेखर, अंकुश को चुभोने से विजृंभण करनेवाले मद गज की तरह, कपड़ा पहनना भूलकर, दिगंबर होकर, उठकर, तेज करवाल को लेकर उस अर्ध-रात्रि में चोरों को काट डालकर और मेषों को छुड़ाकर लाया। लाते समय ४०९ [आ.] बिना कपड़े के (वाले) अपने पति को देखकर वह सुंदरी अदृश्य हो गयी। [उसे पाने का] प्रयत्न करके [विफल होकर] वह (राजा) पागल की तरह विवश होकर, गिरकर, उठकर, इधर-उधर लुढ़ककर और लोटकर थक गया। ४१० [व.] और पुरूरवा ने मदनातुर होकर (उर्वशी को) ढूंढ़ते हुए सरस्वती नदी के तीर पर अपनी सहेलियों के साथ रहनेवाली उर्वशी को देखकर, विकसित मुखकमल [वाला] होकर [उससे]

म. तनुमध्या ! यिदियेल वच्चितकटा ! धर्मंबे शर्मंबे मुन्
मनलो नुंकुलवाडिकोन्न पलुकुल् मर्यादलं दप्पेने
नितु ने बासिनयंत नुंडि तनुवुन्नेलं बडंबारॅ नन्
दिनु नुग्रंपु मृगाळि दीनु गरुणा दृष्टिन् विलोकिंपवे ॥ 412 ॥

व. अनिन नूर्वशि यिट्लनियॅ ॥ 413 ॥

कं. मगुवलकु नित लोंगेदु
मगवाडवॆ नीवु पशुवु माड्किन् वगवं
दगवे मानुष पशुवुनु
मृगंमुलु गनि रोयु गाक मेलनि तिनुने ॥ 414 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 415 ॥

म. तलपुल् चिच्चुलुज्ज्वल सुधाधारल् निर्भुंडैन पु-
ष्विलुतुन् मॆच्चर यन्युलन् दलतुरे विश्वासमुन् लेदु क्रू-
रलु तोडुं बति नैन जंपुदुरधर्मल् निर्दयल् चंचलल्
वॆलयांड्रॆक्कड वारि वेडबमुला वेदांत सूक्तबुले ॥ 416 ॥

उ. इंकोक येडु वोयिन नरेश्वर ! यातलि रेयि नीवु ना
लंकॅकु वच्चि यात्मजुल लक्षणवंतुल गांचॅदेमियुं
गोंकक पोम्मु नीवनुडु गोंम्मनु गर्भिणि गादलंचुचुन्
शंक योंकित लेक नृपसत्तमुडल्लन पोयॆ वीटिकिन् ॥ 417 ॥

---

इस प्रकार कहा : ४११ [म.] "हे तनुमध्ये ! ऐसे क्यों चली गयी हो ? हाय ! क्या यह धर्म (उचित) है ? संतोष है ? पहले हम दोनों के बीच में सम्मति से जो बातें, प्रतिज्ञाएँ हुई, क्या वे टल गयी ? जब से मैं तुमसे अलग हो गया, मेरा शरीर भूमि पर गिरने लग गया। मेदिनी पर गिर जाने पर उग्र मृग समूह के इस खाने से पहले ही करुणादृष्टि से मुझे तो विलोको (देखो)।" ४१२ [व.] ऐसा कहने पर उर्वशी ने इस प्रकार कहा : ४१३ [क.] "स्त्रियों के इतने अधीन हो रहे हो, क्या तुम मर्द हो ? पशु की तरह रोना उचित है ? मनुष्य-पशु को देखकर, जतु भी घृणा करेंगे, क्या अच्छा (रुचिकर) समझकर खाएँगे ? (नहीं) ४१४ [व.] इसके अलावा ४१५ [म.] (वेश्याओ के) विचार अग्नियाँ हैं; बातें उज्ज्वल सुधा (की) धाराएँ है; विभु होनेवाले पुष्पबाण (मन्मथ) की प्रशंसा ही करती है। अन्यों से प्रेम करती है ? [उनका] विश्वास नहीं है। क्रूर है। अपने साथी (होनेवाले) पति को भी मार डालती हैं। अधर्मी है। निर्दयी हैं। चंचलाएँ (चचल स्वभाव की) है। वेश्याएँ कहाँ और उनके वेदांत की सूक्तियाँ कहाँ ? ४१६ [उ.] हे नरेश्वर ! और एक वर्ष के [बीत] जाने पर [उसके] बाद की रात को तुम मुझसे लगकर लक्षणयुक्त

व. इट्लु मरलि चनि तन पुरंबुन नौक्क येड्डुंडि पिदप नूर्वशिकड केगि यौक रेयि पुरूरवुंडय्यिति कडनुन्न ना वॅलंदियु "गंधर्ववरुल वेडिकॉनुमु नन्निच्चॅदरु" अनवुडु नतंडु गंधर्ववरुलं ब्रार्थिचिन वारलतंडु वॉगडुटकु मॅच्चि यग्निस्थालि निच्चिन नय्यग्निस्थालि नूर्वशिगा दलंचुचु दानितो नडवि दिरुगुचुंडि योक्कनाडदि यूर्वशिगादग्नि स्थालि यनि यॅरिंगि वनंबुन दिग विडिचि यिंटिकि जनुदेंचि नित्यंबु रात्रि दानिनि चिंतिचुचुंड द्रेतायुगंबु सॉच्चिन नाराजु चित्तंबुन गर्म बोधंबुलयि वेदंबुलु मूडुमार्गबुलं दोचिन ना भूवरुंडु स्थालि कडकुं जनि यंदु शमीगर्भ जातंबेन यश्वत्थंबु जूचि या यश्वत्थंबु चेत नरणुलु रेंडु गाविचि मुंदटि यरणि दानुनु वेनुकटि यरणि यूर्वशियुनु रेंटि नडुम नुन्न काष्टंबु पुत्रुंडु ननि मंत्रंबु सॅप्पुचु द्रच्चुचुंड जातवेदुंडनु नग्नि संभविंचि विहिताराधन संस्कारंबुनं जेसि याह्वनीयादि रूपियै नेगडि पुरूरवुनि पुत्रुंडनि कल्पितंबडियॅ। आ यग्नि पुरूरवुनि पुण्यलोकंबुनकु वनुपं गारणं बगुटं जेसि ॥ 418 ॥

कं. आ यज्ञिचे बुरूरवु, डा यज्ञेश्वरु ननंतु हरि वेदनयुन्
श्रीयुतु गूर्चि यजिचें गु, णायुतु डूर्वशि गतंग नरॅंगडु कोरकॅ ॥ 419 ॥

आत्मजों को पाओगे; कुछ भी शंकित न होकर (चले) जाओ।" इस प्रकार (उसके) कहने पर (उस) स्त्री को गर्भवती समझते हुए, बिना किसी शंका के वह नृप-सत्तम धीरे-धीरे (अपने) घर चला गया। ४१७

[व.] इस प्रकार वापस जाकर पुरूरवा अपने पुर में एक साल रहकर बाद को उर्वशी के पास जाकर एक रात उस स्त्री के पास रहा तो उस स्त्री ने कहा कि गंधर्ववरों से प्रार्थना करो, (वे) मुझे देंगे। (उर्वशी के) ऐसा कहने पर उसने गंधर्ववरों से प्रार्थना की तो उन्होंने उस (राजा) की प्रार्थना से संतुष्ट होकर अग्निस्थाली को दिया तो उस अग्नि-स्थाली को उर्वशी समझते हुए उसके साथ जंगल मे घूमते रहकर, एक दिन यह जानकर कि वह अग्निस्थाली है, उर्वशी नहीं है, (उसे) वन में छोड़कर, घर जाकर, हर रात को उसी के (उर्वशी ही के) बारे से सोचता रहा तो त्रेता युग आया [और] उस राजा के मन में कर्मबोधक बनकर वेद तीन मार्गों मे सूझ गये [तो] उस भूवर (राजा) ने स्थाली के पास जाकर, उसमें शमीगर्भजात अश्वत्थ को देखकर उस अश्वत्थ से दो अरणियों को बनवाकर पहली अरणी को वह स्वयं, दूसरी अरणी को उर्वशी और दोनों के बीच में रहनेवाले काष्ठ को पुत्र कहकर मंत्र पढ़ते हुए मंथन किया तो जातवेद नामक अग्नि उत्पन्न हुई और विहिताराधन संस्कार से आह्वनीयादि तीन रूपों को लेकर, बढ़कर, [उसके] पुरूरवा के पुत्र की कल्पना की गयी। उस अग्नि के पुरूरवा को पुण्यलोक में भेजने का कारण बन जाने से ४१८

७५२

उ. ऒक्कड वह्नि, वेल्पु पुरुषोत्तमु डॊक्कड, सर्ववाङ्मयं
बॊक्कड वेदमाप्रणव मॊक्कड वर्णमु दॊल्लि त्रेतयं
दॆक्कटि मान्चि मूडुगनु नेर्परिचॆं दनबुद्धि पॆंपुचे
जक्कक ना पुरूरवुड शक्तुलकुन् सुलभंबुलौ गतिन् ॥ 420 ॥

## अध्यायमु—१५

व. इट्लु वेद विभागंबु गल्पिंचि यागंबु जेसि पुरूरवुंडूर्वशियुन्न गंधर्व लोकंबुनकु जनियॆनु। अतनिकि नूर्वशि गर्भंबुन नायुवु श्रुतायुवु सत्यायुवु रयुंडु जयुंडु विजयुंडन नार्गुरु पुत्रुलु गलिगिरि। अंदु श्रुतायुवुनकु वसुमंतुंडुनु, सत्यायुवुनकु श्रुतंजयुंडुनु रथुनकु श्रुतुंडु नेकुंडन निरुवुरुनु जयुनकु नमितुंडुनु विजयुनकु भीमुंडुनु जनियिंचिरि। आ भीमुनकु गांचनुंडु कांचनुनकु होत्रकुंडु होत्रकुनकु गंगा प्रवाहंबु पुक्किटं बॆट्टिन जह्नुंडु जह्नुनकु बूरुंडु पूरुनकु बालकुंडु बालकुनकु नजकुं डजकुनकु गुशुंडु कुशुनकु गुशांवुंडु धूर्तयुंडु वसुवु कुश-नामुंडन नलुवुरुनु संभविंचिरि। अंदु गुशांवुनकु गाधि यनुवाडु गलिगॆ, ना गाधि राज्यंबु सेयुचुंड ॥ 421 ॥

---

[कं.] उस यज्ञि गुणायुत पुरूरवा ने उस यज्ञेश्वर, वेदमय और श्रीयुत हरि को उद्दिष्ट करके, उर्वशी को देखने जाने के लिए, यज्ञ किया। ४१९

[उ.] एक ही वह्नि है, देवता पुरुषोत्तम एक ही है, सर्ववाङ्मय एक ही है, वेद और वह प्रणव एक ही वर्ण है; (लेकिन) पूर्वकाल में त्रेता में (पुरूरवा ने) अपनी बुद्धि की वृद्धि से एक (वेद) को हटाकर, तीन में अच्छी तरह विभाजित किया ताकि अशक्तों को सुलभ (सुगम) बन जायँ। ४२०

## अध्याय—१५

[व.] इस प्रकार वेद-विभाग की कल्पना करके और याग (यज्ञ) करके, पुरूरवा उस गंधर्वलोक को गया जहाँ उर्वशी रहती थी। उर्वशी के गर्भ से उसके आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, जय और विजय नाम के छः पुत्र हुए। उनमें से श्रुतायु के वसुमान, सत्यायु के श्रुतंजय, रथ के श्रुत और एक नामक दो [पुत्र] जय के अमित, [तथा] विजय के भीम पैदा हुए। उस भीम के कांचन, कांचन के होत्रक, होत्रक के जह्नु जिसने गंगा-प्रवाह को गालों में भर लिया, जह्नु के पूर, पूर के बालक, बालक के अजक, अजक के कुश, कुश के कुशांव, धूर्तय, वसु और कुशनाभ नामक चार (पुत्र) संभव (पैदा) हुए। उनमें से कुशांबु के गाधि नामक (पुत्र) हुआ। जब गाधि राज्य कर रहा था। ४२१ [सी.] गाधि-जाता और कन्या सत्यवती

सी. सत्यवतिनि गाधिजातनु गन्यनु विप्रुडु ऋचिकुंडु वेडिकोनिन
गाधियु तन कोडु गाडनि तॆल्लनि नवकंबु मेनुलु नल्ल चॆवुलु
गल गुर्रमुलु वेयि कन्यकु नीवुंकुविच्चिन गूतु नेनिच्चु ननिन
वसुधामरुंडुनु वरुणुनि कडकेगि हरुल दॆच्चिन गूतु नातडिच्चॆ

आ. ना महात्मु सतियु नत्तयु गॊडुकुल
गोरि यडुग निय्यकोनि यतंडु
विप्रराज मंत्र विततुल वेल्पिचि
चरुवु सेसिक्रुंक नरिगॆ नदिकि ॥ 422 ॥

व. अय्यॆडं दल्लि यडिगिन सत्यवति ब्रह्म मंत्रंबुल दनकु वेल्पिचिन चरुवु दल्लि
किच्चि क्षात्र मंत्रंबुल दल्लिकि वेल्पिचिन चरुवु दानंदुकॊनियुंड नामुनि
सनुदॆंचि चरुवु वीड्वडुट यॆरिगि भार्य किट्लनियॆ ॥ 423 ॥

आ. तल्लि चरुवु नीवु दालिच नीचरुवेल
तल्लि पाल निडिति तरळ नेत्र !
कॊम्म यिक नीकु ग्रूरुडु वुट्टु मी
यम्म ब्रह्मविदुनि ननघु गांचु ॥ 424 ॥

व. अनिन नय्यिंति वॆरचि त्रोविक विनयंबुलाडिन ब्रसन्नुंडै नीकॊडुकु साधुवै
नी मनुमंडु क्रूरुंडगुंगाक यनि ऋचिकुंडनुग्रहिंचिन ना सत्यवतिकि जमदग्नि

को विप्र ऋचिक ने माँगा तो गाधि ने सोचा कि वह (ब्राह्मण) अपनी सुता के लिए समवयस्क नहीं है और कहा कि अगर तुम श्वेत और कोमल अयाल (और) काले कान वाले एक हज़ार घोड़ों को कन्या के लिए शुल्क के रूप में दोगे तो मैं बेटी को दूंगा। ऐसा कहने पर वसुधामर (ब्राह्मण) वरुण के पास जाकर हयों को लाया तो उसने (गाधि ने) बेटी को दिया। [ते.] उस महात्मा (ऋचिक) की सति ने सास और सुत को पाने की इच्छा करके (अपने पति से) माँगा तो वह (पति) विप्र-राज-मंत्र-विततियों (समूहों) से होम करके और चरु (होमान्न) को बनाकर स्नान करने के लिए नदी को गया। ४२२ [व.] उस समय माँ के माँगने पर सत्यवती ने ब्रह्ममंत्रों से पकाया गया अन्न माँ को देकर और क्षात्रमंत्रों से पकाया गया अन्न स्वयं लेकर (खाकर) रह गयी तो उस मुनि ने आकर (और) चरु को विभजित किया हुआ जानकर पत्नी से यों कहा : ४२३ [आ.] हे तरल नेत्र (वाली) ! माँ की चरु को तुमने क्यों ले लिया और अपनी चरु को माँ को क्यों दिया ? हे स्त्री ! अब तुम्हारे गर्भ से एक क्रूर का जन्म होगा और तुम्हारी माँ एक ब्रह्मविद तथा अनघ को जन्म देगी। ४२४ [व.] यों कहने पर उस इंति (स्त्री) ने डरकर (और) प्रार्थना करके, विनय से बातें की तो (उस ऋचिक ने) प्रसन्न होकर

संभविंचें। सत्यवतियु गौशिकी नदियै लोकपावनियै प्रवहिंचेंनु। आ जमदग्नियु रेणुवु कूतुरयिन रेणुकनु विवाहंबै वसुमनादि कुमारुलं गनियेंनु अंदु ॥ 225 ॥

कं. पुरुषोत्तमु नंशंबुन, धर जमदग्निकि जनिंचि धन्युडु रामुं
डिरुवदि योकमरि नृपतुल, शिरमुल जक्कडिचें दनदु चेगोड्डंटन्॥426॥

व. अनिन विनि भूवरुंडु शुकुन किट्लनियें ॥ 427 ॥

परशुरामुनि चरित्रमु

उ. एटिकि जंपें रामुडवनीशुल बल्वुर वारियंदु द-
प्पेटिकि गलगें विप्रुडलडेटिकि राजस तामसंबुलन्
वाटमु बोंदें भूभरमु वारित मौटदि येविधंबु ना
माटकु मौनिचंद्र ! मरुमाट प्रकाशमु गाग जेप्पवे ॥ 428 ॥

व. अनिन विनि शुकुंडिट्लनियें ॥ 429 ॥

सी. हैहयाधीश्वरुं डर्जुनुं डनुवाडु धरणीश्वरुललोन दगिनवाडु
पुरुषोत्तमांशांशु बुण्यु दत्तात्रेयु नाराधनमु सेसि यतनिवलन
बरिपंथि जयमुनु बाहुसहस्त्रंबु नणिमादि गुणमुलु यशमु बलमु
योगीश्वरत्वंबु नोजयु देजंबु जेंडनि यिंद्रियमुलु सिरियु बडसि

---

अनुग्रह किया (दिखाया) कि तुम्हारा पुत्र साधु होगा और तुम्हारा पौत्र क्रूर बनेगा। उस सत्यवती के जमदग्नि पैदा हुआ। सत्यवती भी कौशिकी नदी (और) लोक-पावनी बनकर प्रवहित हुई। उस जमदग्नि ने भी रेणु की लड़की रेणुका से विवाह किया और वसुमन आदि पुत्रों को पैदा किया। उनमें ४२५ [कं.] पुरुषोत्तम के अंश में धरा पर जमदग्नि से जन्म लेकर, धन्य राम ने इक्कीस बार नृपतियों के सिरों को अपनी कुल्हाड़ी से काट डाला। ४२६ [व.] ऐसा कहने पर सुनकर भूवर (परीक्षित) ने शुक से इस प्रकार कहा। ४२७

परशुराम की कथा

[उ.] क्यों मार डाला राम ने अनेकों अवनीशों (राजाओं) को ? उनसे क्या ग़लती हुई थी ? उसने राजस [और] तामस [गुणों] में क्यों अनुकूलता पायी ? भू का भार क्यों (और) कैसे वारित हुआ ? हे मौनिचंद्र ! मेरी बात (प्रश्न) का उत्तर प्रकाशमान होने की पद्धति में दो। ४२८ [व.] ऐसा कहने पर, सुनकर, शुक ने इस प्रकार कहा। ४२९ [सी.] हैहयाधीश्वर अर्जुन नामक (राजा) धरणीश्वरों में

ते. गालि कैवडि सकल लोकंबुलंदु
दनकु बोरानि रारानि तावु लेक
यॆट्टि चोनैन दनयाज्ञ येपु मिगुल
धरणि वॆलुगॊंदॆ विनु वीथि दरणि माड्कि ॥ 430 ॥

म. ऒॊकनाडा मनुजेंद्रुडंगनलतो नुद्दामुडै वीट नुं-
डक रेवानदिकेगि यंदु दॆलिनीटं जल्लु पोराडि दी
र्घकराब्जंबुल ना नदी जलमुलन् गट्टिन् वडिन् नीरु स्रो
लकु वॆल्लुब्बि रणागतुंडयिन या लंकेशुपै दॊट्टगन् ॥ 431 ॥

व. इट्लु दिग्विजयार्थंबु वच्चिन रावणुं डाराजुचेकट्टं दॊट्टिन येटि नीटिकि सहिंपक रोषंबुनं बोटरियुं वोलॆ नम्मेटि मगनि तोड पोराटमुनकुं दॊडरिन वारिंपक दन बाहु पाटवंबुन ॥ 432 ॥

कं. वीक मॆयि नतडु रावणु
गूकटु लर्गलिचि पट्टिकॊनि मोकाळ्ळं
दाकिचि कोतिकैवडि
नाकं वॆट्टिंचॆ गिंकरावळि चेतन् ॥ 433 ॥

व. अंतनर्जुनुंडु माहिष्मतीपुरंबुन् केतॆंचि ॥ 434 ॥

---

युक्त (प्रसिद्ध) है। पुरुषोत्तमांशांश, पुण्यात्मा दत्तात्रेय की आराधना करके उससे परिपंथियों पर जय, बाहु सहस्र, अणिमादि गुण, यश, बल, योगीश्वरत्व, ओज, तेज, (कभी) न बिगड़नेवाले इंद्रिय और श्री (संपदा) को पाकर, [ते.] [वह] वायु की तरह सकल लोकों में ऐसी जगह को न पाकर जहाँ वह जा न सकता था, न आ सकता था, कहीं भी हो, अपनी आज्ञा के बल से, आकाश पर तरणि (सूरज) की तरह, धरणि पर प्रकाशमान हुआ। ४३० [म.] एक दिन उस मनुजेंद्र ने अंगनाओं के साथ उद्दाम होकर, घर पर न रहकर, रेवा नदी को जाकर और उसके स्वच्छ पानी में छींटें छिड़काते हुए क्रीडाएँ करके, दीर्घ कराब्जों से उस नदी के जल को शीघ्रता से रोक दिया ताकि आगे की तरफ़ वह पानी फूलकर रणागत उस लकेश पर फैल जावे। ४३१ [व.] इस प्रकार दिग्विजयार्थ आये हुए रावण उस राजा से बाँधी गयी हाथों की बाँध के कारण बढ़े हुए पानी को न सहकर, रोष से शूर की तरह उस वीर के साथ लड़ने बढ़ा तो उसकी परवाह न करके अपने बाहु-पाटव (पटुता) से ४३२ [कं.] पराक्रम से उसने रावण के शिरोजों की जड़ को उखाड़ पकड़कर (और) घुटने टेकवाकर, बन्दर की तरह अपनी किंकरावली से (सेवकों के समूह से) [घुटनों को] चटवा दी (चाटने को बाध्य किया)। ४३३

कं. आराजेंद्रुडु रावणु
नोरी ! यिट मीद नूरकुंडुमु जगतिन्
वीरुड ननकुमु काचिति
वोरा यनि सिग्गु पड़िचि पुच्चेन् मरलन् ॥ 435 ॥

व. अंत ॥ 436 ॥

सी. धरणीशुडोक नाडु दैवयोगंबुन वेटकै कांतार वीथि कोगि
तिरिगि याकट श्रांत देहुडै जमदग्नि मुनि याश्रममु जेरि म्रोक्कि निलुव
ना मुनींद्रुडु राजु नर्थितो बूजिंचि या राजुनकु राजु ननुचरुलकु
दन होम धेनुवु दडयक रप्पिंचि यिष्टान्नमुलु गुरियिप नतडु

ते. गुडिचि कूर्चुंडि मोदवुप गोकि जेसि
संपद यदेल यो यावु चालु गाक
यिट्टि गोवुल नेन्नडु नेडगमनुचु
बट्टि तेंडनि तन योद्द भटुल वनिचे ॥ 437 ॥

व. पंचिन वारलु दर्पंबुनं जनि ॥ 438 ॥

कं. क्रेपुं बापकुडंचुनु
नापदलं बडितिमनुचु नंबा यनुचुं
जूपोपरु नृपुलंचुनु
वापोवन् मोदवु गोनुचु वच्चिरि पुरिकिन् ॥ 439 ॥

---

[व.] इसके बाद अर्जुन माहिष्मतीपुर में आकर ४३४ [कं.] उस राजेंद्र ने रावण से कहा, "रे, इसके वाद (अब से) चुप रहो। यों न कहो कि जग में मैं वीर हूँ। जा रे, (तुझे) बचा दिया।" इस प्रकार उसे लज्जित करके (अर्जुन ने रावण को) लौटा दिया। ४३५ [व.] तब ४३६ [सी.] धरणीश एक दिन दैवयोग से आखेट के लिए कांतारवीथि (जंगल) में जाकर, घूमकर, भूख से श्रांत-देही बनकर, जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँचकर और नमस्कार करके खड़ा रहा तो उस मुनींद्र ने राजा को अर्थि से (चाहकर) पूजा करके और उस राजा तथा राजा के अनुचरों के लिए अपनी होमधेनु को शीघ्र बुलवाकर, इष्टान्नों को वरसाया तो उस (राजा) ने भोजन करके, [ते.] बैठकर और उस गाय पर इच्छा कर, यों कहा (सोचा) कि "संपदा किसलिए, यह गाय ही काफ़ी है। ऐसी गायों को कभी नहीं छोड़ जाना है।" उस गाय को पकड़ लाने के लिए, अपने पास रहनेवाले भटों को भेजा। ४३७ [व.] भेजे जाने पर वे दर्प से जाकर। ४३८ [कं.] यह कहने पर भी कि बछड़े को (माँ से) अलग न कीजिए, आपदाओं में पड़ गयी, 'अंबा' कहने पर (रँभाने पर), नृप (अपनी) नजर (में पड़ी चीज़

व. अंत नर्जुनुंडु माहिष्मती पुरंबुनकु वच्चुनॆड रामुंडाश्रमंबुन केतॆंचितद्वृत्तांतंबंतयु विनि ॥ 440 ॥

आ. अद्दिरय्य ! यिंट नन्नंबु गुडिचि मा
यय्य बलवनंग नाक्रमिंचि
क्रॊव्वि राजु मॊदवु गॊनिपोयि नाडट
येनु रामुडौट यॆरुगडॊक्को ॥ 441 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 442 ॥

म. प्रळयाग्निच्छट भंगि गुंभि विदळिंपं वारु सिंहाकृति
बॆलुचन् रामुडिलेशु वॆंट नडचॆं बृथ्वीतलं बॆल्ल ना
कुलमै क्रुंग गुठारियै कवचियै कोदंडियै कांडियै
छलियै साहसियै मृगाजिन मनोज्ञ श्रोणियै तूणियै ॥ 443 ॥

व. चनि माहिष्मतीपुरद्वारंबु जेरि निलुचुन्न समयंबुन ॥ 444 ॥

म. कनियॆन् मुंदट गार्तवीर्युंडु समित्कामुं ब्रकामुं शरा-
सनतूणीर कुठार भीमु नतिरोष प्रोच्चलद्भ्रूयुगा-
नन नेत्रांचल सीमु नैण पट नानामालिकोद्दामु नू-
तनसंरंभ नरेंद्र दार शुभ सूत्र क्षामुनिन् रामुनिन् ॥ 445 ॥

को) न सहते [छोड़ते] और [उसके] रोने पर, (राजपुरुष) गाय को लेकर अपनी पुरी को आये। ४३९ [व.] बाद को अर्जुन के माहिष्मतीपुर जाने पर राम आश्रम में आकर, ४४० [आ.] "वाह रे! घर में अन्न खाकर, मेरे पिता के 'नाही' कहने पर, आक्रमण करके, चाहकर, राजा गाय को ले गया है! शायद वह नहीं जानता कि मैं राम हूँ। ४४१ [व.] यों कहकर, ४४२ [म.] प्रलयाग्नि की छटा की तरह [और] कुंभि (हाथी) को मार डालने के लिए दौडनेवाले सिंह की आकृति से [और] क्रोध से राम इलेश (राजा) के पीछे चल पड़ा। सारा पृथ्वीतल आकुल (व्याकुल) होकर दब गया तो कुठारी (कुठारधारी) बनकर, कवची (कवचधारी) बनकर, कोदंडी बनकर (हाथ में धनुष लेनेवाला), कांडी (बाणों को धारण करनेवाला) बनकर, छली (युक्तिशाली) बनकर, साहसी बनकर, मृगाजिन-मनोज्ञ-श्रोणी (वाला) बनकर और तूणी (तूणीरधारी) बनकर। ४४३ [व.] जाकर और माहिष्मतीपुर के पास पहुँचकर खड़ा रहते समय ४४४ [म.] कार्तवीर्य ने अपने सामने समित्कामी (युयुत्सु), प्रकामी (मनमाना करनेवाला), शरासन-तूणीर-कुठार (के कारण) भीम, (भयंकर) अतिरोष-प्रोच्चलद्भ्रूयुग-आनन-नेत्रांचल-सीमा वाले, ऐणपट नानामालिकोद्दाम, नूतन संरंभ से नरेंद्रदाराओं के शुभ-सूत्रक्षाम (-मंगल-सूत्रों को नष्ट करनेवाले) राम को देखा। ४४५ [व.] देखकर (और)

व. कनि कोंपिंचि ॥ 446 ॥

उ. बालुडु वेंरि ब्राह्मणुडु ब्राह्मणु कैवडि नुंट मानि भू-
पालुर तोड भूरि बल भव्युल तोड भयंबु दक्कि क-
य्यालकु वच्चिनाडु मनयंदिक बापमु लेदु लेंडु लें-
डेल सहिंप भूसुरुनि नेयुडु व्रेयुडु गूल्पुडिम्महिन् ॥ 447 ॥

व. अनि कदलिंचि दंडनायकुल बुरिकोलिपन वारु रथगज तुरग हरि पदाति समूहंबुलतो लेक्ककुं बदियेडक्षौहिणुलतो नेंदुरु नडचि शर चक्र गदा खड्ग भिंडिपाल शूल प्रमुख साधनंबुल नोंप्पिंचिन नव्विप्रवरुंडु गन्नुल कोलुकुल निप्पुलु गुप्पुलु गोन रेंट्टिंचिन कट्लक मिट्टिपडि यज्ञोपवीतंबु सवक निडि कोनि कराळिंचि बिट्टु दट्टिंचि कठोरंबगु कुठारंबु सारिंचि मूकलपै कुरिकि तोलकरि मोगंबुनं ग्रोच्चेलिक पट्टुनं जेट्टुलु गोट्टु कृषीवलुनि तेंरंगुन बवंबुलु द्रेंचुचु ननटि कंबंबुल देगनडचु नरामकारुनि पगिदि मध्यंबुल द्रुंचुचु दाळ फलंबुलु राल्चु वृक्षारोहकुनि कैवडि शिरंबुलु द्रुंचुचु मृगंबुल वंडं द्रुंडिचु सूपकारुनि भंगि नवयवंबुलं जेक्कुचु नंतटं दनिवि सनक विलय काल कोलि केळिनि मंटलुमियुचु विल्लंदि येल्ल येडं बिडुगुल सोनलु गुरियु

क्रोधित होकर। ४४६ [उ.] "बालक (है) यह बेचारा ब्राह्मण; ब्राह्मण की तरह रहना छोड़कर, भूपालों से और भूरिबल-भव्यों से, भय छोड़कर युद्ध के लिए आया है; अब हम [लोगों] में तो पाप नहीं हैं; उठो, उठो; भूसुर को क्यों सहना है ? [उस पर] टूट पड़ो, मारो [और] इस मही पर मार गिराओ।" ४४७ [व.] इस प्रकार [अपनी सेना को] हिला (उत्तेजित) कर दंडनायकों को (सेनाधिपतियों को) उकसाया तो उन्होंने रथ-गज-तुरग [तथा] पदाति समूहों से, गिनती के लिए सत्रह अक्षौहिणियों के साथ सामने चलकर, शर-चक्र-गदा-खड्ग-भिंडिवाल [और] शूल प्रमुख (आदि) साधनों से पीड़ित किया तो उस विप्रवर की आँखों के कोनों में आग भर गयी; [उसने] दुगुने क्रोध से उछलकर यज्ञोपवीत को सँभालकर, गरजकर, शीघ्रता से जमकर, कठोर कुठार को तानकर (और) भीड़ों पर दौड़कर, प्रथम वर्षा के समय बीहड़ पर उगे हुए, पेड़ों को काटने वाले कृषीवल (किसान) की तरह पाँवों को काटते हुए, केले के पेड़ों को काटनेवाले आरामकार (माली) की तरह मध्य [भागों को] काटते हुए, तालफलों को गिरानेवाले वृक्षारोहक की तरह सिरों को ढुलाते हुए, मृगों को पकाने के लिए काटनेवाले सूपकार (रसोइया) की तरह अवयवों को काटते हुए, उससे तृप्त न होकर विलय-(प्रलय) काल की कीली (आग) की तरह ज्वालाओं को वमन करते हुए, धनुष को लेकर सब जगहों पर, बिजलियों की वर्षा करनेवाले अनेक पयोदों की तेज़ी से (अगणित)

बलु मॊगिळ्ळ वडुवुन नप्रमाणंबुलगु बाणंबुलं बऱपि सुभट सैन्यंबुल दैन्यंबु नॊंदिचुचु नड्डंबु लेनि यार्भटंबुलुगल बाण वर्ष घृतंबुलतो राहुतुलं गोपानलंबुन काहुतुलु सेयुचु तुरंगंबुल निरंगंबुल गाविचुचु रथंबुल विशलथंबुलगा नॊनचुचु द्विरदंबुल नरदंबुल पै बऱवंदोलुचु निव्विधंबुन सेनल नंपवानल मुंचि रूपु मापिन ॥ 448 ॥

कं. मत्तिलिल भूत जालमु
चित्तंबुल जॊक्कि वेड्क जिंदुलु वाऱन्
जॊत्तिलिल समित्तलमुन
नॆत्तुरु मेदंबु पलल निकरंबय्यॆन् ॥ 449 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 450 ॥

कं. मेली ब्राह्मणुडॊक्कडु
नेलं बडगूल्चॆ सन्य निचयमु नॆल्लन्
बालार्पनेल योतनि
दूलिचॆद गाक नादु दोर्बलमु वडिन् ॥ 451 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 452 ॥

म. ओक येनूऱु करंबुलन् धनुवु लत्युल्लासियै तालिच वे-
ऱॊक येनूट गुणध्वनुल् निगुड शातोग्रास्त्रमुल् गूर्चि वि-
प्र ! कुठारंबुनु निन्नु गूल्तु ननुचुन् भंजिचि पुंखानुपुं-
ख कठोरंबुग नेसि यार्चॆ रयरेखा धामुनिन् रामुनिन् ॥ 453 ॥

---

होनेवाले बाणों को बरसाकर, सुभट सेनाओं को दीन बनाते हुए, बिना रुकावट के आर्भाट-(संरंभ) युक्त-बाण-वर्षा (रूपी) घृतों से अश्वारोहकों को (अपने) कोपानल की आहुति करते हुए, तुरंगों को निरंग (अवयवहीन) बनाते हुए, रथों को विश्लथ (शिथिल) बनाते हुए, [और] द्विरदों (हाथियों) कोरथों पर गिराते हुए, इस प्रकार सेनाओं को बाण-वर्षाओं में डुबोकर नष्ट कर दिया तो ४४८ [कं.] भूतजाल मस्त होकर, अपने चित्तों को परवश करके, कुतूहल से इधर-उधर उछल-कूद करने पर खून और मांस के युद्धस्थल में बिखर जाने से सारा युद्ध-क्षेत्र मांस का निकर बन गया। ४४९ [व.] उस अवसर पर ४५० [कं.] "बहुत अच्छा! इस ब्राह्मण ने अकेले सारे सेना-निचय (-समूह) को भूमि पर गिरा दिया। उपेक्षा क्यों करना? अपने दोर्बल (बाहुबल) के वेग से [इसको] गिरा दूंगा।" ४५१ [व.] यों कहकर ४५२ [म.] [अर्जुन ने] एक पाँच सौ करों में (हाथों में) अत्युल्लास से धनुओं को धारण कर और एक पाँच सौ [हाथों] से गुणध्वनियों के फैल जाने पर शातोग्रास्त्र (तेज और उग्र अस्त्रों को) संधान

कं. वडिदूयु लेग गुडुसुलु
पडि कार्मुक पंचशतमु परग विभुडु सौं-
पडरॅ बरिवेष मंडलि
नडुम गर-द्युतुल वॅलयु नलिनाप्तु क्रियन् ॥ 454 ॥

व. इट्लर्जुनुंडु बाहु विलासंबु सूपिन ॥ 455 ॥

म. धरणीदेवुडु रामुडाढ्युडु जगद्धानुष्करत्नंबु दु-
ष्कर चापं बॉक उॅक्कुवट्टि शरमुल् संधिचि पॅल्लेसि भू-
वरु कोदंडमु लॉक्क चूड्कि दुनिमॅन् वाडंतटंबोक वे
तरुवुल् रुव्व गुठारधार नरकॅन् दद्बाहु संदोहमुन् ॥ 456 ॥

कं. करमुलु दुनिसिन नतनिकि
शिरमॉक्कटि चिक्क शैलशिखरमु भंगि
बरशुवुन नदियु द्रुंचॅनु
बरसूदनुडैन घनुडु भार्गवुडु वडिन् ॥ 457 ॥

आ. तंड्रि वडिन नतनि तनयुलु पदिवेलु
दलगि पोयिरतनि दाक लेक
परभयंकरुंडु भार्गवुंडंत ना
गोवु ग्रेपुतोड गॉनुचु जनियॅ ॥ 558 ॥

करके, "हे विप्र ! [तुम्हारे] कुठार को [और] तुमको गिरा दूंगा", यों कहते हुए, भर्जन करके पुंखानुपुंख-कठोर-विधि से, रयरेखाधाम राम पर चलाया । ४५३ [कं.] वेग से बाणों के चलने पर [और] कार्मुक पंचशत के भँवर (चक्राकार) बन जाने पर, परिवेषमंडली के मध्य खर (किरण)-द्युतियों में प्रकाशमान होनेवाले नलिनाप्त (सूर्य) की तरह वह विभु (राजा) अधिक सुंदर दिखाई पड़ा । ४५४ [व.] इस प्रकार अर्जुन के [अपने] बाहु विलास को दिखाने पर, ४५५ [म.] धरणादेव, आढ्य (संपन्न) [और] जगद्धानुष्करत्न राम ने एक दुष्कर चाप पर बाण चढ़ा कर, शर संधान करके छोड़कर भूवर (राजा) के कोदंडों को एक ही निशाने में काट डाला: उतने से न जाने देकर, उस राजा के सहस्र तरुओं को फेंक देने पर (राम ने) तद्बाहु-संदोह को कुठार-धारा से काट डाला । ४५६ [कं.] परसूदन, घन, भार्गव के शीघ्र ही हाथों को काट डालने पर [राजा का] एक सिर मिला तो शैल-शिखर की तरह परशु से उसे भी झट काट डाला । ४५७ [आ.] पिता के गिर (मर) जाने पर उसके दस हज़ार तनय, उससे (राम से) युद्ध न कर सककर चले गये । पर (शत्रु)-भयंकर भार्गव तब उस गाय को बछड़े के साथ लेकर चला गया । ४५८ [व.] इस प्रकार होमधेनु को फिर लाकर [और] देकर

व. इट्लु होमधेनुवु मरलं दॆच्चि यिच्चि तन पराक्रमंबु दंड्रि दोबुट्टुवुलकु सवर्णनंबुगा जॆप्पिन जमदग्नि रामुन किट्लनियॆं ॥ 459 ॥

कं. कलवेल्पुलॆल्ल दमतम, चॆलुवंबुलु दॆच्चि राजु जेयुदुरकटा !
वलु वेल्पु राजु वानि, जलमुन निट्लेल पोयि चंपिति पुत्रा ? ॥ 460 ॥

कं. तालिमि मनकुनु धर्ममु, तालिमि मूलंबु मनकु धन्यत्वमुकुन्
दालिमि गलदनि योशुं, -डॆलिचुनु ब्रह्मपदमु नॆल्लन् मनलन् ॥ 461 ॥

कं. क्षम गलिगिन सिरि गलुगुनु
क्षम गलिगिन वाणि गलुगु सौर प्रभयुन्
क्षम गलुग दोन कलुगुनु
क्षम गलिगिन मॆच्चु शौरि सदयुडु दंड्री ! ॥ 462 ॥

कं. पट्टपु राजुनु जंपुट, गट्टलुकन् विप्र जंपु कंटॆनु बाप-
बट्टिट्टनकुमु नीवी, चॆट्ट सॆडं दीर्थ सेव चेयुमु दनया ! ॥ 463 ॥

## अध्यायमु—१६

कं. अनि तन्न्रु दंड्रि पनिचिन
बनि पूनि प्रसादमनुचु भार्गवुडु रयं-
बुन नॊकयेडु प्रयाणमु
सनि तीर्थमुलॆल्ल नाडि चनुदॆंचॆ नृपा ! ॥ 464 ॥

---

[अपने] पिता और सहोदरों से अपने पराक्रम के बारे में वर्णन किया तो जमदग्नि ने राम से इस प्रकार कहा। ४५९ [क.] ओह ! सभी सुंदर देवता-गण अपने-अपने सौदर्य को लाकर राजा को बना देते हैं। अनेक देवताओं का स्वरूप है राजा। हे पुत्र ! मात्सर्य से जाकर उस राजा को इस प्रकार क्यों मार डाला ? ४६० [कं.] "सहन [शीलता] हमारा धर्म है; धर्म का मूल ही सहनशीलता है; ब्रह्मपद में सहनशीलता होने के कारण उसके द्वारा ईश हम सबका पालन कराता है। ४६१ [कं.] "क्षमा होने से श्री (संपत्ति) मिलती है; क्षमा होने से वाणी मिलती है। समस्त सौख्य भी क्षमा के साथ ही मिलते है; तात ! क्षमा [शील] होने से सदय शौरि संतुष्ट होता है। ४६२ [कं.] सार्वभौम राजा को मार डालना बड़े क्रोध से विप्र को मार डालने की अपेक्षा (बदतर) पाप [कार्य] है। हे तनय (पुत्र) ! तुम कुछ दलील न कहो। तुम इस पाप से दूर होने के लिए तीर्थ-सेवा करो।" ४६३

## अध्याय—१६

[कं.] हे नृप ! इस प्रकार पिता ने भेजा तो ध्यान देकर, (पिता की

उ. आयेंड नोंक्क नाडु सलिलार्थमु रेणुक गंगलोनिकि
बोयि प्रवाह मध्यमुन वॉल्पुग नच्चर लेमपिंडुतो
दोय विहारमुल् सलुपु दुर्लभु जित्ररथुन् सरोज मा-
लायुतु जूचुचुंडे बति याज्ञ दलंपक कोंत प्रेमतोन् ॥ 465 ॥

व. इट्लु गंधर्व वल्लभुनि जूचु कारणंबुन दडसि ॥ 466 ॥

उ. अक्कट ! वच्चि पेद्द तडवय्येंनु होममु वेळ दप्पें ने-
निक्कड नेल युंटि मुनि येमनुनो यनि भीत चित्तयै
ग्रक्कुन दोयकुंभमु शिरस्स्थल मंदिडि तेंच्चि यिच्चिवे
म्रोंक्कि फरंबु मोड्चि पति मुंदट नल्लन निल्चें नल्कुचुन् ॥ 467 ॥

व. अप्पुडु ॥ 468 ॥

कं. चित्तमुन भार्य दडसिन, वृत्तांतंबेंरिगि तपसि वेकनि सुतुलन्
मत्तं दीनि जावग, मोंत्तुंडन मोत्तरैरि मुडुकुचु वारल् ॥ 469 ॥

कं. कोंडुकुलु पेंड्लमु जंपनि
गोंडुकुल बेंड्लामु जंप गुरुडानति यी
नडुगुलकु नेंरिगि रामुं
डडुगिडकुंडंग द्रुंचें नन्नल दल्लिन् ॥ 470 ॥

---

आज्ञा को) प्रसाद मानकर, भार्गव शीघ्र एक वर्ष (तक) प्रयाण करके, जाकर सभी तीर्थों में [स्नान] करके लौट आया। ४६४ [उ.] तब एक दिन रेणुका सलिल लाने गंगा [नदी] में जाकर, प्रवाह-मध्य में आनद से अप्सराओं के समूह के साथ तोय-विहार (जल-क्रीड़ा) करनेवाले दुर्लभ चित्ररथ को, जो सरोजमालायुत था, पति की आज्ञा के बारे में न सोचकर, कुछ प्रेम से देखती रही। ४६५ [व.] इस प्रकार गधर्ववल्लभ को देखते रहने के कारण विलंब कर ४६६ [उ.] "अरे ! (यहाँ) आकर बड़ी देरी हुई; होम का समय बीत गया; मैं यहाँ क्यों रह गयी ? न जाने मुनि क्या कहेगा।" यों कहकर भीतचित्ता बनकर, शीघ्र तोय (जल)-कुंभ को शिरस्स्थल पर रखकर, लाकर, देकर, जल्दी नमस्कार करके, कर (हाथ) जोड़कर पति के सामने डरते हुए धीरे (मौन) खड़ी रही। ४६७ [व.] तब ४६८ [कं.] (अपने) चित्त में भार्या (पत्नी) के विलंब करने के कारण का वृत्तांत जानकर, तपस्वी ने जल्दी अपने सुतों से कहा कि इस मत्त (स्त्री) को ऐसे मार (पीट) डालो कि वह मर जाय; [किन्तु] वे आनाकानी करते हुए नहीं मार सके। ४६९ [कं.] पुत्रों ने पत्नी को न मारा तो [अपने] पुत्रों को [तथा] पत्नी को मार डालने के लिए गुरु (पिता) के आज्ञा देने पर उनके पाँवों को नमस्कार करके, राम ने पाँव हिलाये बिना (तत्क्षण) भाइयों और माँ को काट

शा. तल्लिन् भ्रातल नॆल्ल जंपुमनुचो दा जंपि राकुन्न वॆं
पॆल्लन् बोव शपिंचु दंड्रि तन पंपे जेयुडुन् मॆच्चि ना
तल्लिन् भ्रातल निच्चु निक्कमु तपोधन्यात्मकुंडंचु वे
तल्लिन् भ्रातल जंपॆ भार्गवुडु लेदा चंप जेयाडु ? ॥ 471 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 472 ॥

कं. अडुमु सॆप्पक कडपटि, विडुडु रामुंडु सुतुल वॆंड्लमु नचटन्
गॊडुंट दॆग नडिचिन, जडुन दलयूचि मॆच्चॆ जमदग्नि मदिन् ॥ 473 ॥

कं. मॆच्चिन तंड्रिनि गनुगॊनि
चॆच्चॆर नी पडिन वारि जीवंबुलु नी
विच्चिति ननुमनि म्रॊक्किन
निच्चॆन् वारलुनु लेचिरॆप्पटि भंगिन् ॥ 474 ॥

आ. पडिन वारि मरल ब्रतिकिंप नोपुनु
जनकुडनुचु जंपॆ जामदग्न्यु-
डतडु संपॆ ननुचु नन्नल दल्लिनि
जनकु नाज्ञयैन जंप दगदु ॥ 475 ॥

व. अंत ॥ 476 ॥

डाला। ४७० [शा.] "माँ को और सब भ्राताओं को मार डालने के लिए जब [पिता] कहते है, तब स्वयं नही मार डालकर आवें तो पिता ऐसा शाप देगा कि सारा औन्नत्य बिगड़ जाय; उसकी आज्ञा का पालन करने पर, संतुष्ट होकर वह माँ को और भ्राताओं को [लौटा] देगा; [यह] सच है; [वह] तपो धन्यात्मा है"; इस प्रकार कहते हुए जल्दी भार्गव ने माँ को और भ्राताओं को मार डाला। नहीं तो [उन्हें] मार डालने के लिए, क्या, हाथ उठ सकता है ? ४७१ [व.] इस प्रकार ४७२ [कं.] प्रत्युत्तर न देकर आखिरी पुत्र राम ने सुतों व पत्नी को वहाँ कुल्हाड़ी से काट डाला तो 'अच्छा' कहकर, सिर हिलाकर जमदग्नि ने अपने मन में [राम की] प्रशंसा की। ४७३ [कं.] प्रशंसा करनेवाले पिता को देखकर [राम ने] प्रार्थना की कि तुम कहो [वर दो] कि 'इन मृतों के जीवन दे दिये' तो (पिता ने प्राण) दे दिये (और) वे भी सदा की तरह उठ बैठे। ४७४ [आ.] "मृतों को फिर जनक (पिता) सजीव बना सकता है" (यों) कहते हुए जामदग्न्य ने मार डाला; 'उसने (परशुराम ने) मार डाला' कहकर भाइयों और माता को जनक की आज्ञा होने पर भी नहीं मार डालना चाहिए। ४७५ [व.] तब ४७६ [सी.] परशुराम

सी. परशुरामुनि कोडि पगुलु वॅट्टिन यर्जुनु पुत्रकुलात्म यंदु
दंड्रि स्रग्गुटकु संतप्तुलै (व्रेगुचु) पॉगुलुचु नितट नंतट नॅडरु लेचि
तिरिगि याडुचु नॊक्क दिवसमंदा रामु डडवि कन्नल तोड नरुग विदप
बग दीर्प दरि यनि पउतॆंचि होमालयंबुन सर्वेशु नात्म निलिपि

ते. निरुपम ध्यान सुखवृत्ति निलिचि युन्न
पुण्यु जमदग्नि नंदरु बॊदिवि पट्टि
कुट्टुलकुंडग दल द्रेंचि कॊनुचु जनिरि
यड्डुमेतॆंचि रेणुक यडचि कॊनग ॥ 477 ॥

व. मरियुनु ॥ 478 ॥

म. जनकुं जंपिन वैरमुं दलचि राजन्यात्मजुल् नेडु मी-
जनकुं जंपिरि राम ! राम ! रिपुलन् शासितुरम्मंचु न-
म्मुनिपै व्रालि लतांगि मोदिकॊनियॆन् मुय्येडु मारुल् रयं-
बुन रामुंडरुदॆंचि यॆन्निकॊन नापूर्णापदाक्रांतयै ॥ 479 ॥

व. अप्पुडु वलिल मॊरु विनि जमदग्नि कुमारुलु वच्चि यिट्लनि विल
पिंचिरि ॥ 480 ॥

कं. वाकिलि वॆडलवु कॊडुकुलु, राकुंडग नट्टि नीवु राजसुतुलचे
जोक्ककु नॊंदि पोवग, नीकाळ्ळॆट्लाडॆ दंड्रि निर्जर पुरिकिन् ॥ 481 ॥

---

से हारकर दौड़े (भागे) हुए अर्जुन-पुत्र आत्मा (मन) में [अपने] पिता के मरने के लिए संतृप्त होकर, परिताप करते हुए, इधर-उधर अपहसित होकर, उठकर, घूमते हुए एक दिन उस राम के अपने भाइयों के साथ जंगल में जाने पर, बाद को बदला लेने का समय समझकर, आकर होमालय में सर्वेश को आत्मा में स्थिर करके, [ते.] निरुपमध्यानसुख-वृत्ति में खड़े हुए (स्थित) पुण्यात्मा जमदग्नि को सबने अच्छी तरह पकड़कर, जिससे (वह) न हिले न डुले, सिर काटकर और उसे लेकर, रास्ता रोकनेवाली रेणुका के रोते रहने पर भी चले गये। ४७७ [व.] और भी ४७८ [म.] "जनक को मार डालने के वैर (अपराध) का स्मरण करके, राजन्यात्मजों (राजकुमारों) ने आज तुम्हारे जनक को मार डाला; राम ! राम ! रिपुओं पर शासन (दंडित) करो, आओ"; यों कहते हुए, आपूर्णापदाक्रांता (संपूर्ण आपदाओं से आक्रांता) होकर, उस मुनि पर गिरकर, लतांगी ने इक्कीस बार (अपने सिर को) पीट लिया ताकि राम (परशुराम) शीघ्र आ जाए। ४७९ [व.] तब ऐसा माँ की पुकार सुनकर, जमदग्नि के पुत्र आकर इस प्रकार रोये। ४८० [कं.] हे पिता [जी] ! पुत्रों के साथ आए बगैर घर से बाहर नहीं निकलते। ऐसे तुम,

व. अनि विलपिंचुचुन्न यन्नलं जूचि रामुं डिट्लनिये ॥ 482 ॥

उ. एडुवनेल तंड्रि तनु वेमरऽ कुंडुडु तोडुलार ! ने-
सूडिदे तीर्तुनंचु वरशु द्युतिभीमुडु रामु डुग्रुडै
योडक यर्जुनात्मभवुलुन्न पुरंबुलकेगि चोच्चि गो-
डाडगबट्टि चंपे वडि नर्जुन जातुल ब्रह्मघातुलन ॥ 483 ॥

कं. खंडिंचि रिपुल शिरमुलु
गोंडलुगा बोगुलिडियें गुरु रक्त नदुल्
निंडिकोनि पारऽ नुव्बुच
भंडनमुन विप्ररिपुलु भयमंद नृपा ! ॥ 484 ॥

व. मरियु नंतट बोक ॥ 485 ॥

आ. अय्य पगकु रामु डलयक राजुल
निरुवदोक्क मारु नरसि चंपें
जगति मीद राजशब्दंबु लेकुंड
सूडु दीर्पलेनि सुतुडु सुतुडे ॥ 486 ॥

व. मरियु नारामुंडु शमंतकपंचकंबुन राज रक्तंबुलं दोम्मिदि मडुगुलु गाविंचि तंड्रिशिरंबु देच्चि शरीरंबुलो संधिंचि सर्व देवमयुंडगु देवुंडु दान कावुन दन्नु नुद्देशिंचि यागंबु सेसि होतकुं दूर्पुनु ब्रह्मकु दक्षिण भागंबुनु नध्वर्युनकु

---

राजसुतों से सताये जाकर, निर्जर पुरी को जाने के लिए तुम्हारे पैर कैसे हिले (चले) ? (अकेले कैसे गए ?) ४८१ [व.] इस प्रकार रोनेवाले बड़े भाइयों को देखकर राम ने इस प्रकार कहा। ४८२ [उ.] "भाइयो ! क्यों रोना ? पिता जी की देह की रक्षा सावधानी से करो। देखो, मैं अभी बदला लूँगा।" यों कहते हुए परशुद्युति से भीम, राम उग्र बनकर, बिना सकोच के अर्जुन के आत्म-भवों के रहने के पुर में जाकर, ब्रह्मघाती, अर्जुन के पुत्रों को पकड़कर उनके रोते रहने पर भी शीघ्र मार डाला। ४८३ [कं.] हे नृप ! रिपुओं के सिर काटकर, पहाड़ों की तरह ढेर लगायी, युद्ध में नृप और रिपु डर जायें, ऐसी गुरु (बड़ी) रक्त-नदियाँ भरकर बह उठीं। ४८४ [व.] और उतने से न रुक कर। ४८५ [आ.] पिता के [वध के] प्रतीकार के लिए राम ने न थककर राजाओं को ढूँढकर, इक्कीस बार मार डाला ताकि जगत में राज-शब्द न रहे। क्या बदला न ले सकनेवाला सुत भी सुत है ? ४८६ [व.] और वह राम शमंत-पंचक में, राज-रक्तों के नौ सरोवर बनाकर, पिता का सिर लाकर, शरीर से संधान करके, अपने सर्वदेवमय देव होने के कारण अपने को ही उद्दिष्ट करके, याग कर, होता को पूर्व (दिशा), ब्रह्मा

बडमटि दिक्कुनु नुद्गात्रुनकु नुत्तर दिशयुनुन्न वारलकवांतर दिशलुनु गश्यपुनकु मध्यदेशंबुनु नुपद्रष्टकु नार्यावर्तंबुनु सदस्युलकुं दक्किन येंडलुनु गलयनिच्चि ब्रह्मनदियैन सरस्वतियंदवबृथ स्नानंबु सेसि कल्मषंबुलं बासि मेघविमुक्तुंडयिन सूर्यु डुनुं बोलें नोप्पुचुंडेनु । अंत ॥ 487 ॥

कं. आप्तुडगु पुत्त्रु वलननु
ब्राप्त तनुंडगुचु दपमु बलिमिनि मिटन्
सप्तर्षि मंडलंबुन
सप्तमुडै वेलुगु चुंडे जमदग्नि नृपा ! ॥ 488 ॥

कं. आ जमदग्नि तनूजुडु, राजीवाक्षुंडु घनुडु रामुडधिकुडै
योजनु सप्तर्षुललो राजिल्लेंडु मीदि मनुवुरा नव्वेळन् ॥ 489 ॥

आ. शांत चित्तुडगुचु संग विमुक्तुडै, भव्युडै महेंद्र पर्वतमुन
नुन्नवाडु रामुडोजतो गंधर्व, सिद्धवरुलु नुतुलु सेयुचुंड ॥ 490 ॥

कं. भगवंतुडु हरि योक्किय
भृगुकुलमुन बुट्टि येल्ल पृथिवीपतुलन्
जगती भारमु वायग
बग गोनि पलुमारु जंपे बवरमुन नृपा ! ॥ 491 ॥

व. अंत गाधिकि नग्नितेजुंडगु विश्वामित्रुंडु जन्मिंचि तपोबलंबुन राजधर्मंबुनु विगनाडि ब्रह्मर्षियै येक शत संख्या गणितुलगु कोडुकुलं गनियेंनु ।

---

को दक्षिण भाग, अध्वर्यु को पश्चिम दिशा, उद्गाता को उत्तर दिशा, उपस्थित लोगों को अवांतर दिशाएँ, कश्यप को मध्यदेश, उपद्रष्टा को आर्यावर्त, सदस्यों को शेष दिशाएँ सब देकर ब्रह्मनदी सरस्वती में अवबृथ-स्नान करके कल्मषों से मुक्त होकर मेघविमुक्त सूर्य की तरह प्रकाशमान हुआ । तब ४८७ [कं.] हे नृप ! जमदग्नि (अपने) आप्त पुत्र से प्राप्त-तनु वाला होता हुआ, तप के बल से, आकाश में सप्तर्षि मंडल में सप्तम बनकर, प्रकाशमान होता रहा । ४८८ [कं.] वह जमदग्नि-तनूज, राजीवाक्ष, घन, राम अधिक बनकर, क्रम से सप्तर्षियों में उस समय ऊपर के मनु के आने पर प्रकाशमान होता रहा । ४८९ [आ.] गंधर्व व सिद्ध-वरों के नुति (स्तुति) करते समय, राम शांतचित्त होते हुए, संग-विमुक्त होकर, भव्य होकर, क्रम से महेंद्र पर्वत पर रहने लगा । ४९० [कं.] हे नृप ! भगवान हरि ने इस प्रकार भृगुकुल में पैदा होकर, बदला लेने के लिए युद्ध में पृथ्वीपतियों को अनेक वार मार डाला ताकि जगती का भार टल जाय । ४९१ [व.] तब गाधि से अग्नि-तेजस्वी विश्वामित्र ने जन्म लेकर तपोबल से राजधर्म छोड़कर, ब्रह्मर्षि बनकर, एक शत संख्या

अय्यॆड भृगुकुल जातुंडयिन यजीगर्तुनि कॊडुकु शुनश्शेफुंडु दल्लि दंड्रुल चेत हरिश्चंद्रुनि यागपशुत्वंबुनकु नम्मुडु वडि ब्रह्मादि देवतल विनुति सेयुचु मॆप्पिचि देवतल चेत बंधविमुक्तुंडयिन वानियंदु गृप गलिगि चेपट्टुकॊनि विश्वामित्रुंडु पुत्रुलकिट्लनियॆ ॥ 492 ॥

कं. कन्नल गंटिनि वीनिनि, मन्नन कॊमरुंडु नाकु मक्कुव मीलो
नन्नन्न यनुचु नीतनि, मन्निपुंडनिन जूचि मद संयुतुलै ॥ 493 ॥

कं. इतडन्नट वो माकुनु
गृतकृत्युलमयितिमनुचु गेलियॊनर्पन्
सुतुलन् म्लेच्छुलु गंडनि
धृति लेक शपिंचॆ दपसि तिरुगुडु वडगन् ॥ 494 ॥

व. अय्यॆड नतनि शापंबुनकु वॆरचि या नूर्वुरयंदु मध्यमुंडयिन मधुच्छंदुंडेबंड्र दम्मुलुं दानुनु नमस्करिंचि तंड्री ! नीचॆप्पिन क्रमंबुन शुनश्शेफुंडु माकन्न यनि मन्निपं गलवार मनवुडु संतसिंचि मंत्रदर्शियैन शुनश्शेफुनि वारल यंदु वॆद्द जेसि मधुच्छंदुनकिट्लनियॆ ॥ 495 ॥

आ. पाडि सॆडक वीडु नेडु मीकतमुन
गॊडुकु गलिगॆ नाकु गॊडुकुलार !

---

वाले पुत्रों को पैदा किया। तब भृगुकुलजात अजीगर्त के पुत्र शुनश्शेफ के [अपने] माता-पिता के द्वारा हरिश्चन्द्र के यागपशुत्व के रूप में बिककर ब्रह्मादि देवताओं की विनुति करके, सतुष्ट (प्रसन्न) करके, पितृ-देवताओं से बंध-विमुक्त होने पर, उस पर कृपा करके, विश्वामित्र ने पुत्रों से इस प्रकार कहा। ४९२ [कं.] "आँखों से इसे देखा; यह मेरा सम्मान्य पुत्र है। तुम प्रेम से इसे बड़े भाई का बड़ा भाई (सबसे वड़ा भाई) कहते हुए इसको स्वीकार (मान) करो।" ऐसा कहने पर (उसके पुत्र) मद-संयुत होकर। ४९३ [क.] "ओह ! यह है हमारा अग्रज ! [अब तो] कृतकृत्य हो गये !" ऐसा कहते हुए हँसी-मज़ाक़ करने पर, तपस्वी ने, धृति न होने से, सुतों को म्लेच्छ बनने का शाप दिया, जिससे वे [इधर-उधर] भटकते रह गये ४९४ [व.] तब उसके शाप से डर कर, [उन सौ में] मध्यम होनेवाला मधुच्छंद पचास छोटे भाइयों के साथ स्वयं नमस्कार करके [कहा] "पिता जी ! तुम्हारे कहे अनुसार शुनश्शेफ को हमारा बड़ा भाई कहकर उसका सम्मान करेंगे", [ऐसा] कहने पर संतुष्ट होकर, मंत्रदर्शी शुनश्शेफ को उनमें बड़ा बनाकर [विश्वामित्र ने] मधुच्छंद से इस प्रकार कहा। ४९५ [आ.] "हे पुत्रो ! धर्म (में) न बिगड़कर, यह तुम लोगों के कारण, मेरा पुत्र हुआ ! पुत्रो ! तुम लोग अब प्रीति से देवरात

कड्डुपुलार ! मीरु गौंडुकुल गनुँडिक
ब्रीतितोड देवरातु गूडि ॥ 496 ॥

व. अनि पलिकॅनु अट्लु शुनश्शेफुडु देवतल चेतविडिवडुटं जेसि देवरातुंडय्य। मधुच्छंदंडु मॊदलयिन येबंड्रु नादेवरातुनकु दम्मुलैरि। पॆद्दलयिन यष्टक हारीत जयंत सुमदासु लेबंड्रुनु वेरै चनिरि। ई क्रमंबुन विश्वामित्रु कॊडुकुलु रेंडु विधंबुलयिनं ब्रवरांतरंबु गलिगॆननि चॆप्पि शुकुंडिट्लनियॆ।

## अध्यायमु—१७

व. आ पुरूरवु कॊडुकगु नायुवुनकु नहुषुंडुनु, क्षत्रवृद्धुंडुनु, रजियुनु, रंभुंडुनु ननेनस्सुंडुनु ननुवारु पुट्टिरि। अंदु क्षत्रवृद्धुनकु गुमारुंडगु सुहोत्रुनकु गाश्युंडु, गुशुडु, गृत्स्नमदुंडु ननु मुग्गुरु गलिगिरि। आ कृत्स्नमदुनकु शुनकुंडुनु शुनकुनकु शौनकुंडुनु नम्महात्मुनिकि बह्वृचप्रवरुंडुनु जन्मिचिरि। आ बह्वृचप्रवरुंडु दपोनियतुंडै चानॆ। काश्युनकु गाशियु, गाशिकि राष्ट्रुंडुनु राष्ट्रुनकु दीर्घतपुंडुनु जनिंचिरि ॥ 497 ॥

कं. आ दीर्घतपुनि कधिकुडु, श्रीदयितांशमुन बुट्टॆ सेव्युंडायु-
र्वेदज्ञुडु धन्वंतरि खेदंबुलु, वायु नतनि गीर्तन सेयन् ॥ 498 ॥

---

के साथ मिलकर, पुत्रों को पैदा करो।" ४९६ [व.] यों कहा। इस प्रकार शुनश्शेफ देवताओं के द्वारा मुक्त होने पर देवरात बना। मधुच्छंद आदि पचास (भाई) उस देवरात के छोटे भाई बन गये। बड़े होनेवाले अष्टक, हारीत, जयंत, सुमद आदि पचास (भाई) अलग होकर चले गये। इस क्रम से विश्वामित्र के पुत्रों के दो दलों के होने पर प्रवरांतर (प्रवर में भेद) हुआ। यों कहकर शुक ने इस प्रकार कहा।

## अध्याय—१७

[व.] उस पुरूरवा के पुत्र आयु के नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रंभ (और) अनेनस नामक (पुत्र) पैदा हुए। उनमें क्षत्रवृद्ध के पुत्र सुहोत्र के काश्य, कुश (और) कृत्स्नमद नामक तीन (पुत्र) हुए। उस कृत्स्नमद से शुनक, शुनक से शौनक (और) उस महात्मा से बह्वृचप्रवर का जन्म हुआ। वह बह्वृचप्रवर तपोनियत बनकर चला गया। काश्य से काशि, काशि से राष्ट्र और राष्ट्र से दीर्घतप का जन्म हुआ। ४९७ [क.] उस दीर्घतप के अधिक (महान) [तथा] श्रीदयित (विष्णु) के अंश से सेव्य (और) आयुर्वेदज्ञ धन्वंतरि पैदा हो गया। उसका कीर्तिगान करने से खेद दूर हो जाते हैं। ४९८ [व.] वासुदेवांश संभूत होनेवाला वह धन्वंतरि यज्ञभाग

व. वासुदेवांश संभूतुंडगु ना धन्वंतरि यज्ञ भागंबुन कर्हुंडु । अतनिकि गेतुमंतुंडु गेतुमंतुनकु भीमरथुंडु नतनिकि दिवोदासुंडनं बरगु द्युमंतुंडु नुदयिंचिरि। आद्युमंतुनकु प्रतर्दनुंडु जन्मिचेंनु। आ प्रतर्दनुंडु शत्रुजित्तनियुनु ऋतध्वजुंडनियुं जंप्पंबडेनु। आतनिकि गुवलयाश्वुंडु संभविंचॆ ॥ 499 ॥

आ. वसुमतीश! विनु कुवलयाश्व भू भर्त
ललित पुण्यु घनु नलर्कुं गनियॆ
नातडेलॆ नेल नरुवदियारुवे-
लेंड्लु वानि भंगि नेलरेवरु ॥ 500 ॥

व. अय्यलर्कुनकु सन्नतियुनु, नतनिकि सुनीतंडुनु, नतनिकि सुकेतनुंडुनु, नतनिकि धर्मकेतुवुनु, नतनिकि सत्यकेतुवुनु, नातनिकि धृष्टकेतुवुनु, नाधृष्ट केतुवुनकु सुकुमारुंडुनु सुकुमारुनकु वीतिहोत्रुंडुनु, वीतिहोत्रुनकु भर्गुंडुनु, भर्गुनकु भार्गभूमियु जनिंचिरि ॥ 501 ॥

आ. वाडु तुदयु गाश्य वसुमतीशुंडादि-
यॆन वारु काशुलनग नंगडि-
रवनिमीद वारला क्षत्रवृद्धुनि
वंश जातु लगुचु वंशवर्य! ॥ 502 ॥

व. मरियु क्षत्रवृद्धुनिकि रॆंडव कॊडुकगु कुशुनिकि प्रीतियुनु वानिकि संजयुंडुनु, संजयुनिकि जयुंडुनु, जयुनिकि गृतुंडुनु, गृतुनिकि हार्यध्वनुंडुनु, वानिकि सहदेवुंडुनु, सहदेवुनिकि भीमुंडुनु, भीमुनकु जयत्सेनुंडुनु, जयत्सेनुनकु

के लिए अर्ह है। उसके केतुमान, केतुमान के भीमरथ, उसके दिवोदास कहलानेवाला द्युमान पैदा हुआ। उस द्युमान से प्रतर्दन का जन्म हुआ। वह प्रतर्दन शत्रुजीत तथा ऋतध्वज कहलाया। उससे कुवलयाश्व संभव (पैदा) हुआ। ४९९ [आ.] हे वसुमतीश! सुनो, कुवलयाश्व भूभर्ता (राजा) ने अलर्क को पैदा किया जो ललित पुण्यात्मा और घन (श्रेष्ठ) था। उसने भूमि पर छासठ हजार वर्ष राज्य किया। उसकी तरह किसने पालन किया? [किसी ने नहीं] ५०० [व.] उस अलर्क के सन्नति, उसके सुनीत, उसके सुकेतन, उसके धर्मकेतु, उसके सत्यकेतु, उसके धृष्टकेतु, उस धृष्टकेतु के सुकुमार, सुकुमार के वीतिहोत्र, वीतिहोत्र के भर्ग (और) भर्ग के भार्गभूमि पैदा हुए ५०१ [आ.] हे वंशवर्य! वह अंत में और काश्य-वसुमतीश आदि में होनेवाले, वे उस क्षत्रवृद्ध के वंशजात होते हुए, काश नाम से अवनि पर प्रसिद्ध हुए। ५०२ [व.] और क्षत्रवृद्ध के दूसरे बेटे कुश के प्रीति, उसके संजय, संजय के जय, जय के कृत, कृत के हार्यध्वन, उसके सहदेव, सहदेव के भीम, भीम के जयत्सेन, जयत्सेन के संकृति, संकृति

संकृतियु, संकृतिकि जयुंडुनु, जयुनकु क्षत्रधर्मुंडुनु बुट्टिटरि। वीरलु क्षत्रवृद्धुनि वंशंबुनं गल राजुलु। रंभुनिकि रभसुंडुनु, गंभीरुंडुनु, गंभीरुनिकि गृतुंडुनु गिलगरा गृतुनिकि ब्रह्मकुलंबु वुट्टेनु। अय्यनेनसुनिकिकु शुद्धुंडुनु, शुद्धुनकु शुचियु, शुचिकि ब्रह्म सारथियैन त्रिककुत्तुनु जनिंचि रतनिकि शांतरजुंडु वट्टॆ नतंडु विज्ञानवंतुडु गृतकृत्युंडु विरक्तुंडुनय्यॆ ॥ 503 ॥

सी. रजि यनुवानिकि राजेंद्र! येनूरु कॊडुकुलु गलिगिरि घोर बलुलु
वेल्पु लॆल्लनु वच्चि वेडिन ना रजि दैत्युल वॆक्कंड्र धरणि गूल्चि
नाकंबु देवेंद्रनकु निच्चॆ निच्चिन रजि काळ्ळ कॆरगि सुर प्रभुंडु
वॆंडियु नतनिकि विबुधगेहमु निच्चि संतोषबुद्धि नर्चनमॊनर्चॆ

आ. नंत ना रजिमृतुडैन नतनि पुत्रु-
लमर विभुडु तम्मु नडिगिकॊनिन-
नीक यिंद्रलोक मेलिरि यागभो-
गमुलु पुच्चिकॊनिरि गर्वमंदि ॥ 504 ॥

कं. वेलुपुल ऱेडु गुरु चे, -वेलिमि वेल्पिंचि बलिमि वॆलयग निजदं-
भोलिनि रजिसुतुलनु नि, -र्मूलमु गाविंचि स्वर्गमुं गॊनियॆन् ॥ 505 ॥

व. अदि यट्लुंडॆ नहुषुनकु यतियु ययातियुनु संयातियु नायातियु वियतियु गृतियु ननु नार्गुरु गॊडुकुलु देहिकि निंद्रियंबुल चंदंबुन संभविंचिरि। अंदु वॆद्द कॊडुकगु यतिकि राज्यंबिच्चिनन नतंडु विरक्तुंडै ॥ 506 ॥

---

के जय, जय के क्षत्रधर्म पैदा हुए। ये क्षत्रवृद्ध के वंश में होनेवाले राजा थे। रंभ के रभस और गंभीर, गंभीर के कृत हुए; कृत से ब्रह्मकुल पैदा हुआ। उस अनेनस के शुद्ध, शुद्ध के शुचि, शुचि के ब्रह्म का सारथी त्रिककृत पैदा हुए। उसके शांतरज पैदा हुआ। वह विज्ञानी, कृतकृत्य [और] विरक्त हुआ। ५०३ [सी.] हे राजेन्द्र! रजि नामक (राजा) के घोर बलवान पाँच सौ पुत्र हुए। जब सभी देवताओं ने आकर प्रार्थना की तो उस रजि ने कई दैत्यों को धरणी पर गिराकर नाक (स्वर्ग) देवेंद्र को दिया। देने पर रजि के पैरों पर पड़कर, सुरप्रभु ने फिर उसे विबुधगृह देकर, संतोष-बुद्धि से उसकी अर्चना की [आ.] इसके बाद उस रजि के मृत होने पर भी उसके पुत्रों ने अमरविभु के उनसे माँगने पर भी न देकर इंद्रलोक पर पालन किया (और) घमंडी बनकर याग भाग ग्रहण किए। ५०४ [कं.] देवताओं के राजा ने गुरु से होम कराकर, बल के प्रकाशित होने पर, निज वज्रायुध से रजि-सुतों का निर्मूलन करके स्वर्ग को ले लिया। ५०५ [व.] अस्तु! नहुष के यति, ययाति, संहाति, आयाति, वियति और कृत नाम के छः पुत्र ऐसे पैदा हुए

कं. राज्यंबु पापमूलमु, राज्यमुतो नॊंडलॆरुंग राडु सुमतियुन्
राज्यमुन बूज्यु नॆरुगडु, राज्यमु गीज्यमु मुक्ति-रतुनकु नेला ॥ 507 ॥

व. अनि पलिकि वाडु राज्यंबुनकुं बासि चनियॆ ॥ 508 ॥

कं. आ नहुषुंडु मखशतमुनु, मानुग नॊनर्रिचि यिंद्रमानिनि गवयं
बूनि मुनींद्रुलु मोचिन, यानमुपै नुंडिकूलॆ नहियै नेलन् ॥ 509 ॥

उ. अन्नयु दंड्रियुं जन ययाति महीपतियै चतुर्दिशल्
पन्नुग गान दम्मुलकु बालिडि शुक्रुनि कूतुरन् सुसं-
पन्न गुणाभिराम वृषपर्वुनि कूतुरु नोलिनांड्रु गा
सन्नयशालियै धरणिचक्र धुरंधरुडय्यॆ बेर्मितोन् ॥ 510 ॥

व. अनिन विनि, परीक्षिन्नरेंद्रुडिट्लनियॆ ॥ 511 ॥

## अध्यायमु—१८

### ययाति चरित्रमु

आ. पार्थिवुडु ययाति ब्रह्मर्षि भार्गवु-
डल्लुडगुट माम यगुट यॆट्लु

---

जैसे देही के इंद्रिय होते है। उनमें से ज्येष्ठ पुत्र यति को राज्य दिया तो वह विरक्त बनकर ५०६ [कं.] "राज्य पाप का मूल है, राज्य के कारण न अपने आपको जाना जाता है, न सुमति को। राज्य के कारण (राजा) पूज्य को नही पहचान (सक) ता। मुक्तिरत के लिए राज्य और 'गीज्य' किसलिए?" ५०७ [व.] यों कहकर वह राज्य को छोड़कर चला गया। ५०८ [कं.] वह नहुष मखशत (सौ यज्ञ) अच्छी तरह करके इंद्रमानिनी (शची) को ग्रहण करने के लिए [आकर], मुनियों के ढोये यान पर से नीचे जमीन पर अहि की तरह गिर पडा। ५०९ [उ.] भाई और पिता के चले जाने पर ययाति महीपति बनकर, चतुर्दिशाओं को अपने छोटे भाइयों को बाँटकर शुक्र की वेटी को सुसंपन्ना, गुणाभिरामा, वृषपर्व की वेटी को कन्याशुल्क के रूप में स्वीकार करके वह नयशाली प्रीति से इस धरणीचक्र का धुरंधर (शासक) बन गया। ५१० [व.] यों कहने पर, सुनकर, परीक्षिन्नरेन्द्र ने इस प्रकार कहा ५११।

## अध्याय—१८

### ययाति की कथा

[आ.] "ययाति पार्थिव (राजा) है; भार्गव ब्रह्मर्षि है। [उनका

राजु राचकूतु रतिसेय वगु गाक
विप्रकन्य नोंद विहितमगुनॅ ॥ 512 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 513 ॥

सी. दनुजेंद्रु कूतुरु तरलाक्षि शर्मिष्ठ पुरमुलो नोंकनाडु प्रोद्दुवोक
वेलसंख्यन् चॅलुल् वेंट रा गुरुसुत यगु देवयानितो नाट मरिगि
पूचिन यॆलदोट पोंत जोंपमु गोंन्न क्रोम्मावि नीडल कोलकु जेरि
यंदु दम्मुल तेनॆलानि चोंक्कुचु म्रोयु नळुल झंकृतुलकु नदरि पडुचु

आ. वलुवलूड्चि कोलकु वडि जोच्चि तमलोन
बॅल्लु रेगि नोट जल्लुलाड
नंदि नॆक्कि मौळि निंदु रोचुलु पर्व
शूलि वच्चॆ गौडचूलि तोड ॥ 514 ॥

चं. मलहरु जूचि सिग्गु पडि मानिनुलंदरु संभ्रमंबुनन्
वलुवलु गट्टुचो दनुज वल्लभुकूतुरु देवयानि दु-
व्वलुव धरिंचि वेगमुन वच्चिन जूचियॆरिंगॆरिंगि ना
वलुविदि यॆट्लु कट्टिकोंनवच्चुनु दानवि यंचु दिट्टुचुन् ॥ 515 ॥

व. देवयानि यिट्लनियॆ ॥ 516 ॥

---

क्रम से] जामाता होना [और] श्वशुर होना कैसे [संभव हुआ] ? राजा तो राजकुमारी से रति कर सकता है; [क्या] विप्रकन्या को पाना विहित है ?" ५१२ [व.] [परीक्षित के ऐसा] कहने पर शुक ने इस प्रकार कहा। ५१३ [सी.] दनुजेंद्र की बेटी तरलाक्षी शर्मिष्ठा पुर में एक दिन समय के न बीतने पर, हज़ार युवतियों के [अपने] साथ आने पर गुरु-सुता देवयानी के साथ खेल में मग्न होकर पुष्पित आराम (उपवन) के पास सांद्र नवीन आम्र-वृक्षों की छायाओं मे स्थित सरोवर के पास जाकर, उनमें कमलों के मकरंद को पीकर, [आ.] परवश (मस्त) होकर झंकार करनेवाली अलियों के झंकारों को (सुनकर) चौंक पड़ते हुए, कपड़े उतारकर वेग से सरोवर में घुसकर आपस में ज़ोर से (एक-दूसरे पर) जल मारते (फेंकते) हुए रही तो नंदि पर चढ़कर मौलि पर इंदुरोचियों को फैलाते हुए पार्वती के साथ शूलि (शिवजी) आये। ५१४ [चं.] मलहर (शिव) को देखकर [और] लज्जित होकर सभी मानिनियाँ संभ्रम से कपड़ों को पहनने लगीं तो दनुजवल्लभ की बेटी (शर्मिष्ठा) देवयानी के कपड़े पहनकर जल्दी आ गयी तो देखकर, "जानती हुई भी कि यह वस्त्र मेरा है, दानवी होकर तू कैसे [इसे] पहन सकती है ?" यों कहते हुए [और] उलाहना देते हुए, ५१५ [व.] देवयानी ने इस प्रकार कहा, ५१६ [शा.] "री चेटिके ! उस

शा. आ लोकेशु मुखंबुनं गलिगं ब्राह्मण्यंबु ब्रह्मंबु ना
मेलै वैदिक मार्गमुल दॆलुपुचुन् मिन्नंदि यंदुन् महा-
शीलुर भार्गवुलंदु शुक्रुडु सुधीसेव्युंडु, नेयानिक्किन्
जूलन्, ना वलुवॆट्लु गट्टितिवि रक्षोजातवै चेटिका ! ॥ 517 ॥

कं. महिमवतुलैन भूसुर-
महिळल वित्तम्मुलु पॆर मगुवलकगुने
महि बसिडि गॊलुसुलिडिनन्
विहितमुले कुक्कलकु हविर्भागंबुल् ॥ 518 ॥

कं. मीतंड्रि माकु शिष्युडु, मातंड्रि गुरुंडु गीत मात्रंबेनं
ब्रीति गाविपक परि,-भूतं जेयुदुवॆ तुलुव पोलिमि जॆनटी ! ॥ 519 ॥

व. अनि भर्जिचुचुन्न देवयानि पलुकुलु विनि कराळिंचि न्रोगुचुन्न भुजंगि चंदंबुन निट्टूर्पुलु निगिडिचि पॆदवुलु गॊरुकुचु शर्मिष्ठ यिट्लनियॆ ॥ 520 ॥

शा. भिक्षुंडै तमतंड्रि माजनकुनिन् भिक्षिचिनं दन्नु सं-
रक्षिपं दुदि नितये मरपुतो राज प्रसूनाकृतिन्
रक्षोराजतनूजतो सुगुणतो नातो समं बाडॆडिन्
गुक्षि स्फोटमु गाग दीनि जॆलुली कूपंबुनं द्रोबरे ॥ 521 ॥

---

लोकेश के मुख से ब्राह्मण्य पैदा हुआ। ब्रह्म के रूप मे, श्रेष्ठ बनकर वैदिक मार्गों को समझाते हुए, उच्च स्थान को पाए हुए हैं। उनमें महान् शील (चरित्र) वान् है भार्गव। उनमें शुक्र सुधी सेव्य है, मैं उनकी बेटी हूं; मेरे कपड़ों को [तूने] रक्षोजाता होकर कैसे पहन लिया ? ५१७ [कं.] महिमावती भूसुर महिलाओं के धन अन्य स्त्रियों के हो सकते है ? मही पर सुवर्ण जजीर [आभरण] देने (पहनाने) पर भी, कुत्तों को हविर्भाग विहित होते है ? ५१८ [कं.] तुम्हारा पिता हमारा शिष्य है। हमारा पिता गुरु है। थोड़ी भी प्रीति न करके, री कुत्सित दुष्टे ! (मेरा) परिभूत (अगौरव) करती हो ?" ५१९ [व.] इस प्रकार भर्जन करनेवाली देवयानी की बाते सुनकर [और] क्रोधित होकर फुफकारती हुई भुजगी की तरह दीर्घ श्वास लेकर ओठों को चबाते हुए शर्मिष्ठा ने इस प्रकार कहा। ५२० [शा.] "भिक्षुक बनकर इसके पिता के हमारे पिता से भिक्षा माँगकर संरक्षण करने पर आखिर ऐसी बनकर भूल से राजप्रसूनाकृति से रक्षोराजतनूजा, सुगुणा [होनेवाली] मुझसे बराबरी करती है ! मेरी सखियाँ इसे इस कूप में ऐसे ढकेल दें कि इसका कुक्षि-स्फोट हो जाय (पेट फट जाय) !"५२१

व. अनि पलिकि ॥ 522 ॥

आ. वोटिपिड्डु चेत बोंदुवंग बट्टिचि
राजसमुन दैत्य राजतनय
दोंडरि देवयानि द्रोपिच्चे वलुवीक
क्रुंकि नूति लोन गुतिलकोनग ॥ 523 ॥

व. इट्लु सेसि शर्मिष्ठ वोयिन वेनुक ययाति भूपालुंडु वेट मार्गंबुन नडवि दिरुगुचु दैवयोगंबुन नादेवयानि युन्न नूयि सेरं जनुदेंचि यंदु ॥ 524 ॥

देवयानि ययातिनि वरिंचुट

कं. बंधुवुल नॅल्ल जीरुचु, नंधु जलामग्न नग्नयैवगचुचु वनि-
बंधमुन जिक्कि व्रीडा, सिंधुवुन मुनिगि युन्न चेडिय गनियॅन् ॥ 525 ॥

व. कनुंगोनि ॥ 526 ॥

शा. सप्तांभोनिधि मेखलावृत महा सर्वंसहा कन्यका
प्राप्तोद्धर दक्ष दक्षिण कर प्रालंबमुं जेसि प्रो-
त्क्षिप्तं जेसॅ ययाति गट्टुकोन वे चेलंबु मुन्निच्चि प-
र्याप्त स्वेद जलांगि नाळि समुदाय स्वर्गविन् भार्गविन् ॥ 527 ॥

व. इट्लु नूयि वॅडलिचिन राजुनकु राजवदन यिट्लनियॅ ॥ 528 ॥

---

[व.] यों कहकर ५२२ [आ.] युवती-समूह से खूब पकड़ाकर, राजस (रजोगुण) से दैत्यराज-तनया ने वस्त्र न देकर देवयानी को कुएँ में यत्न से ढकेलवा दिया ताकि वह उसमें डूबकर पीड़ित हो जाय। ५२३ [व.] यों करके शर्मिष्ठा के चले जाने के बाद ययाति भूपाल ने आखेट-मार्ग से जंगल में घूमते हुए दैवयोग से उस कुएँ के पास पहुँचा जिसमें देवयानी स्थित थी, उसमें ५२४

देवयानी का ययाति को वरण करना

[कं.] सब बंधुओं (रिश्तेदारों) को बुलाते हुए, उसमें जलामग्न-नग्न होकर रोते हुए, वनिबंध (कूप) में फँसकर व्रीडा-सिंधु मे डूबी हुई स्त्री को देखा ५२५ [व.] देखकर ५२६ [शा.] सप्तांभोनिधि-मेखलावृत-महासर्वंसहा-कन्यका प्राप्तोद्धर-दक्ष-दक्षिण-कर को प्रालंबन (सहारा) करके ययाति ने पहले [अपने] ऊपर धारण किए हुए चेल (वस्त्र) को पर्याप्त-स्वेद-जलांगी, आलि-समुदाय-स्वर्गवि, भार्गवी को देकर प्रोत्क्षिप्ता बनाया। ५२७ [व.] इस प्रकार कुएँ से बाहर निकालनेवाले राजा से राजवदना ने इस प्रकार कहा। ५२८

म. ननु बाणिग्रहणं बॊनर्चिति, कदा ना भर्तवुन् नीव दै-
वनियोगंबिदि तप्प दप्पुरुषता वाक्यंबु सिद्धंबु सौ-
ख्य निवासुन् निनु मानि यॊंडु वरुनि गांक्षिप ने नेर्तुने
वनजं बानॆडि तेटि यन्य कुसुमावासंबपेक्षिचुने ॥ 529 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 530 ॥

सी. सुगुणाढ्य ! विनु नेनु शुक्रुनि कूतुर देवयानिनि, दॊलिल देवमंत्रि
तनयुंडु कचुडु मा तंड्रि चेत मृत संजीविनि दानभ्यसिचु वेळ
नतनि गामिचिन नतडॊल्ल ननवुडु नतडु नेर्चिन विद्य यडगि पोव
नतनि शपिचिन नतडु ना भर्त ब्राह्मणुडु गाकुंडॆडु ननि शपिचॆ

ते. नदि निमित्तंबु नाकु ब्राह्मणुडु गाडु
प्राणनाथुड वीवनि पडति वलुक
दनडु हृदयंबु नॆलतपै दगुलु वडिन
दसकमॊक यितयुनु लेक तलचि चूचि ॥ 531 ॥

मत्त. दैवयोगमु गाक विप्रसुतन् वरिंचुनॆ नामनं-
बॆविधंबुन नीश्वराज्ञयु निट्टिदंचु वरिंचॆ धा-
त्रीवरुंडुनु दैवयानिनि, धीर बुद्धुलकुन् मनो-
भाव मॊक्कटियॆ प्रमाण मभाव्य भाव्य परीक्षकु ॥ 532 ॥

---

[म.] "तुमने मेरा पाणि-ग्रहण किया है न ! मेरे पति तुम ही हो। यह दैव-नियोग है। पौरुष के लिए मेरा वाक्य सिद्ध (तथ्य) है। सौख्य-निवासी (होनेवाले) तुमको छोड़कर दूसरे वर की क्या मैं कांक्षा कर सकती हूँ ? वनज के मकरंद का आस्वादन करनेवाला भ्रमर अन्य कुसुमावास की अपेक्षा (इच्छा) करता है? (नहीं) ५२९ [व.] इसके अतिरिक्त ५३० [सी.] हे सुगुणाढ्य ! सुनो, मैं शुक्र की बेटी देवयानी हूँ। पूर्वकाल में देवमंत्री का तनय कच जब मेरे पिता के पास मृत-संजीवनी का अभ्यास कर रहा था, मैंने उससे प्रेम किया तो उसने स्वीकार नहीं किया; तब मैंने उसको शाप दिया कि उसकी सीखी हुई विद्या नष्ट हो जाय, तो उसने मुझे शाप दिया कि मेरा पति ब्राह्मण न हो। [ते.] इसलिए [मेरा पति] ब्राह्मण नहीं होगा। तुम मेरे प्राणनाथ हो।" [इस प्रकार] उस स्त्री के कहने पर, उस [राजा] का हृदय उस युवती पर लग गया, फिर भी मोह कुछ भी न होने से सोचकर, देखकर ५३१ [मत्त०] "दैवयोग न हो तो मेरा मन किस विधि से (किस प्रकार) विप्रसुता को वरण करेगा, यह ईश्वराज्ञा ऐसी है", यों कहते हुए धात्री-वर ने देवयानी को वरण किया। धीर-बुद्धि वालों को केवल मनोभाव ही अभाव्य-भाव्य-परीक्षा के लिए प्रमाण है। ५३२

व. इट्लु वरिंचि ययाति सनिन वेनुक, देवयानि शुक्रुनि कडकुं जनि शर्मिष्ठ सेसिन वृत्तांतबंतयु जेप्पि कन्नीरु मुन्नीरुगा वगचिन ॥ 533 ॥

कं. क्रूरात्मुल मंदिरमुल, बौरोहित्यंबु कंटे पापं बी सं-
सारमु कंटे शिलल् दिनि, यूरक कापोत वृत्ति नुंडुट योप्पुन् ॥ 534 ॥

व. अनि वृषपर्वुकड नुंडुट निंदिचुचु शुक्रुंडा कूतुं दोड्कोनि पुरंबु वेडलि चन, नय्यसुरवल्लभुंडेरिंगि शुक्रुनि वलनं देवतल गेलुव दलचि तेरुवुन कड्डंबु वच्चि पावंबुल पै बडि प्रार्थिचि प्रसन्नुंजेसिन ना कोपंबु मानि शुक्रुंडु शिष्युन किट्लनिये ॥ 535 ॥

त. चेलुलु वेवुरु दानु नी सुत चेटि कैवडि ना सुतं
गोलुचुचुंडिन दीरु गोपमु गोलव बेट्टेदवेनि नी
वेलदि दोड्कोनि वत्तु नावुडु वेग रम्मनि भार्गवि
गोलुव बेट्टे सुरारिवर्युडु गूतु नेच्चेलिपिंडु तोन् ॥ 536 ॥

म. चलमिकेलनि तन्रु दंड्रि वनुपन् शर्मिष्ठ सन्निष्ठतो
जलजातास्यलु सद्वयस्यलु सहस्रंबुन्नजस्रंबु द-
न्नलमन् दासि सुदासि यय्ये वगवायन् भूरि कोपानला-
कलित ग्लानिकि देवयानिकि महा गर्वोद्यमस्थानिकिन् ॥ 537 ॥

---

[व.] इस प्रकार वरण करके ययाति के जाने के बाद देवयानी के शुक्र के पास जाकर, शर्मिष्ठा के किए हुए पूरे वृत्तांत को बताकर अधिक रोने पर ५३३ [कं.] "क्रूरात्माओं के मंदिरों (घरों) में पुरोहिताई (करने) के लिए रहना पाप है। इस संसार की अपेक्षा शिलाओं (उछ) को खाकर यों ही कापोत-वृत्ति से रहना बेहतर है।" ५३४ [व.] इस प्रकार वृषपर्व के पास रहने की निंदा करते हुए शुक्र उस बेटी को लेकर [और] पुर छोड़कर गया तो उस असुरवल्लभ ने जानकर, शुक्र के द्वारा देवताओं को जीतना चाहकर, रास्ता रोककर [और] पाँवों पर गिरकर प्रार्थना करके प्रसन्न किया तो कोप को छोड़कर शुक्र ने [अपने] शिष्य से इस प्रकार कहा। ५३५ [त.] "तुम्हारी सुता [अपनी] हज़ार सखियों के साथ दासी की तरह मेरी सुता की सेवा करती रहे तो मेरे कोप का अन्त होगा। सेवा में लगाओगे तो, इस स्त्री को साथ लेकर [लौट] आऊँगा।" ऐसा कहने पर सुरारिवर्य ने 'जल्दी आओ' कहकर अपनी बेटी को सखी-समूह के साथ भार्गवी की सेवा में दे (लगा) दिया। ५३६ [म.] "मात्सर्य और किसलिए?" यों कहकर अपने पिता के भेज देने पर सन्निष्ठावाली शर्मिष्ठा सहस्र जलजातास्याओं (और) सद्वयस्याओं के अजस्र (सदा) साथ घेर रहने पर, दुश्मनी दूर हो जाय, भूरि कोपानलाकलित-ग्लानि वाली (और) महागर्वोद्यमस्थानो (होनेवाली) देवयानी की वह

व. अंत ॥ 538 ॥

उ. आततमैन वेड्क दनुजाधिपमंत्रि सुरारि नंदनो-
पेत दनूभवं बिलिचि पॆंड्लि यॊनर्चॆ महा विभूतिकिन्
ब्रीति महोग्रजातिकि नभीतिकि साधु विनीतिकिन् सित-
ख्यातिकि भिन्न दुःख वहु कार्यभियातिकि नय्ययातिकिन् ॥ 539 ॥

व. इट्लु ययातिकि देवयानि निच्चि शुक्रुंडु शर्मिष्ठा संगमंबु सेयकुमनि यतनि नियमिंचि वनिचिन पिदप देवयानियु नय्ययाति वलन यदुतुर्वसुलनु कुमारुलं गनियॆनु। ऒक्करेयि सॆरंगु मासि देवयानि वेलुपलनुन्नयॆड शर्मिष्ठ यॆडरु वेचि येकांतंबुन ययाति कडकुं'जनि चॆंरकु विंटि जोदु पुव्वुटं-पर कोर्हटिंचि तन तलंपु सॆप्पिन ॥ 540 ॥

शुक्राचार्युंलु ययातिकि शापंबॊसंगुट

उ. आ जवरालु जूचि मनमापग लेक मनोभवार्तुडै
या जनभर्त मुन्नु कबियाडिन माट दलंचियॆन जे-
तोज सुखंबुलं दनिपॆ द्रोवग वच्चुनॆ दैवयोगमुल्
राजट सद्रहस्यमट राजकुमारिनि मान नेर्चुने ? । 541 ॥

---

सुदासी बन गयी। ५३७ [व.] तब ५३८ [उ.] आतत उत्साह से दनुजाधिपमंत्री (शुक्र) ने सुरारिनंदनोपेता [अपनी] तनूभवा को बुलाकर (उसे) महाविभूति वाले महोग्र-जाति (वाले), अभीति वाले, साधु, विनीत सितख्याति (वाले), [और] भिन्नदुष्कलह-कार्याभियाति (होनेवाले) ययाति को देकर प्रीति से विवाह कर दिया। ५३९ [व.] इस प्रकार ययाति को देवयानी देकर शुक्र ने [यह] नियम रखा कि शर्मिष्ठा-संगम मत करो [और] भेज दिया तो देवयानी के उस ययाति से यदु [और] तुर्वसु नामक दो पुत्र हुए। एक रात को देवयानी रजस्वला होकर बाहर रह गयी तो उस समय शर्मिष्ठा ने समय पाकर, एकांत में ययाति के पास जाकर, मन्मथाहत पुष्पबाण से पीड़ित होकर, अपनी वांछा प्रकट की तो ५४०

शुक्राचार्य का ययाति को शाप देना

[उ.] उस युवती को देखकर [अपने] मन को रोक न सककर, मनोभवार्त (काम-पीड़ा-युक्त) बनकर, उस जनभर्ता (राजा) ने पहले कवि (शुक्र) की कही हुई बात का स्मरण करके (फिर) भी (शर्मिष्ठा को) चेतोज (मन्मथ)-सुखों से तृप्त किया। क्या दैवयोगों को कोई हटा सकता है? राजा है,

व. इट्लु यथाति वलन शर्मिष्ठ गर्भंबै क्रमंबुन द्रुह्युंडु ननुवु बूरुवु नन मुव्वुरु तनयुलं गांचेनु। अंत देवयानि तद्वृत्तांतंबंतयु नेंरिगि कोपिंचि शुक्रुकडकुं जनि क्रोध मूर्छितयै युन्न समयंबुन ययाति वेंट जनि यिट्लनियें ॥ 542 ॥

आ. मामकेल चॅप्प मानु सरोजाक्षि !
दनुज तनय बोंदि तप्पु वडिति
गामि नयिन नन्नु गरुणिंपु पतिमाट
तंड्रिमाट कंटे दगुनु सतिकि ॥ 543 ॥

व. अनि पलिकि पादंबुल कॅरगिन नद्दियति योडंबडक युंडेनु। अंतनदि येंरिगि शुक्रुंडिट्लनियें ॥ 544 ॥

कं. ना माट द्रोचि दानव
भामनु बोंदितिवि धरणि-पालक ! तगवे
येमाट येदि रूपमु
कामुकुलकु लोलुपुलकु गलवे निजमुल् ॥ 545 ॥

व. अनि पलिकि नित्नु वनिताजन हेयंबयिन मुदिमि बोंदेंडु मनि शपिंयिचिन ययाति यिट्लनियें ॥ 546 ॥

कं. मामा ! नापै गोपमु, मामा ! नी पुत्रियंदु मानवु नाकुं
गामोपभोगवांछलु, प्रेमन् रमियिंचि मुदिमि विदपं दाल्तुन् ॥ 547 ॥

---

सद्रहस्य है, तब भी राजकुमारी को छोड़ सकता है ? ५४१ [व.] इस प्रकार ययाति से शर्मिष्ठा ने गर्भवती होकर, क्रम से द्रुह्य, अनु, पूरु नामक तीन पुत्रों को पैदा किया। तब देवयानी के तत्वृत्तान्त सब जानकर, क्रोधित होकर, शुक्र के पास जाकर, क्रोध-मूर्च्छिता बनकर रहते समय ययाति ने साथ जाकर इस प्रकार कहा। ५४२ [आ.] 'हे सरोजाक्षी ! श्वशुर से क्यों कहना ? रुको। दनुजतनया को पाकर (मैंने) भूल की। मुझ कामी पर करुणा दिखाओ। तुम्हारे लिए पिता की बात से पति की बात श्रेष्ठतर होती है।' ५४३ [व.] यों कहकर उसके पाँवों पर पड़ा तो वह स्त्री राजी न हुई। तब यह जानकर शुक्र ने इस प्रकार कहा। ५४४ [कं.] "हे धरणी-पालक ! मेरी बात को ठुकराकर (तुमने) दानव-भामा को पाया। क्या यह युक्त है ? कौन बात है, कौन रूप है ? कामियों (और) लोलुपों के लिए (कभी) सच बातें होती हैं ?" ५४५ [व.] यों कहकर "तुम वनिता-जन-हेय होनेवाले बुढ़ापे को पाओगे" यों शाप दिया तो ययाति ने इस प्रकार कहा। ५४६ [कं.] "ससुर ! मुझ पर कोप न करो। तुम्हारी पुत्री पर मेरी कामोपभोगवांछाएँ कम न हुईं। प्रेम से रमकर बाद को बुढ़ापे को

व. अनि पलिकि यनुज्ञ गॊनि देवयानिं दोड्कॊनि पुरंबुनकुं जनि पॆद्द कॊडुकगु यदुवु बिलिचि ययाति यिट्लनियॆ ॥ 548 ॥

शा. नी तल्लि गनिनट्टि शुक्रु वलनन् नेडी जरंबॊंदितिन्
ना तंड्री ! यदुनामधेय ! तनया ! नावृद्धतं दाल्पवे
नीतारुण्यमु नाकु नीवॆ तनिवो निंडार गॊन्नाळ्ळु ने
जेतोजात सुखंबुलं दिरिगॆदन् श्रृंगारिनं पुत्रका ! ॥ 549 ॥

व. अनिन विनि तंड्रिकि यदुंडिट्लनियॆ ॥ 550 ॥

शा. कांताहेयमु दुर्विकारमु दुराकंडूतिमिश्रंबु हृ-
च्चितामूलमु पीनसान्वितमु प्रस्वेद क्षणाकंपन
श्रांतिस्फोटकयुक्तमो मुदिमि वांछं दाल्चि नाना सुखो-
पांतंबैन वयो निधानमिदि यय्या ! तेर यी वच्चुने ॥ 551 ॥

व. अनि यदुंडॊडबडकुन्न ययाति दुर्वसु द्रुह्यादुल नडिगिन वारुनु यदुवु वलिकिनट्ल पलिकिन गडगॊट्टु कुमारुंडैन पूरुवुन किट्लनियॆ ॥ 552 ॥

उ. पिन्नवु गानि नीवु कडु बॆद्दवु बुद्धुलयंदु, रम्मु ना
यन्न ! मदाज्ञ दाटवु गदन्न ! विनीतुडवैन नीवु नी
यन्नलु सॆप्पिनट्लु परिहारमु सॆप्पकुमन्न ! ना जरन्
मन्नन दाल्चि नीतरुणिमंबॊन गूर्पुमु नाकु बुत्रका ॥ 553 ॥

---

धारण कर लूँगा ।" ५४७ [व.] यों कहकर, आज्ञा लेकर देवयानी को लेकर पुर में जाकर बड़े पुत्र यदु को बुलाकर ययाति ने इस प्रकार कहा । ५४८ [शा.] "तुम्हारी माता को जन्म देनेवाले शुक्र से आज मैंने इस जरा को प्राप्त किया । मेरे तात ! यदुनामधेय ! तनय ! मेरी वृद्धता को धारण करो न । अपने तारुण्य को मुझे दे दो ! हे पुत्र ! कुछ काल तक चेतोजात सुखों में श्रृंगारी बनकर तृप्त हो जाऊँ । ऐसा विचरण करूँगा ।" ५४९ [व.] ऐसा कहने पर सुनकर पिता से यदु ने इस प्रकार कहा । ५५० [शा.] "पिता जी ! कांताहेय, दुर्विकारयुक्त, दुराकंडूतिमिश्र, हृच्चितामूल, पीनसान्वित, प्रस्वेदण-कंपन-श्रांति-स्फोटक-युक्त है यह जरा; ऐसे आपके वृद्धत्व को चाहकर धारण कर नाना सुखोपांत होनेवाले वयोनिधान (यौवन) को यों ही दिया जा सकता है ?" ५५१ [व.] इस तरह यदु के स्वीकार न करने पर ययाति ने दुर्वसु (और) द्रुह्यादियों से माँगा तो उनके भी यदु के बोलने की तरह बोलने पर, कनिष्ठ पुत्र पूरु से इस प्रकार कहा । ५५२ [उ.] "हे पुत्र ! तुम छोटे हो, लेकिन बुद्धियों में तुम बहुत बड़े हो । आओ, मेरे मुन्ना ! मेरी आज्ञा को ठुकरा न दो । विनीत होनेवाले तुम, जैसे तुम्हारे भाइयों ने कहा,

व. अनिन विनि गुरुभक्ति गुणाधारुंडयिन पूरुंडिट्लनियें ॥ 554 ॥

शा. अय्या ! नम्निट्टु वेड नेल भवदीयाज्ञासमुल्लंघनं-
बय्युंडुन् बरिहारमुन् नॊडुव ने नन्यायिने नी जरन्
नॆय्यंबॊप्पग दाल्चि नातरुणिमन् नीकिच्चॆदं बंपिनं
गय्यं बाडॆडि पुत्रकुंडु क्रिमि संकाशुंडु गाकुंडुने ॥ 555 ॥

व. अदियुंगाक ॥ 556 ॥

कं. मुनिवृत्ति डायनेटिकि, जनपालक ! सुगति गोरु सत्पुरुषुलकुन्
दनु गन्न तण्ड्रि सॆप्पिन, पनि सेसिन सुगति गॊंगु पसिडिय कादे ॥ 557 ॥

कं. पनुपक चेयुदुरधिकुलु, पनिचिन मध्यमुलु वॊडुपरुतुरु तंड्रुलु
पनि चॆप्पि कोरि पनिचिन, ननिशमु माड्राडु पुत्रुलधमुलु दंड्री ! ॥558॥

व. अनि पलिकि पूरुंडु मुदिमि सेकॊनि तन लेब्रायंबु ययाति किच्चॆनु । अय्ययातियु दरुणुंडै ॥ 559 ॥

शा. एडुन् द्वीपमु लेडु वाडलुग सर्वेलातलंबॆल्ल बॆन्
वीडै पोडिमि नेलुचुं ब्रजल नन्वेषिंचि रक्षिंचुचुन्
दोडं भार्गवि रा मनोजसुख संतोषंबुलं देलुचुन्
ग्रीडिंचॆन् नियतेंद्रियुंडगुचु नाक्रीडातिरेकंबुलन् ॥ 560 ॥

परिहार (प्रति-वचन) मत कहो ! मेरी जरा को सगौरव धारण कर (स्वीकार करके) अपनी तरुणिमा मुझे दे दो न पुत्र !" ५५३ [व.] ऐसा कहने पर, सुनकर, गुरु-भक्ति-गुणाधारी पूरु ने इस प्रकार कहा। ५५४ [शा.] "पिता जी ! इस प्रकार प्रार्थना करने की क्या जरूरत है ? भवदीय-आज्ञा-समुल्लंघन करने के लिए (और) परिहार (प्रतिवचन) बोलने के लिए क्या मैं अन्यायी हूँ ? तुम्हारी जरा को स्नेह-पूर्वक धारण करके अपनी तरुणिमा को तुम्हें दे दूंगा। आज्ञा देने पर विरोध करनेवाला पुत्र क्रिमि (समान)-संकाश हुए बिना रहेगा? ५५५ [व.] इसके अतिरिक्त ५५६ [कं.] हे जनपालक ! मुनिवृत्ति से श्रम करना क्यों ? सुगति (को) चाहनेवाले सत्पुरुषों के लिए, अपने को जन्म देनेवाले पिता का कहा काम करने पर सुगति आँचल का सुवर्ण (सुलभ) नहीं है ? ५५७ [कं.] पिता जी ! आज्ञा पाये बिना करते हैं अधिक (उत्तम लोग), आज्ञा पाकर करते हैं मध्यम, पिताओं के (कोई) काम कहकर (करने की आज्ञा देने पर) [उसे] चाहकर, आज्ञा देने पर सदा आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले पुत्र अधम होते हैं।" ५५८ [व.] यों कहकर पूरु ने बुढ़ापे को लेकर अपना तारुण्य ययाति को दिया। उस ययाति ने भी तरुण बनकर, ५५९ [शा.] सातों द्वीपों पर, सात वीथियों की तरह, सर्वेलातल (समस्त पृथ्वी-

मर्मंबुल नति साध्वी, धर्मंबुल देवयानि दन प्राणेशुन्
नर्ममुल मनोवाक्तनु, कर्मंबुल नॉंडु लेक कडु मॅप्पिचॅन् ॥ 561 ॥

शा. आकाशंबुन मेघवृंदमु घनंबै सन्नमै दीर्घमै
येकंबै बहुरूपमै यडगुनट्ले देवु गर्भंबुलो
लोकश्रेणि जनिंचुचुन् मॅलगुचुन् लोपिंचु ना देवु सु-
श्रीकांतुन् हरि गूर्चि यागमुलु सेसॅन् नाहुषुंडिम्मुलन् ॥ 562 ॥

व. मरियुनु ॥ 563 ॥

म. चॅलिकाडून् गरुलन् रथम्मुल भट श्रेणि दुरंगंबुलन्
गललो गन्न घनावळिन् सममुलंगा जूचुचुन् भार्यतो
बलुवेलेंड्लु मनोज भोग लहरी पर्याप्तुडै तेलियुन्
वलु तृष्णं गड गान कॅंतयु महा वंधंबुलन् स्रुक्कुचुन् ॥ 564 ॥

## अध्यायमु—१९

व. ऑक्क दिनंबुन नात्मज्ञानंबुनं जेसि कांता निमित्तंबुन मोसपोवुट यॅरिगि
ययाति यतिविषादंबु नॉंदि देवयानि किट्लनियॅ ॥ 565 ॥

---

तल) को बड़े गृह की तरह पालन करते हुए, प्रजा का अन्वेषण (देखभाल) करके रक्षा करते हुए, साथ भार्गवी के आने पर मनोज (मन्मथ)-सुख-संतोषों में मग्न होते हुए, नियतेंद्रिय होते हुए, क्रीडातिरेकों से क्रीडायें की। ५६० [क.] मर्मों से, अतिसाध्वी-धर्मों से देवयानी ने अपने प्राणेश को नर्मों से (परिहासों से), मनोवाक्तनु कर्मों से बिना किसी अन्य [बात] के अधिक तृप्त किया। ५६१ [शा.] आकाश में मेघवृंद घने होकर, पतले होकर, दीर्घ होकर, एक होकर, बहुरूप होकर [और] दबकर रहने की तरह जिस देव के गर्भ में लोकश्रेणि जन्म लेते हुए, बढ़ते हुए, [और] लुप्त होती है उस देव, सुश्रीकांत हरि को उद्दिष्ट करके नाहुष ने सुख से याग किये। ५६२ [व.] और भी ५६३ [म.] सखों को, करियों को, रथों को, भट-श्रेणी को, तुरंगों को और स्वप्न में देखी हुई घनावली (मेघ-समूह) के समान देखते हुए, भार्या के साथ कई हज़ार साल [तक] मनोज-भोग-लहरियों को पर्याप्त भोगकर, मग्न होकर, महाबंधों में डूबकर, बड़ी तृष्णा से कहीं अंत न पाकर, ५६४

## अध्याय—१९

[व.] एक दिन आत्मज्ञान के कारण, [अपने को] कांता-निमित्त धोखा खाया हुआ जानकर ययाति ने अति विषाद पाकर देवयानी से इस प्रकार कहा। ५६५

यथाति देवयानिकि बस्तोपाख्यानमनॆडि व्याजंबुन स्ववृत्तांतंबु दॆलुपुट

कं. मन चारित्रमु वॆंटिदि
विनु मितिहासंबु कलदु वृद्धजनमुलुन्
मुनुलुनु मॆत्तुरु नीवुनु
मनमुन नंगीकरिंपु मंजुलवाणी ! ॥ 566 ॥

व. अदि यॆट्टिदनिन ॥ 567 ॥

सी. अजमॊकंडडविलो नरुगुचु दा गर्म फलमुन नूतिलोपलिकि जारि
लोगॊडि छागि नालोकिंचि कामियै कॊम्मुन दरि गॊत गूल द्रोचि
वॆडलिप नच्छागि विभुनिगा गोरिननगुगाक यनि तानु नविधु दिरग
नॊन्नि येनिनि दन्नु नॆंत कामिंचिन नन्निटिकिनि भर्तयै तनर्चि

ते. वानिने प्रोद्दु रतुलकु वशल जेसि
सॊरिवि ग्रीडिंचि क्रीडिंचि चॊक्कि चॊक्कि
कामुडनियॆडि दुस्सहग्रहमु कतन
जित्तमेमरि मत्तिलि बॆल्ल जिक्कि ॥ 568 ॥

कं. वॆड विलुतु केळि जिगुरा,-कडिदपु व्रेटुनकु लोगि यति मोहितुडै
बिडुवक सतुलं दगिलॆडु जडुनकु नॆक्कडिवि बुद्धि चातुर्यंबुल् ॥ 569 ॥

---

यथाति का देवयानी को बस्तोपाख्यान के मिस से आत्मवृत्तांत समझा देना

[कं.] "हमारे चरित्र (कथा) की तरह सुनो, एक इतिहास है; वृद्धजन [और] मुनिगण [उसकी] प्रशंसा करते हैं। हे मंजुल-वाणी ! तुम भी [अपने] मन में स्वीकार करो। ५६६ [व.] वह कैसा है कहें तो ५६७ [सी.] एक अज जंगल में जाते हुए अपने कर्म-फल से कुएँ में फिसलकर, अंदर पड़े हुए (एक) छागी (बकरी) का आलोकन करके, कामी बन, सींग से (कुएँ के) किनारे को (खोदकर) थोड़ा गिराकर, बाहर निकालने पर उस छागी ने (उस अज को) विभु (के रूप में) चाहा (माना) तो 'ऐसा ही हो' कहकर वह (अज) खुद और वह (छागी) बिचरण करने पर कितने भी छागी अपने को कामित करें, उन सबका भर्ता (पति) बनकर, [ते.] (उन्हें) संतृप्त करके, उनको सदा रति-वश बनाकर, क्रम से क्रीड़ायें कर-करके, थक-थक कर काम नामक दुस्सह ग्रह के कारण, चित्त को भुलाकर, मत्त होकर, अधिक फँसकर (मोहवश बनकर) रहा। ५६८ [क.] मन्मथ के कोंपल (रूपी) खड्ग की मार से दबकर अति मोहित होकर, बिना छोड़े सतियों से संलग्न रहनेवाले जड़ को बुद्धि की चतुरता कहाँ होती है ? ५६९ [व.] तब उस छाग (बकरा) के

अंत नच्छागंवु दन पिदपं दगिलिन छागी निवहंबु लोपलं जूड नॉप्पॅडि छागि यंदु दगिलि क्रीडिपंगनि नूतिलोपलं बडि वॅलुवडिन छागि तन पति वलनि नॅय्यंबु लेकुंडटकु विन्ननै तन मनंबुन ॥ 570 ॥

कं. पलिकिन वलुकुलु वलुकडु
कलयुन् नवकांत जूचि कडु संचलुडै
निलिचिन चोटन् निलुवडु
निलुवॅल्लनु गल्ल कामि निजमति गलडे ॥ 571 ॥

व. अनि पलिकि विडिचि चनिन नय्यजवल्लभुंडु सुरतपरतंत्रुंडै मिसिमिसियनु शब्दंबु सेयुचु दच्छागिवेंट जनि यॉडंबरुपं जालकुंडॅ नंत दानिकि गर्तयैन ब्राह्मणुंडु रोषंबुन रति समर्थंबु गाकुंड नल्लाडुचुंड छाग वृषणंबुलु ब्रॅंचिवेसिन नच्छागंबु ग्रिंदबडि वेडुकॉनिन प्रयोजनंबु वॉडगनि योगविदुंडु गावुन ब्राह्मणोत्तमुंडु ग्रम्मर नय्यजवृषणंबुलु संधिचिन ॥ 572 ॥

कं. वृषणमुलु मरल गलिगिन
सुषमुंडै छागविभुडु सुंदरि तोडन्
विषय सुखंबुल वॉंदुचु
द्रुषतुदि गनडय्यॅ वॅक्कु दिवसमु लय्युन् ॥ 573 ॥

व. अनि यिव्विधंबुन ययाति देवयानिकि निजवृत्तांतंबु गथारूपंबुन नॅरिगिंचि यिट्लनियॅ ॥ 574 ॥

---

अपने साथ लगे हुए छागी-निवह में से देखने में पसंद आयी हुई [एक] छागी पर [मन] लगाकर, [उससे] क्रीड़ा करने पर [उसे] देखकर, कुएँ में गिरकर बाहर आयी हुई छागी [यह सोचकर कि] उसके पति को उससे स्नेह [प्रेम] नहीं है, विवर्ण होकर अपने मन मे ५७० [क.] '(मैं) बोलूँ तो (वह) नहीं बोलता; नवकांता को देखकर बहुत संचलित होकर उससे मिलता, जहाँ [एक बार] ठहरता है, वहाँ न (फिर) ठहरता; तन भर झूठा है। (क्या) कामी सत्यवान होता है ?' ५७१ [व.] यों कहकर, छोड़कर, चली गयी तो वह अज-वल्लभ सुरत-परतंत्र होकर, 'मिसिमिसि' शब्द करते हुए उस छागी के पीछे जाकर संतुष्ट न कर सका; तब उस (छागी) का कर्ता (मालिक) ब्राह्मण ने रोष से उस छाग के रति समर्थ न होकर लटकनेवाले वृषणों को काट डाला तो उस छाग ने नीचे गिरकर प्रार्थना की तो प्रयोजन को जानकर, योगविद होने से ब्राह्मणोत्तम ने फिर से उस छाग के वृषणों का संधान किया (जोड़ दिया) तो ५७२ [कं.] वृषणों के फिर आने पर उस छाग-विभु ने सुषण (समर्थ) बनकर, सुंदरी के साथ विषय-सुखों को पाते हुए बहुत दिनों के बीत जाने पर भी तृष्णा के अंत को न पाया।" ५७३ [व.] इस प्रकार ययाति ने देवयानी को

म. अबला ! नी निबिडाति दुर्जय सलज्जापांग भल्लंबुलं
ब्रवलंबैन मनंबु भग्नमुग ना प्रावीण्यमुं गोलुपो-
यि बलिष्ठुंडगु कामु बारि वडि ने नॅट्लोर्तु ने बंदिक-
त्तॅ वडि वापपु दृष्ण यिप्पुडकटा ! दीर्घाकृतिन् रॊप्पॆडिन् ॥ 575 ॥

कं. अदलदु प्राणमुलदलिन
गदलदु सर्वांगकमुलु गदलुचु नुंडन्
वदलदु बिगुवुलु वदलिन
दुदिलेदीतृष्ण दीनि द्रुंपग वलयुन् ॥ 576 ॥

कं. वॆय्येंड्लय्यॆनु नीतो, ग्रय्यंबडि युन्नवाड गाम सुखमुल
प्रुय्यदीकर्यिचुकॆन, -न्डय्यवु कीनलिडिये दृष्ण नवपद्ममुखी ! ॥ 577 ॥

कं. मुदिसॆनु दंतावळियुनु, मुदिसॆनु गॆशमुलु दनुवु मुदिसॆं दनकुन्
मुदियनिवि रॆंडु सिक्कॆनु, ब्रतिकॆडि तीपियुनु विषय पक्ष स्पृहयुन् ॥578॥

कं. कडलेदाशा लतकुं, गड जूडग गानरादु कडगनि रेनिन्
गड्ु मुदमुन संसारमु, गडगंदुरु तत्त्वविदुलु गमलदळाक्षी ! ॥ 579 ॥

कं. मंडन हाटक पशु वे, -दंडाश्व वधूदुकूल धान्यादुलु पॆ-
वकुंडियु नाशापाशमु, खंडिपगलेवु मद्रियु गडमय चुम्मी ! ॥ 580 ॥

---

निजवृत्तांत कथा-रूप में समझाकर इस प्रकार कहा। ५७४ [म.] "अबले ! तुम्हारी निबिडातिदुर्जय-सलज्जापांग [रूपी] भालों से [मेरे] प्रबल मन के भग्न होने से मैं अपने प्रावीण्य को खोकर बलिष्ठ काम (मन्मथ) के वश होकर कैसे सह सकता हूँ ? इसमें फँसकर पापी तृष्णा अब, ओह ! दीर्घाकृति से मेरा पीछा करती है। ५७५ [क.] प्राणों के जाने पर भी [यह तृष्णा] नहीं हिलती। जब तक सर्वांग (सभी अवयव) हिलते-डुलते हैं, यह हटती नहीं, (शरीर के) गठन के नष्ट होने पर भी नहीं छोड़ देती; इस तृष्णा का अंत नही है। इसको काट डालना चाहिए। ५७६ [कं.] तुमसे लगकर काम-सुखों में रहते हुए [एक] हज़ार बर्ष बीत गये। रत्ती भर भी कम नहीं होती। हे नवपद्म-मुखी ! यह तृष्णा अब [अधिक] पल्लवित होती जा रही है। ५७७ [कं.] दंतावली (दाँतों की पंक्ति) बूढ़ी हो गयी। केश बूढ़े हो गये; तन बूढ़ा हो गया। अपने को [केवल] दो मिल गये जो बूढ़े न हुए— प्राणों से प्रीति और विषय-पक्ष-स्पृहा (विषय-वांछा)। ५७८ [कं.] हे कमल-दलाक्षी ! आशा-लता का अंत नही है। अंत देखना चाहें तो (वह) देखने में नही आता। तत्त्वविद् अधिक मुद (संतोष) से इस संसार का अंत देखते हैं। ५७९ [कं.] मंडन (अलंकार), हाटक (सुवर्ण), पशु, वेदंड (गज),

कं. कामोपभोग सुखमुलु, वेमारुनुवुरुषुडनुभविंचुचुनुन्नं
गामंबु शांति बोंदवु, धूमध्वजु डाज्यवृष्टि ग्रुंगुडु वडुने ॥ 581 ॥

आ. अवक तल्लि चॅल्लॅ लात्मज यॅक्किन
पानुपॅक्क जनदु पद्मनयन !
परम योगिकैन बलिमिनि निंद्रिय-
ग्राम मधिकपीड गलुग जेयु ॥ 582 ॥

कं. वॅंगलि वित्तयि तिरुगुचु, गंगारॅ चॅडक मुक्ति गांक्षिचु नतं
डंगनल तोड विडुवनि, संगडमुलु वदलयलयु जलजातमुखी ! ॥ 583 ॥

व. अदि गावुन नेडु मॉदलु तृष्णा खंडनंबु सेसि निर्विषयुंडनयि यहंकारंबु विडिचि मृगंबुलं गलसि वनंबुन संचरिचॅद। परब्रह्मंबुनंदु जित्तंबु सेर्चॅद। ब्रह्मनिष्ठ मनुष्युलकु नाशानिवारिणियगुटं जेसि येनंबुदत्परुंडनै याहार निद्रादि योगंबुलं बरिहरिचॅदनु। आत्मविदुंडै संसार नाशंबुल दलंचिन वाडॅ विद्वांसुडनि पलिकि पूरुनि यौवनंबतनिकिच्चि मुदिमि दानु गैकॉनि विगत लोभुंडै निजभुजशक्ति पालितंबगु भूमंडलंबु विभागिंचि द्रुह्युनकु बूर्वभागंबुनु यदुवुनकु दक्षिण भागंबुनु दुर्वसुनकु बश्चिम दिग्भागंबुनु

अश्व, वधू, दुकूल, धान्य आदि बहुत होने पर भी आशापाश का खंडन नहीं कर सकते; (यह तो) और भी विशेषता है। ५८० [कं.] कामोपभोग सुखों का पुरुष वारवार अनुभव करते हुए भी, काम (मन्मथ-विकार) शांत नही होता। क्या धूमध्वज (अग्नि) आज्य-वृष्टि से दब जाता है? ५८१ [आ.] हे पद्मनयने! उस शय्या पर नहीं चढ़ (लेट) सकते जिस पर बड़ी बहिन, माँ, छोटी बहिन और आत्मजा चढ़ती (लेटती) हैं। [ऐसा करने से] परमयोगी को भी बलात् इंद्रिय-ग्राम (-समूह) अधिक पीड़ा पहुँचाता है। ५८२ [कं.] हे जल-जातमुखी! मूढों में अग्रेसर बनकर घूमते हुए, घबड़ाकर, न बिगड़ कर, मुक्ति की कांक्षा रखनेवाले को अंगनाओं के साथ लगे हुए स्नेह को छोड़ देना चाहिए। ५८३ [व.] इसलिए आज से लेकर तृष्णा का खंडन करके, निर्विषयी बनकर, अहंकार को त्यागकर, मृगों के साथ वनों में संचरण करूँगा। परब्रह्म में (पर) चित्त लगा दूँगा। ब्रह्मनिष्ठ के मनुष्यों के लिए आशा-निवारिणी होने से, मैं उसमें तत्पर रहकर, आहार-निद्रादि-योगों का परिहार कर दूँगा। आत्मविद् बनकर, संसार के नाशों को जाननेवाला ही विद्वान है।" यों सोचकर कहकर पूरु के यौवन को उसे लौटाकर, बुढ़ापे को खुद लेकर, विगत-लोभी बनकर, निजभुजशक्ति से पालित भूमंडल का विभाजन करके द्रुह्य को पूर्व भाग, यदु को दक्षिण भाग, दुर्वसु को पश्चिम दिग्भाग [और] अनु को उत्तर दिग्भाग, संरक्षा करने को

ननुवुनकु नुत्तर दिग्भागंबुनु संरक्षिपुंडनि यिच्चि वार॰, समक्षंबुन ॥ 584 ॥

कं. नालुगु चॆऱगुल नेलयु, बालिपुंडनुचु नग्रभबुलनु बंचॆन्
भूलोकमेलु मनुचुनु, बालार्कोदारु बूरु बट्टमु गट्टॆन् ॥ 585 ॥

व. इट्लु पूरुनिकि राज्यंबिच्चि पॆक्कु वर्षंबुलंदु ननुभूतंबुलयिन यिंद्रिय सुखंबुलु वर्जिचि ॥ 586 ॥

क. मिक्किलि सुज्ञानंबुन
जक्कग दॆगनडिचि वैरि षड्वर्गंबुन्
ऱॆक्कलु वच्चिन विहगमु
ग्रक्कुन नीडंबु विडुचु करणि नुदितुडै ॥ 587 ॥

कं. कारुणिकोत्तमुडगु हरि, कारुण्यमु कतन नतडु घनुडै गॆलिचॆन्
घ्रूरमुलगु विषयंबुल, नूरक गॆलुवंग शक्तुडॊक्कडु गलडे ॥ 588 ॥

व. मऱियु निर्मूलित सकल संगुंडै सत्त्वरजस्तमोगुणंबुल दिगनाडि निर्मलंबयि परमंबयिन वासुदेवाभिधान ब्रह्मंबुनंदु ययाति भूपालुंडु स्वतस्सिद्धययिन भागवतगति जॆंदॆनु । अंत ॥ 589 ॥

सी. प्राणेशुडाडिन पलुकुलु नगवुलुगाजूडकंतरंगमुन निलिपि
पथिकुलै पोवुचु बानीय शालल जललगा नुंडेडि जनुल यट्ल
संसारमुन गर्म संबंधुलै वच्चि यालु बिड्डलु मगंडनुचु गूडि
युंडुट गानि संयोगंबु नित्यंबु गादीशमाया प्रकल्पितंबु

---

कहकर, देकर, उनके समक्ष मे ५८४ [कं.] 'चारों ओर की ज़मीन का पालन करो' कहते हुए अग्रभवों को बाँट दिया। 'भूलोक का पालन करो' कहते हुए बालार्कोदार (बालार्क के सम उदार)-पूरु को अभिषिक्त किया। ५८५ [व.] इस प्रकार पूरु को राज्य देकर, कई वर्षों तक अनुभूत इंद्रिय सुखों को वर्जित करके ५८६ [कं.] बड़े सुज्ञान से वैरि षड्वर्ग को अच्छी तरह छोड़कर पंखों के उग आने पर विहग के जल्दी नीड़ को छोड़ देने की तरह, उदित होकर। ५८७ [कं.] कारुणिकोत्तम होनेवाले हरि के कारुण्य के कारण उसने घन (श्रेष्ठ) बनकर, क्रूर होनेवाले विषयों को जीत लिया। यों ही जीतनेवाला शक्तिमान क्या एक भी है ? ५८८ [व.] और निर्मूलित-सकल-संग होकर, सत्त्व-रजस्तमोगुणों को छोड़कर, निर्मल [और] परम वासुदेवाभिधान ब्रह्म में ययाति भूपाल ने स्वतस्सिद्ध-भागवत-गति को प्राप्त किया। तब ५८९ [सी.] प्राणेश ने जो बातें कहीं, उनको हँसी-मजाक़ की तरह न देखकर (समझकर), [उन्हें] अंतरंग में स्थापित करके, पथिक बनकर जाते हुए पानीयशालाओं में आराम से रहनेवाले जन-समूह की

787 विडुचुट दगवनि लॅगुव मॅरसि
सालिचि मेल्कॊन्न नेर्पुं साल
गि भार्गवि सर्वसंगमुल विडिचि
हरि पराधीनयै मुक्ति कलिगॅ नधिप ! ॥ 590 ॥

व. अनियिट्लु ययाति चरितंबु सॅप्पि भगवंतुंडुनु सर्वभूत निवासुंडुनु शांतुंडुनु वेदमयुंडुनुनैन वासुदेवुनिकि नमस्करिचॅदनु। अनि शुकुं-डिट्लनियॆ ॥ 591 ॥

## अध्यायमु—२०

कं. भारत ! नीवु जनिंचिन, पूरुनि वंशंबु नंदु बुट्टिन वारिन्
जारु यशोलंकारुल, धीरुल विनिपिंतु नधिक तेजो धनुलन् ॥ 592 ॥

व. पूरुनकु जनमेजयुंडु, जनमेजयुनकु प्राचिन्वांसुंडु, ना प्राचिन्वांसुनकु प्रविरोधन मन्युवु, नतनिकि जारुवु बुट्टिरि। आ चारुवुनकु सुद्युवु, सुद्युवुनकु बहु गतुंडुनु, बहुगतुनकु शर्यातियु, शर्यातिकि संयातियु, संयातिकि रौद्राश्वुंडुनु, रौद्राश्वुनकु घृताचि यनु नच्चर लेम यंदु ऋतेपुवु गक्षेपुवु स्थलेपुवु गृतेपुवु जलेपुवु सन्नतेपुवु धर्मेपुवु सत्येपुवु व्रतेपुवु ननेपुवु ननुवारु जगदात्मभूतुंडैन प्राणनकु

---

तरह, संसार में कर्म-संबंध से आकर, पत्नी, पति, संतान कहते हुए मिलकर तो रहते है, लेकिन [यह] संयोग नित्य (शाश्वत) नहीं है; ईशमाया प्रकल्पित है। [ते.] इनको छोड़ देना अच्छा है' कहकर साहस करके, निद्रा को पूरा करके जागे हुए [व्यक्ति के समान] ज्ञान पाकर, हे अधिप ! भार्गवी ने सर्वसंगों को छोड़कर, हरि-पराधीना बनकर, मुक्ति को प्राप्त किया। ५९० [व.] इस प्रकार ययाति का चरित्र (कथा) कहकर 'भगवान, सर्वभूतनिवासी, शांत (और) वेदमय होनेवाले वासुदेव को नमस्कार करूँगा।' यों कहकर शुक ने इस प्रकार कहा। ५९१

## अध्याय—२०

[कं.] हे भरत ! तुम जिस पूरुवंश में पैदा हुए हो, उस वंश में पैदा हुए चारु (सुंदर) यशोलंकारों, धीरों (और) तेजोधनों को (के बारे में) सुनाऊँगा। ५९२ [व.] पूरु के जनमेजय, जनमेजय के प्राचीन्वांस उसके प्रविरोधनमन्यु, उसके चारु पैदा हुए। उस चारु के सुद्यु, सुद्यु के बहुगत, बहुगत के शर्याति, शर्याति के संयाति, संयाति के रौद्राश्व, रौद्राश्व के घृताचि नामक अप्सरा स्त्री से ऋतेपु, कक्षेपु, स्थलेपु, कृतेपु, जलेपु, सन्नतेपु, धर्मेपु, सत्येपु, व्रतेपु (और) वनेपु नामक दस लड़के पैदा हुए जैसे जगदात्मभूत

निंद्रियंबुल चंदंबुन बदुगुरु गोंडुकुलु जन्मिंचिरि। अंदु ऋतेपुवुनकु नंति, सारुंडुनु, नंतिसारुनकु सुमतियु ध्रुवुडु नप्रतिरथुंडु नन मुव्वुरु पुट्टिरि। अंदु नप्रतिरथुनिकि गण्वुडुनु, गण्वुनिकि मेधातिथियु, नतनिकि प्रस्कंदुंडु मोदलगु ब्राह्मणुलुनु जन्मिंचिरि। आ सुमतिकि रैभ्युंडु पुट्टें। रैभ्युनकु दुष्यंतुंडु पुट्टें ॥ 593 ॥

कं. पारावार परीतो, -दार धरा भार दक्ष दक्षिण हस्त
श्री राजिल्लग नोक ना, -डा राजेंद्रुंडु वेट यंदभिरतुडै ॥ 594 ॥

कं. गंडक कंठीरव भे, -रुंड शश व्याळ कोल रोहिष रुरु वे-
दंड व्याघ्र मृगादन, चंड शरभ शल्य भल्ल चमराटवुलन् ॥ 595 ॥

कं. चप्पुडु चेयुचु मृगमुल, रोप्पुचु नीरमुल यंदु रोयुयु वललं
द्रिप्पुकोनि पडग बोयुचु, दप्पक व्रेयुचुनु वेट तमकं बोप्पन् ॥ 596 ॥

कं. मृग यूथंबुल वेंटनु, मृग लांछन सन्निभुंडु मृगयातुरुडै
मृगयुलु गोंदरु गोलुवग, मृगराज पराक्रमंबु मेंड्यग वच्चेन् ॥ 597 ॥

व. इटलु वच्चि वच्चि दैवयोगंबुन गण्व महामुनि तपोवनंबु सेरं जनि ॥598॥

सी. उरुतर श्रांताहि युगळंबुलकु बिछमुल विसरेंडि केकि मुख्यमुलनु
गरुणतो मदयुक्त कलभंबुलकु मेतलिडुचु मुद्दाडु मृगेंद्रमुलनु
घनमृगादनमुलु गापुगा लेळ्ळतो रतुलु सागिचु सारंगमुलनु
नुनुवुगा होमधेनुवुल कंठंबुलु दुव्वुचु नाडु शार्दूलमुलनु

---

प्राणी के इंद्रिय पैदा होते हैं। उनमें से ऋतेपु के अंतिसार, अंतिसार के सुमति, ध्रुव (और) अप्रतिरथ नामक तीन (पुत्र) पैदा हुए। उनमें से अप्रतिरथ के कण्व, कण्व के मेधातिथि, उसके प्रस्कंद आदि ब्राह्मणों का जन्म हुआ। उस सुमति के रैभ्य पैदा हुआ। रैभ्य के दुष्यंत पैदा हुआ। ५९३ [कं.] पारावार-परीतोदार-धराभार-दक्ष-दक्षिणहस्तश्री के प्रकाशमान होने से एक दिन वह राजेंद्र आखेट में अभिरत होकर, ५९४ [कं.] गंडक, कंठीरव, भेरुंड, शश, व्याल, कोल, रोहिष, रुरु, वेदंड, व्याघ्र, मृगादन-चंड-शरभ, शल्य, भल्ल, चमरों के अरण्यों में ५९५ [कं.] ध्वनि करते हुए, मृगों का पीछा करते हुए, नीरों में [जलचरों को] ढूँढ़ते हुए, जालों को घुमाते हुए, जंतुओं को फँसाते हुए और लक्ष्य को न चूकने देकर मारते हुए, आखेट के मोह के बढ़ने पर ५९६ [कं.] मृगयूथों के पीछे मृगलांछन (चंद्र) सन्निभ [वह दुष्यंत] मृगयातुर बनकर, कुछ मृगयों (शिकारियों) के सेवा करने पर, मृगराज-पराक्रम के चमकने पर आया। ५९७ [व.] यों आ-आकर दैवयोग से कण्वमुनि के तपोवन के पास पहुँचकर ५९८ [सी.] उरुतरश्रांत अहि (सर्प) युगल को अपने

कलहिंचु मूषिक दंपतुलकु
नंकिंचु मार्जाल मल्लमुलनु
ग्रयु जाति वैरंबुलु मानि कूडि
गलसि क्रीडिंचु मृगमुल गांचॆ नतडु ॥ 599 ॥

कं. इत्तॆरगुन मृगजातुल, पॊत्तुलु मेमॆरुगमनुचु भूवल्लभुडुं
जित्तमु लोपल नामुनि, -सत्तमु सद्वृत्तमुनकु संतस पडुचुन् ॥ 600 ॥

कं. हल्लक बिसरुह सरसी, कल्लोलोत्फुल्ल यूथिका गिरि मल्ली
मल्ली मरुवक कुरुवक, सल्ललितानिलमु वलन संतुष्टुंडै ॥ 601 ॥

व. दुष्यंतुंडु वच्चु नवसरंबुन ॥ 602 ॥

कं. इंदिंदिराति सुंदरि, यिंदिदिर चिकुरयुन्नदिंदिद शुभं-
बिंदिवु वंश यनु क्रिय, निंदीवर वीथि म्रोसॆ निंदिंदिरमुल् ॥ 603 ॥

कं. मा कंदर्पुनि शरमुलु, मा कंदमुलगुट जेसि माकंदंबुल्
मा कंदमुलनु कॆवडि, माकंदाग्रमुल पिक समाजमुलुलिसॆन् ॥ 604 ॥

व. अंत ॥ 605 ॥

पिछों से पंखा झलनेवाले केकी-मुख्यों को, मस्त कलभों को करुणा से चारा देते हुए चूम लेनेवाले मृगेंद्रों को, घन मृगादनों के रखवाली करते रहने पर मृगो से रति करनेवाले सारंगों को, धीरे-धीरे होमधेनुओं के कठों को पुचकारते हुए खेलनेवाले शार्दूलों को, [ते.] मार्ग में कलह करनेवाले चूहों के दंपति में मित्रता स्थापित करनेवाले मार्जाल मल्लों को, मन में जाति बैर को भूलकर इस प्रकार मिलकर क्रीडा करनेवाले पशुओं को उसने देखा। ५९९ [कं.] 'मृग-जातियों की ऐसी मैत्री को हम नहीं जानते' [इस प्रकार] कहते हुए भूवल्लभ चित्त में उस मुनिसत्तम के सद्वृत्त के लिए संतुष्ट होते हुए, ६०० [क.] हल्लक (पद्म), बिसरुह, सरसी-कल्लोलोत्फुल्ल यूथिका, गिरिमल्ली, मल्ली, मरुवक, कुरुवक, सल्ललितानिल से संतुष्ट होकर, ६०१ [व.] दुष्यंत के आते समय, ६०२ [क.] 'यहाँ इंदुव इंदिरा से (भी) अति सुंदरी है जिसके चिकुर (अलकावली) भ्रमरो से काले हैं; यह देखो, यह देखो, हे इंदुवंश वाले, शुभ होगा' मानो इस प्रकार कह रहे हों, इंदिदिरो ने (भ्रमरों ने) इंदीवर-वीथि (कमलों की पक्ति) में झंकार किया। ६०३ [कं.] 'हमारे कंदर्प के शर आम के पल्लव होने से हमारी शोभा के कारण हैं'; आम्र वृक्षों को शोभायमान करते हुए, मानो इस प्रकार कह रहा हो, पिक समाज आम के शाखाग्रों पर स्थित रहा। ६०४ [व.] तब ६०५ [कं.] "इसमें रहनेवाले कण्व मुनि को वंदना करके लौट आऊँगा" यों कहते हुए अपने अनुचरों को ढंग से यहाँ-वहाँ खड़ा करके,

कं. इंदुन्न कण्वमुनिकिन्नि, वंदन मौनर्रिचि तिरिगि वच्चेंद ननुचुं
बोंदुग ननुचरुलनु दा, नंदरु नंदंद निलिपि यट जनि म्रोलन् ॥ 606 ॥

शा. आ कण्वाश्रममंदु नीरज निवासांत प्रदेशंबुलन्
माकंदंबुल नीड गल्प लतिका मध्यंबुनन् मंजु रं
भाकांडांचित शाललो गुसुम संपन्न स्थलि जूचें ना
भूकांतुंडु शकुंतलन् नवनटद्भ्रू पर्यटत्कुंतलन् ॥ 607 ॥

क. दट्टपु दुरुमुनु मीदिकि
मिट्टिपडिन चन्नुगवयु मिरुमिरु चूड्कुल्
नट्टाडु नडुमु देनिय-
लुट्टेडु मोवियुनु मनमु नूरिंपंगन् ॥ 608 ॥

व. अंत ना राजकुमारुंडलरुटम्मुल, विलुकानि वॅडविट घणघणायमानलयि म्रोयु घंटलकुं बॅंटिचि तन मनंबुन ॥ 609 ॥

शा. वन्याहारमुलन् जितेंद्रियत ना वासिचु ना कण्वु डी
कन्यारत्नमु नेगति गनियेंडि गादी कुरंगाक्षि रा-
जन्यापत्यमु नाग नोपु नभिलाषंबय्यॅ गादेनि ने
यन्याय क्रियलंदु बौरवुल कॅंदाशिंचुने चित्तमुल् ॥ 610 ॥

कं. अडिगिन नृपसुत गाननि
वॆडिवॆंडिनो यिदि मनंबु नॊव्वननि विभुं-
डुडुराज वदन नडुगक
तडु मन यॊक कॊंत प्रॊद्दु दडबड जॊच्चॆन् ॥ 611 ॥

---

वहाँ जाकर, [अपने] सामने ६०६ [शा.] उस कण्वाश्रम में नीरज-निवासांत-प्रदेशों में, आम के वृक्षों की छाया में, कल्पलतिका-मध्यों में, मंजु-रंभाकांडांचित-शाला में, कुसुम-संपन्न-स्थल में, उस भूकांत ने नवनटद्-भ्रूपर्यटत्-कुंतला-शकुंतला को देखा। ६०७ [कं.] सांद्र जटा, उच्च उभरा हुआ स्तनद्वय, चकाचौंध पैदा करनेवाली चितवनें, हिलती हुई कमर, मधु को बरसानेवाला अधर, इन सबके मन को ललचाने पर [शकुंतला को देखा] ६०८ [व.] तब वह राजकुमार मदन के धनुष्टंकार के "घण-घण" बजनेवाले घंटों के कारण (कुछ देर) रुककर, अपने मन में ६०९ [शा.] "वन्याहारों से (और) जितेंद्रियता से प्रसिद्ध उस कण्व ने इस कन्यारत्न को कैसे पैदा किया? यह नहीं हो सकता; यह कुरंगाक्षी राजन्यापत्य (राजकुमारी) हो सकती है; (इस पर मेरी) अभिलाषा हो रही है। नहीं तो अन्याय-क्रियाओं में पौरवों (पुरु के वंशराज) का चित्त क्या आशा करता (लग जाता) है? ६१० [कं.] "पूछने पर कहीं कह

व. मरियु नॆट्टकेलकु दन चित्तसंचारंबु सत्यंबुगा दलंचि यिट्लनियॆ ॥ 612 ॥

कं. भूपालक-कन्यक वनि, नीपयि जित्तंबु नाटॆ नीवारेरी ?
नी पेरॆव्वरु ? निर्जन, भूपर्यटनंबु दगवॆ पूर्णेंदुमुखी ? ॥ 613 ॥

व. अनि पलुकुचुन्न राजकुमारुनि वदन चंद्रिका रसंबु नेत्र चकोरंबुल वलनं द्राबुचु नय्युविद विभ्रांतययि युन्न समयंबुन ॥ 614 ॥

कं. कंठे कालुनि चेतं, गुंठितुडगुटॆट्लु मरुडु कुसुमास्त्रंबुल्
लुंठिचि गुण निनादमु, ठंठम्मन वाल नेसॆ ठवठव गबुरन् ॥ 615 ॥

व. इट्लु बलराजु वानि क्रोव्विरि कोलल वेडिमि दालिमि पोडिमि संडि या वालु गंटि यिट्लनियॆ ॥ 616 ॥

म. अनिवार्य प्रभ मुन्नु मेनकयु विश्वामित्र भूभर्तयुन्
गनिरा मेनक डिंचि पोयॆ नडवि गण्वुंडु नन्नितगा
मनिचॆन् सर्वमु नामुनींद्रुडॆरुगुन् मद्भागधेयंबुनन्
निनुगंटि बिदपं गृतार्थनगुचुन् नेडी वनांतंबुनन् ॥ 617 ॥

कं. नी वारमु प्रजले मुनु, नीवारमु पूज गॊनुमु निलुवमु नीवुन्
नीवारुनु मा यिटनु, नीवारान्नंबु गॊनुडु नेडु नरेंद्रा ! ॥ 618 ॥

---

दे कि (मैं) नृपसुता नहीं हूँ तो जिससे मन दुखी हो जाए । यों सोचकर विभु उडुराज (चंद्र)-वदना से न पूछकर संदेह से कुछ देर तक घबड़ाने लगा। ६११ [व.] फिर किसी न किसी तरह अपने चित्त-संचार को सत्य मानकर (दुष्यंत ने) इस प्रकार कहा। ६१२ [कं.] "हे पूर्णेंदु-मुखी, (तुमको) भूपालक-कन्या समझकर तुम पर (मेरा) मन लग गया। तुम्हारे लोग (भाई-बंधु) कहाँ है ? तुम्हारा नाम क्या है ? क्या (तुमको यह) निर्जन भू-पर्यटन (निर्जन प्रदेश में रहना) योग्य है ?" ६१३ [व.] इस प्रकार कहनेवाले राजकुमार के वदन-चंद्र-चंद्रिका-रस को नेत्र-चकोरों से पीते हुए उस स्त्री के विभ्रांता होकर रहते समय, ६१४ [कं.] शिवजी से मदन कैसे कुंठित हुआ ? (नहीं हुआ) उसने कुसुमास्त्रों का संधान करके 'ठं-ठं' का गुण-निनाद होने से [उस] बाला पर अधिक बरसाया। ६१५ [व.] इस प्रकार मन्मथ के बाणों की गर्मी से अपनी क्षमा-(सहन) शक्ति को खोकर, वह युवती इस प्रकार बोली। ६१६ [म.] "अनिवार्य प्रभा वाली मेनका [तथा] विश्वामित्र भूभर्ता ने पूर्व में मुझे जन्म दिया। वह मेनका मुझे जंगल में छोड़कर चली गयी। कण्व ने मुझे इतना बड़ा किया। वह मुनि सब कुछ जानता है। अपने भागधेय (अदृष्ट) से आज इस वनांत में तुम्हें देखा। बाद में कृतार्था बनूँगी। ६१७ [कं.] हे नरेंद्र ! हम तुम्हारी प्रजा हैं; तुम अपने लोगों से की जाने

व. अनि पलिकिन दुष्यंतुंडु मेच्चि मच्चेकंटि यिच्च येंरिगि यिट्लनियें ॥ 619 ॥

आ. राजतनय वगुदु राजीवदळनेत्र !
माट निजमु लोनिमाट लेदु
तनकु सवृशुडयिन तरुणुनि गैकोंट
राज सुतकु दगवु राजवदन ! ॥ 620 ॥

व. अनि मरियु दिय्यनि नेय्यंपु बलुकुल वलन नय्युविद नियय कोलिपि ॥621॥

कं. बंधुर यशुडु जगन्नुत, संधुडु दुष्यंतुडुचित समयज्ञुंडै
गंधगज गमन नप्पुडु, गांधर्व विधिन् वरिंचें गहनांतमुनन् ॥ 622 ॥

### भरतुनि चरित्रमु

व. इव्विधंबुन नमोघवीर्युंडगु ना राचपट्टि दपसिराचूलिकि जलु नेक्कोलिपि मरुनाडु तन वीटिकि जनियेनु। अय्यतियु गोंत कालंबुनकु गोडुकुं गनिन गण्वमुनींद्रुं डा राचपट्टिकि जात कर्मादि मंगळाचारंबु लोनर्चेनु। आ डिंभकुंडुनु दिन दिनंबुनकु बालचंद्रुडुनुं बोलें नंदुगुचु ॥ 623 ॥

कं. कुंठितुडु गाक वाडु, -त्कंठं दन पिन्न नाडे कण्व वनचरत्-
कंठीरव मुखपंबुल, कंठमुलं बट्टि यडुचु गट्टुन् विडुचुन् ॥ 624 ॥

---

वाली पूजा को ग्रहण करो। तुम ठहरो। अपने लोगों के साथ हमारे घर में आज नीवारान्न को स्वीकार करो।" ६१८ [व.] ऐसा कहने पर दुष्यंत ने सतुष्ट होकर, उस मीन-लोचना की इच्छा को जानकर इस प्रकार कहा। ६१९ [आ.] "हे राजीवदल-नेत्रे ! तुम्हारे राजतनया होने की बात सच है; इसमें संदेह नहीं है। हे राज-वदने ! राजसुता को अपने लिए सदृश (सजातीय) तरुण को स्वीकार करना उचित है।" ६२० [व.] और मीठी मित्रतायुक्त बातों से उस रमणी को राजी करके, ६२१ [कं.] बंधुर यशस्वी और जगन्नुत-संध, दुष्यंत ने उचित समयज्ञ होकर उस गहनांत (कानन) में गंध-गज-गमना को तब गांधर्व-विधि से वरण किया। ६२२

### भरत की कथा

[व.] इस प्रकार अमोघ वीर्यवान उस राजकुमार मुनिश्रेष्ठ की बेटी को गर्भधारण कराके, दूसरे दिन अपने घर गया। उस स्त्री ने भी कुछ काल के बाद पुत्र को पैदा किया तो कण्व मुनींद्र ने उस राजकुमार के जात-कर्म आदि मंगलाचार संपन्न किये। वह बालक भी दिन-ब-दिन बालचंद्र की तरह बढ़ते हुए, ६२३ [कं.] कुंठित न होकर वह उत्कंठा

व. अंत ना कण्व मुनींद्रुंडु बालकुं जूचि शकुंतल किट्लनियें ॥ 625 ॥

उ. पट्टपु राजु नीमगडु पापडु नन्निट नॅक्कुडंतकुन्
बट्टपु देविवं गरिम बागुग नुंडक पारु वारितो
गट्टु वनंबुलो नवयगा बनि लेदिट दॅलि पोगदे
पुट्टिन यिड्ल मानिपति बोंदक इट्लनिशंबु नुंदुरे ॥ 626 ॥

व. अनिन नियकॉनि ॥ 627 ॥

कं. आ पिन्न वानि नतुल
व्यापारु नुदारु वॅष्णवांशोद्भवुनि
जूपॅद नंचु शकुंतल
भूपालुनि कडकु वच्चॅ बुत्रुनि गॉनुचुन् ॥ 628 ॥

व. वच्चि दुष्यंतुंडुन्न सभामंडपंबुनकुं जनि निलिचि युन्नयॅड ॥ 629 ॥

म. वल केलन् गुरु चक्र रेखयु बद द्वंद्वंबुनं बद्म रे-
खलु नॉप्पारग नंदु वच्चिन रमाकांतुंडु ना गांति न-
ग्गलमै युन्न कुमारु मार सदृशाकारुन् विलोकिंचि ता-
बलुकंडय्यॅ विभुंडॅरिंगि सति विभ्रांतात्मयै युंडगन् ॥ 630 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 631 ॥

म. अदॆ नीवल्लभ, वाडु नी सुतुडु, भार्या पुत्रुलं बात्रुलन्
वदलंगादलनाटि कण्व वनिका वैवाहिकारंभमुल्

---

से अपने बाल्य-काल मे ही कण्ववनचरत्कंठीरवमुख्यों के कंठों को पकड़कर दबा देता था, बाँध देता था, और छोड़ देता था। ६२४ [व.] तब उस कण्व मुनींद्र ने बालक को देखकर शकुंतला से इस प्रकार कहा। ६२५ [उ.] "तुम्हारा पति महाराजा है। (तुम्हारा) लड़का सबमें श्रेष्ठ है। इसलिए महारानी होकर, यहाँ ब्राह्मणों के साथ इस वन में कष्ट उठाने की [तुम्हें] आवश्यकता नही है। तुम वहाँ जा सकती हो। कहीं मायके में मानिनियाँ सदा व्यर्थ रहती है? ६२६ [व.] ऐसा कहने से मानकर ६२७ [कं.] 'उस अतुल-व्यापार (-कर्म करनेवाले) उदार और वैष्णवांशोद्भव बालक को दिखाऊँगी' कहकर शकुंतला (अपने) पुत्र को लेकर भूपाल के पास आयी। ६२८ [व.] आकर जिस सभामंडप मे दुष्यंत था, वहाँ जाकर खड़ी रही तो ६२९ [म.] दक्षिण हस्त में गुरु चक्र-रेखा और पद-द्वंद्व में पद्मरेखाओं के साथ वहाँ आये हुए, रमाकांत के जैसे कांति में अधिक होने वाले, मार (मदन) सदृशाकार कुमार को देखकर वह विभु जानकर भी नही बोला तो सती (शकुंतला) विभ्रांतात्मा बनकर (खड़ी) रही तो ६३० [व.] उस समय ६३१ [म.] "हे भूवरेंद्र! वही तुम्हारी वल्लभा

मदि नूहिंपु शकुंतला वचनमुल् मान्यंबुगा भूवरें-
द्र ! दयं जेकोनुमंचु म्रोसेंनु वियद्वाणी वधू वाक्यमुल् ॥ 632 ॥

व. इट्लशरीरवाणि सर्वभूतंबुलकु देट पड भरिंपु मनि पलिकिन ना कुमारुंडु भरतुंडय्येंनु । अंत ना राजु राजवदन नंगीकरिंचि तनूभवुं जेकोनि कौत कालंबु राज्यंबु सेसि परलोकंबुनकुं जनियें । तदनंतरंब ॥ 633 ॥

कं. रेंडव हरि क्रिय धरणी, -मंडल भारंबु निज समंचित बाहा-
दंडमुन निलिपि तनकुनु, भंडनमुन नेंदुरु लेक भरतुंडोप्पेंन् ॥ 634 ॥

व. मरियु ना दौष्यंति यमुना तटंबुन दीर्घ तपुंडु पुरोहितुंडुगा डेब्बदि येनि-मिदियुनु गंगा तीरंबुन नेबदि ययिदुनु निट्लु नूट मुप्पदि मूडश्वमेध यागंबुलु सदक्षिणंबुलुगा नोनर्चि देवेंद्र विभवंबुन नतिशयिंचि पदुमूडु वेल नेनुबदि नालुगु कडुपु(धेनुदुलु गलयदि द्वंद्वंबनंबरगु नट्टि वेयि द्वंद्वंबुल पाडि मोदवुल) ग्रेपुल तोड नलंकार सहितुलं जेसि वेवुरु ब्राह्मणुल किच्चि मष्कारतीर्थ तीर्थकूलंबुन विप्रमुख्युलकु बुण्यदिनंबुन गनक भूषण शोभितंबु-लयि धवळ दंतंबुलु गल नल्लनि येनुंगुलं बदुनालुगु लक्षल नोसंगें । दिग्विजय कालंबुन शक शवर वर्बरकष किरातक हूण म्लेच्छ देशंबुल राजुल बीचं बडंचि रसातलंबुन राक्षस कारागृहंबुलंदुन्न वेल्पु गरितलं बक्कंड्र

(पत्नी) है, वह तुम्हारा सुत है; भार्या और पुत्र को जो [स्वीकार करने पात्र (योग्य) हैं छोड़ नहीं देना चाहिए, उस दिन के कण्व-वनिका-वैबाहिकारंभों को और शकुंतला-वचनों को मन में ऊहा करो (सोचो) । [उन पर] दया करके स्वीकार करो ।" यों कहते हुए वियद्वाणी-वधू-वाक्य गूंज उठे। ६३२ [व.] इस प्रकार अशरीर वाणी के 'भरण करो' कहकर बोलने पर, सर्वभूतों को ज्ञात हो, वह कुमार भरत हुआ । इसके बाद वह राजा [उस] राजवदना को अंगीकृत करके, [अपने] तनूभव को लेकर, कुछ काल तक राज्य करके परलोक को गया । इसके बाद ६३३ [क.] दूसरे हरि की तरह धरणीमंडल-भार को निजसमचित-बाहुदंड पर खड़ा करके भंडन (युद्ध) में अपने प्रतिद्वंद्वी के न रहने से भरत प्रकाशमान हुआ । ६३४ [व.] और उस दौष्यंति ने यमुना तट पर, दीर्घतप के पुरोहित बनने पर अठहत्तर, गंगातीर पर पचपन, इस प्रकार एक सौ और तेंतीस अश्वमेध याग सदक्षिणा-संपन्न करके देवेंद्र-विभव से प्रकाशमान होकर, तेरह हजार और चौरासी धेनुओं का समूह द्वंद्व कहलाता है, ऐसे एक हजार द्वंद्वों के ब्यायी गायों को बछड़ों के साथ, अलंकार-सहित बनाकर एक हज़ार ब्राह्मणों को देकर, मष्कार तीर्थ-कूल (तीर) पर विप्र-मुख्यों को पुण्य दिन पर कनक-भूषण-शोभित होकर धवल दाँतों वाले चौदह लाख काले हाथियों को [दान में] दिया । दिग्विजय काल में शक, शवर, वर्बर, कष,

विडिपिंचि तॆच्चि वारल वल्लभुलं गूर्चॆं । त्रिपुर दानवुल जॆयिंचि निर्जरुल निजमंदिरंबुल नुनिचॆनु । अतनि राज्यंबुन गगन धरणीतलंबुलु प्रजलु गोरिन कोरिकलिच्चुचुंडॆ निव्विधंबुन ॥ 635 ॥

आ. सत्य चरितमंदु जलमंदु बलमंदु
भाग्यमंदु लोक पतुल कंटॆ
नॆक्कुडैन प्रेमि निरवदि येडु वे-
लेंडलु धरणि भरतु डेलॆ नधिप ! ॥ 636 ॥

कं. अर्थपति कंटॆ गलिमि गु-, तार्थुडै यतुल शौर्य मनवरतंबु नतं
डर्थमुलनु प्राणमुलनु, व्यर्थमुलनि तलचि शांतुडय्यॆ नरेंद्रा ! ॥ 637 ॥

कं. भरतुनि भार्यलु मुव्वुरु,
वरुसं बुत्रकुल गांचि वल्लभुतोडन्
सरिगारनि तोड्तोडनु,
शिरमुलु दुनुमाडिरात्म शिशुवुल नधिपा ! ॥ 638 ॥

व. इट्लु विदर्भराज पुत्रिकलु शिशुवुल जंपिन भरतुंडपुत्रकुंडै मरुत्स्तोमंबनु यागंबु पुत्रार्थियै चेसि देवतल मॆप्पिंचॆनु । अय्यवसरंबुन ॥ 639 ॥

---

किरातक, हूण, म्लेच्छ देशों के राजाओं के बल को दबाकर रसातल में राक्षस कारागृहों में रहनेवाली अनेक देवता-स्त्रियों को छुड़ाकर, लाकर उनके पतियों के पास पहुँचा दिया। त्रिपुर दानवों को जीतकर निर्जरों को निज (उनके) मंदिरों (भवनों) में भेज दिया। उसके राज्य में गगन [और] धरणीतल प्रजा जो कुछ चाहती थी, उनकी इच्छाओं की पूर्ति करते थे। इस प्रकार ६३५ [आ.] हे अधिप ! सत्यचरित में, जल में, बल में, भाग्य में लोकपतियों से अधिक प्रेम से सत्ताईस हज़ार वर्ष भरत ने धरणी पर राज्य किया। ६३६ [कं.] हे नरेंद्र ! अर्थपति (कुबेर) की अपेक्षा भाग्य में कृतार्थ होकर, अतुल शौर्य को पाकर भी वह अर्थों और प्राणों को व्यर्थ समझकर शांत हुआ [निर्वेद को प्राप्त किया]। ६३७ [कं.] हे अधिप ! भरत की तीन पत्नियों ने क्रम से पुत्रों को पैदाकर (उनको) अपने वल्लभ (पति) के समान न पाकर जल्दी-जल्दी अपने शिशुओं के सिरों को काट डाला। ६३८ [व.] इस प्रकार विदर्भराज-पुत्रिकाओं के [अपने] शिशुओं को मार डालने के कारण भरत ने अपुत्र होकर, मरुत्स्तोम नामक याग पुत्रार्थी बनकर, संपन्न करके देवताओं को संतुष्ट किया। उस अवसर पर, ६३९ [सी.] भाई की गर्भिणी स्त्री ममताख्या को देख कर बृहस्पति सुरत के लिए [उसे] पकड़कर, ऊपर गिरा तो पहले से गर्भ

सी. अन्न यिल्लालि जूल्लालिनि ममताख्य जूचि बृहस्पति सुरतमुनकु
दीरकौनि पैपड्डु दीलिलि गर्भंबुननुन्न बालुड्डु भयंबीदवि वलदु
तगदनि मीड्डसेय दमकंबुतो वानि नंधुंडवगु मन्न नलिगि वाड्डु
योनिलो लोपलि वीर्यं मूडदन्निन नेल बडि बिड्डुडै युन्न बाय लेक

आ. नितनि पेंपु कौड्डुकुलिरुवुरु जन्मिचि-
रनुचु वेंलय जेयु मनिन ममत
बेंपजाल नीव पेंपु भरिपु मी
द्वाजु ननुचु जनियें दानि विडिचि ॥ 640 ॥

व. इट्लुचथ्युनि भार्ययगु ममतयु बृहस्पतियु शिशुवुं गनि द्वाजुंडैन वीनि नीव भरिंपुमनि वदिनें मरुदुलु दमलो नौंडोरुवुलं बलिकिन कारणंबुन वाडु भरद्वाजुंडय्यें। गर्भस्थुंडयिन वाडु बृहस्पति शापंबुन दीर्घतमुंडय्यें। अंत ना बृहस्पतियु ममतयु तुदयिंचिन वानि विडिचि निजेच्छं जनिन मरुत्तुलु वानि बोषिंचि पुत्रार्थिययिन भरतुन किच्चिरि। भरतुंडु वानि जेकौनियें। वितथंबयिन भरतवंशंबुनकु ना भरद्वाजुंडु वंशकर्त यगुटं जेसि वितथुंडनबरगेंनु। आ वितथुनिकि मन्युवु, मन्युवुनकु बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर, गर्गुलनु वारेवुरु संभविंचिरि। अंदु नरुनिकि संकृति, संकृतिकि गुरुंडु रंतिदेवुंडन निरुवुरु जन्मिंचिरि। अंदु ॥ 641 ॥

---

में स्थित बालक भय पाकर 'नहीं, [यह कार्य] उचित नही है' कहकर पुकारा तो मोहवश हो उससे 'अंधा बनो' कहा तो क्रुद्ध होकर, उसने योनि के अन्दर के वीर्य को लात मारी, तो ज़मीन पर गिर पड़कर [वह वीर्य] बच्चा बनकर रहा तो उसे छोड़ न सककर 'इसका लालन करो, दो बच्चे पैदा हुए ऐसा कहकर प्रचार करो' [आ.] ऐसा कहने से ममता यह कहते हुए कि मैं इसका पालन नहीं कर सकती, तुम ही करो, भरण करो इस द्वाज को, उसे छोड़कर चली गयी। ६४० [व.] इस प्रकार चथ्य की पत्नी ममता और बृहस्पति शिशु को जन्म देकर द्वाज होनेवाले इसको 'तुम भरण करो, तुम भरण करो' कहकर भाभी और देवर के आपस में एक दूसरे से बोलने के कारण वह भरद्वाज हुआ। गर्भस्थ होनेवाला [शिशु] बृहस्पति के शाप से दीर्घतम बना। इसके बाद उस बृहस्पति और ममता के उदय (पैदा) हुए [शिशु] को छोड़कर निजेच्छा से चले जाने पर मरुतों ने उसका पोषण करके, पुत्रार्थी होनेवाले भरत को दिया। भरत ने उसको ले लिया। वितथ हुए उस भरत-वंश के लिए उस भरद्वाज के वंशकर्ता होने के कारण [वह] वितथ कहलाया। उस वितथ के मन्यु, मन्यु के बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर, [और] गर्ग नामक पाँच [पुत्र] हुए। उनमें नर के संकृति, संकृति के गुरु [और] रंतिदेव नामक दो [पुत्रों] का जन्म हुआ। उनमें ६४१

## अध्यायमु—२१

### रंतिदेवुनि चरित्रमु

सी. राजवंशोत्तम ! -रंतिदेवुनि कीर्ति येल्ल चॆप्पगविद्दुनु निदु नंदु
ना राजु दन संचितार्थंबुलन्नियु नॆडपक दीनुल किच्चि यिच्चि
सकुटुंबुडै धैर्यसंयुतुडै पेदयै कूडु नीरु लेकधम वृत्ति
नॆदैनि नलुवदि यॆनिमिदि दिवसमुल् चरियिंप नॊक दिवसंबु रेपु

आ. नॆय्यि पायसंबु नीरुनु कलिगिन, बहु कुटुंब भार भयमु तोड
नलसि नीरुवट्टु नाकलियुनु मिक्कि,लॊदव जूचि कुडुव नुत्सहिचॆं॥642॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 643 ॥

सी. अतिथि भूसुरुडॊक्कडाहारमडिगिन गडपक प्रियमुतो गारविंचि
हरि समर्पणमंचु नन्नंबुलो सग मिच्चिन भुजियिंचि येगॆ नात-
डंतलो नॊकशूद्रुडशनार्थियै वच्चि पॊडसूप लेदनबोक तनकु-
नुन्न यन्नमु लोन नॊक भागमिच्चिन संतुष्टुडै वाडु सनिन वॆनुक

आ. कुक्क गमियु दानु नॊक्कडेतॆर ना-
यन्न शेष मिच्चि सन्नयंबु-
लाडि म्रॊक्कि पंप नोडक जंडालु-
डॊक्कडरुदॆंचि चक्क निलिचि ॥ 644 ॥

---

## अध्याय—२१

### रंतिदेव की कथा

[सी.] हे राजवंशोत्तम ! रंतिदेव की कीर्ति यहाँ-वहाँ सर्वत्र कही जाती है। वह राजा अपने सब सचितार्थों को, निरंतर दीनों को दे-देकर, सपरिवार, धैर्यमयुत होकर, गरीब बनकर खाना-पीना न होने से अधम वृत्ति से कहीं अड़तालीस दिवस घूमता रहा। [आ.] एक दिवस के प्रातःकाल में घी, खीर (और) जल मिला तो बहु-परिवार भार-भय से थककर, प्यास और भूख को बहुत लगते देखकर, खाने को उत्साहित हुआ। ६४२ [व.] उस अवसर पर, ६४३ [सी.] एक अतिथि-भूसुर के आहार माँगने पर, न लौटा करके, प्रेम से गौरव करके 'हरि-समर्पण' कहते हुए अन्न में से आधा देने पर, भोजन करके वह चला गया; इतने में एक शूद्र अशनार्थी बनकर, आकर, दिखाई पड़ा तो 'नाहीं' न करके अपने लिए बचे हुए अन्न में से एक भाग दिया तो संतुष्ट होकर वह चला गया तो उसके पीछे कुत्तों के समूह के साथ किसी के आने पर, [आ.] उसने बचा हुआ अन्न देकर, प्रेम से बातें कर, नमस्कार करके भेजा तो एक चंडाल क्रम

कं. हीनुड जंडालुंडनु, मानवकुलनाथ ! दप्पि मानदु नवलं-
बोनेर नीकु जिविकन, पानीयमु नाकु बोसि ब्रतिकिपगदे ॥ 645 ॥

व. अनिन वानि दीनालापंबुलकु गरुणिंचि राजिट्लनियें ॥ 646 ॥

उ. अन्नमु लेदु कोन्नि मधुरांबुवुलुन्नवि, त्रावु मन्न ! रा
वन्न ! शरीर धारुलकु नापद वच्चिन वारि यापदल्
ग्रन्नन मान्चि वारिकि सुखंबुलु सेयुटकन्न नोंडु मे-
लुन्नदे नाकु दिक्कु पुरुषोत्तमुडोक्कड चुम्मु पुल्कसा ! ॥ 647 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 648 ॥

म. बलवंतंबगु नीरु वट्टुन निज प्राणांतमैयुन्नचो
नलयंडेमियु वीनि हृज्ज्वरमु नायासंबु खेदंबु ना
जल दानंबुन नेडु मानु ननुचुन् सर्वेश्वराधीनुडै
जलमुं बोसनु रंतिदेवुडु दयं जंडाल पात्रंबुनन् ॥ 649 ॥

व. तदनंतरंब ब्रह्मादि देवतलु संतोषिंचि रंतिदेवुनिकि मेलु सेयं दलंचि निजाकारंबुलतो मुंदट निलुवंबडि या राज धैर्यपरीक्षार्थंबु दम चेसिन वृषलादि रूपंबुलगु विष्णुमाय नेंरिंगिचिन ना नरेंद्रुंडदरकु नमस्करिंचि ॥ 650 ॥

---

से आकर सामने खड़ा रहकर ६४४ [कं.] "(मैं) हीन हूँ, चंडाल हूँ; हे मानवकुलनाथ ! प्यास नही बुझती; आगे नही जा सकता हूँ; अपने पास जो पानीय (जल) है, [उसे] पिलाकर मुझे जिलाओ ।" ६४५ [व.] ऐसा कहने पर उसके दीनालापों से करुणा दिखाते हुए राजा ने इस प्रकार कहा । ६४६ [उ.] "अन्न नही है; कुछ मधुरांबु है, भाई, पिओ । आओ, भाई, शरीरधारियों के आपदाएँ आने पर, उनकी आपदाओं को शीघ्र [अपने पर] धारण कर, सुख पहुँचाने से बढ़कर और भलाई क्या होती है ? हे पुल्कस (चंडाल) ! मेरे लिए आधार एक पुरुषोत्तम ही है ।" ६४७ [व.] यों बोलकर ६४८ [म.] "बलवती पिपासा के निज-प्राणांतक होने पर यह (चंडाल) कुछ न कर सकता । इसका हृज्ज्वर, आयास (और) खेद मेरे जल-दान से आज दूर हो जायेंगे", यों सोचते हुए सर्वेश्वराधीन होकर रंतिदेव ने दया से (उस) चंडाल के पात्र में जल डाल दिया । ६४९ [व.] इसके बाद ब्रह्मादि देवताओं ने संतुष्ट होकर रंतिदेव की भलाई करने को ठानकर, निजाकारों से [उस राजा के] सामने खड़े होकर उस राजा के धैर्य के परीक्षार्थ अपने किये हुए वृषलादि रूप होनेवाली विष्णु-माया को समझा दिया तो उस नरेंद्र ने सबको नमस्कार करके, ६५० [कं.] उनसे कुछ न

कं. वारल नेमियु नडुगक, नारायण भक्ति दन मनंबुन वॆलुगुन्
धीरुंडातडु माया, -पारज्ञुंडगुचु वरम पदमु बॊंदॆन् ॥ 651 ॥

कं. आ राजर्षिनि गॊलिचिन, वारॆल्ल ददीय योग वैभवमुन श्री
नारायण चिंतनुले, चेरिरि योगीशुलगुचु सिद्ध पदंबुन् ॥ 652 ॥

व. इट्लु रंतिदेवुंडु विज्ञान गर्भिणियगु भक्ति वलन वरम पदंबुनकुं जनियॆनु। अंत गर्गुनकु शिनि जन्मिचॆं। शिनिकि गार्ग्युंडु कलिगॆनु। आतनि नुंडि ब्राह्मण कुलंबय्यॆ। महावीर्युनिकि नुरुक्षयुंडुनु, नुरु क्षयुनिकि द्रय्यारुणियु गवियु बुष्करारुणियु ननु मुव्वुरु संभविचिरि। वारुनु ब्राह्मणुलयि चनिरि ब्रह्मक्षत्रुनिकि सुहोत्रुंडु सुहोत्रुनकु हस्तियु जनिंचिरि। आ हस्ति दन पेर हस्तिनापुरंबु निर्मिचॆनु। आ हस्तिकि नजमीढुंडुनु द्विमीढुंडुनु बुरुमीढुंडुनु नन मुव्वुरु जनियिंचिरि। अंदजमीढुनि वंशंबुनं ब्रिय मेधादुलु गॊंदरु बुट्टि ब्राह्मणुलयि चनिरि। अय्यजमीढुनिकि बृहदिषुवु नतनि पुत्रुंडु बृहद्धनुवु नतनिकि बृहत्कायुंडु नतनिकि जयद्रथुंडु नतनिकि विश्वजित्तु विश्वजित्तुनकु सेनजित्तु, सेनजित्तुनकु रुचिराश्वुंडु दृढहनुवु गाश्युंडु वत्सुंडु नन नलुगुरु जनिचिरि। अंदु रुचिराश्वुनकु ब्राज्ञुंडुनु नतनिकि बृथु सेनुंडुनु, बृथुसेनुनिकि वारुंडुनु, वानिकि नीपुंडुनु, नीपुनिकि नूर्वुरु गॊडुकुलुनु बुट्टिरि। मरियुनु ॥ 653 ॥

---

माँगकर नारायण की भक्ति के अपने मन में प्रकाशमान होने पर, उस धीर ने माया-पारज्ञ होते हुए परमपद को प्राप्त किया। ६५१ [कं.] उस राजर्षि की जितने लोगों ने सेवा की, तदीय-योग-वैभव से श्रीनारायण की चिंता करते हुए, योगीश बनकर (वे सब) सिद्ध पद को पहुँचे। ६५२ [व.] इस प्रकार रतिदेव विज्ञानगर्भिणी होनेवाली भक्ति से परमपद को गया। इसके बाद गर्ग से शिनि का जन्म हुआ। शिनि के गार्ग्य हुआ। उससे ब्राह्मणकुल हुआ। महावीर्य के उरुक्षय, उरुक्षय के द्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि नामक तीन (पुत्र) पैदा हुए। वे भी ब्राह्मण बनकर चले गये। ब्रह्मक्षत्र के सुहोत्र, सुहोत्र के हस्ति पैदा हुए। उस हस्ति ने अपने नाम पर हस्तिनापुर का निर्माण किया। उस हस्ति के अजमीढ, द्विमीढ (और) पुरुमीढ नामक तीन [पुत्रों] का जन्म हुआ। उनमें अजमीढ के वंश में प्रियमेधादि कुछ पैदा होकर ब्राह्मण बनकर चल बसे। उस अजमीढ के बृहदिषु, उसके पुत्र बृहद्धनु, उसके बृहत्काय, उसके जयद्रथ, उसके विश्वजित, विश्वजित के सेनजित, सेनजित के रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य और वत्स नामक चार [पुत्र] पैदा हुए। उनमें रुचिराश्व के प्राज्ञ, उसके पृथुसेन, पृथुसेन के पार, उसके नीप और नीप के एक सौ पुत्र पैदा हुए। और ६५३ [आ.] शुक की पुत्री सुंदरी को सत्कृति से पाकर

आ. शुकुनि कूतुरैन सुंदरि सत्कृति, -बौंदि वेड्क नीप भूविभुंडु
विमल योग वित्तु विज्ञान दोपितो, दारचित्तु ब्रह्मदत्तु गनियें ।। 654 ।।

व. आ ब्रह्मदत्तुंडु जैगिषव्योपदेशंबुन योगतंत्रंबुनं जेसि गोदेवियनु भार्य वलन विष्वक्सेनुंडनु कुमारुनि गनियें । विष्वक्सेनुनकु नुदक्सेनुंडु, नुदक्सेनुनकु भल्लादुंडु । वोरलु बार्हदिषवुलनु राजुलैरि । द्विमीढुनकु यमीनरुंडु, यमीनरुनिकि गृतिमंतुंडु, गृतिमंतुनिकि सत्यधृति, सत्यधृतिकि दृढनेमि, दृढनेमिकि सुपार्श्वकृत्तु, सुपार्श्वकृत्तुनकु सुपार्श्वुडुनु, सुपार्श्वुनकु सुमति सुमतिकि सन्नतिमंतुंडु, सन्नतिमंतुनि कोडुकु कृतियनुवाडु हिरण्यनाभुनि वलन योगमार्गंबेरिगि शोक मोहंबुलु विडिचि तूर्पु देशंबुन सामसंहित पठियिचेनु । आतनिकि नुग्रायुधुंडुनु, नुग्रायुधुनकु क्षेम्युंडु, क्षेम्युनकु सुवीरुंडु, सुवीरुनकु बुरंजयुंडु, बुरंजयुनकु वहुरथुंडु जन्मिचिरि । हस्तिकोडुकु पुरुमीढुनिकि संतति लेदय्येनु । अय्यजमोढुनिकि नळिनियनु भार्ययंदु नीलुंडु, नीलुनिकि शांतियु, शांतिकि सुशांतियु, सुशांतिकि बुरुजुंडु बुरुजुनिकि नर्कुंडु, नर्कुनिकि भर्म्यर्शिवुंडु, भर्म्यशिवुनकु मुद्गल यवोनर बृहदिषु कांपिल्य सृंजयुलनुवारेवुरु बुट्टिरि ।। 655 ।।

कं. मिचिन भर्म्याशवुडु सुत
पंचकमुनु जूचि विषय पंचकमुनु व-
जिचिति मेमनि वलिकन,
बांचालुरु नाग सुतुलु परगिरि धरणिन् ।। 656 ।।

---

आनंद के साथ नीप-विभु ने विमलयोगविद, विज्ञानदीप्त और उदारचित्त [वाले] ब्रह्मदत्त को जन्म दिया । ६५४ [व.] उस ब्रह्मदत्त ने जैगिषव्योपदेश से योग-तंत्र के कारण, गोदेवी नामक पत्नी से विष्वक्सेन नामक पुत्र को पैदा किया । विष्वक्सेन के उदक्सेन, उदक्सेन के भल्लाद [हुए] । ये बार्हदिष नामक राजा हुए । द्विमीढ के अमीनर, अमीनर के कृतिमान, कृतिमान के सत्यधृति, सत्यधृति के दृढनेमि, दृढनेमि के सुपार्श्वकृत, सुपार्श्वकृत के सुपार्श्व, सुपार्श्व के सुमति, सुमति के सन्नतिमान जन्मे । सन्नतिमान के पुत्रकृति नामक लड़के ने हिरण्यनाभ से योगमार्ग जानकर, शोक-मोह छोड़कर, पूर्वदेश में सामसंहिता का पाठ (अध्ययन) किया । उसके उग्रायुध, उग्रायुध के क्षेम्य, क्षेम्य के सुवीर, सुवीर के पुरंजय, पुरंजय के बहुरथ पैदा हुए । हस्ति के पुत्र पुरुमीढ की संतति नहीं थी । उस अजमीढ के नलिनी नामक पत्नी में नील, नील के शांति, शांति के सुशांति, सुशांति के पुरुज, पुरुज के अर्क, अर्क के भर्म्यशिव, भर्म्यशिव के मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु, कांपिल्य (और) सृंज नामक पाँच (पुत्र) पैदा हुए । ६५५ [कं.] श्रेष्ठभर्म्यशिव ने (अपने) सुत-पंचक

व. अंत:मुद्गलुनि नुंडि ब्राह्मण कुलंबै मुद्गल गोत्रंबुना नॆगडॆ। भर्म्यश्व-पुत्रुंडैन या मुद्गलुनिकि दिवोदासुंडु नहल्ययनु कन्यकयुनुं बुट्टिरि। आ यहल्य यंदु गौतमुनिकि शतानंदुंडु पुट्टॆ। शतानंदुनिकि धनुर्वेद विशारदुंडयिन सत्यधृति पुट्टॆनु। अतंडॊक नाडु वनंबुन नूर्वशि गनिन नतनिकि रेत:पातंबै तद्वीर्यंबु शरस्तंबंबुनं बडि मिथुनंबय्यॆ। ना समयंबुन ॥ 657 ॥

कं. चपल रति शंतनुडनु, नृपवरुडडविकिनि वेट नॆपमुन जनुचं
गृपतो शिशु युगमुं गनि, कृपियु गृपुंडनुचु दॆच्चि गृहमुन बॆंचॆन् ॥658॥

## अध्यायमु—२२

व. आकृपि द्रोणुनकु भार्य यय्यॆ। दिवोदासुनकु मित्रायुवु मित्रायुवुनकु च्यवनुंडु च्यवनुनकु सुदासुंडु, सुदासुनकु सहदेवुंडु, सहदेवुनकु सोमकुंडु, सोमकुनकु सुजन्मकृत्तु, सुजन्मकृत्तुनकु नूर्वुरु कॊडुकुलुं गलिगिरि। वारिलो जंतुवनु वाडु ज्येष्ठुंडु। कडचूलु पृषतुंडु पृषतुनकु द्रुपदुंडु द्रुपदुनकु धृष्टद्युम्नादुलयिन कॊडुकुलुनु द्रौपदियनु कूतुरुं गलिगिरि। धृष्टद्युम्नुनकु धृष्टकेतुवु पुट्टॆ।

(पाँच सुत) को देखकर कहा कि (मैंने) विषय पंचक को (पंचेंद्रियों के विषय) वर्जित किया। तो उसके सुत पांचाल नाम से धरणि पर प्रसिद्ध हुए। ६५६ [व.] इसके बाद मुद्गल से ब्राह्मणकुल होकर, मुद्गल गोत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। भर्म्यश्व के पुत्र उस मुद्गल के दिवोदास (और) अहल्या नामक कन्या पैदा हुए। उस अहल्या और गौतम से शतानंद पैदा हुआ। शतानंद के धनुर्वेदविशारद सत्यधृति पैदा हुआ। एक दिन उसने वन में ऊर्वशी को देखा तो उसका रेत:पात होकर, उसका वीर्य शरस्तंब में पड़कर मिथुन (युग्म) बना। उस समय ६५७ [कं.] चपल रति [वाला] शंतनु नामक नृपवर ने आखेट के मिस से जंगल में जाते हुए कृपा से शिशु-युग (युग्म) को देखकर, कृपि और कृप कहते हुए लाकर, गृह में (उनका) पालन-पोषण किया। ६५८

## अध्याय—२२

[व.] वह कृपि द्रोण की पत्नी बनी। दिवोदास के मित्रायु, मित्रायु के च्यवन, च्यवन के सुदास, सुदास के सहदेव, सहदेव के सोमक, सोमक के सुजन्मकृत (और) सुजन्मकृत के एक सौ लड़के हुए। उनमें जंतु नामक (लड़का) ज्येष्ठ था। आखिरी संतान पृषद था। पृषद के द्रुपद, द्रुपद के धृष्टद्युम्न आदि लड़के (और) द्रौपदी नामक लड़की हुई। धृष्टद्युम्न

वीरलु पांचाल राजुलनि यॆरुंगुमु। मरियु नय्यजमीढुनि कॊडुकु ऋक्षुंडु, ऋक्षुनकु संवरणुं डासंवरणुंडु तपति यनियॆडि सूर्यकन्ययंदु गुरुवुं गनियॆ। आ कुरुवु पेरं गुरुक्षेत्रंबय्यॆनु। आकुरुवुनकु बरीक्षितु सुधनुवु जह्नुवु निषधुंडु ननुवारु नलुवुरु पुट्टिरि। अंदु बरीक्षित्तु कॊडुकुलु लेक चनियॆ। सुधनुवुनकु सुहोत्रुंडतनिकि च्यवनुंडु, च्यवनुनकु गृति, गृतिकि वसुवु, वसुवुनकु बृहद्रथ कुसुंभ मत्स्य प्रत्यग्र चेदिषादुलु वुट्टिरि। अंदु बृहद्रथुनकु गुशाग्रुंडु, गुशाग्रुनिकि ऋषभुंडु, ऋषभुनिकि सत्यहितुंडु, सत्यहितुनिकि पुष्पवंतुंडु, पुष्पवंतुनकु जह्नुवनु वाडु मरियु ॥ 659 ॥

सी. आ बृहद्रथुनकु नन्य भार्या गर्भमुन रॆंडु तग खंडमुलु जनिंचॆ
दुनुकलु गनि तल्लि तॊलगंग वैचिन संधिचॆ नॊकटिगा जर यनंग
नॊक दैत्यकांत, वाडॊप्पॆ जरासंधुडन गिरिव्रज पुर मातडेलॆ
नतनिकि सहदेवुडतनिकि सोमापि तनयुडातनिकि श्रुतश्रवुंडु

ते. जह्नुपुत्रुंडु सुरथुंडु जनवरेण्य !
यतनि कॊडुकु विदूरथुडतनि पट्टि
सार्वभौमुंडु वानिकि संभवुंडु
विनु जयत्सेनुडनुवाडु विमल कीर्ति ॥ 660 ॥

व. आ जयत्सेनुनिकि रथिकुंडु, रथिकुनकु नयुतायुवु, नयुतायुवुनकु ग्रोधनुडु

---

के धृष्टकेतु पैदा हुआ। जान लो कि ये पांचाल राजा है। और उस अजमीढ का बेटा ऋक्ष था; ऋक्ष के संवरण [हुआ]। उस संवरण ने तपति नामक सूर्य-कन्या मे कुरु को पैदा किया। उस कुरु के नाम पर कुरुक्षेत्र हुआ। उस कुरु के परीक्षित, सुधनु, जह्नु (और) निषध नामक चार [पुत्र] हुए। उनमें परीक्षित बिना पुत्रों के चला गया (मर गया)। सुधनु के सुहोत्र, उसके च्यवन, च्यवन के कृति, कृति के वसु, वसु के बृहद्रथ, कुसुंभ, मत्स्य, प्रत्यग्र, चेदिष आदि पैदा हुए। उनमें बृहद्रथ के कुशाग्र, कुशाग्र के ऋषभ, ऋषभ के सत्यहित, सत्यहित के पुष्पवान्, पुष्पवान् के जह्नु पैदा हुए और भी ६५९ [सी.] उस बृहद्रथ के अन्य भार्या गर्भ से दो तनु-खंडों का जन्म हुआ। [उन] खंडों को देखकर, माँ ने फेंक दिया तो जरा नामक एक दैत्यकांता ने उनको एक के रूप में संधान किया (जोड़ दिया)। वह जरासंध नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने गिरिव्रजपुर पर पालन किया। उसके सहदेव, उसके सोमापि तनय था। उसके श्रुतश्रव, [ते.] जह्नु पुत्र, सुरथ, हे जनवरेण्य ! [सुनो], उसके पुत्र विदूरथ, उसका लड़का सार्वभौम, उसके संभव (पुत्र) विमल कीर्तिवाला जयत्सेन नामक हुआ। ६६० [व.] उस जयत्सेन के रथिक, रथिक के अयुतायु, अयुतायु के क्रोधन, क्रोधन के

क्रोधनुनकु देवातिथियु, देवातिथिकि ऋक्षुंडु, ऋक्षुनिकि भीमसेनुंडु वानिकि प्रतीपुंडु, प्रतीपुनकु देवापि शंतनु वाह्लीकुलन मुव्वुरु गोडुकुलु पुट्टिरि, अंदु ॥ 661 ॥

सी. देवापि राज्यंबु दीर्प नोल्लक वनंबुन केगॆ दम्मुंडु पूर्वजन्म-
मंदु महाभिषुडनियॆडु वाडु शंतनुडय्यॆ वाडॆ यी धात्रि नॆल्ल
नेलुचु गरमुल ने वृद्धु मुट्टिन वाडॆल्ल निडु जव्वनमु नोंदु
नतडु शांति प्राप्तुडै युन्नदान वंड्रॆंडेड्लु वज्रि वर्षिपकुन्न

आ. वृष्टि लेनि चॊप्पु विप्रुल नडिगिन
नन्नयुंड दम्मुडग्निहोत्र
दार संग्रहंबु दाल्चिन बरिवेत्त
यंड्रु गान नीव यतडवैति ॥ 662 ॥

व. अदि कारणंबुगा नन्नयुंड दम्मुंडु राज्याहुँडु गाडुनीवु। परिवेत्तवु मीयन्नकु राज्यंविच्चिन ननावृष्टि दोषंबु सॆडुननि ब्राह्मणुलु वल्किन शंतनुंडु वनंबुनकुं जनि देवापिकि प्रियंबु सॆप्पि राज्यंबु सेकॊम्मनि पल्कॆनु। अंतकु मुन्न वानि तंड्रि देवापिनि राज्यंबुन कर्हुजेयंदलंचि विप्रुलं बिलिचिन ना विप्रुलु पाषंडमत वाक्यंबुलु देवापिकि नुपदेशिचिन देवापि वेदंबुल निंदिचिन पाषंडुडुनु देवदूषकुंडुनुनय्यॆ गावुन देवापिकि राज्यंबु

देवातिथि, देवातिथि के ऋक्ष, ऋक्ष के भीमसेन, उसके प्रतीप, प्रतीप के देवापि, शतनु (और) वाह्लीक नामक तीन पुत्र पैदा हुए। उनमें ६६१ [सी.] देवापि राज्य को सँभाल न सककर, वन में चला गया। छोटा भाई जो पूर्व जन्म में महाभिष नामक व्यक्ति था, शतनु बना; वही इस सारी धात्री पर राज्य करते हुए [अपने] करों (हस्तो) से जिस वृद्ध को छू लेता, वह पूर्ण यौवन को प्राप्त कर लेता था। वह शांति-प्राप्त बनकर रहा तो बारह वर्ष वज्रि (इन्द्र) न वरसा तो वृष्टि के न होने का कारण, [आ.] विप्रों से पूछा तो उन्होंने कहा कि अग्रज के रहते हुए अनुज के अग्निहोत्र-दार-संग्रह करने से (उसे) परिवेत्ता कहते हैं; तुम वही वने हो। ६६२ [व.] इस कारण अग्रज के रहते हुए अनुज राज्यार्ह नहीं है। तुम ज्ञाता हो। ब्राह्मणों के कहने पर कि अपने बड़े भाई को राज्य देने से अनावृष्टि-दोष नष्ट होगा, शतनु ने वन में जाकर देवापि से प्रिय [वचन] कहकर कहा कि राज्य ले लो। इसके पहले उसके मंत्री ने देवापि को राज्य के लिए अनर्ह (अयोग्य) वनाने की इच्छा से विप्रों को बुलाया तो उन विप्रों ने पापंडमतवाक्य देवापि को उपदेश दिये तो देवापि ने वेदों की निंदा की [तो वह देवापि] पाषंड और देवदूषक बना; इसलिए देवापि को राज्य [का अधिकार] नही है, ऐसा ब्राह्मणों के कहने पर शंतनु ने

लेदनि ब्राह्मणलु सॆप्पिन शंतनुंडु मगिडि वच्चि राज्यंबु जेकॊनियॆनु। अंत वर्षंबुनु गुरिसॆनु। इव्विधंबुन ॥ 663 ॥

कं. देवापि कलापपुरं, -बावासमु गाग योगियै युन्नाडु-
र्वीवर ! कलि नष्टंबगु, जैवातृक कुलमु मीद संस्थापिचुन् ॥ 664 ॥

व. बाह्लिकुंडनु वानिकि सोमदत्तुंडु वुट्टॆ। सोमदत्तुनकु भूरियु, भूरिश्रवसुडुनु, शलुंडनु वारु मुव्वुरु पुट्टिरि ॥ 665 ॥

क. भातिक शंतनुनकु गं, -गातटिनिकि वैष्णवाग्र गण्युडु घोरा-
राति नयन नीलोत्पल, भीतिकर ग्रीष्मुडैन भीष्मुडु वुट्टॆन् ॥ 666 ॥

आ. परशुरामु तोड प्रतिघटिंचि जयिप
नन्यु नॊकनि गान मतनि दवक
वीर यूथपति विवेक धर्मज्ञुंडु
दिविज नदि सुतुंडु देवसमुडु ॥ 667 ॥

व. आ शंतनुनकु दाश कन्यकयैन सत्यवतियंदु जित्रांगद विचित्रवीर्युलु पुट्टिरि। अंदु जित्रांगदुंडु गंधर्वुलचे निहतुंडय्यॆ। मरियुनु ॥ 668 ॥

उ. सत्यवती वधूटि मुनु शंतनु पॆंड्लमु गानि नाडु सां-
गत्यमुनं बराशरुड गर्भमु सेसिन बादरायणुं-
डत्यधिकुंडु श्रीहरि कळांशजुडै प्रभविंचॆ नित्यमुल्
सत्यमुलैन वेदमुल सांगमुलन् विभजिप दक्षुडै ॥ 669 ॥

---

वापस आकर राज्य को ले लिया। तब वर्षा हुई। इस प्रकार ६६३ [कं.] हे उर्वीवर ! देवापि कलापपुर को आवास बनाकर [और] योगी बनकर रहता है। कलि का नष्ट (अंत) होगा। बाद को [वह] जैवातृक कुल (चंद्रवंश) की स्थापना करेगा। ६६४ [व.] बाह्लीक नामक [व्यक्ति] के सोमदत्त पैदा हुआ। सोमदत्त के भूरि, भूरिश्रवसु [और] शल नामक तीन पुत्र [पैदा] हुए। ६६५ [कं.] प्रकाशमान शंतनु [और] गंगातटिनी के वैष्णवाग्रगण्य और घोर-आराति (शत्रु) नयन रूपी नीलोत्पलों के लिए भीतिकर-ग्रीष्म भीष्म पैदा हुआ। ६६६ [आ.] परशुराम को प्रतिघटित (सामना) करके जीतनेवाले उसे छोड़कर, किसी दूसरे [ऐसे वीर] को नहीं देखते। वह दिविज नदी-सुत, वीर-यूथपति, विवेक-धर्मज्ञ [और] विमल यश वाला है। ६६७ [व.] उस शंतनु के दाशकन्यका होनेवाली सत्यवती में चित्रांगद (और) विचित्रवीर्य पैदा हुए। उनमें चित्रांगद गंधर्वों से निहत हुआ। और ६६८ [उ.] सत्यवती वधूटि जब पहले शंतनु की पत्नी नहीं बनी, सांगत्य में पराशर के गर्भ करने से बादरायण अत्यधिक श्रीहरि के कलांशज होकर,

आ. बादरायणुंडु भगवंतुडनघुंडु
परम गुह्यमैन भागवतमु
नंदनुंडु नयिन नाकु जॅप्पॅनु शिष्य
जनुल मॊरगि येनु जदुवुकॊटि ॥ 670 ॥

व. आ विचित्रवीर्युनिकि गाशिराजु कूतुल नंबिकांबालिकल भीष्मुडु बलात्कारंबुन दॆच्चि विवाहंबु सेसिन विचित्रवीर्युंडु वारलं दगिलि मनोजरागमत्तुंडै चिरकालंबु नानाविध क्रीडल विहरिंचुचु राजयक्ष्म-पीडितुंडै मृतुंडय्यॆनु। अंत। 671 ॥

कं. अतनि सतुल वलन सुतुल
सुतकनुमनि तल्लि वनुप सॊरिदि गनियॆन्
धृतराष्ट्रपांडु विदुरुल
नुत चरितुडु बादरायणुंडु नरेंद्रा ! ॥ 672 ॥

व. अंत धृतराष्ट्रुनिकि गांधारियंदु दुर्योधनादुलगु कॊडुकुलु नूर्वुरुनु दुश्शल-यनु कन्यकयुनु जन्मिंचिरि। भृगशाप भयंबुनं जेसि भार्यं बॊंद वॆरचिन पांडुनकु गुंतीदेवियंदु धर्मानिलेंद्रुल प्रसादंबुन युधिष्ठिरभीमार्जुनुलनु मुग्वुरुनु, माद्रि देविवलन ना सत्य प्रसादंबुन नकुल सहदेवुलनु वारिद्दरुनुगा नेवुरु वुट्टिरि। अय्येवुरकुनु द्रुपदराजपुत्रियैन द्रौपदियंदु ग्रमंबुनं ब्रति-

---

नित्य और सत्य होनेवाले वेदों को सांगों को (अंगों के साथ), विभाजन करने के लिए दक्ष होकर उत्पन्न हुआ। ६६९ [आ.] बादरायण ने, जो भगवान और अनघ है, परम गुह्य होनेवाले भागवत को नंदनपुत्र हो मुझे बताया। शिष्य जनों से छिपाकर मैंने पढ़ लिया। ६७० [व.] उस विचित्रवीर्य का काशी राजा की बेटियों अंबिका (और) अंबालिका को भीष्म ने बलात्कार करके लाकर विवाह किया तो विचित्रवीर्य उनसे लगकर मनोजरागमत्त होकर, चिरकाल तक नाना विध क्रीड़ाओं में विहार करते हुए, राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर मृत हुआ। तब ६७१ [कं.] हे नरेंद्र ! 'हे सुत ! उसकी सतियों से सुतों को पैदा करो' ऐसा कहकर माँ ने भेजा तो नुतचरित वाले बादरायण ने क्रम से धृतराष्ट्र, पांडु और विदुरको पैदा किया। ६७२ [व.] तब धृतराष्ट्र के गांधारी में दुर्योधनादि पुत्र एक सौ (और) दुश्शला नामक कन्यका पैदा हुई। मृगशाप-भय के कारण भार्या से मिलने के लिए डरे हुए पंडु के कुंती देवी में धर्मानिलेंद्रों के प्रसाद से युधिष्ठर, भीम [और] अर्जुन नामक तीन, माद्रीदेवी से उस सत्य प्रसाद से नकुल और सहदेव नामक दो [ऐसा पाँच] पैदा हुए। उन पाँचों के द्रुपदराजपुत्री द्रौपदी में क्रम से प्रतिविंध्य, श्रुतसेन, श्रुतकीर्ति,

विध्युंडुनु श्रुतसेनुंडुनु श्रुतकीर्तियु शतानीकुंडुनु श्रुतकर्मुंडुनु नन नेरुवु बुट्टिरि। मरियु युधिष्ठिरुनकु बौरवतियंदु देवकुंडुनु भीमसेनुनिकि हिडिंबयंदु घटोत्कचुंडुनु गाळियंदु सर्वगतुंडुनु सहदेवुनिकि विजययंदु सुहोत्रुंडुनु नकुलुनकु रेणुमतियंदु निरमित्रुंडुनु नर्जुनुनकु नुलूपियनु नागकन्यकयंदु निलावंतुंडुनु मणलूरु पति पुत्रिययिन चित्रांगदयंदु बभ्रुवाहनुंडुनु सुभद्रयंदु शौर्य धैर्य तेजोविभवंबुल नखिल राजनिकरंबुनं ब्रख्यातुंडैन यभिमन्युंडुनु जन्मिंचिरि। अंदु बभ्रुवाहनुंडर्जुन नियोगंबुन मातामहुनि गोत्रंबुनकु वंशकर्तयय्यें ॥ 673 ॥

उ. अन्य सुपूज्य नी जनकुडै यभिमन्युडु भूवरेंद्र मू-
र्धन्युडु धन्यमार्गण कदंब विदारित वैरि वीर रा-
जन्युडु जन्य भीत गुरुसैन्युडु सैन्य समूहनाथ दृ-
ङ्मान्युडु मान्य कीर्ति महिमं दनरें गुरुवंश कर्तयै ॥ 674 ॥

व. आ यभिमन्युनकु नुत्तरयंदु नीवु जन्मिंचितिवि ॥ 675 ॥

कं. द्रोणसुतु तूपु वेडिमि, ब्राणंबुल वासि हरिकृपा दर्शन सं-
त्राणंबुन ब्रदिकितिका, क्षोणीश्वर ! मुन्नु नी शिशुत्वमु वेळन् ॥ 676 ॥

व. नी कुमारुलु जनमेजय श्रुतसेन भीमसेनोग्रसेनुलनु नल्वुरु। वीरल यंदु ॥ 677 ॥

---

शतानीक और श्रुतकर्म नामक पाँच [पुत्र] पैदा हुए। और युधिष्ठिर के पौरवती में देवक, भीमसेन के हिडिंबा में घटोत्कच, काली में सर्वगत, सहदेव के विजया में सुहोत्र, नकुल के रेणुमती में निरमित्र, अर्जुन के उलूपि नामक नागकन्यका में इलावान, मणलूरु-पति की पुत्री चित्रांगदा में बभ्रुवाहन [और] सुभद्रा में शौर्यधैर्य तेजोविभवों में अखिल-राज-निकर में प्रख्यात होनेवाले अभिमन्यु का जन्म हुआ। उनमें बभ्रुवाहन अर्जुन के नियोग (निर्णय) से मातामह के गोत्र का वशकर्ता बना। ६७३ [उ.] हे अन्य सुपूज्य ! तुम्हारा जनक होकर अभिमन्यु, मूर्धन्य, धन्य-मार्गण-कदंब-विदारित-वैरि-वीर-राजन्य, जन्य-भीत-कुरु-सैनिक, सैन्य समूहनाथ-दृङ्मान्य, मान्य-कीर्तिमहिमा से कुरु-वंश का कर्ता बनकर प्रकाशमान हुआ। ६७४ [व.] उस अभिमन्यु के उत्तरा से तुम पैदा हुए हो। ६७५ [कं.] द्रोणसुत के बाणों की गर्मी से प्राणों को छोड़कर, हरिकृपा-दर्शन-संत्राण (-रक्षा) से, हे क्षोणीश्वर ! पूर्व में अपने शिशुत्व के समय तुम जीवित रह गये। ६७६ [व.] तुम्हारे पुत्र जममेजय, श्रुतसेन, भीमसेन (और) उग्रसेन नामक चार है। इनमें ६७७ [आ.] यह सुनकर कि तुम तक्षकाहि-निहत (मारे गए) हो, सकल सर्पलोक-संहृत हो, ऐसा आगे जनमेजय

आ. नीवु तक्षकाहि निहतुंड वनि विनि
सकल सर्पलोक संवृतमुग
सर्पयागमिक जनमेजयुडु सेय
गलडु पूर्वरोष कलितुडगुचु ॥ 678 ॥

व. मरियु नतंडु सर्वधरणीमंडलंबुनु जयिंचि कावषेयुंडु पुरोहितुंडुगा नश्वमेधंबु सेयंगल वाडु। वानिकि शतानीकुंडु जनियिंचि याज्ञवल्क्युनि तोड वेदंबुलु पठिंचि कृपाचार्युनि वलन विलुविद्य नेर्चि शौनकुनि वलन नात्मज्ञानंबु बडय गलवाडु। आ शतानीकुनिकि सहस्रानीकुंडु वानिकि नश्वमेधजुं डश्वमेधजुनिकि नासीम कृष्णुंडासीम कृष्णुनकु नीचकुंडा नीचकुंडु गजाह्वयंबु नदिचेहृतंबुगा गौशांबियंदु वसियिंचुनु। आतनिकि नुप्तुं डुप्तुनिकि जित्ररथुंडु चित्ररथुनकु शुचिरथुंडु शुचिरथुनिकि वृष्टिमंतुंडु वृष्टिमंतुनिकि सुषेणुंडु सुषेणुनिकि सुपीतुंडु सुपीतुनिकि नृचक्षुवु नृचक्षुवुनकु सुखानिलुंडु सुखानिलुनिकि वरिप्लवुंडु वरिप्लवुनकु मेधावि मेधाविकि सुनयुंडु सुनयुनिकि नृपंजयुंडु नृपंजयुनिकि दूर्वुंडु दूर्वुनिकि निमि, निमिकि बृहद्रथुंडु, बृहद्रथुनकु सुदासुंडु, सुदासुनिकि शतानीकुंडु शतानीकुनकु दुर्दमनुंडु दुर्दमनुनिकि विहीनरुंडु विहीनरुनिकि दंडपाणि दंडपाणिकि मितुंडु मितुनकु क्षेमकुंडु क्षेमकुनकु ब्रह्मक्षत्रुंडु, वाडु निर्वंशुंडु देवर्षि सत्कृतुंडै कलियुगंबु नंदु जनंगलवाडु ॥ 679 ॥

---

पूर्वरोष-कलित होते हुए सर्पयाग करेगा। ६७८ [व.] और वह सर्व धरणीमंडल को जीतकर, कावषेय के पुरोहित बनने पर, अश्वमेध करेगा। उसके शतानीक पैदा होकर, याज्ञवल्क्य के साथ वेदों का पठन करके, कृपाचार्य से धनुर्विद्या सीखकर, शौनक से आत्मज्ञान प्राप्त करेगा। उस शतानीक के सहस्रानीक, उसके अश्वमेधज, अश्वमेधज के आसीमकृष्ण, आसीमकृष्ण के नीचक [होगा।] वह नीचक गजाह्वय नदी से हृत (डुबोए जानेवाले) कौशांबि मे रहेगा। उसके उप्त, उप्त के चित्ररथ, चित्ररथ के शुचिरथ, शुचिरथ के वृष्टिमान, वृष्टिमान के सुषेण, सुषेण के सुपीत, सुपीत के नृचक्षु, नृचक्षु के सुखानिल, सुखानिल के परिप्लव, परिप्लव के मेधावि, मेधावि के सुनय, सुनय के नृपंजय, नृपंजय के दूर्व, दूर्व के निमि, निमि के बृहद्रथ, बृहद्रथ के सुदास, सुदास के शतानीक, शतानीक के दुर्दमन, दुर्दमन के विहीनर, विहीनर के दंडपाणि, दंडपाणि के मित, मित के क्षेमक, क्षेमक के ब्रह्मक्षत्र [होगा।] वह निर्वंश होकर देवर्षि सत्कृत बनकर कलियुग में पैदा होगा। ६७९ [कं.] हे सगुणालंकार! धीर और सुभग विचार करनेवाले! जगति पर इसके बाद

कं. जगति निटमीद बुट्टेंडु
मगधाधीश्वरुल निखिल मनुजेश्वरुलन्
निगमांत विदुल जेप्पेंद
सुगुणालंकार ! धीर ! सुभग विचारा ! ॥ 680 ॥

व. जरासंध पुत्रुडयिन सहदेवुनिकि मार्जालि, मार्जालिकि श्रुतश्रवुंडु श्रुतश्रवुनकु नयुतायुवु नयुतायुवुनकु निरमित्रुंडु निरमित्रुनकु सुनक्षत्रुंडु सुनक्षत्रुनिकि बृहत्सेनुंडु बृहत्सेनुनिकि गर्मजित्तु गर्मजित्तुनकु श्रुतंजयुंडु श्रुतंजयुनकु विप्रुंडु विप्रुनकु शुचि शुचिकि क्षेमुंडु क्षेमुनिकि सुव्रतुंडु सुव्रतुनकु धर्मनेत्रुंडु धर्मनेत्रुनकु श्रुतुंडु श्रुतुनकु दृढसेनुंडु दृढसेनुनिकि सुमति सुमतिकि सुबलुंडु सुबलुनकु सुनीतुंडु सुनीतुनकु सत्यजित्तु सत्यजित्तुनकु विश्वजित्तु विश्वजित्तुनकु बुरंजयुंडुनु जन्मिचेंदरु। अनि चेप्पि मरियु निट्लनियें ॥ 681 ॥

भा. विनुमु मगधदेश विभुलु जरासंध
प्रमुख धरणिपतुलु प्रबल यशुलु
वीरु कलियुगमुन वेयेंड्ल लोपल
बुट्टि गिट्ट गलरु भूवरेंद्र ! ॥ 682 ॥

## अध्यायमु—२३

व. ययाति कोडुकनुवुनकु सभानरुंडु जक्षुवु बरोक्षुंडु ननुवारु सुगुरु

पैदा होनेवाले मगधाधीश्वरों, निखिल मनुजेश्वरों और निगमांतविदों को (के बारे में) कहूँगा। ६८० [व.] जरासंध-पुत्र सहदेव के मार्जालि, मार्जालि के श्रुतश्रव, श्रुतश्रव के अयुतायु, अयुतायु के निरमित्र, निरमित्र के सुनक्षत्र, सुनक्षत्र के बृहत्सेन, बृहत्सेन के कर्मजित, कर्मजित के श्रुतंजय, श्रुतंजय के विप्र, विप्र के शुचि, शुचि के क्षेम, क्षेम के सुव्रत, सुव्रत के धर्मनेत्र, धर्मनेत्र के श्रुत, श्रुत के दृढसेन, दृढसेन के सुमति, सुमति के सुबल, सुबल के सुनीत, सुनीत के सत्यजित, सत्यजित के विश्वजित, विश्वजित के पुरंजय, पैदा होंगे। यों कहकर फिर इस प्रकार बोला। ६८१ [आ.] हे भूवरेंद्र ! सुनो। मगध देश के विभु जो जरासंध प्रमुख (आदि) धरणीपति हैं, जो प्रबल यशस्वी हैं, ये कलियुग में एक हज़ार वर्षों के भीतर पैदा होकर मर जायेंगे। ६८२

## अध्याय—२३

[व.] ययाति के पुत्र अनु के सभानर, चक्षु (और) परोक्ष नामक

वुट्टिरि। अंदु सभानरुनिकि गालनाथुंडु गालनाथुनकु सृंजयुंडु सृंजयुनकु बुरंजयुंडु बुरंजयुनकु जनमेजयुंडु जनमेजयुनकु महाशालुंडु महाशालुनिकि महामनसुंडु महामनसुनकु सुशीनरुंडु तितिक्षुवन निरवुरु जन्मिचिरि। अंदु सुशीनरुनकु शिबि वन क्रिमि दर्पुलन नलुवुरु जन्मिचिरि। अंदु शिबिकि वृषदर्प सुवीर मद्र केकयुलु नलुवुरु पुट्टिरि। तितिक्षुनकु रुशद्रथुंडु दशद्रथुनकु हेमुंडु हेमुनकु सुतपुंडु सुतपुनकु बलियु बुट्टिरि। आ बलि वलन नंग वंगकळिग सिंह पुंड्रांध्रुलनु पेर्लु गलवारार्वुरु कुमारुलु पुट्टिरि। वारलु दूर्पु देशंबुनकु राजुलयि देशंबुलकु दम तम नामधेयंबुलिडि येलिरि। सुवीरुनकु सत्यरथुंडु सत्यरथुनिकि दिविरथुंडु दिविरथुनिकि धर्मरथुंडु धर्मरथुनकु जित्ररथुंडु बुट्टिरि। आ चित्ररथुंडु रोमपादुंडु ना बरगॆ ॥ 683 ॥

कं. संतति लेनि कतंबुन
जिंतिचुचु नुंड नतनि चॆलिकाडगु धी-
मंतुडु दशरथुडतनिकि
संततिगा निच्चॆ नात्मजनु शांताख्यन् ॥ 684 ॥

व. अंत रोमपादुंडु वन कूतुरु शांत यनि गैकॊनि मॆलंगुचुंड ना राजु राज्यंबुन गॊंतकालंबु वर्षंबु लेमिकि जिंतिचि विभांडक सुतुंडैन ऋश्यश्रृंगुंडु वच्चिन वर्षंबु गुरियुननि पॆद्दलवलन नॆरिंगि ॥ 685 ॥

---

तीन [पुत्र] पैदा हुए। उनमें सभानर के कालनाथ, कालनाथ के संजय, सृंजय के पुरंजय, पुरंजय के जनमेजय, जनमेजय के महाशाल, महाशाल के महामनस, महामनस के सुशीनर और तितिक्षु नामक दो [पुत्र] पैदा हुए। उनमें उशीनर के शिवि, वन, क्रिमि और दर्प नामक चार [पुत्र] हुए। उनमें शिबि के वृषदर्प, सुवीर, मद्र और केकय चार [पुत्र] पैदा हुए। तितिक्षु के रुशद्रथ, रुशद्रथ के हेम, हेम के सुतप [और] सुतप के बलि उत्पन्न हुए। उस बलि से अंग वंग, कळिग, सिंह, पुड्र, आंध्र के नामों के छः कुमार पैदा हुए। उन्होंने पूर्व देश के राजा बनकर, देशों को अपने-अपने नाम देकर राज्य किया। सुवीर के सत्यरथ, सत्यरथ के दिविरथ, दिविरथ के धर्मरथ, और धर्मरथ के चित्ररथ पैदा हुए। वह चित्ररथ रोमपाद कहलाया। ६८३ [कं.] संतति के अभाव से चिंता करते हुए रहा तो उसके मित्र धीमान दशरथ ने उसको [अपनी] आत्मजा शांताख्या (शांता नामवाली) को, संतति के रूप में दे दिया। ६८४ [व.] तब रोमपाद मेरी बेटी शांता है कहकर, (उसे) लेकर रहता था। उस राजा के राज्य में कुछ काल तक वर्षा न होने से चिंतित होकर बड़ों से यह जानकर कि विभांडक के सुत ऋष्यश्रृंग के आने पर वर्षा होगी, ६८५ [कं.] उस राजा ने घोर

कं. आ राजु ऋश्यशृंगुनि
घोरतपो नियमु दॆच्चु कॊरकॆ पनिचॆन्
वार सतुल नेर्परुल नु-
दार स्तन भार भीरु तरमध्यगलन् ॥ 686 ॥

व. वारलु जनि ॥ 687 ॥

आ. कांतलार ! मॆकमु गन्नदि मॊदलुगा
नाड्वारि नॆरुगडडवि लोन
गोचि बिगिय गट्टु कॊनिन या वडुगनि
मत्तिकानि रतिकि मरपवलयु ॥ 688 ॥

व. अनि पलुकुचु ॥ 689 ॥

कं. आडुचु जॆवुलकु निपुण
बाडुचु नालोक निशित बाणौघमुलन्
वीडुचु डग्गर नोडुचु
जेडिय लातपसि कडकु जेरिरि कलवन् ॥ 690 ॥

व. अव्यवसरंबुन वारलं जूचि ॥ 691 ॥

सी. मिळिताळि नील धम्मिल्ल भारंबुलु चारु जटा विशेषंबुलनियु
भर्मांचलोज्ज्वल प्रभ दुकूलंबुलु तत चर्मवस्त्र भेदंबुलनियु
बहु रत्न कीलित भासुर हारंबुलधिक रुद्राक्षमालावुलनियु
मलयज मृगनाभि महित लेपंबुलु बहुविधभूति लेपंबुलनियु

---

तपोनियमी ऋष्यशृंग को लाने के लिए कुशल, उदार (और) स्तन-भार-भीरुतर-मध्यगा (-कमर वाली) वारसतियों को भेजा। ६८६ [व.] वे जाकर ६८७ [आ.] "ओ कांताओ ! जब से हरिणी ब्यायी है, तब से लेकर [ऋष्यशृंग] स्त्रियों को नहीं जानता। जंगल में कोपीन बाँधकर (रहनेवाले) उस ब्रह्मचारी को रति की ओर आकृष्ट करना चाहिए।" ६८८ [व.] यों बोलते हुए ६८९ [कं.] खेलते (नाचते) हुए, श्रवण मधुर गाते हुए, आलोक-निशित-बाणौघों को छोड़ते हुए [और उसके] पास जाने में डरते हुए, वे वनिताएँ उस तपस्वी के पास [उससे] मिलने गयीं। ६९० [व.] उस अवसर पर उनको देखकर ६९१ [सी.] मिलित-अतिनील-धम्मिल्ल भारों को चारु जटा-विशेष, भर्मांचलोज्ज्वलप्रभा वाले दुकूलों को तत्चर्मवस्त्रभेद, बहुरत्न-कीलित-भासुर-हारों को अधिक रुद्राक्षमालाएँ आदि, मलयज-मृगनाभि-महित-लेपों को बहुविध भूति (विभूति-)लेप, [ते.] मधुर गान को श्रुतियुक्त मंत्र जातियाँ [और] वीणाओं को दंड [समझकर] सतियों (स्त्रियों) की मूर्तियों को

ते. मधुर गानंबु श्रुति युक्त मंत्र जातु-
लनियु वीणॅलु दंडंबुलनियु सतुल
मूर्तुलॅन्नडु नॅरुगनि मुगुद तपसि
वारि दापसुलनि डाय वच्चि म्रोक्कॅ ॥ 692 ॥

व. इट्लु वच्चि म्रोक्किन ऋष्यश्रृंगुं जूचि नगुचु डग्गरि ॥ 693 ॥

सी. सेममेयनि सतुल् सेतुल ग्रुच्चि कर्कश कुचंबुलु मोव गौगिलिंचि
चिर तपोनियति बस्सितिगदा यनि मोमु गंठंबु नाभियु गलय बुडिकि
कौत्त दीवनलिवि गॉनुमनि वीनुल पौंत नालुकल जप्पुळ्ळु चेसि
मा वनंबुल पंड्लु मॉंचवि तिनुमनि पेक्कु भक्ष्यंबुलु प्रीति नौसगि

आ. नूतनाजिनंबु नुनुपिदि मेलनि
गोचि विडिचि मृदु दुकूल मिच्चि
मौनि मरग जेसि मा पर्णशालकु
ब्रोदमनुचु गौचु ब्रोयिरतनि ॥ 694 ॥

व. इट्लु हरिणीसुतुंडु कांता कटाक्ष पाशबद्धुंडै वारल वेंटं जनि रोमपादु
कडकुं बोयिन नतंडु दन प्रिय नंदनयैन शांत निच्चि पुरंबुन नुनिचि
कौनियॅनु। अम्मुनीश्वरुंडु वच्चिन वर्ष प्रतिबंध दोषंबु सॅडि वर्षंबु
गुरिसॅनु। अंत ॥ 695 ॥

आ. आ नृपाल चंद्रुडनपत्युडै युंड
नॅरिगि मुनिकुलेंद्रुडिव्वु गूर्चि

---

कभी न जाननेवाले मुग्ध तपस्वी ने उनको तपस्वी समझकर (उनके पास) आकर नमस्कार किया। ६९२ [व.] इस प्रकार आकर नमस्कार करने वाले ऋष्यश्रृंग को देखते हुए, हँसते हुए पास आकर ६९३ [सी.] 'कुशल है ?' कहकर सतियाँ हाथों से जकड़कर, कर्कश कुच रगड़ जायें, ऐसा आलिगन करके, 'चिर तपोनियति से थक गये न' कहकर मुख, कंठ और नाभि सबको स्पर्श करके, 'ये नये आशीष हैं, ले लो' कहकर (उसके) कानों के पास जीभों से ध्वनियाँ करके, 'हमारे वनों के फल अच्छे है खाओ' कहकर कई लड्डू प्रीति से देकर, [आ.] 'यह नूतन चिकना अजिन है, अच्छा है' कहकर कौपीन को निकालकर मृदु दुकूल को देकर, मौनि को आकर्षित करके 'हमारी पर्णशाला को जायेंगे' कहते हुए उसको ले गयी। ६९४ [व.] इस प्रकार हरिणी-सुत (ऋष्यश्रृंग) कांता-कटाक्ष-पाश-बद्ध होकर, उनके साथ जाकर, रोमपाद के पास गया तो उसने अपनी प्रियनंदना शांता को देकर पुर में रख लिया। उस मुनीश्वर के आने पर वर्षा-प्रतिबंध-दोष के टल जाने से वर्षा हुई। तब ६९५ [आ.] उस नृपालचंद्र के अनपत्य होकर

यिष्टि चेसि सुतुल निच्चॅ नातनि कृप
बंक्तिरथुड़ पिदप बडसॅ सुतुल ॥ 696 ॥

व. आ रोमपावुनकु जतुरंगुडुनु जतुरंगुनकु बृथुलाक्षुंडुनु बृथुलाक्षुनिकि बृहद्रथुंडु बृहत्कमु डु बृहद्भानुंडु ननुवारु मुव्वुरु पुट्टिरि। अंदु बृहद्रथुनकु बृहन्मनसुडु बृहन्मनसुनकु जयद्रथुंडु जयद्रथुनकु बिजयुंडु विजयुनकु संभूतियनु भार्ययंदु धृतियु नाधृतिकि धृतव्रतुंडु धृतव्रतुनकु सत्यकमुंडु सत्यकर्मुनकु नतिरथुंडुनु जन्मिचिरि ॥ 697 ॥

आ. कुंति पिन्ननाडु गोरि सूर्युनि वोंद
बिड्डडुदितुडैन बॅट्टॅ बॅट्टि
गंगनोट विड्डव गनि यतिरथुडंत
गर्णुडनुचु गोडुकु गारविचॅ ॥ 698 ॥

व. इट्लतिरथुनकु गानीनुंडैन कर्णुंडु कोडुकय्यॅ। कर्णुनकु वृषसेनुंडु वुट्टॅनु। अय्ययाति कोडुकैन द्रुह्युनकु बभ्रुसेतुवु बभ्रुसेतुवुनकु नारब्धुंडु नारब्धुनकु गांधारुंडु गांधारुनकु धर्मुंडु, धर्मुनकु धृतुंडु धृतुनकु दुर्मदुंडु दुर्मदुनकु प्रचेतसुंडु प्रचेतसुनकु नूर्गुरु पुट्टि म्लेच्छाधिपतुलयि युदग्दिश नाश्रयिंचिरि। तुर्वसुनकु वह्नि, वह्निनकि भर्गुंडु, भर्गुनकु भानुमंतुंडु, भानुमंतुनकु त्रिसानुवु त्रिसानुवुनकु गरंधमुंडुनु गरंधमुनकु मरुत्तुंडु नतनिकि ययाति शापंबुन संतति लेदय्यॅ। विनुमु ॥ 699 ॥

---

रहते जानकर, मुनिकुलेंद्र ने इन्द्र के प्रति इष्टि यज्ञकरके सुतों को दिया। उसकी कृपा से पंक्तिरथ (दशरथ) ने बाद को सुतो को पाया। ६९६ [व.] उस रोमपाद के चतुरंग, चतुरंग के पृथुलाक्ष, पृथुलाक्ष के बृहद्रथ, बृहत्कर्म और बृहद्भानु, नामक तीन [पुत्र] पैदा हुए। उनमें बृहद्रथ के बृहन्मनस, बृहन्मनस के जयद्रथ, जयद्रथ के विजय, विजय के संभूति नामक पत्नी में धृति, उस धृति के धृतव्रत, धृतव्रत के सत्यकर्म (और) सत्यकर्म के अतिरथ का जन्म हुआ। ६९७ [आ.] कुंति के [अपने] बचपन में इच्छा करके सूर्य को पाने पर, पुत्र उदित हुआ तो (उसे) पेटी में रखकर गंगा के जल में छोड़ दिया तो अतिरथ ने (उसे) देखकर कर्ण कहते हुए पुत्र का गौरव दिया। ६९८ [व.] इस प्रकार अतिरथ के कानीनकर्ण पुत्र बना। कर्ण के वृषसेन पैदा हुआ। उस ययाति के पुत्र द्रुह्यु के बभ्रुसेतु, बभ्रुसेतु के आरब्ध, आरब्ध के गांधार, गांधार के धर्म, धर्म के धृत, धृत के दुर्मद, दुर्मद के प्रचेतस और प्रचेतस के एक सौ [पुत्र] पैदा होकर, म्लेच्छाधिपति बनकर उदीची दिशा के आश्रित हुए। तुर्वस के वह्नि, वह्नि के भर्ग, भर्ग के भानुमान, भानुमान के त्रिसानु, त्रिसानु के करंधम, और करंधम के मरुत [पैदा हुए]। ययाति के शाप के कारण उसकी संतति नहीं हुई। सुनो ६९९

### यदुवंश चरित्रमु

चं. अनघ ! ययाति पॆद्द कॊडुकैन यदु क्षितिपालु वंशमुन्
विनिन वठिंचिनन् नरुडु वुट्टियु बुट्टडु मुक्ति वॊंदु न-
य्यनुपममूर्ति विष्णुडु नराकृति वॊंदि जनिंचॆ गावुनन्
विनुमु नरेंद्र ! ना पलुकु वीनुल पंडुवु गाग जॆप्पॆदन् ॥ 700 ॥

व. यदुवुनकु सहस्रजित्तु क्रोष्टुवु नलुंडु रिपुंडु ननुवारु नलुगुरु संभविंचिरि। अंदु वॆद्द कॊडुकैन सहस्रजित्तुनकु शतजित्तु गलिगॆनु। आ शतजित्तुनकु महाहय वेणुहय हेहयुलनुवारु मुव्वुरु जनिंचिरि। अंदु हेहयुनकु धर्मुंडु धर्मुनकु नेत्रुंडु नेत्रुनकु गुंति गुंतिकि महिष्मंतुंडु, महिष्मंतुनिकि भद्रसेनुंडु भद्रसेनुनकु दुर्मदुंडु दुर्मदुनिकि धनिकुंडु, धनिकुनिकि गृतवीर्य कृताग्नि कृतकर्म कृतौजुलनु नलुगुरु संभविंचिरि। अंदु गृतवीर्युनिकि नर्जुनुंडु जनियिंचॆ। वुद्धिबलंबुन ॥ 701 ॥

सी. हरि कळासंजातुडैन दत्तात्रेयु सेविंचि सद्योग सिद्धि वॊंदि
वहु यज्ञ दान तपंबुलु गाविंचि सकल दिक्कुलु गॆलिचि जयमु तोड
सततंवु हरिनाम संकीर्तनमु सेसि धनमुल नॊंदि युदार वृत्ति
यॆनुबदि यॆदु येलॆंड्लु भूचक्रंवु धन कीर्ति दन पेरु गाग नेलॆ

---

### यदुवंश की कथा

[चं.] हे अनघ ! ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदुक्षितिपाल के वंश को (के बारे में) सुनने या पढ़ने से, नर [एक बार] पैदा होकर फिर दूसरी बार पैदा नही होता। मुक्ति को प्राप्त करेगा। उस अनुपम मूर्ति विष्णु ने नराकृति को पाकर जन्म लिया। इसलिए हे नरेन्द्र ! मेरी बात सुनो। ऐसे बोलूंगा कि कर्ण-पेय हो ७०० [व.] यदु के सहस्रजित, क्रोष्टु, नल और रिपु नामक चार [पुत्र] पैदा हुए। उनमें ज्येष्ठ पुत्र सहस्रजित के शतजित हुआ। उस शतजित के महाहय, वेणु हय [और] हेहय नामक तीन पैदा हुए। उनमें हेहय के धर्म, धर्म के नेत्र, नेत्र के कुंति, कुंति के महिष्मान, महिष्मान के भद्रसेन, भद्रसेन के दुर्मद, दुर्मद के धनिक, धनिक के कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतकर्म [और] कृतोज नामक चार [पुत्र] पैदा हुए। उनमें कृतवीर्य के अर्जुन पैदा हुआ। वह महाबुद्धिबल से, ७०१ [सी.] हरिकला-संजात दत्तात्रेय की सेवा करके, सत्-योगसिद्धि को पाकर, बहुयज्ञ-दान-तप करके, सकल दिशाओं को जीतकर, विजय से, सतत हरिनाम-संकीर्तन करके, धन पाकर, उदार वृत्ति से, पचासी हजार साल भूचक्र पर धन-कीर्ति से पालन किया जिससे अपना नाम [प्रसिद्ध] हो,

आ. मुदिमि लेक तरुण मूर्तियै युरु कीर्ति
नमरॆ गार्त्यवीर्युडनग विभुडु
निजमु वानि भंगि नेल येलिन यट्टि
राजु नॆरुगमॆंडु राजमुख्य ! ॥ 702 ॥

व. अय्यर्जुनकुंगल पुत्र सहस्रंबुनं बरशुरामुनि बारिकिं दप्पि जयध्वजुंडु शूरसेनुंडु वृषणुंडु मधुवु नूर्जितुंडु ननुवारेवुरु ब्रतिकिरि। जयध्वजुनकु ताळजंघुंडुनु ताळजघुनकु नौर्वमुनि तेजंबुन नूर्वुरु गॊडुकुलुनु गलिगिरि। अंदु ब्रथमुंडु वीतिहोत्रुंडु मधुवुनकु वृक्णुंडु वृक्णुनकु बुत्रशतंबु बुट्टॆनु। अंदु ब्रथमुडु वृष्णि मद्रियु मधुवृष्णि यदुवुल यावंशंबुलवारु माधवुलु वृष्णुलु यादवुलु ननं बरगिरि। यदुपुत्रुंडैन क्रोष्णुवुनकु वृजिनवंतुंडु वृजिनवंतुनकु श्वाहितुडु श्वाहितुनकु भेरुशेकुंडु भेरुशेकुनकु जित्ररथुंडु चित्ररथुनकु शशिबिंदुंडु बुट्टिरि ॥ 703 ॥

म. कृश मध्यल् पदिवेवुरंगनलतो ग्रीडं ब्रमोदिंप स-
त्कुशलुंडै पदिबेल लक्षलु सुपुत्रुल् भक्ति सेयं जतु-
र्दशरत्नुंडुनु योगि नाबरगि सप्तद्वीप राजेंद्रुडै
शशिबिंदुंडुरु नीतिमंतुडमरन् सत्कांति पूर्णेंदुडै ॥ 704 ॥

व. अतनि कॊडुकुल मॊत्तंबुनकु मुखरुलयिन यार्वुरलो बृथुश्रवुंडनु वानिकि

---

[आ.] बिना बुढ़ापे के, तरुणमूर्ति बनकर उरु (बड़ी) कीर्ति से कार्तवीर्य नाम से वह विभु प्रकाशमान था। सच है; हे राजमुख्य ! उसकी तरह भूमि का पालन करनेवाले राजा को कहीं नहीं जानते। ७०२ [व.] उस अर्जुन के पुत्र-सहस्र में परशुराम की दृष्टि से बचकर जयध्वज, शूरसेन, वृषण, मधु और अर्जित नामक पाँच जीवित रहे। जयध्वज के ताळजंघ, ताळजघ के और्वमुनि के तेज में एक सौ पुत्र हुए। उनमें प्रथम वीतिहोत्र था। मधु के वृक्ण, [और] वृक्ण के पुत्रशत पैदा हुए। उनमें प्रथम वृष्णि था। और मधु, वृष्णि [और] यदु के उन वंशों के लोग माधव, वृष्ण [और] यादव कहलाये। यदु-पुत्र क्रोष्टु के वृजिनवान, वृजिनवान के श्वाहित, श्वाहित के भेरुशेक, भेरुशेक के चित्ररथ [और] चित्ररथ के शशिबिंदु पैदा हुए। ७०३ [म.] कृशमध्या (पतली कमर वाली) दस हज़ार अंगनाओं के साथ क्रीडा में प्रमुदित हुआ तो सत्कुशल होकर, दस हज़ार लाख सुपुत्रों के भक्ति करने पर, चतुर्दश रत्न [होनेवाला] और योगि कहलाकर, सप्तद्वीप-राजेंद्र बनकर, शशि-बिंदु उरु नीतिवान [और] सत्कांति से पूर्णेंदु बनकर शोभित हुआ। ७०४ [व.] उसके सब पुत्रों के मुखर होनेवाले छहों में पृथुश्रव के धर्मु पैदा हुआ।

धर्मुंडु वुट्टॆ। धर्मुनकु नुशनुंडु वुट्टि नूरश्वमेधंबुलु सेसॆनु। अय्युशनुनकु रुचिकुंडु वुट्टॆनु। आ रुचिकुनकु बुरुजित्तु रुक्मुंडु रुक्मेषुवु बृथुवु ज्यामखुंडु ननुवारेवुरु वुट्टिरि। अंदु ज्यामखुंडु ॥ 705 ॥

सी. तॊट्रु कॊल्पॆडु शैब्य तोडि प्रेमंबुन ननपत्युडय्युनु नन्य भार्य
गैकॊनकॊक कॊंत कालंबुनकु बोयि पगवारि यिंटनु बलिमि वट्टि
यॊक कन्य देरिपै नुनिचि तोड्तेरंग जननाथु गन्यनु शैब्य सूचि
कॊपिंचि मानव कुहक ! यो पडुचुनुदॆच्चियु नेनुंड देरि मीद

आ. वॆट्टिनाडवनुचु विरुसुलु वलुकंग
नतड वलिकॆ नंत नतिव तोड
नाकु गोडलित नम्मु मी ललितांगि
सवति गादु नीकु सत्यमनुचु ॥ 706 ॥

व. अय्यवसरंबुन शैब्य कॊडुकुं गांचुननि यॆरिंगि विश्वेदेवतलुनु वितृदेवतलुनु संतसिंचिरि। वारल प्रसादंबुन ॥ 707 ॥

कं. तन सवति मीरगि पॆनिमिटि
तनु बॊंदिन शैब्य मरि विदर्भुनि गनियॆ
दनयु गनि ज्यामखुंडुनु
दन तॆच्चिन कन्य दॆच्चि तनयुन किच्चॆन् ॥ 708 ॥

---

धर्मु के उशनु ने पैदा होकर एक सौ अश्वमेध किये। उस उशनु के रुचिक पैदा हुआ। उस रुचिक के पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु [और] ज्यामख नामक पाँच पैदा हुए। उनमें ज्यामख ७०५ '[सी.] संभ्रम पैदा करनेवाली शैब्या पर रहनेवाले प्रेम से अनपत्य होकर भी, अन्य भार्या को स्वीकार न करके, कुछ काल के बाद जाकर शत्रुओं के घर बलात्कार से पकड़कर एक कन्या को रथ पर बिठाकर लिवा लाने पर जननाथ की कन्या को शैब्या ने देखकर कोप करके ऐसे कठिन वचन बोलने पर कि हे मानव-कुहक (वंचक) ! मेरे रहने पर भी इस कन्या को रथ पर लाकर रखा, [आ.] तो उसने तब उस स्त्री से कहा, "यह ललितांगी मेरी बहू है; यह विश्वास करो, तुम्हारी सौत नहीं है; सच है।" ७०६ [व.] उस अवसर पर यह जानकर कि शैब्या के पुत्र होगा, विश्वेदेवता और पितृ देवतागण संतुष्ट हुए। उनके प्रसाद से ७०७ [कं.] अपनी सौत को वंचित करके शैब्या के पति ने उसे पाया तो उसने विदर्भ को जन्म दिया; तनय को देखकर ज्यामख ने भी अपनी लायी हुई कन्या को लाकर तनय को दिया। ७०८

## अध्यायमु—२४

व. आ कन्यक यंदु विदर्भुनकु गुशुंडुनु ग्रुथुंडुनु रोमपादुंडुनु बुट्टिरि। आ रोमपादुनकु बभ्रुवु बभ्रुवुनकु विभुवु विभुवुनकु गृति गृतिकि नुशिकुंडु, नुशिकुनकुं जेदि चेदिकि जैद्यादुलु पुट्टिरि। क्रुथुनकु गुंति गुंतिकि दृष्टि, दृष्टिकि निर्वृति, निर्वृतिकि दशार्हुंडु, दशार्हुनकु व्योमुंडु व्योमुनकु जीमूतुंडु जीमूतुनकु विकृति, विकृतिकि भीमरथुंडु, भीमरथुनकु नवरथुंडु, नवरथुनकु दशरथुंडु, दशरथुनकु शकुनि, शकुनिकि गुंति गुंतिकि देवरातुंडु देवरातुनकु देवक्षत्रुंडु देवक्षत्रुनकु मथुवु, मथुवुनकु गुरुवशुंडु गुरुवशुनकु ननुवु ननुवुनकु बुरुहोत्रुंडतनिकि नंशुवतनिकि सात्वतुंडु, सात्वतुनकु भजमानुंडुनु भजियुनु दिव्युंडुनु वृष्णियु देवापृथुंडुनु, नंदकुंडुनु महाभोजुंडुनु नन नेड्गुरु वुट्टिरि। अंदु भजमानुनकु बथम भार्य यंदु निम्रोचि कंकण वृष्णुलु मुव्वुरुनु, रेंडव भार्ययंदु शतजित्तु सहस्र-जित्तु नयुतजित्तु नन मुव्वुरुनु बुट्टिरि। अंदु देवापृथुनिकि बभ्रुवु बीर लिरुवुर प्रभावंबुल बॆद्दलु श्लोकरूपंबुन बठियिंतुरु। अट्टि श्लोकार्थं-बॆट्टिदनिन ॥ 709 ॥

ते. विनुमु दूरंबुनंदेमि विनुचु नुंडु
मदिय चूतमु डग्गर नरुगु देर

---

## अध्याय—२४

[व.] उस कन्यका में विदर्भ के कुश, क्रथ [और] रोमपाद पैदा हुए। उस रोमपाद के बभ्रु, वभ्रु के विभु, विभु के कृति, कृति के उशिक, उशिक के चेदि [और] चेदि के चैद्यादि पैदा हुए। क्रथ के कुंति, कुंति के दृष्टि, दृष्टि के निर्वृति, निर्वृति के दशार्ह, दशार्ह के व्योम, व्योम के जीमूत, जीमूत के विकृति, विकृति के भीमरथ, भीमरथ के नवरथ, नवरथ के दशरथ, दशरथ के शकुनि, शकुनि के कुंति, कुंति के देवरात, देवरात के देवक्षत्र, देवक्षत्र के मथु, मथु के कुरुवंश, कुरुवंश के अनु, अनु के पुरुहोत्र, उसके अंशु, उसके सात्वत, सात्वत के भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवापृथ, नंदक [और] महाभोज नामक सात [पुत्र] पैदा हुए। उनमें भजमान के प्रथम पत्नी में निम्रोचि, ककण [और] वृष्ण [नामक] तीन, द्वितीय पत्नी में शतजित, सहस्रजित [और] अयुतजित नामक तीन पैदा हुए। उनमें देवापृथ के बभ्रु हुआ; इन दोनों के प्रभावों को वड़े लोग (विज्ञ) श्लोक-रूप में पढ़ते हैं (प्रशंसा करते हैं)। उस श्लोक का अर्थ कैसा है, पूछो तो (श्लोक का सारांश पूछो तो) ७०९ [ते.] सुनो, दूर पर जो सुनते हैं, उसी को

नरुललो वभ्रुकंटॆ नुन्नतुडु लेडु
योज देवापृथुनकॆन यॊरुडु गलडॆ ॥ 710 ॥

क. पदुनालुगु वेवुरु नरु-
वदि येवुरु नरुलु मुक्ति वडसिरि वभ्रुं-
डुवितुडु देवापृथुडुनु
वदपडि योगंबु दलिय वलिकिन कतनन् ॥ 711 ॥

व. महाभोजुंडति धार्मिकुंडु। वानि वंशंबु वारु भोजुलनि पलुकं बडिरि। वृष्णिकि सुमित्रुंडु युधाजित्तुनु जन्मिंचिरि। अंदु युधाजित्तुनकु शिनियु ननमित्रुंडुनु जनिंचिरि। अनमित्रुनिकि निम्नुंडु निम्नुनिकि सत्राजितुंडु प्रसेनुंडु नन निरुवुरु वुट्टिरि। मरियु ननमित्रुनिकि शिनि यनुवाडु वेरोकंडु गलंडु। अतनि पुत्रुंडु सत्यकुंडुनु नतनिकि युयुधानुंडनंबरगिन सात्यकियु ना सात्यकिकि जयंडुनु जयुनकु गुणियु ना गुणिकि युगंधरुंडुनु बुट्टिरि। मरियु ननमित्रनकु वृश्नियनु वेरोक कॊडुकु गलडु। वानिकि श्वफल्क चित्रकुलु गलिगिरि। अंदु श्वफल्कुनकु गांदिनि यंदक्रूरुंडुनु नसंगुंडुनु सारमेयुंडुनु मृदुकुंडुनु मृदुपच्छिवुंडुनु वर्मदृकुनु धृष्टवर्मुंडुनु क्षत्रोपेक्षुंडुनु नरिमर्दनुंडुनु शत्रुघ्नुंडुनु गंधमादनुंडुनु प्रतिबाहुवुनु ननु वारु पन्निद्दरु गॊडुकुलुनु सुचारुवनु कन्यकयु जनिंचिरि। वारियंदक्रूरुनिकि देवलुंडुनु ननुपदेवुंडुनु बुट्टिरि। मरियु जित्रुनकु वृथुंडुनु विडूरथुंडुनु मॊदलुगा

---

समीप आने पर देखते हैं; नरों में वभ्रु से उन्नत (बढ़कर) [कोई] नहीं है; देवापृथु गुरु है। क्या उसके समान और कोई है ? ७१० [कं.] वाद को देवपृथु के योग समझा देने के कारण उदित वभ्रु और चोदह हज़ार पैंसठ नरों ने मुक्ति पायी है। ७११ [व.] महाभोज अति धार्मिक था। उसके वंश वाले भोज कहलाये। वृष्टि के सुमित्र (और) युधाजित पैदा हुए। उनमें युधाजित के शिनि [और] अनमित्र पैदा हुए। अनमित्र के निम्न, निम्न के सत्राजित [और] प्रसेन नामक दो पैदा हुए। और अनमित्र के शिनि नामक और एक [पुत्र] था। उसके पुत्र सत्यक, उसके युयुधान नामक सात्यकि, उस सात्यकि के जय, जय के गुणि [और] उस गुणि के युगंधर पैदा हुए। फिर अमित्र के पृश्नि नामक और एक पुत्र था। उसके श्वफल्क [और] चित्रक हुए। उनमें श्वफल्क के कांदिनि से अक्रूर, असंग, सारमेय, मृदुक, मृदुपच्छिव, वर्मदृक, धृष्टवर्म, क्षत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गंधमादन [और] प्रतिबाहु नामक बारह पुत्र [तथा] सुचारु नामक कन्या पैदा हुई। उनमें अक्रूर के देवल [और] अनुपदेव पैदा हुए। फिर चत्र के पृथु [और] विडूरथ आदि कई वृष्णिवंशजात हुए। भजमान,

गलवारु पक्कंड्रु वृष्णिवंश जातुलरि। भजमानुंडु कुकुरुडु शुचि कंबळ बर्हिषुंडु नन नलुवुरंधकुनकु बुट्टिटरि। कुरुनिकि वृष्णि वृष्णिकि विलोम तनयुंडु विलोम तनयुनिकि गपातरोमुंडु गपोत रोमुनिकि दुंबुरु सखुंडैन यनुवुनु ननुवुनकु दुंदुभि दुंदुभिकि दविद्योतुंडु दविद्योतुनकु बुनर्वसुवु नतनिकि नाहुकुंडनु कुमारुंडु नाहुकियनु कन्ययु गलिगिरि। आ याहुकुनिकि देवकुं डुग्रसेनुंडु नन निरुवुरु जनिंचिरि। अंदु देवकुनिकि देवलुं डनुप देवुंडु सुदेवुंडु देववर्धनुंडन नलुगुरु गलिगिरि। वारलकु धृतदेवयु शांतिदेवयु नुतदेवयु श्रीदेवयु देवरक्षितयु सहदेवयु देवकियु नन दो बुट्टवु लेड्वुरु गलिगिरि ॥ 712 ॥

कं. असदृश ललिताकारल, गिसलय कर तलल देवकी मुख्यल ना
बिसरुह नयनल नंदर, वसुदेवुडु पेंड्लि याडे वसुधाधीशा ! ॥ 713 ॥

व. उग्रसेनुनकु गंसुंडुनु न्यग्रोधुंडुनु सुनामकुंडुनु गह्वयुंडुनु शंकुंडुनु सुभुवुनु राष्ट्रपालुंडुनु विसृष्टुंडुनु दिष्टिमतुंडनु ननु गलवारु दोम्मंड्रु कोंडुकुलुनु कंसयु गंसवतियु सुराभुवुनु राष्ट्रपालिकयु ननूकूतुलुं बुट्टिटरि। वारु वसुदेवानुज भार्यलैरि। भजमानुनिकि विडूरथुंडुनु विडूरथुनिकि शिनियु नतनिकि भोजुंडु भोजुनिकि हृदिकुंडुनुं गलिगिरि। अंदुहृदिकुनिकि देवमीढुंडु शतधनुवु कृतवर्मयु ननुकोंडुकुलु गलिगिरि। आ देवमीढुंडु शूरुंडु ननंबडु शूरुनिकि मारिषयनु भार्ययंदु वसुदेवुंडुनु देवभागुंडुनु देव

---

कुकुर, शुचि [और] कंबळबर्हिष नामक चार [पुत्र] अंधक के पैदा हुए। कुरु के वृष्णि, वृष्णि के विलोमतनय, विलोमतनय के कपोतरोम, कपोतरोम के तुंबुरुसखा अनु, अनु के दुंदुभि, दुंदुभि के दविद्योत, दविद्योत के पुनर्वसु, उसके आहुक नामक कुमार [और] आहुकि नामक कन्या पैदा हुई। उस आहुक के देवक [और] उग्रसेन नामक दो [पुत्र] हुए। उनमें देवक के देवल, अनुपदेव, सुदेव [और] देववर्धन नामक चार पैदा हुए। उनके घृतदेवा, शांतिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा [और] देवकी नामक सहजन्माएँ (बहिनें) सात हुईं। ७१२ [कं.] हे वसुधाधीश ! असदृश ललिताकारा, किसलय-करतला [और] बिसरुहनयना [होनेवाली] उन सब देवकी मुख्याओं से वसुदेव ने विवाह कर लिया था। ७१३ [व.] उग्रसेन के कंस, न्यग्रोध, सुनामक, कह्व, शंक, सुभु, राष्ट्रपाल, विसृष्ट [और] दिष्टिमान नामक नौ लड़के, कंसा, कसवती, सुराभु [और] राष्ट्रपालिका नामक लड़कियाँ पैदा हुईं। वे वसुदेव के अनुज की पत्नियाँ बनीं। भजमान के विडूरथ, विडूरथ के शिनि, उसके भोज [और] भोज के हृदिक पैदा हुए। उनमें हृदिक के देवमीढ, शतधनु [और] कृतवर्मा नामक पुत्र हुए। वह देवमीढ शूर कहलाया। शूर के मारिषा नामक

श्रमवुंडुनु नानकुंडुनु सृंजयुंडुनु श्यामकुंडुनु गंकुंडुनु ननीकुंडुनु वत्सकुंडुनु वृकुंडुनु ननुवारु पदुगुरु गॉड्कुलुनु वृथयु श्रुतदेवयु श्रुतकीर्तियु श्रुतश्रवसयु राजाधिदेवियु ननु कूतु लेवुरुनु बुट्टिटरि। अंदु ॥ 714 ॥

### वसुदेवुनि वंशक्रमानुवर्णनमु

उ. धी नयशालियैन वसुदेवुनि पुट्टिन वट मिटिपै
नानक दुंदुभुल् मॉरसॅ नच्युतुडीतनिकि दनूजुडै
मानुग बुट्टु नंचु गरिमंबुन देवतलुब्ब राज पं-
चानन! तन्निमित्तमुन नानक दुंदुभि यथ्यॅ वाडिलन् ॥ 715 ॥

कं. तन चॅलिकाडगु कुंतिकि, दनयुलु लेकुन्न जूचि तन तनय वृथं
दनयग निम्मन शूरुडु, दनयंदलि मैत्रि निच्चॅ धरणीनाथा! ॥ 716 ॥

व. अय्यिति कुंतिभोजुनिटं वॅरुगुचुंड नीक नाडु दुर्वासुं डरुगु दॅंचिन नम्महात्मुनकु गॉन्नि दिनंबुलु परिचर्यलु सेसि वेल्पुलं जेरंजीरु विद्यं बडसि या विद्य लावॅरुंग नीवक नाडेकांतंबुन वंलुंगु रेनि नाकर्षिचिन ना देवुंडु वच्चिनं जूचि वॅरुगु पडि यिट्लनियॅ ॥ 717 ॥

कं. मंत्र परीक्षार्थं बमि, -मंत्रिचिति गानि देव मदन क्रीडा
तंत्रंबु गोरि चीरनु, मंत्रिचिन तप्पु सैचि मरलु दिनेशा! ॥ 718 ॥

---

भार्या से वसुदेव, देवभाग, देवश्रव, आनक, सृंजय, श्यामक, कंक, अनीक, वत्सक [और] वृक नामक दस बेटे [तथा] पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतिकीर्ती, श्रुतश्रवसा [और] राजाधिदेवी नामक पाँच बेटियाँ पैदा हुईं। उनमें ७१४

### वसुदेव का वंशक्रमानुवर्णन

[उ.] हे राज-पंचानन! धी-नयशाली होनेवाले वसुदेव के पैदा होते ही आकाश पर आनकदुंदुभी बज उठी। 'अच्युत इसका तनूज होकर पैदा होगा, यों कहते हुए देवताओं के अधिक आनंदित होने पर, उस कारण वह इला [भूलोक] पर आनकदुंदुभि बन गया। ७१५ [कं.] हे धरणीनाथ! अपने मित्र कुंति के तनय न होते देखकर, अपनी तनया पृथा को तनया के रूप में माँगने पर शूर ने उस पर रहनेवाली मैत्री (मित्रता) के कारण दे दिया। ७१६ [व.] उस स्त्री के कुंतिभोज के घर पलते समय एक दिन दुर्वासा के आने पर, उस महात्मा की कुछ दिन परिचर्याएँ करके, देवताओं को अपने पास बुला लेने की विद्या पाकर, उस विद्या की शक्ति को जानने के लिए एक दिन एकांत में सूरज को आकर्षित किया तो उस देव के आने पर [उसे] देखकर डरकर यों बोली। ७१७ [कं.] "हे देव! मंत्र-

व. अनिन नय्युविदकु बद्मिनी वल्लभुंडिट्लनियॆ ॥ 719 ॥

म. तॆरवा ! नी पलुकट्लयौ विनुमुले देवोत्तमाह्वानमुल्
मॊरगं बोलुनॆ वेल्पुलं बडयुटल् मोघंबुले नीकु नी
तरि गर्भंबगु पुत्रुडं गलुगु नी तारुण्यमुं बूज्यमौ
वॆरवं गार्यमु लेदु सिग्गु दगुने व्रीडा विनम्रानना ! ॥ 720 ॥

चं. अनि तग निय्यकॊल्पि ललितांगिकि गर्भमु सेसि मिटिकि
जनियॆ दिनेश्वरुंडपुडु सक्कनि रॆंडव सूर्युडो यनं
दनरॆडु पुत्रु गांचि कृप दप्पि जगज्जनवाद भीतयै
तनयुनि नीट बोविडिचि तानरिगॆं बृथ दंड्रि यिटिकिन् ॥ 721 ॥

व. अय्युविदनु नी प्रपितामहुंडैन पांडुराजु विवाहंबय्यॆनु। अय्यंगनकु बांडु राजु वलन धर्मज भीमार्जुनुलु वुट्टिरि। अंत नम्मगुव चॆल्लॆलगु श्रुतदेवयनु दानि गारूषकुंडैन वृद्ध शर्म पॆंड्लि याडॆनु। अय्यिद्दरकु मुनि शापंबुन दंतवक्त्रुंडनु दानवुंडु, जन्मिचॆ। दानि तोडंबुट्टुवगु श्रुतकीर्तिनि गेकय राजैन दृष्टकेतुंडु पॆंड्लि याडॆनु। आ दंपतुलकु ब्रतर्थनादुलेवुरु वुट्टिरि। दानि भगिनियैन राजाधिदेविनि जयत्सेनुंडु परिणयंबय्यॆनु। आ मिथुनंबुनकु विंदानुविंदुलु संभविंचिरि। चेदिदेशाधिपतियैन दमघोषुंडु

---

परीक्षार्थ अभिमंत्रित किया; लेकिन मदनक्रीड़ा-तंत्र की इच्छा से नहीं बुलाया; हे दिनेश ! मंत्रित करने की भूल की है। लौट जाओ।" ७१८ [व.] ऐसा कहने पर उस उविदा (कन्या) से पद्मिनीवल्लभ ने इस प्रकार कहा। ७१९ [म.] "ओ स्त्री ! तुम जैसा बोली, वैसा होगा। क्या देवोत्तमाह्वान ग़लत होते हैं ? देवताओं को पाना क्या वंचन का काम है ? क्या वे मोघ हैं ? अब तुम्हारा गर्भ होगा। पुत्र होगा। तुम्हारा तारुण्य पूजनीय होगा। डरने का कार्य (कारण) नहीं है। हे व्रीड़ा विनम्रानने ! क्या लज्जा [पाना] युक्त है ?" ७२० [चं.] तब दिनेश्वर इस प्रकार उस ललितांगी को समझाकर, गर्भ धारण कराकर, आकाश को चला गया। मानो दूसरा सूर्य हो, ऐसे सुंदर और शोभायमान पुत्र को देखकर कृपा न करके, जगज्जनवादभीता बनकर तनय को पानी में जाने देकर पृथा स्वयं पिता के घर चली गई। ७२१ [व.] उस उविदा (स्त्री) से तुम्हारे प्रपितामह पांडु राजा ने विवाह किया। उस अंगना के पांडुराजा से धर्मज, भीम [और] अर्जुन पैदा हुए। बाद को उस स्त्री की छोटी बहिन श्रुतदेवा नामक युवती से कारूपक वृद्धशर्मा ने विवाह किया। उन दोनों के मुनि शाप से दंतवक्र नामक दानव पैदा हुआ। उसकी भगिनी श्रुतकीर्ती से केकयराजा दृष्टकेत ने विवाह किया। उस दंपति के प्रतर्थन आदि पाँच पैदा हुए। उसकी भगिनी राजाधिदेवी से जयत्सेन ने परिणय किया।

श्रुतश्रवसनु बरिग्रहिंचें। वारलकु शिशुपालुंडुदयिंचें। वसुदेवुनि तम्मुडैन देवभागुनिकि गंसयंदु जित्रकेतु बृहद्बलु लिरुवुरु जनिंचिरि। वानि भ्रात यगु देवश्रवुंडनुवानिकि गंसवतियंदु वीरुडुनु निषुमंतुंडुनु नुप्पतिल्लिरि। वानि सोदरुंडैन कंकुनिकि गंकयनु दानिकि बकुंडु सत्यजित्तु गुरुजित्त ननुवारुद्भविल्लिरि। वानि सहजुंडैन सृंजयुनिकि राष्ट्रपालियंदु वृष दुर्मरणादुलाविर्भविंचिरि। वानि यनुजातुंडैयिन श्यामकुनकु सुरभूमियंदु हरिकेश हिरण्याक्षुलु प्रभविंचिरि। वानि तम्मुंडैन वत्सुंडु मिश्र केशियनु नप्सरसयंदु वृकादि सुतुलं गनियें। वानि यनुजुंडैन वृकुंडु दूर्वाक्षियंदु दक्ष पुष्कर साळ्वादुल नुत्पादिचें। वानि जघन्यजुंडयिन यनीकुंडु सुदामनियनु दानियंदु सुमित्रानीक बाणादुलयिन गोडुकुलं बडसें। वानि यनुजुंडैन यानकुंडु गणिक यंदु ऋतुधाम जयुलं गांचें। वसुदेवुनि वलन रोहिणियंदु वलुंडुनु गदुंडुनु सारणुंडुनु दुर्मदुंडुनु विपुलुंडुनु ध्रुवुंडुनु गृतादुलुनु वौरवियंदु सुभद्रुंडुनु भद्रवाहुंडुनु दुर्मदुंडुनु भद्रुंडुनु भूतादुलुं गूड बन्निद्दरुनु मदिरयंदु नंदोपनंद कृतक श्रुत शूरादुलुनु गौसल्य यंदु गेशियु रोचनयंदु हस्त हेमांगादुलुनु निळ यंदु मुख्युलयिन युरु वल्कलादुलुनु धृतदेवयंदु द्रिपृष्ठुंडुनु शांतिदेवयंदु ब्रश्रम प्रश्रितादुलुनु नुपदेवयंदु गल्प वृष्ट्यादुलु पदुंडुनु श्रीदेवयंदु वसु हंस सुधन्वादु लारुगुरुनु

---

उस मिथुन के विदानुविद संभव हुए। चेदि देशाधिपति दमघोष ने श्रुतश्रवसा को ग्रहण किया। उनसे शिशुपाल का उदय हुआ। वसुदेव के छोटे भाई देवभाग के कंसा से चित्रकेतु [और] बृहद्बल [नामक] दो का जन्म हुआ। उसके भ्राता देवश्रव के कसवती से वीर [और] निषुमान पैदा हुए। उसके सहोदर कक के कंका से वक, सत्यजित् [और] कुरुजित नामक [पुत्रों] का उद्भव हुआ। उसके सहज (भाई) सृंजय के राष्ट्रपाली से वृष, दुर्मरण आदि आविर्भूत हुए। उसके अनुजात श्यामक के सुरभूमि से हरिकेश [और] हिरण्याक्ष का प्रभव (जन्म) हुआ। उसके अनुज वत्स ने मिश्रकेशि नामक अप्सरा में वृक आदि सुतों को पैदा किया। उसके अनुज वृक ने दूर्वाक्षी में दक्ष, पुष्कर, साल्व आदि का उत्पादन किया। उसके जघन्यज अनीक ने सुदामनी नामक स्त्री से सुमित्रानीक बाणादि पुत्रों को पाया। उसके अनुज यानक ने कर्णिका से ऋतु, धाम, जय को प्राप्त किया। वसुदेव से रोहिणी में बल, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव [और] कृतादि, पौरवी में सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र [और] भूतादि के साथ बारह, मदिरा में नंदोपनंद, कृतक, श्रुत [और] शूर आदि, कौसल्या में केशि, रोचना में हस्त-हेमांग आदि, निला में यदु मुख्य उरु वल्कलादि, धृतदेवा में त्रिपृष्ठ, शांतिदेवा में प्रश्रम-प्रश्रितादि, उपदेवा में कल्पवृष्ट्यादि

देवरक्षितयंदु गदादुलु दॊम्मंड्रुनु सहदेवयंदु बुरूढ श्रुत मुख्युलॆनमंड्रुनु देवकियंदु गीर्तिमंतुंडुनु सुषेणुंडुनु भद्रसेनुंडुनु ऋजुवुनु समदनुंडुनु भद्रुंडुनु संकर्षणुंडुनु ननु वारेड्वुरुनु बुट्टिटरि। मरियुनु ॥ 722 ॥

कं. दुष्ट जन निग्रहंबुनु, शिष्ट जनानुग्रहंबु सेयुट कॊडकै
यष्टम गर्भमुन गुणो, त्कृष्टुडु देवकिकि विष्णुदेवुडु वुट्टॆन् ॥ 723 ॥

आ. विष्णुडुदितुडैन वॆनुक ना देवकि
भद्रमूर्तियगु सुभद्र गनियॆ
ना गुणाढ्य मुत्तवगु नीकु नर्जुनु
दयित यगुट जेसि धरणिनाथ ! ॥ 724 ॥

कं. ऎप्पुडु धर्मक्षयमगु, नॆप्पुडु पापंबु वॊडमु नी लोकमुलो
नप्पुडु विश्वेशुडु हरि, दप्पक विभुडय्यु दन्नु दा सृजियिंचुन् ॥ 725 ॥

कं. तन माय लेक परुनकु
घनुनकु नीश्वरुनकात्म कर्तकु हरिकिन्
जनमुलकु गर्ममुलकुनु
मनुजेश्वर ! कारणंबु मरियुनु गलदे ॥ 726 ॥

कं. तलपग नॆव्वनि माया, विलसनमुलु जनन वृद्धि विलयंबुलकुं
गलिमि कनुग्रह मोक्षं, बुलकुनु जीवुनिकि मूलमुलु ना नॆगडुन् ॥ 727 ॥

---

दस, श्रीदेवा में वसुहंस, सुधन्व आदि छः, देवरक्षिता में गद आदि नौ, सहदेवा में पुरूढ श्रुतमुख्य आठ, देवकी में कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, समदन, भद्र और संकर्षण नामक सात पैदा हुए। और ७२२ [कं.] दुष्टजननिग्रह [और] शिष्टजनानुग्रह करने के लिए अष्टम गर्भ में गुणोत्कृष्ट विष्णुदेव देवकी को पैदा हुआ । ७२३ [आ.] हे धरणीनाथ ! विष्णु के उदित होने के बाद उस देवकी ने भद्रमूर्ति होनेवाली सुभद्रा को पैदा किया। वह अर्जुन की दयिता (पत्नी) होने के कारण वह गुणाढ्या तुम्हारी दादी लगेगी। ७२४ [कं.] जब धर्म का क्षय होता है [और] जब इस लोक में पाप का प्रकोप होता है, तब विश्वेश हरि विभु होकर भी, अवश्य अपने आपकी सृष्टि कर लेता है। ७२५ [कं.] हे मनुजेश्वर ! अपनी माया के अतिरिक्त पर को, घन (श्रेष्ठ) को, ईश्वर को, आत्मकर्ता को, हरि को, जनन का [और] कर्म का [कहीं] और कोई कारण है ? ७२६ [कं.] जिसकी माया के विलसन सोचने पर जनन, वृद्धि [और] विलयों के लिए ऐश्वर्य, अनुग्रह —मोक्षों के और जीव के मूल कहलाते हैं; ७२७ [सी.] उस सर्वेश के सोचने पर जन्म आदि परतंत्र भाव कहाँ हैं ? राजलांछनों से राक्षसवल्लभ अक्षौहिणीश. बनकर, अवनि

सी. अट्टि सर्वेशुनि करयंग जन्मादि परतंत्र भाव मॅप्पाटि गलदु
राज लांछनमुल राक्षसवल्लभु लक्षौहिणीशुलै यवनि बुट्टि
जनुलनु बाधिप शासिचु कौऱकुनै संकर्षणुनि तोड जनन मंदि
यमरुल मनमुलकैन लॅक्किपंग राकुंडुनट्टि कर्ममुल जेसि

ते. कलियुगंबुन जन्मिप गलुग नरुल
दुःख जालंबुलन्निटि दॊलग नडचि
नेल व्रेगॆल्ल वारिचि निखिल दिशल
विमल कीर्तुलु वॆदचल्लि वॆलसॆ शौरि ॥ 728 ॥

सी. जनकुनि गृहमुन जन्मिचि मंदलो बॆरिगि शत्रुलनॆल्ल बोच मडचि
पॆक्कंडु भार्यल बॆड्लियै सुतशतंबुल गांचि तनु नादि पुरुषु गूर्चि
क्रतुवुलु पॆक्कुलु गाविचि पांडव कौरवुलकु नंत गलहमयिन
नंदऱ समयिचि यर्जुनु गॆलिपिचि युद्धवुनकु दत्त्व मॊप्प जॆप्पि

ते. मगध पांडव सृंजय मधु दशार्ह
भोज वृष्ण्यंधकादि संपूज्युडगुचु
नुर्वि भरमु निवारिंचि युंड नॊल्ल-
का महा मूर्ति निजमूर्ति यंदु बॊदॆ ॥ 729 ॥

कं. मंगळ हरि कीर्ति महा, गंगामृत-मिचुकैन गर्णाजलुलन्
संगतमु सेसि द्राव दॊ, लंगुनु गर्मंबुलाविलंबगुचु नृपा ! ॥ 730 ॥

---

पर पैदा होकर, जनों को बाधित करने के लिए [और] शासन करने के लिए संकर्षण के साथ जन्म लेकर, अमरों के मनों में भी गणना करने न आनेवाले कर्म करके, [ते.] कलियुग में जन्म ले सकनेवाले नरो के सब दुःख-जालों को हटाकर, पृथ्वी के सारे ताप को दूर करके, शौरि निखिल दिशाओं में विमल कीर्तियों को बिखेर कर प्रकाशमान हुआ। ७२८ [सी.] जनक के गृह में जन्म लेकर, [पशुओं की] भीड़ में बड़ा होकर, सभी शत्रुओं के मद को दबाकर, कई पत्नियों से विवाह करके, सुत शतों को पाकर, वह स्वयं आदिपुरुष के प्रति कई क्रतु करके, पांडवों और कौरवों को उतना बड़ा कलह होने पर सबको मार डालकर, अर्जुन को विजयी बनाकर उद्धव को तत्त्व पढ़ाकर, [ते.] मगध, पांडव, सृंजय, मधु, दशार्हभोज, वृष्टि [और] अंधक आदि से संपूज्य होते हुए उर्विभार का निवारण करके रहना न चाहकर वह महान मूर्ति निजमूर्ति में लीन हो गया। ७२९ [कं.] हे नृप ! मंगल-हरि-कीर्ति रूपी महा-गंगामृत को, थोड़ा ही क्यों न हो, कर्णांजलियों से संगत करके पीने से, कलुषित कर्म हट जायेंगे ७३० [कं.] हे अधिप ! वनजाक्ष की मंदस्मित, घन कुंडल दीप्ति-गंडकलितानन को देखते हुए,

कं. वनजाक्षुनि मंदस्मित
घन कुंडल दीप्ति गंड कलिताननमुन्
वनितलु बुरुषुलु जूचुचु
ननिमिष भावंबु लेमि कलयुदुरधिपा ! ॥ 731 ॥

चं. नगु मोगमुन् सुमध्यमुनु नल्लनि देहमु लच्चिकाट प-
ट्गु नुरमुन् महाभुजमु लंचित कुंडल कर्णमुल् मदे-
भ गतियु नील वेणियु गृपारसदृष्टियु गल्गु वॆन्नु डि-
म्मुग बोडसूपु गात गनु मूसिन यप्पुडु विच्चु नप्पुडुन् ॥ 732 ॥

व. अनि चॆप्पि ॥ 733 ॥

कं. जनकसुताहृच्चोरा ! जनकवचोलब्धविपिनशैलविहारा !
जनकामितमंदारा ! जनकादि महेश्वरातिशय संचारा ! ॥ 734 ॥

मा. जगदवनविहारी ! शत्रुलोकप्रहारी !
सुगुणवनविहारी ! सुंदरीमानहारी !
विगतकलुषपोषी ! वीरविद्याभिलाषी !
स्वगुरुहृदयतोषी ! सर्वदा सत्यभाषी ! ॥ 735 ॥

ग. इति श्रीपरमेश्वर करुणा कलित कविता विचित्र केसन मंत्रिपुत्र सहज पांडित्य पोतनामात्य प्रणीतंबैन श्रीमहाभागवतंबनु महापुराणंबु नंदु सूर्यवंशारंभंबुनु ववस्वत मनुवु जन्मंबुनु हैमचंद्र कथनंबुनु, सुद्युम्नादि मनु सूनुल चरित्रंबुनु, मरुत्त तृणबिंदु शर्याति ककुद्मि सगर नाभाग

---

अनिमिषभाव के न रहने से वनिताएँ [और] पुरुष व्याकुल होते हैं। ७३१ [चं.] हँसमुख, सुमध्य, कृष्ण देह, लक्ष्मी के लिए क्रीड़ास्थल होनेवाला उर, महाभुज, अंचित कुंडल [युक्त] कर्ण, मदेभगति, नील वेणी और कृपारसदृष्टि रखनेवाला विष्णु, [मैं] जब कभी आँख बंद करता और खोलता, अच्छी तरह दिखाई पड़े। ७३२ [व.] यों कहकर ७३३ [कं.] जनकसुताहृच्चोर ! जनकवचोलब्धविपिनशैलविहारी ! जनकामित-मंदार ! जनकादि महेश्वराति-शय-संचारी ! ७३४ [म.] जगदवन-विहारी ! शत्रुलोकप्रहारी ! सुगुणवनविहारी ! सुंदरी-मानहारी ! विगतकलुषपोषी ! वीरविद्याभिलाषी ! स्वगुरुहृदयतोषी ! सर्वदा सत्य-भाषी ! [तुम्हें नमस्कार] ७३५ [गद्य] यह श्री-परमेश्वर-करुणा-कलित-कविता-विचित्र केसन मंत्रि-पुत्र सहज-पांडित्य पोतना-मात्य-प्रणीत श्रीमहाभागवत नामक महापुराण में सूर्यवंशारंभ, वैवस्वत मनु-जन्म, हैमचंद्र-कथन, सुद्युम्नादि मनु सूनों (पुत्रों) का चरित्र (कथा), मरुत्त, तृणबिंदु, शर्याति, ककुद्मि, सगर, नाभाग प्रमुखों के चरित्र, अंबरीष पर प्रयुक्त दुर्वासा की कृत्या का निरर्थक होना, इक्ष्वाकु, विकुक्षि, मांधातृ,

प्रमुखुल चरित्रंबुलुनु, नंबरीषुनि यंदु नयोगिपवडिन दुर्वासुनि कृत्य निरर्थक यगुटयु निक्ष्वाकु विकुक्षि मांधातृ पुरुकुत्स हरिश्चंद्र सगर भगीरथ प्रमुखुल चरित्रंबुलुनु भागीरथीप्रवाह वर्णनंबुनु, गल्मावपाद खट्वांग प्रमुखुल वृत्तांतवुनु, श्रीरामचंद्रकथनंवुनु, ददीयवंशपरंपरा-गणनंबुनु, निमि कथयुनु, जंद्रवंशारंभंवुनु, वुध पुरूरवुल कथयुन, जमदग्नि परशुरामुल वृत्तांतंबुनु, विश्वामित्र नहुष ययाति पूरु दु भरत रंतिदेव पांचाल वृहद्रथ शंतनु भीष्म पांडव कौरव प्रमुखुल वृ बुनु ऋष्य श्रृंगव्रतभंगंबुनु, द्रुह्यानुतुर्वसुल वंशंबुनु, यदुकार्तवीर्य विंदु जामदग्न्यावुल चरित्रंबुनु, श्रीकृष्णावतारकथा सूचनंबुनु ननु कथलु गल नवम स्कंधमु संपूर्णमु ॥ 736 ॥

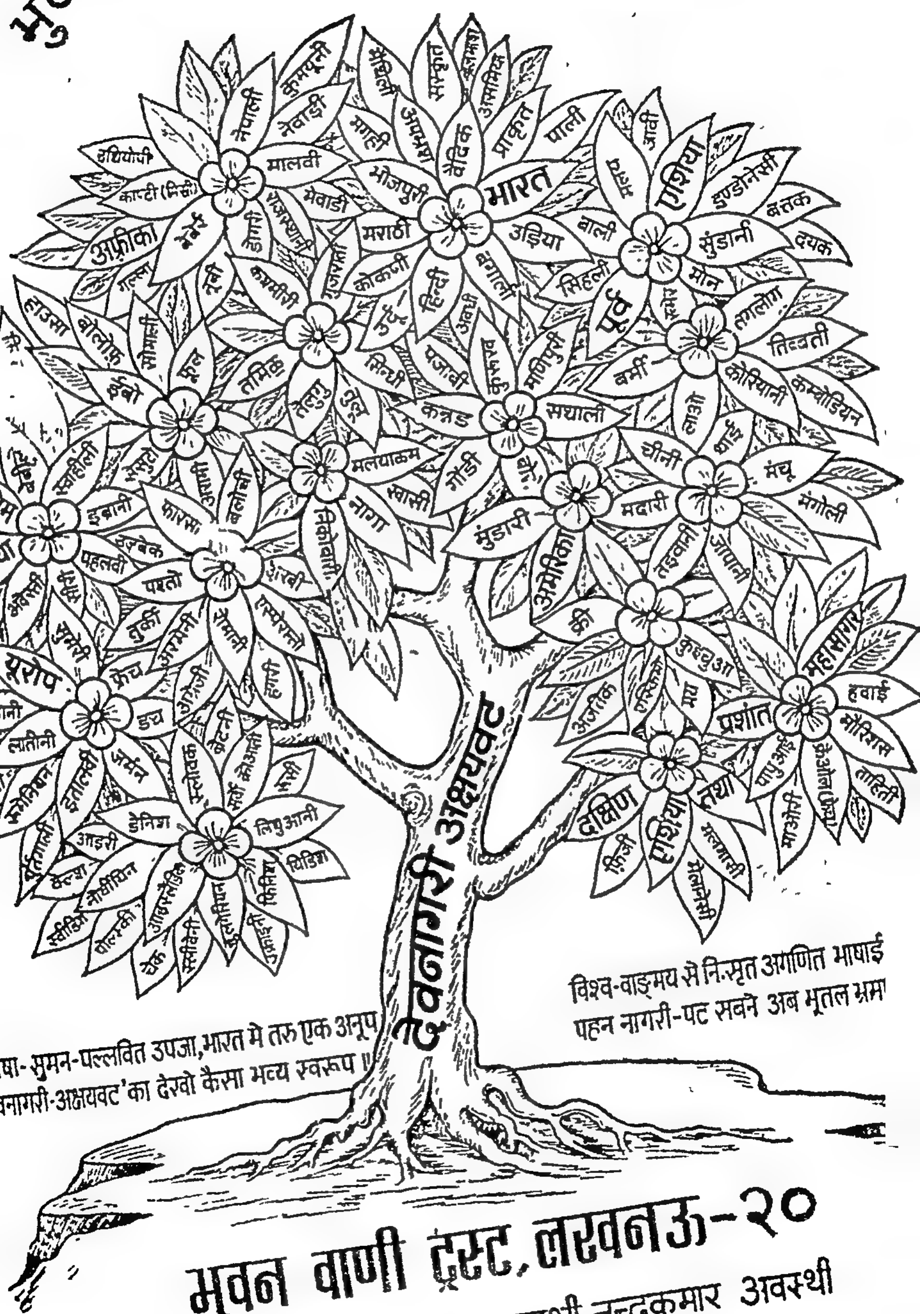
॥ पञ्चम से नवम स्कन्ध समाप्त ॥

पुरुकुत्स, हरिश्चन्द्र, सगर, भगीरथ प्रमुखों के चरित्र, भागीरथी-प्रवाह-वर्णन, कल्माषपाद, खट्वांग प्रमुखों का वृत्तांत, श्रीरामचन्द्र-कथन, तदीयवंश-परंपरा-गणन, निमि-कथा, चंद्रवशारंभ, वुध [और] पुरूरवों की कथा, जमदग्नि [और] परशुराम का वृत्तांत, विश्वामित्र, नहुष, ययाति, पुरु, दुष्यंत, भरत, रंतिदेव, पांचाल, बृहद्रथ, शतनु, भीष्म, पांडव, कौरव प्रमुखों का वृत्तांत, ऋष्यश्रृंग-व्रत-भंग, द्रुह्यानुतुर्वसों का वंश, यदु, कार्तवीर्य, शशिविंदु, जामदग्न्यादियों का चरित्र, श्रीकृष्णावतार-कथा-सूचना नामक कथायुक्त नवम स्कंध संपूर्ण है। ७३६

॥ पञ्चम से नवम स्कन्ध समाप्त ॥

॥ ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ॥

# भुवनग्रन्थ-गाथा भुवन सन्त-वाणी




भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-२०

*प्रतिष्ठाता – पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी*



‘प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥’

आज एकजुट एकमञ्च पर जगे विश्व के ग्रंथ अनन्त।
सुख-समृद्धि-सत्कर्म जगाने को जम गये भारती सन्त ॥

# विविध भाषाई सानुवाद लिप्यन्तरण ग्रन्थ

## मूलपाठ नागरी लिपि में, हिन्दी अनुवाद सहित :—

| | | | पृष्ठसंख्या | मूल्य |
|---|---|---|---|---|
| १ | तेलुगु | रंगनाथ रामायण (१३वीं शती) | १३३५ | १२०·०० |
| २ | " | मोल्ल रामायण (१४वीं शती) | ३०८ | ४०·०० |
| ३ | " | पोतन्नकृत महाभागवतमु (१३वीं शती) प्रथमखण्ड (स्कंध–१-४) | ८५६ | ८०·०० |
| ४ | " | " " द्वितीयख० (स्कंध–५-६) | ८२८ | ८०·०० |
| ५ | " | " " तृतीयख० (स्कंध–१०-१२) | ६२० | १००·०० |
| ६ | कन्नड | रामचन्द्र चरित पुराणम् (अभिनव पम्प-विरचित) जैन सम्प्रदाय (११वीं शती) | ६६० | ६०·०० |
| ७ | " | तोरवे रामायण नरहरि कुमार वाल्मीकिकृत (१६वीं शती) | १४०० | १२०·०० |
| ८ | " | वत्तलेश्वर (कौशिक) रामायण (कार्याधीन) | | |
| ९ | " | महाभारत कुमार व्यास कृत " | | |
| १० | मलयाळम | महाभारत (एऴुत्तच्छन् कृत) १५वीं शती | १२१६ | १२०·०० |
| ११ | " | अध्यात्म रामायण, उत्तर रामायण (एऴुत्तच्छन् कृत) १५वीं शती | ७५२ | ७०·०० |
| १२ | " | तुळ्ळल् कथकळि लोकनृत्य-काव्य का नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी अनुवाद प्रथम खण्ड | ६७२ | १२०·०० |
| १३ | " | " " " द्वितीय खण्ड | | १२०·०० |
| १४ | बंगला | कृत्तिवास रामायण आदि, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुंदरकांड (१५वीं शती) सानुवाद नागरी लिप्य० | ६२४ | ५०·०० |
| १५ | " | " " लंकाकांड " | ४८८ | ४०·०० |
| १६ | " | " " उत्तरकांड " | ३२४ | ३०·०० |
| १७ | कश्मीरी | रामावतार चरित (प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत) १८वीं शती " | ४८६ | ५०·०० |
| १८ | " | लल्वाख १४वीं शती (आदि कवयित्री लल्वाख के वाक्य) नागरी लिप्य० हिन्दी गद्य, संस्कृत पद्यानुवाद | १२० | २०·०० |

| | | | पृष्ठ | मूल्य |
|---|---|---|---|---|
| १९ | तमिळ | कम्ब रामायण (९वीं शती) बालकांड लेखन तथा उच्चारण दोनों पद्धतियों पर तमिळ पाठ का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद | ६५२ | ६०·०० |
| २० | " | " " अयोध्या-अरण्यकांड ( " ) | १०२४ | १००·०० |
| २१ | " | " " किष्किंधा-सुन्दरकां० ( " ) | १०१६ | १००·०० |
| २२ | " | " " युद्धकांड-पूर्वार्ध ( " ) | १०१६ | १००·०० |
| २३ | " | " " युद्धकांड-उत्तरार्ध ( " ) | ८४० | ८०·०० |
| २४ | " | तिरुक्कुरळ् तिरुवळ्ळुवर (२०००वर्ष प्राचीन) लिप्य० एवं गद्य-पद्यानुवाद | ३५२ | ४०·०० |
| २५ | " | सुब्रह्मण्य भारती (भारदियार कविदैहळ्) तमिळनाडु के राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती के संपूर्ण पद्य-साहित्य का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी गद्य-पद्य अनुवाद | ११०८ | १२०·०० |
| २६ | फारसी | सिर्रे अक्बर (शाहजादः दाराशिकोह कृत उपनिषद्-भाष्य प्रथम खण्ड) ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर | २८० | ४०·०० |
| २७ | " | सिर्रे अक्बर (५० उपनिषदों की दाराशिकोह कृत व्याख्या हिन्दी अनुवाद) खण्ड–२,३ (कार्याधीन) | | |
| २८ | " | मुल्ला मसीही रामायण (जहांगीर-काल) (विचाराधीन) | | |
| २९ | " | मसनवी मानवी मौलाना रूम छः जिल्दों में नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद (विचाराधीन) | | |
| ३० | उर्दू | गुज़श्तः लखनऊ (मौ० अब्दुल हलीम शरर कृत) नवाबी काल का अवध का साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक इतिहास | ३१६ | ३५·०० |
| ३१ | " | शरीफ़ज़ादः (डॉ० रुस्वा कृत) | १३६ | १५·०० |
| ३२ | " | मर्सिया मीर अनीस (कार्याधीन) | | |
| ३३ | उर्दू-नागरी | विश्वनागरी उर्दू-हिन्दी कोश (परिवर्द्धित नागरी लिपि में छप रहा है) | | |

| क्र. | भाषा | ग्रन्थ | | पृष्ठ | मूल्य |
|---|---|---|---|---|---|
| ३४ | गुरमुखी | श्री गुरूग्रन्थ साहिब | गुरुवाणी मूलपाठ नागरी लिपि में तथा सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद (पहली सैंची) | ९६८ | ५०.०० |
| ३५ | ” | ” ” | (दूसरी सैंची) | ९९२ | ५०.०० |
| ३६ | ” | ” ” | (तीसरी सैंची) | ९९४ | ५०.०० |
| ३७ | ” | ” ” | (चौथी सैंची) | ८०० | ५०.०० |
| ३८ | ” | श्री दशम गुरूग्रन्थ साहिब | गुरुगोविन्दसिंह प्रणीत नागरी लिप्य० हिन्दी अनुवाद सहित (प्रथम सैंची) | ८२० | ५०.०० |
| ३९ | ” | ” ” ” | ” (द्वितीय सैंची) | ७०४ | ५०.०० |
| ४० | ” | ” ” ” | ” (तृतीय सैंची) | ७३६ | ५०.०० |
| ४१ | ” | ” ” ” | ” (चतुर्थ सैंची) | ७५२ | ५०.०० |
| ४२ | ” | श्रीजपुजी सुखमनी साहिब—मूलपाठ एवं | ख्वाजः दिलमुहम्मद कृत अनुवाद (नागरी में) | १६४ | १५.०० |
| ४३ | ” | श्री सुखमनी साहिब | (मूल गुटका) पाठ के लिए | २४० | ४.०० |
| ४४ | ” | भाई गुरुदास जी | के वारां ज्ञान रतनावली नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी अनुवाद | ७०४ | ६०.०० |
| ४५ | ” | ” ” | के कवित्त-सवैये ” (छप रही है) | | |
| ४६ | मराठी | श्रीराम-विजय (श्रीधर कृत) १७वीं शती | राम-कथा | १२२८ | १२०.०० |
| ४७ | ” | श्रीहरि-विजय ( ” ) १७वीं शती | कृष्ण-कथा | १००४ | १००.०० |
| ४८ | ” | भावार्थ रामायण—सन्त एकनाथ कृत (१६वीं शती) | प्रथम खण्ड (छप रही है) | | |
| ४९ | ” | ” ” | द्वितीय खण्ड ” | | |

| | | | पृष्ठ | मूल्य |
|---|---|---|---|---|
| ५० | नेपाली | भानुभक्त रामायण मूल एवं हिन्दी अनुवाद | ३४४ | ३०·०० |
| ५१ | राजस्थानी | रुकमणी मंगळ (पदम भगत विरचित) १६वीं शती | २५२ | ३०·०० |
| ५२ | सिन्धी | सिन्ध की त्रिवेणी (सामी, शेख, सचल की वाणी) | ४१५ | ३०·०० |
| ५३ | गुजराती | गिरधर रामायण (१९वीं शती) | १४६० | १२०·०० |
| ५४ | " | प्रेमानन्द रसामृत (ओखाहरण, नल-दमयंती, सुदामा-चरित आख्यान) | ५०४ | ५०·०० |
| ५५ | असमिया | माधव कंदली रामायण (१४वीं शती) | ९४३ | १००·०० |
| ५६ | " | श्री शंकरदेव कीर्त्तन घोषा | ३४८ | ५०·०० |
| ५७ | ओड़िआ | रामचरितमानस (मूलपाठ ओड़िआ लिपि में तथा ओड़िआ गद्य-पद्य अनुवाद) | १४६४ | ८०·०० |
| ५८ | " | वैदेहीश विळास (उपेन्द्रभंज कृत) राम पर अद्वितीय अलंकारिक ग्रन्थ १८वीं शती | १००० | १२०·०० |
| ५९ | " | बिलंका रामायण सिद्धेश्वर परिडा (सारळादास) कृत १७वीं शती | ६५२ | ७०·०० |
| ६० | " | विचित्र रामायण | ६८८ | ७०·०० |
| ६१ | " | जगमोहन (दण्डी) रामायण बलरामदास कृत (१६वीं शती) (कार्याधीन) | | |
| ६२ | " | महाभारत सारळादास कृत ,, | | |
| ६३ | मैथिली | चन्द्रा रामायण हिन्दी अनु० सहित मूलपाठ | ६०० | ७०·०० |

| | | | | पृष्ठ | मूल्य |
|---|---|---|---|---|---|
| ६४ | संस्कृत | मानस-भारती | (तुलसी रामचरितमानस मूलपाठ तथा पंक्ति-अनुपंक्ति संस्कृत पद्यानुवाद) | ७४४ | ५०·०० |
| ६५ | ,, | अद्भुत रामायण | सहस्रकण्ठ रावण का जानकी द्वारा वध हिन्दी अनुवाद सहित | २४४ | ३०·०० |
| ६६ | ,, | वाल्मीकि रामायण | मूल तथा हिन्दी पद्यानुवाद माहात्म्य, बाल०, अयोध्याकाण्ड | १००८ | १२०·०० |
| ६७ | ,, | ,, | अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दरकाण्ड (छप रही है) | | |
| ६८ | ,, | ,, | लंका, उत्तरकाण्ड ,, | | |
| ६९ | ,, | श्रीमद्भगवद्गीता | मूल पाठ एवं हिन्दी गद्यानुवाद तथा ख्वाजा दिलमुहम्मद, लाहौर (गोल्ड मेडिलिस्ट) का उर्दू पद्यानुवाद नागरी लिपि में, (कार्याधीन) | | |
| ७० | ,, | महाभारत | (आदिपर्व) मूल तथा हिन्दी पद्यानुवाद (छप रहा है) | | |
| ७१ | वैदिक | ऋग्वेद | मूल मंत्र, अन्वय, पदच्छेद, हिन्दी शब्दानुवाद, पद्यानुवाद, गद्य टिप्पणी, व्याख्या आदि (छप रहा है) | | |
| ७२ | ,, | यजुर्वेद | ,, ,, ,, | | |
| ७३ | ,, | सामवेद | ,, ,, ,, | | |
| ७४ | ,, | अथर्ववेद | ,, ,, ,, | | |
| ७५ | प्राकृत | पउम चरियं | (विमलसूरि कृत) प्राकृत मूल पाठ, हिन्दी पद्यानुवाद सहित (कार्याधीन) | | |
| ७६ | पारसी | जरथुस्त्र गाथा | (कार्याधीन) | | |
| ७७ | कोंकणी | ख्रीस्त पुराण | (मूल तथा हिन्दी अनुवाद) (विचाराधीन) | | |

| | | | | पृष्ठ | मूल्य |
|---|---|---|---|---|---|
| ७८ | अरबी | क़ुर्आन शरीफ़ | अरबी, नागरी दोनों लिपियों में मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणी सहित (ल.कि.घ.) | १०२४ | ६०·०० |
| ७९ | ,, | ,, ,, | (केवल मुअर्रा-मूलपाठ नागरी-अरबी लिपियों में) (ल.कि.घ.) | ५२० | ३०·०० |
| ८० | ,, | ,, ,, | (केवल हिन्दी अनु० सटिप्पण) | ५२० | ३०·०० |
| ८१ | ,, | तफ़्सीर माजिदी | क़ुर्आन शरीफ़ का मौलाना अब्दुल् माजिद दर्याबादी कृत भाष्य पहली जिल्द (पारः १-५) | ५१२ | ६०·०० |
| ८२ | ,, | क़ौरानिक कोश | (पठनक्रम से) (ल.कि.घ.) | १९२ | २०·०० |
| ८३ | ,, | क़ौरानिक कोश | (वर्णानुक्रम) (छप रहा है) | | |
| ८४ | ,, | सहीह बुख़ारी शरीफ़ | हिन्दी अनुवाद पहली जिल्द (पार. १-५) | ५८० | ६०·०० |
| ८५ | ,, | ,, ,, | (पारः ६-१०) | ५९२ | ६०·०० |
| ८६ | ,, | ,, ,, | (पारः ११-३०) छप रही है | | |
| ८७ | ,, | ज़ादें सफ़र | (प्रामाणिक हदीस प्र० खण्ड) | ३३६ | ३५·०० |
| ८८ | हिब्रू | द होली बाइबिल् प्रथम खण्ड १ उत्पत्ति २ निर्गमन | (ओल्ड् टेस्टमेण्ट्) मूलपाठ हिब्रू तथा नागरी लिपि मे, अंग्रेज़ी अनु० का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक टिप्पणी। (छप रही है) | | |
| ८९ | ग्रीक | द होली बाइबिल् प्रथम खण्ड १ मत्ती के अनुसार २ मरकुस | (निउ टेस्ट्मेण्ट्) मूलपाठ ग्रीक तथा नागरी लिपि में, अंग्रेज़ी अनुवाद का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक टिप्पणी। (छप रही है) | | |
| ९० | ,, | इलियड् (होमर् कृत) | नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी गद्यानुवाद (कार्याधीन) | | |
| ९१ | ,, | ऑडेसी ( ,, ,, ) | नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी गद्यानुवाद (कार्याधीन) | | |
| ९२ | वाणी सरोवर | —बहुभाषाई त्रैमासिक पत्र | (वार्षिक शुल्क) | | १५·०० |






भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी


भुवनग्रन्थ-गाथा
भुवन सन्त-वाणी



